परिवर्तन

पीताम्बर दत्त पाण्डेय

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर-302003

संस्करण : 1975

मूल्य : दस रुपये (Rs. 10.00)

मुद्रक : शीतल प्रिंटर्स
फिल्म कालोनी, जयपुर-302003.

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की परीक्षायें समाप्त हो गयीं। छात्रालयों में हलचल थी। पर वह पराकाष्ठा की ओर नहीं प्रतिकाष्ठा की ओर इंगित कर रही थी। सभी छात्र अपना सामान बाँधने में व्यस्त थे। कोई आज जायेगा कोई कल और कोई परसों।

रामशरण की बी०ए० की परीक्षा समाप्त हुई पर मित्रों के आग्रह से वह दो दिन रुक गया था। संग्रहालय, सिनेमा, क्वालिटी आहार गृह में ही समय बीता। परीक्षा-परिश्रम की थकान में यह स्वाभाविक ही दीखा। समय द्रुत गति से जाता पता न लगा। सुख के दिन गिनने से पूर्व ही अतीत में जा समाप्त हो जाते है।

उसके भी प्रस्थान का समय आ पहुंचा। ३ बजे अपराह्न, छात्रा तक सुस्त पर उसे दिल्ली एक्सप्रेस से जाना था। ग़नीमत थी कि अमरनाथ झा छात्रावास के बाहर ही रिक्शा मिल गया। जल्दी से सामान रख कर स्टेशन को रवाना हो गया। कुछ दूर जाकर रिक्शा की चाल धीमी पड़ गई। मई की तीव्र धूप तो थी ही पर उसने अब गौर किया रिक्शा चलाने वाला बालक था। उम्र कदाचित १४ वर्ष हो उसको तेज चलने के लिए वह कह नहीं सका।

स्टेशन पहुंचा—सामान कुली को सुपुर्द किया और रिक्शा चलाने वाले बालक की ओर उसकी दृष्टि गई। वह पसीने से भीग रहा था। कपड़े जीर्ण शीर्ण थे—चेहरा भोला भाला। रामशरण ने कहा "तुम्हारी उम्र रिक्शा चलाने की नहीं, स्कूल जानेकी है" बालक ने बड़ी नम्रता से असहाय आवाज़ में कहा "साहब क्या करे"। हाँ उसको दोष देना अन्याय था। राम शरण को मन में बहुत क्षोभ हुआ। एक रुपया ठहराया पर उसने उसे ५) रु० दिया और कहा मेरी ट्रेन का समय हो गया। जुलाई में विश्वविद्यालय खुलने पर तुम कभी छात्रावास में मिलना। मेरा नाम रामशरण है। बालक की आँखों में पानी आ गया। उसने कुछ झुक कर रुपये ले लिये और ट्रेन के आने की आवाज सुन कर आगे खिसकते कुली के पीछे रामशरण तेजी से प्लेट फोर्म की ओर बढ़ा।

आगे भीड़, पीछे भीड़ सब ओर भीड़ ही भीड़। सभी डिब्बों में भीड़। रेल विभाग के अधिकारियों का दावा है कि उन्होंने यात्रियों के लिये बहुत कुछ किया है सरकारी प्रबन्ध में भोजन, साधारण से साधारण कम से कम दाम पर सरकारी चाय —कृष्ण वर्ण की चाय। जो सारा दूध मिलाने पर भी अपने कृष्ण वर्ण का मोह छोड़ नहीं सकती। सब स्टेशनों पर (Complaint Books) शिकायत की किताबें—

जिन पर लिखने के बाद आपको एक ही जवाब मिलना है जो पहिले से ही छप कर तैयार रहता है ।

ट्रेन की संख्या भी बढ़ाई—उनके डिब्बे भी बढ़े, किराये खूब बढ़ाये पर जब, देखो यातायात की जनसंख्या बढ़ती जाती है । 'रेल विभाग क्या करे' उनका आदर्श है वह देश जहां यात्रियों की संख्या न्यूनतम और माल वाहन का भार अधिकतम हो । इस भीड़ की दवा रेल विभाग के पास नहीं ।

आगे पीछे दौड़ भाग कर उसने देखा एक पहिले दर्जे के कूपे में एक स्थान है । उसमें किशोरावस्था के दो व्यक्ति थे । एक युवा और एक लड़की—उसने कहा "क्या मैं आ सकता हूँ।" लड़की जो सुन्दर और आकर्षक थी, हंसी और कहा—हाँ, आप को अधिकार है, किसी की अनुमति की आवश्यकता नहीं ।

वह सामान संभाल कर एक ओर बैठ गया ।

शीघ्र ही वह विचार विमग्न हो गया—उसके मानसिक आकाश में भिक्षुओं का ही दृश्य मंडराता रहा । पुस्तकों और समाचार-पत्रों में देश की निर्धनता और बेकारी पर बहुत कुछ पढ़ते हैं पर उन दृश्यों का साक्षात्कार दूसरी बात है । वे हृदय को शीघ्र ही व्यथित कर सकते हैं । उसको पता नहीं कितनी देर तक वह उस दशा में रहा ।

ट्रेन एक स्टेशन पर रुकी । लड़की हंसी और जोर से कहा । "क्या दृश्य है, जनता को इस स्टेशन मास्टर के लिये अनुगृहीत होना पड़ेगा ।"

धन व्यय तो सभी स्टेशनों पर होता है पर फूलों के न पेड़ बढ़ पाते हैं न लताएं, । न माली को क्यारियां साफ करने का समय रहता है ।जब फूल ही नहीं तो क्यारियों को साफ करने का व्यर्थ परिश्रम क्यों किया जाय ।स्टेशन मास्टर कहे तो किससे कहे । स्वाधीन देश के स्वाधीन मनुष्य अधिकार अधिक—उत्तरदायित्व कम । फिर कर्मचारियों की बकरियां जिन को फूल और पत्तियों से कवियों से भी अधिक और उत्कृष्ट प्रेम । उनको मानना पड़ता है परिश्रम से विवेक ही बेहतर है ।

स्टेशन साफ सुथरा था । क्यारियां निर्मल और सुसज्जित । यद्यपि फूलों का समय बीत गया था । फिर भी बहुत से रंगों के गुलाब और गेंदा के फूल अपनी शोभा से आँखों को अपनी ओर से हटने नहीं देते थे । बोगन बेलिया और अन्य लतायें भी फूलों से सुसज्जित थी । उन सबके ऊपर Gold Mohar के पेड़—सुन्दर आकार, सुन्दर पत्तियां, सुन्दर फूल । रामशरण की विचार शृंखला टूटी । वह भी बाहर की ओर एक टक देखने लगा । गाड़ी चलने लगी । उस स्टेशन का प्रभावशाली दृश्य धीरे-धीरे अन्तर्ध्यान हो गया । पर उसका मन उदासी की कैद से छूट चुका था ।

उसने कहा "दृश्य बहुत सुन्दर था—जनता नहीं तो मैं इस स्टेशन मास्टर का अनुगृहीत हूँ ।"

लड़की ने कहा "आपको उदासी क्यों थी, यह तो मैं नहीं जानना चाहती पर चिन्ता मग्न होने से कोई समस्या हल नहीं होती—वह केवल मन की दुर्बलता है ।"

रामशरण—"शायद ठीक है ।"

लडकी—"हमारा घर कानपुर है । आप कहां जा रहे हैं ?"

"विश्वविद्यालय की छुट्टी है । कुछ पैसे बचे थे—काश्मीर-पर्यटन के लिये विचार किया है ।"

'खूब । वहां उदासी से छूट मिलेगी । प्रकृति का सौन्दर्य तो सर्वत्र है पर वहां विशेषकर । जिस दिशा में चाहो कैमरे को घुमा देना अच्छा ही चित्र आ जायेगा । फिर मुगलो के समय से ही मनुष्य भी प्रकृति की सहायता करता आया है—बाग़ और फव्वारे और फूल । रुपया व्यय करने के बहुत से साधन—अच्छे और बुरे । जगल में शिकार, नदियों में मछली, सरोवरों में जल क्रीड़ा । मन मचले तो आवारा पदयात्रा—नगर की धूप में या उच्च पर्वतों के नीहड़ मार्गों पर । विस्तृत देश है बर्षों विताये जा सकते हैं ।"

"यह तो काश्मीर का अर्द्ध दर्शन यहीं हो गया—धन्यवाद ।"

"और भी । यदि जेब में पैसे यथेष्ट हैं तो उनका व्यय होते देर न लगेगी । कश्मीरियों में विविध कला-कौशल का विकास हुआ है । बहुत सी चीजे खरीदने के लिये, सुन्दर और साधारण—आवश्यक और अनावश्यक ।

A.I.S.I. और कश्मीर राज्य की दुकाने, जहा मूल्य नियन्त्रित हैं, होते हुए भी फेरी वालों से अधिक मूल्य पर घटिया चीजें लोग खरीदते है ।"

"अधिक मूल्य पर घटिया चीजे क्यों ?"

"शायद वैसी चीजें दुकानों में न हों, या फेरी वाला वेचने में कार्य कुशल हो । कुछ न हो तो पुरुषो की विपरीत बुद्धि तो है ही ।"

"क्या स्त्रियों के लिये यह लागू नही ।" "मेरी गणना स्त्रियों में है । इससे यह पक्षपात स्वाभाविक है ।"

"मुझे इसमें कुछ आपत्ति नही है ।" लड़की हंसी और कहा । "यदि होगी तो आपकी उदार चेतना कहने न देगी ।"

इसी तरह बातचीत में समय Capital Express से भी अधिक गति से बीतता गया ।

किसी कारण रामशरण की इस बातचीत में सुख का अनुभव हुआ ।

कानपुर स्टेशन आ गया ।

युवक ने कहा—हमारा स्टेशन आ गया है । आशा है आपको मेरी वाचाल बहिन शोभा ने अधिक तंग नहीं किया ।

नहीं, बिलकुल नहीं, मैं उनकी आत्मीयता के लिये आभारी हूँ । शोभा ने कहा "आत्मीयता ! आत्मीयता के तो भयंकर फल हो सकते है यद्यति मेरी जैसी दृढ संकल्प लड़की के लिये कुछ बचत हो ।"

ट्रेन रुकी । वे दोनों उतर गये । युवक ने पूछा "आपको किसी सेवा की आवश्यकता है ?"

रामशरण—धन्यवाद। मैंने भोजन के लिये कहा है। आता होगा।

दूर से भोजनालय के आदमी को बहुत सी थालियां एक के ऊपर एक रख कर आते हुए देख कर कहा। "शायद वह आ ही रहा है।"

युवक और शोभा ने साथ ही कहा 'नमस्कार' और वे बाहर मार्ग की ओर चले गये।

रामशरण उनको देखता रहा—जब तक वे ओझल नहीं हुए।

शोभा ने घूम कर नहीं देखा। भोजनालय के वाहक ने लाकर भोजन रख दिया। रामशरण की मनोवृत्ति प्रसन्न थी। उसने उत्साह से भोजन किया और प्लेटफोर्म की ओर देखने लगा। रेलवे स्टेशन भी मनुष्यता का अच्छा प्रदर्शन है।

जाने वालों की भीड़ समाप्त हो गई थी। आने वालों की भीड़ में अभी हलचल थी। शायद स्थान के अभाव से।

रेल ने सीटी दी और चलना आरम्भ किया।

विदाई भी भावों के प्रदर्शन का अच्छा अवसर है। बच्चे और युवा अपने-अपने संबंधियों और मित्रों के लिए रूमाल लेकर हाथ हिला रहे थे और वे हाथ हिलाते रहे जब तक वे अदृश्य न हो गये। भले ही यह भाव प्रदर्शन अस्थायी हो पर उससे उसका महत्व बढ़ता ही है।

ट्रेन प्रातःकाल दिल्ली पहुंच गयी। पर ग्रीष्म ऋतु होने से उषा के प्रकाश से स्टेशन भली प्रकार आलोकित था।

प्लेटफोर्म का भव्य दृश्य—आगन्तुकों के स्वागत के लिए आये पुरुष स्त्री और बच्चों की हलचल, बहुत प्रसन्नता, बहुत प्रेम पूर्वक भाव, आत्मा के लिए शान्ति-सुख।

रामशरण ने दिल्ली पहिले देखी थी। दिन भर का समय शेष था। सामान क्लोक रूम में रखकर और आराम से ब्रेकफास्ट खाकर लाल किले की पदयात्रा के लिये निकल पड़ा। लालकिला भी पहिले देखा था। संग्रहालय देखने वाली रुचि न थी। वहां वह ऐतिहासिक विचार स्वप्नों में गोते खाने लगा। उसको दिखा दीवान-ए-खास 'पूर्ववत् दशा में' आ गया। मराठों और अन्य लुटेरों का किया गया ध्वंस पूरा हो गया और सारी दीवारें बहुमूल्य रत्नों से जगमगा गयीं। जनता, बड़े-बड़े अधिकारी और शाहन्शाह अपने-अपने स्थानों पर पहुंच गये। वह निर्धन, दुर्बल भारत का दृश्य न था। वह बलवान, ऐश्वर्यपूर्ण, और कला-प्रेमी सम्राटों का समय था।

यथा समय रामशरण अपनी ट्रेन में पहुंचा। उसमें तीन व्यक्ति और थे। एक केन्द्र सरकार का ऑफिसर और उसकी पत्नी और एक भारी बदन वाला। आत्मविश्वासी और समृद्ध व्यापारी। ट्रेन के छूटने के 5 मिनट में ही वह गहरी नींद में बेखबर हो गया और पठानकोट तक एक बार भी उसकी निद्रा न खुली। वहाँ पहुंचकर भी उसको उठाना पड़ा। उठते ही उसने कहा 'अपन को तो नींद अच्छी आती है' और रामशरण ने उत्तर दिया 'इसमें कोई सन्देह नहीं है।

बाहर जाने पर अनेक टैक्सी वालों का सामना करना पड़ा। उनमें एक टैक्सी चालक जिसके माथे पर सिन्दूर की विन्दी उसके काश्मीरी पंडित होने की द्योतक थी, अधिक प्रभावोत्पादक और हंसमुख था। उसने कहा कि वह अन्य चालकों से 20) रु० अधिक लेगा। पूछे जाने पर वह उन लोगों को 2 घण्टे अधिक देगा—प्राकृतिक सौन्दर्य के रसास्वादन के लिए और ऐसा अवसर कदाचित् फिर न मिल सके। उसने कहा कि हम पहिली वार कश्मीर जाने के कारण उसकी बात का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं कर सकते पर उस पर विश्वास करने से लाभ ही होगा—अन्त में उसका प्रस्ताव मान ही लिया।

अनेक स्थानों पर मोटर चालक पं० अमरनाथ ने मोटर रोकी और उनको पांच मिनिट के लिए वाहर आने का सुझाव दिया—हो सकता है उन को सिगरेट पीने व विश्राम की आवश्यकता थी और दृश्य भी पर्वती देश के लिए विशेष न था पर हम उसके आभारी थे, रामशरण और केन्द्र के ऑफिसर गिरिधर दास ने केमरे का उपयोग किया पर सफल वणिक सज्जन राम रतन लाल को केमरे का शौक न था। एक बार उसने कहाँ "अपन तो दूकान से तस्वीर खरीद लेते है और कभी कभी मेगजिनों से अच्छी तस्वीरे काट लेते है। अपना अलबम तो योहि बन जाता है।

पटनी पर्वत श्रेणी के दर्रे के पास अमरनाथ ने मोटर रोकी और उन्हे आधा घन्टे भ्रमण का समय दिया। वे सब पटनी चोटी की ओर बढ़े। गिरिधरदास और उनकी पत्नी एक ओर, रामशरण और राम रतन दूसरी ओर। राम रतन को प्रकृति सौन्दर्य का तो प्रभाव न हुआ, पर वह अपने आनन्द संसार में ही भ्रमण करना था। उसकी गाथा कहने में रूक न सका—उसने बताया किस तरह योजनाओं के कारण देश में धन का नद वह रहा है। जो उस से कुछ लेकर अपना घर न भर सके वह मूर्ख ही होगा। उसकी अधिक सफलता तो उसकी वुद्धि और साहस का प्रमाण है। कर विभागों का उनको भय न था। वकीलों और धन की सहायता से कष्ट निवारण हो जाता है। कभी २ तो उनका एक पैर घर में और एक पैर जेल में था पर सब ठीक हो गया, पर धनोपार्जन तो खूब किया।

उसकी आत्म-गाथा समाप्त न हुई पर समय समाप्त होने से वे मोटर में आ बैठे।

रात्रि वरोट के डाक बंगले में काटी। अमरनाथ ने दो कमरों का प्रबन्ध किया और रामशरण को रतन लाल के साथ रहना पड़ा। स्वस्थ शरीर के कारण, सफल जीवन के उल्लास के कारण या जलवायु की विशिष्टता के कारण रतनलाल को उंघों ने तंग किया और शीघ्र भोजन कर वह निद्रा देवी की गोद से सो गया। रामशरण को पता था कि सवेरे तक वह न उठेगा और उसको आत्म कथा से छुट्टी मिली। पर उसके खर्राटों की समस्या रही।

रामशरण के मस्तिष्क में दो तूफान थे एक राम रतन के सुख संसार का और एक दरिद्रता के कष्ट-संसार का। सिर भारी हो गया था। वह बाहर भ्रमण के लिए निकल पड़ा। वायु शीतल और सुखद थी—मोटरों का यातायात समाप्त सा हो गया था। भाग्यवश वह पूर्णिमा की रात्रि थी और चाँद क्षितिज की पर्वत-श्रेणी के ऊपर उठ आया था—आंशिक अंधकार मे चांदनी छिटक २ कर स्वप्निक सौंदर्य का संसार बना रही थी, हां, कभी २ उल्लू का बोल सुनाई पडता पर वह शांतिमय वातावरण मे अधिक बाधा न डालता। कभी २ छोटा चिमगादड़ तेजी से कान के पास से निकल जाता। मन का तूफान शांत हुआ और एक अस्पष्ट उल्लास से मन भर गया। वह डाक बंगले को लौटा और दोनों कानो मे अच्छी तरह रूई भर कर लेट गया।

नेहरु टनल पार कर अमरनाथ ने मोटर रोक दी। "यहां आधा घन्टा आप इस स्वर्गीय दृश्य के लिये व्यय कर सकते है।" सचमुच वह दृश्य स्वर्गीय था। ऊपर देखने से जहाँ तक दृष्टि जाती सारा पर्वत पुष्पों से सजा था—घास में फूल, झाड़ियो मे फूल और ऊंचे वृक्ष भी रंग बिरंगे पुष्पों से सजे थे। वायु शीतल और सुखद—नीचे की ओर कश्मीर की विस्तृत घाटी। आकाश मेघाच्छन्न होने से दृश्य कुछ धूमिल था पर घाटी के एक पार्श्व में परिपञ्जल पर्वत श्रेणी दृष्टी गोचर थी और उसका ऊपरी भाग हिमाच्छिद होने में क्षीण स्वर्गंगा सा आभास हो रहा था।

रामशरण ने मोटर से उतर कर रामरतन से कहा कि मुझे तेज चलने की आदत है और वह धीरे २ ऊपर आये। उसने भी कहां "हां अपन तो धीरे २ चलेगे।"

गिरिधर दास अपनी पत्नी के साथ कुछ दूर जा कर एक शिला पर बैठ गये। वे प्रसन्न दीखते थे। कदाचित उन्हें योजनाओं से छुट्टी मिली और सचिदानन्द को सृष्टि में कुछ आनन्द रेखा दिखी हो।

राम रतन से छुट्टी पा रामशरण कुछ दूर चल कर एक शिला पर बैठ गया और इस रम्य दृश्य मे अपने जीवन भावों को घुलने दिया। जब सचेत हुआ तो आधा घण्टा बीत ही रहा था। उसने दौड़कर राम रतन को नीचे जाते पकड़ा और मोटर मे पहुँच गया।

अनेक सुन्दर स्थानों पर मुगुल सम्राटों ने अपने रहने के लिये बाग लगाये। एक छोटा बाग ननिहाल पर्वत की कोख में भी है। यहां भी लिखा है "यदि स्वर्ग कहीं है तो यहां है यहां है।" यह बाग छोटा सा है और पुरानी इमारत की केवल दीवारे ही रह गई है। यहां पर झरना इतना बड़ा है कि एक नदी के पर्वत तोड़कर निकलने का भ्रम होता है। पास ही पहाड़ दीवार की तरह बहुत ऊपर उठता है और चोटी की वृक्ष रेखा को देखने में आंखे आसमान की ओर हो जाती है। कुछ समय यहां बैठ और मध्यकालीन मुगुल युग के स्वप्न देख कर वे लौट आये।

यथा समय श्री नगर के पार्श्व मे पहुँचे । अमरनाथ ने बादामी बाग की ओर इसारा किया । अब तो यह एक सैन्य छावनी है । एक समय यह सचमुच बादामी बाग था पूरे क्षेत्र में बादाम के वृक्ष थे । पुष्पित होने के समय सारा पर्वत बादाम के पुष्पों की चादर ओड़ लेता था । वृक्ष पत्र हीन होने से पुष्प मृजित भव्य कृति बने जाते ।

इनको देखने दूर दूर से पर्यटक आते और इनके बहुत चित्र बनाये जाते ।

श्रीनगर पहुँच कर रामरतन तो अच्छे पर्यटक होटल मे चला गया जहाँ उसको स्वादिष्ट और आधुनिक भोजन खाने को और नृत्योत्सव देखने को मिल सके ।

गिरिधरदास ने अपने मित्र के स्थान पर ठहरने का प्रबन्ध किया था और उनके पास चला गया । रामशरण ने अमरनाथ के परामर्श से बन्ध की दुकानों के ऊपर के एक साधारण होटल के एक कमरे को अपना लिया—श्री नगर को केन्द्र बनाने से दिल मे कुछ छूट मिल गई ।

उसका प्रोग्राम अमरनाथ की सहायता से ही बना । दो चार दिन के लिये बाहर गया—गुलमर्ग और अल्पथर, पहलगाम, चँदनवाडी, और शेषनाग, और अहरबलपात और विश्नुपाद सरोवर, इस देश में केवल कश्मीर क्षेत्र मे ही इतनी सरलता से और कम समय मे इतने ऊचे स्थानो पर पहुँचा जा सकता है । शेषनाग १४००० फुट और विश्नुपाद सरोवर १३००० फुट ऊँचा है । यहाँ का प्रकृति सोन्दर्य कश्मीर घाटी के सोन्दर्य से कही श्रेष्ठतर है । यदि आकाश निर्मल हो तो गुलबर्ग से अदभुत सर्वहादृश्य सम्भव है । इस में कश्मीर का वृहत् भाग, वूलर, लेक, और नागापर्वत का, जो २६००० फीट से अधिक है, बहुत सुन्दर दृश्य है, गुलबर्ग श्री नगर से ३ घटे का मार्ग है । विष्नुपाद का जल निर्मल है और यह अदभुत प्रतिबिम्बो के लिये विख्यात है और अहरबल प्रपात से कुछ ही आगे अल्पाइन क्षेत्र है जहाँ समय आने पर सारी प्रकृति पुष्पों से अलँकृत हो जाती है ।

फिर भी श्रीनगर, पहलगाम, गुल्वर्ग पर्यटकों को आकर्षक है । मानव जाति के लिये मानव क्रीड़ा भी आवश्यक है ।

मुगल उद्यानो की शोभा प्राकृतिक और मानवकृत है । वहाँ कश्मीर निवासी और पर्यटकों की उपस्थिति मानव क्रीडा के आधार है ।

कोई हँस रहा है, कोई गा रहा है और कोई नाच भी रहा है । कोई अपनी हनिमून मे मस्त है, वे अन्य जनना के अस्तित्व को भी भूले है । पर्दे वाली सुन्दर युवतियों ने पर्दा ऊपर कर दिया है और वातावरण मे कुछ प्रकाश फैलाया है । कोई युवती अपने स्वामी के पीछे पीछे जा रही है पर चेहरा उदास है । किसी छोटी बात की स्मृति उसके लिये है जीवन के बहुमूल्य समय को नष्ट करने के लिये यथेष्ट कोई मियाँ आगे आगे उदास जा रहे है पर युवती प्रसन्न है । वह ऐसे जीवन के सुन्दर क्षणों को गृहस्थ की दैनिक त्रुटियों की स्मृतियो से कैसे नष्ट कर सकती है ।

कोई कोई मियाँ बीवी इतने प्रसन्न है मालूम होता है कि वे उल्लास के वातावरण में घुलमिल गये है ।

एक वार गिरिधर दास और उनकी पत्नी निशात वाग के एक कोने में मिले । फव्वारे चल रहे थे और उनकी पत्नी एक चित्र वनाने में अपने को और अपने पति को भूली हुई थी । गिरिधर का उलाहना था कि उनकी पत्नी चित्र-कला मे अधिक समय व्यय करती है और उनके अधिकार में घाटा हो जाता है। दूसरी शिकायत थी कि उनकी पत्नी ने वहुत सा सामान खरीदा और वजट में घाटा पड़ गया । रामशरण ने उनको शान्तवना दी कि कश्मीर पर्यटक के लिये ये साधारण घर हैं । इसकी चिन्ता न करनी चाहिये ।

रामरतन मिले तो वे कुढ़ रहे थे कि पाजी मैनेजर ने शीघ्र लौटने के लिये तार दे दिया । उसके सिर मे दर्द क्यों हुआ, हानि तो मेरी ही होती । कश्मीर अच्छी जगह है, पैसा खर्च करने के लिये और उसके वदले में मिलते है वहुत से मनोरजन, उन्होने धैर्य किया "अपन तो फिर आयेंगे" ।

जव उसको समय मिलता अमरनाथ रामशरण के पास आता था । विद्यार्थी होने मे उसने अधिक सामान तो नही खरीदा । कुछ अपनी व्यक्तिगत आवश्यक चीजे और कुछ उपहार की साधारण वस्तुएँ—उसकी ही सहायता से ।

एक वार उदासी में पूछे जाने पर उसने अपनी कहानी कही । "अमरनाथ और सरला कौल एक ही मुहल्ले मे रहते थे । दूर के संवंधी होने से एक दूसरे के घर भी आते जाते थे, वयस्क होने पर यह आना जाना कम हो गया । सरला के पिताजी विचारो के कारण, फिर भी हम कभी कभी कहीं मिलते ही थे--स्कूल कॉलेज आने जाने मे, युवावस्था के आगमन से हमारी वाल्यकाल की मैत्री नये भावों में रंजित होने लगी । इस भाव परिवर्तन का अर्थ तो इस समय हम नहीं समझ सके और परिवर्तन हुआ भी था इतना धीरे धीरे, हॉ—मिलने से मन वहुत सुखी होता-एक दूसरे से वात करना-किसी भी विषय मे अच्छा लगता । कुछ दिन न मिल पाने पर मन मे एक प्रकार की उदासी छाजाती । कालचक्र घूमता ही रहा । मैंने और उसने वीए. पास किया पर मेरे एम. ए. परीक्षा के प्रथम भाग पास करने पर मेरे पिता का देहावसान हो गया--मार्क अच्छे होने पर भी कॉलेज छोड़ना पड़ा-सरला ने वी. ए. प्रथम श्रेणी मे पास किया । मैं मोटर चलाना जानता था । एक दूसरे की टेक्सी वेतन और वोनस पर चलाने लगा ।

सरला ने प्रथम श्रेणी में एम. ए. पास किया और कॉलेज मे व्याख्यात्री नियुक्त हो गई ।

मैने उसके घर जाकर उसके पिता जी को और उसको वधाई दी, अभिप्राय तो वहाँ दस मिनिट ही रुकने को था पर वातावरण रँजित था । उसके उल्लास में समय का ज्ञान न रहा । सरला ने चाय देने के लिये आग्रह किया । उसके पिताजी

ने भी आपत्ति नही की, एक घंटा बीत गया। समय की ओर ध्यान जाने से मैंने उनसे छुट्टी ली।

मेरी और सरला की बाते साधारणत: उद्देश्यहीन होती थी। सरला सीमित शब्दों वाली बाला, थी। उसके मन के विचार जानना कठिन था। अपनी स्थिति की दुर्बलता के कारण प्रत्यक्ष प्रश्न मेरे लिए कठिन था। उसने सम्पर्क धारा नहीं तोड़ी। यह भी संतोष था। मिलने पर उसके व्यवहार, भावों और रुचि मे अन्तर प्रकट न था। मेरे भावों के संसार का चित्रपट इसी तरह चलता रहा।

पर तूफान आ ही गया। एक कश्मीरी पंडित युवक जिसके घर वालों के पास सम्पत्ति भी थी आयकर विभाग में निरीक्षक नियुक्त हो गया। उसके और उसके घर वालों ने सरला के पिता के पास उसके विवाह का प्रस्ताव भेज दिया। यह सुन कर मेरे पैरों के नीचे की धरती सरकी और मैंने भूकम्प का अनुभव किया। इस प्रस्ताव पर शीघ्र अनुमति तो न दी गई। सभी कुछ आकाश और पाताल के बीच लटकता रह गया। प्रथम आघात की पीड़ा कम होने पर और दु:ख के मेघ हलके होने पर मुझ को अपने भावो, अभिलाषाओ और कर्त्तव्यों के अन्तरो को समझने की शक्ति प्राप्त होने लगी। अपनी स्थिति की दीनता दीखने लगी। धुंधले कुहरे के बीच सचाई को कुछ कुछ रूप दृश्यगोचर होने लगा। मुझको प्रतीत हुआ कि सरला के लिए प्रस्ताव अनुकूल है और उसमे उसका जीवन सुखी हो सकेगा। फिर भी बहुत समय तक मै उसको ऐसा न कह सका। विपरीत भावो, इच्छाओ और विचारों के संघर्ष में मेरी दशा दयनीय हो गई। अत्यधिक मानसिक मन्थन से अन्त में मुझे कर्त्तव्य की प्रेरणा हुई और मैंने सरला को लिख दिया उसको विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिये वह उसके लिए श्रेयस्कर है। पत्र लिखकर मै तुरन्त ही डाकखाने में डाल आया—घर आकर अनुभव हुआ कि मैं बहुत थका हूं और काम से छुट्टी लेनी पड़ी।

आशा को मै पूर्णतया विदाई दे दी थी पर मेरे मानस-आकाश में उसका अन्त न हुआ। वह ध्रुव क्षेत्र के सूर्य की तरह ऊपर नीचे मंडराती रही। दिन लंबा हो गया, उसका अन्त न होता, रात्रि उससे भी अधिक....मालूम होता कि ब्रह्माजी ने उसको अमरता का वरदान दे दिया। डर लगा यह असमजस मुझे पागल करके ही रहेगी। मैंने फिर काम पर जाना आरम्भ कर दिया। बहुत समय तक उसने पत्र का उत्तर नहीं दिया। अन्त मे उसका पत्र आया। उसमे इतना ही लिखा था "कॉलेज मे फिर प्रवेश करलो और एम० ए० पास करलो। आर्थिक कष्ट से न घबड़ाना।"

इस मे कोई व्यक्तिगत प्रतिज्ञा न थी और न कोई आशा का आधार। पर मनुष्य की आशाओ को तर्क की सहायता नहीं चाहियें। वे स्वयम् सर्व शक्तिमान और पर्याप्त है। मै ने अनायास ही इस अनुमति को मान लिया।

आपको पठानकोट पहुँचा कर मैं यह काम छोड दूंगा। टैक्सी खरीदने के विचार से कुछ धन सचित किया था। वह पढ़ाई में व्यय हो जायगा कमी होने पर क्या होगा मन ने आवश्यक न समझा-यही मेरी कहानी है।"

रामशरण ने कहा कालान्तर मे सब समस्याएँ हल हो जाएंगी। वर्तमान मे तुम्हारा निर्णय ठीक है।

पठानकोट लौटने का समय आगया, अमरनाथ उसे वहाँ छोड़ने और अपना अंतिम ट्रिप पूरा करने वहाँ तक आया।

ट्रेन के छूटने मे समय शेप था। रामशरण उसको भोजनालय में लेगया और भोजन के वाद उसको विदाई दी।

"कश्मीर ट्रिप की सफलता के लिए वहुत २ वन्यवाद, उसने कहा" यह वड़ी वात नही। आशा है फिर आओगे, उन दोनो की आँखे कुछ भीग गई"।

रामशरण समय से कुछ पूर्व इलाहावाद लौट आया था। विश्वविद्यालय खुलने का वातावरण अभी उपस्थित नहीं था।

सांयकाल एक दिन वह छात्रावास से वाहर आया तो उसने वही रिक्शा और चालक देखा जो उसको स्टेशन ले गया था। उसने कहा "मेरी माँ आपके उदार व्यवहार से वहुत प्रभावित हुई थी और मुझे आदेश है कि आपसे प्रार्थना करूँ कि एक वार आप हमारे घर आने का कष्ट करें।" अनायास ही वह उसके साथ हो लिया। उसने अपना नाम वताया—रामदास

उनका घर एक मध्यवर्गी दुमंजिला मकान था। मरम्मत न होने से जीर्ण शीर्ण दशा में था। विशेपकर ऊपर की मँजिल जिसकी छत कुछ गिरी सी दीखती थी।

बैठने के कमरे मे कुछ पुराना फर्नीचर था। उसकी आवाज सुन कर उसकी माँ कमरे मे आगई। रामशरण का परिचय पाकर उसने वन्दना की और कृतज्ञता दिखाई। इस कठिन देश मे सभी अपना २ युद्ध लड़ रहे है और सबको अपने कँधे का वोझा भारी ल ता है। जव से देश स्वाधीन हुआ सभी ने अपना कर्तव्य राज्य के सिर पर फैंक पूरी स्वाधीता प्राप्त करली है। "किसी अज्ञान कारण से मुझे आशा हुई कि आपमें सहायक सम्पर्क मिलेगा।"

वार्तालाप सुनकर एक सुन्दर लडकी वाहर आई और उन लोगों के पास खड़ी हो गई, उसने कहा "माँ रोज ही आपकी प्रशंसा करती थी। वड़ी वांत है आज आपका साक्षात्कार हो गया।" रामशरण ने उसकी ओर देखा--अन्धकार में दीपक वह कुछ झिझका। पर वह निर्भीक थी। उसने हँस कर पूछा "आपकी यात्रा कितनी सफल रही और आप कव लौटे ?"

"मैं दो दिन हुए यहाँ पहुँचा-'

"आपने कौनसी परीक्षा दी थी"

"बी. ए."

"क्या मैं आपका नाम पूछ सकती हूं"

"रामशरण"

"मैंने बी. ए. का परीक्षा फल देखा था। आपको बहुत बधाई है। माँ, ये तो बी. ए. में प्रथम श्रेणी मे प्रथम थे।"

माँ ने उसकी ओर इशारा किया और कहा "पुष्पा तू बहुत बातून है। यही खड़ी रहेगी ?" पुष्पा ने उसकी ओर फिर देखा और कहा "मैं अभी लौटूंगी"—वह अन्दर चली गई।

माँ अपनी कहानी कहती रही। उसके पति का, जो स्कूल में शिक्षक थे, देहान्त हो गया था। दोनो बच्चों ने "एम. ए. की परीक्षा पास करली थी। पर दिन कठिन हो गये—धनाभाव से मकान की मरम्मत भी न हो सकी--ऊपर छत टूटने से किरायेदार भी छोड़ कर चला गया—

बच्चों के कपड़े सी कर कुछ रुपये मिलते थे पर यह यथेष्ट न था, रामदास को विश्वविद्यालय मे जाने की आशा न रही—रिक्शा चलाता है। समस्या हल करने का कोई उपाय नहीं दीखता है।

रामशरण ने कहा "समस्या तो कठिन है। विचार करूँगा, इस समय तो मै जाता हूं।" वह उठ खड़ा हुआ पुष्पा दौड कर अन्दर से आई और उसने कहा "कुछ क्षण ठहरिये मौखिक बधाई युथेष्ठ नही है। मै चाय ला रही हूँ" उसकी माँ ने भी रुकने का आग्रह किया वह बैठ गया।

पुष्पा एक पुरानी पर साफ ट्रे में चाय ले आई। तीन प्याले थे। एक स्टूल खैंचकर लाई और उनकी कुर्सियों के सामने बैठ गई।

वह बाहर आया, उसके साथ रामदास और पुष्पा भी बाहर आए। उसने हाथ जोड़े, रामदास चुप रहा। पुष्पा बोली "आपने आने का कष्ट किया। हम को बहुत खुशी हुई, फिर आइयेगा।"

उसने विचार किया। इस कुटुम्ब की समस्या तो जटिल है पर इनकी सम्पत्ति है एक तो गृह और दूसरे बच्चे। घर का जीर्णोद्धार होने पर कुछ आय हो सकती है। बच्चे मेधावी और होनहार है। यदि शिक्षा पूरी हो सके तो संसार में अपना उचित स्थान पा सकते है।

रामशरण के एक सम्बन्धी अभियन्ता थे। इस कुटुम्ब की दशा जानकर उन्होने सहायता की। एक ओवरसियर ने मकान देख कर रिपोर्ट की कि 900) रु० व्यय करने पर ऊपर के खँण्ड की मरम्मत हो जायगी और मकान को धरोहर रख कर १०००) या १२००) का ऋण भी मिल सकेगा।

रामशरण ने एक दिन यह योजना रामदास की माँ के सम्मुख रखी। उसको समझाया १२००) बैंक से मिलने पर मकान ठीक हो जाएगा और १५०) किराया

मिल सकेगा, शेष धन से एक बुनने की मशीन आ जाएगी। उससे यथेष्ट आय हो सकेगी। इस पर वह बहुत खुश हुई और उसके नेत्रों मे आनन्द के आँसू आगये। पुष्पा तो खुशी से कूदने लगी और उसने कहा "आपको आज तो यहाँ एक घंटे ठहरना पड़ेगा।

आनन्द की बाढ़ बहने पर यह दृष्टि गोचर हुआ कि इस योजना के फलन मे समय लगेगा और वर्तमान कठिनाई रहेगी। यह थी रामदास और पुष्पा की प्रवेश--फीस--पुस्तक आदि।

इस तात्कालिक समस्या के लिये रामशरण ने उनको ऋण देने का प्रस्ताव किया। उसने कहा इस से तुम को किसी का आभारी नही होना पड़ेगा पुष्पा बोल उठी "सिवाय आपके" हम ऋण वापिस न करे सकें यह भी संभव है।

"इतनी जुआ बाजी मै कर सकता हूं--पुष्पा" विचित्र। नाम सब हमारा-हानि आपकी। यह जुआ विषय हो सकता है।

आशा के प्रकाश से गृह का वातावरण उज्वल हो गया। पुष्पा ने अपनी धमकी पूरी की। चाय का बन गया अल्प भोजन और एक घण्टे का हो गया सवा घण्टा।

समयान्तर मे यह योजना कार्यान्वित हो गई।

मकान का ऊपर का भाग विश्वविद्यालय के एक रीडर ने १५०) माह पर ले लिया, रामदास का पौली टेक्नीक में प्रवेश हो गया और पुष्पा बी. ए. मे। विश्वविद्यालय मे सभी प्रकार के छात्र हैं। कुछ ही विद्यार्थी ज्ञानोपार्जन के लिए आये है। कुछ आजीविका का साधन ढूंढने। पर अधिकाँश दिशाहीन है। बेरोजगार बैठने से विद्यार्थी का विश्वविद्यालय मे ही समय व्यय करना बेहतर है।

विदेशी राज्य का तो कर्तव्य न था कि भारत के युवाओं को कोई आदर्शवाद देता या उनके आचरण और व्यवहार को उन्नत करने के लिए कुछ भी करता। पर स्वाधीन भारत ने भी २७ वर्ष यों ही नष्ट किए और हमारी शिक्षण संस्थाएँ शून्य में ही रह गई।

अगस्त हडताल का समय है और हड़ताल की खूब धूमधाम रही। कारण तो प्रति वर्ष कुछ न कुछ मिल ही जाता है। यह भी समय आया और गया और विद्यार्थीगण अपनी अपनी परीक्षा की तैयारी करने लगे।

दिसम्बर में एक दिन रामदास आया और उसने घर दूसरे दिन आने का निमन्त्रण दिया। पूछे जाने पर उसने कहा कोई विशेष कारण तो नहीं पर आसकें तो अच्छा होगा। रामशरण ने स्वीकृति देदी।

उसने देखा मकान का पुनुरुज्जीवन हो चुका था। मकान की सफेदी की गई थी और दरवाजों और खिडकियों को पौलिश करके चमकाया गया था। सर्वत्र

स्वच्छ और निर्मल। यह देखकर वह प्रभावित हुआ और पूछा "इस अनुपात में प्रयास क्यों।"

पुष्पा ने कहा "स्वावलम्बन का का प्रयत्न"

रामदास ने कहा—इसको छात्रवृत्ति मिली और उसका रुपया भी मिला—उससे ही फूली हुई है। पर आधा श्रम इसने मेरे सिर पर डाला।"

पुष्पा "छोटे से श्रम के लिए इतना उलाहना" मकान की वर्तमान मन्द मुसकान उस के लिये यथेष्ट क्षतिपूर्ति है।"

रामदास "तू बहुत वातून हो गई है"

पुष्पा "तुम को इस प्रतियोगिता में किसने रोका है।"

उनकी माता ने कहा "तुम लोग रामशरण जी का समय क्यों नष्ट कर रहे हो। यह विवाद तो पीछे भी हो सकता है।"

पुष्पा वहुत हँसी और अन्दर चली गई।

रामदास "छात्रवृति और जन्म दिवस के उल्लास का ज्वर।"

इतने में पुष्पा चाय की ट्रे और सामान ले आई।

रामशरण ने कहा "जन्म दिवस की वधाई, पर इसका समाचार क्यो नहीं दिया। कुछ लाभ हो सकता था।"

पुष्पा "इसी लिए नही कहा"

रामदास "ठीठ लड़की"

पुष्पा ने सिर्फ हँस दिया। वह अच्छी मनोदशा में थी। वातावरण फिर निर्मल हो गया।

मेज के पास दूसरा मेज, ट्रे के वाद ट्रे, सव मेज सामान से भर गये।

रामशरण ने कहा "इतना व्यय करने की तो आवश्यकता न थी"

पुष्पा "व्यय तो ऐसा नही हुआ है। सव सामान मैंने ही वनाया है। हाँ माँ के निरीक्षण मे"—

पुष्पा "मेरी क्षात्रवृत्ति की धन राशि मिल गई है आपका आधा चुकाया जा सकता है। बाकी का भाग आगामी वर्ष में"

"बैंक का ऋण कितना शेष है ?

पुष्पा "उसके लिए तो पह यथेष्ट न होगा—आगामी जुलाई अगस्त तक जोड़ना पड़ेगा।"

रामशरण "बैंक का ही ऋण पहिले चुकाओ। उससे मासिक आय में वृद्धि हो जायगी। मेरा ऋण उसके वाद चुक सकता है।

रामदास की माँ "हमारे लिये तो बहुत लाभ कर होगा ही।"

"पुष्पा ! तुम्हारे ही दोष से जन्भ दिवस का उपहार तो नहीं मिला। यदि परीक्षा में प्रथम श्रेणी लावोगी तो अच्छा उपहार मिल सकता है।"

पुष्पा "प्रथम श्रेणी के लिए तो नही पर तुम्हारे उपहार के लिए अवश्य भरसक प्रयत्न करूंगी।" यह कह कर वह प्रसन्नता से मुसकराई।

परीक्षा काल आया और चला गया। सभी छात्र अपने २ घर चले गये और विश्वविद्यालय का वातावरण नीरव हो गया।

रामशरण के पिता जी हरिचरन एक सफल व्यापारी थे और उनका स्थान देहरादून था। वह भी छुट्टी के लिए वहां चला गया। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये बद्रीनाथ तक पद यात्रा की। अपना सीमित सामान अपनी पीठ पर लादा। बिना किसी प्रोग्राम के यात्रा का आरम्भ और अन्त हुआ।

राज्य सरकार बहुत विज्ञापन करती है पर्यटन को प्रोत्साहन देने के लिए। बद्रीनाथ यात्री पूरे देश से आते हैं और उनकी सुविधाओं को पूरा किया जाय तो उत्तर प्रदेश पूरे देश तक एक सद्भाव लहरा सकता है। पर उनकी न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी नही होती और सभी मोड़ पर व्यवसायिक दृष्टि की लूट का शिकार बनना पड़ता है।

भारत के राष्ट्रपति आते है, अनेक मन्त्री केन्द्र और राज्य के मन्त्री और उच्चतम अधिकारी आते है उनके साथ बहुत सा काफिला भी आता ही है। यात्रियों को तो पता लगता ही है जब पड़ावों में दूध, दही, फल और तरकारी सभी अदृश्य हो जाते है पर उनमें किसी को यात्रियों से मिलकर उनके कष्टों के बारे में पूछने का समय नही मिलता।

उनके लिए सभी प्रबन्ध उत्तम, सभी अधिकारी उन्हें घेरे रहते हैं।

हो सकता है वे सौन्दर्य प्रेमी हैं और विशिष्ट पर्वतीय क्षेत्र के सौन्दर्य मनन मे वे निमग्न रहते है। सभी विश्राम गृह उत्तुंग और रमणीय स्थान हैं। हो सकता इस सौन्दर्य क्षेत्र मे राजनैतिक झंझटो के मनन में समय बीत जाता है, हो सकता है धार्मिक और आध्यात्मिक चिन्तायें उनका सब समय ले लेती हैं, पर जनता के कष्टों को जानने और दूर करने का अवसर नष्ट हो जाता है।

आखे होने पर भी देख न सके—उससे अधिक अन्धा कौन ?

उत्साह अधिक होने से इस पद यात्रा में रामशरण को कही थकाई न लगी- अच्छी तरह भोजन किया—सब कुछ पच गया। साधारण पड़ावों पर ठहरने से यात्रियों के सुखदुख का भी परिचय हुआ। जीवन में कष्ट है समस्याएँ है, दुख है, सुख है पर इस यात्रा से रामशरण को उपनिषद् के ऋषि पर विश्वास हो गया आनन्द से ही उत्पत्ति है। आनन्द में ही स्थिति है, आनन्द में ही विलय है।"

मन्दिर में पुजारी ने गाया था

"यथा नदीनाम् बहुवोऽम्बु वेगाः

समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति। तथा तवामी नरलोकवीरा

विशन्ति श्राण्यमि विज्वलन्ति ।"

उसके कानों मे वह वहुत समय तक गूंजता रहा, वह बहुत शांत मन में घर लौटा यद्यपि शरीर चार पांच किलो कम हो गया ।

यथासमय उसको तार मिला हार्दिक बधाई प्रथम श्रेणी प्रथम । रामदास पुष्पा, यह बहुत संतोष और सुख का समाचार था । यथोचित उत्तर भेज दिया ।

कालान्तर में पत्र में समाचार मिला कि रामदास पुष्पा दोनों प्रथम श्रेणी प्रथम निकले । उनको बधाई का तार गया ।

विश्वविद्यालय के खुलने का समय आ गया । उसका निर्जीव सिनेट हॉल सजीव और स्थायी सौन्दर्य और रात्रि का प्रकाश निरन्तर फैलाता रहता है और उसके अग्र और पृष्ठ के हरित दूर्वायोम और वृक्ष इस शक्ति की ओर भी प्रभाववती वना देते है पर प्रवेश की हलचल में इस ओर किसी का ध्यान न गया ।

रामशरण रामदास की माता को मौखिक बधाइ देने उसके घर गया । वह वहुत प्रसन्न थी । रामदास भी—सबसे अधिक पुष्पा ।

चाय पीते हुए पता लगा कि उन्होंने बैंक का ऋण देने योग्य धन इकट्ठा कर लिया है या उसका ऋण । रामशरण ने यही निश्चय किया कि पहिले बैंक का ऋण दे दिया जाय और मकान की धरोहर भी समाप्त हो जाय । वैंक अंशिका समाप्त होने से आय मे भी वृद्धि हो जाएगी ।

रामशरण ने रामदास की माता से कहा "मैं प्रसन्न हूं कि अब आपकी स्थिति आशा जनक है । रामदास और पुष्पा को कल मैं अल्प भोजन के लिए "कालिटी" में ले जाना चाहता हूँ ।

इस सबका श्रेय आप पर है । अल्प भोजन के लिए क्या आपत्ति हो सकती है ।

पुष्पा हंसी और कहा "जितनी चाय तुमने यहां पी उसका सब बदला हम निकाल लेंगे ।"

"उसमें व्याज भी जोड़ सकती हो"

"यह तो पूरी सफलता होगी"

क्वालिटी के बाद रामशरण दोनों को घर छोड़ आया । पुष्पा चूकने वाली न थी । उसने मन्द हास्य में कहा "इस अल्प पान के लिए धन्यवाद । पर तुमने उपहार देने को कहा था ।"

"अभी तुमने आधी दौड़ दौड़ी है । उस को पूरा करलो"

"अच्छा पर एक वर्ष का व्याज जुड़ जाएगा" वह हँसती हुई अन्दर चली गई

समय बीता । एक दिन रामदास चाय के लिए निमन्त्रण दे गया । रामशरण को याद आया वह पुष्पा का जन्मदिवस होगा—वह छोटासा उपहार ले गया ।

रामदास और पुष्पा ने पहिले वर्ष की तरह परिश्रम से घर को सुधारा कमरा सजाया था। मकान और पुष्पा दोनो मन्द हास से प्रफुल्लित थे। कुटुम्ब की स्थिति अब सन्तोष जनक थी और रामदास और पुष्पा दोनों को छात्रवृत्ति मिलती थी। नवीन परदे, कुरसी की गद्दियां और मेजपोश सब में कला प्रेम की भावना इंगित थी। नवीन टी सैट। कुछ सुन्दर पुष्पों से शोभित घमले।

रामशरण प्रभावित हुआ और कहा "अच्छी कला कल्पना है। तुमने चुना?" पुष्पा "हा, कुछ बाजार से चुना—कुछ बुना, काढ़ा याने यह काम मेरे कन्धो पर रख दिया है।"

"बधाई है तुम्हारे जन्मदिवस पर और इस कला कौशल पर"

हसकर पुष्पा न कहा "कुछ विशिष्ठता नही है पर आपके रसास्वादन भाव के लिए धन्यवाद"

रामशरण ने पूछा "रामदास का जन्मदिवस कब आता है"

"वह तो जून मे आता है। इसी से आपको बुला न सके"

चाय का स्वरूप हो गया अल्प भोजन, बहुतसी मिठाइया और नमकीन दूसरा मैज लगाना पड़ा। अभ्यासानुसार पुष्पा अपना स्टूल लगाकर सामने बैठी।

रामशरण ने कहा "मैने जानबूझ कर आज लन्च नही खाया"

पुष्पा "यह तो शुभ समाचार है पर इसकी परीक्षा अभी हो जाएगी—पहिली श्रेणी वाल हो—हारना नही। परीक्षक तो आज मैं हूँ"

रामशरण की प्लेट पर पुष्पा इतनी चीजे रखती गई कि उसको हार माननी ही पड़ी। इस पर पुष्पा बहुत हसी और कहा "यदि आप लन्च के बारे मे झूंठ नही बोलते तो हार नही होती" उसने कहा हाँ, पुष्पा "जाने दो छोटी बात है"

रामशरण "तुम्हारा कण्ठस्वर तो बहुत मधुर है। तुमने कभी संगीत में प्रगति का प्रयत्न किया।"

पुष्पा का मुख नीचा हो गया और लज्जा ने उसको रक्तवर्ण से शोभित कर दिया पर उसने अपने को सम्भाला और कहा "यह तो मेरी पुरानी कहानी है। पिताजी ने कुछ सिखाया था। एक हारमोनियम जिसका उपयोग बहुत समय से नही हुआ इसका चिन्ह है। पिताजी के स्वर्गारोहण से इसमें क्रमभंग हो गया। अब तो मेरा संगीत प्रेम कुछ धार्मिक गीतों से ही सन्तुष्ट रहता है।

रामशरण "अपने जन्मदिवस के उत्सव में अपनी संगीत कला का प्रदर्शन करो तो इस उत्सव का भव्य अन्त हो"

पर पुष्पा सहमत न हुई उसने कहा "मुझे अभ्यास नहीं है और अपनी हंसी नहीं कराना चाहती"

रामशरण "घबड़ाने की कोई बात नहीं हैं। मुझे विश्वास है तुम आरभक श्रेणी का उपहार जीत सकोगी।"

पुष्पा "तुम्हारा मानदंड कठोर तो नहीं है। क्या आरम्भक ताल स्वर की कमी पर भी उत्तीर्ण हो सकता है?"

रामशरण "हाँ, मुझे भी संगीत का ज्ञान बहुत सीमित है।"

पुष्पा ने अपने को संभाला और एक भावुक गीत "कब आओगे कृष्ण मुरारे" गाया। गीत में था कि "मीरा को प्रतीक्षा करते 2 अर्ध रात्रि हो गई—रात्रि बीती भोर हुआ पर वह अभी प्रतीक्षा में ही है।"

रामशरण "न तो ताल और न स्वर की त्रुटि है। तुम ने प्रथम उपहार जीत लिया। पर इस जीत का यह दंड भी है कि तुम को इस कला में अग्रसर होना पड़ेगा।"

"उपहार क्या है"

"एक हारमोनियम"

"अधिक परिश्रम से क्या लाभ होगा"

रामशरण "रजत पदक, स्वर्ण पदक–इत्यादि तुम क्या चाहती हो?"

पुष्पा "मैं स्वयम् नहीं जानती, पर तुम्हारी इच्छानुसार प्रयास करना ही पड़ेगा"

रामशरण "मुझे प्रसन्नता हुई"

महीने आये और गये। हड़ताल हुई और समाप्त हुई। वह कुछ व्यक्तियों को नेतागिरी का हार पहिना गई। उसकी सफलता पूर्ण हो गई।

परिक्षायें आरम्भ हुई और समाप्त हुई।

किसी के लिए पसीना और अन्धकार किसी के लिए शान्ति और सुख, कुछ परीक्षकों को असहाय विद्यार्थियों के दुःख में ही सुख उत्सव है। विश्वविद्यालय की सारी प्रणाली है भी अन्धेर खाता। कोई भी कारण हो परीक्षक रुष्ट हो जाए तो विद्यार्थी का सब परिश्रम समाप्त, जो भी अंक वह देवे वह ब्रह्मा की अमिट लकीर बन गई।

प्रधान मन्त्री के विरुद्ध हाई कोर्ट में रिट हो सकती है पर तुच्छ परीक्षक के विरुद्ध नहीं। कितने विद्यार्थियों के आँसू से पृथ्वी भीगी और जितना अन्याय हुआ कौन जाने। कालचक्र में कौन मरा—न्याय या अन्याय–कौन जाने। सभी सामाजिक कठोरता का रूप मधुर विष है कदाचित परीक्षकों का मूल अधिकार है कि उनकी भूलों को कोई देख भी न सके।

इस ग्रीष्म [illegible] की छुट्टी रामशरण ने पद यात्रा में बिताई, मंसूरी [illegible] ने शिमला। समय भी लगा। श्रम भी हुआ

का बोझ भी कम हुआ पर प्रकृति का सौन्दर्य और उसकी असीम व्यवा शक्ति से प्रभावित होने का इससे उच्चतर उपाय नही। पहिले वर्ष वह बद्रीनाथ केदारनाथ गया था। इस वार उन पर्वत शृंगो का दर्शन दूरवीन से चकराता मे किया। निर्मल स्वास्थ्य कर जलवायु मे थक कर एक बंगले में पहुँचा कितना सुख कर है और साधारण खानसामा का भोजन भी कितना स्वादिष्ट वनजाता है। पूर्णिमा की रात को चाँद की प्रकाश वृक्षों मे छन 2 कर मार्ग मे कितना कला पूर्ण सौन्दर्य सृजन करता है।

प्रकृति की गोद से निकल सभ्यता के केन्द्र सिमला पहुँचा—जहाँ सभी कुछ दुकाने, होटल, युवा, युवतियाँ सभी कहते है हम आधुनिक है और आनन्द परक हैं। हम अपना समय व्यर्थ की फिलासफी में नही नष्ट करते। संसार में इतना करने को है। इतना जीतने को है, सोच करने का समय किस को है। दुःख तो भगवान ने भूलने को ही वनाया था।

शाम को सभी स्कैण्डल पोइण्ट पर जमा हो जाते है। उसका नाम ठीक है—सभी स्कैण्डलों मे राजनैतिक, सामाजिक व्यक्तिगत सभी तरह के पुरुप स्त्रियाँ वहुत रुचि से भाग लेते है।

चार पाँच दिन वहाँ जाने से आपका सभी से परिचय हो जाता है और सिमला समाचार से आप पूर्णतया परिचित हो जाते है।

यहाँ भारत के नवीन तम फैशन–वस्त्र और आभूपरण देखने को मिलेंगे। अच्छा भोजन–सीमित संगीत–अधिक नृत्य।

पर्वतों में लंबी पदयात्रा के वाद यह सव कुछ अच्छा ही परिवर्तन लगा।

घर वापिस लौटने पर रामदास पुष्पा का तार मिला प्रथम श्रेणी में पास, हार्दिक वधाई। उनको धन्यवाद भेजा। कुछ दिन वाद दोनों के प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होने के लिए वधाई भेजी।

रामशरण के पिताजी लक्ष्मीनारायण और उसकी वड़ी वहिन साधना यही चाहते थे कि वह उनको व्यवसाय भार उठाए। उनकी देहरादून मसूरी मे अनेक दूकाने थी अनेक एजेन्सियाँ। सभी में लाभ, उनको राज्यसेवा तुच्छ लगती थी। 20 वर्ष के वाद 3000) रु माह उसमें आयकर, प्रोविडेण्ट फण्ड, वंगले का किराया, वड़े होने के नाते अनिवार्य मोटर इत्यादि। भ्रष्ट सेवकों को छोड़ आयव्यय का हिसाव लगाते ही दिन वीतते है। सरकार को कही साम्यवाद लाने में सफलता हुई तो अपने कर्मचारी संसार में ही।

पर रामशरण की व्यवसाय की ओर प्रवृत्ति न थी। वणिक गृहस्थी में जन्म और पालन होने पर भी धनोपार्जन के लिए उत्कट निरन्तर प्रयत्न, प्रातः काल से रात्रितक और रात्रि से प्रातःकाल तक मानसिक और शारीरिक दौड़ धूप सव में और सर्वत्र लक्ष्मीदेवी का ही रूप और वास देखना और वही सव को नापने का माप दण्ड

उसके लिये आकर्षक न था। सफल रामरतन लाल का जीवन उसको उतना सफल न जँचा।

उसने उनको यही सांत्वना दी कि उसका छोटा भाई आनन्द सरूप इस भार को सफलता पूर्वक उठा सकेगा। वह व्यवसाय प्रबन्ध का स्नातक भी है और उसकी इस क्षेत्र में रुचि भी है।

वह विश्वविद्यालय खुलने पर इलाहावाद पहुँचा। उसकी अस्थाई रूप में प्राध्यापक के पद पर नियुक्ति हो गई। उसने भारत सरकार की प्रतियोगिता परीक्षा मे वैठने का विचार किया।

रामदास उसको परामर्श के लिए अपने घर ले गया। रामदास का अन्तिम वर्ष था—पुष्पा बी० ए० पास कर चुकी थी। अगला कदम निश्चय करना था।

रामशरण ने रामदास की माँ को वधाई दी। वह इतनी प्रसन्न पहले कभी न थी। पुष्पा को छात्रवृत्ति मिलना निश्चित था। इसलिए M. A. करना ठीक था।

भाई, वहिन, रामशरण सभी को अच्छी सफलता मिली थी पुष्पा प्रसन्न थी। उसने कहा 'आप पुरस्कार की प्रतिज्ञा तो शीघ्र कर देते हैं, पर भूल भी शीघ्र ही जाते है।

रा० श०—इतना समय तो नहीं वीता है कि निराश हो जाओ।

पु०—समय अधिक होने से उस पर सूद भी देना पड़ेगा।

रा० श०—इसमें तो तुम्हारा ही लाभ है।""""तो तुम M. A. में कौन विषय लेना चाहती हो ?

पु०—जिसमें तुमने कार्यभार संभाला है।

रा० श० —अर्थशास्त्र कठिन विषय है। स्त्रियों की रुचि धनोपार्जन में नहीं वरन् धन व्यय में है।

पु०—"आशा है आपका अर्थशास्त्र धनोपार्जन एवं व्यय दोनों ही से संवंध रखता है।"

रा० श०—'हाँ, यदि तुमको यथार्थ की रुचि है तो इस विषय को ले सकती हो।' वी० ए० में तो तुम्हारे इस विषय में प्रथम श्रेणी के अंक हैं।

तुम्हारी योजना पूरी हो गई अव मैं जाता हूं।

पु०—'अभी तो चाय की योजना शेष है।'

रा० श०—"अभी उसका समय नहीं है।"

पु०—एक वातततो भूल ही गई। मैं विश्वविद्यालय का 'कैलेण्डर लाई' हूँ। इसको पढ़कर चार–पांच पुस्तकों को चुन लो। जिसका स्वामित्व लाभकर होगा" कैलेण्डर उसको देकर। वह दूसरे कमरे में चली गई।

कुछ समय बाद रामशरण ने उसके लिए पुस्तकों की सूची बनाली। पुष्पा ने आकर पूछा—"अब तो चाय का समय हो गया होगा।"

रा० श०—"अभी 15 मिनिट शेष है।"

पुष्पा हँसी और कहा—"मुझे पता नहीं था, समयनिष्ठ होने से इतना लाभ है। यदि एक दिन चाय 15 मिनिट पूर्व पी ली जाए तो कितना अनर्थ होता है"।

रा० श०—"अच्छा हार मानी—चाय ले आओ"।

पुष्पा हँसी और अन्दर चली गई। चाय पर अपने अभ्यासानुसार पुष्पा अपने स्टूल पर बैठी। रामशरण ने कहा कि उसको स्टूल से शिकायत है। वह ऊँचा है और उस पर बैठ कर पुष्पा उससे ऊँची लगती है।

पु०—"आपकी यह शिकायत मान ली इसकी टांगें काटने से नीचा बन जायेगा।"

रा० श०—"पुष्पा तुम संगीत में डिप्लोमा के लिए प्रयत्न करो।"

पु०—"उससे क्या लाभ। क्या उससे धनोपार्जन हो सकता है।"

रा० श०—"यदि धनोपार्जन को तुम महत्व देना चाहती हो तो इससे बहुत कुछ लाभ हो सकता है। अच्छे संगीत वाले धनोपार्जन बहुत कर सकते हैं—विशेष कर यदि कँठ मधुर हो।"

पु०—"नहीं, मेरा यह अभिप्राय: नहीं था। न मैं इसके लिए तैयार हूँ।"

रा० श०—डिप्लोमा मिल जायेगा—संगीतज्ञ होने का प्रमाण।"

पु०—"इस प्रमाण-पत्र की ओर मुझे रुचि नहीं है।"

रा० श०—"यदि इस परीक्षा में प्रथम श्रेणी ला सको तो मैं तुमको अच्छा उपहार दे सकता हुँ।"

पु०—"अच्छा यह प्रतिज्ञा यथेष्ठ है, मैं अवश्य इसके लिए प्रवेश पत्र दे दूँगी।"

रामशरण अपने घर लौट आया। उसने एलनगंज में एक मकान में दो कमरे ले लिए।

शिक्षक होने का प्रथम वर्ष। प्रतियोगिता का परिश्रम। रामशरण का समय परिश्रम मे ही बीता, पर समय का प्रवाह अवद्गम्बर में परीक्षा समाप्त होने पर सांस लेने की फुरसत मिली।

विश्वविद्यालय मे सेमीनार कक्षा में पुष्पा से उसकी भेंट होती रहती थी। पुष्पा की प्रखर बुद्धि का परिचय उसको मिला। उसको आश्चर्य नहीं हुआ कि उसको राष्ट्रीय छात्रवृति मिली और एक स्वर्ण पदक। परिक्षाओं में उसका स्थान उच्च ही रहता था।

रामशरण को याद न था पर एक दिन पुष्पा उसको एक निमत्रंण पत्र दे गई। वह उसके जन्म दिवस का आमन्त्रण था, रेखा चित्रण का नमूना, बहुत से सुन्दर पुष्पों के रेखण से सुसज्जित।

उस दिन रामदास और पुष्पा ने बहुत परीश्रम से अपने घर को सुसज्जित किया था, सब कुछ साफ-सुथरा और सुव्यवस्थित। मेजपोशों मे रंग-विरंगे कटे हुए फूल और ताजे, सुन्दर पुष्पों से सुगंधित गुलदस्ते एक विशेष परिवर्वतन था।

रा० श०—"प्रकृति के सौन्दर्य में मकान को सफलता पूर्वक अलंकृत करने के लिए बधाई। जन्म दिवस की बधाई द्विगुणित हुई, निमत्रंण पत्र तुम्हारी रेखांकरण की अच्छी सफलता थी।"

पुष्पा—"छोटी बात, स्कूल में रेखांकरण मेरा विषय था ही। सब कुछ अदक्ष का प्रयास तो भी आपके मूल्यांकन के लिए धन्यवाद।"

पुष्पा अपने स्टूल पर बैठी पर उसकी टांगे छोटी हो गयी थी।

चाय पीते समय पुष्पा ने पूछा—"आपके पिताजी का व्यवसाय अच्छा ही है। आप सरकारी सेवा को क्यों बेहतर समझते है।"

रा० श०—"जीवन के सभी विभागों में अपने-अपने गुण है। धनोपार्जन के लिए व्यवसाय श्रेष्ठतर है, पर सेवा की अपनी विशेषता है। सीमित महत्वाकांक्षाएं, सिमित दौड़-धूप, सीमित पर निश्चित भविष्य व उन्नति और विभागों के महत्व के अनुसार अधिकार और देश सेवा का अवसर। जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के बाद धन-संचय का मूल्य उत्तरोत्तर घटता ही है। इसका एक ही अपवाद है—लालची पशु।"

पु०—"मैं इस विचार से सम्पूर्णतया सहमत हूं।"

रा० श०—"देखे, तुमने अपने डिप्लोमा के लिए कितनी तैयारी की।"

रामदास—"इस तैयारी से मेरी तो नाक में दम है।"

पु०—इस समय मन में रुचि नही है"

रा० श०—"परीक्षक के सामने रुचि न हुई हो तो डिप्लोमा भाग जायेगा। कम से कम प्रथम कक्ष लुप्त।"

इतना फुसलाना यथेष्ठ था। पुष्पा अपना बाजा ले आयी उसने बहुत भाव से एक शास्त्रीय गीत गाया…… …

"तेरो ही ध्यान धरत………"

रा० श०—बहुत अच्छा! विष्णु दिगम्बर का सुप्रसिद्ध गीत है। इसी तरह प्रयत्न करती रहोगी तो प्रथम श्रेणी में पास हो जाओगी।

रामशरण उपहार के रूप में एक साधारण हाथ की घड़ी लाया था। पुष्पा को दी। उसने घड़ी देख कर अपना बाँया हाथ रामशरण की ओर कर दिया।

अनायास ही उसने घड़ी को उसके हाथ में पहना दिया उसको पुष्पा के हाथ में या अपने हाथ में रोमाञ्च का आभास हुआ । कदाचित् मन का भ्रम था ।

पु०—"तुम्हारा भविष्य का प्रोग्राम क्या है ।"

रा० श०—भविष्य चित्र बनाता है, बिगाड़ता है एवं फिर बनाने लगता है । इस सत्र के अन्त तक तो यहाँ हूँ ही" ।

सूर्य और पृथ्वी से प्रेरणा ले समय तो सदा ही भागता रहता है । कुछ करो या कुछ न करो वह अपनी द्रुत गति से दिन, मास, वर्ष सब का सफाया करता ही जाता है । दुख में दिन कुछ लम्बा और सुख में कुछ छोटा भले ही हो जाए पर कभी भी ठहरे रहना उसने सीखा नहीं । आया वसन्त आया—महाकवि कालीदास से प्रशंसित वसन्त आया । रामशरण के मन अरण्य में भी वसन्त आया ।

वह I. A. S. में उत्तीर्ण हो गया । हृदय में गति और बल बढ़ गए । कितने पेग का नशा था, वह उसे पता न था । पर आभास होता था कि चलने से दौडना अधिक सरल है और शरीर का बोझा बीस सेर एक दम ही घट गया है बगैर भोजन नियंत्रण के । बधाई के तार पर तार—संबंधी जनों के और अज्ञात सज्जनों के । स्वार्थहीन और स्वार्थ युक्त उत्तर देना धर्म, धर्म का भार, समय की कमी । मित्रों का और परिचित अपरिचितों की व्यक्तिगत बधाई का आह्वान । चाय पार्टी, अल्प भोजन में सप्ताह के बाद सप्ताह यों ही व्यतीत हो गए । माता–पिता, भाई–बहिन का आग्रह कि कुछ समय उनके साथ बिताना अनिवार्य है ।

समय की महिमा सभी बीत जाता है । यह आंधी भी सिर से नीचे उतर कर एक दिन बीतती दीखी और मन का समुद्र धीरे 2 शांत होने लगा ।

मित्र कहते उसका स्वास्थ्य उन्नत हो गया है । क्या सुख और सफलता से स्वास्थ्य उन्नत हो जाता है । डाक्टर लोग तो इसको अपने नुस्खे में नहीं लिखते ।

रामशरण ने सत्र के अंत तक इलाहाबाद रहना निश्चित किया । इस कालावधि की सभी मनोहर घनटानाएँ स्मृति और विस्मृति के जाल में उलझी थीं । उनका रूप स्वप्निल हो गया था ।

पुष्पा दो–तीन बार निमंत्रण देने आयी थी । दो बार समयाभाव के कारण खेद प्रकट किया । उसने धैर्य से कहा—"शीघ्रता नहीं—जब समय उपलब्ध हो तभी प्रबंध हो जायगा ।" तीसरी बार समय निर्धारित किया । भोजन के समय से पूर्व ही वह पहुँच गया था और बहुत रात बीते लौटा । मकान सुरुचि से सजाया गया था ।

किसने क्या कहा वह भूल गया था । मगर वातावरण उत्सव का था और वह भी आनन्द सागर में निमग्न रहा । पुष्पा ने तीन गीत गाए—स्वेच्छा से हो या विवशता से ही । गीत समयानुकूल थे और वातावरण और भी प्रभावित हुआ । पुष्पा ने कहा था "अब तो आप इलाहाबाद से बिदाई ले रहे है ।" उसने उत्तर

दिया था—वर्तमान में तो यही है, शेष आवश्यकता होने पर कभी आया भी जा सकता है।

उसने कहा था "मसूरी के कार्यरत वातावरण में इलाहाबाद भूल जाएगा", कदाचित् उसने कहा था "पता नहीं कुछ विस्मृत हो जायगा कुछ नही भी।

पुष्पा ने कहा था—'क्या मैं पत्र लिख सकती हूँ।' उसने कहा था—अवश्य—शिक्षक के लिए, मित्र के लिए या अभिभावक के लिए।"

वह मुस्कराई और कहा आपकी दी हुई तीसरी श्रेणी ही यथेष्ठ है रामशरण को भी हँसी आई।

घर लौटते समय उसने मेज पर पुष्पा का एक फोटो देख कर कहा "इसे ले जा सकता हूँ।" उसने उत्तर दिया "इसमें पूछने की क्या बात है।"

घर से बाहर आते समय रामदास की माँ ने रामशरण से कहा था—ईश्वर आपको दिन प्रतिदिन सुखी, सम्पन्न और प्रसन्न करे। अपनी लगाई छोटी वाटिका को भूल न जाओगे।

रामशरण ने कहा था—"इस डर की कोई संभावना नहीं। आपके कुटुम्ब की उत्तरोत्तर वृद्धि होगी, मेरी अभिरुचि सदा बनी रहेगी"।

पुष्पा और रामदास बातें करते करते उसे घर तक छोड़ आये। उसके मकान मे सभी सामान फैला हुआ था। रामशरण बोला—"अभी कल रात्रि का भोजन बाहर है, परसों सबेरे का कलेवा पड़ोसी के घर है। सारी बँधाई पडी है।

पुष्पा—'मैं कल तीसरे पहर आकर सब पैकिङ्ग ठीक कर जाऊंगी। पैकिङ्ग का सामान भी ले आऊंगी"। रामशरण ने छुटकारे की सांस ली और कहा 'धन्यवाद'।

दूसरे दिन रामदास और पुष्पा बहुत सा सामान रिक्शे पर लाद कर पहुँचे। रामशरण ने कहा—यह तो दहेज जैसा सामान दीखता है। पुष्पा—"घबड़ाओ मत अभी गोल दूर है। विशेष यात्रा का साधारण सामान"। एक घंटे के परिश्रम से सब सामान बँध गया।

रामशरण ने देखा। नया सूटकेस, नया अटेची केस, नया ब्रीफ केस, नया बटुआ। सब उत्तम चमड़े के सुन्दर बने हुए। नया बिस्तर बन्द, स्टेनलेस स्टील का टिफिनदान नया फूलजार और नाया थर्मस।

रामशरण—तुमने इतना व्यय क्यों किया। ये सब चीजें समय चक्र इकट्ठी करता ही रहता है।

पुष्पा—"हाँ, यह भी सब समय अवनिका का ही खेल है—रोकड़ तुम्हारी, "

हँसी आयी "फिर भी इतना विचार और

पुष्पा—"सुख का अनुसरण–समय का व्यय नहीं।"

रामशरण—ने हँसकर कहा "तब तो धन्यवाद देने की आवश्यकता नही"।
पुष्पा—"किंचित मात्र नही।"

नौकर ने चाय लाकर रख दी थी। रामशरण ने आराम की लम्बी सांस ली और बैठ गया।

"अब कल सवेरे मुझे अपना बिस्तर बाँधने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है।" चाय बाद रामदास और पुष्पा उठ गए। रामदास ने कहा—अब आप आराम करें। रात्रि के आबंध के लिए तैयार भी होना हे।

पुष्पा ने टिफिनदान उठाया और कहा—यह कल ट्रेन में आपको मिल जाएगा।

घर लौटते समय रामदास ने बहिन से कहा—विश्वविद्यालय में बहुत गपशप है, बहुत सी लड़कियां और उनके माता–पिता भी रामशरण जी को वचन बद्ध करने के लिए प्रयत्न शील हैं।

पुष्पा ने कहा "इसमें आश्चर्य क्या हो सकता है? पर भैय्या–अपनी अपनी ढ़पली, अपना अपना राग। मनुष्य भी करता है, ईश्वर भी करता है। कर्म चक्र तो है ही। मुझे सर्वोत्तम लड़की होने का अभिमान नहीं है। यों कोई भी लड़की किसी के लिए भी सर्वोत्तम हो सकती है। पर वह निर्णय व्यक्तित्त्व पर निर्भर होता है।

रामशरण अपनी ट्रेन मे बैठ गया। कुछ मित्र और शुभचिंतक उसकी विदाई के लिए उपस्थित थे। ट्रेन छूटने से पूर्व रामदास और पुष्पा भी पहुँचे। पुष्पा के हाथ में टिफिनदान था। उसने उसे डिब्बे में रख दिया और कहा इसे आप भूल गए थे। रामशरण मुस्कराया। ट्रेन ने सीटी दी। वे बाहर खडे हो गए। ट्रेन चलने लगी। बहुतो के भावपूर्वक हाथ हिलने लगे पर पुष्पा का रंगीन रूमाल ट्रेन के मोड़ पर घूमने तक दिखता रहा। रामशरण के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय समाप्त हुआ और वह शांति से बैठ गया।

मसूरी कालेज जाने से पूर्व कुछ समय था और वह माता–पिता के साथ बीता। बहुत से संबंधी जमा हुए। बहुत सरगर्मी और हल चल। उनके पास विवाह के बहुत से प्रस्ताव जमा हो गए थे। वे सभी अपना अपना स्थान सुरक्षित करना चाहते थे, जिससे उनकी कन्याओं की सफलता यत्न की अनुपस्थिति के कारण विलीन न हो जाए। रामशरण की रुचि अभी इस ओर नही थी। उसको यह सब मस्तिक–शूल ही लगा और उसने यह कह कर छुट्टी ली कि एक या दो वर्ष बाद ही यह समस्या उठेगी। उसको और उसके माता–पिता को इतना पहले कर बद्ध करना अवांछित होगा।

पाँच महीने बाद पुष्पा के पास रामशरण का पत्र आया। लिखा था—यह प्रशासनिक एकेडेमी भी एक प्रकार का कॉलेज है, पढ़ाई लिखाई और परीक्षाओं में सफलता की अनिवार्यता, पर विश्वविद्यालयों का निराशावाद नहीं। सभी का भविष्य निश्चित और सम्पन्न है, वातावरण सुखी और उत्तेजन शील है, निर्देशक और शिक्षकों का सबसे अच्छा सम्पर्क है। पर यह अपरोक्ष शिक्षा अपने व्यक्तित्व पर निर्भर है।

हिमाचल का प्रकृति सौंदर्य और जलवायु वातावरण को और भी सुख कर बना देते हैं। तुम्हारा जन्म दिवस निकट है, हार्दिक बधाई और शुभ कामनाएँ। आशा है इस वर्ष भी संगीत और M. A में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर सकोगी।

पुष्पा ने लिखा "पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। धन्यवाद। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि रामदास एक अच्छे फर्म में 400) माह पर नियुक्त हो गया है। माँ आपको आशीर्वाद भेजती हैं। मेरा प्रयत्न तो जारी है। शेष ईश्वर की इच्छा।

काल प्रवाह तो चलता ही है। एकेडेमी का सत्र भी समाप्त हुआ—बहुत से व्याख्यान और उत्सवों के साथ। और साथ ही समाप्त हुआ स्वर्ण स्वप्न और आशाओं का समय। सभी युगों की अपनी गाथा अपना यथार्थ। आया समय बैलों के कंधों पर हल का भार रखने का।

रामशरण की नियुक्ति उ० प्र० के लिए हुई। स्थानापन्न हुआ परताब गढ़ को।

यथा समय समाचार मिला पुष्पा के प्रथम श्रेणी में सफल होने का—एम० ए० एवं संगीत में। उसको बधाई का तार व पत्र भेज दिया।

मनुष्य का अपना व्यक्तित्व और प्रयास तो है ही इसीलिए अपना उत्तरदायित्व भी। पर जीवन प्रवाह में बहुत से उपकरण है। सभी का अस्तित्व, सभी का प्रभाव। सभी तरह के वातावरण–राजनैतिक, सामाजिक, कुटुम्बिक तो है ही, पर छोटी–छोटी बातें भी प्रधानता का स्थान ले सकती है। समयाधिक्य, समयाभाव, जलवायु, ऋतु–परिवर्तन और शरीर और मन के स्वस्थ और अस्वस्थ होने का चक्र। बेचारे मनुष्य पर कहाँ तक दोषारोपण किया जाए।

परतावगढ़ का कार्यक्रम कष्टकर था। प्रतिदिन प्रातःकाल नेताओं और देश सेवकों की भीड़–यथार्थ या काल्पनिक। उनके विचार मंडन में कोई भी कार्य कानून या नियम के विरूद्ध हो नहीं सकता, उनकी फिलासफी में "सब कुछ किया जा सकता है"। तभी तो तुलसीदास ने लिखा—'समरथ को नहीं दोष गुसाई"। उनकी अनुचित माँगों को न भी मानों तो भी समय का व्यय और मानस सहनशक्ति पर मार। सच या झूठ—हमारे गणतंत्र में जनभावना हो गई है कि कुछ भी प्राप्त

नही हो सकता बिना हड़ताल, घरना या बंध के। बारंबार जुलूस–जिन्दाबाद या मुर्दाबाद।

फिर कार्यालय का फाइल–संसार। अंग्रेज जाति और नौकर शाही को फाइल–संसार से प्रेम था। नियम पर नियम। एक फाइल से चार फाइलों का जन्म। सभी आफीसरों की कुर्सी पर बैठ कर फाइल–घंटी चलाना अनिवार्य। चाहे मजिस्ट्रेट हो, पुलिस अफसर या अभियंता। फाइल पूजा के विना विभाग नहीं चल सकता।

सायंकाल घर लौटे तो पता चला चाय के लिए दूध या तो फट गया या बिल्ली ने गिरा दिया। कभी नौकर के पेट में दर्द कभी सिर मे। भोजन ठीक बने तो कैसे ?

रामशरण की समझ मे आया कि गृहिणी की अनुपस्थिति में घर की दशा क्यों ठीक नही होती और मनुष्य ने समाज मे विवाह भी प्रथा क्यों माना है।

विवाह प्रस्तावो की बाढ़ तो बीत चुकी थी, पर उसके पास कुछ प्रस्ताव थे। निर्मला का—जिसके पिताजी केन्द्र राज्य में उच्चपद पर थे, और शोभा का—जिसके पिता धनाढ्य व्यापारी थे। पुष्पा का अप्रेपित प्रस्ताव तो था ही। सभी सुन्दर, शिक्षित योग्य लड़कियाँ थी एवं उनसे कभी कभी भेंट भी हो चुकी थी। निर्मला की अस्मिता में अपनी श्रेणी का और शोभा की अस्मिता में धन–दौलत का अधिक प्रभाव था।

रामशरण की माता कौशल्या कुछ समय के लिए उसके पास रहीं। गंगा–स्नान के लिए प्रयाग भी गईं। वहाँ उनका परिचय पुष्पा से भी हो गया। एक पंथ दो काज। उन्होने दूसरी दो लड़कियों को देखा था। रामशरण की माँ ने आग्रह किया कि विवाह–विचार के लिए समय ठीक था। देरी से कुछ लाभ न था, जिसको भी वह उत्तम समझे माता–पिता सहमत हो जाएंगे। उन्होंने यह भी कहा कि पुष्पा का स्वभाव सरल है, त्याग की आध्यात्मिक क्षमता है, आत्मभिमान होते हुए भी झूठा अभिमान नही, संगीत आदि अन्य भी गुण हैं—सोने में सुगन्ध है।

अपरान्ह का समय था। रामदास बैठक में बैठा कुछ काम कर रहा था। पुष्पा अपने कमरे मे संगीत मे व्यस्त थी। रामशरण आया। उसको देख कर रामदास उठा और पुष्पा को बुलाने लगा, पर रामशरण के संकेत से विचार छोड़ दिया। उसने बताया पुष्पा को विश्वविद्यालय में व्याख्यात्री का स्थान मिल गया है। फलस्वरूप बैठक में पर्दे, फर्नीचर और नया जूट कार्पेट। रामशरण ने देखा बैठक सुसज्जित करने की छोटी 2 चीजें दीवार और मेज पर थी और पुष्पा के रेखाचित्र।

उनके वार्तालाप से सकेत पा पुष्पा भी आई। रामशरण ने कहा—"इस अप्रत्याशित आगमन से तुम्हे आश्चर्य होगा, सरकारी काम से आना पड़ा"।

पुष्पा हँसी "आपका आगमन अप्रत्याशित घटना ही सही—आपका निरन्तर स्वागत है।"

रा० श०—"तुम्हारी माँ का स्वास्थ्य कैसा है ?" पुष्पा "बीमार है, रोग के अतिरिक्त चिन्तित अधिक रहती हैं। आप बात कीजिए, उनको शांति मिलेगी।"

वह अन्दर चली गई। रामशरण ने देखा पुष्पा की माँ अनुराधा दुर्बल और उदास है। पता लगा कि डाक्टर रोग को असाध्य तो नही मानता, पर उनको भय हो गया है"

रा० श० ने कहा "आप अवश्य स्वस्थ हो जायेंगी। चिन्ता नही करनी चाहिये।" रामदास की माँ ने कहा—"चिन्ता तो अनिच्छित ही सर पर कूदती है।"

रा० श० "चिन्ता का यही स्वभाव है। उसको अपनी आध्यात्मिक शक्ति से पैर तले दबाना चाहिए। आप तो धर्मनिष्ठ हैं, अवश्य सफल होंगी।" पता लगा उनकी चिंता रामदास और पुष्पा के विवाह के विषय में अधिक है।

रा० श० ने कहा "आपके दोनों बच्चे योग्य है। अवश्य ही उनका विवाह सुचारु रूप से हो जाएगा। अभी तो आपको बहुत समय तक इनकी देखभाल करनी है।"

अनुराधा ने गहरी साँस छोड़ते हुए कुछ सांत्वना का अनुभव किया। इस बीच पुष्पा ने चाय का पूरा प्रबंध कर दिया।

रा० श०—"तुम्हारी नियुक्ति पर बधाई।"

पुष्पा—"अस्थाई मनोरंजन है, जब तक खाली हूँ।"

रा० श०—"फिर ?"

पुष्पा—"महाजनाः येन गताः स पन्थाः।'

रामशरण को हँसी आयी और उसने कहा "ठीक तुम्हारा प्रोग्राम समझ में आया।"

पुष्पा—"कुछ दिनों से माँ को निद्रा ठीक नहीं आती थी। आप से बात करने के बाद वह सो गई।

रा० श०—"घूमने चलोगी।"

पुष्पा—"मुझे क्या कष्ट। आपको आपत्ति नहीं तो !"

मार्ग पर रामशरण ने एक टैक्सी को आह्वान किया।

पुष्पा—"किधर जाना है।"

रा० श०—"डरती हो !"

पुष्पा—"डर नहीं, टैक्सी के निर्देशन का प्रश्न था।"

रा० श०—"अच्छा निर्देशन तुम्हारे ऊपर छोड़ा।"

पुष्पा ने टैक्सी को जमुनातट ले जाने को कहा ।

यमुना क्षेत्र का दृश्य सौंदर्य से आलोकित था । वर्षा ऋतु होने से जल का विस्तार और विहार प्रभावशाली थे । वैसे भी दक्षिण तट से जो ऊँचा है, उत्तर क्षितिज तक यमुना क्षेत्र दूर 2 तक दृष्टिगोचर होता है । फिर आकाश में भिन्न-रूपधारी मेघों की दौड़ । संध्या समय ।

पुष्पा—"मैं सोचती हूँ इलाहावाद का यह भव्य भाग है । यदि यहाँ महा-पालिका के पास या सरकारी पर्यटक विभाग के पास धन और कल्पना शक्ति होती तो यह विश्व का एक रमणीय स्थान वन जाता । पर प्रकृति ने सव कुछ किया, मनुष्य ने कुछ नहीं । देखो पूर्वी तट, उसमें ऊँचे-ऊँचे वृक्षों और सुन्दर पुष्पों वाले वृक्षो की पक्तियाँ होतीं, यमुना जल से प्लावित होने पर भी वे डूवते नही, पर उनका सौदर्य वढ़ जाता । यह तट कितना ऊँचा है । तट और जल के वीच कितना स्थान है ।

यहाँ सभी जगह वृक्ष और पुष्पों के उद्यान वन जाते । कितनी ऊँची-ऊँची पीठें है । ये सव पुष्पयुक्त लता और फूलवाली क्यारियो से आभूपित होते—मार्ग के दूसरी ओर वृक्ष श्रेणी सुसजित होती ।"

रामशरण ने कहा—"पुष्पा, पश्चिमी क्षितिज की ओर देखो ।"

पुष्पा—"हाँ सूर्यास्त का समय है । उसने मेघों को लालिमा का दान दिया है । आकाश मे मेघ हिरण का रूप धारण कर एक के पीछे एक शीघ्रता से दौड़ रहे है ।" पुष्पा हँसी—"कितना सौंदर्य ।"

रा२ श०—"इन हिरणों में कौन जीतेगा ?"

पुष्पा—"यदि पहले की चाल मंदी हो जाए तो वह पकड़ा जाएगा ।"

रा० श०—"तुम उसकी चाल मंद कर सकती हो ।"

पुष्पा—"उसके मन की लहर पर निर्भर है—पूर्व की ओर देखो कितना सुन्दर इन्द्र धनुष वना है—रंग विरंगा । सव रंग तीव्र और आकर्पक—वालकों के लिए और वड़ों के लिए ।"

रा० श०—"हाँ यह तो अद्‌भुत कला है ।"

पुष्पा—"इनका सिरा कहाँ है ।"

रा० श०—"पानी में । एक सिरा जमुना में, एक सिरा गंगा में—सगम से आगे ।"

पुष्पा—"तव तो शकुन अच्छा है ।"

सूर्यास्त हुआ पर अन्धकार नहीं । सूरज ने अपनी देखभाल का चार्ज चाँद को दे दिया । पूर्णिमा के चाँद ने यमुना तट के सौदर्य को वढ़ा ही दिया । पुष्पा के कल्पित दृष्य को अधिकतर मनोहर वना दिया ।

वह रुक गई और चाँद को मुग्ध दृष्टि से एकटक देखने लगी। रामशरण भी रुक गया। उसकी ओर देखा और निर्निमेष देखता ही रह गया। उसने पुष्पा के सौंदर्य को इतना आकर्षक कभी न पाया था। पुष्पा ने उसकी ओर देखा और कुछ क्षणों तक अभिन्न मन से देखती रही। एक आत्मा का समागम दूसरी से हुआ। पुष्पा ने सिर नीचा कर लिया। रामशरण ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसके मन में भावात्मक स्पन्दन का आभास हुआ।

पुष्पा ने कहा—"चलो, आपको जाना भी है।"

रा० श०—"मुझे अभी विश्राम गृह में भोजन करना है—उसे आदेश दे आया था"।

पुष्पा—"भोजन का प्रबंध घर पर तैयार मिलेगा। विश्रामगृह की हानि मैं पूरी कर दूंगी। यदि आपको आपत्ति है तो आपके धरोहर में अभी कुछ शेष है।"

रा० श०—"तुम्हारा निर्णय मानना ही पड़ेगा।"

पुष्पा—"धन्यवाद"

घर लौटने पर रामशरण ने देखा भोजन के कमरे में सब कुछ तैयार है और अत्यंत रुचि पूर्वक सजाया गया है।

भोजन के बाद रामशरण चलने लगा। पुष्पा भी बाहर आई और कहा—"आपको विदा करने स्टेशन जाना है।"

स्टेशन पर पुष्पा ने अपना टिकट स्वयं लिया और ट्रेन में रामशरण के पास जा बैठी। उसके मुँह की ओर देखा और कहा "घबड़ाओ नहीं मैं प्रयाग में उतर जाऊंगी और मेरा भाई वहाँ उपस्थित होगा।"

इस बार परतावगढ़ लौटने पर रामशरण ने अपने जीवन में अस्पष्ट अन्तर पाया। देश सेवकों की वही भीड़। उनकी माँगें उतनी ही साग्रह, सत्य या असत्य; फाइल-संसार का वही तूफान। पर उसको न तो पुरानी थकान. न खीझ, न उतना अकेलेपन का भय। एक अज्ञात शीतल समीर उसके मानस संसार में आगामी वसत का आभास दे रहा था।

विचार और तर्क न था। उनकी ओर प्रेरणा भी न थी। बीते समय में वे सहायक सिद्ध न हुए थे। उसने अपने को समय प्रवाह में बहने दिया। समय अनायास ही द्रुत गति से बीतने लगा

एक दिन रामदास का तार मिला—"माँ अधिक बीमार है, आपको याद करती हैं।"

जब रामशरण वहाँ पहुँचा रामदास अपने कारखाने गया था। पुष्पा माँ की सेवार्थ छुट्टी लिए हुए थी। रामशरण अनुराधा को अधिक दुर्बल देखा। डाक्टर की चिकित्सा चल रही थी। पुष्पा ने बताया उनको निद्रा कम आती हैं, कुछ रोग और कुछ चिंता मे

डाक्टर का नुस्खा देख कर रामशरण ने अनुराधा से कहा आपका रोग असाध्य तो नहीं है आपकोइतना घवड़ाना न चाहिए।

अनुराधा—"न जाने मन में कुछ डर आ गया है। न चाहने पर भी वह कभी-कभी आ घेरता है।

पुष्पा ने कहा—"अक्सर माँ यही कहती हैं कि रामदास का विवाह हो जाता तो घर का प्रवध ठीक हो जाता। मेरे कहने पर भी कि अभी तो मैं देखभाल कर रही हुँ वे कहती है कव तक करूंगी। रामदास वहुत सरल और असाव धान है।"

रा० श०—"तव इस विपय में निर्णय कर देना ही ठीक है।"

पुष्पा—"मेरा विचार भी यही है पर माँ और भाई का हठ है कि मैं उससे वड़ी हूँ।"

रा० शा—"और तुम्हारा विवाह प्रथम हो जाना चाहिए।"

पुष्पा चुप रही।

रा० श०—"तुम दोनों के विवाह के प्रस्ताव तो आए ही होगे।"

पुष्पा—"कुछ प्रस्ताव है।"

रा० श६—"अच्छा उन पर विचार किया जाए।"

पुष्पा—"पहले भाई के लिए। यह समस्या अविक सरल है।"

रा० श०—"अच्छा"

"परिदृश्य योजना"

रामदास के लिए अनेक प्रस्ताव थे। इंदुमति के पिता खंडअधिशासी थे और उसने B. A. पास कर लिया था। पुष्पा के समय में वह विश्वविद्यालय मे थी और उसका यथेष्ट परिचय था। मित्रता के नाते वह उनके घर अनेक वार आई थी और रामदास से भी परिचय हो गया था। उसके माता-पिता भी उनके घर आते-जाते रहते थे। पुष्पा का विचार था कि इंदुमति सुन्दर होने के अतिरिक्त बुद्धिमान और चतुर है। अनुराधा को विश्वास था कि वह घर करने वाली लड़की है।

रा० श०—"यह सव तो ठीक है पर रामदास की क्या प्रति क्रिया होगी।"

पुष्पा—"मुझे आभास है कि वह अनुकूल है।"

रा० श०—"तव यही प्रस्ताव सर्वोत्तम है, अव तुम अपने प्रस्तावों को निकालो उनका अध्ययन करने के वाद रामशरण ने एक प्रस्ताव ठीक समझा और कहा—"यह प्रस्ताव मुझे उपयुक्त जान पड़ता है।

पुस्पा—"इस ओंर मेरी प्रवृत्ति नही है। रामदास का विवाह पहले हो सकता है, आप माँ को समझा दे।"

अनुराधा—"यह कैसे हो सकता है, इसकी जिद ही तो समस्या है ।"

रा० श०—"अच्छा तुमको अधिकार दिया, जितने प्रस्ताव हैं उनमें से तुम अपनी इच्छा से चुन लो ।"

पुष्पा बहुत गौरवपूर्ण भाव से उठी और झुक कर रामशरण के पैर छुए ।

रा० श०—"यह प्रस्ताव तो तुम्हारे पास न था ।"

पुष्पा—"हाँ, था, अलिखित रूप में ।"

रा० श०—"कैसे"

पुष्पा—"अपने दिल से पूछो ।"

रा० श०—"तुमको निर्णायक बनाने से हार हुई"

पुष्पा का मुँह मदहास से शोभित हो गया । अनुराधा ने कहा "किसी की हार नहीं और न किसी की जीत ।" उसने पुष्पा का हाथ रामशरण के हाथ में दे दिया । रामशरण ने हाथ पकड़ लिया । रामशरण ने जेब से एक अँगूठी का डिब्बा निकाला—जिसे वह इसी संभावना के पूर्वाभास से साथ ले आया था । डिब्बा पुष्पा को देना चाहा पर उसने अपना बाँया हाथ रामशरण की गोद में रख दिया । रामशरण ने अनायास ही उसकी अँगुली में अंगूठी पहना दी ।

रा० श०—"पुष्पा तुम चतुर हो गई हो"

पुष्पा—"जीवन की आवश्यकता सिखाती है"

इसी समय स्कूटर की आवाज सुनाई दी और रामदास अन्दर आया ।

पुष्पा—"भैय्या तुम्हारा विवाह निश्चित हो गया तुम्हें अवश्य प्रसन्नता होगी ।"

रामदास—"और दीदी तुम्हारा ?"

पुष्पा चुप । रामदास की दृष्टि पुष्पा के हाथ की ओर गई और वह सब समझ गया । उसने रामशरण की ओर देख कर कहा—"जीजाजी, आपको हार्दिक बधाई ।"

रा० श०—"और दीदी के लिए ।"

रामदास—तुम्हारा वाद-प्रतिवाद तो चलता रहेगा—

पुष्पा उठकर अन्दर चली गई ।

रामदास—"माँ अब तो आपकी चिंता दूर हुई ।"

अनुराधा—"भगवान् दयालु है । सब आपका ही है ।"

पुष्पा ने चाय लगा दी अपना स्टूल छोड़ कर एक कुर्सी पर आ बैठी । रामशरण को हँसी आयी ।

पुष्पा ने कहा—"स्टूल पर बैठते-बैठते मन ऊब गया था ।"

अनुराधा ने पुष्पा से कहा "रामदास आ गया है अब तुमको छुट्टी ।"

रामशरण और पुष्पा बाहर चले गए ।

रामशरण—"अब"

पुष्पा—चाभी देते हुए "स्कूटर तो है ही।"

रामशरण—"किधर पुष्पा ? फाफामाऊ पुल।

जब वे वहाँ पहुँचे सूरज रक्त मेघों के बीच से फिसल रहा था और उसकी किरणें गंगा के जल पर अद्भुत दृश्य बना रही थी। कभी 2 कोई पास निकल जाती। शेष घटना स्थल शून्य और शांत।

पुष्पा गंभीर हो गई। हाथ जोड़ धीरे 2 कुछ कह रही थी। "कितनी बार मै यहाँ आई। अभिलाषा और आदर्श का संघर्ष कितनी बार प्रार्थना की आप वही विकल्प चुने जिससे आपका जीवन अधिक से अधिक सुखी हो। आपने सब कुछ दे दिया।"

कुछ देर बाद वह सीधी हुई और रामशरण की ओर फिरी : रामशरण—"अब किधर"

पुष्पा—"जहाँ चाहो"

रामशरण को यमुना तट याद आया और वह उसी ओर चल दिया। वहाँ पहुँचने तक सूर्यास्त हो गया था पर पूर्ण चन्द्र की देखरेख में यमुना तट पर सौंदर्य का ह्रास न हुआ।

वृक्षों के बीच से छनकर चाँदनी ने मार्ग पर बहुत से सुन्दर पैटर्न बना दिए थे। वे यमुना तट पर टहलने लगे।

एक स्थान पर वे खड़े हो गए। रामशरण ने कहा—"उस दिन की तरह चाँद की ओर देखो।"

पुष्पा—"यत्न करने पर भी वह दिन लौट नहीं रहा है।" उसने चाँद की ओर देखा पर मन एकाग्र न हुआ। रामशरण की ओर देख कर कहा—"मेरा चाँद पास आ गया है।"

रामशरण ने कहा—"और उसके गाल पर एक चपत लगाया। पुष्पा बैठ गई और गंभीर हो गई।

चाँद के प्रतिबिम्ब धीरे 2 चलते यमुना तट पर बहुत सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे। पुष्पा का ध्यान उधर ही रुक गया और वह कुछ क्षणों तक मुग्ध हो देखती रही। रामशरण उसकी ओर देखता रहा। कुछ देर बाद पुष्पा ने रामशरण की ओर देखा। रामशरण ने हँसते हुए कहा—मैं यही चाहता था, चपत ने काम किया।"

पुष्पा—"तब तो पाँच-सात भी हो सकते थे।"

रामशरण—"समय हो गया है अब चले—तेज चलना होगा।"

पुष्पा—"मै दौड़ भी सकती हुँ।"

स्कूटर द्रुत गति से घर की ओर भागा। पुष्पा के हाथ रामशरण के कंधों पर और मुँह हलके से उसकी पीठ पर :

रामशरण ने अनेक विवाह देखे थे। हजारों बल्ब मकान, वृक्ष और झाड़ियाँ कला-कौशल से खिंची रेखाओं से सुसज्जित, शहनाई का मनोहर संगीत या लाउड-स्पीकर का कान फोड़ने वाला कर्कश पर मांगलिक संगीत-उत्साह से विकसित युवा और युवतियों के चेहरे-कितनी आकांक्षायें कितने स्वप्न उसको विचार आता "क्या इनमें उतना तथ्य है।"

इलाहाबाद से लौटने पर रामशरण के जीवन में ऋतु परिवर्तन हुआ। वसन्त न होने पर भी वसन्त की मृदु बयार ने उसे प्रस्फुटित कर दिया। नीलाभ आकाश नीलमणि की तरह सुन्दर बन गया। किसी अज्ञात कारण से सूर्योदय और सूर्यास्त अत्यधिक मनोहर हो गए और आकर्षक लगने लगे। सरकारी कार्यभार, और जीवन में संकटों ने सरलता का आवरण धारण कर लिया। एकान्त में एक अज्ञात दूरस्थ संगीत की मृदु लहरें उसके मानस वीणा में झंकार उत्पन्न करती रहती।

रामशरण के विवाह प्रोग्राम के नियत होने में देर न लगी। पुष्पा का आगामी जन्म दिवस ही उसके विवाह का दिन निश्चित हुआ।

विवाह धूमधाम से हुआ पर इतनी आधुनिकता थी कि बारात बहुत बड़ी न थी। देहरादून में उत्सव विस्तृत रूप से मनाया गया। संबंधियों का आना-जाना, भोजन और पार्टियां। यों ही एक मास की छुट्टी के 12 दिन बीत गए। तब कहीं साँस लेने का अवकाश मिला।

रामशरण ने पुष्पा से कहा—"15 दिन शेष है। कहाँ जाना है ?

पुष्पा—"मेरे लिए सर्वत्र एकसा है जो भी निश्चय करो"

रामशरण—दस दिन के लिए नैनीताल जाना है। कल सवेरे जाना है। आवश्यक सामान रखलो—फिर यहीं लौटना है।

विदाई का समय आया। कौशल्या ने कहा "अभी तो मैं अपनी बहू को देख न पायी समय यों ही बीत गया। ऐसी सुन्दर और सुशील बहू संसार में ढूंढे नहीं मिलती। अपार प्रसन्नता हुई" उन्होंने पुष्पा को बड़े प्यार से गले लगाया और उसके पर्स में 500) रख दिए और कहा—"समय असमय में काम आयेंगे। रामशरण की देखभाल करना।" साधना ने कहा—"भाभी कश्मीर जाती तो कुछ उपहार भी मिलता। नैनीताल में क्या रखा है ?" रामशरण ने उसे विश्वास दिलाया, उसके उपहार के लिए अवश्य कश्मीर जायेंगे।

नैनीताल का सीजन बीत चुका था। ग्रांड होटल में स्थान मिल गया।

लाउन्ज (विश्राम कक्ष) में बैठे चाय पी रहे थे। रामशरण ने कहा "यह होटल मँहगा है पर प्रबंध और अवस्थापन उत्तम है। लेक की ओर देखो। भास होता है कि हम जहाज पर बैठे समुद्र को देख रहे है।"

पुष्पा—"सचमुच यही धारणा मेरे मन में भी आई।"

रामशरण—"सीजन न होने से होटल और नगर दोनों में भीड़ नही है। अच्छा है।"

पुष्पा—"अब कार्यक्रम क्या है ?"

रामशरण—"यात्रा की थकान होगी। नौका विहार तो हो ही सकता है"

पुष्पा—"तुम सामने बैठो, मैं नाव चलाऊंगी।"

यद्यपि हवा ठंडी थी पर नाव तेज चलाने से पुष्पा के चेहरे पर स्वेद बिंदु चमकने लगे।

रामशरण—"स्वेद बिन्दु ने तुम्हारा सौंदर्य तो बढ़ा दिया है पर इतना परिश्रम न करो।"

पुष्पा नाव धीरे धीरे चलाने लगी। कुछ देर बाद उसका ध्यान चीना पर्वत शृंग की ओर गया। सूर्यास्त का समय था। चीना ने सुन्दर मेघमुकुट पहन लिया था। उसका रूप कुछ बदल जाता पर सौंदर्य नहीं। रक्तवर्ण ने उसे अधिक प्रभावोत्पादक बना दिया था। पुष्पा उसको एकटक देखती रही और नाव चलाना बंद हो गया। रामशरण उसकी ओर ध्यान से देख रहा था रक्तवर्ण मेघों ने पुष्पा के मुख को भी अपनी आभा से अलंकृत कर दिया था कुछ देर बाद रामशरण ने कहा "पुष्पा तुम मेरे पास आ जाओ। नाविक नाव को वापिस कर लेगा और तुम चीना पीक के सौंदर्य का उपभोग करती रहोगी।'

पुष्पा—"मैं तो भूल ही गई"

संगीत मंच पर वाद्य संगीत हो रहा था। कुछ समय वहां ठहर कर वे होटल लौटे। रामशरण ने कहा "प्रथम संध्या के लिए यथेष्ट है।"

रामशरण और पुष्पा प्रातःकाल उठे "स्नो व्यू" पर्वत घाटी पर जाने के लिए। सूर्योदय के समय हिमाच्छादित शिखरों के दृश्य अति मनोहर और प्रभावात्मक रूप से दृष्टि गोचर होते हैं।

दोनो तीव्रता से चले। पर कुछ समय बाद रामशरण पीछे रह गया। "स्नोव्यू" से कुछ ही पूर्व रामशरण ने पुष्पा को बैठे, पाया। उसने कहा—"मैं थकी हूँ, धीरे धीरे आऊंगी।

रामशरण ने उसका हाथ पकडा और दोनों चोटी पर पहुँच गए। सूर्योदय होने को था और हिमाच्छादित शिखर रक्तिम प्रकाश से दैदीप्यमान हो गए थे। पुष्पा इस प्राकृतिक सौंदर्य से मुग्ध हो एकटक उधर देखती रही और रामशरण उसकी ओर देखता रहा। सूर्योदय होने पर वह दृश्य बदला और पुष्पा ने रामशरण की ओर देखा। रामशरण ने उसके दोनों गालों पर धीरे से चपत लगायी और कहा—"अगर तुम पहले यहाँ पहुँच जाती तो जोर से चपत खाती पर अब ये हलके हो गये है। पुष्पा हँसते हुयी बोली "अब मुझे चपत का डर नहीं है।" "अब वापिस चले।"

रामशरण—"हम तो कुछ समय लेटते हैं। तुम को और कुछ काम न हो तो गा सकती हो।"

पुष्पा—"काम न होने से मैं थोड़े ही गाती हूँ।"

रामशरण—"अच्छा मेरे लिए आभार सही"

पुष्पा—"नहीं 'अपने आमोद के लिए' 'मन नहीं कर रहा'

रामशरण—"मेरे प्रमोद के लिए"

पुष्पा गाने लगी—'तेरो ही ध्यान धरत'—"और तन्मय हो गई"

रामशरण—"अब थकान उतरी। चलो लौटें"

रामशरण ने कहा आज क्या करना है"

पुष्पा—सभी पर्वती मार्ग ऊर्ध्व दिशा में जा रहे हैं। सीजन समाप्त होने से सर्वत्र ही निर्जनता है। लक्ष्यहीन भ्रमण ही आज का प्रोग्राम है।

दोनों चीना पीक की गर्त मे भ्रमण कर रहे थे। यहाँ से भी नैनीताल का भव्य दर्शन हो रहा था। मार्गहीन भाग में वे निकल पड़े। कभी पुष्पा पिसलकर गिर जाती तो रामशरण उठाता कभी रामशरण गिर जाता तो पुष्पा उठाती। योंही समय बीत गया। अकस्मात एक छोटा सा मेघखंड आया और बरसने लगा। दोनों भीग गए और द्रुत गति से लौट आए।

रात को रामशरण को ज्वर हो गया 102 डिग्री फिर 104 डिग्री। पुष्पा यूडीकोलन और ठंडे पानी से उसका माथा शीतल करती रही। रामशरण को पता नहीं रहा कब तक यह क्रिया चलती रही। प्रातःकाल उठने पर उसने देखा समय अधिक हो गया है। पुष्पा अस्तव्यस्त हालत में एक ओर पड़ी है। वह सदा बहुत जल्दी उठ कर तैयार हो जाती थी। समझा—उसका प्रयास देर तक चलता रहा। वह पुष्पा को विशेप भाव से देखता रहा। उठने पर पूछा "कब तक जागना पड़ा"

पुष्पा—"याद नही आता। उठने मे देर हो गई"

रामशरण—"इतना क्यों घबराती हो। न मुझे काम पर जाना है, न तुम्हें। बीमार होना भी अच्छा है। इतना प्यार, इतनी सेवा। पुष्पा हँसने लगी—"इसके लिए रोगी होने की आवश्यकता नहीं है। सभी कुछ तुम्हारा है। तुम्हारी सेवा के लिए—आध्यात्मिक स्तर से शारीरिक स्तर तक और वह हँसती हुई उठ कर चली गई।

रामशरण—"आज क्या प्रोग्राम है"

पुष्पा—"आपको आराम करना है, शेप निश्चय चाय के बाद किया जाएगा"

रामशरण—"तुम तो मास्टरनी बन गई"

पुष्पा—"पत्नी को कभी कभी यह भी करना पड़ता है।

रामशरण—"अच्छा, गुरुजी"

रामशरण की तबियत ठीक रही और प्रोग्राम बना "उद्देश्यहीन नौका-विहार" दोनों नैना देवी के मंदिर में गए। पुष्पा ने दस रु. भेंट चढ़ाई और कुछ देर प्रार्थना करती रही।

रामशरण—"आशा है तुमने मूर्खता की प्रार्थना न की होगी।"

पुष्पा—"यदि स्त्री मूर्ख है तो मूर्खता की ही प्रार्थना करेगी" और हँसते हुए बोली अब नौका–विहार"

नौका किराए पर ली गई। कभी नाविक ने चलाई, कभी रामशरण ने सीखने का प्रयास किया। कभी पुष्पा ने चलाई, कभी किसी ने नहीं। स्वाधीन देश की नाव स्वाधीन हो गई और वह उठती हुई लहरों से स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा करती रही। अनुशासन हीनता की उमंगे—किसने कहा सुख नहीं है।

रामशरण पानी से खेल रहा था। नाविक सोच रहा था कब इन नव विवाहित पागलों से छुट्टी मिले। पुष्पा उद्देश्यहीन चेष्टा से आकाश को देख रही थी।

समय सरका। अंधकार आया पर पूरा नहीं। चाँद का यथेष्ट प्रकार छा गया। उत्तर, पूर्व, पश्चिम पर्वत सौंदर्य खिल उठा। कुछ और भी हुआ। हवा बंद हो गई। लहरे रुक गईं। जल, स्थिर, शांत, दर्पण। सैकड़ों रंगीन बत्तियों के प्रतिबिम्ब निर्मल जल पर सुस्पष्ट और चित्रित हो गए। सब सौंदर्य स्वप्निल और प्रेत लिखित।

पुष्पा बोली—"देखो समय प्रवाह, कुछ ही क्षणों मे प्रकृति ने कैसा मनोहर रूप धारण किया हैं।

रामशरण—"अवर्णनीय कोमल मृदु सौंदर्य। नौकाविहार उद्देश्यहीन नही रहा।"

पुष्पा ने हँसकर कहा—"मास्टरनी की शिकायत तो न रही।"

रामशरण—"चपत खाने की बाते कर रही हो"

पुष्पा—"देखा जाएगा, समय हो गया चलो"

सुखद स्वप्न की भांति नैनीताल वास का अवसान आया।

पुष्पा—"हमने कोई भी उपहार नही लिए। आज का प्रोग्राम बाजर मे धूल फाँकना।

रामशरण—"और अर्थहीन व्यय"। यहाँ सभी चीजे बाहर से आकर बिकती है। फिर भी भावना के लिए क्या अंतर है, हम कश्मीर जायें या यही से कश्मीर के उपहार ले जाये।

पुष्पा—"चलो मेरी जेब भी माजी ने भारी करदी थी।

अथक और अद्भुत जीवन प्रवाह, रामशरण और पुष्पा देहरादून पहुँच गए।

दो दिन का समय। सामान ठीक करना फिर मांजी का अनन्त प्यार। पुष्पा को सांस लेने की भी फुरसत न मिली।

साधना बहुत प्रसन्न—उपहार पाकर। चलते समय पुष्पा मे गले मिली बहुत प्यार से।

रामशरण—चलो समय हो गया है।

कौशल्या ने बडे प्रेम से विदा किया और कहा "अपनी और रामशरण की देखभाल करना।

रामशरण—"माँ, बहुत न बढ़ाओ, नही तो मास्टरनी बन जाएगी"

कौशल्या—"ऐसी सुन्दर, सीधी और आत्मत्यागी बहू संसार में दुर्लभ है"

जब रामशरण की निद्रा खुली ट्रेन मुरादाबाद से आगे जा चुकी थी। पुष्पा धीरे-धीरे कुछ गा रही थी। उसने बिस्कुट, चिप्स और चाय रख दिए।

रामशरण—"तुम्हें चाय कहाँ मिली"

पुष्पा—"पिछले स्टेशन पर मै जागृत थी। थर्मोफ्लास्क में रखली।"

रामशरण—"विवाह भी लाभ कर संस्था है"

पुष्पा—"दोनों के लिए"

रामशरण—भोजन का क्या होगा"

पुष्पा—"समय आने दो"

लखनऊ स्टेशन की दौड़ धूप। कोई स्वागत करने आया तो कोई विदा के लिए। सभी उत्तेजित और प्रसन्न—सभी भावात्मक दशा में। ऐसे अवसर जीवन के कुछ क्षण तो सुनहले बना ही देते है।

भोजनालय का सेवक आया और भोजन रख गया। पुष्पा के आदेशानुसार। जनता मूल्य जनता भोजन। फिर भी रोटी, पतली दाल, कम पका पापड़ तो था ही—शेप नमक और मिर्च-पुष्पा ने उसकी पूर्ति की आचार, जेली, चीज, मिठाई आदि और कॉफी से।

रामशरण—"तुम्हें इस परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी के अंक मिल जाएंगे"

पुष्पा—"यह परीक्षा तो जीवन पर्यंत चलती रहेगी। मध्यम श्रेणी भी सतोप जनक है।"

रायबरेली आया और गया। रामशरण तैयार होने लगा, पुष्पा ने भी यही सुझाव दिया।

परतावगढ़ के स्टेशन पर उपस्थित थे पी० ए० ऑफीसर का प्रतीक चपरासी और जीप। रामशरण और पुष्पा हाथ मुँह धोकर बैठक में आए। सेवक ने चाय लगादी थी। पुष्पा ने बहुत संतोष से चाय पी। मकान देखा, बाग देखा और बहुत सुख से बैठक में बैठ गई। यह बाग, यह मकान, सामान और सेवक सभी कुछ उसका था। उसका भी अपना एक संसार था, जो केवल उसका था।

धीरे धीरे घर और बाग में परिवर्तन हुआ। फर्नीचर, मेजपोश पर्दे, सब में कायाकल्प हुआ। सभी कमरों का अपना-अपना रूप और रंग।

वही माली और वही बाग पर क्रांतिकारी परिवर्तन। घर में सफाई, बाग में सफाई। न व्यर्थ धूल न व्यर्थ घास।

रामशरण—'तीन महीने मे ही घर और बाग सुन्दर और मनोहर हो गए है। बहुत परिश्रम कर रही हो।

पुष्पा—"मेरा वही कार्यालय है। जितना सुख से कर सकूँ करती हूँ।

रामदास का विवाह निकट आया। अनुराधा ने लिखा एक मास के लिए इलाहाबाद आने को और कुछ आभूषण व साड़ियां लाने को।

रामशरण—"मै नही चाहता तुम इतने समय के लिए जाओ। तुम्हारा क्या विचार है।"

पुष्पा—"अधिक समय के लिए जाने का विचार मुझे भी सुखकर नहीं। 10–12 दिन वहाँ रहना यथेष्ट होगा। और आप तीन दिन के लिए चले आना।

रामशरण—"प्रस्ताव स्वीकार। इस शनिवार को वाराणसी जाकर नियत सामान खरीद लेगे। और मैं तुमको इलाहाबाद छोड़ आऊंगा।

वाराणसी के स्टेशन पर पहुँचे तो बड़ी भीड़ थी। दो ट्रेन एक साथ आ गई थीं। दोनों भीड़ें मुख्य फाटक की ओर बढी एवं मिश्रित हो गईं। शोभा दूसरी ट्रेन की भीड़ में थी। उसने रामशरण एवं पुष्पा को पहले देखा एवं पास आकर कहा—"आपको हार्दिक बधाई"

"धन्यवाद"

रामशरण—"आप यहाँ है, मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

शोभा—"हाँ विवाह के बाद यही मेरा निवास स्थान हो गया है।'

रामशरण और पुष्पा—"बहुत प्रसन्नता हुई। बधाई।"

धीरे-धीरे वे मुख्य फाटक के पास पहुँच गए।

शोभा—"यहाँ आपका क्या प्रोग्राम है। कब तक व कहाँ ठहरना होगा।

रामशरण—"कर्त्तव्य है, कुछ आभूषण और साड़ियाँ खरीदना। इनके भाई का विवाह है। आज ही वापिस जाना है। बाजार ही में समय कट जाएगा।"

शोभा—"किसी व्यापारी से परिचय है?"

रामशरण—"नही अनजान ही सौदा करना सोचा"

शोभा—"इस दशा मे आप मेरी सहायता ले सकते है।"

वे मुख्य फाटक से बाहर आ गए थे। एक बड़ी और विदेशी मोटर खड़ी थी। शोभा ने दरवाजा खोला और कहा "मैं आपको बाहर ले जा सकती हूँ।"

रामशरण और पुष्पा बैठ गए। शोभा ने चालक का स्थान लिया। कुछ ही मिनटों में मोटर एक बडे बँगले मे पहुँच गई। विस्तृत लॉन, प्रचुर रंग बिरंगे पुष्प, सुपरिरक्षित बाड़े। बीच में आधुनिक दुमजिला भव्य सदन।

शोभा—"सामान मोटर मे ही रहने दे। अपनी अटेची ले लीजिए।"

वे जाकर बैठक में बैठे। सदन के अनुरूप सभी सजावट और सामान। संगमरमर का फ़र्श। बहुमूल्य कालीनें और फर्नीचर, कोर्निस आदि स्थानों पर सजावट की बहुत सी चीजें।

शोभा ने घंटी बजाई। सेवक ठंडा कोका-कोला ले आया। शोभा अपने मेहमानों को पासवाले शयनकक्ष में ले गई। यह अतिथियों का कमरा था। गुलाबी रंग का डिस्टैम्पर, दो बड़े भारी पलंग, तीन-दर्पण वाला शृंगार मेज और अन्य सामान। पास लगा स्नान घर।

शोभा ने कहा "आप तैयार हो जाइए, इतने में चाय लग जाएगी। फिर बाजार चलेंगे।"

चाय नहीं पूरा अल्पहार। पुष्पा को अप्रतिहत देख वह उसके पास वाली कुर्सी पर बैठ गई। उसने कहा "मिठाइयाँ तो पहले भी खाई थीं पर यहाँ आकर मानना पड़ा कि वाराणसी का इस विषय में गर्व उचित है।" उसने सब मिठाइयों को पुष्पा के समक्ष रख कहा "आप इसकी परीक्षा कर अपना निश्चय बतायें।

पुष्पा—"इस विषय में मैं दक्षता नही रखती"

शोभा—"यदि आपत्ति न हो तो मुझे वस्त्र और आभूषणों की सूची बता दें और समस्त मूल्य का अनुमान बता दे। इससे मैं आपको उचित मूल्य की दूकान पर ले जा सकूगी और थोड़े समय मे काम हो जाएगा।

शोभा ने उनकी सूची एवं बजट देखा और मोटर से वे सब बाजार जा पहुँचे।

पहिले साड़ियों की दूकान पर। शोभा ने स्वयं ही साड़ियाँ दिखाई पुष्पा के मन के अनुकूल और कुछ ही समय में सौदा हो गया। उसने ही केशमीमो बनवाया और रामशरण ने मुनीम को मूल्य दे दिया।

तदन्तर वे आभूषणों की एक बड़ी दूकान पर गए। वहाँ शोभा ने उनका परिचय अपने पति लक्ष्मीचंद से कराया। शोभा ने उनकी सूची के अनुसार सब आभूषण ला दिए और शीघ्र ही वे अपनी इच्छानुसार सौदा पूरा कर सके। शोभा ने केशमीमों बनाकर अपने पति को दिया। उसने उन पर अल्प हस्ताक्षर कर दिए। रामशरण ने मुनीम को मूल्य दे दिया।

शोभा—"आपकी ट्रेन में अभी 2½ घंटे शेष है। आप पहली बार वाराणसी आए हो, मेरा सुझाव है—विश्वनाथ मदिर, दशाश्व मेघघाट, नौका विहार—रेल्वे स्टेशन आदि देख लिए जाएँ। सामान यहाँ छोड़ दो। घर पहुँच जाएगा।

विश्वनाथ मंदिर में शोभा का पंडों ने बहुत स्वागत किया। पुष्पा ने प्रार्थना और ध्यान के बाद 5) रु० भेट दी। शोभा ने भी 5) रु० भेट दी।

गंगातट स्थित वाराणसी के भव्य मंदिर और ऊँचे प्रासादों का रेखाचित्र नौका विहार में सूर्योदय और सूर्यास्त के समय ही आकाश पट पर मनोहरता से

चित्रित होता है। सूर्यास्त था सुन्दर पार्श्व छाया चित्र। आकाश में कुछ मेघखण्ड उद्देश्यहीन दौड़ लगा रहे थे। सूर्यास्त ने उन्हें रक्तिम आभूषणों से उज्ज्वलित किया। दृश्य में अग्रक्षेत्र में कोई गंगा को पानी चढ़ा रहा है, कोई घंटी वजा रहा है, कोई चंदन घिसने में निमग्न है, कोई हस्तरेखा पढ़ किसी का भविष्य वता रहा है। कोई चिन्ता ग्रस्त हो मूक प्रार्थना में लीन है। नौका–विहार रत युवा-युवतियाँ हँसती-गाती, कोई वहाव के साथ तो कोई वहाव के विरूद्ध वह रही हैं। पुष्पा–शोभा की नाव वहाव से ऊपर जा रही थी। एक छोटी नाव जिसमें एक युवा और एक युवती थे तेजी से नीचे की ओर जाते हुए उनके पास से निकल गयी। युवती कुछ गीत गा रही थी।

शोभा—"आपके संगीत की वहुत प्रशसा सुनी है, क्या प्रार्थना स्वीकार होगी।

पुष्पा विचार वद्ध थी। कुछ सुना नहीं।

शोभा ने रामशरण की ओर मुड़ कर कहा–"आप ही सहारा कर सकते हो"

रामशरण—"किस विचार में डूबी हो। ऊपर और चारो ओर देखो। इस दृश्य मे इनकी प्रार्थना उचित है।"

पुष्पा का स्वप्न टूटा। वह सजग होकर देखने लगी। उसके प्रकृति–प्रिय स्नेही हृदय में झंकार हुई। कुछ ही क्षणों में उसे याद आया कि दूसरी नाव वाली वाला क्या गा रही थी। और वह भी वही गीत गाने लगी—

"कव आओगे कृष्ण मुरारे..........."

शोभा—"तुम्हारी प्रशंसा यथार्थ है। ईश्वर ने तुम्हें कंठ भी मधुर दिया है। कठ न होने से मेरा प्रयास तो वाद्य संगीत तक ही सीमित रह गया है।"

समय होने से नाव दशाश्वमेघ घाट पर आ लगी। घर से सामान लेकर कार स्टेशन पर पहुँची। सव ट्रैन में जा वैठे। भोजन के गट्ठे में कुछ डब्वे देख पुष्पा ने कहा—"आपने व्यर्थ कष्ट किया। हमारी योजना में भोजन के लिए इलाहावाद नियत था।

शोभा—"साधारण सी वात है। ट्रैन इलाहावाद कुछ देर से पहुँचती है।"

सीटी वजी। शोभा खड़ी हो गई और एक डिविया पुष्पा को देते हुए कहा—"छोटा सा उपहार है—पर इसमें कुछ विशेपता है। आशा है तुम्हें पसन्द आएगा।"

पुष्पा ने रामशरण की ओर देखा। अनुमति जान उसे ले लिया।

शोभा नीचे उतर आयी और कहा "हम तो यहाँ द्वार पर ठोकी हुई कील के समान आवद्ध हैं। आशा है कभी आप ही स्थानापन होकर वाराणसी आजाएँ।

ट्रैन चली मद–मद, फिर द्रुत गति से। शोभा का गुलावी रूमाल देर तक हिलता हुआ, दीखता रहा।

पुष्पा ने देखा डिब्बे में लॉकट था। सुवर्ण के ऊपर लाल में लिखा हुआ "राम" उसने कहा देखो यह बहुत सुन्दर है। इसमें आपका नाम लिखा हुआ है।

रामशरण—हमको भी किसी अवसर पर उसे उपहार देना होगा।

पुष्पा—"शोभा का नाम यथार्थ है। उसका सौंदर्य अति आकर्षक है। इतनी बड़ी और भावपूर्ण आंखे मैंने कम देखीं।

रामशरण—"एक बड़े मकान की मालिकन भी है, जिससे उसे पांच सौ रुपये प्रतिमाह किराया भी आता है—मोटर और बहुमूल्य आभूषणों के अतिरिक्त।

पुष्पा मुस्कुराई—"तब तो आपने बड़ी भूल की है।

रामशरण—"छोड़ो भी व्यर्थ की बातें।

अनुराधा को साड़ियाँ और आभूषण बहुत पसन्द आये। केशमीमो देख कर कहा—"व्यय भी अधिक नहीं हुआ। मालूम होता है आई० ए० एस० में व्यवसाय की शिक्षा भी है।

पुष्पा—"माँ! उसकी परीक्षा तो अभी होनी है। इनके एक मित्र मिल गए स्टेशन पर। घर ले गए—अल्प भोजन, चाय, ट्रेन का भोजन, गंगा में नौका-विहार और इस सामान के सौदे में उत्तम सहायता। उनकी दूकान में ही सब सामान मिल गया। मोटर की सवारी निःशुल्क।"

अनुराधा—"इतने सुन्दर मित्र दुर्लभ होते हैं।" उनको विवाह पर निमंत्रित करना था।

पुष्पा—"मेरी मोटी बुद्धि के लिए तो यह संभव न था। भूल हुई तो इनकी ही भूल है।"

पुष्पा ने देखा रामशरण के मुख पर मंद हास्य था। उसने एक अंगुली उठाई और पुष्पा चुप हो गई।

पुष्पा की गणित ठीक थी। विवाह से पूर्व ही इन्दुमति और उसके पिता ने चार्ज ले लिया था। पूरा प्रबंध हो चुका था। मकान की मरम्मत, सफाई, पुताई और सजावट। मकान की रिक्त भूमि का पुनरुद्धार, दूर्वा क्षेत्र, सुव्यवस्थित बाड़े, बहुरंगी सुन्दर पुष्पों की क्यारियाँ, बिजली के रंगीन बल्बों से मकान और सारा क्षेत्र सुसज्जित।

विवाह समारोह सफलता पूर्वक मनाया गया। अनुराधा और रामदास को बधाई दी गई। अनुराधा से कहा—"हर्ष है आपकी दोनों समस्यायें हल हो गईं।

अनुराधा ने आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा—"हाँ मेरे जीवन का लक्ष्य पूर्ण हुआ। आपकी सहायता और सहानुभूति का ही फल है।

वह लौट आया।

उसको दिन बिताने कठिन हो गए। अभी तक वह नहीं समझ पाया था कि उसके जीवन में एक क्रांति हो चुकी थी। प्रातःकाल पुष्पा का संगीत याद आता।

उठने पर उदासी मकड़ी के जाल की भाँति सारे घर में फैली हुई। कार्यालय के समय कुछ मन का अपवर्तन होता पर अवचेतन मन में मेघ जमा होते रहते और घर पहुँचने पर सभी अंधकार में आ जाता। नौकर चाय बनाना भूल गया। रोज ही उसकी चाय अपेय बन जाती। नाश्ता जला होता, पर अपरिपक्व, बगीचे में जाने से भी कुछ मुक्ति न मिलती। माली झाड़ू देना भूल जाता। सभी पुष्प वाटिका मुरझा सी गई। उनका रूप और रंग कहाँ गया? रात्रि क्यों काटने दौड़ती।

"छिद्रेवनर्था बहुली भवन्ति"

उसको अन्य घर न मिला। अनिद्रा रोग उसके सिर आ धमका। घंटे गिनो, पत्र लिखो और फाड़ो।

घबड़ा कर उसने सबसे छुट्टी ली और वह दौरे पर चला गया। पाँच–छः दिन तो कटे। पर लौट कर आया तो वही डफली, वही राग।

संध्याकाल दूर्वा क्षेत्र में बैठा दिन गिनने लगा तो दसवाँ ही दिन था। इतने दौरे के बाद। नौकर ने चाय रद्दी लगाई और उसका ठीठपन "चाय तो सर्वदा की तरह बनी है"। क्रोध का पर्वत उसी पर टूट पड़ा। वह "आप जाने आपका काम जाने कह कर चला गया। शेष क्रोध उतारे तो किस पर। बैठा रहा अन्यमनस्क। सूर्यास्त हुआ और अंधकार हुआ। वह बैठा रहा। न बाग में कोई आकर्षण न मकान में। कभी आभास हुआ ठंड हो रही है पर इतनी छोटी बात की ओर मन न बढ़ा।

आवाज! हाँ, आवाज–गेट खुलने की और कोई रिक्शा अन्दर आने की।

मिलने कोई आया। यह समय कोई मिलने का है? भेंट करने वाले भी पागल होते हैं, जब चाहो किसी से भेंट करने चले आओ।

रिक्शा पोर्टिको पर पहुँचा और बड़े इतमीनान से सामान उतारने लगा। मुझे कोई अतिथि आज स्वागत नहीं है।

कोई लड़की उतरी।

कौन? कैसे हो सकता है? वह तो इलाहाबाद होगी। दीखती तो वही है। स्वप्न तो नहीं है। हाँ अब बिजली के प्रकाश में आई और अन्दर गई। रामशरण उठा, तेजी से वहाँ पहुँचा और चिल्लाया।

"तुम यहाँ कैसे आ पहुँची?"

पुष्पा—"क्या इसके लिए भी सफाई देनी पड़ेगी?"

रामशरण को हँसी आई और उसके मन आकाश से काले मेघ कही विलीन हो गए।

"इतने दिन दूर रहीं। समय बीतना कठिन हो गया।"

"आपने बारह दिन का अवकाश दिया था, मैं दो दिन पहले आ गई।"

रामशरण—"क्यों कर ! क्या झगड़ा हो गया ? जो हुआ सो अच्छा ही हुआ ।"

पुष्पा—"चाय और विश्राम के बाद सुनाऊँगी ।"

एक बार रामशरण को भरपूर देख वह मंद हास्य से अलंकृत हो अन्दर चली गई ।

पुष्पा तैयार हो चाय पर बैठी । रामशरण ने चाय को स्वादिष्ट पाया ।

रामशरण—"मैंने तो नौकर को आदेश दे दिया था कि आज भोजन नहीं बनेगा ।"

पुष्पा—"अपने घर आकर भूखी नहीं रहूंगी ।" अभी एक घंटे से अधिक समय है । सब तैयार हो जाएगा ।"

इन्दुमति सब काम अपने वजट के अनुसार करती है । घर सम्हाल लेगी ।

मेरी खातिर खूब की । दिया भी यथेष्ठ । माँ तो जिद करती थी कि मास भर रहूँ । पर नौ दिन बाद मैंने इन्दुमति से कहा "मैं जाना चाहती हूँ । घर यों ही पड़ा होगा ।"

उसने कहा—"अभी तो दस दिन भी नहीं हुए ।' पर मैंने कहा "वहाँ वे अकेले है ।" मैंने आज आना निश्चित किया । माँ को सहमत करना कठिन था । कहा आपका स्वास्थ्य ठीक न होने से शीघ्र आने को लिखा है । तब कहीं जाकर वह राजी हुई ।

रामशरण—"मेरा नाम झूठा लगाया । ठीक ही हुआ । तुम्हारे बजट का क्या हाल है ।"

पुष्पा—वह बजट बद्ध । मैं बजट शून्य । शून्य रेखा मेरी आधार रेखा है ।"

रामशरण ने सात दिन की जीवन कहानी कही । पुष्पा खूब हँसी और हँसाया ।

रामशरण—"अब तो मेरी क्षुधा लौट आई और तीव्र होती जा रही है ।"

पुष्पा—"घबड़ाओ नहीं । समय हो रहा है और भोजन भी तैयार है ।"

प्रतावगढ़ छोटा नगर है । कोई अच्छा क्लब नहीं है । सभी परिचय परस्पर भेंट होने पर निर्भर था । इसी तरह कुछ अफसर और सज्जनों से परिचय हो गया था ।

बाग में बैठे उद्देश्यहीन बातें । रामशरण ने पुष्पा से पूछा "परिचित सज्जनों की क्या स्मृतियाँ हैं । यहाँ कोई अच्छा क्लब तो है नही । परस्पर भेंटों से ही परिचय हुआ है ।

पुष्पा—"श्रीमती संतराम हमारे जिला जज की पत्नी हैं । उनको भोजन के विषय में उतना ही उत्साह है जितना बच्चों को खेलों में—उनकी विशेष रुचि आचारो में है । इस विषय में वे दक्ष भी है । जब भी मैं उनसे मिली भिन्न-भिन्न

भाँति के पकोड़े, भिन्न-भिन्न आचारों के साथ मिले। सृष्टिकर्ता ने कितने आधार सुख के बनाए।

रामशरण—"तुम बोर नहीं होती"

पुष्पा—नहीं, उनका उत्साह और उनकी रुचि स्वाभाविक और निष्कपट है। दूसरो की बुराई करने से यह बेहतर है।

रामशरण—"तब तो तुम कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकती हो।

पुष्पा—"हाँ उन्होंने मुझे शिक्षा देना स्वीकार किया है। कुछ लाभ आपको हो जाएगा।

रामशरण—"जिलाधीश हुकुमचन्द के विषय में क्या ख्याल है।

पुष्पा—"कुछ नही, जिनके भारवहन का अहंकार उनके लिए क्षम्य है, पर उनकी श्रीमती की भावना है कि सम्पूर्ण देश के कल्याण का भार उनके कंधों पर है। यह कम न्यायोचित है।

रामशरण—"मनुष्य का मन वातावरण का दास है—सब पर रंग बराबर नहीं चढ़ता" मनुष्य की ऊंचाई इससे नपती है।

पुष्पा—"जनता में मेरा ध्यान एक महिला की ओर गया। सीता देवी का पति स्कूल में शिक्षक था। वह भी प्राथमिक स्कूल में अध्यापिका थी। उनके कोई बच्चा न था। उन्होंने एक 3 वर्षीय अनाथ लड़की को अपना लिया था। पति के देहान्त के बाद उसकी आय अपना छोटा सा वेतन और 2 छोटी दूकानों का भाड़ा है। कुछ समय हुआ और एक अनाथ बालक का भार उस पर आ पड़ा। वह भी येन-केन-प्रकारेण संभालती है, न अपने को देश सेवक कहती है न घर को अनाथालय। उसको पता नहीं कि स्वार्थी भारत में सब बोझा राज्य पर फेंक सकते हैं।"

रामशरण—"उसकी सहायता करनी चाहिए।"

पुष्पा—"हमारे घर बुनाई की मशीन बेकार पड़ी है, ठीक समझो भाई को लिख कर उसको यहाँ दे दिया जाए।

रामशरण—"बजट बद्ध इन्दुमति"

पुष्पा—"उसको इतना हीन न समझना चाहिए, बजट बद्ध आदर्शवाद भी हो सकता है।

रामशरण—"यही करो।"

रामशरण—मुझे भी दो सज्जनों ने प्रभावित किया है। राम सेवक शर्मा यहाँ के महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं। स्वराज सम्बन्धी सभी आंदोलनों में भाग लिया। पुलिस की मार खाई और चार बार जेल गए। आठ वर्ष जेल में काटे। इसी चक्कर में अविवाहित रह गए। उनका कहना था कि स्वाधीनता आई पर उसका लाभ कुछ सीमित जनो को ही मिला। स्वराज्य मिलते ही सभी देश सेवक सभी नेता बन गए। जेल छूटने का अवसर जान चालाक नेताओं ने जेल

भी ले लिए। इस दौड़ धूप में उनकी रुचि न थी और वे किसी के अनन्य भक्त भी न बन सके। उन्होंने अपना स्थान भूले हुए और उपेक्षित वर्ग में पाया। स्वाधीनता ने सबका भार अपने ऊपर ले लिया। किसी का कोई कर्त्तव्य शेष न रह गया। आजीविका के लिए रामसेवक जी ने इस महाविद्यालय में शिक्षक का भार उठाया। वर्षों के परिश्रम से उनकी दशा ठीक थी और अब वे प्रधानाध्यापक के पद पर हैं। स्वाधीनता के इस विकास से उनको खेद है पर क्रोध नहीं।"

पुष्पा—"समाज सेवा का विचित्र नियम है। अधिक से अधिक त्याग और सेवा व कम से कम लाभ। दूसरों को लूटना मनुष्य स्वभाव है तो अपनी बलि देना भी मनुष्य स्वभाव है।

रामशरण—"दूसरे सज्जन जो मेरी स्मृति पर अंकित है वह है लक्ष्मणदास। वह ग्रामीण क्षेत्र के जमींदार हैं। समय था जब उनके स्वामित्व में दो गाँव थे। महात्माजी के आह्वान पर विश्वविद्यालय त्यागा। अपने छोटे नगर की नगरपालिका के सभासद और सभापति बने। वर्षों तक सेवा की और नगर को बदल दिया। वाटर वर्क्स स्थापित किया और नगर को स्वच्छ बनाया। अच्छा महाविद्यालय बना और नागरिक जीवन के जनता सभी आधुनिक साधन मिल गए। लोकप्रियता के कारण अनेक बार विधान सभा के सभासद भी बने। मिनिस्टरों से उनका परिचय भी था पर उनको अधिकार का स्थान कभी न मिला। एक तो उनका स्वाधीन व्यक्तित्व उनको आदर्शानुयायी न बना सका। दूसरे उनका मानव स्वभाव वह न था जो सामाजिक राजनीति में ठीक समझा जाता। एक बार एक छोटा सा अधिकार का स्थान मिला। सभी समासद और नेताओं को शिकायत थी कि उन्होंने किसी की भी सहायता न की। प्रत्येक केस को नियमानुसार ही निभाया। जमींदारी उन्मूलन के पूर्व भी और बाद भी उन्होंने कभी किसी किसान पर मुक़दमा न किया। किसी ने देर में दे दिया, किसी ने केवल हाथ ही जोड़ दिए। उनसे सम्बन्ध मानवीय ही कहीं मानवोचित थे।

जमींदारी उन्मूलन आया। जितनी जमीन अपने पास रख सकते थे उतनी अपने पास रख कर शेष अपने किसानों को दे दी और जो क्षतिपूर्ति कानून से मिल सकती थी उसको लेना भी अस्वीकार किया। वह कहते, जितनी काया है मेरे लिए यथेष्ठ है। मेरा लाभ किसानों का सौहार्द्र है। वे भी आवश्यकता होने पर उनका काम स्वयम् बगैर कहे कर जाते।

विश्वास न होगा कि यह आदर्शवाद आधुनिक समय में हो सकता है। पर मनुष्य के संसार में अच्छा बुरा सभी हो सकता है।

पुष्पा—"यदि इस प्रकार के महानुभावों की संख्या अधिक होती तो देश शीघ्रतर उन्नत हो जाता।

रामशरण—"तुम्हारी मशीन आ गई"

पुष्पा—हाँ, वह तो सीता देवी के स्थान पर निर्धारित कर दी गई है।

रामशरण—"अनाथालय का प्रश्न जटिल है। इस देश की समाधान रहित समस्याओं मे है। प्रचुर धन, प्रचुर भावपूर्ण सेवा चाहिए। एक बच्चो को अच्छा नागरिक बनाने के लिए दस, पन्द्रह वर्ष की सहायता चाहिए। इसी कारण इतने अनाथालय बच्चों को भीख मांगना और मैनेजर का पेट भरना ही सिखाते हैं। जितना हो सके करो।"

प्रयत्न किए गए। कुछ सफलता भी मिली। 400) रु० माह की सहायता के वचन भी मिले। पर चन्दा कौन जमा करेगा। नियम बना। चन्दा देने वाला मास में एक बार स्वयं बच्चों को देखने आए और चन्दा भी दे दे। पर समयाभाव, आलस्य या उदासीनता के कारण अधिकांश दाता न कर पाये। सौभाग्यवश राम-सेवक और उनके स्वयं सेवकों ने यह भार उठाया। बच्चों की संख्या दस हो गई और सीता देवी को अपनी नोकरी छोड़नी पड़ी। पर संस्था चल पड़ी। उसका रंगरूप सुधर गया।

रामशरण समय से पूर्व घर लौटा। वह बहुत प्रसन्न था। उसने कहा "पुष्पा," जैसा मुझे भय था, हुआ। तुम्हारा सब परिश्रम, दूर्वाक्षेत्र और वाटिका पर किया हुआ व्यर्थ हुआ मेरा स्थानान्तर हो गया है।"

पुष्पा—"किसी अच्छे काम में किया परिश्रम व्यर्थ नहीं जाता जो भी इस मकान में आयेगा, इस परिश्रम का कुछ लाभ उठायेगा"

रामशरण—"तुम अनुमान कर सकती हो कहां का स्थानान्तर हुआ"

पुष्पा हँसती हुई "वाराणसी को"

रामशरण—"तुमने कैसे जाना"

पुष्पा—"स्त्री की सहज बुद्धि। ईश्वर ने अव्यक्त इच्छा पूरी की"

रामशरण—"पिटने की बात कहती हो पर यथार्थ तो बताया नहीं"

पुष्पा—"उस भूल के लिये भी मुझे ही पिटना पड़ेगा"

रामशरण—"मेरी पदोन्नति हुई है मैं वहाँ खण्ड उप कमिश्नर होकर जा रहा हूँ। जिलाधीश का वेतन और दोसो रुपया विशेष वेतन"

पुष्पा—"बधाई है। दो चिड़ियाँ साथ हाथ आई"

रामशरण—"बड़ी दुष्ट हो"

सेवक ने चाय लगा दी। रामशरण ने पकौड़ी की प्रशंसा की। वे जले थे। पुष्पा ने कहा "पदोन्नति पर सभी भोजन स्वादिष्ट हो जाता है।

रामशरण—"तुमको केवल तीन दिन का समय है सब सामान बांधने को।"

पुष्पा—"हो जायगा। मैंने आई० ए० एस० के नियम पढ़े है। उनके अनुसार स्त्री को सभी " हाट ""पैक बक्स, इत्यादि सम्भाल कर रखने चाहिए। किसी रात कूच का ढोल बज सकता है।

रामशरण—"बड़ी बुद्धिमती हो"

पुष्पा हँसी "तब तो मुझे बधाई है। एक दिन में उन्नति—दुष्ट से बुद्धिमती"

वाराणसी में मकान सिविल लाइन्स में ही मिला। दूसरे ही दिन लक्ष्मीचन्द और शोभा मिलने आये और क्लब में मेम्बर बनने का आग्रह किया। एक सप्ताह बाद उनको मेम्बर चुने जाने की सूचना मिल गयी।

क्लब अच्छा था। यथेष्ट पुरूष और स्त्री वहाँ उपस्थित रहते। टैनिस, टैबुल बिलियार्ड के खेलों का प्रबन्ध था। चार मेज ताश खेलने के थे। साधारणतः उनमें ब्रिज खेला जाता। यदा कदा मैम्बर अपने मित्रों को निमन्त्रण देते चाय या रात्रि भोजन का। क्लब का खान–पान विभाग अच्छा था और इन अवसरों के लिए एक सुसज्जित कमरा था।

लक्ष्मीचन्द सफल व्यापारी था। धनोपार्जन बहुत पर सदा व्यापार की समस्याओं में उलझा रहता, जब घर पर होता तब भी वह इन्ही समस्याओं को मन में दुहराता रहता। केवल रविवार और दुकान बन्द रहने के दिनों में ही आता तब भी जल्दी चला जाता।

शोभा प्रायः प्रति दिन क्लब आती और देर तक ठहरती क्योकि लक्ष्मीचन्द घर देर से पहुँचता था।

शोभा ने थोड़े समय में ही रामशरण और पुष्पा का परिचय अन्य सदस्यों से करा दिया।

रामशरण ने सभी खेलों में रुचि दिखाई और भाग लेने लगा। पुष्पा में देखने और समझने योग्य ही रुचि थी। केवल टेबुल टैनिस ही वह सीख सकी। उसको ताश के खेल में रुचि कम थी। इस कारण बहुधा वह रामशरण के पूर्व घर लौट आती थी।

रामशरण को टैनिस और बिलियार्ड मार्कर से सीखने पड़ते। पर इसके लिये उसको जल्दी पहुँचना पड़ता जो कठिन था देर होने पर वह खेल नहीं पाता था। नौ सिखुआ होने की यह कठिनाई थी।

रामशरण और पुष्पा ने क्लब में लक्ष्मीचन्द और शोभा और अन्य मित्रों को चाय पार्टी दी। क्लब में भोजन अच्छा था, सब प्रबन्ध रोचक। इसमें सदस्यों से सम्पर्क बढ़ गया।

पुष्पा अभी क्लब की रीतियों और नियमों से अनभिज्ञ थी। इस पार्टी का कार्यभार शोभा ने उठाया।

पार्टी के बाद रामशरण और पुष्पा ने टेबुल टेनिस खेला और फिर रामशरण और शोभा ने बिलियार्ड। रामशरण को अभी इस खेल का अभ्यास न था पर शोभा दक्ष थी। अभी तक वह मार्कर के साथ ही खेला था। उसको पहिली बार सीखने की जगह खेलने का सन्तोष था। साथ ही एक अज्ञात उत्साह की भावना थी।

उसको शोभा के हाथ उँगली और मुख की सभी गति विधियों को ध्यान पूर्वक देखनी पड़ी। इसमें उसको विशेष प्रसन्नता हुई। लाउञ्ज में काफी पीते समय वह बहुत प्रसन्न था।

ब्रिज में रामशरण अभी भूल कर जाता था। इसमें अन्य सदस्य उसको अपना साथी बनाने मे हिचकिचाते थे और उसकी भूल पर उनके मुख की आकृति भी असाधारण हो जाती।

श्यामाचरण और उनकी पत्नी निर्मला में रामशरण और पुष्पा का अच्छा परिचय हो गया था।

श्यामाचरण खँड वन आफिसर था और अनुवग योजना पर लगा हुआ था।

वह जैन कुटुम्ब का था और वन विभाग में प्रवेश तक शाकाहारी था। पर वन में सिनेमा, क्लब आदि कुछ नहीं हैं। बाजार भी दूर ही होते है। वन विभाग मे मन रिझाने का एक ही साधन है आखेट। कुछ समय बाद वह भी शिकार खेलने लगा। उसके बाद माँसाहारी भोजन लेने लगा, वातावरण की विजय।

पति पत्नी होने से श्यामाचरण और निर्मला को साथ खेलना पड़ता था और रामशरण की किसी दूसरे सदस्य के साथ यही समस्या थी।

उस दिन शोभा उसके साथ ब्रिज टेबुल पर गयी और कुछ समय बाद उनको खेलने का अवसर मिला रामशरण पहिली बार पुष्पा की साझेदारी में खेल रहा था।

उसने उस दिन भी गलती की पर उसने शोभा की मुखाकृति में कोई असन्तोष नही देखा वह हारा भी, काफी पर शोभा ने अपनी हार की धनराशि बहुत स्वाभाविकता से दी। अच्छे साथी का उसका पहिला अनुभव था।

देर होने के कारण रिक्शा प्राप्त न था। शोभा उसकी अपनी मोटर में छोड़ कर घर चली गयी।

पुष्पा रामशरण को विशेष प्रमुदित देख कर मुस्कराई और बोली "आज की पार्टी सफल रही"

रामशरण "हाँ, बहुत अच्छी रही"

पुष्पा "मोटर की सवारी भी मुफ्त"

रामशरण "देर होने में कोई रिक्शा न था। मैं पैदल आ रहा था पर शोभा ने मोटर मे पहुँचाने का आग्रह किया"

पुष्पा "मैत्री का आग्रह ठीक किया पर आपने उसे धन्यवाद भी न दिया"

रामशरण "भूल हो गई"

लक्ष्मीचन्द और शोभा ने रामशरण, पुष्पा, और अन्य मित्रों को अल्प भोजन का निमन्त्रण भेजा, रविवार का दिन था रामशरण और पुष्पा समय से कुछ पहिले पहुँच गये।

बैठक के द्वार पर पहुँच कर रामशरण ने देखा लक्ष्मीचन्द सोफा पर बैठा है। है। शोभा कालीन पर बैठी सितार वजा रही है। वह पीछे हटने लगा पर लक्ष्मीचन्द ने देख लिया और उनको बैठक में जाना पड़ा। शोभा ने सितार बजाना वन्द कर दिया।

लक्ष्मीचन्द ने रामशरण से कहा "सब मित्र है झिझक की क्या बात थी" फिर शोभा ने कहा "रुक क्यों गई। परीक्षा में असफल होने में डरती है।"

पुष्पा—"परीक्षा करने की योग्यता हम में नहीं हैं।"

शोभा फिर सितार बजाने लगी वह इसमें निपुण थी, वह कुछ गुन गुनाती भी थी।

पुष्पा ने कहा तुम को गाना भी आता है। अव्य गुनगुनाने में सीमित क्यों रहती हो।

लक्ष्मीचन्द—"समझा सको तो अच्छा है इनका संगीत तो कभी-कभी बाथरूम को ही सुनाया जाता है।"

शोभा—"मुझे तुम लज्जित करना चाहते हो। कँठ स्वर आप जैसा ईश्वर ने नहीं दिय।।"

पुष्पा—"कँठ स्वर तो भिन्न-भिन्न है सभी में अपना-अपना आकर्षण। न संगीत कला कँठस्वर में ही उत्पन्न और अन्त होती है। शतप्रतिशत वोट से निश्चित हुआ कि शोभा जोर से गाये "सब ने ताली पीट दी।"

शोभा कुछ क्षण चुप रही। अपने को संभाला और परीक्षक के सम्मुख विद्यार्थी के भाव से गाना आरम्भ किया। एक छोटा सरल गीत सितार से केवल स्वर ले रही थी।

पुष्पा ने कहा—"तुम पहिली श्रेणी में पास हो गयी हो" अब प्रवीण की तरह अपना पार्ट खेल सकती हो।

शोभा ने सितार उठाया पर अभी आये सज्जन और महिलाओं ने आग्रह किया कि वे इस संगीत माधुर्य से वंचित क्यों किये जायें।

शोभा को देर तक यह पार्ट चलाते रहना पड़ा।

लक्ष्मीचन्द प्रसन्न था। उसने कहा "अच्छी पकड़ी गई। पति से छिपाने सम्बन्धी धारा में चालान करना पड़ेगा।"

पुष्पा—"पहिला कसूर। पति की भी भूल ठीक-ठीक प्रयत्न न करने की। सजा माफ।" सबने हँस कर इसकी पुष्टि की।"

पार्टी में बहुत से सज्जन और महिलायें थीं। पार्टी दुर्गा क्षेत्र में थी। उसके समाप्त होने तक सूर्य के प्रकाश का स्थान चन्द्रिमा ने ले लिया था।

प्रस्ताव किया गया कि सभी महिलायें कुछ गीत गायें चाहे वह प्रातः वन्दना ही हो। लक्ष्मीचन्द का यह प्रस्ताव मताधिक्य से पास हो गया यद्यपि महिलाओं की संख्या सज्जनों के बराबर थी।

एक ओर शोभा थी। दूसरी ओर पुष्पा।

लक्ष्मीचन्द ने शोभा की दिशा में देख कर कहा "तुमने आज ही परीक्षा पास की है तुम ही अभिक्रम करो।"

शोभा ने एक छोटा गीत गाया। अन्य महिलाओं ने भी बारी-बारी गाया, किसी ने सिनेमा के गजल, किसी ने भक्ति संगीत, किसी ने देव वन्दना। पुष्पा की बारी आई।

लक्ष्मीचन्द ने कहा—"इस इकाई के लिए एक घंटे का समय निर्धारित था। अभी 25 मिनिट शेष है अच्छा हुआ एक दक्ष महिला पर यह भार आया।

पुष्पा—"यह सत्य आरम्भ में ज्ञात होता तो मैं "नहीं" का हाथ उठाती भूल हो गई थी।

रामशरण हँसा "भूल का फल प्रसन्नता से वहन करना चाहिये तुम्हारे लिए भार अधिक न होगा"।

पुष्पा संभली और शास्त्रीय राग उसने गाया। तान और आलापों के साथ समय की पूर्ति हो गई। पार्टी पूरी हो गयी। पाहुने अपने-अपने घर गये। रामशरण और पुष्पा घर जाने लगे। लक्ष्मीचन्द ने शोभा से कहा "ड्राइवर से कहो मोटर में पहुँचादे।"

शोभा—"उसके सिर मे दर्द था, छुट्टी लेकर घर गया है।"

लक्ष्मीचन्द—"तुम्हीं छोड़ आओ मैं तो वाटिका में बैठ सिगार पीता हूँ।"

शोभा ने रामशरण और पुष्पा को घर पहुँचाया। मोटर से उतरते समय पुष्पा ने कहा "तुम से भूल ही गयी अपने जन्म दिवस की सूचना न देकर एक उपहार खोया।"

शोभा ने पुष्पा के दोनों हाथ कस कर पकड़े और कहा "कोई भूल नही हुई। तुमसे मुझे सर्वोत्तम उपहार मिला है।"

रामशरण ने सब से अधिक उन्नति टैनिस में की। उससे कम ब्रिज मे। सब से कम बिलियार्ड में।

पुष्पा ने टेबुल टेनिस मे अच्छी उन्नति की पर टेनिस बिलियार्ड और ब्रिज में समझने योग्य ही।

रामशरण क्लब देर से पहुँचा मार्कर के साथ खेलने का समय बीत चुका था। पर शोभा टेनिस कोर्ट पर थी। वह भी बैठ गया। शोभा के खेलने की बारी आई उसने रामशरण को सकेत किया। उसको आश्चर्य हुआ। अभी तक उसने मार्कर के सग ही खेला था।

वह दो गेम एक सैट में जीत गया। उसको शोभा के साथ खेलने में बहुत प्रसन्नता हुई। वह नौसिखा था। इससे दूसरे खेलने वाले उसके साथ खेलना पसन्द न करते थे।

घर पहुँचने पर पुष्पा ने कहा "आज तो आप प्रसन्न है।

रामशरण—"आज टैनिस अच्छा खेलने को मिला।"

पुष्पा—"शोभा के साथ खेला" मार्कर के साथ खेलने में इतने प्रसन्न न होते।

रामशरण—"हाँ मैंने दो गेम भी जीते।"

पुष्पा हँसी—"अर्थात् तुम को दो गेम उसने जीतने दिये। वह बहुत दक्ष है उससे रोज खेलने के लिये कहो।"

रामशरण—"मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

पुष्पा—"मैं कह दूं।"

रामशरण—"इससे मेरी मान हानि होगी।"

पुष्पा—"अच्छा उसी पर छोड़ो।"

रामशरण का जन्म दिवस आया। पुष्पा को निमन्त्रण भेजने में देर हो गई थी लक्ष्मीचन्द और शोभा का निमन्त्रण आ गया। गंगा विहार वजरे मे और भोजन का। पुष्पा बहुत अप्रसन्न थी। यह देख कर शोभा पुष्पा के साथ क्लब से लौट आयी।

पुष्पा—"आप के निमन्त्रण में मुझे आपत्ति है। यह तो इनका जन्म दिवस है और मैं इसी दिन पार्टी देने वाली हूँ।"

शोभा—"एक दिन मे दो पार्टी हो सकती है। भोजन मेरा ? आवश्र और लञ्च तुम्हा।

पुष्पा चुप रही अधिक जिद न कर सकी। नौकर कॉफी और पकौडे रख गया।

शोभा पुष्पा के पास सोफे में वैठ गई काफी के वाद उसने फिर प्रसंग छेड़ा "मुझे पता होता तो इस दिन यह ? आवघ न करती। मैंने सब प्रवन्घ कर लिया तुमने अभी निमन्त्रण नहीं भेजे।" उसने पुष्पा का हाथ अपने हाथों में लिया और कहा "तुमने बहुत कुछ सहन किया है। इस बार भी मेरा आग्रह मानना पड़ेगा।"

न इच्छा रहते भी पुष्पा ने "हाँ" कह दिया। शोभा ने लञ्च का क्लब में प्रवन्ध करने में सहायता की प्रतिज्ञा की।

वह दिन आया। लञ्च समारोह पूरी तरह सम्पन्न हुआ। अतिथि अपने-अपने घर गये, रामशरण और पुष्पा प्रसन्न मन अपने घर लौट आये।

रात्रि की पार्टी निजी एकान्तिक पार्टी थी। उसमें भाग लेने वाले लक्ष्मीचन्द, शोभा, रामशरण और पुष्पा थे। उसकी पृष्ठ भूमि चाँद का प्रकाश, गँगा पर घाटों के ऊपर विशाल गगन और मँदिर और जल की बीच घारा पर एक वड़ा नजरा।

छोटी नाव ने उनको वजरे में पहुँचा दिया। वहाँ अच्छे भोजन का प्रवन्ध था। सब प्रसन्नभाव दशा में थे। भोजन हो गया।

रामशरण ने कहा "संगीत का समय आया सुवर्ण में सुगन्ध।"

पुष्पा ने हँस कर कहा "शोभा की पार्टी आज तो वही बजाएगी और वही गायेगी।"

शोभा—"आरम्भ मैं करूंगी पर पुष्पा इस कला की प्रवीण है। वह कैसे भाग निकल सकती है सब साथ ही हँसने लगे बाजे आ गये। शोभा ने सितार वजाया रात्रि की नीरवता में उसने जादू का काम किया। रामशरण और पुष्पा ने ताली में प्रशंसा की और लक्ष्मीचन्द ने उसकी पीठ ठोकी "ऐसा अवसर कम मिलता है" शोभा ने धीरे से कहा "तुम को कुछ तो स्थिति का विचार होना चाहिये।"

शोभा—"अब आयी पुष्पा की वारी।"

पुष्पा—"अभी नहीं। तुम्हारे वाद।"

शोभा को वाध्य होकर एक गीत भी गाना पड़ा। सभी की प्रशंसा मिली।

वातावरण उल्लास का था। पुष्पा प्रसन्न थी उसने वहुत उत्साह से अनेक गीत गाये। सभी आनन्द विभोर हो गये। रात्रि की निरवता चाँद का प्रकाश, गंगा जल पर वजरा, घाट और आकाश चुँवी मंदिर, मकान और मस्जिदें, जन्म दिवस की पार्टी और शोभा और पुष्पा के सँगीत।

अर्ध रात्रि वीत चुकी थी। लौटने की याद आई।

वजरा घाट तक नहीं जाता। कुछ दूरी पर रूक गया, सवको एक छोटी नाव पर आना पड़ा। पहिले शोभा उतरी। फिर रामशरण ने पैर रखने में भूल की और पहुँचा सीवा गँगा जल में।

पुष्पा—चीख मार कर वैठ गई। लक्ष्मीचन्द वहुत चिल्लाने लगे पर उद्देय हीन। पता नही उन्होने क्या कहा और किससे। मल्लाह चुप अपना अवसर देख रहे थे।

शोभा ने मल्लाहों को आदेश दिया "कूदो, वहुत अच्छा उपहार मिलेगा" स्वयम् ध्यान में जल की ओर देखने लगी। जैसे ही रामशरण का सिर दिखाई दिया उसने अपनी आधी साड़ी उस पर फेंकी और चिल्लाई "पकडो"

रामशरण ने दोनों हाथों से उसको कस कर पकड़ा जैसे वह जीवन रक्षक यन्त्र हो, भार पड़ते ही शोभा वैठ गई और उसको खीचा, नाव के पास आते ही रामशरण के दोनों हाथ पकड़े और उसने नाव पर दोनों हाथ रक्खे। उसने फिर भूल की। घवड़ाहट मे उछल कर ऊपर आने का असफल प्रयत्न किया। उसका सिर शोभा के वक्षस्थल पर टकराया और वह पानी में गिरा, पर हाथ नाव पर थे शोभा ने अपने को सँभाल लिया पर उसका ब्लाउज भीग गया। उसने कहा "घवड़ाओ नहीं अभी सब प्रवन्ध हो जायेगा।"

लक्ष्मीचन्द और पुष्पा पहुँच गये। माँझी भी पास आ गये। सबने नीचे और ऊपर से सहारा देकर रामशरण को धीरे-धीरे नाव पर ले लिया।

कपड़ों के अभाव में रामशरण दो बड़े तौलियों की शरण में बैठ गया। एक को पहिना एक को ओढ़ा।

शोभा ने भी एक बड़ी तौलिया ओढ़ी। सँकट कटा। उसको अपनी स्थिति का ध्यान आया और उसने लजा कर सिर नीचा कर लिया।

लक्ष्मीचन्द हँसा "अच्छा हुआ पर आधी" भीगी और एक ही तौलिया की शरण लेनी पड़ी पुष्पा "यह न कहो उसको दुःख होगा।"

लक्ष्मीचन्द—"पुष्पा जी आप शोभा को अपना जैसा सीधा न समझें। मुझे हँसने का अवसर कम मिलता है।

पुष्पा—उनकी तत्परता और धैर्य ने महान् सँकट से रक्षा की है।"

लज्जा ग्रस्त स्थित में शोभा का सौन्दर्य चमक उठा था। उसने मुख या आँखे ऊपर की। लक्ष्मीचन्द को चुप करने को यह यथेष्ट प्रयास था।

रामशरण का मन सँभ्रान्त था। मृत्यु भय से उत्पन्न घबड़ाहट अभी बढ़ सी रही थी पर वह एक दो बार शोभा की शोभा को देखने से अपने को वञ्चित न कर सका। स्थिति की गम्भीरता में इस ओर किसी का ध्यान न गया।

दोनों ओर से सहारा देकर रामशरण को घाट पर उतारा और मोटर में बिठा दिया गया।

लक्ष्मीचन्द ने शोभा को घर छोड़ा और रामशरण और पुष्पा को उनके घर उतार दिया। लक्ष्मीचन्द और पुष्पा ने उसको शयनागार में खाट पर लिटा दिया।

लक्ष्मीचन्द—"अब कोई भय नहीं है विश्राम की आवश्यकता है। एक बजा है प्रातःकाल डाक्टर को परीक्षा के लिए आमन्त्रित करना। कोई भी कठिनाई हो तो झिझक छोड़ मुझे सूचना देना—दिन हो या रात।"

पुष्पा ने हाथ उठा कर वन्दना की और वह चला गया।

जब तक लक्ष्मीचन्द लौटा शोभा कपड़े बदल बैठक में बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी कुछ रूठी हुई स्वाभाविक या कृत्रिम।

लक्ष्मीचन्द के पहुँचते ही उसने कहा "व ह भी कोई हँसने का अवसर था।"

लक्ष्मीचन्द—"जीवन में हँसी दोष नहीं है कठिन स्थिति में भी लाभ कर हो सकती है।"

शोभा—"मेरी स्थिति का विचार न किया।"

लक्ष्मीचन्द—"शोभा, अति शोभा, अधिकतम शोभा।"

शोभा—"बस यही कहना है।"

लक्ष्मीचन्द—"कुछ कह रहा था। तुम्हारे नाम में उलझ गया।"

शोभा—"आपका बचपन न जायगा।"

लक्ष्मीचन्द—शोभा के पास आकर खड़ा हो गया और कहा "हे गम्भीरता और प्रौढ़ता के देवता—नहीं देवी जी—मैं संसार को समक्ष रख कर यह घोषणा करता हूँ कि शोभा ने आज प्रशंसा का काम किया, एक डूबते हुए मनुष्य को बचाया जो हमारा मित्र भी था। शोभा रानी को मन माँगा पुरस्कार।"

शोभा—"मिल गया पुरस्कार। बन्द करो यह लैक्चर बाजी प्रातःकाल ही दुकान की तैयारी समय कब मिलता है" उसने कहा तो मुँह पर कृत्रिम रोष विलीन हो चुका था और प्रयत्न के विरुद्ध उसका मुख मन्द हास से शोभित होने लगा था।

जब लक्ष्मीचन्द ने उसका हाथ पकड़ा वह अनायास ही उठ गई। लक्ष्मीचन्द ने उसको अपनी ओर खेंचते हुए कहा "तुम्हारा उलाहना ठीक है पर क्या कहा जाय जीवन सँघर्ष, जीवन क्रीड़ा या जीवन द्यूत।"

रामशरण कपड़े बदल पलँग पर लेट गया। उसका सिर अभी गीला था पुष्पा ने तौलिया ला बालों को पोछा।

पलँग पर बैठ कर उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और उसने बाल दोनों हाथों मे संभालने लगी। नाड़ी देखी, वह बहुत जोर से दौड़ रही थी।

भँयकर घटना का भूत अभी पुष्पा के मस्तिष्क से गया न था। सभी कुछ धुँधियाला दीख रहा था। न उसको पूरा विश्वास था कि आपत्ति बीत गई थी। रामशरण प्रात.काल और डाक्टर ......

रामशरण को निद्रित जान पुष्पा ने उसका सिर धीरे से तकिये पर रक्खा और दूसरे पलग पर जा लेटी। पर उसका दिल भी उसी तरह कूद रहा था जैसे रामशरण का। ठीक–ठीक कुछ भी सोचते का मस्तिष्क में बल न था। कुछ देर करवट बदलती रही। बीच–बीच मे रामशरण को देखती रही। निद्रा आई तो भयानक स्वप्न भी साथ ले आई। देखा, नाव में महा सागर में जा रहे है तूफान आया। नाव उलट गई। वह गोते खा रही है रामशरण को ढूँढ नहीं पा रही है। इतने में आँख खुल गई। रामशरण के पास गई और देखती रही। हाँ नाड़ी पहले से बेहतर है। फिर अपने पलँग पर आकर लेट गई देर तक असंयम विचार धारा बोलते रहे। पता नहीं कब निद्रा देवी ने कृपा कर अपने गोद मे ले शान्ति दी।

आँख खोलने पर देखा धूप निकल आई है। घबड़ा कर उठी और डाक्टर के लिये पत्र लिखा नौकर ने कहा चाय के बाद जाना ठीक होगा, पर उसने चाय का भार स्वम् ले उसको डाक्टर के घर भेज दिया।

रामशरण की आँख खुली तो पुष्पा पास बैठी थी और चाय तैयार थी। चाय के बाद उसने रामशरण को तैयार होने के लिए कहा। डाक्टर आता ही होगा।

रामशरण—"डाक्टर की क्या आवश्यकता थी ?

पुष्पा—"तुमको क्या पता ? हाथ मुँह धोकर तैयार हो जाओ।"

डाक्टर ने परीक्षा की और कहा कि "शौक" है। अब भय नहीं। पर आज काम पर न जाना चाहिये" अपनी ख्याति के अनुरूप अनेक दवायें लिख गया—सब एक स्वकृत और मूल्यवान। बहुत से अनुदेश पुष्पा को दे गया कि रोगी की देख भाल किस तरह होती है जाते समय फीस जेब में रख कर कहा "तुम तो शिक्षित महिला हो मेरे आदेश समझ ही गई होगी। आवश्यकता हो तो सूचना देना मैं तुरन्त उपस्थित हो जाऊँगा।"

पुष्पा समझी तो कम थी पर कहा "हाँ धन्यवाद"

डाक्टर, डाक्टर की फीस, दवा का मूल्य, कर्त्तव्य पूरा करने का सन्तोष पुष्पा का मन हलका हुआ यही क्या आपत्ति की स्थिति में कम लाभ है ?

चाय के समय शोभा आई। पुष्पा ने कहा "पहिले से तबियत सुधरी है। पर दिन में शिकायत थी खाली बैठे क्या करें।"

शोभा—"रोगी की मानसिक अवस्था की देख भाल करने वाली के लिये समस्या है। पर कल तक ठीक हो जाना चाहिए।"

चाय सबने शयनागार में ही पी। पुष्पा कमर सीधी करने के लिए बाग में टहलने लगी। लौटने पर देखा रामशरण का हाथ शोभा के हाथों मे है और आँखे बन्द। वह बाहर चली गई। कुछ ही देर बाद शोभा उसके पास पहुँची। उसने कहा रामशरण निद्रा में है। इससे लाभ होगा। मैं जा रही हूँ।"

पुष्पा कुछ कहना चाहती थी पर कुछ कह न सकी। उसके मुँह से केवल हलका सा "धन्यवाद" निकला।

शोभा ने सुना। उसने दोनों हाथों से उसका मुँह पकड़ा और कहा "धन्यवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। जो कुछ मैंने किया वह छोटी बात हे साधारण कर्तव्य।

दूसरे दिन रामशरण लगभग ठीक था पर पुष्पा ने काम पर न जाने दिया।

अपरान्ह मे शोभा आई पुष्पा ने कहा- "स्वास्थ्य तो अब प्रायः ठीक है पर मैंने काम पर जाने से रोक दिया था। दिन भर यही आपत्ति का कारण बन गया। शिकायत "क्या करूं।"

शोभा हँसी "तुम त सँगीत में प्रवीण हो। समय काटने का वह अच्छा उपाय।"

पुष्पा—"हाँ पर गाने वाले और सुनने वाले दोनों की प्रेरणा हो तब।"

शोभा—"चलो, आज क्लब चलो।

ष्पा—"मैं तो बहुत थकी हूँ।"

रामशरण—"मुझे क्या अकेला जाना पड़ेगा।"

ष्पा—"नही शोभा का साथ ।"

रामशरण—मोटर मे बैठा और कहा "मैं शीघ्र लौट आऊंगा।"

पुष्पा का मुख मंदहास से शोभित हुआ और वह शोभा से छिपा न रहा।

क्लब पहुँच कर शोभा ने कहा "आज टैनिस खेलना तो ठीक न होगा।"

रामशरण—"थोड़ी देर वहाँ मैं बैठ कर खेल देखता रहूँगा।"

शोभा—"मैं उस समय लाउन्ज कमरे में रहूँगी ब्रिज भी न खेलना। देर हो जायेगी।"

जब रामशरण टेनिस कोर्ट से लौटा, शोभा लाउन्ज रूम में थी। वह भी वहाँ बैठ गया।

शोभा—"आज दिन कैसा बीता?"

रामशरण—"कुछ समय समाचार पत्र पढ़े कुछ समय . किताबें। ऊब गया तब रेडियो चालू किया। वह भी व्यर्थ, ज्ञात हुआ इस देश में न संगीतज्ञ है न अच्छा कण्ठ स्वर।"

शोभा हँसी "तुम्हारे घर में संगीतज्ञ है और कण्ठ स्वर भी, तुम्हारी शिकायत झूठ थी।"

रामशरण—उससे तो झड़प ही होती रही। पता नहीं क्यों।"

शोभा—"तुम भूल गये उस पर दो दिन से शरीरिक व मानसिक भार अधिक है।"

रामशरण—"मुझे तो अपने अस्वस्थ होने का ही ध्यान था।"

शोभा—"मनुष्य का केवल अपना ध्यान करना यही समस्या है। अब क्या करना सोचा है।

रामशरण—"कुछ नहीं सोचा है।"

शोभा—"चलो घर छोड़ आऊँ।"

बैठक में पुष्पा बैठी थी। शोभा ने कहा "अब तुम्हारे घर में कोई रोग नहीं है उसको विदाई दे दो।"

पुष्पा—"मैं मैं।"

शोभा—"शयनागार में जाकर दवा की शीशियाँ इत्यादि हटा दो, चादर. गिलाफ बदल कर कमरे को प्रकाशित कर दो।"

पुष्पा ने वैसा ही किया और पूछा "अब"

शोभा—"अब हम तीनों बाग में पुष्प चयन करेंगे और शयनागार और बैठक को गुलदस्तों से सजायेंगे।"

सब बाहर गये और फूल चुन लाये। थोड़ी ही देर मे यह सजावट भी पूरी हो गयी।

शोभा ने एक गुलाब रामशरण को दिया उसने अपने कोट में लगा लिया। फिर शोभा ने पुष्पा का जूड़ा फूलों से सजा दिया। पुष्पा ने इनकार करने पर भी शोभा के जूड़े में फूल सजा दिये।

उदासी का वातावरण सचमुच विदा हो गया। अँधकार गया, चांदनी आई।

पुष्पा मुस्कराई और शोभा की ओर देखा।

शोभा—"अभी तुम्हे छुट्टी नहीं मिली है अपना तम्बूरा ले आओ।"

पुष्पा ने तम्बूरा लाकर रख दिया।

शोभा हँसी "रखने के लिये नहीं मंगाया है। आरम्भ करो।"

पुष्पा—"मैं बाजा बजाना भूल गई हूं।"

शोभा—"विद्या दान से बढ़ती है मुझे सिखाने का प्रयत्न करो स्मृति लौट आयेगी।"

पुष्पा—"मैं इस योग्य नहीं हूँ।"

शोभा ने तम्बूरे पर स्वर देना आरम्भ किया यह तो पुष्पा का प्रिय गीत है।

"कौन-कौन गुण गाऊं तिहारे।"

कुछ क्षण मे वह संगीत में तल्लीन हो गई।

शोभा ने धीरे से रामशरण से कहा "तुम्हारी रेडियो वाली शिकायत "गयी"

उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

रामशरण—"भोजन करके जाना।"

शोभा—"भोजन तो उनके साथ ही करती हूँ"

उसने मन ही मन कहा "मेरे भोजन ने ही गड़बड़ की। उसको भूलना ही ठीक है।"

शोभा ने रामशरण और पुष्पा की ओर देखा अपना प्रयत्न सफल जान कर कहा "मैं जा रही हूँ। उठना नहीं" वह तीव्रता से उठ कर चली गयी।

रामशरण और पुष्पा ने एक दूसरे को सामने बैठा पाया।

रामशरण—"उदासी के वातावरण के भागने से सचमुच मुझे भूख लग आई है"

पुष्पा—हँसती हुई उठी "चलिये आपका भोजन तैयार है।"

रामशरण पंद्रह दिन के लिये दौरे पर गया। पुष्पा भी साथ गयी।

स्थानान्तरण से मानसिक परिवर्तन भी हुआ। सभी स्थानों में कुछ न कुछ नवीन दृश्य, किले, मंदिर इत्यादि देखने को मिले। रामनगर से ही गंगा और वाराणसी के घाटों का अनुपम दृश्य था। महाराजा के महल में प्राचीन हथियार और मूर्तियां दर्शनीय थी। छोटा सा नगर पर अनेक सुन्दर मंदिर और पुरातन मूर्तियाँ और सुन्दर सुसज्जित वाटिकायें, मिर्जापुर में सीमेण्ट का कारखाना और नवीन नगरी। हाँडा प्रपात जो वर्षा काल न होने पर भी, एक मनोहर दृश्य था। यहाँ बैठकर तीन घंटे शान्ति से बीते। अनुपम प्राकृतिक दृश्य और पुष्पा चाय का प्रबन्ध और उसका मुक्त हृदय संगीत।

दो दिन रिहांड़ बांध के डाक बंगले में बीते दौरे का यही सर्वोत्तम भाग था।

नैनीताल से यह मनुष्य सृजित सरोवर सौगुणा बड़ा था। अपने विस्तार से ही प्रभावकारी। यद्यपि नैनीताल की ऊँची चोटियाँ और हरियाली नहीं थी यह सरोवर अपना विशेष सौन्दर्य रखता है और उसमे नौका विहार बहुत रमणीक रहा। वहां नैनीताल नौका विहार की बहुत स्मृति आयी।

जीवन मे सभी बातों का अन्त हो जाता है—सुख का या दुःख का।

रामशरण का दौरा भी समाप्त हुआ।

पुष्पा के लिये वही वाराणसी और वही समस्या। वही दिन वही रात।

रामशरण अभी कार्यालय से लौटा नहीं था। शोभा घर पहुँची।

थोड़ी देर बाद रामशरण लौटा। चाय सबने साथ ली।

रामशरण पुष्पा से "बहुत दिन हो गये तैयार हो जाओ क्लब के लिये।"

पुष्पा—"मैं बहुत थकी हूँ। आराम करूँगी तुम जाओ।"

रामशरण—"अकेले"

पुष्पा मुस्कराई "अकेले नहीं हो।"

रामशरण—पंद्रह दिन के बाद क्लब जा रहा था। शोभा भी साथ थी। वह प्रसन्न था।

टेनिस कोर्ट भी खाली मिला और एक सैट उसने शोभा के साथ खेला।

उसके बाद ब्रिज। घर देर से लौटा। क्लब का साधारण जीवन–टेनिस, बिलियार्ड, और ब्रिज और देर से घर लौटना।

पुष्पा—शीघ्र ही लौट आती थी। वह टैनिस टेबिल को छोड़ और खेलों में भाग लेती थी।

रामशरण को लौटने में अधिक देर होने लगी। पुष्पा नौकर को दस बजे रात छुट्टी दे देती और स्वयम् शेष काम करती थी। रामशरण लौट कर देखा दस बज गये है और पुष्पा कोच पर बैठे–बैठे निद्रा या तन्द्रा में है। भोजन करते समय उसने कहा "मैने तुमको अनेक बार आदेश दिया है कि देर होने पर मेरी प्रतीक्षा न करो और भोजन कर विश्राम किया करो।"

पुष्पा—"मैं तो कोई शिकायत नही कर रही हूँ।"

रामशरण—"मुझे आपत्ति है मुझे बुरा लगता है।"

पुष्पा—उपाय सोचो, नही तो मेरे लिये दण्ड निश्चित कर सकते हो।"

रामशरण—"मैं गाँधीजी के इस अहिंसात्मक विरोध से तंग हूँ।"

पुष्पा ने कोई उत्तर न दिया।

अनेक रात्रि यही स्थिति दुहराती रही और यही प्रश्न और उत्तर। रामशरण अपने प्रोग्राम मे अन्तर न कर पाया और उससे उसकी अप्रसन्नता बढ़ती गयी।

एक बार उसको अधिक आक्रोश था, भोजन न किया और जाकर लेट गया। ष्पा ने कहा "आकर भोजन कर लो। कल से खा लूंगी।"

विश्राम के लिये सोफा पर ही लेट जाऊंगी और उसका हाथ पकड़ भोजनालय में ले गई, पुष्पा ने रात्रि का भोजन करना छोड़ दिया पर रामशरण को अपनी जीत पर सन्तोष हुआ। आई० ए० एस० आफिसर अपने घर में नियन्त्रण रख सका।

पुष्पा टेनिस कोर्ट से लौट कर लाउन्ज कमरे में लौट आई। रामशरण और शोभा खेल रहे थे। वहाँ उसको निर्मला मिली। उसने उसको पास बिठा लिया। कुछ वार्ता के बाद निर्मला ने कहा "मुझे कोई सन्देह नहीं है पर जनश्रुति को ध्यान में रख कर रामशरण को सावधान रहना चाहिये। क्लब जीवन सार्वजनिक जीवन है। तुमको भी कुछ प्रयत्न करना चाहिये।

पुष्पा—"हाँ! यथा सम्भव कर्तव्य निभाऊँगी।"

निर्मला—"शोभा से सेरा घनिष्ट परिचय नहीं है पर विचार करूँगी लड़की तो समझदार है।"

भोजन के बाद रामशरण को प्रसन्न जान पुष्पा ने कहा "अब आप अपनी प्रतियोगता के क्षेत्र का विस्तार कर सकते है।"

रामशरण—"समझा नहीं।"

पुष्पा—"अब आपने टैनिस और ब्रिज में यथेष्ट उन्नति कर ली है अन्य सदस्यों के साथ भी सफल हो सकोगे। बिलियार्ड मे उन्नति नहीं हुई और न होगी। इसलिये दूसरों के सँग खेल सकते हो।

रामशरण—"बिलियार्ड में उन्नति क्यों न होगी।"

पुष्पा—"बिलियार्ड खेलने में आप शोभा की उँगलियो और मुख को मैत्री भाव से देखते रहते हो, यह रुकावट है प्रगति में।"

रामशरण—"तुम बहुत दुष्ट हो। मेरा निरीक्षण करने में बहुत बुद्धिमती और चतुर हो।"

पुष्पा—"न मैं बुद्धिमती हूँ न चतुर हूँ। अपने पति के विषय में प्रत्येक स्त्री को अन्तर्ज्ञान होता है दुष्टता की उपाधि अनेक वार मिल चुकी है।"

रामशरण के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने पुष्पा को जोर से चपत लगाया। वह चुप रही। दूसरा चपत और तीसरा। आँखों मे आँसू आ गये पर वह चुप रही।

रामशरण खीज कर अपने पँलग पर जा लेटा और सो गया।

पुष्पा सोफे पर ही बैठी रही सोचने की शक्ति न थी। कुछ देर बाद जाकर सो गयी।

रूका बाँध टूटा और उसका दुःख अश्रु रूप में बह निकला। करवटें बदलती रही। उसको पता नहीं कब निद्रादेवी ने अपना वरद हाथ उस पर रक्खा।

प्रातःकाल रामशरण उठा और पुष्पा को अस्तव्यस्थ हाल में सोया पाया। वह सदा पहिले उठ कर कार्यरत रहती थी। उसने तकियों को भी भीगा देखा। पर रात्रि के युद्ध का ?…………उसके मानस मन्दिर में छाया हुआ था। उसने पुष्पा से कुछ नहीं कहा पहिले या उठने के बाद।

ब्रेक फास्ट पर दोनों चुप थे।

तार वाला तार दे गया।

"माँ बहुत बीमार पुष्पा को भेज दो।"

रामशरण—"जाओगी।"

पुष्पा—"हाँ।"

रामशरण—"कब।"

पुष्पा—"आज शाम।"

रामशरण—"अच्छा।"

रामशरण अभी कार्यालय से नहीं आया था शोभा आ पहुँची। पता लगा पुष्पा माँ के रोग के कारण जा रही है।

शोभा ने कहा "शीघ्र लौटना। रामशरण को अकेला रहने में दुःख होगा।"

पुष्पा के नेत्र भर आये पर चुप रही। शोभा समझ गई और कहा।

"मैने अनाधिकार बात कही। मुझे सन्देह नही है वे इसी प्रकार लिखेंगे।"

पुष्पा चुप रही।

रामशरण आ पहुँचा। शोभा ने यों ही कहा "पुष्पा के जाने के कारण अभी से इतने उदास हो।"

रामशरण—"मैं तो कुछ भी हूँ। पर उसको देखो।"

शोभा—"वाक्‌युद्ध हो गया था ?"

रामशरण—"तुम्हारे बीच नहीं होता।"

शोभा—"होता है, खूब होता है पर दोनों ओर मन दृढ़ है। कुछ टिकता नहीं कोई तीर अन्दर नहीं जा पाता, कह सकते हो गेंड़े की खाल है।"

रामशरण—"क्रोध में कुछ कह दिया होगा पंद्रह घंटे का दुःख। इसे समझाओ।"

शोभा—"कैसे ? अपना–अपना स्वभाव है उसका स्वभाव कोमल है—नाम को चरितार्थ करता है फिर तुमने ट्रैनिंग भी वैसी नहीं दी। अन्त में यदि क्रोध में कुछ कहा या किया तो गलत ही होगा वह गलती स्वीकार करनी चाहिए।"

रामशरण—"पक्की वकील हो अच्छा मुझे खेद है।"

शोभा—"मुझ से क्यों ? उससे कहना चाहिये अच्छा तुम्हारा खेद पता बदल पुष्पा रानी के पास पहुँचा देती हूँ।"

पुष्पा अपनी मुस्कराहट न रोक सकी और उसका मन हलका हुआ, पर प्रत्यक्ष मे उसने कहा "इसकी आवश्यकता न थी।"

शोभा—"स्टेशन कैसे जाओगी।"

पुष्पा—"रिक्शा मँगा कर चली जाउँगी।"

शोभा—"अकेले।"

पुष्पा—"डर क्या है ?',

शोभा—"गृह युद्ध होने पर भी अपना अधिकार न छोड़ो, कह सकती हो "चलो स्टेशन पर छोड़ कर आओ।"

पुष्पा को कुछ हँसी आई और वातावरण सँभला" प्रस्थान का समय आया।

रेल की सीटी बोली। रामशरण प्लेटफार्म पर उतरा। शोभा ने पुष्पा के कान में पूछा। "मुझ से कुछ कहना।"

पुष्पा के मुँह से निकला "सावधान रहना" "अच्छा" कह कर वह भी नीचे उतर आई।

सदा की तरह रामशरण क्लब जाता पर शोभा उसको ले जाने कम आती थी, उसको शिकायत भी न हो सकती थी। कभी-कभी रात को छोड़ने आती, शीलबद्ध वह कहता "मुझे गेट पर छोड़ दो। वह गेट पर छोड़ कर चली जाती।"

वह क्लब पहुँचा। शोभा नहीं थी। श्यामाचरण ने कहा "चलो टेनिस खेलें। मुझे आपके समान तो नहीं आता।"

उसको स्वीकार करना पड़ा।

आधे खेल में शोभा पहुँची और देखने लगी उस समय तीन-तीन था। शोभा के आने पर उसका खेल उन्नत हो गया और उसकी जीत हुई 6/4 श्यामाचरण ने उससे हाथ मिलाया और बधाई दी। शोभा ने भी बधाई दी और कहा "श्यामाचरण के साथ खेलने से तुम्हारी दक्षता शीघ्र बढेगी।"

रामशरण को प्रसन्नता न हुई।

रामशरण देर से पहुँचा। शोभा को उसने श्यामाचरण के साथ खेलते देखा शोभा की जीत हुई 6/4 श्यामाचरण ने उसको बधाई दी पर रामशरण कुछ न कह सका।

उसमें ब्रिज टेबुल पर भी श्यामाचरण के मित्र विनयकुमार और उसकी स्त्री कान्ता बैठने लगे। नियमानुसार कार्ड वांटने से निश्चय किया कौन-कौन खेलेगा और कौन-कौन साथी होंगे। श्यामाचरण और निर्मला एक साथ न खेलते फल हुआ रामशरण को शोभा का साथी वनने का अवसर वहुत कम मिलता। नियम रूपी विवशता।

विलियार्ड में भी बहुधा श्यामाचरण या विनय कुमार के साथ खेलना पड़ता। शोभा ने देख कर एक दिन कहा "अब तुम विलियार्ड में उन्नति अच्छी कर रहे हो। मैं तुम्हारी सहायता न कर सकी।"

रामशरण चुप रहा पर उसका मन इस प्रशंसा से प्रसन्न न हुआ।

अनेक दिन बीत गये, प्रायः इसी प्रकार घटना चक्र चलता। रामशरण के लिये क्लब का वातावरण नया संसार बन गया।

क्यों ? उसकी समझ में न आया।

शोभा के वचन या व्यवहार में अन्तर न था। वह सदा की भाँति मिलती और बात करती वह सदा की तरह प्रसन्न मुख थी और उसके वार्तालाप में उसे सुख था।

साजिस

क्या यह प्रपञ्च था ? किसका ? किससे पूछे ?

आज क्लब में रामशरण और शोभा नहीं थे। श्यामाचरण और निर्मला लाउञ्ज कमरें में बैठे थे।

निर्मला हँस कर "आज तुमको मेल न मिला न रामशरण और न शोभा।"

श्यामाचरण—"कोई खेद नहीं है। मेल में थोड़ी प्रसन्नता होती है पर आपके आदेश का अनुकरण करने में अधिक"

निर्मला बहुत हँसी और कहा "धन्यवाद क्या करती। शोभा बहुत अच्छी लडकी है और रामशरण भी सरल अच्छा युवक। दोनों में अनुभव कम और स्वाभाविक स्नेह भाव मे पड़ अपनी स्थिति खराब कर रहे थे। चारों पति पत्नी हमारे मित्र है और उनकी सहायता करना आवश्यक था। जन दृष्टि में उनको कुछ अलग करने में किसे षड़यन्त्र करना पड़ा—योजना ठीक चल रही है। रामशरण से तो न कह सकी पर शोभा से अपरोक्ष रूप में मैंने कुछ कहा है। समझती हूँ उसने ठीक अर्थ निकाला।"

श्यामाचरण—"क्या तुम दूसरों के जीवन में हस्तक्षेप नही कर रही हो।"

निर्मला—"इसका न्यायोचित हेतु, उनके लिये मेरा स्नेह भाव है।"

श्यामाचरण—"यह ....कब तक चलेगा।"

निर्मला—"जब तक आवश्यकता रहेगी क्या तुमको अधिक कष्ट हो रहा है"

श्यामाचरण—"नहीं" वह हँसने लगा "शोभा से तुमने कब और कैसे कहा"

निर्मला—"उस दिन हमने लक्ष्मीचन्द और शोभा को लञ्च के लिये निमन्त्रित किया था। तुम और लक्ष्मीचन्द चले गये थे। मैं और शोभा रह गये थे।

हम शाम तक साथ रहे मैंने वहाँ मासिक पत्रिका रख दी थी जिसमें वह कहानी थी और पृष्ठ पर एक बड़ी झंडी लगा दी थी। किसी काम से मैं अन्दर गयी वह उसको पढ़ने लगी, मैं जान-बूझ कर कुछ समय तक न आई। आकर भी मैंने

उससे कोई प्रश्न न किया। पर उसने स्वयम् पूछा "क्या तुमने यह लेख पढ़ा है" मैंने कहा "हाँ"

लेख

सदानन्द और सदाशिव घनिष्ठ मित्र थे दोनों विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। बी० एस० सी० पास की और वन विभाग की उच्चतर सेवा में, प्रतियोगिता परीक्षा के द्वार से, नियुक्त हो गये। दोनों एक ही भाग में काम करते थे और बहुधा मिलते-जुलते रहते थे। सदाशिव का विवाह मधुबाला से हुआ। समय बीतने पर सदानन्द का परिचय मधुबाला से हुआ और धीरे-धीरे वह बढ़ता गया। परिचय से मैत्री और मैत्री से स्नेह भाव उत्पन्न हुआ। सदानन्द यथा सम्भव सदाशिव के पास आता और अपनी छुट्टियाँ वहाँ ही काटता।

प्रणय बन्धन बलवान होने लगे और शरीर स्तर पर भावुकता ने अपनी क्रीडा आरम्भ की। उससे दोनों सदानन्द और मधुबाला प्रभावित हुए और समस्याओं का विकास होने लगा।

मधुबाला धर्मनिष्ठ थी। उसके लिये समस्यायें और उसके विरूद्ध आपतियाँ साथ-साथ दृष्टिगोचर हुई। बहुत दिन और बहुत निद्रा रहित रात्रियों में वह विचार ग्रस्त रही "समाधान क्या है ?" एक मार्ग भावुक मन भावों का पुजारी बनना—इसमें धर्म संकट है। दूसरा मार्ग—पीठ-मोड़, सब छोड़ सब कुछ नदी में बहा आना भलाई बुराई साथ-साथ।

पर मैले पानी के साथ बच्चा भी बह जायेगा अन्य कोई समाधान हो सकता है ?

एक दिन पूजा के बाद साधना में उसको मार्ग दर्शन हुआ और उसने अपना मार्ग निश्चय कर लिया।

एक दिन एकान्त मे सदानन्द जो भावुक दशा में था, पूछा "क्या तुम मुझे प्यार नहीं करती।"

मधुबाला—"करती हूँ पर शारीरिक स्तर पर धर्मच्युत नहीं हो सकती, पर मानसिक स्तर नहीं, आध्यात्मिक स्तर पर कही, मेरा प्यार है और रहेगा।"

सदानन्द—"अर्थात् तुम भी सदा प्यासी रहोगी और मैं भी सदा प्यासा रहूँगा।"

मधुबाला—"तुम्हारा निदान गलत है मुझ में शान्ति है प्यास नही है। ठीक यत्न करने से तुम्हारी भी वही दशा हो सकती है।"

सदानन्द—"यह सब बकवास मेरे पसन्द नहीं है।"

मधुबाला—"मुझे और कुछ नहीं कहना है।"

सदानन्द बहुत रूष्ट हुआ। बहुत कुछ भला बुरा बकते हुए चला गया।

मधुबाला ने कोई उत्तर न दिया।

वहुत समय बीत गया। सदानन्द अपने मित्र से मिलने न आया।

एक दिन सदाशिव को ज्ञात हुआ कि कुछ दूर एक दुर्घटना हुई और एक मोटर साइकिल वाला गढ्ढे में वेहोश पड़ा है। अपने आदमियों को लेकर सदाशिव वहाँ पहुँचा। उसको देख कर आश्चर्य हुआ कि घायल और अचेत मनुष्य सदानन्द ही है। उसको उठा कर घर ले आया। अस्पताल सब दूर थे। घर पर ही उसकी की First Aid प्राथमिक चिकित्सा की गई। सदाशिव और मधुवाला के सँयुक्त परिश्रम से उसके घाव धुले और पट्टियाँ बाँधी गई कुछ समय वाद सदानन्द ने आँख खोली और फिर वन्द करली। उसने किसी को नहीं पहिचाना फिर एक वार उसने करवट ली और दर्द से चीखा। अब उसको होश आ गया। उसने आश्चर्य में कहा "मैं कहां?"

सदाशिव—"तुम्हारी मोटर साइकिल गढ्ढे में गिर गयी थी और तुम वेहोश थे। मैं यहां ले आया हूँ। घबड़ाओ नही, ठीक हो जाओगे।"

मधुवाला दूध ले आई। उसने और सदाशिव ने उसको उठा कर दूध पिलाया और वह सो गया।

घावों के अतिरिक्त उसकी पसली की एक हड्डी टूट गई थी और उसको पंद्रह दिन इसी दशा में रहना पड़ा।

उसकी सेवा सुश्रूषा का भार मधुवाला पर पड़ा और उसने उसको वहुत निष्ठा और प्यार से निभाया। सदानन्द को वहुत आश्चर्य था और वह कुछ लज्जित भी था।

उसके जाने का समय आया उसने मधुवाला से कहा "सेवा करना ही तुम्हारे धर्म में था। तुम इतनी उत्साहित और प्रसन्न क्यों थी?"

मधुवाला—"कारण नही स्वाभाविक है।"

सदानन्द—"तुम अव भी प्यार करती हो।'

मधुवाला—"हाँ! शान्ति भी है सुख भी।"

सदानन्द—"मेरा प्यार तो नष्ट हो गया है।"

मधुवाला—"नहीं केवल निराशा और रोष से धूम्राच्छादित है इन अवरोधों के हटने से स्थिती मेरी जैसी हो सकेगी।"

सदानन्द ने सिर उठा कर मधुवाला की ओर देखा और उसी समय उसने भी उसकी ओर देखा दोनों चुप थे, कहने को कुछ अवशेष नहीं था।"

सदानन्द ने सिर कुछ झुकाया, पीठ फेरी और धीरे-धीरे चला गया।

जव तक वह अदृश्य न हुआ मधुवाला उस ओर देखती रही।

शोभा—"तुम इससे सहमत हो, क्या यह सँभव है।"

निर्मला—"हाँ, यदि सदानन्द मधुवाला के विचार समझ पाता तो छोड़ कर जाने की आवश्यकता नहीं थी पर अपना भावुक दृष्टि कोण वदलना पड़ता।

श्यामाचरण—"तुमने घर का भँडा फोड़ा।"

निर्मला—"नहीं। उसने अधिक पूछा नहीं' मैने कहा नहीं।"

श्यामाचरण—"अच्छा प्रपञ्च रचा।"

निर्मला—"जहाँ सद्भाव वहाँ प्रपञ्च नहीं' शोभा एक शाम रामशरण के घर पहुँची–पता लगा बीमार है—बुखार एक सो पांच डिग्री है उसकी शिकायत थी सूचना पहिले दिन क्यों नहीं दी गई। प्रबन्ध करती हूं कह वह चली गयी।

कुछ देर बाद लक्ष्मीचन्द और एक सेवक वहाँ पहुँचे और रामशरण को अपने घर ले गये। वहाँ डाक्टर आया और दवा और बहुत सी शिक्षायें छोड़ गया वह अस्पताल प्रवेश के पक्ष में न था।

रामशरण अतिथी कक्ष मे रक्खा गया सेवा सुश्रूषा का भार शोभा पर था। रात्रि की दवा देने के बाद वह एक काल घँटी वहाँ रख गयी। उसके दवाने से नौकर पहुँच जाएगा और विशेष आवश्यकता हो तो वह उसको सूचना दे देगा। दूसरे दिन ज्वर कुछ कम हो गया।

रामशरण को पत्र मिला। उसने शोभा से कहा—"पुष्पा अपनी माँ, भाई और उसकी पत्नी के साथ मोटर से बद्रीनाथ जा रही है। दो दिन बाद, वे चाहते हैं मैं भी साथ जाऊँ। करीब बारह दिन लगेंगे। पर मैं नहीं जा सकता।"

शोभा—"तार से रुपये भेज दो। यात्रा में सभी स्थानों पर व्यय करना पड़ता है, मंदिर साधु सन्त अच्छे और बुरे" रामशरण उसकी ओर देखने लगा।

शोभा ने कहा "अभी मैं प्रबन्ध कर दूँगी। फिर वापिस ले लूँगी रामशरण की इच्छानुसार उसने तीन सौ रुपये भेज दिये, तीसरे दिन ज्वर उतर गया पर डाक्टर ने एक दिन का विश्राम अनिवार्य बताया।

शोभा ने लेख वाली पत्रिका उसके कमरे में रख छोड़ी थी और रामशरण ने वह लेख पढ़ लिया था।

जाने का दिन आया। रामशरण और शोभा बाग में बैठे थे। रामशरण "आज मुझे विदा लेनी है।"

शोभा—"कब जाना चाहते हो।"

रामशरण—"आज शाम।"

शोभा—"अच्छा प्रबन्ध हो जायेगा।"

रामशरण—"मेरे कमरे में एक पत्रिका थी, उसमें एक लेख है क्या तुमने उसको पढ़ा है।"

शोभा—"हाँ"

रामशरण—"क्या तुम उसको सम्भव और ठीक समझती हो।"

शोभा—"हाँ'

रामशरण—"तुम उसका अनुकरण कर रही हो।"

शोभा—"प्रयत्न है।"

रामशरण—"क्या तुम्हारा जीवन क्रान्ति के लिये यही समय था ?"

शोभा—"जीवन प्रवाह में कब क्या घटना ही अज्ञेय है।"

रामशरण—"तुम एक साथ कठोर और प्रसन्न हो सकती हो ?"

शोभा—"मैं दार्शनिक नहीं हूँ।

रामशरण—"तुम्हारा रूप बदल गया है।"

शोभा—"रूप का मुझे अहँकार नहीं है।"

रामशरण—"समझी नहीं। शोभा तो अतिशोभा बनी है पर व्यवहार में अन्तर हो गया है।"

शोभा—"न मुझे अपना रूप दीखता है न व्यवहार। हाँ मन में शान्ति और स्थिरता होने से अधिक स्वाभाविक अनुभव करती हूँ।"

रामशरण—"कैसे समझाऊँ।"

शोभा—"आवश्यक भी नहीं हैं।

सेवक काफी और कुछ मिठाइयाँ रख गया, दोनों ने काफी पी, पर चुप थे।

रामशरण को आभास हुआ कि उसने अधिक खा लिया है। शोभा के भाव पूर्वक अमौखिक आग्रह से।

कुछ समय बाद रामशरण ने शोभा की ओर देखा, उसी समय शोभा ने उसकी ओर देखा, किसी ने कुछ कहा नहीं।

कहने को कुछ शेष न था।

शोभा ने रामशरण को घर छोड़ दिया।

रामशरण—"ठहरोगी नहीं।"

शोभा—"इस समय नहीं," तुम विश्राम करो। फिर किसी दिन आउँगीं।"

वह घूमी और शीघ्रता में बाहर चली गयी।

रामशरण के मन में अज्ञान, असन्तोष का तूफान आ रहा था। वह एक सप्ताह के लिये दौरे पर चला गया। लौट कर कुछ अन्तर पाया।

पुष्पा को बहुत खेद था कि रामशरण यात्रा मे साथ न दे सका। अपनी मोटर होने से यात्रा आराम से हुई। यात्रियों की भीड़ कम थी। दूध, चाय, भोजन सामग्री मिलने की सुविधा थी। हरिद्वार में गँगा प्रवाह और दृश्य बहुत मनोहर था, और एक सन्ध्या वहाँ घाटों पर बीती। सार्वजनिक विभाग के अफसरों ने डाक बँगलों में ठहरने का अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। पर्वतीय और प्राकृतिक सौन्दर्य से वह बहुत प्रभावित हुई। मन का दुःख हल्का हुआ। अनेक गँगा, अनेक प्रयाग सभी निर्मल जल से भरपूर, हरे भरे वृक्षों की शोभा, नीला आकाश के पृष्ठ स्थल पर ऊँचे पर्वत शिखर पर ऊँचे वृक्ष विचित्र भाव उत्पन्न करते थे।

बद्रीनाथ पहुँचे, विश्राम का अच्छा स्थान मिला। भीड़ कम थी पूजा और दर्शन का अच्छा अवसर था, शाम को विशेष पूजा का प्रबन्ध किया। पँडितों का उच्चारण सुन्दर था और उन्होंने कहा—

यथा नदीना बहुवीड़म्बु वेगाः
समुद्र मेवाभि मुखा द्रवन्ति
तथा तवामी नरलोक वीरा
विशान्ति वक्त्राण्यमि विज्वलन्ति
यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्ध वेगाः
तथैव नाशाय विशान्ति लोका
स्तवापि वक्त्राणि समृद्ध वेगाः

इसका प्रभाव गहरा अनुभव हुआ।

मन बहुत प्रभावित हुआ

अक्टूबर महीना, एक हजार फुट ऊँचाई, शीत अधिक पर गरम पानी के खौलते कुण्ड। प्रकृति की अद्भुत सृष्टि। स्नान करना एक सुख गरम पानी मे बैठे रहना अधिकतर सुख, दो दिन वहाँ ठहरे। माना गाँव देखा, एक विख्यात प्रपात भी।

माना गाँव से कुछ दूर एक साधू कुटिया बना रहते थे। वे बोलते कम थे पुष्पा, उसकी माँ, भाई और उसकी पत्नी भी उनके दर्शन करने गये। पत्र, पुष्प अर्पण कर वे बैठ गये। पुष्पा ध्यान करने लगी। कुछ समय बीता। साधू ने आँख खोली और पुष्पा से कहा "जो देता है विजय पाता है ज्वलन्त प्यार पर आशा रहित आशा गयी, शान्ति आई, ईश्वर भला करेगा "उसने फिर आँखे बन्द कर ली।"

पुष्पा ने भी आंखें बन्द कर लीं, उसके मन में प्रकाश हुआ और साधू के शब्दों का अर्थ समझ गयी। उसके मन की स्थिति वही हो गयी जो साधू का अर्थ था।

उसका दुःख पत्नी की मानविक आत्मीयता और आशाओं में था।

कुछ समय बाद उसकी मनस्थिति साधारण हो गयी पर क्षण भर की अन्तर चेतना की जागृति भी मार्ग दर्शक बन गयी।

उसकी माँ कुछ समझी पर उसके भाई और उसकी पत्नी को सब बकवास दीखा।

उनकी यात्रा सफल पूर्वक हो गयी। वापिसी में उनका मन शान्त और चिन्ता रहित था। सहज भाव प्रबल था। जहाँ उनको दृश्य आकर्षक मालूम पड़ता विभिन्न गंगाओं की जल क्रीड़ा जल प्रवाह, जल प्रचलता और जल प्रपातों के कारण, उनमें गहन पर्वतों की आकाश चुंबी चोटियों के कारण, ,उनमें गहन वन दृश्यों के

कारण या नीलाकाश में खेलते, दौड़ते भागते और टकराते बादलों के टुकड़ों के कारण वे मोटर रोक ठहर जाते—कॉफी पीते और सहज मन से सहज भाव प्रकृति से अनुमोदित होते। सारा मार्ग ऐसे साधनों की प्रचलता से भरा है पर जाते समय वे इस सुख से बहुत कुछ वञ्चित रहे। उनको यात्रा पूरा करने का चिन्ता रूपी भूत सताये था। मन और प्रकृति का सामञ्जस्य टूट गया था।

देश के सभी भागों के यात्री आये थे एक दो स्थानों पर छोड़ कर कहीं भी किसी संस्था का नाम न था जो उनकी सहायता करे यदि राजा या जनता चाहे तो देश की एकता और मैत्री भाव के लिये इन यात्रियों के द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है.।

रामशरण को याद आई शोभा का ऋण वापिस करना था।

वह बाग में थी। उसको वहीं जाना पड़ा। वह बहुत प्रसन्न हुई। वे बाग में टहलने लगे। रामशरण ने चैक दिया और देर के लिये खेद प्रकट किया। शोभा हँसी "जल्दी न थी, न कोई खेद की बात है।"

शोभा—"पुष्पा की यात्रा का क्या समाचार है। कब तक यहाँ पहुँचेगी।"

रामशरण—"आज पत्र आया। वे सब बद्रीनाथ पहुँच गये और लौट रहे हैं। वह प्रसन्न है पर मैं साथ रहता तो सुख हो जाता। वापिस आने के लिये यही लिखा कि उसकी माँ उसको कुछ समय इलाहाबाद में साथ रखना चाहती हैं। उनके विचार में यात्रा के कष्ट के बाद इलाहाबाद विश्राम करना आवश्यक है।"

शोभा—"मातृभाव है। तुम्हारा क्या विचार है ?

रामशरण—"मैंने पत्र भेज दिया कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है शीघ्र भेज दो।

शोभा हँसी और कहा "तुमने अपने अन्तिम तीर का प्रयोग किया, शीघ्र पहुँचना चाहिए "क्लब चलोगे"

रामशरण—"अच्छा"

शोभा—"क्या करना चाहते हो"

रामशरण—"जो कहो"

शोभा—"चलो, टेनिस का अभी समय है टेनिस के बाद लाउञ्ज कक्ष।"

शोभा—"ब्रिज खेलोगे। मै तो किसी कार्यवश अभी जा रही हूँ।"

रामशरण—"मैं भी घर जाऊँगा।"

शोभा ने उसके गेट के पास मोटर रोकी। रामशरण उतरा और उसने गेट खोला शोभा चिल्लाई "मोटर में बैठ जाओ पुष्पा लौट आई है।"

रामशरण—"तुमने कैसे जाना।"

शोभा—"मैं अपने मित्रों को दूर से सूँघ सकती हूँ।"

मोटर पोर्टिको में पहुँची। पुष्पा बाहर आ खड़ी हुई। रामशरण आश्चर्य से बोला "तुम कैसे पहुँच गयी, सूचना कोई नहीं थी।"

पुष्पा—"पहिले कोई योजना नही थी।

मोटर प्रतावगढ़ के पास पहुँची, मुझे मानसिक लहर आई, यहाँ से ही ट्रेन क्यों न पकड़ो, मांजी ने बहुत जिद करने पर स्वीकृति दी। और मैं यहां अमन्त्रित अपने घर लौट आयी।"

शोभा—"इनका अर्जेण्ट आदेश इलाहावाद भेज दिया गया है "मैं बीमार हूँ। शीघ्र आओ।"

पुष्पा हँसी—इतनी शीघ्रता क्या थी अभी तार भेजती हूँ कि मैं पहुँच गयी और वे स्वस्थ है।"

शोभा—"मैं चली, तुम्हारे पति देवता चाहते हैं कि मैं जल्दी से भागूं।"

शोभा उठी पर पुष्पा ने उसका हाथ पकड़ कर फिर बैठा दिया।

"तुम्हें भगाने के लिये न मैं उत्सुक हूँ न ये।"

काफी, मिठाई इत्यादि मेज पर उपस्थित हो गये।

शोभा—"तुम यात्रा में प्रसन्न रही।"

पुष्पा—"हाँ"

शोभा—"क्या यात्रा सफल हो गयी मन शान्त हुआ।"

पुष्पा—"हाँ, मेरा यह विचार है।"

शोभा—"ठीक" गृह युद्ध कर सकती हो पर मन दुःखी न होना चाहिये।

पुष्पा—"समयान्तर सिद्ध करेगा।"

शोभा—"पाठ सीख लिया, परीक्षा शेष है आज इतना ही" यह कह कर शोभा चली गयी।

रामशरण कुछ कहने बाहर गया पर मोटर चली गयी।

रामशरण—"शोभा का परीक्षा से क्या अर्थ था।"

पुष्पा—"पता नहीं उसका हँसी करने का स्वभाव है।"

रामशरण—"हंसी, कभी-कभी मन करता है उसको खूब पीटूं।"

पुष्पा ने हंस कर कहा "और कभी-कभी………मैं उससे कह दूंगी।"

रामशरण—"खबरदार।"

पुष्पा—"अच्छा" यह प्रसंग समाप्त।"

रामशरण का तनाव ढीला हुआ और सोफे में फसर गया।"

रामशरण—"तुम सचमुच आगयी हो।"

पुष्पा—"सचमुच और सशरीर तुम्हारे सामने बैठी हूँ।"

रामशरण—"डेढ़ महीने दूर रहीं, सब हाल कह ।"

पुष्पा—"वह तो बहुत दिन तक कहती रहूँगी जल्दी क्या है।"

नौकर ने आकर भोजन लगजाने की सूचना दी।

रामशरण—"आज तो भूख दूनी हो गई है।"

पुष्पा—"चलिये, कोई त्रुटि न होगी।"

पुष्पा को दो दिन घर ठीक करने में लग गये। एक दिन में सामान शाम को बाग।

रामशरण और पुष्पा पाँच दिन क्लब नही गये थे। किसी अज्ञात कारण से रामशरण को क्लब की याद न आई, घर में सम्पूर्णता थी।

शोभा ने पुष्पा से पूछा "स्वास्थ्य ठीक है।"

पुष्पा—"हाँ"

शोभा—"तुमने घर को सम्मोहक पीजड़ा वना रामशरण का वाहर जाना वन्द कर दिया।"

पुष्पा—"तुम्हारा आरोप असत्य है उनको वाहर जाने की कोई रोक नहीं है। हाँ, मेरे लिए काम जमा था।"

शोभा—"वहुत कर चुकी हो। आज क्लव चलो।"

पुष्पा—"चलो"

क्लव पहुँच कर शोभा ने कहा "मैं और रामशरण टैनिस खेलेंगे तुम यही ठहरो। अपना टैवुल टैनिस खेलो "धीरे से" तुमसे पांच दिन का वदला लेना है पुष्पा हस कर "स्वीकार"

टैनिस समाप्त हुआ। लाउञ्ज कमरे मे तीनो ने काफी पी। पुष्पा घर जाना चाहती थी पर उसको बाध्य होकर ब्रिज टेवुल पर वैठना पड़ा वह भी देर तक।

शोभा ने उसको घर पहुँचा दिया।

नौकर से पुष्पा को पता चला कि उसकी अनुपस्थिति मे साहब की तवियत खराव हुई थी और लक्ष्मीचन्द उनको अपने घर ले गये थे। तीसरे दिन लौट आये। कदाचित उसको सेवा करने से वञ्चित किया गया था।

रामशरण से पुष्पा ने कहा "मेरी अनुपस्थिति में आपका स्वास्थ्य ठीक था।"

रामशरण—"हाँ, एक वार ज्वर आया था। साधारण था और मैं विश्राम कर रहा था पर शोभा आई और जिद से थर्मामीटर लगाया। उसने कहा ज्वर एक सो पांच डिग्री है उसने लक्ष्मीचन्द और एक सेवक को भेज दिया और वह मेरी इच्छा के विरूद्ध मुझे अपने घर ले गया। वहाँ डाक्टर ने आकर देखा और कहा अस्पताल में भरती करने की कोई आवश्यकता नहीं है साधारण ज्वर है। दवा से ठीक हो जायगा। उस दिन कुछ समय शोभा की सेवा रही पर दस-ग्यारह वजे तक ज्वर एक सो तीन डिग्री हो गया। तव एक सेवक रख कर चली गयी। दूसरे दिन सवेरे था एक सो एक डिग्री शाम को एक सो डिग्री तीसरे प्रात:काल अठ्यारणवे पाईन्ट चार डिग्री शाम को घर लौट आया।

पुष्पा कुछ समय सोचती रही फिर कहा "मुझे दुःख है उस अवसर पर मैं यहा नही थी। तुमको डाक्टर का पहिले ही प्रबन्ध करना चाहिए था। इतनी भूल नहीं करनी थी शोभा को धन्यवाद दे दूँगी।"

रामशरण—"उनकी जिद व्यर्थ थी, मैंने तो केवल लक्ष्मीचन्द को धन्यवाद दिया था।"

पुष्पा का मुख कुछ समय तक विकृत रहा। बहुत से विचार सम्भव और असम्भव उसकी मानस रणा भूमि में युद्ध करते रहे। उसने यत्न कर अपनी अन्तर चेतना में गोता खाया और स्तब्ध हो गया। मन शान्त हो गयी। चित्र पट का परिदृश्य साधारण हो गया।

कुछ दिन वह क्लब नही गयी रामशरण भी घर पर रहा।

एक दिन शोभा जल्दी पहुँची रामशरण कार्यालय से वापिस नहीं आया था।

पुष्पा बाग में थी। वह वहीं पहुँची।

शोभ—"क्लब के साथ हमको भी भूल गयी हो अपना घर अपना पूर्ण संसार।"

पुष्पा—"छोटी बात से बड़े निष्कर्ष निकाल रही हो, बैठो। मेरी अनुपस्थिति में तुमको बहुत कष्ट हुआ। बहुत–बहुत धन्यवाद।"

शोभा ने पुष्पा के गाल पर चिगोंटी लगाई और कहा "तुम धन्यवाद दोगी। मैंने साधारण कर्तव्य किया कोई विशेष कष्ट न था। हाँ पुष्पा रानी का मन हिला इससे मेरी दुष्ट प्रकृति प्रसन्न है, हाँ, तुमने क्या सुना।"

पुष्पा ने जो सुना था कह दिया।

शोभा—"क्या कहते? कुछ वाक्य छूट गये। तुम समझ लोगी तुम जानती हो नर्सिंग क्या होता है।"

पुष्पा का मुख बहुत विकृत और आन्दोलित हुआ उसने आँखें बन्द कर ली और ध्यानस्थ हो गयी। कुछ देर बाद वह साधारण स्थिति में लौट आई।

शोभा बहुत गौर से देखती रही उसने कहा "तुमने यथेष्ट उन्नति की है।"

पुष्पा—"मैं नही जानती। सब ही के लिये जीवन निरन्तर और न समाप्त होने वाली परीक्षा है।"

शोभा—"मैं तुमको तंग करने आई थी पर पूरी सफलता नहीं हुयी।"

पुष्पा—"तुम ऐसे अवसर स्वयम् बना सकती हो।"

रामशरण घर पहुँचा।

शोभा—"क्लब चलोगी।"

पुष्पा—",इच्छा नहीं है।"

शोभा—"उनके कहने को चलोगी।"

पुष्पा—"पता नहीं।"

शोभा यह विवाद तो चलता रहेगा। चाय का प्रवन्ध करो।

चाय के वाद।

शोभा पुष्पा से "मेरा प्रस्ताव है आगामी रविवार में और लक्ष्मीचन्द चाय यहाँ पिये और उसके बाद सब सारनाथ चलें।"

पुष्पा—"क्या बुद्ध की अनुयायी बनोगी।"

शोभा—"क्या करना पड़ेगा।"

पुष्पा—"गेरूआ वस्त्र पहिनना पड़ेगा सब त्याग।"

शोभा—"राम, राम। शोभा और गेरूआ वस्त्र हम ऐसे ही भले। पर मेरा प्रस्ताव केवल दो तीन घंटे के लिये भ्रमण का था।"

पुष्पा—"इनसे कहो।"

शोभा—"आप ही कहिये। पुष्पा मुझ से तंग है।"

रामशरण—"पुष्पा चाय का प्रवन्ध तो सहर्ष करेगी। फिर निश्चय हो जायगा।"

शोभा ने पुष्पा की ओर देखा। उसने स्वीकृति दे दी।

रामशरण—"पुष्पा से "क्लब चलोगी।"

पुष्पा—"प्रवृत्ति नहीं है।"

रामशरण—"कोई, विशेष कार्य है।"

पुष्पा—"नहीं।'

रामशरण—"तब चलो।"

पुष्पा—'अच्छा।"

शोभा—"जीत किसकी ?"

पुष्पा—"जो अधिक धृष्ट है।"

शोभा—हँसी न रोक सकी।

रविवार आया। पुष्पा ने चाय का उत्तम प्रवन्ध किया वह अच्छे जलपान में परिणत हो गया।

पार्टी सारनाथ पहुँची और जिस स्थल पर महात्मा बुद्ध ने पहिला व्याख्यान दिया था दरी बिछी हुई थी। काफी का प्रवन्ध उच्चतम कोटि का था। और वहाँ एक तम्बूरा भी रखा था। काफी आमोद प्रमोद में पूरी हो गयी।

तम्बूरा देख कर पुष्पा ने पूछा। इसका क्या होगा कौन गायेगा ?

शोभा—"आरम्भ करूँगी मैं। समाप्त करेगी तू।"

पुष्पा—"समाप्त भी तू ही करना।"

शोभा—"एक व्यक्ति पर इतना भार। इतना अन्याय पुष्पा नहीं कर सकेगी।"

रामशरण ने तम्बूरा शोभा की ओर सरका दिया। शोभा ने एक राग तम्बूरे पर बजाया। फिर एक गीत गाया।

उसने पुष्पा की ओर देखा और स्वर देने लगी। पुष्पा ने एक छोटा गीत गाया और एक लम्बा राग तान आलाप सहित। सबने हर्ष ध्वनी की और पार्टी समाप्त हुई।

शोभा ने पुष्पा के कान में कहा "धृष्टता की जीत हुई।"

पुष्पा—"दुष्टता की।"

शोभा ने उसका हाथ दबा कर स्वीकार किया।

कुछ दिन बाद शोभा एक दिन आई और पुष्पा से कहा "आज सिनेमा जाने का प्रोग्राम है। भूल गयी ?"

पुष्पा—"मैं नहीं जाऊँगी।"

शोभा—"तुमने स्वीकृति दे दी थी और मैंने टिकट ले लिये है।"

पुष्पा—"उस टिकट के पैसे मैं दे दूँगी।"

रामशरण कार्यालय से लौटा और चाय पर सब बैठ गये।

शोभा ने सिनेमा की याद दिलायी।

रामशरण—"हाँ, जाना तो है। फिल्म भी अच्छा है। तुम अभी तैयार नहीं हुई।

पुष्पा—"मेरे सिर में दर्द है मैं नहीं जाऊँगी।"

रामशरण—"मैं भी नहीं जाऊँगा।"

पुष्पा—"मैं तो अस्वस्थ हूँ। आप अपनी प्रतिज्ञा से कैसे टल सकते हो। जाना पडेगा। तीसरा व्यक्ति लक्ष्मीचन्द हो सके तो अच्छा है।"

रामशरण—"यह कैसे हो सकेगा।"

पुष्पा—"शोभा कर सकती है।"

शोभा—"सफलता हो भी सकती है न भी हो।"

रामशरण और शोभा चले गये।

दस बजे रात शोभा और रामशरण लौटे वह मोटर और लक्ष्मीचन्द को बाहर छोड़ आयी थी। पुष्पा पोर्टिको के पास मिली। रामशरण अन्दर चला गया। पुष्पा को आश्चर्य हुआ पर वह शीघ्र सम्भल गयी।

शोभा—"भूल और पश्चाताप। कहा था साथ चलो पर जिद में थी।"

पुष्पा—"कुछ नहीं। तुमने ठीक किया होगा।"

पुष्पा इस सहज भाव से मुस्कराई कि शोभा की सारी योजना फेल हो गयी।

शोभा ने धीरे से कहा "तुम पास हो गयी हो।"

पुष्पा—"थोड़ा ठहरो।"

शोभा—"समय अधिक हो गया है। मैं मोटर और उनको बाहर छोड़ आयी हूँ।"

पुष्पा—"इतनी दुष्टता, ठहरो।"

पुष्पा ने उसका हाथ पकड़ने का प्रयास किया पर वह शीघ्रता से घूमी और बाहर चली गयी।

पुष्पा कुछ क्षण सोचती रही पर रामशरण आवाज दे रहा था और वह बैंठक में चली गयी।

पुष्पा—"भोजन अभी लगाती हूँ।"

दोनों भोजन करने बैठे।

रामशरण—"तुम्हारा सिर दर्द का क्या हाल।"

पुष्पा—"ठीक है।"

रामशरण—"क्या करती रही।"

पुष्पा—"कुछ विश्राम किया। कुछ देर रेडियो सुना।"

पुष्पा—"शास्त्रीय गीत तो ठीक था पर फिर वही फिल्म संगीत।"

रामशरण—"फिल्म संगीत भी अच्छा हो सकता है।"

पुष्पा—"हाँ, पर बहुधा अच्छा नहीं होता। बहुत पाजी गीत था। मैंने बन्द कर दिया। आकाशवाणी मे ऐसे गीत क्यों प्रसारित करते हैं।"

रामशरण—" इतना रूष्ट क्यों हो। कौन गीत था।"

पुष्पा—"मैं नहीं कह सकती।"

रामशरण हंसा "मैं अनुमान करूँ सैया बड़े बेईमान।"

पुष्पा—"इस तरह के गंदे गीत क्यों गाते है।"

रामशरण—"यदि तुम्हारे सैंया" भी बेईमान न हो तो तुम क्या कहोगी ?

पुष्पा—छिः ! यह बात मेरे मन में नहीं घुस सकती। न कोई उसको कोई प्रतिक्रिया हो सकती है।"

रामशरण—हँसने लगा और उसने कहा "मेरी पुष्पा रानी।"

शोभा के जीवन में कठिनाइयाँ कम आयीं। सभी वातावरण उसके अनुकूल रहा था पर उस रात वह देर तक सोचती रही।

रामशरण उसके जीवन में नया प्रवाह था। अनायास और अज्ञान भाव में कुछ समय वह इसमें बहती रही। निर्मला ने उसकी सहायता की। उसकी योजना सहायक और मैत्रीपूर्ण थी। वह लेख उसके जीवन से सम्बन्ध रखता है या नहीं मैं नहीं जानती। कदाचित उसके ज्ञान की आवश्यकता भी नहीं। वह यथार्थ घटना पर आधारित हो सकता है। विचारों पर आधारित होने से उसका मूल्य कम नहीं होगा।

मेरे मानसिक युद्ध में ज्ञात और अज्ञात उसने मेरे मार्ग दर्शक का काम किया।

मैं भाग्यवान हूँ। रामशरण दुःखी तो हुआ पर छोड़ कर नहीं गया। लेख की पात्री मधुबाला से मेरी स्थिति अधिक सरल रही।

मैं कह नहीं सकती रामशरण मुझे समझ पाया कि नहीं। पर शिक्षित और बुद्धिमान है। हो सकता है स्थिति की यथार्थता उसने स्वीकार करली, और तीव्र मानस युद्ध के दुःख से बच गया।

पुष्पा बहुत भोली भाली लड़की है। यद्यपि हम समवयस्क हैं मैं उसको अपनी छोटी बहिन समझती रही हूँ। उसको कोई तीव्र आघात पहुँचाना सम्भव न था। पर उससे हँसी करने और उसको तंग करने में मुझे सुख मिलता था। मैं समझती थी मैं उसकी परीक्षा ले रही हूँ। पर उसका कहना ठीक था कि परीक्षा उसकी है तो मेरी भी है। क्या उसकी परीक्षा के बहाने मैं अपने मन को नही बहला रही थी?

उसको प्रकाश और शान्ति साधु ने अति चेतना द्वारा दी। भावना समुद्र सदा शान्त नहीं रह सकता। यह उसका स्वभाव नहीं है चाँद के उदयास्त से ज्वार भाटा आना ही स्वाभाविक है पर पुष्पा का अन्तरिम दुःख उससे हट गया। वह अपना कर्त्तव्य कर सकती है और कठिन परिस्थिति में अपना मार्ग पा सकती है।

अपना-अपना स्वभाव और विचार अपना-अपना मार्ग और साधन। जीवन प्रवाह की धारायें भिन्न-भिन्न ही रहेंगी।"

प्रति दिन की तरह सूर्य उदय हुआ और जन साधारण के लिये यह भी अन्य दिन के समान दिन था।

पर रामशरण, पुष्पा, शोभा और लक्ष्मीचन्द के लिये यह दिन जीवन परिवर्तन था।

रामशरण का वाराणसी से स्थानन्तर हो गया।

तैयारी के लिये प्राप्त एक सप्ताह शीघ्रता से बीत गया। मित्रों के निमन्त्रण, जलपान, और भोजों से रामशरण और पुष्पा को कोई अवकाश न मिला।

अन्तिम निमन्त्रण लक्ष्मीचन्द और शोभा का था रात्रि में भोजन का। पुष्पा उत्तर देना भूल गयी थी।

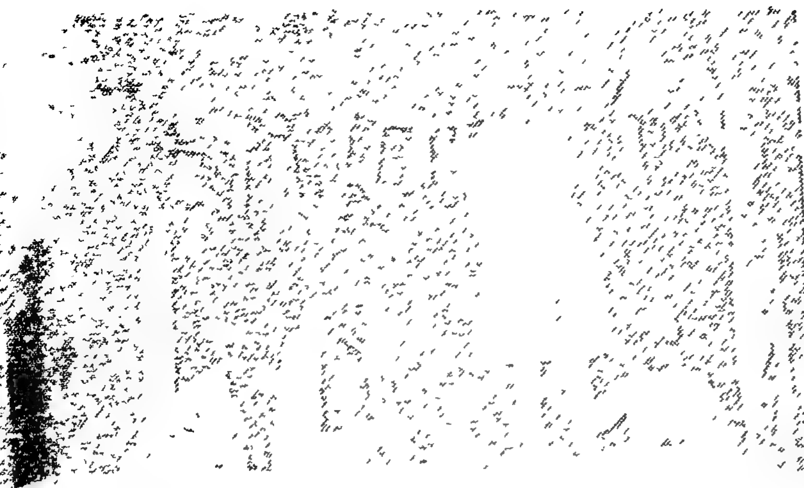
एक दिन शोभा ने कहा "कल मेरे मकान पर भोजन है। कुछ पहिले आ जाना निजी वार्तालाप होता रहेगा।"

मैंने कुछ भी सामान नहीं सँभाला है "बहुत बार भोजन किया है, क्षमा नहीं कर सकती।"

शोभा—"सामान तेरा मैं एक दिन में पैक कर जाऊँगी। बिना तेरे उत्तर की प्रतीक्षा में मैंने सब मित्रों को निमन्त्रित कर लिया है। मैंने सोचा तेरे अस्वीकार

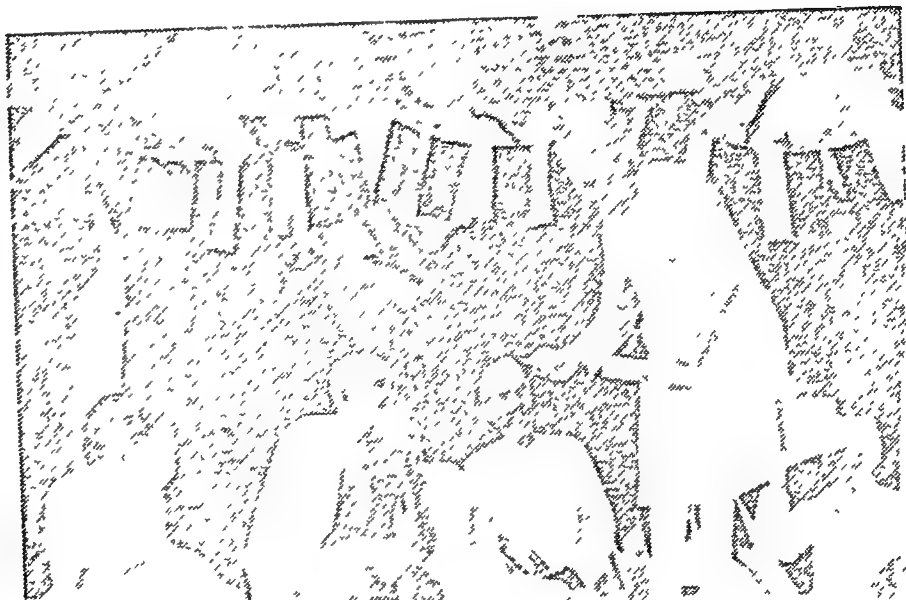
१९३३

तिथि-विहीन रचनाएं



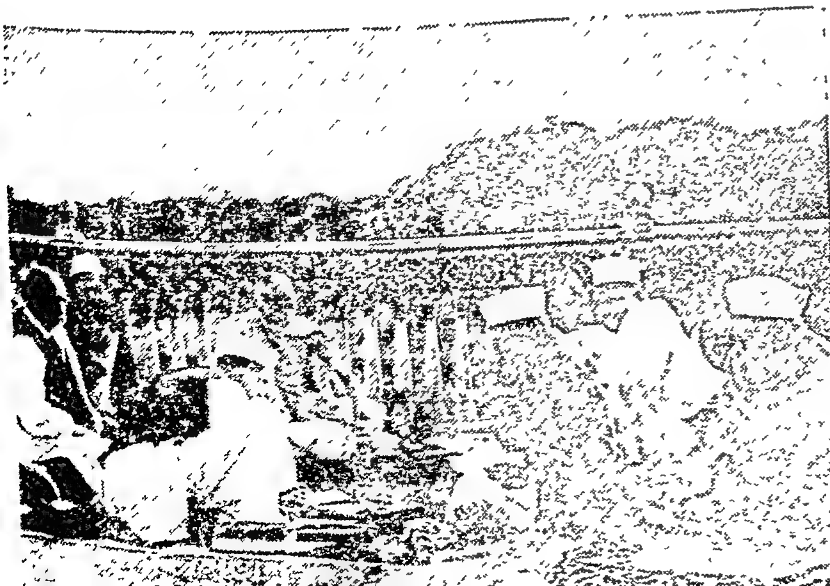
प्रयाग की एक सभा में पं० मोतीलाल नेहरू और महामना मालवीय के साथ

सौजन्य : कुंवर सुरेश सिंह



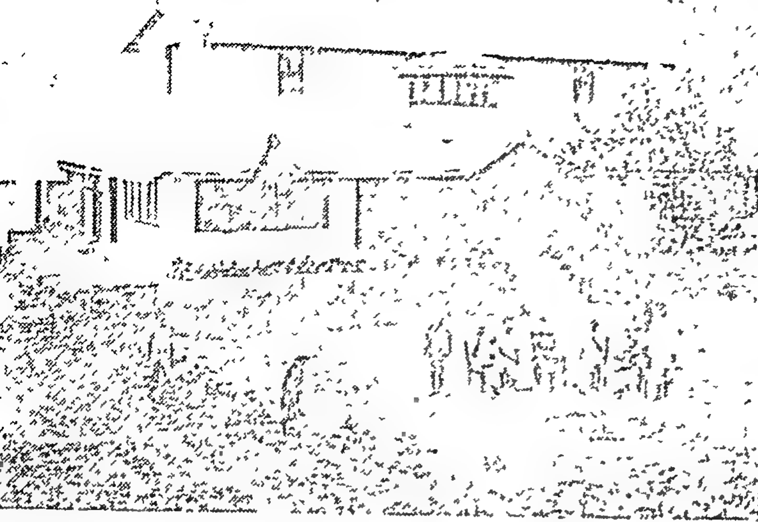
इलाहावाद की सार्वजनिक सभा में मंच पर: आचार्य कृपालानी, टण्डनजी, मोतीलालजी तथा मालवीयजी के साथ

सौजन्य : सूचना विभाग उ० प्र०



इलाहावाद कांग्रेस कार्य समिति में

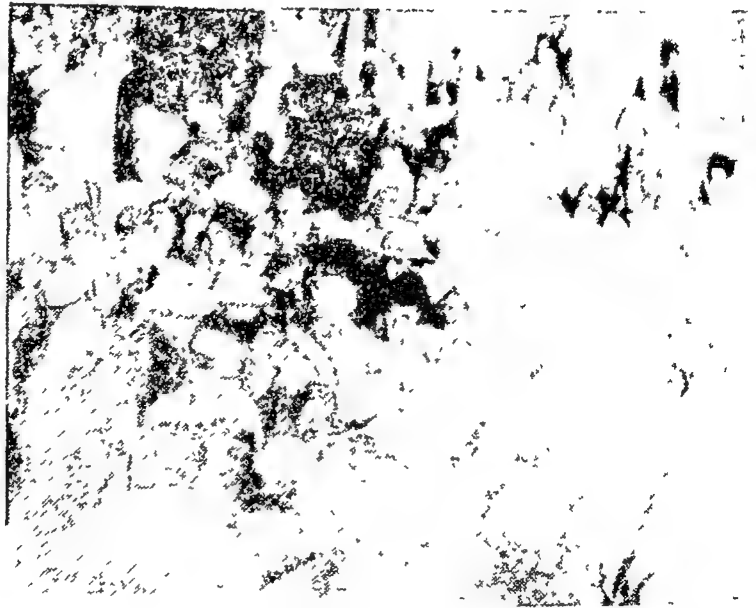
सौजन्य : सूचना विभाग उ० प्र०



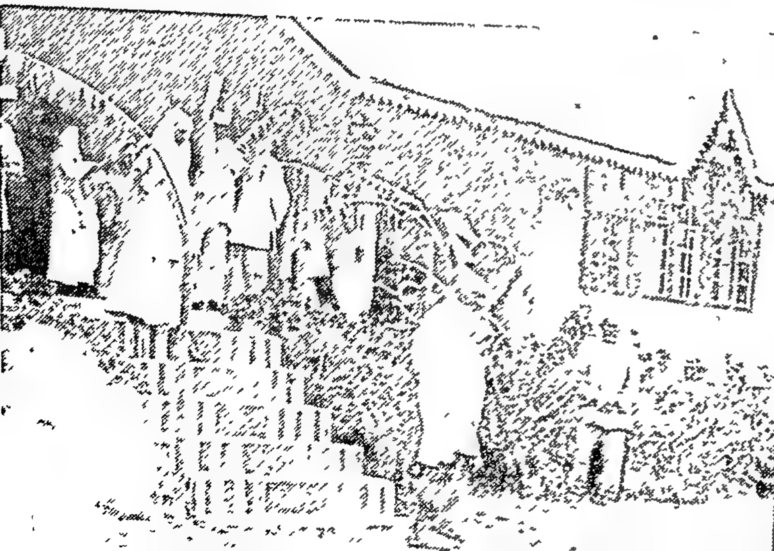
मोतीभवन : ताकुला (१६२६
जहां गांधी जी ठहरे थे

सौजन्य :
श्री राजीवलोचन शाह

अलमोड़ा में (१६२६)



सौजन्य :
सूचना विभाग उ० प्र०



१६२६ : मोतीभवन
ताकुला में

सौजन्य :
राजीवलोचन शाह

अलमोड़ा मे



सौजन्य : सूचना
विभाग उ० प्रदेश



लक्ष्मणेश्वर की
सार्वजनिक सभा में

सौजन्य : सूचना
विभाग उ० प्र०

१९२९ : कालाकाँकर में



सौजन्य : सूचना
विभाग उ० प्र०



ताकुला (१९२९) पहुंचते हुए — सौजन्य : श्री राजीवलोचन शाह



१९२९ : कालाकाँकर में — सौजन्य : कुंवर सुरेश सिंह



ताकुला (नैनीताल) में : १९३१ साँजन्य : सूचना-विभाग उ० प्र०

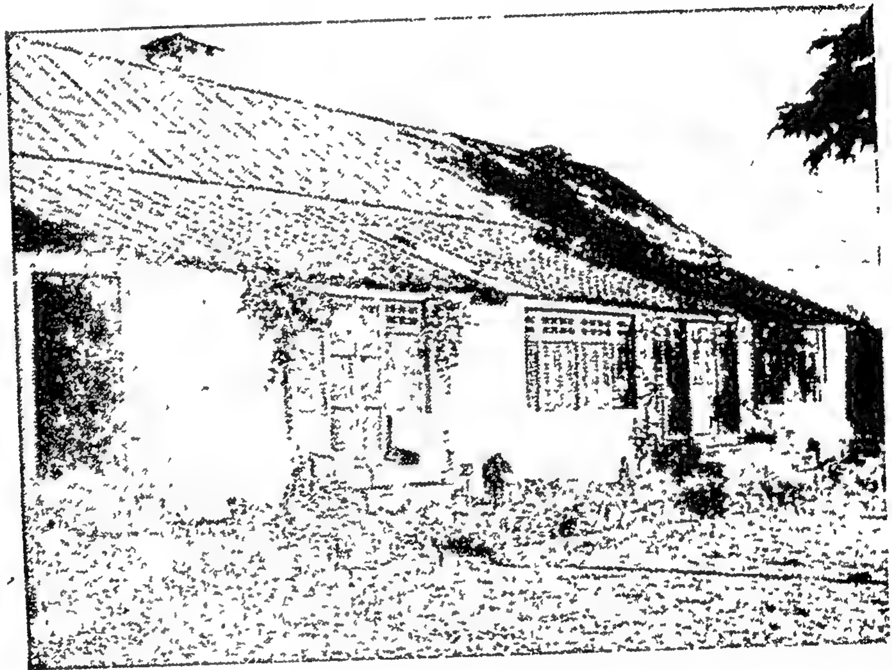


भारतमाता मन्दिर काशी के उद्घाटन में डा० भगवानदास के साथ
सौजन्य : सूचना विभाग उत्तर प्रदेश



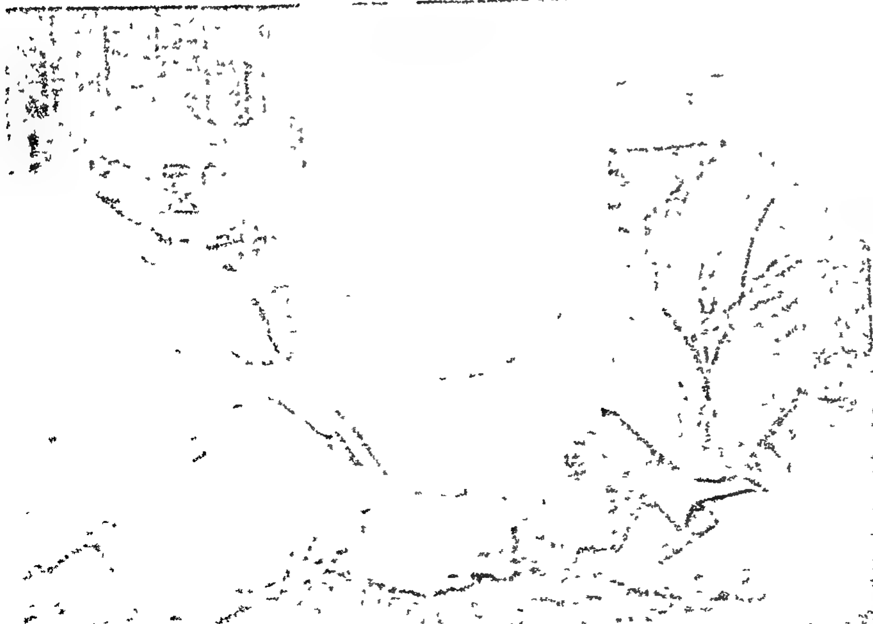
इलाहाबाद की सार्वजनिक सभा में

सौजन्य : सूचना विभाग उ० प्र०



अनासक्ति-आश्रम : एक कक्ष

सौजन्य : सूचना विभाग उ० प्र०



ताकुला में गोविन्दलाल साह से बात करते हुए (१६३१)

सौजन्य : सूचना विभाग उ० प्र०



१९३६ काशी विद्यापीठ वाराणसी मे आम का पौधा लगाते हुए
सौजन्य : सूचना-विभाग, उत्तर प्रदेश

सर राधाकृष्णन के साथ : काशी जनवरी, १९४२



काशी में मालवीय जी के साथ जनवरी १९४२ : नीचे राधाकृष्णन प्रणाम कर रहे हैं

हि० वि० वि० के रजत जयन्ती समारोह में



बौद्ध विहार सारनाथ मे : जनवरी १९४२

वाराणसी में मालवीयजी के साथ (१९४२)





मालवीय जी के निवास-स्थान पर काशी में जनवरी १९४२

कमला नेहरू अस्पताल के उद्घाटन के पूर्व अनुष्ठान करते हुए







कमला नेहरु अस्पताल का शिलान्यास करते हुए





कमला नेहरू अस्पताल का उद्घाटन करते हुए : २८।२।१९४१

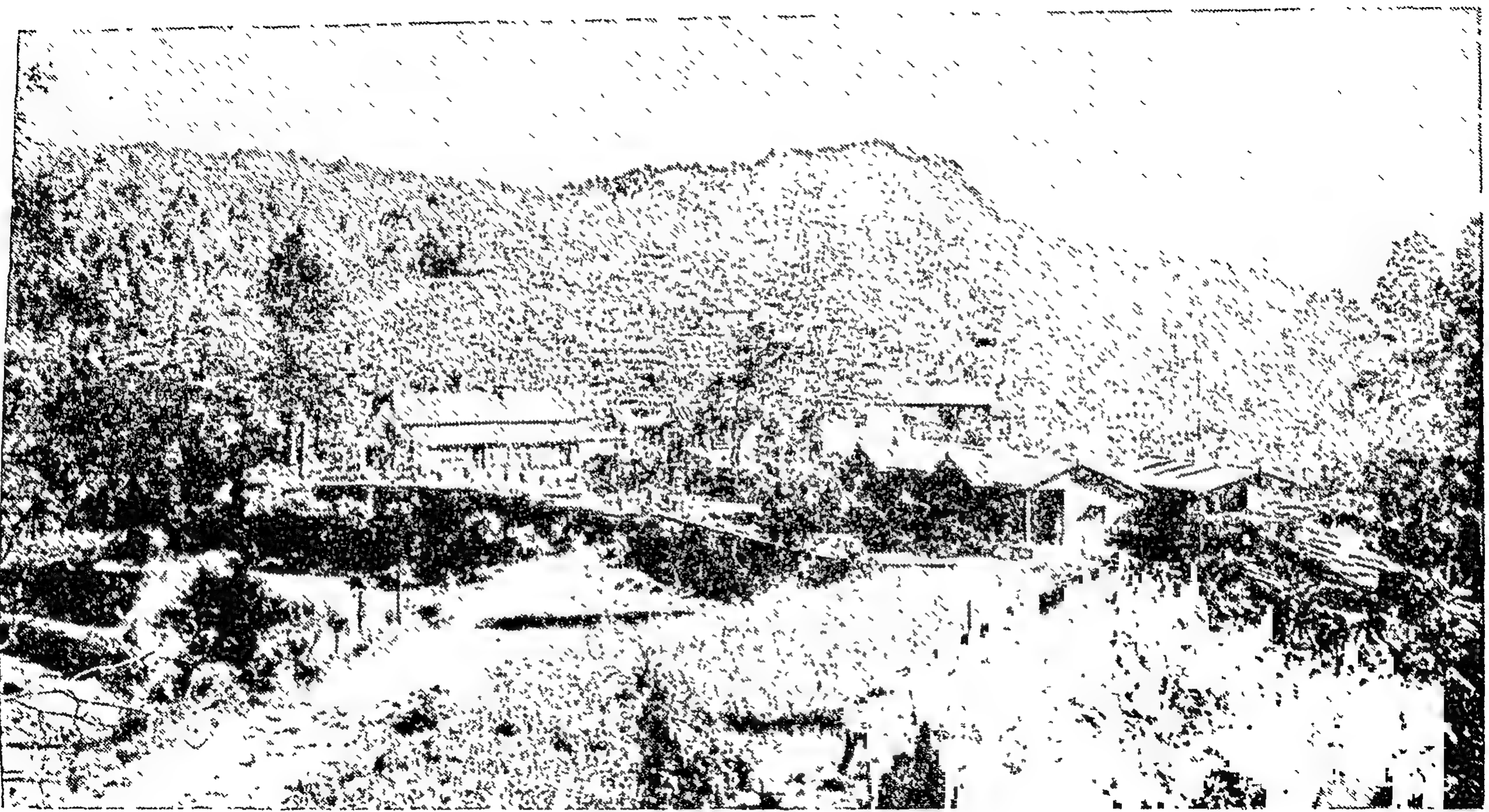


हरद्वार में निराश्रितों के बीच (१९४७)

कमला नेहरू अस्पताल का उद्घाटन करते हुए : २८।२।१९४१



कमला नेहरू अस्पताल : इलाहाबाद



अनासक्ति-आश्रम, कौसानी का दृश्य

: एक :

उत्तर प्रदेश में गांधीजी : एक सिंहावलोकन

उत्तरप्रदेश में गांधीजी : एक सिंहावलोकन

प्रयाग में : १८९६

गांधीजी उत्तर प्रदेश में पहिली वार १८९६ में ५ जुलाई को कलकत्ता से गुजरात जाते हुए पधारे थे। उस समय उन्होंने गोरों के दैनिक पत्र 'पायोनियर' के सम्पादक मि० चेजनी से भेंट की; उन्हें दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों की कठिनाइयों एवं अन्य समस्याओं में दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित किया। फिर त्रिवेणी-संगम में जाकर स्नान-दर्शनादि किये और दूसरे दिन ६ जुलाई को चले गये। यहां वह केलनर के होटल में ठहरे थे।

काशी में : १९०२

दूसरी वार कलकत्ता कांग्रेस से राजकोट जाते हुए १९०२ की सम्भवतः २२ या २३ फरवरी को, वह काशी आये। काशी की गन्दगी और मन्दिरों के पास के अस्वच्छ वातावरण का प्रभाव उन पर अच्छा नहीं पड़ा। सुवह काशी स्टेशन पर उतरकर वह एक पण्डे के घर ठहरे। निराहार रहकर गंगा-स्नान किया। वारह वजे दिन तक पूजा-स्नान से निवृत्त होकर काशी विश्वनाथ के दर्शन किये परन्तु सँकरी, फिसलनी, गन्दी गलियों, अशान्त वातावरण से उनको वड़ी निराशा हुई। फिर ज्ञानवापी आदि होते हुए डेरे पर लौट आये। इस अवसर पर उन्होंने प्रसिद्ध श्रीमती वेसेण्ट के स्थान पर जाकर उनके दर्शन किये।

काशी से वह आगरा, जयपुर होते हुए राजकोट को रवाना हुए। राजकोट वह २६ फरवरी को पहुंचे। वहां से उन्होंने ४ मार्च को जो पत्र गोखले को लिखा उसमें भी काशी-यात्रा और स्टेशन पर यात्रियों के साथ होनेवाले दुर्व्यवहार की टीका की।

हरद्वार में : १९१५

१९०२ के अन्तिम भाग में गांधीजी दक्षिण अफ्रीका चले गये और वहां की राजनीति में ऐसे उलझे कि १९१५ तक भारत की ओर विशेष ध्यान देना सम्भव नहीं हुआ। ९ फरवरी १९१५ को वह वम्वई लौटे। और गोखले की सलाह से देश-भ्रमण कर वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने का निश्चय किया। कलकत्ता और वर्मा की यात्रा करने के वाद कस्तूरवा के साथ ५ अप्रैल १९१५

सोमवार की शाम को हरद्वार पहुंचे। वहां श्रवणनाथ के वगीचे में ठहरे और प्रसिद्ध काली कमलीवाले सन्त वावा रामनाथ से भेंट की।

६ अप्रैल मंगलवार की सुवह गुरुकुल कांगड़ी देखने गये और महात्मा मुंशीराम (वाद के स्वा० श्रद्धानन्द) से भेंट की। ७ को ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला गये। स्वर्गाश्रम देखा। स्वामी नारायण एवं स्वामी मंगलनाथ से भेंट की। ८ को ज्वालापुर महाविद्यालय, हिन्दू सभा और ऋषिकुल देखा। उसी दिन गुरुकुल के ब्रह्मचारियो की ओर से उनका स्वागत किया गया। उस अवसर पर महात्मा मुंशीराम ने कहा था "मुझे आशा है कि श्री गांधी भारत के लिए ज्योति-स्तंम्भ वन जायंगे।" उनकी वह भविष्यवाणी आगे चलकर पूर्णतः सफल और सार्थक हुई।

नवीन व्रत

इसी हरद्वार-यात्रा में ९ अप्रैल गुरुवार को उन्होंने एक नवीन व्रत लेने का निश्चय किया कि हिन्दुस्तान में २४ घण्टों में पाँच ही वस्तुओं का, और वह भी सूर्यास्त से पहिले, आहार करेंगे। इनमें पानी शामिल नही था किन्तु इलायची इत्यादि भी उनमें गिन ली गई थी। यह व्रत दूसरे दिन १० अप्रैल को शुरू हो गया। ११ को मोहनी आश्रम, रामकृष्ण मिशन इत्यादि देखकर दिल्ली रवाना हो गये। दिल्ली से वह १४ अप्रैल वुधवार को दोपहर वृन्दावन पहुंचे। वहां प्रेम महा-विद्यालय, ऋषिकुल, गुरुकुल तथा रामकृष्ण मिशन देखा। फिर मथुरा होते हुए मद्रास चले गये।

१९१६

विश्व-विद्यालय में भाषण

१९१६ तक उत्तरप्रदेश (तव संयुक्त प्रान्त) से गांधीजी का सम्पर्क वढ़ने लगा था। ४ फरवरी १९१६ को भारत के वाइसराय लार्ड हार्डिज ने काशी में हिन्दू-विश्वविद्यालय का उद्घाटन किया। इस अवसर पर कितने ही गण्य-मान्य लोग और राजा-महाराजा एकत्र हुए थे। विश्वविद्यालय के कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता मालवीयजी यद्यपि राजनीति में गांधीजी से कुछ भिन्न विचार रखते थे किन्तु उनकी सरलता, सेवा-वृत्ति, आडम्वरहीन जीवन तथा भारतीय संस्कृति में उनकी गहरी निष्ठा से इतने प्रभावित थे कि उनके प्रति आकर्षित होते गये। मालवीय-जी ने भारतीय आदर्शों की रक्षा और उत्कर्ष के लिए ही विश्वविद्यालय की स्थापना, काशी-जैसे पुरातन तीर्थ में गंगा-तट के समीप की थी। इसलिए उन्होने उक्त अवसर पर छात्रों को सम्वोधन करने के लिए गांधीजी से स्वभावतः आग्रह किया। गांधी-

जी संकोची स्वभाव के होने के कारण स्वयं ऐसे अवसर से बचना चाहते थे किन्तु अग्रज-स्वरूप मालवीयजी महाराज के विशेष आग्रह की अवहेलना न कर सके और इस अवसर पर उन्होंने जो भाषण किया उससे तहलका मच गया। यह भाषण गांधीजी के भाषणों में, भारतीय राष्ट्रीय चिन्ता-धारा की दृष्टि से, एक प्रधान स्थान रखता है। यह भाषण ऐसे अवसरों पर किये जानेवाले परम्परावादी भाषणों से बिल्कुल भिन्न था। एक ओर उसमें भारत के पतन एवं विवश स्थिति की चर्चा थी, दूसरी ओर एक गहरी नैतिक प्रेरणा तथा भारतीय भाषा, वेश-भूषा, संस्कार और देश की दीनता को देखते हुए तदनुकूल आचरण बनाने का प्रबल आग्रह था। सार्वजनिक मंच से, जहां ब्रिटिश-सत्ता की छत्रछाया में पले राजा-महाराजाओं का जमघट हो, यह भाषण एक चुनौती लिये आया था। यह एक बिल्कुल ही नवीन प्रकार का भाषण था।

विश्वनाथ-दर्शन

काशी-आगमन के इस अवसर पर गांधीजी ने ३ फरवरी को श्री विश्वनाथ-दर्शन किया और ५ को काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के बाईसवें वार्षिकोत्सव में, जिसकी अध्यक्षता कश्मीर के महाराजाधिराज कर रहे थे, भाषण करते हुए कहा, "जिस भाषा में तुलसी-दास—जैसे कवि ने कविता की हो वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा ठहर नहीं सकती।" ७ फरवरी तक काशी में रहकर वह बम्बई चले गये।

हरद्वार में

प्रायः डेढ़ मास के पश्चात् वह पुनः संयुक्त प्रान्त में आये। इस बार १८ मार्च से २३ मार्च तक वह प्रायः हरद्वार, मुख्यतः गुरुकुल, में रहे। १८ मार्च को वह गुरुकुल अछूतोद्धार सम्मेलन में शामिल हुए और अस्पृश्यता-निवारण की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि हिन्दुओं को प्रायश्चित्त-भावना से यह कार्य करना चाहिए। २० मार्च को गुरुकुल के पुरस्कार-वितरण समारोह में भाषण देते हुए उन्होंने कहा—"पाठशाला को ग्रामीण जीवन, ग्रामीण शिल्प, खुली हवा, आजादी तथा अपने लोगों की सेवा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना चाहिए।" इसी दिन (२० मार्च) गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव में उन्होंने मार्मिक भाषण किया जिसमें कहा कि "उचित धार्मिक भावना हमारी सबसे बड़ी तात्कालिक आवश्यकता है। निर्भयता का गुण बिना धार्मिक चेतना के प्राप्त नहीं किया जा सकता।" इस भाषण में उन्होंने ग्रामीण उद्योगों के शिक्षण पर भी जोर दिया। २२ मार्च को उनकी तबीयत खराब हो गई। २३ को आर्यसमाज-भवन में उन्होंने

दयानन्द स्कूल के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण करते हुए कहा कि उन्हें अपनी आत्मा के प्रति सच्चा बनना चाहिए तभी वे देश के प्रति भी सच्चे बन सकेंगे।

इसी वर्ष दिसम्बर में गांधीजी पुनः संयुक्तप्रान्त में आये और कई दिनों (२२ से ३१ दिसम्बर) तक इलाहाबाद और लखनऊ में रहे। २२ दिसम्बर को

प्रयाग में

म्योर सेण्ट्रल कालेज, इलाहाबाद की अर्थशास्त्र-समिति के तत्वावधान में आयोजित सभा में वह बोले। पं० मदनमोहन मालवीय इस सभा के अध्यक्ष थे और डा० तेजबहादुर सप्रू, डा० सुन्दरलाल (विश्वविद्यालय के तत्कालीन उप-कुलपति), एच० एस० एल० पोलक, सर्वश्री चिन्तामणि, शिवप्रसाद गुप्त, पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा डा० ई० जी० हिल इत्यादि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति सभा में आये थे। व्याख्यान का विषय था—'क्या आर्थिक उन्नति वास्तविक उन्नति के विपरीत जाती है?' इस भाषण में आर्थिक समृद्धि से नैतिक समृद्धि के ह्रास होने की बात पर जोर देते हुए उन्होंने अन्त में कहा—"ब्रिटिश छत्र-छाया में हमने बहुत कुछ सीखा है, किन्तु मेरा यह निश्चित मत है कि ब्रिटेन यथार्थ नैतिकता की दिशा मे कुछ भी देने में असमर्थ है।...हम इस सम्बन्ध से उसी दशा में लाभ उठा सकते हैं जब हम अपनी सभ्यता और अपनी नैतिकता से विचलित न हों।... हमे सर्वप्रथम दैवी सम्पद् की, परमपिता के राज्य और उसकी पवित्रता की कामना करनी चाहिए। जो ऐसा करेगा उसे यह अमोघ वचन मिला हुआ है कि उसके पास सब वस्तुएं आ जायेंगी। सच्चा अर्थशास्त्र यही है।"...

२३ दिसम्बर को गाधीजी ने इलाहाबाद की एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा में, जो मुंशी रामप्रसाद के बाग़ कटघर रोड में मालवीयजी महाराज की अध्यक्षता मे हुई थी, प्राचीन एवं अर्वाचीन शिक्षा-नीति पर भाषण करते हुए अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने की आधुनिक प्रणाली पर गहरा प्रहार किया और प्राचीन शिक्षा-प्रणाली की प्रशंसा करते हुए कहा—"उसका आधार संयम और ब्रह्मचर्य था। यह इसी शिक्षा-प्रणाली का प्रताप है कि हजारों वर्षों से अनेक प्रकार के आघात सहने पर भी भारतीय सभ्यता आज तक जीवित है।... भारतीय सभ्यता का प्रधान आधार आध्यात्मिक बल है। वह भौतिक बल से कहीं बढ़कर है। भारतवर्ष प्रधानतः धर्मभूमि है और उसे धर्मभूमि बनाये रखना भारतवासियों का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है।"

२६ से ३० दिसम्बर तक वह लखनऊ रहे। यहां वह भारतीय राष्ट्रीय

महासभा के इकतीसवें अधिवेशन में शरीक हुए तथा २८ दिसम्बर के अधिवेशन में गिरमिटिया मज़दूरों के सम्वन्ध में एक प्रस्ताव रक्खा जो पास हो गया। २६ दिसम्बर को 'भारतीय एक भाषा और एक-लिपि सम्मेलन' लखनऊ में ही उनकी अध्यक्षता में हुआ। वह टूटी-फूटी हिन्दी में वोले और कहा—"आप अपनी भाषा में वोलें, अपनी भाषा में लिखें। लाट साहव या सरकार को गरज होगी तो वे सुनेंगे।" ३१ दिसम्वर को वह मुस्लिम लीग की वैठक में शामिल हुए और वहां हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तथा मिल-जुलकर काम करने की अपील की।

लखनऊ में

१९१७ में

१६१७ में वह चम्पारन के निलहे गोरों के अत्याचार से वहां के किसानो को राहत दिलाने तथा तत्सम्वन्वी सत्याग्रह की तैयारी में लगे रहने के कारण केवल दो वार संयुक्तप्रान्त आ सके। ६ अक्तूवर १६१७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और भारतीय मुस्लिम लीग की परिषद की संयुक्त वैठक इलाहावाद में हुई थी; उसमें वह शामिल हुए। २८ नवम्वर को अलीगढ़ पहुंचे। छात्रों की भारी भीड़ ने उनका स्वागत किया और स्टेशन से लायल पुस्तकालय के मैदान तक उनका जुलूस निकाला। वहां गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भाषण करते हुए कहा—"दोनों को अपने झगड़े पारिवारिक झगड़ों की तरह तय कर लेने चाहिए।"

१९१९ में

१६१८ में अनेक कार्यो में व्यस्त हो जाने के कारण वह एक वार भी संयुक्त-प्रान्त में न आ सके। उत्तरार्द्ध भाग में वह प्रायः अस्वस्थ रहे। जरा अच्छा होते कि फिर वीमार पड़ जाते। कई वार तो हालत गम्भीर हो गई। १६१६ के प्रथम चरण में भी स्वास्थ्य ठीक नही रहा। २० जनवरी १६१६ को वम्वई में डा० दलाल ने उनका ववासीर का आपरेशन किया।

इसी समय महायुद्ध के वाद स्वतन्त्रता देने के वादे की पूर्ति की वात भूलकर सरकार उलटे दमन पर उतारु हो गई। शासन को दमन-सम्वन्धी अधिक अधिकार देने के लिए रौलट विधेयक पेश किया गया, जिसका देश के सभी वर्गों ने तीव्र विरोध किया। किन्तु सरकार तो कुछ सुनने की मनःस्थिति में ही नही थी। इसलिए गांधीजी ने सत्याग्रह की तैयारी का आन्दोलन चलाया। सत्याग्रह की प्रतिज्ञा लेनेवाले चुने हुए सत्याग्रही सेवकों की भरती होने लगी।

अपनी अस्वस्थता के बावजूद, इसी सिलसिले में १० मार्च १९१९ को वह लखनऊ पहुंचे। ११ की सुबह आठ बजे रिफाहे आम हाल की एक सभा में उन्होंने लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाया। उसके बाद उसी दिन इलाहाबाद आ गये और पं० मोतीलाल नेहरू के साथ ठहरे। इलाहाबाद से उन्होंने वाइसराय के निजी सचिव श्री मैफ़ी को रौलट बिलों के स्थगन और उनपर जनता की तीव्र प्रतिक्रिया के प्रकाश में पुनर्विचार करने के लिए तार दिया और पत्र भी लिखा। उन्होंने वी० एस० श्री निवास शास्त्री को भी पत्र लिखकर इन विधेयकों का विरोध और जनता की भावना व्यक्त करने का अनुरोध किया।

लखनऊ-इलाहाबाद में

उसी दिन इलाहाबाद में एक सार्वजनिक सभा हुई। गांधीजी के बीमार हो जाने के कारण उनका लिखित भाषण महादेव भाई ने हिन्दी में पढ सुनाया। इस भाषण में उन्होंने सत्याग्रहियों के लिए पवित्रता, संयम, आत्म-बलिदान और हर स्थिति में अहिंसा से न हटने पर जोर दिया था।

१९२० में

पंजाब के हत्याकाण्ड और खिलाफत के अपहरण के फलस्वरूप देश में सब ओर असन्तोष फैल गया था। एक सामूहिक जन-आन्दोलन उभरता आ रहा था। मुसलमानों में खिलाफत के सवाल को लेकर बड़ी बेचैनी थी। गांधी जी ने उनका साथ देकर उन्हें अपने ढंग के आन्दोलन की ओर मोड़ लिया था। १९२० आते ही गांधीजी सारे देश मे घूम कर भावी आन्दोलन के लिए लोगों को तैयार करने लगे।

२० जनवरी १९२० को वह पं० मोतीलाल नेहरू से मिलने इलाहाबाद आये। इलाहाबाद से लाहौर जाते हुए २१ को कानपुर रुके। वहां स्वदेशी भण्डार का उद्घाटन किया। २२ को सुबह मेरठ पहुंचे। वहां भारी जुलूस निकला; सभा हुई; नगर-पालिका, खिलाफत कमेटी, साधारण जन-समाज, हिन्दू स्त्रियों और मुसलमान स्त्रियों की ओर से मानपत्र दिये गये। स्त्रियो की एक अलग सभा हुई। उसी दिन रात मुजफ्फरनगर पहुंचे। लोगों मे बहुत उत्साह था। रात ११ बजे सभा हुई। गांधीजी के भाषण का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसी रात वह लाहौर चले गये।

इलाहाबाद, कानपुर, मेरठ

अगले मास फरवरी २० को गांधीजी पुनः काशी आये। इसी दिन तीसरे

पहर साढ़े तीन वजे टाउन हाल के मैदान में खिलाफत की एक आम सभा हुई।

काशी में

इस सभा में मौलाना शौकत अली, मौ० अवुलकलाम आजाद, पं० मदनमोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू, लाला हरकिशनलाल तथा पंजाव के कई अन्य नेता उपस्थित थे। गांधीजी ने इस सभा में वड़ा ही वोधप्रद भाषण किया।

छात्रों की सभा में

दूसरे दिन २१ फरवरी को हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में छात्रों की एक सभा उपकुलपति की अध्यक्षता में हुई। इस सभा में गांधीजी ने हिन्दी में भाषण करते हुए कहा कि विद्यार्थियों को राजनीति का अध्ययन करना चाहिए परन्तु उसमें सक्रिय भाग नही लेना चाहिए। उनका आदर्श संयम, न कि स्वेच्छाचारिता, होना चाहिए। उन्होंने भरत के जीवन से संयम के दृष्टान्त प्रस्तुत किये और कहा कि विद्यार्थियों के लिए उचित है कि अपने गुरुओ के प्रति श्रद्धाभाव रखना सीखें। उन्होंने मालवीय जी की सेवाओं की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनका जीवन अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए दृष्टान्त-रूप है।

पुनः काशी और प्रयाग में

३० मई १९२० को असहयोग-आन्दोलन पर विचार करने के लिए भारतीय कांग्रेस कमेटी की वैठक काशी में हुई। गांधी जी ने उसमें भाग लिया। वहां से वह इलाहावाद गये जहां १ और २ जून को हिन्दू-मुसलमानों का एक संयुक्त सम्मेलन हुआ। उसमें शामिल हुए। ३ जून को इलाहावाद में ही भारतीय केन्द्रीय खिलाफत कमेटी की वैठक में वड़ा ही सारगर्भ भाषण किया।

संयुक्त प्रान्तीय सम्मेलन मुरादावाद में

अक्तूवर में गांधी जी ने फिर संयुक्तप्रान्त का दौरा किया। ११ अक्तूवर को संयुक्तप्रान्तीय सम्मेलन के मुरादावाद अविवेशन में शामिल हुए और असहयोग का समर्थन करते हुए कहा-"देश की स्वतन्त्रता का एक मात्र मार्ग असहयोग ही है।...भारत की आज़ादी के लिए दो शर्तें हैं :—१. हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और २. असहयोग-आन्दोलन की सफलता।...सरकार से सम्वन्ध वनाये रखना अपराव है।...ऐसी सरकार के साथ सहयोग करना, इसकी विवान-परिषदों में वैठना या अपने वच्चों को इसके स्कूलों में भेजना हराम है।"।

१२ अक्तूबर को वह अलीगढ़ पहुंचे और यूनियन हाल में छात्रों से भेंट की। इस अवसर पर उन्होंने कहा था—"यह काम डिस्ट्रक्शन (संहार) का अवश्य है, किन्तु फिलहाल जो खराब घास उग आई है उसे जड़मूल से उखाड़ने की ही जरूरत है जिससे कि अच्छे अनाज की बुवाई हो सके।"

अलीगढ़ में

१४ अक्तूबर को वह कानपुर पहुंचे। वहां परेड मैदान मे एक विशाल सभा हुई। इसमें उन्होंने असहयोग पर भाषण करते हुए संगठन की क्षमता और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर जोर दिया। इस अवसर पर उन्होंने कहा था—"ज्योंही लोगों की समझ मे यह बात आ जायगी कि उनके सहयोग के बिना ब्रिटिश शासन असम्भव है, तथा वे अपना सहयोग देना बन्द कर देंगे, त्योंही विजय हमारे हाथ होगी।" यहां उन्होंने यह भी कहा कि बलिदान ही सचाई की सच्ची कसौटी है। उन्होंने स्कूल, अदालत तथा कौंसिल के बहिष्कार की मार्मिक अपील की।

कानपुर में

१५ अक्तूबर को लखनऊ गये। वहाँ उसी दिन विराट सार्वजनिक सभा हुई जिसमें उन्होंने एक ओजस्वी भाषण करते हुए कहा—"ब्रिटिश शासन इस समय शैतानियत की तस्वीर है। जो खुदा के बन्दे हैं वे इस शैतानियत से वास्ता नही रख सकते।... इसे मिटाना हर भारतीय का कर्त्तव्य है।...गुलामी में रहने से तो समुद्र में डूब मरना बेहतर है।..."

लखनऊ में

१७ अक्तूबर को वह बरेली पहुँचे। वहाँ की नगरपालिका ने उनको मानपत्र दिया जिसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"आप निडर रहें।...आप पर कितने ही अत्याचार क्यों न किये जायँ, आप अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने का प्रयत्न करें।"

बरेली में

नवम्बर में उन्होंने पुनः सयुक्तप्रान्त के कई नगरों का दौरा किया। २० नवम्बर को झाँसी पहुँचे। इस अवसर पर झाँसी नगर तथा हार्डीगंज को, जहाँ उनका भाषण हुआ था, गांधी जी के स्वागत के लिए बहुत अच्छी तरह सजाया गया था। यहाँ उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य तथा अहिंसक असहयोग पर भाषण करते हुए सरस्वती पाठशाला के लिए चन्दे की अपील की।

झांसी

२३ नवम्बर को अलीगढ़ होते हुए वह आगरा पहुँचे। गांधी जी एक जुलूस में सभास्थल तक ले जाये गये। जुलूस के साथ बैण्ड बज रहा था और रास्ता खूब सजाया गया था। भीड़ इतनी ज्यादा थी कि सभास्थान तक पहुँचने में दो घण्टे लग गये। सभा में भाषण करते हुए उन्होंने हाल में ही आगरा में हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे का उल्लेख किया और फिर आपस में ही विवाद सुलझा लेने के लिए जनता को बधाई दी। इसके बाद उन्होंने जुलूस तथा भीड़ की अनुशासनहीनता का जिक्र करते हुए कहा—"भारत जलियाँवाला बाग हत्याकांड के लिए शोक मना रहा है। शोक के समय संगीत और जुलूस का विचार मुझसे सहन नहीं होता।" उन्होंने त्रिविध बहिष्कार के लिए अपील की।

आगरा में

उसी दिन आगरा के छात्रों की एक दूसरी सभा हुई जिसमें भाषण करते हुए गांधी जी ने कहा—"गुलामी की जंजीर की चमक से हमारी आँखें चौंधिया रही है और हम हैं कि उसे अपनी स्वतन्त्रता का चिह्न माने बैठे हैं।...जिस शिक्षा में सचाई से चलने का अवकाश नहीं वह कैसी शिक्षा है?...बिना शर्त्त स्कूलों का त्याग करना स्वतन्त्रता का पहिला पाठ है।...यह शिक्षा तो नास्तिकता की शिक्षा है।"

२४ नवम्बर को गांधीजी दिल्ली से काशी के लिए रवाना हुए। २५, २६ और २७ नवम्बर को वह काशी में मालवीयजी महाराज के पास रहे। इस अवसर पर उन्होंने काशी में कई व्याख्यान दिये। २६ नवम्बर १९२० को उन्होंने विश्वविद्यालय के अहाते के बाहर विद्यार्थियों की एक सभा में बड़ा ही मार्मिक भाषण किया। इसमें उन्होंने कहा—"आज तो आप ऐसी शिक्षा पा रहे हैं जिससे बेड़ियाँ और अधिक मजबूत हो जायँ।...देश में जहाँ कितनों को पूरा खाना नही मिलता, जहाँ की स्त्रियाँ बदलने को दूसरे कपड़े न होने के कारण कई कई दिनों तक स्नान नहीं कर पाती, वहाँ आप लोगों को पढ़ने-लिखने के लिए बड़े-बड़े महल चाहिए? देश के लिए दर्द, मेरे अन्दर जो आग जल रही है, वही आपके भीतर जल रही हो तो मकान-वकान की बात भूल जाइए और मेरी बात मान कर असहयोग कीजिए। स्वराज्य तभी मिलेगा जब आप अपना धर्म पहिचानेंगे। जयनाद करने से वह नहीं मिल सकता।"

काशी में

उसी दिन (२६ नवम्बर को) टाउन हाल के मैदान में एक सभा बा० भग-

वानदास जी की अध्यक्षता में हुई। इस सभा में पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहर-लाल नेहरू, मौ० अबुलकलाम आजाद और देशवन्धु चित्तरंजन दास इत्यादि अनेक वड़े-वड़े नेता उपस्थित थे। वड़ी भीड़ थी। लोगों में वड़ा उत्साह था। लगता था कि राष्ट्रीय भावनाओं का एक सैलाव चारों तरफ़ वढ़ता जा रहा है। गांधी जी ने देश के युवकों को सम्वोधित करते हुए कहा—"यह सल्तनत राक्षसी सल्तनत है। हमारा कर्त्तव्य है कि या तो उसे ठीक करें या मिटा दें।...न सरकार से मदद ले, न सरकार को मदद दे, खितावों, अदालतों, वकालत, स्कूलों का त्याग करना चाहिए। ३० तारीख को कौंसिलों का चुनाव है। यह हमारी परीक्षा का दिन होगा।...फिर सैनिक सेवा हराम है। आप भरती के सिपाही न हों; आपको हिन्दुस्तान की आजादी का सिपाही वनना चाहिए।...स्वदेशी अपनाओ, खादी पहिनो, हिन्दू-मुस्लिम एकता रक्खो तो स्वराज्य मिला रखा है।"

सार्वजनिक सभा में

२७ नवम्बर को उन्होंने फिर यूनिवर्सिटी हाल में छात्रों की सभा में भाषण करते हुए कहा—"मेरा धर्म सिखाता है कि जिस वात को मैं धर्म समझता हूँ उसके लिए प्यारी-से-प्यारी वस्तु को भी त्याग दूँ। मैं तो अधर्मी के हाथ से स्वर्ण-दान भी नही ले सकता। इसी तरह जहां उसकी ध्वजा फहराती है, वहां विद्या लेना दोष समझता हूँ। मैं तो इस सल्तनत मे रहना ही नही चाहता। मैं २४ घण्टे एक ही जप करता हूँ कि इसे कैसे हटाऊँ। विद्यार्थियों से मैं कहता हूँ कि इस सल्तनत से सहकार हटा लेना ही हमारा परम धर्म है।...असहयोग ही एक उपाय है।...हमें वड़े आत्म-वलिदान की आवश्यकता है। ईश्वर आपको स्वच्छ भाव दें, वल दें।..."

छात्रों के वीच

२७ नवम्वर को ही हिन्दू विश्वविद्यालय के सह-उपकुलपति श्री ध्रुव जी की अध्यक्षता में राजघाट के समीप एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें गांधी जी ने हिन्दू धर्म की दृष्टि से गोरक्षा का महत्व समझाया और कहा कि केवल असहयोग ही स्वराज्य-प्राप्ति में आपकी सहायता कर सकता है।

गोरक्षा की सभा में

२८ नवम्बर को वह इलाहावाद पहुँचे। वहाँ पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक सार्वजनिक सभा हुई। इसमें गांधीजी ने हिन्दी मे भाषण करते हुए कहा—"...यह समय काम करने का है, भाषणों और सभाओं का नही। यह सरकार आसुरी है।...आपको चाहिए कि इसे सुधार दे या समाप्त

इलाहावाद

कर दें। इसके लिए एकता बहुत जरूरी है। यदि हिन्दू-मुसलमान एक हो जायं तो संसार की कोई भी शक्ति हमें दबा नहीं सकती।...जैसे उजाला अँधेरे को दूर करता है वैसे ही हम झूठ को सत्य से और बुरी शक्तियों को आत्म-बल से नष्ट कर सकते हैं।"

स्त्रियों की सभा

२६ नवम्बर को महिलाओं की सभा में बोलते हुए उन्होंने कहा—"आप अपने पतियों और पुत्रों से कर्त्तव्य के पथ पर चलने को कहें तथा स्वयं स्वदेशी को अपनाकर स्वतन्त्र भारत के निर्माण में प्रभावकारी सहायता दें।...स्वदेशी स्वराज्य प्राप्त करने का एक अमोघ उपाय है और उसके प्रचार का मुख्य भार भारतीय स्त्रियों पर है।"

दूसरी जन-सभा में

२६ नवम्बर को गांधीजी ने इलाहाबाद की एक दूसरी सभा में बोलते हुए कहा..."संयुक्तप्रान्त हिन्दुस्तान का केन्द्र है, इसलिए उससे देश के अन्य भागों से आगे रहने की आशा की जाती है। झाँसी में हिन्दू और मुसलमान छात्रों ने गीता और कुरान हाथ में लेकर शपथ ली है कि वे सरकार-द्वारा नियन्त्रित संस्थाओं को छोड़ देंगे।...संयुक्त प्रान्तीय सरकार की चाल सफल हो गई और उसने फूट डालकर दोनों जातियों को पौरुषहीन बना दिया है।...मेरा अनुरोध है कि आप पराक्रमी बनें और कायरों के दिलों में पैदा होनेवाली शंकाओं को निकाल बाहर करें।" ३० नवम्बर को आनन्द भवन में विद्यार्थियों की सभा में बोलते हुए उन्होंने कहा—"प्रतिज्ञा लो तो उसके लिए मरना सीखो। कसम लो तो फिर धरती रसातल में चली जाय तो भी उसे न तोड़ो। मैं आप में शान्त साहस फूँकना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि आपका हृदय कुर्बानी और तपश्चर्या के योग्य बने।"

तिलक विद्यालय का उद्घाटन

१ दिसम्बर को गांधीजी ने इलाहाबाद में राष्ट्रीय शिक्षा देने के निमित्त तिलक विद्यालय का उद्घाटन किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा..."स्वराज्य के लिए जितना आत्मत्याग तिलक ने किया है उतना किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया। इसलिए उस महान देशभक्त के नाम पर इसका नाम रखा जाना उचित ही है। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप अपने आचरण से अहिंसात्मक असहयोग को सफल बनायें।"

१९२१

धीरे-धीरे १९२१ आया। देश में राष्ट्रीय भावना का प्रवाह कोने-कोने तक

पहुँच गया। फरवरी १६२१ में देश का दौरा करते हुए गांधीजी पुनः काशी आये। ६ फरवरी (२१) को टाउन हाल के मैदान में एक विराट सार्वजनिक सभा हुई। इस सभा में एक लाख के ऊपर श्रोता उपस्थित थे। बा० भगवानदास जी अध्यक्षता कर रहे थे। गांधी जी ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा—"यह ठण्डी हिम्मत और अमन की लड़ाई है। यदि हमने तलवार उठाकर अँग्रेज का या अपने भाई का गला काटा तो हमारा पतन हो जायगा।...मैं सब बातें छोड़ देने के लिए तैयार हूँ—वकीलों का प्रश्न न उठाऊँ, छात्रों को न छेड़ूं, परन्तु मैं शान्ति कभी नही छोड़ सकता। जब हम परदेसी राज्य नही चाहते तो हमे परदेसी लिबास और विदेशी वस्त्र भी छोड़ देना चाहिए। यदि हम यह नहीं कर सकते तो एक क्या, दस वर्षो में भी स्वराज्य नही मिल सकता।..."

टाउनहाल की विराट सभा

दूसरे दिन, १० फरवरी (१६२१) को काशी विद्यापीठ का शिलान्यास करते हुए अपने भाषण में कहा—"हमारी लड़ाई ऐसी है कि पिता को पुत्र के, पति को पत्नी के, पत्नी को पति के वियोग का दुःख सहना पड़ेगा।...जब हमें निश्चय हो गया कि सरकार-नियन्त्रित विद्यालयो में शिक्षा लेना पाप है तो उन्हे त्यागना ही उचित होगा।...हमारे बिस्तरे के नीचे पचासों वर्षों से साँप छिपा था। हमें उसका पता नही था। आज हमें एकाएक पता लगता है। हम अब उस बिस्तरे पर नही रह सकते। जिस विद्यालय पर सरकार की ध्वजा फहराती है वहाँ विद्यादान लेना पाप-कर्म है। यदि आप उसे पाप समझते है तो यहाँ चले आइए।...असहयोग ही हमारे लिए एकमात्र शस्त्र है। हम सबको प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि विदेशी वस्त्र धारण करना महापाप है।...हमारा दूसरा कर्त्तव्य अपनी मातृ-भाषा को विकसित करना है।.. प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि दिन-प्रतिदिन इस विद्यापीठ की वृद्धि हो।..."

काशी विद्यापीठ का शिलान्यास

इसीदिन १० फरवरी को गांधी जी फैजाबाद चले गये और वहाँ की सभा में किसानों-द्वारा की हुई हिंसा की चर्चा की और उसके लिए खेद प्रकट किया। उन्होंने हिंसा की अत्यन्त तीव्र और स्पष्ट निन्दा की और कहा कि ऐसा करना ईश्वर और मानव के प्रति पाप है। उन्होंने जमींदारों और किसानों के बीच झगड़ा कराने से समस्त प्रयत्नों की भर्त्सना की। इसी सम्बन्ध मे उन्होंये कहा—"हिंसा कायरता का लक्षण है।...तलवार तो कमजोर का हथियार है।" इस

फैजाबाद में

सभा में उन्होंने लोगों से संगठित होने, विदेशी वस्त्र का त्याग करने और चर्खा चलाने की अपील की।

लखनऊ में

२६ फरवरी को गांधी जी लखनऊ पहुँचे और खिलाफत की सभा में भाषण करते हुए कहा कि आप लोग तलवार तो नही खीच सकते किन्तु स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर तलवार खीचने की शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। उन्होने लोगों को व्रिटिश माल का वहिष्कार करने और विदेशी वस्त्र का त्याग करने की सलाह दी।

इलाहावाद में

मई में वह ८, ६ और १० को इलाहावाद रहे। ८ मई को सरूप कुमारी नेहरु (वाद की विजयलक्ष्मी पंडित) के विवाहोत्सव में शामिल हुए। १० मई को इलाहावाद जिला सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में प्रतिनिवियों और किसानों के अलावा कस्तूरवा, लाला लाजपत राय, मौलाना शौकत अली, पण्डित रामभजदत्त चौधरी, मौ० हसरत मोहानी, डा० किचलू, स्वामी श्रद्धानन्द, सर्वश्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, सरोजिनी नायडू और जवाहरलाल उपस्थित थे। इस सम्मेलन में नागरिकों की ओर से गांधीजी को एक मानपत्र दिया गया। इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"अपने अभिनन्दन पत्र में आप लोगों ने कहा है कि इलाहावाद का एक नाम और है—फकीरावाद। मेरी हार्दिक इच्छा है यह नगर पूरी तरह से उस नाम के योग्य हो। इस आन्दोलन को सफल वनाने के लिए हमें फकीरों की ही जरूरत है, और मैं आशा करता हूँ कि इसमें आपका नगर अगुआई करेगा।" इसके वाद उन्होंने हर हालत में अहिंसा तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य वनाये रखने पर जोर दिया।

अगस्त में पुनः दौरा

५ से १० अगस्त (२१) तक गांधी जी ने फिर संयुक्तप्रान्त के कई भागों का दौरा किया। ५ अगस्त को अलीगढ़ जाकर वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों से भेंट तथा विचार-विमर्श किया। वहाँ से ६ अगस्त को मुरादावाद पहुँचे और उसी दिन वहाँ की तीन सभाओं में भाषण किया—सार्वजनिक सभा में, महिला-मण्डल में तथा महाराजा थियेटर में आयोजित एक सभा में। इन सभी सभाओं में उन्होंने लोगों को अहिंसात्मक असहयोग का रहस्य समझाया और स्वदेशी अपनाने तथा विदेशी वस्त्र त्यागने पर जोर दिया।

मुरादावाद से ७ अगस्त को गांधीजी लखनऊ पहुँचे और अमीनुद्दौला पार्क

की एक महती सार्वजनिक सभा में भाषण किया। इस सभा में लगभग एक लाख आदमी उपस्थित थे। अपने भाषण में गांधीजी ने अहिंसात्मक असहयोग तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर बहुत बल दिया। कहा—"यह सूबा दमन नीति में और सूबों से आगे है। फिर भी मैं आप से शान्त रहने के लिए कहूँगा। यदि आप लोग पचास हजार ऐसे कार्यकर्त्ताओं की एक फौज तैयार कर लें जो स्वतन्त्रता की रक्षा का फाटक बनने को तैयार हो तो मैं आशा करता हूँ कि संसार की कोई फौज उसे हरा न सकेगी।" लखनऊ से ही ८ अगस्त को उन्होंने काठियावाड़ के राजा-महाराजाओं के नाम एक अपील निकाली जिसमे उन्हें सादा जीवन बिताने, चर्खे का प्रचार करने, शराब की दुकानें बन्द करने और जनता की गरीबी पर ध्यान देने को कहा।

लखनऊ में

९ अगस्त को वह कानपुर पहुँचे। पहिले महिलाओं की सभा में उनसे स्वदेशी अपनाने तथा विदेशी वस्त्र त्यागने की अपील की। वहाँ से वह मारवाड़ी विद्यालय मे आयोजित वस्त्र-व्यापारियों की सभा में गये और उन्हें विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की आवश्यकता समझाई। सार्वजनिक सभा में कानपुर के नागरिकों-द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में उन्होने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की परम आवश्यकता पर बल दिया और कहा—"शान्ति और अहिंसा की बड़ी आवश्यकता है। हमें अपना क्रोध जीतना चाहिए। . . .स्वदेशी के बिना स्वराज्य नही मिल सकता। महिलाओं का धर्म है कि वे खादी ही पहिनें। हमें मरना सीखना है। यदि गोली चले तो उसे अपनी छाती पर रोकना चाहिए, न कि पीठ देनी चाहिए।"

कानपुर में

१० अगस्त को वह इलाहाबाद पहुँचे। पहिले उन्होंने महिलाओं की सभा मे स्वदेशी पर भाषण दिया और उनसे विदेशी वस्त्र छोड़ने, चर्खा चलाने और खादी पहिनने के लिए कहा। शाम को पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में स्वराज्य-सभा के मैदान में सभा हुई। दस हजार से ज्यादा लोग उपस्थित थे। गांधी जी ने अपने भाषण में कहा—"आपको जेल और मौत का डर छोड़ देना चाहिए, बल्कि अनुभव करना चाहिए कि निर्दोष व्यक्ति की प्रत्येक जेल-यात्रा और मृत्यु स्वराज्य को अधिकाधिक निकट ले आती है।" यहाँ उन्होने विदेशी वस्त्रो की ढेर में आग लगाते हुए सबसे स्वदेशी और खादी अपनाने तथा विदेशी वस्त्र त्यागने की अपील की।

इलाहाबाद में

घोर दमन के युग में

१९२१ के अन्त तक सरकार वेपर्द हो गई। वह घोर दमन पर आ गई। नेता गिरफ्तार कर लिये गये। सभाओं पर रोक लगा दी गई। हर तरह के सार्वजनिक विरोध पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इस तीव्र दमन के कारण उत्पन्न आवेश में जनता का एक भाग यह भूल गया कि इस आन्दोलन में अहिंसा एक केन्द्रीय सिद्धान्त है और घोर उत्तेजना के बीच भी उसे छोड़ना नही है। संयुक्त-प्रान्त मे सरकार का दमन पाशविक सीमा तक पहुँच गया था। गोरखपुर जिले के चौरीचौरा स्थान पर पुलिस की ज्यादतियों से उत्तेजित होकर एक क्रुद्ध भीड़ ने ४ फरवरी १९२२ को थाना घेर लिया; फिर उसमें आग लगा दी। इस काण्ड में २१ सिपाही तथा चौकीदार मारे गये। इस घटना से गांधीजी को मार्मिक क्लेश हुआ और उन्होंने इसे ईश्वर की ओर से चेतावनी समझा। १२ फरवरी को उन्होने प्रायश्चित्तस्वरूप पाँच दिनों के उपवास का आरम्भ किया और उनके आग्रह पर कांग्रेस कार्य-समिति ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर दिया। २५ फरवरी को भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भी इसे स्वीकार कर लिया।

१० मार्च को सरकार ने गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया। १८ मार्च को उन्हें ६ साल की कैद की सजा दी गई। दमन जारी रहा और अन्त में उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपनी कलकत्ता की बैठक में ११ नवम्बर को सविनय अवज्ञा का प्रस्ताव पास कर दिया।

गांधीजी यरवदा जेल में रक्खे गये थे। २१ अप्रैल १९२३ को उन्हें पेट में जोरो का दर्द हुआ। ५ और १५ मई को कर्नल मैडक ने उनकी परीक्षा की। २ जुलाई की रात बड़े कष्ट से बीती; इलाज से दर्द कम हो गया किन्तु सिल-सिला बना रहा। ८ जनवरी १९२४ को उन्हें फिर जोरों का पेटदर्द हुआ। १२ जनवरी को सैसून अस्पताल (पूना) में कर्नल मैडक ने उनके अपेण्डिक्स (उपान्त्र-शोथ) का आपरेशन किया। ४ फरवरी को उन्हें रिहा कर दिया गया किन्तु वह अस्पताल में ही रहे। उनके सक्रिय नेतृत्व के अभाव में आन्दोलन शिथिल पड़ गया। हिन्दू-मुसलमानों के परस्पर सम्बन्ध में भी गिरावट आ गई तथा कांग्रेस में भी मत-भेद के चिह्न दिखाई पड़े जिसके फलस्वरूप आगे जाकर परिवर्त्तनवादी तथा अपरिवर्त्तनवादी दो दल हो गये। गांधी जी ने मोतीलाल जी के स्वराज्यदल के हाथ कांग्रेस की बागडोर सौंप दी और अपने अनुयायियों से रचनात्मक सेवा-कार्य में लग जाने को कहा। परन्तु देश की स्थिति बिगड़ती ही गई; हिन्दू-मुस्लिम तनाव बढ़ता गया। जगह-जगह दंगे होने लगे। १७

सितम्बर १९२४ को दिल्ली में प्रायश्चित्त और प्रार्थना के लिए गांधी जी ने २१ दिनों का उपवास शुरू किया।

जेल, बीमारी तथा व्यस्तता के कारण यद्यपि इन २-३ वर्षों में उन्हें इस प्रान्त मे आने का अवसर नही मिला किन्तु यहाँ की घटनाओं और कार्यों में उनकी दिलचस्पी बराबर बनी रही और उन पर अपने साप्ताहिक पत्रों—यंग इण्डिया, नवजीवन, हिन्दी नवजीवन—में वह बराबर टिप्पणी करते रहे। उनको इस बात से बड़ी वेदना हुई कि जो संयुक्तप्रान्त भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इतना आगे था, वही चौरीचौरा हत्याकाण्ड के कारण समस्त भारत की प्रगति और आन्दोलन मे मुख्य अवरोध बन गया।

१९२५ में

स्वस्थ होने पर उन्होंने देश में भ्रमण का कार्य फिर शुरू किया। बंगाल और बिहार का दौरा करते हुए १६ अक्तूबर को वह संयुक्तप्रान्त आये। उसी दिन बलिया की जिला परिषद मे उनका भाषण हुआ। बड़ी भीड़ थी। कई संस्थाओं की ओर से उन्हें मानपत्र दिये गये। गाधीजी ने इन मानपत्रों के लिए लोगों को

बलिया में

धन्यवाद दिया और कहा—"मैं १९२१ में ही बलिया आना चाहता था पर न आ सका। अब ४ साल बाद आप लोगों के बीच आकर बहुत खुश हूँ। समयाभाव न होता तो मैं आप लोगों के साथ अधिक समय तक रहता। एक बात का दुःख मुझे जरूर है। बलिया के निवासियों की शक्ति में तो मुझे पूरा विश्वास है किन्तु कार्यकर्त्ताओं की संगठन-क्षमता से ही शक्ति को नियन्त्रण मे रक्खा जा सकता है। यहाँ जो रचनात्मक काम हुआ है उसके लिए मैं बधाई देता हूँ। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि यहाँ हिन्दू मुसलमान मिल-जुल कर रह रहे है।" भारत की गरीबी का उल्लेख करते हुए उन्होंने लोगों से खादी पहिनने और चर्खा अपनाने की अपील की।

१७ अक्तूबर को बलिया से लखनऊ जाना था। बनारस में गाड़ी बदलनी थी। इसमे ५ घण्टे मिलते थे। इस अवधि का लाभ उठाकर बा० भगवानदास

काशी विद्यापीठ में

जी ने काशी विद्यापीठ के विद्यार्थियो की एक सभा कर ली। छात्रो को सम्बोधित करते हुए गाधीजी ने कहा—"मेरे निकट देश को दरिद्रता से मुक्ति दिलानेवाली चर्खे को छोड़कर दूसरी चीज़ नही है।...मै देहात का अर्थशास्त्र जानता हूँ, इसलिए चर्खे का दीवाना हूँ। चौबीस घण्टों मे भले ही आधा घण्टा आप चर्खा कातें परन्तु अनिवार्य रूप से काते।" इसके बाद गाधीजी म्युनिस्पल

मिडिल स्कूल कवीरचौरा में कताई-वुनाई का जो काम हो रहा था, उसे देखने गये और वड़ी पियरी मुहल्ले में स्व० रामदास जी गौड़ के घर जाकर श्रीराम की मूर्ति का दर्शन भी किया।

उसी दिन (१७ अक्तूवर) को लखनऊ पहुँचे। वहाँ केवल तीन ही घण्टे ठहरे किन्तु इस अल्प समय में ही उन्होंने नगरपालिका का अभिनन्दनपत्र स्वीकार किया और सार्वजनिक सभा में भापण भी किया।

लखनऊ में

नगरपालिका की सभा शाम को ५ वजे हुई थी और उसमें मोतीलाल जी तथा जवाहरलाल जी उपस्थित थे। यह मान-पत्र अरवी-फारसी-वहुल उर्दू में लिखा गया था और उसमें से जान-बूझ कर एक-एक संस्कृत शव्द निकाल दिया गया था। इस पर गांवीजी ने राष्ट्र-भापा के रूप पर वोलते हुए कहा—"वह लखनवी उर्दू या संस्कृतनिष्ठ हिन्दी नहीं हो सकती, हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।" फिर कहा—"आप यहाँ की सड़क भी वैसी ही अच्छी वना दें जैसी आपकी ज़वान है।...यह शर्म की वात है कि यहाँ के हिन्दू-मुसलमानों में अनवन है। इस समय सारे मुल्क की हवा खराव है। हिन्दू मुसलमानों को आपस में लड़ना हो तो लड़ ले किन्तु अंजाम क्या होगा? दोनों को यहीं रहना है।...आखिर दोनों को मिलना होगा।..."

सार्वजनिक सभा लखनऊ के प्रसिद्ध वकील श्री हरकरणनाथ मिश्र की अध्यक्षता में अमीनुद्दौला पार्क में हुई जिसमें गांवीजी ने कहा—"मुझे वहुत अफसोस है कि लखनऊ, जिसके वारे में मेरा ख्याल वहुत अच्छा था, आज साम्प्रदायिक झगड़ों का अखाड़ा वन गया है।...अगर आप समझते हैं कि उसका उपाय तलवार ही है तो उसी को आज़माकर देख लीजिए...पर मेरा निवेदन है कि अपने मतभेद दूर करके ययासम्भव शीघ्र एकता प्राप्त कर लीजिए। हाँ, वह एकता असली हो, नकली नहीं...।" अन्त में उन्होंने खादी पहिनने और चर्खा अपनाने की अपील करते हुए कहा..."खादी का मतलव है प्रत्येक सात आने में से पाँच आने गरीवों को मिलना, और मिल के कपड़े का मतलव है हर पाँच आने में से एक पैसा गरीव को मिलना।" अस्पृश्यता के विषय में कहा—"यह हिन्दू वर्म का भाग नहीं। यह अवार्मिक और ईश्वर के विरुद्ध है।"

उसी दिन (१७ अक्तूवर) रात दस वजे मोटर से सीतापुर पहुँचे। वहाँ उन्हें हिन्दू सभा और वैद्य सभा के मानपत्र देने के लिए लेजाया गया। हिन्दू सभा के मानपत्र को ग्रहण करते हुए उन्होंने कहा—

सीतापुर में

"कुछ लोगों का विचार है कि मैं अहिंसा के नाम पर कायरता का प्रचार कर रहा हूँ। यह विल्कुल गलत

है।...सच्ची अहिंसा के लिए सच्ची बहादुरी जरूरी है। हिन्दू-संगठन के लिए चरित्र-निर्माण सबसे ज्यादा आवश्यक है। जबतक यह नही होता, जबतक प्रत्येक हिन्दू सत्य और सच्चरित्रता पर आरूढ़ नही होता तबतक सच्चा संगठन असम्भव है। उस हालत मे हिन्दू धर्म कही का न रह जायगा।" वैद्य सभा के मानपत्र के उत्तर में कहा—"वैद्यो का आत्मसन्तोषी रुख मुझे पसन्द नही।... यह सोचना गलत है कि उन्हें पश्चिम से कुछ नही सीखना है।...उन्हें जागरूक और क्रियाशील रहना चाहिए।" उसी दिन उनका नगरपालिका की ओर से अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर उन्होने कहा था—"सेवा और आत्म-त्याग की सच्ची भावना के विना नगरपालिका में प्रवेश करना बेकार है।" १८ अक्तूबर को श्रीरामजीलाल शर्मा की अध्यक्षता में प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से गांधीजी का अभिनन्दन किया गया। उत्तर में गांधीजी ने कहा था—"हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।" इसी दिन (१८ अक्तूबर को) सीतापुर के लालबाग में मौ० शौकतअली की अध्यक्षता में संयुक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। इसमें मौ० मुहम्मद अली, पं० मोतीलाल, पं० जवाहर-लाल और डा० सय्यद महमूद आदि उपस्थित थे। अनुरोध किये जाने पर सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए गांधीजी ने कहा—"...अगर भारत का हर आदमी चर्खे को अपना ले तो कोई भी भूखों न मरे। जनता के सहयोग और सहायता के बिना स्वराज्य सम्भव नहीं है। यह सहयोग और सहायता ग्राम-संगठन के बिना नही मिल सकती और इस संगठन का एक मात्र उपाय चर्खा है। मैंने चर्खा-संघ की स्थापना लोगों को संगठित करने के लिए ही की है, इसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नही है।" उसी दिन वहाँ एक अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलन राजा साहब महेवा की अध्यक्षता में हुआ। उसमें बोलते हुए गांधीजी ने कहा—"... मेरा निश्चित विश्वास है कि हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं है। किसी भी मानव के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार करना पाप है।"

कानपुर में

कांग्रेस में शामिल होने के लिए गांधीजी २३ दिसम्बर (१९२५) को कान-पुर पहुँच गये थे। २४ दिसम्बर को उन्होंने कांग्रेस प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। उन्होने कहा—"मैं इसे एक पुण्यकार्य मानता हूँ।...मैं हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का पक्षपाती जरूर हूँ किन्तु उसमें यदि खादी को स्थान नहीं दिया गया तो मैं उसे भी स्वीकार न करूँगा।...मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप सब विदेशी और देशी मिलों के कपड़ो का पूरा-पूरा बहिष्कार कर दें तो एक वर्ष से भी कम समय मे हमें स्वराज्य मिल सकता है।" २४ दिसम्बर को

कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने सदस्यों के आदतन खादीधारी होने का प्रस्ताव उपस्थित किया और कहा—"यदि आप लोगों को सचमुच ही विदेशी कपड़े का बहिष्कार करना है तो मिलों के कपड़े का विचार त्याग दें। मैं मिलों के प्रान्त का ही निवासी हूँ और मिल-मालिकों के साथ मेरा मीठा सम्बन्ध भी है किन्तु मैं जानता हूँ कि देश के संकटकाल में उन्होंने देश का साथ कभी नहीं दिया।... अँग्रेजों के साथ लडने में हमें अपना खून पानी करना होगा। हाँ, पानी। स्वराज्य को प्राप्त करना कोई खेल नही है। उसे पाने के लिए भारतीयों को अपनी गर्दन कटाने के लिए तैयार रहना चाहिए। ...मैं आपको सचेत करता हुँ कि यदि आपने खादी को त्याग दिया तो जनता भी आपका परित्याग कर देगी।" २५ दिसम्बर के कांग्रेस अधिवेशन में उन्होने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों से सम्बन्धित प्रस्ताव उपस्थित किया तथा उसके विषय मे एक मार्मिक भाषण भी दिया। प्रस्ताव हर्षध्वनि के बीच पास हुआ।

गांधीजी २६ दिसम्बर तक कानपुर रहे। २६ को उन्होंने एसोशिएटेड प्रेस आफ इण्डिया को एक भेंट देते हुए कहा—"मेरा काम तो यही है कि मैं शान्त रहूँ और जो रचनात्मक कार्य कर सकूँ, करता रहूँ; शेष अर्थात् कांग्रेस के प्रस्तावों को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी पूर्णरूप से स्वराजियों पर छोड़ दूँ।"

३ जनवरी १९२६ को गांधीजी ने सार्वजनिक जीवन से साल भर के लिए संन्यास लेने और साबरमती आश्रम तक ही अपना कार्य सीमित रखने की घोषणा की।

१९२७

स्वभावतः १९२६ में गांधीजी मुख्यतः आश्रम में ही रहे। दिसम्बर के अन्त में वह गुवाहाटी (आसाम) कांग्रेस गये। इस कांग्रेस में उनके अनुयायियों ने खादी-प्रदर्शिनी का निर्माण किया था जिसे देखकर मालवीय जी महाराज बड़े प्रभावित हुए और गांधीजी से अनुरोध किया कि जब कभी बनारस आवें, मेरे विश्वविद्यालय के छात्रों को खादी का सन्देश सुनाने की कृपा करें। ७ या ८ जनवरी १९२७ को गांधी जी कृपालानी जी द्वारा स्थापित गांधी-आश्रम के वार्षिकोत्सव में शामिल होने के लिए काशी आये और आश्रम का कार्य देखकर सन्तोष व्यक्त किया। इस अवसर पर मालवीय जी के अनुरोध से उन्होंने विश्वविद्यालय के छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा—"...तुम जो शिक्षा पाते हो उसका खर्च चुकाते है भुक्खड़ गाँववाले। मैं तुमसे उन गरीबों का जरा-सा

काशी में

बदला चुकाने को कहता हूँ। उनके लिए थोड़ा यज्ञ करो। गीता का वचन है कि जो यज्ञ किये विना खाता है वह अपना भोजन चुराता है।...हमारे लिए इस युग का यज्ञ है—चर्खा...तुम कल कृपालानी जी के खादी-भण्डार पर धावा करो और उसमे एक गज खद्दर भी बाकी न छोड़ो और आज अपनी जेवें खाली कर दो।" अन्त में कहा—"पच्छिम से आने वाली वायु से बचो। वह अपवित्रता की वायु है।...अगर तुम समय रहते न चेते तो अनीति की बहिया, जिसका बल दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है, तुम्हे बहा ले जायगी। मैं अपनी सारी शक्ति से तुम्हें पुकार-पुकार कर कहता हूँ कि सँभलो, चेतो, और जलने के पहिले ही भाग चलो।"

९ जनवरी को श्रद्धानन्द-दिवस था। उस दिन गांधीजी, मालवीयजी महाराज के साथ पैदल जुलूस बनाकर दशाश्वमेध घाट गये। और वहाँ स्नान करने के बाद स्वर्गीय आत्मा के लिए उन्होने जलाञ्जलि दी। फिर काशी विश्वनाथ मन्दिर मे जाकर प्रार्थना की। मन्दिर के बाहर कुछ गज पर यह जुलूस एक सभा में बदल गया जिसमें महिम्नस्तोत्र का पाठ हुआ; देवदास गाधी ने 'रामधुन लागी' गवाया और गाधी जी ने भाषण किया तथा स्वामी जी के गुणो एवं उनके जीवन से प्राप्त शिक्षा की चर्चा की। १० जनवरी को वह खादी-यात्रा पर विहार चले गये।

मार्च (१९२७) के मध्य मे गांधीजी गुरुकुल काँगड़ी के महोत्सव में शामिल होने के लिए हरद्वार आये। उन दिनो हरद्वार स्टेशन पर उतरकर कनखल होते हुए गुरुकुल जाना पड़ता था। जिस दिन गांधीजी पहुँचे गुरुकुल महोत्सव का तीसरा दिन था। राजेन्द्र बाबू अध्यक्ष थे। उनके भाषण के बाद साधु टी० एल० वास्वानी उठे। उन्होंने सभी ओर बैठे हुए श्रोताओं को प्रणाम किया और बैठ गये। इसका भी बड़ा प्रभाव पड़ा। इसके बाद मालवीयजी महाराज ने आशीर्वचन कहे। जब गाधीजी बोलने उठे तो उनका गला भर आया और कुछ क्षणो के लिए तो वाणी बिल्कुल खो गई। गर्म पानी पीने पर आवाज कुछ सुधरी। तब बोले—"सच कहे तो स्वामी जी का देहान्त[1] हुआ ही नही है। देहान्त तो तब होगा जब हम उनकी सच्ची देह को मिटाने की कोशिश करेगे।...जबतक यह गुरुकुल कायम है तबतक स्वामी जी जीते ही हैं।...परन्तु गुरुकुल को चिरस्थायी रखने के लिए उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की आवश्यकता है जो हमने उनके जीवन में देखी। वीरता का लक्षण क्षमा और ब्रह्मचर्य का वीर्य-

गुरुकुल कांगड़ी में

---

१. स्वामी श्रद्धानन्द की दिसम्बर, १९२६ में, जब वह दिल्ली में बीमार पड़े थे, एक मुसलमान ने हत्या कर दी थी।

संयम है। इनकी रक्षा से ही तुम देश और धर्म की रक्षा कर सकोगे। ... तुम्हें पग-पग पर रुपये मिल जायंगे किन्तु ब्रह्मचर्य का, नीति का पाया यहाँ पर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टी में मिल जायगा। इस भूमि के तो आत्मा नहीं है। इसकी आत्मा तुम्हीं हो। अगर तुम आत्मबल खो दोगे और 'उदर निमित्त कृत वहुवेश:' जैसे वन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा वेकार जायगी। ..."

१९२९

निरन्तर के दुस्सह कार्य-भार से गांधीजी के स्वास्थ्य ने जवाव दे दिया। कर्नाटक के दौरे के आरम्भ में ही वह वीमार पड़ गये। उन्हे अम्वोली और नन्दी-दुर्ग (मैसूर) में विश्राम के लिए रखा गया। अप्रैल के अन्तिम सप्ताह (१९२७) से जून के मध्य तक वहाँ रहे। फिर उन्हें वंगलौर में रक्खा गया। ३ जुलाई (१९२७) को उन्होंने थोड़ा-थोड़ा काम फिर शुरू किया; मैसूर के प्रमुख केन्द्रो का दौरा करते रहे। इसी समय गुजरात भयंकर जल-प्लावन से तहस-नहस हो गया। उसके लिए मैसूर से ही अपील की। २४ अगस्त से तमिलनाड का दौरा शुरू किया। अक्तूवर में वह ट्रावनकोर (त्रिवांकुर) पहुँचे और मासान्त तक वाइसराय से मिलने दिल्ली चले गये। ८ नवम्वर को वाइसराय ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की। १३ नवम्वर को गांधीजी लंका-प्रवास पर गये। लगभग तीन सप्ताह वहाँ के विविध स्थानो का भ्रमण कर दिसम्वर (१९२७) के प्रथम सप्ताह में उन्होंने उड़ीसा का दौरा शुरु किया। उसके वाद मद्रास के कांग्रेस-अधिवेशन में शामिल हुए। वहाँ से सावरमती आश्रम चले गये। अप्रैल १९२८ में उनके अन्यतम आत्मीय और शिष्य मगनलाल गांधी का देहावसान हो गया। सावरमती आश्रम का सारा भार उन्हीं के कन्धों पर था। उनकी मृत्यु के वाद गांधीजी पर उसकी ज्यादा जिम्मेदारी आ गई। उधर वारडोली सत्याग्रह शुरु हो गया। साइमन कमीशन के आने से भी देश में वड़ी उत्तेजना का वातावरण पैदा हुआ। वह जहाँ जाता वहीं विरोधी प्रदर्शन होते और उसे काला झण्डा दिखाया जाता। लाहौर के एक ऐसे ही प्रदर्शन में लाला लाजपतराय के सीने पर लाठी की गहरी चोट लगी जिसके फलस्वरूप १७ नवम्वर (१९२८) को उनका देहान्त हो गया। १९२८ के अन्त में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसमें गांधीजी ने विदेशी वस्त्र-वहिष्कार, खादी-प्रचार तथा मद्य-निषेध का कार्यक्रम पास कराया। उन्हें १९२९ में यूरोप जाना था किन्तु इन रचनात्मक कार्यो को वढ़ाने की नैतिक जिम्मेदारी आ जाने से उन्होंने वह यात्रा स्थगित कर दी और फिर खादी के लिए दौरा शुरु किया। फरवरी (१९२९) में सिन्ध का दौरा

किया। ४ मार्च को कलकत्ता मे विदेशी वस्त्रों के अम्वार मे आग लगाकर होली जलाई। ८ मार्च को कुछ दिनों के लिए वर्मा गये। लौटने पर ६ अप्रैल से २१ मई तक आन्ध्र का दौरा किया।

उत्तरा खण्ड की पहाड़ी यात्रा

अव भी गांधीजी का स्वास्थ्य वहुत अच्छा न था। जवाहरलालजी ने इसीलिए सयुक्तप्रान्त के उत्तराखण्ड मे उनके लिए पहाड़ी यात्रा और विश्राम का सम्मिलित कार्यक्रम वनाया। गाधीजी ने उसे स्वीकार किया और ११ जून (१९२९) को अहमदावाद से चलकर १३ की सुवह वरेली पहुँचे। वहाँ नगर-पालिका-द्वारा मानपत्र दिया गया तथा सार्वजनिक सभा हुई जिसमें उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और खादी का सन्देश देते हुए कहा कि "देश के जीवन के लिए स्वराज्य आवश्यक है और निवासियों के हर वर्ग के वीच एकता इस स्वराज्य का मौलिक आवार है।"

१४ की सुवह हल्द्वानी पहुँचे। वहाँ एक छोटी सभा हुई। वहाँ से काठ-गोदाम गये। वहाँ भी सभा हुई। नैनीताल जाते हुए, ताकुला में रुके। कहते

हल्द्वानी और ताकुला

है, ताकुला में वह स्व० गोविन्द लाल शाह के मोती-भवन मे ठहरे। फिर उसी दिन नैनीताल मे २४ की शाम को सार्वजनिक सभा हुई जिसमें पर्वतीय अंचलों की गरीवी, खादी-प्रचार और आत्मावलम्वन पर वोले। १५ की सुवह वहाँ महिलाओ की भी एक सभा हुई जिसमे उनसे चर्खा और स्वदेशी अपनाने की अपील की।

१५ को भवाली आये। वह शाम को एक सार्वजनिक सभा हुई। शिल्प-कारों (अन्त्यजो) की ओर से भी उन्हे मानपत्र दिया गया। इसमें आशा की गई

भवाली और ताड़ीखेत

थी कि गावी जी के आगमन से उनके दु.खों का अन्त हो जायगा। गांवीजी ने कहा—"यह शक्ति मेरे नही, केवल ईश्वर के पास है और ईश्वर उन्ही की मदद करता है जो स्वयं अपनी मदद करने के लिए तैयार रहते है।" १६ को वह गरम पानी होते हुए ताडीखेत पहुँचे। यह रानीखेत के पास ही एक सुन्दर स्थान है जहाँ प्रेम-विद्यालय नामक राष्ट्रीय शिक्षणशाला का वार्षिकोत्सव था। गांवी-जी का दर्शन करने और उनका सन्देश सुनने के लिए दूर-दूर से लोग यहाँ एकत्र हुए थे। इस अवसर पर एक अच्छी खादी-प्रदर्शनी भी की गई थी जिसमे विद्या-लय के विद्यार्थियो-द्वारा वनाये गये सुन्दर ऊनी गलीचे, कम्वल और गर्म कपड़े

विशेष रूप से रक्खे गये थे। जिस मकान में गांधीजी ठहराये गये थे उसका सारा लकड़ी का काम विद्यालय के छात्रों ने अपने हाथ से किया था। गांधीजी ने अपने भाषण में आत्मशुद्धि तथा देश के लिए मरने-जीने की तैयारी जीवन में करने का सन्देश दिया। प्रेम-विद्यालय के कार्यकर्ताओं से कहा कि कोई भी संस्था कभी धनाभाव से नहीं मरती। आप लोग चर्खे के आन्तरिक महत्व पर ध्यान दें और उसमें सन्निहित प्राणशक्ति तथा ऊर्जा का अनुभव करें।

ताड़ीखेत में १६-१७ दो दिन रहने के बाद १८ को अल्मोड़ा के लिए रवाना हुए और उसी दिन वहाँ पहुँच गये। रास्ते में रानीखेत में भी स्त्रियों और पुरुषों की एक-एक सभा हुई। अलमोड़ा में उन्हें नगरपालिका की ओर से जो मानपत्र दिया गया था उसके उत्तर में उन्होंने वहाँ के पाठ्यक्रम में कताई-बुनाई का प्रवेश करके शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने पर जोर दिया। यहाँ से लौटते समय चालक की जल्दबाजी के कारण पद्मसिंह नाम का एक भाई उनकी गाड़ी से दब गया। बाद में वह अस्पताल में जाकर मर गया। इस घटना का गांधीजी के मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। १९ को स्त्रियों की तथा २० को सार्वजनिक सभा हुई। एक सभा ईसाइयों की भी उनके गिर्जा में हुई। गांधीजी ने इन सब सभाओं में भारत की गरीबी, बेकारी, स्वदेशी एवं चर्खे तथा सर्वजाति ऐक्य की चर्चा की और देश-हित के लिए लोगों का त्याग के लिए आवाहन किया।

अलमोड़ा

२१ जून को अलमोड़ा से चलकर गांधीजी कौसानी पहुँचे। कौसानी में वह एक डाक-बँगले में ठहराये गये। यही स्थान उनके विश्राम के लिए चुना गया था। २२ को वह बागेश्वर पहुँचे जो कौसानी से तेईस मील दूर पहाड़ की तलहटी में सरयू नदी के किनारे एक कस्बा है। बड़ा बीहड़ मार्ग था और गांधीजी को इच्छा के विरुद्ध डोली में बैठकर जाना पड़ा था। यही वह स्थान है जहाँ बेगार और कुलीपन की अमानुषिक प्रथा के विरुद्ध लड़ाई लड़ी गई थी। वहां पहाड़ी लोगों की एक बड़ी सभा हुई थी। वहाँ पहाड़ी क्षेत्र के लगभग ४० कार्यकर्ताओं से गांधीजी ने विचार-विमर्ष भी किया। २३ जून को वह कौसानी लौट आये। और वहाँ की अपूर्व प्राकृतिक शोभा के बीच लगभग दो सप्ताह तक रहे। यहाँ हिमाद्रि के सौन्दर्य पर वह मुग्ध हो गये। उन्होंने स्वयं ही लिखा है कि यहाँ आकर ही मैं समझ सका कि हिमालय क्या है। यहाँ उन्हें वह मानसिक शान्ति मिली जिसकी उन्हें आवश्यकता थी। यहाँ उन्होंने गीता की "अनासक्ति योग" नामक अपनी टीका पूर्ण की और उसकी भूमिका लिखी।

बागेश्वर और कौसानी

२ जुलाई को वह कौसानी से रवाना हो गये। लौटते समय शाम को रानीखेत ठहरे। दूसरे दिन (३ जुलाई को) मोटर से रामनगर गये। यह रास्ता बहुत खराब था, और बीच-बीच मे वर्षा होने लगती थी। यह पहाड़ के निम्न-भाग में बसी एक मण्डी है। वहाँ पहुँचते ही एक सार्वजनिक सभा हुई। एक सभा स्त्रियों की भी हुई। ४ को सवेरे एक घण्टे की रेलयात्रा के बाद वह काशीपुर पहुँचे। वहाँ जुलूस निकाला गया; किसी तरह भीगते-भागते सार्वजनिक सभा हुई। शाम को स्त्रियों की सभा मे खादी एवं स्वदेशी का सन्देश देकर गांधीजी रेल से दिल्ली चले गये। इस यात्रा में उन्हें खादी कार्य के लिए लगभग पचीस हजार की धनराशि प्राप्त हुई।

खादी के लिए दौरा

अर्से से वह संयुक्त प्रान्त में खादी के लिए दौरा करना चाहते थे परन्तु वह टलता ही आ रहा था। अन्त मे ११ सितम्बर से २४ नवम्बर १६२६ तक लगभग ढाई मास का लम्बा दौरा उन्होने किया। यह दौरा ११ सितम्बर को आगरा से शुरु हुआ। उस समय भी उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा न था, इसलिए संयुक्तप्रान्त के कुछ नगरों को प्रमुख केन्द्र बनाकर निकतवर्ती जिलों के कार्यकर्ताओं को वही बुला लिया गया था। इस प्रकार आगरा, कानपुर, बनारस, लखनऊ, गोरखपुर, मसूरी (विश्राम के लिए) तथा इलाहाबाद में कई-कई दिनों के निवास की व्यवस्था की गई थी। कही-कही केन्द्रस्थानो से सन्निकटवर्ती स्थानों में लघु-यात्राएँ करने का प्रबन्ध था।

प्रवास-क्रम

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पत्रावलियो को देखने पर मालूम होता है कि उनका प्रवास-क्रम निम्न प्रकार से रखा गया था। पर सम्भव है इसमें कुछ परिवर्त्तन भी हुआ हो.—

स्थान	आगमन की तिथि और समय	प्रस्थान की तिथि एवं समय
आगरा	११ सितम्बर ८ बजे प्रातः	२० सितम्बर ६ बजे प्रातः
मैनपुरी	२० सितम्बर ११-३० दिन	२१ सितम्बर ६ 'बजे प्रातः
फर्रुखाबाद	२१ सितम्बर ११ बजे दिन	२२ सितम्बर ६ बजे प्रातः
कन्नौज	२२ सितम्बर ८ बजे सुबह	२२ सितम्बर ६ बजे सुबह
कानपुर	२२ सितम्बर ११ बजे दिन	२४ सितम्बर ३ बजे दिन

	मौन-दिवस : कानपुर।	२३ सितम्बर
बनारस	२५ सितम्बर २ बजे प्रातः	२६ सितम्बर ६-१६ शाम
लखनऊ	२७ सितम्बर ६-१५ प्रातः	३० सितम्बर ४-१५ प्रातः
	मौन दिवस : फैजाबाद।	३० सितम्बर
फैजाबाद	३० सितम्बर ८-२२ प्रातः	२ अक्टूबर १-२२ प्रातः
बनारस	२ अक्तूबर ६-५५ प्रातः	२ अक्तूबर १२ बजे दिन
गाजीपुर	२ अक्तूबर ३ बजे दिन	३ अक्तूबर १० बजे प्रातः
आजमगढ़	३ अक्तूबर १२ बजे दिन	४ अक्तूबर ६ बजे प्रातः
गोरखपुर	४ अक्तूबर ६ बजे दिन	८ अक्तूबर ६-३० प्रातः
	मौन-दिवस : गोरखपुर।	७ अक्तूबर
बस्ती	८ अक्तूबर १०-४० प्रातः	९ अक्तू० ८-३० प्रातः
गोंडा	९ अक्तू० १०-४० प्रात०	१० अक्तूबर
बाराबंकी	१० अक्तू० ११-२७ दिन	१० अक्तू० ४-४७ शाम
हरदोई	१० अक्तू० ७-३५ शाम	११ अक्तू० १०-३५ प्राता
शाहजहांपुर	११ अक्तू० १२-३० दिन	११ अक्तू० ६-५ शाम
मुरादाबाद	११ अक्तू० ९ बजे रात	१२ अक्तू० ५-३० शाम
रामपुर	१३ अक्तू० ६-३७ प्रातः	१३ अक्तू० १-२९ दिन
नगीना	१३ अक्तू० १-४५ दोपहर	१४ अक्तू० १०-३५ प्रातः
	मौन-दिवस : १४ अक्तूबर	हरद्वार
हरद्वार	१४ अक्तू० ४-४५ सुबह	१६ अक्तू० ५-२५ प्रातः
देहरादून	१६ अक्तू० ७ शाम	१८ अक्तू० ८ बजे सुबह
मसूरी	१८ अक्तू० ११ बजे दिन	२७ अक्तूबर तक विश्राम
मेरठ	२८ अक्तूबर	
अलीगढ़	४ नवम्बर	
वृन्दावन	८ नवम्बर	
शाहजहांपुर	११ नवम्बर	
कालाकांकर	१४ नवम्बर	
इलाहाबाद	१५, १६, १७, १८ नवम्बर	

११ सितम्बर को गांधी जी आगरा पहुँचे। यहां २० सितम्बर तक उनका केन्द्रस्थान रहा। ११ को एक विराट सार्वजनिक सभा हुई जिसमें उन्होंने असहयोग की शक्ति में अपने विश्वास की पुनर्घोषणा की। आगरा कालेज तथा सेण्ट जान्स कालेज के विद्यार्थियों की

आगरा में

संयुक्त सभा में उन्होंने आत्मनियन्त्रण तथा चरित्र-निर्माण पर जोर दिया। यहाँ रहते समय बीच-बीच में वह निकटवर्ती गाँवो की दशा देखने के लिए चले जाया करते थे। हल्के कार्यक्रम तथा विश्राम के कारण वह आगरा के आस-पास के उन ऐतिहासिक स्थानों को भी देख सके, जिनको देखने की इच्छा बहुत दिनो से अपने मन में सँजोये हुए थे। फतेहपुर सीकरी मे अकबर-निर्मित इबादतखाना का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ताज तथा मुगल स्थापत्यकला के अन्य उदाहरणों को देखकर भी वह खुश हुए किन्तु यह भूल न पाये कि इनके निर्माण के पीछे बेगार तथा बलात् किये गये श्रम की कहानी छिपी हुई है।

मैनपुरी

२० सितम्बर को वह मैनपुरी पहुँचे। वहाँ एक सार्वजनिक सभा हुई, उसी मे सब संस्थाओ की ओर से अभिनन्दन-पत्र प्रदान किये गये। गांधी जी का समय बचाने के लिए उन्हें पढ़ा हुआ मान लिया गया। जिला कांग्रेस कमेटी के अभिनन्दन पत्र मे मैनपुरी की राष्ट्रीय जागृति की दीर्घकालीन परम्परा का, जो १८५७ से आरम्भ हुई थी, उल्लेख किया गया था।

कानपुर के छात्रों में

फर्रुखाबाद और कन्नौज मे वह २० तथा २१ को रहे। २२ सितम्बर (२९) को वह कानपुर पहुँचे। वहाँ तीन दिन रहे। इन तीन दिनो मे वहाँ अनेक सभाएँ हुई। स्त्रियों की सभा में उन्होने स्वदेशी अपनाने और खादी ग्रहण करने की अपील की; सार्वजनिक सभा में उन्होने रचनात्मक कार्यो का स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रनिर्माण के आन्दोलन में क्या स्थान है, यह समझाया। क्राइस्ट चर्च कालेज में छात्रों की जो सभा हुई, उसमे कहा—"मैं आपको १९३० मे जरूरत पड़ने पर हँसते हुए मौत का सामना करते देखना चाहूँगा। किन्तु वह मौत पापी और अपराधी की मौत न हो। ईश्वर केवल उन्ही का बलिदान स्वीकार करता है जो हृदय से पवित्र होते हैं इसलिए मृत्यु मे भी देश की सेवा का योग्य अस्त्र बनने के लिए आपको आत्मशुद्धि करनी चाहिए।"

वाराणसी में

२५ को वह वाराणसी पहुँचे। वहाँ भी कई सभाओं में उन्होने लोगो को खादी का आन्तरिक महत्व और रहस्य समझाया। सार्वजनिक सभा और स्त्रियों की सभा के अतिरिक्त यहाँ भी छात्रो की दो महत्वपूर्ण सभाओं में उन्होने भाषण किया। विश्वविद्यालय के छात्रो को सम्बोधित करते हुए कहा—"इन भूखे-नंगे कोटि-कोटि जनो के साथ तुम अपने ऐक्य का प्रदर्शन चर्खे के सन्देश का प्रचार

करके आसानी से कर सकते हो।... जो शिक्षण तुम्हें यहाँ दिया गया है, उसके योग्य सिद्ध हो।" इसी दिन वह काशी विद्यापीठ के पदवीदान समारोह में कुलपति के रूप में उपस्थित हुए और वहाँ विद्यार्थियों की कम संख्या होने के विषय में कहा —"...प्रत्येक महत् कार्य में उसके लिए लड़नेवाले की संख्या का महत्व नही होता; निर्णायक तत्व संख्या नहीं वे लड़वैये किन गुणों के पुंज है, यह होता है। संसार के महत्तम पुरुष सदा एकाकी रहे हैं। तुमको अपने अन्दर और ईश्वर के प्रति जीवन्त विश्वास रखना चाहिए।"

अपने कार्यक्रम के अनुसार वह उत्तर प्रदेश के प्रायः प्रत्येक महत्वपूर्ण केन्द्र में गये। मुस्लिम विश्वविद्यालय के उपकुलपति के आग्रह पर वह अलीगढ़ गये।

अलीगढ़ में

वहाँ उन्होने छात्रों में भावोद्रेक से भरी हुई वक्तृता दी। उन्होंने छात्रों को खलीफा उमर की सादगी का स्मरण कराते हुए बताया कि सारे संसार की दौलत उनके कदमों में पड़ी रहने पर भी वह हर तरह के आराम-आसाइश से सदा दूर रहे। अन्त में उन्होने छात्रों से खादी अपनाने और उसके द्वारा अपने तथा भारत के कोटि-कोटि दरिद्रजनों के बीच एक जीवित सम्पर्क स्थापित करने की अपील की।

मथुरा और गोवर्द्धन की यात्रा में वहाँ की गन्दगी, गरीबी और विशेपतः गो जाति की दुर्दशा देख उनका वैष्णव हृदय रो पड़ा। उन्होंने वहाँ की सभाओं में अपने इस दुःख को मार्मिक शब्दों में प्रकट किया।

इस प्रकार गांधी जी कई सप्ताह तक संयुक्तप्रान्त के गाँवों एवं नगरों में घूम-घूमकर लोगों को खादी और उसमें सन्निहित राष्ट्रीय जागरण का सन्देश देते रहे। ग्रामीण अंचलों की अधिकांश सभाएँ दस हजार से लेकर पच्चीस हजार तक श्रोताओं की होती थी। पूर्वी संयुक्तप्रान्त के प्रमुख केन्द्रों में जो सभाएँ हुई उनमें, जैसे गोरखपुर में, श्रोताओ की संख्या लाख के ऊपर चली जाती थी। चारों ओर जागरण का स्वर छा गया। युवकों और छात्रों में एक नई चेतना का संचार हुआ। प्रान्त भर में घूम-घूमकर उन्होने रैयत की जो दशा देखी और उनके साथ जमींदारों के सम्बन्ध दिन-दिन बिगड़ते जाने का जो दृश्य देखा, उससे उनको बड़ी व्यथा हुई। तीर्थो की यात्रा का भी उन पर अच्छा प्रभाव नही पड़ा। इस प्रवास में वह प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, हरद्वार इत्यादि पावन तीर्थो में गये और सदा की भाँति उनकी बाह्य एवं आन्तरिक गन्दगी देखकर उनके हृदय को बड़ा आघात लगा। यात्रियों में शौच एवं स्वच्छता के नियमो का पालन करने की ओर जरा भी रुचि नही पाई। जो स्थान किसी समय पावन थे और पूर्वजो ने धर्मवृद्धि के लिए जिनकी प्रतिष्ठा कराई थी वे सब समय के प्रवाह में कुरुचिपूर्ण, गन्दे और

अनीति के अड्डे वन गये। उनके सम्बन्ध में उन्होने अपने हृदय की वेदना कई वार कई तरह से व्यक्त की।

२४ नवम्वर १६२६ को संयुक्तप्रान्त का दौरा समाप्त हुआ। इस दौरे में उन्होने शताधिक सभाओ में भाषण दिया; हजारों मील की यात्रा की; लाखों आदमियो को खादी का सन्देश सुनाया और खादीकोप मे तीन लाख बीस हजार रुपये एकत्र किये। उनके इस दौरे से इस प्रदेश की जनता, विशेषत. युवकों में, एक नया जीवन आ गया।

सत्याग्रह के तूफानी दिनों में : १९३०-३१

१६२६ के अन्त में लाहौर काग्रेस में, पवित्र रावी के तट पर, राष्ट्र ने पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्येय की घोषणा की। २६ जनवरी १६३० को सम्पूर्ण देश में लाखों व्यक्तियों ने स्वतन्त्र होने की प्रतिज्ञा ली। फिर भी गांधीजी समझौते का प्रयत्न करते रहे। उन्होने सरकारद्वारा ११ शर्तों की पूर्ति पर सत्याग्रह स्थगित करने की इच्छा प्रकट की किन्तु सरकार ने उस पर कोई ध्यान नही दिया। फरवरी (१६३०) में सावरमती मे कांग्रेस कार्य-समिति की वैठक हुई। इसमे सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह करने-चलाने का अधिकार उन्हीं तक सीमित कर दिया गया जिनको अहिसा-द्वारा ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने मे विश्वास हो। २ मार्च को गांधी-जी ने वाइसराय के पास अपना अल्टिमेटम भेजा और मॉग की पूर्ति न होने पर सत्याग्रह आरम्भ करने की सूचना दी। वाइसराय ने गाधीजो के निश्चय पर केवल दु.ख प्रकट किया। ७ मार्च को रास (गुजरात) मे सरदार वल्लभभाई गिरफ्तार कर लिये गये। १२ मार्च को गाधीजी ने अपने ७८ आश्रमवासियों के साथ सावरमती से दांडी की ओर प्रयाण किया जहा पहुचकर वह नमक-कानून भंग करने वाले थे। ये लोग प्रतिदिन १० से १५ मील तक चलते थे। प्रतिदिन प्रार्थनादि के वाद प्रातः साढे छः वजे यात्रा आरम्भ होती थी। इस यात्रा ने रास्ते के समस्त अंचल को उत्साह और नवजीवन से भर दिया। २५१ मील की यह यात्रा ५ अप्रैल को पूरी हुई। ६ अप्रैल को प्रातः साढ़े आठ वजे गांधीजी ने नमक-कानून तोड़ कर सत्याग्रह आन्दोलन का शुभारम्भ किया। फिर तो सारे देश में तूफान की तरह वह चल गया। कानूनों को तोड़ने की धूम मच गई। सरकार नंगी होकर दमन पर उतर आई। स्त्रियो, वच्चो, वूढ़ो को लाठियो से मार-मार कर सुला दिया गया। देश मे कितने ही स्थानो पर गोलियाँ भी चली। सीमा-प्रान्त में आन्दोलन को कुचलने के लिए सेना का भी प्रयोग किया गया। ऐसा दमन हुआ कि मनुष्यता थर्रा गई किन्तु इस दमन से देश दवा नही, झुका नहीं।

४ मई (१६३०) को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये। ३० जून को कांग्रेस

के स्थानापन्न अध्यक्ष मोतीलालजी गिरफ्तार कर लिये गये और कांग्रेस कार्य-समिति को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। आर्डिनैन्सों का शासन शुरू हुआ। जेलें भर गईं। राष्ट्रीय संस्थाएँ गैरकानूनी करार देकर बन्द कर दी गईं, उनमें ताला लगा दिया गया। कितने ही प्रेस और समाचारपत्र सरकारी दमन के शिकार हुए। परन्तु आन्दोलन रुका नहीं। उसकी सफलता देख सरकार घबरा गई। श्री जयकर और सप्रू की मध्यस्थता से उसने बातें शुरू की।२५ जनवरी १९३१ को वाइसराय लार्ड इर्विन ने गांधीजी तथा कार्यसमिति के अन्य सदस्यों को रिहा कर देने की घोषणा की। २६ जनवरी को वे छोड़ दिये गये। देश ने स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा फिर से दोहराई।

१९३१ में

मोतीलालजी जेल में ही बीमार थे। रोग बढ़ जाने पर ८ सितम्बर ३० को वह रिहा कर दिये गये थे किन्तु बाहर आकर भी उनकी तबीयत गिरती ही गई। सुनते ही गांधीजी प्रयाग आ गये। गाडी रात को देर से पहुँची थी किन्तु तब भी मोतीलाल जी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गांधीजी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—"यदि आप इस खतरे को पार कर गये तो हम निश्चय ही स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।" मोतीलालजी ने उत्तर दिया—"महात्माजी, मैं तो शीघ्र ही जा रहा हूँ और मैं स्वराज्य देखने के लिए यहाँ नहीं रहूँगा किन्तु मैं जानता हूँ, आपने उसे जीत लिया है, और शीघ्र ही उसे प्राप्त भी कर लेंगे।" गांधी जी इस बीमारी में बराबर उनके साथ रहे। उस समय इलाहाबाद में एक्सरे की व्यवस्था न होने के कारण ४ फरवरी को उन्हे मोटर से लखनऊ ले जाया गया। गांधीजी साथ गये। ६ फरवरी को सुबह ६ बजकर ४० मिनट पर उनका लखनऊ मे ही देहान्त हो गया। वहाँ से उनका शव प्रयाग लाया गया। उनकी चिता की ओर उंगली उठाकर गांधीजी ने कहा—"यह चिता, नहीं, राष्ट्र-यज्ञ का हवन-कुण्ड है।" इस अवसर पर गांधीजी १६ फरवरी तक प्रयाग रहे। यहाँ से १६ को दिल्ली चले गये। वाइसराय से बातें होती रहीं। बातों का यह सिल-सिला कई दिनों तक चलता रहा और ५ मार्च (१९३१) को इर्विन-गांधी समझौता हो गया। सत्याग्रह के कैदी छोड़ दिये गये। कांग्रेस संस्थाओं से रोक उठा ली गई। २८ मार्च को धूमधाम से करांची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ।

प्रयाग में

समझौता होने पर भी पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, बंगाल और संयुक्तप्रान्त मे शासन द्वारा किसी-न-किसी बहाने दमन और छेड़खानियाँ होती रहीं। संयुक्त-

नैनीताल में

प्रान्त मे किसानो की, अकाल के कारण, बुरी दशा थी फिर भी उनसे जबरन लगान वसूल किया जा रहा था। १४ मई को गाधी जी ने नये वाइसराय लार्ड विलिंगडन से शिमला जाकर बातचीत की और उनकी सलाह से गवर्नर सर माल्कम हेली से मिलने नैनीताल आये। यहाँ वह ५ दिन रहे। दोनो पक्षो की बातें सुनी परन्तु कुछ विशेष फल नही निकला। २१ मई को उन्होने 'संयुक्तप्रान्त के किसानों के नाम' वही से, एक अपील प्रकाशित की।

काग्रेस के अनुरोध पर २६ अगस्त को, गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने के लिए वह विलायत को रवाना हुए। वहाँ से २८ दिसम्बर को बम्बई लौटे। उनकी अनुपस्थिति मे सरकारी दमन के कारण स्थिति बहुत बिगड़ गई थी। गांधीजी के लौटते ही बम्बई मे काग्रेस कार्यसमिति की बैठक बुलाई गई थी। उसमे जाते हुए जवाहरलालजी तथा संयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष शेरवानी गिरफ्तार कर लिये गये। गाधीजी ने वाइसराय से देश की विषम स्थिति पर बातचीत करने के लिए मुलाकात का समय माँगा परन्तु उन्हें इन्कार कर दिया गया। वस्तुतः सरकार ने लड़ाई के लिए सब तैयारी कर ली थी।

१९३२-३३

विवश हो काग्रेस को सत्याग्रह आन्दोलन फिर जारी करना पड़ा। इस बार सरकार ने उस पर बड़े वेग से प्रहार किया। न केवल कांग्रेस बल्कि छात्र-संघ, स्वदेशी-संघ, खादी भण्डार आदि राष्ट्रीय विचार की सभी संस्थाएँ गैरकानूनी करार दे दी गई। इतना ही नही, उनमें से अधिकाश पर सरकार ने कब्जा कर लिया। हडताल निषिद्ध कर दी गई, अखबारो को सत्याग्रह आन्दोलन की खबरें देने से रोक दिया गया। व्यवस्था के शासन की जगह भय एवं आतंक का राज्य शुरू हुआ। फिर भी आन्दोलन चलता रहा और मई १९३३ तक लगभग ६० हजार आदमी इस सम्बन्ध में जेल गये।

प्राणों की बाजी

१९३१ मे जब गांधीजी गोलमेज सम्मेलन में गये थे तभी उन्होने हरिजनों को अलग प्रतिनिधित्व देकर सदा के लिए उनको हिन्दुओं से अलग कर देने की नीति की जबर्दस्त टीका की थी और यह भी कह दिया था कि ऐसे किसी प्रयत्न का मैं प्राणों की बाजी लगाकर भी विरोध करूँगा। जेल से भी उन्होने ११ मार्च १९३३ को भारत-सचिव को अपना निश्चय दोहराते हुए सूचना दे दी थी।

अगस्त (३३) में ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रधान मन्त्री श्री रैमजे मैकडानल्ड का निर्णय प्रकाशित हुआ। इसमें वही चाल थी। १८ अगस्त को गांधीजी ने उन्हें लिखा कि निर्णय में परिवर्तन न होने की स्थिति में २१ सितम्बर से मैं आमरण अनशन करूँगा। ठीक समय पर उन्होंने अपना यह अनशन शुरू किया। इससे तहलका मच गया। अन्त में २६ सितम्बर को उच्चवर्णीय हिन्दू नेताओं एवं अछूत नेताओं के बीच एक समझौता हो गया, जिसे सरकार द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया और उपवास समाप्त हुआ। उच्चवर्ण के हिन्दू नेताओं ने अस्पृश्यता का कलंक दूर करने की जिम्मेदारी ली थी, इसलिए दिल्ली में अस्पृश्यता-निवारण संघ (बाद में हरिजन-सेवक संघ) की स्थापना की गई और इस दिशा में काफी काम भी हुआ किन्तु गांधी जी को ऐसा प्रतीत हुआ कि आन्दोलन पूर्ण सच्चाई और पवित्रता के साथ नहीं चल रहा है; सवर्ण हिन्दुओं का दिल जैसा बदलना चाहिए, नहीं बदला है। इससे उन्हें दुःख हुआ और इसे अपनी ही आत्मिक अपूर्णता मानकर उन्होंने बिना किसी शर्त के ८ मई १९३३ से २१ दिन का उपवास करने की घोषणा की। सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया किन्तु छूटने के बाद भी पर्णकुटी, पूना में रहकर उन्होंने अपना उपवास जारी रखा। प्रभु की कृपा से उपवास पूरा हुआ। परन्तु उनके उपवास से सारे देश का ध्यान उधर ही खिंच गया। १४ जुलाई को सामूहिक सत्याग्रह का आन्दोलन उठा लिया गया, हाँ, व्यक्तिगत सत्याग्रह की छूट रही। गांधीजी ने साबरमती का सत्याग्रह-आश्रम तोड़ दिया और अपना यह निश्चय प्रकट किया कि १ अगस्त को आश्रम के ३२ साथियों के साथ रास (गुजरात) स्थान की ओर प्रस्थान करेंगे, जहाँ किसानों की स्थिति बहुत खराब हो रही थी। ३१ जुलाई की रात में उन्हें गिरफ्तार करके यरवदा जेल (पूना) भेज दिया गया। ४ अगस्त को वह इस शर्त पर छोड़ दिये गये कि पूना नगर की सीमा के बाहर न जायं किन्तु गांधीजी ने आज्ञा भंग की और गिरफ्तार कर लिये गये। उनपर मुकदमा चलाया गया, जिसमें उन्हें एक वर्ष की सादी कैद की सजा दी गई।

जेल में हरिजन-कार्यों की सुविधा देने से सरकार ने इन्कार किया, इस पर उन्होंने पुनः उपवास करने का निश्चय किया। इस तरह कई बार के उपवास से उनकी तन्दुरुस्ती बहुत गिर गई। २१ अगस्त को वह सासून अस्पताल ले जाये गये किन्तु उनकी अवस्था बड़ी तेजी से खराब होने लगी। अन्ततः २३ अगस्त को सरकार ने उन्हें बिना शर्त्त रिहा कर दिया। सितम्बर १९३३ में वह सत्याग्रह-आश्रम, वर्धा चले गये। वहाँ ६ सप्ताह तक विश्राम करने के बाद अस्पृश्यता का कलंक हिन्दू धर्म से दूर करने के लिए सारे देश में भ्रमण करने का निश्चय किया।

यह दौरा वर्धा से ७ नवम्बर १९३३ को शुरू हुआ। इस प्रकार ३ साल तक वह संयुक्तप्रान्त मे नही आ सके।

हरिजन-प्रवास : १९३४

१९३४ मे अपने भारतव्यापी दौरे के सिलसिले में वह संयुक्तप्रान्त (वाद के उत्तरप्रदेश) आये और २२ जुलाई से २ अगस्त तक उन्होंने इस प्रान्त का दौरा किया। दौरे की संक्षिप्त निर्देशिका निम्नलिखित है:—

२२ जुलाई :

कलकत्ता से कानपुर आगमन। कानपुर : नगरपालिका और जिला परिपद के मानपत्र; सार्वजनिक सभा, मानपत्र और थैली ११००० रुपये; सायंकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५१ रुपये १३ आने।

२३ जुलाई :

कानपुर। मौनदिवस; सायंकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५७ रुपये ६॥ आने।

२४ जुलाई :

कानपुर। तिलक-स्मारक हाल का उद्घाटन; सनातनी प्रतिनिधि-मण्डल तथा संयुक्तप्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघों के कार्यकर्त्ताओं से भेंट; विद्यार्थियो की सभा; सनातन धर्म कालेज के विद्यार्थियों का मानपत्र तथा थैली ५११ रुपये सवा दो आने; मेहतर सभा का मानपत्र। दिन भर का कुल धन-संग्रह ३२४२ रुपये सवा पन्द्रह आने।

२५ जुलाई :

कानपुर से लखनऊ प्रस्थान और वापसी रेल-द्वारा। उन्नाव स्टेशन पर थैली तथा फुटकर २८२ रुपये साढ़े वारह आने। लखनऊ : महिला-सभा तथा थैली ११७६ रुपये सवा छः आने; वाल-सभा में १०१ रुपये; सार्वजनिक सभा, सनातनियों तथा हरिजनों के मानपत्र तथा थैली और फुटकर संग्रह ३९४५ रुपये पौने वारह आने। कानपुर : जिला-हरिजन सेवक संघों के प्रतिनिधियों से मुलाकात; इटावा की थैली ७३२ रुपये; फर्रुखावाद की थैली ६४५ रुपये; मुरादावाद की थैली ३२२ रुपये आठ आने; जालौन की थैली ६०१ रुपये; वाल्मीकि-सुधार-सभा, आगरा की थैली ९ रुपये साढ़े पाँच आने; सीतापुर की थैली ३०१ रुपये सवा नौ आने, वांदा की थैली १८५ रुपये दो आने; युक्तप्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का मानपत्र तथा थैली १३७ रुपये। हरिजन-वस्तियों का निरीक्षण; गुजरातियों

का मानपत्र तथा थैली ११३१ रुपये चार आने; गुजराती स्कूल के बच्चों की थैली १२ रुपये तीन आने; संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ८२ रुपये आठ आने साढ़े दस पाई। दिन भर का कुल धन-संग्रह १०६४३ रुपये साढ़े सात पाई।

२६ जुलाई :

कानपुर : कांग्रेसवालों, कानपुर जिले के हरिजन कार्यकर्त्ताओं और संयुक्त-प्रान्त के खादी-विक्रेताओं से भेंट; सेठ कमलापति सिंहानिया द्वारा दान १५४१ रुपये; महिलाओं की सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ७४३ रुपये साढ़े दस आने; हरिजन-वस्तियों का निरीक्षण; संध्याकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह २२० रुपये सवा तीन आने। दिन भर का कुल धन-संग्रह ३५६२ रुपये तेरह आने। कानपुर से काशी के लिए प्रस्थान।

२७ जुलाई :

काशी : सार्वजनिक कार्य; सायंकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह १२२ रुपये छः आने ग्यारह पाई।

२८ जुलाई :

काशी। सार्वजनिक कार्य; गोरखपुर जिले की थैली ६५१ रुपये; सायं-कालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह २७ रुपये ग्यारह आने साढ़े चार पाई; काशी विद्यापीठ की ओर से स्वागत तथा धन-संग्रह ४४ रुपये एक आना।

२९ जुलाई :

काशी : जिलों के प्रतिनिधि-मण्डलों से मुलाकात; मथुरा की थैली १००० रुपये; गाजीपुर की थैली २०१ रुपये; आगरा की थैली ११६३ रुपये तेरह आने; वलिया की थैली ४७१ रुपये पाँच आने; आज़मगढ़ की थैली १११ रुपये; लखीम-पुर की थैली ३१२ रुपये; जौनपुर की थैली ६० रुपये; नैनीताल की थैली २५२ रुपये; हरिजन-सेवक-संघ के केन्द्रीय वोर्ड की वैठक; सायंकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह ७१ रुपये तेरह आने साढ़े ग्यारह पाई। दिन-भर का कुल धन-संग्रह ४०२६ रुपये पन्द्रह आने साढ़े ग्यारह पाई।

३० जुलाई :

काशी : मौन-दिवस। वरेली की थैली १२५ रुपये। सायंकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह ३१ रुपये सात आने साढ़े चार पाई।

३१ जुलाई :

काशी : हरिजन विद्यार्थियों का मानपत्र; सार्वजनिक सभा और थैली ५००० रुपये; गुजरातियों की थैली १५४ रुपये; चन्दौली तहसील की थैली २१७ रुपये; सायंकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५२ रुपये आठ आने डेढ़

पाई; रायबरेली की थैली ४६० रुपये। दिन भर का कुल धन-संग्रह ६५२८ रुपये सवा ग्यारह आने।

१ अगस्त :

काशी : हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो का मानपत्र और थैली १७६६ रुपये पन्द्रह आने आठ पाई; फैजाबाद की थैली २०३ रुपये; हरिजन कार्यकर्त्ताओं की बैठक; हरिजनों की सभा; अछूतोद्धार समिति, राजभर एवं रैदास सभा के मानपत्र; धन-सग्रह ३७ रुपये नौ आने चार पाई; काग्रेसवालो की बैठक, सायंकालीन प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५५ रुपये सवा आना।

२ अगस्त :

काशी : हरिजन-बस्तियो तथा कबीर मठ का निरीक्षण; कबीर मठ में थैली तथा फुटकर संग्रह १२६ रुपये पौने तीन आने; काशी की पण्डित-मण्डली का मानपत्र; महिलाओ की सभा तथा थैली २७८८ रुपये।

गांधीजी का स्वास्थ्य खराब होने के कारण संयुक्तप्रान्त के प्रवास को दो मुख्य केन्द्रो मे बॉट दिया गया था : पश्चिमी जिलों का केन्द्र कानपुर था और पूर्वी ज़िलों का काशी। व्यवस्था यह थी कि उस क्षेत्र के विभिन्न जिलो के कार्यकर्त्ता तत्सम्बन्धी केन्द्र में ही अपनी संस्थाओं के मानपत्र या एकत्र धनराशि की थैलियाँ गांधीजी को भेंट करेगे। इससे उन पर कम बोझ पड़ेगा।

२२ जुलाई को कानपुर नगरपालिका और जिला-परिषद ने अपने मानपत्र डा० जवाहरलाल रोहतगी के बंगले पर, जहाँ गांधी जी ठहराये गये थे, दिये।

कानपुर में

नगरपालिका के मानपत्र में उन कार्यो का विवरण दिया गया था जो उसने अपने हरिजन कर्मचारियों के लिए किये थे। जिला परिषद् ने अन्य जाति के विद्यार्थियो की तरह ही हरिजन विद्यार्थियों के लिए भी स्कूलों मे भरती करने की छूट दी थी। इस निश्चय के विरुद्ध आचरण करनेवाले अध्यापकों पर जुर्माना करने की व्यवस्था थी। प्राइमरी पाठशालाओ मे हरिजन बच्चों को नि.शुल्क शिक्षा देने का बन्दोबस्त था। कन्याशालाओं में कताई की शिक्षा की भी व्यवस्था थी। इस अवसर पर गांधीजी ने कहा था—"दरिद्रनारायण की सेवा बिना खादी और चर्खे के हो ही नही सकती।" इसी दिन (२२ जुलाई) सार्वजनिक सभा में उन्हें नागरिको की ओर से मानपत्र और ग्यारह हज़ार की थैली भेंट की गई। गांधीजी ने भाषण करते हुए कहा—"आपने यदि इस हरिजन-प्रवृत्ति का महत्व समझा होता तो मुझे हजारों की जगह लाखों दिये होते। परन्तु धन तो अस्पृश्यता का अन्त नही कर सकता। वह तो तभी हो सकता है जब सवर्ण हिन्दुओ के हृदय

पिघल जायं। ...यह तो आत्म-शुद्धि की प्रवृत्ति है, संख्या से इस प्रवृत्ति का कोई सम्बन्ध नही।..." २४ जलाई को उन्होंने तिलक हाल का उद्‌घाटन करते हुए स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी का स्मरण किया। इसी दिन प्रान्त के विविध स्थानों से आये हरिजन कार्यकर्त्ताओं से उन्होंने भेंट की और कार्य करने की पद्धति के विषय में उन्हें उचित परामर्श दिया। उसी दिन शाम को विद्यार्थियों एवं हरिजनों की एक संयुक्त सभा हुई जिसमें गांधीजी ने कहा—"यदि हिन्दुस्तान के विद्यार्थी अपने अवकाश का समय हरिजन-सेवा में लगा दें तो अस्पृश्यता-निवारण की गति में दसगुनी तेजी आ जाय।" कानपुर-प्रवास में उन्होंने नगर की फार्व्स कम्पाउण्ड, विपत खटिक का हाता, लक्ष्मी-पुरवा, हड्डी गोदाम, मीरपुर, मोती-महल, वैरहना, कैटल वैरक और ग्वालटोली नामक हरिजन वस्तियों का निरीक्षण किया और वहाँ रहनेवाले हरिजनों से पूछताछ की। लक्ष्मीपुरवा, हड्डी गोदाम, वैरहना और ग्वालटोली की वस्तियों की दुर्दशा देखकर उन्हे वड़ा क्लेश हुआ और इनमे तुरन्त सुधार करने की ओर उन्होंने नगरपालिका के अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया। कानपुर से ही २५ जुलाई को वह लखनऊ गये और वहाँ कुछ घण्टे विताये। वहाँ दो सभाएँ हुई—महिलाओं की और सार्वजनिक। सनात-नियों ने भी एक मानपत्र दिया। इन सभी स्थानों पर उन्होंने यही कहा कि अस्पृ-श्यता हिन्दू धर्म पर लगा हुआ महान कलंक और मनुष्यता के विरुद्ध अपराध है।

२७ जुलाई को वह काशी पहुँचे। २८-२९ जुलाई को काशी विद्यापीठ में हरिजन-सेवक संघ के केन्द्रीय वोर्ड की वैठक हुई। वैठक के अन्त में २९ जुलाई को उन्होंने सदस्यों को सम्वोधित करते हुए कहा—

काशी में

"...मेरे लिए तो यह विशुद्ध सेवा और प्रायश्चित्त का आन्दोलन है।" उन्होंने हरिजन-सेवा के लिए दक्षिण अफ्रीका के ट्रेपिस्टमिशन-जैसी कोई शिक्षण-संस्था वनाने की आव-श्यकता पर जोर दिया। ३१ जुलाई को वह विविध हरिजन शिक्षण-शालाओं के लगभग ५०० वच्चों से मिले। उन्होंने कहा—"वच्चों को देखकर हमें सन्तोष नही हुआ। वे ठीक तरह से साफ-सुथरे नही रखे जाते। हरिजन पाठशालाओं के शिक्षकों को सवसे पहिले तो सफाई पर ही ध्यान देना चाहिए। स्वच्छता ही तो धर्म का सार है।" ३१ जुलाई को सार्वजनिक सभा वड़े स्वच्छ, शान्त वाता-वरण में हुई। काशी के विद्वान पण्डितों के मण्डल ने भी गांधी जी को मानपत्र भेट किया। वर्णाश्रम-स्वराज्य संघ तथा भारत धर्म-महामण्डल के प्रतिनिधि-स्वरूप पं० देवनायकाचार्य भी सभा में आये और वोले। उसके वाद मालवीय-जी महाराज ने अस्पृश्यता-निवारण के समर्थन में भाषण किया। गांधीजी ने

कहा—"...यह धार्मिक आन्दोलन है। इसमें दुराग्रह को स्थान नही है।··· अस्पृश्यता हिन्दू धर्म पर कलंक है।··· काशी के पण्डितों की ओर से मुझे जो स्वागतपत्र मिला है उसे मैं उनका आशीर्वाद मानता हूँ।" १ अगस्त को उन्होने हिन्दू विश्वविद्यालय की सभा में भाषण किया और गीता-द्वारा अपने जीवन पर पड़े प्रभावों का उल्लेख किया। २ अगस्त को हरिश्चन्द्र हाई स्कूल में आयोजित स्त्रियों की सभा में वड़ा ही ओजस्वी भाषण करते हुए कहा—"...हम सब एक ही ईश्वर के बनाये हैं। तब कोई उनमे भेद-भाव कैसे कर सकता है?... आप माताओं से मेरी प्रार्थना है कि छुआछूत के भूत को नष्ट कर दें।... दूसरी बात यह है कि आपको विदेशी तथा मिलों के वस्त्र त्याग देने चाहिए और खद्दर पहिनना चाहिए। तीसरी बात यह कि आप सब कुछ-न-कुछ विद्याभ्यास करें। चौथी बात, आभूषणों का त्याग करें। माताओं की शोभा आभूषणों से नही, हृदय से है...।" इसी दिन (२ अगस्त को) उन्होने इंग्लिशिया लाइन, चेतगंज, मलदहिया और कबीरचौरा की हरिजन बस्तियों का निरीक्षण किया। फिर कबीर-मठ गये। वहाँ की स्वच्छता तथा सादगी का उन पर बड़ा अच्छा असर पड़ा और उन्हें यह जानकर की प्रन्नसता हुई कि कबीर-सम्प्रदाय में अस्पृश्यता नही है।

२ अगस्त को ही हरिजन-प्रवास पूर्ण हुआ। इस भारतव्यापी दौरे से देश में अभूतपूर्व जागृति हुई। सैकड़ो मन्दिरो के द्वार हरिजनो के लिए खुल गये तथा उनकी दुर्दशा की ओर जनता और सरकार ने भी ध्यान दिया। २८ अक्तूबर १९३४ को बम्बई के कांग्रेस-अधिवेशन में गांधीजी ने अपने को कांग्रेस के नेतृत्व से अलग कर लिया और ग्रामोद्योग तथा अन्य रचनात्मक कार्यो में ही अपना अधिकांश समय लगाने का निश्चय किया। इन दिनों उनका स्वास्थ्य भी गिर गया था। फलतः १९३५ में वह इस सूबे में न आ सके।

१९३६ में

१९३६ में वह दो बार संयुक्तप्रान्त में आये। लखनऊ कांग्रेस के समय २८ मार्च से १२ अप्रैल तक वहां रहे। अक्तूबर के मध्य भाग में वाराणसी आये।

लखनऊ में

अप्रैल १९३६ मे कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ था। इस अवसर पर कुछ पहिले से चर्खा संघ तथा ग्रामोद्योग संघ के सम्मिलित प्रयत्न से एक विशाल ग्रामीण प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। २८ मार्च (१९३६) को गांधीजी ने इस प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए कहा—"इस बार की प्रदर्शनी

अपने ढंग की पहली प्रदर्शनी है।...इस नुमाइश के जरिये हम दिखाना चाहते है कि भूख से वेहाल इस हिन्दुस्तान में भी आज ऐसे हुनर, उद्योग-धन्धे और कला-कौशल मौजूद हैं जिनका हमें कभी खयाल भी नही होता। इसे कुछ सीखने की दृष्टि से देखें, तमाशे की दृष्टि से नहीं।" यद्यपि वह १५ दिन लखनऊ रहे किन्तु कांग्रेस-अधिवेशन में शरीक नहीं हुए। लखनऊ से रवाना होने के पूर्व १२ अप्रैल को उन्होंने पुनः प्रदर्शनी में गांवों से आये कारीगरों की ओर लोगों का ध्यान आर्कापित करते हुए उनको संरक्षण देने की अपील की। इस लखनऊ-निवास के वीच ५ अप्रैल को वह प्रयाग आये और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय का उद्घाटन किया। इस अवसर पर जनता के अतिरिक्त माता कस्तूरवा, पं० जवाहरलाल, काका कालेलकर, जमनालाल जी, महादेव भाई तथा सर्वश्री कैलासनाथ काटजू, विजयलक्ष्मी पण्डित, पुरुषोत्तमदास टण्डन, डा० गंगानाथ झा, डा० अमरनाथ झा, डा० रघुवीर, डा० ताराचन्द, डा० वेनीप्रसाद, पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी, श्रीमती महादेवी वर्मा, मुशी ईश्वरशरण, श्री सीताराम सेकसरिया, श्री भगीरथ कनोडिया इत्यादि कितने ही प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। गांधी जी ने उद्घाटन करते हुए कहा—"यह कार्य एक या दो आदमियों के प्रयत्नों से नही, बल्कि समस्त हिन्दी भाषा-भाषियों के सम्मिलित प्रयत्न से ही चल सकता है।" उन्होंने इस कार्य के लिए पांच हजार रुपये सहायता देने की घोषणा भी की।

प्रयाग में

अक्तूवर के मध्य भाग में वह भारतमाता मन्दिर का उद्घाटन करने काशी आये। यह अपूर्व मन्दिर स्व० वा० शिवप्रसाद गुप्त की अद्भुत कल्पना का साकार रूप है। मूर्ति १९३१ से ही गढ़ी जा रही थी। यह कला की दृष्टि से ही नही, ज्ञान और शिक्षण की दृष्टि से भी अनुपम है। इसमे संगमर्मर के ७६२ टुकड़े लगे हैं और इस भारतीय मानचित्र में तिव्वत से लंका और चीन की दीवार से हेरात तक का प्रदेश दिखाया गया है। गौरीशंकर तथा अन्य चार सौ से ऊपर शिखर वनाये गये हैं। भव्य शिखरों के साथ हिमाच्छादित कैलास की ३०० मील लम्वी तथा १५० मील चौड़ी विशाल पर्वतश्रेणी वड़ी आकर्षक है। इस मन्दिर के उद्घाटन के पूर्व चारों वेदों का चार वार पाठ और मंगल अनुष्ठान हुआ। फिर प्रत्येक धर्म की प्रार्थना हुई। गांधीजी ने इस अवसर पर पृथिवी माता तथा भारत-माता की आराधना के लिए लोगों का आवाहन किया। उसी दिन काशी विद्यापीठ के प्रांगण में आम के एक पौवे का

भारतमाता मन्दिर का उद्घाटन

आरोपण किया तथा नागरी प्रचारिणी सभा में स्थित कला-भवन को जाकर देखा।

१९३९ में

इसके वाद लगभग तीन वर्ष तक वह इस प्रान्त में न आ सके। १६३६ मे युद्ध के कारण न केवल भारत वरं विश्व की स्थिति वड़ी तेजी से वदल रही थी। शक्ति का सन्तुलन वदल रहा था। जपान के हिटलर की ओर आ जाने के कारण ब्रिटिश साम्राज्य, विशेषतः भारत, का अस्तित्व खतरे में पड़ गया। नेताओ के

इलाहाबाद में

अनुरोध से काग्रेस की वागडोर गाधीजी ने पुनः अपने हाथ में ले ली। काग्रेस ने, ब्रिटिश सरकार से कोई सन्तोपजनक समझौता न होने की अवस्था में सत्याग्रह चलाने के समस्त अधिकार गाधीजी के हाथों मे दे दिये। सरकार से समझौता क्या होता ? अक्तूबर १६३६ के अन्त तक विभिन्न प्रान्तो के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफा दे दिया। मध्य नवम्वर (१६३६) मे भारतीय कांग्रेस कमेटी की वैठक इलाहावाद मे हुई। काग्रेस कार्यसमिति तथा नेताओ की अनौपचारिक वैठक तो कई दिनो तक होती रही। गांधी जी इनमे वरावर शामिल रहे। कार्य-समिति की वैठक के वाद उन्होने संयुक्तप्रान्त के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं से भेट की और उनके प्रश्नो के उत्तर दिये। १६ नवम्वर (१६३६) को उन्होने कमला नेहरू अस्पताल का शिलान्यास किया और अवसर के उपयुक्त एक छोटा-सा भाषण दिया। २३ नवम्वर तक वह इलाहावाद रहे।

१९४१ में

१६४० मे वह इस सूवे मे नही आ सके। फरवरी १६४१ मे वह पुनः इला-हावाद आये और प्रायः सवा वर्ष पूर्व जिस कमला नेहरू अस्पताल का शिलान्यास किया था, २८ फरवरी (४१) को उसका उद्घाटन किया। उन्होने स्व० कमला नेहरू के आत्मार्पण, देश-सेवा, वलिदान एव त्याग का स्मरण करते हुए आशा प्रकट

प्रयाग में

की कि इस अस्पताल मे उसी भावना एवं प्रेरणा से दुखी मानवता की सेवा की जायगी।

१९४२ में

अगले साल के आरम्भ मे ही वह पुनः युक्तप्रान्त आये। २१ जनवरी को

काशी में

हिन्दू विश्वविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह में शामिल हुए। इस अवसर पर उन्होंने हिन्दी में भाषण किया और लोगों को विदेशी भाषा में बोलने के लिए लताड़ते हुए कहा कि हमारे विश्वविद्यालय पश्चिम की नकल भर हैं, उनकी अपनी कोई विशेषता नहीं है।

२२ जनवरी को दूर-दूर से मिलने को आये हुए संयुक्तप्रान्त के कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं से उन्होंने भेंट की। देश की विशेष परिस्थिति में उन्हें किस प्रकार काम करना चाहिए, यह बताया और कहा कि मृत्यु का खतरा तो हिंसा में भी है, अहिंसा में भी है। तब हम अहिंसा को धारण करते हुए मरण की तैयारी क्यों न करें?

इस यात्रा में सारनाथ जाकर उन्होंने बुद्ध-मन्दिर के दर्शन भी किये।

१९४६ में

इसके बाद तो १९४२ का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ही उठ खड़ा हुआ। गांधीजी तथा प्रायः सभी प्रमुख नेता आरम्भ में ही पकड़ लिये गये। दमन की सीमा हो गई; दमन ही नहीं, जनता पर हर तरह का अत्याचार हुआ परन्तु लोग झुके नहीं। जेल में होने के कारण स्वभावतः कहीं आने-जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। जब लोग जेल से मुक्त हुए, समझौते की बातें चलने लगी। १९४६ की गर्मियों में शिमला में वाइसराय तथा कांग्रेस नेताओं के बीच हो रही लम्बी वार्ताओं से गांधीजी बहुत थक गये। डाक्टरों ने उन्हें दो माह किसी पहाड़ी स्थान पर रहकर विश्राम लेने को कहा। बड़ी कठिनाई से वह मई के अन्तिम सप्ताह में मसूरी पहुंचे और वहां लगभग १५ दिन रहे। १० जून को पुनः दिल्ली लौट गये।

मसूरी में

मसूरी में वह बिड़ला हाउस में ठहरे थे। सुबह-शाम की प्रार्थना में बहुत से लोग आते थे, फिर भी उन्हें वहां काफ़ी विश्राम मिला। वहां की प्राकृतिक सुषमा, प्राणप्रद वायु और शान्त वातावरण का उनके मन और शरीर पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

१९४७ में

१९४७ में तो देश में मार-काट मच गई। जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे हुए; दंगाइयों के नृशंस कृत्यों से मानवता थर्रा उठी। भयग्रस्त पुरुष, स्त्रियां और बच्चे इधर से उधर भागते फिरते थे। लाखों निराश्रित सरहदी सूबे और पंजाब से

आकर सहारनपुर, देहरादून और हरद्वार में भर गये थे। हरद्वार में उनके लिए सरकारी सहयोग से कई छावनियां वनाई गई थी, यद्यपि उनका कोई ठीक प्रवन्ध न था। उनकी दुर्दशा की वात सुनकर २१ जून को गांधीजी दिल्ली से मोटर-द्वारा हरद्वार आये। साथ में सुशीला नैयर और जवाहरलाल जी भी थे। कई घण्टे घूम-घूम कर उन्होने उनका निरीक्षण किया और जो कुछ किया जा सकता था, करने की सलाह देकर दुखी और भारी मन लिये दिल्ली लौट गये।

यही गांधीजी की इस प्रान्त मे अन्तिम यात्रा थी।

इस प्रकार हम देखते है कि यौवनावस्था से लेकर प्रायः जीवन के अन्तिम दिनो तक, पचास वर्ष से भी अधिक समय तक, इस प्रान्त से उनका सम्वन्ध वरावर वना रहा। उनके मार्गदर्शन में हम जगे; हमने अपना सिर ऊंचा रखना सीखा; खड़े हुए; जीवन-पथ पर चले और हमने स्वतन्त्रता की अनेक लड़ाइयां लड़ी। इस प्रान्त में जो सामूहिक लोक-जीवन का जागरण हुआ, उसका वहुत अधिक श्रेय उनको है।

: दो :

पूर्वा

[तीर्थ-कथा : गांधीजी के शब्दों में]

१. प्रथम सम्पर्क : प्रयाग में आगमन

(१८९६ ई०)

५ जुलाई १८९६। लगभग ११ वजे दिन का समय। आकाश में वादल घिरे हुए। फिर भी वेहद गर्मी। ऐसे समय अंग्रेजी पोशाक में एक आदमी जानसेनगंज के चौरास्ते के पास धूल भरी सड़क से तांगे पर गुजर रहा है। वह चौकन्ना होकर चारों ओर देखता जा रहा है। थोड़ी देर वाद वह एक औषधि-विक्रेता की दुकान में घुस जाता है।

यह यात्री कौन है?

यही हैं मोहनदास गांधी जो आगे चलकर हमारे देश के आधुनिक इतिहास के सर्वप्रधान नायक वन गये और पहिले 'कर्मवीर गांधी' फिर 'महात्मा गांधी' और अन्त में 'राष्ट्रपिता वापू' के नाम से प्रसिद्ध हुए तथा जिनकी आवाज़ पर कोटि चरण और कोटि वाहु एक साथ चलते और एक साथ उठते थे।

दक्षिण-अफ्रीका में तीन वर्ष रहने के वाद गांधी जी वहां के सार्वजनिक जीवन में ऐसे उलझ गये थे कि मित्रों एवं हितैपियों की राय हुई कि वह भारत जाकर स्त्री-वच्चों को भी ले आवें क्योंकि पता नहीं उन्हें वहां कव तक रहना पड़े। जहां तक उस ज़माने के कागद-पत्रों से मालूम पड़ता है वह ५ जून १८९६ को डर्वन से हुगली जाने-वाले जहाज़ से भारत को रवाना हुए थे। २४ दिन की यात्रा के वाद उन्हें हुगली तट के दर्शन हुए थे। इस प्रकार वह शायद २९-३० जून को कलकत्ता पहुंचे होंगे।

४ जुलाई को वह कलकत्ता मेल से प्रयाग-वम्वई मार्ग से राजकोट के लिए रवाना हुए। रास्ते में कहीं रुकने का कोई इरादा न था किन्तु होना कुछ और था और विधाता को कुछ और ही मंजूर था।

५ जुलाई को लगभग ११ वजे दिन मेल इलाहावाद पहुँचा। यहां वह ४५ मिनट खड़ा होता था। अव इलाहावाद की वात स्वयं यात्री गांधी की जवानी सुनिए :

> "मैंने सोचा कि इतने समय में ज़रा शहर देख आऊँ। मुझे औषधि-विक्रेता के यहाँ से दवा भी लेनी थी। औषधि-विक्रेता ऊँघता हुआ वाहर आया। दवा देने में वड़ी देर लगा दी। ज्योंही मैं स्टेशन पहुंचा, गाड़ी चलती

हुई दिखाई दी। भले स्टेशन-मास्टर ने गाड़ी एक मिनट रोकी भी पर मुझे वापिस न आता देख कर मेरा सामान उतरवा लिया।"

गाड़ी तो छूट ही चुकी थी। अब तो दूसरे ही दिन जाना सम्भव हो सकता था। इसलिए गांधीजी ने इस अप्रत्याशित बाधा का भी सदुपयोग करने का निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीका मे प्रवासी भारतीयों के प्रति गोरों द्वारा जो अमानवीय तथा विषम व्यवहार होता था तथा दिन-दिन विविध कायदे-कानून उनके विरुद्ध बनते जा रहे थे उनके विरोध मे भारतीयों को संघटित कर आन्दोलन करने का काम वहां रहते समय गांधीजी ने शुरू कर दिया था। उनके प्रयत्न से इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होने लगा था। इसलिए इस एक दिन प्रयाग में रह जाने का जो उपयोग गांधी जी ने किया, वह उन्हीं के शब्दों में सुनिए:

"मैं केलनर के होटल में उतरा और वहीं से अपना काम शुरू करने का निश्चय किया। यहाँ (प्रयाग) के 'पायोनियर' पत्र की ख्याति मैंने सुनी थी। भारत की आकांक्षाओं का वह विरोधी है, यह मैं जानता था। मुझे याद पड़ता है कि उस समय मि० चेजनी उसके सम्पादक थे। मैं तो सब पक्षों के आदमियों से मिलकर सहायता प्राप्त करना चाहता था। इसलिए मैंने मि० चेजनी को, मुलाकात के लिए, पत्र लिखा। अपनी ट्रेन छूट जाने का हाल लिखकर उन्हें सूचित किया कि कल ही मुझे प्रयाग से चले जाना है।

"उत्तर में उन्होंने तुरन्त मिलने के लिए बुलाया। मुझे खुशी हुई। उन्होंने गौर से मेरी बातें सुनीं। मुझे आश्वासन दिया कि "आप जो कुछ लिखेंगे, मैं उस पर तुरन्त टिप्पणी करूँगा। परन्तु मै आपको यह वचन नहीं दे सकता कि आपकी सब बातों को मैं स्वीकार कर सकूँगा। औपनिवेशिक दृष्टि-विन्दु भी तो हमें समझना और देखना चाहिए न?"

"मैने कहा—"आप इस प्रश्न का अध्ययन करें और अपने पत्र में इसकी चर्चा करते रहें, इतना ही मेरे लिए काफी है। शुद्ध न्याय के अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहता।"

'पायोनियर' का कार्यालय आज के आनन्द भवन से थोड़ी दूर प्रयाग स्टेशन के पास था। मि० चेजनी से मिलने के बाद गाधी जी त्रिवेणी-संगम गये और वहां स्नान-दर्शनादि किये। लौटकर होटल में भोजन-विश्राम किया तथा अपने भावी कार्य का विचार करते रहे।

दूसरे दिन ६ जुलाई को बम्बई के रास्ते राजकोट के लिए रवाना हो गये।

यह प्रयाग की उनकी प्रथम यात्रा थी।

यह उत्तर प्रदेश से उनका प्रथम सम्पर्क था।

आकस्मिक और अप्रत्याशित होते हुए भी यह उनके जीवन की एक प्रधान घटना है, क्योंकि यहीं 'हरी पुस्तिका' (ग्रीन पैम्फलेट) नामक उस रचना के निर्माण का निश्चय हुआ जिसके कारण नेटाल के गोरे इनके विरुद्ध इतने उत्तेजित हो उठे कि वहां लौटने पर इन पर खुलेआम मारक प्रहार किया और जिसके कारण इनकी ख्याति दूर-दूर तक हो गई।

२. काशी-यात्रा

देखी तेरी काशी वच्चे, देखी तेरी काशी !

१६०१ के अन्तिम भाग में गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए रवाना हुए। स्वदेश में वसकर ही जीविकोपार्जन और जन-सेवा साथ-साथ करने का इरादा था। भारतीयों ने उन्हें प्रेमपूर्वक विदा किया किन्तु उनसे वचन ले लिया कि यदि उनकी आवश्यकता पड़ेगी तो उन्हें पुनः आना पड़ेगा।

१८ अक्तूवर को गांधी जी द० अफ़्रीका से रवाना हुए। पहिले मारीशस गये। ३० अक्तूवर को मारीशस के पार्टलुई में उतरे। भारतीयों ने खूव स्वागत किया। १६ नवम्बर को वहां से भारत की यात्रा पर चल पड़े। १४ दिसम्वर को पोरवन्दर होकर राजकोट पहुंचे। कलकत्ता में कांग्रेस का सत्रहवां अधिवेशन होने जा रहा था, उसमें शामिल होने की उनकी प्रवल इच्छा थी। इसलिए १७ को राजकोट से वम्वई के लिए रवाना हुए। १६ को वम्वई पहुंचे। वम्वई से वह उसी गाड़ी से कलकत्ता रवाना हुए जिसमें सर फीरोजशाह मेहता तथा मनोनीत अध्यक्ष डी० ई० वाछा थे। कलकत्ता में वह तिलक तथा अन्य प्रतिनिधियों के साथ रिपन कालेज में ठहराये गये। उस समय तक कांग्रेस केवल एक वाद-विवाद-सभा थी, स्वयंसेवकों या कार्यकर्ताओं में सेवा की कोई भावना न थी। गांधीजी ने कार्यालय को अपनी सेवाएं दी और गन्दगी देख कई वार स्वेच्छा से भंगी का काम भी किया। २३ तारीख से वीडेन स्क्वायर में सुसज्जित पण्डाल मे कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ हुआ और २७ दिसम्वर तक चलता रहा। गांधीजी भी ५ मिनट के लिए वोले और उनका द० अफ्रीका-सम्वन्धी प्रस्ताव पास हो गया। यहां गांधीजी गोखले के निकट सम्पर्क में आये और सदा के लिए उनके भक्त हो गये। प्रायः एक मास तक कलकत्ता मे रहकर विभिन्न नेताओं से परिचय और सम्पर्क स्थापित करते रहे। वहीं प्रसिद्ध रसायनशास्त्री डा० प्रफुल्लचन्द्र राय से परिचय हुआ; गांधीजी उनकी सादगी और सेवा से वड़े प्रभावित हुए, जो अपने ८०० रुपये मासिक वेतन

में से केवल ४० रुपये अपने लिए रखकर शेष सब सेवा-कार्यों में व्यय कर देते थे। कलकत्ता से गांधीजी थोड़े समय के लिए रंगून (बर्मा) गये। फरवरी १९०२ में पुनः कलकत्ता लौटे और वहां गोखले के साथ ही रहे। उनकी सलाह से उन्होने भारत-भ्रमण का निश्चय किया। भारतीय जनता की ठीक-ठीक दशा जानने के लिए उन्होंने तीसरे दर्जे में यात्रा करने का संकल्प किया। गोखले ने उन्हें पूरी-मिठाई भरा एक टिफिन बक्स दिया। गांधीजी ने एक कनवैस बैग खरीद लिया जिसमें वह अपना गर्मकोट, एक धोती, तौलिया और कमीज रखते थे। उनके पास एक कम्बल भी था। गोखले उन्हें हवड़ा स्टेशन पर छोड़ने आये थे। वह २१ या २२ फरवरी को कलकत्ता से राजकोट रवाना हुए और बीच में काशी, आगरा, जयपुर और पालनपुर मे एक-एक दिन रुके।

काशी की गन्दगी और मन्दिरो के पास रहनेवाले भिक्षुकों का उन पर अच्छा प्रभाव नही पड़ा। अब काशी की इस पहिली यात्रा की कहानी उन्ही के शब्दों में सुनिए :—

काशी की तीर्थ-यात्रा : पण्डे के घर

"अब तीसरे दर्जे की यात्रा की चर्चा यहीं छोड़ कर काशी के अनुभव सुनिए। सुबह मैं काशी उतरा। मैं किसी पण्डे के यहाँ उतरना चाहता था। कई ब्राह्मणों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया। उनमें से जो मुझे साफ-सुथरा दिखाई दिया, उसके घर जाना मैंने पसन्द किया। मेरी पसन्दगी ठीक निकली। ब्राह्मण के आँगन में गाय बँधी थी। घर दुमंजिला था। ऊपर मुझे ठहराया। मै यथा-विधि गंगा-स्नान करना चाहता था। और तबतक निराहार रहना था। पण्डे ने सारी तैयारी कर दी। मैने पहले से कह रक्खा था कि सवा रुपए से अधिक दक्षिणा मैं नहीं दे सकूंगा, इसलिए उसी योग्य तैयारी करना। पण्डे ने बिना किसी झगड़े के मेरी बात मान ली। कहा—"हम तो क्या गरीब और क्या अमीर, सबसे एक ही-सी पूजा करवाते हैं। यजमान अपनी इच्छा और श्रद्धा के अनुसार जो दक्षिणा दे दे वही सही।" मुझे ऐसा नहीं मालूम कि पण्डे ने पूजा में कोई कोर-कसर रक्खी हो। बारह बजे तक पूजा-स्नान से निवृत्त होकर मैं काशी-विश्वनाथ के दर्शन करने गया। पर वहां जो कुछ देखा उससे मन में बड़ा दुःख हुआ।"

काशी विश्वनाथ

"सन् १८९१ ई० में जब मैं बम्बई में वकालत करता था, एक दिन प्रार्थना-

समाज मन्दिर में काशी-यात्रा पर एक व्याख्यान सुना था। इसलिए कुछ निराशा के लिए तो वहीं से तैयार हो गया था, पर प्रत्यक्ष देखने पर जो निराशा हुई वह तो धारणा से अधिक थी। सँकरी-फिसलनी गली से हारकर जाना पड़ता था। शान्ति का कहीं नाम नहीं। मक्खियाँ चारों ओर भिनभिना रही थीं। यात्रियों और दूकानदारों का हो-हल्ला असह्य मालूम हुआ।

"जिस जगह मनुष्य ध्यान एवं भगवच्चिन्तन की आशा रखता हो, वहां उनका नामोनिशान नहीं; ध्यान करना हो तो वह अपने अन्तर में कर ले। हां, ऐसी भावुक बहनें मैंने जरूर देखीं, जो ऐसी ध्यान-मग्न थीं कि उन्हें अपने आस-पास का कुछ भी हाल मालूम न होता था। पर इसका श्रेय मन्दिर के संचालकों को नहीं मिल सकता। संचालकों का कर्तव्य तो यह था कि काशी-विश्वनाथ के आस-पास शान्त, निर्मल, सुगन्धित, स्वच्छ वातावरण—क्या बाह्य और क्या आन्तरिक—उत्पन्न करें, और उसे बनाये रक्खें। पर इसकी जगह मैंने देखा कि वहाँ नये-से-नये तर्ज की मिठाई और खिलौनों की दूकानें लगी हुई थीं।

"मन्दिर पर पहुँचते ही मैंने देखा कि दरवाजे के सामने सड़े हुए फूल पड़े थे और उनमें से दुर्गन्ध निकल रही थी। अन्दर बढ़िया संगमरमरी फर्श था। उस पर किसी अन्ध-श्रद्धालु ने रुपए जड़ रखे थे; रुपयों में मैल-कचरा घुसा रहता था।

"मैं ज्ञान-वापी के पास गया। यहाँ मैंने ईश्वर की खोज की। वह होगा; पर मुझे न मिला। इससे मैं मन-ही-मन घुट रहा था। ज्ञान-वापी के पास भी गन्दगी देखी। भेंट रखने की मेरी जरा भी इच्छा न हुई, इसलिए मैंने तो सचमुच ही एक पाई वहाँ चढ़ाई। इस पर पण्डा जी उखड़ पड़े। उन्होंने पाई उठाकर फेंक दी और दो-चार गालियाँ सुनाकर बोले—"तू इस तरह अपमान करेगा तो नरक में पड़ेगा।"

"चुप रहा। मैंने कहा—"महाराज। मेरा तो जो होना होगा वह होगा, पर आपके मुँह से हलकी बात शोभा नहीं देती। यह पाई लेना हो तो लें वर्ना इसे भी गँवायेंगे।" "जा, तेरी पाई मुझे नहीं चाहिए" कह कर उन्होंने ज्यादा भला-बुरा कहा। मैं पाई लेकर चलता हुआ। मैंने सोचा कि महाराज ने पाई गँवाई और मैंने बचा ली। पर महाराज पाई खोने वाले न थे। उन्होंने मुझे फिर बुलाया। और कहा—"अच्छा रख दे, मैं तेरे जैसा नहीं होना चाहता। मैं न लूँ तो तेरा बुरा होगा।"

"मैंने चुपचाप पाई दे दी और एक लम्बी साँस लेकर चलता बना। इसके बाद भी दो-एक बार काशी-विश्वनाथ गया हूँ, पर वह तो तब, जब महात्मा बन

चुका था। इसलिए १९०२ के अनुभव भला कैसे मिलते? खुद मेरे ही दर्शन करने वाले मुझे क्या दर्शन करने देते? महात्मा के दुःख तो मुझ-जैसे महात्मा ही जान सकते हैं। किन्तु गन्दगी और हो-हल्ला तो जैसे-के-तैसे ही वहाँ देखे।

"परमात्मा की दया पर जिसे शंका हो, वह ऐसे तीर्थ-क्षेत्रों को देखे। वह महायोगी अपने नाम पर होनेवाले कितने ढोंग, अधर्म और पाखण्ड इत्यादि को सहन करते हैं। उन्होने तो कह रक्खा है:—

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अर्थात् जैसा करना वैसा भरना। कर्म को कौन मिथ्या कर सकता है? फिर भगवान् को बीच में पड़ने की क्या ज़रूरत है? वह तो अपने कानून बतलाकर अलग हो गया।

श्रीमती बेसेण्ट के दर्शन

"यह अनुभव लेकर मैं मिसेज़ बेसेण्ट के दर्शन करने गया। वह अभी बीमारी से उठी थीं। यह मैं जानता था। मैंने अपना नाम पहुँचाया। वह तुरन्त मिलने आई। मुझे तो सिर्फ दर्शन ही करने थे। इसलिए मैंने कहा—

"मुझे आपकी तबियत का हाल मालूम है, मैं तो सिर्फ आपके दर्शन करने आया हूँ। तबियत खराब होते हुए भी आपने मुझे दर्शन दिये, केवल इसी से मैं सन्तुष्ट हूँ, अधिक कष्ट मैं आपको नहीं देना चाहता।

"इसके बाद मैंने उनसे विदा ली।"

गोखले के पत्र में भी वही ध्वनि

गांधी जी काशी, आगरा, जयपुर, पालनपुर होते हुए २६ फरवरी १६०२ को राजकोट पहुंचे। वहां से ४ मार्च को जो पत्र उन्होंने गोपालकृष्ण गोखले को लिखा था उसमें भी काशी के सम्बन्ध में उनके मन पर पड़े बुरे प्रभाव की ध्वनि है:—

"गरीब मुसाफिरों के लिए बनारस शायद सबसे बुरा स्टेशन है। रिश्वत का दौरदौरा है। जबतक आप पुलिस सिपाहियों को घूस देने के लिए तैयार न हों तबतक अपना टिकट पाना बहुत कठिन है। वे दूसरों के साथ-साथ मेरे पास भी कई बार आये और बोले कि अगर हमें इनाम (या रिश्वत?) दें तो हम आपके टिकट खरीद देंगे। कई लोगों ने इस प्रस्ताव का फायदा उठाया। हममें से जिन्होंने यह मंजूर नहीं किया उन्हें खिड़की खुलने के बाद भी करीब-करीब एक घण्टे तक राह देखनी पड़ी। तब कहीं टिकट मिले। यदि हम कानून के इन संरक्षकों

की एक-दो ठोकरों का उपहार लिये विना ही वैसा कर पाये तो यह हमारा सौभाग्य ही समझिए। इसके विपरीत मुगलसराय का टिकट-मास्टर वहुत सज्जन था। उसने कहा कि मैं राजा और रंक में भेद नहीं करता।"

यह है गांधी जी की दृष्टि में १६०२ ई० की काशी।

३. हरद्वार-वर्णन : १९१५

शीघ्र ही दक्षिण अफ्रीका में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई कि २० नवम्बर १६०२ को गांधीजी पुनः वहां के लिए वम्वई से रवाना हुए और तव से सत्याग्रह, जन-सेवा, आश्रम-जीवन के विविव प्रयोगों में वहां ऐसे लगे कि १६१४ तक भारत आने का अवसर ही नहीं आया। १६१४ के अन्तिम भाग में दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न सुलझ जाने और गांधी-स्मट्स समझौता हो जाने पर उन्होंने अपने पुत्र मणि-लाल को वहां के काम देखने को छोड़ दिया और स्वदेश के लिए रवाना हुए। ६ जनवरी १६१५ शनिवार के दिन वह वम्वई पहुंचे थे।

गोखले की सलाह थी कि इतने दिनों तक देश से वाहर रहने के कारण पहिले घूम-घूम कर यहां की स्थिति का अध्ययन करो, फिर किसी काम-वाम का निश्चय करना। तदनुसार ६ मार्च १६१५ शनिवार को सकुटुम्व शान्ति-निकेतन पहुंचे, क्योंकि वहां गांधीजी के कई शिष्य और आत्मीय रह रहे थे। चार्ली एण्डरूज भी वहीं थे जो गांधी जी के परम स्नेही और मित्र थे। ६ से ११ तक शान्ति-निकेतन रहकर १२ मार्च को कलकत्ता होते हुए रंगून गये। २८ मार्च को कलकत्ता लौटे और ३१ मार्च को फिर वोलपुर, शान्ति-निकेतन आ गये।

इस साल १२ वर्ष के अन्तर से पड़नेवाला महाकुम्भ हरद्वार में था। उसके प्रति कुछ उत्सुकता थी; गुरुकुल के महात्मा मुंशीराम (वाद में स्वामी श्रद्धानन्द) से मिलने को भी आतुर थे। एण्डरूज ने उन्हें भारत में जिन तीन आदमियों से मिलने का आग्रह किया था उनमें एक महात्मा मुंशीराम भी थे।

हरद्वार में

गांधी जी कस्तूर वा के साथ ५ अप्रैल, १६१५ सोमवार की शाम हरद्वार पहुंचे। उनकी १६१५ की हस्तलिखित डायरी से पता चलता है कि वहां पहुंचकर वह श्रवणनाथ के वगीचे में ठहरे और प्रसिद्ध काली कमलीवाले वावा रामनाथ से मुलाकात की।

६ अप्रैल मंगलवार की सुवह गुरुकुल देखने गये। महात्मा मुंशीराम से भेंट की और उनकी वैलगाड़ी से वापिस हुए। ७ अप्रैल को ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला गये। स्वर्गाश्रम देखा। स्वामी नारायण एव मंगलनाथ स्वामी से भेंट हुई। ८ को ज्वालापुर महाविद्यालय, हिन्दू सभा और ऋषिकुल देखा। इसी दिन गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की ओर से उनका स्वागत किया गया। इस अवसर पर महात्मा मुंशी-राम जी ने कहा था—मुझे आशा है कि श्री गांधी भारत के लिए ज्योतिस्तम्भ वन जायेंगे। उनकी वाणी आगे चलकर पूरी तरह सफल और सार्थक सिद्ध हुई।

नवीन व्रत

उनकी यह यात्रा इस दृष्टि से वहुत महत्वपूर्ण है कि यही ९ अप्रैल वृहस्पतिवार को उन्होंने हिन्दुस्तान मे २४ घण्टे मे पाच ही वस्तुओं का और वह भी सूर्यास्त से पहिले, आहार करने का व्रत लेने का निश्चय किया जो दूसरे दिन से आरम्भ हो गया। पानी पांच वस्तुओं मे शामिल नही था किन्तु इलायची इत्यादि उन्ही मे गिनी गई। ११ को मोहिनी आश्रम, रामकृष्ण मिशन इत्यादि देखकर दिल्ली के लिए रवाना हो गये।

हरद्वार-यात्रा में उन्हें पाखण्ड, दम्भ तथा तीर्थो की जिस गन्दगी का अनुभव हुआ, वह सव अव उन्ही के शव्दो में सुनिए:

हरद्वार कुम्भ

"इस साल (१९१५) हरद्वार में कुम्भ का मेला पड़ता था। उसमें जाने की मेरी प्रवल इच्छा थी। फिर मुझे महात्मा मुंशीराम जी के दर्शन भी करने थे। कुम्भ के मेले के अवसर पर गोखले के सेवक-समाज ने एक वड़ा स्वयं-सेवक दल भेजा था। उसकी व्यवस्था का भार श्री हृदयनाथ कुंजरू को सौंपा गया था। स्व-र्गीय डाक्टर देव भी उसमें थे। यह वात तय पाई कि उन्हें मदद देने के लिए मैं भी अपनी टुकड़ी को ले जाऊं। इसलिए मगनलाल गांधी शान्ति-निकेतन वाली हमारी टुकड़ी को लेकर मुझसे पहले हरद्वार पहुंच गये थे। मैं भी रगून से लौटकर उनके साथ शामिल हो गया।

कलकत्ता से हरद्वार

"कलकत्ते से हरद्वार पहुंचते हुए रेल में खूव आफत उठानी पड़ी। डिव्वों में कभी-कभी तो रोशनी तक भी न होती। सहारनपुर से तो यात्रियों को मवेशी की तरह डव्वो मे भर दिया गया था। खुले डव्वे, ऊपर से मध्याह्न का सूर्य तप

रहा था, नीचे लोहे की फर्श गरम हो रही थी। इस मुसीबत का क्या पूछना ? फिर भी भावुक हिन्दू प्यास से गला सूखने पर भी इस्लामी पानी आता तो नहीं पीते। जब हिन्दू-पानी की आवाज आती तभी पानी पीते। यही भावुक हिन्दू दवा में जब डाक्टर शराब देते हैं, मुसलमान या ईसाई पानी देते हैं, मांस का सत्व देते है, तब उसे पीने में संकोच नही करते। उसके सम्बन्ध में तो पूछ-ताछ करने की आवश्यकता ही नही समझते।

भंगी का काम ही मेरा मुख्य काम

"हमने यह बात शान्ति-निकेतन में ही देख ली थी कि हिन्दुस्तान में भंगी का काम करना हमारा विशेष कार्य हो जायगा। स्वयंसेवकों के लिए वहां किसी धर्म-शाला मे तम्बू ताने गये थे। पाखाने के लिए डाक्टर देव ने गड्ढे खुदवाये थे, परन्तु उनकी सफाई का इन्तजाम तो वह उन्ही थोड़े से मेहतरों से करा सकते थे, जो ऐसे समय वेतन पर मिल सकते थे। ऐसी दशा में मैने यह प्रस्ताव किया कि गड्ढों में मल को समय-समय पर मिट्टी से ढांकना तथा और तरह से सफाई रखना, यह काम फिनिक्स के स्वयंसेवकों के जिम्मे किया जाय। डाक्टर देव ने इसे स्वीकार किया। इस सेवा को मांगकर लेनेवाला तो था मैं, परन्तु उसे पूरा करने का बोझा उठानेवाले थे मगनलाल गांधी।

दर्शनाभिलापियों की भीड़

"मेरा काम वहां क्या था ? डेरे में बैठकर जो अनेक यात्री आते उन्हें दर्शन देना और उनके साथ धर्म-चर्चा तथा दूसरी बातें करना। दर्शन देते-देते मैं घबरा उठा, उससे मुझे एक मिनट की भी फुरसत नही मिलती थी। मैं नहाने जाता तो वहां भी मुझे दर्शनाभिलाषी अकेला नही छोड़ते और फलाहार के समय तो एकान्त मिल ही कैसे सकता था ? तम्बू में कही भी एक पल के लिए अकेला न बैठता। दक्षिण अफ्रीका में जो कुछ सेवा मुझसे हो सकी उसका इतना गहरा असर सारे भारत-खण्ड में हुआ होगा, यह बात मैंने हरद्वार में ही अनुभव की।

चक्की के दो पाटों के बीच

"मैं तो मानों चक्की के दोनों पाटों में पिसने लगा। जहां लोग पहचानते नहीं वहां तीसरे दर्जे के यात्री के रूप में मुसीबत उठाता; जहां ठहर जाता वहां दर्शनार्थियों के प्रेम से घबरा जाता। दो में से कौन सी स्थिति अधिक दयाजनक है, यह मेरे लिए कहना बहुत बार मुश्किल हुआ है। हां, इतना तो जानता हूं कि दर्श-

नार्थियों के प्रदर्शन से मुझे गुस्सा आया है और मन ही मन तो उससे अधिक बार सन्ताप हुआ है। तीसरे दर्जे की मुसीबतों से सिर्फ मुझे कष्ट ही उठाने पड़े हैं, गुस्सा मुझे शायद ही आया हो, और कष्ट से तो मेरी उन्नति ही हुई है।

पाखण्ड के दर्शन

"इस समय मेरे शरीर में घूमने-फिरने की शक्ति अच्छी थी। इससे मैं इधर-उधर ठीक-ठीक घूम-फिर सका। उस समय मैं इतना प्रसिद्ध नही हुआ था कि जिससे रास्तों में चलना भी मुश्किल होता हो। इस भ्रमण में मैंने लोगों की धर्म-भावना की अपेक्षा उनकी लापरवाही, अधीरता, पाखण्ड और अव्यवस्थितता अधिक देखी। साधुओ के और जमातों के तो दल टूट पडे थे। ऐसा मालूम होता था मानों वे महज़ मालपुए और खीर खाने के लिए ही जन्मे हों। यहां मैंने पांच पांव वाली गाय देखी। उसे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु अनुभवी आदमियों ने तुरन्त मेरा अज्ञान दूर कर दिया। यह पांच पैरों वाली गाय तो दुष्ट और लोभी लोगों का शिकार थी। जीते बछड़े के पैर काटकर गाय के कन्धे का चमड़ा चीर कर उसमें चिपका दिया जाता था और इस दोहरी घातक क्रिया के द्वारा भोले-भाले लोगों को दिन-दहाड़े ठगने का उपाय निकाला गया था। कौन हिन्दू ऐसा है, जो इस पाँच-पांव वाली गाय के दर्शन के लिए उत्सुक न हो? इस पाँच-पांव वाली गाय के लिए वह जितना ही दान दे उतना ही कम।

"अब कुम्भ का दिन आया। मेरे लिए वह घड़ी धन्य थी। परन्तु मैं तीर्थ-यात्रा की भावना से हरद्वार नही गया था। पवित्रता आदि के लिए तीर्थक्षेत्र मे जाने का मोह मुझे कभी न रहा। मेरा ख्याल यह था कि सत्रह लाख आदमियों मे सभी पाखण्डी नही हो सकते। यह कहा जाता था कि मेले में सत्रह लाख आदमी इकट्ठे हुए थे। मुझे इस विषय में कुछ सन्देह नही था कि इनमें असंख्य लोग पुण्य कमाने के लिए, अपने को शुद्ध करने के लिए आये थे। परन्तु इस प्रकार की श्रद्धा से आत्मा की उन्नति होती होगी, यह कहना असम्भव नही तो मुश्किल जरूर है।

आहार-सम्बन्धी व्रत का निश्चय

"बिछौने पर पड़ा-पड़ा मैं विचार-सागर में डूब गया—चारों ओर फैले इस पाखण्ड में वे पवित्र आत्माएं भी तो हैं? वे लोग ईश्वर के दरबार में दण्ड के पात्र नही माने जा सकते। ऐसे समय हरद्वार में आना ही यदि पाप हो तो फिर मुझे प्रकट रूप से उसका विरोध करके कुम्भ के दिन तो हरद्वार अवश्य छोड़ देना चाहिए। यदि यहां आना और कुम्भ के दिन रहना पाप न हो तो मुझे कोई कठोर व्रत लेकर

इस प्रचलित पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिए, आत्मशुद्धि करनी चाहिए। मेरा जीवन व्रतों पर रचा गया है, इसलिए कोई कठोर व्रत लेने का निश्चय किया। इसी समय कलकत्ता और रंगून में मेरे निमित्त यजमानों को जो अनावश्यक परिश्रम करना पड़ा उसका भी स्मरण हो आया। इस कारण मैंने भोजन की वस्तुओं की संख्या मर्यादित कर लेने का और शाम को अंधेरे के पहले भोजन कर लेने का व्रत लेना निश्चित किया। मैंने सोचा कि यदि मैं अपने भोजन की मर्यादा नही रक्खूंगा तो यजमानों के लिए वहुत असुविधाजनक होता रहूंगा और सेवा करने के वजाय उनको अपनी सेवा करने में लगाता रहूंगा। इसलिए चौवीस घण्टों में पाँच चीजों से अधिक न खाने का और रात्रि-भोजन त्यागने का व्रत ले लिया। दोनों की कठिनाई का पूरा-पूरा विचार कर लिया था। इन व्रतों में एक भी अपवाद न रखने का निश्चय किया। वीमारी में दवा के रूप में ज्यादा चीजें लेना या न लेना, दवा को भोजन की वस्तु में गिनना या न गिनना, इस सब वातों का विचार कर लिया और निश्चय किया कि खाने की कोई चीज पाँच से अधिक न लूंगा। इन दो व्रतों को आज तेरह साल हो गये। इन्होंने मेरी खासी परीक्षा की है, परन्तु जहां एक ओर इन्होंने परीक्षा की है तहां मेरे लिए ढाल का भी काम दिया है। मैं मानता हूं कि इन व्रतों ने मेरी आयु वढ़ा दी है; इनकी वदौलत मेरी धारणा है कि मैं वहुत वार वीमारियों से वच गया हूं।

लक्ष्मण-भूला

"पहाड़-जैसे दीखनेवाले महात्मा मुन्शीराम के दर्शन करने और उनके गुरुकुल को देखने जव मैं गया तव मुझे वहुत शान्ति मिली। हरद्वार के कोलाहल और गुरुकुल की शान्ति का भेद स्पष्ट दिखाई देता था। महात्माजी ने मुझ पर भरपूर प्रेम की वृष्टि की। ब्रह्मचारी लोग मेरे पास से हटते ही नही थे। रामदेव जी से भी उसी समय मुलाकात हुई और उनकी कार्य-शक्ति को मैं तुरन्त पहचान सका था। यद्यपि हमारी मत-भिन्नता हमें उसी समय दिखाई पड़ गई थी, फिर भी हममें परस्पर स्नेह-गाँठ वँध गई। गुरुकुल में औद्योगिक शिक्षण का प्रवेश करने की आवश्यकता के सम्वन्ध में रामदेव जी तथा दूसरे शिक्षकों के साथ में मेरा ठीक-ठीक वार्तालाप भी हुआ। इससे जल्दी ही गुरुकुल को छोड़ते हुए मुझे दुःख हुआ।

"लक्ष्मण-झूला की तारीफ मैंने वहुत सुन रक्खी थी। ऋषिकेश गये विना हरद्वार न छोड़ने की सलाह मुझे वहुत से लोगों ने दी। मैंने वहां पैदल जाना चाहा। एक मंजिल ऋषिकेश की और दूसरी लक्ष्मण-झूले की की।

"ऋषीकेश मे बहुत से संन्यासी मिलने के लिए आये थे। उनमे से एक को मेरे जीवन-क्रम मे बहुत दिलचस्पी पैदा हुई। फिनिक्स-मण्डली मेरे साथ थी ही। हम सबको देखकर उन्होने बहुतेरे प्रश्न पूछे। हम लोगों में धर्म-चर्चा भी हुई। उन्होंने देख लिया कि मेरे अन्दर तीव्र धर्म-भाव है। मैं गंगा-स्नान करके आया था और मेरा शरीर खुला था। उन्होने मेरे सिर पर न चोटी देखी और न बदन पर जनेऊ। इससे उन्हे दुःख हुआ और उन्होने कहा :

"आप हैं तो आस्तिक, परन्तु शिखा-सूत्र नही रखते, इससे हम-जैसों को दुःख होता है। हिन्दू-धर्म की ये दो बाह्य संज्ञाएं हैं और प्रत्येक हिन्दू को इन्हें धारण करना चाहिए।"

"जब मेरी उम्र कोई दस वर्ष की रही होगी तब पोरबन्दर मे ब्राह्मणों के जनेऊ से बंधी चाबियों की झंकार मैं सुना करता था और उसकी मुझे ईर्ष्या भी होती थी। मन में यह भाव उठा करता कि मैं इसी तरह जनेऊ मे चाबियां लटकाकर झंकार किया करूं तो अच्छा हो। काठियावाड़ के वैश्य कुटुम्बों मे उस समय जनेऊ का रिवाज नही था। हां, नये सिरे से इस बात का प्रचार अलबत्ता हो रहा था कि द्विज-मात्र को जनेऊ अवश्य पहनना चाहिए। उसके फल-स्वरूप गांधी-कुटुम्ब के कितने ही लोग जनेऊ पहनने लगे थे। जिस ब्राह्मण ने हम दो-तीन सगे-सम्बन्धियो को रामरक्षा का पाठ सिखाया था, उसी ने हमे जनेऊ पहनाया। मुझे अपने पास चाबियां रखने का कोई प्रयोजन नही था। तो भी मैंने दो-तीन चाबिया लटका ली। जब वह जनेऊ टूट गया तब उसका मोह उतर गया था या नही, यह तो याद नही पड़ता, परन्तु मैंने नया जनेऊ फिर नही पहना।

"बड़ी उमर मे दूसरे लोगों ने फिर हिन्दुस्तान में तथा दक्षिण अफ्रीका में जनेऊ पहनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु उनकी दलीलो का असर मेरे दिल पर नही हुआ। शूद्र यदि जनेऊ नही पहन सकता तो फिर दूसरे लोगों को क्यो पहनना चाहिए? जिस बाह्य चिह्न का रिवाज हमारे कुटुम्ब मे नही था उसे धारण करने का एक भी सबल कारण मुझे नही दिखाई दिया। मुझे जनेऊ से अरुचि नही थी। परन्तु उसे पहनने के कारण का अभाव मालूम होता था। हा, वैष्णव होने के कारण मैं कण्ठी जरूर पहनता था। शिखा तो घर के बड़े-बूढ़े हम भाइयों के सिर पर रखवाते थे, परन्तु विलायत में सिर खुला रखना पड़ता था। गोरे लोग देखकर हँसेंगे और हमें जंगली समझेगे, इस शर्म से शिखा कटा डाली थी। मेरे भतीजे छगनलाल गाधी, जो दक्षिण अफ्रीका मे मेरे साथ रहते थे, बड़े भाव के साथ शिखा रख रहे थे। परन्तु इस वहम से कि उनकी शिखा वहा सार्वजनिक कामों में

बाधा डालेगी, मैंने उनके दिल को दुखा कर भी छुड़ा दी थी। इस तरह शिखा से मुझे उस समय शर्म लगती थी।

"इन स्वामी जी से मैंने यह सब कथा सुनाकर कहा :

"जनेऊ तो मैं धारण नहीं करूंगा, क्योंकि असंख्य हिन्दू जनेऊ नहीं पहनते हैं फिर भी वे हिन्दू समझे जाते हैं। मैं अपने लिए उसकी जरूरत नहीं देखता। फिर जनेऊ धारण करने के मानी हैं—दूसरा जन्म लेना अर्थात् हम विचारपूर्वक शुद्ध हों, ऊर्ध्वगामी हों। आज तो हिन्दू-समाज और हिन्दुस्तान दोनों गिरी दशा में है। इसलिए हमें जनेऊ पहनने का अधिकार ही कहां है? जब हिन्दू-समाज अस्पृश्यता का दोष धो डालेगा, ऊंच-नीच का भेद भूल जायगा, दूसरी गहरी बुराइयों को मिटा देगा, चारों तरफ फैले अधर्म और पाखण्ड को दूर कर देगा, तब उसे भले ही जनेऊ पहनने का अधिकार हो। इसलिए जनेऊ धारण करने की आपकी बात तो मुझे पट नहीं रही है। हां, शिखा-सम्बन्धी आपकी बात पर मुझे अवश्य विचार करना पड़ेगा। शिखा तो मैं रखता था। परन्तु शर्म और डर से उसे कटा डाला। मैं समझता हूं कि वह तो मुझे फिर धारण कर लेनी चाहिए। अपने साथियो के साथ इस बात का विचार कर लूगा।

"स्वामी जी को जनेऊ-विषयक मेरी दलील न जंची। जो कारण मैंने जनेऊ न पहनने के पक्ष में पेश किये, वे उन्हें पहनने के पक्ष में दिखाई दिये। अस्तु। जनेऊ के सम्बन्ध मे उस समय ऋषिकेश में जो विचार मैंने प्रदर्शित किया था वह आज भी प्रायः वैसा ही कायम है। जब तक संसार में भिन्न-भिन्न धर्मो का अस्तित्व है तबतक प्रत्येक धर्म के लिए बाह्य संज्ञा की आवश्यकता भी शायद हो, परन्तु जब वह बाह्य संज्ञा आडम्बर का रूप धारण कर लेती है अथवा अपने धर्म को दूसरे धर्म से पृथक् दिखलाने का साधन हो जाती है, तब वह त्याज्य है। आजकल मुझे जनेऊ हिन्दू-धर्म को ऊंचा उठाने का साधन नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए मैं उसके सम्बन्ध में उदासीन रहता हूं।

"शिखा के त्याग की बात जुदी है। वह शर्म और भय के कारण हटाई गई थी, इसलिए अपने साथियों के साथ विचार करके मैंने उसे धारण करने का निश्चय किया। पर अब हमको लक्ष्मण-झूले की ओर चलना चाहिए।"

प्राकृतिक शोभा बनाम गन्दगी

"ऋषीकेश और लक्ष्मण-झूले के प्राकृतिक दृश्य मुझे बहुत पसन्द आये। हमारे पूर्वजों की प्राकृतिक कला को पहचानने की क्षमता के प्रति और कला को धार्मिक स्वरूप देने की उनकी दूरदर्शिता के प्रति मेरे मन में बड़ा आदर उत्पन्न

हुआ। परन्तु दूसरी ओर मनुष्य की कृति को वहाँ देख चित्त को शान्ति न हुई। हरद्वार की तरह ऋषिकेश में भी लोग रास्तो को और गंगा के सुन्दर किनारों को गन्दा कर डालते है। गंगा के पवित्र पानी को बिगाड़ते हुए भी उन्हें कुछ संकोच न होता था। दिशा-जगल जानेवाले आम जगह और रास्तों पर ही बैठ जाते, यह देखकर मेरे चित्त को बड़ी चोट पहुँची।

"लक्ष्मण-झूला जाते हुए रास्ते मे लोहे का एक झूलता हुआ पुल देखा। लोगो से मालूम हुआ कि पहले यह पुल रस्सी का और बहुत मज़बूत था। उसे तोड़कर एक उदार-हृदय मारवाड़ी सज्जन ने बहुत रुपये लगाकर यह लोहे का पुल बना दिया और उसकी कुंजी सौंप दी सरकार को। रस्सी के पुल का तो मुझे कुछ खयाल नही हो सकता, परन्तु यह लोहे का पुल तो वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को कलुषित करता था और बहुत भद्दा मालूम होता था। फिर यात्रियों के इस रास्ते की कुंजी सरकार को सौंप दी गई, यह बात तो मेरी उस समय की वफादारी को भी असह्य मालूम हुई।

यही स्वर्गाश्रम है !

"वहाँ से भी अधिक दु:खद दृश्य स्वर्गाश्रम का था। टीन के तबेले-जैसे कमरों का नाम स्वर्गाश्रम रक्खा गया था। कहा गया था कि यह साधकों के लिए बनाया गया है। परन्तु उस समय शायद ही कोई साधक वहाँ रहता हो। वहाँ की मुख्य इमारत में जो लोग रहते थे उन्होने भी मेरे दिल पर अच्छी छाप नहीं डाली।

"जो हो, इसमे सन्देह नही कि हरद्वार के अनुभव मेरे लिए अमूल्य साबित हुए। मै कहाँ जाकर बसूं और क्या करूँ, इसका निश्चय करने में हरद्वार के अनुभवों ने मुझे बहुत सहायता दी"।"

वृन्दावन

हरद्वार से दिल्ली गांधी जी १२ अप्रैल को पहुँचे। दो दिन दिल्ली देखने तथा लोगों से मिलने के बाद, १४ अप्रैल, बुधवार की सुबह वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। दोपहर को वहाँ पहुँचे। शीघ्रता के साथ प्रेम महाविद्यालय, ऋषि-कुल, गुरुकुल, रामकृष्ण मिशन देखा। इस तीर्थ को भी उन्होने गन्दा ही पाया। रात को मथुरा लौटकर मद्रास के लिए रवाना हो गये।

---

४. १९१५ की डायरी के कुछ पन्ने

उत्तर प्रदेश के सम्बन्ध में बापू की डायरी

अप्रैल ५, सोमवार

शाम को हरद्वार पहुँचा। सरवननाथ के बगीचे में ठहरे। काली कमली वाले बाबा रामनाथ से मुलाकात।

अप्रैल ६, मंगल

सवेरे गुरुकुल देखने गया। एक स्वयंसेवक साथ आया। महात्मा जी से भेंट। उनकी बैलगाड़ी में वापस आया। जमनादास मेरे साथ था; वह गुरुकुल में रुक गया। लड़के ऋषिकेश गये। अखण्डानन्द, पडियार आदि मिले। मूल जी तापीदास—गुरुकुल में।

अप्रैल ७, बुध

ऋषिकेश गया। लक्ष्मण झूले की यात्रा। लटकता पुल देखा। स्वर्गाश्रम देखा। अनेक विचार आये। मंगलदास जी से मुलाकात। शिखासूत्र के विषय में चर्चा। स्वामी नारायण से भेंट।

अप्रैल ८, बृहस्पति

ज्वालापुर महाविद्यालय देखने गया। हिन्दू सभा देखी। ऋषिकुल के दर्शन। गुरुकुल के विद्यार्थियों की ओर से अभिनन्दन। राव जी भाई आये। कोतवाल भी आये।

अप्रैल ९, शुक्रवार

हिन्दुस्तान में २४ घण्टे में पाँच ही वस्तुओं का और वह भी सूर्यास्त से पहले आहार करने का व्रत लिया। पानी पाँच वस्तुओं में शामिल नहीं। इलायची आदि पाँच वस्तुओं में आती है। मूंगफली तथा उसके तेल को एक ही वस्तु मानूंगा। रावजी भाई ने दूध और दूध से बने पदार्थों (को न लेने) का व्रत लिया।

अप्रैल १०, शनिवार

उक्त व्रत आज से लिया। देखिए पिछली तारीख। दूसरी संस्थाएँ देखीं।

घारसीमल से ऋषिकेश जाते समय मुलाकात हुई। वह निकट सम्पर्क में आता जा रहा है।

अप्रैल ११, रविवार

मोहिनी आश्रम गया। रामकृष्ण मिशन देखा। दिल्ली जाने के लिए रवाना। सोसाइटी के सदस्यों के साथ विचार-विमर्श।

(११, १२, १३ दिल्ली में)

१४ अप्रैल, बुधवार

सवेरे वृन्दावन जाने के लिए दिल्ली से प्रस्थान किया। वृन्दावन दोपहर को पहुँचा। प्रेम महाविद्यालय, ऋषिकुल, गुरुकुल, रामकृष्ण मिशन देखने गया। शहर की गन्दगी। रात को मथुरा वापस आया और मद्रास की गाड़ी पकड़ी।

—गुजराती। गांधी जी के स्वाक्षरों में लिखी मूल गुजराती प्रति (जी० एन० ८२२१) से]

: तीन :

निर्झर

[भाषण, भेंट एवं सन्देश]

१. हरद्वार में : गुरुकुल कांगड़ी के मानपत्र का उत्तर

गांधी जी सपत्नीक कुम्भ पर्व के अवसर पर हरद्वार गये। ८ अप्रैल को गुरुकुल काँगड़ी गये। प्राध्यापक महेशचरण सिंह ने ब्रह्मचारियों के एक दल के साथ उनका स्वागत किया। इस अवसर पर एक मानपत्र दिया गया जिसे ब्रह्मचारी वुद्धदेव ने पढ़ा। मानपत्र के उत्तर में गांधी जी ने कहा:—

"महात्मा मुंशीराम का जो प्रेम मेरे प्रति है उसके लिए उनका कृतज्ञ हूं। केवल उ हीं से मिलने हरद्वार आया हूं। श्री ऐण्ड्रूज ने भारत के उन तीन महापुरुषों में उनका नाम गिनाया था जिनसे मुझे मिलना चाहिए। महात्मा जी ने एक पत्र में मुझे 'भाई' कहा है। इसका मुझे गर्व है। आप लोग प्रार्थना करें कि मैं उनका भाई वनने के योग्य हो सकूं। २८ वर्षों के वाद अपने देश में आया हूं अत: कोई सलाह नहीं दे सकता। मैं तो मार्गदर्शन प्राप्त करने आया हूं। जो भी मातृभूमि की सेवा में लगा है ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख झुकने को तय्यार हूं। अपने देश की सेवा में अपने प्राण देने के लिए तय्यार हूं। अव विदेश नही जाऊंगा। मेरे एक भाई (लक्ष्मीदास गांधी) चल वसे। मैं चाहता हूं कोई मेरा मार्गदर्शन करे। आशा है, महात्मा जी उनका स्थान ले लेंगे और मुझे भाई मानेंगे।"

"ब्रह्मचारियों ने अपने अफ्रीकावासी भारतीय भाइयों के सहायतार्थ जो धन भेजा है इसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूं। गुरुकुल में फीनिक्सवासी छात्रों के प्रति प्रेम और स्नेह का व्यवहार किये जाने पर ब्रह्मचारियों का और महात्मा जी (मुंशीराम जी) का विशेष आभार मानता हूं। मुझे अपनी गुरुकुल की तीर्थयात्रा से वहुत सन्तोष हुआ है। आपका जो उद्देश्य है वही हम सवका भी है। ईश्वर हमारे पवित्र कार्य को सफल करें।"

— हिन्दी। हरद्वार, ८।४।१९१५। अंग्रेजी से। ['हिन्दू', १२।४।१९१५। सं० गां० वा० भाग १३, पृष्ठ ४९]

२. हरद्वार गुरुकुल

मेरा हरद्वार गुरुकुल में भाई श्री मुंशीराम से अच्छा सम्बन्ध हो गया है।

वहा मेरे पुत्र और अन्य मित्र रहे थे। और वहा उनको जो लाभ हुआ और उनको जो स्नेह मिला, वह भुलाया नही जा सकता।

—सूरत आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर भाषण करते हुए। २।१।-
१९१६। 'गुजराती' ९।१।१९१६।]

३. भाषण : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में

[यह भाषण काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन-समारोह पर ४ फरवरी को दिया गया था। परन्तु ६ फरवरी को गांधी जी ने स्वयं ही उसका सम्पादन करके इसे तैयार किया था।—सम्पा०]।

मित्रो, यहा आते हुए रास्ते मे मुझे बहुत देर लग गई। मैं इसके लिए क्षमा-याचना करता हूं। आप मुझे खुशी से माफ भी कर देंगे क्योंकि इस देरी के लिए न मै जिम्मेदार हूं, न कोई और आदमी (हँसी)। सच कहो तो मै पिजरे का पंछी हू और मेरी देख-रेख करने वाले लोग अत्यधिक ममता के कारण जीवन के एक महत्वपूर्ण पहलू अर्थात् शुद्ध संयोग की बात को भूल जाते है। इस बार भी हम लोग, मैं, मेरे निरीक्षक और मुझे उठाकर चलनेवालों को एक के बाद एक जिन दुर्घटनाओ का सामना करना पड़ा, उसकी पूर्व कल्पना करके तो कोई इन्तजाम नही किया गया था, इसीलिए इतनी देरी हो गई।

मित्रो, अभी-अभी जो महिला भाषण देकर बैठी है उनकी अद्भुत वाक्शक्ति के प्रभाव मे आकर आप लोग कृपया इस बात पर विश्वास न कर ले कि जो विश्वविद्यालय अभी तक पूरा बना और उठा भी नही है, वह कोई परिपूर्ण संस्था है; और अभी जो विद्यार्थी यहां आये तक नही है वे शिक्षा-सम्पादन करके यहां से एक महान साम्राज्य के नागरिक होकर निकल चुके है। मन पर ऐसी कोई छाप लेकर आप लोग यहा से न जायें और जिनके सामने आज मैं बोल रहा हूं वे विद्यार्थी-गण तो एक क्षण के लिए भी इस बात को मन में जगह न दे कि जिस आध्यात्मिकता के लिए इस देश की ख्याति है और जिसमें उसका कोई सानी नही है उस आध्यात्मिकता का सन्देश बाते बघार कर दिया जा सकता है। अगर आपको ऐसा कुछ खयाल हो तो मेहरबानी करके मेरी इस बात पर भरोसा कीजिए कि आपका वह खयाल गलत है। मुझे आशा है कि किसी दिन भारत संसार को यह सन्देश देगा, किन्तु केवल वचनो के द्वारा वह सन्देश कभी नही दिया जा सकेगा। मैं भाषणों और तकरीरो से ऊब गया हूं। अलबत्ता पिछले दो दिनों में यहां जो

भाषण दिये गये हैं, उन्हें मैं इस तरह की तकरीरों से अलग मानता हूं, क्योंकि वे जरूरी थे। फिर भी मैं यह कहने की धृष्टता कर रहा हूं कि हम भाषण देने की कला के लगभग शिखर पर जा पहुँचे हैं और अब आयोजकों को देख लेना और भाषणों को सुन लेना ही पर्याप्त नहीं माना जाना चाहिए। अब हमारे मनों में स्फुरण होना चाहिए, हाथ-पाँव हिलने चाहिए। पिछले दो दिनों में हमें बतलाया गया कि अगर भारतीय जीवन की सादगी कायम रखनी है तो हमें अपने हाथ-पाँव और मन की गति में सामञ्जस्य लाना आवश्यक है। वैसे यह भूमिका हुई; मैं कहना यह चाहता हूं कि मुझे आज इस पवित्र नगर में, इस महान विद्यापीठ के प्रांगण में अपने ही देशवासियों से एक विदेशी भाषा में बोलना पड़ रहा है। यह बड़ी अप्रतिष्ठा और शर्म की बात है। पिछले दो दिनों में यहां जो भाषण दिये गये हैं यदि उनमें लोगों की परीक्षा ली जाय और मैं परीक्षक होऊं तो निश्चित है कि ज्यादातर लोग फेल हो जायं। क्यों? इसलिए कि इन व्याख्यानों ने उनके हृदय नही छुए। मैं गत दिसम्बर में राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में मौजूद था। वहां बहुत अधिक तादाद में लोग इकट्ठा हुए थे। आपको ताज्जुब होगा कि बम्बई के वे तमाम श्रोता केवल उन भाषणों से प्रभावित हुए जो हिन्दी में दिये गये थे। ध्यान दीजिए यह बम्बई की बात है, बनारस की नहीं, जहां सभी लोग हिन्दी बोलते हैं। बम्बई प्रान्त की भाषाओं[1] और हिन्दी में उतना फर्क नहीं है जैसा अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में है और इसलिए वहां के श्रोता हिन्दी बोलनेवाले की बात ज्यादा आत्मीय भाव से समझ सके। मुझे आशा है कि इस विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जायगा। हमारी भाषा हमारा ही प्रतिबिम्ब है और इसलिए यदि आप मुझसे यह कहें कि हमारी भाषाओं में उत्तम विचार अभिव्यक्त किये ही नही जा सकते तब तो हमारा इस संसार से उठ जाना अच्छा है। क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में किसी भी दिन भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है? (नही, नहीं की आवाजें) फिर राष्ट्र के पांवों में यह बेड़ी किसलिए? जरा सोचकर देखिए कि अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज बच्चों के साथ होड़ कराने में हमारे बच्चों पर कितना वजन पड़ता है। पूना के कुछ प्रोफेसरों से मेरी बात हुई। उन्होंने बताया कि चूंकि हर भारतीय विद्यार्थी को अंग्रेजी के द्वारा ज्ञान-सम्पादन करना पड़ता है इसलिए

---

१. तब बम्बई प्रान्त में, सिन्ध, कच्छ, काठियावाड़, सौराष्ट्र और महाराष्ट्र का बहुत सा भाग आ जाता था। सिन्धी, गुजराती और मराठी समान रूप से महत्वपूर्ण भाषाएँ थीं।

उसे अपने जीवन के मूल्यवान वर्षों में से कम-से-कम छ: वर्ष अधिक नष्ट करने पड़ते हैं। हमारे स्कूलों और कालेजों से निकलनेवाले विद्यार्थियों की संख्या में इस-छ: का गुणा कीजिए और फिर देखिए कि राष्ट्र के कितने हजार वर्ष बरबाद हो चुके हैं। हम पर आरोप लगाया जाता है कि हममें पहल करने का माद्दा नहीं है। हो भी कैसे सकता है? यदि हमें एक विदेशी भाषा पर अधिकार पाने के लिए जीवन के अमूल्य वर्ष लगा देने पड़ें तो फिर और हो क्या सकता है? और तो और हम इसमें भी सफल नही हो पाते। श्री हिगिन बाथम ने श्रोताओं को जितना प्रभावित किया, क्या कल और आज बोलनेवालों में एक भी अन्य वक्ता उतना प्रभावित कर सका? यह उन बोलनेवालों का कसूर नही था। सामग्री तो उनके भाषणों में भरपूर थी, लेकिन उनके भाषणों ने हमारा मन नही पकड़ा। कहा जाता है कि आखिरकार भारत के अंग्रेजीदां ही देश का नेतृत्व कर रहे हैं और वे ही राष्ट्र के लिए सब कुछ कर रहे हैं। अगर इसके विपरीत बात होती तो वह और भी भयानक होती, क्योंकि हमें शिक्षा के नाम पर केवल अंग्रेजी शिक्षा ही तो मिलती है। शिक्षा का कुछ-न-कुछ परिणाम तो निकलता ही है। किन्तु मान लीजिए हमने पिछले पचास वर्षों में अपनी-अपनी भाषाओं के जरिए शिक्षा पाई होती, तो हम आज किस स्थिति में होते? तो आज भारत स्वतन्त्र होता; तब हमारे पढ़े-लिखे लोग अपने ही देश मे अजनबियों की तरह न रहते बल्कि देश के हृदय को छूने वाली वाणी बोलते; वे गरीब-से-गरीब लोगो के बीच काम करते और पचास वर्षों की उनकी उपलब्धि पूरे देश की विरासत होती। (तालियां) आज तो हमारी अर्धांगिनियां भी हमारे श्रेष्ठ विचारों की भागीदार नही हैं। प्रो० बसु[1] और प्रो० राय[2] तथा उनके शानदार आविष्कारों को ही लीजिए। क्या यह लज्जा की बात नही है कि जनता का उनसे कुछ लेना-देना नही है?

अब हम दूसरी बात लें। कांग्रेस ने स्वराज्य के बारे में एक प्रस्ताव पास किया है। यों तो मुझे विश्वास है कि अखिल भारतीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग अपना कर्त्तव्य करेंगी और कुछ-न-कुछ ठोस सुझावों के साथ सामने आयेंगी, किन्तु जहां तक मेरा खयाल है मैं यह स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूं कि मुझे इस बात में उतनी दिलचस्पी नही है कि वे क्या कुछ कर पाती हैं, जितनी इस बात में है कि विद्यार्थी-जगत् क्या करता है या जनता क्या करती है। कोई भी कागजी कार्रवाई हमें स्वराज्य नहीं दे सकती। धुंआधार भाषण हमें स्वराज्य के योग्य नही बना

---

१. जगदीश चन्द्र बसु, प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक।

२. प्रफुल्लचन्द्र राय, प्रसिद्धरसायनशास्त्री।

सकते। वह तो हमारा अपना आचरण है जो हमें उसके योग्य बनायेगा। (तालियां) सवाल यह है कि हम अपने पर किस प्रकार राज्य करना चाहते हैं? मैं आज भाषण नहीं देना चाहता, श्रव्य रूप में सोचना चाहता हूं। यदि आज आपको ऐसा लगे कि मैं असंयत होकर बोल रहा हूं तो कृपया मानिए कि कोई आदमी जोर-जोर से बोलता हुआ सोच रहा है और वही आप सुन पा रहे हैं। और यदि आपको ऐसा जान पड़े कि मैं शिष्टाचार की सीमा का उल्लंघन कर रहा हूं, तो कृपया उस स्वच्छन्दता के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। कल शाम मैं विश्वनाथ के दर्शनों के लिए गया था। उन गलियों में चलते हुए मेरे मन में खयाल आया कि यदि कोई अजनबी एकाएक ऊपर से इस मन्दिर पर उतर पड़े और यदि उसे हम हिन्दुओं के बारे में विचार करना पड़े तो क्या हमारे बारे में कोई छोटी राय बना लेना उसके लिए स्वाभाविक न होगा? क्या यह महान मन्दिर हमारे अपने आचरण की ओर उंगली नही उठाता? मैं यह बात एक हिन्दू की तरह बड़े दर्द के साथ कह रहा हूं। क्या यह कोई ठीक बात है कि हमारे पवित्र मन्दिर के आसपास की गलियां इतनी गन्दी हों? उसके आसपास जो घर बने हुए हैं वे बेसिलसिले और चाहे जैसे हों? गलियां टेढ़ी-मेढ़ी और सँकरी हों? अगर हमारे मन्दिर भी कुशादगी और सफाई के नमूने न हों तो हमारा स्वराज्य कैसा होगा? चाहे खुशी से, चाहे लाचारी से अंग्रेजों का बोरिया-बँधना बँधते ही क्या हमारे मन्दिर पवित्रता और शान्ति के धाम बन जायँगे?

मैं कांग्रेस के अध्यक्ष से इस बात में सहमत हूँ कि स्वराज्य की बात सोचने के पहले हमें बड़ी मशक्कत करनी पड़ेगी। हमारे यहाँ हर शहर के दो हिस्से होते हैं, बस्ती खास और छावनी। बस्ती को अक्सर एक बदबूदार गन्दी कोठरी समझिए। यह ठीक है कि हम शहरों की जिन्दगी के आदी नही हैं। लेकिन जब शहरी जिन्दगी की हमें जरूरत ही है तो उसे हम अपने लापरवाह ग्राम्य-जीवन का प्रतिबिम्ब तो नही बना सकते। बम्बई की जिन गलियों में भारतीय रहते हैं वहाँ राहगीर को यह धुकधुकी लगी रहती है कि कही कोई ऊपर की मंजिल से उन पर पीक न छोड़ दे। यह बड़ी विचारणीय परिस्थिति है। मैं काफी रेल-यात्रा करता हूँ। तीसरे दर्जे के यात्री की तकलीफों पर ध्यान जाता है। किन्तु इन सभी तकलीफों की जिम्मेदारी रेलवे के अधिकारियों के ऊपर नहीं मढ़ी जा सकती। यह जानते हुए भी कि डिब्बे का फर्श अक्सर सोने के काम में बरता जाता है, हम उस पर जहाँ-तहाँ थूकते रहते हैं। हम जरा भी नही सोचते कि हमें वहाँ क्या फेंकना चाहिए क्या नही, और नतीजा यह होता है कि सारा डिब्बा गन्दगी का अवर्णनीय नमूना बन जाता है। जिन्हें कुछ ऊँचे दर्जे का माना जाता है, वे अपने से कम भाग्यशाली

अपने भाइयों के साथ डाँट-डपट का व्यवहार करते है। विद्यार्थी-वर्ग को भी मैंने ऐसा करते पाया है। वे भी (गरीब) सहयात्रियों के साथ (कुछ अच्छा) व्यवहार नही करते। वे अंग्रेजी बोल सकते हैं और नारफाक जाकिटें पहने होते हैं और इसलिए वे अधिकार जताकर डिब्बे में घुस जाते हैं और बैठने की जगह ले लेते है। मैने हर अँधेरे कोने को मशाल जलाकर देखा है, और चूंकि आपने मुझे बातचीत करने की यह सुविधा दी है, मैं अपना मन आपके सामने खोल रहा हूँ। स्वराज्य की दिशा में बढ़ने के लिए हमें बिलाशक ये सारी बातें सुधारनी चाहिए। अब मैं आपको दूसरी जगह ले चलता हूँ। जिन महाराजा महोदय[1] ने कल की हमारी बैठक की अध्यक्षता की थी उन्होंने भारत की गरीबी की चर्चा की। दूसरे वक्ताओं ने भी इस बात पर बड़ा जोर दिया। किन्तु जिस शामियाने में वाइसराय-द्वारा शिलान्यास हो रहा था वहाँ हमने क्या देखा? एक ऐसा शानदार प्रदर्शन, जड़ाऊ गहनों की ऐसी प्रदर्शनी जिसे देखकर पेरिस से आनेवाले किसी जौहरी की आँखें भी चौंधिया जाती। जब मैं गहनों से लदे हुए उन अमीर-उमरावों को भारत के लाखों गरीब आदमियों से मिलाता हूँ, तो मुझे लगता है कि मैं इन अमीरों से कहूँ कि जबतक आप अपने ये जेवरात नही उतार देते और उन्हें गरीबों की धरोहर मानकर नही चलते तबतक भारत का कल्याण नहीं होगा। (हर्ष-ध्वनि और तालियां) मुझे यकीन है कि सम्राट अथवा लार्ड हार्डिंज सम्राट् के प्रति वास्तविक राजभक्ति दिखाने के लिए किसी का गहनों के सन्दूक उलटकर, सिर से पाँव तक सजकर आना जरुरी नहीं समझते। अगर आप चाहें तो मैं जान की बाजी लगाकर महाराज जार्ज पंचम का सन्देशा आपको लाकर दे दूं कि वह यह नही चाहते। भाइयो, जब कभी मैं सुनता हूँ कि कही, फिर वह ब्रिटिश भारत में हो चाहे हमारे बड़े-बड़े राजाओं और नवाबों-द्वारा शासित रजवाड़ों में, कोई बड़ा भवन उठाया जा रहा है तो मेरा मन दुखी हो जाता है और मैं सोचने लगता हूँ—यह पैसा तो किसानों के पास से इकट्ठा किया गया पैसा है। हमारे ७५ प्रतिशत से भी अधिक लोग किसान हैं; कल श्री हिगिनबाथम ने अपनी प्रवाहमयी वाणी में कहा—ये ही वे लोग हैं जो एक के दो दाने करते हैं। यदि हम इनके परिश्रम की सारी कमाई दूसरों को उठाकर ले जाने दें तो कैसे कहा जा सकता है कि स्वराज्य की कोई भी भावना हमारे मन में है? हमें आजादी किसान के बिना नही मिल सकती। आजादी वकील और डाक्टर या सम्पन्न जमीन्दारों के वश की बात नही है।

---

१. दरभंगा के सर रामेश्वर सिंह (१८६०-१९२९), बी० एच० यू० की स्थापना में मालवीय जी के सहायक।

अब अन्त में उस बात का थोड़ा-सा विवेचन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिसने आज दो-तीन दिनों से हमारे मनों को उद्विग्न कर रक्खा है। श्रीमन् वाइसराय के यहाँ के रास्तों से निकलने के समय हम सब लोग बड़ी ही चिन्ता में थे। स्थान-स्थान पर खुफिया पुलिस के लोग नियत थे। हम दंग रह गये। हमारे मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि हम लोगों के प्रति इतने अविश्वास का क्या कारण है? इस प्रकार मरणान्तक दुःख भोगते हुए जीने की अपेक्षा क्या लार्ड हार्डिंज के लिए सचमुच ही मर जाना अधिक श्रेयस्कर नहीं है? परन्तु एक बलशाली सम्राट् के प्रतिनिधि इस प्रकार मर भी नहीं सकते। मृतक की भांति जीना ही वह शायद जरूरी समझते होंगे। पर दूसरा प्रश्न यह है कि खुफिया का जुआ हमारे सिर पर लादने का क्या कारण है? हम क्रुद्ध होते हों, बड़बड़ाते हों, हाथ-पैर पटकते हों, या जो चाहे सो करते हों, पर फिर भी यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में अराजक दल की उत्पत्ति का कारण उतावलेपन का नशा है। मैं खुद भी अराजक ही हूं, पर दूसरे वर्ग का। हमारे यहां अराजकों का एक वर्ग है जिससे यदि मुझे मिलने का अवसर मिले तो मैं उनसे स्पष्ट कह दूंगा कि भाइयो! यदि भारत को अपने विजेताओं पर विजय प्राप्त करनी हो तो आपकी अराजकता के लिए यहां जगह नहीं है। यह भीरुता का लक्षण है। यदि आपका ईश्वर पर विश्वास हो और यदि आप उसका भय मानते हों तो फिर आपको किसी से डरने का कोई कारण नहीं है, फिर वे चाहे राजा-महाराजा हों, वाइसराय हों अथवा स्वयं सम्राट् हों। अराजकों के स्वदेश-प्रेम का मैं बड़ा आदर करता हूँ। वे जो स्वदेश के लिए आनन्दपूर्वक मरने के लिए प्रस्तुत रहते हैं उनकी मैं इज्जत करता हूं। पर मैं उनसे पूछता हूं कि क्या किसी की जान लेना प्रतिष्ठा का कार्य है? क्या छुरे से हत्या करने के फलस्वरूप जो मृत्युदण्ड प्राप्त होता है उसे किसी भी प्रकार गौरवपूर्ण माना जा सकता है? मैं कहता हूं "नहीं।" कोई धर्मग्रन्थ ऐसे उपाय का अवलम्बन करने की अनुमति नही देता।

यदि मुझे इस बात का विश्वास हो जाय कि अंग्रेजों के रहते हुए इस देश का कदापि उद्धार न होगा, उन्हें यहाँ से निकाल ही देना चाहिए तो उनसे अपना बोरिया-बिस्तर समेट कर यहाँ से चलते होने की प्रार्थना करने में मैं कभी आगा-पीछा न करूंगा और मुझे विश्वास है कि अपनी इस दृढ़ धारणा के समर्थन में मैं मरने को भी तैयार रहूंगा। ऐसा मरण ही मेरी सम्मति में प्रतिष्ठा का मरण है। बम फेंकने वाला गुप्त रूप से षड्यन्त्र करता है। वह बाहर निकलने से डरता रहता है और पकड़े जाने पर अपने अयोग्य और अतिरिक्त उत्साह का प्रायश्चित्त भोगता है। ये लोग कहते है कि यदि हम लोग ऐसी कार्रवाइयाँ न करते, यदि हमारे कुछ

साथी वहुतों को बम का निशाना न वनाते तो वंगभंग के सम्वन्ध में ··· (इस स्थान पर श्रीमती वेसेण्ट ने गांधी जी से शीघ्र ही भाषण समाप्त करने के लिए कहा) मि० लायन्स की अध्यक्षता में वंगाल में भी मैंने यही वात कही थी। मेरा खयाल है कि मै जो कुछ कह रहा हूँ वह विल्कुल ठीक है। मुझे अपना भाषण वन्द करने को कहा जायगा तो मैं वन्द कर दूंगा। (अध्यक्ष को सम्वोधित करके) महाराज! मै आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा हूं। यदि आपकी समझ में मेरी इनवातो से देश और साम्राज्य को हानि पहुँच रही है तो मुझे अवश्य चुप हो जाना चाहिए। (कहिए, कहिए का शोर, अध्यक्ष ने गांधी जी से अपना मतलव साफ तौर पर वतलाने को कहा) मै अपना मतलव स्पष्ट करता हूँ। मैं सिर्फ (फिर गड़वड) मित्रो, इस गड़वड़ से आप रुष्ट न हों। श्रीमती वेसेण्ट को मेरा चुप हो जाना उचित जान पड़ता है, इसका कारण यह है कि भारत पर उनका वहुत अधिक प्रेम है और वह समझती है कि युवकों के सामने इस प्रकार की स्पष्ट वातें कह कर मै अनुचित काम कर रहा हूँ। पर यदि ऐसा हो तो भी मेरा कहना है कि मुझे भारत को उस अविश्वास से मुक्त करना है जो राजा और प्रजा, सभी के मन मे उत्पन्न हो गया है। यदि अपने साध्य को प्राप्त करना हो तो परस्पर की प्रीति तथा विश्वास पर स्थापित साम्राज्य से ही हमारा काम चलेगा और अपने-अपने घरो मे वैठे-वैठे दायित्व-हीन ढंग से यही वातें करने की अपेक्षा क्या इस विद्यालय के प्रांगण मे खड़े होकर उन्हे खुले तौर पर कहना अधिक अच्छा नही है? मेरा तो खयाल है, इन बातों को पूरी स्पष्टता से कहना ही अधिक अच्छी वात है। पहले भी मैने ऐसा ही किया है और उसका परिणाम वड़ा ही उत्तम हुआ है। मैं यह भी जानता हूँ कि आज ऐसी कोई वात नही है जिसकी चर्चा विद्यार्थियों में न होती हो या जिसे वे न जानते हों। इसीलिए मैने यह आत्म-निरीक्षण आरम्भ किया है। अपने देश का नाम मुझे वहुत ही प्यारा है। इसीसे मैंने आप लोगों के साथ विचार-विनिमय की इतनी चेष्टा की है और आप लोगों से मेरी नम्रतापूर्वक प्रार्थना है कि अराजकता को भारत मे विल्कुल स्थान न मिलने दीजिए। राज्यकर्त्ताओं से आपको जो कुछ कहना हो उसे खुलकर साफ शब्दों मे कह दीजिए, और यदि आपका कथन उन्हे वुरा लगे तो उसके परिणामस्वरूप जो कष्ट मिले उन्हें भोगने के लिए तैयार रहिए। आप उन्हें गालिया न दीजिए। जिस सिविल सर्विस पर निन्दा की गहरी वौछार की जाती है एक वार उसके एक अधिकारी से मुझे वार्तालाप करने का अवसर मिला था। इन लोगों से मेरा कुछ वहुत हेल-मेल नही है, तथापि उसकी वातचीत का ढग प्रशंसनीय था। उसने पूछा—क्या आपका ऐसा ही खयाल है कि हम सभी सिविल सर्विस वाले वुरे होते है और जिन लोगों

पर शासन करने के लिए हम यहाँ आते हैं उन पर हम केवल अत्याचार ही करना चाहते हैं? मैंने कहा—'नहीं-नहीं, मैं ऐसा नही मानता।' इस पर उसने कहा —'तो फिर जब कभी आपको मौका मिले आप हम अभागे सिविल सर्वेण्टों के पक्ष में लोगों के सामने दो शब्द कहने की कृपा करें।' वे दो शब्द मैं यहाँ कहने वाला हूँ। इण्डियन सिविल सर्विस के बहुत से लोग निःसन्देह उद्धत, अत्याचार-प्रिय, और अविवेकी होते हैं। इसी तरह के और कितने ही विशेषण उन्हें दिये जा सकते हैं। यह सब कुछ मुझे स्वीकार है। यही नहीं, मैं यह भी मानता हूँ कि कुछ वर्षों तक हमारे देश में रहकर वे और भी ओछी मनोवृत्ति के बन जाते हैं। पर इससे क्या सूचित होता है? यहाँ आने के पहले यदि वे सभ्य एवं सत्पुरुष थे पर यहाँ आकर यदि वे नीतिभ्रष्ट हो गये तो क्या इसे हमारे ही चरित्र का प्रतिबिम्ब नही कहना चाहिए? (नहीं, नहीं) आप लोग खुद ही विचार करें कि एक मनुष्य जो कल तक भला आदमी था, मेरे साथ रहने पर खराब हो जाय तो उसके इस अवः-पतन के लिए कौन उत्तरदायी होगा? वह या मैं? भारत में आने पर खुशामद की जो हवा उन्हें चारों ओर से घेर लेती है वही उनके नीति-च्युत होने का कारण है। ऐसी हालत में कोई भी व्यक्ति नीति-च्युत हो सकता है। कभी-कभी अपने दोष स्वीकार करना भी अच्छा होता है।

यदि किसी दिन हमें स्वराज्य मिलेगा तो यह अपने ही पुरुषार्थ से मिलेगा। वह दान के रूप में कदापि नही मिलने का। ब्रिटिश-साम्राज्य के इतिहास पर दृष्टि-पात कीजिए। ब्रिटिश-साम्राज्य चाहे जितना स्वातन्त्र्य-प्रेमी हो, फिर भी स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिए स्वयं उद्योग न करनेवालों को वह कभी स्वतन्त्रता देनेवाला नही है। आप चाहें तो बोअर-युद्ध से कुछ शिक्षा ले सकते हैं। कुछ ही वर्ष पहले जो बोअर लोग साम्राज्य के शत्रु थे, वही अब उनके मित्र हैं।

(इस समय फिर गड़बड़ शुरू हुई और श्रीमती बेसेण्ट उठकर चल दीं। उनके साथ और भी कई बड़े-बड़े लोग उठकर चलते बने और व्याख्यान का अन्त वहीं हो गया।)

—अंग्रेजी। काशी ४।२।१९१६ संशोधित ६।२।१९१६। 'स्पीचेज ऐण्ड राइ-टिंग्स आव महात्मा गांधी' से]

४. भाषण : काशी नागरी-प्रचारिणी सभा में

[५ फरवरी १९१६ को नागरी-प्रचारिणी सभा के २२ वें वार्षिकोत्सव में

गांधी जी ने निम्नांकित भाषण किया था। अध्यक्षता की थी कश्मीर के महाराजाधिराज ने। गांधी जी हिन्दी में ही बोले थे।--सम्पा०]

महाराज तथा भाइयो,

मै बहुत शर्मिन्दा हूँ कि आप लोगों के सामने हिन्दी में अच्छी तरह नही बोल सकता। आप जानते है कि मैं दक्षिण अफ़्रीका में रहता था। वही अपने हिन्दी भाइयों के साथ काम करते-करते थोड़ी-बहुत हिन्दी सीख सका हूं, इसलिए आप लोग मेरी भूलों को क्षमा करेंगे।

मै नही जानता था कि मुझे इस सभा में बोलना पड़ेगा। मैं व्याख्यान देने के लायक भी नही हूँ। मुझसे कहा गया कि कुछ कहो। यद्यपि कुछ कहना मेरी शक्ति के बाहर है तो भी दो-चार बातें आपको सुनाता हूं, जो इस समय मेरे खयाल मे आई है। आप शायद यह नही जानते कि मेरे साथ तीस-पैंतीस स्त्री-पुरुष हैं। उन सबकी प्रतिज्ञा है कि बराबर हिन्दी का अध्ययन करेंगे। मैंने इस सभा के साथ पत्र-व्यवहार भी किया था। मुझे कुछ पुस्तकें दरकार थी जो मिल नही सकी। सभा ने जो कुछ किया है उसके लिए उसे धन्यवाद एवं मुबारकबाद देता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उसके सदस्य बढ़ते जायं। जो पुस्तकें मुझे नही मिली है वह उन सबको तैयार कराने का प्रयत्न करे। इसके पदाधिकारियों में सब एम० ए०, बी० ए०, एल० एल० बी० है जो अंग्रेजी में उन पुस्तकों को पढ़ चुके हैं। इस सभा के तो अधिकारी वकील हैं। उनसे मैं पूछता हूं कि आप अदालत में अपना काम अंग्रेजी में चलाते हैं या हिन्दी में? यदि अंग्रेजी में चलाते है तो कहूंगा कि हिन्दी में चलायें। जो युवक पढ़ते हैं उनसे भी कहूंगा कि वे इतनी प्रतिज्ञा करें कि हम आपस का पत्र-व्यवहार हिन्दी में करेंगे।

साहित्य-विहीन जाति को स्वतन्त्रता नही मिल सकती, इसलिए लोगों को चाहिए कि वे अंग्रेजी के उच्च विचार और नये खयाल सब लोगों के सामने रक्खें। कल डा० जगदीशचन्द्र बसु व्याख्यान देंगे। यदि वह बगला में व्याख्यान देंगे तो मेरा कोई झगड़ा नही है, पर यदि वह अंग्रेजी में दें तो उनसे मेरा झगड़ा है। नागरी-प्रचारिणी सभा का कर्त्तव्य है कि जो पुस्तकें डा० जगदीशचन्द्र बसु ने अंग्रेजी में लिखी है उनका वह हिन्दी में अनुवाद करे। जर्मनी मे जो विद्वत्तापूर्ण पुस्तके तैयार होती है अंग्रेजी मे दूसरे ही सप्ताह उनका अनुवाद हो जाता है, इसी से वह भाषा प्रौढ़ है। हिन्दी मे भी ऐसा ही होना चाहिए। लोगो को अपनी भाषा की असीम उन्नति करनी चाहिए क्योंकि सच्चा गौरव उसी भाषा को प्राप्त होगा जिसमें अच्छे-अच्छे विद्वान जन्म लेंगे और उसी का सारे देश में प्रचार भी होगा। यदि तमिल में अच्छे-अच्छे विद्वान पैदा होगें तो हम भी तमिल ही बोलने लग जायँगे। जिस

भाषा में तुलसीदास-जैसे कवि ने कविता की है वह अवश्य पवित्र हैं और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती। हमारा मुख्य काम हिन्दी सीखना है, पर तो भी हम अन्य भाषाएँ भी सीखेंगे। अगर हम तमिल सीख लेंगे तो तमिल बोलने-वालों को भी हिन्दी सिखा सकेंगे।

—हिन्दी। काशी , ५।२।१९१६। 'महात्मा गांधी' से]।

५. भेंट : बनारस की 'घटना' के सम्बन्ध में ए० पी० आई० को

श्री गांधी जी से, जो कल तीसरे पहर बनारस से बम्बई पहुँचे, एक सम्वाद-दाता ने बनारस की उस घटना का हाल जानना चाहा जिसमें उनको (एक सभा में) अपना भाषण पूरा नहीं करने दिया गया था। श्री गांधी जी ने उत्तर में कहा था कि मुझे न यह मालूम है कि मेरे किन शब्दों पर आपत्ति उठाई गई थी, और न श्रीमती बेसेण्ट ने ही मेरे भाषण के आपतिजनक अंश की ओर संकेत किया था। उन्होंने तो अध्यक्ष महोदय से केवल इतना ही कहा था कि मुझे और आगे न बोलने दिया जाय। उस दिन की सभा में दिये गये भाषण के उस अंश में, जो अराजकता से सम्बन्ध रखता है, लगभग वे ही बातें दुहराई गईं थी जिन्हें मैंने गत वर्ष कलकत्ते में श्री लायन्स के सभापतित्व में आयोजित एक सभा में कहा था। श्रीमती बेसेण्ट की मुझे न बोलने देने की बात पर श्रोताओं ने मुझसे अपना भाषण जारी रखने का आग्रह किया, परन्तु मैंने उत्तर दिया कि मैं अब अध्यक्ष महोदय की अनुमति पाने पर ही बोलूंगा। उस सभा में उपस्थित सज्जनों से मैंने श्रीमती एनी बेसेण्ट द्वारा उठाई गई आपत्ति पर रोष न करने को—यद्यपि वे ऐसा करने के इच्छुक हो रहे थे—कहा, और यह भी कहा कि जिस किसी के दिल को मेरे विचारों से दुःख पहुँचा हो, उसे अध्यक्ष से इस पर निर्णय माँगने का हक है।

महाराजा दरभंगा (अध्यक्ष) से अनुमति पाने पर ही मैंने आगे बोलना शुरू किया था। महाराजा ने यह अनुमति कुछ देर तक मामले पर गौर करके तथा मुझसे अपनी बातें संक्षेप में व्यक्त करने की ताकीद करके दी थी। किन्तु जब मैं पुनः बोलने खड़ा हुआ, तो मुझे सभा-मंच पर कुछ खलबली-सी दीख पड़ी। मैंने यह भी देखा कि श्रीमती बेसेण्ट समीप बैठे हुए राजाओं से कानाफूसी कर रही हैं। वे उनसे यह कह रही थीं कि मैं न तो अपने शब्द वापस ले रहा हूँ और न उनके सम्बन्ध में सफाई पेश कर रहा हूँ। उन्होंने उनसे यह भी कहा कि उन लोगों का वहां बैठे रहना अब ठीक नहीं है।' दूसरी चीज जो मेरी निगाह में आई, वह यह थी

कि राजा लोग एक-एक करके उठकर चल दिये थे। अध्यक्ष महोदय ने भी सभा-मण्डप छोड़ दिया और मैं अपना भाषण समाप्त न कर पाया।

प्रश्न—क्या आप अपने उस दिन के भाषण का कोई अंश वापस लेना चाहते है ?

उत्तर—मैंने प्रत्येक शब्द भलीभांति सोच-विचार कर ही कहा था। इस बात की तो कल्पना भी नही की जा सकती कि मैं कभी हिंसात्मक तरीको का समर्थन करूंगा। मैं (उस सभा में) भाषण देने को तैयार भी न था। मित्रों के जोर डालने पर मुझे बोलना पडा, क्योकि लोगों का खयाल था कि देश के विद्यार्थी-समाज पर मेरा थोड़ा-बहुत प्रभाव है। मुझसे हिंसात्मक तरीकों पर अपने विचार व्यक्त करने को कहा गया; दुर्भाग्य से कुछ भावुक युवकों ने हिंसा को अपना सिद्धान्त बना रक्खा है। और नवयुवकों के इसी ध्येय के कारण हमें अपने सम्मानित अतिथि की जान की हिफाजत के लिए असाधारण सावधानियाँ बरते जाने का लज्जाजनक दृश्य देखना पड़ा। मेरे उस व्याख्यान में शुरू से आखिर तक कही भी हिंसात्मक कृत्यों का समर्थन न था। हाँ, मैंने तो यह स्पष्ट ही कर दिया था कि हिंसात्मक कार्य और भी अधिक निन्द्य इस कारण है कि आगे चलकर इस कृत्य से जो क्षति होगी वह कभी पूरी न की जा सकेगी। मेरे पूरे व्याख्यान का उद्देश्य खुद हम लोगों की त्रुटियों का अवलोकन करना तथा यह दिखाना था कि अपनी अनेक कठिनाइयों के लिए हम स्वयं ही उत्तरदायी हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि श्रीमती एनी-बेसेण्ट जल्दबाजी से भरा और विवेक-हीन खलल न डालती तो कुछ भी गड़बड़ी न होती और मेरा पूरा भाषण सुननेवाले के मन मे मेरे अभिप्राय के विषय मे किसी प्रकार का सन्देह न होता।

प्रश्न—क्या यह सच है कि पं० मदनमोहन मालवीय ने उस घटना के पश्चात् सभा से क्षमा माँगी थी ?

उत्तर—मालवीय जी ने सभा मे भाषण अवश्य दिया था, परन्तु उनके भाषण में मुझे क्षमा-याचना प्रतीत नही हुई। उन्होंने इतना ही कहा था कि गांधीजी मेरे विशेष आग्रह से सभा में बोले थे और उनके भाषण का एक मात्र उद्देश्य यह दिखाना था कि हिंसात्मक तरीके कितने आत्मघातक होते है।[1]

—अंग्रेजी। बम्बई, १९।२।१९१६, बाम्बे क्रानिकल, १०।२।१९१६]

---

१. 'न्यू इण्डिया' (१०-२-१९१६) में ए० पी० आई० के प्रतिनिधि को दी गई भेंट के इस विवरण के अतिरिक्त श्रीमती बेसेण्ट का यह वक्तव्य भी छपा था:—

(देखिए अगले पृष्ठ के पाद भाग-में)

६. भाषण : गुरुकुल के अछूतोद्धार सम्मेलन में

यदि नानकचन्द यह न कह गये होते कि अछूतों के गोत्र वे ही हैं जो दूसरे राजपूतों के हैं, तो भी हम उन्हें अछूत न समझते, क्योंकि सबसे प्रेम करना हमारा कर्त्तव्य है। श्री शंकरन नायर ने मुझसे कहा था कि अछूतों के साथ असमानता का व्यवहार करने के कारण भारत हमारे हाथ से चला गया। मै भी ऐसा विश्वास करता हूं। जब कोई और हमारे साथ वैसा ही अपमानजनक व्यवहार करेगा तब हम इसे समझेंगे। सच कहें तो हमने वास्तव में भयानक पाप किया है। अपनी अन्तरात्मा और अपने कल्याण के लिए हमें पश्चात्ताप करना ही चाहिए और अपने को फिर पहले ही जैसा निष्पाप बना लेना चाहिए। हमें प्रायश्चित्त करना चाहिए। प्रायश्चित्त क्या है ? इस पाप का व्यावहारिक हल क्या है, यह मैं आपको तत्काल ही बता सकता हूं। सबसे पहले तो हमको निश्चित रूप से यह जान लेना चाहिए कि उनके साथ समानता का व्यवहार, उनके बच्चों को अपने स्कूलों में लेना आदि

मद्रास
१० फरवरी, सन् १९१६

श्री गांधी ने एक वक्तव्य दिया है। उसे तार-द्वारा पाकर हमने अपने पत्र में छापा है। इस सम्बन्ध में मुझे यह कह देना उचित लगता है कि मेरे हस्तक्षेप का कारण मेरे पीछे खड़े अंग्रेज का, जो मेरे खयाल से खुफिया पुलिस का अधिकारी था, कथन था। मैंने उसे यह कहते हुए सुना—"ये जो कुछ कह रहे हैं, वह सब नोट किया जा रहा है, और कमिश्नर के पास भेजा जायगा।" जो कुछ कहा गया था उनमें से कई वाक्यों का अर्थ ऐसा निकाला जा सकता था, जो मैं जानती हूँ निश्चय ही श्री गांधी को अभिप्रेत नहीं हो सकता था, इसलिए मैंने अध्यक्ष से यह कहना अधिक अच्छा समझा कि इस सभा में राजनीति की चर्चा अनुपयुक्त है। मैंने यह भी नहीं कहा था कि राजा लोग चले जायं। मुझे यह भी ज्ञात नहीं कि यह बात किसने कही थी। मैं बहुत अच्छी तरह जानती थी कि श्री गांधी किसी को मारने के बजाय स्वयं मरना पसन्द करेंगे। किन्तु मेरा खयाल यह है कि उनके कथन का गलत अर्थ निकाला जा सकता था और बनारस की जैसी स्थिति थी उसमें मुझे उनकी व्यक्तिगत सुरक्षा खतरे में मालूम होती थी। सार्वजनिक शान्ति किसी भी प्रकार भंग न हो, यह चिन्ता उनके इस विचार से ही बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि हमें कांग्रेस अधिवेशन बुला कर भी सरकार को परेशानी में नहीं डालना चाहिए।

—अंग्रेजी। 'न्यू इण्डिया', १०।२।१९१६। 'बंगाली' १२।२।१९१६]

हमें उनकी नही वल्कि अपनी मुक्ति के विचार से करना है। हम केवल ईसाई प्रचारकों का अनुकरण करते हैं, किन्तु जो लोग इस समस्या के हल में सक्रिय भाग ले रहे हैं उन्हें मैं सुझाव देता हूं कि वे इस समस्या पर अधिक गम्भीरता तथा सच्चाई के साथ विचार तथा व्यवहार करें और तव देखें कि इसके लिए क्या करना चाहिए।

—हिन्दी। हरद्वार, १८।३।१९१६। अंग्रेजी से। वैदिक मेगजीन, अप्रैल-मई १९१६]।

७. भाषण : गुरुकुल के वार्षिक उत्सव में

[गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिक उत्सव में मार्च २०, १९१६ को गांधी जी ने भाषण दिया था, यह उसका उन्हीं के द्वारा वाद में तैयार किया हुआ विवरण है।—सम्पा०]

मैं भाषण का केवल वही अंश यहाँ लिखने की वात सोच रहा हूँ, जो मेरी राय में लिखने लायक है। यदि कही आवश्यक हुआ तो कुछ जोड़ने की वात भी सोचता हूँ। स्मरण रहे कि भाषण हिन्दी मे दिया गया था। महात्मा मुंशीराम जी ने मेरे वच्चों को दो विभिन्न अवसरों पर आश्रय दिया और उनके साथ पितृवत् व्यवहार किया, इसलिए मैंने पहले उन्हें धन्यवाद दिया। फिर इस वात की ओर लोगों का ध्यान खीचा कि भाषणों का समय वीत चुका है। और काम का समय आ गया है। मैंने यह भी कहा कि मैं आर्य-समाज के प्रति कृतज्ञ हूँ। मैं प्रायः उसके कामों से प्रेरणा लेता रहा हूँ। समाज के सदस्यों में मैंने जवरदस्त आत्मत्याग की भावना देखी है। अपनी भारत-यात्रा के दौरान, मैं ऐसे अनेक आर्य-समाजी भाइयों से मिला हूँ जो उत्तम देश-सेवा कर रहे है। इसलिए मैं महात्मा जी का आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे आप लोगों के वीच आने का अवसर दिया। साथ ही यह कह देना भी उचित होगा कि मैं विल्कुल सनातनी हूँ। मेरी दृष्टि मे हिन्दू-धर्म मे सव-कुछ आ जाता है। इसकी आदर्श छाया में सभी तरह के विभिन्न विचारों को आश्रय मिल जाता है। और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आर्य-समाज और सिख तथा ब्रह्म-समाज भले ही अपने आपको हिन्दुओं से अलग वर्ग मे रखना चाहे, किन्तु वे सव वहुत जल्दी हिन्दू-धर्म मे लीन हो जायंगे और उन्हें अपनी परिपूर्णता भी इसी में मिलेगी। मानव की अन्य सभी संस्थाओं की तरह हिन्दू-धर्म में भी दोष और कमियाँ हैं। (इसलिए) प्रत्येक कार्यकर्ता

के लिए उनके सुधारार्थ जुटने की भरपूर गुंजाइश तो यहाँ है, किन्तु इससे टूटकर अलग हो जाने का कोई कारण नहीं है।

निर्भयता की भावना

अपनी इस यात्रा के दौरान मुझसे सभी जगह यह पूछा गया है कि भारत की तात्कालिक आवश्यकता कौन-सी है। मैंने जो उत्तर अन्य स्थानों पर दिया है, मेरी समझ में यहाँ भी इसे दोहराना ही सबसे अच्छी बात होगी। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि उचित धार्मिक भावना हमारी सबसे बड़ी और तात्कालिक आवश्यकता है। वैसे यह ठीक है कि यह उत्तर बहुत स्थूल है और इससे किसी को पूरा सन्तोष नहीं मिल सकता। और फिर यह ऐसा उत्तर भी है जो किसी भी परिस्थिति में दिया जा सकता है। इसलिए मैं कहना तो चाहता हूँ कि हमारी धार्मिक भावना सुप्त है, और हम लोग इसी कारण हमेशा भयभीत बने रहते हैं। हम लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार की सत्ताओं से डरते हैं। अपने पुरोहितों और पण्डितों के सामने हम मन की बात खुलकर नहीं कह पाते। राजसत्ता से भी हम थरथर काँपते रहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारा यह आचरण उनके और हमारे, दोनों के, लिए अकल्याणकारी है। हमारे आध्यात्मिक, शैक्षणिक अथवा राजनीतिक शिक्षकों या शासकों की यह इच्छा कभी नहीं रही होगी कि हम सत्य को उनसे छिपाते रहें। लार्ड विलिंग्डन ने अभी बम्बई की एकसभा में व्याख्यान देते हुए कहा कि हम लोग किसी बात को अस्वीकार करने की इच्छा मन में रखते हुए भी 'ना' कहते हुए हिचकिचाते हैं। उन्होंने श्रोताओं से निर्भयता की भावना का विकास करने को कहा। निःसन्देह निर्भयता का अर्थ दूसरों के सम्मान या भावना की उपेक्षा करना नहीं है। मेरी विनम्र राय में यदि हम कोई टिकाऊ और सच्चा काम करना चाहते हैं, तो निर्भयता उसकी सबसे बड़ी और जरूरी शर्त है। निर्भयता का गुण धार्मिक चेतना के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। हम भगवान से डरना सीखें तो हमारा आदमी से डरना खत्म हो जाय। अगर हम इस तथ्य को समझ लें कि हमारे भीतर दिव्य अंश है और हम जो-कुछ करते हैं या सोचते हैं, वह उसका साक्षी है और वही दिव्य अंश हमारी रक्षा करता है, हमें सच्ची राह बतलाता है, तो यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि हम भगवान् के भय के सिवाय धरती-पर किसी अन्य भय को मानने से इनकार कर देंगे। जो राजाओं का भी राजा है, यदि हमारी निष्ठा उसमें दृढ़ है तो यह बड़ी-से-बड़ी राजभक्ति से भी ऊँची चीज है और साथ ही यह हर प्रकार की राजभक्ति का एक सुचिन्तित आधार भी है।

स्वदेशी का अर्थ

निर्भयता की भावना का भली प्रकार विकास कर चुकने के वाद हम देखेंगे कि सच्ची स्वदेशी की भावना के विना मुक्ति सम्भव नहीं है। सच्ची स्वदेशी-भावना उस स्वदेशी-भावना से भिन्न है, जिसे हम अपनी सुविधा के अनुसार पालना चाहते हो। मेरे लेखे स्वदेशी का वड़ा गहरा अर्थ है। मैं तो उसे अपने धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर लागू करना चाहता हूँ। वह अवसर-विशेष पर स्वदेशी कपड़ा पहन लेने तक ही सीमित नही है। इतना तो हमे हर समय करना ही है और सो भी ईर्ष्या अथवा वदले की भावना से नही, वल्कि इसलिए कि अपने प्रिय देश के प्रति यह हमारा कर्तव्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अगर हम विदेश में वना हुआ कपड़ा पहनते है, तो हम स्वदेशी का उल्लंघन करते है। किन्तु यदि हम देशी कपडे को विलायती ढंग से सिलवा लेते है, तो भी हम उसका उल्लंघन करते है। आखिरकार वातावरण से पहरावे का कुछ-न-कुछ सम्बन्ध तो होता ही है। हमारी पोशाक शोभा और सुरुचि मे कोट या पैण्ट से कई गुना वढ़कर है। जव मै किसी भारतीय को पाजामे के ऊपर कमीज और कमीज पर विना नेकटाई के वास्कट पहने हुए देखता हूँ और देखता हूँ कि उसके पल्ले हवा मे उडते चले जा रहे है, तो मुझे अच्छा नही लगता। धर्म के क्षेत्र में स्वदेशी हमें अपने गौरवशाली अतीत का मूल्यांकन करना सिखाती है और सिखाती है आधुनिक काल में उसका सुधरा हुआ आचरण। यूरोप मे चारों ओर जो अशान्ति फैली हुई है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक सम्यता अशिव और अन्धकारमय शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है, जव कि प्राचीन अर्थात् भारतीय सभ्यता मूलत. दैवी शक्तियो का प्रतिनिधित्व करती है। आधुनिक सम्यता मुख्य रूप से भौतिकता-वादी है जव कि हमारी सम्यता प्रधान रूप से आध्यात्मिक है। आधुनिक सम्यता भौतिक नियमों की खोज मे लगी हुई है और मानवीय प्रतिभा को उत्पादन और विनाश के साधनों की खोज में जुटाये हुए है, और हमारी सभ्यता मुख्य रूप से आध्यात्मिक नियमो की खोज में लगी हुई है। हमारे शास्त्रों मे स्पष्टतः यह कहा गया है कि सत्य-जीवन के लिए सत्य का ठीक-ठीक पालन, पवित्र आचरण, प्रत्येक जीव के प्रति अहिंसा की भावना, किसी और के धन की इच्छा न रखना और दैनिक जीवन के लिए जो आवश्यक है केवल उसी का संचय नितान्त आवश्यक होते है। उन्होने यह भी कहा है कि इन वातो के विना आत्मतत्व का ज्ञान असम्भव है। हमारी सम्यता ने दृढतापूर्वक यह कहने का साहस किया है कि अहिंसा का समुचित और सम्पूर्ण विकास सारे संसार को हमारे चरणों मे लाकर डाल देता है। सक्रिय रूप में अहिंसा का अर्थ है पवित्रतम प्रेम और करुणा। इस वचन का उच्चारण करनेवाले महापुरुप ने अनन्त उदाहरण देकर इसे प्रमाणित कर दिया है।

अहिंसा का सिद्धान्त

राजनीतिक जीवन में इसके परिणामों पर नजर डालिए। हमारे शास्त्रों में जीवन-दान से बड़ा कोई दान ही नही है। सोचकर देखें कि अगर हम अपने शासकों को उनके जीवन की ओर से विल्कुल निश्चिन्त कर दें, तो हमारे और उनके सम्बन्ध कितने अच्छे हो सकते हैं। अगर उन्हें इस वात का विश्वास हो जाय कि हमारी भावना उनके कामों के प्रति कैसी ही क्यों न हों, हम उनके शरीर को अपने ही शरीर की तरह रक्षणीय मानेंगे, तो वहुत जल्दी पारस्परिक विश्वास का वातावरण निर्मित हो जायगा और दोनों एक दूसरे से विल्कुल खुलकर वातचीत करेंगे और इस तरह जो समस्याएँ हमें आज विचलित किये हैं उनमें से अनेक सम्मानास्पद और न्यायोचित ढंग से सुलझ जायँगी। याद रखना चाहिए कि अहिंसा के आचरण में दूसरे से भी वैसे ही आचरण की अपेक्षा रखना आवश्यक नही है। सच पूछो तो अपनी आखिरी मंजिलों में अहिंसा की प्रतिक्रिया अहिसा के सिवा और कुछ होना असम्भव है। हममें से वहुतों का और मेरा भी यह विश्वास है कि हमें अपनी सभ्यता के जरिए संसार को सन्देश देना है। व्रिटिश सरकार के प्रति मेरी राजनिष्ठा का कारण विल्कुल स्वार्थमय है। मैं व्रिटिश कौम की मारफत अहिंसा का जवरदस्त सन्देश सारी दुनिया में फैलाना चाहता हूँ, किन्तु यह तो तभी सम्भव है जव हम अपने कथित विजेताओं पर विजय प्राप्त कर लें और मेरे आर्य-समाजी भाइयो, मेरी समझ में इस महान् कार्य के लिए आप लोग खासतौर पर उपयुक्त माने गये हैं। आपका दावा है कि आपने शास्त्रों का वारीकी से अध्ययन किया है। आप आँखें वन्द करके किसी भी विचार को स्वीकार नहीं करते और अपने विचार के अनुसार आचरण करने में भी आप विल्कुल नहीं डरते। मेरी समझ में अहिंसा के सिद्धान्त को कम कूतने या उसकी सीमा निर्धारित करने की कोई जरुरत नही है। तव फिर आइए, हम इसके तात्कालिक परिणामों की चिन्ता न करते हुए इसे अपने आचरण में उतारें। इसके तात्कालिक परिणाम आपकी निष्ठा की शक्ति को कसौटी पर कसेंगे। यदि आप इसका आचरण करें, तो आप भारत को गुलामी से छुड़ा लेंगे। इतना ही नहीं, आप मानव-जाति की वड़ी-से-वड़ी सेवा भी करेंगे। और आपका यह कहना भी ठीक होगा कि ऐसी सेवा के लिए ही स्वामी दयानन्द ने जन्म लिया था। स्वदेशी एक नितान्त सक्रिय शक्ति है और उसका उपयोग सतत् जाग्रत रहकर आत्म-निरीक्षण करते हुए निरन्तर करते रहना चाहिए। आलसी व्यक्ति इसका आचरण नही कर सकता। यह तो उनके आचरण के योग्य है जो सत्य के लिए अपना जीवन खुशी से न्यौछावर कर सकते है। स्वदेशी के और भी अनेक पहलुओं पर विस्तार से विचार किया जा

सकता है, किन्तु अपनी समझ में मैंने जो कुछ कहा है, उससे आप मेरा मतलब समझने में समर्थ हो सकेंगे। मैं यही आशा करता हूँ कि आप लोग, जो भारत के एक विशिष्ट सुधारवादी दल के प्रतिनिधि है, मेरी वात को अच्छी तरह कसौटी पर कसे विना त्याज्य नही मान लेंगे, और अगर मेरी वात आपको जंच गई तो आपके द्वारा किये हुए कामों को देखते हुए, मैं आशा करता हूँ, कि आप उन शाश्वत तत्वों को अपने जीवन मे स्थान देंगे जिनकी मैंने आपसे अभी वात की है, और तदनुसार आप सारे भारतवर्ष में जुट जायेंगे।

आर्य-समाज का कार्य

मैं उपर्युक्त विवरण के अन्त में वह वात भी कहना चाहता हूँ जो मैंने वहां के श्रोताओं से नही कही। मैं अव तक दो वार गुरुकुल जा चुका हूं। आर्य-समाज के अपने भाइयों से कुछ प्रमुख मतभेद होते हुए भी मन-ही-मन में उनकी वड़ी इज्जत करता हूँ, और आर्य-समाज की गतिविधि का सर्वश्रेष्ठ परिणाम कदाचित् गुरुकुल की स्थापना और उसके परिचालन में दिखाई पड़ता है। यह ठीक है कि महात्मा मुन्शीराम की प्रेरणादायक उपस्थिति ही उसकी शक्ति का अधिष्ठान है, किन्तु यह संस्था सच्चे अर्थो में एक स्वशासित, प्रजातन्त्रीय और राष्ट्रीय संस्था है; किसी भी प्रकार की सरकारी सहायता या आश्रय से वह विल्कुल मुक्त है। उसका कोष कुछ लक्ष्मीपुत्रों के दान के वल पर सम्पन्न नही हुआ है। तमाम गरीव लोग साल-दर-साल कांगड़ी की यात्रा करते है। वे यथाशक्य इस राष्ट्रीय महाविद्यालय के संचालन की दिशा मे प्रसन्नतापूर्वक जो-कुछ देते हैं, यह कोष उसी से सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक वार्षिक उत्सव पर वहुत वड़ी संख्या में लोग यहाँ आते है और यहां उनके रहने और खाने-पीने की जो सुचारु व्यवस्था होती है, वह संगठन की जवरदस्त शक्ति की परिचायक है। सवसे अधिक आश्चर्य की वात तो यह है कि इन आये हुए लोगो में लगभग १,००० आदमी, स्त्री और वच्चे होते हैं और उनका प्रवन्ध एक भी पुलिस के सिपाही या फौजी किस्म की किसी शक्ति की सहायता का तमाशा खड़ा किये विना हो जाता है। आये हुए लोग ओर संस्था के प्रवन्धको के वीच काम करने वाली शक्ति केवल पारस्परिक प्रेम और आदर की शक्ति है। गुरुकुल-जैसी वड़ी संस्था के जीवन में १४ वर्ष की अवधि कोई लम्वी अवधि नही है। पिछले दो या तीन वर्षो मे जो स्नातक यहां से निकले है, वे क्या-कुछ करके दिखाते है, सो तो अभी देखना है। जनता तो व्यक्ति या संस्थाओं को उनके द्वारा प्रस्तुत परिणामों से ही परखती है। जनता एक सख्त मुनसिफ है और वह अपने मन में असफलताओं को गुंजाइश नही रखती। इसलिए अन्ततो-

गत्वा सभी सार्वजनिक संस्थाओं की तरह गुरुकुल के काम की जाँच भी जनता ही करेगी। इस प्रकार जो विद्यार्थी इस महाविद्यालय से पढ़कर निकले हैं और जिन्होंने जीवन के कंटकाकीर्ण पथ पर पाँव रक्खा है, उनके कन्धों पर वहुत वड़ी जिम्मेदारी है। उन्हें सावधानी से काम लेना चाहिए। और जो इस जवरदस्त प्रयोग की शुभ-कामना करते हैं, वे यह वात सोचकर आश्वस्त रह सकते हैं कि फल का वृक्ष के अनुरूप होना जीवन का अकाट्य सिद्धान्त है। वृक्ष तो सुन्दर हरा-भरा है तथा एक महात्मा पुरुष उसे सींच रहा है, इसलिए फल कैसा होगा, यह चिन्ता करना व्यर्थ है।

औद्योगिक शिक्षण

गुरुकुल का हितेच्छु होने के नाते मैं उसकी समिति और अभिभावकों को एक-दो सुझाव देने की धृष्टता करना चाहता हूं। आत्मनिर्भर और स्वावलम्वी वनने के लिए गुरुकुल के वालकों को कोई ठोस औद्योगिक शिक्षण दिया जाना चाहिए। मेरे विचार में तो हमारे देश में चूंकि ८५ प्रतिशत लोग किसान हैं और १० प्रतिशत लोग उनकी जरूरत को पूरा करनेवाले धन्धों में लगे हुए हैं इसलिए खेती और वुनाई का खासा अच्छा व्यावहारिक ज्ञान यहां के प्रत्येक तरुण के शिक्षण का एक भाग होना चाहिए। अगर उसे औजारों का उचित उपयोग आ जाय, अगर वह एक लकड़ी का तख्ता सीधा-सीधा चीर सके और गुनिये का सही उपयोग करके ऐसी दीवार उठा सके जो विल्कुल सीधी हो और जो इस कारण गिर नही सकती, तो उसमें वुराई की कोई वात नही,है। जो वालक यह सव काम करने में समर्थ हो जायगा, वह जीवन-संघर्ष मे कभी निराश नहीं होगा और धन्धे की समस्या उसके लिए कोई समस्या न होगी। इसके सिवाय स्वास्थ्य और सफाई के नियम तथा शिशु-पालन भी गुरुकुल के विद्यार्थियों की शिक्षा का एक आवश्यक अंग होना चाहिए। यहां मेले में सफाई की जो व्यवस्था होती है, उसमें अभी वहुत कसर है। यह वात मक्खियो की भरमार से स्पष्ट हो जाती है। मक्खियाँ मानों अदम्य स्वास्थ्य-निरीक्षिकाएं हैं। वे हमें लगातार हिदायतें देती रहती हैं कि सफाई के मामले में अभी तक सव-कुछ सम्पूर्ण नहीं किया गया है। उनकी भरमार से यह स्पष्ट हो जाता है कि जूठन और मल पर ठीक ढंग से मिट्टी नही डाली गई है। मुझे यह सोचकर वड़ा दुःख हुआ कि हम इस स्वर्ण अवसर को यों ही खो दिया करते है। इस अवसर पर आनेवाले यात्रियों को सफाई के पदार्थ-पाठ पढ़ाये जा सकते हैं। किन्तु यह काम शुरू तो गुरुकुल के विद्यार्थियों से ही होना चाहिए। यदि ऐसा हो, तो व्यवस्थापक लोगों के पास वार्षिक उत्सव

के समय ३०० सीखे-सिखाये स्वास्थ्य-शिक्षक मौजूद रहे। अन्त में एक महत्वपूर्ण बात और। बच्चों के माता-पिता और संस्था की समिति अपने बच्चों को यूरोपीय वेश-भूषा और आधुनिक विलास की सामग्री मुहैया करके उन्हे नकल करना न सिखाये। अपने परवर्ती जीवन में ये चीजें उनके मार्ग में बाधा डालनेवाली बनेंगी और ब्रह्मचर्य के विरोध में आयंगी। यह दुष्ट प्रवृत्ति सभी लोगो मे फैल रही है और इन्हे तो इससे लड़ना ही चाहिए। हम उनकी वासनाओं को बढ़ाकर इन प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष को और कठिन न बनायें।

—हिन्दी। हरद्वार, २०।३।१९१७। अंग्रेजी। 'स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज आफ महात्मा गांधी' से]

८. भाषण : गुरुकुल के पुरस्कार-वितरण समारोह में

मैं देखता हूं, इन ग्रामीण पाठशालाओं में शिक्षा का स्तर एक-जैसा नही है। कुछ तो धनिको की पाठशालाओं के समान ही अच्छा कार्य कर रहीं है, किन्तु कुछ में बहुत ही अपर्याप्त शिक्षा दी जाती है। अछूतों के प्रति न्याय करने के लिए हमे अपने बच्चे हरिजनो की पाठशालाओ मे भेजने ही चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि उनके शैक्षणिक स्तर मे गिरावट न आने पाये। किन्तु एक बात और है। शिक्षा ऐसी न हो कि वह इन ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं को, अस्वास्थ्यकर नगरों मे खानसामा, कारखानों के मैले-कुचैले मजदूर और निम्न श्रेणी के बाबू या मुंशी बना दे। उनकी शिक्षा ऐसी हो कि वे अपने पिताओ के पेशे अधिक वैज्ञानिक ढंग से तथा अधिक कुशलता से अपना सकें। पाठशाला को ग्रामीण जीवन, ग्रामीण शिल्प, खुली हवा, आजादी तथा अपने लोगों की सेवा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना चाहिए[1]।

—हिन्दी। हरद्वार, २०।३।१९१६। अँग्रेजी से। वैदिक मैगजीन, अप्रैल-मई १९१६। सं० गां० वां० खण्ड १३ पृ० २६२]

९. भाषण : आर्यसमाज-भवन, हरद्वार में

आर्यसमाज-भवन में शाम को दयानन्द आंग्ल वैदिक स्कूल के विद्यार्थी ले जाये गये और श्री गांधी ने अस्वस्थ होने के कारण छोटा-सा भाषण दिया।

---

१. भाषण का इतना ही अंश उपलब्ध है।

श्रोताओं को भी गांधी जी ने अपने विश्वास के मुताबिक आचरण करने का आग्रह किया और कहा कि मार्गदर्शक या शासकों का अनुसरण करने में हमें उनके बाहरी व्यवहार की नकल नहीं करनी चाहिए।

उनका रहन-सहन, उनकी पोशाक अथवा रीति-रिवाज जैसे माँस खाना आदि हमारे आदर्श नहीं बन सकते। उन्होंने विद्यार्थियों से कहा कि उन्हें अपनी आत्मा के प्रति सच्चा बनना चाहिए और तभी वे देश के प्रति सच्चे बन सकेंगे।

—हिन्दी। हरद्वार २३।३।१९१६। अंग्रेजी से। सीक्रेट एक्स्ट्रैक्ट्स १९१६ पृ० २४३-४। सं० गां० वा० खण्ड १३, पृ० २६७]

१०. भाषण : म्योर कालेज, इलाहाबाद में

[श्री गांधी ने म्योर सेण्ट्रल कालेज, इलाहाबाद की अर्थशास्त्र-विभाग समिति (इकानामिक सोसाइटी) के तत्वावधान में आयोजित एक सभा में एक सारगर्भ भाषण दिया। सभा के अध्यक्ष थे, माननीय पं० मदनमोहन मालवीय। सभा में आये हुए प्रतिष्ठित व्यक्तियों में माननीय डा० तेजबहादुर सप्रू, माननीय डा० सुन्दरलाल[1], श्री एच० एस० एल० पोलक, श्री सी० वाई० चिन्तामणि, श्री शिवप्रसाद गुप्त, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा डा० ई० जी० हिल के नाम उल्लेखनीय हैं। व्याख्यान का विषय था : 'क्या आर्थिक उन्नति वास्तविक उन्नति के विपरीत बैठती है?' अध्यक्ष के द्वारा श्री गान्धी का परिचय दिये जाने के पश्चात् श्री गांधी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ था।—सम्पा०]

प्रस्तुत विषय पर आप लोगों के समक्ष बोलने के लिए आज जब मैंने पं० कपिलदेव मालवीय का निमन्त्रण स्वीकार किया, उस समय मेरा ध्यान अपनी सीमाओं की ओर गया और मुझे अपनी कमियों पर खेद भी हुआ। आपकी समिति (इकानामिक सोसाइटी) अर्थशास्त्रीय विषयों के अध्ययन से सम्बन्ध रखती है और आपने अपनी कार्यक्रम-पत्रिका में इस वर्ष तथा अगले वर्ष के लिए नियत किये गये विषयों पर भाषण देने के निमित्त प्रख्यात विशेषज्ञों को चुन रक्खा है। उनमें केवल मैं ही ऐसा आदमी हूं जिसमें सौंपे हुए कार्य को सुचारु रूप से निवाहने की क्षमता नहीं है। सच कहूं तो वास्तव में आप लोग अर्थशास्त्र को जिस रूप में

---

१. सर सुन्दरलाल इलाहाबाद के विख्यात वकील तथा उस समय विश्वविद्यालय के उपकुलपति।

जानते है उस रूप में इस विषय का मेरा ज्ञान वहुत ही स्वल्प है। अभी एक दिन शाम को मैं एक मित्र के साथ भोजन कर रहा था। तभी उसने मेरी खब्तों के वारे में सवालों की झड़ी लगा दी। चूकि मैंने स्वेच्छा से ही अपने को उसकी जिरह का शिकार वन जाने दिया, उसे वड़ी आसानी से यह मालूम हो गया कि उसकी समझ में मैं जिन विषयों पर किसी ज्ञान-वन्धु की तरह वोलता हूं, वताता हूं उनमें मैं विल्कुल कोरा हूं और मुझे अपने अज्ञान की खवर नही है। मेरा खयाल है कि जव उसे यह मालूम हुआ कि मैंने मिल, मार्शल, एडम स्मिथ, जैसे विख्यात अर्थशास्त्रियों के ग्रन्थो का अवलोकन तक नही किया है, तव उसे वड़ा अचम्भा हुआ और उसे मेरे प्रति वड़ी झुंझलाहट भी हुई। हताश होकर उसने अन्त में मुझे यही सलाह दी कि मैं अर्थशास्त्र-सम्वन्धी मामलों पर प्रयोग करने और इस प्रकार जनसाधारण के समय एवं धन का दुरुपयोग करने से पूर्व उपर्युक्त लेखकों की कृतियों को पढ़ जाऊं। उस वेचारे को यह मालूम न था कि मैं ऐसा व्यक्ति हूं कि उन पुस्तकों को पढ़ जाने पर भी मूढ का मूढ़ ही रहूंगा। मैं अपने उन मित्रों के वल पर, जो मुझमें विश्वास रखते है, अपने प्रयोग करता ही रहता हूं। क्योंकि जीवन में कभी ऐसा भी अवसर आता है जव हमें कुछ वातों के वारे में वाहरी प्रमाण की आवश्यकता नही रह जाती। हमारी अन्तरात्मा से यही ध्वनि निकलती है कि तुम ठीक रास्ते पर हो, दायें-वायें मुड़े विना सीधे चलते-चलते जाओ। इस प्रकार की सहायता के सहारे हम धीमे ही सही आगे की ओर निश्चित रूप से निरन्तर वढते जाते हैं; मेरी यही स्थिति है। यह स्थिति मेरे लिए तो सन्तोषजनक हो सकती है परन्तु आपकी जैसी संस्थाओं की आवश्यकताएं उससे किसी भी प्रकार पूरी नही हो सकती। इन सवके होते हुए भी पं० कपिलदेव मालवीय को मेरा नाम व्याख्यान-दाताओं की सूची में न रखने के लिए समझाना-वुझाना था। मैं जानता था कि वह आप लोगों के समक्ष किसी-न-किसी दिन मेरा भाषण कराने पर तुले हुए है। शायद मेरे आज के भाषण को सुनकर आप मन में यही सोचेंगे कि चलो अच्छा हुआ, रोज-व-रोज एक ही तरह के सिद्धान्तों के प्रतिपादन और उनकी वारीकियों के निरूपण से एक दिन तो विश्राम मिला। वहुत दिनो तक लगातार स्वादिष्ट भोजन करते रहने पर वीच-वीच मे लंघन करना प्रायः आवश्यक हो जाया करता है। जो वात शरीर के लिए कही जा सकती है, वही मस्तिष्क के लिए भी। और यदि आज आपके मस्तिष्क को वढ़िया-वढ़िया व्यंजन न मिले और वह भूखा ही रह जाये तो, निश्चय ही आप लोग आगामी १२ तारीख को रायवहादुर चन्द्रिका प्रसाद का भाषण सुनकर अधिक तृप्ति का अनुभव करेंगे।

मेरे निजी अनुभवो और प्रयोगों को सुनने के पूर्व यह उचित होगा कि हम

लोग पहले आज के व्याख्यान के शीर्षक के अर्थ के बारे में आपस में सहमत हो लें। हमारे व्याख्यान का विषय है—"क्या आर्थिक उन्नति वास्तविक उन्नति के विपरीत बैठती है?" मेरा खयाल है कि आर्थिक उन्नति का अर्थ हम सीमा-विहीन भौतिक प्रगति लगाते हैं और वास्तविक उन्नति को हम नैतिक प्रगति का पर्याय मानते हैं। यह नैतिक प्रगति हमारे ऊपर अन्तर में रहनेवाले शाश्वत अंग के विकास के सिवा और क्या है? अतएव प्रस्तुत विषय को दूसरे शब्दों में इस प्रकार रखा जा सकता है: 'क्या नैतिक उन्नति उसी अनुपात में नही हुआ करती जिस अनुपात में भौतिक उन्नति होती है?' मैं जानता हूं कि यह विषय प्रस्तुत विषय की अपेक्षा अधिक व्यापक है, परन्तु मेरा खयाल है कि छोटे प्रश्न को बढ़ाते समय भी हमारा अभिप्राय बड़े प्रश्न से ही रहा करता है। हममें विज्ञान की इतनी जानकारी ज़रूर है कि हमारे इस गोचर विश्व में पूर्ण गतिशून्यता-जैसी कोई वस्तु नही है। इसलिए यदि भौतिक उन्नति नैतिक प्रगति के विरोध में नही पड़ती तो वह उसके विकास में सहायक हुए बिना नहीं रह सकती और फिर अपने को वृहत्तर समस्या का समर्थन करने में असमर्थ पानेवाले व्यक्ति कभी-न-कभी जिस भद्दे ढंग से अपनी बात सामने रखते हैं हमें उससे भी सन्तोष नही हो सकता।

स्वर्गीय सर विलियम हण्टर ने कहा है कि भारत में तीन करोड़ व्यक्ति केवल एक वक्त खाकर बसर करते हैं। मालम होता है कि लोग इसी कथन को इतना सत्य मान बैठे हैं कि दूसरी कोई बात उनके दिमागों में घुस ही नही सकती। वे कहते है कि लोगों की नैतिक उन्नति की बात सोचने या उसका जिक्र करने के पहिले हमें उनकी रोज-रोज की जरूरतें पूरी करनी चाहिए। उनका कहना है कि उनके लिए भौतिक उन्नति ही उन्नति है। इसके बाद वे एक दम एक लम्बी छलांग लगाकर इस निष्कर्ष पर जा पहुँचते हैं कि जो बात तीन करोड़ के बारे में सत्य है वही समस्त संसार के लिए भी है। वे भूल जाते हैं कि अपवाद-रूप मामलों के आधार पर कोई नियम निर्धारित नही किया जा सकता। यह कहना आवश्यक नहीं है कि यह निष्कर्ष कितना गलत है और हास्यास्पद है। यह तो आज तक किसी ने भी नही कहा कि अतिशय दरिद्रता नैतिक पतन के अतिरिक्त कुछ और दे सकती है। प्रत्येक मनुष्य को जीवित रहने का अधिकार है और इसलिए उसे पेट भरने के लिए भोजन तथा आवश्यकतानुसार तन ढकने के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान मुहैया करने का अधिकार है। परन्तु इस बिलकुल मामूली से काम के लिए हमें अर्थशास्त्रियों अथवा उनके द्वारा गढ़े गये विषयों की मदद की जरूरत नही है।

संसार के सभी धर्मग्रन्थों में इस आशय के आदेश मिलते हैं कि कल की चिन्ता मत करो। किसी भी सुव्यवस्थित समाज में रोजी कमाना सबसे सुगम बात

होनी चाहिए और हुआ करती है। निस्सन्देह किसी देश की सुव्यवस्था की पहचान यह नही है कि उसमें कितने लखपति लोग रहते हैं वल्कि यह कि जनसाधारण का कोई भी व्यक्ति भूखों तो नही मर रहा है। अब केवल यही बात देखनी रह जाती है कि भौतिक उन्नति का अर्थ ही नैतिक उन्नति है, यह सब जगह और सब समय में लागू होने वाला नियम माना जा सकता है या नही।

आइए, अब कुछ दृष्टान्त लें। भौतिक उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचते ही रोमन लोगों का नैतिक पतन आरम्भ हो गया। मिश्र देश में भी यही हुआ और कदाचित् उन सभी देशों में भी, जिनका इतिहास हमें उपलब्ध है, ऐसा ही हुआ है। परमात्मा की विभूतियों से विभूपित कृष्णचन्द्र महाराज के कुटुम्बियों का, यादवों का भी, जब वे खूब दौलतमन्द होकर गुलछर्रे उड़ाने लगे, पतन हो गया। अमेरिका के प्रसिद्ध धनी राक फैलर और कारनेगी या ऐसे ही दूसरे लोगों में सामान्य नैतिकता का अभाव है, ऐसा मै नही कह रहा हूं, परन्तु हम लोग उनके अवगुणो की ओर ध्यान न देकर उनकी प्रशंसा ही किया करते हैं। मेरे कहने का मतलब यह है कि हम उनसे नैतिकता की कड़ी-से-कडी कसौटी पर खरे उतरने की आशा भी नही करते। उनके लिए भौतिक उन्नति का अनिवार्य परिणाम नैतिक उन्नति नही हुआ। दक्षिण अफ़्रीका में मुझे अपने हजारों देशवासियो के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त था। मैंने वहां लगभग सदा यही देखा कि आर्थिक दृष्टि से जो जितना सम्पन्न होता था उसका नैतिक स्तर गया-गुजरा होता था। और कुछ नही तो इतना तो कहा ही जा सकता है कि सत्याग्रह के हमारे नैतिक संघर्ष को गरीबों से जितना बल मिला, उतना अमीरों से नही। वहां की स्थिति को देखकर धनाढ्य लोगो के स्वाभिमान को वैसी ठेस नही लगती थी जैसी निर्धन-से-निर्धन व्यक्तियो के हृदयों को पहुँचती थी। वैसे तो मैं अपने देश के ही दृष्टान्त देकर आपके सामने यह प्रमाणित कर देता कि धन-सम्पत्ति का बाहुल्य व्यक्तियों की वास्तविक उन्नति के मार्ग मे बाधक हुआ है। किन्तु वैसा करना खतरे से खाली नही है। मेरा खयाल है कि अर्थशास्त्र-सम्बन्धी नियमों के बारे में अर्थशास्त्र के बदले हमारे धर्मग्रन्थ हमारा अधिक उचित मार्ग-दर्शन करते है। आज जिस प्रश्न की चर्चा हम कर रहे है वह नया नही है। दो हजार वर्ष पूर्व ईसा मसीह से भी वही प्रश्न पूछा गया था। संत मार्क ने उस दृश्य का बड़ा सजीव चित्रण किया है। ईसा सामने विराजमान हैं। उनका भाव शान्त, उदार है और मुखमुद्रा धीर-गम्भीर। वह अमरता के सम्बन्ध मे कुछ कहते हैं। अपने आसपास के संसार का उनको पूरा ज्ञान है। वे स्वय अपने काल के सबसे बडे अर्थशास्त्री है। देश और काल को नाथ कर उसका अधिकतम सदुपयोग करके,

वह देश और काल से ऊपर उठ चुके है। ऐसे सर्वसम्पन्न (परमश्रेष्ठ) ईसा के पास एक जिज्ञासु हाँफता हुआ आता है, घुटने टेक कर नमन करता और पूछता है : "हे कृपासिन्धु प्रभु, बताइए मैं किस रास्ते चलूं कि अविनाशी जीवन की विरासत पा जाऊं?" ईसा ने उससे कहा—"तुम मुझे कृपासिन्धु क्यों कहते हो? एक को छोड़ कर और कोई कृपासिन्धु है ही नहीं और वह है परमात्मा। तुम धर्मानुशासनों (कमाण्डमेण्ट्स) से परिचित हो। व्यभिचार मत करो, अपने माता-पिता का आदर करो।" उस व्यक्ति ने उत्तर में कहा—"प्रभो! इन सब उपदेशों पर मैंने युवावस्था से ही आचरण किया है।" इस पर ईसा ने उसे धन्यवाद दिया। उन्होंने उस पर स्नेह-वर्षा करते हुए कहा—"तुममें एक बात की कमी रह गई है। लौट जाओ, जो कुछ तुम्हारे पास है उसे बेंच डालो और इस प्रकार प्राप्त धन को गरीबों में बाँट दो, तो तुम्हें स्वर्ग-निधि प्राप्त होगी। आओ, इस क्रास को हाथ में ले लो और मेरे पीछे चलो।" यह सुनकर वह व्यक्ति उदास हो गया और चल दिया, क्योंकि उसके पास बहुत बड़ी जायदाद थी। ईसा मसीह ने इधर-उधर निगाह दौड़ाई और अपने शिष्यों से कहा—"जिनके पास दौलत है वे ईश्वर के राज्य में किस प्रकार प्रवेश पा सकते है?" यह सुनकर शिष्यगण अचम्भे में आ गये। परन्तु ईसा ने उनसे बार-बार कहा—"बच्चो! जो लोग अपनी दौलत पर भरोसा रखते हैं उनके लिए ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाना कितना दुष्कर है। सुई के छेद से ऊँट का गुजर जाना आसान है, परन्तु धनाढ्य व्यक्ति के लिए ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाना कठिन है।" इस दृष्टान्त में जीवन का शाश्वत नियम अत्यन्त सुन्दर शब्दों में व्यक्त है। परन्तु शिष्यों को प्रतीति नही हुई। आजकल भी ऐसा ही देखने में आता है। ईसा मसीह से उन्होने कहा, जैसा कि आजकल हम कहा करते है—"व्यवहार में तो यह नियम चलता नही है। अगर हम सब-कुछ बेंच डाले, अपने पास कुछ न रक्खे, तो खायेंगे क्या? हमारे पास रुपया होना ही चाहिए वर्ना हम सामान्य रूप से भी नीतिवान नही बने रह सकते।" वे आश्चर्य-चकित स्वर में आपस में कहने लगे—"तो फिर परित्राण किसका सम्भव है?" ईसा मसीह ने उनकी ओर मुखातिब होकर कहा—"मनुष्य के लिए यह असम्भव जरूर है, परन्तु ईश्वर के लिए नही। क्योंकि ईश्वर के लिए हर एक काम सम्भव है।" उसके पश्चात् पीटर ने उनसे कहा—"देखिए, हम लोगों ने अपना सब-कुछ त्याग दिया है। हमने आपके आदेश का पालन भी किया है।" ईसा मसीह ने उत्तर में कहा—"सत्य मानो, जिसने भी अपना घर, भाई-बहिन, माता-पिता, पुत्र-कलत्र, जमीन इत्यादि का मेरे तथा धर्मो के निमित्त त्याग किया हो, उसे यहां यह सब सौगुना मिलेगा। बेशक उसे अन्याचार सहने

के लिए भी तैयार रहना होगा और परलोक में मोक्ष मिलेगा। परन्तु लोगो में से बहुतेरे आज जो आगे है, पीछे रह जायँगे और पीछे की पंक्तिवाला आगे पहुँच जायगा।" सज्जनो, नीति का फल अथवा यदि यह शब्द आपको ठीक न लगे तो नीति का पुरस्कार यही है।

मैने ये वाक्य एक ऐसे धर्मग्रन्थ से उद्धृत किये हैं जो हिन्दू-धर्म का ग्रन्थ नही है। मै अन्य अहिन्दू-ग्रन्थों से उपर्युक्त प्रकार के वाक्य उद्धृत करने की परेशानी मे नही पड़ूंगा और ईसा मसीह-द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के समर्थन में मैं भारतीय ऋषि-मुनियों द्वारा कहे या लिखे गये वाक्यो को, ऐसे वाक्य जो इंजील (बाइबिल), के उपर्युक्त वाक्यों से सम्भवतः अधिक जोरदार है, उद्धृत करके आपको खिन्न नही करूँगा। प्रस्तुत प्रश्न के इस उत्तर के अनुमोदन के लिए सबसे अधिक विश्वसनीय और जोरदार प्रमाण संसार के सबसे बड़े उपदेशकों के जीवन-चरित्र है। ईसा मसीह, मुहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, शंकराचार्य, दयानन्द, रामकृष्ण ऐसे व्यक्ति थे जिनका लाखों नरनारियों के हृदयो पर प्रभाव था और जिन्होने असंख्य व्यक्तियो का चरित्र गढा है। ये महापुरुष इस पृथिवी पर अवतरित हुए, और उनके अवतरित होने से विश्व की नैतिकता में समृद्धि हुई। ध्यान रहे कि ये सब ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने जान-बूझकर गरीबी को अपनाया था।

यदि मेरा यह विश्वास न होता कि जिस हद तक हम आधुनिक भौतिकवाद के पीछे दीवाने बने रहेगे उस हद तक हम उन्नति के मार्ग से दूर रहकर अवनति की दिशा मे अग्रसर होते जायँगे, तो मैने आज जो इस प्रकार विस्तारपूर्वक अपनी बात आपके सामने रखने का प्रयास किया है सो कदापि न करता। मेरी धारणा है कि आर्थिक उन्नति उस अर्थ में जिसमे उसे मैने आपके समक्ष रखा है, वास्तविक उन्नति के विरुद्ध पड़ती है। यही कारण है कि हमारा प्राचीन आदर्श धन-सम्पत्ति में वृद्धि करनेवाली गतिविधियो पर नियन्त्रण रखता रहा है। इससे भौतिक समृद्धि की आकाक्षा समाप्त हो जाती है, सो बात नही है। हमारे मध्य जैसा कि सदा से होता आया है आगे भी ऐसे व्यक्ति पैदा होते रहेगे जिन्होने अपने जीवन का लक्ष्य धन अर्जित करना ही बना रक्खा है। परन्तु हमारा सदा से ही यह विचार रहा है कि धनोपार्जन को लक्ष्य बना लेना आदर्श से गिर जाना है। आपको यह जानकर आनन्द होगा कि हममें से सब-से-अधिक धनवान व्यक्तियों ने प्रायः अनुभव किया है कि यदि हमने स्वेच्छा से निर्धनता अपनाई होती तो वह स्थिति हमारे लिए उच्चतर होती। परमेश्वर और माया दोनो को एक साथ नही साधा जा सकता। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक सत्य है। हमे इन दोनों मे से एक को चुन लेना है। आज पाश्चात्य देश भौतिकवाद रूपी राक्षस के पांवों तले पड़े हुए

कराह रहे है। उनकी नैतिक उन्नति को जैसे लकवा मार गया है; वे अपनी उन्नति का मापदण्ड रुपया, आना, पाई बनाये हुए हैं। अमेरिका की दौलत उनका मापदण्ड बनी हुई है। अन्य राष्ट्र उसी के समान धनाढ्य बनने की इच्छा रखने लगे हैं। मैंने अपने अनेक देशवासियों को कहते हुए सुना है कि हम अमेरिका की तरह धनवान होना तो पसन्द करेंगे परन्तु उसके तरीके न अपनायेंगे। मेरा नम्र निवेदन है कि यदि इस प्रकार का प्रयास किया गया तो वह असफल हुए बिना न रहेगा। हम एक ही समय में बुद्धिमान, संयमशील और क्रूर नहीं हो सकते। मैं अपने नेताओं से इस बात की अपेक्षा करूँगा कि वे हमें संसार-भर में सबसे अधिक नीतिवान बनना सिखायें। हमें बताया गया है कि हमारे इस देश में किसी समय देवता निवास करते थे। जिस देश को मिलों की चिमनियों से निकलने वाला धुआं और कारखानों का कर्कश स्वर भयजनक बनाये हुए है, जिसकी सड़कों पर मुसाफिरों से खचाखच-भरी असंख्य मोटर-गाड़ियां तेजी के साथ इधर-से-उधर दौड़ रही हैं और जिसकी इन मोटर-गाड़ियों में लक्ष्य को भूले हुए ऐसे यात्री सवार हैं जो प्रायः भ्रान्तचित्त रहा करते हैं और जिन्हें उन वाहनों में भेड़-बकरी की तरह भर दिये जाने के कारण तथा बिल्कुल अपरिचित, असहिष्णु, विद्वेषपूर्ण व्यक्तियों के साथ, जो यदि उनका बस चले तो परस्पर एक-दूसरे को निकाल बाहर करते, यात्रा करने के लिए विवश होने के कारण अपना होश नहीं रहता, उस देश में देवताओं का निवास असम्भव है। मैं इन बातों का जिक्र इसलिए कर रहा हूं कि ये भौतिक उन्नति की प्रतीक मानी जाती हैं। परन्तु इनसे हमारी सुख-समृद्धि में किंचित् भी वृद्धि नहीं होती। महान वैज्ञानिक वैलेस अपने सुचिन्तित विचार इन शब्दों में व्यक्त करते हैं :

"अतीत काल से चला आनेवाला साहित्य जो हमें आज उपलब्ध है, उससे स्पष्टतः प्रकट होता है कि आज जो सामान्य नैतिक विचार और धारणाएँ नैतिकता का सर्व-स्वीकृत मानदण्ड और इनसे उत्पन्न होनेवाला जो पारस्परिक व्यवहार देखने में आता है, वह आज की अपेक्षा प्राचीनकाल में किसी प्रकार भी कम न था।"

वही लेखक अनेक परिच्छेदों में इस बात का विवेचन करता है कि ब्रिटिश राष्ट्र की धन-सम्पत्ति की वृद्धि के साथ-साथ क्या दशा हुई। वह कहता है—

"धन-सम्पत्ति की इस वेगवती उन्नति तथा प्रकृति पर हमारा प्रभुत्व स्थापित होने के फलस्वरूप हमारी अपरिपक्व सभ्यता और हमारे दिखावटी ईसाई धर्म पर बहुत बड़ा बोझ आ पड़ा है। और यह उन्नति अपने आप अनीति को उसके नाना प्रकार के रूपों में लाई है जो उतनी ही आश्चर्यजनक और अभूतपूर्व है जितनी की सम्पत्ति की वृद्धि।"

आगे चलकर वह बताते है कि किस प्रकार आदमियों, औरतों और बच्चों की लाशो पर कारखाने खड़े किये गये है और किस प्रकार ज्यो-ज्यों वह देश तेजी से धनवान बनता गया त्यों-त्यो उसका नैतिक पतन होता गया। वह अपनी इस बात के प्रमाण मे अस्वच्छता, प्राणघातक व्यवसाय, जिन्सों में मिलावट, रिश्वत-खोरी, जुआ इत्यादि का उल्लेख करते है। वह यह भी सिद्ध करते है कि ज्यो-ज्यों दौलत बढती गई, त्यो-त्यों न्याय में अनैतिकता आती गई, मद्यपान के कारण मृत्यु-सख्या और आत्मघात की घटनाओं में वृद्धि हुई है, समय से पूर्व प्रसव और तत्सम्बन्धी खराबियां बढ़ गई है और वेश्यागमन ने संस्था का रूप धारण कर लिया है। लेखक ने वर्तमान अधोगति का वर्णन इन सारगर्भ शब्दों में समाप्त किया है :

"दौलत और निठल्लेपन के परिणामों के दूसरे पहलुओं के बारे में हम तलाक-अदालतों के कार्य-विवरण से बहुत-कुछ जान सकते हैं। मेरे एक मित्र है जो लन्दन में बहुत अर्से तक रहे हैं। वह निश्चयात्मक रूप से कहते हैं कि धनिकों के देहाती घरों में और खुद लन्दन शहर में ऐसी-ऐसी बदमाशियाँ प्रायः देखने में आती हैं जैसी बड़े-से-बड़े दुराचारी सम्राटों के शासनकाल में भी न हुई होंगी। युद्ध के विषय में मुझे कुछ कहना ही नहीं है। रोम सम्राज्य के उत्थान के दिनों से युद्ध जल्दी-जल्दी होने लगे है, परन्तु निश्चय ही आज सभी सभ्य राष्ट्रों में युद्ध के प्रति भारी अरुचि उत्पन्न हो गई है। शान्ति के पक्ष में उत्कट धार्मिक भावना के साथ की गई घोषणाओं के सन्दर्भ में शस्त्रास्त्रों के उस भण्डार का विचार करें, जिसका राष्ट्रों ने संग्रह कर रक्खा है, तो उससे यह प्रकट होता है कि शासक-वर्गो में एक व्यावहारिक मार्ग-दर्शक सिद्धान्त के रूप में नैतिकता का पूर्ण अभाव हो गया है।"

ब्रिटिश छत्रछाया मे हमने बहुत-कुछ सीखा है, परन्तु यह मेरा निश्चित मत है कि ब्रिटेन यथार्थ नैतिकता की दिशा मे कुछ भी देने मे असमर्थ है। मेरी यह भी धारणा है कि यदि हम जागरूक न रहे तो उन सब अवगुणों का, जिनका ब्रिटेन शिकार बना है, समावेश हो जायगा। इसका कारण भौतिकवाद से उत्पन्न होनेवाले दोषों के सिवा और कुछ नही है। हम उस सम्बन्ध से उसी दिशा में लाभ उठा सकते है जब हम अपनी सभ्यता और अपनी नैतिकता को विचलित न होने दे अर्थात् यदि हम अपने गौरवमय अतीत की डींग न हाँककर स्वयं अपने जीवन में उन दिव्य गुणो को उतारे और हमारा जीवन हमारे भूतकाल की साक्षी दे। उसी हालत में हम उसे (ब्रिटेन को) तथा स्वयं अपने को लाभ पहुँचा सकेंगे। यदि हम ब्रिटेन की नकल इसलिए करते है कि हमारा शासक-वर्ग वहा का है तो हमारी और उन दोनो की अवनति होगी। हमे आदर्शो के पूर्णतया कार्यान्वित

करने से भयभीत नहीं होना चाहिए। हमारा राष्ट्र सच्चे अर्थ में आध्यात्मिक राष्ट्र उसी दिन होगा जब हमारे पास सोने की अपेक्षा सत्य का भण्डार अधिक होगा, धन और शक्ति के प्रदर्शन की अपेक्षा निर्भयता अधिक होगी और अपने प्रति प्रेम की अपेक्षा दूसरों के प्रति उदारता अधिक होगी। यदि हम केवल इतना ही करें कि अपने घरों, मुहल्लों और मन्दिरों में धन के आडम्बर का प्रवेश न होने देकर नैतिकता का वातावरण पैदा करें तो हम भारी रणसज्जा का बोझ उठाये बिना शत्रु से, वह चाहे कितना भीषण क्यों न हो, निपट सकते हैं। हमें सर्वप्रथम दैवी सम्पद् की, परमपिता के राज्य और उसकी पवित्रता की कामना करनी चाहिए। जो ऐसा करेगा उसे यह अमोघ वचन मिला हुआ है कि उसके पास सब वस्तुएं आ जायेंगी। सच्चा अर्थशास्त्र यही है। ईश्वर करे हम और आप दैवी सम्पद् का सञ्चय करें और अपने जीवन में उसे उतारें।"

इसके अनन्तर गांधीजी से कुछ प्रश्न पूछे गये। प्रोफेसर जेवन्स ने कहा—समाज के लिए अर्थशास्त्रियों का रहना आवश्यक है। (समाज का) लक्ष्य क्या होना चाहिए, इसे निर्धारित करना उनका काम नहीं है। यह काम दार्शनिकों का है।

प्रोफेसर गिडवानी ने, जो कि म्योर कालेज इकानामिक सोसाइटी के अध्यक्ष थे, श्री गांधी को धन्यवाद दिया।

प्रोफेसर हिगिनबॉटम ने कहा कि ऐसा कोई भी आर्थिक प्रश्न नहीं है जिसे नैतिक प्रश्न से अलग किया जा सके।

श्री गांधी ने प्रो० जेवन्स के कथन के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा :

"कूड़ा-करकट गलत जगह में रखे हुए पदार्थ के सिवा और कुछ नहीं है, ऐसा कहा जाता है। इसी प्रकार जब कोई अर्थशास्त्री गलत जगह पर आ बैठता है तब वह हानिप्रद बन जाता है। जिस प्रयोजन के लिए उसकी सृष्टि हुई है यदि अर्थशास्त्री अपने उसी क्षेत्र में रहे तो मैं यह मानता हूं कि प्रकृति की व्यवस्था में अर्थशास्त्री का भी स्थान है। यदि कोई अर्थशास्त्री ईश्वर के बनाये नियमों की खोज-बीन नहीं करता और निर्धनता-निवारण को लक्ष्य मानकर सम्पत्ति कैसे बांटी जाय, हमें यह नहीं बताता, तो उसने भारतभूमि पर नाहक ही जन्म लिया है। मैं एक और बात अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के विचारार्थ रखना चाहता हूं, वह यह है कि जो बात इंग्लैण्ड और अमेरिका के लिए अच्छी हो सकती है, यह जरूरी नहीं कि वह भारत के लिए भी अच्छी ही हो। मेरा विचार तो यह है कि नैतिक सिद्धान्तों से संगति रखनेवाले अर्थशास्त्र-सम्बन्धी अधिकांश सिद्धान्त

सव जगह समान रूप से लागू किये जा सकते है। किन्तु अलग-अलग क्षेत्रों में उनके विनियोग मे थोड़ा-वहुत अन्तर तो करना ही होगा। इसलिए मै चेतावनी देना चाहता हूं कि चूंकि भारतीय परिस्थिति कुछ वातो मे अमेरिका और इंग्लैण्ड की परिस्थिति से वहुत भिन्न है, अर्थशास्त्रियों को चाहिए कि वे अपने सामने आनेवाली वातों पर नये दृष्टिकोण से विचार किया करें। ऐसा करने से अर्थ-शास्त्री और भारतीय जनता दोनों ही लाभान्वित होगे। श्री हिगनवाटम वास्त-विक अर्थशास्त्र का अध्ययन कर रहे है और भारत के लिए इसी प्रकार का अर्थशास्त्र वहुत जरूरी है। वह अपने अध्ययन को क्रमशः कार्यरूप मे परिणत कर रहे हैं और चाहे हम विद्यार्थी हों या शिक्षक हमारे लिए इसी नीति पर चलते जाना सर्वोत्तम होगा।"

एक विद्यार्थी के प्रश्नों के उत्तर में गांधी जी ने कहा—

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने निजी स्वार्थ के लिए धन-संग्रह न करे, परन्तु यदि वह भारत के करोडो निवासियो के न्यासी की भाँति धन-संग्रह करना चाहता है तो मैं कहूगा कि वह जितना चाहे उतना धन इकट्ठा कर सकता है। सावारण-तया अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के नियम अमीर लोगों के (लाभ के) लिए रचते है। ऐसे अर्थशास्त्रियो का मै सदा विरोध करूंगा।

"अव मै दूसरे प्रश्न को लेता हूं। प्रश्न यह पूछा गया है कि क्या कारखानों को मिटाकर कुटीर-उद्योगों को चालू करना ज्यादा अच्छा न होगा ? मैं इस सुझाव को पसन्द करता हूं, परन्तु अर्थशास्त्रियों को चाहिए कि सवसे पहले धैर्यपूर्वक अपनी देशी संस्थाओ पर नजर डालें। यदि वे निकम्मी है, तो उन्हें समूल नष्ट कर देना चाहिए और यदि उनमे सुधार और उन्नति की गुंजाइश है तो उपाय ढूंढ़ निकालने चाहिए और उन्हें विकसित करना चाहिए।

"दूसरे देशों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के वारे में मेरी धारणा तो यह है कि हमारे देशवासियो की दूसरे देशो के निवासियो के सम्पर्क से रत्ती-भर भी नैतिक उन्नति होना जरूरी नही है। उदाहरण के तौर पर दक्षिण अफ़्रीका मे वसे हुए भारतीयो की दशा पर विचार कीजिए। यातायात के द्रुतगामी साधनों, जैसे स्टीमर या रेलगाड़ियो इत्यादि, ने अनेक आदर्शो को उनकी जगहों से हिला दिया है और वहुत अनर्थ का सृजन किया है।"

[और इस प्रश्न के उत्तर में कि किसी व्यक्ति को कम-से-कम कितना और अधिक-से-अधिक कितना धन रखना चाहिए श्री गांधी ने कहा]—

किञ्चितमात्र नही जैसा कि ईसा मसीह, रामकृष्ण और अन्य (महापुरुष) कह गये है।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ने सभा को विसर्जित करते हुए श्री गांधी को उनके इतने सुन्दर भाषण के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि जो सिद्धान्त उन्होंने (श्रीगांधी ने) हमारे सामने रक्खे हैं वे इतने ऊँचे हैं कि मैं यह आशा नहीं करता कि सभी लोग उन पर चलने के लिए तैयार हो जायँगे। परन्तु मैं आशा करता हूँ कि गांधीजी के इस मुख्य अभिप्राय से कि अर्थशास्त्र-सम्बन्धी सारे प्रश्नों और सिद्धान्तों का ध्येय मानव-जाति का कल्याण होना चाहिए, आप सभी सहमत होंगे।[1]

—इलाहाबाद, २२।१२।१९१६। अंग्रेजी से। 'लीडर', २५।१२।१९१६।]

११. भाषण : इलाहाबाद में प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा पर

[प्रयाग की एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा में, जो मुंशी रामप्रसाद के विशाल उद्यान में पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में हुई थी, महात्मा गांधी ने हिन्दी में निम्नलिखित आशय का एक व्याख्यान दिया था।—सम्पा०]

आप लोगों के सामने हिन्दी में व्याख्यान देने में मुझे कुछ कठिनाई का अनुभव हो रहा है, जिसके लिए मैं लज्जित हूं—और यह बात आज के मेरे व्याख्यान के विषय अर्थात् आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पर एक कड़ी टीका है। यद्यपि मैं अपने विचार अंग्रेजी में अधिक सुगमता से व्यक्त कर सकता हूं तथापि मैं हिन्दी में ही बोलना पसन्द करूंगा। वास्तविक शिक्षा का आरम्भ साधारणतः १६ या १७ वर्ष की अवस्था में कालेज में होता है। स्कूल में जो शिक्षा मिलती है वह उपयोगी नहीं होती। मसलन, भारतीय विद्यार्थी इंग्लैण्ड का भूगोल तो अच्छी तरह जानता है पर स्वयं अपने देश के भूगोल का उसे यथेष्ट ज्ञान नहीं होता। उन्हें भारत का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह बहुत-कुछ विकृत होता है। आजकल शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य सरकारी नौकरी पाना है। विद्यार्थियों की बड़ी-से-बड़ी इच्छा यही रहा करती है कि हम शाही परिषद् के सदस्य हो जायें। विद्यार्थियों ने अपने पूर्वजों के पेशे छोड़ दिये हैं और अपनी मातृभाषा भुला दी है। वे अंग्रेजी भाषा, यूरोपीय विचार और यूरोपीय वेशभूषा अपनाते जा रहे हैं। वे सोचते भी अंग्रेजी में हैं और अपना सारा राजनीतिक और सामाजिक काम अंग्रेजी में ही

१. भाषण समाप्त होने पर श्री चिन्तामणि ने गांधी जी से इसकी हस्तलिखित प्रति प्रकाशनार्थ ले ली थी।

करते है तथा व्यापार आदि का भी सब काम उसी भाषा में चलाते है और समझते है कि बिना अंग्रेजी भाषा के हमारा काम चल ही नहीं सकता। उनका यह खयाल बन गया है कि इसके अतिरिक्त हमारे लिए और कोई मार्ग ही नही है। अंग्रेजी भाषा के द्वारा दी गई शिक्षा ने मुट्ठीभर शिक्षितो और सर्व-साधारण के बीच बडी भारी खाई उत्पन्न कर दी है। परिवारों में भी यही हुआ है; अंग्रेजी पढ़े मनुष्य के विचार और भाव आदि का उसके घर की स्त्रियों के विचारों और भावों आदि से किसी प्रकार का सरोकार ही नही होता। और, जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों का लक्ष्य या तो सरकारी नौकरियां पाना होता है या बहुत हुआ तो, शाही परिषद् की सदस्यता प्राप्त करना होता है। जिस शिक्षा-प्रणाली से ऐसी बातें उत्पन्न होती हों, उसे मैं तो कभी ठीक नहीं समझता और जिन लोगों को ऐसी शिक्षा मिलती है, उनसे कभी यह आशा नही की जा सकती कि वे देश की कोई बड़ी सेवा करेंगे। मेरे कहने का मतलब यह नही है कि शिक्षित लोग सर्वसाधारण की दशा के प्रति हमदर्दी नही रखते। बल्कि मैं यह स्वीकार करता हूं कि कांग्रेस आदि बड़े-बड़े सार्वजनिक आन्दोलन इन्ही लोगों के चलाये हुए है और वे ही उनका संचालन कर रहे है। लेकिन साथ ही मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यदि लोगों को उनकी मातृभाषा मे शिक्षा दी गई होती तो इतने वर्षों में और भी अधिक काम होता और विशेष उन्नति हो गई होती। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि लोग यही मानने लगे है कि जिस रास्ते पर हम लोग चल रहे है उसके सिवा हमारे लिए और कोई रास्ता है ही नही। लोग अपने आपको बिल्कुल असहाय दशा में पाते है। लेकिन अपने को लाचार मान बैठना मर्दानगी नही है।

प्राचीन काल में गांव के साधारण गुरु जो आरम्भिक शिक्षा दिया करते थे उससे विद्यार्थियों को उन सब बातों का ज्ञान हो जाता था जो कि उनके पेशे के लिए आवश्यक थी। जो लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे वे अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र से अच्छी तरह परिचित हो जाते थे। प्राचीनकाल में शिक्षा पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही था। शिक्षा का प्रबन्ध राज्य की ओर से नही किया जाता था, बल्कि वह प्रबन्ध ब्राह्मणों के हाथ में रहता था, जो केवल प्रजा के कल्याण की ओर ही ध्यान रख कर शिक्षा-प्रणाली का स्वरूप निर्मित करते थे। उसका आधार संयम और ब्रह्मचर्य था। यह इसी शिक्षा-प्रणाली का प्रताप था कि हजारों वर्षों से अनेक प्रकार के आघात सहने पर भी भारतीय सभ्यता आज तक जीवित है, जब कि यूनान, रोम तथा मिस्र की सभ्यताएं लुप्त हो गई हैं। इसमें सन्देह नही कि इस समय भारत में एक नई सभ्यता की हवा बह निकली है लेकिन मुझे

पूरा यकीन है कि थोड़े ही समय में यह बात खत्म हो जायगी और फिर से भारतीय सभ्यता का प्रचार होगा। प्राचीन काल में जीवन का आधार संयम था, पर आजकल भोग-विलास ही प्रधान है। इसका फल यह हुआ कि लोग बलहीन और कायर हो गये हैं और सत्य को भूल बैठे हैं। हम लोग इस समय दूसरी सभ्यता के फेर में पड़े हुए हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपनी नई परिस्थिति के अनुकूल अपनी पुरानी सभ्यता में कुछ फेरफार कर लें। लेकिन हमारी जिस प्राचीन सभ्यता को अनेक यूरोपीय विद्वान भी सर्वश्रेष्ठ मानते हैं उसमें हमें कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं करना चाहिए। कहा जा सकता है कि पाश्चात्य सभ्यता की भौतिक शक्तियों से टक्कर लेने के लिए उस सभ्यता के उपायों और साधनों को ग्रहण करना आवश्यक है, लेकिन भारतीय सभ्यता का प्रधान आधार आध्यात्मिक बल है और वह भौतिक बल से कहीं बढ़-चढ़कर है। भारतवर्ष प्रधानतः धर्म-भूमि है। उसे धर्म-भूमि बनाये रखना भारतवासियों का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। उन्हें अपनी आत्मा से, ईश्वर से, बल ग्रहण करना चाहिए। यदि हम लोग इसी मार्ग पर चलते रहेंगे, तो जिस स्वराज्य की हमें इतनी अधिक आकांक्षा है और जिसके लिए हम जुटे हुए हैं वह स्वराज्य हमें स्वतः मिल जायगा।

—हिन्दी। इलाहाबाद, २३।१२।१९१६। 'लीडर', २७।१२।१९१६। 'महात्मा गांधी, हिज़ लाइफ, राइटिंग्ज़ ऐण्ड स्पीचेज़']।

१२. भाषण : लखनऊ कांग्रेस में

श्री मो० क० गांधी ने लखनऊ में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ३१वें अधिवेशन में २८ दिसम्बर, १९१६ को ११वां प्रस्ताव पेश करते हुए कहा :

सभापति महोदय, प्रतिनिधि बन्धुओ, बहनो और भाइयो,

मैं देखता हूं, मेरे तमिल भाइयों ने मुझसे अपील की है कि मैं उनके सम्मुख अंग्रेजी में बोलूं और मैं उनके इस आग्रह को अंशतः स्वीकार कर रहा हूं। किन्तु मैं बदले में उनसे यह अपील करना चाहता हूं कि वे अगले वर्ष-भर में राष्ट्रभाषा सीख लें। यदि उन्होंने अगले वर्ष तक राष्ट्रभाषा नहीं सीखी—मैं जानता हूं कि जब भारत को स्वराज्य दे दिया जायगा तब कौन-सी भाषा राष्ट्रभाषा होगी (तालियां)—यदि उन्होंने अगले वर्ष में ऐसा नहीं किया तो जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं अंग्रेजी में नहीं बोलूंगा। अभी मैं पहले अंग्रेजी में प्रस्ताव पढ़ूंगा और फिर उसी को हिन्दी में। प्रस्ताव इस प्रकार है :

(क) यह कांग्रेस जोर देकर अनुरोघ करती है कि आगामी वर्ष के अन्दर ही गिरमिटिया मजदूरों की भरती पर प्रतिवन्ध लगाकर गिरमिटियो के प्रवास को वन्द कर देना चाहिए।

(ख) काग्रेस के विचार मे यह अत्यन्त वाञ्छनीय है कि भारत-सरकार एक ऐसे प्रतिनिधि भारतीय को, जो भारतीय जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओ के परामर्श से चुना गया हो, निकट भविष्य में इस प्रश्न पर विचार करने के लिए लन्दन मे होनेवाले अन्तर्विभागीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए नियुक्त करे।

(ग) यह कांग्रेस हार्दिक प्रार्थना करती है कि श्री मार्जोरीवैंक्स तथा माननीय श्री थम्वी मराक्यार और अन्तर्विभागीय समिति की रिपोर्ट को, कोई कार्रवाई करने से पहले, आम लोगों के सूचनार्थ प्रकाशित कर दिया जाय।

संवाददाता तथा प्रतिनिधिगण, जिसके पास प्रस्ताव की प्रतियां हैं ध्यानपूर्वक देखें कि धारा (क) में एक शाब्दिक परिवर्तन किया गया है—प्रस्ताव में 'दरम्यान' के स्थान पर 'अन्दर ही' कर दिया गया है। ऐसा एक मित्र के अनुरोध पर किया गया है। उनको डर था कि सरकार यह सोच सकती है कि यदि गिरमिट प्रथा आगामी वर्ष वन्द रक्खी जाय तो हम सन्तुष्ट हो जायँगे, जब कि हमारा मतलव है उसे हमेशा के लिए समाप्त करवाना। धारा (ख) में भी आप देखेंगे कि 'जनता के विचार' से पहले 'भारतीय' शब्द जोड़ दिया गया है।

श्री गाघी ने प्रस्ताव को हिन्दी मे पढ़ा और उसके उद्देश्य पर प्रकाश डाला।

—अंग्रेजी से। लखनऊ, २८।१२।१९१६। भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के ३१वें अधिवेशन की रिपोर्ट, पृ० ६२-६३]।

१३. भाषण : अखिल भारतीय एक-भाषा व एक-लिपि सम्मेलन, लखनऊ में[1]

मुझे जो कुछ कहना है वह मैं फिर कहूँगा। इस समय मैंने वक्ताओं के उपदेश से जो-कुछ सीखा है केवल वही कहूँगा। मै गुजरात से आता हूँ। मेरी हिन्दी टूटी-फूटी है। मैं आप सव भाइयों से टूटी-फूटी हिन्दी ही में वोलता हूँ क्योंकि

---

१. गांधी जी इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे।

थोड़ी अँग्रेजी बोलने में भी मुझे ऐसा मालूम पड़ता है मानो मुझे इससे पाप लगता है। मुझे आपको हिन्दी का गौरव बताने की जरूरत नहीं है। आप लोगों की मुझसे हिन्दी का गौरव जानने की इच्छा ऐसी ही है जैसे कोई आदमी गंगा में स्नान करता रहे और कहे कि 'गंगा जी, इधर आओ'। यदि कोई आदमी राजपूताने में रह कर 'गंगा जी, इधर आओ' यह प्रार्थना करता तो उचित भी था। आप लोग हिन्दी पढ़ें और नागरी सीखें, यह आपसे, आपके सम्मेलन से कहना मेरा काम नही है। यदि मुसलमानों से कोई कहे कि उर्दू पढ़ना-लिखना सीख लो तो यह भी ऐसी ही व्यर्थ बात है। आप लोग कहते हैं कि मैं बोलनेवाला नही, काम करनेवाला हूँ, तो मैं जो कहता हूँ, मेरा कहना मानिए। सज्जनो, देखिए, क्रिश्चियन लिटरेचर डिपो ऐंड बाइबिल सोसाइटी सारे विश्व में घूम रही है; वह अपनी पुस्तकों का सारे विश्व में प्रचार कर रही है; सब भाषाओं में उनका अनुवाद करके आवश्यक स्थानों में वितरण करती है; यहाँ तक कि दक्षिण अफ्रीका में रहनेवाले मजदूरों और जंगली जातियों को भी उनकी भाषाओं में बाइबिल आदि देती है। इस कार्य में वह करोड़ों रुपया खर्च करती है। वे लोग हमारी तरह खाली सम्मेलन नहीं करते। हाँ, कभी-कभी सम्मेलन करते हैं पर केवल रुपया इकट्ठा करने या अपने काम की रिपोर्ट आदि सुनाने के लिए। यदि आज हिन्दी सिखानेवाले और काम करनेवाले लोग होते तो मद्रासी भी हिन्दी जानते होते। खाली सम्मेलन नहीं, किन्तु काम चाहिए, जैसे क्रिश्चियन लिटरेचर डिपो ऐण्ड बाइबिल सोसाइटी कर रही है। हर काम में पैसा चाहिए। पर पैसे की कमी नहीं है। कमी है काम करनेवालों की। यदि कार्यकर्ता हों तो गुजरात, मद्रास, दक्षिण सब जगह लोग हिन्दी सीख सकते हैं। हिन्दी में नई-नई पुस्तकें बनें, अनुवाद हों, बाहर जाकर लोगों को पढ़ाया जाय, और जो लोग यहाँ आये उन्हें पढ़वाया जाय। यदि दक्षिण या गुजरात आदि में हिन्दी पढ़ाने और उसका प्रचार करने आदि के लिए आदमी भेजें तो मुफ्त नही पर उचित रूप में निर्वाह करने के लिए उन्हें वेतन मिलेगा। पहले तो ऋषियों के समय में भारतवर्ष में बड़ा आत्मत्याग होता था, विद्या मुफ्त ही दी जाती थी। मैं हिन्दी सीखना चाहता था, अहमदाबाद में हिन्दी सिखाने वाला नहीं मिला। एक गुजराती सज्जन से, जो टूटी-फूटी हिन्दी जानते थे और काशी में १५-२० वर्ष रहे थे, मैंने हिन्दी सीखी। सम्मेलन आदि संस्थाएँ कार्यकर्त्ता बाहर भेजें तो बहुत से लोग हिन्दी सीख जायँगे। आप स्वराज्य चाहते हैं, मैं भी स्वराज्य चाहता हूँ। पर स्वराज्य मिलने का ढंग दूसरा है; बातें बनाने से स्वराज्य नहीं मिलता। पहले खुद काम करो पीछे सरकारी मदद लो। सरकारी मदद पहले नहीं मिलेगी। पहले खुद आगे बढ़ेंगे तो सरकार भी हमारे पीछे आयेगी। सरकार कभी पहले स्वयं

आगे नहीं वढ़ती। आप वाहर जाकर लोगों को हिन्दी सिखायें, और उचित रूप में काम करें। जव आप काम करेंगे, तव सरकार आपकी प्रार्थना सुनेगी, नही तो अर्जियों को फेक देगी। काम वड़ा है। पर इच्छा करे तो आप स्वराज्य का भवन वना सकते है। प्राचीन समय का गौरव पण्डित जी (मालवीय जी) अच्छी तरह दिखा चुके है। अँग्रेजी का शव्द-भण्डार पहले १,००० था। अव वढ़कर कोई एक लाख हो गया। उसमें न्याय, वैद्यक आदि सव विपयों के ग्रन्थ है। लोग कहते हैं हिन्दी मे कुछ नहीं है और अँग्रेजी के विना काम नही चलता। वाजे-वाजे समय अँग्रेजी के विना लोगों को वड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, यह मै मानता हूँ। जैसे रेलवे आदि में लोग अँग्रेजी के व्यवहार के विना कष्ट उठाते है। यहाँ तक कि मुझ-जैसे लोगों को हिन्दी का व्यवहार करने के कारण धक्के भी खाने पड़ते हैं। पर काम करनेवाले इन वातो की परवाह नहीं करते। अँग्रेजी से हिन्दी कितनी ही पीछे क्यों न हो, पर हमें उसका गौरव वढ़ाना ही पड़ेगा। हमारे प्राचीन ऋषि वड़े यम-नियम से रहते थे। वहुत वडा त्याग करते थे। अतः हमें कटिवद्ध होकर, स्वार्थत्यागपूर्वक उनका गौरव वढ़ाना चाहिए। सरकारी कौसिलों में अँग्रेजी ही की पूछ है। लोग कहते है वाइसराय आदि अँग्रेजी के अतिरिक्त और कुछ नही समझते, इसलिए उसी का उपयोग करना आवश्यक है। पर मैं कहता हूँ कि यदि मैं वोलना जानता हूँ और मेरे वोलने में कोई ऐसी वात रहेगी जिससे वाइसराय लाभ उठा सके तो अवश्य ही वह मेरी वाते हिन्दी में वोलने पर भी सुन लेगे। उन्हें आवश्यकता होगी तो उसका अनुवाद करा लेगे। अथवा सी० आई० डी० का कोई आदमी आकर उसकी रिपोर्ट ले जायगा। मैं तो प्रजा ही से स्वराज्य माँगता हूँ। प्रजा से स्वराज्य मिल जायगा तो पीछे राजा से भी मिल जायगा। यदि आपने इतना कर लिया तो आपमें सच्ची निर्भयता आ जायगी और आपके मनोरथ सफल होंगे।

—**हिन्दी**। लखनऊ, २९।१२।१९१६। **प्रताप**, १।१।१९१७।]

१४. अध्यक्षीय भाषण : अखिल भारतीय एक-भाषा व एक-लिपि सम्मेलन, लखनऊ में

मेरे प्यारे भाइयो,

पं० मदनमोहन मालवीय जी ने अभी आप लोगों को हिन्दी-भाषा के प्राचीन गौरव का वर्णन सुनाया है। परन्तु इस वर्णन से ही राष्ट्रभाषा का प्रचार नही हो

जायगा। भागीरथी की बड़ी अगाध महिमा है, ऐसा कहने से ही भागीरथी में स्नान का पुण्य नहीं मिल जाता। राष्ट्रभाषा का यदि प्रचार करना है तो उसके लिए भगीरथ प्रयत्न करना होगा। आप लोग लाट साहब को या सरकार के दरबार में जो प्रार्थनापत्र भेजते है तो किस भाषा में लिखकर भेजते हैं? यदि हिन्दी-भाषा में नहीं भेजते हैं तो हिन्दी-भाषा में लिखकर भेजें। आप लोग कहेंगे कि हिन्दी भाषा में लिखकर भेजने से वे हमारी बात नही सुनेंगे। मैं कहता हूँ कि आप अपनी भाषा मे बोलें, अपनी भाषा में लिखें। उनको गरज होगी तो वे हमारी सुनेंगे। मैं अपनी बात अपनी भाषा में कहूँगा। जिसको गरज होगी, वह सुनेगा। आप इस प्रतिज्ञा के साथ काम करेंगे तो हिन्दी भाषा का दर्जा बढ़ेगा। अभी तक उसका प्रचार सब प्रान्तों में नहीं हुआ है। राष्ट्रीय सभा में भी राष्ट्रभाषा का प्रचार नहीं है। यह किसका दोष है? यह दोष आप लोगों का है। मुझे हिन्दी पढ़ने के लिए एक हिन्दी जाननेवाले मनुष्य की आवश्यकता थी और है। परन्तु अहमदाबाद में मुझे कोई ऐसा मनुष्य नहीं मिला जो मुझे और मेरे आश्रमवालों को हिन्दी पढ़ा सके। मद्रास में अभी तक हिन्दी का प्रचार नहीं हुआ। आपने कोई प्रयत्न ही नहीं किया। दस-पाँच लोग ऐसे जुटाइए जो मद्रास प्रान्त में जाकर हिन्दी का प्रचार करें। उनको जो वेतन देना उचित है वह दीजिए। इतना रुपया मिलना कुछ कठिन नही है, क्योंकि इन सभाओं के करने में आप लोग इतना रुपया खर्च कर देते हैं। ऐसा प्रयत्न होगा तब राष्ट्रभाषा का सर्वत्र प्रचार होगा।

—हिन्दी। लखनऊ, २९।१२।१९१६। 'महात्मा गांधी।']

१५. भेंट : लखनऊ में

राष्ट्रभाषा

प्रश्न—क्या आप आवश्यक समझते हैं कि राष्ट्रीय सभा का कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही हुआ करे?

उत्तर—जरूर। हिन्दी-भाषा में जबतक सार्वजनिक सारा कार्य नहीं होगा तबतक देश की उन्नति नही हो सकती। राष्ट्रीय सभा में जबतक राष्ट्रभाषा-द्वारा ही सब काम न हो तबतक स्वराज्य नहीं मिल सकता।

प्रश्न—परन्तु यह कैसे सम्भव है कि सब प्रान्तों के लोग एकाएक हिन्दी सीख कर हिन्दी बोलने लग जायें?

उत्तर—मैं यह नहीं कहता कि सब प्रान्त अपनी-अपनी भाषा को छोड़कर हिन्दी बोलने और लिखने लग जायँ। जहाँ प्रान्तिक प्रश्न हो वहाँ प्रान्तीय भाषा में काम हो। जहाँ राष्ट्रीय प्रश्न हो, वहाँ राष्ट्रभाषा में ही उसका विचार होना चाहिए। यह काम बहुत कठिन नही है, और करने से सहज हो जाता है। जहाँ आजकल अँग्रेजी से काम लिया जा रहा है वहाँ हिन्दी से काम लेना चाहिए।

राष्ट्रीय महासभा का 'स्वराज्य'

प्रश्न—काँग्रेस ने स्वराज्य का जो प्रस्ताव किया है और जिस ढंग से उसे अमल में लाने की चेष्टा होने वाली है उसके विषय में आपकी क्या सम्मति है?

उत्तर—यह अच्छा हो चाहे बुरा, मेरी उस पर विशेष श्रद्धा नही है।

प्रश्न—इसका क्या कारण है?

उत्तर—उसमें द्वेष का निवास है।

प्रश्न—द्वेष तो उसमें कुछ नहीं है और यदि है भी तो वह नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) के सिद्धान्त के साथ है।

उत्तर—नौकरशाही से ही क्यों न हो, उसमें द्वेष है। इसलिए मेरी श्रद्धा उस पर नही है। पर मैं यह नही कहता कि यह प्रयत्न अच्छा नही है या वह प्रयत्न विफल होगा। द्वेष करना सर्वत्र हानि ही नही करता। द्वेप को मन से दूर करने के लिए भी द्वेष के साथ द्वेष करना ही पड़ता है। परन्तु मेरा यह मार्ग नहीं है। यह भारतीय मार्ग—प्राचीन परम्परागत मार्ग—नहीं है; यह पाश्चात्य मार्ग है।

प्रश्न—तो आपका यह हमारा भारतीय मार्ग (स्वराज्य प्राप्त करने का) क्या है?

उत्तर—वह मैं अभी न बताऊँगा।

वर्णाश्रम धर्म

प्रश्न—चातुर्वर्ण्य के विषय में आपकी क्या सम्मति है।

उत्तर—यह संस्था बहुत अच्छी है। इसने देश का बड़ा उपकार किया है। इसका रहना बहुत जरूरी है।

प्रश्न—हिन्दू-समाज में यदि चार ही वर्ण हैं और वे ऐसे ही रहेंगे तो अछूत जातियों को आप किस वर्ण में गिनते है?

उत्तर—अछूत जातियों का अस्तित्व चातुर्वर्ण्य की ज्यादती है। चातुर्वर्ण्य ने अनुचित रूप से ज्यादती करके इन जातियो को बहिष्कृत किया है। इनका स्थान चातुर्वर्ण्य के अन्दर ही है।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो इन अछूतों को किस वर्ण में स्थान मिलना चाहिए?

इस प्रश्न के उत्तर में आपने बहुत देर तक समझाया कि समाज की स्वाभाविक गति इनको यथाधिकार वर्णाश्रम प्रदान करेगी।

आर्यसमाज का शुद्धि-आन्दोलन

प्रश्न—हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न कैसे हल होगा?

उत्तर—यह प्रश्न पूर्णतया हल नही हो सकता। अन्य देशों में जैसे हुआ वैसे यहाँ भी होगा। हिन्दू, मुसलमान दो पक्ष रहेंगे और ऐसा होने से देश की कुछ हानि न होगी।

प्रश्न—आर्यसमाज शुद्धि करके मुसलमानों को हिन्दू बना लेता है। यदि ऐसा करने में कोई धर्म-घात न हो और सारे मुसलमान हिन्दू बन जायँगे, ऐसी कल्पना की जाय तो शुद्धि से यह प्रश्न क्या हल नहीं हो सकता?

उत्तर—परन्तु यह मार्ग अच्छा नही है। यह धर्म-मार्ग नहीं है। यह स्वाभाविक गति नही है और समस्त मुसलमानों को हिन्दू बना लेने की कल्पना भी व्यर्थ है।

—हिन्दी। लखनऊ, २९-३१।१२।१९१६। 'महात्मा गांधी'। सं० गां० वां० खण्ड १३, पृ० ३२५-२६।]

१६. भाषण : मुस्लिम लीग सम्मेलन, लखनऊ में

[३१।१२।१९१६ को सुबह लखनऊ में मुस्लिम लीग सम्मेलन की बैठक फिर से हुई थी, जिसमें अध्यक्ष का स्थान श्री जिन्ना ने ग्रहण किया था। उन्होंने यह प्रस्ताव रखा था कि "यह सम्मेलन उपनिवेशों में भारतीयों के साथ किये जाने-वाले व्यवहार के प्रति तीव्र असन्तोष प्रकट करता है।" इस सम्मेलन में उर्दू भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने का भी प्रस्ताव था। इस सभा में गांधीजी भी उपस्थित थे। उनसे भी कुछ बोलने को कहा गया। उन्होंने उस अवसर पर जो भाषण दिया उसे संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पा०]।

"यदि आप अपने इस प्रस्ताव को कि भारत की राष्ट्रभाषा उर्दू रहे, कार्यान्वित करना चाहते हैं तो आप लोगों को अपनी कारंवाई उर्दू में करनी चाहिए। आपको उचित है कि आप लोग हिन्दी साहित्य में भी कुछ दिलचस्पी लिया करें। इससे आप लोग हिन्दू समाज के साथ स्थायी मैत्रीभाव रखने में समर्थ होंगे।

उपनिवेशों में हिन्दू और मुसलमान सदा से ही मिल-जुल कर काम करते आये हैं और यदि भारत मे भी वैसा ही किया गया तो हमारी मनोकामना शीघ्र पूरी हो सकती है। आप लोग जो प्रचार-कार्य करते है, उसे करने में आप सरकार से डरना छोड़ दें, क्योंकि अंग्रेजों का स्वभाव यह है कि वे बलवान के आगे झुकते हैं और निर्बलो पर सवारी कसते हैं।

—लखनऊ, ३१।१२।१९१६। 'लीडर,' ३।१।१९१७]।

१७. भाषण : अलीगढ़ में[1]

उन्होने श्रोताओं को बतलाया कि जबतक हममे एकता नही हो जाती तबतक स्वराज्य-प्राप्ति से राष्ट्र का लाभ होगा, ऐसा कहना बेकार होगा। आज के दंगों का उल्लेख करते हुए उन्होने हिन्दुओं द्वारा प्रकाशित, घृणित और हेय बर्बरता के प्रति घृणा व्यक्त की और कहा कि हिन्दुओं को अपनी कमी पूरी करनी चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानों के झगड़े पारिवारिक झगड़ों की तरह तय कर दिये जाने चाहिए। उन्होने अली-बन्धुओं का कई बार उल्लेख किया।

—हिन्दी। अलीगढ़, २८।११।१९१७। अंग्रेजी से। बाम्बे सीक्रेट एब्स्टैक्ट्स १९१७। सं० गां० वां० खण्ड १४, पृ० ९६]

भाषण : अलीगढ़ कालेज में[2]

उन्होने कहा मुझे उम्मीद है कि मैं यहाँ इस कालेज में अली-बन्धुओ के साथ

---

१. यहाँ छात्रों की भारी भीड़ ने गांधीजी का स्वागत किया। स्टेशन से लायल पुस्तकालय के मैदान तक उनका जुलूस निकला। मैदान में २००० लोगों की सभा में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भाषण दिया। स्वराज्य की कामना करते हुए एक छात्र ने गांधीजी को माला पहनाई। १।१२।१९१७ को 'लीडर' ने लिखा—गांधी जी ने सर सैयद अहमद खॉ की इस युक्ति का उल्लेख किया कि हिन्दू-मुसलमान भारत की दो आँखें हैं।

२. पुस्तकालय के मैदान में भाषण देने के बाद गांधीजी ने कालेज के कार्यकारी प्रिंसपल श्री रेनल से अनुमति लेकर छात्रों के समक्ष—सत्य और मितव्ययिता पर भाषण दिया। बाद में ख्वाजा अब्दुल मजीद के घर गये और वहाँ से कलकत्ता जाने के लिए स्टेशन चले गये।

आऊँगा। मैंने अलीगढ़ को राष्ट्र और देश के लिए कार्य करते देखा है। परन्तु मुसलमान अपने देश के उत्थान की दिशा में उस लगन से काम नहीं कर रहे हैं, जिससे उनके हिन्दू भाई कर रहे हैं। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होगी कि अलीगढ़ कालेज के यदि सब नहीं तो कुछ विद्यार्थी श्री गोखले की तरह राष्ट्र-नायक बनें। उन्होंने अपनी पोशाक की (सफेद कुर्ता-धोती और टोपी) का जिक्र करते हुए कहा कि भारतीयों के लिए यही उपयुक्त पोशाक है। दलित वर्ग के लोग आधुनिक वेश-भूषा वाले व्यक्तियों की अपेक्षा भारत के प्राचीन ढंग के अनुसार वस्त्र पहनने वालों की बात अधिक तत्परता से सुनेंगे और उनसे सम्मति लेने भी अधिक प्रसन्नता के साथ उनके पास पहुँचेंगे।

—मूल हिन्दी। अलीगढ़, २८।११।१९१७। अंग्रेजी से। बाम्बे सी क्रॉनिकल एक्सट्रैक्ट्स १९१७। सं० गां० वां० खण्ड १४, पृ० ९६-९७]

१८. भाषण : इलाहाबाद में सत्याग्रह पर

मुझे खेद है कि मैं आपके सामने स्वयं बोलने में असमर्थ हूँ। इस सभा के दूसरे छोर तक मेरी आवाज का पहुंचना नितान्त असम्भव है। इसलिए मुझे इसी से सन्तोष कर लेना होगा कि मैंने जो कुछ पंक्तियाँ लिख ली है मेरी ओर से वे आपको सुनाई जायँगी।[1]

जो व्यक्ति सत्याग्रह की शपथ लेना चाहता है, उचित है कि वह शपथ लेने के पूर्व उस पर सांगोपांग सोचविचार ले। सत्याग्रह के सिद्धान्तों को समझने के लिए रौलट विधेयकों की मुख्य-मुख्य बातों को समझना और यह तसल्ली कर लेना भी जरूरी है कि ये विधेयक वास्तव मे इतने आपत्तिजनक हैं कि उनके विरुद्ध सत्याग्रह-जैसी अत्यन्त प्रबल शक्ति का उपयोग किया जाना उचित है। साथ ही यह पक्का विश्वास होना भी आवश्यक है कि अन्तर्मन को मुक्त करने तथा किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था के प्रति पूर्ण निर्भयता प्राप्त करने के लिए हर प्रकार का शारीरिक कष्ट सहन करने की क्षमता मुझमे आ गई है। उसमें एक बार शामिल हो जाने पर पीछे मुड़ना हो ही नही सकता। अतएव सत्याग्रह में पराजय की

---

१. यह वक्तव्य अँग्रेजी में सभा के अध्यक्ष सय्यद हुसेन द्वारा तथा हिन्दी में गांधीजी के निजी सचिव महादेव देसाई द्वारा सुनाया गया था।

कल्पना ही नही है। सत्याग्रही मरते दम तक संघर्ष करता रहता है। इसलिए हर एक आदमी इसमें आसानी से शामिल नही हो सकता।

इसलिए सत्याग्रही को उचित है कि अपने साथ शरीक न होनेवालों के प्रति सहनशीलता से काम ले। सत्याग्रह-सभाओं के कार्यविवरण को पढ़ने पर मैंने प्रायः देखा है कि हमारे इस आन्दोलन में सम्मिलित न होनेवालों का उपहास किया जाता है। यह हरकत सत्याग्रह-शपथ की मूल भावना के विल्कुल विपरीत बैठती है। सत्याग्रह में हम आत्मवलिदान, अर्थात् प्रेम के द्वारा अपने विरोवियों को जीतने की आशा रखते है। जिस कार्यप्रणाली के द्वारा हम अपने ध्येय तक पहुँचने की आशा करते है वह यह है कि वह अपना वरताव इस प्रकार का रक्खें कि धीरे-धीरे तथा अव्यक्त रूप से विरोवी का सव विरोव जाता रहे। दो परस्पर-विरोवी व्यक्ति या दल स्वभावतः एक दूसरे से दुष्ट व्यवहार और यदि उभय पक्ष समान वलशाली हो तो हिंसा की अपेक्षा करते हैं। परन्तु जव सत्याग्रह का अवलम्ब लिया जाता है, तव उस पक्ष के मन में जिसके विरुद्ध सत्याग्रह किया जाता है, वह अपेक्षा एक सुखद आश्चर्य के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अन्त में उसका मन पसीजता है और वह अपना कदम वापस ले लेता है, जिसके कारण सत्याग्रह आरम्भ किया गया था। मैं आप लोगो को विश्वास दिलाता हूँ कि यदि हम दिन-प्रतिदिन अपनी शपथ का पालन करते रहेंगे तो हमारे आसपास का वातावरण शुद्ध हो जायगा। और जिन लोगो का हमसे शुद्ध उद्देश्य के कारण मतभेद है—मेरा यह पक्का खयाल है कि यह ऐसा ही है—वे यह समझने लग जायँगे कि उनकी आशंका निर्मूल थी। हिंसा-मार्ग के समर्थक कही भी हों उनकी समझ में यह आने लगेगा कि सुवारो को प्राप्त करने के लिए गुप्त अथवा प्रकट हिंसा की अपेक्षा सत्याग्रह कही अधिक समर्थ साधन है। उनको यह भी भासित हो जायगा कि सत्याग्रह में उनकी अपार कार्यशक्ति का उपयोग करने के लिए काफी काम मौजूद है। यदि हमारे कामों की वदौलत हिंसा-नीति प्रत्यक्ष रूप से कम हो जायगी—भले ही वह पूरी तौर पर समाप्त न हो—तो सरकार के पास अपनी कार्रवाइयों के पक्ष में कहने को कुछ भी शेष न रहेगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि सत्याग्रह-सभाओ मे हम शर्म-शर्म के नारे नही लगायेंगे और सरकार के खिलाफ अथवा अपने उन देशवासियो के विरुद्ध, जो हमसे मतभेद रखते हैं और जिनमें से कुछ लोग देश के काम मे यथाशक्ति योग देते आये हैं, ऐसे शब्दो का प्रयोग नही करेंगे जिनसे हमारी असहिष्णुता या अधीरता प्रकट हो।

—हिन्दी। इलाहावाद, ११।३।१९१९। अंग्रेजी से। लीडर १३।३।१९१९।]

● सत्याग्रह में पराजय की कल्पना ही नहीं है।

१९. भाषण : लखनऊ में सत्याग्रह पर

श्री गांधी का भाषण सुनने के लिए सत्याग्रह के समर्थकों की एक सार्वजनिक सभा सुबह ८-३० वजे रिफाह-ए-आम हाल में हुई।...

इसके वाद गांधी जी ने, जो वहुत अधिक कमजोरी के कारण अधिक वोलने में असमर्थ थे, थोड़े से शब्दों में सत्याग्रह के आवारभूत सिद्धान्तों के वारे में वताया और श्रोताओं से कहा कि वे "शेम-शेम" (शर्म-शर्म) न चिल्लायें क्योंकि ऐसा व्यवहार सत्याग्रह के विपरीत है। इसके अलावा सभी लोगों से यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वे आन्दोलन का समर्थन करें या उसमें शामिल हों।

(सभा के) अध्यक्ष-सहित कुल मिलाकर ग्यारह लोगों ने प्रतिज्ञा ली...।
—हिन्दी। लखनऊ, ११।३।१९१९। अंग्रेजी से। 'लीडर' १३।३।१९१९।]

२०. मेरठ में एस० डब्ल्यू० क्लैम्ज को भेंट

क्लैम्ज—क्या आप वतायेंगे कि पश्चिम के देश पूर्व के देशों और खास कर भारतवर्ष के सर्वतोमुखी विकास में किसी प्रकार सहायक हो सकते हैं?

गांधी जी—अभी तो भारत ऐसी स्थिति में है जव उसे वहुत-सी सीखी हुई वातें भूलनी हैं, क्योंकि उसने ऐसा वहुत कुछ सीख रक्खा है जो वेकार है और जिसका कोई लाभ नही है। पश्चिमी दुनिया और विशेषकर आपके देश को देखकर मैंने दो महत्वपूर्ण वातें सीखी हैं। पहली है सफाई और दूसरी है स्फूर्ति। मेरा पक्का विश्वास है कि मेरे देश के लोग जवतक सफाई रखना नहीं सीखते तवतक उनका आत्मिक विकास नही हो सकता। आपके देश के लोगों में इतनी अधिक स्फूर्ति है कि आश्चर्य होता है। वैसे वहुत हद तक इस स्फूर्ति का उपयोग उन्होंने सांसारिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए किया है। अगर भारतीयों में भी उतनी ही स्फूर्ति हो तो सही दिशा देने पर वह उनके लिए वहुत वड़ा वरदान होगी।

क्लैम्ज—भारत में जो चतुर्दिक राष्ट्रीय भावना दिखाई देती है उसको ध्यान में रखते हुए ईसाइयत किस प्रकार सवसे अच्छी तरह इसकी सेवा कर सकती है?

गांधी जी—हमें जिस चीज की सवसे ज्यादा जरूरत है वह है सहानुभूति। एक दृष्टान्त देता हूँ। उस समय मैं दक्षिण अफ्रीका में था और मुझे वहाँ पर कुछ पाताल-तोड़ कुवें खोदने थे। स्वच्छ जल-स्रोत की खोज में मुझे वहुत गहरी खुदाई करनी पड़ी थी। हमारे देशवासियों के वारे में जानकारी हासिल करने के लिए दूसरे देशों से आनेवाले वहुत सारे लोग सिर्फ सतह की खरोंच कर रह जाते हैं।

अगर वे सहानुभूति के सहारे जरा गहरे उतर कर देखें तो उन्हे वहाँ जीवन का एक स्वच्छ और निर्मल प्रवाह दिखाई देगा।

क्लैम्ज़—किसी पुस्तक या व्यक्ति ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया है?

गांधी जी—जो कुछ मिल जाय वह सब कुछ पढ़नेवाला पाठक मैं नही हूँ। बहुत ही उत्तम ढंग की चीजें छाँट कर पढ़ा करता हुँ। जैसे बाइबिल, रस्किन की कृतियाँ, तालस्ताय की कृतियाँ। ऐसे बहुत से अवसर आये हैं जबकि मुझे यह नहीं सूझता था कि कौन-सा रास्ता अपनाऊँ। लेकिन मैं 'बाइबिल' और विशेषकर 'न्यू टेस्टामेण्ट' की शरण में गया हूँ और उसके सन्देश से मैने शक्ति प्राप्त की है।

क्लैम्ज—हमारा मेरठ स्नातक संघ, जिसमें नगर के सुसंस्कृत से सुसंस्कृत शिक्षित व्यक्ति शामिल हैं, इस नगर के कल्याण के लिए किस प्रकार काम कर सकता है?

गांधी जी—मेहतर बन कर। और मेहतर कहने मे मेरा मतलब इस शब्द के जितने भी अर्थ होते हैं, सबसे है। अगर इस संघ के सदस्यगण बाहर निकल कर नगर को वास्तविक रूप से तथा नैतिक रूप से भी स्वच्छ बनाने मे हाथ बँटायें तो यह बहुत बड़ा काम होगा।

—अँग्रेजी। मेरठ, २२।१।१९२०। यं० इ०, २५।२।१९२०]।

● पश्चिमी दुनिया और विशेष कर आपके देश को देखकर मैंने दो महत्त्व-पूर्ण बातें सीखी हैं: पहली है सफाई और दूसरी है स्फूर्ति।

२१. भाषण : मेरठ की सभा में[1]

आज भारत के सामने जितनी समस्याएँ मौजूद है उनमे खिलाफत की समस्या सबसे अधिक महत्व रखती है, क्योंकि वह हमारे मुसलमान भाइयों की समस्या है। मेरे अंग्रेज और हिन्दू मित्र मुझसे पूछा करते हैं कि आप-जैसे कट्टर हिन्दू को खिलाफत के मसले में इतनी दिलचस्पी क्यों है? उन सबको मेरा उत्तर यही हुआ करता है कि मैं और मेरे हिन्दू भाई भारत मे बसने वाले सात करोड़ मुसलमान भाइयो के साथ शान्ति और प्रेम से रहना चाहते हैं। जबतक खिलाफत का मसला मुसलमानों की न्याय-विषयक धारणाओं के अनुसार हल नही हो जाता तबतक

---

१. इस सार्वजनिक सभा में गांधी जी को खिलाफत कमेटी तथा मेरठ के नागरिकों की ओर से मानपत्र दिये गये। खान बहादुर शेख वहीदुद्दीन ने सभा की अध्यक्षता की। गांधी जी हिन्दी में बोले। उनका मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

भारत में शान्ति नहीं हो सकती। सरकार कुछ समय के लिए असन्तोष को दबा सकती है परन्तु जिनकी भावनाओं को गहरी चोट पहुँची है, वे सदा शान्ति के साथ नहीं रह सकते।

मैं अपने मुसलमान भाइयों से यह कहना चाहता हूँ कि इस प्रश्न के समाधान के लिए सत्याग्रह से अधिक कारगर कोई और उपाय नहीं है। आप शरीर-बल द्वारा खिलाफत के प्रश्न को कभी हल नहीं कर सकते। लेकिन अगर आप सत्याग्रह को अपना लें तो आप स्वयं ही देखेंगे कि सफलता की कितनी बड़ी सम्भावनाएँ हैं। यदि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय अपनी रक्षा के लिए हथियार उठा लेते तो उल्टे वे स्वयं ही उन हथियारों के शिकार बन सकते थे। परन्तु वे धैर्यपूर्वक अपने व्रत पर डटे रहे। खिलाफत की समस्या के बाद भारत की स्वतन्त्रता का सवाल लें तो वह सदा से स्वदेशी अपनाने की बात से सम्बद्ध रहा है। भारत की गुलामी उसी दिन से शुरू हुई जिस दिन उसने अपनी देशी चीजों का उपयोग छोड़ दिया। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का लक्ष्य कभी भी लोगों को जीतना न था। उसके उद्देश्य विशुद्ध रूप से व्यावसायिक थे। परन्तु हम सब जाल में फँस गये। हम लोग लंकाशायर और मैनचेस्टर में तैयार की गई चीजों का इस्तेमाल करते हैं। यदि हम लोग भारत को स्वतन्त्र करना चाहते हैं, तो हम सुधारों के बल पर वैसा नहीं कर सकते; इंग्लैण्ड में बनाये गये नियमोपनियमों के बल पर नहीं कर सकते; यह तो हम स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करके ही कर सकते हैं।

"पाखण्ड करने और चिकनी-चुपड़ी बातें कहने से सच्ची एकता प्राप्त नहीं हो सकती। आप दूसरे लोगों को तो धोखा दे सकते हैं मगर ईश्वर को नहीं। यदि हिन्दू लोग चिकनी-चुपड़ी बातें कहकर मुसलमानों को गोवध बन्द कर लेने पर राजी करना चाहते हों या इसी तरह मुसलमान खिलाफत के सवाल पर हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त करने की सोचते हों तो बहुत सम्भव है कि उन्हें निराशा ही हाथ लगे। ये तो अस्थायी वस्तुएँ हैं। जहाँ तक आप लोगों का अपना-अपना धर्म अनुमति दे वहाँ तक आपको एक दूसरे के हित के लिए अपने प्राण भी निछावर करने को तैयार रहना चाहिए।

—मूल हिन्दी। मेरठ, २२।१।१९२०। अँग्रेजी से। ट्रिब्यून १२।२।१९२०]।

२२. भाषण : खिलाफत और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर

बनारस टाउनहाल के मैदान में तीसरे पहर ३-३० बजे खिलाफत की एक

आम सभा हुई।...मौलाना शौकत अली और अबुल कलाम आजाद के अतिरिक्त सभा में आनेवाले विशिष्ट व्यक्तियों में श्री गांधी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित मोतीलाल नेहरु, लाला हरकिशनलाल और पंजाब के अन्य नेतागण थे।... हकीम मुहम्मद हुसेन खाँ को सभापति चुना गया।...

भारत के प्रेमी और प्रेम-भाजन श्री गांधी गगनभेदी हर्षध्वनि के बीच उठे। उन्होंने खिलाफत के प्रश्न तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर अपने विचार प्रकट करते हुए इस पर जोर दिया कि ये दोनों जातियाँ अपने-अपने धर्म के आदेशों का पालन करते हुए भी एक दूसरे के प्रति शुद्ध और सच्चा प्रेम-भाव रख सकती हैं। उन्होंने श्री केण्डलर[1] से हुई भेंट का उल्लेख भी किया, जिसमें श्री केण्डलर ने उनसे पूछा था कि क्या हिन्दू लोग मुसलमानों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित करने को तैयार है। महात्मा जी ने कहा कि मैंने उत्तर में उनसे कहा कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए यह कदापि जरूरी नही कि दोनो जातियों के बीच परस्पर विवाह-सम्बन्ध और खानपान हो। मैंने उनसे पूछा : जब जर्मन और अंग्रेज एक ही जाति के हैं और एक ही धर्म के अनुयायी हैं और उनका आपस में विवाह आदि का सम्बन्ध भी था तब यदि एकता के लिए यही सब जरूरी है, तो उन्होंने एक-दूसरे से युद्ध क्यों किया?

श्री गांधी ने हिन्दुओं से जोरदार शब्दों में अपील की कि वे खिलाफत के आन्दोलन मे, जिसका उद्देश्य बड़ा पवित्र है, मुसलमानों की मदद करें।

—मूल हिन्दी। काशी, २०।२।१९२०। अंग्रेजी। बाम्बे क्रानिकल, २३।२।१९२०।]

२३. भाषण : विद्यार्थियों की सभा बनारस में[2]

श्री गांधी हिन्दी मे बोले[3] और उन्होंने अपने भाषण में तुलसीदास का उल्लेख

---

१. एडमण्ड केण्डलर, विख्यात अंग्रेजी पत्रकार, उन दिनों पंजाब के प्रचार-अधिकारी। उन्होंने गांधी जी को कुछ खुले पत्र लिखे थे, जिनमें खिलाफत के सवाल पर गांधी जी के रुख पर शंकाएँ उठाई थीं।

२. हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में छात्रों की यह सभा विश्वविद्यालय के सह-उप-कुलपति की अध्यक्षता में हुई थी।

३. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है। इस सम्बन्ध में देखिए 'काशी-यात्रा' न० जी० २९।२।१९२०।

अनेक बार किया। उन्होंने विद्यार्थियों को पूरी ईमानदारी बरतने का उपदेश देते हुए कहा कि इसे केवल नीति के रूप में ही नहीं अपनाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि "पंजाब में मार्शल ला के कारण विद्यार्थियों ने बड़ी मुसीबतें उठाईं, परन्तु वे भी सर्वथा निर्दोष नहीं कहे जा सकते। विद्यार्थियों को राजनीति का अध्ययन करना चाहिए परन्तु उसमें सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिए। विद्यार्थियों का आदर्श संयम होना चाहिए, न कि स्वेच्छाचारिता।" उन्होंने भरत के जीवन से संयम के दृष्टान्त प्रस्तुत किये और कहा कि "यदि यहां के विद्यार्थी संयम के प्राचीन आदर्श पर चलने में असफल रहे तो विश्वविद्यालय के अस्तित्व का औचित्य नही रहेगा और इसके निर्माताओं को प्रोत्साहन नहीं प्राप्त होगा। मैं गुजरात कालेज (अहमदावाद) के लगभग प्रत्येक विद्यार्थी को जानता हूं, और उनमें से कुछ को अपने अध्यापकों में ही खामियं दिखाई देती हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि अध्यापकों ने भौतिकतावादी प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षा ग्रहण की है, परन्तु विद्यार्थियों को उचित है कि अपने गुरुओं के प्रति श्रद्धाभाव रखना सीखें, उनमें दोष न निकालें।" उन्होंने पण्डित मालवीय की सेवाओं की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनका जीवन अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए दृष्टान्त-रूप है।

—काशी। २१।२।१९२०। अंग्रेजी से। 'लीडर', २३।२।१९२०। सं० गां० वां०, खण्ड १७ पृ० ४८]।

२४. भाषण : खिलाफत-समिति की इलाहाबाद की बैठक में (३ जून, १९२०)[1]

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि मुसलमान महसूस करते हैं कि भारतवर्ष के सामने अब चार चरणों में असहयोग अपनाने के अलावा और कोई उपाय नही है। उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। और शान्ति-सन्धि में परिवर्तन कराने के उनके प्रयत्नों में पूरा सहयोग देने के लिए तैयार हूँ। मेरे विचार से यह संघर्ष झूठी ईसाइत और सच्चे इस्लाम के बीच होनेवाला संघर्ष है। एक ओर शस्त्रास्त्रों का बल है और दूसरी ओर नैतिकता का। हम यह युद्ध नैतिक बल के जोर पर

---

१. १ और २ जून को इलाहाबाद में हिन्दुओं-मुसलमानों का एक संयुक्त सम्मेलन हुआ। ३ जून को इलाहाबाद में अ० भा० केन्द्रीय खिलाफत समिति की बैठक हुई। यह भाषण उसी बैठक का है।

जीतना चाहते हैं। असहयोग आन्दोलन चार चरणों में किया जायगा। लेकिन पहला चरण प्रारम्भ करने से पहले हम परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदय से अपनी बात अर्ज करें और उन्हे इस बात के लिए एक महीने का समय दें कि वे शान्ति-सन्धि की शर्तो में मुसलमानों की माँगों के अनुरूप परिवर्तन करवा दें और अगर वह ऐसा न करवा सकें तो अपना पद छोड़कर असहयोग आन्दोलन में शामिल हो जायें। एक महीने के बाद प्रथम चरण को कार्यान्वित किया जायगा। जो लोग मेरे साथ काम करने को तैयार हों, उनकी एक समिति बना दी जाय, जिसे असहयोग की योजना को कार्यान्वित कराने की पूरी सत्ता दी जाय और जिसके निर्णय सभी लोगों के लिए बन्धनकारी हों। (उन्होंने बहिष्कार को अव्यवहार्य बताते हुए उसके प्रति असहमति प्रकट की और उसके बदले स्वदेशी अपनाने को कहा। उन्होंने लोगों से किसी भी रूप में हिंसा न करने का अनुरोध किया।)

—अंग्रेजी से। अमृतबाजार पत्रिका, ७।६।१९२०]।

२५. भाषण : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के बारे में

२३ जून, १९२०

[कल माधव बाग, बम्बई में एक सार्वजनिक सभा की गई, उसमें माननीय पं० मदन मोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय पर एक भाषण दिया। ग्वालियर-नरेश महाराजा सिन्धिया अध्यक्ष थे। सभा मे बड़ी संख्या में लोग उपस्थित थे, जिसमें महाराजा बीकानेर, श्री मो० क० गांधी, मौलाना शौकत अली... भी थे।

श्री गांधी ने अपने भाषण में कहा]—हमारे मित्र पं० मालवीय ने विश्वविद्यालय[1] के लिए जितने उत्साह और परिश्रम से काम लिया है उतना और किसी ने नही। जब-जब इस विषय पर बात करने का अवसर मुझे मिला है तब-तब उन्होंने मुझे बतलाया कि विश्वविद्यालय के काम को और आगे बढ़ाना वह अपने जीवन का मुख्य कार्य मानते हैं। उन्होने मुझसे यह भी कहा कि यदि बन सका तो वह राजनीति का क्षेत्र बिल्कुल ही छोड़ देंगे और अपने आप को विश्वविद्यालय के

१. मालवीय जी ने १९१६ में विश्वविद्यालय की स्थापना की थी; उन्होंने उसकी योजना पर कई वर्षो तक काम किया और उसका खर्चा चलाने के लिए एक करोड़ का कोष संग्रह किया।

काम में पूरी तौर से लगा देंगे। वम्बई हमेशा इस वात के लिए प्रसिद्ध रही है कि वह एक उचित उद्देश्य की सहायता के लिए तुरन्त तत्परता से आगे आती है और इस वात में मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है कि वम्बई अपनी उसी परम्परागत उदारता से काम लेगी और विश्वविद्यालय की सहायता करेगी। केवल पं० मालवीय ही नहीं, दो महाराजा भी आज आपके वीच नम्र याचकों के रूप में पधारे हैं। अतएव आपका कर्त्तव्य है कि विश्वविद्यालय कोष के लिए जितना भी दान हो सके दें तथा यह दान तत्परता के साथ और इसी स्थल पर देना उचित होगा। [श्री गांधी ने महाराजा सिन्धिया को अध्यक्ष पद ग्रहण करने के लिए हार्दिक धन्यवाद देने के उपरान्त अपना भाषण समाप्त किया।]

—वम्बई, २३।६।१९२०। अंग्रेजी से। वाम्बे क्रानिकल, २४।६।१९२०]।

२६. भाषण : संयुक्त प्रान्तीय सम्मेलन, मुरादाबाद में

मुझे अपने भाई पण्डित मदनमोहन मालवीय से भिन्न मत रखने पर बहुत गहरा दुःख है। मैं चाहता हूं कि आप सब यह वात ध्यान में रखते हुए कि पण्डित जी निरन्तर निष्ठापूर्वक देश की सेवा करते रहे, उनके दृष्टिकोण पर बहुत सम्मान-पूर्वक विचार करें। आप अपना निर्णय देते समय अपने मन में मेरा खयाल न रक्खें। मेरे विचार अव भी वही हैं जो कलकत्ते में थे। बहुत गम्भीर चिन्तन के वाद भी मैं यही मानता हूं कि देश की स्वतन्त्रता का एकमात्र रास्ता असहयोग ही है और कलकत्ते में स्वीकार किया गया कार्यक्रम सबसे अच्छा है। मुझसे पूछा गया है कि क्या मैं साम्राज्य से भारत का सम्बन्ध तोड़ लेने के पक्ष में हूँ। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि असहयोग के कार्यक्रम में ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध तोड़ लेने की वात है लेकिन यह ध्यान में रखना है कि मेरा लक्ष्य भारत को स्वतन्त्रता दिलाना है। यदि वर्तमान सरकार अपने दोषों को दूर कर देती है और लोग अपने को अवसर के अनुकूल सिद्ध करते हैं तथा सरकार और उसके अधिकारी भारतीयों को बराबरी का दर्जा देते हैं तो ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध बना भी रह सकता है। लेकिन यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि जनता मालिक है और सरकार उसकी सेवक। यदि लोगों के साथ बराबरी और साझेदारी का व्यवहार किया जाता है तो ठीक है। लेकिन अगर सरकार और अंग्रेज जाति मालिक होने का दावा करती है तो मैं क्षण-भर को भी इसे बरदाश्त न करूंगा और न उन्हें भारत की एक इंच भूमि पर ही टिकने दूंगा। भारत को आजादी दिलाने के लिए

दो बातें आवश्यक हैं। पहली तो यह कि हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता हो। मेरा अनुरोध है कि आप दोनों समुदायों के लोग एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता बरतें। लेकिन हिन्दू होने के नाते मैं हिन्दुओं से अधिक खुलकर अनुरोध कर सकता हूं। आप मुसलमानों को प्यार करें, उनका विश्वास करें और ऐसा आप अपने धर्म का दृढ़ता से पालन करते हुए भी कर सकते है। दूसरी शर्त है असहयोग आन्दोलन को सफल बनाना। (वर्तमान बुराइयों को दूर करने का) यही सबसे अच्छा और एकमात्र उपाय है। मैं हिंसा में विश्वास नही करता। हिंसा से मौजूदा बुराइयां दूर नही होंगी बल्कि उससे उन्हें उत्तेजन ही मिलेगा। सरकार खिलाफत के सम्बन्ध में अपने वादों से मुकर गई है। उसने पंजाब पर कहर बरपा किया है। इस अपराध पर उसने पश्चात्ताप भी नही प्रकट किया है। वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत जनता लोगों को (फौज में भरती होकर) मैसोपोटामिया जाने और छोटे-छोटे देशों की स्वतन्त्रता छीनने से नही रोक सकती। ऐसी सरकार से सम्बन्ध बनाये रखना अपराध है। इसी सरकार ने रौलट अधिनियम बनाया है; इसी सरकार ने खिलाफत के सम्बन्ध में अपना वचन-भंग किया है; इसी सरकार ने कुख्यात फौजी अदालतों की स्थापना की और इसी सरकार ने आपके बच्चों को ब्रिटिश झण्डे के सामने सिर झुकाने को मजबूर किया। मेरे विचार से ऐसी सरकार के साथ सहयोग करना, इसकी विधान-परिषदों में बैठना या अपने बच्चों को इसके स्कूलों में भेजना हराम है।

—हिन्दी। मुरादाबाद, ११।१०।१९२०। अंग्रेजी से। सर्चलाइट (पटना), १७।१०।१९२०]।

२७. भाषण : कानपुर में असहयोग पर

"यूरोप की सबसे बडी ताकत से हमारी यह लड़ाई चल रही है। ऐसी लडाई में विजय चाहते है तो हमें उसकी आवश्यक शर्ते समझ लेनी चाहिए। इनमे एक शर्त है संगठन की क्षमता। अंग्रेजों-जैसी संगठन की क्षमता के बिना हम अपना काम-काज चला भी नही सकते।...एक बार मुझे दस हजार आदमियों की एक सैनिक टुकड़ी के साथ सुबह के पहले पहर मे चलने का मौका आया था। सारे सैनिक पूर्ण अनुशासन का पालन कर रहे थे। लेकिन वह सैनिक ताकत से जीती जानेवाली लड़ाई थी। हम इस लड़ाई मे असहयोग के हथियार का उपयोग करके जीतना चाहते हैं। यहाँ अनुशासन की और भी अधिक आवश्यकता है।

दूसरी शर्त है हिन्दू-मुस्लिम एकता। यह एकता जवानी जमा-खर्च की नहीं बल्कि हृदयों की एकता होनी चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानों की समझ में ज्योंही यह बात आ जायगी कि उनके सहयोग के बिना ब्रिटिश शासन असम्भव है और ज्योंही वे उन्हें अपना सहयोग देना बन्द कर देंगे, त्योंही विजय हमारे हाथ में होगी। हम अपनी शक्ति का परिचय खून-खराबी या आगजनी के कामों के द्वारा नहीं करा सकते। अपनी शक्ति का परिचय तो हम आत्मोत्सर्ग और समर्पण के कार्यों द्वारा ही दे सकते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि बलिदान ही सचाई की सच्ची कसौटी है और सचाई तबतक विजयी नहीं होती जबतक उसके पीछे बलिदान की सच्ची भावना न हो। आप अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से निकाल लें, अदालतों और कौंसिलों के चुनावों का बहिष्कार करें तथा विलासिता का जीवन छोड़कर स्वदेशी को अपनायें।[1]

—हिन्दी। कानपुर, १४।१०।१९२०। अंग्रेजी से। 'लीडर' २१।१०।१९२०]

२८. भाषण : लखनऊ में

हमें तो बड़ी राष्ट्रीय सेना बनानी है। जबरदस्त अनुशासन के बिना वैसी सेना नहीं बना सकेंगे।

० ० ०

ब्रिटिश हुकूमत इस समय शैतान की प्रतिमूर्ति है। और जो खुदा के बन्दे हैं वे शैतानियत के साथ मुहब्बत नहीं रख सकते।

० ० ०

तुमने तलवार न उठाने की प्रतिज्ञा ली है, तो इस तरह छिटपुट हत्याओं का होना अनुशासन का गम्भीर उल्लंघन सूचित करता है। मैं नहीं मानता कि इस्लाम धर्म में भी ऐसे अनुशासन-भंग की इजाजत है। जबतक मुसलमान हिंसा-रहित असहयोग से बँधे हुए हैं, तबतक उन्हें यह विचार तक नहीं आना चाहिए कि तलवार उठाने से अच्छा काम होगा। इस हुकूमत ने बुराई की है, परन्तु बेगुनाह आदमियों को मारकर तो हम सरकार की दमन और आतंक की नीति को ही प्रोत्साहन देंगे। इस्लाम में तलवार के उपयोग की इजाजत जरूर है परन्तु

---

१. जिस सभा में गांधी जी ने यह भाषण किया था वह परेड मैदान (कानपुर) में हुई थी।

मेरा विश्वास है कि इस प्रकार सिर उड़ाने की बात तो इस्लाम में भी नही होगी और मै मानता हूं कि उलेमा भी मेरे खयाल की ताईद करेंगे। आप (यानी मुसलमान) जिस दिन हिंसारहित असहयोग का सिद्धान्त छोड़कर तलवार उठाने का निश्चय करें, उस दिन अवश्य ही प्रत्येक यूरोपीय स्त्री, पुरुष और बच्चे को चेतावनी दे सकते है कि उनकी जिन्दगी जोखिम में है। परन्तु मै ऐसी आशा रक्खूंगा कि आपको ऐसा निश्चय करने की नौबत नहीं आयेगी।

० ० ०

जफरुल्मुल्क तो अत्यन्त प्रामाणिक और निडर आदमी हैं, इसलिए उन्हें तो जेल जाकर ही शान्ति मिलनेवाली है। वह किसलिए जेल में है? उन्होंने एक भाषण में कहा था कि यह हुकूमत मिट्टी मे मिलेगी इसलिए सरकार की रँगरूटी मे जाना दोजख का रास्ता अपनाना है।

० ० ०

इस हुकूमत ने इतने घोर अत्याचार किये है कि यह खुदा और हिन्दुस्तान के आगे तोवा न करे, तो जरूर मिट्टी मे मिल जायगी। मैं तो यह तक कहूंगा कि जबतक वह तोवा न करे, तबतक उसे मिटाना हर भारतीय का कर्त्तव्य है। सरकार की रँगरूटी में जाना नरक में जाने के समान है—यह कहना यदि अपराध हो तो अवश्य ही यह अपराध करके पवित्र बनना प्रत्येक व्यक्ति का फर्ज है।

० ० ०

हम ऐसी (मौ० जफरुल्मुल्क का मुकदमा सार्वजनिक रूप में चलाने की) माँग कर ही नही सकते। ऐसी माँग करना यह बताता है कि जेल में जाने की हमारी नीयत नही है। समझ में नही आता कि हम ऐसा क्यों करते हैं। खुद जफ़रुल्मुल्क के लिए जेल महल के समान है। हमें तो ऐसा काम करना चाहिए, जिससे सरकार त्राहि-त्राहि पुकारे और हमारा माँगा हुआ दे दे अथवा हमें समुद्र मे डाल दे। गुलामी में रहने से समुद्र में डूबना बेहतर है।

मैं सरकार की तुलना डाकू से करता रहा हूं। कोई डाकू हमारी जायदाद लूट ले जाय और बाद मे हमें आधी वापस देना चाहे तो क्या हम उसे ले सकते है? परन्तु यह सरकार तो डाकू से भी बुरी है। सरकार ने हमारा सब छीन लिया है। इतना ही नही, वह तो हमारी आत्मा पर भी अधिकार करना चाहती है। सरकार हमें गुलाम बनाना चाहती है तो हमें उससे इतना-भर कह देना है कि जबतक हमारा वित्तमात्र ही नही, बल्कि हमारी इज्जत, हमारी आजादी वापस नही मिलती, तबतक तुमसे मुहब्बत रखना हराम है।

—हिन्दी। लखनऊ, १५।१०।१९२०। गुजराती से। न० जी० ३१।१०।१९२०]

२९. भेंट : लखनऊ में समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों से

[सर्वश्री गांधी, मुहम्मद अली और शौकत अली बम्बई मेल से आज सबेरे यहाँ पहुँचे।...एक पत्र-प्रतिनिधि द्वारा यह पूछे जाने पर कि वे सुधारों का समर्थन करनेवालों का नेतृत्व तथा सरकार के साथ सहयोग क्यों नहीं करते, श्री गांधी ने उत्तर दिया] "वह मेरे लिए बहुत भयंकर बात होगी। मैं तो इस जनसमूह का ही नेतृत्व करना पसन्द करूंगा। मैंने पिछले तीस वर्षों से लगातार सरकार से सहयोग करने का प्रयत्न किया है, लेकिन अब मैं ऐसा नहीं कर सकता। यह सरकार दुष्ट है और शैतानी से भरपूर है, जिसने अपना वचन तोड़ा है। अगर मुझे लायड जार्ज से बात करने का अवसर मिले तो मैं उनके मुँह पर यह बात कहूं।"

[यह पूछे जाने पर कि वह अंग्रेजी भाषा तथा डाक व तार का क्यों प्रयोग करते हैं, श्री गांधी ने कहा कि] मैं अंग्रेजी भाषा का प्रयोग इसलिए करता हूँ कि हिन्दी में मेरे अभिप्राय को नही समझा जायगा। [डाक और तार के सम्बन्ध में जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि] "मैं सरकारी विभागों को अपनी निजी सम्पत्ति मानता हूँ, अगर सरकार मुझसे ये दोनों सुविधाएं छीन ले तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।"

—अंग्रेजी। लखनऊ १५।१०।१९२०। हिन्दू १६।१०।१९२०]।

३०. भाषण : बरेली में[1]

१७ अक्तूबर, १९२०

चूंकि आप लोग अब इतने निडर हो गये हैं अतः मैं आपसे यही आशा करूंगा कि आप ऐसे ही बने रहें। अमृतसर में नगरपालिका से सरकार ने बहुत नीच कृत्य करवाये हैं, यहां तक कि लोगों को जल देना बन्द करवा दिया है। इससे घोर कृत्य और क्या हो सकता है? चाहे आप पर कितने ही अत्याचार क्यों न किये जांय, आप अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने का प्रयत्न करें, दबाव में न आयें, अमृतसर की नगरपालिका जैसा व्यवहार न करें। दूसरी बात मैं यह कहता हूं कि अगर आप में शक्ति हो तो आप अपने स्कूलों की स्वतन्त्रता को बनाये रखें। अगर आप सरकार की ओर से मिलनेवाला अनुदान (लेना) बन्द कर दें तो

---

१. बरेली नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्र के उत्तर में।

आपके स्कूल स्वतन्त्र हो जायँगे। मेरी कामना है कि इन दोनों बातों पर आप खूब विचार करें।[1]

— हिन्दी। बरेली, १७।१०।१९२०। गुजराती से। न० जी०, ३१।१०।१९२०।]

३१. भाषण : झांसी में

श्री गांधी . . . ने रोशनी और सजावट की[2] निन्दा करते हुए भाषण आरम्भ किया। उन्होने कहा कि जब तक खिलाफत का सवाल[3] हल नही होता, पंजाब में किये गये अत्याचारों का इन्साफ नही किया जाता और स्वराज्य नही हासिल हो जाता तबतक किसी को भी खुशियों में शामिल नही होना चाहिए। हमारे उद्देश्य केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता और हिंसा-रहित असहयोग से ही पूरे हो सकते हैं। तलवारे नही निकाली जानी चाहिए। इसके बाद उन्होने असहयोग कार्यक्रम के विविध अंगों पर बल दिया और कहा कि किसी को भी सेना में भरती नही होना चाहिए। इसके बाद उन्होने सरस्वती पाठशाला के लिए चन्दे की अपील की। उन्होने बताया कि यह पाठशाला एक शुद्ध राष्ट्रीय संस्था है।

— हिन्दी। झाँसी, २०।११।१९२०। 'लीडर', २४।११।१९२०।]

३२. भाषण : आगरा में असहयोग पर[4]

[गांधी जी ने भाषण का आरम्भ हाल में आगरा में हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगों

---

१. महादेव देसाई के यात्रा-विवरण से संकलित।

२. झाँसी शहर और खास-तौर से हार्डीगंज को, जहाँ यह भाषण हुआ था, गांधीजी का स्वागत करने के लिए बहुत अच्छी तरह से सजाया गया था और खूब रोशनी की गई थी। गांधीजी के साथ मौलाना शौकत अली भी थे।

३. खिलाफत आन्दोलन का उद्देश्य तुर्की के सुलतान को खलीफ़ा होने के नाते मुस्लिम दुनिया में वही प्रतिष्ठा और अधिकार दिलाना था जो उन्हें प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व प्राप्त थे।

४. यह भाषण एक विशाल सार्वजनिक सभा में दिया गया था। मौलाना अबुल-कलाम आजाद इस सभा के अध्यक्ष थे।

के उल्लेख से किया और अधिकारियों की मध्यस्थता के बिना ही विवाद सुलझाने के लिए जनता को बधाई दी। उन्होंने कहा] "मुझे अनुशासनहीन सभा देखकर दुःख होता है, क्योंकि उससे तो स्वराज्य प्राप्त नही हो सकता। जुलूस[1] से समय नष्ट होता है और बड़ी सभाओं से वह उद्देश्य पूरा नहीं होता जिसके लिए उनका आयोजन किया जाता है। इन दोनों में ही समय नष्ट होता है। शायद मुझे यह व्रत लेना पड़े कि मैं जुलूसों में नहीं जाऊंगा और बड़ी सभाओं में भाषण नहीं दूंगा। भारत जलियाँवाले बाग में मारे गये १५०० लोगों के लिए शोक मना रहा है। शोक के समय संगीत और जुलूस का विचार मुझसे सहन नही हो सकता। यह भी खेद की बात है कि सजावट और झण्डियों आदि में विदेशी कपड़े और विदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल किया गया है और रोशनी में विदेशी मोमबत्तियों और लैम्पों का। खिलाफत के मामले में जो अन्याय हुआ है उसे दूर कराने या स्वराज्य प्राप्त करने में इन तरीकों से कोई मदद नही मिलेगी।

मैं केवल विद्यार्थियों के बीच[2] भाषण देने आया हूँ और शीघ्र ही जह ठहरा हूं वह चला जाऊंगा। उस सभा में केवल विद्यार्थी ही शरीक हो सकेंगे।... मैं इस सरकार को शैतान की सरकार मानता हूं और मेरा विश्वास है कि यदि लोग सच्चाई पर रहें और नेक आचरण करें तो एक साल में स्वराज्य मिल सकता है। सरकार मुझे पागल कहती है परन्तु मैं जानता हूं कि मैं पागल नही हूँ। मैं इस धूर्त सरकार से सच्चाई से निपटूंगा। [इसके बाद उन्होंने वकीलों से वकालत छोड़ देने का, उम्मीदवारों से कौंसिल का बहिष्कार करने का और मतदाताओं से मत न देने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि] चुनाव में चमार को उम्मीदवार बनाना हास्यास्पद है। नौकरशाही उस पर और लोगों पर हँसेगी और चूंकि इस ढंग से स्वराज्य नही मिलेगा, वे दोनों का ही मजाक उड़ायेंगे।

— हिन्दी। आगरा, २३।११।१९२०। न० जी० तथा 'लीडर', २६।११।१९२०। अंग्रेजी एवं गुजराती से]।

---

१. गांधी जी एक जुलूस में सभास्थल तक ले जाये गये थे। जुलूस के साथ बैण्ड था और सारा मार्ग सजाया गया था। सभास्थल तक पहुँचने में दो घण्टे लग गये थे।

२. देखिए विद्यार्थियों की सभा का भाषण।

३३. भाषण : विद्यार्थियों की सभा, आगरा में[1]

२३ नवम्बर, १९२०

मुझे यहा आकर जितना दुःख हुआ है उतना किसी अन्य स्थान पर नही हुआ था। मै जो काम करने आया हूं इस गड़वड़ी के वीच वह नही किया जा सकता। जहां की व्यवस्था इतनी वुरी है वहा मैं विद्यार्थियों से कालेज छोड़ने के लिए कैसे कह सकता हूं ?

गुलामी की जजीर की चमक से हमारी आँखे चौंविया रही है। हम उसे अपनी स्वतन्त्रता की निशानी मान वैठे है। यह हमारी अत्यन्त हीन गुलाम अवस्था का सूचक है।

हमारे मन में तिलक महाराज के प्रति चाहे कितनी ही भक्ति क्यो न हो लेकिन उस भक्ति-भावना को क्या कोई विद्यार्थी खुलकर अभिव्यक्त कर सकता है ?

हमारा जीवन ही कायरता का पर्याय वन गया है। जो तालीम हमे भयहीन नही वना पाती, वल्कि जो भय को पुष्ट करती है वह तालीम किस काम की ? जिस शिक्षा में सचाई से चलने का अवकाश नही, देश-भक्ति को अवकाश नही, वह कैसी शिक्षा है ?

लेकिन मेरा यह कहना नही है कि तालीम वुरी है, केवल इसलिए उसका त्याग कर देना चाहिए। मेरा कहना यह है कि चूंकि यह तालीम हमे गुलामी मे रखनेवाले लोगों द्वारा मिलती है, इसलिए हम उसे ग्रहण नही कर सकते। गुलामों का मालिक हमें स्वतन्त्रता का पाठ नही पढ़ा सकता। इस साम्राज्य में मलिनता आ गई है और यह राक्षसी साम्राज्य अगर मुझे स्वतन्त्रता की तालीम देना चाहता हो तो भी मैं उसे नही ले सकता।

यह शिक्षा चाहे कैसी भी क्यों न हो, लेकिन देखिए कि उसके मूल में क्या है ? मोटी-मोटी पुस्तके पढाई जाती है, इससे आप क्षुब्ध क्यो होते है ? वे पुस्तके आपको स्वतन्त्रता की सच्ची तालीम नही दे सकतीं, केवल भरमाती है। वस्तुतः देखा जाय तो राष्ट्र का पैसा चुराकर हमे उससे ऐसी भुलावे मे डालनेवाली शिक्षा दी जाती है, जो चोरी करके उसमें से थोड़े से पैसे देकर नशाखोरी सिखाने के समान है।

(वचपन में) मैं माता-पिता के प्रति भक्ति रखनेवाला, श्रवण-जैसी भक्ति

---

१. 'नवजीवन' में प्रकाशित महादेव देसाई के यात्रा-विवरण से उद्धृत।

रखनेवाला लड़का था। मुझे ईश्वर में भी विश्वास था। यह सच है कि माता-पिता के प्रति भक्ति रखनेवाला मैं आज माता-पिता की अवज्ञा करने को कहता हूं। लेकिन माता-पिता को जन्म देनेवाला भी भगवान है और जहं ईश्वर और माता-पिता की आज्ञा मानने में चुनाव करना पड़े, वहाँ मैं आपसे ईश्वर की आज्ञा मानने के लिए कहता हूं।

जिनके दिल से यह आवाज आये कि जैसा मैंने वताया है वैसे साम्राज्य-द्वारा संचालित स्कूलों में आजादी की शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती; जिन्हें यह ईश्वरीय निर्देश प्राप्त हो कि आजादी पाने के लिए इस गुलामी से छूटना चाहिए, उन्हें माता-पिता को विनयपूर्वक समझाना चाहिए। यदि आपको यह जान पड़े कि यह घर जल रहा है और इसे तत्काल छोड़ने में ही छुटकारा है तो उसे छोड देना चाहिए। मैं तो इस साम्राज्य में पल-भर भी नही रह सकता, ऐसा मुझे चौबीस घण्टे महसूस होता रहता है और अगर आपको भी ऐसा महसूस हो तो आपको यह पूछने की जरूरत ही नही रह जायगी कि हमारे लिए दूसरे स्कूलों की व्यवस्था है या नही। विना शर्त के स्कूलों का त्याग करना स्वतन्त्रता का पहला पाठ है। लेकिन अगर आप में धीरज का अभाव हो, आपमें स्कूलों का त्याग करके नई राष्ट्रीय पाठशाला के स्थापित होने तक उसके लिए पैसे इकट्ठे करने का, भिक्षा माँगकर लाने का धीरज न हो तो आप हर्गिज शाला न छोड़ें।

आपको शारीरिक श्रम करने की शिक्षा मिलनी चाहिए। अंग्रेज लड़के जव स्कूलों-कालेजों से निकलते हैं तव उनमें शारीरिक श्रम करने की शक्ति तो होती ही है। लेकिन अगर आप पढ़-लिखकर सरकारी नौकर होने की आकांक्षा रखते हों तो आपके लिए यही पाठशालाएं ठीक हैं। दक्षिण में मधुकरी की जो प्राचीन प्रथा आज भी मौजूद है उसके गौरव को आप समझ सकते हों तो आप भिक्षा माँग कर भी शिक्षा प्राप्त करें। आपमें भिक्षा माँगकर शिक्षा लेने की सामर्थ्य न हो तो मैं आपकी मार्फत देश की स्वतन्त्रता प्राप्त नही करना चाहता।

यह शिक्षा नास्तिकता की शिक्षा है। ऐसी शिक्षा के वावजूद जिसे ईश्वर में श्रद्धा हो, जिसे इन्द्रियों पर कावू हो, जिसने अहिंसा और अस्तेय का पालन किया हो, अन्तर की आवाज तो वही सुन सकता है। मैं केवल संयम का पालन करने वाले विद्यार्थियों से कहता हूं कि अगर आपको ईश्वरीय निर्देश मिले तो आप वेधड़क कालेज छोड़ दें।

मुझे ऐसे ही विद्यार्थियों की आवश्यकता है जिनमें समय आने पर वलिदान देने की, फाँसी पर चढ़ने की, भिक्षा माँगने की शक्ति हो। यदि देश तथा मुसलमानों

पर हुए अत्याचारों से आपके हृदय में अग्नि धधक रही हो तो आप कालेज छोड़ सकते हैं।[1]

—मूल हिन्दी। आगरा, २३।११।१९२०। गुजराती से अनूदित। न० जी०, ८।१२।१९२०]।

- जिस शिक्षा में सचाई से चलने का अवकाश नहीं, देशभक्ति को अवकाश नहीं, वह कैसी शिक्षा है?
- यह शिक्षा नास्तिकता की शिक्षा है।
- मुझे ऐसे विद्यार्थियों की आवश्यकता है जिनमें समय आने पर बलिदान देने की, फाँसी पर चढ़ने की...शक्ति हो।

---

१. २६।११।१९२० के 'लीडर' में इस सभा का जो विवरण प्रकाशित हुआ था, उसके अन्त में विद्यार्थियों से गांधीजी ने कहा है—"मेरा भाषण सोलह साल से अधिक अवस्था वाले विद्यार्थियों के लिए है। किसी भी हालत में हिंसा का प्रयोग नहीं होना चाहिए। मेरे कुछ मुसलमान मित्रों ने बताया है कि वे असहयोग को, तर्के मवालात को आज़मायेंगे किन्तु यदि वह सफल न हुआ तब वे तलवार को अपनायेंगे। मैं तलवार का प्रयोग करने के खिलाफ़ हूँ। जो विद्यार्थी स्कूलों का त्याग करें, उनके अभिभावक यदि उन्हें आर्थिक सहायता देने से इनकार करते हैं तो उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए, पत्थर तोड़कर या भीख माँगकर भी अपना और अपने गुरु का पेट भरना चाहिए। केवल उन्हीं विद्यार्थियों को बिना किसी शर्त्त स्कूलों और कालेजों को छोड़ना चाहिए जो कष्ट सहने को तैयार हों। उत्तेजना में आकर उन्हें ऐसा हर्गिज़ न करना चाहिए।"

'लीडर' की उक्त रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि भाषण समाप्त हो जाने के बाद गांधीजी ने विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने का समय दिया। एक विद्यार्थी ने पूछा कि कोई विद्यार्थी तकनीकी या किसी और तरह की शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड या किसी दूसरे यूरोपीय देश में जा सकता है या नहीं। गांधीजी ने जवाब दिया कि वह तो इसे पसन्द नहीं करते किन्तु कोई जाना ही चाहे तो जा सकता है। तब विद्यार्थी ने पूछा कि क्या वह जपान या अमेरिका जा सकता है, जो स्वतन्त्र देश हैं। गांधीजी ने कहा कि उनकी दृष्टि में सब एक-से हैं; वे भारत नहीं हैं।

३४. भाषण : विद्यार्थियों की सभा, काशी में[1]

कुछ मास पूर्व मैंने आपसे संयम के बारे में कुछ कहा था, आज भी आपके सामने मैं अपने हिसाब से संयम की ही बात करने आया हूं। आजकल यह कहा जा रहा है कि मैं विद्यार्थियों को बहका रहा हूं। मैं पूरी तरह अपनी जिम्मेदारी समझते हुए कहता हूं कि किसी को बहकाना नहीं चाहता। मैं विद्यार्थियों को बहका ही नहीं सकता। मैं भी एक विद्यार्थी था और विद्यार्थी-अवस्था में हर काम विनयपूर्वक करता था। मैं चार बच्चों का पिता हूं और ऐसे सैकड़ों लड़के मेरे पास आ चुके हैं, आज भी जिनके पिता-स्वरूप होने का दावा करता हूं। ऐसी हालत में मेरे मुँह से उन्हें बहकाने की बात निकल ही नहीं सकती।

परन्तु आज तो मैं जो कुछ कर रहा हूं, उसे बुजुर्ग लोग ऐसा मानते हैं कि मैं उनके साथ अन्याय कर रहा हूं। उनका खयाल है कि जिस सत्य के आग्रह का मैं दावा करता हूं, उससे भी मैं थोड़ा डिग गया हूं, और जिस विवेक का दावा करता रहा हूं, मेरी आजकल की भाषा में वह भी नहीं बचा है। इन सब बातों को मैं सोचता हूं, और मेरी आत्मा कहती है कि ऐसा नहीं है। मैं अविवेकपूर्ण भाषा का इस्तेमाल नहीं करता। मैं जो कहता हूं शान्ति से, सोच-समझकर कहता हूं। बात यह है कि मैं पिछले दिसम्बर तक[2] जिस भ्रम में था, मेरा वह भ्रम भंग हो गया है और इस कारण आज मेरे मुंह से जो भाषा निकलती है, वह कुछ अलग है। परन्तु बात जैसी है, वैसी ही मैं कह रहा हूं। मुझे जो कुछ गन्दा जान पड़ता है उसे गन्दा न कहने से सत्य का भंग और अविवेक होता। जो चीज जैसी है उसे वैसा ही बताने में विवेक का भंग नहीं है और सत्य का पालन है, यद्यपि एकान्तिक सत्य तो मौन में ही है; फिर भी जब भाषा का प्रयोग करना पड़ता है, तब उसमें सम्पूर्ण सत्य तो तभी आयेगा, जब मैं स्थिति को जैसी पाऊं, वैसी ही व्यक्त करूं।

'लीडर' में पण्डित जी[3] का एक व्याख्यान आया है। उनसे उसके प्रकाशन की अनुमति ले ली गई थी। इसके एक वाक्य की ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। वाक्य है : "सब कुछ सोच-समझकर जो तुम्हारी अन्तरात्मा कहे,

---

१. महादेव देसाई के यात्रा-विवरण से उद्धृत।

२. दिसम्बर, १९१९ में अमृतसर कांग्रेस में गांधी जी ने माण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारों का समर्थन किया था।

३. पं० मदनमोहन मालवीय।

सो करो।" मै भी यही वात कहना चाहता हूँ। यदि आपकी अपनी अन्तरात्मा की सच्ची आवाज के वारे में कुछ भी सन्देह रह जाय, यदि आप स्वयं मन में निर्णय न कर पाये तो मेरी न मानें, किसी दूसरे की भी न मानें, केवल मेरे पूज्य भाई साहव पण्डित जी की ही माने। मालवीय जी से वड़े धर्मात्मा मैंने नही देखे। जीवित भारतीयों मे मुझे उनसे ज्यादा भारत की सेवा करनेवाला भी कोई दिखाई नही देता। पण्डित जी में और मुझमें, दोनों में कैसा सम्वन्ध है? मैं तो दक्षिण अफ़्रीका से आया, तभी से उनका पुजारी हूँ। मैं अपने दुःख अनेक वार उनके आगे रोये है और उनसे आश्वासन प्राप्त किया है। वह तो मेरे भाई के समान हैं।

मेरा ऐसा सम्वन्ध है। इसलिए मै तो यह कह सकता हूँ कि आप मेरे कहे अनुसार तभी करें जव आपके दिल से यह आवाज निकले कि जो गांधी कहता है वही सत्य वात है। परन्तु यदि आपको ऐसा लगे कि दोनो हमारे नेता हैं, दोनों में से एक को चुनना है तो आप पण्डित जी का ही कहना मानें। जरा भी अन्देशा हो तो आप मेरी वात न माने, यदि मानेगे तो उससे आपका अहित ही होगा। पण्डित जी विश्वविद्यालय के कुलपिता हैं; पण्डित जी ने उसकी स्थापना की है, वह उसकी आत्मा है और उनका आदर करना हमारा धर्म है। इस मामले में मैं मानता हूँ कि पण्डित जी भूल रहे है। इस वारे में आपको लेशमात्र भी शंका हो तो आप लोग मेरी वात न माने। मेरे पास एक सज्जन आये। उन्होंने कहा कि आप काशी जायेंगे, परन्तु इस समय पण्डित जी की तन्दुरस्ती नाजुक है। आपके वहाँ जाने से उन्हें सख्त आघात पहुँचेगा, और पण्डित जी को गँवा वैठने की नौवत आ सकती है। कही आपका काशी पहुँचना पण्डित जी की मृत्यु का कारण न वन जाय। पण्डित जी की मृत्यु का कारण मैं कैसे वन सकता हूँ? पण्डित जी की आत्मा तो मर नही सकती परन्तु उन सज्जन को मेरे काशी जाने में पण्डित जी की मृत्यु दिखाई दी। उन्होने कहा, लडके आपका कहना मानेंगे, वे विश्वविद्यालय से निकल जायेंगे; पण्डित जी को अपना जीवन-कार्य नष्ट हुआ दिखाई देगा और इससे उनका शरीरान्त हो जायगा। मुझे इस पर कुछ हँसी आई। मुझे ऐसा लगा कि ये सज्जन पण्डित जी को नही जानते। पण्डित जी कोई कायर नही है कि ऐसी वात से प्राण छोड़ दें।

यह सही है कि विश्वविद्यालय पण्डित जी का प्राण है। परन्तु मेरी समझ में उससे भी अधिक भारत उनका प्राण है। पण्डित जी आशावादी ठहरे। पण्डित जी का दृढ़ विश्वास है कि कोई भी भारत का वुरा करने मे समर्थ नही है। भारत की वागडोर किसी के हाथ में नही है, वह ईश्वर के हाथ में है और उसका

कल्याण करनेवाला ईश्वर विद्यमान है। फिर भी मैंने पण्डित जी को तार[1] दिया और पण्डित जी ने मीठे शब्दों में जवाब दिया कि मैं काशी पहुँचूं।

पण्डित जी का खयाल है कि आप लोगों में से कुछ विना विचारे कदम उठा रहे हैं और विना विचारे आप कुछ भी करेंगे तो स्थान-भ्रष्ट हो जायेंगे। परन्तु यदि आप लोगों को ऐसा लगे कि इस संस्था में पढ़ना पाप है तो आप इसे तुरन्त छोड़ दें, पण्डित जी आपको आशीर्वाद देंगे। परन्तु यदि आपकी आत्मा प्रज्वलित नहीं है तो आप मेरे वजाय पण्डित जी की ही सुनें।

हमारा काम तभी अन्तरात्मा से प्रेरित हो सकता है जव अपने आपमें वह स्वच्छ हो, उसका हेतु स्वच्छ हो और उसका परिणाम भी स्वच्छ हो, परन्तु उसपर एक और भी वन्धन शास्त्रों ने लगा रक्खा है। जो संयमी है, जो अहिंसा, सत्य एवं अपरिग्रह का पालन करनेवाला है, वही कह सकता है कि मुझे अन्तरात्मा का आदेश हुआ है। यदि आप ब्रह्मचारी नहीं हैं, आपके हृदय में दया नहीं है, मर्यादा नही है, सत्य नही है तो आप अपने किसी काम को अन्तरात्मा से प्रेरित नही कह सकते। परन्तु यदि आपका हृदय वैसा है जैसा मैंने वर्णित किया है; यदि आपने पश्चिम के ढंग का त्याग कर दिया है; आपके स्वच्छ हृदय-मन्दिर में प्रभु का निवास है तो आप अपने माँ-वाप का भी सविनय अनादर कर सकते है। उस स्थिति में आप स्वतन्त्र हैं और इसलिए आप कदम उठा सकते हैं। मुझे मालूम है कि पश्चिम में स्वेच्छाचार की हवा वह रही है। परन्तु भारतीय विद्यार्थियों को मैं स्वच्छन्द नहीं वनाना चाहता। यदि इस पवित्र काशी क्षेत्र में, मैं आपको स्वेच्छाचारी वनाना चाहूँ तो मैं अपने कार्य के योग्य नहीं।

मैं लड़कों से ऐसा क्यों कह रहा हूँ कि पाठशाला छोड़ना धर्म है? क्या मैं उनका विद्यार्थी-जीवन नष्ट करना चाहता हूँ? नहीं। मैं स्वयं अभी तक विद्यार्थी जीवन विता रहा हूँ, विद्यार्थी ही हूँ। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि जिसे स्वतन्त्रता की शिक्षा नही मिली—निश्चय ही वह मिल कृत "लिवर्टी" के अध्ययन से नहीं मिलती—वह स्वतन्त्र नहीं कहलाता। आपकी तालीम अरविस्तान के लड़कों से भी हीन है। उस ओर से हमारे देश में आये हुए एक व्यक्ति ने मुझे वताया था कि वहाँ के विद्यार्थियों को जो शिक्षा मिलती है, हमारे विद्यार्थियों की शिक्षा उसकी चौथाई भी नहीं। अरविस्तान का एक भी विद्यार्थी इस हुकूमत को स्वीकार नहीं कर सकता। वहाँ उनके लिए डाक, तार और ट्राम आदि जारी किये गये, हवाई सेवा जारी करने का लालच दिया गया और यह भी कहा गया कि वे

१. देखिए "तार: मदनमोहन मालवीय को" २०।११।१९२० के आस-पास।

उसके देश की उस जलती हुई रेत को भी ठण्डा कर देंगे जिस पर घड़ी-भर में खिचड़ी पक जाती है। तालीम देने के लिए बड़ी शिक्षा-संस्थाएँ खोलने का प्रलोभन भी उन्हें दिया गया। परन्तु वहाँ के लड़के कहते है कि हमें यह सब नही चाहिए। वहाँ के छात्रों को अच्छी धार्मिक शिक्षा मिलती है। आपको भी वैसी धार्मिक शिक्षा की जरूरत है। आप जिन परिस्थितियो में पढ़ते है, उनमें ऐसी ही शिक्षा मिलती है कि मन में मनुष्य का डर रखना पड़े। परन्तु उसे सच्चा एम० ए० कहूँगा जिसने मनुष्य का डर छोड़कर ईश्वर का डर रखना सीखा हो। आपमें इतना बल आ जाय कि आजीविका के लिए आपको किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़े, तब आपकी शिक्षा ठीक कहलायेगी। जब मन में यह विचार घर कर ले कि जबतक मेरे हाथ-पैर साबित है, तबतक आजीविका प्राप्त करने के लिए भले कही भी सिर नही झुकाना है, आपकी शिक्षा तभी ठीक कहलायेगी।

अंग्रेज इतिहासकार कहते है कि भारत मे तीन करोड़ लोगो को दिन मे दो बार पेट-भर खाने को नही मिलता। बिहार में अधिकांश लोग सत्तू नामक निःसत्व खुराक खाकर रहते हैं। जब भुनी हुई मक्की का यह आटा, पानी और लाल मिर्चों के साथ, गले उतारते हुए मैंने लोगों को देखा तो मेरी आँखो से आग बरसने लगी। आपको वैसा करना पड़े तो आप उस पर कितने दिन गुजार सकते है? रामचन्द्र जी की भूमि में—जनक राजा की पुण्यभूमि मे—लोगो को आज घी नहीं मिलता, दूध तक नही मिलता। ऐसी स्थिति में आप निश्चिन्त होकर कैसे बैठ सकते हैं? हमें यदि ऐसी शिक्षा नही मिलती कि हमारा प्रत्येक मनुष्य मैक्स्विनी बन जाय, तो उस शिक्षा का कोई अर्थ नही है। यदि हमें आजादी से खाने को न मिले तो हममें भूखों मरकर आजाद होने की ताकत आनी चाहिए, मैं यह चाहता हूँ। अरब और मेसोपोटामिया के लड़कों को ऐसी तालीम प्राप्त है। वे अंग्रेजों से दो-दो हाथ करने का हौसला रखते है। वहाँ तो शस्त्र-बल मौजूद है, हमारे यहाँ वह नही है। परन्तु भारत की सत्यवृत्ति में जबरदस्त आत्मिक शक्ति विद्यमान है, इसीलिए हम अत्याचार को हटा सकते है। असन्तों का त्याग करने का तुलसीदास जी का उपदेश है। मैं कहता हूँ कि यह हुकूमत राक्षसी है, इसलिए उसका त्याग धर्म है। त्याग करने का अर्थ हिजरत करना ही होता है। परन्तु मैं वैसा करने को नही कहता। देश छोडकर हम कहाँ जायें? हिन्द महासागर अथवा बंगाल की खाड़ी में समा जाने के सिवा हम और कहाँ जा सकते है? परन्तु तुलसीदास जी ने कहा है कि असन्तों का सर्वथा त्याग न कर सको, तो दूर अवश्य रहो। रावण के पकवानों और दासियों का त्याग करके अशोक-वाटिका मे केवल फल-फूल पर निर्वाह करनेवाली सीता जी जैसी शान्तिमय

असहयोग करने की ताकत आप में न आये, तो भारत नष्ट हो जायगा। वह गुलामी में सड़ता ही रहेगा, इस बारे में मुझे जरा भी सन्देह नहीं।

यह हुकूमत राक्षसी क्यों है, इसके कारणों में मैं जाना नहीं चाहता। परन्तु पंजाब में अत्याचार करनेवाली, छः-छः सात-सात वर्ष के बालकों को धूप में चलानेवाली, स्त्रियों की लाज लूटनेवाली—और जिन कर्मचारियों ने ये अत्याचार उनके लिए किये उनके बारे में यह कहनेवाली कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया, उन्होंने तो हुकूमत को बचाया—ऐसी हुकूमत के अधीन पाठशालाओं में पढ़ना मेरे खयाल से सबसे बड़ा अधर्म है। मेरे बुजुर्ग पण्डित जी इसमें धर्म देख पाते हैं। शास्त्र मुझे ऐसा नहीं सिखाते। मैं रावण के हाथों, "गीता", "कुरान", या "बाइबिल" नहीं पढ़ सकता। जिसने गीता का धार्मिक दृष्टि से अध्ययन किया हो मैं तो उससे "गीता" सीखूँगा। शराब पीनेवाले से कैसे सीख सकता हूँ? मेरी आत्मा कितनी जल रही है, उसका मैं आपको अन्दाज नहीं करा सकता। इस सल्तनत की मैंने तीस वर्ष सेवा की। मुझे उसका पश्चात्ताप नहीं है। सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि अब मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने पंजाब के अत्याचार देखे हैं। साथ ही मुझे यह भी दीख रहा है कि यह हुकूमत कितने ही वर्षों से भारत का ऐसा सर्वनाश कर रही है कि उसके मुकाबले मे पंजाब के अत्याचार कुछ भी नहीं। जब मैं आपकी उम्र का था, तब मैंने दादाभाई नौरोजी[1] का 'पावर्टी ऐण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया' पढ़ा था। उसमे उत्तरोत्तर बढ़नेवाला देश का जो शोषण साबित किया गया था, क्या वह आज भी कुछ कम हो सका है? सैनिक खर्च बढ़ता ही गया है या नहीं? पेंशनों में देश के बाहर बह कर जानेवाली राशि भी बढ़ी है या नहीं? विदेशी माल का आयात अधिकाधिक बढ़ रहा है या नहीं? यदि इन प्रश्नों का उत्तर "हाँ" हो तो मैं कहता हूँ कि लार्ड सिन्हा[2] जैसे व्यक्ति गवर्नर भले ही बन जायें—यहाँ तक कि पण्डित जी जैसे व्यक्तियों को वाइसराय ही क्यों न बना दिया जाय, मैं उन्हें सलाम करने हर्गिज नहीं जाऊँगा। असली स्थिति यह है कि राजप्रथा के मातहत हमारी गुलामी

---

१. दादाभाई नौरोजी (१८२५-१९१७), प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा देशभक्त, 'भारत के पितामह' नाम से प्रसिद्ध। १८८६, १८९३ और १९०६ के कांग्रेस अधिवेशनों के अध्यक्ष।

२. सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा (१८६४-१९२८), वाइसराय की परिषद के कानून-सदस्य। प्रथम भारतीय गवर्नर। बम्बई में १९१५ में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष।

वढती ही जा रही है और गुलाम जव गुलामी की जंजीर की चमक देखकर मुग्ध हो जाय, तव उसकी गुलामी सम्पूर्ण हुई कहलाती है। मै कहता हूँ कि पैंतीस वर्ष पहले जो गुलामी थी, उससे हममें अव अधिक गुलामी है। हम अधिक हताश होते जा रहे हैं। हमारी कायरता वढ़ती जा रही है। इसलिए मैं तात्विक दृष्टि से कहूँ तो मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि हममे गुलामी की मात्रा वढती जा रही है।

वावू भगवानदास[1] के विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान[2] का एक भाग मुझे सदा याद आता रहता है। उन्होंने कहा कि यदि हमारे राज्यकर्ता वणिक वनकर राज्य करें, और साधारण चीजों का ही नही, भाँग-गाँजे-जैसे नशे के साधनों का व्यापार करें, तव वे अधम वन जाते है और हमें उनका त्याग कर देना चाहिए। इस हुकूमत ने हिन्दुस्तान को नापाक कर दिया है। आवकारी विभाग वढ़ता ही जा रहा है। गोखले जी जैसे लोगों ने पाठशालाएँ वढाने की आवाज उठाई थी, परन्तु स्थिति यह है कि सन् १८५७ में पंजाव मे ३०,००० पाठशालाएँ थी, और आज वहाँ ५,००० हैं। सरकार ने इतनी पाठशालाएँ खत्म कर दी। सरकार में योजना-शक्ति है। हममे भी है। परन्तु हमें उसने भ्रम में रक्खा है। वह हमे स्वराज्य का कौन-सा पाठ पढ़ायेगी। धारासभा में जाकर हम स्वराज्य का क्या सवक सीखेंगे? स्वराज्य-शक्ति सीखना चाहते हो तो अरवों के पास जाओ, वोअरों के पास जाओ। मैं तो कहता हूँ कि हममे आज भी स्वराज्य-शक्ति है। परन्तु हम सिंह होते हुए भी अपने को वकरी मान वैठे है। जव यह भावना उत्पन्न हो जाय कि जिनमें आत्मा है, उन्हे कौन डरा सकता है, तव सच्ची शिक्षा मिली समझिए। ऐसी तालीम पा लेने के वाद ही आप दूसरी साधारण शिक्षा प्राप्त कर सकते है। आज तो आप ऐसी शिक्षा पा रहे है जिससे वेड़ियाँ और अधिक मजवूत हो जायँ। डिग्रियों पर मुग्ध होने के कारण हम आज कह रहे है कि हमें चार्टर चाहिए। हम इन पेड़ो के नीचे क्यों नही पढ़ते? हमें वड़ी-वड़ी शानदार इमारते क्यों चाहिए? देश में जहाँ कितने ही मनुष्यों को पूरा खाने को नही मिलता, जहाँ की स्त्रियाँ वदलने को दूसरे कपड़े न होने के कारण कई दिनों तक स्नान नही कर पाती, वहाँ आप लोगों को पढ़ने-लिखने के लिए वड़े-वड़े महल चाहिए? ऐसा आग्रह हो तो

---

१. (१८६९-१९५९) सुप्रसिद्ध दार्शनिक और लेखक; काशी की प्रसिद्ध राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था काशी विद्यापीठ के प्रथम कुलपति; उत्तर प्रदेश के एक प्रमुख नेता, भारत-रत्न की उपाधि से सम्मानित।

२. मुरादावाद में ९, १० और ११ अक्तूवर को हुए राजनीतिक सम्मेलन में अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण।

आप असहयोग को भूल जायँ। देश के लिए दर्द हो, मेरे अन्दर जो आग जल रही है, वही आपके भीतर जल रही हो तो मकान-वकान की वात भूल जाइए और जैसा मैं कहता हूँ वैसा असहयोग कीजिए। यदि आप ऐसा करेंगे तो जो प्रतिज्ञा मैंने अन्यन्त्र[1] की है, इस पवित्र स्थान में उसे फिर दुहराता हूँ कि हमें एक वर्ष में स्वराज्य मिल जायगा।

मैं वार-वार कहता हूँ कि स्वराज्य तभी मिलेगा जव आप अपना धर्म पहचानेंगे। जयनाद करने से वह नहीं मिल सकता। मैं ये वातें क्यों कह रहा हूँ? मुझे धन-दौलत नहीं चाहिए, मान-सम्मान नहीं चाहिए, भारत का राज्य नहीं चाहिए, मुझे तो भारत की आजादी चाहिए। लोग मुझसे कहते हैं कि आप दूसरों से मिल जाइए। परन्तु मैं मिल नहीं सकता, अपने हृदय के मत के विरुद्ध में किसी से मिलकर एक नहीं हो सकता; अन्तरात्मा की आवाज को धोखा देकर एक नहीं हो सकता; मैं सिद्धान्त की वात को छोड़कर नही मिलना चाहता। और सिद्धान्त की वात यह है कि स्वराज्य लेना हो, तो प्रत्येक आदमी को आजाद होना चाहिए। जितना स्पष्ट आप सामने के पेड़ों को देख रहे हैं, उतना ही स्पष्ट जव आपकी अन्तरात्मा प्रत्यक्ष यह अनुभव करे कि यह सल्तनत राक्षसी है, इसकी दी हुई शिक्षा पाप है, लेफ्टिनेन्ट गवर्नर कितना ही कहे कि हमारा विश्वविद्यालय पर कोई नियन्त्रण नहीं है, फिर भी वे प्रत्यक्ष रूप से अपना असर उस पर डाल सकते हैं। यदि आपको यह प्रतीत हो जाय कि इस हुकूमत मे शिक्षा प्राप्त करना देश के प्रति वेवफाई है तो आप एक क्षण भी इस विद्यालय में न रहें, इसके पास भी न फटकें।

मैं कहता हूँ कि आप इस धधकती आग से दूर हो जायँ; अन्य सारी जोखिम उठा लीजिए। दूसरे प्रश्न मुझसे न पूछें। यह न पूछें कि विद्यार्थी फिर क्या करें। यह न पूछें कि प्रोफेसर नही हैं, मकान नही है, पढ़ेंगे कहाँ। ताकत हो तो अपने-अपने घर चले जाओ। घर ही आपका विश्वविद्यालय है। विनयी वनो, सत्यशील वनो तो तुम्हारा घर ही विश्वविद्यालय है। परन्तु इन प्रासादों से (विद्यालय के मकानों की ओर इशारा करके) उसकी तुलना करना चाहोगे तो आपका पतन हो जायगा। इन प्रासादों के प्रति यदि आपकी आसक्ति है तो आप भ्रष्ट हो चुके हैं। इन महलो और घरों में क्या साम्य है? विलायत में (घरों और विद्यालयों में) तो कुछ-कुछ साम्य होता है, परन्तु यहाँ वह इतना भी नहीं) यहाँ तो ये (भवन) निरे लूट के पैसों से वने हैं। जो स्वतन्त्र नही है वह तो

१. सितम्बर १९२० में कलकत्ता के विशेष कांग्रेस अधिवेशन में।

ईश्वर का नाम भी सुखपूर्वक नही ले सकता। आप आज ही अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। यदि इस विद्यालय से निकल कर कोई रामायण का नाम जपे, राम-नाम भजे तो वह भी बहुत बडी शिक्षा है, ऐसा विश्वास जिसे हो जाय, वह उपर्युक्त तीनों प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुका समझिए। भारत के विद्यार्थियों में मैं ऐसी रूह फूंक सकूं, तो मैं उनमें से स्वराज्य की सेना खडी कर सकता हूँ। मैं कहता हूँ कि इस सल्तनत की हवा जबतक इन पाठशालाओं पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से असर कर रही है, तबतक इन पाठशालाओं को छोडे बिना कोई चारा ही नही है। परन्तु यदि आपमें आत्म-विश्वास न हो तो आप जहाँ हैं, वही बने रहें।

यहाँ दो सौ विद्यार्थियों ने विद्यालय छोड़ने की प्रतिज्ञा ली है। इससे मुझे दुःख हुआ। दुःख प्रतिज्ञा लेने से नही हुआ। दुःख इस बात से हुआ कि कही बाद मे इन विद्यार्थियो में अविश्वास पैदा न हो जाय। आप लोग यह मानते हैं कि गांधी कोई जादूगर है, वह पलक मारते ही विद्यालय भी बना देगा। यह आपकी भूल है। तब तो मैं आपसे कहता हूँ कि अनारम्भ प्रथम बुद्धि-लक्षण है। आप लोग इतना सोचे-विचारे बिना विद्यालय छोड़ेंगे तो मैं पाप का भागी बनूंगा। मैं तो कहता हूँ कि आप विद्यालय छोड कर घर बैठें, इस आग से बचें। आपमे आत्म-विश्वास होगा, तो आप आज ही विद्यालय भी बना सकेंगे। परन्तु जैसा पण्डित जवाहरलाल ने और अलीगढ मे मुहम्मद अली ने कहा है, बिना किसी शर्त के विद्या-लय छोड़ें। सात हजार बार गरज हो, तो छोड़ें, नही तो वापस चले जायँ। और छोडकर वापस जाना हो तो, छोड़ें ही नही। यदि हम अपने धर्म का पालन न करें, तो हमारा देश अपना नही बनता। आपकी प्राचीन संस्कृति और पवित्रता का नाम लेकर मै आपसे जो कह रहा हूँ, उसका खयाल करें। मैं बार-बार कहता हूँ जिसे जरा भी अन्देशा हो तो मालवीयजी की ही बात मानें। उन्होने यह विश्व-विद्यालय बनाने मे अपनी उम्र खपा दी है। पर जैसे सामने की वस्तु साफ दीखती है, वैसे ही अन्तरात्मा में आपको यह स्पष्ट प्रतीत हो कि यहाँ रहना पाप है तो आप विद्यालय छोड दे। 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्" हमारा शास्त्र वचन है। आप सोलह वर्ष के ऊपर के हो गये है, इसलिए जब मैने आज आपसे कहा है वह कहने का मुझे अधिकार है। यही तालीम मैने अपने पुत्रों को दी है और मैंने उनका कुछ नही बिगाड़ा। अन्त में आपसे कहता हूँ कि काशी विश्वनाथ आपको निष्कलुष बनाये, धैर्य दे, तपश्चर्या दे और वह सभी कुछ दें जिसकी आपको आव-श्यकता है।

—हिन्दी। काशी, २६।११।१९२०। गुजराती से। न० जी०, ५।१२।१९२०]।

- एकान्तिक सत्य तो मौन ही है।
- मालवीयजी से बड़े धर्मात्मा मैंने नहीं देखे।
- यह सही है कि विश्वविद्यालय पण्डित जी का प्राण है। किन्तु मेरी समझ में उससे भी अधिक भारत उनका प्राण है।
- उसे सच्चा एम० ए० कहूँगा जिसने मनुष्य का डर छोड़ कर ईश्वर का डर रखना सीखा हो।
- भारत की सत्यवृत्ति में जबरदस्त आत्मिक शक्ति विद्यमान है।
- मैं रावण के हाथों गीता, कुरान या बाइबिल नहीं पढ़ सकता।
- हम में आज भी स्वराज्य-शक्ति है किन्तु हम सिंह होते हुए भी अपने को बकरी मान बैठे हैं।
- घर ही आपका विश्वविद्यालय है। विनयी बनो, सत्यशील बनो तो तुम्हारा घर ही विश्वविद्यालय है।

३५. भाषण : काशी की सार्वजनिक सभा में[1]

उपाधि, अदालत, स्कूल और कौंसिलों का त्याग

मैं अशक्त होने के कारण खड़ा होकर नहीं बोल सकता, इसलिए आप लोग क्षमा करें। कुछ दिन हुए, मौलाना अबुल कलाम आजाद[2] और हम यहां आये थे। उस समय हमने आपसे कुछ कहा था। उसी काम के लिए हम आज फिर आये हैं। हम इस वक्त खासतौर से विद्यार्थियों से कुछ कहना चाहते थे पर आप लोगों की मुहब्बत इतनी अधिक थी कि यहां आना ही पड़ा। आप लोगों से हमें यह कहना है कि हमारी सल्तनत राक्षसी सल्तनत है। हमारा फर्ज है कि या तो उसे दुरुस्त करें या मिटा दें। हमारी हालत बड़ी खराब है। आजतक हम लोगों ने सिर्फ बातों से काम लिया है। अब हरएक स्त्री-पुरुष का फर्ज है कि वह काम

---

१. यह सभा बाबू भगवानदास की अध्यक्षता में टाउन हाल के मैदान में हुई थी। उपस्थित लोगों में पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल-कलाम आजाद और देशबन्धु चित्तरंजन दास भी थे।

२. १८८९-१९५८, कांग्रेसी नेता तथा कुरान के प्रसिद्ध व्याख्याकार, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दो बार निर्वाचित अध्यक्ष, भारत-सरकार के शिक्षा-मन्त्री।

करे। आप लोग क्या कर सकते है? अगर आप लोग इस सल्तनत को राक्षसी सल्तनत नही समझते तो हम उसका कोई सवूत नही देंगे। हम इसे वहुत वुरी मानते है और इसे मिटा डालना या सुधारना जरूरी समझते है। अगर इसने पश्चात्ताप नही किया, अगर पंजाव के प्रति न्याय और खिलाफत के प्रति इन्साफ नही किया तो इसका साथ नही दिया जा सकता। इसको हम लोग दुरुस्त कैसे कर सकते है? हमारी कांग्रेस, मुस्लिम लीग, सिख लीग सवने इसको दुरुस्त करने का तरीका वतला दिया है। यह तरीका अहिंसात्मक असहयोग का या वाअमन तर्क-मवालात का है, अर्थात् न सरकार से मदद लें, न सरकार को मदद दें। इसके साथ असहयोग किस तरह करें? पहले हम खितावो को छोड़ दें। हमारे लिए खिताव हराम है। फिर हमें अदालतें छोड़नी चाहिए। इन्साफ करना हमारे ही हाथ मे रहना चाहिए। ये अदालते सरकार की जड़ मजवूत करती है। वकीलों को वकालत छोड़ देनी चाहिए। अगर उनसे हो सके तो वकालत छोड़ने के वाद देश की सेवा करें। अगर सेवा न हो सके तो वकालत छोड़ना ही काफी सेवा है। उनको दूसरा धन्धा करना चाहिए। मां-वाप को चाहिए कि मदरसों और विश्व-विद्यालयों से अपने सव लडकों को हटा लें। जो लड़के १६ वर्ष के हो गये हों उनको वे मित्र की तरह सलाह देकर हटा लें। उनसे कहना चाहिए कि तुम वहां न पढ़ो, तुम्हें ऐसी जगह तालीम लेनी चाहिए जहा तुम आजाद रह सको। जहां सरकार का झण्डा हो, वहां तालीम नही लनी चाहिए।

हिन्दुस्तान की आजादी के सिपाही वनें

कांग्रेस ने यह भी कहा है कि कौंसिलों में नही जाना चाहिए। ३० तारीख को कौंसिलो का चुनाव है। यह इम्तहान का दिन है। पहले हमें उम्मीदवारों से कहना चाहिए कि वैठ जाइए। अगर वे न मानें तो वोटर का फर्ज है कि वह उस रोज घर में वैठा रहे और वोट न दे। २६ की रात तक उम्मीदवारों को समझाना चाहिए। पैर छू-छू कर उनसे कहना चाहिए कि आप कौंसिल के लिए खड़े न हों। अगर वे आपकी वातें न मानें और कौंसिल में जाना चाहे तो आपका फर्ज है कि उन्हे कोई मदद न दें और उनसे काम न लें। फिर, सिपाहीगिरी करना हराम है। आप लोग भर्ती के सिपाही न हों, आप लोगो को हिन्दुस्तान की आजादी का सिपाही होना चाहिए।

स्वदेशी और चर्खा

दूसरा मसला स्वदेशी का है। जो कपड़ा यहां तैयार हो उसी को इस्तेमाल

करना चाहिए। हमारी माताओं को अपने घरों में चर्खा दाखिल करना चाहिए। जुलाहों से बुनवा कर कपड़े पहनना चाहिए। मैं हिन्दुस्तान के सभी भाइयों और बहनों से कहता हूं कि स्वदेशी तुम्हारा फर्ज है। खद्दर पहनो, यही करना तर्क-मवालात है। तलवार मत खींचो। उसको मियान में रक्खो। तलवार से हमारा ही गला कटेगा। हिन्दू और मुसलमानों में जुबानी नहीं, दिली एकता होनी चाहिए। अगर ऐसा हो तो हम एक साल में स्वराज्य की स्थापना कर सकते हैं। खिलाफत के मसले को और पंजाब के मसले को तय करना आपके हाथ में है। आप इतने लोग यहां जमा हैं, मैं अदब से पूछता हूं कि आपने क्या किया। क्या आपने लड़कों को स्कूल-कालेजों से हटा लिया? अगर आपका लड़का बड़ा है तो आपने उसे उसका धर्म बता दिया? इस काम में उसे आपने आशीर्वाद दे दिया? अगर आपने ऐसा नहीं किया है तो आप यहां क्यों जमा हुए है? लड़कों को चाहिए कि मदरसों से हट जायँ, बड़ों को समझायें। क्या आपने निश्चय कर लिया है कि वोट न देंगे? क्या आपने स्वदेशी का व्रत लिया है? सबके साथ इन बातों का सम्बन्ध है। सरकार की फौज में भरती बन्द होनी चाहिए। हमको अपने मुकदमे लेकर इन्साफ के लिए अपने बुजुर्गों के पास जाना चाहिए। इससे सरकार की 'प्रेस्टीज' (इज्जत-रुतबा) जाती रहेगी। उसी समय सरकार को पता लग जायगा कि अब उसके एक लाख गोरे ३० करोड़ पर हुकूमत नही कर सकते। अभी तक हमें आपस में लड़ा-लड़ा कर, हमें फुसला कर, मदद देकर, मदद लेकर सरकार राज्य कर रही है। "यथा राजा तथा प्रजा" की पुरानी कहावत है। इससे ज्यादा सत्य "यथा प्रजा तथा राजा" है। अगर हम साफ दिल से काम करेंगे, और पवित्र भाव से ईश्वर के चरणों में अपने को अर्पित करेंगे, अगर इस प्रकार का सच्चा बलिदान देंगे तो हमें स्वराज्य फौरन मिल जायगा। यही स्वराज्य रामराज्य है।

—हिन्दी। काशी, २६।११।१९२०। आज, २७।११।१९२०]

३६. भाषण: विद्यार्थियों की सभा, काशी में[1]

मैं यहां जो दृश्य देख रहा हूं उससे मुझे अलीगढ़ का स्मरण हो आता है।

---

१. इसके एक दिन पहले गांधी जी ने विश्वविद्यालय के अहाते के बाहर विद्यार्थियों की एक सभा में भाषण दिया था (देखिए "भाषण: विद्यार्थियों को

विद्यार्थियों से जो-कुछ मुझे कहना था सो मैंने अलीगढ़ में कह दिया। मैं अपनी जिम्मेदारी जानता था। मैं जानता था कि अलीगढ़ का विद्यालय यहां से प्राचीन है। मुझे यह भी मालूम था कि मुसलमान विद्यार्थियों को अलीगढ़ से कितनी मुहव्वत है। मैं यह भी जानता था कि एक महान मुसलमान ने उसे स्थापित किया है।[1] तव भी निडर होकर जो-कुछ मुझे कहना था, मैंने कहा। मेरा दिल रो रहा था कि मैं ऐसा क्यों कर रहा हूं। जव मैं आप लोगों को देखता हूं, वड़ी-वड़ी इमारते देखता हूं तो मेरा हृदय रोता है। लेकिन आज ज्यादा रो रहा हूं, क्योंकि विश्वविद्यालय के प्राण मेरे पूजनीय वड़े भाई मालवीय जी हैं। मैं उनको छोड़कर कोई काम नही करता। जवसे मैं हिन्दुस्तान वापस आया तवसे यही खयाल था कि उन्ही के साथ अपना जीवन व्यतीत करूंगा। ऐसा मेरा सम्वन्ध अलीगढ़ से नही था। अलीगढ़ का प्राण कौन है सो मैं नही जानता। और इस विश्वविद्यालय के आँगन में वैठा हुआ मैं इस भय से काँप रहा हूं कि कही मेरे मुंह से कोई ऐसी वात न निकल जाये जिससे मेरे आदरणीय भाई को कोई दुःख हो। किन्तु मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि जिस वात को मैं धर्म समझता हूं उसके लिए प्यारी-से-प्यारी वस्तु को भी त्याग दूं। मैं आज ऐसा ही कर रहा हूं। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि मेरे भाई और मुझमें वड़ा मतभेद है, पर इसके कारण मेरा पूज्यभाव थोड़ा भी कम नही है। आपसे भी मेरी प्रार्थना है कि यदि आप मेरी ही राय के हों तो भी उनके प्रति अपने पूज्यभाव में कदापि कमी न करे।

(किसी भी परिस्थिति में) विद्यादान लेना यदि आप पाप न समझें, अधर्म न मानें तो आप कभी विद्यालयों को न छोड़ें। मैं तो अधर्मी के हाथ से स्वर्ण-दान भी नही ले सकता। इसी तरह जहां उसकी ध्वजा फहराती है, वहां विद्या लेना दोष समझता हूं। वहां पर "गीता" पढ़ना, कला-कौशल तक सीखना भी मैं पाप समझता हूं। सच तो यह है कि मैं इस सल्तनत में ही नही रहना चाहता। अगर एकदम त्याग सकता तो त्याग देता। लेकिन तव मैं यहां कैसे आता और यह पैगाम भी आपको कैसे दे पाता। इसी कारण इस असह्य स्थिति में भी जी रहा हूं। मैं इसको रावण-राज्य समझता हूं। तुलसीदास जी ने ऐसे राज्य में रहना पाप वतलाया है। मैं निस्संकोच यह कह सकता हूं कि मैं २४ घण्टे एक ही

सभा, वनारस में २६।११।१९२०), लेकिन मालवीय जी के आग्रह पर उन्होंने युनिवर्सिटी हाल में विद्यार्थियों की सभा में फिर भाषण दिया। अध्यक्षता स्वयं मालवीय जी ने की थी।

१. सर सैयद अहमद इसके संस्थापक थे।

जप करता हूं कि इसे कैसे हटा सकूं या दुरुस्त कर सकूं। इसी से मैं यहां हूं। विद्यार्थियों से मैं कहता हूं कि इस सल्तनत से सहकार छोड़ना ही हमारा परम धर्म है। जितना आपसे सम्भव है, उतना कीजिए। आपके लिए सबसे बड़ी चीज यही है कि यहां जो विद्यादान आपको मिलता है, उसका त्याग कर दें। मैं सर्व-सामान्य सहकार के बारे में नही कहता। विद्यार्थी जो विशेष सहकार देते हैं, वही देना बन्द करने को कहता हूं। यदि आपका इस सल्तनत के बारे में वही खयाल हो जो मेरा है तो अपना धर्म समझकर इसे छोड़ दीजिए। इसमें कोई शर्त की बात नहीं है कि फिर विद्या किस प्रकार मिल सकेगी। मैं तो आपको धर्म बताता हूं। सबसे यही कहता हूं कि दूसरे स्थान पर चाहे विद्या मिलने का प्रबन्ध हो चाहे न हो, इसे आप छोड़ दें। आप अगर चाहें तो इसी किस्म की विद्या ले सकते हैं, लेकिन सरकार की छाया त्याग दें। मैं यह कहना चाहता हूं कि यह आजीविका की बात नही है, मनुष्यत्व की बात है। मनुष्यत्व के बाद ही आजीविका की बात आ सकती है। स्वतन्त्रता धर्म है। धर्म के पीछे देह है; देह के लिए धर्म नहीं छोड़ा जा सकता, लेकिन धर्म के लिए देह छोड़ी जा सकती है। हमें आर्थिक, मानसिक, आत्मिक किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नही है। आत्मिक नहीं, क्योंकि मुसलमानों को धर्म के हुक्म पर चलने से रोका जा रहा है, फुसलाया जा रहा है कि इसमें (धर्म के हुक्म पर न चलने का) दोष नही है। धार्मिक खयालात रोके जाते हैं, अर्थात् आत्मिक स्वतन्त्रता भी नही है। यहां पर करोड़ों के पास न वस्त्र है, न अन्न। ऐसी अवस्था में आर्थिक स्वतन्त्रता असम्भव है। ऐसी हालत में जो-कुछ लाभ भी है उसे छोड़ देना चाहिए। कई बातों का हमें लालच दिया जाता है, फायदा दिखलाया जाता है। इस विश्वविद्यालय में कई बातों की सुविधा है। इंजीनियरी की तालीम मिलती है, और बातों की भी आसानी है। किन्तु हिन्दुस्तान के लाभ के लिए इसका बलिदान करना चाहिए। यदि थोड़ा-थोड़ा लाभ हम स्वीकार करते रहे तो यह राज्य चलता रहेगा।

हिन्दू धर्म असहयोग सिखलाता है। कुछ लोगों का खयाल है कि तलवार उठानी चाहिए, लेकिन सब लोगों ने देख लिया है कि फिलहाल हममें वैसी ताकत नही है। असहयोग ही एक मात्र उपाय है जिससे या तो स्वतन्त्रता मिल जायगी या सल्तनत की खराबिया हट जायँगी। मुझे विश्वास है कि जो-कुछ मालवीय जी कर रहे है उसे अपना धर्म समझकर कर रहे है। मतभेद के कारण मेरा उनका परस्पर का स्नेह कम नही हो सकता। हमारी उनकी मैत्री कम नहीं हो सकती और मुझे आशा है कि उनके प्रति आप लोगो का पूज्य भाव भी कभी कम न होगा।

आप ऐसा न समझिएगा कि आपमें वुद्धि ज्यादा है और उनमें कम, या आपमें देश-भक्ति ज्यादा है, उनमें कम। सव आदमियों का एक ही विचार होना असम्भव है। यदि हिन्दुस्तान के प्रत्येक स्त्री-पुरुष का एक ही भाव हो जाय तो स्वतन्त्रता एक दिन में मिल सकती है। इतिहास से मालूम होता है कि स्वतन्त्रता वड़े कष्ट से मिलती है। यह समझना अनुचित होगा कि विना इस कष्ट को उठाये हमें स्वतन्त्रता मिल जायगी। मेरी प्रार्थना है कि आप अपनी सभ्यता और नम्रता न छोड़िएगा। यदि आपको मेरी वातें पसन्द हों तो ठीक है, किन्तु जो विद्यार्थी आपके साथ न हों उनसे घृणा या द्वेप न कीजिएगा, उन्हें न सताइएगा। अपना काम इस तरह से कीजिए कि जो शक लोगों के मन में हो, वह निकल जाय। विश्वविद्यालय छोडने के वाद आप धर्माचरण ज्यादा करें तो मालवीय जी का आशीर्वाद लेकर विश्वविद्यालय छोड़ें। जो इसे छोडने के वाद मुल्क की सेवा न करेंगे, जो स्वार्थी, व्यसनी हो जायँगे, उनके कारण मुझे वड़ा पाप होगा। उनको भी पाप होगा और मुझे भी पाप लगेगा। मेरी प्रार्थना है कि जो-कुछ आपको करना हो स्वयं सोचकर कीजिए। आपको यदि किसी दूसरे की सलाह ही माननी है, यदि आपका दिल कुछ साफ नहीं वतलाता तो आप पण्डित जी की ही सलाह मानिए; उनकी सलाह को प्रथम स्थान दीजिए। अगर आपका दिल स्वीकार करे तो आप अपना धर्म समझ कर असहयोग कर सकते हैं। न आप मेरी सलाह पर भरोसा कीजिए, न उनकी सलाह पर। मेरे भाई साहव आपको अवश्य आशीर्वाद देंगे, एक क्षण के लिए भी आपको न रोकेंगे। अव मैं यह कहना चाहता हूं कि असहयोग में विद्यार्थियों-द्वारा यह त्याग मैंने क्यों रखखा है। मेरा दृढ विश्वास है कि हिन्दुस्तान में जो सल्तनत चल रही है, वह जो अत्याचार कर रही है उसके कायम रहने का वडा भारी सवव यह है कि हमको उसकी तालीम के असर ने मुग्ध कर लिया है। इसके यहां दाखिल होने के पहले हम स्वाश्रयी थे; जैसे पराधीन आज हैं, वैसे नही थे। इस शिक्षा-प्रणाली से हम और भी पराधीन हो गये। लेकिन अभी मैं इस तालीम के ढंग की वात नही करता। मेरा इस वक्त यह कहना सही है कि ढंग मे त्रुटियां हैं। यह तो मेरे भाई साहव भी मानते है कि ऐसी त्रुटियां हैं, जिन्हे निकाला जाना चाहिए। मैं (त्रुटियों के कारण) इन शिक्षण-संस्थाओं को छोड़ने को नही कहता। मैं अभी यह भी नहीं कहता कि क्या ढंग होना चाहिए। इसका सवव यह है कि जिस सल्तनत को हम राक्षसी समझते हैं, जिसने पंजाव में इतना अत्याचार किया, उसकी छाया मे शिक्षा लेना मैं अधर्म समझता हूं। अगर ऐसा ही आपको भी निश्चय हो तो आप इसको छोड़ दीजिए। लेकिन अगर आप इस सल्तनत को राक्षसी न समझें जिसने पंजाव पर इतना अत्याचार

किया, मुसलमानों को धोखा दिया, हिन्दुस्तान से दगा किया उससे[1]...विद्यार्थियों को भी कुर्बानी करनी चाहिए। और जो-कुछ मुझे कहना था कल कह चुका हूं। मैं इस पवित्र स्थान में अपने पूजनीय भाई के सामने सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि जो कोई इस शिक्षण को छोड़ना चाहता है, वह एक बड़ा भारी काम कर रहा है। इसी में स्वतन्त्रता है। आप अपनी सभ्यता मत छोड़िएगा, किसी से घृणा मत कीजिएगा। बाहर जाकर कष्ट बर्दाश्त कीजिए। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मैं आपके लिए कोई प्रबन्ध नही कर सकता। अगर मैं यहाँ आपके साथ रह सकता तो प्रबन्ध कराना कोई मुश्किल नहीं था। लेकिन, मैं आपको कोई लालच नहीं देना चाहता। मैं सिर्फ इतना कह देना चाहता हूं कि बाहर जाकर आप उद्धत न हों, स्वेच्छाचारी न बनें। संयम आपका धर्म है। सहिष्णुता न छोड़िएगा। शान्त चित्त से सब काम कीजिएगा। माता-पिता से पूछिए। अगर आपका दिल पक्का हो गया है और वे नही मानते तो उनसे दलील कीजिए। अगर आप उनकी बात ठीक मानते हों तो उनकी बात स्वीकार कीजिए। अगर आप उनकी बात गलत मानते हों और अपनी आत्मा की बात सच मानते हों तो फिर उसे स्वीकार कीजिए। आप विनयपूर्वक उनकी बात को अस्वीकार कर सकते हैं। ऐसा हिन्दूधर्म कहता है। यह आपकी परीक्षा है। अपने विनय से असहयोग को सुशोभित कीजिए, स्वेच्छाचारी न बनिए। अपनी प्रतिज्ञा को भंग न कीजिए। दो बातें याद रखिएगा, एक तो असहयोग मे आपकी विनय की शिक्षा निहित है। दूसरी बात यह कि हमें आत्म-बलिदान की आवश्यकता है। गिरी हुई हालत में हम लोग नामर्द बन गये है, पराधीन बन गये हैं, रोटी की बात सोचते हैं। इसका प्रबन्ध करना कठिन है। अगर आप बलिदान करने को तैयार हैं तो (शिक्षण-संस्थाएं) छोड़िए, नही तो नहीं। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि वह आपको स्वच्छ भाव दे, आपको बल दे। आप अपने अन्तःकरण की ही आवाज को स्वीकार करें। मैं कल चला जाऊंगा। जो लोग असहयोग करना चाहते हैं, जो ऐसा करने की बहुत दिनों से सोच रहे हैं उनको अपने अध्यापकों से बात कर लेनी चाहिए। मेरे भाई, मालवीय जी से बातें करनी चाहिए। उनसे आशीर्वाद पाकर अपना काम कीजिए। जिन्होंने लिखकर नाम दे दिया है उनको अपने इरादे पर पक्का रहना चाहिए, और (इस प्रकार) जो लोग आना चाहें वे ही अपना नाम दें।

—हिन्दी। काशी, २७।११।१९२०। आज, ३०।११।१९२०]

● मनुष्यत्त्व के बाद ही आजीविका की बात आ सकती है।

---

१. यहाँ कुछ शब्द मिट गये हैं।

- स्वतन्त्रता धर्म है। धर्म के पीछे देह है; देह के लिए धर्म नहीं छोड़ा जा सकता, लेकिन धर्म के लिए देह छोड़ी जा सकती है।
- जैसे पराधीन हम आज हैं, वैसे कभी नहीं थे।
- संयम आपका धर्म है।
- असहयोग में आपकी विनय की शिक्षा निहित है।

३७. भाषण : काशी की सार्वजनिक सभा में[1]

२७ नवम्बर, १९२०

श्री गांधी ने हिन्दू धर्म की दृष्टि से गोरक्षा का महत्व समझाया और फिर कहा कि केवल असहयोग ही स्वराज्य हासिल कराने में आपकी मदद कर सकता है। स्वराज्य आपको गोरक्षा की शक्ति देगा। उन्होंने कहा कि स्वदेशी चीजों का इस्तेमाल और विदेश में बनी चीजों का बहिष्कार राष्ट्रीय और भौतिक प्रगति के लिए जरूरी है। उन्होंने व्यापारियों से विदेशी माल का व्यापार न करने का आग्रह किया। गांधीजी ने उनसे अपील की कि वे देश की गम्भीर स्थिति को अच्छी तरह समझें और निर्णय करें कि देश का प्रशासन अपने हाथ में लेने के सर्वोत्तम उपाय क्या होंगे। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि इन दो प्रमुख जातियों में प्रेम और सद्भाव ही राष्ट्र की प्रगति का एक मात्र रास्ता है।
—हिन्दी। काशी, २७।११।१९२०। अंग्रेजी से। 'लीडर' २९।११।१९२०]

३८. भाषण : इलाहाबाद में असहयोग पर[2]

असहयोग के सिवा रास्ता नहीं

२८ नवम्बर, १९२०

[महात्मा गांधी भाषण देने के लिए खड़े हुए। लोगों ने भारी हर्षध्वनि की। हिन्दी में भाषण देते हुए उन्होंने आरम्भ में इस बात पर जोर दिया कि] यह समय

---

१. यह सभा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव की अध्यक्षता में रामघाट के निकट हुई थी।

२. यह भाषण मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुई सार्वजनिक सभा में दिया

काम करने का है और भाषणों और सभाओं का नहीं। यह आसुरी सरकार है और रावण के राज्य जैसी है। उसने मुसलमानों के साथ अन्याय किया है और पंजाब के अत्याचारों के लिए वही उत्तरदायी है। यह भारतीयों को अब तक धोखा देती रही है। आज भी उसको इसका पछतावा नही है, बल्कि वह हमसे यह कहती है कि हम उसके अत्याचारों को भूल जायँ। यदि आप इस सबको अनुभव नहीं करते तो मुझे आपसे कुछ भी कहना नहीं है, किन्तु आप ज्योंही असली स्थिति को जान जायँगे आपके सामने केवल असहयोग करने के सिवा कोई रास्ता नही बचेगा।

ऐक्य

[इसके बाद महात्मा जी ने एकता पर जोर देते हुए कहा कि] एकता अत्यन्त आवश्यक है। यदि आप सब एक हो जायँ तो सरकार जिस तरह आपकी राय की उपेक्षा अबतक करती रही है, उसका वैसी उपेक्षा कर सकना आप असम्भव कर सकते हैं। आप लोग एक बार एक हो जायँ तो आप खिलाफत और पंजाब के अन्यायों को दूर करवा सकते हैं और स्वराज्य ले सकते हैं। सरकार आपकी सहायता से ही भारत पर शासन चला रही है। किन्तु यह देखकर दुःख होता है कि हिन्दू और मुसलमान अभी तक एक दूसरे पर पूरा विश्वास नही करते लेकिन मैं आपसे पूछता हूं कि क्या सरकार पर आपको कुछ भी विश्वास है? काले-से-काले मन का हिन्दू भी इस्लाम को खतरे में नही डालेगा। आपको चाहिए कि वर्तमान सरकार को या तो सुधार दें या समाप्त कर दें। अपने इस ध्येय की पूर्ति के लिए एकता बहुत जरूरी है। सरकार से असहयोग करने के लिए आपको आपस में सहयोग करना चाहिए। सरकार भी आप में फूट डालने का प्रयास कर रही है। यह तो वह करती ही आई है और इसी के द्वारा भारत पर राज्य चला रही है। यदि हिन्दू और मुसलमान आज एक हो जायँ तो संसार की कोई भी शक्ति हमें दबा नही सकती। हमने देख लिया है कि हम तलवार से स्वराज्य नहीं ले सकते। भारतीय आज जिस पौरुषहीन अवस्था में हैं उसमें खुली लड़ाई का खयाल भी नही किया जा सकता; वह देश के हितों के लिए घातक सिद्ध होगी। सरकार अपने सभी साधनों को काम में लाकर अपनी पूरी शक्ति से हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं को कुचलने का प्रयास कर रही है; वह एक दल को दूसरे से भिड़ा रही है। और खुली धमकियां दे रही है। हमारा ऐसी सरकार से भौतिक बल से निपटने और उसे हटाने की आशा करना सम्भव

गया था। इस सभा में कर्नल वैजवुड, मौ० आजाद, और शौकतअली भी शामिल थे।

नही है। हमें हिंसा का मुकावला हिंसा से करना भी नहीं चाहिए। हमें शैतान को सजा देने के लिए शैतानी साधनों का उपयोग भी नही करना चाहिए। मैं अपने ३० साल के अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि हम निर्दयता और छल-कपट से इसे नष्ट नही कर सकते। जैसे उजाला अन्धेरे को दूर करता है, वैसे ही हम झूठ को सत्य से और वुरी शक्तियो को आत्मवल से निवृत्त कर सकते हैं। इसके अलावा, सरकार की हिंसा के प्रयोग की शक्ति वहुत जवर्दस्त है और इसलिए भी नैतिक दृष्टि से लोगो का उसकी हिंसक शक्ति का मुकाविला हिंसा से करना अनुचित है। इसी वात को ध्यान में रखकर काग्रेस ने आपके सामने अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम रक्खा है।' स्कूलों और कालेजों के वहिष्कार का उल्लेख करते हुए महात्मा जी ने अभिभावको से पूछा क्या आपका विश्वास यह नही है कि इस समय अपने वच्चों को सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलो से निकाल लेना आपका कर्त्तव्य है? यदि आपका विश्वास ऐसा नही है तो आपको ऐसी सभा मे नहीं आना चाहिए और यदि आप इसमें आ ही गये है तो आपको इस कार्यक्रम से अपना मतभेद प्रकट करना चाहिए। अन्यथा यदि आप यहां से चुपचाप चले जाते है तो इससे यही प्रकट होगा कि आप इस कार्यक्रम से सहमत हैं और तव फिर इसीलिए आपका अपने वच्चों को स्कूलों और कालेजो से हटा लेना उचित होगा। यदि आपके लड़के वयस्क है तो आप उन्हे स्कूलों और कालेजो को छोड़ने के लिए समझाये और यदि वे वैसा न करे तो आप उनकी सहायता से हाथ खींच लें और जहा उनकी तक़दीर ले जाये वहां जाने दें।

गांधीजी ने स्वदेशी की आवश्यकता पर वल देने के वाद इलाहावाद में एक राष्ट्रीय कालेज की स्थापना के निमित्त धन की अपील की।

—हिन्दी। इलाहावाद, २८।११।१९२०। अंग्रेजी से। 'लीडर' और वाम्बे क्रानिकल १।१२।१९२०]।

---

१. यहाँ १-१२-१९२० के 'लीडर' में इतना और दिया गया है: 'श्री गांधी ने इसके वाद स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का आग्रह करते हुए कहा कि "स्वदेशी का व्यवहार नौकरशाही के विरुद्ध अत्यन्त शक्तिशाली शस्त्र है। यदि आप उन ६० करोड़ रुपयों को जिनसे ब्रिटेन का वना माल खरीदा जा रहा है, वचा लेंगे तो लंकाशायर के ५७ संसदीय सदस्य आपकी मुट्ठी में आ जायेंगे। यदि आप केवल स्वदेशी माल का ही व्यवहार करने का निश्चय कर लें तो स्वराज्य मिल जाये। किन्तु यह केवल तभी सम्भव हो सकता है जव आप

३९. भाषण : इलाहाबाद में

२९ नवम्बर, १९२०

उत्तर-प्रदेश हिन्दुस्तान का केन्द्र है। इसलिए उससे देश के अन्य भागों से आगे रहने की आशा की जाती है। किन्तु दरअसल उसने अभी तक गुजरात से ऊंचा स्थान पाने के योग्य कोई कार्य नही किया है। फिर भी मैं आशा करता हूं कि वह आगे चलकर वर्तमान संघर्ष में उचित स्थान प्राप्त किये विना नहीं रहेगा। उन्होंने झांसी का उदाहरण दिया और कहा कि वहां हिन्दू और मुसलमान छात्रों ने 'गीता' और कुरान हाथ में लेकर शपथ ली है कि वे सरकार द्वारा नियन्त्रित संस्थाओं को छोड़ देंगे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर बोलते हुए महात्मा गांधी ने खेदपूर्वक कहा कि उत्तर प्रदेश में सरकार की चाल सफल हो गई है और उसने फूट डाल कर दोनों जातियों को पौरुषहीन वना दिया है। उन्होंने दोनों जातियों को उनके धर्मग्रन्थों की याद दिलाई और अनुरोध किया कि वे अपने मतभेद भुला दें। इतना कह चुकने पर उन्होंने लखनऊ से मिले एक तार का उल्लेख किया और वतलाया कि वहां गाय की कुर्वानी से सम्वन्धित एक प्रस्ताव पर नगरपालिका के सदस्यों में कुछ गहरा मतभेद है। उन्होंने इस आरोप की भी चर्चा की कि उन्होने अलीगढ़ का कालेज तो खाली करा दिया किन्तु वनारस विश्वविद्यालय खाली नही कराया। उन्होंने कहा कि यह सव इस वात का द्योतक है कि हममें अभी तक आपसी विश्वास और सद्भाव की कमी है। मैं नही जानता कि ऐसे प्रश्न कैसे तय किये जायं। मैं तो हिन्दू विश्व-विद्यालय और अलीगढ़ कालेज दोनों को ही खाली करा देना चाहता हूं और उनमें अपना सन्देश लेकर गया भी हूं। यह तो अपने-अपने कर्त्तव्य का प्रश्न है और इसमें जो सवसे आगे आता है वही अधिक सफल होता है, फिर वह चाहे अलीगढ़ का कालेज हो या वनारस का विश्वविद्यालय, या कोई दूसरी संस्था हो। यदि कोई इस प्रकार के कर्त्तव्य के पालन में यह सोचता है कि पहले अन्य लोग आगे वढ़ें तव हम बढ़ेंगे तो उससे उसकी कमजोरी ही जाहिर होती है।

हिन्दुओं को सम्वोधन करते हुए महात्मा जी ने कहा: यह सन्देह करने का कोई कारण नही है कि अली-वन्धु हमें धोखा दे जायेंगे। क्योंकि उन्होंने यह तो साफ-साफ कह ही रखा है कि व पहले मुसलमान है और वाद को कुछ और। उन्होंने

अपनी आदतें सीधी-सादी वना लें। आप अब मलमल पहनना छोड़ दें और केवल खद्दर ही पहनें।"

वचन दिया है कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए वे (जरूरत होगी तो) सारी दुनिया से लड़ेंगे। (उन पर) इस प्रकार के सन्देह से हममें आत्म-विश्वास की कमी प्रकट होती है। यह भी कहा गया है कि अली-बन्धु अखिल इस्लामवाद के हिमायती हैं। यदि संसार के दूसरे भागों के मुसलमानों से सहानुभूति दिखाना अखिल इस्लामवाद है तो हिन्दू भी अखिल हिन्दुत्ववादी हैं। क्योंकि सहधर्मियों से सहानुभूति की भावना स्वाभाविक भावना है और वह सभी जातियों में होती है। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप पराक्रमी बनें और कायरों के दिलों में उत्पन्न होने-जैसी शंकाओं को निकाल बाहर करें। अब समय आ पहुंचा है जब सबको संगठित होकर पूरे मन से देश के प्रश्न को हाथ में लेना चाहिए, किन्तु यदि सामान्य जन मेरी बात नहीं सुनेंगे तो मैं उन ४ या ५ व्यक्तियों को ही साथ लेकर, जिन्होंने इस मामले को हाथ में उठा लिया है, इस संघर्ष को अन्त तक चलाता रहूंगा। (जोर की तालियां)।

—मूल हिन्दी। इलाहाबाद, २९।११।१९२०। अंग्रेजी से। बाम्बे क्रानिकल १।१२।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १९ पृष्ठ ४५-४६ में भी]।

४०. भाषण : महिलाओं की सभा, इलाहाबाद में

२९ नवम्बर, १९२०

महात्मा जी ने महिलाओं से अनुरोध किया कि वे देश की आजादी की लड़ाई में अपना फर्ज अदा करने मे गफलत न करें। उन्होंने उनसे जोर देकर कहा : आप अपने पतियों और पुत्रों से अनुरोध करें और उन्हे प्रोत्साहन दें कि वे अपने कर्त्तव्य के पथ पर चलें। आप स्वयं स्वदेशी को अपनाकर स्वतन्त्र भारत के निर्माण में प्रबल एवं प्रभावकारी सहायता दें। रावण के राज्य में सीता को भी चौदह साल तक वल्कल वसन (पेड़ की छाल के मोटे कपड़े) पहनकर रहना पड़ा था। इसी तरह आज भी जब स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का अर्थ भारत को स्वतन्त्र करने की दिशा में एक बड़ा कदम उठाना है, तब भारतीय महिलाओं को हाथ-कते और हाथ-बुने खद्दर का कपडा पहनना अपना पुनीत कर्त्तव्य बना लेना चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि उन्हे प्रतिदिन कम-से-कम एक घण्टा सूत भी कातना चाहिए और इस प्रकार हाथ से कपड़ा बुनने में सहायक बनना चाहिए। भारतीय स्त्रियों का देश के प्रति यह कर्त्तव्य हो गया है कि वे महीन कपड़े पहिनना छोड कर खादी की पोशाक अपनाये।

स्वराज्य प्राप्त करने का स्वदेशी एक अमोघ उपाय है। उसके द्वारा पंजाब और खिलाफत के अन्यायों का परिमार्जन कराया जा सकता है और राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा की जा सकती है। स्वदेशी के प्रचार का मुख्य भार भारतीय स्त्रियों पर ही है और उन्हें वह अवसर चूकना नहीं चाहिए।[1]

—हिन्दी। इलाहाबाद, २९।११।१९२०। अंग्रेजी से। बाम्बे क्रानिकल १।१२।-१९२०]।

● स्वराज्य प्राप्त करने का स्वदेशी एक अमोघ उपाय है।

४१. भाषण : विद्यार्थियों की सभा, इलाहाबाद में[2]

प्रतिज्ञा का सम्मान करो !

३० नवम्बर, १९२०

मुझे यह समाचार[3] सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। यहां भी भाई जवाहरलाल के साथ बहुत विद्यार्थियों से मुलाकात हुई थी। उन्होंने उनसे साफ-साफ कह दिया था कि वे पाठशाला तभी छोड़ें जब उन्हें यह अपना धर्म जान पड़े, इस आशा से न छोड़ें कि हम लोग कोई व्यवस्था करेंगे। वे हमारी शक्ति के अनुसार व्यवस्था स्वीकार करने को रजामन्द हो गये और भाई जवाहरलाल ने उनके लिए मकान ले भी लिया, परन्तु वह एक हफ्ते से खाली पड़ा है। इन समाचारों से मुझे जितना दुःख हुआ है, यह मैं प्रकट नहीं कर सकता। मुझे ये घटनाएं हमारी गुलामी के स्पष्ट चिह्न प्रतीत होती हैं। प्रतिज्ञा लेकर तोड़नेवाला हैवान बन जाता है, नामर्द बन जाता है। लार्ड विलिंग्डन[4] विलायत से आने के बाद बम्बई में कुछ समय व्यतीत

---

१. भाषण के बाद कई महिलाओं ने अपने आभूषण उतार कर राष्ट्रीय कार्य के निमित्त दे दिये और स्वदेशी की शपथ लेने में भी उत्साह दिखाया।

२. सभा आनन्द-भवन में हुई थी और उसमें मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा शौकत अली भी बोले थे। यह भाषण महादेव देसाई के यात्रा-विवरण से उद्धृत किया गया है।

३. गांधी जी के झांसी पहुंचने पर बहुत से विद्यार्थियों ने 'गीता' और 'कुरान' की शपथ के साथ अपने-अपने विद्यालय छोड़े थे। फिर समाचार मिला कि दो-तीन दिन बाद ही विद्यार्थी वापस विद्यालयों में चले गये हैं।

४. १८६६-१९४१। बम्बई (१९१३-१९) और मद्रास (१९१९-२४) के गवर्नर और भारत के वाइसराय (१९३१-३६)।

करने के पश्चात् अपना अनुभव सुनाते हुए कहते थे कि भारत में आकर मैंने किसी हिन्दू-मुसलमान को 'ना' कहने की हिम्मत करते नही देखा। यह आक्षेप अब भी सही है। हमारे दिल में 'नही' होने पर भी हम 'नही' नही कह सकते। सामने वाले का मुँह देखकर उसे 'हां' चाहिए या 'ना' यह सोचते है और तब तदनुसार बात करते है। यहा पण्डित जी के घर किसी तीन-चार वर्ष की लड़की से भी मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नही करा सकता। मै उसे कहता हू कि तू मेरी गोद में बैठ, तो वह कहती है, 'नही'; उससे कहता हूं कि "तू खादी के कपड़े पहनेगी?' तो कहती है "नही।" हममें इस बच्ची की-सी ताकत भी नही है। एक महापुरुष ने कहा है कि हमें स्वर्ग में जाना हो तो बालक-जैसा बनना होगा। बालक-जैसे बनने का अर्थ यह है कि बालक की-सी निर्दोषता और हिम्मत चाहिए। एडविन अर्नाल्ड[1] ने बालक की निर्दोषता का बढ़िया ढंग से वर्णन किया है। बच्चा बिच्छू को पकड़ लेता है, साप को भी पकड़ लेता है, आग मे हाथ डाल देता है, उसे डर का जरा भी भान नही होता। आप भी ऐसी ही निर्भयता पैदा करें। आपके मन में ईश्वर का भरोसा नही है, इसलिए आप डर के वश मे होते है।

मुझे अक्सर खयाल आता है कि या तो जल्दी-से-जल्दी भारत से भाग निकलूं या उसे जल्दी-से-जल्दी स्वतन्त्र करू। स्वतन्त्रता का इतना ही अर्थ है कि हम किसी से भी न डर कर जो हमारे दिल मे हो, वही कह सकें, वही कर सकें। जो लड़का करोड़ों मनुष्यों के सामने सीधा खड़ा रहकर अपनी बात कह सके, सच्चा साहसी है। इसलिए आपके लिए पहला पाठ तो "ना" कहना सीखना है। आप प्रतिज्ञा लें ही नही यह बेहतर है; प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना, मैं कहूंगा कि, एक बड़ा अपराध करने जैसा है। आपने ऊंची शिक्षा पाई हो, बड़ी डिग्री ली हो, फिर भी यदि आप बिना आगा-पीछा सोचे प्रतिज्ञा तोड़ दें, तो मैं जरूर कहूंगा कि आप जमुना में जाकर डूब क्यो नही मरते? आप शायद यह सफाई दे कि आपके दिल ने एक बार कुछ कहा, इसलिए आपने वैसा किया; उसने फिर दूसरी बात कही तो आपने दूसरा व्यवहार किया, परन्तु इसका जवाब यह है कि तब आपको प्रतिज्ञा नही लेनी चाहिए। शास्त्रों मे कहा है कि प्रतिज्ञा लो तो उसके लिए मरो। इसे साबित करने वाले थे हमारे हरिश्चन्द्र और रोहिताश्व। वे अपना वचन निभाने के लिए भगी के यहां

---

१. एडविन अर्नाल्ड (१८३२-१९०४)। संस्कृत साहित्य के अध्येता, अंग्रेज कवि। उनका भगवद्गीता का अंग्रेजी पद्य-अनुवाद 'सांग सिलेशियल' और बुद्ध-चरित्र सम्बन्धी काव्य-ग्रन्थ 'लाइट आफ एशिया' अंग्रेजी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं।

सेवक वन कर रहे। हम उन धर्मवीरों की सन्तान हैं, इसे आप कैसे भूल जायँगे? हां, व्यभिचार करने की, झूठ वोलने की प्रतिज्ञा ली हो तो जरूर तोड़ी जा सकती है, क्योंकि इसे तोड़कर मनुष्य अपनी उन्नति करता है। त्याग करने की प्रतिज्ञा कभी वदली नहीं जा सकती। हिन्दू की गौमांस न खाने की अथवा मुसलमान की शराव न पीने और सूअर का मांस न खाने की प्रतिज्ञा है। यदि वह वीमार हो, मरणासन्न हो और डाक्टर आग्रह करें कि जरा-सा अभक्ष्य ले लो तो उस समय भी उसका इन्कार करना लाजिमी है। इस प्रकार जिन्दगी कुर्वान करने, अभक्ष्य छोड़ कर अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहनेवाले मनुष्य को ही जन्नत में जाने पर खुदा 'शेर का वच्चा' कहेगा।

दुनिया के तमाम धर्मों में प्रतिज्ञा के वारे में ऐसी ही कठोर सख्ती है। सत्य की प्रतिज्ञा ली हो तो गांव को वचाने के लिए या किसी मनुष्य को वचाने की खातिर आप असत्य नहीं वोल सकते। प्रतिज्ञा-भंग से जो दुःख हुआ, मैं उसे व्यक्त किये विना नहीं रह सकता। कोई वूढ़ा खूसट आदमी अपनी प्रतिज्ञा तोड़े तो थोड़ा-वहुत समझ में भी आ सकता है। मैं स्वयं वूढ़ा ठहरा, इसलिए कोई भूल कर सकता हूं। परन्तु आप तो नौजवान हैं, आप में ताजा खून दौड़ता है, मैं आपको कैसे माफ कर दूं? इस अवसर पर कुछ विषयान्तर का खतरा उठा कर भी मैं अपना अनुभव सुना रहा हूं। अहमदावाद में दो वर्ष पूर्व हजारों मजदूरों ने सावरमती के किनारे एक पेड़ के नीचे ईश्वर को साक्षी मान कर प्रतिज्ञा ली कि जव तक उनकी माँग मंजूर न हो, तवतक वे काम पर नहीं जायंगे। वीस दिन तक वे टिके रहे परन्तु वाद में मुझे महसूस हुआ कि वे गिरने जा रहे हैं, इसलिए मैंने उनसे कहा कि तुम गिरोगे तो मैं भी अन्न न लेकर शरीर छोड़ दूंगा। तुम प्रतिज्ञा न लेते तो हर्ज नहीं था, परन्तु लेकर तोड़ो, यह मुझे असह्य है। मजदूर रोने लगे, पैरों पड़ने लगे कि "कुछ भी करके पेट भरेंगे, परन्तु पुराने काम पर नहीं जायेंगे।" इस प्रकार उन्हें गिराने से रोकने के लिए मुझे अनशन का व्रत लेना पड़ा था। आप मजदूरों से ज्यादा अशिक्षित न वनें। उनसे अधिक नास्तिक तो कदापि न वनें। आप इन्सान की गुलामी छोड़ कर खुदा की गुलामी करें। इस हुकूमत को मिटाना हो तो यह गुलामी छोड़नी पड़ेगी। प्रतिज्ञा नहीं लेंगे तो स्वराज्य नहीं मिलेगा, सो वात नहीं है, परन्तु आप प्रतिज्ञा तोड़ेंगे तो स्वराज्य का समय आगे अवश्य खिसक जायेगा। कसम. . .तोड़नेवाले ऐसे विद्यार्थियों की मदद से मुसलमान मुसलमानों की मदद नहीं कर सकेंगे। इसलिए मैं विनयपूर्वक कहता हूँ कि कसम न लो, और कसम लो तो पृथिवी रसातल में चली जाय तो भी उसे न छोड़ो। आपमें से इने-गिने ही कसम लें, तो उससे भी स्वराज्य मिल जायगा। मुसलमान विद्यार्थियों के सामने इमाम-

हसन और हुसैन के उदाहरण मौजूद हैं। इस्लाम को कायम रखनेवाली तलवार नही, ऐसी अटल टेकवाले जबरदस्त फकीर ही है। उन्ही के कारण वह कायम रहा है। एम० ए० हो जाने से या सेवासमिति के स्वयंसेवक बनने से या कांग्रेस में जाकर भाषण देने की शक्ति प्राप्त कर लेने से आप देश को स्वतन्त्र नही कर सकते। आप प्रतिज्ञा का आदर करके और उसका पालन करके ऐसा अधिक अच्छी तरह कर सकेंगे।

अंग्रेजी हुकूमत शैतानियत से भरी है

इस राज्य और रावण-राज्य में फर्क नही है। कुछ फर्क हो भी तो वह इतना ही है कि रावण के हृदय में कुछ दया होगी, कुछ कम दगा होगी। उसने तो मन्दोदरी से कहा था कि "दस सिरवाला होकर भी क्या मैं राम का मुकाबला नहीं कर सकता? तू तो पागल हो गई है।" उसने यह भी कहा कि "मैं जानता हूं कि वे अवतारी पुरुष हैं और मुझे मालूम है कि मैं इतना बुरा हो गया हूं कि उनके हाथ से मारा जाऊं, तो भी बुरा नही।" परन्तु हमारी हुकूमत को तो खुदा का ऐसा डर भी नही रहा। उसे यह खयाल नहीं आता कि खुदा के हाथों मर जाना ठीक रहेगा। वह तो खुदा को घोलकर पी गई है। उसका खुदा तो उसका अहंकार, उसकी दौलत और उसकी दगा है। यूरोपीय संस्कृति शैतानियत से भरी है। परन्तु इसमें भी अंग्रेजी हुकूमत सबसे अधिक शैतानियत से भरी है। अब तक मैं यूरोप में अंग्रेजी सल्तनत को कम-से-कम खराब मानता था, अब मुझे इत्मीनान हो गया है कि इसके जैसी खुदा को भूली हुई कोई और हुकूमत नही है। इस हुकूमत की सेवा मैं नहीं करना चाहता। मैं इसके आश्रय में एक क्षण भी नही रहना चाहता।[1]

यह तालीम हमें पक्का गुलाम बनाने के लिए है

आपको मेरे वचनों के बारे में सन्देह हो, आपको इस सरकार में मेरी तरह

---

१. 'लीडर' २।१२।१९२० की रिपोर्ट में यहाँ कुछ वाक्य और हैं: "इस सरकार-द्वारा संचालित स्कूलों में गीता और कुरान पढ़ना भी हराम है। मेरा विश्वास है श्री लायड जार्ज और लार्ड चेम्सफोर्ड दोनों ही हमें धोखा दे रहे हैं। अगर वे चाहते तो तुर्की पर लादी जा रही सन्धि को रद्द करा सकते थे। किन्तु वे वैसा करना नहीं चाहते। वे अच्छी तरह जानते हैं कि ओ' डायर और डायर दोनों निश्चित रूप से अपराधी हैं, लेकिन वे उन्हें सजा देना नहीं चाहते। मैं तो ऐसी सरकार के साथ कदापि सहयोग नहीं कर सकता।'

वुराई दिखाई न देती हो तो आप वेशक अपनी पाठशालाओं में पढ़ते रहें। परन्तु यदि आप मेरे विचार के हैं, तव तो इस हुकूमत की पाठशाला में 'गीता' पढ़ना भी व्यर्थ है। हमें गुलाम वनाकर रखनेवाली सरकार हमें महल में रक्खे और उसमें 'गीता' पढ़ाये, डाक्टरी, साइंस, इंजीनियरी सिखाये तो भी क्या वह सव सीखा जा सकता है? मैं कहता हूं "नहीं", क्योंकि इस सारी शिक्षा में जहर भरा है; यह सारी तालीम हमें और पक्का गुलाम वनाने के लिए हैं। हमारी लड़ाई धर्म की है; सरकार की अधर्म की है। जो सरकार माइकेल ओ' डायर[1]-जैसे कर्मचारी के अपराध जानकर भी उसका पक्ष लेती है, डायर[2] की हैवानियत जानकर भी उसके अन्याय को केवल विचार-दोप मानती है, उस सरकार की मदद कैसे ली जाय अथवा उसके साथ सम्वन्ध कैसे रक्खा जाय? उसके साथ सम्वन्ध रखना अधिक हैवान वनने और ज्यादा पक्का गुलाम वनने के वरावर है।

आप लोग यह प्रश्न मुझसे विल्कुल न करें कि मैं आपके लिए क्या-क्या करूंगा। मैं आपको सरकार की गुलामी छोड़कर मेरा गुलाम वन जाने को नही कहता। यदि आप मेरे गुलाम वनना चाहें तो फिर मुझे आपसे कोई वास्ता नहीं। आपमें अपना पेट भरने की, कोई न कोई मेहनत-मजदूरी करके अपने माता-पिता का पोपण करने की ताकत न हो तो आप स्कूल-कालेज हर्गिज न छोड़ें। वैसे आपके लिए व्यवस्था करना हमारा काम है, और हम यथासम्भव व्यवस्था जरूर करेंगे। परन्तु भारत का वातावरण इतना विगड़ा हुआ है कि शिक्षक, अध्यापक मुझे पागल तक मानते होंगे और सम्भव है मुझे उनकी मदद न मिले। ऐसे लोगों की मदद मैं चाहता भी नही हूं। यदि शिक्षक अध्यापक न मिलें, तो आप अपने अध्यापक स्वयं वनें और अपने ही पैरों पर खड़े हो जायँ। मेरी, मोतीलाल जी की या शौकत अली की ताकत पर खड़े रहने की आशा से आना चाहे, तो जहां आप हैं, वहीं वनें रहे।

० ० ०

आप पूछेंगे, "आज प्रह्लाद कहां से लायें?" प्रह्लाद इस जमाने में भी हैं।"[3]

० ० ०

मै कोई नशा (एक्साइटमेण्ट) नही देना चाहता। आपकी तालीम का

---

१. पंजाव के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर, १९१३-१९१९।

२. रेजिनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर (१८६४-१९२७), अमृतसर क्षेत्र के कमांडिंग आफिसर जिन्होंने जलियांवाला वाग में एकत्र शान्त जनता पर गोलियाँ चलाने का हुक्म दिया था।

३. इसके वाद उन्होंने स्वामी दयानन्द का वृत्तान्त सुनाया।

नशा आपके लिए काफी है।'[1] मैं आपमें शान्त साहस फूंकना चाहता हूं। मैं यह चाहता हूं कि आपका हृदय कुर्बानी और तपश्चर्या के योग्य पवित्र बने।

० ० ०

सही बात यह है कि मां-बाप बच्चों को नहीं रोक रहे हैं, बच्चे ही मां-बाप के कहने पर भी पाठशाला छोड़ने को तैयार नहीं है। हिन्दू युनिर्वासिटी में मैंने सौ-डेढ़ सौ लड़कों से पूछा था। उन्होंने कहा कि हमारे मां-बाप की हमें इजाजत तो है ही, वे हमे हर हालत में खर्च देने को भी तैयार हैं। कोई कुछ भी कहे, सरकार-द्वारा चलनेवाले स्कूल-कालेजों में पढ़ते रहना पाप है, यदि आपकी आत्मा ऐसा कहती हो तभी आप उन्हें छोड़ें, थोड़ी भी दुविधा हो, तो आप मालवीय जी की सलाह मानें। मुझे तो अभी भारत में पांच वर्ष ही हुए है, मालवीय जी ने तो सारा जीवन देश की सेवा में अर्पित किया है। इसलिए कहता हूं कि मेरी आवाज ही आपकी आत्मा की आवाज न हो, तो आप मालवीय जी की बात मानें। मेरी आवाज ही आपकी आवाज हो तो मालवीय जी की सलाह भी हर्गिज न मानें।

—हिन्दी। इलाहाबाद, ३०।११।१९२०। गुजराती से। न० जी० १९।१२।-१९२०]।

४२. भाषण : इलाहाबाद में तिलक विद्यालय[2] के उद्घाटन पर

"मुझे इस विद्यालय के उद्घाटन की रस्म पूरी करते हुए बहुत प्रसन्नता हो रही है। मुझे श्री श्यामलाल नेहरू ने बताया है कि विद्यालय का नाम राष्ट्रीय विद्यालय नही, तिलक विद्यालय होगा। स्वराज्य के लिए जितना आत्मत्याग श्री तिलक[3] ने किया है उतना किसी दूसरे व्यक्ति ने नही किया। इसलिए उस

---

१. गांधी जी ने ये वाक्य एक श्रोता के इस सुझाव के उत्तर में कहे थे : "जब कि आप (गांधीजी) यह मानते हैं कि आपका यह संघर्ष एक युद्ध है तो लड़ने के लिए आपको हमें कोई "नशा" देना चाहिए।"

२. यह राष्ट्रीय हाईस्कूल स्वराज्यसभा के कार्यालय में चलाया जाता था। स्कूल की कार्यकारिणी ने इसे गांधीजी द्वारा बताई हुई पद्धति से चलाने का निश्चय किया था।

३. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (१८५६-१९२०)।

महान देशभक्त के नाम पर इसका नाम रखा जाना उचित ही है। यदि कालेज के विद्यार्थी आयेंगे तो कालेज भी खोला जायेगा; विद्यालय में वे सभी विषय पढ़ाये जायँगे जो दूसरे स्कूलों में पढ़ाये जाते हैं।"

इसके बाद गांधीजी ने विद्यालय की कार्यकारिणी के सदस्यों के नाम घोषित किये। इनमें पं० मोतीलाल नेहरू, अध्यक्ष और सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, मोहनलाल नेहरू और गौरीशंकर मिश्र सदस्य थे। उन्होंने आगे कहा—"विद्यालय में १५ अध्यापक हैं जिनमें से कुछ के पास डिगरियां है। मेरा खयाल है कि ये सभी ऊंचे चरित्र के लोग है। यदि अध्यापक अच्छे हों तो विद्यालय उन्नति करेगा। जिन लोगों ने विद्यालय की सेवा करने का वचन दिया है उन्हे दूसरी सब बाते भुला देनी चाहिए। कुछ स्कूलों में अध्यापक अपने काम के अलावा दूसरे बाहरी काम भी करते हैं। इस विद्यालय में ऐसा नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय विद्यालय के अध्यापकों का अपना पूरा ध्यान विद्यालय के काम पर केन्द्रित होना चाहिए। विद्यालय में छात्रों को कुर्सियां और डेस्के नहीं मिलेंगी। सरकार ने हममें उनके उपयोग की बुरी आदत डाल दी है। किन्तु आप लोग केवल आसनों का प्रयोग करने के लिए तैयार रहें। आप अपनी विद्या और चरित्रशीलता से यह दिखाये कि आप दूसरे स्कूलों के छात्रों से अच्छे हैं। इस संस्था मे आपको कोई-सुख-सुविधा नही मिलेगी। यदि जरूरत होगी तो छात्रों को खुले में पेड़ों के नीचे बैठकर पढ़ना-लिखना होगा और मेरी राय में भारत की प्राचीन पद्धति में तो इस बात पर आग्रह रखा जाता था। प्राचीन काल मे जब वर्षाकाल आता था, छात्र खेतो में काम किया करते थे। मुझे यह देख कर प्रसन्नता होती है कि विद्यालय के पाठ्यक्रम में टाइप, संकेत-लिपि, कताई और बुनाई के विषय भी सम्मिलित होंगे। लड़को को उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियाँ सीखनी होंगी। आपका ऐसा करना स्वराज्य और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, दोनों ही दृष्टि से अच्छा है। दोनों लिपियों को सीखने से हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बहुत कुछ सीखेंगे। मेरे मित्र श्री शौकत अली ने मुझे बताया कि भारतीय भाषाओं में उर्दू का साहित्य बहुत सम्पन्न है। इस बारे में मैं उनसे सहमत हूँ। उर्दू बँगला या गुजराती से अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि उर्दू लिखने वाले मौलवियों ने किसी विदेशी भाषा से नहीं, अरबी से प्रेरणा ली है। उन्होंने अंग्रेजी से कभी कोई पुस्तक अनुवादित नहीं की। मेरा ख्याल है कि उर्दू लिपि सीखने के बाद लड़के सादी और फारसी के दूसरे शायरों की कृतियाँ पढ़ सकेंगे।"

[उन्होंने खासतौर से छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि] "आप आज स्वराज्य की दिशा में एक कदम आगे बढ़े हैं। मैं आपसे अनुरोध

करता हूँ कि आप अपने आचरण से अहिंसात्मक असहयोग को सफल बनायें।"
—हिन्दी। इलाहाबाद, १।१२।१९२०। अंग्रेजी से। 'लीडर', ३।१२।१९२०]

४३. भाषण : काशी की सभा में

[यह भाषण गांधी जी ने ९ फरवरी, १९२१ को दिया था। सभा टाउन-हाल वाले मैदान में हुई थी और उसमें लगभग एक लाख आदमी आये थे। श्री भगवानदास जी ने सभा की अध्यक्षता की थी। इस सभा में मौ० मुहम्मद अली तथा जवाहरलाल जी भी उपस्थित थे।—सम्पा०]

भाइयो,

हम दोनों भाई, मुहम्मद अली और मैं आज आपके पास आये हैं। आप लोग यहां विद्यापीठ की स्थापना करेंगे। हम लोग उसी में शरीक होने आये हैं। हमारे भाई अबुल कलाम आजाद भी इसीलिए यहाँ पहुँचे हैं। मै आपका यह समय दूसरे काम में नही लगाऊँगा। मैं आप लोगों से केवल इतना ही कह देना चाहता हू कि हम लोगो की शक्ति दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। इसके साथ-साथ हम लोगो की जिम्मेदारी भी बढती जा रही है और साथ-ही-साथ भय भी बढ़ता जा रहा है। हम लोगों को यह स्थिर करना है कि किस तरह काम करना चाहिए। यदि हमारी शक्ति जान कर हम आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमे समझ लेना चाहिए कि यह शक्ति बढ़ी कैसे? इसका एकमात्र कारण यही है कि हम लोग शान्ति से काम करते हैं। भाई शौकत अली कहा करते हैं कि हम लोगो की ताकत की वृद्धि का कारण ठण्डी हिम्मत है। यदि हम लोग क्रोध या आवेश में आकर तलवार उठा ले तो उससे अपना गला काटेंगे या अंग्रेज का? इससे हमारी ही ताकत कम होगी। यह ठण्डी हिम्मत और अमन की लड़ाई है। इसके लिए सब तैयार हो जायं। यदि इसमें हमने तलवार उठा कर अंग्रेज का या अपने भाई का गला काटा तो हमारा पतन हो जायगा। फैजाबाद के किसानो ने क्या किया? मदोन्मत्त होकर उन्होने दूकानें लूटी, अपने भाइयों का माल लूटा। वहाँ हमारी शक्ति का पतन हो गया। सल्तनत देख रही है कि हम लोगों ने इतना भारी आन्दोलन आरम्भ कर दिया है। इस शासन को मिटा देने या दुरुस्त कर देने का संकल्प लिया है। पर फिर भी इतनी शक्तिशाली सरकार कुछ भी नही बोल रही है। क्यों? सरकार देख रही है कि हम लोग शान्ति से काम कर रहे हैं। यही हमारा

धर्म हो गया है। इस दशा में सरकार हमारा कुछ नहीं कर सकती। यदि आज हम शस्त्र उठा लें तो उसकी ताकत की वृद्धि होने लगेगी। यदि आप पंजाब के अत्याचारों का निवारण, खिलाफत के मामले में न्याय और स्वराज्य की प्राप्ति चाहते हैं तो ठण्डी हिम्मत से काम लीजिए। इसी ढंग से अगर काम होगा तो ठीक होगा। चाहे वकील वकालत न छोड़ें, विद्यार्थी विद्यालयों का वहिष्कार न करें, लोग कौंसिल में जायें, सरकारी नौकरी और खितावों का त्याग न करें, इन सवसे मुझे जरा भी रंज नहीं होता, किन्तु यदि एक भी खून हो जाय, लकड़ी चल जाय या कोई किसी को गाली दे तो मुझे वड़ा ही रंज होता है, क्योंकि वहाँ हमारी ताकत का पतन होता है। फैजावाद के किसानों का पागलपन और वम्वई के विद्यार्थियों की करनी से मैं निहायत असन्तुष्ट हूं। विद्यार्थियों ने श्री शास्त्री[1] और श्री परांजपे का अपमान करके वड़ी भूल की। दोनों वड़े ही योग्य व्यक्ति और मेरे समान ही देश-सेवक हैं। हम लोगों में मतभेद है पर देश-सेवा का उन्हें भी उतना ही अभिमान है जितना हमें है। यदि आज आप लोग यहां एकत्र न हुए होते तो मुझे दुःख न होता। पर यहां आकर गोलमाल करें, शोर-गुल मचाकर वाधा डालें तो यह कितने दुःख की वात होगी। मेरी समझ में नहीं आता कि यह कैसे होता है? सभा में आने के वाद विघ्न नहीं डालना चाहिए। जो विघ्न डालता है वह सज्जन नही है। मुझे वाध्य होकर कहना पड़ता है कि वम्वई के छात्रों ने अपने खानदान की मर्यादा त्याग दी, कांग्रेस और खिलाफत के हुक्म की अवज्ञा की। यदि आप हमारी वात को मानना चाहते हैं तो आपको यही सवक सीखना चाहिए। यदि आप किसी दूसरे से अपना काम कराना चाहते हैं और वह आपके मन के माफिक करने पर राजी नहीं होता तो आप जवरदस्ती न करें; मेरी इस शर्त को याद रखिए। मैं एक वर्ष में अर्थात् सितम्बर तक स्वराज्य चाहता हूं। वह स्वराज्य केवल शान्ति रखने से मिल सकता है। विना इस ताकत के स्वराज्य मिलना असम्भव है। लोग कहते हैं कि हम शान्ति भंग करना नहीं चाहते पर सरकार और खुफिया वाले हम लोगों को इसके लिए वाध्य करते हैं। मैं कहता हूं, यह पागलपन की वात है। मैं आप लोगों से कहूं कि आप लोग अपना दीन छोड़ दीजिए तो क्या आप इसके लिए तैयार हैं? कभी नहीं। इसी तरह जव हम किसी वात को करने के लिए तैयार हैं, तो सरकार हमसे वैसा कुछ नही करा सकती। गुस्से में तो कुछ नहीं करना चाहिए। क्रोध किया तो स्वराज्य नामुमकिन है। मैं सव वातें छोड़ देने के लिए तैयार हूं—वकीलों का प्रश्न न उठाऊं, छात्रों

---

१. श्रीनिवास शास्त्री।

को न छेड़ूं, पर मैं शान्ति कभी नही छोड़ सकता। जब हम परदेसी राज्य नहीं चाहते तो हमें परदेसी लिवास भी छोड़ देना चाहिए। साथ ही हमें विदेशी वस्त्र भी त्याग देना चाहिए। यदि हम लोग यह नही कर सकते तो एक क्या दस वर्षों में भी स्वराज्य नही मिल सकता। हमें अधिक संख्या की आवश्यकता नही है। जो थोड़े लोग त्याग कर रहे है उतने ही काफी हैं। पं० मोतीलाल नेहरू तथा श्री दास तथा लाला लाजपत राय ने वकालत छोड दी। अब और क्या चाहिए? दूसरे भी धीरे-धीरे छोड़ेगे। किसी के साथ किसी तरह की जबरदस्ती न की जाय। जिनकी आत्मा गवाही दे, वे ही छोड़े। संस्कृत के विद्यार्थी हमसे पूछते है कि उनका क्या कर्त्तव्य है। अब कर्त्तव्य का प्रश्न नही रहा। सरकारी विद्यालयो का त्याग ही एकमात्र कर्त्तव्य है। जबतक हमारे दुःखों का प्रतिकार न किया जाय, तबतक सरकारी विद्यालय हराम है। स्वदेशी वस्त्र का प्रचार भी अत्यावश्यक है। इसके लिए चर्खों का प्रचार करना चाहिए। यदि विद्यार्थी विद्यालयों का बहिष्कार करके देश की सेवा में जुटना चाहते है तो चर्खे के प्रचार से बढ़कर कोई दूसरा काम हो ही नही सकता। उन्हें फौरन चर्खा ग्रहण करना चाहिए। यदि ५० लाख विद्यार्थी ४ घण्टा यही काम करें तो कितना काम हो सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी इतना सूत कात सकता है कि चार दिन में एक धोती तैयार हो सकती है अर्थात् सारे विद्यार्थी मिलकर एक दिन में साढे बारह लाख धोतियां तैयार कर सकते हैं। यदि हमें सब सामान मिल जाय तो कितनी भारी सेवा हो सकती है। उस समय आप जलसा करना भूल जायँगे। मैं जलसों से थक गया हूं। इन जलसों मे शरीक होने से हमें यह अनुभव हुआ है कि हम लोग अपने बल का उपयोग अपना गला घोटने के लिए करते हैं। जहां प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के स्थान को ग्रहण करना चाहता है, वहां क्या होगा? सितम्बर मास से मैं यह अनुभव कर रहा हूं। मैं घबरा उठा हूं। हम इतने (छोटे) जलसे में भी शान्ति नही रख सकते। गोरखपुर में प्रायः डेढ़ लाख जन उपस्थित थे और बड़ी शान्ति से काम हुआ। पर हमारा काम केवल इससे नही चल सकता। यदि काम चलाना है तो चर्खा ले लो, जिस दिन सब लोग इस बात को समझ लेंगे उस दिन ऐसे जलसो की आवश्यकता नही रह जायगी और न उसके लिए किसी को फुर्सत ही रहेगी। जितना समय जलसों में नष्ट किया जाता है यदि उतने ही समय मे हम सूत कातें तो कितने नंगो को ढक सकते है? यदि एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करना है तो दो बातें आवश्यक हैं—एक तो शान्ति का ध्यान बनाये रखना और दूसरे विदेशी वस्त्र का त्याग करना और उसको सफल बनाने के लिए चर्खा ग्रहण करना। जिस दिन आप लोग इन बातों को समझ जायंगे, उस दिन ऐसे जलसों की आवश्यकता न

रह जायगी। यदि आपने चर्खे के मन्त्र को समझ लिया है तो स्वराज्य निकट है। यदि आपने समझ लिया है कि तर्के-मवालात (असहयोग) शान्ति से चलाना है और यदि आपने समझ कर इसमें हाथ डाला है तो शान्ति से रहिए। इसमें हम सरकार को मजबूर कर सकते हैं। काम करते चलिए। जेल से मत घबराइए। जो जेल जानेवालों को छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं वे अपनी बुजदिली दिखाते है। वे स्वयं तो जाना ही नहीं चाहते। जेल में हमें प्रसन्नचित्त जाना चाहिए। उसे महल समझ लेना चाहिए। हमारा काम जेल में जाना और दूसरों को भेजना है। यदि हम लोग यह नहीं करते तो संसार यही कहेगा कि भारत के लोग कहना जानते हैं और करना कुछ भी नहीं जानते। पर इन सब प्रवृत्तियों को चलाने के लिए रुपयों की आवश्यकता है। चर्खा चलाने के लिए, विद्यापीठ स्थापित करने के लिए, राष्ट्रीय काम के लिए, जो लोग वकालत छोड़ देंगे उनके लिए पैसा चाहिए। इतनी बड़ी सभा में से मैं खाली हाथ नहीं जा सकता। मैं भीख माँगता हूं। जो आप लोगों को देना हो, दें। स्मरण रखिए, यदि आपने चर्खे को अपनाया और अपने हाथों से ही बने कपड़े पहनने का संकल्प किया, तो स्वराज्य सितम्बर में मिल जायगा।

—हिन्दी। काशी, ९।२।१९२१। 'आज', १०।२।१९२१।]

४४. भाषण : फैजाबाद में

गांधी जी ने सभा में एक ऊंचे मंच पर रखी हुई कुर्सी पर बैठकर भाषण दिया। उन्होंने बैठे-बैठे भाषण देने के लिए क्षमा-याचना की। उन्होंने श्री केदारनाथ की, जो गिरफ्तार[1] कर लिये गये थे, प्रशंसा की और कहा कि सरकार ने उनको गिरफ्तार करके उनकी तथा लोगों की परीक्षा लेनी चाही है। सरकार लोगों को डराना चाहती है। यदि श्री केदारनाथ आन्दोलन से अलहदा होने के लिए तैयार हो जायेंगे तो वह उन्हें छोड़ देगी।

उसके बाद उन्होंने किसानों के उपद्रवों की चर्चा की और किसानों-द्वारा किये गये हिंसात्मक कार्य पर खेद प्रकट किया. . .। गांधी जी ने हिंसा की अत्यन्त तीव्र और स्पष्ट शब्दों में निन्दा की और कहा कि उनके खयाल से ऐसा करना

---

१. जनवरी १९२१ में उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में हुए किसानों के उपद्रवों के कारण।

ईश्वर और मानव के प्रति पाप है। उन्होंने जमींदारों और किसानों में झगड़ा करवाने के समस्त प्रयत्नों की भर्त्सना की और किसानों को सलाह दी कि वे ऐसे लड़ने के वजाय स्वयं कष्ट सहें; क्योंकि हमें तो अपनी समस्त शक्ति सर्वाधिक शक्तिशाली जमीदार अर्थात् अंग्रेज सरकार से लड़ने के लिए सञ्चित कर रखनी है। उन्होंने लोगों से अनुरोध किया कि वे अपने हृदयों को शुद्ध करें, मनों से भय निकाल दें और मजबूत बनकर निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ें।

उन्होंने अपने दक्षिण अफ्रीका में किये गये सत्याग्रह और उसकी सफलता का स्मरण कराया और (अपने स्वागत के समय) स्टेशन पर तलवारें लेकर निकाले गये जुलूस[1] की निन्दा की। उन्होने कहा कि हिंसा तो कायरता का लक्षण है। तीस करोड़ लोग स्वयं एक शक्ति है और हिंसा किये विना असहयोग के द्वारा स्वराज्य ले सकते हैं। तलवार तो कमजोर का हथियार है। उन्होने लोगों से संगठित होने, चर्खा चलाने और धन-संग्रह करने की अपील की। उन्होने छात्रों-द्वारा स्कूल और कालेज छोड़ने का उल्लेख करते हुए कहा कि सोलह साल से अधिक आयु के लड़के अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध भी इन संस्थाओं का त्याग कर सकते है। उन्होने कहा कि स्वराज्य शान्ति रखकर, चर्खा चलाकर, असहयोग करके और धन-संग्रह करके सात महीने में लिया जा सकता है। उन्होंने अन्त में लोगों से धन देने की अपील की।

—हिन्दी। फैजाबाद, १०।२।१९२१। 'लीडर', १३।२।१९२१ की रिपोर्ट।]

• हिंसा कायरता का लक्षण है।

४५. भाषण : काशी विद्यापीठ के शिलान्यास के अवसर पर

वावू भगवानदास, वहनो और भाइयो,

मेरे मन में इस समय एक वात का दुःख है। उसे मैं किसी तरह आप लोगों से छिपा नही सकता। यहा आने के पहले मैं अपने भाई साहव पं० मदनमोहन मालवीय के पास गया और उनसे पूछा कि आप विद्यापीठ के आरम्भोत्सव में आ रहे है या नही। उन्होंने कहा, 'नही; मेरा वहां न जाना ही अच्छा होगा।' वह

---

१. मुसलमान स्वयंसेवकों ने स्टेशन के दरवाजे पर नंगी तलवारें लिये हुए पंक्तिबद्ध होकर गांधी जी का स्वागत किया था। यहाँ उसी घटना का उल्लेख किया गया है।

हमारे कितने घनिष्ठ हैं, मैं बतला नहीं सकता। आज वह हमारे साथ नहीं हैं। उनको आज यहां न देखना हमारे लिए कितने दुःख की बात है, यह मैं कह नही सकता। पर हमारी लड़ाई ऐसी है कि हमें ये सब दुःख बरदाश्त करने होंगे। पिता को पुत्र के, पति को पत्नी के, पत्नी को पति के वियोग का दुःख सहना पड़ेगा। बाबू भगवानदास ने सुमधुर शब्दों में बतलाया है कि यह लड़ाई धर्म-युद्ध है। मुझे इस बात में जरा भी संशय नही रह गया है, नही तो मैं उस संस्था को कभी न छूता, जिसके प्राण मालवीय जी हैं। मेरी आत्मा यही कहती है कि या तो वह संस्था मेरी हो जाय या नष्ट हो जाय। यदि मैं ऐसा नहीं करूं तो यह पाप होगा। कल मेरे पास कानपुर के कई विद्यार्थी आये। वे वहां से पढ़ाई छोड़-छाड़ कर आये हैं। मैंने उनसे पूछा, आप लोग पढ़ना छोड़कर क्यों आये। उन्होने उत्तर दिया, हम लोग चाहते हैं कि इससे बढ़कर कोई अच्छा राष्ट्रीय काम करें। मैंने उनसे कहा, यह सबब अच्छा नहीं। यदि आप इस खयाल से पढ़ाई छोड़कर आये होते कि आप सरकारी सहायता से चलनेवाले विद्यालयों में पढ़ना पाप समझते हैं तो अधिक लाभ होता। मेरी बात को वे कुछ समझ गये पर उनकी मुखाकृति से स्पष्ट झलकता था कि उनके हृदय में अभी कुछ संशय रह गया है, क्योकि उन्होंने प्रश्न किया कि परीक्षा के केवल दो ही मास रह गये हैं : यदि हम लोग उपाधि लेकर असहयोग करें, तो अच्छा है। मैंने कहा कि यह ठीक नहीं, जब हमें निश्चय हो गया कि इन विद्यालयों में शिक्षा लेना पाप है तो इसे त्यागना ही उचित होगा। यही तर्क-सवालात है। हमारे बिस्तरे के नीचे पचासों वर्ष से साँप छिपा है। हमें उसका पता नहीं। आज हमें एकाएक इसका पता लगता है। हम उस बिस्तरे पर अब नहीं रह सकते। चाहे हमारे पिता उसको छोड़ने के लिए हमें मना करें, चाहें नाराज हों, हम उस बिस्तरे पर रह नहीं सकते। मैं पिता की वह आज्ञा नहीं मान सकता, क्योंकि पिता को तथ्य मालूम नही है। उस बिस्तरे पर मैं शान्त नहीं रह सकता। यही खयाल करके विद्यालयों को छोड़िए; यह समय परीक्षा का प्रश्न उठाने का नहीं है।

यही बात हमें यहां के विद्यार्थियों से भी कहनी है। कल मुझे अपने भाई एण्डरूज का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है कि जिस तरह यह काम चल रहा है उस तरह से तो सफलता की आशा उन्हें गुजरात में भी नही है, जो मेरा घर है। पर दो स्थानों के लिए वे निश्चिन्त हैं—पटना और काशी। पटना मे इसका भार बाबू राजेन्द्रप्रसाद पर और काशी का भार बाबू भगवानदास पर है। सबको पूरा एतबार है कि ये काम बिगाड़ेंगे नही। बाबू भगवानदास ने शिक्षा के लिए बहुत काम किया है। अन्य प्रान्तों के काम करनेवालों में राजनीतिक प्रवृत्ति अधिक

है, इसीलिए वे शिक्षा में भी भाग ले रहे है। काशी और पटना के लिए मैं भी निश्चिन्त हूं। पर श्री एण्डरूज के उत्तर में मैं यह कहना चाहता हूं कि और स्थानों में भी यह काम राजनीति की दृष्टि से नही किया जा रहा है, धार्मिक दृष्टि से किया जा रहा है। हम लोगों को असहयोग को सफल करने में अपना चित्त रखना चाहिए। हम लोग विद्या भी ऐसी ही चाहते है कि एक वर्ष मे स्वराज्य प्राप्त हो सके। यह भी विचार करने की वात है कि स्वराज्य कैसे मिल सकता है। सरकारी सहायता से चलनेवाले विद्यालयों का त्याग सम्भव है। लोग कहते है कि सरकार की कृपा से मिलने वाले अनाज का त्याग हम क्यों नही कर देते? मै इससे सहमत हूं। पर यह सहज नही है। विद्या तो अन्य स्थानों में भी मिल सकती है। वावू भगवानदास ने अभी सीता-हरण की कहानी सुनाई। भूमि का स्वामित्व हमारे हाथ मे नही है। वह अपरिहार्य है। अपरिहार्य को परिहार्य न करना क्षम्य है। पर शिक्षा अपरिहार्य नही। यदि उसको छोड़ देने पर वदले में कुछ भी न मिले तो भी हमें सरकारी विद्यालय छोड़ देना चाहिए। आज हमको रावण राज्य के नेता क्या सुनाते है। वे कहते हैं, हम आपको साथ रखकर चलना चाहते हैं। वर्मा से क्रेडाक साहव कहते है कि हम शस्त्र नही चलाते। हमको उन्हे कह देना चाहिए कि हम आपके साथ नही रहना चाहते, मजवूरी से आपका साथ दे रहे है। अली भाइयो का कहना है कि यदि हमें यहां कुरान पढ़ने के लिए भी हृदय की शुद्धता नही मिल सकती तो हमें हिजरत करना चाहिए, अर्थात् उन्होंने राज्य का त्याग करने के लिए कहा है। तुलसीदास ने भी मलिन राज्य का त्याग करने के लिए कहा है। पर हम अभी उसका सर्वथा त्याग नही कर रहे है; सत्ता को भी अभी मौका देगे। हम अपने चित्त को समझायेंगे कि क्या इस राज्य को मिटाने या दुरुस्त करने का कोई दूसरा उपाय नही है। यदि है तो ३० करोड़ लोगों के हिजरत करने की क्या आवश्यकता है। थोड़ा यज्ञ ही काफी है। इसीलिए इस विद्यापीठ की स्थापना हो रही है। हमें विद्या-जैसे पुण्यदान को मलिन हाथों से नही लेना चाहिए। जितने विद्यालय सरकार के असर में है, उनसे हमे विद्या नही लेनी चाहिए। जिस विद्यालय पर उसकी ध्वजा फहराती है, वहां विद्यादान लेना पाप कर्म है। आप सवको निमन्त्रण है कि यदि आप उसे पाप समझते है तो यहां चले आइए। केवल इस खयाल से न आइए कि वहां शिक्षा वुरी है और यहां अच्छी मिलेगी। इससे आपको पश्चात्ताप होगा। वहां की शिक्षा की वुराई हम भी मानते है। एक तो वहां अंग्रेजी में शिक्षा दी जाती है। अंग्रेजी हमारी मातृभाषा नही है। हमारी राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी है, जिसे २१ करोड़ आदमी वोलते हैं। अंग्रेजी को हम मातृभाषा का स्थान नहीं देना

चाहते, पर उसे त्यागना भी नहीं चाहते। वह बड़ी ओजस्वी भाषा है। उसका व्यवहार बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उसे सीखिए। हमारी मातृभाषा स्थानच्युत हो गई है और उसका स्थान दूसरी भाषा ने ग्रहण कर लिया है, और अब हमें उसे पुनः अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करना है।

ऐसी ही और बहुत सी त्रुटियां हैं, पर उन्हें दूर करने और नई कार्य-प्रणाली स्थिर करने के लिए हम ठहर नहीं सकते। हम उस झण्डे के नीचे नही रह सकते, जिसको सलाम करने के लिए हमारे लड़के मजबूर किये गये थे।[1] विद्यार्थियो, आप अपना विचार स्थिर कर लें। यदि वह त्याज्य है तो वहां की गीता-कुरान सब छोड़िए। यहां आपको वे विशाल भवन नही मिलेंगे, यहां न मकान हैं, न बड़ा मैदान। झोपड़ी में रह कर काम करना अच्छा है। महल में झण्डे की सलामी बुरी है। जो विद्यार्थी आगे आना चाहते हैं, उन्हें स्पष्ट कहना चाहिए। विद्यालयो की दुरुस्ती करना मेरा काम नहीं है, उसके लिए मुझे वक्त नही। यदि हमारे विद्यालय खुलेंगे तो विद्या अपने-आप पवित्र हो जायगी। मैं यहां आ गया हूं, इसका कारण यह है कि बाबू भगवानदास और बाबू शिवप्रसाद के दिलों में असहयोग की प्रतिष्ठा हो गई है। असहयोग को बढाने के लिए ही इस विद्यापीठ की स्थापना की गई है। असहयोग ही हमारे लिए एकमात्र शास्त्र है। तत्वज्ञान, मजहबी ज्ञान आदि शास्त्र नहीं हैं। यहां वणिक् बुद्धि का काम नही है। उसे हम हटाना चाहते है, उच्च करना चाहते हैं। अगर हम आज सेवा करते हैं तो स्वार्थ से, अपनी स्त्री और बच्चों को सुख पहुँचाने की लालसा से करते है। हमको राष्ट्र की सेवा करनी चाहिए। राष्ट्र के लिए हम सब काम करेंगे। हमें व्यापार को जुआ नही बनाना है। हम हिन्दुस्तान को पुण्यभूमि बनायेंगे; यहां से हर साल ६० करोड़ रुपये कपड़ों के लिए विदेश चले जाते हैं। इसके रोकने का यहां तरीका बताया जायगा। सीता (भूमि) की स्थापना तो लंका से लाकर करनी है, पर यदि वस्त्र-हरण को नहीं रोक सकते तो हमने क्या किया? भूमि को अपना करना नामुमकिन है, पर वस्त्र नहीं छिनने देना चाहिए। हम सबको प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि विदेशी वस्त्र धारण करना महापाप है। हिन्दुओं और मुसलमानों को यह बात सुनाने में बड़ा सुभीता है क्योंकि संयम और त्याग दोनों का धर्म है। विदेशी कपड़ा पहनना पाप है। पहला धर्म चर्खा चलाना है। विद्यालय को चलानेवाले इसे याद रक्खेंगे। हम लोग विद्यार्थियों के जरिये ६० करोड़ रुपया बचा सकते हैं। उसको बचाइए। विद्यार्थी यही करें। इसी से हमारी आर्थिक शुद्धि होगी।

---

१. सन् १९१९ में मार्शल ला के दौरान, पंजाब में।

दूसरा कर्त्तव्य अपनी मातृभाषा को विकसित करना है। इसे न लिख-पढ़ सकना शर्म की बात है। जो-कुछ अंग्रेजी में तालीम मिली है, उसे मातृभाषा में हज़म कीजिए। हिन्दुओं और मुसलमानों की, सेवा कैसे हो सकती है, सो सीखना है। हमें उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियां सीखनी चाहिए। हमे ऐसी हिन्दी चलाना है, जिसमे संस्कृत और उर्दू मिली हो, जिससे हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के हृदय में प्रवेश कर सके। अंग्रेज कहते है कि यह मेल दिखावा-मात्र है। हिन्दुओ और मुसलमानों का मेल कभी नही हो सकता। यह केवल अपने-अपने मतलव के लिए है। जहां मतलव सिद्ध हुआ कि फिर वही हालत हो जायगी। पर यह व्यर्थ है। यदि हिन्दू और मुसलमान परस्पर रक्षा के लिए कटिवद्ध है, तो यह नही हो सकता। गुरु विद्यार्थी को खीच सकता है। वावू भगवानदास ऐसे गुरु है। सारा भारत आपकी विद्वत्ता को जानता है। जिस समय गुजरात मे राष्ट्रीय विद्यालय खुल रहा था उस समय मैने आपसे प्रार्थना भी की थी कि आप काशी छोड़कर थोड़े दिन के लिए गुजरात आ जायँ। वह आपके आचार्य है। मैं उनसे दीनता-पूर्वक प्रार्थना ही कर सकता हूं। कृपलानी तो हमारे छोटे भाई है। उनको तो मै हुक्म देने का भी अधिकार रखता हूं। अन्य महाशय को, जिनका नाम वावू भगवानदास ने लिया है, मैं स्वयं नही जानता। इस कारण यहां मै प्रार्थना करता हूं कि काशी अव ऐसी होनी चाहिए कि सारे भारत की इस पर दृष्टि हो। हमें मालवीय जी का मन जीतना चाहिए। मालवीय जी ने मुझसे कहा है कि अगर उनके चित्त मे विश्वास हो जाय कि ऐसा करना ठीक है तो वह हिन्दू विश्वविद्यालय छोड देगे। उनका कहना है कि उसे छोडने से हिन्दुस्तान की हानि है। इस विद्या-लय को आप लोग सुशोभित कीजिए। इससे यह यज्ञ-कार्य जल्दी ही यशस्वी हो कर चलने लगेगा। हमारे माननीय भाई मालवीय जी भी तब हमारी वात समझ जायँगे। अगर यहां हिन्दू-मुसलमान मिलकर काम करेगे तो आपकी मार्फत हमे स्वराज्य मिल जायगा। इसी अभिलाषा से मैंने शिवप्रसाद और जवाहरलाल से कहा था कि इस कार्य का आरम्भ मेरे हाथ से कराइए। मेरी क्या अपेक्षा है, मैंने आपको वता दी। प्रभु से मेरी प्रार्थना है दिन-प्रति-दिन इस विद्यापीठ की वृद्धि हो और यह विद्यालय इस राक्षसी सल्तनत को मिटाने या इसे दुरुस्त करने में हिस्सा ले।

—हिन्दी। काशी, १०।२।१९२१। 'आज' ११।२।१९२१।]

४६. भाषण : लखनऊ की खिलाफत-सभा में

कल खिलाफत सभा में गांधी जी ने उर्दू में बोलते हुए कहाकि "अक्तूबर तक शेष सात महीनों में वह खिलाफत प्रश्न का निपटारा कर लेंगे तथा स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। वह तलवार तो नहीं खींच सकते किन्तु स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर तलवार खींचने की शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। पहले वाइसराय उन पर हँसा करते थे कि किन्तु अब वह उनके साथ सहयोग करना चाहते हैं।" गांधीजी ने लोगों को ब्रिटिश माल का बहिष्कार करने तथा विदेशी कपड़ों को त्यागने की सलाह दी और बताया कि इसके जरिए वे दूसरे ही दिन स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।[1]

वकीलों और विद्यार्थियों के सम्बन्ध में हमें जो कुछ करना जरूरी था उतना हम कर चुके। उस दिशा में अब कोई विशेष प्रयत्न करने की जरूरत नहीं रही। हम अपनी आवाज जहां तक पहुँचा सके हैं, उससे मैं सन्तुष्ट हूं। जिन्हें हम अपनी बात मानने के लिए राजी नहीं कर सके हैं, वे अपनी इच्छा से सहयोग करना चाहे तो करे। वकालत करनेवाले वकीलों और सरकारी विद्यालयों मे जानेवाले विद्यार्थियों की कोई प्रतिष्ठा नहीं रही। उनमें से अधिकांश स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे गलत काम कर रहे हैं। हमारे लिए यही काफी है। वकीलो तथा सरकारी स्कूलों में पढ़ाई जारी रखनेवाले छात्रों ने जिस हद तक अपनी प्रतिष्ठा खो दी है, उसी हद तक सरकार की भी प्रतिष्ठा कम हो गई है।[2]

—लखनऊ, २६।२।१९२१। अंग्रेजी और गुजराती से। अमृत बाजार पत्रिका, २।३।१९२१। न० जी० १७।४।१९२१। सं० गां० वां०, खण्ड १९ पृ० ३९१।]

४७. भाषण : मानपत्र के उत्तर में, इलाहाबाद में[3]

आप लोगों ने जिस उत्साह से मेरा स्वागत किया है उसके वास्ते आप लोगों को अनेक धन्यवाद। मैं आज के पहले इतनी बार प्रयाग आया हूं कि मुझे यह

---

१. यह अनुच्छेद 'अमृत बाजार पत्रिका' से लिया गया है।
२. यह अनुच्छेद 'नवजीवन' की गुजराती रिपोर्ट से लिया गया है।
३. यह मानपत्र इलाहाबाद जिला-सम्मेलन में नागरिकों की ओर से भेंट किया गया था जिसे पं० मोतीलाल नेहरू ने पढ़ा था और मौ० मुहम्मद अली ने

अपना घर ही सा प्रतीत होता है। मेरी हाल की यात्राओं में मुझे कई नगरपालिकाओं की ओर से अभिनन्दन पत्र दिये गये हैं। अभिनन्दन-पत्र देने का अर्थ यही होता है कि वे असहयोग आन्दोलन से सहमत हैं और इस स्वराज्य-संग्राम में हमारे साथ हैं। आपकी नगरपालिका के सदस्यों की राय में मेरे राजनीतिज्ञ होने के कारण नगरपालिका-द्वारा मुझे अभिनन्दनपत्र दिया जाना उचित न होगा। एक प्रकार से वे ठीक कहते हैं, परतु उनके इन विचारों में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। मेरी इच्छा है कि नगरपालिकाएं अपनी शक्ति को समझें और केवल बँधे-बँधाये कामों को पूरा करने की मशीनें न बनी रहें। परन्तु लोगों को यह बिल्कुल नहीं सोचना चाहिए कि उन्होंने मेरे प्रति किसी वैमनस्य के कारण अभिनन्दनपत्र नहीं दिया। अभी तक अभिनन्दनपत्र, जो मुझे या मौ० शौकत अली को दिये गये हैं, वे प्रयाग की अपेक्षा छोटी नगरपालिकाओं द्वारा दिये गये हैं। बड़ी नगरपालिकाओं को एकाएक अपना ढंग बदलना कठिन हो जाता है।

बहरहाल, हम लोगों को इस मामले पर ध्यान नहीं देना चाहिए और कांग्रेस-द्वारा निर्धारित काम में जुटे रहना चाहिए। हम लोगों को इसी वर्ष स्वराज्य लेना और खिलाफत और पंजाब के प्रति किये गये अन्याय का परिमार्जन कराना है। परन्तु यह केवल कान्फ्रेंसों, वक्तृताओं, कविताओं और अभिनन्दनपत्रों से नहीं होगा। यदि इस प्रकार लक्ष्य प्राप्त करना सम्भव होता तो यह काम केवल कांग्रेस के द्वारा ही हो जाता। एक समय ऐसा भी था कि साल में एक बार कांग्रेस और कान्फ्रेन्स के द्वारा कुछ माँगे सरकार के सामने पेश कर दी जाती थीं और हम लोग उतने से ही सन्तुष्ट हो जाते थे। यदि साल भर में सरकार ने उसको पूरा न किया तो अगले साल के वार्षिक अधिवेशन में फिर विरोध-सूचक प्रस्ताव पास कर दिये जाते थे और मामला वहीं खत्म हो जाता था। परन्तु अब समय बदल गया है और लोगों को अपने ही प्रयत्नों से अपने उद्देश्य पूरे करने हैं। कांग्रेस ने एक व्यावहारिक कार्यक्रम उनके सामने रख दिया है और अब जनता को अपने उद्देश्य पूरे करने के लिए उस पर अमल करना है। यदि हम लोग कान्फ्रेंसों, कविताओं

सभा की अध्यक्षता की थी। सम्मेलन में प्रतिनिधियों और किसानों के अतिरिक्त कस्तूरबा, लाला लाजपत राय, मौ० शौकत अली, पं० रामभजदत्त चौधरी, मौ० हसरत मोहानी, डा० सैफुद्दीन किचलु, स्वामी श्रद्धानन्द, पुरुषोत्तमदास टण्डन, सरोजिनी नायडू और जवाहरलाल नेहरू उपस्थित थे।

और अभिनन्दन-पत्रों इत्यादि को छोड़ दें तो कोई हानि नहीं होगी, परन्तु यदि हम लोग कांग्रेस के कहने पर नहीं चलेंगे तो कदापि स्वराज्य नही मिलेगा।

अपने अभिनन्दन-पत्र में आप लोगों ने यह भी कहा है कि इलाहावाद का एक नाम और है फकीरावाद। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि यह नगर पूर्ण रूप से उस नाम के योग्य हो। इस आन्दोलन को सफलीभूत बनाने के वास्ते फकीरों यानी धार्मिक मनुष्यों की आवश्यकता है और मै आशा करता हूं कि इसमें आपका नगर अगुवाई करेगा।

कांग्रेस चाहती है कि आप लोग तीन काम करे अर्थात् कांग्रेस के १ करोड़ सदस्य बनाना, तिलक स्वराज्य कोप के वास्ते १ करोड़ रुपया इकट्ठा करना, और भारत के घरो मे २० लाख चर्खे चलवाना। मैं यह जानना चाहता हूं कि आप लोगों ने इसके लिए कितना काम किया है। पहले अंश के मम्बन्ध में मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि जितने लोग यहां उपस्थित हैं वे सभी कांग्रेस के सदस्य हैं, परन्तु मै चाहता हूं कि आप लोग और अधिक कार्य करें और अपने नगर की जन-संख्या के अनुसार अंश चन्दे में इकट्ठा करके दें।[1]

मुझे यह जानकर खेद हुआ कि प्रयाग से तिलक स्वराज्य-कोष मे अभी काफी चन्दा जमा नहीं हुआ है। यदि प्रयाग गरीव है तो मैं यह नही चाहता कि सव लोग रुपये-ही-रुपये दें। यदि प्रान्त का हर एक आदमी दो-दो पैसे भी दे तो इलाहा-वाद का हिस्सा काफी हद तक पूरा हो जायगा। प्रयाग तीर्थ-स्थान है जहां वहुत से तीर्थयात्री आते हैं। आप लोग उनकी सहायतार्थ सेवा-समिति वनाइए और उनकी सहायता करने के वाद उनसे तिलक स्वराज्य-कोप के वास्ते चन्दा माँगिए। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि इस प्रकार मेहनत की जाय तो आप लोग सुगमता से यदि अधिक नही तो अपने हिस्से की रकम इकट्ठी कर ही लेंगे।

फिर २० लाख चर्खे चालू कराने है। मैं यह नही चाहता कि आप लोग चर्खों को अपने घरों में रखकर इनकी सिर्फ पूजा करें; आप लोगों को मौ० मुहम्मद अली के शब्दों में उनसे वही काम लेना चाहिए जो अंग्रेजी सरकार मशीनगनों से लेती है। यदि २० लाख चर्खे कम-से-कम ४ घण्टे रोज चलें तो मुझे विश्वास है

---

१. पायनियर के १२।५।१९२१ के अंक में प्रकाशित विवरण के अनुसार उन्होने जानना चाहा कि इलाहावाद जिले और नगर के कितने लोग कांग्रेस में शामिल हो चुके हैं और उन्होंने अनुरोध किया कि श्रोताओं में ऐसे व्यक्ति सम्मेलन की कार्रवाई समाप्त होने से पहले अपने नाम भेज दें।

कि थोड़े ही समय में किसी भी हिन्दुस्तानी को देश का बना कपड़ा पहनने में लज्जा नहीं आयेगी।

अपने हाल के दौरे में मौ० शौकत अली और मैंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता देश को बतलाई और यदि इतने पर भी देश ने इस आवश्यकता को न समझा हो तो चाहे कितना भी प्रचार किया जाय, लोग इसको नहीं समझ सकेंगे। हम लोगों ने यह बात भी अच्छी तरह समझा दी है कि हमारा कार्यक्रम पूर्ण रूप से अहिंसक है। मुझे देखकर खेद हुआ है कि कुछ किसान लोग इस बात को भूल जाते है। मैं इसकी निन्दा करता हूँ। आप लोगों को पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि हमें अपने दुश्मनों के प्रति भी सख्त भाषा का प्रयोग नही करना चाहिए। हिंसा का सहारा लेने के बदले आप लोगों को कष्ट-सहन और आत्म-त्याग की भावना पैदा करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए और यदि आप लोगों मे से कुछ को जेलखाने भी भेज दिया जाय तो क्रोधित होकर कोई जुलूस वगैरह नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि जब आप लोग जेलखाने जाने के लिए तैयार हो जायँगे तभी स्वराज्य का मार्ग सुगम होगा। मालेगांव के निवासियो ने बहुत ही बुरा किया है और आप लोगों को उससे सबक लेना चाहिए ताकि फिर कभी वैसा न होने पावे। यदि मैं या मौ० शौकतअली या मुहम्मद अली या और कोई नेता गिरफ्तार किये और जेलखाने भेजे जायँ तो भी आप लोगों को किसी थानेदार की हत्या न करनी चाहिए, चाहे वह हमारे कुछ आदमियों को जान से भी मार दे। जब आप लोगों में इस प्रकार की भावना आ जायगी और आपके हृदय से जेल का, जो मेरे लेखे कार्यकर्ता का विश्राम-स्थल है, भय निकल जायगा, तब स्वराज्य बहुत समीप आ जायागा।

मुझे नही मालूम कि सरकार मौ० मुहम्मद अली को जेल में बन्द करने के लिए इतनी उत्सुक क्यो है? मैं भी तो अक्षरशः वही कहता हूँ जो मौलाना कहते है। मौ० मुहम्मद अली का अपराध यह बतलाया जाता है कि उन्होंने यह कहा है कि यदि अफगान लोग भारत पर आक्रमण करेगे तो वह उनके पास यह सन्देशा भेजेंगे कि हिन्दुस्तानी लोग धन या जन से ब्रिटिश सरकार की सहायता नहीं करेंगे। मैं उनके इस कथन का अक्षरशः समर्थन करता हूँ। मैं अपने हिन्दू भाइयों से कहता हूँ कि वे इस अफगानी हौए से न डरें क्योंकि कोई भी धर्म यह नही सिखाता कि उसके अनुयायी कायर हों। मै जानता हूँ कि पठान लोग बड़े शक्तिशाली है परन्तु कोई पठान मुझे गोमांस खाने या अपने धर्म के विरुद्ध काम करने को बाध्य नही कर सकता। वर्तमान सरकार से हमारा विश्वास उठ गया है और जबतक खिलाफत और पंजाब के विषय में यह सरकार न्याय नही करेगी तबतक उसे

हिन्दुस्तानियों से अफगानिस्तान या और किसी शक्ति के मुकावले सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए। जिस सरकार के विरुद्ध हमने आन्दोलन उठाया है वह जवतक अपने को सुधार न ले तवतक हम लोगों से सहायता की आशा किस प्रकार कर सकती है? और जिन लोगों ने हम लोगों को पेट के वल रेंगाया है वे लोग कैसी ही कठिनाई क्यों न पड़े हमसे सहयोग की आशा नही कर सकते। परन्तु हम लोगों को हर हालत में अहिंसक और शान्तिप्रिय रहना चाहिए। हम लोगों को कितना भी भड़काया जाय, हमको किसी की हत्या नही करनी चाहिए, क्योंकि हत्या करने से हम स्वराज्य पाने का हक खो देंगे।

अन्त में मुझे आपसे यह कहना है कि इस समय देश के हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों का केवल एक धर्म है—पंजाव और खिलाफत के मामले में न्याय हासिल करना और देश को गुलामी से वचाना। यदि आपको अपने देश की सेवा करनी है तो आपको कांग्रेस के नेतृत्व में चलना चाहिए और उसके आदेशों का पालन करना चाहिए, चाहे वे हमारे महत् उद्देश्य को देखते हुए कितने ही महत्वहीन क्यों न लगें।

अन्त में भगवान से मेरी यह प्रार्थना है कि वह हम लोगों को कांग्रेस के नेतृत्व में चलने की शक्ति दे।[1]

—हिन्दी। इलाहावाद, १०।५।१९२१। 'आज', १२।५।१९२१। सं० गां० वां० खण्ड २० पृ० ८१-८४।]

४८. सन्देश : अलीगढ़ की जनता को

१६ जुलाई, १९२१

महात्मा गांधी ने इस आशय का एक सन्देश भेजा है कि अलीगढ़-काण्ड से उनको मार्मिक व्यथा हुई है। उन्होने आशा व्यक्त की है कि मंजिल के इतने निकट पहुँचने पर अव अलीगढ़ की जनता उत्तेजना दिखा कर या हिंसा का सहारा लेकर या असहयोगियों अथवा अन्य किन्ही लोगों द्वारा की गई हिंसा की जिम्मेदारी लेने

---

१. इस भाषण का मिलान अमृत वाजार पत्रिका १३।५।१९२१ में प्रकाशित विवरण से भी किया गया है।

से इन्कार करके कोई कमजोरी नही दिखायेगी और इस तरह घड़ी की सुई पीछे की ओर घुमाने की कोशिश नहीं करेगी।[1]
— १६।७।१९२१। अमृत बाजार पत्रिका, १७।७।१९२१।]

४९. भाषण : मुरादाबाद की सार्वजनिक सभा में

सज्जनो,

संयुक्त-प्रान्त में सरकार की ओर से जगह-जगह जो अमन सभाएं स्थापित की जा रही हैं, मेरी समझ में अब तक यह नही आया कि उनका उद्देश्य क्या है? यदि इनका उद्देश्य वास्तव में अमन कायम रखना है, तो ये सभाएं हमारे साथ मिल कर क्यों काम नहीं करतीं? हमारे असहयोग आन्दोलन का वास्तविक उद्देश्य भी तो अमन कायम रखते हुए अपने अभीष्ट स्वराज्य को प्राप्त करना है। जब दोनों का अभिप्राय एक है तब फिर उक्त सभाओं के अलग अस्तित्व की क्या आवश्यकता रह जाती है? इसको आपही विचार कर स्थिर करें। किन्तु हाँ, यदि यह अमन सभा के नाम से लोगों में बदअमनी फैलाती हो, लोगों को अनुचित तैश दिलाती हो और लोग झगड़ा-फसाद करने को उद्यत होते हों, और ये सभाएँ अपने नाम का दुरुपयोग करके कलंकित होती हो, तो मैं आपसे कहूँगा कि ऐसी अमन सभाओं को दूर से ही नमस्कार कीजिए। मृगतृष्णा के पीछे मत दौड़िए, जिससे पीछे पछताना न पड़े। कहना मेरा काम है, इतने पर भी जो सज्जन न समझें वे स्वतन्त्र हैं। वे अपनी इच्छानुसार काम करें।

[आगे गांधीजी ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार तथा स्वदेशी पहनने पर जोर दिया और कहा]:

यद्यपि खादी अभी मँहगे दामों में मिलेगी तो भी मलमल के मुकाबले उसमें किफायत ही रहेगी, क्योंकि जहां एक वर्ष में मलमल के आप आठ कुरते फाड़ेंगे वहां खादी के चार कुरते भी मुश्किल से फटेंगे। कई बरस से अनवरत खादी पहनने के कारण यह मेरा पक्का अनुभव है। यदि आप लोगों ने मेरे कथनानुसार सच्चे मन से स्वदेशी वस्त्र अपनाया, चर्खा काता, विदेशी कपड़ों को गब पर पड़े

---

१. यह सन्देश उर्दू और हिन्दी दोनों में प्रचारित किया गया था और स्थानीय नेताओं ने अलीगढ़ काण्ड की सचाई का पता लगाने की बड़ी मुस्तैदी से कोशिश की थी।

वस्त्र की नाईं त्याग दिया तो दयामय जगदीश कभी हमारे प्रति अप्रसन्न न रह सकेंगे, शीघ्र ही उनका आसन चलित होगा, और स्वराज्य प्राप्त कराने में वह हमारे सहायक होंगे।

—हिन्दी। मुरादाबाद, ६।८।१९२१। 'आज', १०।८।१९२१।]

५०. भाषण : लखनऊ में

[गांधी जी ने अमीनुद्दौला पार्क लखनऊ की विराट सार्वजनिक सभा में, जिसमें एक लाख के लगभग श्रोता थे, यह भापण ७।८।१९२१ को दिया था। भापण की पूरी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। 'आज' की रिपोर्ट से निम्नलिखित अवतरण ले लिये गये हैं।—सम्पा०]

७ अगस्त, १९२१

महात्मा जी ने अपने भाषण में अहिंसात्मक असहयोग तथा हिन्दू-मुसलमानों की एकता पर अधिक जोर दिया। उन्होंने कहा कि मै आप लोगों से इतना ही कहता हूं कि किसी प्रकार का असन्तोष तथा उद्दण्डता हम लोगों के मन्तव्य में बाधक होगी। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार ही खिलाफत की बुराइयों को हटाने तथा अंकारा[1] की मदद के लिए एक मात्र उपाय है। आप लोग संयुक्त प्रान्त की सरकार की ज्यादतियों को देखिए। यह सूबा इस दमन-नीति में अन्य सूबों से बढ़ा-चढ़ा है। किन्तु फिर भी मैं शान्तिपूर्वक रहने के लिए ही आप लोगों से कहूंगा। यदि आप लोग पचास हजार ऐसे काम करने वालों की एक फौज तैयार कर लें जो स्वतन्त्रता की रक्षा का फाटक बनने को तैयार रहें तो मैं आशा करता हूं कि कोई फौज इसे न हरा सकेगी और तीन महीने के अन्त में या तो यह सरकार को सुधार देगी या समाप्त कर देगी। मेरा फिर से यही कहना है कि हिन्दू-मुसलमानों की एकता पर बड़ा ध्यान रखना चाहिए। दोनों से मेरा यही कहना है कि एक-दूसरे के साथ सहानुभूति रक्खें। आनेवाली बकरीद पर कोई दंगा न होने पाये। हिन्दुओं से मेरा यह कहना है कि यदि वे गौवों को बचाना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि बिना किसी विचार या लालच के खिलाफत के मामले में मुसलमानों की मदद करें।

—हिन्दी। लखनऊ, ७।८।१९२१। आज, १०।८।१९२१।]

---

१. उस समय तुर्की की राजधानी।

५१. भाषण : कानपुर में

[६ अगस्त १६२१ को गांधी जी ने कानपुर में कई भापण किये थे। महिलाओं की एक सभा में स्वदेशी पर तथा मारवाड़ी विद्यालय में आयोजित कपड़े के व्यापारियों की सभा में विदेशी वस्त्र-वहिष्कार पर उनका भापण हुआ था। खेद है, इनका विवरण सरकारी अभिलेखागार में भी नहीं है। जिस भाषण की रिपोर्ट यहां दी जा रही है वह कानपुर के नागरिकों द्वारा प्रस्तुत अभिनन्दनपत्र के उत्तर में दिया गया था। यह भी पूरा प्राप्त नही है।—सम्पा०]

महात्मा जी ने आरम्भ में सबको धन्यवाद देते हुए कहा कि आप लोगों के अभिनन्दन पत्र में त्रुटि है। आप लोगों ने मौ० मुहम्मद अली का नाम इसमें नहीं लिया, इससे ऐक्य में फर्क पड़ता है। इस समय हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की परम आवश्यकता है। इसी ऐक्य पर खिलाफत तथा पंजाब के अन्यायों का निपटारा और अन्त में स्वराज्य की सिद्धि निर्भर हैं। गोरक्षा का प्रश्न भी खिलाफत पर ही निर्भर है। हिन्दुओं को विना किसी वदले के खिलाफत के वास्ते आत्मत्याग करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। मैं नित्य प्रातःकाल गौओं की रक्षा के लिए प्रार्थना करता हूँ। गोवध हिन्दुओं के पाप का फल है। और उन्हीं पापों के कारण हमारे साथ हमारे भाइयों की सहानुभूति नहीं है। हम लोगों को अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि खिलाफत प्रश्न का सन्तोषजनक निर्णय हो। खिलाफत ही हिन्दू-मुसलमानों को एक करेगी।

इसके साथ-साथ शान्ति और अहिंसा की भी बड़ी आवश्यकता है। हम लोगों को अपने क्रोध को जीतना चाहिए और ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि हम लोगों में से क्रोध का लोप हो जाय।

स्वदेशी के बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। महिलाओं का धर्म है कि वे खादी ही पहिनें। उनको महीन वस्त्रों का त्याग कर देना चाहिए। मुझे पूर्ण आशा है कि पहिली जनवरी तक स्वराज्य अवश्य मिलेगा। यदि उस समय तक स्वराज्य न मिला तो जीवन भारी हो जायगा। हम लोग स्वावलम्वन भूल गये हैं। हम लोगों को यह सीखना है कि मरना किस तरह चाहिए। यदि गोली चले तो उसे हमें अपनी छाती पर रोकना चाहिए न कि उसे पीठ देनी चाहिए। यदि अंग्रेज हमारे देश में रहना चाहते हैं तो उन्हें सहयोगी तथा सेवकों की ही तरह रहना सीखना पड़ेगा। वे अव मालिक की हैसियत से यहाँ नहीं रह सकते। महिलाओं को विदेशी वस्त्र का वहिष्कार तथा चर्खा चलाना अपना धर्म समझना चाहिए

ताकि यदि मैं जेल में रहूँ या फाँसी पर चढ़ा दिया जाऊँ तब भी स्वराज्य अवश्य मिले।

—हिन्दी। कानपुर, ९।८।१९२१। आज, ११।८।१९२१, सं० गां० वां०, खण्ड २०, पृ० ५००-०१।]

५२. स्वदेशी का सवाल

['आज' के प्रतिनिधि की भेंट]

प्रश्न—यदि स्वदेशी वस्त्र का मूल्य बढ़ता जाय और विदेशी का घटता जाय तो उस हालत में हमारा धर्म क्या है?

उत्तर—स्वदेशी व्रत के माने यही है कि यदि विदेशी मुफ्त भी मिले तो हम नहीं ले सकते। जैसे रोटी बहुत मँहगी भी हो तो भी हिन्दू गोमांस नहीं खा सकता।

प्रश्न—यदि विदेशी सूत से भारत में कपड़ा तैयार किया जाय तो वह विदेशी होगा कि स्वदेशी?

उत्तर—वह विदेशी है।

प्रश्न—यदि किसी मिल में धन भारतीयों का लगा हो परन्तु उसके मैनेजर और उसका प्रवन्ध विदेशियों के हाथ में हो तो वह स्वदेशी कही जायगी या विदेशी?

उत्तर—वह विदेशी कही जायगी। स्वदेशी वही है जिसमें धन और प्रवन्ध दोनों भारतीयों का हो। स्वदेशी मिलों के बने कपड़े गरीबों के वास्ते छोड़ दिये जाने चाहिए। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को शुद्ध खादी पहननी चाहिए।

पहली अगस्त को बनारस की सभा में पुलिस की तरफ से जो ज्यादती हुई थी उसके सम्बन्ध में महात्मा जी ने कहा कि उनको क्षमा करना चाहिए, नहीं तो हम स्वराज्य के योग्य नहीं हैं।

—हिन्दी। कानपुर, ९।८।१९२१। 'आज', १०।८।१९२१।]

५३. भाषण : इलाहाबाद की सभा में[1]

संयुक्त प्रान्त में इस समय जो दमन हो रहा है मैं उसके बारे मे कुछ कहना

---

१. यह सभा स्वराज्य-सभा के मैदान में शाम को हुई थी। १०,००० से अधिक

चाहता था, किन्तु अब उसके विषय में कुछ कहे बिना केवल उन साथी कार्यकर्त्ताओं को बधाई देना चाहता हूं, जो जेल गये हैं। आपको यह समझ लेना चाहिए कि यदि आप में से कोई जेल चला जाय तो भी स्वराज्य के कार्य मे ढील नही होनी चाहिए। जबतक आप ऐसा अनुभव नहीं करते तबतक आप न तो स्वराज्य के योग्य है और न जेल के ही। यदि आप इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करना चाहते है तो आपको जेल और मृत्यु का भय छोड़ देना चाहिए। बल्कि आपको तो यह सोचना चाहिए कि निर्दोष व्यक्ति की हर जेल-यात्रा और मृत्यु स्वराज्य को अधिकाधिक निकट ले आती है। जबतक आप ऐसा अनुभव नही करते तबतक मैं समझूंगा कि आप अहिंसा और असहयोग के अर्थ को भलीभांति नहीं समझ सके है। असहयोग का अर्थ निष्क्रिय बैठे रहना नही है। इसका अर्थ है अपनी शक्ति को संगठित करना, क्योंकि असहयोग के लिए महान शक्ति की आवश्यकता है। मै ब्रिटिश झण्डे यूनियन जैक के सामने, जिसके सामने फौजी कानून के दिनों में पंजाब के बालकों को अपना सिर झुकाना पड़ता था, तबतक सिर नहीं झुकाऊँगा, जबतक सरकार अपने पिछले अत्याचारों के लिए पश्चात्ताप प्रकट करके क्षमा नहीं मांगती।

छोटे-छोटे बालक जेल भेजे जा रहे है और तिस पर भी यह घोषित किया जा रहा है कि संयुक्त प्रान्त मे कही कोई दमन नहीं हो रहा है। संयुक्तप्रान्त की सरकार पंजाब-सरकार से कहीं अधिक चालाक है। उसने बड़े-बड़े नेताओं को नही छुआ, क्योंकि उसे डर था कि उनकी गिरफ्तारी से प्रान्त में अशान्ति फैल जायगी, किन्तु यह छोटे बालकों को कालकोठरी में बन्द करने की सजा दे रही है। यह दमन का भयानक तरीका है। दमन की प्रणाली में लोगो को भयभीत करना तथा उन्हे नैतिक रूप से गिरा देना भी आता है। किसानों पर भी इसी प्रकार का दबाव डाला जा रहा है। उन्हे अमन-सभा का सदस्य बनने तथा असहयोग आन्दोलन से अलग रहने को मजबूर किया जा रहा है। इसके लिए मैं उच्च अधिकारियों को दोषी ठहराने को तैयार नहीं, क्योंकि गवर्नर और उनके सहकारी यह बात जानते है या नही, इसका मुझे अभी तक निश्चय नही है। मै तो अब भी महमूदाबाद के राजा और श्री चिन्तामणि[1] तथा अन्य लोगों का सम्मान करता हूं। किन्तु

लोग शामिल थे और सभा की अध्यक्षता पं० मोतीलाल नेहरू ने की थी। इस सभा में मौ० मुहम्मदअली और स्टोक्स ने भी भाषण दिये थे।

१. उस समय अहमदाबाद के राजा तथा श्री चिन्तामणि दोनों सरकार के मिनिस्टर थे।

उनके हाथ भी पाप से पंकिल हो गये हैं, भले ही उन्होंने वे पाप जानबूझ कर या स्वेच्छा से न किये हों। अब वे सरकारी सदस्य बन गये हैं, इसलिए उनके दिमाग बदल गये हैं। उन्होंने घोषित किया है कि स्वयं असहयोगी ही अपने विरोधियों के खिलाफ हिंसा का प्रयोग कर रहे हैं। मैं इस आरोप से एकदम इन्कार नहीं करता, और इसीलिए मैंने अलीगढ़ तथा मालेगाँव की घटनाओं पर पश्चात्ताप व्यक्त किया है और हिंसक कार्यों की निन्दा की है। फिर भी मेरा विचार है कि कुल मिलाकर असहयोग का कार्य शान्तिपूर्ण ढंग से हो रहा है।

मैं चाहता हूं कि शान्ति की यह भावना प्रगति करे। सरकार आप लोगों को जेल में डाले या गोली से मारे तब भी आपको सरकारी अधिकारियों को बुरा-भला नहीं कहना चाहिए और न उनका सामाजिक रूप से बहिष्कार ही करना चाहिए। जब आप अपने ऊपर इतना नियन्त्रण प्राप्त कर लेंगे तब समझिए कि स्वराज्य आपका है और तभी पंजाब और खिलाफत के सम्बन्ध में आप न्याय प्राप्त कर सकेंगे। किन्तु ऐसा तबतक सम्भव नहीं जबतक कि हिन्दू और मुसलमान एक नहीं हो जाते। बकरीद आ रही है। यदि हिन्दू गाय को बचाना चाहते हैं तो वे खिलाफत की पवित्र अग्नि में अपनी बलि दे दें, किन्तु वे सौदेबाजी की भावना से ऐसा न करें। वे मुसलमान भाइयों से गोवध न करने का आग्रह भी न करें।

स्वदेशी की वकालत करने का अर्थ है प्रतिवर्ष ६० करोड़ रुपए की बचत, भुखमरी से पीड़ित अपने देशवासियों के लिए भोजन तथा अपनी स्त्रियों की पवित्रता की रक्षा। किन्तु इन सबसे बढ़ कर इसका उद्देश्य है सविनय अवज्ञा के लिए तैयारी करना। यदि आप स्वदेशी के मुद्दे को सितम्बर तक सफल बना देते हैं तो मैं समझूंगा कि आप सरकार को अन्तिम चेतावनी देने के लिए पर्याप्त समर्थ हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त इसका अर्थ दुनिया को यह बतला देना भी होगा कि भारत ने अपनी शक्ति को संगठित कर लिया है। मैं चाहता हूं कि आप अपने विदेशी वस्त्रों को जला दें। यदि आप स्मरना[1] की सहायता करना चाहते हैं तो आप अपने उतारे कपड़े न भेज कर वहां नकद और नये कपड़े भेजे। किन्तु यदि आप अपने काम में लाये हुए कपड़े ही भेजना चाहते हैं तो भी मैं आपत्ति नहीं करूंगा। किन्तु आप को तो अपने सभी विदेशी वस्त्रों का त्याग करना ही होगा। आप अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के निर्णयानुसार काम करें और कर्घे तथा चर्खे को अपनायें। अर्थात् आपको उन कपड़ों का आयात नहीं करना चाहिए,

---

१. तुर्की।

चाहे आपको अर्ध-नग्न ही क्यों न रहना पड़े। इससे आप पर स्वदेशी वस्त्रों का नाम लेकर विदेशी वस्त्र थोपने का खतरा मिट जायगा।

अब मैं यहां एकत्र विदेशी वस्त्रों के ढेर में आग लगाने जा रहा हूं। इसमें किसी के भी प्रति दुर्भावना की कोई बात मेरे मन में नही है। प्रेम, अहिंसा और शान्ति मेरा धर्म है। अन्त में मैं आशा करता हूं कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं इस दिशा में अधिक कार्य करेंगी इसलिए मैं उनसे अपील करता हूं कि वे इस कार्य में हाथ बटायें।[२]

—हिन्दी। इलाहाबाद, १०।८।१९२१। अंग्रेजी से। 'लीडर', १२।८।१९२१। सं० गां० वां०, खण्ड २० पृ० ५०२-०४।]

५४. भाषण : मथुरा में

[५।११।१९२१ को दिल्ली राजनीतिक सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए गांधी जी ने यह भाषण किया था। पं० मोतीलाल नेहरू सम्मेलन के अध्यक्ष थे।—सम्पा०]

५।११।१९२१

अक्तूबर खतम होते-होते स्वराज्य प्राप्त कर लेने के प्रश्न पर विचार करते हुए गांधीजी ने कहा कि मैंने यह कभी नही कहा था कि मै अकेले ही स्वराज्य-प्राप्ति के अनुकूल परिस्थिति पैदा कर सकता हूँ। जिन लोगों ने पिछली बार भारतीय कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से कांग्रेस द्वारा निश्चित किये गये असहयोग के कार्यक्रम को चलाते रहने की स्वयं ही प्रतिज्ञा की थी उन्ही लोगों पर अब यह दायित्व आता है। अब तो इस देश की जनता उन्ही से पूछ सकती है कि उन्होने अपनी प्रतिज्ञा पूरी क्यो नही की ? हमारे देश ने अभी तक यह सिद्ध करके नही दिखलाया कि उसमें स्वतन्त्रता को अर्जित कर लेने की सामर्थ्य आ चुकी है। केवल त्याग और अनुशासन का जो सीधा-सादा रास्ता था वह भी तै नही किया जा सका। केवल उसी से स्वराज्य मिल सकता था। अब तो इस देश पर ही निर्भर है कि वर्ष बीतते-बीतते शेष कार्यक्रम को पूरा कर लेने मे वह अपनी सारी शक्ति लगा दे। अगर ऐसा करने मे उसे सफलता मिल गई तो मै अपने जान की

---

२. अपने भाषण के बाद गांधीजी ने विदेशी वस्त्रों के विशाल ढेर की होली जलाई।

बाजी लगाकर यह आश्वासन दे सकता हूं कि इस वर्ष के अन्त तक हम स्वतन्त्रता हासिल कर लेंगे।

—हिन्दी। ५।११।१९२१। अंग्रेजी। 'हिन्दू', ११।११।१९२१। सं० गां० वां० खण्ड २१, पृ० ४१६।]

५५. भेंट : संयुक्तप्रान्त के कांग्रेस नेताओं से

३०।१२।२१

महात्माजी ने कहा:

"अभी सविनय अवज्ञा करने की जरूरत नहीं है। अभी इतना ही काफी है कि स्वयंसेवकों में नाम लिखाकर, फिर चाहे गिरफ्तार हों अथवा नहीं, अपने जिम्मे सौंपे काम को जारी रक्खें।

स्वराज्य प्राप्त करने के मेरे तरीके मौलाना हसरत मोहनी के तरीकों से बिल्कुल भिन्न हैं। अगर मैं अपने को इस लायक समझता तो फौरन पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर देता। क्योंकि ऐसी घोषणा के बाद फिर रेलों, डाकघरों एवं तारों तथा ऐसी ही अन्यान्य वस्तुओं का व्यवहार करना पाप होगा। अगर अधिकांश लोग हम लोगों के पक्ष में आ जायँ तो केवल तीन ही महीने में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है।

"अगर सब देशभाई मेरा साथ छोड़ दें, यहाँ तक कि मेरी पत्नी भी मुझसे अलग हो जाय, तो भी मैं अकेला ही काम करने को तैयार हूं।

"संयुक्त प्रान्त के गवर्नर श्री हरकोर्ट बटलर चाहते हैं कि फिर सन् १८५७ की तरह विद्रोह मचे और लोग सरकार की दुहाई देकर पुकार मचायें।

"अच्छा होता कि इलाहाबाद में राष्ट्रीय कोतवाली कायम करने का काम अभी बन्द कर दिया जाता। पर जब यह काम शुरू हो गया है तो इसे जारी रखना ही उचित है।

"मुझे खेद है कि अब तक संयुक्त-प्रान्त में स्वदेशी का प्रचार जितना चाहिए था उतना नहीं हुआ है। इससे मैं सन्तुष्ट नहीं हूं।

"कांग्रेस के दफ्तरों में स्वयंसेवकों की भरती का काम जारी रहना चाहिए। पण्डित मोतीलाल नेहरू चाहते हैं कि 'इण्डिपेण्डेण्ट' की प्रतियां हिन्दी और उर्दू भाषा में प्रकाशित की जायं, अतः स्वयंसेवकों को इसके प्रकाशन में पूरी मदद करनी चाहिए।

"हम लोगों को चोरों एवं डाकुओं के प्रति भी कदापि हिंसा का भाव मन में न लाना चाहिए। अहिंसा ही हम लोगों का एकमात्र व्रत होना चाहिए।

"जबतक हम लोग जेल जाने को तैयार न होंगे, जबतक हम मरने तक के लिए कमर न कसेंगे और क्रोध को वश में नही कर लेंगे, तबतक पंजाब पर किये गये अत्याचार तथा खिलाफत के प्रश्न कदापि हल न हो सकेंगे।

"स्वराज्य का अर्थ यह है कि सेना पर हमारा पूरा अधिकार हो।

"स्वयंसेवकों की सूची समाचारपत्रों मे प्रकाशित की जाय और कोतवाली भेजी जाय।

"स्वयंसेवक घूम-फिरकर खादी बेचें। उनकी वर्दी केवल एक मामूली चपरासी की होनी चाहिए। विदेशी कपड़ों की दूकानों पर धरना देने की जरूरत नही। शराब की दूकानो पर धरना जारी रहे।

"राष्ट्रीय स्कूलों को सूत कातने और कपड़े बुनने के कारखानों में परिणत करना चाहिए। इनमें अठारह साल के नीचे की उम्र के लड़के काम करें और स्त्रियां इनकी देखभाल करें।

"अठारह वर्ष से अधिक उम्र वाले जो छात्र एवं शिक्षक स्वयंसेवक बनने से इन्कार करे उन्हे स्कूलों से निकाल दिया जाय।

"जिनकी जायदाद जब्त हो जाय, वे प्रसन्नतापूर्वक उसका त्याग करें, क्योंकि ऐसी अत्याचारी सरकार के राज्य में जायदाद रखना ही पाप है। स्वराज्य मिलते ही फिर से जायदाद लौटा दी जायगी।"

—हिन्दी। इलाहाबाद, ३०।१२।१९२१। 'आज' १।१।१९२२।]

५६. भाषण : बलिया की जिला परिषद् में

१६ अक्तूबर, १६२५

लोगो से शान्त रहने का अनुरोध करने और मानपत्र भेंट करनेवाली संस्थाओं को धन्यवाद देने के बाद श्री गांधीजी ने कहा कि १६२१ में मैं बलिया आना चाहता था, लेकिन मुझे अफसोस है कि मैं न आ सका। तब मैंने पण्डित मोतीलाल नेहरु से यहां आकर आप लोगों को तसल्ली देने का अनुरोध किया था। अब चार साल बाद आप लोगों के बीच आकर मैं बहुत खुश हूं। अगर समय की कमी न होती तो मैं आप लोगों के साथ ज्यादा समय तक रहता। एक बात ऐसी है, जिससे मुझे दुःख पहुँचा है, और मैं उसे छिपाना नही चाहता। बलिया के निवासियों

की शक्ति में मुझे पूरा विश्वास है, लेकिन साथ ही मै यह भी मानता हूं कि कार्य-कर्त्ताओं की संगठन -क्षमता से ही शक्ति को नियन्त्रण में रखा जा सकता है। चूंकि मैं अब कमजोर और अशक्त हो गया हूं और भीड़ के शोरगुल को नही सह पाता हूं, इसलिए मैने उम्मीद की थी कि इस प्रकार की सभाओं से स्वभावत: मुझे जो तकलीफ होती है उसका अवसर नही आयेगा।

आगे बोलते हुए गांधी जी ने कहा कि "बलिया के कार्यकर्त्ताओं ने जो रचनात्मक कार्य किया है, उसे देखकर मुझे बहुत खुशी हुई है और उसके लिए मै उनको बधाई देता हूं। मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई है कि यह दोनों कौमें मिल-जुलकर रह रही है। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आपकी मित्रता की यह टेक पूरी हो और आप दूसरों के लिए इस दिशा में आदर्श स्थापित कर सके।" हिन्दुस्तान की गरीबी का जिक्र करते हुए महात्मा जी ने पूरे विश्वास के साथ कहा कि "गरीबी दूर करने के लिए चर्खे से बढ़कर कोई और कारगर उपाय नही है। बहुत-सी स्त्रियों को अपने जीविकोपार्जन के लिए पत्थर तोड़ने पड़ते है और मैं यह भी जानता हूँ कि कुछ ओवरसियर उनके साथ कैसा सलूक करते है। मैं अपने निजी अनुभव से बोल रहा हूं। आप लोगों से यही अनुरोध है कि विदेशी वस्त्रों का त्याग करके, चर्खा चलाकर आप भारतीय नारियों को सीता के समान पवित्र बनने में सहायता दें।'. खादी पहनो और चर्खे की शक्ति बढ़ाओ।" लोगों को मादक द्रव्यों, जुए और व्यभिचार से बचने की सलाह देते हुए उन्होंने कहा, "यादव-कुल के नाश का कारण यही था कि वे धर्म का त्याग करके जुए में लिप्त रहने लगे थे। आपने मुझे याद दिलाया है कि आपकी भूमि वाल्मीकि, गंगा और सरयू की भूमि है और आप भारत की सेवा करने को कटिबद्ध हैं। इसमें शक नही कि आपने १६२१ में जो कुछ भी सम्भव था, किया। लेकिन उन दिनों आपने जो गलतियाँ की है, उनके लिए आपको प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

अन्त में महात्माजी ने देशबन्धु कोष के लिए दान देने की अपील की, और कहा कि उसका उपयोग चर्खे के प्रचारार्थ किया जायगा। उन्होने भारत के पुनरुद्धार के लिए वास्तविक और ठोस काम करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

—हिन्दी। बलिया, १६।१०।१९२५। अंग्रेजी से। 'लीडर', २१।१०।१९२५।]

५७. भाषण : काशी विद्यापीठ में

शनिवार, १७ अक्तूबर, १९२५

बाबू भगवानदास, अध्यापकगण, विद्यार्थीगण, तथा भाइयो और बहिनो, यह सच है कि इस विद्यापीठ का आरम्भ मेरे हाथ से हुआ था, परन्तु विद्यापीठ की हस्ती आज भी बनी हुई है, इसका कारण एक तो है शिवप्रसाद जी की उदारता और प्रेम; उसे प्रेम या मोह कहो। दूसरा कारण है श्री भगवानदास जी का प्रेम। उनकी भावना के लिए मै मोह शब्द का प्रयोग नही कर सकता क्योकि वह कोई काम अपना कर्त्तव्य समझकर विवेकपूर्वक ही करते है। आज इन दोनों के उत्साह —एक के बुद्धिप्रयोग और दूसरे के द्रव्य प्रयोग से यह विद्यापीठ मौजूद है।

मुझसे पूछा गया है कि क्या अब भी राष्ट्रीय विद्यापीठो पर मेरा विश्वास है। सन १९२१ में मैंने विद्यार्थियों से जो यह कहा था कि आप सरकारी पाठशालाओं से निकल जायँ, क्या यह ठीक किया था या वह मेरी गलती थी? मै कई बार अपनी आत्मा से यह प्रश्न पूछ चुका हूं। आप जानते है कि मै गलती स्वीकार करने को लज्जा की बात नही मानता। और प्रायश्चित्त करने को भी तैयार रहता हूं। मैं अपनी गलती जनता के सामने स्वीकार कर लेता हूं। मैं अपनी आत्मा से अपने काम के अच्छे अथवा बुरे होने के बारे मे प्रश्न करता रहता हूं। मेरा तजुरबा है कि उससे जो ध्वनि निकलती है, वह सच्ची होती है। मुझे पता नही कि कभी उस ध्वनि से सच्चे न निकलने का मुझे अनुभव हुआ हो। इस सम्बन्ध में इतने कटु अनुभव के बाद भी यही ध्वनि निकलती है कि मै ठीक रास्ते पर था। सन् १९२१ मे जो कुछ हुआ वह योग्य ही था। विद्यापीठों का आरम्भ करना भी ठीक था। विद्यापीठों की स्थापना बालक-बालिकाओं के लिए आवश्यक है। हिन्दुस्तान में जितने विद्यापीठ स्थापित हुए उनमें से काशी, पटना, पूना और गुजरात, इन चार स्थानों के विद्यापीठ आज भी चल रहे है। उत्तम रीति से चल रहे है यह तो नही कहता, परन्तु मै चाहता हूं कि ये चलते रहें और उन्नति करें। उन्नति का अर्थ मैं यह नही करता कि उनमें हजार-हजार विद्यार्थी हों। मधुपुर में एक राष्ट्रीय अध्यापक ने मुझसे कहा कि विद्यार्थी नही मिलते। मैने उनसे कहा कि इससे आप निराश न हों। आप अपने दिल से पूछें, जिस सिद्धान्त पर आपने इसे चलाया है यदि आप उस सिद्धान्त पर अटल है तो एक विद्यार्थी रह जाने पर भी आप पाठशाला चलाते रहें। उनको संस्था का मोह था, इससे उनके दिल को आघात पहुँचा। हमारी तो यह प्राचीन प्रथा है कि चाहे किसी विद्यालय मे एक ही विद्यार्थी और एक ही अध्यापक हो किन्तु यदि दोनों में एक दूसरे पर श्रद्धा हो, गुरु समझे कि

विद्यादान अच्छा है और विद्यार्थी समझे कि यह मेरे उत्थान के लिए है, इससे मेरा इहलौकिक और पारलौकिक जीवन बनेगा तो वह विद्यालय चलता रहना चाहिए। यही बात इस विद्यापीठ पर भी लागू होती है। मैं श्री भगवानदास जी और श्री शिवप्रसाद जी से कहना चाहता हूं कि आप लोग भी संस्था के बारे में चिन्ता न करें। कांग्रेस के आदेश का बन्धन तो अब दूर ही हो गया है। यदि आप लोगों की भीतरी आवाज कहे कि इसको चलाना चाहिए तो इसे जीवन अर्पित कर दिया जाय। संस्कृत श्लोक भी है कि जो काम आरम्भ करो उसके लिए जीवन दे दो। परन्तु यह अर्द्ध सत्य है। क्या कोई शराब पीना आरम्भ करे तो जीवन-भर पीता ही चला जाय? शास्त्र ने यह बात श्रद्धा दृढ़ करने के लिए कही है। अगर आप अपने सिद्धान्त पर कायम है और नया प्रयोग करना चाहते हैं तो जनता के प्रतिकूल रहने की भी कुछ चिन्ता न करें। यदि विद्यापीठ से पांच अथवा एक भी विद्यार्थी ऐसा निकल सके जो अपना सारा जीवन हिन्दुस्तान के लिए अर्पण कर दे तो समझ लीजिए कि विद्यापीठ सफल हो गया। क्योंकि हिन्दुस्तान के लिए जीवन अर्पण करने की शिक्षा देना ही विद्यापीठ का ध्येय है। जबतक ध्येय सामने है तबतक विद्यार्थी ५ है या १ इसकी कोई फिक्र नही करना। ३५ वर्षो के अपने सार्वजनिक जीवन में यह मैं एक नहीं अनेक बार अनुभव कर चुका हूं कि यदि हमारी श्रद्धा दृढ़ रहे और उसके साथ हम प्रयत्न करते जायं तो लोग अधिकाधिक संख्या में हमारे साथ हो जाते हैं। इसलिए आप सिद्धान्त को समझ कर चलते रहें, इसी में हिन्दुस्तान का भला है। विद्यार्थियों से प्रार्थना है कि वे भी इस विद्यापीठ में संख्या के कम ज्यादा होने की चिन्ता न करें, आजीविका की भी चिन्ता न करें। आजीविका के लिए गारण्टी नही दी जा सकती, फिर भी शरीर से श्रम और सेवा करें तो खाने पीने-भर के लिए मिल ही जायगा, मौज-शौक और आभूषण आदि के लिए नही मिलेगा। परन्तु जो विद्यार्थी यह सोचते हैं कि उन्हें पढ़-लिख लेने के बाद दूसरों की तरह अधिक पैसा कमाने के लिए नौकरी करनी है, उनका यहां से भाग जाना ही अच्छा है। यहां का ध्येय अच्छी तरह समझ कर ही यहां रहें।

मैंने अपने कार्यक्रम में चर्खे को प्रधान स्थान दिया है, इसके लिए मुझे कोई संकोच नही होता। अगर सारा हिन्दुस्तान चर्खा चलाना छोड़ दे, तो मुझे रोज ८-१० घण्टे चर्खा चलाने को मिल जायेंगे। क्योंकि तब लोगों के सामने बकवास करने से मैं बच जाऊंगा। मेरे नजदीक देश को दरिद्रता से छुटकारा दिलानेवाली चर्खे को छोड़कर दूसरी कोई वस्तु नही है। जहां चर्खे चलने लगे हैं वहां लोगों के जीवन में परिवर्तन हो रहा है। यह मैंने बिहार के दौरे में देखा है। आप लोग आध घण्टे, पाव घण्टे ही चर्खा चलायें और चर्खा चलाते-चलाते हिन्दुस्तान का

ध्यान करें। आप ईश्वर का नाम लेकर, मुसलमान खुदा का नाम लेकर चर्खा चलायें तो देखेंगे कि इसमें से कैसी शक्ति का निर्माण होता है। कितने ही लोग मूर्ति को पत्थर समझते है परन्तु भावना से क्या नहीं हो जाता ? भावना से पूर्ण होने के कारण ही आज श्री रामदास जी गौड़ मुझे अपने घर श्री राम की मूर्ति दिखाने ले गये थे।

मैं देहात का अर्थशास्त्र जानता हूं, इसी से मैं अपने को जुलाहा कहता हूं। मै भंगी-चमार बनता हूं, क्योंकि मैं उनके कष्टों को जानता हूं। मैं चर्खे का दीवाना हूं —लैला-मजनू से भी बढ़कर दीवाना! किसी विद्यार्थी को चर्खे में विश्वास न हो, तो भी वह केवल विद्या के ध्यान से विद्यापीठ में आ सकता है। किन्तु विद्यापीठ किसी सिद्धान्त के लिए ही चलाया जाना चाहिए। ईश्वर इस विद्यापीठ की उन्नति करे।"

महात्मा जी का भाषण समाप्त हो जाने पर श्री भगवानदास जी ने विद्यार्थियों की ओर से महात्मा जी से प्रश्न किया कि आप चर्खे द्वारा देश की उन्नति करना चाहते है, क्या इसका यह अर्थ है कि आप इसी को हमारा उपास्यदेव बनाना चाहते है ?

महात्मा जी ने कहा कि हां, यही उसका ठीक अर्थ है।

श्री भगवानदास जी : यदि देश की उन्नति का और भी कोई उपाय हो तो उसका उपदेश देकर कृतार्थ कीजिए। प्रत्येक विद्यापीठ का कोई विशेष प्राण-सिद्धान्त होता है। यह विद्यापीठ किस सिद्धान्त को विशेष प्राण की तरह अपनाये ? मेरा खब्त यह है कि इस विद्यापीठ के विद्यार्थी जो कि हिन्दू है, 'कर्मणा वर्णः' के सिद्धान्त को ग्रहण करें तो यही सिद्धान्त इस विद्यापीठ का विशेष प्राण हो जाय। मैं चर्खे को आपद्-धर्म मानता हूं परन्तु, देवता की—लक्ष्मी, सरस्वती और अन्नपूर्णा की उपासना केवल चर्खे से कैसे होगी यह मै नही समझ पाया। हमें राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन करना है, स्वराज पाना है। यह 'कर्मणा वर्णः' के सिद्धान्त पर चलने से हो सकता है। अस्पृश्यता दूर करने में इसका मन पर कुछ प्रभाव पड़ेगा।

महात्मा जी ने कहा :

"मैं वर्ण केवल कर्मणा नहीं, जन्मना भी मानता हूं। चर्खे को मैंने प्रधान स्थान दिया है, परन्तु इसी को मैं सर्वस्व नही कहता। चर्खे को प्रधान स्थान इसलिए देना होगा कि करोडो हिन्दुस्तानियों की कंगाली को दूर करने का इससे बढकर उपाय नही है। इससे लक्ष्मी की व्यक्तिगत नही, सामाजिक शक्ति मिलती है। सरस्वती के लिए विद्यापीठ है। हमारी पुरानी सभ्यता में बड़ा मैल भर

गया है। अस्पृश्यता का रोग मिट जाने से मारा मैल दूर हो जायगा। हम अस्पृश्यता को निकाल सकें तो हमारा सुधार हो जायगा। चौवीस घण्टे में आधा घण्टे ही चर्खा कातें और साढ़े तेईस घण्टे चाहे जो करें, परन्तु अनिवार्य रूप से आधा घण्टा कातना चाहिए। इस विद्यापीठ का विशेष प्राण-सिद्धान्त क्या होना चाहिए मैं यह बता सकने के अयोग्य हूं। यह बात श्री भगवानदास जी ही बता सकते हैं।

—हिन्दी। वाराणसी, १७।१०।१९२५, आज, १९।१०।१९२५।]

५८. भाषण : लखनऊ नगरपालिका की सभा में[1]

(१७ अक्तूबर, १९२५)[2]

सदर साहब, भाइयो और बहनो,

आपने जो यह ऐड्रेस मुझको दिया है उसके लिए मैं आप लोगों का एहसान मानता हूं। आपने बड़ी अच्छी लखनवी जबान में मुझे यह ऐड्रेस दिया है। मैंने यरवदा जेल में उर्दू का इतना मश्क किया फिर भी आपकी यह लखनवी उर्दू समझने में मुझे मुश्किल होती है। इसलिए मैं आप लोगों से कहता हूं कि आपकी यह लखनवी जबान आपको मुबारक रहे। मैं तो ऐसी उर्दू चाहता हूं कि जिसे वह भी समझ ले जो यू० पी० का रहनेवाला न हो। वह हिन्दुस्तानी जबान हो। हिन्दुस्तानी जबान मैं उसे कहता हूं कि जिसमें संस्कृत और फारसी के ऐसे लफ्ज आते हों जिन्हें मुझ जैसा किसान आदमी भी समझ सके।

कलकत्ते के कारपोरेशन ने जब मुझे मानपत्र दिया था तो मैंने जवाब में दो-तीन बातें कही थीं। वे ही बातें मैं यहां भी कहना चाहता हूं। बिहार में जिन म्युनिसिपैलिटियों ने मुझे मानपत्र दिये थे उन्होंने उनमें अपनी त्रुटियां भी स्वीकार की थीं। आप लोगों ने मानपत्र में त्रुटियां स्वीकार नहीं की हैं। जब मैं मोटर में आ रहा था तो पण्डित मोतीलाल जी ने बताया था कि यहां की सड़कें कैसी हैं? सो मैं आप लोगों से कहता हूं कि जैसी अच्छी आप लोगों की लखनवी उर्दू जबान है

---

१. यह सभा नगरपालिका के अहाते में ५ बजे शाम को हुई थी। सभा में मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सैयद महमूद भी थे।

२. हिन्दुस्तान टाइम्स के २०।१०।१९२५ के अंक और पायनियर के १९।१०।१९२५ के अंक में प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार।

वैसी ही अच्छी यहा की सड़कों को भी आप बना दें। (हँसी) जिससे इक्के की सवारी करने वाले और मुझ-जैसे मोटर की सवारी करनेवाले दोनों को आराम मिले। म्युनिसिपैलिटियाँ मुझे मानपत्र देते समय पैसे की कमी की बात उठाती है। अगर आपकी म्युनिसिपैलिटी में भी काफी पैसा नहीं है तो मैं चेयरमैन से कहूंगा कि वे कुदाल ले लें और कांग्रेस के स्वयंसेवकों की मदद से यहां की सड़कों को ठीक कर दे, जिससे इक्के की सवारी करनेवालों को आराम मिले।

मानपत्र में डेरीफार्म का जिक्र किया गया है। मैं नही जानता कि ये गोशा-लाएं शहर के लोगों को अच्छा दूध पहुँचाने का साधन बन सकती हैं या नही। काफी गायें और भैंसे रखने पर ही आप शहर के लोगों को अच्छा दूध दे सकेंगे।

यह खुशी की बात है कि जो लोग आपके विरुद्ध राजनीतिक मत रखते है वे आपके प्रबन्ध का विरोध नही करते। मैं आप लोगों को इसके लिए मुबारक-बादी देता हूं कि पिछले बोर्ड की अपेक्षा आपने अच्छा काम किया है। बोर्ड का फिर चुनाव होनेवाला है। मेरी लखनऊ के वोटरों को सलाह है कि वे ऐसे ही लोगों को चुने जो उन्हे लखनऊ की सड़कों को ठीक कर देने का, अच्छे दूध का प्रबन्ध करने का और ऐसी जबान में जिसे सब लोग समझ सकें काम करने का वचन दें। अगर लखनऊ के अगले बोर्ड ने इस प्रकार अच्छा काम कर दिखाया तो मैं कांग्रेस की सभानेत्री सरोजनी देवी से कहूंगा कि वह कांग्रेस से आपके लिए मुबारकबादी का प्रस्ताव पास करा दे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रश्न पर मानपत्र में कुछ भी चर्चा नही की गई है। यह खेद की बात है। यह शर्म की बात है कि यहां के हिन्दुओं और मुसलमानों में बहुत अनबन है। इस वक्त सारे हिन्दुस्तान की आबोहवा खराब हो गई है। मैं कहता हूं कि यदि हिन्दू और मुसलमान दोनों को लड़ना है तो लड़ लें, पर आखिर अंजाम क्या होगा? दोनों को यही रहना है। न हिन्दू हिन्दुस्तान छोड़ सकते है और न मुसलमान ही। आखिर में दोनों को यही रहना होगा, दोनों को मिलना होगा; अगर लखनऊ में हिन्दू-मुसलमान नही मिल सकते तो कहाँ मिल सकेंगे? यह बड़े शर्म की बात है। अगर दोनों जातियां मिलकर रहें तो क्या कारण है कि हम जो चाहते है वह न मिल जाय? सारे संसार में हमारी हँसी हो रही है। डा० अंसारी ने कहा कि बाहरवालों को आश्चर्य है कि क्या गाय और बाजा ऐसी बाते है कि जिनके लिए हिन्दुस्तानी हिन्दू और मुसलमान लड़ते रहें और एक दूसरे का सिर फोड़ते रहे।

मै अभिनन्दन-पत्र नही चाहता। मै प्रशंसा सुनते-सुनते थक गया हूं। पर मै आप लोगों को यह जिम्मेदारी सौपना चाहता हूं कि जब मै दूसरी बार लखनऊ

आऊं तो आप यह कह सकें कि लखनऊ में इस बीच झगड़ा नहीं हुआ और हिन्दू-मुसलमानों में मेल है। ईश्वर यहां के रहनेवालों को समझ दे। मैं अन्त में इस मानपत्र के लिए आपको धन्यवाद देता हूं।

—हिन्दी। लखनऊ, १०।१०।१९२५। 'आज', २४।१०।१९२५।]

५९. भाषण : लखनऊ की सार्वजनिक सभा में[1]

१७ अक्तूबर, १९२५

...महात्मा जी ने यह कहते हुए अपना भाषण शुरू किया कि मुझे पहले से कुछ मालूम नहीं था; मैं नहीं जानता था कि मुझे लखनऊ में किसी समय आम सभा में बोलना पड़ेगा। मुझे बहुत दुःख है कि लखनऊ, जिसके बारे में मेरा खयाल बहुत अच्छा था, साम्प्रदायिक झगड़ों का अखाड़ा हो गया है। जब मैं दिल्ली में २१ दिन का उपवास कर रहा था तब मुझे लखनऊ से हिन्दू और मुसलमान नेताओं का एक पत्र मिला था, जिसमें मुझे मामले में बीच-बचाव करने के लिए आमन्त्रित किया गया था। मैं उसके लिए तैयार हो गया, लेकिन फिर कोई आया ही नहीं। मैं समझता हूं कि अच्छा हो कि आप मेरी सहायता के बिना खुद ही अपने झगड़े सुलझा लें। लेकिन यदि आप समझते हैं कि उनका एकमात्र समाधान तलवार ही है, तो ठीक है, आप उसी को आजमा कर देख लीजिए, बजाय इसके कि आप मेरे जैसे असहाय और अहिंसक व्यक्ति से सहायता माँगें। यूरोप से लौटने पर डा० अंसारी यूरोप के अपने अनुभवों का हाल सुनाने भागे-भागे मेरे पास आये। उनको यूरोप में सभी तरह के लोगों से मिलने का मौका मिला, विशेषकर तुर्कों से। सबने यही कहा कि यह हिन्दुओं और मुसलमानों का पागलपन ही है कि वे बड़े लक्ष्यों की बलि देकर छोटी-छोटी बातों पर झगड़ने में अपनी शक्ति गँवा रहे हैं। इसलिए श्रोताओं से मेरा निवेदन है कि सब अपने मतभेद दूर करके यथासम्भव जल्दी ही एकता प्राप्त करें। लेकिन यह एकता असली एकता होनी चाहिए, नकली नहीं।

महात्मा जी ने कहा अगर मैं लखनऊ के फैशनपरस्त नागरिकों से खद्दर के लिए अपील करूं तो यह आशंका तो है ही कि आप उसे अनसुनी कर दें। लेकिन मैं अपने इस भय के बावजूद भारत के गरीबों की ओर से यह अपील करता हूं।

---

१. यह सभा हरकरणनाथ मिश्र की अध्यक्षता में अमीनुद्दौला पार्क में हुई थी।

उन्होंने श्रोताओं से खद्दर पहनने का निवेदन किया और उसके कुछ लाभ समझाये। उन्होने कहा :

खद्दर का मतलव है, प्रत्येक सात आने मे से पांच आने गरीवों को मिलना। और मिल के कपड़े का मतलव है, हर पांच आने में से एक पैसा गरीवों को मिलना। लेकिन विदेशी कपड़े से इंग्लैण्ड के गरीवों को भी फायदा नही होता। उसका सारा लाभ पूंजीपतियों को मिलता है।

उसके वाद उन्होने कहा कि भारत के ऊंचे सामाजिक दर्जे के लोगों को चर्खे का उपयोग करना चाहिए, ताकि गरीवों को इस वात की प्रतीति हो जाये कि चर्खे में हमारा सच्चा विश्वास है और हम जो कहते हैं उसके लिए ईमानदारी से प्रयत्न भी करते है।

इसके वाद उन्होने अस्पृश्यता की प्रथा की निन्दा की। उन्होने कहा कि यह हिन्दू धर्म का हिस्सा नही है। यह अधार्मिक और ईश्वर के विरुद्ध है। हमें भारत के कुत्सित कलंक को दूर कर डालना चाहिए।

—हिन्दी। लखनऊ, १७।१०।१९२५। अंग्रेजी से। हिन्दुस्तान टाइम्स, २०।१०।१९२५।]

६०. भाषण : सीतापुर में

१७ अक्तूबर, १६२५

सीतापुर की नगरपालिका ने लालबाग में महात्मा गांधी को एक अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। अभिनन्दन-पत्र नगरपालिका के अध्यक्ष वावू शम्भूनाथ ने पढ़ा। उसमें महात्मा जी से अनुरोध किया गया कि उन्हे तो देश-विदेश की नगरपालिकाओ के कार्यकलापों का विस्तृत अनुभव है, इसलिए वह कुछ ऐसे सुझाव दें, जिनको आदर्श मानकर सीतापुर की नगरपालिका के सदस्य नगर को सुधारने के लिए प्रयत्न कर सकें। उन्होने कहा कि यह मानपत्र भेंट करने के लिए सिर्फ एक रुपये का खर्च स्वीकार किया गया है।

उत्तर में महात्मा गांधी ने कहा कि अगर मैं सीतापुर नगरपालिका का सदस्य होता तो इस काम के लिए एक पैसा भी स्वीकृत न करता। उन्होने कहा कि मैं कांग्रेसियों के अपने देशभाइयो की सेवा करने के लिए नगरपालिका और जिला वोर्ड के प्रवेश करने के खिलाफ नही हूं। लेकिन अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए और स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से किसी को इन स्थानीय संस्थाओं का सदस्य वनने

की कोशिश नहीं करनी चाहिए। सेवा और आत्मत्याग की सच्ची भावना के विना नगरपालिका में प्रवेश करना वेकार है। मुझे नगरपालिका का एकमात्र आदर्श यही मालूम है कि नगर को साफ-सुथरा और रोगों से मुक्त रक्खा जाय, गरीवों की मदद की जाय और उनके हलकों को गन्दगी से दूर रक्खा जाय तथा ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जाय जिससे गन्दी वस्तियां पनप ही न सकें।

आर्थिक तंगी की आड़ नहीं लेनी चाहिए। अगर पैसा न हो तो नगरपालिका के सदस्यों को अपने हाथ से काम करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस प्रकार वे ऐसा उदाहरण पेश करेंगे जिसका सभी अनुकरण करेंगे और नगरपालिका के कार्यकलापों की प्रगति के मार्ग की सारी कठिनाइयां निश्चित रूप से दूर हो जायँगी।

—हिन्दी। सीतापुर, १७।१०।१९२५। अंग्रेजी से। अमृत वाजार पत्रिका, २४।१०।१९२५।]

६१. भाषण : अभिनन्दन-पत्रों के उत्तर में

सीतापुर
१७ अक्तूबर, १९२५

...महात्मा गांधी ने कहा कि मैं इन दो सभाओं[1] द्वारा अभिनन्दन-पत्र पाने के योग्य नहीं हूं, क्योंकि मैं इन दोनों सभाओं का आलोचक रहा हूं। इनकी टीका-टिप्पणी के सिवाय मैंने कुछ नहीं किया है। लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि मैंने इनकी आलोचना सचाई के साथ और सहानुभूतिपूर्वक एक मित्र तथा हितैषी के नाते उनको मदद पहुंचाने की इच्छा से की है। हिन्दू-सभा की सच्ची सेवा करने के लिए सच्चा हिन्दू होना जरूरी है। हिन्दू धर्म सनातन धर्म है। मैं वेदों तथा हिन्दू धर्म को अनादि मानता हूं। सत्य भी अनादि है। इसलिए मुझे हिन्दू धर्म और सत्य में कोई अन्तर दिखाई नही देता। जो असत्य है उसका हिन्दू धर्म से सम्बन्ध नहीं हो सकता। मैं किसी भी दशा में सत्य का त्याग नहीं कर सकना। चाहे कितना भी विरोध हो, चाहे मेरे खिलाफ हजारों लोग तलवारें उठाकर खड़े हो जायँ, फिर भी मैं सत्य ही कहूंगा। सत्य और अहिंसा में कोई अन्तर नहीं है। एक हिन्दू के रूप में किसी के विरुद्ध अपने हृदय में द्वेषभाव को

१. हिन्दू सभा और वैद्य सभा।

पनपने नहीं दे सकता। यदि मेरा कोई शत्रु भी हो तो मैं उसे प्यार से ही जीतूंगा। अगर हिन्दू लोग अपने धर्म को आगे बढ़ाना चाहते हों और उसकी सेवा करने के इच्छुक हो तो उसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि वे अहिसा के मार्ग पर चले। अपने धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए अवश्य कार्य करें, किन्तु अपने मुसलमान भाइयों के प्रति उनके हृदय में तनिक भी दुर्भावना नही होनी चाहिए।

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि मै अहिसा के नाम पर कायरता का प्रचार कर रहा हूं। यह बिल्कुल गलत है। बेतिया के हिन्दुओं ने मुझे गलत समझा। यदि वे अपनी मा-बहिन की इज्जत के लिए लड़ते हुए मर जाते है, तो मैं इसे अच्छा समझूगा। और यदि ऐसा मौका आने पर वे भाग खडे होते है तो यह निरी कायरता ही होगी। और इससे अधिक लज्जाजनक बात और कुछ नही हो सकती। हिसा का मुकाबला अहिसा से करना तो अच्छी चीज है, लेकिन कायरता अच्छी चीज नही है। सच्ची अहिसा के लिए सच्ची बहादुरी की जरूरत होती है। हिन्दू-संगठन के लिए चरित्र-निर्माण सबसे ज्यादा जरूरी है। जबतक यह नहीं होता और जबतक हर हिन्दू सत्य और सच्चरित्रता पर आरूढ़ नही होता, तबतक सच्चा संगठन असम्भव है। उस हालत में हिन्दू धर्म कही का नही रह जायगा।

वैद्य सभा के मानपत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि अखबारों मे और सभा-मंचों से उन बातों के लिए मेरी तीव्र आलोचना की गई है, जो मैंने वैद्यों के बारे मे कही है। लेकिन मेरा अब भी वही विचार है। मै अपनी बात वापस नही ले रहा हूं और न यह मानता हूं कि उसका एक भी शब्द अनुचित है। मुझे लगता है कि लोगों ने मुझे गलत समझा है। मैंने जो टीका-टिप्पणी की, वह आज के वैद्यों को लक्ष्य करके की है, न कि उस आयुर्वेदिक प्रणाली को लक्ष्य करके, जिसकी वे लोग सेवा कर रहे है। मै खुद इस प्रणाली के खिलाफ नही हूं। लेकिन उनका आत्म-सन्तोषी रुख मुझे पसन्द नही है और न वे तरीके ही मुझे पसन्द है जिन पर वैद्यगण चल रहे है।

मैने उनकी आलोचना इसलिए की है कि उन्होंने आयुर्वेद को नही समझा है और उसके साथ न्याय नही किया है। मैने आयुर्वेद की प्रगति के लिए अपनी तरफ से भरपूर कोशिश की है और वैद्यों की जितने तरीकों से सहायता हो सकती है, करने का प्रयत्न किया है, लेकिन उनका काम देखकर निराशा होती है। वैद्यों को आगे बढ़ना चाहिए। यह सोचना गलत है कि उन्हे पश्चिम से कुछ भी नहीं सीखना है। यद्यपि मैंने आत्मा की उपेक्षा के लिए पश्चिमी दुनिया की भर्त्सना की है, फिर भी उसने कई क्षेत्रों में जो कर दिखाया है, उसके प्रति मेरी आंख बन्द नही है। वैद्यों को पश्चिम से जरूरी बातें सीख कर अपने ज्ञान को पूरा करने के लिए

तैयार रहना चाहिए। उन्हें ऐसा मानकर निश्चिन्त नही बैठना चाहिए कि उनकी चिकित्सा-प्रणाली में जो कुछ है, उससे आगे चिकित्सा-शास्त्र में कुछ है ही नही। उन्हें जागरूक और क्रियाशील रहना चाहिए और उनका लक्ष्य प्रगति होना चाहिए।

—हिन्दी। सीतापुर, १७।१०।१९२५। अंग्रेजी से। अमृत बाजार पत्रिका, २४।१०।१९२५।]

६२. भाषण : संयुक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन में[1]

१८ अक्तूबर, १९२५

श्री गांधी से, जो अभी तक सूत कात रहे थे. . . परिषद् के सम्मुख भाषण करने का अनुरोध किया गया। उन्होंने कहा—मैं हिन्दू-मुस्लिम समस्या के सम्बन्ध में कुछ नही कहूंगा, क्योकि अब दो में से किसी जाति पर—कम-से-कम उन लोगों पर, जो झगड़ रहे हैं—मेरा कोई वश नहीं रह गया है। मैं चर्खे और अस्पृश्यता के विषय में विस्तार से बोलूगा। अध्यक्ष महोदय ने चर्खे का उल्लेख-मात्र किया और गैर-हिन्दू होने के नाते उन्होंने अस्पृश्यता के विषय में कुछ नही कहा। किन्तु चर्खा और खादी ये दोनों चीजें तो मेरा धर्म हैं और इनके सम्बन्ध में अपनी बात कहे बिना नही रह सकता। मैं तो समझता हूँ कि अगर भारत का हर एक आदमी चर्खे को अपना ले तो कोई भी भूखों न मरे। मैने ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा करके देखा है कि किसान लोग किस तरह गरीबी में पिस रहे हैं। वर्ष में कम-से-कम चार महीने वे बेकार रहते हैं, और अगर वे अपने खाली समय में कताई किया करें तो उनकी अल्प आय में काफी वृद्धि हो जाय।

यन्त्रों पर उन किसानों के श्रम का उपयोग नहीं हो सकता। जहां कही भी लोग चर्खा चला रहे हैं, उनकी आय अवश्य बढ़ी है। बंगाल में मैंने देखा कि हर मजदूर परिवार की आय में प्रतिमास २ रुपये की वृद्धि हुई है, जब कि लार्ड कर्जन के अनुसार प्रति व्यक्ति उनकी वार्षिक आय सिर्फ ३० रुपये है। इस प्रकार चर्खे से आपको प्रति व्यक्ति २४ रुपये की अतिरिक्त वार्षिक आय हो सकती है। हर

1. यह सम्मेलन शौकत अली की अध्यक्षता में सीतापुर के लाल बाग में हुआ था। उपस्थित लोगों में मुहम्मद अली, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और डा० सैयद महमूद भी थे।

६ रुपये पर रूई की कीमत के रूप में २ रुपये किसानों को मिलेंगे, ५ या ४ रुपये कतैयों को और बुनकरों को।

अभी कुछ ही समय पहले मैं अटरिया मे था। वहां मैंने देखा कि कताई को एक सहायक धन्धे के रूप में अपना लेने से हजारों परिवारों की दशा कितनी सुधर गई है। लेकिन अगर गाँवों में यह सहायक धन्धा रूढ़ करना है तो यह जरूरी है कि लोग खादी पहनना शुरू करें। उन्होंने आगे कहा कि आम जनता के सहयोग और सहायता के बिना स्वराज्य सम्भव नही है। यह सहयोग और सहायता ग्राम-संगठन के बिना नही मिल सकती, और इस संगठन का एकमात्र उपाय चर्खा है। जो लोग मेरे इस चर्खा-प्रेम के कारण कहते है कि यह आदमी तो पागल हो गया है, वे अगर ऐसी कोई दूसरी चीज सुझा सकें जिससे इसी लक्ष्य को इतनी ही अच्छी तरह या इससे भी अच्छे ढंग से प्राप्त किया जा सकता हो तो मुझे चर्खा छोड़ते हुए कोई हिचकिचाहट नही होगी। लेकिन, अबतक तो ऐसा कोई विकल्प सुझाया नही जा सका है।

मैंने चर्खा-संघ की स्थापना लोगों को संगठित करने के लिए की है। इस संघ का राजनीति से कोई सरोकार नहीं है। यहां तक कि चाहें तो लार्ड रीडिंग और भारतीय सैनिक भी इसमे शामिल हो सकते हैं।

भाषण के दौरान महात्मा जी ने कहा कि शीघ्र ही इस सम्मेलन से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पटना की बैठक में पास किये गये प्रस्ताव को अपना सहयोग और समर्थन देने को कहा जायगा। लोगो को कांग्रेस का सदस्य बनने के लिए और अधिक सुविधा प्राप्त कराने के उद्देश्य से इस प्रस्ताव में सदस्यता की योग्यता में एक बुनियादी परिवर्तन किया गया है। यह कांग्रेस को पूरी तरह से एक राजनीतिक संगठन बना देता है। तदनुसार कांग्रेस अपना सारा काम स्वराज्य-वादी दल के जरिये करेगी और स्वराज्यवादी दल की नीति पर कांग्रेस का नियन्त्रण रहेगा। स्वराज्यवादी दल तमाम स्थानीय और केन्द्रीय विधायिका संस्थाओं में अपनी नीति और नियम स्वयं निर्धरित करेगा। इस दल के अपने कार्यक्रम हैं, अपने नियम हैं। इन कार्यक्रमो और नियमों को कांग्रेस ने अंगीकृत कर लिया है। स्वराज्यवादी दल के राजनीतिक कार्य में कांग्रेस हर तरह की सहायता देगी। कांग्रेस ने बेलगाँव, दिल्ली और पटना में स्वराज्यवादी दल को यह वचन दिया है कि वह उसे कांग्रेस के नाम पर अपना काम करने की पूरी छूट देगी और उसमें पूरा सहयोग भी करेगी। स्वराज्यवादियों ने विधायक संस्थाओ में खादी पहनने का चलन दाखिल कर दिया है—यहां तक कि विधानसभा के अध्यक्ष भी खादी ही पहनते हैं। वे लोग नशाखोरी बन्द करने और जनता की

गरीबी दूर करने के लिए विधायक संस्थाओं के जरिये बहुत-कुछ कर सकते हैं।

अगर कोई दूसरा दल इससे एक कदम आगे जाता, या कम-से-कम विधायक संस्थाओं और स्थानिक निकायों में ही हमारे रचनात्मक कार्यक्रम को स्थान दिला देता तो मैं उसे भी अपना समर्थन देने में कोई संकोच नहीं करता। अपना भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने हिन्दुओं से अनुरोध किया कि वे हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता के महाकलंक को दूर करें।[1]

—हिन्दी। सीतापुर, १८।१०।१९२५। अंग्रेजी से। 'लीडर' २१।१०।१९२५।]

६३. भाषण : उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन[2] में

१८ दिसम्बर, १९२५

अपने स्वागत में भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए श्री गांधीजी ने कहा कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है। मुझे इस बात से बड़ी प्रसन्नता है कि मद्रास में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के लिए काम किया जा रहा है, लेकिन खेद है कि बंगाल और अन्य स्थानों में कोई काम नहीं किया जा रहा है। अभिनन्दन-पत्र की भाषा के विषय में बोलते हुए गांधीजी ने कहा कि जिस प्रकार कल लखनऊ नगरपालिका-द्वारा भेंट किये गये अभिनन्दन-पत्र में फारसी शब्दों की भरमार थी, उसी प्रकार इसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। ऐसी भाषा समझना मेरे लिए मुश्किल है। किसी भाषा को राष्ट्रभाषा पद पर आरूढ़ होने के लिए ऐसा होना चाहिए जिससे उसको सर्वसाधारण आसानी से समझ सकें।

—हिन्दी। सीतापुर, १८।१०।१९२५। 'लीडर', २१।१०।१९२५।]

---

१. अन्त में सभा ने देशबन्धु दास और सर सुरेन्द्रनाथ की मृत्यु पर अध्यक्ष द्वारा रखा गया प्रस्ताव पास किया। मोतीलाल नेहरू ने सभा में अन्य एक प्रस्ताव भी, जिसमें पटना में हुई अ० भा० कां० कमेटी की बैठक में किये गये निर्णयों की ताईद की गई थी, पेश किया था।

२. यह सम्मेलन सीतापुर में पण्डित रामजीलाल शर्मा की अध्यक्षता में राजा स्कूल में हुआ था।

६४. भाषण : सीतापुर के अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलन[1] में

१८ अक्तूबर, १९२५

गांधीजी ने कहा कि मै स्वर्गीय गोखले के कथन से पूरी तरह सहमत हूं कि भारतीय अपने कुछ देशवासियों को अस्पृश्य मानकर स्वयं सारी दुनियां में अस्पृश्य हो गये हैं। मै स्वामी श्रद्धानन्द के इस सुझाव को भी ठीक मानता हू कि अस्पृश्यता को दूर करने का व्यावहारिक मार्ग यही है कि हरएक उच्च वर्ण हिन्दू घर-परिवार में एक तथाकथित अस्पृश्य व्यक्ति को रखे। मेरा निश्चित विश्वास है कि हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नही है। किसी भी मानव के प्रति अस्पृश्यता का व्यवहार करना पाप है। अत: तथाकथित उच्च जाति के लोगों को अस्पृश्यों के वजाय स्वयं अपनी ही शुद्धि करनी चाहिए। उन्होंने अछूतों से भी अनुरोध किया कि वे अपने को शारीरिक रूप से और नैतिक दृष्टि से भी स्वच्छ रक्खें एवं चर्खे को अपनाये और खद्दर खरीद-पहन कर उसे वढावा दे।

—हिन्दी। सीतापुर, १८।१०।१९२५। 'लीडर', २१।१०।१९२५।]

६५. सन्देश : कानपुर के कांग्रेस-सदस्यों को

१९ अक्तूबर, १९२५

मेरी उम्मीद है कि महासभा को सफल करने के लिए सव भाई-वहिन सर्व प्रकार से सहायता देंगे।

मोहनदास गांवी

—हिन्दी। १९।१०।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २८ से]
सौजन्य : श्री परशुराम मेहरोत्रा।

६६. भाषण : कानपुर की स्वदेशी प्रदर्शनी में

२४ दिसम्बर, १९२५

प्रदर्शनी का उद्‌घाटन करते हुए गांधी जी ने कहा—"मै इसे एक पुण्य कार्य मानता हूं। सरोजिनी देवी ने मुझे वताया कि यहां इस सप्ताह में ३० सम्मेलन

---

१. यह सम्मेलन महेवा के राजा साहव की अध्यक्षता में संध्या समय हुआ था।

होने वाले हैं और इनमें से बहुत से सम्मेलनों में मुझे सभापति-पद ग्रहण करने के लिए कहा गया है। मैंने अपनी विवशता प्रकट कर दी है क्योंकि मैं अपने को केवल इस स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करने के योग्य मानता हूं। मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता का पक्षपाती जरूर हूं पर यदि उसमें खद्दर को स्थान नहीं दिया जायगा तो मैं उसे भी स्वीकार न करूंगा।

"मैं केवल खद्दर ही का स्वप्न देखा करता हूं। मैंने प्रदर्शनी खोलने की जिम्मेदारी उसी समय ली, जब जवाहरलाल जी ने मुझे इस बात का विश्वास दिला दिया कि इस प्रदर्शनी में कोई भी विदेशी चीज नहीं रक्खी जायगी। मैं अपने पाँच वर्ष के खद्दर-सम्बन्धी अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूं कि हमने पर्याप्त प्रगति कर ली है। १९२० में मैंने अपने हाथ से सत्रह आने गज खद्दर बेचा था और लोग खुशी से खरीदते और पहनते थे। आजकल अच्छा खद्दर नौ आने गज मिल सकता है। क्या यह उन्नति श्लाघनीय नहीं है? शुरू-शुरू में जो खद्दर की टोपियाँ पहनते थे, लोग उन्हीं को खद्दरधारी समझ लेते थे। पर अब यह बात नहीं है। ऐसे लोगों की संख्या जो पूरी तौर पर खद्दर पहनते हैं, और दूसरा कपड़ा पहनते ही नहीं हैं, काफी बढ़ गई है। बहुत से लोगों ने खद्दर के प्रति सहानुभूति दिखलाई और प्रतिज्ञा भी की पर खद्दर पहना नहीं। इसके लिए मैं क्या कर सकता हूं? कोई कारण नहीं था कि मैं इनकी बातों पर अविश्वास करता। लोगों ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की, इसी कारण हम आशा के अनुरूप, १ वर्ष के अन्दर स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सके। आज भी मैं आपको पूरे विश्वास के साथ यकीन दिलाता हूं कि यदि आप सब विदेशी तथा देशी मिलों के कपड़ों का पूरा-पूरा बहिष्कार कर दें तो एक वर्ष से कम समय में ही हमें स्वराज्य मिल सकता है। पर आपको मेरा यह कहना अक्षरशः मानना पड़ेगा।"

इसके पश्चात् गांधीजी ने कहा कि चर्खे की संख्या और किस्म दोनों में उन्नति हुई है। उन्होंने यह भी कहा कि मैंने तो अपने हस्ताक्षरों का भी मूल्य निर्धारित कर रक्खा है; जो व्यक्ति मेरे हस्ताक्षर चाहता है, जब खद्दर पहनने का संकल्प कर लेगा तभी वे उसे मिल सकते हैं। (हर्षध्वनि)

—हिन्दी। कानपुर, २४।१२।१९२५। 'लीडर', २६।१२।१९२५।]

६७. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में

(कानपुर)
२४ दिसम्बर, १६२५

महात्मा गांधी ने अ० भा० कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद से निवृत्त होते हुए और कांग्रेस सरकार की वागडोर औपचारिक रूप से श्रीमती सरोजिनी नायडू को सौपते हुए कहा—

"कमेटी के सभी सदस्यों ने मेरा सदा समर्थन किया, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं। कमेटी के सदस्यों ने एक वार भी मेरे निर्णयों के प्रति शंका प्रकट नही की और मेरे सभी आदेशों का तुरन्त पालन किया। अगर वे यह नीति उन प्रस्तावों के सम्वन्ध में भी रखते जिन्हे कि उन्होने स्वयं पास किया था तो हमारी स्थिति अधिक अच्छी और दृढ़तर हो गई होती। अव कांग्रेस के नेतृत्व का भार श्रीमती सरोजिनी नायडू के कन्धों पर आया है। मेरी यही कामना है कि उन्हें पूरी सफलता मिले। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि उनके काल में हमारी स्थिति अधिक अच्छी वने। और जो वादल मँडरा रहे है, छिन्न-भिन्न हो जायँ। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने दक्षिण अफ्रीका में जाकर भारतवासियों की अत्यन्त आश्चर्यजनक सेवा की है। अपनी काव्यशक्ति से उन्होंने वहाँ के यूरोपीयों को मुग्ध तथा अपनी विवेकशक्ति और मधुर संभाषण-कला के द्वारा विरोधियों का मुँह वन्द कर दिया; अपनी राजनीतिज्ञतापूर्ण कार्यशैली से उन्होंने सिंह का सामना उसकी माँद में ही किया। फिलहाल तो एशिया-विरोधी कानून का पास होना स्थगित हो गया है। आज दक्षिण अफ्रीका के यूरोपीय यह समझने लगे हैं कि अगर श्रीमती सरोजिनी नायडू जैसे व्यक्ति दक्षिण अफ्रीका जायँ तो कोई झगड़ा होगा ही नहीं। दक्षिण अफ्रीका-निवासी मेरे अंग्रेज दोस्तों के पत्र मेरे पास वरावर आते हैं और वे कहते हैं कि श्रीमती सरोजिनी नायडू को या उन्हीं की तरह के अन्य व्यक्तियों को फिर दक्षिण अफ्रीका भेजा जाय। इन सव वातों से प्रकट होता है कि वह वहुत-कुछ कर सकती हैं और कांग्रेस का नेतृत्व करने के योग्य है, लेकिन मैं उन्हें कांग्रेस कोष के सम्वन्ध में सावधान करता हूं कि वे अत्यन्त उदार न हो जायँ जैसा कि स्त्रियाँ साधारणतः हुआ करती हैं। कांग्रेस का कोष इस समय सम्भवतः १॥ लाख से अधिक नहीं है।"[१]

—कानपुर, २४।१२।१९२५। 'हिन्दुस्तान टाइम्स', २७।१२।१९२५]

---

१. इस चेतावनी का उत्तर देते हुए सरोजिनी नायडू ने कहा कि रुपये-पैसे से

६८. भाषण : कानपुर-कांग्रेस-अधिवेशन[1] में

२४ दिसम्बर, १९२५

बाबा साहब परांजपे और श्री साम्बमूर्ति ने मुझसे यह प्रस्ताव लौटा लेने के लिए कहा है। मैं ऐसा किस अधिकार से करूं? यह तो केवल एक संयोग की ही बात है कि उसे पेश करने का भार मुझ पर आ पड़ा है। यह प्रस्ताव तो कार्यकारिणी समिति का है। फिर मुझसे 'अपील' क्यों की जा रही है? यह न मुझे शोभा देता है और न आपको। आखिर मैं कौन हूं? मुझे भूल जाइए। यदि आप लोग लोकतन्त्र चाहते हैं तो प्रस्तावक किस श्रेणी का नेता है इसका खयाल छोड़ दें, प्रस्ताव की योग्यता का ही विचार करें। इसके अतिरिक्त आप मुझसे किस बात को वापस लेने का आग्रह कर रहे हैं? मेरे अन्तस्तल में बैठे हुए अत्यन्त प्रिय जीवन-सिद्धान्तों को?

श्री जयकर और केलकर ने भी एतराज उठाये है। आप लोग यह भूल जाते हैं कि मताधिकार का आधार ध्येय पर निर्भर होता है। व्यवहारतः अमुक कार्य दुर्गम है, क्या महज इसलिए हम उससे विमुख हो जायँगे? हम लोगों के लिए स्वराज्य प्राप्त करना मुश्किल है तो फिर हम उसकी बात क्यों नहीं छोड़ देते? . . .[2]

यदि मुझे इस बात का यकीन हो जाय कि कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बन जाने पर ही स्वराज्य-प्राप्ति सम्भव हो जायगी तो मैं चार आने का चन्दा भी निकाल दूं, उम्र-सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी हटा दूं—कोई भी शर्त न रखूं। अबतक जो कार्य किया जा चुका है उसपर यदि पानी फेरना है तो हम यही प्रस्ताव पास करें कि जो चाहे सो कांग्रेस का सदस्य हो सकता है। लेकिन भाई, कांग्रेस के लिए जो व्यक्ति

सम्बन्धित सारा काम मैं महात्मा गांधी-जैसे जाने-माने दक्ष व्यक्तियों को सौंप रही हूँ।

१. विषय-समिति में मतदान-सम्बन्धी इस प्रस्ताव द्वारा यह सिफारिश की गई थी कि गत सितम्बर में कांग्रेस-विधान में जो परिवर्तन स्वीकृत किये गये थे, वे अब पुनः स्वीकृत किये जायें। उनमें से एक सुझाव यह भी था कि अपरिवर्तन-वादियों और स्वराज्यवादियों के बीच समझौते के रूप में मूल-मताधिकार वैकल्पिक रक्खा जाय अर्थात् वार्षिक चन्दे के तौर पर या तो चार आने दिये जायँ या खुद का काता २००० गज सूत (कांग्रेस को) दिया जाय। और जो व्यक्ति खद्दर न पहनता हो उसे मत देने का अधिकार न हो।

२. मूल में यहां कुछ छूट गया है।

तनिक भी शरीर-श्रम करने के लिए तैयार न हो, क्या उसे कांग्रेसी कहलाने में शर्म मालूम न होगी? यदि आप लोगों को सचमुच विदेशी कपड़े का वहिष्कार करना है तो मिलों के कपड़े का विचार त्याग दें। मैं मिलो के प्रान्त का ही निवासी हूं। और मिल-मालिको के साथ मेरा वहुत मीठा सम्वन्ध है, लेकिन मे यह जानता हू कि देश के संकटकाल मे उन्होने देश का साथ कभी नही दिया है। वे साफ कहते है कि हम देश-प्रेमी नही है, हमें तो धन-सञ्चय करना है। यदि सरकार तय कर ले तो वह सभी मिले वन्द करा सकती है, वाहर से मशीनों का हिन्दुस्तान मे आना रोक दे सकती है, लेकिन सरकार मे इतना सामर्थ्य नही कि वह हमारे चर्खो और तकुओं को आग में झोंक दे। उसने एक जर्मन इंजीनियर को इस देश में आने से रोका था। मुझे अंग्रेज जाति के चरित्र के सम्वन्ध मे ठीक उसी प्रकार विश्वास है जिस प्रकार मनुष्य-स्वभाव मे। लेकिन अंग्रेज जाति के स्वभाव का एक लक्षण यह भी है कि वह अपने देश का हित पहिले देखेगी। और वह हित-रक्षा लंका-शायर को जीवित रखने से और हिन्दुस्तान-जैसे देशो मे उनकी इच्छा के विरुद्ध अपना घटिया माल भेजते रहने से ही हो सकती है। इन अंग्रेजों के साथ लड़ने में हमें अपना खून पानी करना होगा, पानी! स्वराज्य-प्राप्ति कोई खेल नही है—वह कोई सस्ते दामो मिलनेवाली चीज भी नही है। उसे पाने के लिए भारतीयों को अपनी गर्दन कटाने तक के लिए तैयार रहना ही चाहिए, वह मुफ्त मे मिलनेवाली जिन्स नही है। आप लोग आज मेरा विरोध कर सकते है, लेकिन अव ऐसा समय आने ही वाला है कि जव आप सभी लोग कहेगे कि गांधी जो कहता था सो सच था। इसलिए जवतक इस मामले में वहुमत मेरे पक्ष में है, तवतक मैं विपक्षी लोगों से प्रार्थनापूर्वक कहता हूं कि वे इस प्रस्ताव का विरोध इसलिए न करें कि मानने में उन्हे थोड़ा-वहुत त्याग करना पड़ेगा।

हम लोग ऐसा विश्वास क्यों न रक्खें कि हम कांग्रेस के सभी सदस्य प्रामाणिकता-पूर्वक काम करेंगे? क्या हम इस वात की आशा न रक्खे कि लोग अपने ही द्वारा पारित प्रस्ताव को कार्यान्वित करेंगे? हां, यदि आपको खादी पहनने में सिद्धान्ततः आपत्ति हो अथवा वह वात आपकी अन्तरात्मा के विरुद्ध पडती हो तो आपको कांग्रेस छोड़ देनी चाहिए। लेकिन कांग्रेस में रहते हुए आप उसके प्रस्ताव का अनादर नही कर सकते। जवतक मैं कांग्रेस मे हू तवतक उसके द्वारा पास किये गये प्रस्ताव के अनुसार काम करना मेरा कर्त्तव्य है, भले ही मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव के पक्ष मे वहुत ही कम सदस्यो ने मत क्यों न दिया हो।

आप लोग यह भी कहते है कि वहुमत अत्याचार कर रहा है। जरा सोचिए कि मुट्ठीभर लोग इस विशाल देश पर मनमाने ढग से शासन चला रहे है और

आपके कानों पर जूं तक नहीं रेंगती? परन्तु सच्चाई के विरोध में निराधार आपत्तियां उठाना हमें जरूर आता है। मैं आपको सचेत कर रहा हूं, याद रखें कि यदि आपने खादी को त्याग दिया तो जनता भी आपका परित्याग कर देगी। यदि आपने खादी छोड़ दी तो आपके तथा उदार दलवाले लोगों के बीच फर्क ही क्या रह जायगा? हम लोग कैसे विचित्र हैं—हम स्वयं तो खादी का उपयोग नहीं करते और नेताओं से उसके उपयोग की आशा रखते हैं। मैंने जनता की सेवा बाबा साहब के समान भले ही न की हो, परन्तु इन दस वर्षों की अवधि में मैंने जनसाधारण की जो सेवा की है उससे मैं उसको भलीभांति जान गया हूं। यही कारण है कि आप लोगों को मैं सचेत कर रहा हूं और कहता हूं कि खद्दर को त्याग देने से आपको हाथ कुछ न लगेगा।

—कानपुर, २४।१२।१९२५। न० जी०, ३।१।१९२६।]

६९. भाषण: दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों से सम्बन्धित प्रस्ताव पर[1]

२५. दिसम्बर १९२५

श्री गांधी जी ने प्रस्ताव पेश किया:

कांग्रेस दक्षिण अफ्रीकी भारतीय कांग्रेस के शिष्टमण्डल का हार्दिक स्वागत करती है और वह दक्षिण अफ्रीका-वासी भारतीयों को आश्वस्त करना चाहती है कि जिन एक-जुट शक्तियों के कारण उस उप-महाद्वीप में उनके अस्तित्व को ही खतरा है उनके विरुद्ध किये जानेवाले संघर्ष में कांग्रेस पूर्ण समर्थन करेगी।

कांग्रेस का दृढ़ मत है कि प्रस्तावित विधान—जो कि क्षेत्र संरक्षण तथा प्रवासी पंजीकरण (अतिरिक्त उपलब्ध) विधेयक (एरियाज रिजर्वेशन एण्ड एमिग्रेशन रजिस्ट्रेशन) (फरदर प्रोविजन) के नाम से पुकारा जाता है—१९१४ में स्मट्स-गांधी समझौते का उल्लंघन है, क्योंकि एक तो इसका स्वरूप जातीय है और फिर इसका उद्देश्य न केवल भारतीय अधिवासियों की स्थिति को १९१४ से बदतर बनाना है, बल्कि इसका उद्देश्य किसी भी स्वाभिमानी भारतीय के लिए उस देश में रहना असम्भव बना देना भी है। कांग्रेस के विचार में उक्त समझौते का जो अर्थ भारतीय प्रवासियों-द्वारा लगाया जाता है, यदि संघ सरकार उसे स्वीकार नहीं करती तो इस मामले का उसी प्रकार पंच-फैसले से निर्णय होना

१. कानपुर में हुई कांग्रेस की विषय-समिति की बैठक में।

चाहिए जैसा कि १८९३ में ट्रान्सवाल के भारतीय प्रवासियों के मामले का हुआ था और जैसा कि १८८५ के कानून ३ को कार्यान्वित करते समय किया गया था।

कांग्रेस इस सुझाव का हार्दिक समर्थन करती है कि इस प्रश्न का निपटारा करने के लिए गोलमेज परिषद् बुलाई जाय, जिसमे दूसरे लोगों के साथ-साथ उपयुक्त भारतीय-प्रतिनिधियों को भी आमन्त्रित किया जाय और कांग्रेस का विश्वास है कि उपनिवेश सरकार इस सुझाव को स्वीकार करेगी। यदि गोलमेज परिषद का और पंच-निर्णय के प्रस्ताव न माने जायँ, तो कांग्रेस का विचार है कि इस विधेयक के संघ-संसद में पास हो जाने पर साम्राज्य-सरकार को इस पर अपनी स्वीकृति नहीं देनी चाहिए।

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी का मत था कि कांग्रेस ने विदेशों में बसे भारतीयों की दुर्दशा की उपेक्षा करके निन्दनीय काम किया है। वह चाहते थे कि विभिन्न नेता उनके समर्थन और सहायता के लिए विशाल आन्दोलन संगठित करें, अन्यथा प्रस्ताव मे किया गया "पूर्ण समर्थन" का वादा निरर्थक हो जायगा। उन्होने जनता मे किये जानेवाले ऐसे प्रचार की भी निन्दा की कि जबतक हमें स्वराज्य नहीं मिलता तबतक हम विदेशों में बसे भारतीयों की सहायता नही कर सकते।

इसका उत्तर देते हुए श्री गांधी ने स्वीकार किया कि पण्डित बनारसीदास उन थोड़े से कार्यकर्त्ताओं में से है जो विदेशो में बसे भारतीयों के लिए कार्य कर रहे हैं। किन्तु वह भी अति उत्साह मे भटक गये है। कांग्रेस जो-कुछ कर सकती थी वह सब उसने किया है। उससे अधिक वह कर नही सकती। मेरे इस प्रस्ताव का मस्विदा[1] दक्षिण अफ़्रीकी शिष्टमण्डल के साथ तीन घण्टे की बातचीत के बाद तैयार किया गया है। इस प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने घोषणा कर दी है कि वह अधिक से-अधिक क्या कर सकती है। जहां तक आर्थिक सहायता का सवाल है साम्राज्यीय नागरिक संघ (इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन) के पास इस कार्य के लिए पर्याप्त सार्वजनिक निधि है। मैंने स्वयं पण्डित बनारसीदास को धन मुहय्या करके दिया है। दूसरे वक्ता ने यह आपत्ति उठाई है और इस बात पर जोर दिया है कि उस वाक्य को हटा दिया जाय जिसमे ब्रिटिश सरकार से स्वीकृति न देने के लिए कहा गया है। इसके बारे में मेरा कहना है कि यदि इस वाक्य को भी हटा लिया गया तो इस प्रस्ताव से दक्षिण अफ्रीकी भारतीयो को क्या सान्त्वना मिलेगी? फिर क्या आप लोग कौंसिलों में काम करने नहीं गये है? मै तो चाहता हूं कि मैं बिना कौंसिलों के काम कर सकू, किन्तु आप लोग नही कर सकते। आप मुझपर

---

१. देखिए "भाषण: कानपुर अधिवेशन में", २६।१२।१९२५।

विश्वास कीजिए, मैं दक्षिण अफ़्रीकी का भीतर-बाहर सब कुछ जानता हूं। यदि मैं ऐसा अनुभव करता कि मेरे दक्षिण अफ्रीका जाने से कुछ लाभ हो सकता है, तो मैं वहां अवश्य चला जाता।

अन्त में प्रस्ताव हर्षध्वनि के साथ स्वीकृत हो गया।

—कानपुर, २५।१२।१९२५। 'लीडर', २८।१२।१९२५।]

७०. सन्देश : 'जमाना'[1] को

कानपुर
(२६ दिसम्बर, १६२५)

आप चाहे उदार दलवादी, नरम दलवादी या राष्ट्रवादी हों, हिन्दू हों या मुसलमान, पूरब के रहनेवाले हों या पश्चिम के, पर यदि आप भारत की उस जनता के साथ अपना भाईचारा मानते हों जिसके साथ आपका भाग्य जुड़ा हुआ है, जिनके बीच आप पैदा हुए है, तो आप केवल हाथकती और हाथबुनी खादी के वस्त्रों का उपयोग करे, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

—कानपुर, २६।१२।१९२५। अमृत बाजार पत्रिका, २९।१२।१९२५।]

७१. भाषण : कांग्रेस के कानपुर-अधिवेशन में

२६ दिसम्बर, १६२५

कांग्रेस के कानपुर-अधिवेशन में दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की स्थिति के विषय में कांग्रेस की ओर से प्रस्ताव गांधी जी ने पेश किया था। निम्नलिखित भाषण उसी अवसर का है। पहले वह हिन्दी[2] में बोले:

"यदि वर्गक्षेत्र विधेयक को कानून का रूप मिल गया तो ऐसे प्रत्येक भारतीय को, जिसके मन में किंचित् भी स्वाभिमान होगा, दक्षिण अफ़्रीका छोड़कर चले जाने के लिए विवश होना पड़ेगा। उसकी एक विवशता प्रत्यावर्तन से भी बदतर होगी; प्रत्यावर्तित व्यक्तियों को किसी प्रकार का मुआवजा नहीं दिया जायगा

---

१. कानपुर का प्रसिद्ध उर्दू मासिक।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

और उन्हे कानून के नाम पर वाहर निकाल दिया जायगा। यह काम एशियाई लोगों का दक्षिण अफ्रीका से नामोनिशान मिटा देने की खातिर गोरी जातिवालों के दृढ सकल्प का सूचक होगा। वहा वसे हुए भारतीय समाज के अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्तियों को—डाक्टरो तथा गाडफ़े जैसे वैरिस्टरों को भी, जो शिष्टमण्डल के एक सदस्य भी है, जिनका लालन-पालन शिक्षा-दीक्षा सव-कुछ दक्षिण अफ्रीका में ही हुआ है और जो भारत में प्रथम वार आ रहे हैं—नही रहने दिया जायगा। इस प्रस्ताव द्वारा समस्या के समाधान के रूप में तीन वातें कही गई है। पंच फैसला कराया जाय, गोलमेज परिषद् वुलाई जाय और अगर इन दोनों में से एक भी सम्भव न हो तो भारत सरकार सम्राट की सरकार से निवेदन करे कि वह अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके प्रस्ताव पर स्वीकृति न दे। इस प्रस्ताव में भारतीयों से यह भी कहा गया है कि वे अपने देशवासियो के संकट-काल में उनका साथ दे और उनकी पूरी मदद करें। यदि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय सत्याग्रह करने की ठाने तो यहां के भारतीयों का कर्त्तव्य है कि धन से उनकी यथाशक्ति सहायता करें। इस महत्वपूर्ण समस्या के सम्वन्व में सत्याग्रह शुरू करने में मुझे खुशी तो होगी, पर वात यह है कि वातावरण अनुकूल नही है। यदि भारत के हिन्दू और मुसलमान उन्हे इस वात का विश्वास दिला सकें कि वे शान्तिपूर्ण सत्याग्रह शुरू करने के वारे में एकमत है और इस वात का भी विश्वास दिला सकें कि दक्षिण अफ्रीका में वसे हुए हिन्दुओं और मुसलमानों के गाढ़े वक्त में वे अपने आपसी झगड़े भूल गये है तो मैं संघर्ष प्रारम्भ करने के लिए कटिवद्ध हो जाऊंगा। जवतक यह नही हो जाता तवतक संघर्ष वहाँ के भारतीय ही चलाये और भारत यथाशक्ति सहायता देकर ही सन्तोष मान ले।"

वाद में इस खयाल से कि डा० रहमान इस मामले में गांधी जी की भावनाओं को समझ सकें और इस उद्देश्य से कि चेतावनी भरे उनके शब्द दक्षिण अफ्रीका के राजनीतिज्ञों के कानों तक पहुँच जायें, गांधी जी काफी देर तक अंग्रेजो में वोले:—

श्रीमती सरोजिनी देवी और मित्रो,

मुझे मालूम नही कि जो प्रस्ताव मैं रख रहा हूँ, उसकी प्रतिलिपियाँ आप लोगों तक पहुँच गई है या नही। आप लोगो को प्रस्ताव सुनने का कष्ट न उठाना पड़े और राष्ट्र का थोड़ा-सा समय भी वच जाय इसलिए आप प्रस्ताव सुन ही ले। वह इस प्रकार है:[1]

---

१. यह अनुच्छेद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ४०वें अधिवेशन की रिपोर्ट से लिया गया है। प्रस्ताव के लिए देखिए "भाषण: दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों से सम्बन्धित प्रस्ताव पर", २५।१२।१९२५।

आप लोगों के सामने इस प्रस्ताव को स्वीकृति के लिए पेश करते हुए मुझे बड़ी खुशी होती है; यही नहीं, श्रीमती सरोजिनी देवी ने इसे आपके सामने पेश करने का कार्य मुझे सौंपा है, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। सरोजिनी देवी ने मुझे "दक्षिण अफ़्रीकी" कहकर आप लोगों से मेरा परिचय कराया है, लेकिन यदि उन्होंने इसमें इतने शब्द "जन्म से भारतीस्तानी लेकिन दक्षिण अफ़्रीका के दत्तक पुत्र" और जोड़ दिये होते तो ज्यादा ठीक होता। दक्षिण अफ़्रीका ने मुझे गोद जरूर लिया है। दक्षिण अफ़्रीका से आये हुए जिस शिष्टमण्डल का आप प्रेम-पूर्वक स्वागत करनेवाले हैं उसके नेता जब मंच पर आयेंगे और डा० रहमान आप लोगों से यह कहेंगे कि दक्षिण अफ़्रीका के भारतवासियों का यह दावा है कि हिन्दुस्तान को गांधी हम लोगों ने दिया है तब आप पर यह बात प्रकट हो जायगी। उनका यह दावा मुझे स्वीकार है। यह बात बिल्कुल सच है कि हिन्दुस्तान की जो-कुछ भी सेवा मैं कर सकता हूँ—वह असेवा भी हो सकती है—उसका कारण ही यह है कि मैंने उसकी क्षमता दक्षिण अफ़्रीका में प्राप्त की थी। मेरी यह सेवा, यदि असेवा है तो यह उनका दोष नही है, यह तो मेरी त्रुटि के कारण है। इसलिए, इस प्रस्ताव में जो-कुछ कहा गया है उसके समर्थन में मैं आप लोगों के सामने कुछ तथ्य रखूंगा। यह विधेयक दक्षिण अफ़्रीकी भाइयों के सिरों पर नंगी तलवार की तरह लटक रहा है; इसका उद्देश्य भारतवासियों के प्रति केवल अधिक अन्याय करना ही नहीं, बल्कि दक्षिण अफ़्रीका से उन्हें निकाल बाहर करना है।

निःसन्देह इस विधेयक का यही अर्थ है। दक्षिण अफ़्रीका के गोरों ने इस अर्थ को सही माना है। संघ सरकार ने भी नही कहा कि उसका यह अर्थ नही है। यदि विधेयक का परिणाम यही हो तो दक्षिण अफ़्रीका के भारतवासियों को उससे कितना दुःख होगा, इसकी कल्पना आप स्वयं ही कर सकते हैं। थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाय कि विधानसभा की बैठक में देशनिकाले का कोई कानून पास होनेवाला है और उससे एक लाख भारतवासियों को हिन्दुस्तान में से निकाल दिया जायगा तो ऐसी आफत के समय हम लोग क्या करेंगे? ऐसे प्रसंग में हमारा व्यवहार कैसा होगा? ठीक, ऐसा ही प्रसंग वहाँ उपस्थित है। इसीलिए यह शिष्ट-मण्डल आप लोगों के पास आया है। हिन्दुस्तान की जनता से, कांग्रेस से, वाइस-राय से, भारत-सरकार से और उसके जरिये साम्राज्यीय सरकार से मदद प्राप्त करने के लिए यह शिष्टमण्डल यहाँ आया हुआ है।

लार्ड रीडिंग ने उन्हें एक लम्बा उत्तर दिया है, और कितना अच्छा होता कि मैं इसे सन्तोषजनक उत्तर भी कह सकता। किन्तु वाइसराय महोदय का उत्तर जितना लम्बा है उतना ही असन्तोषजनक भी है। और यदि लार्ड रीडिंग का

इरादा शिष्टमण्डल के सदस्यों से यही बात कहने का था तो वह यह बात थोड़े से शब्दों में कह सकते थे, और इस प्रकार वह उन सदस्यों को और इस देश को यह करुण और दयनीय दृश्य देखने से बचा सकते थे जिसमें एक शक्तिशाली सरकार खुले तौर पर यह स्वीकार कर रही है कि वह दक्षिण अफ़्रीका के उन भारतीयों की समुचित मदद करने में असमर्थ है, जो अपनी किसी गलती के कारण नहीं बल्कि, जैसा कि दक्षिण अफ़्रीका के अनेक यूरोपीय स्वीकार करेंगे, अपने गुणों के कारण अब दक्षिण अफ़्रीका से निष्कासित होने के खतरे में पड़ गये हैं। जिन लोगों को वहाँ से निकाल देने की कोशिश की जा रही है उनमें से कितनों की तो दक्षिण अफ़्रीका जन्मभूमि ही है। वाइसराय महोदय के इस कथन से कि भारत-सरकार ने दक्षिण अफ़्रीका की सरकार के पास अर्जियाँ भेजने का अथवा न्याय की भीख माँगने का अधिकार हमेशा से अपने ही हाथ में रखा है, न तो उनके उन मित्रों को सन्तोष मिला है और न हमें ही। दूसरे शब्दों में एक जबर्दस्त सरकार, जिस सरकार के बारे में यह माना जाता है कि तीस करोड़ मनुष्यों की किस्मत उसके अधीन है, अपनी लाचारी जाहिर कर रही है! ऐसा क्यों? कारण यह है कि दक्षिण अफ़्रीका औपनिवेशक स्वराज्य-प्राप्त देश है और इसलिए भी कि वह यह धमकी दे रहा है कि यदि भारत-सरकार और सम्राट की सरकार ने उसके द्वारा की गई किसी भी कार्रवाई का विरोध या उसमें हस्तक्षेप करने की कोशिश की तो वह साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेगा।

गृहनीति

लार्ड रीडिंग ने शिष्टमण्डल से कहा है कि जो राज्य औपनिवेशिक स्वराज्य हासिल किये हुए है उनके घरेलू मामलों में दखल देने का अधिकार न तो भारत-सरकार को है और न साम्राज्यीय सरकार को। जिस नीति का उद्देश्य दक्षिण अफ़्रीका में बसे हुए हजारों भारतवासियों की खानाखराबी हो और उन्हें मनुष्यत्व के सामान्य अधिकार से भी वंचित रखना हो, उस नीति को "घरेलू नीति" के नाम से पुकारने का मतलब ही क्या है? भारतवासियों के बजाय यदि यूरोपीय या अंग्रेज लोग ही ऐसी स्थिति में होते तो क्या होता?

एक उदाहरण पेश करता हूँ। आप यह जानते हैं कि बोअर युद्ध किसलिए हुआ था? दक्षिण अफ़्रीका में जो यूरोपीय लोग स्थायी रूप से बस गये थे और जिनको ट्रान्सवाल की रिपब्लिकन सरकार ने "आउट लैण्डर्स" नाम दे रखा था, उनका संरक्षण करने के लिए यह युद्ध छेड़ा गया था। स्वर्गीय श्री जोजेफ चेम्बरलेन

का ब्रिटिश सरकार की ओर से यह कहना था कि यद्यपि ट्रान्सवाल की सरकार स्वतन्त्र है फिर भी इसे घरेलू प्रश्न नहीं माना जा सकता।

संस्कृतियों का वैषम्य

लार्ड लैंसडाउन ने कहा था कि जब मैं ट्रान्सवाल के भारतीयों की तकलीफों का विचार करता हूँ तब मेरा खून खौलने लगता है। वह मानते थे कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की तकलीफें भी—अधिक ठीक तो यह कहना है कि ट्रान्सवाल के भारतीयों की तकलीफें—बोअर युद्ध के मुख्य कारणों में से एक थी। अब वे घोषणाएँ कहाँ विलीन हो गईं? आज जब डेढ़ लाख भारतवासियों की जान, इज्जत और रोजी जोखिम में आ पड़ी है, ब्रिटिश सरकार को संघ सरकार के साथ युद्ध करने की बात क्यों नहीं सूझती?

इस कानून को बनाने के परिणामों के सम्बन्ध में मैंने जिस परिस्थिति का वर्णन ऊपर किया है उसके सम्बन्ध में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं है। दक्षिण अफ़्रीका में ब्रिटिश भारतवासियों की तकलीफें बढ़ती जा रही हैं, इससे भी कोई इनकार नहीं कर सकता। बिशप फिशर ने, जो कुछ ही मास पूर्व दक्षिण अफ़्रीका गये थे, एक छोटी-सी सुन्दर पुस्तिका लिखी है। यदि आप उसको देखेंगे तो आपको दक्षिण अफ़्रीका में बसे हुए भारतीयों पर बरपा होने वाली मुसीबतों का कुछ अन्दाज हो जायगा। बिशप फिशर निष्पक्ष होकर इस राय पर पहुँचे हैं कि इसमें भारतीयों का कोई कसूर नहीं है। इन अन्यायों के लिए तो वहाँ के गोरों का द्वेषभाव और उद्दण्डता ही उत्तरदायी है। बिशप फिशर का दृढ़ मत है कि भारतीयों की भलमनसी को देखते हुए तो उसके प्रति दक्षिण अफ़्रीका के गोरों का बर्ताव अधिक अच्छा ही होना चाहिए था। यदि संसार में न्याय कोई चीज है और यदि अभीतक अधिकारों के सिर पर राजछत्र है तो दक्षिण अफ़्रीका के गोरों के लिए उस कानून को पास करना सम्भव न होता। उस हालत में दक्षिण अफ़्रीका के गोरों के लिए उस विधेयक को कानून का रूप दिलाना सम्भव नहीं होता और न यह जरूरी होता कि मैं आप लोगों का मूल्यवान समय नष्ट करूँ और शिष्टमण्डल अपना धन व्यर्थ ही नष्ट करे।

लेकिन नहीं। अधिकार की तूती बोलने के बजाय "जिसकी लाठी उसकी भैंस" यही देखने में आ रहा है। दक्षिण अफ़्रीका के गोरे हमारे देशवासियों के प्रति अन्याय करने पर उतर आये हैं, सो किसलिए? दो संस्कृतियों का परस्पर-विरोधी होना इसका कारण है। ये शब्द मेरे नहीं हैं, जनरल स्मट्स के हैं। वह इस विरोध को सहन नहीं करते। दक्षिण अफ़्रीका के यूरोपीय यह मानते हैं कि यदि हिन्दुस्तान

से आनेवाले इन दलों को दक्षिण अफ़्रीका में आने से रोक न दिया जायगा तो उन्हें भय है कि पूर्व के लोग उन्हें पीस डालेंगे। किन्तु समझ में नही आता कि हम लोग उनकी संस्कृति को नष्ट कैसे कर सकते हैं? हमारे यहाँ के सभी स्त्री-पुरुष मितव्ययी होते हैं, क्या इसी कारण उनकी संस्कृति नष्ट हो जायगी? क्या वह इस कारण भ्रष्ट हो जायगी कि हम लोगों को शाकभाजी या फलों की फेरी लगाकर ये चीजें दक्षिण अफ़्रीका के किसानों के सोलहों दरवाजे-दरवाजे पहुँचाने मे शर्म नहीं लगती है? दक्षिण अफ़्रीका के किसानो के पास दो या तीन बीघे के नहीं, सैंकड़ों एकड़ के खेत हुआ करते हैं और एक ही व्यक्ति उनका सोलहो आने मालिक होता है। आप जानते हैं कि भारतीय फेरीवाले दक्षिण अफ़्रीका के बोअर तथा यूरोपीय किसानों की कितनी बड़ी सेवा कर रहे है। झगड़े का मूल कारण यही है।

इस्लाम से खतरा

किसी ने कहा है, यह याद नहीं है कि किसने, लेकिन कहा अभी-अभी है कि दक्षिण अफ़्रीका के गोरों को वहाँ इस्लाम के फैल जाने का डर है। जिस इस्लाम ने स्पेन में संस्कृति को प्रविष्ट किया और भारत तथा मोरक्को में सभ्यता फैलाई और जिसने सारी दुनिया को भ्रातृभाव का सिद्धान्त सिखाया उस इस्लाम से खतरा कैसा? उन्हें डर है कि अगर दक्षिण अफ़्रीका के मूल निवासी इस्लाम को स्वीकार कर लेंगे तो वे बराबरी का दर्जा माँगेंगे। यदि वे इस बात से डरते हैं तो डरें। भाईचारे की भावना यदि पाप है और यदि वे काले लोगों को बराबरी का दर्जा मिल जाने से डरते है तब तो कहा जा सकता है कि उनका डर बेजा है। क्योंकि मैंने देखा है कि यदि कोई जुलू ईसाई धर्म अंगीकार कर लेता है तो ऐसा करते ही लाजिमी तौर पर वह अन्य सारे ईसाइयों के बराबर का नही हो जाता। परन्तु यदि वही व्यक्ति इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेता है तो वह उसी दिन से सब मुसलमानों के साथ बराबरी के दर्जे पर खानपान करने लगता है। उन्हें डर इस बात का ही है। हकीकत यही है कि उन्हें आलमगीर बनना है, दुनिया में जितनी भी जमीन है, सब पचा लेनी है। कैसर की सब शान मिट गई है, वह पददलित है, फिर भी उसे एशियाई संगठन का डर लगा हुआ है और देश-निकाला हो जाने पर भी एक कोने में बैठा हुआ वह यही आवाज लगाता रहता है कि यह ऐसा संकट है जिससे यूरोपीयों को सावधान रहना चाहिए। यही तो संस्कृति का झगड़ा है और इसीलिए लार्ड रीडिंग में उनके घरेलू इन्तजाम में हस्तक्षेप करने की शक्ति नही है।

इस संघर्ष के परिणाम भयंकर हो सकते है। प्रस्ताव में इस संघर्ष को असमान

प्रतिपक्षियों का युद्ध कहा गया है और प्रस्ताव द्वारा इस असमान युद्ध में कांग्रेस से अपना कर्त्तव्य निवाहने के लिए कहा गया है। यदि मेरी आवाज दक्षिण अफ़्रीका जैसे सुदूर देश तक पहुँच सकती है तो मैं वहाँ के राजनीतिज्ञों से, जिनके हाथ में दक्षिण अफ़्रीका के भारतीयों का भविष्य है, (न्याय करने की) अपील करना चाहता हूँ।

उज्ज्वल पहलू

अब तक मैंने दक्षिण अफ़्रीका के भारतीयों से सम्बन्धित धूमिल पहलू को ही प्रस्तुत किया है। मुझे यहाँ यह भी कह देना चाहिए कि इन गोरों में कितने ऐसे भी हैं, जिन्हें मैं अपना अति मूल्यवान मित्र समझता हूँ। दक्षिण अफ़्रीका के गोरों में से कुछ व्यक्तियों ने मुझ पर अपना प्रेम बरसाया है और मेरा बहुत आतिथ्य-सत्कार किया है। मुझे इस बात का भी गर्व है कि दक्षिण अफ़्रीका की उस त्याग की मूर्ति दानशीला महिला आलिव श्राइनर से, जोकि एक प्रख्यात कवयित्री हैं, मेरी घनिष्ट मैत्री रही है। वह दक्षिण अफ़्रीका के मूल निवासियों की तथा बसे हुए भारतीयों की समान रूप से हितैषिणी थीं, उनकी निगाह में काले-गोरे सभी समान थे। उनके हृदय में भारतीयों, जुलू तथा बण्टू जाति के लोगों के प्रति इतना प्यार था मानो वे उन्हीं की सन्तान हों। उन्हें अन्य लोगों की अपेक्षा दक्षिण अफ़्रीका के वतनी की झोपड़ी में ठहरना ज्यादा पसन्द था। वह दान करती थी, परन्तु उसका ढिंढोरा नहीं पीटती थीं। दक्षिण अफ़्रीका में ऐसे नर-रत्नों और स्त्री-रत्नों ने जन्म लिया है और उनका वहीं लालन-पालन भी हुआ है।

चेतावनी

मैं आपको अन्य अनेक व्यक्तियों के नाम गिना सकता हूँ—जनरल स्मट्स के साथ मेरा परिचय है, यद्यपि मैं उनका मित्र होने का दावा नहीं कर सकता। संघ-सरकार की तरफ से मेरे साथ समझौता इन्हीं सज्जन ने किया था। उन्होंने ही कहा था कि "दक्षिण अफ़्रीका के ब्रिटिश भारतीय स्वयं उस समझौते के अधिकारी हैं। यह करार अपने अन्तिम रूप में है; अब भारतीय सत्याग्रह करने की धमकी न दें और दक्षिण अफ़्रीका के गोरे यहाँ बसे हुए भारतीयों को चैन से बैठने दें", ये वचन भी जनरल स्मट्स के ही थे।

लेकिन दक्षिण अफ़्रीका से मैंने पीठ फेरी नहीं कि भारतीयो पर एक-के-बाद-एक अन्याय होने शुरू हो गये। जनरल स्मट्स का वह वादा अब कहाँ गया? एक दिन प्रत्येक मनुष्य को जिस मार्ग से जाना है, उसी मार्ग से एक दिन उन्हें भी

तो जाना है। उनकी वाणी और उनकी करनी ही पीछे रह जायगी। वह जनरल स्मट्स की व्यक्तिगत हैसियत से बोले हों, सो बात नहीं है। उन्होंने एक राष्ट्र के प्रतिनिधि की हैसियत से एक यथोचित बात कही थी। वह ईसाई होने का दावा करते हैं, दक्षिण अफ्रीका की सरकार का हरएक सदस्य अपने को ईसाई कहता है। संसद का काम शुरू करने से पहले वे "बाइबिल" में से प्रार्थना पढ़ते हैं और द० अ० का एक पादरी प्रार्थना से ही सदन का कार्य शुरू करता है। यह प्रार्थना जिस ईश्वर की की जाती है वह ईश्वर न तो गोरों का है, न हब्शियों का, न मुसलमानों का और न हिन्दुओं का। वह तो सभी का, सम्पूर्ण सृष्टि का ईश्वर है।

मैं इस गौरवपूर्ण पद पर बैठा हुआ और अपनी जवाबदेही को पूरी तरह समझता हुआ यह कहता हूँ कि दक्षिण अफ़्रीका के भारतीयों को जो आधारभूत न्याय प्राप्त करने का हक है उस न्याय को देने में जरा भी संकोच किया गया और न्याय न किया गया तो वह आचरण "बाइबिल" के विरुद्ध होगा और वे ईश्वर के प्रति भी अश्रद्धा रखने के दोषी बनेंगे।

—हिन्दी-अंग्रेजी। कानपुर, २६।१२।१९२५। यं० इं०, ७।१।१९२६।]

७२. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस आफ इण्डिया के प्रतिनिधि से

कानपुर

२६ दिसम्बर, १९२५

एसोसिएटेड प्रेस आफ इण्डिया के प्रतिनिधि ने गत शाम कांग्रेस अधिवेशन में पास हुए पण्डित मोतीलाल नेहरू के प्रस्ताव के बारे में गांधीजी का मत जानने के लिए उनसे भेंट की। गांधीजी ने प्रतिनिधि से कहा :

मैंने कल कांग्रेस की बैठक में भाग नहीं लिया क्योंकि कल मेरा मौन दिवस था और जहाँ तक बन सके मैं मौन के समय अपने स्थान से बाहर नहीं जाता। जहाँ तक स्वयं प्रस्ताव का सम्बन्ध है, मेरी स्थिति इस प्रकार है: पटना में मैंने सारा नियन्त्रण व्यक्तिगत रूप से स्वराज्यवादी दल को सौंप दिया था और मैंने उन्हें ऐसी सहायता देने का वादा किया था जैसा कोई कौंसिल-विरोधी दे सकता है। मैं अब भी सिद्धान्त रूप से कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध हूँ। किन्तु मेरे सामने विकल्प अपने पुराने साथियों को बिल्कुल छोड़ देने और यथासम्भव उनकी सहायता करने के बीच में था। मुझे फैसला करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। मैंने अनुभव किया कि यदि मैं सक्रिय रूप से उन्हें सहायता नहीं दे सकता तो मुझे उन्हें

किसी प्रकार की हिदायत आदि भी न देनी चाहिए। इसलिए मुझे लगा कि मैं अपने जैसे दूसरे अपरिवर्तनवादियों को भी यह सलाह दूँ कि वे कांग्रेस पर कब्जा करने की कोशिश न करें और उसे स्वेच्छया स्वराज्यवादियों को सौंप दें। मुझे खुशी है कि उन्होंने वैसा ही किया है।

प्र०—क्या आप उस प्रस्ताव से सन्तुष्ट हैं जो कांग्रेस ने पास किया है?

वास्तव में पण्डित मोतीलाल नेहरू ने वह प्रस्ताव मुझे दिखाया था। जब वह मेरे पास आये तो मैंने उनसे कहा कि प्रस्ताव के पाठ के बारे में निर्णय करना उनका और स्वराज्यवादी दल का काम है। चूँकि उन्होंने प्रस्ताव मुझे दिखाया इसलिए मैंने कुछ सुझाव भी दिये थे। जो उन्हें ऐसे लगे कि वे विवेकपूर्वक स्वीकार कर सकते हैं, उन्होंने स्वीकार कर लिये किन्तु कुछ ऐसे भी सुझाव थे, जिन्हें वह स्वीकार नहीं कर सके। लेकिन उन्हें स्वीकार करने के लिए मेरा जोर देना भी उचित न था। मुझे अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना था और मैं अपने कर्त्तव्य का तभी निर्वाह कर सकता था जब कि मैं वही प्रस्ताव स्वीकार करता जो स्वराज्यवादी दल के अधिकांश प्रतिनिधियों को स्वीकार हो।

यह पूछने पर कि कांग्रेस के निर्णय के फलस्वरूप आपका भावी कार्यक्रम क्या होगा, गांधीजी ने उत्तर दिया :

मेरा काम तो यही है कि मैं शान्त रहूँ, और जो रचनात्मक कार्य मैं कर सकूँ, करता रहूँ, तथा बाकी अर्थात् कांग्रेस के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के दायित्व को पूर्ण रूप से स्वराज्यवादियों पर छोड़ दूँ, उसमें कोई रुकावट न डालूँ, बल्कि जहाँ सम्भव हो मैं उन्हें मदद दूँ।

—अंग्रेजी। कानपुर, २९।१२।१९२५। हिन्दुस्तान टाइम्स, ३१।१२।१९२५।]

७३. 'फ्रीडम'[1] पत्र के लिए सन्देश

मई १, १९२६

किसी समाचारपत्र के लिए 'फ्रीडम' (मुक्ति) एक आकर्षक नाम है। किन्तु यह ऐसा शब्द है जिसका बहुत दुरुपयोग होता है। जब एक गुलामों का मालिक मुक्ति की बात करता है, तब हम जानते हैं कि उसका आशय बिना किसी विघ्न-बाधा के अपने गुलाम का उपयोग करना है। एक मद्यप की मुक्ति (स्वतन्त्रता)

---

१. यह पत्र पं० मोतीलाल नेहरू एवं श्री श्रीप्रकाश इत्यादि ने निकाला था।

का अर्थ उसका तवतक मद्यपान करते जाने की छूट है जबतक कि वह ज्ञानरहित नहीं हो जाता और उसके बाद भी बहुत समय तक। किसकी मुक्ति और कैसी स्वतन्त्रता यह पत्र चाहता है, यह प्रसंगोचित सवाल है। यह तथ्य कि यह पत्र मोतीलाल जी की सृष्टि है, स्वयं अपने में आश्वासन है कि मुक्ति का अर्थ जन-समूह की मुक्ति है। और जन-समूह की मुक्ति का अर्थ है, जिस अर्द्ध-बुभुक्षा की स्थिति मे कोटि-कोटि लोग रह रहे है उसका सामना करने और उसको दूर करने की उनकी क्षमता। इस क्षण तो मुक्ति का यही पक्ष मुझे सबसे ज्यादा अपील करता है, क्योंकि जन-समूह की मुक्ति में स्वयं ही अछूतों की मुक्ति और विभिन्न धर्मावलम्बियों के लिए किसी भी मनुष्य-द्वारा कोई बाधा उपस्थित किये जाने के बिना अपने धर्म-विश्वास का अनुसरण करने की स्वतन्त्रता शामिल है। और जिस ढंग से मैंने जन-समूह की मुक्ति की व्याख्या की है वह तबतक नितान्त असम्भव है जबतक हाथ-कताई को पुनर्जीवित नहीं कर दिया जाता और केन्द्रीय तथ्य के रूप में गहरे खादी-प्रचार को ग्रहण नहीं किया जाता।

मुझे आशा करनी चाहिए कि 'फ्रीडम' बार-बार उस जनसमूह के जीवन के इस केन्द्रीय तथ्य के राष्ट्रीय महत्व का अपने पाठकों को स्मरण दिलाता रहेगा, जिसके साथ, अगर हम स्वराज्य चाहते हैं तो, हमें घुल-मिलकर रहना चाहिए।

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, १।५।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

७४. भाषण : हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में

[७ जनवरी १९२७ को गांधीजी कृपलानी जी-द्वारा स्थापित गांधी-आश्रम, काशी के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए काशी आये थे। इस प्रवास में मालवीय महाराज के अनुरोध से ८ जनवरी को, उन्होंने हिन्दू विश्व-विद्यालय के छात्रों की एक सभा में खादी के महत्व पर भाषण दिया। वह संक्षिप्त रूप में यहाँ दिया जाता है।—सम्पा०]

...कुछ लोग मुझे सलाह देते है कि कोई आपकी बात सुनता नहीं है, इसलिए खद्दर के विषय में बोलना बन्द क्यों नहीं कर देते? किन्तु मैं भला अपने प्रिय मन्त्र का पारायण कैसे बन्द कर सकता हूँ, जब मेरे सामने प्राचीन काल के प्रह्लाद का उदाहरण मौजूद है जिसने मृत्यु से अधिक भयकर यन्त्रणाओं के बीच

भी रामनाम की रटन नहीं छोड़ी? मैं उस एकमात्र सन्देश को भला कैसे छोड़ सकता हूँ जो मेरे देश की दुरवस्था मेरे कानों में कहता रहता है? पण्डित जी ने तुम्हारे लिए लाखों जमा किये हैं और अब भी राजाओं-महाराजाओं से लाखों जमा कर रहे हैं, देखने में यह रुपया राजाओं-महाराजाओं से आता है, किन्तु वस्तुतः वह हमारे कोटि-कोटि दरिद्रजनों के पास से आता है। यूरोप के प्रतिकूल हमारे देश के धनवान, हमारे ग्रामवासियों की बदौलत धनिक होते जा रहे हैं और उन दरिद्रों को एक बार भी पूरा भोजन नहीं मिलता। तुम जो शिक्षा पाते हो, उसका खर्च चुकाते हैं ये भूखे गाँववाले, जिन्हें खुद भी इस प्रकार की शिक्षा नहीं मिलेगी। सच पूछें तो यह तुम्हारा कर्त्तव्य है कि जो शिक्षा गरीबों के बस की नहीं है, उसे लेना बन्द कर दो, किन्तु मैं तुम लोगों से इतनी आशा नहीं करता। मैं तुमसे उन गरीबों का जरा-सा बदला चुकाने के लिए कहता हूँ। उनके लिए थोड़ा यज्ञ करो। गीता कहती है कि जो यज्ञ किये बिना खाता है, वह अपना भोजन चुराता है। युद्ध काल में ब्रिटिश नागरिकों का यज्ञ यह था कि प्रत्येक घर अपने आँगन में आलू पैदा करे और थोड़ा सिलाई का काम करे। हमारे युग और हमारे लिए यह यज्ञ चर्खा ही है। मैं जब-तब दिन-रात इसके बारे में कहता रहता हूँ, लिखता रहता हूँ। पर आज इससे ज्यादा और नहीं कहूँगा। यदि भारत के गरीबों के इस करुण सन्देश का तुम्हारे दिलों पर कुछ भी असर पड़ा हो तो तुम कल कृपलानी जी के खद्दर भण्डार पर धावा बोल दो और उसमें एक गज खद्दर भी बाकी न रहने दो और आज अपनी जेबें खाली कर दो। पण्डित जी ने भिक्षा-कला में कमाल हासिल किया है। मैंने यह विद्या उन्हीं से सीखी है। यदि वह राजाओं-महाराजाओं से कर वसूल करने में उस्ताद हैं तो मैं भी गरीब लोगों की जेबें उनसे भी अधिक गरीबों के लिए खाली कराने में वैसा ही बेशर्म हूँ।

...तुम्हारे लिए लाखों रुपये माँगने और महलों के समान इन मकानों को उठाने में मालवीय जी महाराज का एकमात्र उद्देश्य है—मातृभूमि की सेवा के लिए खरे रत्न भेजना। यह मतलब पूरा न हो सकेगा, अगर तुम पच्छिम से आनेवाली हवा में बह गये। वह अपवित्रता की वायु है।...अगर तुम समय रहते न चेते तो अनीति की बढ़िया, जिसका बल दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है, तुम्हें बहा ले जायगी। मैं अपनी सारी शक्ति से तुम्हें पुकार-पुकार कर कहता हूँ कि सँभलो, चेतो, और जलने के, नष्ट होने के पहिले ही भाग चलो।

—हिन्दी। काशी, ८।१।१९२७। यं० इं० में महादेव भाई के साप्ताहिक पत्र तथा तेंदुलकर के विवरण से।]

७५. भाषण : गुरुकुल कांगड़ी के रजतजयन्ती महोत्सव[1] में

[महाराष्ट्र के खादी-प्रवास के बाद मार्च १९२७ के मध्य में गांधीजी गुरुकुल कांगड़ी के रजतजयन्ती महोत्सव में शामिल होने के लिए हरद्वार आये। वहाँ के आचार्य रामदेवजी ने महीनों पहिले उनसे इसके लिए अनुरोध कर रक्खा था। स्वा० श्रद्धानन्द की वीरगति के बाद तो उनका वहाँ जाना अत्यन्त आवश्यक हो गया था। उन दिनों हरद्वार स्टेशन पर उतर कर कनखल से होते हुए गुरुकुल जाना पड़ता था। जब गांधीजी गुरुकुल पहुँचे, महोत्सव का तीसरा दिन था। अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू के बाद साधु वास्वानी उठे; वह सब श्रोताओं को प्रणाम कर बैठ गये। फिर मालवीयजी महाराज का आशीर्वचन हुआ। तब गांधीजी बोलने उठे। यहाँ उनका भाषण संक्षेप में दिया गया है।—सम्पा०]

आज तो मेरे मन में ऐसा होता है कि साधु वास्वानी की तरह मैं भी प्रणाम करके बैठ जाऊँ, परन्तु वह अनुकरण-मात्र होगा, स्वाभाविक न होगा। सच पूछे तो स्वामीजी का देहान्त हुआ ही नही है। देहान्त तो तब होगा जब हम उनकी सच्ची देह को मिटाने की कोशिश करेंगे, यद्यपि हमारी कोशिश से भी उनकी देह का नाश होने को नही है। जबतक यह गुरुकुल कायम है, जबतक एक भी स्नातक गुरुकुल की सेवा करता है, तबतक स्वामीजी जीवित ही हैं।

गुरुकुल शिक्षा के क्षेत्र मे उनकी सर्वाधिक मौलिक देन है, क्योंकि जब हम लोग पाश्चात्य शिक्षा के पीछे पागल हो रहे थे तब उन्होने यह निर्णय लिया कि हमें वैदिक पद्धति पर चिन्तन, आचरण करते हुए अपने को प्रशिक्षित करना चाहिए।

परन्तु गुरुकुल को चिरस्थायी रखने के लिए उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की आवश्यकता है जो हमने उनके जीवन मे देखी है। वीरता का लक्षण क्षमा और ब्रह्मचर्य का वीर्य-सम्बन्धी सयम है। इनकी रक्षा से ही तुम देश और धर्म की रक्षा कर सकोगे। मै जानता हूँ कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहाँ के बहुत से विद्यार्थियो के पत्र मेरे पास पड़े हुए हैं। कोई मेरी स्तुति करते है तो कोई गाली देते है। स्तुति तो निरर्थक वस्तु है। उसका असर मुझ पर नही होता। परन्तु जब विद्यार्थी चिढ़ कर गाली देते है तो मुझे चिन्ता होती है, क्योकि क्रोध से वीर्य का नाश होता है। स्वामीजी के सामने मैंने ब्रह्मचर्य की अपनी व्याख्या रखी थी, और वह मेरे साथ सम्मत थे। किसी स्त्री का मलिन स्पर्श न करने मे ही ब्रह्मचर्य नही होता। हाँ, ब्रह्मचर्य का वहाँ से आरम्भ अवश्य होता है। पर ब्रह्मचर्य का

---

१. देखिए परिशिष्ट में महादेव भाई का लेख।

लक्षण तो क्षमा की पराकाष्ठा है। पिछले साल जब स्वामीजी मुझसे मिलने आये थे तब उन्होंने मुझसे कहा—हिन्दू धर्म की रक्षा नीति से ही सम्भव है। यदि तुम वैदिक आचार-विचार की रक्षा करना चाहते हो तो तुम यह बात याद रक्खो कि तुम्हें पग-पग पर रुपये मिल जायँगे, किन्तु ब्रह्मचर्य का, नीति का पाया वहाँ पर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टी में मिल जायगा। इस भूमि के तो आत्मा नही है, इसकी आत्मा तो तुम्ही हो। यदि तुम आत्मबल खो दोगे और 'उदरनिमित्तं कृत बहुवेश :—जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी।

मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादी की बात करने नही आया हूँ। तुम्हारा पहिला काम ब्रह्मचर्य और वीरता का, क्षमा का है। उसे भूल जाओगे तो स्वामी जी का काम समाप्त हो जायगा। रशीद की गोली से स्वामी जी का क्या हुआ? वह तो उस गोली से ही अमर हुए।

स्वामी जी का दूसरा काम अछूतोद्धार था। जिन शब्दों में मालवीय जी महाराज ने खादी की वकालत की, मैं नहीं कर सकता। किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि यदि हम अपने हृदय में सदा दीन-दुखियों और अछूतों का ख्याल रक्खेंगे तो खादी से अलग नहीं रह सकते। यदि किसी व्यावहारिक काम में वीर्य-रक्षा का उपयोग करना हो तो खादी से बढ़कर दूसरा कोई काम नही है। खादी के कार्य के साथ मैं स्वामी जी का नाम नही जोड़ना चाहता क्योंकि यह उनका मुख्य काम नही था। किन्तु तुम स्नातको! विदेशी कपड़े से अपने शरीर सजाने का विचार न करोगे और अपने गरीबों की, अछूतों की रक्षा के ख्याल से केवल खादी ही धारण करोगे।

ईश्वर तुम सबके ब्रह्मचर्य, सत्य और तुम्हारी प्रतिज्ञाओं की रक्षा करें, गुरुकुल का कल्याण करें और स्वामी जी का प्रत्येक कार्य चालू रक्खें।

—हिन्दी। गुरुकुल कांगड़ी, मध्य मार्च १९२७। गुजराती न० जी० में लिखे महादेव देसाई के विवरण तथा महात्मा (तेंदुलकर), भाग २ के आधार पर]

७६. भाषण : गुरुकुल महोत्सव में

[गुरुकुल के रजतजयन्ती महोत्सव में दूसरे दिन चन्दे के लिए अपील करते हुए गांधीजी ने जो संक्षिप्त भाषण किया था, वह यहाँ दिया जा रहा है। इस अवसर पर लगभग दो लाख रुपये एकत्र हुए थे।—सम्पा०]

आर्य-समाज की टीका करता हूँ, परन्तु स्तुति भी करता हूँ और जो हार्दिक स्तुति करता है, उसे टीका करने का अधिकार होता ही है। मै मानता हूँ कि

ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के बाद जनता के साथ शिक्षितों के आध्यात्मिक सम्बन्ध का नाश हुआ और उस सम्बन्ध का पुनरुद्धार करनेवाला आर्यसमाज है।

आज जो दृश्य यहाँ दिखलाई पड़ता है, वैसे दृश्य भाग्य से ही कही दूसरी जगह देखने मे आते है। मैं आपका कुछ अनुकरण करता हूँ परन्तु मुझे बालटियों में पैसे नही मिलते।[1] मै तो रूमालों में पैसे इकट्ठा करता हूँ। मुझे तो पैसे मिलते है, जब आपको रुपये मिलते है। सब के सब पंजाबी कुछ धनिक ही नही है। आप मे भी गरीब लोग तो है ही। परन्तु आपका हृदय उदार है। मैं आर्यसमाज की टीका करता हूँ, आपको झगडालू कहता हूँ परन्तु आज आपका काम करने आया हूँ। उदार पंजाबियों से मैं कहता हूँ कि जो पैसे दे चुके है, वे फिर से दें क्योंकि मै यहाँ स्वीकार करना चाहता हूँ कि गुरुकुल की मार्फत हिन्दुस्तान की सेवा हो रही है। मै ऐसा नही मानता कि आपकी टीका करते हुए मैं आपका त्याग न समझता होऊँगा। आप में त्याग तो भरा हुआ है ही परन्तु इस त्याग पर सन्तुष्ट होकर बैठ न रहो। जो त्याग आगे दिखलाना है, उसकी तुलना में यह त्याग कुछ भी नही है। परन्तु मै आपके त्याग की स्तुति करता हूँ क्योकि आपके समान त्याग-शक्ति दूसरों में नही है। काम तो वही है जो त्यागवृत्ति से किया जाय, शेष तो स्वच्छन्दता है।

आपकी स्तुति करता हूँ तो इससे सन्तुष्ट न हो जाना। आपने दिया तो इसमे यह न समझना कि पूरा दे दिया। दान का अर्थ ही है कि वह अधिक-से-अधिक दिया जाय। जिस संस्था के लिए स्वामी श्रद्धानन्द के सर्वस्व का त्याग था, उसके लिए जितना दे सको, दो। और कुछ परिणाम न भी निकले तो भी गुरुकुल ने संस्कृत के अभ्यास को स्थान दिया है, क्या यह कोई छोटी बात है? जब किसी पंजाबी को मैं देवनागरी पढ़ते देखता हूँ तो अटकल लगाता हूँ कि वह गुरुकुल का पढा होगा। दोष किस संस्था में नही होते? परन्तु दोषों के होते हुए भी गुरुकुल संस्था की सेवा बहुत बड़ी है। इस गुरुकुल की आप सेवा करो और उसे जीवन्त रक्खो। स्वामी श्रद्धानन्द का कहना है कि इस संस्था के लिए उन्होने ब्रह्मचर्य और तपश्चर्या के दो दान दिये थे। आप कहो कि इस सस्था को जीवित रखने के लिए हमसे जितना हो सकेगा, हम दान करेंगे।

—हिन्दी। कांगड़ी, मध्य मार्च १९२७। न० जी०। हि० न० जी०, ३१।३। १९२७।]

---

१. स्वयंसेवक बालटियों में धन एकत्र कर रहे थे जो बार-बार भर जाती थीं। नोटों एवं रुपयों की वर्षा-सी हो रही थी। उसी की ओर गांधीजी का संकेत है।

७७. भाषण : गुरुकुल की राष्ट्रीय शिक्षण-परिषद् में

[गुरुकुल रजत जयन्ती महोत्सव के दूसरे दिन एक राष्ट्रीय शिक्षण-परिषद् हुई थी, जिसमें जामिया मिल्लिया के श्री मुजीव और शान्ति-निकेतन के श्री रामचन्द्रन ने भाषण किये थे। गांधीजी परिषद के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषण में सर्वधर्मसमभाव तथा संस्कृत शिक्षा पर जोर देते हुए निम्नलिखित वातें कही थीं।—सम्पा०]

...जो संस्था दूसरी जातियों के प्रति द्वेष पैदा करती हो, उसका तो नाश ही होना चाहिए। ऐसी संस्थाओं का लक्ष्यविन्दु होना चाहिए—'दया धरम को मूल है, पाप मूल अभिमान।' धर्म के सार्वत्रिक मूल सिद्धान्तों पर जोर देने की जरूरत है।...इन सिद्धान्तों के भूलने से आदमी पशु वन जाता है।...

संस्कृत सीखना प्रत्येक भारतीय विद्यार्थी का कर्त्तव्य है। हिन्दुओं का तो है ही, मुसलमानों का भी है, क्योंकि आखिर उनके वाप-दादा भी तो राम और कृष्ण थे और उन्हें पहिचानने के लिए संस्कृत जानना चाहिए। परन्तु मुसलमानों के साथ सम्वन्ध रखने के लिए उनकी भाषा सीखना हिन्दुओं का भी कर्त्तव्य है। आज हम एक दूसरे की भाषा से भागते फिरते हैं क्योंकि हम पागल वन गये है। यह निश्चित मान लेना कि जो संस्था आपस में द्वेष और भय रखना सिखाती है, वह राष्ट्रीय नहीं है।

—हिन्दी। गुरुकुल कांगड़ी, मध्य मार्च, १९२७। न० जी०। हि० न० जी० ३१।३।१९२७ में महादेव देसाई के विवरण से।]

७८. भाषण : बरेली में

[अपनी पर्वतीय यात्रा के आरम्भ में गांधीजी १३ जून १९२९ को बरेली पहुँचे थे। इस अवसर पर बरेली म्युनिसिपलटी ने खादी पर से चुंगी उठा दी थी और मानपत्र दिया था। इस दिन एक सार्वजनिक सभा भी हुई जिसमें अनेक मानपत्र दिये गये। इस अवसर पर गांधी जी ने एक संक्षिप्त भाषण किया था, जो यहाँ दिया जाता है।—सम्पा०]

"मुझे यह जानकर दुःख हुआ है कि बरेली में हिन्दू मुसलमानों के सम्वन्ध अच्छे नहीं है। किन्तु देश के क्षितिज पर अनैक्य के जो वादल छा गये हैं और उसे तमसावृत कर रक्खा है उसके होते हुए भी मै हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना में

अपने विश्वास की घोषणा करने यहाँ आया हूँ, क्योंकि जनता समझ गई है कि देश की आत्मा के लिए स्वतन्त्रता उतनी ही जरूरी है जितनी कि खुराक मनुष्य की शरीर-रक्षा के लिए जरूरी है। और देशवासियों के हर वर्ग के बीच एकता इस स्वराज्य का मौलिक आधार है।"

—हिन्दी। बरेली, १३।६।१९२९]

७९. भाषण : भवाली में

[अपनी पर्वतीय यात्रा में १५ जून १९२९ को गांधीजी नैनीताल से भवाली पहुँचे थे। भवाली की सभा में नागरिकों तथा अन्त्यजों की ओर से मानपत्र दिया गया था। इस अवसर पर गांधीजी ने जो भाषण दिया उसे संक्षिप्त रूप से यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पा०]

"प्राण देकर भी अपने मनुष्यत्व और स्वभाव की रक्षा करनी चाहिए। किसी की वेगार उठाने की अपेक्षा मर मिटने का दृढ़ निश्चय करना कही अच्छा है। आप अपना ऊन वाहर भेजते है और विदेशी कपड़ों पर पानी की तरह पैसे वहाते है। यह मूर्खता है, इससे वचना चाहिए और अपने घरों मे चर्खे को योग्य स्थान देना चाहिए। हृदय मे केवल ईश्वर का भय रक्खो और दूसरे किसी से भी न डरो। आप मुझसे कहते है कि सरकार ने चरागाहो के उपयोग के अधिकार आपसे छीन लिये है किन्तु यदि आप संगठित हो जायँ, एकता से काम लें और यह निश्चय कर लें कि चरागाह आपके है और आपके रहेंगे तो संसार की कोई भी ताकत आपसे आपके चरागाह छीन नही सकती। आपने अपने मानपत्र में यह आशा प्रकट की है कि मेरे यहाँ आने से आपके संकट टलेंगे किन्तु संकट-निवारण का काम तो एक ईश्वर ही कर सकता है। ईश्वर भी विना उद्यम के किसी की सहायता नही करता। अस्पृश्यता का कलंक मिटाकर, आत्मशुद्धि करके, आप स्वयं अपने को ईश्वरीय सहायता के योग्य वना सकते है।"

—हिन्दी। भवाली, १५।६।१९२९।]

८०. भाषण : प्रेम-विद्यालय ताड़ीखेत में

[१९२९ की पर्वतीय यात्रा में १६-१७ जून को गांधीजी प्रेम-विद्यालय

ताड़ीखेत में रहे थे। उस समय विद्यालय का वार्षिकोत्सव भी था और दूर-दूर के पर्वतीय स्थानों से लगभग दस हजार आदमी गांधीजी को देखने-सुनने एकत्र हुए थे। १६ जून को गांधीजी ने जो भाषण किया वह संक्षिप्त रूप से यहाँ दिया जाता है।—सम्पा०]

यहाँ आने के पहिले ही मैं आप लोगों के दुःख-दर्द का किस्सा सुन चुका हूँ। मेरे पास इसका एक ही रामवाण उपाय है, और वह है, आत्मशुद्धि और कर्त्तव्य-परायणता। हमारी तमाम व्याधियों का मूल कारण हमारे मन की संकुचितता है। हम कुटुम्ब के लिए मर मिटने के धर्म को समझे हैं, समझते हैं। मगर अब एक कदम और आगे बढ़ने की जरूरत है। हमारे कुटुम्ब-प्रेम में सारे गाँव को स्थान मिलना चाहिए, गाँव में तालुके को, तालुके में जिले को, जिले में प्रान्त को, यहाँ तक कि आखिरकार सारा देश हमारे लिए कुटुम्बवत् हो जाय। भारत के किसी भी कोने से आनेवाले मनुष्य की सेवा करते समय हमें यह अनुभव होना चाहिए, मानो हम अपने रिश्तेदार की सेवा कर रहे हैं। महासभा के संगठन के मूल में भी इसी कल्पना का हाथ है। आज हमारी महासभा-समितियाँ मृतवत् हो गई हैं, उन्हें सजीव करने का कर्त्तव्य इस समय हमारे सामने उपस्थित है।

मैं कह चुका हूँ कि हमारे रोग का इलाज हमारे हाथों में है। हमारी जन-संख्या एक चीन को छोड़कर और सब से ज्यादा है। मगर आज हम आत्मविश्वास खो बैठे है। वह खोया हुआ आत्मविश्वास आज हमें फिर से प्राप्त कर लेना है। हम किसी से न डरें, अकेले उस प्रभु की शरण में जायँ। ईश्वर से महान दूसरी कोई शक्ति नहीं है। जिसके हृदय में ईश्वर का डर हो उसके हृदय में दूसरा कोई डर होता ही नहीं।

यहाँ आने पर आपके विद्यालय के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ देखा या सुना है, उससे आशा होती है कि एक दिन वह अपने नाम को सार्थक करेगा और प्रेम-विद्यालय सचमुच ही प्रेम का साक्षात् स्वरूप बन जायगा।

पुरुषार्थ मनुष्य का धर्म है, मगर होता वही है जो विधाता ने ठहरा रक्खा है। आपने अपने निवेदन में पैसे की कमी की शिकायत की है, लेकिन इससे आप घब-रायें नहीं। अपने चालीस वर्ष के अनुभव से मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि हर एक संस्था को उसकी सच्ची उपयोगिता के अनुसार धन मिल ही जाता है। और जिस संस्था को जनता की सेवा करनी है, उसे तो आर्थिक मामलों में जनता पर आधार रखना ही इष्ट है। इससे उस पर जनता का अंकुश रहता है, संस्था जाग्रत रहती है और उसे विनय का पाठ सीखना पड़ता है। इसके विपरीत जब कोई संस्था बहुत-सा धन इकट्ठा करके आर्थिक चिन्ता से मुक्त हो जाती है, तो बहुधा

यह देखा जाता है कि तव वह निरंकुश और लापरवाह वन जाती है। हर एक संस्था के लिए सवसे अच्छा नियम तो यह है कि वह अपनी आर्थिक हैसियत के भीतर रहकर जितना काम कर सके, करे, और कर्ज लेकर काम वढ़ाने की लालच में न फँसे। सारांश, अगर आपकी ताकत सिर्फ एक ही विद्यार्थी को रखने की है तो आप उसे अकेला ही रखिए, मगर कर्जदार न वनिए, यही सलाह है।

मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि प्रेम-विद्यालय ने अपने कार्य-क्रम में खादी को स्थान दिया, और चर्खे को अपनाया है। आज से इक्कीस वर्ष पहिले मैंने यह आविष्कार किया था कि हिमालय से कन्याकुमारी और कराची से आसाम तक की करोड़ों भारतीय जनता को एक सूत्र मे संघटित करने के लिए सूत के कच्चे धागे से अधिक जोरदार और कोई उपाय नही है। आज भी मेरी इस विषय मे उतनी ही श्रद्धा है। मैं चाहता हूँ कि आप कच्चे सूत के धागे में छिपी हुई शक्ति को समझे और चर्खा आन्दोलन की कीमत रुपया-आना-पाई मे नही वल्कि लोकमत को जोरदार वनने की उसकी उपयोगिता को खयाल में रखकर कूतने लगे।"

—हिन्दी। ताड़ीखेत, १६।६।१९२९। श्री प्यारेलाल के विवरण' से। हि० न० जी० ४।७।१९२९।]

८१. भाषण : अलमोड़ा में ईसाइयों की सभा में

"एक जमाना ऐसा भी था, जव ईसाई भाई अपने को हिन्दुस्तानी कहते लजाते थे। यह वताने में कि वह हिन्दुस्तानी भाषा वोल ही नही सकते और यूरोपियन लोगो के रीति-रिवाज और रहन-सहन की नकल करने में ही अपना गौरव समझते थे। इससे मेरा मतलव किसी के दोष वताना नही है; यही कहूँगा कि यह समय का दोष था। आज हालत वदली है, और ईसाई भाई भी अन्य भारतीय भाइयों के साथ 'वन्दे मातरम्' गाते है। फिर भी अभी सुधार की वहुत गुंजाइश है। कई ईसाई युवक मुझसे शिकायत करते है कि उनके वड़े-बूढे उन्हे राष्ट्रीय प्रवृत्ति मे भाग नही लेने देते और यदि वे उसमें हाथ वँटाते हैं तो कहा जाता है, वे वड़े-से-वडे अपराधी या देशद्रोही है। मैं आपसे यही नम्र प्रार्थना करता हूँ कि हम इस भयंकर हालत मे से उवर जायँ।

वर्तमान युग आत्म-शुद्धि का युग है, मगर कई यूरोपियन लोग इसमें अकेली

---

१. देखिए परिशिष्ट में : उत्तराखण्ड में पर्वतीय यात्रा-२ ।

अपवित्रता के ही दर्शन करते हैं। आपने अपने मानपत्र में वर्तमान आन्दोलन को आत्मशुद्धि का यज्ञ कहा है, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा रखता हूँ कि आप भी इस यज्ञ में पूरा-पूरा हाथ बँटायेंगे।

"मैं सब धर्मों को सच्चा मानता हूँ। मगर ऐसा एक भी धर्म नहीं है, जो सम्पूर्णता का दावा कर सके क्योंकि धर्म तो हमें मनुष्य-जैसी अपूर्ण जाति के द्वारा मिलता है। अकेला ईश्वर ही सम्पूर्ण है। अतएव हिन्दू होने के कारण अपने लिए हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए भी मैं यह नहीं कह सकता कि हिन्दू धर्म सबके लिए सर्वश्रेष्ठ है, और इस बात की तो मैं स्वप्न में भी आशा नहीं रखता कि सारी दुनिया हिन्दू धर्म को अपनावे। आपको भी यदि अपने अ-ईसाई भाइयों की सेवा करनी है, तो आप उनकी सेवा उन्हें ईसाई बनाकर नहीं, बल्कि उनके धर्म की त्रुटियों को दूर करने में और उसे शुद्ध बनाने में उनकी सहायता करके भी कर सकते हैं।

"जिस समाज में आपने जन्म लिया है, जिस देश का आपने अन्न खाया है, उसका तिरस्कार करना आपको शोभा नहीं देता। किसी चीज के साथ असहयोग करना धर्म हो सकता है, बशर्ते उसमें दुष्टता ही खास चीज हो। भारत की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता, जिसके फल-स्वरूप देश में इतने बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हो गये हैं, जिसने श्री चैतन्य और टागोर-जैसे सुपुत्रों को जन्म दिया है, और जिसके लिए आज भी कितनी ही पवित्र आत्माएँ तपश्चर्या कर रही हैं, विश्वासघात करने की चीज नहीं है। आपके विचारानुसार अगर अ-ईसाई लोग अन्धकार में पड़े हैं, तो वे इस सभ्यता के सच्चे प्रतिनिधि भले ही न हो सकें किन्तु आपको, जैसा कि आप दावा करते हैं, यदि सच्चा ज्ञान मिला है तो, इस सभ्यता का संरक्षक बनना चाहिए, नाशक नहीं।

"आज हमारे धनवान लोग गरीबों के कन्धों पर चढ़ बैठे हैं। अगर आपको गरीबों के साथ सच्चा हेलमेल पैदा करना है, करोड़ों की सेवा करनी है, और स्वेच्छा से निर्धन बने हुए नहीं बल्कि अनिच्छा से दारिद्र्य-पीड़ित जनता की सहायता करनी है, तो चर्खायज्ञ में हाथ बँटाना ही उसका एकमात्र उपाय है।"

—अंग्रेजी। अलमोड़ा २०।६।१९२९। हि० न० जी० ४।७।१९२९ में प्यारेलाल जी के विवरण से]।

८२. भाषण : आगरा की सार्वजनिक सभा में

[गांधीजी ने अपना उत्तरप्रदेश का खादी-प्रवास ११ सितम्बर १९२९ को आगरा से शुरू किया था। पहले ही दिन सार्वजनिक सभा में उन्हें ८,००० रुपये की थैली दी गई थी। इस सभा में उन्होंने जो भाषण किया था, वह, संक्षेप में, यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पा०]

"मैं यहाँ असहयोग की क्षमता में अपनी आस्था की पुनर्घोषणा करने आया हूँ। आप सब को अभी से जनवरी १९३० के लिए तैयारी करनी है। भारतीय कांग्रेस कमेटी ने वे शर्तें निश्चित कर दी हैं जिनकी पूर्ति पर ही अहिंसात्मक साधनों से स्वराज्य की प्राप्ति हो सकती है। ये शर्तें हैं : त्रिविध रचनात्मक कार्यक्रम की, अर्थात् खादी के जरिये विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, मादक द्रव्य-निषेध तथा हिन्दुओं-द्वारा अस्पृश्यता का त्याग। चूंकि ये सब कार्य समुचित कांग्रेस-संगठन से ही सम्भव है इसलिए सदस्यो की भर्ती द्वारा संगठन, कांग्रेस का पुनर्गठन आवश्यक है। मै गम्भीर चेतावनी देता हूँ कि यदि हम कुछ न करेंगे, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे तो केवल दिसम्बर मे कांग्रेस की घोषणा मात्र से आकाश से स्वराज्य टपकने वाला नही है। मै तो इसके और आगे जाकर यहाँ तक कहना चाहता हूँ कि यदि हमने बीच के काल मे अपनी भावी घोषणा के लिए, जो ३१ दिसम्बर १९२९ की अर्द्ध रात्रि तक राष्ट्रीय माँग की सरकार-द्वारा पूर्ति न करने पर की जायगी, शक्ति न पैदा की तो वह घोषणा भी निर्जीव और निष्प्रभाव-सी पड़ी रह जायगी।"
—हिन्दी। आगरा, ११।९।१९२९।]

८३. भाषण : आगरा के विद्यार्थियों में

[१२ सितम्बर १९२९ को आगरा कालेज तथा सेण्ट जान्स कालेज के विद्यार्थियों की एक संयुक्त सभा हुई थी। यहाँ छात्रों की ओर से गांधीजी से कहा गया कि "यद्यपि हम आपके आदर्शों में विश्वास रखते हैं किन्तु उनके अनुसार आचरण करने में असमर्थ हैं।" इस पर गांधीजी ने जो कुछ कहा, वह यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पा०]

"मै छात्रो से असमर्थता की बात सुनने के लिए तैयार नही हूँ। तुम्हारी सारी विद्वत्ता, शेक्सपीयर और वर्ड्सवर्थ सब का तुम्हारा सारा अध्ययन निरर्थक है, यदि तुम उसी के साथ अपने चरित्र का निर्माण नही करते तथा अपने विचारों एवं कार्यों

पर प्रभुत्व नहीं स्थापित कर लेते। जब तुम अपने ऊपर प्रभुत्व स्थापित कर लोगे तथा अपनी वासनाओं पर काबू रखना सीख लोगे, तब तुम्हारे मुँह से निराशा की वाणी नहीं निकलेगी। यह नहीं हो सकता कि एक ओर तुम हृदय-दान दो और दूसरी ओर आचरण की दरिद्रता की बात करो। हृदय-दान का मतलब सर्वस्व समर्पण करना है। पहिले तुम देने के लिए दिल पैदा करो।..."
—हिन्दी। आगरा, १२।९।१९२९।]

८४. भाषण : हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के छात्रों में

"...यदि तुम चरित्र की आवश्यक पवित्रता को आचरण में व्यक्त करना चाहते हो तो उसे चर्खा के माध्यम के अतिरिक्त और किसी माध्यम से उतने उत्तम रूप में प्रकट नहीं कर सकते। ईश्वर के नाना रूपों में दरिद्रनारायण रूप सर्वाधिक पवित्र है, क्योंकि वह चन्द धनिकों की अपेक्षा कोटि-कोटि दरिद्रजनों का प्रतिनिधित्व करता है। इन भूखे-नंगे कोटि-कोटि जनों के साथ तुम अपने ऐक्य का प्रदर्शन चर्खे के सन्देश का प्रचार करके आसानी से दे सकते हो। तुम ऐसा स्वयं कुशल कतवैये बनकर, खादी पहिनकर और अर्थ-दान करके कर सकते हो। याद रखो कि मालवीय जी ने तुम्हें जो सुविधाएं दे रक्खी हैं वे कोटि-कोटि लोग नहीं पा सकते। तब इन भाइयों और बहिनों को तुम बदले में क्या दोगे? तुम्हें यह विश्वास होना चाहिए कि जब मालवीय जी ने विश्वविद्यालय की स्थापना की तब उनके मन में यही भाव रहा होगा कि तुम अपने जीवन को इस प्रकार संचालित करोगे कि जो शिक्षण तुम्हें यहाँ दिया गया है, उसके योग्य सिद्ध हो।"
—हिन्दी। काशी, २५।९।१९२९।]

८५. भाषण : काशी विद्यापीठ में

[२५।९।१९२९ को गांधी जी ने काशी विद्यापीठ के पद्वीदान समारोह में भाग लिया, जिसका संचालन स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव जी कर रहे थे। गांधीजी कुलपति के रूप में इस समारोह में उपस्थित हुए थे। समारोह के अन्त में उन्होंने जो भाषण दिया, संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पा०]

"...मैं जानता हूँ कि आपकी लघुसंख्या प्रायः आपको चिन्तित कर देती

है और आपके मन में अपनी पुरानी संस्थाओं का त्याग करने के औचित्य के विषय में शंका भी उठती है। कोई-कोई उन पुरानी संस्थाओं मे लौट जाने की प्रच्छन्न इच्छा भी रखते हैं। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि प्रत्येक महत् कार्य में उसके लिए युद्ध करनेवालों की संख्या का महत्व नही होता; निर्णायक तत्व संख्या नही वरंच वे योद्धा किन गुणों के आकर होते हैं, यह होता है। संसार के महत्तम पुरुष सदा एकाकी ही रहे हैं। जरथुस्त्र, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद तथा अन्य अनेक प्रवक्ताओं को अकेले ही खड़ा होना पडा था किन्तु उनको अपने अन्दर और अपने प्रभु के अन्दर जीवन्त विश्वास था और चूंकि वे समझते थे कि ईश्वर उनके साथ है, वे अपने को एकाकी नहीं अनुभव करते थे। जब हज़रत मुहम्मद हिजरत में थे, उनके साथ केवल अबूबकर था। शत्रुओं की एक बड़ी तादाद उनका पीछा करते हुए आ रही थी। इसे देख अबूबकर घबड़ा गया और भय से काँपते हुए कहा—'हम सिर्फ दो हैं। इनके विरुद्ध क्या कर लेंगे?' हजरत ने उसे झिड़क कर कहा—"नही अबूबकर, हम दो नही, तीन है। अल्लाह भी हमारे साथ है।" विभीषण और प्रह्लाद की अदम्य आस्था को देखो। मैं चाहता हूँ, तुममें अपने अन्दर और ईश्वर के अन्दर वही विश्वास, वही जीवन्त आस्था हो।"

—हिन्दी। काशी, २५।९।१९२९।]

८६. भाषण : मथुरा में

[गांधीजी मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के उपकुलपति के आग्रह पर अलीगढ़ गये थे। वहाँ वह ४ नवम्बर को पहुँचे थे। वहाँ से वह ५ को चलकर मार्ग के कई स्थानों का कार्यक्रम निपटाते हुए सम्भवतः ७ को मथुरा पहुँचे थे। वहाँ कृष्ण-भूमि के किसी लक्षण का दर्शन न पा उनको बहुत क्लेश हुआ। उन्हें जब सभा में मानपत्र दिया गया तो उत्तर में उन्होंने बड़ा ही मर्मस्पर्शी भाषण किया था। यहाँ वह संक्षेप में दिया जा रहा है।—सम्पा०]

"...जब कोई आदमी मथुरा और निकटवर्ती प्रदेश में, जो गोपाल की जन्म और लीलाभूमि कही जाती है, आता है तो वह यह आशा लिये आता है कि यहाँ उसे संसार के सर्वोत्तम चौपाये देखने को मिलेंगे और, जैसा कि कृष्ण के काल में था, शुद्ध और अमिश्रित दूध पानी के मोल प्राप्त होगा। एक दर्शक के मन में यह आशा भी होगी कि मथुरा के लोगों में वह कठोर पवित्रता, सरलता और वीरता दिखाई देगी जो कृष्ण में थी। वह यह भी आशा लेकर जायेगा कि तिरस्कृत अछूत यहाँ

प्रेम और सद्भाव से ग्रहण किया जाता होगा। मथुरा की सड़कों से गुजरता हुआ मैं देखता हूँ कि चौपायों की हड्डियाँ वाहर निकल आई हैं, गायें इतना कम दूध देती हैं कि आर्थिक वोझ वन जाती हैं। इस पवित्र स्थान में मैं एक वूचड़-खाना देखता हूँ जहाँ उन गौओं का मांसाहार के लिए वध किया जाता है जिनकी कृष्ण रक्षा और पूजा करते थे। यह कल्पना गलत है कि इस लज्जाजनक स्थिति के लिए मुसलमान या अंग्रेज जिम्मेदार हैं। हम हिन्दू ही इसके लिए मुख्यतः जिम्मेदार हैं। चूंकि चौपाये भूमि पर तेजी के साथ आर्थिक वोझ वनते जा रहे हैं, वे मारे जायँगे और यदि वे भारत में नही मारे जायँगे तो जहाज द्वारा कहीं विदेश में उसके वधगृहों के लिए भेज दिये जायँगे जैसा कि आस्ट्रेलिया में भेजे भी जा रहे हैं। भारत के चौपायों का अधिकांश हिन्दुओं की मिल्कियत है। वे ही उसे वधिकों या उनके खरीददारो को वेच देते है। यदि हम उस दिव्य वालकृष्ण के प्रति, जिसकी उपासना का दम हम भरते है, अपने कर्तव्य का पालन करें तो पशु-पालन के विज्ञान का अध्ययन कर दृढ निश्चय कर लें कि हम अपने गोधन को संसार में सर्वोत्तम वनाकर छोड़ेंगे और मूर्खतापूर्ण गतानुगतिकताओं को, फिर भले ही वे कितनी ही प्राचीन हों, छोड़ देंगे।"

—हिन्दी। मथुरा, ७ या ८।११।१९२९।]

८७. भाषण : गोवर्द्धन में

[जव गांधीजी, अपनी संयुक्त प्रान्त की खादी-यात्रा में गोवर्द्धन गये और वहाँ उन्होंने गो-जाति की भयंकर दुर्दशा देखी तो उन्हें उससे भी अधिक आघात लगा था, जितना मथुरा में लगा था। तव उन्होंने जो कहा, यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पा०]

"आप मुझे ऐसी जगह ले आये है जो मेरे अन्तरतम तक को छेड़ देता है। मैं एक वैष्णव परिवार का व्यक्ति हूँ। वचपन से मुझे कृष्ण की जन्मभूमि तथा क्रीड़ाभूमि के वारे में सिखाया गया है कि यहाँ आने से पापों का क्षय हो जाता है। परन्तु जव मैं यहाँ की सड़कों से गुजर रहा था, ऐसी कोई भावना मेरे अन्दर उत्पन्न नही हुई। यह वही स्थान है जहाँ कहा जाता है कि कृष्ण ने, अपने ग्वाल सखाओं तथा गौओं की वर्षा और तूफान से रक्षा करने के लिए, अपनी उंगली पर गोवर्द्धन-पर्वत उठा लिया था। मानवता और उनकी साथिन गाय की सेवा की वह भावना मैं आज यहाँ नही पाता। उसकी जगह मैं अस्थिचर्मावशेष गोवृन्द को देखता हूँ, मैं अपने सामने ऐसे आदमियों और वच्चों को देखता हूँ जिनमें कोई जीवन

नही, कोई ज्योति नही है। मुझे वताया गया है कि यहाँ ब्राह्मणों को भिक्षुक कहा जाता है। प्राचीन युग के ब्राह्मण ऐसे न थे। यही थे वे जिन्होंने ईश्वर का साक्षात् किया था और ईश्वर-दर्शन का रहस्य सब मनुष्यो को वताया था। वे दूसरों की दया या दान पर नही जीते थे। जिन्हें वे ईश्वरीय ज्ञान देते थे वे लोग उनके भरण-पोपण का प्रवन्ध स्वयं अपने ऊपर उठा लेते थे। कृष्ण के युग मे वे सच्चे धर्म के रक्षक थे।...अव इस पवित्र गोवर्द्धन में उनका कही कोई चिह्न शेप नहीं है।"

—हिन्दी। गोवर्द्धन (मथुरा), ८।११।१९२९।]

८८. सन्देश : 'दरिद्रनारायण' को

["दरिद्रनारायण" नामक साप्ताहिक पत्र कालाकांकर के स्व० राजा अवधेश सिंह जी (वर्तमान विदेश-मंत्री, भारत श्री दिनेश सिंह जी के पिता) ग्रामवासियों के लिए कालाकांकर से निकालते थे।—सम्पा०]

नाम दरिद्रनारायण रखा है तो काम भी नाम के योग्य होगा; ऐसा मेरा विश्वास है—और कोई राजा जब रैयत के लिए वर्तमान पत्र[1] नीकालता है तो उसे दोगुनी सावधानी की आवश्यकता रहती है—वह यदि अपने को स्वामी समझे तो रैयत का नाश होता है। रैयत का अपने को दास समझे तो अपना और रैयत दोनों का उद्धार होता है।

मोहनदास गांधी

सौजन्य : श्री सुरेशसिंह, कालाकांकर (अवध)

—हिन्दी। लखनऊ, ६।२।१९३२।]

८९. सन्देश : शिवप्रसाद गुप्त को

शिवप्रसाद गुप्त की भयंकर बीमारी के समाचार आते रहते है। कल तो वापू कहते थे—"शायद हमें उन्हें खोना पड़ेगा। आज उनके मंत्री को (हिन्दी में)

---

१. समाचारपत्र।

लिखा—"शिवप्रसाद से कहो कि अखवार पढ़ना छोड़ दे, गीता पढ़े या योग-वाशिष्ठ या रामायण वालकाण्ड या उत्तर काण्ड पढ़े अथवा सुक्रात का मृत्य पर संवाद। जगत का चक्र भगवान के हाथ में छोड़ दे।"
—४।३।१९३३। म० भा० डा०, भाग ३, (न० जी०) पृ० १७२।]

९०. भाषण : कानपुर की सार्वजनिक सभा में

[२२ जुलाई को कानपुर की सार्वजनिक सभा में गांधीजी ने जो भाषण दिया था, उसका सारमर्म नीचे दिया जाता है।—सम्पा०]

आपने मुझे जो यह ११००० रु० की थैली दी है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन मैं आपके कानपुर शहर को नही जानता, यह वात तो नही है। मैं समझता हूँ, कि जो हरिजन-कार्य हमारे सामने है उसकी महत्ता को अगर आपने महसूस किया होता, तो मुझे इससे कई गुना अविक वन आप देते।

मुझे मालूम हुआ है कि कानपुर में कुछ ऐसे लोग हैं, जो मेरी हरिजन-प्रवृत्ति को पुण्य-कार्य नही, वल्कि पाप-कार्य समझते हैं। इनकी तरफ से जनता में वहुत-से पर्चे वाँटे गये हैं। मुझे यह देखकर दुःख हुआ, कि वे पर्चे सरासर असह्य, हानिकारक अर्द्धसत्य, अत्युक्ति और तोड़-मरोड़ कर वनाई हुई वातों से भरे हुए हैं। यह सव सत्य का अपलाप है। उन्होंने मेरे वारे में समझ कर ऐसा नही लिखा, ऐसा मैं मान लेना चाहता हूँ। उदाहरण के लिए, यह कहा जाता है, कि एक जगह निर्दयतापूर्वक सनातनियों को कतल करवा दिया। मगर मैं इस विपय में कुछ भी नही जानता। अगर मुझे इसका पता होता, तो मैं इसके विरुद्ध जरुर कड़ी कार्रवाई करता। मैं कोई चुप वैठने वाला आदमी नहीं हूँ। यह कितने अफसोस की वात है, कि ऐसी-ऐसी मिथ्या वातों का प्रचार सनातनवर्म के नाम पर किया जाता है। मैं सनातनियों से प्रार्थना करता हूँ, कि वे इस मिथ्या-प्रचार की हीन प्रवृत्ति को रोकें।

आपने मुझे हजारों की जगह लाखों रुपये दिये होते, अगर आपने इस हरिजन-प्रवृत्ति का महत्व समझा होता। पर घन तो अस्पृश्यता का अन्त नहीं कर सकता। यह तो तभी वन सकता है, जव सवर्ण हिन्दुओं के हृदय पिघल जायँ। दान देने वालों ने यदि यह अनुभव कर लिया है, कि अस्पृश्यता धर्म पर एक कलंक है, तो उनके दान का महत्व सैकड़ों गुना वढ़ जाता है। यह तो आत्मशुद्धि की प्रवृत्ति है। संख्या से इस प्रवृत्ति का कोई मतलव नही। जो यह कहते हैं, कि हरिजन-

आन्दोलन मुसलमानों के खिलाफ लड़ने के लिए खड़ा किया गया है, वे गलती करते है। हमें हरिजनों मे से गुण्डों को तैयार नही करना है। हमें तो उन्हें योग्य नागरिक बनाना है। अगर हमें कामयाबी मिली तो इससे हमें और सारी दुनिया को लाभ पहुँचेगा। धर्म के नाम पर अपने पाँच करोड़ भाइयो के प्रति हम जो अत्याचार कर रहे हैं उसके लिए अगर दुनिया हमसे और हमारे धर्म से घृणा करे, तो यह उचित ही है। यदि कोई शुद्ध रीति से शास्त्रों को, गीता को और वेदों को पढे, तो उन धर्मग्रन्थो मे उसे कही भी अस्पृश्यता नही मिलेगी। आज तो हम हिन्दू धर्म को भूल बैठे है। हरिजनों के प्रति हमने जो अपराध किया है, जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित्त के लिए ही यह हरिजन-आन्दोलन चलाया गया है। उपनिषद तो यह कहते हैं, कि आत्मा सर्वव्यापक है।

काली झण्डियाँ दिखलानेवालों का मुझे उतना ही ख्याल है, जितना कि सुधारकों का। और अगर सम्भव होता तो मैं उनकी बात को मान लेता, और जैसा वे चाहते खुशी से करता। पर सत्य के अनुकूल ही आचरण करना मैं अपना धर्म समझता हूँ। धर्म को कैसे छोड़ दू? ईश्वर क्या कहेगा? सवर्ण हिन्दू मेरा निरादर करे, मेरे ऊपर पत्थर फेंकें, या बम फेंकें या रिवाल्वर चलावे, पर ऐसी बातो मे मैं डिगने का नही। धर्म के कार्य से अगर मैं हट जाऊँ, तो ईश्वर कहेगा, कि क्या तेरा शरीर अमर है? नहीं तो फिर क्यों डर गया? मै भी तो आखिर को एक अपूर्ण ही मनुष्य हूं। मैं कोई तपस्वी तो हूं नही, कि एक ही फूंक हिमालय पर बैठ कर मार दू, तो अस्पृश्यता उड जाय। पर मेरे जैसा अल्पज्ञानी भी कुछ करना चाहता है। जो लोग मेरी बात सुनना चाहते हैं उन्हें मैं सिर्फ सुना सकता हूं। और इसी कारण मैं जगह-जगह भ्रमण कर रहा हूं, यद्यपि इस लगातार लम्बी यात्रा की थकान दूर करने के लिए अब मैं कही बैठकर आराम करना चाहता हूं।

जो सनातनी धर्म का इजारा लेकर बैठ गये है, उनसे मैं यह कह देना चाहता हूँ, कि जिन शास्त्रों को वे मानते हैं मैं भी उन्ही को मानता हूं। पर हमारा मतभेद तो शास्त्रों के अर्थ लगाने मे है। जब अर्थ का विरोध हो, तो शास्त्र कहते है, कि अपने विवेक को प्रमाण मानो। और मैं ठीक यही कर रहा हूं। अगर वे मुझे यह समझा दे, कि मैं गल्ती कर रहा हूं, तो मैं उनका गुलाम बन जाऊ। पर, जबतक ऐसा नही होता, तबतक तो मैं आखिरी दम तक यही कहता रहूगा, कि यदि हमने अस्पृश्यता के कलंक को न धो डाला, तो हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म का दुनिया से लोप हो जायगा।

अब, हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध मे मुझे कुछ बातें स्पष्ट कर देनी चाहिए। ऊच-नीच के भाव तक ही यह आन्दोलन सीमित है, रोटी-बेटी-सम्बन्ध से इसका

कोई वास्ता नहीं। मैं मुसलमानों और भंगियों के साथ खाता हूं, पर यह तो मेरी व्यक्तिगत बात है। मैं तो अपने को भंगी मानता हूं, इसमें मेरे लिए कोई शर्म की बात नहीं। पर इसमे मेरा स्वेच्छाचार नहीं है, संयम है। और ऐसा करने को मैं आपसे नहीं कहता। मैं शास्त्र के बाहर नहीं जाता। मैं तो अपनी इस बात को भी शास्त्र-विहित ही मानता हूं। रोटी-बेटी-सम्बन्ध के व्यक्तिगत संयम के प्रचार करने की न तो आवश्यकता है, न समय। मैं तो सिर्फ धर्म का तत्व ही लोगों के सामने रख रहा हूं। इस आन्दोलन का तो यही उद्देश्य है कि जो सामाजिक, नागरिक और धार्मिक हक दूसरे स र्ण हिन्दुओं को मिले हुए हैं वही सब हरिजनों को भी मिलने चाहिए।

मन्दिर-प्रवेश के विषय में यह बात है, कि जबतक किसी मन्दिर में पूजा करनेवाले सवर्ण हिन्दुओं का काफी बहुमत न हो तबतक वह मन्दिर हरिजनों के लिए न खोला जाय। मन्दिर तो हमारे प्रायश्चित्त-स्वरूप ही खुलने चाहिए। मैं यहां यह कह देना चाहता हूं, कि एक पाई भी इस हरिजन-फण्ड से मन्दिरों के बनाने में खर्च नही की जा सकती। हमारा सतत प्रयत्न तो यह है, कि इस फण्ड का पैसा जिस तरह हो सके अधिक-से-अधिक हरिजनों की ही जेब में जाय।

चूंकि मेरा यह हरिजन-प्रवास है, इसलिए खादी के विषय में मैं अक्सर चर्चा नहीं किया करता, यद्यपि उसमें मेरा विश्वास तो वैसा ही है। पर आपको यह नहीं भूल जाना चाहिए कि खादी से हजारों हरिजनों को काम मिलता है। खादी कातने और बुननेवालों के लिए अन्नपूर्णा का काम देती है। इसलिए खादी को तो आप कभी भी गौण वस्तु न समझें।

जिस शान्ति से आप लोगों ने मेरी बात सुनी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। पर एक बात की चर्चा तो मैं जरूर करूंगा, और वह यह कि यहाँ हम पुलिस की छाया के नीचे इकट्ठे हुए हैं; मैं बहुत चाहता हूं पुलिस यहाँ न रहे, पर उसे भी तो अपना फर्ज अदा करना है। सुधारकों और सनातनियों को तो इस पर शर्म आनी चाहिए, कि मेरी रक्षा अथवा मेरी उपस्थिति में शान्ति कायम रखने के लिए पुलिस की जरूरत पड़े। सुधारकों को अपने अनुशासन के महत्व को खुद महसूस करना चाहिए, ताकि पुलिस की रक्षा उनकी दृष्टि में बिल्कुल अनावश्यक हो जाय। खैर, पुलिस का यहाँ होना मुझे चाहे अच्छा न लगे, पर मैं यह जरूर कहूंगा, कि पुलिस ने मेरी यात्रा में प्रशंसनीय रीति से व्यवहार किया है। इसी तरह रेल के अधिकारियों ने समय-समय पर मुझे जो सुविधाएं दी है, उनके लिए मैं उनकी भी सराहना करता हूं।

—हिन्दी। कानपुर, २२।७।१९३४। ह० से०, ३।८।१९३४।]

- यह (हरिजन-आन्दोलन) तो आत्मशुद्धि की प्रवृत्ति है।
- यदि हमने अस्पृश्यता के कलंक को न धो डाला तो हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म का दुनिया से लोप हो जायगा।
- खादी कातने और बुननेवालों के लिए अन्नपूर्णा का काम देती है।

९१. भाषण : कानपुर के तिलक-हाल में

[२४ जुलाई को कानपुर में तिलक-हाल के उद्घाटन के अवसर पर गांधीजी ने निम्नलिखित आशय का भाषण दिया था।——सम्पा०]

मैने आज प्रातःकाल जब सुना, कि मुझे तिलक-हाल खोलने का कार्य करना है, तो मुझे एक बात का स्मरण आ गया। जब मैं पहली बार कानपुर आया था, तब मेरी यहा किसी से जान-पहिचान नही थी। कानपुर आकर मैं गणेशशंकर विद्यार्थी को कैसे भूल सकता हूं ? उन्होने ही तो मुझे अपने घर पर टिकाया था। उस समय और किसी व्यक्ति की हिम्मत नही थी, कि वह मुझे अपने घर पर ठहराता। वह उन दिनो नौजवान थे। उस समय मुझे देश मे थोड़े-से लोग जानते थे। मै स्वयं भी नही जानता था कि यहा के राजनीतिक क्षेत्र में मेरा क्या स्थान होगा। सद्भाग्य से तिलक महाराज भी उसी दिन नगर मे पधारे। उस जमाने में तिलक जी को अपने घर मे ठहराना कोई आसान काम नही था। यह चिन्ता हुई, कि उन्हे कौन स्थान देगा। यह काम तो निर्भीक युवक गणेशशंकर से ही हो सकता था। मेरे हृदय मे तो इस नगर के संसर्ग के साथ ही गणेशशंकर जी की स्मृति भी कायम रहेगी। हम लोग जैसा जानते है, उन्होने वीर मृत्यु पाई। गणेशशंकर जी की सेवाए क्या थी, उनका त्याग कैसा था, इसका आपको मुझसे ज्यादा पता है। उनको इस अवसर पर मैं कैसे भूल सकता हू ?

यह जो तिलक-हाल का उद्घाटन हो रहा है, और इसके अन्दर कानपुर के लोगो की जो श्रद्धा है, उसको मै जानता हूं। तिलक महाराज ने तो अपना सारा ही जीवन भारतवर्ष की उन्नति के लिए दे दिया। यह बात मेरे लिए भी प्रस्तुत है, और आपके लिए भी प्रस्तुत है। हिन्दू धर्म को अगर तिलक महाराज नही जानते थे, तो कोई नही जानता था। उन्होने जिस प्रकार वेदशास्त्रों पर प्रकाश डाला, उसके अर्थो का संशोधन किया, वैसा और किसने किया ? वह तो सच्चे सनातनी थे। पर उन्होने यह कभी ख्याल नही किया, कि हम उच्च है, और वे नीच हैं। उनके साथ मैने इस विषय पर काफी बहस की थी। उन्होने जो कुछ हमे दिया,

उसका चिरस्थायी स्मारक, जबतक हिन्दुस्तान को कायम रहना है, तबतक कायम रहेगा। आज तो स्वराज्य की बात अस्वाभाविक-सी लगती है। पर स्वराज्य मिलने पर यह स्वाभाविक हो जायगी। तब उनका दिया हुआ राजनीतिक सबक तो भूला भी जा सकेगा, पर उनकी विद्वत्ता, उनकी आत्मशुद्धि और उनके संयम का विषय तो, हिन्दुस्तान जबतक जिन्दा रहेगा, तबतक सारी दुनिया में अमर रहेगा। उसे कोई कैसे भूल सकता है? तिलक महाराज का वह स्मारक तो अमर स्मारक रहेगा।

—हिन्दी। कानपुर, २४।७।१९३४। ह० से०, ३।८।१९३४।]

९२. हरिजन-सेवकों को सलाह

[काशी-विद्यापीठ में २८-२९ जुलाई, १९३४ को अखिल भारतीय हरिजन-सेवक संघ की बैठक हुई थी। कार्रवाई के अन्त में २९ जुलाई को गांधीजी ने करीब डेढ़ घण्टे तक संघ के सदस्यों से जो बातचीत की थी, उसका सारमर्म संक्षेप में नीचे दिया जाता है।—सम्पा०]

ट्रस्ट, न कि जन-तन्त्र

दो प्रश्न हैं, जिनके सम्बन्ध में कि मुझे आप लोगों से कुछ कहना है—एक तो यह है, कि संघ का संगठन किस प्रकार किया जाय, और दूसरा है एक ऐसी शिक्षण-संस्था स्थापित करने के सम्बन्ध का, जिसमें समय-सेवी अथवा आजीवन सदस्य हरिजन-सेवा की शिक्षा पा सकें। मैं जानता हूं, कि आप लोगों की आमतौर से यह इच्छा है, कि जन-तन्त्र अर्थात् वोट, चुनाव इत्यादि का रूप हमारे संघ में लाया जाय। पहले मैं कुछ दुविधा में पड़ गया था, पर यह नौ महीने का प्रवास करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं, कि चुनाव या जनतन्त्र जैसी किसी चीज के लिए हमारे संघ में स्थान नहीं है। हमारी संस्था तो एक भिन्न ही प्रकार की है। मामूली तरह से वह कोई लोक-संस्था नही है। हम तो एक प्रकार के ट्रस्टी हैं, जिन्हें हमने अपने आप नियुक्त कर रखा है। पैसा महज़ ट्रस्टी के रूप में हम अपने पास रखते हैं, और केवल हरिजनों के हितार्थ उसका उपयोग करते हैं—और इस ढंग से कि वह सीधा हरिजनों की ही जेब में जाय। हमारे संघ का संगठन इस विचार को सामने रखकर हुआ है, कि जिन भाइयों को हमने सदियों से तुच्छ मान रक्खा है, उनके प्रति अब अपना कर्त्तव्यपालन करें। १९३२ के सितम्बर मास में, जब मेरा

उपवास चल रहा था, वम्वई में मालवीय जी महाराज की अध्यक्षता मे हिन्दू-प्रतिनिधियो की जो विशाल सभा हुई थी उसमें हरिजनों के प्रति कर्त्तव्य-पालन की प्रतिज्ञा की गई थी, यह तो आप जानते ही है। उस प्रतिज्ञा को अमल में लाने के लिए ही हमारे इस संघ का निर्माण हुआ है। हरिजन-कोष में, हम मानते हैं, कि लोग प्रायश्चित्त की भावना से दान देते है। तव हमारा यही एकमात्र कर्त्तव्य है, कि इस फण्ड का उपयोग हम हरिजनो के ही हितार्थ करें। जनतन्त्रात्मक संस्था के चलाने मे पैसा भी खर्च होगा और काम में देरी भी होगी। हमारा उद्देश्य तो यह है, कि हम कम-से-कम खर्च और कम-से-कम समय मे इस फण्ड को हरिजन-हितकारी कार्यों में लगा दे। हरिजनों और अपने वीच हम हस्तक्षेप करनेवाला कोई मध्यस्थ नही चाहते; हम महज ट्रस्टी है और ट्रस्टी की सारी जिम्मेवारी हमारे ऊपर है। कुछ लोग कहते है, कि प्रवन्ध-कार्य में पैसा देनेवालो की भी आवाज होनी चाहिए। मेरी राय मे वे भूलते हैं। मेरी दृष्टि मे तो एक पाई देनेवाला और दस से लेकर पचास हजार रुपये तक देनेवाले, जैसे घनश्यामदास विड़ला, दोनो ही एक समान दाता हैं। घनश्यामदास के दस हजार रुपयों से भी उस एक पाई की कीमत स्यात अधिक हो। उडीसा मे मैंने खुद अपनी आँखों देखा है, कि वहां के गरीव आदमी किस प्रकार अपने फटे-पुराने चीथड़ों की गाँठ मे वड़े जतन से वँधे हुए पैसे-पाई को प्रेम से हमारी झोली में डालते थे। हजारों रुपयों की अपेक्षा चाहे वे कितनी ही राजी-खुशी से लोगो ने दिये हों, मुझे तो गरीव की गाँठ की वह कौड़ी ही पाकर अधिक आशा और प्रसन्नता हुई है। आत्मशुद्धि के इस यज्ञ में गरीव की कौड़ी के विना हजारों की थैलियाँ किसी अर्थ की नही लेकिन आपके उस जन-तन्त्र मे उन हजारो गरीवों को तो वोट मिलेगा नही। प्रवन्ध में उन वेचारों की आवाज तो होगी नही। हम उनके नाम तक तो जानते नही। फिर भी हमारी उनके प्रति उतनी ही या उससे भी अधिक जवावदेही है, जितनी कि हजारों की थैलियां भेट करनेवाले वड़े-वड़े दानियो के प्रति। हमारी तो यह एक दातव्य संस्था है, जिसका अस्तित्व प्रामाणिक और योग्य प्रवन्ध के ही ऊपर निर्भर करता है। अपने प्रवन्ध-कार्य का अगर हमें अधिक-से-अधिक प्रभाव लोगो पर डालना है, तो हमें अच्छे-से-अच्छे और ऊँचे दर्जे के प्रामाणिक कार्यकर्ता चुनने होंगे।

वस, मुझे जो कहना था, कह चुका, अव आपको जो ठीक जँचे वह करें। इस आन्दोलन को मैं विशुद्ध धार्मिक या नैतिक आन्दोलन मानता हूं। मेरे लिए तो यह शुद्ध सेवा और प्रायश्चित्त का ही आन्दोलन है। मै नही जानता कि हरिजन-कोष मे पैसा देनेवाले लाखो लोग मेरी इस मान्यता से कहां तक सहमत होंगे। जहां तक मेरा सम्वन्ध है, मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए, कि अस्पृश्यता को आश्रय

देकर वर्षों से हम जो पाप करते चले आ रहे हैं, उसका प्रायश्चित्त करने के विचार को छोड़कर मेरे मन में कोई दूसरी वात नही है। इसलिए मेरे विचार में इस आन्दोलन में कोई राजनीतिक हेतु नहीं है। यह वात नहीं, कि इसके राजनीतिक परिणाम न होंगे, किन्तु उनके विपय में हम सोचें ही क्यों? हमारे कार्य का क्या फल होगा, इस पर विचार करने की हमें आवश्यकता नहीं। अगर हमने इस आन्दोलन का विशाल उद्देश्य सा-.ने रक्खा, तो निश्चय ही इसका यह फल होगा, कि मुसलमानों, ईसाइयों तथा अन्य सम्प्रदायों के साथ हमारा प्रेम-सम्वन्ध अत्यन्त शुद्ध हो जायगा। मैं चाहता हूं, कि इस विचार को तो दिल से निकाल ही देना चाहिए, कि हमारा छः करोड़ गुण्डों की एक फौज तैयार करने का उद्देश्य है। इस प्रकार हिन्दूधर्म की रक्षा हर्गिज होने की नहीं। मेरा विश्वास है, कि अस्पृश्यता के अभिशाप से हिन्दूधर्म मुक्त हो गया, तो सारा संसार भी उसका कुछ नहीं विगाड़ सकता। यह कोई छोटा-मोटा संकुचित दायरे का आन्दोलन नही है। मुझे उम्मीद है, कि हमारे इस युग का यह सवसे विशाल और व्यापक आन्दोलन है।

आजीवन सेवक

दूसरा प्रश्न अव इससे सरल है। आजीवन-सेवा-कार्य में मेरा विश्वास है। मैं तो ऐसे लगनदार सेवकों की टोह में हूं, जिनकी यही एकमात्र अभिलाषा हो कि हरिजन-सेवा में ही हम अपना तन, अपना मन और अपनी आत्मा लगा देंगे। अगर ऐसे कार्यकर्त्ता हमें दस हजार मिल जायँ—मैं तो यहाँ तक कहूँगा, कि एक ही हज़ार मिल जायँ—तो हमारे इस सेवा-कार्य के आश्चर्यकारी परिणाम होगे। ऐसे कार्यकर्त्ताओं के लिए शिक्षण-संस्था खोली जाय, यह विचार मुझे अच्छा लगता है। दक्षिण अफ्रीका में डरवन के पास पाइन टाउन में एक ट्रेपिस्ट आश्रम है। तीस साल से ऊपर हुआ जव मैंने यह आश्रम देखा था। मैंने वहाँ वड़ी कठिन साधना देखी। वहां कोई गोपनीय या लिपीपुती वात नही देखी। एक लम्वा-सा कमरा था, उसी में वे सव आश्रमवासी रहते थे। सवेरे २॥ वजे वे लोग उठते थे। विल्कुल निरामिष भोजन करते और मौनव्रत को वड़ी दृढ़ता से पालते थे। सिर्फ दो-तीन व्यक्ति उनमें वोल सकते थे, जिन्हें हाट-वाजार में काम से जाना होता था और आश्रम में आने-जानेवालों से वात करनी पड़ती थी; शेप सवको चुपचाप काम करना पड़ता था। जुलू लोगों को यह आश्रम शिक्षा-दीक्षा देता था। जुलू लोगों के वीच वे काम करते और अपने जीवन का सुन्दर-से-सुन्दर साधन-फल उन्हें देते थे। मठवासी सभी आजीवन सेवक थे। सभी विद्वान संन्यासी थे। ज्ञान के साथ-साथ उद्योग की भी उन्होंने साधना की थी। उनमें वढ़ई थे, कुम्हार थे, पल्लेदार

थे और मोची थे। उन्होंने सब प्रकार के प्रयोग किये थे। उनका वह आश्रम सुन्दरता का मानो नमूना था। कितनी अच्छी सफ़ाई थी। धूल का तो कही नाम भी नही था। आश्रम का बाग़ भी रमणीक था। चारो ओर सारे वातावरण में एक मधुर शान्ति छा रही थी। आश्रम में जुलू युवक बिल्कुल अन-घड़ भरती होते थे, पर जब निकलते थे तो पक्के कारीगर बनकर। मेरा विचार इसी ढंग की शिक्षण-संस्था स्थापित करने का है। चीज़ बनानी ही है तो बहुत अच्छी क्यों न बनाई जाय। पर आज हममे हमारा वह गौरव कहाँ रहा है? पहले इस प्रकार की कठिन साधना का तो हमारे देश में अनुशासन था। पर जहां अपने आश्रम-जीवन में हमने तनिक भी उन्नति नहीं की, वहा वे लोग हमसे बहुत आगे बढ़ गये है। उन्होने नये-नये शोध किये है और प्रगति-पथ पर बहुत आगे निकल गये है। अगर हम वैसी कोई चीज बना सके, तो मुझे सन्तोष हो। ऐसे अगर पाँच भी आदमी मिल जायं, जो अपने माता-पिता, पुत्र-कलत्र आदि सब भूल जाने को तैयार हों, और जो हरिजन-सेवा मे ही अपना शेष जीवन खपा दें, तो मेरा काम बन जाय। ऐसे त्यागी और अनुरागी साधक जो सस्था बनायेंगे, वह एक सार की चीज होगी; अगर हमारा इतना ऊंचा लक्ष्य नही हो सकता, तो हमे अभी एकाध उद्योग-गृह, हरिजन-छात्रालय या कोई ऐसी ही सस्था बनानी चाहिए। करांची में सेठ शिवरतन मोहता की, उनके भाई की पुण्यार्थनिधि से, एक ऐसी हुनरशाला चल रही है। आगरे के सुप्रसिद्ध दयालबाग के दो शिक्षक वहां काम सिखाते है। वहां एक बढ़िया बोर्डिग-हाउस भी है, जिसमे छात्रों को बड़ी अच्छी तरह रखते है। एक जूते बनाने का और एक सिलाई सिखाने का, यह दो विभाग फिलहाल उस हुनरशाला मे है। यह कोई शिक्षण-संस्था नही किन्तु एक उद्योगालय है। वहां के हरिजनों का यह विश्वास है, कि कोई-न-कोई दस्तकारी सीखकर ही वे हुनरशाला से निकलेंगे, ताकि उन्हे पेट के लिए दर-दर न घूमना पड़े। ऐसी औद्योगिक संस्थाएं हम चाहे तो और भी जहां-तहां खोल सकते हैं।

हरिजन पत्रों के बारे में

हम हरिजन-सेवको ने खुद अपने प्रति न्याय नही किया है। बहुत-से तो हममे ऐसे है, जिन्होने अपना सारा समय हरिजन कार्य में नही दिया। इस कार्य को तो यों ही शौकिया कर रहे है। मैंने अक्सर उनसे पूछा कि क्या आप 'हरिजन' पढ़ते है? तो उन्होने इसका 'नही' मे जवाब दिया। तीन हरिजन पत्र चल रहे है—अंग्रेजी हरिजन, गुजराती हरिजन-बन्धु और हिन्दी हरिजन-सेवक। अंग्रेजी और गुजराती के पत्र तो स्वावलम्बी हो गये है, पर हिन्दी का अब भी नही हुआ।

इन पत्रों को जैसा चाहिए वैसा लोगों ने अपनाया नहीं, हालांकि इनका सम्पादन बड़े परिश्रम से हो रहा है। ग्राहक वनना-वनाना तो दूर रहा, सूचनाएं या घटनाओं का विवरण तक तो हमारे कार्यकर्त्ता सम्पादकों के पास ठीक-ठीक भेजते नही। आये दिन जो समस्याएं उपस्थित होती रहती है, उन पर तक वे विचार-विनिमय नहीं करते। अगर हमारे हरिजन-सेवक सचमुच कार्यरत होते, तो इतना अधिक मैटर सम्पादकों को भेजते रहते, कि उसमें से संकलन करना उन्हें कठिन हो जाता। आज तो मैटर का भी अकाल पड़ा हुआ है। यह पत्र कार्यकर्त्ताओं के है, अतः इनमें उनके पथ-प्रदर्शन की सामग्री तथा उनके विचार-विनिमय की वातें रहनी चाहिए। मैं इन पत्रों में निवन्ध इत्यादि नही देना चाहता हूं। मुझे दुःख होता है, जव हमारे कार्यकर्त्ता मुझसे ऐसे प्रश्न पूछ वैठते हैं, जिनके उत्तर हरिजन पत्रों में निकल चुके है। अगर वह इन पत्रों को ध्यान से पढ़ते होते, तो कभी ऐसे सवाल न पूछते। पर वहुत से तो इन अखवारों को छूते भी नही। अगर आप लोग हरिजन समाचारों का व्यौरा ठीक तरह से न पढ़ेंगे, तो इतने वड़े आन्दोलन की प्रगति के साथ आप कैसे संगति रख सकेंगे? आपको यह जानना जरूरी है, कि दूसरे हरिजन-संघ क्या-क्या काम कर रहे हैं। हमारे पास जगह-जगह घूमनेवाले ऐसे सम्वाद-संग्रही तो है नही, जो तमाम संस्थाओं के समाचार भेज दिया करें। और यह सावन खर्चीला भी है। हरिजन-पत्रों में खवरें रहती तो हैं, पर उनमें और भी यथार्थ खवरें और विविध वातें दी जा सकती हैं।

कृपा कर यह विचार मन में लेकर न जाइयेगा कि जो कुछ थोड़ा-सा काम हुआ है, उसकी मै कद्र नही कर सका। कुछ अच्छे काम हुए हैं सही, पर यहां उनका वखान करने की जरूरत नही। धर्म का फल तो स्वयं धर्म ही है। पर मैं ठहरा एक इन्सपेक्टर, इससे मैं तो आपको आपकी त्रुटियाँ ही वताऊंगा। आपने जो अच्छे कार्य किये हैं, उनका वखान करके मैं आपको रिझाने की चेष्टा नहीं करूंगा।

सावरमती हरिजन-आश्रम

सावरमती के हरिजन-आश्रम के वारे में अव एक शब्द। सावरमती का आश्रम एक वहुत वड़ी चीज है। उसका पूरा-पूरा उपयोग अभी नही हो रहा है। पर इसमें किसी का दोष नहीं। वेचारा परीक्षित लाल वहां की देखरेख करता है, पर इतने वड़े आश्रम का चलाना उसके सामर्थ्य के वाहर है। परीक्षित लाल को समस्त गुजरात का भी तो हरिजन-कार्य देखना पड़ता है। इसलिए इतना वड़ा काम एक आदमी के वूते का नही। इस संस्था के चलाने का भार तो खासतौर पर नियुक्त ट्रस्टी ही ले सकेंगे। अव आप लोग समझ सकते हैं, कि क्यों हम ट्रेंपिस्ट

कोटि के कार्यकर्त्ताओ की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। सावरमती के हरिजन-आश्रम को ऐसे ही त्यागी और चरित्रवान जन-सेवक पूर्णतया उपयोगी वना सकेंगे।

—हिन्दी। काशी, २९।७।१९३४। ह० से०, १७।८।१९३४।]

● धर्म का फल तो स्वयं धर्म ही है।

९३. भाषण : काशी की सार्वजनिक सभा में

[अपने हरिजन-प्रवास में जव गांधीजी काशी पहुँचे तो ३१।७।१९३४ को वहाँ की सार्वजनिक सभा में नीचे लिखे आशय का भाषण दिया था।—सम्पा०]

ईश्वर की कृपा से मुझे काशी जी मे दूसरी वेर आने का जो अवसर मिला है उससे मुझे वडा ही हर्ष होता है, और इस हर्ष मे वृद्धि होती है, जव यह खयाल आता है कि इस पवित्र पुरी में ही मेरा हरिजन-दौरा समाप्त होता है। मुझे यह कार्य वडा प्रिय जँचता है, कि यदि कोई भाई किसी प्रकार का मतभेद रखते हों तो वे भी इसी मंच पर कुछ कहे। मालूम नही, वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ के पण्डित जी किस कारणवश नही आ सके। हरिजन-आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन है। इसमे दुराग्रह को स्थान नही है। मै कितना ही जतन क्यो न करूं, मुझसे भी गलतियाँ हो सकती है और हुई भी है। मैने कभी गलती नही की है, यह दावा न तो मैने कभी किया है और न करूंगा। जो वात मै आज मान रहा हूँ वह नई नहीं है। यह वात वचपन से ही मेरे दिल मे स्वयंसिद्ध रही है। जव मै स्वेच्छाचारी वालक था, तभी मै अस्पृश्यता को नही मानता था। मुझे रामनाम का मन्त्र सिखाया गया, जिसके प्रताप से मै सुरक्षित रह सकता था। इस स्वयंसिद्ध वात के मानने में अगर मुझसे भूल हुई होगी तो इस तीर्थक्षेत्र मे उसे स्वीकार करने मे तनिक भी संकोच न होगा। जिस हालत मे अस्पृश्यता इस समय मौजूद है उसके लिए शास्त्र में स्थान नही है। अस्पृश्यता हिन्दूधर्म पर कलक है। कितने ही शास्त्री मेरे निमन्त्रण पर और कितने ही स्वेच्छा से आये और उन्होने आधुनिक अस्पृश्यता को शास्त्र-सम्मत वताने की चेष्टा की, परन्तु नम्रता से शास्त्रियों की वातों को समझने की चेष्टा करते हुए भी मुझ पर उनका असर न हुआ।

यह कहते वड़ा दुःख होता है कि सरकारी मनुष्य-गणना के अनुसार अस्पृश्य कहे जाने वाले भाइयों और वहिनों की संख्या ७ करोड़ के लगभग वताई जाती है। सेन्ससवाले इस वात की जाँच करने का प्रयत्न नही करते, कि मनुस्मृति के अनुसार

वे सचमुच अस्पृश्य हैं या नहीं। सेन्सस करनेवालों को जो कोई भी जो कुछ लिखा देता है उसे वह लिख लेते हैं। हर दस वर्ष पर मनुष्यगणना होती है और मनुष्यों की संख्या हर दस वर्ष पर घटती-बढ़ती रहती है। जलाशय पर एक कुत्ता भले ही चला जाय, पर प्यासा हरिजन बालक वहां नहीं जा सकता। यदि गया भी तो वह मार खाने से बच नहीं सकता। इस समय की अस्पृश्यता मनुष्य को कुत्ते से भी हीन मानती है।

एक हरिजन को न्यूमोनिया हो गया। फीस देकर एक सनातनी डाक्टर बुलाये गये। फीस तो आप ले चुके, पर रोगी को कैसे छूते? एक मुसलमान को बुलाकर उसे घड़ी देकर कहा, कि एक मिनट में इसकी नाड़ी जितनी बार चले उसे गिनकर मुझे बताओ। डाक्टर साहब को नाड़ी की गति बताई गई, और आप नुसखा लिख कर चले गये। फिर एक दूसरे डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने अच्छी तरह फेफड़े और हृदय की गति की परीक्षा करके दवा दी, तब रोगी को आराम पहुँचा। इस प्रकार की जो अस्पृश्यता मानी जा रही है उसके लिए शास्त्र में कोई प्रमाण है, मेरे ख़याल से इसे कोई भी शास्त्री मानने को तैयार नहीं होगा। ऐसी अस्पृश्यता को शास्त्रसम्मत न मेरी बुद्धि मान सकती है, न मेरा हृदय। **(इसी समय वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ के मन्त्री पण्डित देवनायकाचार्य मंच पर पहुँचे। आपको देख कर गांधी जी ने कहा)** बस, मैं अब आगे कुछ नहीं कहूंगा; पण्डित जी को भाषण करने का मौका देना इस समय मेरा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। सिर्फ एक बात कहूंगा। काशी के पण्डितों की ओर से मुझे जो मानपत्र मिला है, उसके लिए मैं आभारी हूं। उसे मैं आप लोगों का आशीर्वाद मानता हूं। जो द्रव्य मुझे मिला है उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूं। यद्यपि वह बहुत थोड़ा है, परन्तु मुझे विश्वास दिलाया जा रहा है कि अभी और संग्रह करने की चेष्टा की जायगी। आप लोग पण्डित जी की बात को ध्यान से शान्तिपूर्वक सुनें और अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में आपकी बुद्धि जो निश्चय करे उसे मानें। पण्डित जी का भाषण आप लोग अदब के साथ सुनें।

(अस्पृश्यता के समर्थन पर पण्डित देवनायकाचार्य जी ने शान्ति और शिष्टता-पूर्वक भाषण दिया। उनके बाद मालवीय जी महाराज अस्पृश्यता-निवारण के पक्ष में बोले। इसके पश्चात् गांधी जी ने अपना अधूरा भाषण समाप्त करते हुए कहा:)

पण्डित मालवीय जी ने आपको जो हृदय की बात सुना दी है उसके बाद मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। पण्डित देवनायकाचार्य ने जो शान्ति के साथ और संक्षेप में उपदेश दिया है उसके लिए मैं उनको धन्यवाद देता हूं। और

शान्तिपूर्वक सुनने के लिए आप लोगों को भी धन्यवाद देता हूं। परन्तु देवनायकाचार्य जी को कुछ भी उत्तर न दूं तो असभ्यता मानी जायगी। पण्डित जी की मुख्य आपत्ति मन्दिर-प्रवेश बिल के सम्बन्ध में है। जैसा कि मालवीय जी ने कहा है कि मुझसे और उनसे बातचीत होनेवाली है और आगे कोई ऐसा उपाय निकल आये जिससे मन्दिर में जानेवालो का बहुमत होने से हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश में कोई कानूनी बाधा न आये, तो मुझे कोई एतराज न होगा, और यह तो मैं कह ही चुका हूं कि बिना हिन्दू लोगों के बहुमत के इस सम्बन्ध का कोई कानून नही बनेगा, इतना कहने से सन्तोष हो जाना चाहिए। बिल के सम्बन्ध मे तो अपने हरिजन-दौरे मे मैंने कोई आन्दोलन ही नही किया, नाम भी नही लिया। शास्त्रार्थ के विषय में यह कहना है, कि आज कल या कभी भी और कही भी शास्त्रार्थ हो सकता है, परन्तु धर्म बुद्धिग्राह्य विषय नही, हृदयग्राह्य विषय है। मन्दिर-प्रवेश को छोड़ कर और किसी विषय मे किसी का विरोध मुझे नही मालूम पड़ता है। मै किसी के साथ बलात्कार तो करना नही चाहता और न झगड़ा ही करना चाहता हूं। किसी को भी मुझसे डर नही होना चाहिए। मुझसे सनातन धर्म का अहित, अश्रेय नही हो सकता। जिस सनातन धर्म को आप मानते हैं उसी को मैं भी मानता हूं।
—हिन्दी। काशी, ३१।७।१९३४। ह० से०, १०।८।१९३४।]

९४. भाषण : हिन्दू विश्वविद्यालय की सभा में

[१।८।१९३४ को गांधीजी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की सभा में निम्नलिखित भाषण दिया था।—सम्पा०]

हिन्दू विश्वविद्यालय मेरे लिए कोई नई चीज नही है। जब वह आरम्भ हुआ तभी से मालवीय जी महाराज ने मेरा सम्बन्ध इससे बाँध दिया है और आज तक वैसा ही बना हुआ है। यदि कोई परिवर्तन हुआ है तो वह और भी घनिष्ठ ही हुआ है और मेरा आदर भाव इसकी ओर बढता ही जा रहा है। विश्वविद्यालय की उन्नति के साथ-साथ धर्म की भी उन्नति होनी चाहिए। पण्डित मालवीय जी के भाव यही है। मुझे आशा है कि विद्यार्थी लोग विद्या प्राप्त करके उसका सद्व्यय करेंगे, संकुचित धर्म को ग्रहण नहीं करेंगे। उदार धर्म दूसरे धर्मो को भी अपनाता है। आज लोकमान्य तिलक की पुण्य-तिथि होने का शुभ अवसर है और इस अवसर पर धर्म के एक अंश में क्या होना चाहिए यह बताने के लिए मैं आया हूं। लोकमान्य तिलक की राजनीतिक शक्ति के सम्बन्ध में कुछ नही कहूंगा,

उसे कहने के लिए मैं अभी स्वतन्त्र भी नहीं हूं। तिलक महाराज ने धर्म के बारे में क्या सुनाया है यह इस समय कहना है। आपको जानना चाहिए कि लोकमान्य के दिल में हरिजन भाइयों के प्रति बड़ी दया थी। मुझसे और उनसे जो विचार-विनिमय हुआ था उसमें उन्होंने कहा था कि धर्मशास्त्रों में अस्पृश्यता के लिए प्रमाण नहीं है और हो भी नहीं सकता, क्योंकि हिन्दू धर्म में सत्य का दर्जा सबसे ऊंचा है। अगर तराजू पर एक ओर सत्य रक्खा जाय और दूसरी ओर अन्य सब बातें, तो भी सत्य का ही पलड़ा भारी रहेगा। कोई भी शास्त्री वेद, पुराण, इतिहास में कहीं भी धर्म के सिद्धान्त के विपरीत कोई बात नहीं बता सकता। और धर्मो में तो अस्पृश्यता की कोई चर्चा ही नहीं है। हिन्दू धर्म ने ही तो इजारा नहीं लिया है। हमारे धर्म में कई बातें ऐसी बताई गई हैं जो और कहीं नहीं हैं। हमारे यहाँ जो यह वर्णाश्रम धर्म है वह यदि लोप हो जाय तो हिन्दूधर्म ही लोप हो जायगा। वर्णाश्रम धर्म के साथ आधुनिक अस्पृश्यता का कोई सम्बन्ध नहीं। इस बात पर मेरा विश्वास दृढ़ होता जा रहा है और ९ मास के इस दौरे के बाद तो मैं यह दृढ़ता के साथ कहता हूं।

गीता माता

अब समय कम रह गया है, इसलिए इस सम्बन्ध में अधिक न कहूंगा। किन्तु आचार्य ध्रुव जी ने आज्ञा दी है कि गीता माता के बारे में कुछ कहना होगा। उनके और मालवीय जी के सामने, जो गीता को घोंटकर पी गये हैं, मैं क्या कह सकता हूँ। परन्तु मेरे-जैसे आदमी पर गीता-माता का क्या प्रभाव पड़ा है यह बतलाने के लिए मैं कुछ कहता हूं। ईसाई के लिए बाइबिल है, मुसलमान के लिए कुरान है और हिन्दुओं के लिए किसको कहें, वेद को कहें, स्मृति को कहें या पुराणों को कहें? २२-२३ साल की उम्र में मुझे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई। मालूम हुआ, कि वेदों का अभ्यास करने के लिए १५ वर्ष चाहिए, पर इसके लिए मैं तैयार नहीं था। मुझे मालूम हुआ, मैंने कहीं पढ़ा कि गीता सब शास्त्रों का दोहन है, कामधेनु है। मुझे बतलाया गया कि उपनिषद आदि का निचोड़ ७०० श्लोकों में आ गया है। थोड़ी संस्कृत की भी शिक्षा थी, मैंने सोचा कि यह तो सरल उपाय है। मैंने अध्ययन किया और मेरे लिए वह बाइबिल, कुरान नहीं रही, माता बन गई। प्राकृतिक माता नहीं, ऐसी माता जो मेरे चले जाने पर भी रहेगी। उसके करोड़ों लड़के-लड़कियाँ बिना आपस के द्वेष के उसका दुग्धपान कर सकते है। पीड़ा के समय वे माता की गोद में बैठ सकते हैं और पूछ सकते हैं, कि यह संकट आ गया है, मैं क्या करूं, और माता ज्ञान बता देगी। अस्पृश्यता के सम्बन्ध में भी मेरे ऊपर

कितना हमला होता है, कितने लोग विपरीत है। मैं माता से पूछता हूं, क्या करूं, वेद आदि तो पढ नही सकता। वह कहती हैं, नवां अध्याय पढ़ ले। माता कहती है, मैं उन्ही के लिए पैदा हुई हूं, मैं पतितों के ही लिए हूं। इस तरह आश्वासन वे ही पा सकते हैं, जो सच्चे मातृभक्त है। जो सब कुछ उसी में से पान करना चाहते है, वह उसके लिए कामधेनु है। कोई-कोई कहते हैं कि गीता माता बहुत गूढ़ ग्रन्थ है। लोकमान्य तिलक के लिए वह गूढ़ ग्रन्थ भले ही हो, पर मेरे लिए तो इतना ही काफी है—पहला, दूसरा और तीसरा अध्याय पढ लीजिए बाकी मे तो इसमें की बातों का दोहराना मात्र है। इसमें भी थोड़े-से श्लोकों में सभी बातों का समावेश है। और सबसे सरल गीता माता में तीन जगह कहा है कि जो सब चीजों को छोड़ कर मेरी गोद में बैठ जाते हैं उन्हें निराशा का स्थान नही, आनन्द ही आनन्द है। गीता माता कहती है कि पुरुषार्थ करो, फल मुझे सौंप दो। ऐसी मोटी-मोटी बातें मैने गीता माता से पाई। यह भक्ति से पाना सम्भव है। मैं रोज-रोज उससे कुछ-न-कुछ प्राप्त करता हूं, इसलिए मुझे निराशा कभी नही होती। दुनिया कहती है कि अस्पृश्यता आन्दोलन ठीक नही, गीता माता कह देती है, कि ठीक है। आप लोग प्रतिदिन सुबह गीता का पाठ करें। वह सर्वोपरि ग्रन्थ है। १८ अध्याय कण्ठ करना बड़े परिश्रम की बात है। जंगल में या कारागार में चले गये तो कण्ठ करने से गीता साथ जायगी। प्राणान्त के समय जब आंख काम नहीं देती, केवल थोडी बुद्धि रह जाती है, तो गीता से ही ब्रह्म या निर्वाण मिल जा सकता है। आपने जो मानपत्र और रुपया दिया है और आप हरिजनों के लिए जो कर रहे हैं उसके लिए मैं धन्यवाद देता हूं, पर इतने से मुझे सन्तोष नही। मैं सोचता हूं कि यहां इतने अध्यापक और लड़के-लड़कियां है, फिर इतना कम काम क्यों हो रहा है?

— हिन्दी। काशी, १।८।१९३४। ह० से०, १०।८।१९३४।]

९५. भाषण : काशी की महिलाओं की सभा में

[२ अगस्त १९३४ को काशी में महिलाओं की सभा में गांधीजी ने जो भाषण दिया था, वह नीचे दिया जाता है।—सम्पा०]

माताओ और बहिनो, आप लोगों से इस काशी धाम को छोड़ने के पहिले दो-तीन बातें कर लेना चाहता हूं। पहिली बात तो यह है कि जिसके बारे में करीब ९ महीने से दौरा कर रहा हूं और जो आज इसी सभा से समाप्त होती है। हिन्दू-

धर्म में वहुत दिनों से छुआछूत का भूत दाखिल हो गया है, जिससे दया और धर्म दिन-प्रति-दिन क्षीण होते जा रहे हैं। हम सब एक ही ईश्वर के बनाये हैं। जब भौतिक माता-पिता अपने लड़कों में भेद नहीं करते हैं, तो ईश्वर, जो अहिंसा और सत्य की मूर्ति माना जाता है, मनुष्यों में किस प्रकार भेदभाव कर सकता है? इसे हृदय कभी नहीं कबूल कर सकता। शास्त्र यही समझाता है कि सबसे महान् यज्ञ इस जगत् में सत्य है। आप माताओं से मेरी प्रार्थना है, कि इस छूआछूत के भूत को भूल जायँ। इसका मतलब यह नहीं, कि शौचादि और वृद्धि के जो नियम शास्त्रों ने बताये हैं उनका आप पालन न करें। भागवतकार ने बताया है, कि जो हृदय से द्वादशाक्षरी मन्त्र जपेगा वह कैसा भी पापी हो पुण्यवान बन जायगा। तुलसीदास जी ने ऐसी ही महिमा रामनाम की बताई है। जो मनुष्य शिव का नाम हृदय से लेता है उसके लिए भी वही बात लागू है। ऐसे मनुष्य की पाप करने की इच्छा क्षीण होती जाती है। यह सब अनुभव से सिद्ध होता है। अस्पृश्य के लिए कोई ऐसी निशानी ईश्वर ने नहीं बनाई, जिससे वह अस्पृश्य समझा जा सके। इसलिए माताओं से मेरी प्रार्थना है कि वे किसी को अस्पृश्य न समझें और जिनके लिए सम्भव हो वे हरिजन-सेवा का कार्य करें।

दूसरी बात यह कह देना चाहता हूं कि प्रत्येक बहिन को खद्दर पहनना चाहिए। विदेशी और मिलों के वस्त्र को त्याग देना चाहिए। खद्दर पहनने से कपड़े की जरूरत भी पूरी होगी और एक रुपये में पन्द्रह आना दरिद्रनारायण के पेट में जायगा। अपने जीवन को आलस्य में न बितावें और खाली समय में चर्खा चलावें।

तीसरी बात, इस विद्याभ्यास के युग में सब माताओं को कुछ विद्याध्ययन करना चाहिए और अपनी बालिकाओं को पाठशाला में भेजकर विद्याभ्यास कराना चाहिए।

चौथी बात यह है, कि जेवर आदि को, जो आप पहिने हुए हैं, वह मुझे दें या न दें, पर उन्हें अनावश्यक तरीके से न पहनें। माताओं की शोभा जेवर से नहीं, हृदय से है। पतिव्रत आदि गुणों के कारण सीता माता को हिन्दू लोग प्रातः-स्मरणीया मानते हैं।

—हिन्दी। काशी, २।८।१९३४। ह० से०, १०।८।१९३४।]

● माताओं की शोभा जेवर से नहीं, हृदय से है।

९६. भाषण[1] : लखनऊ की ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी में.

[कांग्रेस ने वम्बई के अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास किया था उसके ठीक-ठीक आशय के अनुसार चर्खा-संघ के मन्त्री श्री शंकरलाल बैंकर और ग्राम-उद्योग-संघ के मन्त्री श्री जे० पी० कुमाराप्पा की सहायता से लखनऊ-कांग्रेस की स्वागत-समिति ने लखनऊ में एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया है, जिसका उद्घाटन २८ मार्च की शाम को गांधीजी ने किया। अपने ढंग की यह एक अपूर्व प्रदर्शिनी है। तफसीलवार वर्णन तो इसका मैं अगले अंक में करूँगा, यहाँ तो सिर्फ गांधीजी के भाषण को संक्षिप्त रूप में दे रहा हूँ।—म० दे०]

मुझे आशा नहीं थी कि ईश्वर मुझे इस प्रदर्शिनी को खोलने का मौका देगा। मेरी स्थिति कुछ ऐसी थी कि आखिरी वक्त तक प्रदर्शिनी के कार्यकर्त्ताओं को मैं यह विश्वास न दिला सका कि मैं अवश्य ही आ जाऊंगा। शुरू से ही मेरा दिल तो बहुत चाहता था कि इस प्रदर्शिनी को खोलने के लिए मैं यहां जरूर आऊं। यद्यपि मैं यह जानता हूं कि डा० मुरारीलाल और श्री शंकरलाल वैंकर ने इस प्रदर्शिनी को जुटाने में बहुत अधिक परिश्रम किया है, तो भी उनकी इस मेहनत के पीछे कल्पना मेरी ही थी। इस तरह की प्रदर्शिनी के बारे में बरसों से अपने दिल में जो कल्पना मैं रखता आया था, उसको मैं इस प्रदर्शिनी में देखता हूं। सन् १९२० में कांग्रेस का जब नया विधान बनाया गया, तो पहली बार हमारा ध्यान गांवों की ओर गया। उसके बाद से ही हम अपने देहाती भाई-बहिनों के विषय में भी कुछ सोचने लगे। नये विधान के बाद अहमदाबाद की कांग्रेस के साथ जो नुमाइश हुई थी, उसमें मैंने इस सम्बन्ध की अपनी कुछ कल्पनाओं को मूर्त्त रूप देने की चेष्टा की थी। मैं मानता हूं कि, देहातों और देहातियों के बारे में मैंने खूब सोचा है। और यह तो मैंने हमेशा ही कहा है कि हिन्दुस्तान हमारे चन्द शहरों से नहीं बल्कि सात लाख गांवों से बना है। आज हम लोग जो यहां इकट्ठे हुए हैं, देहात के नहीं, शहर के रहनेवाले हैं और हममें से कइयों का यह ख़याल है कि हिन्दुस्तान शहरों में है और देहातवाले शहरवालों की खिदमत के लिए हैं। यही वजह है कि हम देहातों के बारे में, उनके सुख-दुःख और भूख-प्यास के सम्बन्ध मे बहुत कम सोचते हैं। हम इस बात का कभी ख़याल भी नहीं करते कि उन्हें क्या तो खाने-पीने को मिलता है और क्या पहनने-ओढ़ने को। कांग्रेस काम करने वाले चन्द लोग ऐसे जरूर हैं, जो देहातियों के सुख-दुःख में हाथ बटाने की कोशिश

---

१. श्री महादेव देसाई-द्वारा प्रस्तुत विवरण से।

करते हैं। लेकिन इन थोड़े-से लोगों के नाम पर शहरवाले यह दावा नहीं कर सकते कि वे देहातवालों की सेवा करते हैं।

देहातों की जो हालत है, उसे मैं खूब जानता हूं। मेरा खयाल है कि हिन्दुस्तान को घूमकर जितना मैंने देखा है, उतना कांग्रेस के नेताओं में से किसी ने नही देखा है। पंजाब से लेकर कन्याकुमारी तक जितना भ्रमण मैंने किया है उतना और किसी ने नहीं किया। यह बात मैं किसी अभिमान के वश होकर नहीं कह रहा हूं। मैं तो सिर्फ यह बतलाना चाहता हूं कि देहात के बारे में जो-कुछ मै कहता हूं वह पूरे तजुर्बे के आधार पर। मै यह कह सकता हूं कि हिन्दुस्तान के देहातों को शहरवालों ने इतना चूसा है कि उन बेचारों को अब रोटी का एक टुकड़ा भी वक्त पर नही मिलता और वे दाने-दाने को तरसते हैं। यह बात अकेला मैं ही नहीं कहता, जिन अंग्रेजों की यहां हुकूमत है वे यह तो नही कह सकते कि हिन्दुस्तान भूखों मर रहा है लेकिन उनमें से किसी ने अबतक यह नही कहा कि हिन्दुस्तानियों को भरपेट खाना मिलता है। क्या आप जानते हैं कि देहातवालों को खाने के लिए क्या मिलता है? अगर चावल मिलता है तो दाल नहीं मिलती, और रोटी मिलती है तो साग-भाजी नहीं मिलती। कही-कही तो देहातवाले सिर्फ सत्तू खाकर जीते हैं। यह सत्तू क्या है सो मैं आपको बताऊं? लोग मटर, चना और जौ वगैरा को भूनकर पीस लेते हैं और अगर मिला तो थोड़ी मिर्च और गन्दा-सा नमक मिलाकर उसी को खा लेते हैं। यही उनकी खूराक होती है। इस खूराक पर कैसे तो वे जिन्दा रह सकते हैं, कैसे तगड़े और तन्दुरुस्त बन सकते हैं और कैसे उनकी बुद्धि का विकास हो सकता है? यह बिल्कुल नामुमकिन बात है। अगर हम लोगों को इस खूराक पर जीना पड़े तो शायद दूसरे ही दिन हम यह शिकायत करेंगे कि इसे खाकर जीना हमारे लिए सम्भव ही नही है; तन्दुरुस्त रहना, काम करना और दिमाग से सोचना तो दूर की बात है।

देहातवालों की इन्हीं सब मुश्किलों का खयाल करके पिछले साल बम्बई में कांग्रेस ने अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ नामक एक नई संस्था खोली। इससे पहले अखिल भारत चर्खा-संघ द्वारा देहात में खादी का काम हो रहा था। आज भी हो रहा है, लेकिन अकेले इससे मुझे कभी सन्तोप न था। मैं तो कई वर्षों से यह मानता आ रहा हूं कि खादी के अलावा दूसरे भी ऐसे अनेक धन्धे हैं, जो गाँववालो के जीवन के लिए बहुत आवश्यक और उपयोगी हैं और जिनसे उनकी हालत एक बड़ी हद तक सुधारी जा सकती है। इसके लिए हमें यह देखना है कि देहातवाले कैसे रहते हैं, क्या काम करते हैं और उनके काम को कैसे तरक्की दी जा सकती है। यही वजह है कि कांग्रेस ने गाँवों में काम करनेवाले चर्खा-संघ और

ग्राम-उद्योग-संघ को इन प्रदर्शनों के आयोजन का भार सौंपा है। इस वार की यह प्रदर्शिनी अपने ढंग की पहली प्रदर्शनी है। इसकी रचना के पीछे कल्पना मेरी रही है। यह देहातवालों के हित के लिए है। लेकिन उन्हें लखनऊ लाना तो वडा कठिन काम है। उनमें से असंख्य स्त्री-पुरुप तो ऐसे है कि जो लखनऊ का नाम तक नही जानते। हमारे लिए यह कोई अचरज की वात नही है, वल्कि बड़े रंज और शर्म की वात है। इसीलिए इस नुमाइश के जरिये हम दिखाना यह चाहते है कि भूख से वेहाल इस हिन्दुस्तान में भी आज ऐसे-ऐसे हुनर, उद्योग-वन्धे और कला-कौशल मौजूद है, जिनका हमे कभी खयाल भी नही होता। इस नुमाइश की यही विशेपता है।

अगर आप शहरो मे होनेवाली दूसरी नुमाइशो से इसकी तुलना करेगे तो मै आपसे कहूंगा कि आपको इसमे निराशा होगी। लेकिन यदि आप देहातवालों का खयाल लेकर वैसी नजर से इसे देखेगे तो आपको इस नुमाइश से कभी नाउम्मीद न होना पड़ेगा। साथ ही मै यह भी कहूँगा कि यह नुमाइश कोई तमाशा नही है और न इसे तमाशा वनाने का कभी खयाल ही रहा है। यह नुमाइश तो एक ऐसी चीज है जिससे आदमी वहुत-कुछ सीख सकता है। जिन्होने इसे वनाया है उन्होने तो अपने वश भर इसे तमाशा न वनाने की ही चेष्टा की है। लेकिन अक्सर काग्रेस के साथ होनेवाली नुमाइश से कांग्रेस का खर्च निकालने का खयाल रहता है और अव तक की काग्रेस-प्रदर्शिनियों का आयोजन वहुत कुछ इसी खयाल से होता रहा है। लेकिन आज की इस नुमाइश से पैसा पैदा करने का इरादा असल में कभी नही रहा। मद्रास-कांग्रेस के साथ जो नुमाइश हुई थी उसमे हमे सवसे ज्यादा पैसा मिला था। लखनऊ मे भी चाहे तो काफी पैसा मिल सकता है।

पर यह नुमाइश तो एक ऐसी चीज है जिससे मनुष्य वहुत-कुछ सवक सीख सकता है। इसे देखने का सवसे अच्छा तरीका यह है कि कोई अगर कुछ सीखना चाहे तो जवतक यह नुमाइश खुली है तवतक इससे फायदा उठाकर वह वहुत-कुछ सीख सकता है। हम इसे कुछ सीखने की दृष्टि से देखें, तमाशे की दृष्टि से नही। मैं तो यह मानता हूं कि जो एक वार इस नुमाइश को देख लेगा, उसे फौरन ही पता चल जायगा कि हिन्दुस्तान के देहातों में अव भी कितनी ताकत भरी पड़ी है।

देहातों की इस ताकत को पहचानकर जो २८ करोड़ देहातियो की सेवा करता है, वही कांग्रेस का सच्चा सेवक है। जो इन करोड़ो की सेवा नही करता, वह कांग्रेस का सरदार या नेता हो सकता है, सेवक या वन्दा नहीं वन सकता।

मृतप्राय या अधमरा होने पर भी हिन्दुस्तान मे जो ताकत आज मौजूद है, उसका खयाल आपको इस नुमाइश मे मैसूर, मद्रास, और कश्मीर से आये हुए

कारीगरों के कौशल को देखकर होगा। इन कारीगरों-द्वारा बड़ी मेहनत से बनाई हुई रुपयों की चीजों को कौड़ियों के मोल खरीदकर हमने उन्हें जिस दशा को पहुँचा दिया है, वह हमारे लिए जरा भी शोभास्पद नहीं है। चर्खा-संघ और ग्राम-उद्योग-संघ के जरिये हम इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि इन कारीगरों को अपनी मेहनत के बदले में पूरी मजदूरी मिले ताकि वे सुख से रह सकें। लेकिन हमारी यह कोशिश बगैर आपकी मदद के कैसे कामयाब हो सकती है? हम तो यह चाहते हैं कि जिन लोगों को पहले सारा दिन काम करने पर दो पैसे दिये जाते थे उन्हें दो, तीन या चार आने दें और अगर हो सके तो आठ आने, एक रुपया भी दें। लेकिन यह तो सभी हो सकता है कि जब आप हमें इस बात की गारण्टी दें कि उनकी बनाई चीजों को आप पूरे दाम देकर खरीदेंगे। किन्तु मैं यह जानता हूं कि आज आप इसके लिए तैयार नहीं हैं।

इस बात को यहीं छोड़कर मैं आपका ध्यान नुमाइश के अन्दर रक्खी हुई चीजों की ओर दिलाना बेहतर समझता हूं। आमतौर पर हमारी नुमाइशें सिनेमा का ठाठ बन जाती हैं: यहां वह सब ठाठ नहीं है। और नुमाइश का यह सीधा-सादा-सा दरवाजा मेरी इस बात का सबूत है। दरवाजे पर हल, पहिये, पंजे और नरही वगैरा जो लगे हैं, सो सब हमारे ग्राम-जीवन के सूचक हैं। दरवाजे के आस-पास दोनों ओर हमारे ग्राम-जीवन का परिचय करानेवाले जो चित्र लगे है, वे श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन से आये हुए श्री नन्दलाल बोस की प्रेरणा से उन्हीं की देखरेख में बने हैं। नन्दलाल बाबू तो हिन्दुस्तान के एक बड़े ऊंचे कलाकार हैं। नुमाइश के अन्दर जिस चित्र-शाला का निर्माण उन्होंने किया है, वह तो अवश्य ही देखने योग्य है। इससे हमें हिन्दुस्तान की पुरानी कला के उत्कर्ष का बोध होता है, और इस समय जो ज्ञात और अज्ञात कलाकार देश में मौजूद हैं उनके सामर्थ्य का परिचय करानेवाली कृतियां देखने को मिलती हैं।

देहातवालों के बारे में मैं अपने आपको बहुत विज्ञ समझता हूं। लेकिन इस नुमाइश में तो मुझे भी सबक सिखानेवाली कई चीजें मैं देख रहा हूं। अगर मेरी तन्दुरुस्ती ठीक रही तो मैं इसे कई बार आकर देखनेवाला हूं। मैं यह मानता हूं कि मैं यहां से बहुत-कुछ सीखकर जा सकता हूं। जो सीखना चाहते हैं वे तो प्रवेशद्वार की रचना और आस-पास बने हुए इन चित्रों से भी बहुत-कुछ बिना पैसा खर्च किये भी सीख सकते हैं।

इनके अलावा भी नुमाइश के अन्दर कई चीजें ऐसी है जिनका गौरव के साथ उल्लेख किया जा सकता है, लेकिन मैने तो एक देहाती के ढंग से बहुत थोड़े में कुछ बातें आप लोगों को बतला दी हैं। अगर मैं कलाकार होता तो इन्हीं सब वस्तुओं

का ऐसा वर्णन आपको सुनाता कि आप सुनकर मुग्ध हो जाते। लेकिन मेरे जैसे देहाती के लिए यह सम्भव नही है। मै देहाती हूं या नही, यह तो मैं नही कह सकता, लेकिन मेरा दिल देहाती है इसमें मुझे जरा भी शक नही। इसलिए मैने इस नुमाइश का जिक्र एक देहाती की हैसियत से आपके सामने किया है। हाँ, बैंड-बाजों और खेलतमाशों का अभाव देखकर आप निराश न हों। ये नुमाइशे इन चीजों के लिए है ही नही। यहा तो आपको कुछ ऐसे बेहाल आदमी देखने को मिलेगे, जो दिनभर मेहनत करके मुश्किल से दो-चार आने पैसे पाते है।

इस नुमाइश में नुमाइशी चीजों के अलावा ऐसे कारीगर भी यहां आये है, जो अपने हुनर आपको बताने को तैयार हैं। आप उनके पास बैठकर उनसे बहुत-सी बाते सीख सकते है। ऐसा सुभीता और ऐसा अवसर छोड़ने योग्य नही है। इसीलिए मैं कहता हूं कि आप जो चन्द लोग यहाँ आ गये है, वे इस नुमाइश के लिए मेरे प्रचारक बन जायं और दूर-दूर तक इसका सन्देश पहुचा दे। वर्ना आपके सिर यह इलजाम रहेगा कि देहातवालों के लाभ के लिए जो नुमाइश की गई थी उसकी आपने उपेक्षा की।

आप यह याद रखिए कि यह नुमाइश देहातवालों के लिए नही, आपके लिए है। देहातवाले इसे क्या देखेगे? वे तो इसे देखकर यही कहेगे कि ऊह, इसमें क्या रक्खा है। इससे अच्छी-अच्छी चीजे हम अपने गाँव में दिखा सकते हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि यह नुमाइश तो शहरवालो के लिए है। और यदि मैं इसके लिए आपसे पैसा न लूं तो किससे लूं? क्या देहातवालो से लूँ? उनके लिए जैसी नुमाइश मै चाहता हूं, मौका मिलने पर वैसी नुमाइश भी मै करके दिखाऊँगा। और यदि मैं मर गया तो मेरे पीछे रहनेवाले उसे करके दिखायेगे।

इस नुमाइश के लिए स्वागत-समिति ने एसे निवास-स्थान का प्रबन्ध करके ३५ हजार रुपये के खर्च का बजट बनाया है। मै जानता हूं कि इस कार्य मे उसे कई परेशानियो और मुसीबतो का सामना करना पड़ा है। स्वागत-समिति ने जो ३५००० रु० खर्च किया है, उसे वापस दे देना आपका फर्ज है, इसीलिए तो मैं आपको अपना प्रचारक नियुक्त कर रहा हूं। इस प्रचार-कार्य का कोई कमीशन मैं आपको नही दूगा। लेकिन ईश्वर जरूर देनेवाला है। अगर आपको उस पर एतबार है, तो वह आपका कमीशन जरूर आपको भेज देगा।

मैं भी आपके इस शहर मे थोड़े दिन पडा रहनेवाला हूं। मै रोज यह पता लगाता रहूंगा कि किस तरह आप मेरी एजेन्सी का काम करते है। आपके काम की परीक्षा के लिए मै नुमाइश के खजांची से रोजाना यह पूछता रहूँगा कि आपने नुमाइश के लिए कितने आदमी और कितने पैसे भेजे। मै उम्मीद करता हूं और

अदव के साथ कहता हूं कि नुमाइश के लिए रक्खे गये आठ आने या चार आने के टिकट के लिए कोई शिकायत आपको नही होनी चाहिए। अगर आप लोगों की पूरी सहायता रही तो हमारा यह इरादा है कि हम यहां आनेवाले देहाती किसानों और मजदूरों को यह नुमाइश मुफ्त में देखने का मौका दें, लेकिन यह तभी हो सकता है, जव आप लोग लाख-दो-लाख की संख्या में इस नुमाइश को देखने आवें और मेरा हौसला वढ़ा दें। वर्ना यह सुनकर कि आज नुमाइश में दो हजार आदमी आये, कल एक हजार और परसों कोई भी नहीं आया, मुझे सदमा पहुंचेगा। लेकिन अगर मेरे जैसे देहाती के नसीव में यह भी लिखा है तो उसे सह लूंगा। अन्त में, मैं यह कहूंगा कि इस प्रदर्शिनी में जो त्रुटियाँ रह गई है, मुझे उम्मीद है, आप उन कमियों को दरगुजर करके इसमें जो कुछ सीखने लायक है उसे जरूर सीखेंगे। ——हिन्दी। लखनऊ, २८।३।१९३६। ह० से०, ४।४।१९३६।]

९७. भाषण : भारत-माता मन्दिर, काशी के उद्घाटन में

"इस मन्दिर का उद्घाटन करते हुए मै अपने मन के भावों को किस तरह व्यक्त करूं? सेगाँव छोड़ कर कही न जानेवाला व्यक्ति यहां दौड़ा आया, क्योंकि प्रेम एक अजीव वस्तु है। यह मनुष्य को कहां से कहां उड़ा ले जाता है। मीरावाई का कहा जानेवाला एक भजन गुजराती में है, जिसमें प्रेम की उपमा सूत के कच्चे धागे से दी गई है, किन्तु इस धागे के कच्चे होने पर भी इसका वल इतना जवरदस्त है कि अपने परिचित प्रेमी को वह चाहे जहाँ खीच ले जाता है। इस पर कृष्ण-सरीखे भी प्रहार करें तो भी यह टूटता नही, क्योकि कृष्ण की तो यह प्रतिज्ञा ही है कि जहाँ सच्चा प्रेम है वहां मै हूँ। सो यह प्रेम का धागा ही मुझे यहाँ खीच लाया है।

"शिवप्रसाद जी का प्रेम मुझे खींच न लाता, तो मैं यहां आता नही, क्योंकि इस पवित्र भावना पर रचे हुए इस मन्दिर का उद्घाटन करने के लिए मै अपने को योग्य नही समझता। शिवप्रसाद को जव से मैं जानता हूँ तव से मैं देखता हूँ कि गंगा-तट को इन्होने अपना निवास-स्थान वनाया है और गंगा-जल से अपनी देह को पवित्र रखते है, तिस पर भी इन्होंने अपने हृदय में एक दूसरी ही गंगा को धारण कर रक्खा है। यह भावना और कल्पना की गंगा इनके हृदय में हमेशा वहती रहती है और इसमें यह नित्य ही अवगाहन करते रहते है। वह भावना के घोड़े भी वनाते और पृथिवी की प्रदक्षिणा करते हैं। भावना का ऐसा वल है कि वह यदि शुद्ध हो तो स्वर्ग में भी उड़ा ले जा सकता है और अशुद्ध हो तो नरक

मे भी ले जा सकता है। इनकी भारत-भक्ति की भावना पूना के कर्वे विधवाश्रम मे खुदे हुए एक उठावदार नक्शे को देखकर मूर्त्तिमन्त हुई, और इस पर अपनी समुचित धनराशि खर्च कर डालने का उन्होंने विचार किया। जैसी इनकी भावना थी वैसे ही इनको कलाकार भी मिल गये। शिल्पी और इंजीनियर भी वैसे ही मिल गये। एक बार तो इन्हे अपने जीवन की भी आशा नही रही थी, किन्तु भगवान ने जीवित रक्खा और इनका स्वप्न, इनकी भावना की प्रतिमा आज हम अपने सामने खड़ी देखते है।

"सवेरे जब मै पूर्णाहुति देने आया, तो उस समय वेदमन्त्र सुनते-सुनते मुझे २० वर्ष से जो श्लोक अपनी प्रभात की प्रार्थना मे बोलते है, उसका स्मरण हो आया—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले,
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।

"यह विष्णुपत्नी ही हमारे पास है। हमारा पोषण करती है, रक्षण करती है, जिसके हम सब ऋणी हैं और जिससे हमे सदा क्षमा माँगनी चाहिए। उसका चित्र मेरे सामने खड़ा हो गया। जिस माता ने हमे जन्म दिया, वह तो थोड़े ही वर्ष जीवित रहेगी, किन्तु यह माता तो सदैव ही है और यदि यह नही है तो हम भी नही है। जिस दिन इसका नाश होगा उस दिन यह हमें अपनी गोद मे लेकर चली जायगी। भारतमाता इसी माता का अंश है और उसका मानचित्र आज वेदमन्त्रो से पुनीत हुआ है। शिवप्रसाद जी ने सबको बिना किसी प्रकार की शर्त के इस माता की आराधना के लिए निमन्त्रित किया है। जिन्हे माता के प्रति प्रेम है, वे यहाँ चले आवें। मै तो प्रेम का दावा करता ही हूँ तब फिर मै इस मन्दिर का उद्घाटन क्यो न करूं?

"इस मन्दिर को शिवप्रसाद जी का आशीर्वाद तो मिला ही है। यहां हम सब अपने दिल का द्वेष और मैल भूलकर, अपने तमाम संकुचित भेद-भाव भूलकर एकत्र हो और भारत-माता की सेवा की प्रतिज्ञा करें। शिवप्रसाद जी की शुभ-कामनाएँ सब सफल हो और जबतक वे सफल हो, तबतक की आयु भगवान उन्हें प्रदान करें।

— हिन्दी। काशी, दशहरा, १९३६। ह० से०, ३१।१०।१९३६।]

९८. भाषण : हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत्जयन्ती में

[२१ जनवरी १९४२ के दिन गांधी जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत-जयन्ती के अवसर पर नीचे लिखा भाषण हिन्दी में दिया था।—सम्पा०]

तीर्थ-यात्रा

"पूज्य मालवीय जी, सर राधाकृष्णन्, भाइयो और बहिनो!

"आप सब जानते हैं कि आजकल मुझमें न तो सफर करने की ताकत ही रही है, और न इच्छा ही, लेकिन जब मैंने इस विश्वविद्यालय के रजत महोत्सव की बात सुनी और मुझे सर राधाकृष्णन् का निमन्त्रण मिला, तो मैं इन्कार न कर सका।

"आप जानते हैं कि मालवीय जी महाराज के साथ मेरा कितना गाढ़ सम्बन्ध है। अगर उनका कोई काम मुझसे हो सकता है, तो मुझे उसका अभिमान रहता है, और अगर मैं उसे कर सकूँ, तो अपने को कृतार्थ समझता हूँ। इसलिए जब सर राधाकृष्णन् का पत्र मुझे मिला, तो मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। यहाँ आना मेरे लिए तो एक तीर्थयात्रा के समान है।

"यह विश्वविद्यालय मालवीय जी महाराज का सबसे बड़ा और प्राणप्रिय कार्य है। उन्होंने हिन्दुस्तान की बहुत-बहुत सेवाएँ की हैं, इससे आज कोई इन्कार नहीं कर सकता। लेकिन मेरा अपना खयाल यह है कि उनके महान् कार्यों में इस कार्य का महत्व सबसे ज्यादा रहेगा। २५ साल पहिले, जब इस विश्वविद्यालय की नींव डाली गई थी, तब भी मालवीय जी महाराज के आग्रह और खिचाव से मैं यहाँ आ पहुँचा था; उस समय तो मैं यह सोच भी न सकता था कि जहाँ बड़े-बड़े राजा, महाराजा और खुद वाइसराय आनेवाले हैं, वहाँ मुझ-जैसे फ़क़ीर की क्या जरूरत हो सकती है। तब तो मैं महात्मा भी नहीं बना था। अगर कोई मुझे महात्मा के नाम से पुकारते भी थे, तो मैं यही सोच लेता था कि महात्मा मुंशीराम जी के बदले भूल से मुझे किसी ने पुकार लिया होगा। उनकी कीर्ति तो मैंने दक्षिण अफ़्रीका में ही सुन ली थी। हिन्दुस्तान से धन्यवाद और सहानुभूति का सन्देश भेजनेवालों में एक वह भी थे, और मैं जानता था कि हिन्दुस्तान की जनता ने उन्हें उनकी देश-सेवाओं के लिए 'महात्मा' की उपाधि दी थी। उस समय भी मालवीय जी महाराज की कृपादृष्टि मुझ पर थी। कहीं भी कोई सेवक हों, वह उसे ढूंढ निकालते हैं, और किसी-न-किसी तरह अपने पास खींच ही लाते हैं। यह उनका सदा का धन्धा है।

भिक्षां देहि

"लोग मालवीय जी महाराज की बड़ी प्रशंसा करते है। आज भी आपने उनकी कुछ प्रसंशा सुनी है। वह सब तरह उसके लायक है। मै जानता हूँ कि हिन्दू विश्वविद्यालय का कितना वडा विस्तार है। संसार में मालवीय जी से बढ़कर कोई भिक्षुक नही। जो काम उनके सामने आ जाता है, उसके लिए—अपने लिए नहीं—उनकी भिक्षा की झोली का मुँह हमेशा खुला रहता है; वह हमेशा माँगा ही करते है। और परमात्मा की भी उन पर बड़ी दया है कि जहाँ जाते है, उन्हे पैसे मिल ही जाते है। तिस पर भी उनकी भूख कभी नही बुझती। उनका भिक्षा-पात्र सदा खाली रहता है। उन्होने विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ इकट्ठा करने की प्रतिज्ञा की थी। एक करोड़ की जगह डेढ करोड दस लाख रुपया इकट्ठा हो गया, मगर उनका पेट नही भरा। अभी-अभी उन्होने मुझसे कान मे कहा है कि आज के हमारे सभापति महाराजा साहब दरभंगा ने उनको एक खासी बड़ी रकम दान मे और दी है।

तीर्थस्वरूप मालवीय जी

"मैं जानता हूँ कि मालवीय जी महाराज स्वयं किस तरह रहते है। यह मेरा सौभाग्य है कि उनके जीवन का कोई पहलू मुझसे छिपा नही। उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी पवित्रता और उनकी मुहब्बत से मै भलीभांति परिचित हूँ। उनके इन गुणों में से आप जितना कुछ ले सके, जरूर लें; विद्यार्थियों के लिए तो उनके जीवन की वहुतेरी बातें सीखने लायक है। मगर मुझे डर है कि उन्होने जितना सीखना चाहिए, सीखा नही है। यह आप का और हमारा दुर्भाग्य है। इसमे उनका कोई कुसूर नही। धूप में रहकर भी कोई सूरज का तेज न पा सके, तो उसमे सूरज वेचारे का क्या दोष ? वह तो अपनी तरफ से सबको गर्मी पहुँचाता रहता है, पर अगर कोई उसे लेना ही न चाहे, और ठण्ड मे रहकर ठिठुरता फिरे, तो सूरज भी उसके लिए क्या करे ? मालवीय जी महाराज के इतने निकट रहकर भी अगर उनके जीवन से सादगी, त्याग, देशभक्ति, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम आदि सद्‌गुणो का अपने जीवन में अनुकरण न कर सकें, तो कहिए, आपसे वढकर अभागा और कौन होगा ?

कैसी गुलामी !

"अव मै विद्यार्थियो और अध्यापकों से दो शब्द कहना चाहता हूँ।

"मैंने तो सर राधाकृष्णन् से पहले ही कह दिया था कि मुझे क्यों बुलाते हो ?

मैं वहाँ पहुँचकर क्या कहूँगा? जब बड़े-बड़े विद्वान् मेरे सामने आ जाते हैं, तो मैं हार जाता हूँ। जब से हिन्दुस्तान आया हूँ, मेरा सारा समय कांग्रेस में और ग़रीबों, किसानों और मज़दूरों वगैरा में बीता है। मैंने उन्हीं का काम किया है। उनके बीच मेरी जबान अपने आप खुल जाती है। मगर विद्वानों के सामने कुछ कहते हुए मुझे बड़ी झिझक मालूम होती है। श्री राधाकृष्णन् ने मुझे लिखा कि मैं अपना लिखा हुआ भाषण उन्हें भेज दूँ। पर मेरे पास उतना समय कहाँ था? मैंने उन्हें जवाब दिया कि वक्त पर जैसी प्रेरणा मुझे मिल जायगी, उसी के अनुसार मैं कुछ कह दूंगा। मुझे प्रेरणा मिल गई है। मैं जो कुछ कहूँगा, मुमकिन है, वह आपको अच्छा न लगे। उसके लिए आप मुझे माफ कीजिएगा। यहाँ आकर जो कुछ मैंने देखा, और देखकर मेरे मन में जो चीज पैदा हुई, वह शायद आपको चुभेगी। मेर खयाल था कि कम से कम यहाँ तो सारी कार्रवाई अंग्रेजी में नहीं, बल्कि राष्ट्रभाषा में ही होगी। मैं यहाँ बैठा यही इन्तज़ार कर रहा था कि कोई-न-कोई तो आख़िर हिन्दी या उर्दू में कुछ कहेगा। हिन्दी-उर्दू न सही, कम-से-कम मराठी या संस्कृत में ही कोई कुछ कहता। लेकिन मेरी सब आशाएँ निष्फल हुईं।

"अंग्रेजों को हम गालियाँ देते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान को गुलाम बना रक्खा है, लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद ही गुलाम बन गये हैं। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को काफी पामाल किया है। इसके लिए मैंने उनकी कड़ी-से-कड़ी टीका भी की है। परन्तु अंग्रेजी की अपनी इस गुलामी के लिए मैं उनको जिम्मेदार नहीं समझता। ख़ुद अंग्रेजी सीखने और अपने बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के लिए हम कितनी-कितनी मेहनत करते हैं? अगर कोई हमें कह देता है कि हम अंग्रेजों की तरह अंग्रेजी बोल लेते हैं, तो मारे ख़ुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है? इसकी वजह से हमारे बच्चों पर कितना-कितना जुल्म होता है? अंग्रेज़ी के प्रति हमारे इस मोह के कारण देश की कितनी शक्ति और कितना श्रम बरबाद होता है? इसका पूरा हिसाब तो हमें तभी मिल सकता है, जब गणित का कोई विद्वान् इसमें दिलचस्पी ले। कोई दूसरी जगह होती, तो शायद यह सब बरदाश्त कर लिया जाता, मगर यह तो हिन्दू विश्वविद्यालय है। जो बातें इसकी तारीफ में अभी कही गई हैं, इनमें सहज ही एक आशा यह भी प्रकट की गई है कि यहाँ के अध्यापक और विद्यार्थी इस देश की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के जीते-जागते नमूने होंगे।

"मालवीय जी ने तो मुँह-माँगी तनख्वाहें देकर अच्छे-से-अच्छे अध्यापक यहाँ आप लोगों के लिए जुटा रक्खे हैं। तब उनका दोष तो कोई कैसे निकाले

बौद्धिक थकान

"एक और बात मैंने देखी। आज सुबह हम श्री शिवप्रसाद गुप्त के घर से लौट रहे थे। रास्ते में विश्वविद्यालय का विशाल प्रवेश-द्वार पड़ा। उस पर दृष्टि गई तो देखा, नागरी लिपि में हिन्दू विश्वविद्यालय इतने छोटे अक्षरों में लिखा है, कि ऐनक लगाने पर भी नही पढ़ा जाता, पर अंग्रेजी मे उसी नाम ने तीन चौथाई से भी ज्यादा जगह घेर रक्खी थी। मैं हैरान हुआ कि यह क्या मामला है? इसमें मालवीय जी महाराज का कोई कसूर नही। यह तो किसी इंजीनियर का काम होगा। लेकिन सवाल तो यह है कि अंग्रेजी की वहां जरूरत ही क्या थी? क्या हिन्दी या फारसी में कुछ नहीं लिखा जा सकता था? क्या मालवीय जी, और क्या सर राधाकृष्णन् सभी हिन्दू-मुस्लिम एकता नही चाहते हैं? फारसी मुसलमानों की अपनी खास लिपि मानी जाने लगी है। उर्दू का देश में अपना खास स्थान है इसलिए अगर दरवाजे पर फ़ारसी में, नागरी में या हिन्दुस्तान की दूसरी किसी लिपि मे कुछ लिखा जाता, तो मैं उसे समझ सकता था। लेकिन अंग्रेजी में उसका वहां लिखा जाना भी हम पर जमे हुए अंग्रेजी भाषा के साम्राज्य का एक प्रमाण है। किसी नई लिपि या जबान को सीखने से हम घबराते है। जब कि सच तो यह है कि हिन्दुस्तान की किसी जबान या लिपि को सीखना हमारे लिए बायें हाथ का खेल होना चाहिए। जिसे हिन्दी या हिन्दुस्तानी आती है, उसे मराठी, गुजराती, बंगाली वगैरा सीखने में तकलीफ ही क्या हो सकती है? कन्नड़, तमिल, तेलुगू और मलयालम का भी मेरा तो यही अनुभव है। इनमें भी संस्कृत के और संस्कृत से निकले हुए काफी शब्द भरे पड़े हैं। जब हममें अपनी मातृभाषा के लिए सच्चा प्रेम पैदा हो जायगा, तो हम इन सब भाषाओं को बड़ी आसानी से सीख सकेंगे। रही बात उर्दू की, सो वह भी आसानी के साथ सीखी जा सकती है। लेकिन दुर्भाग्य से उर्दू के विद्वान् इधर उसमें अरबी और फ़ारसी के शब्द ठूंस-ठूंस कर भरने लगे हैं, उसी तरह, जिस तरह हिन्दी के विद्वान् हिन्दी में संस्कृत शब्द भर रहे है। नतीजा इसका यह होता है कि जब मुझ-जैसे आदमी के सामने कोई लखनवी तर्ज की उर्दू बोलने लगता है, तो सिवा बोलनेवाले का मुंह ताकने के और कोई चारा नही रह जाता।

अपनी विशेषता चाहिए

"एक बात और। पश्चिम के हरएक विश्वविद्यालय की अपनी एक-न-एक विशेषता होती है। कैम्ब्रिज और आक्सफर्ड को ही लीजिए। इन विश्वविद्यालयों को इस बात का अभिमान है कि इनके हरएक विद्यार्थी पर इनकी अपनी विशेषता

की छाप इस तरह लगी रहती है कि वे तुरन्त पहचाने जा सकते हैं। हमारे देश के विश्वविद्यालयों की अपनी ऐसी कोई विशेषता होती ही नहीं। वे तो पश्चिमी विश्वविद्यालयों की एक निस्तेज और निष्प्राण नकल-भर हैं। अगर हम उनको पश्चिमी सभ्यता का सिर्फ सोख्ता या स्याही-सोख कहें, तो शायद वेजा न होगा। आपके इस विश्वविद्यालय के वारे में अक्सर यह कहा जाता है कि यहां शिल्प-शिक्षा और यन्त्र-शिक्षा का यानी इंजीनियरिंग और टेक्नालोजी का देशभर में सबसे ज्यादा विकास हुआ है, और इनकी शिक्षा का अच्छा प्रवन्ध है। लेकिन इसे मैं यहां की विशेपता मानने को तैयार नहीं। तो फिर इसकी विशेषता क्या हो? मैं इसका एक उदाहरण आपके सामने रखना चाहता हूं। यहां जो इतने हिन्दू विद्यार्थी हैं, उनमें से कितनों ने मुसलमान विद्यार्थियों को अपनाया है? अलीगढ़ के कितने छात्रों को आप अपनी ओर खींच सके हैं? दरअसल आपके दिल में चाह तो यह पैदा होनी चाहिए कि आप तमाम मुसलमान विद्यार्थियों को यहां वुलायेंगे, और उन्हें अपनायेंगे।

हिन्दुस्तान की पुरानी संस्कृति का सन्देश

"इसमें सन्देह नही कि आपके विश्वविद्यालय को काफी धन मिल गया है, और जवतक मालवीय जी महाराज है, आगे भी मिलता रहेगा। लेकिन मैंने जो कुछ कहा है, वह रुपये का खेल नही। अकेला रुपया सव काम नहीं कर सकता; हिन्दू विश्वविद्यालय से मैं विशेप आशा तो इस वात की रक्खूंगा कि यहां वाले इस देश में वसे हुए सभी लोगों को हिन्दुस्तानी समझें, और अपने मुसलमान भाइयों को अपनाने में किसी से पीछे न रहें। अगर वे आपके पास न आयें, तो आप उनके पास जाकर उन्हें अपनाइए। अगर इसमें हम निष्फल भी हुए तो क्या हुआ? लोकमान्य तिलक के हिसाव से हमारी सभ्यता दस हजार वरस पुरानी है। बाद के कई पुरातत्वशास्त्रियों ने उसे इससे भी पुरानी बताया है। इस सभ्यता में अहिसा को परम धर्म माना गया है। अतः इसका कम-से-कम एक नतीजा तो यह होना चाहिए कि हम किसी को अपना दुश्मन न समझें। वेदों के समय से हमारी यह सभ्यता चली आ रही है। जिस तरह गंगा जी में अनेक नदियां आकर मिली है, उसी तरह इस देश की संस्कृति-गंगा में भी अनेक संस्कृति-रूपी सहायक नदियां आकर मिली हैं। यदि इन सवका कोई सन्देश या पैगाम हमारे लिए हो सकता है, तो यही कि हम सारी दुनिया को अपनायें और किसी को अपना दुश्मन न समझें। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह हिन्दू विश्वविद्यालय को यह सव करने की शक्ति दे। यही इसकी विशेषता हो सकती है। सिर्फ अंग्रेजी सीखने से यह काम

सकता है? दोप जमाने का है। आज हवा ही कुछ ऐसी वन गई है, कि हमारे लिए उसके असर से वच निकलना मुश्किल हो गया है। लेकिन अव वह जमाना भी नही रहा, जव विद्यार्थी जो कुछ मिलता था, उसी में सन्तुप्ट रह लिया करते थे। अव तो वे वड़े-वड़े तूफान भी खडे कर लिया करते हैं, छोटी-छोटी वातों के लिए भूख-हड़ताल तक कर देते है। अगर ईश्वर उन्हे वुद्धि दे, तो वे कह सकते है: हमें अपनी मातृभापा में पढ़ाओ। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि यहाँ आन्ध्र के २५० विद्यार्थी है। क्यों न वे सर रावाकृष्णन् के पास जायें और उनसे कहें कि यहाँ हमारे लिए एक आन्ध्र-विभाग खोल दीजिए और तेलगू में हमारी सारी पढ़ाई का प्रवन्व करा दीजिए? और अगर वे मेरी अक्ल से काम करें, तव तो उन्हे कहना चाहिए कि हम हिन्दुस्तानी हैं, हमें ऐसी जवान में पढ़ाइए, जो सारे हिन्दुस्तान में समझी जा सके। और ऐसी जवान तो हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।

कहां जपान, कहां हम?

"जपान आज अमेरिका और इंग्लैण्ड से लोहा ले रहा है। लोग इसके लिए उसकी तारीफ़ करते है। मैं नही करता। फिर भी जपान की कुछ वातें सचमुच हमारे लिए अनुकरणीय हैं। जपान के लडकों और लड़कियों ने यूरोप-वालों से कुछ जो पाया है, अपनी मातृभापा जपानी के जरिये ही पाया है, अग्रेजी के जरिये नही। जपानी लिपि वडी कठिन है, फिर भी जपानियों ने रोमन लिपि को कभी नही अपनाया। उनकी सारी तालीम जपानी लिपि और जपानी जवान के जरिये ही होती है। जो चुने हुए जपानी पश्चिमी देशों में खास-खास विपयो की तालीम के लिए भेजे जाते हैं, वे भी जव आवश्यक ज्ञान पाकर लौटते हैं, तो अपना सारा ज्ञान अपने देशवासियों को जपानी भापा के जरिये ही देते है। अगर वे ऐसा न करते और देश में आकर दूसरे देशों के जैसे स्कूल और कालेज अपने यहाँ भी वना लेते, और अपनी भापा को तिलाञ्जलि देकर अग्रेजी मे सव कुछ पढ़ाने लगते, तो उससे वढ़कर वेवकूफी और क्या होती? इस तरीके से जपानवाले नई भापा तो सीखते, लेकिन नया ज्ञान न सीख पाते। हिन्दुस्तान में तो आज हमारी महत्वाकांक्षा ही यह रहती है कि हमें किसी तरह कोई सरकारी नौकरी मिल जाय, या हम वकील, वैरिस्टर, जज, वगैरा वन जायँ। अंग्रेजी सीखने में हम वरसो विता देते हैं, तो भी सर रावाकृष्णन् या मालवीय जी महाराज के समान अंग्रेजी जानने-वाले हमने कितने पैदा किये हैं? आखिर यह एक पराई भापा ही न है? इतनी कोशिश करने पर भी हम उसे अच्छी तरह सीख नही पाते। मेरे पास सैकड़ों

खत आते रहते हैं। इनमें कई एम० ए० पास लोगों के भी होते हैं। परन्तु चूंकि वे अपनी ज़बान में नहीं लिखते, इसलिए अंग्रेजी में अपने ख़याल अच्छी तरह जाहिर नहीं कर पाते।

"इसलिए यहाँ बैठे-बैठे मैंने जो कुछ देखा, उसे देखकर मैं तो हैरान रह गया। जो कार्रवाई अभी यहाँ हुई, जो कुछ कहा या पढ़ा गया, उसे जनता तो कुछ समझ ही नहीं सकी। फिर भी हमारी जनता में इतनी उदारता और धीरज है कि वह चुपचाप सभा में बैठी रहती है और ख़ाक समझ में न आने पर भी यह सोचकर सन्तोष कर लेती है कि आखिर हमारे नेता ही न हैं, कुछ अच्छी ही बात कहते होंगे। लेकिन इससे उसे लाभ क्या? वह तो जैसी आई थी, वैसी ही खाली लौट जाती है। अगर आपको शक हो, तो मैं अभी हाथ उठवाकर लोगों से पूछूँ कि यहाँ की कार्रवाई में वे कितना कुछ समझे हैं? आप देखिएगा कि वे सब 'कुछ नहीं', 'कुछ नहीं' कह उठेंगे। यह तो हुई आम जनता की बात। अब अगर आप यह सोचते हों कि विद्यार्थियों में से हर एक ने हर बात को समझा है, तो वह दूसरी बड़ी गलती है।

"आज से पच्चीस साल पहले जब मैं यहाँ आया था, तब भी मैंने यही सब बातें कही थीं। आज यहाँ आने पर जो हालत मैंने देखी, उससे उन्हीं चीजों को दोहराने के लिए विवश हो गया।

शारीरिक ह्रास

"दूसरी बात जो मेरे देखने में आई, उसकी तो मुझे जरा भी आशा न थी। आज सुबह मैं मालवीय जी महाराज के दर्शनों को गया था। वसन्तपंचमी का अवसर था, इसलिए सब विद्यार्थी भी वहां उनके दर्शनों को आये थे। मैंने उस वक्त भी देखा कि विद्यार्थियों को जो शिक्षा मिलनी चाहिए, वह उन्हें नहीं मिलती। जिस सभ्यता, मौन और व्यवस्था के साथ उन्हें चलना आना चाहिए, उस तरह चलना उन्होंने सीखा ही नहीं था। यह कोई मुश्किल काम नहीं, कुछ ही समय में सीखा जा सकता है। सिपाही जब चलते हैं, तो सिर उठाये, सीना ताने, तीर की तरह सीधे चलते हैं। लेकिन विद्यार्थी तो उस वक्त आड़े-टेढ़े, आगे-पीछे, जैसा जिसका दिल चाहता था, चलते थे; उनके उस चलने को चलना कहना भी शायद मुनासिब न हो। मेरी समझ में तो इसका कारण भी यही है कि हमारे विद्यार्थियों पर अंग्रेज़ी ज़बान का बोझ इतना पड़ जाता है, कि उन्हें दूसरी तरफ़ सर उठाकर देखने की फुरसत नहीं मिलती। यही कारण है कि उन्हें जो वस्तुतः सीखना चाहिए, वे सीख नहीं पाते।

नही हो पायेगा। इसके लिए तो हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों और धर्मशास्त्रों का श्रद्धापूर्वक यथार्थ अध्ययन करना होगा, और यह अध्ययन हम मूल ग्रन्थो के सहारे ही कर सकते है।

आखिरी वात

"अन्त मे एक वात मुझे और कहनी है। आप लोग रहते तो महलों में है, क्योकि मालवीय जी महाराज ने आपके लिए महलों-जैसे छात्रावास वगैरा वनवा दिये है। पर इसका यह मतलव नही कि आप महलों मे रहने के आदी वन जावें। आप मालवीय जी महाराज के घर जाइए और देखिए, वहां आपको इनमें से कोई चीज न मिलेगी। न ठाठ-वाट होगा, न साजो-सामान और न किसी तरह का कोई दिखावा। उनसे आप सादगी और गरीवी का पाठ सीखिए। आप यह कभी न भूलिए कि हिन्दुस्तान एक गरीव देश है और आप गरीव मां-वाप की सन्तान है। उनकी मेहनत का पैसा यों ऐशोआराम में वरवाद करने का आपको क्या हक है? ईश्वर आपको चिरजीवी करे और ऐसी सद्‌वुद्धि दे कि जिससे आप मालवीय जी महाराज की त्यागशीलता, आध्यात्मिकता और सादगी से अपने जीवन को रँग सकें और आज जो कुछ मैंने आपसे कहा है, उस पर समझदारी के साथ आचरण कर सकें।"

—हिन्दी। काशी, २१।१।१९४२। ह० से०, १।२।१९४२।]

९९. काशी में कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं से भेंट

[काशी में जवाहरलाल जी ने दो ऐसी सभाओं का प्रवन्ध किया था जिनमें कांग्रेस के कार्यकर्त्ता गांधीजी के साथ दिल खोलकर वातें कर सकें। एक सभा में संयुक्त प्रान्त की प्रान्तीय समिति की कार्यकारिणी के सदस्य थे और दूसरी में समूची प्रान्तीय समिति के सदस्य। कई सवाल पूछे गये। कुछ काम के थे। कुछ यों ही। इनसे गांधीजी का और उनके श्रोताओं का काफी मनोरंजन हुआ और लोगों को यह देखने का मौका मिला कि गांधीजी का विनोद उनके जीवन और स्वास्थ्य को वनाये रखने में कितना सहायक होता था।—सम्पा०]

सिद्धान्त और ध्येय

प्रश्न—आपका अन्तिम ध्येय क्या है? क्या आप यह चाहते है कि कांग्रेस आपके सिद्धान्त स्वीकार कर ले या यह कि वह अपना ध्येय प्राप्त करे?

उत्तर—मैंने कांग्रेस के सामने जितनी भी योजनाएं और कार्यक्रम रखे हैं उन सब की तह में स्वराज्य-प्राप्ति का ही ध्येय रहा है। सत्य और अहिंसा को मैं अपना जीवन-सिद्धान्त समझता हूं। यों कहिए कि वे मेरे लिए धर्मरूप हैं। लेकिन मैंने यह कभी नहीं चाहा कि मैं अपने धर्म का प्रचार कांग्रेस के जरिए करूं। कांग्रेस के सामने तो मैंने उन्हें एक खास लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में ही रक्खा है यानी राजनीतिक ध्येय के राजनीतिक साधन के रूप में, जैसा कि मैंने दक्षिण अफ्रीका में किया था। अगर ऐसा न हो तो मैं राजनीतिक कार्यकर्त्ता न रह जाऊं और एक धर्माचार्य मात्र बन जाऊं। जब व्यवहार की दृष्टि से राजनीतिक पद्धति को बदलना जरूरी मालूम हो, तो वह बदली जा सकती है। लेकिन इस तरह का परिवर्तन साफ़ दिल से और खूब सोच-समझ कर किया जाना चाहिए। व्यवहार में उसका त्याग करके भी उस पर क़ायम रहने का ढोंग न करना चाहिए। इसमें हम अपने को भी धोखा देते हैं और दुनिया को भी धोखे में रखते हैं।

अगला कार्यक्रम

प्रश्न—अगले बारह महीनों या छः महीनों का जो चित्र आपके सामने हो, उसकी एक झलक हमें भी दिखाइए। आपने कई बार कहा है कि यह आखिरी फैसले का वक्त है; आपकी यह आखिरी लड़ाई है; जबतक लक्ष्य सिद्ध न होगा, यह जारी रहेगी। तो कृपया कहिए कि आपके विचार में आगे क्या होगा?

उत्तर—यह एक अच्छा सवाल है। लेकिन मुश्किल भी है। इसलिए नहीं कि मेरे विचार स्पष्ट नहीं हैं बल्कि इसलिए कि यह हमें कल्पना के प्रदेश में ले जाता है। जो घटनाएं घटती हैं उनका प्रभाव मुझ पर पड़ता रहता है गोकि मैं यह कबूल करता हूं कि जिस तरह जवाहरलाल अपने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक अध्ययन की मदद से उन्हें समझ सकते हैं उस तरह मैं नहीं समझ सकता। जवाहर-लाल का अपना यह दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटिश साम्राज्य खत्म हो गया। हम सब चाहते हैं कि वह खत्म हो जाय लेकिन मैं यह नहीं मानता कि वह खत्म हो चुका है। हम जानते हैं कि अंग्रेज पक्के लड़वैया हैं। हम यह भी जानते हैं कि साम्राज्य का, विशेषतः हिन्दुस्तानी साम्राज्य का विलायत के एक-एक घर के लिए कितना महत्व है। चुनांचे वह लोग अपने भरसक निरे ब्रिटिश द्वीपवासी बनना कभी मंजूर न करेंगे। मि० चर्चिल ने कहा है—हम शकर की डली नहीं है जो सहज ही घुल जायँगे। हम घूँसे का जवाब घूँसे से दे सकेंगे। इसलिए साम्राज्य के खत्म होने में देर लगेगी। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि उसका अन्त निकट आ रहा है और जवाहरलाल ने सच ही कहा है कि यद्यपि हम लड़ाई को रोकने में असमर्थ रहे हैं तथापि ऐसा

कोई समझौता हम न होने देगे जिसमें हमारी सुनवाई न हो; उसे रोकने के लिए हम अवश्य बहुत-कुछ करेगे। हर एक कांग्रेसजन को यह चीज़ ध्यान में रखनी चाहिए। इसके लिए हमें सजग होकर काम करते रहना होगा। अगर हम हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे तो शायद हमारी इच्छा के विरुद्ध कोई समझौता हो जाय। आज भी मै यही कहता हूं कि यह हमारी आखिरी लड़ाई है। लेकिन हाल मे जो घटनाएं घटी है उनके कारण युद्ध हमारे द्वार पर आ पहुँचा है और इसीलिए हमें अपना कार्यक्रम बदलना पड़ा है। मै कांग्रेस के अधिकारयुक्त नेतृत्व से मुक्त हो गया हूं लेकिन सत्याग्रह को मुल्तवी करने का उसके साथ कोई सम्बन्ध न था। अगर सत्याग्रह जारी भी रहता तो मै इस मौके पर जवाहरलाल को वापस जेल जाने के लिए कैसे कहता? बिला शक, अगर सरकार उन्हे हमारे द्वारा निश्चित काम करने से रोकेगी, तो वह जेल जायँगे। लेकिन घटनाएं इतनी तेजी के साथ घटी है कि आगे क्या होगा, इसकी हमें रंचमात्र भी कल्पना न थी। ऐसी दशा मे मै अगले बारह महीनों या छः महीनों की बात कैसे कह सकता हूं? इसमे तो शक नहीं कि हम पूर्ण स्वराज्य की ओर वेग से आगे बढ़ रहे है। हमारे सामने जो कार्यक्रम है, उसके सम्बन्ध मे भी किसी प्रकार की शंका या अन्देशा नही। किसी भी कांग्रेसजन को साल मे सिर्फ चार आने के पैसे देकर सन्तुष्ट न हो रहना चाहिए। उसे तो चौबीसों घण्टे काम मे लगे रहना होगा। अकेला एक खादी-उत्पत्ति का सक्रिय कार्यक्रम ही हमारी सारी शक्तियो को हजम कर सकता है। हिन्दू विश्व-विद्यालय में ४००० विद्यार्थी हैं; क्या वे रोज एक घण्टा कातेगे? मै कातने की बात करता हूं क्योंकि उसकी मुझे धुन लगी है, वह मेरे हृदय के अधिक-से-अधिक निकट है। लेकिन उसके सिवा दूसरी सैकड़ों चीजें करने जैसी है। क्या देहातियो के पास खाने के लिए पूरा अनाज है? ये सवाल मेरे मन में फिर-फिर पैदा होते है। भूखो को खिलाने की, नंगों को ढंकने की और संकट के समय आम जनता की अनेक विध सेवा करने की जितनी ताक़त हमारे पास होगी, उतना ही समझौते पर, जब कभी उसका समय आयेगा, हम अपना असर डाल सकेंगे। जो बात मैंने कही है, वह सब दलों को लागू होती है; जो इस काम को अच्छे-से-अच्छे ढग से करेगे वे ही अन्त तक टिक सकेंगे, और अपनी आवाज को प्रभावशाली बना सकेंगे।

प्रश्न—क्या आप यह मानते है कि वे अपना मनचाहा समझौता नहीं कर सकेंगे?

उत्तर—हां, मै मानता हूं। मैं आशा करता हूं कि अब गुप्त सन्धियो के दिन नही रहे। अगर हम ठीक से व्यवहार करेगे तो और नही, तो कम-से-कम अपने मामलों मे तो हम अपना मनचाहा करा ही लेगे। लेकिन ये सब बाते तो जवाहर-

लाल आपको ज्यादा अच्छी तरह समझा सकेंगे। मैंने न तो इतिहास का उतना अध्ययन किया है और न संसार की वर्तमान घटनाओं का।

मत क्यों नहीं लिये ?

प्रश्न—आपने एक बार यह कहा था कि आप बारडोलीवाले प्रस्ताव पर अखिल-भारत कांग्रेस कमेटी में मत-विभाजन का प्रयत्न करेंगे, फिर क्या वजह थी कि आपने सदस्यों को उस प्रस्ताव का समर्थन करने की सलाह दी ? महासमिति की वर्धावाली बैठक के बाद इधर राजाजी ने जो भाषण किये हैं, वे बम्बईवाले प्रस्ताव के विरुद्ध पड़ते हैं और व्यावहारिक दृष्टि से देखने पर भी यह मालूम होता है कि मरते हुए साम्राज्य के साथ सहयोग नहीं किया जा सकता।

उत्तर—मैं मानता हूँ कि कानूनन आप यह सवाल पूछ नही सकते। लेकिन चूँकि आपने पूछा है और मुझे कुछ छिपाना नहीं है इसलिए मै इसका जवाब दिये देता हूँ। सच तो यह है कि महासमितिवाले अपने भाषण में मै इसका जवाब दे चुका हूँ। अगर आपने वह भाषण ध्यान से सुना होता तो इस प्रश्न की जरूरत न रह जाती। खैर, तो अब मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि यद्यपि बुढ़ापे ने मुझे आ घेरा है तो भी दिमाग मेरा कमजोर नही पड़ा है। उसका तो लगातार विकास ही हो रहा है। मत न लेने का निश्चय भी मेरी अपनी विकासमान अहिंसा का ही एक चिह्न है।

मैंने सोचा कि मत लेकर समिति में फूट डालना हिंसा होगी। अगर महा-समिति का एक एक सदस्य राजनीतिक अहिंसा में दृढ़ विश्वास रखनेवाला होता तो बात दूसरी थी। लेकिन मै जानता था कि हकीकत ऐसी न थी। बारडोली-वाला प्रस्ताव कांग्रेस की मनोदशा का सूचक था। ऐसे मामलों में अल्पमत या बहुमत से काम नही चल सकता। और जो सम्पूर्ण अहिंसा को माननेवाले है, उनके लिए तो रास्ता खुला था। वे जहाँ तक जाना चाहें जा सकते थे।

सरकार के साथ सहयोग करने का समय कभी आया भी तो बहुत देर मे आयेगा। तबतक तो सबको अहिंसा का ही अनुसरण करना है। जब सरकार के साथ सहयोग करने का मौका आयेगा, तब पूर्ण अहिंसावादी कांग्रेस से हट सकेंगे। और सच तो यह है कि उस समय हम फिर मिल कर इस सारे प्रश्न पर लोगों की राय जान सकेंगे।

दंगों में अहिंसा

प्रश्न—दंगों के समय आततायियों के विरुद्ध शस्त्र उठाकर अपनी रक्षा करना उचित है या अनुचित ?

उत्तर—इसका जवाब मैं दे चुका हूँ और कांग्रेस भी दे चुकी है। हमें आततायी शब्द का उपयोग नहीं करना चाहिए। उचित-अनुचित की बात मुझसे मत पूछिए। अगर मुझसे पूछते हैं तो मैं कहूँगा कि आप जो करना चाहते हैं सो उचित नहीं है। अगर आप अहिंसक हैं तो आपको हथियार न उठाना चाहिए। आप वीरों की अहिंसा न दिखा सकें तो जिस तरह बने, अपनी रक्षा कर लें। कानून हर आदमी को अधिकार देता है कि वह डाकुओं से अपनी हिफाजत करे। कांग्रेस इस कानूनी अधिकार को छीनना नहीं चाहती। लेकिन उपद्रवों में और कौमी दंगों में हर एक कांग्रेसवादी को अहिंसा का पालन करना चाहिए। कांग्रेस का यही निर्णय है। अगर वक्त पर हिम्मत आपका साथ न दे और आप पशुबल का उपयोग करें, तो कांग्रेस आपको बुरा-भला न कहेगी क्योंकि कांग्रेस किसी भी दशा में नामर्दगी को बढ़ावा देना नहीं चाहती।

सहयोग की मर्यादा

प्रश्न—कहा जाता है कि आपने खादी-भण्डारों को सरकार के हाथों कम्बल बेचने की इजाजत दी है। क्या यह सरकार के युद्ध-प्रयत्न के साथ सहयोग न हुआ?

उत्तर—हाँ, मैंने यह सलाह दी। मेरे लिए यह पूछना उचित न था कि कम्बल किसके लिए खरीदे जा रहे हैं—सिपाहियों के लिए या और किन्हीं के लिए। जब आदमी, बन्दूक, तलवार या जहरीली दवा बेचता है, तो बात दूसरी हो जाती है। बेचनेवाले के लिए यह पूछना लाजमी हो जाता है कि बन्दूक किसलिए खरीदी जा रही है और जहरीली दवा बेचनेवाले को तो डाक्टर का प्रमाण-पत्र भी माँगना पड़ता है। इसके विपरीत चावल बेचनेवाला यह नहीं पूछता कि चावल कौन खानेवाला है; पूछना उसके लिए लाजिमी नहीं है।

"लेकिन आप मुझसे भी आगे जा सकते हैं। अगर आप समझते हैं कि मुझसे गलती हुई तो आप खुशी से मेरी निन्दा कर सकते हैं। अगर आप यह मानते हों कि अहिंसक आदमी को सैनिकों के हाथ चावल या कम्बल न बेचने चाहिए, तो आप अहिंसा का वैसा अर्थ करने के लिए स्वतन्त्र हैं। लेकिन जहाँ तक मेरा अपना सवाल है मेरे पास कोई खून से सने हाथ लेकर भी आये, तो मैं उसे खिलाने-पिलाने में संकोच न करूँगा। मेरा दयाधर्म मुझे इसके विपरीत कुछ करने ही न देगा।"

इसके बाद नकली खादी का प्रश्न छिड़ा। उसके सिलसिले में गांधीजी ने कहा—"इसका बहुत कुछ आधार तो लोगों की समझदारी और सजगता पर

है। अगर जनता इस तरह की खादी के प्रचार को रोकने का निश्चय कर ले तो वह आसानी से रोक सकती है। लेकिन जैसा कि लार्ड विलिंगडन ने कहा था, हमने अपने अन्दर 'ना' कहने की हिम्मत अभी पैदा नहीं की। जिन्हे खादी से दिलचस्पी है वे सबके सब, चर्खा संघ के भागीदार हैं, और उनका कर्त्तव्य है कि वे इस काम को उठा लें। भूखों को अन्न देना और नंगों को वस्त्र पहनाना हमारा तात्कालिक कार्यक्रम है। इसमें आप सबको अपनी पूरी ताकत से हाथ बँटाना है। अगर आप इसके लिए कटिबद्ध हो जायँ तो नक़ली खादी का सवाल ही न खड़ा हो। कोई भी काग्रेसवादी नकली खादी का व्यापार नही कर सकता।"

आखिरी सवाल यह था कि हवाई हमलो की हालत मे लोगों मे हौलदिली पैदा हो और दंगे वगैरा खड़े हों, तो वैसे मौको पर कांग्रेस जनों को क्या करना चाहिए?

गांधीजी—यह वक्त तो अब आ ही गया है। डाके पडने लगे हैं। ऐसे समय अगर कांग्रेस ने सख्त उपायों से काम न लिया तो परिस्थिति बेकाबू हो जायगी। शान्ति दलों की जितनी अनिवार्य आवश्यकता आज है उतनी पहले कभी नही थी। आप चाहे हिसा को पसन्द करें चाहे अहिसा को, मौत का खतरा तो दोनों तरफ है। तो फिर अहिसक रीति से मरने की तैयारी क्यों न कीजिए? आन्तरिक विग्रह या गृहकलह की हालत में अहिसा आपको उसका दृढ़ प्रतिकार करने की शक्ति प्रदान करेगी। हवाई हमलो के समय घायलो की रक्षा का अधिकतर काम आप ही के जिम्मे आयेगा। आप हवाई हमलों से रक्षा करनेवाले सरकारी दलों में शामिल नहीं होंगे, क्योंकि एक तो उनकी व्यवस्था पर आपका कोई अंकुश नही; दूसरे, उनमें शामिल होने से आप युद्ध-प्रयत्न में सक्रिय भाग लेने लगते हैं। लेकिन यह तो स्पष्ट ही है कि सरकार सब जगह मदद नही पहुँचा सकेगी। रंगून मे पहुँचा पाई थी क्या? हमारे पास इस विषय की दिल दहलाने वाली खबरें आई हैं कि रंगून में रास्तों पर मुर्दों और घायलों के ढेर पड़े रहे, मगर उनकी कोई सार-सँभाल न की गई। इसलिए जहाँ सरकारी हाकिम कुछ नही कर पायेंगे, वहाँ हमे काफी काम करने का मौका मिलेगा। हमें ऐसे स्वयंसेवक तैयार करने होंगे, जो जोखिम उठाने और जरूरत के वक्त अपनी सूझ से काम करने को मुस्तैद रहे। हमे मुर्दों को और घायलों को यथास्थान पहुँचाने की व्यवस्था करनी होगी, खाली मकानों को अपने कब्जे में लेना होगा, और ऐसे अनेक काम करने होंगे। इन कामों में सरकारी हाकिम जहाँ-जहाँ आपकी मदद लेना स्वीकार करें, आपको दिल से उनकी मदद करनी चाहिए।

—हिन्दी। काशी, २२।१।१९४२। ह० से० २२।२।१९४२। सेवाग्राम में १।२।१९४२ को लिखे महादेव देसाई के विवरण से।]

१००. मसूरी में : गांधीजी के हृदयोद्गार

[१९४६ में गांधीजी जब दिल्ली में थे और देश के भाग्य-निर्णय के विषय में वाइसराय तथा अधिकारियों से गम्भीर और थकानेवाली लम्बी वार्ताओं का क्रम चल रहा था, उनके स्वास्थ्य पर बहुत बोझ पड़ा। इसलिए चन्द दिनों के लिए वह मसूरी आये। वहाँ बिड़ला हाउस में ठहरे। २५-२६ मई से ९ जून तक, लगभग १५ दिन, वह वहाँ रहे। यद्यपि यहाँ दिल्ली की कड़ाके की धूप और धूलभरी आँधियों की जगह प्रकृति के वैभव ने उनका स्वागत किया; चीड़ की सुगन्ध से लदी शीतल वायु की लहरियाँ उनके उत्ताप को आत्मसात् करने दौड़ पड़ीं, श्यामल हरीतिमा ने उन्हें अपने बीच समेट लिया किन्तु देश में एक ओर साम्प्रदायिकता की जो आँधी चल रही थी और दूसरी ओर हिंसा तथा सत्ता की राजनीति सेवा की लोकनीति को अपदस्थ करती जा रही थी, उससे उनका मन बहुत उदास था, उनकी बातों में अब वह प्रेरणा की ज्वाला न थी; उसकी जगह गहरी पीड़ा और विराग था। सुबह-शाम अहाते में जो प्रार्थना होती थी, उसमें बहुत से लोग आ जाते थे। पहली ही प्रार्थना के बाद तथा अन्य प्रार्थना-सभाओं में उन्होंने जो भाषण किये, वे ही यहाँ संकलित किये जा रहे हैं। —सम्पा०]

रक्षा तो भगवान ही कर सकता है

आज मसूरी आया हूँ। यह मेरी पहली यात्रा नहीं। पहले भी दो बार आ चुका हूँ। तब कांग्रेस के काम से आया था, आज केवल अपने ही निमित्त आया हूँ। आपको मालूम है कि आजकल तो मैं कांग्रेस का मेम्बर भी नहीं हूँ। आपका सेवक जरूर हूँ। ऐसे सेवक करोड़ों हैं। उनको जनता जानती भी नहीं, और न वे चवन्नी ही देते हैं। केवल अपनी शक्ति के अनुसार सेवा करना जानते हैं। न नाम की इच्छा है, न इनाम की आशा। फिर ऐसे लोग कांग्रेस की सेवा क्यों करते हैं? आजादी तो हरएक को चाहिए, किन्तु सब समझते नहीं कि आजादी कैसे लेनी है। उन्होंने सुन रक्खा है कि कांग्रेस एक बड़ी जमात है, जो साठ बरस से सबकी आजादी के लिए लड़ रही है। इसलिए करोड़ों लोग कांग्रेस के गुण गाते हैं, और जो सेवा उनसे बन पड़ती है, करते हैं। इन करोड़ों के जैसा मैं भी एक सेवक हूँ। यह अलग बात है कि बड़ा हो गया हूँ, नाम मशहूर हो गया है और बहुत जगह घूमा हूँ। मैंने अपने मन की आज की हालत आपको बताई है। मैं ऐसा एक सेवक अपने आपको मानता हूँ।

यहीं कारण है कि मैंने यहाँ की कांग्रेस को लिखा तक नही, और न किसी प्रकार की आशा उनसे रखता हूँ। यह अलग बात है कि वे मेरी सेवा कर रहे हैं। किन्तु मैं कोई आशा नही करता कि वे मेरा कुछ काम करें—जैसे कि मेरी रक्षा करना। मेरी रक्षा कौन कर सकता है? न कांग्रेस कर सकती है, न सल्तनत, न विड़ला ब्रदर्स। मेरी रक्षा तो भगवान ही कर सकता है। आदमी कहे कि वह किसी की रक्षा करता है तो गलत होगा। जिसको खुद यह पता नही कि कल ज़िन्दा रहेगा या मर जायगा, वह किसी की क्या रक्षा कर सकता है? ईश्वर चाहे तो हमारी रक्षा करे, और चाहे तो हमें मार डाले। असल में तो वह मारकर भी हमारी रक्षा करता है। हर तरह से वही रक्षा करनेवाला है, और कोई नही।

गरीबों के जीवन में प्रवेश कीजिए

...यहाँ गरीब हैं किन्तु सिर्फ आपकी गुलामी करने के लिए, आपका रिक्शा खीचने के लिए। कोई बीमार हो, अशक्त हो और रिक्शा में बैठे तो दूसरी बात है परन्तु जब एक भला-चंगा आदमी रिक्शा में बैठता है, तो मुझे बुरा लगता है। आपको भी बुरा लगना चाहिए। हम क्यों किसी को बैल समझ कर उसकी पीठ पर सवार हों? मैं आपकी शिकायत नही करता, सिर्फ यह कहता हूँ कि गरीबों के जीवन में प्रवेश कीजिए और जानिए कि हिन्दुस्तान क्या है?

मैं तो चाहता हूँ कि राम नाम मुझे पहाड़ों पर आने से भी बचाये। करोड़ों यहाँ थोड़े ही आ सकते है? वे बीमार भी हों तो भी उन्हें तो मैदान में ही जीना या मरना पड़ता है।

मैं यहाँ मौज-शौक के लिए नहीं आया, केवल शरीर की मजबूरी से आया हूँ। अगर आराम कर लिया तो ज्यादा काम कर सकूँगा। इसमें आप लोगों का आशीर्वाद चाहता हूँ। आप मुझे आराम लेने दीजिए। कुछ काम तो रहता ही है, किन्तु शेष समय एकान्त में ईश्वर का नाम लेना चाहता हूँ।

—हिन्दी। मसूरी, २६।५।१९४६। १।६।१९४६ के प्यारेलाल जी के साप्ताहिक पत्र से। ह० से० ९।६।१९४६।]

१०१. मसूरी में गांधीजी के भाषण

गरीबों के लिए जगह

...मसूरी मे एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ गरीब आ सकें और पहाड़ की जलवायु का लाभ उठा सके। मै तो जान-बूझकर हरिजन बना हूं। मुझे ऐसी जगह रहना बहुत अच्छा लगेगा, जहाँ हरिजन भी आ सके और आकर रह सके। जो जन्म से हरिजन है वह अपने वर्ण को छोड़ सकता है किन्तु जो आप हरिजन बना हो, वह उसे कैसे छोड़ सकता है? मै तो बेझिझक सब सवर्णों से कहता हूँ कि वे अतिशूद्र बन जायँ। तभी ऊंच-नीच का भाव मिट सकेगा। और यह अगर नही मिटा तो हिन्दू धर्म का नाश हो जायगा।

काल की चेतावनी

[मसूरी के शौकीन लोगो को लक्ष्य कर गांधीजी ने कहा:]

आपकी जियाफत पर मृत्यु की छाया मँडरा रही है। उसका ध्यान कीजिए। सच्ची बात तो यह है कि अकाल पहिले से ही मुल्क में है। करोडों को पूरा खाना नही मिलता। अमीर लोग शायद पैसा दे सकें किन्तु पैसे से किसी का पेट थोड़े ही भरता है। जितना अनाज चाहिए, उतना मुल्क मे नही है। जो है भी, वह भी आसानी से भूखे इलाकों में नही भेजा जा सकता। सरकार का इन्तजाम कितना निकम्मा है। फिर कई ऐसी जगहे है, जहाँ खाद्य-सामग्री के ढेर पड़े है, पर लोग भूखो मर रहे है, क्योंकि हमारे अपने लोग ही बेईमान और लालची हो गये है। यदि लोग सहयोग करे और काला बाजार, रिश्वत और बेईमानी खत्म हो जाय, तो शायद इस कठिनाई को पार करने के लिए मुल्क मे काफी अनाज निकल आवे। कुछ लोग है, जो इस बात को नही मानेंगे। वे कहते है कि अगर बाहर से अनाज न आया, तो हम भूख और मौत से नही बच सकेंगे। मेरी राय इससे अलग है। अव्वल तो माल को हिन्दुस्तान पहुँचने मे देर लगेगी और फिर बन्दरगाह से जरूरत की जगह तक पहुँचाने मे लगभग ६ हफ्ते लग जायगे। इसका इलाज बस एक ही है कि आपस मे सहयोग हो और बेईमानी खत्म हो जाय। मसूरी के अमीर लोगों को चाहिए कि जितना अनाज वे भूखों के लिए बचा सकें, बचाये। अगर सब केवल उतना ही खायँ, जितना स्वास्थ्य के लिए जरूरी है तो मुल्क इन सब कठिनाइयो को पार कर सकेगा।

— हिन्दी। मसूरी, २५, २६, २७।५।१९४६। श्री प्यारेलाल जी के १।६।१९४६ को लिखे अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र से। ह० ज०, ह० से० ९।६।१९४६।]

: चार :

सम्बोध–१

[उत्तर प्रदेश-वासियों के नाम गांधीजी के पत्र एवं तार]

१. पत्र : महात्मा मुंशीराम[1] को

सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी
पूना सिटी
माघ कृष्ण पक्ष ८ (८ फवररी, १९१५)

महात्मा जी,

आपका तार मुझे मीला था। उस्का प्रत्यूत्तर तार से भेजा था वो आपको मीला होगा। मेरे वालकों के लीये जो परिश्रम आपने उठाया और उन्हों को जो प्यार वतलाया उस वास्ते आपका उपकार मानने का मैंने भाई एंड्रुज़ को लीखा था। लेकीन आपके चरणों में सीर झुकाने की मेरी उमेद है। इसलीये विन आमंत्रण आने की भी मेरी फरज समझता हुं। मैं वोलपुर से पीछे फीरूँ उस वख़त आपकी सेवा में हाजर होने की मुराद रख़ता हूं।

आपका सेवक,
मोहनदास गांधी

—हिन्दी। पूना, ८।२।१९१५। गांधीजी के स्वाक्षरों में मूल पत्र (जी० एन० २२०५) की फोटो-नकल से।]

---

१. महात्मा मुंशीराम (१८५६-१९२६) वाद में स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध, गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक, और आर्यसमाज के नेता। उन दिनों उनका मुख्य कार्यक्षेत्र गुरुकुल उत्तर प्रदेश में होने के कारण तवतक उनको उत्तर प्रदेश के निवासियों में रखा गया है जवतक कि वह जाकर मुख्यतः दिल्ली में नहीं रहने लगे।—सम्पा०।]

२. तार : हृदयनाथ कुँजरू[1] को

वोलपुर
२० फरवरी, १९१५

ऐक्सप्रेस

कुँजरू
सर्विडिया
इलाहावाद

श्री गोखले का देहान्त। आज रात डाकगाडी से पूना को रवाना। छिवकी स्टेशन पर मिलिए। वेहतर हो आप भी साथ हो लें।

गांधी

--अंग्रेजी। वोलपुर, २०।२।१९१५। गांधीजी के स्वाक्षरों में मूल अंग्रेजी मस्विदा (सी० डब्लू० ५६७२) से; सं० गा० वा० भाग १३, पृ० २७।]
सौजन्य : राधावेन चौधरी।

३. पत्र : महात्मा मुंशीराम को

अहमदावाद[2]
जेठ शुक्ल २ (जून १४, १९१५)

महात्मा जी,

लड़के सव गुरुकुल से आने के वाद मे सव व्यवस्था करने की जंजाल मे पड गया; उसलीये आपको मे पत्र अगाडी न लीख सका। लड़को पर आपने जो प्रेम वतलाया है वह वे कभी भूल नहि सकते है। मेरे लड़कों और साथीओं को आश्रय देकर मुझको आपका ऋणी वनाया है।

---

१. जन्म १८८७ ई०। सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी (हिन्द-सेवक संघ) के वर्तमान अध्यक्ष तथा इलाहावाद के वहुत पुराने नागरिक।

२. यह पत्र सम्भवतः वम्वई में लिखा गया होगा क्योंकि उस दिन गांधीजी वहीं थे, जैसा कि उनकी १९१५ की डायरी से विदित होता है। अगले दिन अहमदावाद में होने के कारण, शायद वहाँ का पता लिख दिया होगा।

अमदावाद में हाल तो आश्रम खोल दीया है। उसकी नियमावली हिंदी में वन रही है। तैयार होने से आपका अभिप्राय जानने के लीये भेजी जायगी।

हरद्वार में फेर आकर आपकी साथ कुछ दिन रहने की वात में वीलकूल भूला नहि हुं। वखत मीलने से मैं जरूर पहोचुंगा।

आपका कृपाकांक्षी
मोहनदास गांधी के वन्देमातरम्

—हिन्दी। अहमदावाद, १४।६।१९१५। गांधीजी के स्वाक्षरों में मूल हिन्दी पत्र (जी० एन० २२०८) की फोटो-नकल से।]

४. पत्र : माधुरीप्रसाद को

अमदावाद
भाद्रपद शुक्ल १ (१०-९-१९१५)

रा० रा० मावुरीप्रसाद,

आपका और तोताराम[1] जी का खत मुझे मीला है। मैं दिलगीर हुं की मुझे फीरोजावाद जाने का हाल तुरत में वीलकुल वखत नहि है। इस आश्रम के काम में से मेरा छुटकारा न होने सकता है।

आपका,
मोहनदास गांधी

रा० रा० मावुरीप्रसाद,
भारतीभुवन कार्यालय, फीरोजावाद

—हिन्दी। अहमदावाद, १०।९।१९१५। गांधीजी के स्वाक्षरों में मूलपत्र (जी० एम० २७६४) की फोटो-नकल से। सं० गां० वा० भाग १४, पृष्ठ १२८ पर भी।]

---

१. तोताराम सनाढ्य, जो फीजी में २१ वर्ष रहे थे। इन्होंने अपने वहाँ के अनुभवों पर एक पुस्तक भी हिन्दी में लिखी थी और वाद में सावरमती आश्रम में गांधीजी के पास भी रहे थे।

५. बनारस की घटना[1] पर महाराज दर्भंगा को लिखे पत्र का अंश

वाइसराय महोदय के बनारस पधारने के विषय में कुछ शब्द कहने का मेरा उद्देश्य केवल यही था कि हिंसा-मूलक और तथाकथित अराजकतापूर्ण सभी कृत्यों के विरुद्ध मैं अपने उन विचारों को, जिन्हें मैं पक्की तौर पर माने हुए हूं और जिनमें फेरफार की गुंजाइश नहीं है, प्रकट कर सकूं। मुझे तथा हममें से और भी बहुत लोगों को इस बात पर बहुत ही लज्जा मालूम हुई कि एक अत्यन्त सज्जन वाइसराय के प्राणों की रक्षा के लिए, उस समय जब कि वे इस पवित्र नगरी में हमारे विशिष्ट और सम्मानित अतिथि थे, असाधारण सतर्कता से काम लेना जरूरी समझा गया था। मेरे जीवन का लक्ष्य अपने देश के लिए अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता-प्राप्ति के विचार प्रचारित करना और इसकी प्राप्ति के निमित्त किये जानेवाले कामों में मदद पहुंचाना जरूर है, परन्तु किसी भी मनुष्य के प्रति, भले ही उस व्यक्ति की ओर से हमारे उत्तेजित होने के अनन्त कारण उपस्थित किये गये हों, हिंसा का प्रयोग करके कदापि नहीं। मेरे भाषण का मुख्य उद्देश्य यह था कि (हमारे देश के) नवयुवकों के दिलों में मेरी यह सलाह घर कर जाय।

—अंग्रेजी। काशी, ७।२।१९१६। 'पायनियर' ९।२।१९१६। सं० गां० वा० भा० १३, पृ० २१८-२१९।]

---

१. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उस समारोह में जिसके अध्यक्ष महाराज दर्भंगा थे, ६ फरवरी १९१६ को गांधीजी ने जो भाषण दिया था उसके कुछ विचारों से खिन्न होकर उपस्थित राजा-महाराजा और कुछ अन्य लोग भी उठकर चले गये थे तथा सभा भंग हो गई थी। उसी घटना के विषय में महाराजा दरभंगा को गांधीजी ने अपना मंशा स्पष्ट करते हुए जो पत्र लिखा था उसका यह अंश 'पायनियर' के 'हिन्दू यूनिवर्सिटी, ए रिमार्किबुल इन्सिडेण्ट' शीर्षक एक लेख में उद्धृत किया गया था।

६. पत्र : अजितप्रसाद को

अहमदाबाद,
१ नवम्बर, १९१६

प्रिय श्री अजित प्रसाद,

मुझे खूब याद है कि मैं आपसे बम्बई में मिला था।

मैंने पण्डित अर्जुन लाल[1] के सम्बन्ध में वर्ष के प्रारम्भ में कार्रवाई की थी, किन्तु मुझे मालूम हुआ कि उनके खिलाफ सरकार के पास निश्चित प्रमाण हैं। तब से मेरा उत्साह मन्द पड़ गया है। मामले में आगे कदम उठाने के पहले मैं उस पर आपसे बातचीत करना चाहता हूं। आपका यह तर्क ठीक है कि हम बिना शर्त छोड़ देने की नहीं, बल्कि उचित रूप से मुकदमा चलाने की माँग करते हैं, किन्तु अपील सर्वाधिक प्रभावकारी तो केवल तभी बन सकती है जब सम्बन्धित पक्ष बिल्कुल निरपराध हो। यदि मैं कांग्रेस के अधिवेशन में लखनऊ आया तो हम सम्पूर्ण मामले पर बातचीत करेंगे।

हृदय से आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। अहमदाबाद १।११।१९१६। गांधीजी के स्वाक्षरों में मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन०, १००) की फोटो-नकल से। सं० गां० वा० भाग १३, पृ० ३०८-९ पर भी।]

७. पत्र : महात्मा मुंशीराम को

बेतिया
वैशाख शुक्ल ५ (२६ अप्रैल, १९१७)

महात्मा जी,

आपका खत मीलने से मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ है। आपने जो नया [नाम[2] धारण कीया है बहुत से उचित है।

---

१. अर्जुनलाल सेठी, राजस्थान के एक क्रान्तिकारी नेता।

२. स्वामी श्रद्धानन्द।

यहां का काम वड़ा भारी है। ईश्वरकृपा से अत्याचार दूर होगा। परन्तु चार छ मास तो अवश्य मुझे रहना पड़ेगा। वावू ब्रीजकिशोरप्रसाद इ० जो सहाय कर रहे है वे योग्य पुरुष है।

आपका
मोहनदास गांधी

—हिन्दी। वेतिया, २६।४।१९१७। गांधीजी के स्वाक्षरों में मूलपत्र। गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली में प्राप्त फोटो-नकल से।]

८. पत्र : हृदयनाथ कुंजरू को

सत्याग्रहाश्रम
सावरमती
फरवरी १०, १९१८

...'इस समय मैं एक वड़ी खतरनाक परिस्थिति से गुजर रहा हूं और उससे भी ज्यादा खतरनाक परिस्थिति में कूद पड़ने की तय्यारी कर रहा हूं।[२] ... अव आप समझ लेगें कि मैं मेले में क्यों नही आया।[३] हिन्दू धर्म को उसके आसुरी और दिव्य दोनो स्वरूपों में देखने का वहां जो अवसर मिल सकता है, मैं वहुत चाहता था कि उसका उपयोग करूं। मैं जानता हूं कि मुझपर आसुरी स्वरूप का कोई असर नही हो सकता। किन्तु मै चाहता था कि उसके दिव्य स्वरूप का मुझपर वही प्रभाव पड़े जो हरद्वार में पड़ा था।[४] साथ ही वहां आपसे मिलना भी हो जाता और भारत-सेवकों को हर दूसरे महीने वीमार पड़ने की कुटेव न

१. व २. मूल में कुछ अंश छोड़ दिये गये हैं।
३. उनको कुम्भमेले के अवसर पर आमन्त्रित किया गया था।
४. गांधीजी १९१५ के कुम्भमेले में अपने अनुभव का उल्लेख कर रहे हैं। उन्होने दिनभर में पांच से अधिक खाद्य वस्तुएँ न खाने और रात हो जाने पर भोजन न करने का व्रत वहीं पर लिया था। देखिए आत्मकथा भाग ५, अध्याय ७।

डालनी चाहिए, इस बारे में आपको थोड़ा उपदेश देने का मौका भी मिलता। लेकिन शायद ऐसा बदा नहीं था।

आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। १०।२।१९१८। महादेव देसाई की हस्तलिखित डायरी से। सं० गां० वा० भाग १४, पृ० १७४।]
सौजन्य : नारायण देसाई।

९. पत्र : महात्मा मुंशीराम को

सावरमती
वैशाख कृष्ण ५ (३० मई, १९१८)

महात्मा जी,

आपका प्रेम-पूरित हृदयद्रावक खत मुझे मीला है। बखत का अभाव के लीये उत्तर देने में विलंब हुआ। मैं चि० इंद्र को दिल्ली में कह रहा था "क्या महात्मा जी मुझको भूल गये हैं?" इसके पश्चात् दो तीन रोज में आपका खत मीला। मैं खूब राजी हुआ। खेडा जिल्ला की रैयत की जमीन खालसा की गई थी उसको वापस दे दी है। अब तो लोगों को बहुत आर्थिक हानि नहिं होगी। इस लड़त से लोकों को बड़ा जोर प्राप्त हो गया है।

आपका पत्र मुझको बल देता है। मेरे कार्य में आर्थिक टूटी (त्रुटि,कमी) आयगी तब आपका स्मरण अवश्य करूंगा।

आपका दर्द अब कमी होगा। ईश्वर आपकी रक्षा करे।

आश्रमवासी सब आपके आने की राह देखते हैं। अवत्र बीतने से हम सब अधीरे बन जावेंगे।

आश्रमवासी सब आपको नमस्कार कहते है।

आपका
मोहनदास गांधी

—हिन्दी। सावरमती, ३०।५।१९१८। गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली में उपलब्ध पत्र से।]

१०. पत्र : गोविन्द मालवीय को

(बम्बई)
जुलाई २२, १६१८

तुम्हारा पत्र आने से मैं बहुत खुश हुआ। हम जिनको मुरब्बी समझते हैं, उनके पास हम अपना सब आवेग खोल सकते हैं, खोलना आवश्यक है। मुझको पत्र लिखकर तुमने उचित कार्य किया है। भरती में क्या अत्याचार होता है, वह मैं नहीं जानता। यदि ज्यादा होता होगा, तो भरती में मेरे शामिल होने की ज्यादा आवश्यकता है।

माण्टेग्यु-चेम्सफोर्ड योजना मेरी राय मे बड़ी अच्छी है। उसकी त्रुटियां हम आन्दोलन करके दूर करवा सकते हैं, परन्तु योजना कैसी भी हो, मेरा निश्चित मन्तव्य है कि हमें युद्ध में दाखिल होना चाहिए। हम अंग्रेज प्रजा का उपकार करने के लिए दाखिल नही होते है। लेकिन देश की सेवा करने के लिए देश का स्वार्थ देखकर हम भरती होना चाहते है। मैं भारतवर्ष की दुर्दशा का क्या बयान करूं? मैं स्पष्ट देख सकता हूं कि भारतवर्ष को सच्चे स्वराज्य की प्राप्ति ही नही हो सकती। मैं जानता हूं कि अब हमारे भरती होने से हम दो कार्य कर सकते है, हममें वीरता पैदा होगी, हम थोड़ी-बहुत शस्त्र-क्रिया सीख लेंगे और जिनके साथ हिस्सेदार होना चाहते हैं, उनको मदद देकर हमारी योग्यता ज्यादा सिद्ध करेंगे। उनके अत्याचारों का विरोध करना और उनके कष्ट में हिस्सा लेना, ये दोनों कार्य करना हमारे लिए योग्य है। मैं चाहता हूं कि तुम इस प्रश्न पर खूब शान्ति से विचार कर लो। मेरी सलाह है, यह पत्र देवदास को भेज देना और उसके साथ भी इस विषय में वार्तालाप करना।

मोहनदास गांधी

—महादेव भाईनी डायरी, २२।७।१९१८, खण्ड ४। सं० गां० वा० भाग १४, पृ० ४८१-८२ पर भी।]

११. पत्र : सैयद हुसैन को[1]

जनवरी ३०, १९१९

आपके नये प्रयास की सफलता की कामना करते हुए मैं अपनी यह हार्दिक आशा व्यक्त करना चाहता हूं कि आपने अपने पत्र का जो नाम चुना है, उसके अनुरूप ही आपके लेख भी होंगे। मैं यह उम्मीद भी रखता हूं कि आप अपने लेखों में निर्भीक स्वतन्त्र विचारों के साथ-साथ उसी मात्रा में आत्म-संयत और सत्यनिष्ठा का भी परिचय देंगे। अक्सर हमारे पत्रों में, दूसरों में भी, तथ्यों के स्थान पर कल्पना और गम्भीर तर्कों के बजाय जोश पाया जाता है। मैंने जिन त्रुटियों की तरफ आपका ध्यान दिलाया है, उनसे बचते हुए अपने "इण्डिपेण्डेण्ट"[2] पत्र को देश में शक्ति और लोक-शिक्षा का एक साधन बनाइए।

हृदय से आपका,

—अंग्रेजी। ३०।१।१९१९। सं० गां० वा० भाग १५, पृष्ठ ८३-८४।]

१२. पत्र : स्वामी सत्यदेव[3] को

मुंबई

गुरुवार माघ सुद्ध ६ (फरवरी ६, १९१९)

स्वामि जी,

आपका पत्र मिला। आप सच कहते हो देविदास की साथ भेजा हुआ पेगाम से आप सन्तुष्ट न हो शकते। पत्र नहि लिखने का सबब शीर्फ मेरा आलस्य ही है। मुझे क्षमा कीजिएगा। देविदास को मैंने कहा था कि आप सन्तुष्ट न होंगे तो मैं अवश्य लेखित उत्तर भेज दऊंगा। हिन्दी शिक्षा के लिए मद्रास प्रांत में आप

---

१. यह पत्र सैयद हुसेन के २९-१-१९१९ के निम्न तार के उत्तर में था। "इण्डिपेण्डेण्ट ५ फरवरी को निकल रहा है। कृपया पहले अंक के लिए हस्ताक्षरयुक्त सन्देश भेजें।"

२. इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाला अंग्रेजी दैनिक, जिसे जवाहरलाल जी ने निकाला था।

३. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, हिन्दी में अनेक भ्रमणग्रन्थों के रचयिता।

सव योग्य प्रवंध-कर शकते हो। सारा इलाका मे गुम सकते हो। जग जग हिन्दी पाठशाला निश्चित कर सकते हो। पाठशालाओं के लिए आपने चूंने हुये शिक्षकों आप निर्मित कर सकते हो। आप पढ़ाने का कार्य न करे परन्तु सव पाठशालाओं का निरीक्षण योग्य समय पर करते रहे। जव सारे इलाके में आपको सन्तोष मिले ऐसी पाठशाला खूल जाये और आपके सिवाय इन पाठशाला चल शके, ऐसा आप निश्चितता से कह सके उस वखत आप मद्रास इलाका छोड़ शकते हो। इस प्रवृत्ति में आप दश हजार रुपैया तक खर्च कर शकते हो। आपको पैसा भेजने की जवाबदारी मेरे शीर पर है। आपको प्रयाग जी की साहित्यकमिटी[1] से कुच्छ वी संबंध नहि रहेगा। परन्तु मैं सव पैसा प्रयाग जी से मांगना चाहता हूं। उसमें कुछ आपत्ति आजायेगी तो मैं दूसरा प्रवंध कर लौंगा। अव मुझे लगता है आपका सव प्रश्न का उत्तर मैंने दे गया। यदि कुच्छ त्रुटि हो तो आप कहेंगे। सुरेन्द्र के लिये मे कल देविदास कु लंवा पत्र लिखा है। इस समय सुरेन्द्र मानसिक-व्याधि से ग्रस्त है। उसको इंग्रेजी पाठशाला का प्रवंध पर मोह उत्पन्न हुआ है। इस मोह में उसकु छोड़ाना आवश्यक मालुम पड़ता है। आप उसको शान्ति दे सकेंगे। यदि आप उसका विचार को पसंद करते होगे तो आप मुझे समजायेगा।

—हिन्दी। ६।२।१९१९। सावरमती संग्रहालय में उपलब्ध हस्तलिखित दफ्तरी प्रति की फोटो-नकल से।]

१३. पत्र : मदनमोहन मालवीय को

मुंबई

शनिवार माघ सुद्ध ८ (फरवरी ८, १९१९)

भाई साहेव,

आज रोव्लेट वील के वारे में सव व्याख्यान पड लिया। मुझे वहोत रंज पैदा हुआ। वाईसरोय का व्याख्यान निराशाजनक है। ऐसी हालत में तो इह उमेद रखता हूं के सव हिन्दी मेम्वर सिलेक्ट कमेटी से निकल जायगे और यदि जरु हो तो कौन्सिल में से वी निकल जाये और देश में आंदोलन करे। आपने और दूसरे मेम्वरों ने कहा है यदि रोव्लेट वील पसार होंगे तो हिन्दुस्थान में कोई रोज नहि हूआ है ऐसा भारे आंदोलन हो जायेगा। जे आंदोलन चल रहा है इसकी

---

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन की समिति।

भीति सरकार को नही है ऐसा लाउंस[1] साहेब ने सूनाया है और उनकी बात बी सची है। हिन्दुस्थान में एक लाख सभा कर सके तो भी क्या हूआ। मेने निश्चय नहिं किया है परंतु मुझको ऐसा लगता है सरकार जब जेरी कायदा दाखल कर देगी तब उनके दूसरे कायदे का निरादर करने का प्रजा को अधिकार प्राप्त होता है। परि हम इस समय प्रजा का जोर नहि बतायेंगे तो जो-कुछ रिफोर्म मिलने के है व निकंबे होंगे। मेरा राइ यह है के आप सब सरकार कु जाहेर कर दो के उने टेकस जब तक रोव्लाट बील कायम रहेंगे तब तक नहि भरेंगे और सजा को नहि देने की सलाह देंगे। मैं जानता हूं ऐसी सलाह देना बड़ी जिमेदारी का काम है। परन्तु हम कुछ बड़ा काम नहि करेंगे जब तक उन लोगों को हमारे लिए कुछ भी मान पैदा नहि होगा। जीसके पास हमारा मान नहि है उसके पास से कुछ भी मिलने की हम आशा कर शकते। सिविल सर्विस और अंग्रेजों का व्यापार के लिए वाइसरोय ने जो कुछ कहा है व भी मुझको तो ठीक नहि लगता है। सिविल सर्विस की सत्ता बौत ही कमती करनी चाहे और इंग्रेज लोक उने व्यापर को सुरक्षित कर रहे है ऐसी रक्षा स्वराज्य की पीछे उन्को हरगीज नहि मिलेगी। आज तो वे लोक हमसे बौत ही अधिक हक रखते हैं। मैं कल आश्रम पर जाता हूं। प्रत्युत्तर वही भेजने की कृपा किजियेगा।

—हिन्दी। बम्बई, ८।२।१९१९। साबरमती संग्रहालय में उपलब्ध पत्र की फोटो-नकल से।]

गांधी

१४. तार : मदनमोहन मालवीय को

(फरवरी २५, १९१९)

शिष्ट मण्डल के प्रति उत्साह और विश्वास नहीं। रौलट विधेयक सारी प्रगति रोके खड़े है।

—अंग्रेजी से। २५।२।१९१९। 'लीडर' २७।२।१९१९।] 	गांधी

---

1. सर जार्ज लाउण्डेज, भारत-सरकार के कानून-सदस्य (ला-मेम्बर)।

१५. तार : सैयद हुसेन[1] को

मार्च २, १६१६

प्रतिज्ञा के वर्तमान रूप पर ही हस्ताक्षर करायें। इसमें भरपूर गुंजाइश रहती है। कानूनों की व्याख्या करने से क्षेत्र सीमित हो जायगा। इसलिए पहले से व्याख्या करना असम्भव। आन्दोलन की प्रगति देखकर समय-समय पर भंग किये जानेवाले कानून सूचित किये जाते रहेंगे। आपकी समिति या तो यहां की समिति का, जिसे कि केन्द्रीय समिति कह सकते है, अंग हो, या चाहे आप उसे अपनी स्वतन्त्र समिति कह सकते हैं। कल दिल्ली जा रहे हैं यदि आवश्यकता हो तो कोई वहां मिल ले।

—अंग्रेजी। २।३।१९१९। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१६. तार : मदनमोहन मालवीय को

लैबर्नम रोड
बम्बई
३ अप्रैल, १६१६ या उसके पश्चात्

माननीय पण्डित मालवीय जी,
भारती भवन
इलाहाबाद

दिल्ली में जो कुछ हुआ है वह निर्दोष व्यक्तियों का कत्ल ही माना जा सकता है। उसे देखते हुए मेरी राय मे आप आन्दोलन में शरीक हों चाहे न हो, परन्तु मौन ग्रहण नही कर सकते। आशा है आप तथा अन्य नेतागण अपने विचार स्पष्ट शब्दो में व्यक्त किये बिना न रहेंगे। रौलट विधेयकों का विरोध करने में सत्याग्रही लोग उस कानून के पीछे निहित दमन की भावना का विरोध कर रहे हैं। बेगुनाह लोगों के खून के कारण सत्याग्रहियों पर एक बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी

---

१. इलाहाबाद के अंग्रेजी दैनिक 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादक।

है। मेरे मन में इस बात के बारे में सन्देह नहीं है कि वे अपना कर्त्तव्य निभायेंगे। कृपया इस तार को पं० नेहरू[1] तथा अन्य सज्जनों को दिखा दें।

गांधी

—अंग्रेजी। बम्बई, ३।४।१९१९। साबरमती संग्रहालय में उपलब्ध मूल अंग्रेजी की गांधीजी-द्वारा संशोधित प्रति से।]

१७. तार : मदनमोहन मालवीय को

बम्बई

२७ जून, १९१९

माननीय पं० मालवीय जी

राक हाउस, शिमला

दूसरा तार लाहौर

महिलाओं ने (आधार-शिला) समारोह रविवार[2] को रखा है। आपकी ओर से मैं जा रहा हूँ। कृपया सन्देश यहीं के पते से भेजिए।

गांधी

—अंग्रेजी। बम्बई, २७।६।१९१९। साबरमती संग्रहालय में उपलब्ध प्रति से।]

---

१. मोतीलाल नेहरू।

२. अहमदाबाद में वनिता-विश्राम नामक लड़कियों के एक स्कूल की आधार-शिला रखने का आयोजन २९ जून को किया गया था।

१८. पत्र : मौलाना अब्दुलवारी[1] को

बम्बई
मई ४, १६१६

मौलाना अब्दुलवारी,

मेरा ख्याल है कि इस्लामी सवालों पर मुस्लिम मत अच्छी तरह संगठित नही है। हर एक की भावना तो अत्यन्त तीव्र है, पर कोई तर्कपूर्ण और सर्वसम्मत वक्तव्य नही देता। मैं चाहता हूँ कि उलेमाओं की ओर से कोई वक्तव्य निकले। वह उर्दू या अरवी भाषा में हो, तो कोई हर्ज नही। उसका सही अनुवाद आसानी से हो सकता है। दोनों जातियों के वीच के झगड़ों के कारण जांच करने और दोनों के वीच स्थायी एकता स्थापित करने के उपाय सुझाने के लिए हिन्दू-मुसलमानों का एक मिला-जुला आयोग मुकर्रर करने का आपका विचार मुझे वहुत पसन्द है। किन्तु मेरा ख्याल है कि उसके लिए यह ठीक अवसर नही है। अभी तो सवकी शक्ति रौलट कानून, इस्लामी प्रश्नों और राजनीतिक सुधारों पर केन्द्रित हो गई है और यही ठीक है। सारे हिन्दुस्तान के लिए सन्तोषप्रद ढंग से इन प्रश्नो का निपटारा कराने की क्रिया में हम सवका नजदीक आना सम्भव है। इन सवालों का फैसला हो जाने के वाद आपका सुझाया हुआ आयोग ज्यादा कारगर हो सकेगा।

हृदय से आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। बम्बई, ४।५।१९१९। सं० गां० वा० भाग १५ से।]

१९. पत्र : सादिकअली खां को

जून २३, १६१६

प्रिय सादिक अली खां,

आपका पत्र मिला। यह जानकर खुशी हुई कि दादी जी तथा सव वच्चे वहां सकुशल पहुँच गये। यह सुनकर भी हर्ष हुआ कि वेगम साहिवा[2] को अली भाइयों

---

१. उस जमाने में लखनऊ के प्रसिद्ध धर्मनेता और खिलाफत आन्दोलन के प्रवल समर्थक।

२. श्रीमती मुहम्मद अली।

को देखने का अवसर मिल गया। जेल में उनकी हर एक सुविधा का खयाल रखा जायगा, मेरे मन में इसे लेकर कोई शक नही था। मैं सरकारी विज्ञप्ति में लगाये गये आरोप का बिल्कुल सही जवाब पाने के लिए बहुत उत्सुक हूं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, हमें फिलहाल अली-भाइयों के सम्वन्ध में समाचारपत्रों के जरिए आन्दोलन करने से बचना चाहिए। मैं ठीक नहीं कह सकता कि भारत सरकार के खिलाफ क्या-कुछ कदम उठाये जा सकते हैं, लेकिन अभी तो मैं इस आरोप के बारे में और अधिक जानना चाहूंगा। सत्याग्रह अब किसी भी दिन प्रारम्भ कर दिया जा सकता है, परन्तु अगले सोमवार से पहले नही। फिर भी मैं चाहता हूं कि सत्याग्रह मैं ही प्रारम्भ करूं, अन्य कोई नही। अर्थात् मेरे जेल भेज दिये जाने के दिन से एक मास तक कोई सत्याग्रह न करे। कुछ हिदायतें छपवाई जा रही हैं। उसकी एक प्रति आपके पास भेजूंगा। आप उन्हें अज़ीमुद्दीन खां को समझा दें। कृपया बेगम साहिबा तथा अन्य मित्रों से मेरा यथा योग्य कहें।

हृदय से आपका

—अंग्रेजी। २३।६।१९१९। साबरमती आश्रम में सुरक्षित पत्रावली से।]

२०. पत्र : सुन्दर लाल को

लेवर्नम रोड
गामदेवी, वम्वई
१२ जुलाई, १६१६

इसके साथ में "यंग इण्डिया" का वह अंक भेज रहा हूं जिसमें लाला राधाकृष्ण के मामले की चर्चा हैं। मेरी सम्मति में यह मामला अधिक नही तो बाबू कालीनाथ राय[1] के मामले-जितना बुरा तो अवश्य ही है और मेरा खयाल है चूंकि लाला राधाकृष्ण श्री राय के बराबर प्रभावशाली व्यक्ति नही हैं, इसलिए आपको उनके मामले में और भी शीघ्रता करनी चाहिए। मेरे खयाल से श्री राय के मामले में जो तरीका अपनाया गया है, वही इस मामले में भी अपनाया जाना चाहिए। इस मामले में वकील, सम्पादक और आम जनता अलग-अलग ज्ञापन न देकर संयुक्त रूप से एक ही ज्ञापन दें, कदाचित् इससे काम चल जायगा। चूंकि मामला अब भी पंजाब सरकार के विचाराधीन है, अतः सभाएं निश्चय ही की जायें।

---

१. ट्रिब्यून (लाहौर) के सम्पादक।

सार्वजनिक सभाओं में प्रस्ताव पास करके वाइसराय और लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को भेजे जा सकते हैं। मुझे यह कहने की जरूरत नहीं है कि तत्काल राहत हासिल करने के लिए तत्परता दिखाना आवश्यक है।

हृदय से आपका

—अंग्रेजी। बम्बई, १२।७।१९१९। साबरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

२१. पत्र : अब्दुलबारी को

१० अक्टूबर, १९१९ के बाद

प्रिय मौलाना साहब,

अगली १७ तारीख के सम्बन्ध में आपने मेरा पत्र देखा होगा। मैं यह आशा कर रहा हूं कि सभी हिन्दू उपवासादि में शामिल होंगे और यह कार्यक्रम बहुत ही शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त हो जायगा। प्रदर्शन शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाये, इसी में उसकी सफलता निहित है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि आप सार्वजनिक रूप से और व्यक्तिगत तौर पर भी इस आशय के निर्देश जारी करेंगे कि जो लोग अपनी भावना को प्रकट करने के लिए इस कार्यक्रम में शामिल हों, वे अपने घरों में ही रहें, और जो लोग मस्जिदों में जाय वे सर्वथा शान्तिपूर्ण ढंग से प्रार्थनामय मन से जायं।

फिरंगी महल

हृदय से आपका

लखनऊ

—अंग्रेजी। १०।१०।१९१९। साबरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

२२. तार : सादिकअली को

अक्टूबर १०, १९१९ या उसके बाद

सादिक अली

रामपुर

(अली-)बन्धुओं को अनुमति देने के लिए शिमला तार भेजा है। कृपया तार-द्वारा (उनकी मां की) हालत सूचित करें।

—हस्तलिखित अंग्रेजी मस्विदे (एस० एन० १९८२४) की फोटो-नकल से १०।१०।१९१९ के बाद। सं० गां० वा० भाग १६, पृष्ठ २३६।]

२३. तार : श्यामलाल नेहरू को

लाहौर

जनवरी २४, १९२०

पंजाब से वाहर जाना संभव नही, मेरी ओर से क्षमा मांग लें।

गांधी

—अंग्रेजी। लाहौर, २४।१।१९२०। साबरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

२४. पत्र : आनन्दशंकर ध्रुव[1] को

३१ जनवरी, १९२०

सुज्ञ भाई,

धर्म-शिक्षा की पुस्तकों के सम्वन्ध में मुझे जो पत्र प्राप्त हुआ है उसे मैं इस पत्र के साथ भेज रहा हूं। क्या आप इस विषय में कुछ कर सकेंगे? क्या वाइविल स्टोरी आदि पुस्तकों के ढंग की महाभारत, रामायण आदि पर आधारित कितावें प्रकाशित नही की जा सकती? धन का . . .[2] खाने में ही खर्च किया जाया करेगा। . . .भीख माँग-माँग कर धन एकत्र करना सम्भव हो जायगा। परन्तु उसकी झंझट में मैं आपको नहीं डालना चाहता। आपके पास समय है? (इस प्रकार की पुस्तकें) लिखने की ओर क्या आपकी रुचि हो सकेगी? मैं कोरे विद्वानों-द्वारा लिखी हुई पुस्तकें नहीं चाहता। मुझे आपके सिवाय ऐसा अन्य कोई व्यक्ति नजर नहीं आता जिसमें विद्वत्ता और चरित्र दोनों का सम्मिश्रण हो। इसीलिए आपकी शरण आया हूं। इस पुस्तक की माँग मुझसे पहली ही वार नही की गई है। कुछ ऐसा चाहता हूं कि पुस्तक को पढ़ते ही वालक समझ जाय कि हिन्दू धर्म क्या है?

आपका स्वास्थ्य ठीक रहता है, यह समाचार मुझे मिलता रहता है। अंग्रेजी चरखे की तस्वीर मिल गई। उसे भेजने के विचार में जो प्रेम समाया हुआ है, वह तस्वीर की अपेक्षा अधिक प्रिय लगा।

---

१. हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के सह-उपकुलपति।

२. यहाँ कुछ शब्द लुप्त हैं।

'नवजीवन' के लिए यथावकाश कुछ-न-कुछ लिख कर भेजेंगे ही। काशी जी का वर्णन, (हिन्दू) विश्वविद्यालय का परिचय इत्यादि। आपके काशी जी जाने से पण्डित जी[१] को बहुत सन्तोष हुआ है। पण्डित जी ने इस आशय के उद्गार मुझसे अनेक बार व्यक्त किये है। उन्हें सुनकर मुझे गर्व का अनुभव हुआ।

प्रो० आनन्दशंकर ध्रुव, काशी

—गुजराती। ३१।१।१९२०। साबरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

२५. पत्र : मोतीलाल नेहरू[२] को

बनारस
२० फरवरी, १९२०

सेवा में
माननीय पण्डित मोतीलाल नेहरू
पदेन अध्यक्ष, उप-समिति
आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी, लाहौर

महोदय,

१४ नवम्बर, १९१९ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पंजाब उप-समिति ने आपको तथा माननीय फजलुल हक[३] श्री चित्तरंजनदास, श्री अब्बास तैयब[४] जी और मो० क० गांधी को आयुक्त और श्री के० संतानम् को सचिव नियुक्त किया था, जिनका काम गत अप्रैल मे हुई पंजाब की घटनाओ से सम्बन्धित बयानों की, जो पहले ही उप-समिति द्वारा या उसकी ओर से इकट्ठे किये जा चुके है, जांच

---

१. पं० मदनमोहन मालवीय।
२. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पंजाब उप-समिति द्वारा नियुक्त किये गये आयुक्तों ने रिपोर्ट का जो मसविदा तैयार किया था उसके साथ गांधीजी ने यह पत्र पण्डित मोतीलाल नेहरू को भेजा था। गांधीजी द्वारा तैयार किया गया मूल मसविदा उपलब्ध नहीं है। इस हस्तलिखित रिपोर्ट को गांधीजी ने श्री एम० आर० जयकर की सहायता से अन्तिम रूप दिया था।
३. राष्ट्रीय मुस्लिम नेता, द्वितीय विश्व-युद्ध के समय बंगाल के मुख्य मन्त्री।
४. १८५३-१९३६, गुजरात के राष्ट्रीय मुस्लिम नेता।

करना, उनकी बारीकी से छानबीन करना, तथ्यों का मिलान करना और विश्लेपण करना तथा जहां आवश्यक समझा जाय वहां और भी तथ्य जुटा कर इन वयानों की पूर्ति करना तथा उसके बाद उनसे सम्बन्धित अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करना था।

राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष मनोनीत होने पर आपने आयुक्त के पद से इस्तीफा दे देना जरूरी समझा। उप-समिति ने उसे विधिवत् स्वीकार कर लिया था और चूंकि आपके द्वारा इस्तीफा दिये जाने के समय तक वयान लेने का काम लगभग पूरा हो चुका था, अतः आपके स्थान पर कोई अन्य आयुक्त नियुक्त नही किया गया।

माननीय फजलुल हक को उनके आने के तुरन्त वाद किसी महत्वपूर्ण कार्य के सम्वन्ध में वापस वुला लिया गया था। अतएव उनके स्थान पर वम्बई के वकील श्री एम० आर० जयकर को नियुक्त किया गया।

हमने अपना काम १७ नवम्बर को शुरू किया।

हमने १७०० से ऊपर गवाहों के वयानों की जांच की और लगभग ६५० वयानों को प्रकाशनार्थ छांटा है, जिन्हें आप साथ में भेजी जा रही रिपोर्ट के खण्डों में शामिल पायेंगे। जो वयान शामिल नहीं किये गये है, वे अधिकतर ऐसे वयान थे जो एक ही तरह की बाते प्रमाणित करते थे।

हममें से किसी-न-किसी के द्वारा प्रत्येक स्वीकृत वयान की जांच कर ली गई है और उसे तभी स्वीकृत किया गया है जव हम लोग वयान देनेवाले की प्रामाणिकता से सन्तुष्ट हो गये। यह वात मनियांवाला तथा आसपास से प्राप्त कुछ उन वयानों पर लागू नही होती, जिनमें से अधिकांश वयान हमारी प्रार्थना पर श्री लाभसिह, एम० ए० बैरिस्टर द्वारा एकत्र किये गये थे। ऐसे प्रत्येक वयान के नीचे उनका नाम दिया हुआ है। गवाह से पर्याप्त प्रश्नोत्तर किये विना कोई वयान स्वीकार नही किया गया।

आप देखेंगे कि कुछ गवाहों ने अधिकारियों के विरुद्ध गम्भीर आरोप लगाये हैं। प्रत्येक मामले में हमने गवाहों को चेतावनी के रूप में सूचित कर दिया था कि आप लोग जो आरोप लगा रहे है उनके परिणाम क्या निकल सकते है, और उनको तभी शामिल किया गया जव गवाह अपने वयानों पर, यह जानने के वावजूद दृढ़ रहे कि वे व्यक्तिगत जोखिम उठा रहे हैं और उनकी अतिशयोक्ति या उनके असत्य भाषण के कारण हमारे उद्देश्य को क्षति पहुंच सकती है। हमने उन वयानों को अस्वीकार कर दिया है जिनका पुष्टीकरण नहीं किया जा सका। यद्यपि कुछ मामलो में हम बयान देनेवालों की वात पर विश्वास करने को तैयार

थे। उदाहरणार्थ, औरतों के प्रति दुर्व्यवहार के सम्बन्ध मे दिये गये बयान ऐसे ही थे।

यह कहने की जरूरत नही कि हमारी जांच मार्शल ला के क्षेत्र तथा उन जिलों[1] तक ही सीमित थी, जिनमें उसकी घोषणा की गई थी। मुख्य-मुख्य स्थानों पर हम लोग स्वयं गये। इस प्रकार लाहौर, अमृतसर, तरनतारन, कसूर, गुजरांवाला, वजीराबाद, निजामाबाद, अकालगढ़, रामनगर, हाफजाबाद, सागला, शेखूपुरा, चूहड़खाना, लायलपुर, गुजरात, मलकवाल और सरगोधा हममे से कोई-न-कोई स्वयं गया था। अधिकाश स्थानों में विशाल आम सभाएं की गई और जनता से अपने बयान देने के लिए कहा गया। पहले से लिये गये बयानों को इन सभाओं में लोगों के सामने रक्खा गया और उन्हें आमन्त्रित किया गया कि जो लोग इन बयानों की यथार्थता को चुनौती देना चाहते हों वे अपने बयान लिख भेजें। साथ ही उन्हे यह आश्वासन भी दिया गया कि उनके बयानों को बिल्कुल गुप्त रखा जायगा। लेकिन हमे कोई भी खण्डन प्राप्त नही हुआ।

अपने निष्कर्षों को मजबूत बनाने या संशोधित करने के उद्देश्य से हमने उपद्रव जांच समिति[2] के समक्ष दिये गये सभी सबूतो का निःसंकोच उपयोग किया है।

यहा यह उल्लेखनीय है कि साथ में दिये गये बयानो मे से बहुतेरे लार्ड हण्टर की समिति की बैठके शुरू होने से पहले हमे प्राप्त हो चुके थे।

अधिकतर बयान देशी भाषाओ में दिये गये। हमने उनका अत्यन्त शुद्ध अनुवाद उपलब्ध कर सकने की चेष्टा की है परन्तु हमारी रिपोर्ट के साथ दिये गये बयानो को मूल जैसा ही समझना चाहिए, क्योकि हमने इन बयानो के अनुवादो के आधार पर गवाहों से दुबारा पूछताछ करके तदनुसार उनमे आवश्यक सुधार या संशोधन कर दिये थे।

हमने मार्शल ला आयुक्तों या समरी अदालतो द्वारा किये गये फैसलों के रेकर्डो का, जहां तक वे हमें मिल सके, अध्ययन भी किया है और हमने कई ऐसे मामलों के, जो भरती के दौरान भरती के तरीकों के सम्बन्ध में खडे हुए थे, अदालती विवरण भी देखे। अन्त में हम यह बात प्रकट कर देना चाहते है कि जहां-जहां हम लोग गये उन सब स्थानों के प्रमुख व्यक्तियो के और लाहौर तथा अन्य स्थानों के उन अनेक कार्यकर्ताओ के हम आभारी है जिन्होने हमारी

---

१. अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला, गुजरात और लायलपुर।
२. लार्ड हण्टर की समिति।

ऐसी मूल्यवान सहायता की जिसके विना हम निर्धारित समय में काम समाप्त न कर पाते।

आपके विश्वस्त,
मो० क० गांधी
सी० आर० दास
अब्बास एस० तैयबजी
एम० आर० जयकर

—अंग्रेजी। काशी, २०।२।१९२०। रिपोर्ट आफ द कमिश्नर्स एपांइटेड बाइ द पंजाब सब-कमिटी आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस। सं० गां० वा० भाग १७, पृ० ४४-४६।]

२६. तार : शौकतअली को[1]

६ मार्च, १९२०

उन्नीस[2] के लिए अपील तैयार कर रहा हूं। उसमें अपने समर्थन की बात शर्त के साथ रख रहा हूं। आपको मेरी सलाह है कि दृढ़ता जरूर रखिए परन्तु नरमी से काम लीजिए। सत्य को व्यक्त कीजिए परन्तु प्रेम की भाषा में, घृणा की भाषा में नहीं। तभी हमारी जीत सम्भव है।

—अंग्रेजी से। ६।३।१९२०। बाम्बे सीक्रेट एक्स्ट्रैक्ट्स १९२०।]

---

१. रामपुर (संयुक्त प्रान्त) के निवासी। खिलाफत आन्दोलन में गांधीजी के दाहिने हाथ तथा मौलाना मुहम्मदअली के बड़े भाई। शौकतअली २८-२९ फरवरी को हुए बंगाल प्रान्तीय खिलाफत सम्मेलन के सिलसिले में कलकत्ता गये हुए थे।

२. १९ मार्च को खिलाफत-दिवस मनाया गया था।

२७. तार : गोकर्णनाथ को[1]

अहमदाबाद
१२ मार्च, १९२०

अप्रैल के पहले सप्ताह में तो यही रहना पड़ेगा।

गांधी

—अंग्रेजी। अहमदाबाद, १२।३।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १७ से।]

२८. तार : गोकर्णनाथ को

अहमदाबाद
१५ मार्च, १९२०

गोकर्णनाथ,
लखनऊ

सर रवीन्द्रनाथ अहमदाबाद आने वाले हैं। क्या उस समय अहमदाबाद में सभा की जा सकती है? वह सम्भव न हो तो बम्बई में करें।

गांधी

—अंग्रेजी। अहमदाबाद, १५।३।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १७ से।]

२९. पत्र : श्रीप्रकाश को

पोस्ट कार्ड

प्रिय श्रीप्रकाश

पिता जी के कहने पर जो कागज तुमने भेजे हैं उनके लिए धन्यवाद। मैं

---

१. लखनऊ के प्रसिद्ध वकील एवं नेता। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महामन्त्री।

हिन्दी और उर्दू का मेल पसन्द करता हूं। मुझे आशा है, तुम्हें वहां अच्छी सफलता मिली होगी।

तुम्हारा विश्वसनीय
मो० क० गांधी

साबरमती
१८-४-२०

टिप्पणी—यह कार्ड बनारस में २१-४-१९२० को प्राप्त हुआ था।

—अंग्रेजी। साबरमती। १८।४।१९२०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश
तथा नेहरू संग्रहालय।

३०. पत्र : अब्दुलबारी को

सिंहगढ़
२० अप्रैल, १९२०

प्रिय मौलाना साहब,

मैं फैजाबाद नहीं आया, इसके लिए आपसे माफ़ी चाहता हूं। अगर आता तो मेरे स्वास्थ्य के लिए बुरा साबित होता। और कुछ नहीं तो अगली लड़ाई के लिए ही मैं अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहता हूं। लगता है, मेरा बायां पैर काम नहीं कर रहा है। अगर मुझे कुछ दिन यहां रहने दिया जाय तो मुझे आशा है कि यह यहीं ठीक हो जायगा। हमारे साथियों से भी मेरी लाचारी का इजहार कर दीजिएगा।

इंग्लैण्ड जाने के बारे में तो आपने सब कुछ सुन ही लिया होगा। दोस्तों की खास ख्वाहिश के बिना मैं वहां जाना नही चाहता था और ऐसी किसी ख्वाहिश की कोई साफ़ निशानी दिखाई नहीं दी इसलिए मैंने श्री माण्टेग्यु को तार[1] दे दिया है। अब उनके जवाब की राह देख रहा हूं। मैं यह जरूरी समझता हू कि मौलाना अबुलकलाम आजाद और शौकतअली बम्बई में ही रहे ताकि उनसे बराबर सलाह-मशविरा किया जा सके। संगठन का काम फौरन शुरू हो जाना चाहिए।

---

१. १३-३-१९२० के बाद यह तार दिया गया था।

वदकिस्मती से मौलाना अवुलकलाम आजाद अभी तक वीमार हैं। मैंने उन्हें जितनी जल्दी हो सके, वम्बई आ जाने को कह दिया है।

—अंग्रेजी। सिंहगढ़, २०।४।१९२०। सं० गां० वा० भाग १८, पृ० ३९२।]

३१. पत्र : देवदास गांधी को[1]

आश्रम
वैशाख वदी १३
(१७ मई, १९२०)

चि० देवदास,

तुम्हारे ६ तारीख के पत्र से मैं स्तव्ध रह गया। तुम्हारे वीमार होने का भय मुझे सदैव वना रहता है। मैं तुमसे यहां आने को आग्रह नहीं करता, इसका एक कारण मेरा यह भय भी है। मुझे ऐसा लगा कि तुम्हारा किसी ठण्डे स्थान में अकेले रहना तुम्हारे लिए हितकर होगा। अव तुम्हारा दूसरा पत्र पाने के लिए अधीर हूं। ६ तारीख से पहले का पत्र तो मेरे पास है ही नहीं; पता नहीं, मिलेगा भी कि नहीं। आजकल डाक की गड़वड़ी का कुछ हिसाव ही नहीं है। मैंने पण्डित जी[2] को तुम्हारे वारे में तार दिया था, उसका भी उत्तर नहीं आया है। स्मरण रहे कि मैं तीस तारीख को काशी जी जाने वाला हूं। अव यदि तव तक तुम वहीं रहो, तो हर्ज नहीं। हम मिलने पर भविष्य के सम्वन्ध में विचार करेंगे।

लगता है, विलायत जाना तो नहीं हो सकेगा। शर्तें मालूम हो गई हैं, इसलिए अभी तो यही सलाह करनी है कि क्या किया जाय।

वापू के आशीर्वाद

(पुनश्च)

कुमारी फेरिंग परसों डेनमार्क के लिए रवाना होंगी।

—गुजराती। सावरमती, १७।५।१९२०। सावरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

---

१. गांधीजी के सबसे छोटे पुत्र। उन दिनों वह उत्तर प्रदेश में ही कार्य कर रहे थे।

२. पं० मदनमोहन मालवीय।

३२. पत्र : देवदास गांधी को

आश्रम

अमावस्या (१८ मई, १९२०)[1]

चि० देवदास,

तुम्हारा १२ तारीख का पत्र मुझे आज ही मिला। मेरे पत्र की कमी तुम्हें लगभग एक सप्ताह तक महसूस हुई होगी, क्योंकि मैंने यह मान कर तुम्हें कोई पत्र न लिखा था कि तुम आनेवाले हो। जब तुम्हारा कोई पत्र न आया और मैं राह देखते-देखते थक गया तब मैने खुद ही पत्र लिखना शुरू किया। फिर भी तुम्हारी ओर से कोई पत्र न आने पर मैने तार दिया और अब तुम्हारे पत्र आने लगे है।

पण्डित जी[2] के प्रेम का जितना बखान करोगे वह सब सच है। अपने हृदय की विशालता के कारण ही वह इतने सारे कार्य कर सकते है।

तुम्हारे बारे में मुझे सामान्यतया चिन्ता हो ही जाती है। लेकिन यह सोच कर शान्त हो जाता हूं कि तुम्हारा चरित्र तुम्हारी रक्षा करेगा ही।

मै वहां[3] २९ तारीख को पहुंचूगा। बम्बई से रात को निकलूंगा, इसलिए गाड़ी तो एक ही है। मै मान लेता हूं कि पण्डित जी तो वहां होंगे ही। पं० मोतीलाल जी ने लिखा है कि सब लोग किसी होटल में ठहरें। लेकिन मैंने उनसे कहा है कि यदि पण्डित जी वहां हुए तो मुझे और कही ठहरने नही देंगे।

श्री माण्टेग्यु के उत्तर की प्रति तो मैं तुम्हें भेज ही चुका हूं। यहां पण्डिचेरी वाले श्री ऐयर आये थे; तीन दिन तक रहे।

मजदूरों की हड़ताल आज खत्म होगी, कल वे काम पर जायंगे, ऐसा मानता हूं। मेरा खयाल है कि तुम्हें (मैंने) सब पत्रिकाएं भेजी है।

अभी-अभी फातिमा बहन अपनी सास के साथ मुझसे मिलने आई हैं, इसलिए पत्र समाप्त करता हूं।

बापू के आशीर्वाद

— गुजराती। साबरमती, १८।५।१९२०। साबरमती संग्रहालय में प्राप्तपत्रावली से।]

---

१. पत्र में अहमदाबाद में मजदूरों की जिस हड़ताल की चर्चा की गई है वह २१ मई १९२० को समाप्त हुई थी। १९२० के मई महीने में अमावस्या १८ तारीख को थी।

२. मालवीय जी महाराज से अभिप्राय है।

३. अर्थात् काशी।

३३. पत्र : देवदास गांधी को

वम्वई

जेष्ठ सुदी २ (२० मई, १६२०)[1]

चि० देवदास,

तुम्हारे पत्र अव नियमपूर्वक आते रहते हैं। मैं वहां आनेवाला हूं[2] इसलिए तुम अल्मोड़ा जाओ, यह कहने में हिचकिचाता हूं, तथापि जाना हो तो जाना। रुकने की इच्छा हो तो मैं जब वहा आऊंगा तभी हम (दोनों बैठकर) कार्यक्रम वनायेंगे।

आज खिलाफत के सम्बन्ध में एक दिन के लिए यहां आया हूं। इस वारे में तुम्हे यंग इण्डिया और नवजीवन में सव कुछ पढने को मिलेगा।

जहां तक मेरे स्वास्थ्य का प्रश्न है, मैं दुर्वलता के सिवाय कुछ और महसूस नही करता। कमजोरी इतनी है कि मुझसे तनिक भी नही चला जाता। टांगों से ताकत चली गई है। कारण समझ में नही आता। अपने पढ़ने-लिखने आदि का कार्य ठीक-ठीक कर पाता हूं।

सिंहगढ़ में मेरे साथ प्रभुदास, वालकृष्ण डाक्टर, महादेव और रेवाशंकर भाई रहे। कुमारी फेरिंग कल रवाना हो गई।

वापू के आशीर्वाद

—गुजराती। वम्वई, २०।५।१९२०। सावरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

३४. तार : शौकतअली को[3]

२२ मई, १६२०

हां। इलाहावाद। पहली अथवा दूसरी जून को ठीक है।

—अंग्रेजी। वाम्वे सीक्रेट एक्स्ट्रेक्ट्स। २२।५।१९२०।]

---

१. कु० एस्थर फेरिंग १९ मई १९२० को डेनमार्क के लिए रवाना हुई थी और यह पत्र जैसा कि मजमून से पता चलता है दूसरे दिन लिखा गया था।

२. गांधीजी मई के अन्त में वनारस पहुंचनेवाले थे।

३. यह तार इलाहावाद में खिलाफत की समस्या पर किये जाने वाले सम्मेलन के सम्बन्ध में है।

३५. तार : मुहम्मदअली[1] को

(७ जुलाई १९२० के पूर्व)

प्रभावशाली व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से युक्त मुसलमानों का प्रार्थनापत्र वाइसराय के पास पहुंच गया है, जिसमें पूरी नम्रता प्रदर्शित करते हुए भी अपनी बात पर दृढ़ आग्रह। प्रार्थनापत्र में घोषणा की गई है अगर शान्ति-सन्धि की शर्तों में परिवर्तन नहीं किया जाता या यदि वाइसराय महोदय खिलाफत आन्दोलन का नेतृत्व नही करते तो १ अगस्त से असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होगा। मैंने अपनी ओर से एक अलग प्रार्थनापत्र दिया है जिसमे इस आन्दोलन से अपने सम्बन्धो पर प्रकाश डाला है और अपने-आपको इसमें पूरी तरह से शामिल बताया है। मेरे विचार से मुसलमानों और हिन्दुओं का विशाल बहुमत मुसलमानों की धार्मिक भावना के सम्मान के निमित्त तथा मन्त्रियों के वचनों को पूरा कराने के उद्देश्य से छेड़े जानेवाले इस महान और न्यायसम्मत आन्दोलन के साथ है। आप भरोसा रखें कि यहां जो कुछ भी सम्भव है सब किया जा रहा है। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि अगर हम अपनी सहायता आप करेंगे तो इस महान् अनुष्ठान में ईश्वर हमारी सहायता अवश्य करेगा।

—अंग्रेजी। यं० इं० ७।७।१९२०।]

३६. तार : शौकतअली को[2]

(२१ सितम्बर १९२० या उसके बाद)

जफ़रअली खां वकील द्वारा कतई बचाव न करें। वह केवल वक्तव्य दे सकते है। मेरा दृढ़ मत है कि वकील द्वारा बचाव की कोई गुंजाइश नही है।

—अंग्रेजी। २१।९।१९२० या उसके बाद। सं० गां० वा० खण्ड १८ से।]

---

१. रामपुर (उ० प्र०) निवासी। १८७१-१९३१; वक्ता, पत्रकार और राजनीतिज्ञ। एक जमाने में प्रमुख अपरिवर्तनवादी असहयोगी नेता। १९२० में इंग्लैण्ड भेजे गये शिष्ट मण्डल के नेता; १९२३ में भारतीय राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष। मौ० शौकत अली के भाई। यह तार उन्हें लन्दन भेजा गया था।—सम्पा०]

२. शौकतअली ने एक तार भेजा था जिसमें बताया था कि 'जमींदार' के सम्पादक जफरअली खाँ के मुकदमे की सुनवाई २७ तारीख को होगी। उन्होंने गांधीजी से बचाव के सम्बन्ध में भी सलाह मांगी थी। यह तार उसी के उत्तर में भेजा गया था।

३७. तार : शौकत अली को[1]

(२३ सितम्वर १९२० या उसके वाद)

खुद तो जाना नही चाहता। यदि आप समझते हैं कि उद्देश्य को लाभ पहुंचेगा तो जाने को राजी हूं। महीने के अन्त तक मुझे विश्राम की आवश्यकता है।

—अंग्रेजी। २३।९।१९२० या वाद। सं० गां० वा० भाग १८, पृष्ठ ३०७।]

३८ तार : मुहम्मदअली को[2]

(१ नवम्वर १९२० या उसके पूर्व)

एक्सप्रेस
मौलाना मुहम्मदअली
अलीगढ़

कालेज की परिस्थिति पूरी तौर पर तार से सूचित करे। क्या अभी तक आपने कालेज का अहाता खाली नही किया? नडियाद के पते पर एक्सप्रेस तार करे।

गांधी

—अंग्रेजी। नडियाद, १।११।१९२०। सावरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

---

१. यह शौकतअली द्वारा २३ सितम्वर १९२० को वम्वई से भेजे गये तार के जवाव में था। शौकतअली ने अपने तार में कहा था "२७ तारीख को ज़फर-अली खाँ के मामले की सुनवाई है, इसलिए पंजाव खिलाफत समिति चाहती है कि आप तत्काल वहां पहुंच जांय ...।"
२. पहली नवम्वर को वापू नडियाद में थे।

३९. तार : सर अकबर हैदरी को[1]

(नवम्बर १९२० या उसके पूर्व)[1]

साधारण
हैदरी
ट्रस्टी
अलीगढ़

मुहम्मद अली खाली करने से इनकार करेंगे, यह बात समझ में नहीं आती। वचन का पालन अवश्य किया जायगा।

गांधी

—अंग्रेजी। नडियाद, १।११।१९२०। साबरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

४०. पत्र : गुरुकुल के अध्यापकों और विद्यार्थियों को

पूना
शुक्रवार (५ नवम्बर, १९२०)[2]

गुरुकुल के अध्यापक और बालक,

आपका पत्र मिला है। गुरुकुल ने मेरे बालकों को प्रेमपाश में बद्ध कर दिये थे, यह बात मैं कैसे भूल सकता हूं। आपको मै क्या सन्देश भेजूं? परन्तु यदि कुछ कहना चाहिए तो इतना ही कहना चाहता हूं कि क्या आप आधुनिक समय का यज्ञ कर स्तेय के पाप में से बचते हो? आप सूत्रचक्र चलाकर हिन्दुस्तान के भूख से दुखित लोगों का खयाल प्रतिदिन करते हो? क्या आपने अनुभव कर लिया है कि इस समय इस छोटा सा चक्र का चलाना महायज्ञ है।

नेहाभिक्रमनाशोस्तीति।[3]

—हिन्दी। पूना, ५।११।१९२०। साबरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

---

१. १८६९-१९४०, अलीगढ़ विश्वविद्यालय के न्यासियों में से एक।
२. गांधीजी ५ नवम्बर १९२० को पूना में थे।
३. देखिए भगवद्गीता, २-४०।

४१. तार : मुहम्मदअली को

(८ नवम्बर १९२०)[1]

मुहम्मदअली
अलीगढ़

शौकतअली ने पूरी जानकारी दी। हारवर्ड के मेधावी स्नातक एण्ड्रयूज और हिन्दू विश्वविद्यालय के कृपलानी[2] को भेजने का प्रबन्ध कर रहा हूं। जरूरत हो तो और भी लोग भेजे जा सकते हैं। आपको हार्दिक बधाई। आशा है कि विद्यार्थी दृढ रहेंगे और नाजुक समय मे बराबर शिष्ट और शान्त व्यवहार कायम रखा जायगा। मैं विद्यार्थियो को अपनी उस इच्छा की याद दिलाना चाहूंगा जो मैंने पहली बार उनसे अलीगढ़ मे मिलने पर व्यक्त की थी। शील, प्रतिष्ठा, इस्लाम और भारत की खातिर उन्हें सादा रहन-सहन और ऊंचे विचार जीवन के सिद्धान्त बना लेने चाहिए। हमारे देश को सच्चे फकीरों और नम्रता की कभी इतनी आवश्यकता नही रही जितनी आज है।

—अंग्रेजी। ८।११।१९२०। अमृतबाजार पत्रिका, ९।११।१९२०।]

४२. पत्र : देवदास गांधी को

झांसी
(२०-११-१९२०)[3]

चि० देवदास,

हम लोग झांसी अभी-अभी पहुंचे है। यहां थोडी-बहुत शान्ति मिल पाई। गंगाधर राव[4] तथा श्रीमती सरला देवी[5] मेरे साथ ही है। ऐसा लगता है कि सरला-

---

१. तार ८ नवम्बर को प्राप्त हुआ था।

२. जीवतराम भगतराम कृपलानी (१८८८) शिक्षाविद और राजनीतिज्ञ, १९४६ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष, संसद-सदस्य।

३. गांधीजी बम्बई से झांसी के लिए १९ नवम्बर १९२० को रवाना हुए थे और २१ नवम्बर को दिल्ली पहुंचे थे।

४. कर्नाटक-केसरी के नाम से प्रसिद्ध कर्नाटक के प्रसिद्ध राजनीतिक कार्यकर्त्ता गंगाधर राव बालकृष्ण देशपाण्डेय।

५. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भांजी, पं० रामभजदत्त की पत्नी। १९१९ में गांधीजी की अनुयायी बनीं। अपने पुत्र दीपक को पढ़ने के लिए साबरमती आश्रम भेजा था।

देवी कल दिल्ली होती हुई लाहौर जायंगी परन्तु पक्का निश्चय तो पण्डित जी[1] का पत्र आने पर हो सकेगा।

तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक रहता होगा। धीरू से मिलते रहना। यदि वह रहने के लिए आश्रम पहुंचे तो उसे दाखिल कर लेना, अन्यथा उसे राष्ट्रीय विद्यालय के छात्रालय में भरती करा देना। शहर में उसका रहना जरा भी ठीक न होगा। रेवाशंकर[2] भाई का भी ऐसा ही खयाल है। शंकरलाल का भांजा भी आश्रम पहुंचने वाला है। उसके साथ उठना-बैठना तथा इस बात का खयाल रखना कि उसे आश्रम में बुरा न लगने पाये।

बेलाबेन से परिचय बढ़ाना। उन्होंने मेरे मन पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला है। मुझे यह महिला प्रामाणिक और साध्वी प्रतीत हुई है। उसके बाल-बच्चे भी ठीक लगे हैं। परन्तु तुम और अच्छी तरह से इन सब बातों को परख सकोगे। मेरा इरादा इन लोगों पर काम का भारी बोझ डालने का नहीं है, फिर भी ऐसा हो सकता है कि अनजाने ही उनके कन्धों पर भारी बोझ पड़ जाय।

हिन्दी में जो संशोधन किये हैं उन्हें मैंने समझ लिया है परन्तु दोष तो तभी दूर होंगे जब संशोधन लगातार किया जायगा। बोलते समय कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर गलतियां नही करता। बात यह है कि इन अशुद्धियों की ओर बार-बार ध्यान आकर्षित करने पर ही उनसे बचा जा सकता है। तुम्हारे अध्ययन का कार्य-क्रम जानने के लिए उत्सुक हूं।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। झांसी, २०।११।१९२०। गांधी स्मारक संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

---

१. पंजाब के नेता और कवि पं० रामभजदत्त चौधरी।

२. बम्बई के व्यापारी तथा गांधीजी के प्रशंसक रेवाशंकर जगजीवन झवेरी।

४३. तार : शिवप्रसाद गुप्त[1] को

(२०-११-१९२० के आसपास)[2]

मालवीय जी[3] का स्वास्थ्य कैसा है? यदि उनके स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचने[4] का अन्देशा है तो फिर मैं बनारस नहीं आना चाहूंगा। दिल्ली तार दीजिए।

गांधी

—अंग्रेजी। २०।११।१९२०। साबरमती संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

४४. तार : मोतीलाल नेहरू को

(२० नवम्बर १९२० के आस-पास)

सुना है मालवीय जी बीमार हैं और यदि मैं गया तो स्वास्थ्य और बिगड़ने की सम्भावना है। कृपया उनके स्वास्थ्य की खबर तार से दिल्ली भेजिए।

—अंग्रेजी। २०।११।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १९, पृष्ठ ५।]

---

१. (१८८३-१९४४) काशी के प्रसिद्ध देशभक्त, मातृभाषा-प्रेमी, दानवीर, राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक 'आज' और राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था काशी विद्यापीठ के संस्थापक और काशी के सुप्रसिद्ध भारत-माता मन्दिर के निर्माता।

२. महादेव देसाई की डायरी "मैं काशी में" शीर्षक के अन्तर्गत २६ नवम्बर १९२० के विवरण से यह स्पष्ट है कि यह तार तथा बादवाले दो तार नवम्बर १९२० में भेजे गये थे। गांधीजी १९ नवम्बर को बम्बई से झांसी के लिए रवाना हुए थे और २१ नवम्बर को दिल्ली में थे। २४ नवम्बर को वह दिल्ली से बनारस के लिए चल पड़े और २५, २६ तथा २७ नवम्बर को पं० मदनमोहन के साथ रहे। अतः अनुमानतः ये तीनों तार २० नवम्बर के आस-पास भेजे जा चुके थे।

३. पं० मदनमोहन मालवीय—(१८६१-१९४६) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक। शाहीविधान परिषद के सदस्य, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दो बार अध्यक्ष।

४. गांधीजी मालवीय जी से मिलने के लिए बनारस जाना चाहते थे क्योंकि असहयोग आन्दोलन के प्रति उनकी प्रतिक्रिया पूरी तरह अनुकूल नहीं थी।

४५. तार : मदनमोहन मालवीय को

(२० नवम्बर १९२० के आस-पास)

यदि आप राजी हों तो २४ को बनारस आना चाहता हूं। कृपया दिल्ली तार दीजिए।

गांधी

–अंग्रेजी। २०।११।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १९, पृष्ठ ५।]

४६. तार : चिरावुरी यज्ञेश्वर चिन्तामणि[1] को

(२५ नवम्बर १९२० को या उसके बाद)[2]

मैं निश्चय ही असहयोगियों द्वारा किसी का प्रचार[3] करने का विरोधी हूं। चूंकि मैंने उनमें पक्ष लेने का रुझान पाया इसीलिए मैने असहयोगियों को उस प्रलोभन के विरुद्ध चेतावनी देना शुरू किया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहूंगा। मेरे नाम से किसी को भी झांसी में या अन्यत्र किसी उम्मीदवार को (किसी दूसरे उम्मीदवार की तुलना में ज्यादा) अच्छा बताने का अधिकार नही है। आशा है यदि आप झांसी के अधिकांश मतदाताओं को चुनाव के विरुद्ध पायेंगे तो आप उक्त चुनाव-क्षेत्र की इच्छा का सम्मान करेंगे।

—अंग्रेजी। २५।११।१९२० या बाद। सं० गां० वा० भाग १९, पृष्ठ २४।]

---

१. सर सी० वाई० चिन्तामणि (१८८०-१९४१), 'लीडर' के सम्पादक, किसी समय संयुक्त प्रान्त के एक मन्त्री और उदार दल के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ।

२. यह तार श्री चिन्तामणि के झांसी से दिये २५।११।१९२० के इस तार के जवाब में था :—"आपके कुछ अनुयायी आपके नाम पर मेरे विरुद्ध काम कर रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि आपका ऐसा मन्तव्य कभी नहीं हो सकता। आप से प्रार्थना है कि अपने मित्रों को तदनुसार तार दें। कृपया उत्तर तार से दीजिए।"

३. माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के अनुसार नवम्बर-दिसम्बर १९२० में हुए विधान-सभाओं के चुनावों के बारे में।

४७. पत्रांश : देवदास गांधी को

. . .काशी में दो दिन विताये। काफी अनुभव हुआ। पण्डित जी[1] के साथ कटुता आने का जरा भी भय नहीं था। दूसरों को जो अन्देशा था, वह भी मिट गया होगा। विद्यार्थियों में खूब वातें हुईं। अव यह देखना है कि परिणाम क्या होता है। देश में वेहद कमजोरी है। असहयोग ही देश को सवल वनायेगा।

—गुजराती। इलाहावाद, २८।११।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १९ से।]

४८. तार : शौकतअली को

कृपया वम्बई के छात्रों द्वारा शास्त्री कानजी[2] के प्रति किये गये व्यवहार का विवरण तार-द्वारा वनारस[3] भेजें। हमें इस प्रकार के काण्डों को रोकना चाहिए, और उनसे अपने को अलग रखना चाहिए।

—अंग्रेजी। काशी, ९।२।१९२१। सं० गां० वा०, खण्ड १९, पृ० ३४७।]

४९. पत्र : वर्मा को

मुलतान
५ मार्च (१९२१)[4]

प्रिय श्री वर्मा,

आपका पत्र मेरी यात्रा मे मेरे पीछे-पीछे चक्कर काटता हुआ यहां मिला।

युवकों में जो उच्छृंखलता की प्रवृत्ति आ रही है, उसे रोकने के लिए मैं जितना कुछ कर सकता हूं, कर रहा हूं। आशा है कि उनके उत्साह का यह अशोभनीय अतिरेक ठण्डा पड़ जायगा और स्थिति सामान्य तथा सही रूप धारण कर लेगी।

---

१. पं० मदनमोहन मालवीय।
२. कानजी द्वारकादास वम्बई के एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता।
३. गांधीजी ९ और १० फरवरी को काशी में थे।
४. सन् १९२१ में कई वार गांधीजी ने अपने लेखों और पत्रों में छात्रों के उपद्रवों का उल्लेख किया। वह ५ मार्च १९२१ को मुलतान में थे।

क्या हम सभी आज संक्रमण-काल में ही नही हैं? शायद हम उनके कार्यो के गुण-दोषों को समझने या उनका सही-सही मूल्यांकन करने में असमर्थ है। फिर भी काशी में जैसे अशोभनीय दृश्य[1] देखने में आये वैसे फिर न हों। इसके लिए मैं थोड़ा-बहुत जो कुछ कर सकता हूं, मुझे अवश्य करना चाहिए। मैं उस मामले में पण्डित जवाहरलाल नेहरू से ध्यान देने के लिए कह रहा हूं।

हृदय से आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। मुलतान, ५।३।१९२१। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

५०. तार : मदनमोहन मालवीय को

बम्बई
२८ जून, १९२१

पण्डित मदनमोहन मालवीय,
शिमला

सरकार से क्षमा माँगने का मंशा तो था ही नही। यदि होता तो मैं स्पष्टतः वैसा कहता। भेंट का (दोनों पक्षों द्वारा) स्वीकृत विवरण प्रकाशित करने या गोपनीयता से मुझे बरी किये जाने के लिए मैंने पिछले सप्ताह वाइसराय को पत्र लिखा था।

—अंग्रेजी से। बाम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२१। बम्बई, २८।६।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २०, पृ० २९०।]

---

१. यहाँ गांधीजी ने कदाचित् कुछ समय पहले की एक घटना का उल्लेख किया है जिसमें बनारस में छात्रों ने पण्डित मदनमोहन मालवीय के प्रति अशिष्ट व्यवहार किया था।

५१. पत्र : महादेव देसाई[1] को

बुधवार (६ जुलाई, १९२१ या उसके पश्चात्)[2]

चि० महादेव,

कल तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जो लिखा था सो मैं समझ ही गया था। मैंने न उलटा अर्थ किया और न करने की मेरी आदत है। जब एक वाक्य के दो अर्थ होते हों तब जो अर्थ हमारे प्रतिकूल पड़े उसे ही अपने ऊपर लागू करना चाहिए, यही उचित है और यही सच भी है। उपर्युक्त दोनों वाक्यों में यह दोष नही था। दोष तो मैंने जो बताया वही था। २५ लाख मानना हमारे कोई विशेष अनुकूल नही होगा, क्योंकि इस रकम के बिना भी एक करोड़ हो गये थे और अन्तिम पत्र लिखने के बाद ही यह तार आया था। वे एक लाख चर्खे दान में देना चाहते है अथवा कम दाम में देना चाहते है, इससे भी हमारे कार्य में कोई फर्क नही पड़ता। अभी तक एक लाख चर्खो वाले वाक्य का मैं दूसरा अर्थ नही करता। लेकिन वाक्यों का अर्थ लगाने में उतावली की गई है और यह उतावली भी आसक्ति की सूचक है। आसक्ति में हमेशा असत्य ही भरा होता है। अनासक्त पुरुष के पास सोचने-विचारने का समय होता है और वह कुछ ऐसा ही अर्थ करता है जिससे विरोधी पक्ष का बचाव हो सके और यदि व्यक्ति सत्यनिष्ठ है तो जैसा मैंने बताया है वह पत्र-लेखक के अभिप्राय की सही कल्पना कर लेता है।

तुम्हारे बारे में पढ़ा। जो हुआ सो विपरीत हुआ। इससे यह प्रगट होता है कि हम किस तरह भूल में पड़ जाते है। सच्चा प्रायश्चित्त तो यही हो सकता है कि फिर कभी ऐसा न हो। तथापि मैं निम्नलिखित सुझाव देता हूँ। प्रत्येक एकादशी को सिर्फ एक सेर, ८० तोला, गर्म दूध पर रहो। न फल लो, न शक्कर। और वह दूध भी दो या तीन बार में पियो, एक ही बार में नही। अगली एकादशी से ऐसा एक वर्ष तक करो।

श्रीमद् राजचन्द्र जी के[3] लेखों को पढ़ जाना और उन पर विचार करना।

---

१. उस समय महादेव भाई इलाहाबाद के 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादकीय विभाग में थे।

२. २५ लाख के उल्लेख से प्रतीत होता है कि यह पत्र ३० जून के बाद पड़ने वाले बुधवार अथवा उसके बाद अर्थात् ६ जुलाई को लिखा गया था।

३. श्री रायचन्द्र भाई जिनके आचार-विचार का गांधीजी पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था।

तुलसीदास की 'मणिरत्नमाला' पढ़ कर उस पर मनन करना।

भर्तृहरि के 'वैराग्यशतक' को पढ़ उस पर अच्छी तरह से विचार करना।

'योगवाशिष्ठ' का वैराग्य प्रकरण खूब ध्यान से पढ़ जाना।

हर रोज कम-से-कम एक घण्टा चर्खा कातना और उस समय हमेशा यह विचार करना कि इस यज्ञ के द्वारा मन की मलिनता धुल जाये। यह भी एक वर्ष तक करना; यात्रा और बीमारी अपवाद हैं।

सवेरे उठने पर अन्य समस्त कार्य वाद में करना। सवेरे उठ शौचादि करना हो तो वह करके, यदि आश्रम में हो तो प्रार्थना करके, आध घण्टे तक चुपचाप उपर्युक्त पुस्तकों का पाठ करना और बाद में एक घण्टा चर्खा चलाना। इसके वाद कुछ और काम करना।

एक वर्ष के लिए नौ बजने से पहिले सो जाना और चार वजने के वाद बिस्तर पर कतई न रहना। इस कार्यक्रम में परिवर्तन तभी हो सकता है जब तुम वीमार पड़ो।

इस प्रायश्चित्त का विधान करते समय मैं दोष को वढ़ा-चढ़ा कर नहीं कहता और नही मैं उसको कम मानता हूँ। उसमें से तुम्हें जो कुछ निकालना हो उसे निकाल देना। लेकिन लोक-लाज के अधीन होकर चर्खे को मत निकालना। और लोक-लाज अथवा लोक-सेवा के विचार से नौ बजे सोना मत छोड़ना। 'इण्डि-पेण्डेण्ट' को आड़े नही आने देना।. . . .दैनिक में लिखने के लिए रात को जागने की जरूरत नही है। और फिर जिस शैली से हम चलाना चाहते है उसमें ऐसा कुछ नही है।

और जान लो कि ऊपर का डेढ़ घण्टा तो मौन का ही है। देवदास ने निर्दोष भाव से तुम्हारे पत्र को पढ़ना शुरू किया, उससे उसे रोकना मुझे उचित नहीं लगा।

तुमने न आने का जो कारण दिया है वह सवल है इसलिए चाहो तो मत आओ। पण्डितजी अथवा जोसेफ भेजें और आओ, यह अलहदा बात है। तुम्हारे न आने की मुझे चिन्ता नही, लेकिन अगर आ जाते तो मुझे खुशी ही होती।

तुम्हारे दोष को देखने पर मेरे प्रेम में कोई कमी आ जायगी, ऐसा तो तुम कभी नही मानोगे। मैं पूर्ण होऊँ तो कमी को अवकाश नही हो सकता। मैं अपूर्ण मुमुक्षु अगर दूसरों के दोषों को वढ़ा-चढ़ा कर देखूँ तो अपनी अपूर्णता में वृद्धि करूँगा।

मैने नित्य स्मरण करने के लिए कहा है तथापि ग्लानि नही होनी चाहिए।

शुद्ध पश्चात्ताप ग्लानि का विरोधी है। पाप लम्बा मुँह बनाता है। मलिनता का स्मरण हमे विनम्र बनाता है, ग्लानि कभी नहीं देता।

'सुख दुःखे समेकृत्वा'[1] की बात यहाँ भी लागू होती है।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। ६।७।१९२१।]

- उतावली भी आसक्ति की सूचक है।
- शुद्ध पश्चात्ताप ग्लानि का विरोधी है।
- पाप लम्बा मुँह बनाता है। मलिनता का स्मरण हमें विनम्र बनाता है, ग्लानि कभी नहीं देता।

५२. तार : मोतीलाल नेहरू को

बम्बई

(८ जुलाई १९२१ या उसके पश्चात्)

मोतीलाल नेहरू

अध्यक्ष का आग्रह है कि बहिष्कार के संगठन का खयाल करते समिति की तारीख चौबीस के बाद रखी जाय। मेरा सुझाव है कि बैठक अट्ठाइस तारीख को बम्बई में बुलाई जाय। मंजूरी तार से दें।

गांधी

—अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७५६७) की फोटो-नकल से। बम्बई, ८।७।१९२१ या बाद। सं० गां० वा० खण्ड २०, पृ० ३५२।]

५३. पत्र : महादेव देसाई को

अलीगढ़

५ अगस्त, १९२१

भाई श्री महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम मुझसे मिले नही, इससे कोई हानि नहीं। मेरी

---

१. भगवद्गीता, २-३८।

शुभेच्छा में आशीर्वाद तो मिला ही हुआ था। तुम्हें वहाँ कोई कष्ट न होगा और कोई कठिनाई नही होगी। मथुरादास[1] और दुर्गादास की स्थिति तो मैं समझता हूँ। उन दोनों से मिलने की मेरी प्रबल इच्छा थी। किन्तु बम्बई में यह कैसे हो सकता था? बम्बई ने जो कुछ किया है उसमें प्रयत्न की तो कोई कमी नही रही न? हम १० तारीख को तो मिलेंगे ही, इसलिए अधिक कुछ नही लिखता।

बापू के आशीर्वाद

पुनश्च :

प्रभुदास[2] आ गया है। स्टोक्स भी साथ है।

—गुजराती। ५।८।१९२१।]

५४. पत्र : महादेव देसाई को

लखनऊ जाते हुए
रविवार (७ अगस्त १९२१)[3]

भाई श्री महादेव,

लखनऊ पहुँचने से पहले यह पत्र लिख रहा हूं। वहां[4] बुधवार के प्रातः पहुँचकर उसी रात को आरा रवाना हो जाना है।

मैं जोजेफ़ की गिरफ्तारी की खबर मिलने की राह देख रहा हूं। मुझे लग रहा है कि रंगा अय्यर अकेले नही रहने चाहिए।

लोगों की जय-जयकार से तंग आ रहा हूं।

मेरे लिए पेड़े, सोडा-पड़ी पूड़ियाँ और मीठी टिकिया (गोल पापड़ी) बन सकें तो बनवा लेना। इस बार यात्रा में मेरे पास पेड़े ही हैं और उनके भी समाप्त होने की सम्भावना है। और सफर लम्बा है। सम्भव है, वहां, बकरी के दूध से बनाया हुआ घी सुगमता से न मिले सके। पेड़े ही बन सकें तो भी ठीक है। हर जगह से टोपियां खूब मिल रही है।

---

१. मथुरादास त्रिकम जी (१८९४-१९५१) गांधीजी के भांजे के पुत्र।
२. छगनलाल गांधी के पुत्र।
३. गांधी जी मुरादाबाद से इसी दिन लखनऊ पहुँचे थे और उस दिन रविवार था।
४. इलाहाबाद।

वालजी[1] को तुम्हें 'यंग इण्डिया' के प्रूफ भेजने के लिए लिख दिया है।

वापू के आशीर्वाद

—गुजराती। पत्र (एस० एन० ११४२१) की फोटो-नकल से। ७।८।१९२१।]

५५. पत्र : ओंकारनाथ पुरोहित को

पटना जाते हुए

१५ अगस्त, १९२१

भाई ओंकारनाथ,

आपका पत्र मीला। छपेला पत्र मै भेजता हुं। उस पत्र मे ऐसी कोई अनीतिमय वात नहि देखता हुं जिसलीये आपको अनीति प्रकट करने के कारन खत को छापना चाहिये। उस खत को न प्रकट करने की प्रतिज्ञा का पालन करना हि चाहिए। उसमें दी हुई सलाह का पालन न करना या करना आपका हि हृदय पर निर्भर रहता है।

मोहनदास गांधी

ओंकारनाथ पुरोहित
द्वारा—लाला चन्दूलाल,
राजा का वाजार
आगरा

—गांधीजी के स्वाक्षरों में मूलपत्र (जी० एन० ६०८८) की फोटो-नकल से। १५।८।१९२१।]

---

१. वाल जी गोविन्द देसाई कुछ समय तक गुजरात कालेज, अहमदाबाद में अंग्रेजी के प्राध्यापक। त्यागपत्र देकर गांधी जी के साथ हो गये थे। 'यंग इंडिया' के सम्पादकीय कार्यों में सहायक।

५६. पत्र : महादेव देसाई को

कलकत्ता जाते हुए
(१७ अगस्त १९२१ के पूर्व[1])

भाई श्री महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। मोतीलाल जी तो यही चाहते है कि तुम रहो किन्तु मुख्य बात तो तुम्हारी इच्छा ही है। यदि वहां बहुत मेहनत पड़े या तुम्हारी तवीयत ही अच्छी न रहे तो निश्चय ही चले आना। किसी आदमी का दाहिना हाथ बनने से अधिक महत्वपूर्ण और क्या हो सकता है? यह वाक्य कि "यदि मैं दाहिना हाथ बन सकता" केवल दुःख में अथवा ज्ञानपूर्वक लिखा जा सकता है। यदि दुःख में लिखा हो, तो फिर तुमने मुझे नहीं समझा है। यदि ज्ञानपूर्वक लिखा है, तब तो कुशल है। दो दिमाग़ एक दूसरे से विलग रह सकते है, किन्तु हाथ दिमाग़ से विलग रह कर क्या कर सकता है? मैं तुम्हें दिमाग़ मानकर शिक्षित कर रहा हूं। सन्तराम तो 'पर्मानेण्ट अण्डर सेक्रेट्री' है, इसलिए वह तो खिसक नही सकता।

मै चाहता हूँ कि तुम अपनी सही परिस्थिति को समझो। मैं प्यारेलाल[2] को क्यों रखे हुए हूँ, यह भेद तुम नहीं समझोगे। मेरी जिन्दगी के इस भाग को तुम समझ नही सकोगे। बा का और मेरा स्वभाव एक नही है। बा मुझे नहीं समझती। आश्रम में अभी तक तो मुझे जैसी चाहिए वैसी एक भी स्त्री नहीं मिली। रसोईघर के काम-काज को सँभालना (विकट) काम है। विरला ही उसे सँभाल सकता है। मैं उसे तुम्हारी शक्ति के बाहर मानता हूँ। उसके लिए तो फिलहाल मगनलाल, विनोबा, छोटेलाल[3], मैं और कुछ अंश में भुवरजी[4] ने अपने को सिद्ध किया है। हमारा भोजन तो एक शास्त्र के अनुसार है। गोकी बेन[5] को लेकर काफी परेशानियाँ थी। हमें एक प्रौढ़ मनुष्य की निश्चय ही आवश्यकता है।

---

१. गांधीजी १७ अगस्त १९२१ को कलकत्ता में थे।
२. प्यारेलाल नय्यर १९२० में गांधीजी के साथ हुए और महादेव देसाई की मृत्यु के बाद उनके मुख्य सचिव बने।
३. छोटेलाल जैन, सत्याग्रह-आश्रमवासी।
४. सत्याग्रह-आश्रमवासी।
५. गांधीजी की बहिन।

मैं अपनी समझ में प्यारेलाल का अच्छे-से-अच्छा उपयोग कर रहा हूँ। वक्त आने पर मैं उसे अन्यत्र रख सकूँगा।

जोजेफ़ के बाहर रहते हुए तुम्हारा देवदास अथवा प्यारेलाल को माँगना तो ज्यादती जान पड़ती है। तुम्हें इन दोनों से कुछ हलके दर्जे के व्यक्ति से सन्तोप करना चाहिए। तुम प्रभुदास को रख सकते हो।

दुर्गा के अच्छे हो जाने पर क्या तुम जोजेफ के साथ रह सकते हो? लेकिन यह तो दूर की बात हुई। पहले तो मुझे तुम्हारी इच्छा ही जाननी है। मै तुम्हें अभी यं० इं० में नही भेजूगा। क्या तुम्हे मेरा पिछला पत्र मिला था? फिलहाल तो मै इसी तरह सोचता हूँ कि या तो तुम वही रहो या फिर मेरे साथ।

तुम्हारे लेख पढ़े। सभी अच्छे है यानी उन पर कोई टीका-टिप्पणी जरूरी नही है। विपिनचन्द्र[1] को ठीक जवाब दिया गया है।

मुझे गौहाटी लिखना। मै २५ तक गौहाटी के आसपास रहूँगा। क्रिस्टोदास[2] यं० इं० के विचार से साथ है। उसके आने की बात थी और वह आ गया है। वह मेरे साथ ही है।

बापू के आशीर्वाद

[मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११४१३) की फोटो-नकल से। १७।८।-१९२१ के पूर्व। सं० गां० वा० खण्ड २०, पृ० ५३५-३६।]

---

१. विपिनचन्द्र पाल।

२. कृष्णदास, गांधीजी के सचिव।

५७. पत्र : ख्वाजा को

(१७ अगस्त, १९२१ के बाद)[1]

प्रिय ख्वाजा साहब[2],

मैं गोवध के सम्बन्ध में आपके तार का जवाब पहले नही भेज सका, इसके लिए आप कृपया मुझे क्षमा करेंगे। मैं जानता हूँ भारत के बहुत से भागों में सचमुच बहुत ही अच्छा कार्य हुआ है। आप अन्न की कमी के बारे में तार चाहते थे। अब तार देने का कोई उपयोग नही बचा है। मैं ४ तारीख[3] को आपसे मिलने की आशा करता हूँ। यदि स्थिति पर फिर भी विचार करने की जरूरत हो तो उस समय आप इसका उल्लेख करें।

हृदय से आपका

[अंग्रेजी। एस० एन० ७५९९ की फोटो-नकल से। १७।८।१९२१ के बाद।
सं० गां० वा०, खण्ड २०, पृ० ५३८।]

---

१. यह पत्र ख्वाजा के १६ तारीख के उस तार के जवाब में लिखा गया था जो गांधीजी को १७ अगस्त को मुंगेर में मिला था। तार इस प्रकार है—
"पिछले वर्ष की ६ गौओं के मुकाबले इस वर्ष कुल २ की कुर्बानी की गई।... स्वदेशी के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया अत्यन्त आशाजनक। रुपये का ४ सेर गेहूँ। अधिक महँगा होने की अफवाह। इससे नगर में महान विक्षोभ। खतरनाक स्थिति उत्पन्न होने की आशंका। कृपया तार से सलाह दें।"

२. अनुमानतः अलीगढ़ के राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय के उपकुलपति ख्वाजा अब्दुल मजीद।

३. गांधीजी को ६ सितम्बर को होनेवाली कार्यकारिणी की बैठक में शामिल होने के लिए ४ तारीख को कलकत्ता पहुँचना था।

५८. पत्र : महादेव देसाई को

तेजपुर
मौनवार (२२ अगस्त, १९२१)[1]

भाई श्री महादेव[2]

आशा है तुम्हें मेरे पत्र मिले होंगे। तुमने भी मुझे लिखा ही होगा किन्तु अभी तक तो कोई पत्र मुझे नही मिला। असम में यदि तुम मेरे साथ होते तो तुम्हारी काव्यशक्ति को अच्छा भोजन मिलता। किन्तु इस कर्मभूमि में कोई भोग भोगने के लिए हमारा जन्म नही हुआ है। इसलिए असम अथवा प्रयाग[3] दोनों स्थानों से हमें काव्यशक्ति को सीचने के लिए जो मिल जाय, उसी से सन्तोष करना है।

भ्रमण-सम्बन्धी निम्नांकित कार्यक्रम लगभग ठीक है।

२३ जोरहाट

२४-२५ डिब्रूगढ़

२७ सिलचर

२८-२९ सिलहट

३१-१ चटगाँव

३ बरिसाल

४ कलकत्ता

हम लोग कलकत्ता में लगभग दस दिन रहेंगे। उसी बीच एक दिन के लिए हमें शायद बोलपुर भी जाना होगा।

अन्य समाचार 'नवजीवन' तथा यं० इं० में तुम्हे मिल जायंगे।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती पत्र (एन० एन० ११४२२) की फोटो-नकल से। २२।८।१९२१। सं० गां० वा०, खण्ड २१, पृ० ६ में भी।]

---

१. गांधीजी २२ तारीख को तेजपुर से नाव-द्वारा रवाना हुए और नौगांव के रास्ते २३ की बजाय २४ अगस्त १९२१ को जोरहाट पहुँचे।

२. (१८९२-१९४२), २५ वर्षों तक गांधीजी के सेक्रेटरी।

३. महादेव देसाई उस समय प्रयाग में थे।

५९. पत्र : महादेव देसाई को

सिलचर के रास्ते पर
शनिवार (२७ अगस्त, १९२१)[1]

भाई श्री महादेव,

कांग्रेस द्वारा बताई गई असम की हद को आज छोड़ कर हम अब सुरमा घाटी में प्रवेश कर रहे हैं। दृश्यावली भी बदल गई है। ब्रह्मपुत्र की यात्रा में हमने तुम्हें काफी याद किया। लेकिन क्या हम अपने मनचाहे भोजन को हमेशा प्राप्त कर सकते हैं या खा ही सकते है? तुम्हारी ओर से कोई भी पत्र नहीं मिला है। वस्तुतः गोहाटी छोड़ने के बाद हमें डाक मिली ही नहीं और ऐसी आशंका है कि अभी कलकत्ता पहुँचने से पहले मिलेगी भी नही। वहाँ तो मुश्किल से चार तारीख तक ही पहुँचेंगे। अन्नपूर्णादेवी का पता है: चतापारु, एलौर, मद्रास प्रान्त।

एस्थर फैरिंग का[2] पता याद हो तो लिख भेजना।

तुम्हारे स्वास्थ्य के बारे में समाचार जानने को आतुर हूँ।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। २७।८।१९२१। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

६०. पत्र : महादेव देसाई को

चटगाँव
१ सितम्बर, (१९२१)

भाई श्री महादेव,

पेन्सिल से लिखा तुम्हारा एक लम्बा पत्र मुझे मिला है। तुम्हारे इस पत्र को पढ़ने में मुझे तकलीफ हुई। कभी-कभी पेन्सिल से लिखे हुए अन्य लोगों के पत्र

---

१. देखिए "पत्र : महादेव देसाई को", २२।८।१९२१।
२. एक डेनिश मिशनरी जो १९१६ में भारत आई थीं और बाद में कुछ समय तक साबरमती आश्रम में रहीं। गांधीजी उनके साथ पुत्री का-सा व्यवहार करते थे।

भी मुझे प्राप्त होते है और उन्हें पढ़ने में मुझे दिक्कत होती है, इससे मेरी समझ मे यह आ गया है कि पेन्सिल से लिखे हुए मेरे पत्र भी लोगों के लिए कष्टकर होते होगे। मुझे यह आशंका तो थी ही कि पेन्सिल से लिखना गुनाह है लेकिन अपनी विषम स्थिति को देखते हुए मैंने यह छूट ले ली थी। लेकिन जब दूसरा कोई यह गुनाह करता है तब मुझसे नही सहा जाता। तुमने तो गुनाह नही किया है, यह मैं जानता हूँ। तुम्हे एक प्रति अपने लिए रखनी थी। बहुत बार पहली कार्बन कापी अधिक साफ होती है।

विचार बदलता हूँ[1]। तुम मुझे पहले कलकत्ते में मिलो और बाद में देवदास[2] को बुलाओ—यही अधिक उचित जान पड़ता है। तुमने फिलहाल वही रहने का निश्चय किया हो तो देवदास को तार कर देना। लेकिन मुझे ऐसा लगा कि मेरे साथ तुम सलाह-मशविरा कर लो, उसके बाद ही कुछ करना ठीक होगा, इसलिए मैं एक बिल्कुल ही अलग प्रकार का तार[3] भेज रहा हूँ।

मलाबार मे जो-कुछ हुआ उसका समाचार मैंने बाद में देखा। उसके सम्बन्ध में 'यग इण्डिया' के लिए एक टिप्पणी लिखकर मैंने भेज भी दी है। तुम्हें उसकी एक प्रति भेजी होती तो अच्छा होता। तुम्हारे लेख तो मुझे कलकत्ता पहुँचने पर ही देखने को मिलेंगे।

मालवीय जी[4] अथवा कवि के मन में मेरे प्रति कोई ईर्ष्या-भाव है, यह बात तो मैं स्वप्न में भी नही सोच सकता। दोनों में भीरुता है और दोनों को अपने विचारों के सम्बन्ध मे अभिमान है। यदि अभिमान के साथ भीरुता न हो तो अभिमान को सहन किया जा सकता है। हम जिस दृष्टि से असहयोग को देखते हैं, असहयोगियो के दोषों को दरगुजर कर देते है वैसा ये दोनों नही कर सकते और इसीलिए इसका विरोध करते है। इसके अतिरिक्त मेरे विचारों की नवीनता और सरलता उन्हे भ्रमित भी है। उनके सम्बन्ध मे इससे अधिक कुछ मानना मुझे तो पापरूप ही लगता है। विपिन बाबू[5] अथवा विजयराघवाचार्य[6] के मन मे अवश्य बहुत-

---

१. गांधीजी ने यहाँ दो वाक्य लिखकर काट देने के कारण यह लिखा है।
२. १९००-१९५७, गांधी जी के सबसे छोटे पुत्र।
३. यह उपलब्ध नहीं है।
४. १८६१-१९४६, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक, १९०६ और १९१८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष।
५. विपिनचन्द्र पाल (१८५८-१९३२), बंगाल के शिक्षाशास्त्री, पत्रकार, वक्ता और राजनीतिक नेता।
६. १८५२-१९४३, अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९२०।

कुछ हो सकता है। रमाकान्त को मैं बालक मानता हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि उसने स्वतन्त्र विचार रखने का दावा करने की खातिर ही मेरा विरोध किया है। हमें उसका विचार ही नही करना चाहिए और पत्रकार के रूप में मधुर टीका करने के काम को करते रहना चाहिए।...[1] के सम्बन्ध में कवि और मालवीय जी के विचारों को अवश्य बताते रहो। यह काम 'यंग इण्डिया' मे अधिक नही हो सकता लेकिन 'इण्डिपेण्डेण्ट' में आराम से और बखूबी हो सकता है।

इन्दु के लिए हाथ से कते सूत के हार सहज ही बनाये जा सकते है।

तुम काफी पिओ तो इससे मुझे तनिक भी बुरा नही लगेगा। मेरे लिए यह ज्यादा जरूरी है कि तुम अपने स्वास्थ्य को बनाये रखो। अलबत्ता, मेरा ऐसा अनुभव है कि सामान्य रूप से काफी की जरूरत नही होती और मैं ऐसा मानता भी हूँ। जब मैं काफी पीता था, मुझे कोई फायदा नजर नही आया। अब नहीं पीता इससे भार तो कम हुआ ही है, और बला टली सो अलग।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। चटगाँव, ११९।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २१ से।]

६१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मद्रास जाते हुए
१४-९-२१

भाई जवाहरलाल,

यू० पी० की कमीटी ने जो स्वदेशी-प्रचार के लीये ग्रांट माँगी है उस बारे में बहोत सी खबर चाहीये। स्वदेशी का कारोबार किसके हाथ में रहवेगा? उनको चरखा का, करघा का, कपास का कुछ ज्ञान है? किस तरह से व्यय कीया जायगा। मेरी सलाह है की जो इस काम को करना चाहते हैं उनको मेरे पास मुंबई भेज दीया जाय। मैं इस मास की आखिरी को मुंबई पहोंचने की उमीद रखता हुं।

पिता जी मुझे कहते थे की अब भी तुम्हारी तबीयत की रक्षा चहिये। इतनी

---

१. साधन-सूत्र में यहाँ एक शब्द स्पष्ट नहीं है।

नहिं करते हो। ऐसा न होना चाहिए। दूध और रसमय फल का उपयोग करने की दाक्तर की सलाह को संपूर्ण अमल करने की मेरी सला है।

आपका

मोहनदास गांधी

—हिन्दी। गांधीजी के, नेहरू संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित स्वलिखित मूल पत्र से। १४।९।१९२१।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू-संग्रहालय।

६२. पत्र : जवाहरलाल को[1]

त्रिचनापल्ली

२० सितम्बर, २१

प्रिय मित्र,

मौलाना शौकत अली तथा मौ० मुहम्मद अली एवं अन्य लोगो की गिरफ्तारी को देखते हुए हम कार्यकर्त्ताओ में से कुछ को मिलने और स्थिति पर विचार करने की जरूरत है। कार्य-समिति की बैठक अहमदाबाद में ६वी अक्तूबर को होगी। परन्तु यदि हम ४ थी अक्तूबर को ठीक १ बजे दिन में बम्बई में लेबर्नम रोड पर मिल सकें तो अच्छा होगा। क्या तुम कृपापूर्वक मुझे बम्बई के पते पर सूचित करोगे कि क्या तुम उपस्थित रहोगे? मैं २ अक्तूबर को बम्बई पहुँचूंगा।

तुम्हारे प्रान्त से मैंने केवल तुम्हे और मौलाना अब्दुल बारी, मौ० हसरत मोहानी तथा श्री ख्वाजा को निमन्त्रित किया है। तुम ऐसे किसी और मित्र को भी ला सकते हो जिसकी उपस्थिति (कार्य मे) सहायक हो।

तुम्हारा निश्छल

मोहनदास क० गांधी

—अंग्रेजी। त्रिचनापल्ली, २०।९।१९२१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित दस्तावेज से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय, नई दिल्ली।

---

१. यह पत्र लिखा किसी और ही की हस्तलिपि में है, पर नीचे गांधीजी के हस्ताक्षर हैं।

६३. पत्र : महादेव देसाई को

२३ सितम्बर, १६२१

भाई श्री महादेव,

मद्रास आने के बाद मुझे तुम्हारा एक भी पत्र नही मिला है। स्वदेशी के सम्बन्ध में तो मद्रास में कुछ भी नही किया गया, ऐसा कहा जा सकता है। देखना है कि अब क्या होता है? मैने पोशाक में भारी फेर-बदल किया है, तुमने देखा ही होगा। मुझसे रहा नही गया।

मद्रास में राजगोपालाचारी ने खूब मेहनत की है तथापि मद्रास मुझे बंगाल से भी अधिक पिछड़ा हुआ जान पड़ा। भ्रमण से और जयघोष के नारों से अब मैं ऊब गया हूँ। उम्मीद है, तुम्हारी तबीयत अच्छी होगी। चार तारीख को बम्बई आ सको तो आना।

सरकार की ओर से कालीकट न जाने का आदेश पत्र प्राप्त होने के बाद मेरे लिए सविनय-भंग करना अत्यन्त आसान हो गया है।

यह पत्र मै तुम्हें तिन्नेवेली जाते हुए लिख रहा हूँ। राजगोपालाचारी की तबीयत बहुत खराब रहती है। उन्हे हल्का ज्वर, खांसी और दमा है।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। तिन्नेवेली के मार्ग में, २३।९।१९२१। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

६४. पत्र : महादेव देसाई को

कोयम्बटूर जाते हुए
रविवार (२५ सितम्बर, १६२१)

भाई श्री महादेव,

मुझे तुम्हारा वह पत्र जो तुमने उर्मिला देवी को लिखे हुए पत्र के साथ भेजा है मिला। इससे पहले का पत्र नही मिला।

यह सत्य है कि बंगाल से मुझे निराशा हुई। मद्रास से उससे भी अधिक। मै इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि हमारा असली कार्य कांग्रेस के कार्य-कर्त्ताओं के दिलों में चर्खे के प्रति विश्वास जमाना ही है। यह विश्वास मुझे बंगाल

में नजर नही आया। यहाँ भी वह दिखाई नही देता इसी से मैं घवरा गया हूँ। सामान्य जनता को उसमे विश्वास है, लेकिन उन्हें मदद की जरुरत है, कौशल की जरूरत है। अगर सब कोई कुछ-न-कुछ करने के लिए कहें और करनेवाला कोई भी न हो, तो क्या स्थिति होगी? वही हाल हमारा है। सरूप और रणजीत को तो क्या कह सकते हैं? लेकिन जवाहरलाल समझेगा, ऐसा मैं मानता हूँ। मैं आश्रम मे वैठकर सिर्फ यही काम करने लगूं, यह वात होने मे देर नहीं लगेगी।

हिन्दुस्तान की अवोगति से मुझे इतना परिताप होता है कि अगर हिन्दुस्तान इस वर्ष के अन्त तक सचेत नही हो जाता तो यह परिताप कदाचित् मुझे जिन्दा ही जला डालेगा—मेरे इतना सब कहने और लिखने का आशय यही है। मैंने अपनी श्रद्धा को तो छोड़ा नही है। मैं तो जब वुद्धि का प्रयोग करके हिसाव करने वैठता हूँ तब मैं व्याकुल हो जाता हूँ। इतने में ही मेरे अन्तर से आवाज आती है कि "करनेवाला तो ईश्वर है।" 'कछुआ और कछुवी का संवाद'[1] और 'मामेरू'[2] आदि को याद करता हूँ और शान्त हो जाता हूँ। मैं दो तारीख को वम्वई पहुँचूंगा। तुम चार तारीख को आना।

वापू के आशीर्वाद

—गुजराती। २५।९।१९२१। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

६५. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

रेलगाड़ी में
२५ सितम्वर, १९२१

भाई श्री ५,

मैं आपका पोस्टकार्ड अभी पढ़ रहा हूँ, आपको रुपये न भेज सका, अव तो

---

१. भोजा भगत (१७८५-१८५०) का सुप्रसिद्ध गुजराती भजन।
२. कवि प्रेमानन्द (१६९२-१७९०) रचित गुजराती भक्तिकाव्य जिसमें भक्त नरसिंह मेहता की पुत्री के सीमन्त की रस्म स्वयं भगवान द्वारा अदा किये जाने का मार्मिक वर्णन है।

मैं मुंबई में दे दूंगा, मै मुंबई में २ अक्टोबर को पहुंचुंगा, चार तारीख तक रहूंगा, इतने में आप आ जायें, ऐसा चाहता हूं।

मोहनदास गांधी

बनारसीदास चतुर्वेदी एस० क्यू०[1]
शान्ति निकेतन,
बोलपुर, ई० आई० रेलवे

—जी० एन० २५७८ की फोटोनकल से। २५।९।१९२१। सं० गा० वां०, खण्ड २१, पृ० २१८।]

६६. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

१८ अक्तूबर, १९२१[2]

भाई श्री,

आपका पत्र मिला। आपको नौकरी करने की कोई आवश्यकता नही है। न है विना काम असोसिएशन की आफिस पर जाने की। आपका भी पेटीट पर का पत्र देखा। मुझे खेद हुआ है। उसमें रोप ही देखता हूं। मुझे मेरे पर रख दिया है तो ली...उनको कुछ भी लीखने की आवश्यकता न थी।

मेरा कार्य भी अब थोड़ा सा मुश्केल हो जायगा। परन्तु आप निश्चन्त रहें। भविष्य के लिए मेरा इशारा है।

मोहनदास गांधी

बनारसीदास चतुर्वेदी,
हीरावाग
गीरगांव मुवई

—हिन्दी।१८।१०।१९२१। जी० एन० २५७९ की फोटोनकल से।]

---

१. जुलाई १९२० में चीफ्स कालेज इन्दौर से त्याग-पत्र देकर शान्ति-निकेतन में सी० एफ० एण्ड्रूज के पास चले गये। वाद में प्रवासी भारतीयों का कार्य। विशाल भारत का सम्पादन। राज्यसभा के सदस्य रहे।

२. पत्र पर १९ अक्तूबर १९२१ की वम्वई डाकखाने की मुहर है।

६७. पत्र : महादेव देसाई को

आश्रम

बुधवार (१९ अक्तूबर, १९२१ को या उसके पश्चात्)[1]

भाई श्री ५ महादेव,

तुम्हारा भेजा हुआ चेक तो मुझे रखना ही पड़ेगा। बाद में, जब तुम्हें जरूरत होगी तब तुम्हे पैसा मुझसे मांगना पड़ेगा। ऐसा लगता है कि मोतीलाल जी को परिवार के लोगों की इन बीमारियों से छुटकारा कभी मिलेगा ही नहीं।

स्वदेशी के विषय में लोगों को अपनी बात मैं जँचा नहीं पाता, इससे क्या मेरी तपस्या की कमी नहीं सूचित होती? एक पूर्ण तपस्वी बोले बिना भी लोगों को अपनी भावनाओं से प्रभावित करता है। कुछ लोग संकेतमात्र से, तो कुछ बोलकर और कुछ लिखकर ही अपनी बात समझा पाते हैं? इस सबका क्या रहस्य है? जो लोग खादी केवल मेरी हाजिरी में पहनते हैं वे मेरी तपस्या के कारण नहीं, मेरे प्रति अपने प्रेम के कारण ही ऐसा करते हैं। भविष्य मे स्वतन्त्र हिन्दुस्तान अपना अनाज क्या विदेशों से मंगायेगा? यदि नहीं तो कपड़ा भी नहीं मंगायेगा। क्या हम पानी और दवा भी विदेश से मंगायेंगे? अलबत्ता, जब हमारे देश में कपास पैदा होना बन्द हो जायगा तब जरूर हमारा धर्म बदल जायगा। लेकिन तब तो हमें यह देश ही छोड़ देना पड़ेगा।

यह तो तुमने सुन ही लिया होगा कि किशोरलाल ने एकान्त में एक झोपड़ी बनवाई है और आजकल उसी में रह रहे हैं।

—गुजराती। साबरमती, १९।१०।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २१ से।]

६८. तार : मोतीलाल नेहरू को

अहमदाबाद

१९ अक्तूबर, १९२१

मैं आपसे सहमत हूँ कि अध्यक्ष कार्यसमिति के प्रस्ताव की अवहेलना नहीं

---

१. अन्तिम अनुच्छेद में किशोरलाल मशरूवाला के एकान्त में एक झोपड़ी में जाकर रहने का उल्लेख है। श्री मशरूवाला इस झोपड़ी में शुक्रवार, १४ अक्तूबर, १९२१ को रहने के लिए गये थे।

कर सकता। जैसा निश्चय किया जा चुका है, समिति[1] की बैठक दिल्ली में होनी चाहिए।

—अंग्रेजी। अहमदाबाद, १९।१०।१९२१। बाम्बे क्रानिकल, २२।१०।१९२१।]

६९. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

सावरमती
२४ अक्तूबर, १९२१

भाई श्री बनारसीदास जी,

आपका पत्र मीला। मैं चाहता हूं अब आप भी जहांगीर पीटीट को कुछ भी न लिखें।

आपका,
मोहनदास गांधी

—हिन्दी। साबरमती, २४।१०।१९२१। गां० स्मा० सं० में सुरक्षित मूल पत्र की फोटो-नकल से।]

७०. पत्र : भगीरथ मिश्र को

२७।१०।१९२१

जब आप पूरी प्रणाली को बुरा समझ कर उससे असहयोग कर रहे हैं, तब ऐसा नहीं हो सकता कि किसी दूसरी प्रणाली के आ जाने के कारण आप फिर पहली वाली प्रणाली से सहयोग करने लगें। उस हालत में तो आपको दोनों से असहयोग करना होगा। मेरी "धमकी" का यही कारण है कि अगर भारत में हिंसा सर्वव्यापी हो जाय और उसी की चपेट में आकर मैं दुनिया से उठ न जाऊँ तो मैं हिमालय की गुफाओं में शरण ले लूंगा।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २७।१०।१९२१।]

---

१. अखिल भारतीय कांग्रेस समिति।

७१. पत्र : महादेव देसाई को

नववर्ष दिवस[1]

मौनवार (३१ अक्तूबर, १६२१)

भाई श्री महादेव,

वर्ष-प्रतिपदा और मौनवार, इन दोनों का मिलन मेरे लिए तो वहुत शुभ है। आज से मेरे चर्खे का व्रत शुरू हुआ है। प्रतिदिन दूसरी वार का भोजन करने से पहिले आधा घण्टा कातूंगा और अगर न कात पाया तो भोजन ही न करूँगा। यह कोई वहुत वड़ी वात नहीं है। तथापि चूंकि मैंने व्रत लिया है इसीलिए मेरा कातना कुछ नियमित रूप से चलेगा। जव मैं रेल में होऊँ तव यह वन्वन नही होगा।

दीवाली के उपलक्ष में लिखा हुआ तुम्हारा पत्र और भजन मिले। ये किसलिए लिखे? तुम्हारा धर्म तो जल्द-से-जल्द रोग-शय्या से उठने का था। इस काम के लिए तुम दुर्गा को अथवा किसी अन्य व्यक्ति को कैसे जगा सकते हो? तुम्हारे तार भी मिले। एक तार में "एम्वलेजन यूनिवर्सिटी" शव्द लिखे हुए मिले जिन्हें कोई भी न समझ सका। विजयराघवाचार्य चालाक आदमी नहीं है और ऋपि भी नही है। "नाट" शव्द तो भूल से रह गया होगा, लेकिन जव मैंने उन्हें एक कड़ा तार भेजा तव उन्होंने उत्तर में अपनी भूल क्यों न सुधारी?

नये वर्प मे तुम तन, मन और हृदय से स्वस्थ रहो—यह मेरा तुम दोनों को आशीर्वाद है।

वापू के आशीर्वाद

—गुजराती। आश्रम, ३१।१०।१९२१। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

७२. पत्र : महादेव देसाई को

दिल्ली

मौनवार (७ नवम्वर, १६२१)

चि० महादेव,

दिल अर्थात् आत्मा क्योंकि दिल अर्थात् हृदय। तन्दुरुस्त तो प्रचलित शव्द

---

१. विक्रम संवत् के अनुसार कार्तिक मास की प्रथम तिथि।

है। मुझे लिखना तो था शरीर की तन्दुरुस्ती के बारे में ही लेकिन केवल इतने-भर से मुझे कैसे सन्तोष हो सकता था?

परसराम में दोष होने के बावजूद मैंने उसे पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया है। तुम्हें तो मैंने मित्र ही माना है। दुर्गा को पहली ही मुलाकात में बेटी मानने में कोई संकोच नही हुआ। जमनालाल पुत्र बनने का दावा किया करता है लेकिन उसके सम्बन्ध में मेरे मन में पितृत्व की भावना आ ही नही सकती।

तुम्हारे एक भजन के बारे में मुझे ऐसा लगा कि मैंने उसे कही पढ़ा है, तथापि कोई कारण नहीं कि वैसा ही भजन तुम्हे क्यों नही सूझ सकता? लेकिन मैं तुम्हारा पत्र मिलने से पहले ही कल इसका उत्तर दे चुका हूँ। बीमारी में तुम्हारे मन में आत्मा-सम्बन्धी विचार ही आये, सो इसमें ही स्वराज्य आ गया। स्वराज्य का अलग से विचार करने की कोई जरूरत ही न थी।

शरीर-धर्म को पूरा किये बिना निस्तार नहीं है। खाने, नहाने, भीख माँगते हुए घूमने की बात को हम बुरा नही समझते और मात्र मेहनत करके अन्न खाने की बात से द्वेष करते है। मन के यज्ञ से मन की, आत्मा के यज्ञ से आत्मा की और देह के यज्ञ से देह की शुद्धि होती है। देह को जो अन्न मिलता है उसका बदला मनुष्य मन का काम करके नही दे सकता। जब अनाज मिलने की अपेक्षा किये बिना मनुष्य मजदूरी करता है तब वह यज्ञ होता है। इस युग में, इस देश में शरीर-यज्ञ चर्खे से ही सम्भव है। क्योंकि उसी के अभाव से हिन्दुस्तान का शरीर जीर्ण हो गया है। जब हिन्दुस्तान की आबोहवा बदल जायगी और हमारी जरूरतें बदल जायेंगी तब हम दूसरा यज्ञ कर सकते है। यदि ऐसा हो कि इस देश में पानी प्राप्त करने के लिए हमेशा कुआँ खोदना पड़े तो कुआँ खोदने की क्रिया कुछ अंश में यज्ञ बन जायगी। लेकिन जबतक ऐसी स्थिति कायम है तबतक जिस तरह ब्रह्मचर्य आदि आवश्यक है उसी तरह शरीर-यज्ञ भी आवश्यक है। लेकिन चूंकि वह केवल शरीर का ही धर्म है इसलिए जब शरीर अनशन कर रहा हो तब वह इस यज्ञ से मुक्त रह सकता है (अन्यथा नही)। लेकिन जिस तरह मेरे-जैसा व्यक्ति सहज ही अथवा अपने मन को फुसला कर यह मान लेता है कि मैं तो निरन्तर २४ घण्टे प्रार्थना ही करता रहता हूँ और उसके लिए एक निश्चित समय निर्धारित नही करता उसी तरह अगर कोई व्यक्ति शरीर-यज्ञ किये बिना ही यह मानता है कि वह यज्ञ कर रहा है तो वह भूल करता है, क्योंकि प्रार्थना मानसिक या हार्दिक क्रिया है जब कि यह क्रिया तो केवल शरीर-द्वारा ही सम्पादित की जा सकती है। हाँ, वह इस क्रिया को निष्ठापूर्वक एकाग्र मन से न करे और लोगों को छले, यह

एक अलग बात है लेकिन यह क्रिया उसे करनी तो अवश्य पड़ेगी। इतने में तुम्हारे इस सम्बन्ध में पूछे गये दोनों प्रश्नों का उत्तर आ जाता है।

मैने श्री दास के तार को गलत समझा। छोटानी मियाँ के पत्र के बारे में भी मुझे गलतफहमी हुई। उनमें गलतफहमी पैदा करने की जानबूझ कर कोई कोशिश नहीं की गई थी। छोटानी मियाँ से जब मेरी बातचीत हुई उस समय भी उन्होंने मेरी गलतफहमी दूर करने की कोशिश नहीं की। यह सच है कि हमने लम्बी बातचीत नही की। लेकिन जो अच्छी तरह समझता नही है वह भी सत्य का पूरा-पूरा पालन नही करता। मै तो जानता हूँ कि यदि मैं मन, वचन और कर्म से सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य का पालन कर सकूँ तो इसी वर्ष स्वराज्य मिल जाय, अथवा हममें से कोई ऐसा हो जाय तो भी, अथवा हम सब लोगों का तप मिलकर उसके लिए पर्याप्त हो तो भी; मैं अपने सम्बन्ध में ऐसी आशा नही छोड़ता। अपनी कोशिश में तो मै कोई कसर. . .।[1]

—गुजराती। दिल्ली, ७।११।१९२१। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

७३. पत्र : महादेव देसाई को

साबरमती
मंगलवार (१५ नवम्बर, १९२१)

चि० महादेव,

बिना रोये तो माँ भी दूध नही देती, आवाज लगाये बिना बेर भी नही बिकते। माँ बिचारी क्या जाने कि बालक को क्या चाहिए और बेरवाली के टोकरे की दशा तो वही जाने। इसलिए तुमने माँगा और लिया, इसमें शरमाने की क्या बात है?

तुम्हारे भजन मिले है। उन्हे पढ गया हूँ। मुमकिन है बीमारी में काव्य-शक्ति अधिक बढ़ती हो लेकिन क्या उसका प्रयोग करने से स्वस्थ होने मे अधिक समय नही लगेगा? अगर इस काव्यशक्ति को संगृहीत कर रक्खा जाय तथा स्वस्थ होने के बाद भी वह प्रकट हो तो वह और भी सराहनीय होगी।

---

१. यहाँ मूल पत्र कटा-फटा है।

मनुष्य बीमारी के अवसर को अन्तर्नाद सुनने का अवसर मानकर इस समय का उपयोग अपना ही निरीक्षण करने में करे तो उससे मनुष्य की शक्ति बढ़ती है।

तुम्हारी तबीयत अच्छी है, इसकी खबर मुझे मोतीलाल जी ने तार-द्वारा दी है।

तुम दोनों सुखी रहो और सेवा करो

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। साबरमती, १५।११।१९२१। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

७४. तार : श्रीमती मोतीलाल नेहरू को[1]

अहमदाबाद

८ दिसम्बर, १९२१

श्रीमती नेहरू

इलाहाबाद

आपको (और) कमला को बधाई। भगवान आपको साहस और आशा प्रदान करे।

गांधी

—अंग्रेजी। अहमदाबाद, ८।१२।१९२१। इलाहाबाद नगरपालिका संग्रहालय से।]

७५. पत्र : महादेव देसाई को

साबरमती

(८ दिसम्बर, १९२१)[2]

चि० महादेव,

तुम्हारा तार और पत्र मिले। श्रीमती नेहरू शान्त होंगी। तुम निश्चिन्त भाव से अपना काम करते रहना।

---

१. ६ दिसम्बर को मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू की गिरफ्तारी पर।

२. महादेव भाई का तार ७ तारीख को रात में देर से मिला था और देवदास ८ तारीख की सुबह दिल्ली के लिए रवाना हो गये थे।

देवदास आ रहा है, तुम्हे उसकी पूरी मदद मिलेगी। और मदद की जरूरत हो तो माँगना। 'इण्डिपेण्डेण्ट' को सुधारना। सम्वाददाताओं की रिपोर्टों पर खूब अंकुश रखना। चाहे कम मिले लेकिन अच्छी हों, ऐसा प्रवन्ध करना। सतीश वावू की[1] मदद मिले तो लेना। एण्ड्रूज को मैंने तो नही लिखा है लेकिन तुम लिख सकते हो। मैंने नही लिखा क्योंकि यह कुछ दवाव डालने की वात मानी जायगी।

श्रीमती नेहरू अगर मुझे पत्र लिखें तो इससे मुझे खुशी होगी।

दूसरो द्वारा वताये गये व्रतों को लेने में निश्चय ही भय है। तुम्हें जो व्रत सुझाये गये है उनमें से जो तुम्हे लेने योग्य मालूम हो और लिया जा सकता हो उसे ले लो और उसके साथ भूत की तरह लगे रहो। अभी लेने की शक्ति न हो तो मत लेना। न लेने में विघ्न नही है, विघ्न तो उसके न पालने मे है।

वापू के आशीर्वाद

—गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२८) की फोटो-नकल से। ८।१२।१९२१।
सं० गां० वा० खण्ड २१, पृष्ठ ५८३।]

७६. पत्र : महादेव देसाई को

शुक्रवार (९ दिसम्वर, १९२१)[2]

चि० महादेव,

तुम्हारा तार मिला। 'इण्डिपेण्डेण्ट' के प्रकाशन के लिए तुम्हे जमानत जमा करनी पड़ी, यह वात मुझे अच्छी नही लगी, लेकिन पण्डितजी जो कुछ कहें, उसे करना हमारा कर्त्तव्य है। तुम गिरफ्तार हो जाओ तो निश्चय ही मुझे खुशी होगी। लेकिन पण्डितजी से कह दो कि अगर फिर कोई जमानत माँगी जाती है तो उसे जमा न कराकर हस्तलिखित पत्र निकालना अच्छा होगा। ऐसा करना सवसे आसान है। वे निश्चय ही तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे, लेकिन इसकी कोई चिन्ता

---

१. सतीशचन्द्र मुखर्जी।

२. महादेव देसाई ने जमानत देकर ७ तारीख को 'इण्डिपेण्डेण्ट' का काम-काज अपने हाथ में लिया। शुक्रवार को उपर्युक्त तिथि ही पड़ती थी।

नहीं है। सरूप और रणजीत वहाँ जा रहे है, वे भी (पत्र के) मालिक बन सकते हैं। मैं यहाँ से किसी को भेजने की कोशिश जरूर करूँगा।

प्यारेलाल बेशक आ सकता है।

बापू के आशीर्वाद

—मूल अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०६०२८) से। ९।१२।१९२१।]

७७. तार : मदनमोहन मालवीय को[1]

१४।१२।१९२१ या इसके बाद

पं० मालवीय जी,
बनारस शहर

अहमदाबाद छोड़ना असम्भव (है) २३ को कार्य समिति की बैठक यहाँ पर हो रही है। यदि अहमदाबाद में अपना अधिवेशन रक्खें तो प्रसन्नतापूर्वक भाग लूँगा। कांग्रेस में कृपया आवें या उसके बाद (अधिवेशन) रक्खें।

गांधी

—अंग्रेजी। १४।१२।१९२१। अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७७१५) की फोटो-नकल से। सं० गां० वा० खण्ड २१ में भी]।

---

१. यह तार मालवीयजी-द्वारा १४ दिसम्बर १९२१ को प्रेषित उस तार के उत्तर में भेजा गया था जिसका मजमून इस प्रकार है—

"तार के लिए धन्यवाद। १८ को आश्रम आ रहा हूं। बम्बई में २२ और २३ को सभी दलों के प्रतिनिधियों का एक अधिवेशन इस बात पर विचार करने के लिए बुला रहा हूं कि मौजूदा परिस्थिति में कौन सा संगठित कदम उठाना चाहिए। विश्वास है आप शरीक होंगे। तार दें।"

७८. तार : श्रीप्रकाश को[1]

१५ दिसम्बर १९२१ को या उसके पश्चात्

श्री प्रकाश[2]
सेवाश्रम
बनारस

हार्दिक बधाई। ऐसे अन्त के लिए बिल्कुल तैयार नही था।

गांधी

— १५।१२।१९२१, अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७७२९) की फोटो-नकल से। सं० गां० वा० खण्ड २२ में भी।]

७९. पत्र : देवदास गांधी को[3]

गुरुवार (१५ दिसम्बर, १९२१)[4]

चि० देवदास,

तुम्हारे दो पत्र मिले। विषय-वस्तु जितनी सुन्दर है, तुम्हारी लिखावट उतनी ही खराब है। खूब प्रयत्न करो। मैं जानता हूँ कि अभी तुम्हें समय नही है। फिर भी तुम्हें प्रयत्न तो करना ही होगा।

---

१. यह तार श्रीप्रकाश जी के १५ दिसम्बर, १९२१ के निम्नलिखित तार के उत्तर में भेजा गया था : "पिताजी अपराध संहिता की धारा १०७ के अधीन गिरफ्तार। और सब ठीक है।"
२. जन्म १८९०, काशी के प्रख्यात विद्वान् डा० भगवानदास के पुत्र। कांग्रेस के नेता और स्वतन्त्रता के सैनिक। पाकिस्तान में भारत के उच्चायुक्त। कई राज्यों के राज्यपाल।
३. उस समय देवदास जी संयुक्तप्रान्त में थे।
४. हरिलाल रविवार, १५ दिसम्बर, १९२१ को गिरफ्तार किये गये थे।

हरिलाल ने बहुत सुन्दर काम किया। मैंने अभी-अभी सुना कि उसे छः मास का सपरिश्रम कारावास मिला हैं।

शेष बातें महादेव भाई को[1] मैंने जो पत्र लिखा है, उसमें है।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती पत्र (एस० एन० ७७७५) की फोटो-नकल से। १५।१२।१९२१। सं० गां० वां० खण्ड २२, पृष्ठ ३४ में भी।]

८०. पत्र : महादेव देसाई को

गुरुवार (१५ दिसम्बर, १९२१)[2]

चि० महादेव,

मैं तुम्हें लगभग नित्य ही पत्र लिखता रहा हूँ। स्वरूपरानी का[3] पत्र सुन्दर है अर्थात् तुम्हारा पत्र सुन्दर है। लेकिन हमें किसी बात का श्रेय तो लेना नही है। सर्व देवताओं को किया हुआ नमस्कार वस्तुतः केशव को ही जाता है। सब कार्य कृष्णार्पण है इसलिए कुछ भी चिन्तनीय नही है।

दास की पत्रिकाएँ बहुत ओजपूर्ण हैं। उन्होंने (अहिंसा का) अमृत खूब पिया जान पड़ता है। बंगाल ने सचमुच गुजरात का स्थान ले लिया है और गुजरात पिछड़ गया है। मुझे यह अच्छा भी लगता है।

प्यारेलाल[4] शेष बातें तो तुम्हें बता ही देगा। उसका खूब उपयोग करना और अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। मैं चाहता हूँ कि तुम अब देवदास को जेल भेज दो। प्यारेलाल को वहाँ भेजने का यह कारण भी है।

---

१. महादेव देसाई (१८९२-१९४२), २५ वर्ष तक गांधी जी के निजी मन्त्री रहे।
२. गांधीजी ने गुरुवार ८।१२।१९२१ को, श्री देसाई को लिखे एक पत्र में यह इच्छा व्यक्त की थी कि स्वरूप रानी उन्हें पत्र लिखें। उन्होंने पत्र में श्री देसाई को यह भी लिखा था कि वह उनकी सहायता के लिए प्यारेलाल को भेजने को तैयार हैं। उन्होंने यह पत्र सम्भवतः अगले गुरुवार को लिखा था।
३. मोतीलाल नेहरू की पत्नी।
४. प्यारेलाल नय्यर, १९२० से गांधीजी के दूसरे सचिव। इन्होंने १९४२ में महादेव देसाई की मृत्यु के बाद उनका स्थान ग्रहण किया; 'महात्मा गांधी : दि लास्ट फेज' आदि के रचयिता।

गोडवोले[1] को मैं अलग पत्र नहीं लिख रहा हूँ। वह सब कागजात लेकर यहाँ आ जाय। अगर वह यहाँ आ जायगा तो कुछ काम जल्दी निपट जायगा। वहाँ अब उसकी कोई जरूरत नहीं जान पड़ती।

बापू के आशीर्वाद

(पुनश्चः)

निस्सन्देह गोडवोले को स्वयंसेवक के रूप में अपना नाम दर्ज करवाने की कोई जरूरत नही है।

—गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२७) की फोटो-नकल से। गुरुवार, १५।१२।१९२१]

८१. तार : जियाराम सक्सेना को

१६-१२-२१ या उसके बाद

जियाराम[2]
कांग्रेस कमेटी
इलाहाबाद

कार्य समिति (की बैठक) तेईस को।

गांधी

—अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७७२३) की फोटो-नकल से। १६।१२।१९२१।]

---

१. गुजरात विद्यापीठ के भूतपूर्व प्राध्यापक, अ० भा० कां० कमेटी के संयुक्त सचिव।

२. संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस समिति के मन्त्री।

८२. तार : मौलाना अब्दुल बारी को[1]

(१६ दिसम्बर, १६२१ या उसके पश्चात्)

इस सबके लिए हमें हर तरह से ईश्वर की कृपा का ही अनुगृहीत होना चाहिए। आशा है आप स्वस्थ होंगे।

गांधी

—अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७७२४) की फोटो-नकल से। १६।१२।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २२, पष्ठ ४१ में भी]

८३. पत्र : महादेव देसाई को

रविवार (१८ दिसम्बर १६२१)[2]

चि० महादेव,

'इण्डिपेण्डेण्ट'[3] की छपाई सुन्दर नही है, उसका कारण मशीन की खरावी ही होगी।

---

१. १८३८-१९२६, लखनऊ के राष्ट्रीय मुसलमान नेता और मुल्ला जिन्होंने खिलाफत आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था।
यह तार मौलाना अब्दुल बारी के १६ दिसम्बर १९२१ के तार के जवाब में भेजा गया था। तार इस प्रकार था : "आज हैदरावाद से वापस आया हूं। मौलवी सलामत उल्ला तथा अपने अन्य बहुत प्यारे हिन्दू-मुसलमान दोस्तों की अजेय भावना देखकर मैं बहुत ही खुश हुआ। उनकी गिरफ्तारी पर मैं आपको वधाई देता हूं। इलाहाबाद और लखनऊ के नागरिकों के धीरज, उनकी सहनशक्ति, अनुशासन, अमल की एकता और कांग्रेस के हुक्म की पावन्दी के लिए हमें उन पर गर्व है। इलाहाबाद और लखनऊ दोनों जगह हड़ताल का सही ब्यौरा यह है कि वह मुकम्मिल और पूरी तरह अहिंसात्मक थी। अभी-अभी पण्डित मोतीलाल जी, मौलाना सलामत उल्ला और उनके साथियों से जेल में मुलाकात की है। सभी बहुत खुश हैं। अभी-अभी आपके बेटे की गिरफ्तारी की बात सुनी। हार्दिक वधाई। आसार अच्छे हैं।"

२. महादेव देसाई को गांधीजी ने १५ दिसम्बर १९२१ को लिखे अपने पत्र में इच्छा प्रकट की थी कि गोडबोले को अहमदाबाद आ जाना चाहिए। इस पत्र में गांधीजी ने कहा है कि "वह यहां पहुँच गये हैं।" अतः यह पत्र स्पष्टतः १५ दिसम्बर के बाद आनेवाले रविवार को लिखा गया होगा।

३. इलाहाबाद से निकलनेवाला अंग्रेजी राष्ट्रीय दैनिक पत्र।

स्वयंसेवक दल के सम्बन्ध में कांग्रेस में प्रस्ताव अवश्य पास किया जायगा। अच्छे लोग ही उसमें भरती किये जायँगे। तुमने प्रस्ताव तो देखा ही होगा।

स्वरूप रानी और अन्य महिलाएँ आयेंगी अथवा नही और अगर आयेंगी तो कब आयेगी?[१]

इसके साथ का पत्र श्रीमती जोजेफ[२] को दे देना।

गोडवोले पहुँच गये है। मालवीय जी सम्मेलन की व्यवस्था कर रहे है।

अपने और दुर्गा[३] के स्वास्थ्य का समाचार देना।

बापू के आशीर्वाद

(पुनश्चः)

श्रीमती जोजेफ तो कलकत्ता गई हैं इसलिए मैं उनका पत्र उनके बताये हुए पते पर भेज रहा हूँ।

—गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२५) की फोटो-नकल से। १८।१२।-१९२१।]

८४. पत्र : महादेव देसाई को

(२२ दिसम्बर, १९२१)[४]

चि० महादेव,

मैं नियमित रूप से पत्र लिखने का प्रयत्न अवश्य करता रहूंगा। ख्वाजा पकड़ लिये गये है। उनकी पत्नी ने लिखा है कि उनके स्थान पर अब वह काम करेंगी।

मुझे जो प्रस्ताव सूझ पड़ा है उसका मस्विदा भेज रहा हूँ। उसे ध्यान से पढकर अगर कोई सुझाव देना चाहो तो अवश्य देना। तार भेजना तो व्यर्थ ही है क्योंकि उन तक पहुँचता ही नही। एकाध तार की बात अलग है।

---

१. अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए।

२. जार्ज जोजेफ की पत्नी।

३. महादेव देसाई की पत्नी।

४. इस पत्र के अन्तिम अनुच्छेद में इस तारीख के 'यंग इण्डिया' का जिक्र है जिससे गांधीजी ने श्रीमती ख्वाजा का पत्र उद्धृत किया है।

मैं चाहता हूँ कि देवदास फौरन जेल चला जाय। इसका महत्व तुम समझ सकते हो।

स्वरूप रानी के सन्देश की अंग्रेजी मुझे उत्तम जान पड़ी।

अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। क्रिस्टोदास[1] जो कुछ भेजते हैं उसे मैं पढ़ जाता हूँ। मैंने जिसमें संशोधन कर दिया हो उसको यदि तुम बाँचे बिना भी प्रकाशित कर दो तो कोई हर्ज नही।

आज का 'इंग इण्डिया' भी तुम्हारे 'इण्डिपेण्डेण्ट' को भर सकता है। दो दिन से 'इण्डिपेण्डेण्ट' नही आ रहा है।

बापू के आशीर्वाद

—मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ११४२६) की फोटो-नकल से। २२।१२।-१९२१।]

८५. पत्र : महादेव देसाई को

शुक्रवार (२३ दिसम्बर या उसके पूर्व)[2]

भाई श्री महादेव,

तुम्हारा पत्र पढ़ा। तुम्हारे "दुःख" और "सुख " दोनों का ही कोई अन्त नही है। इस पर जिस दृष्टि से विचार करना चाहें उस दृष्टि से विचार किया जा सकता है। भगवान करे, तुम अपने निश्चय पर अटल रहो।

तुम्हें जबतक वहाँ अथवा...रहने की जरूरत जान पड़े...तक रहो। अपने परिवार का तुम पर बड़ा दायित्व है, उसका भी तुम्हें निर्वाह करना है।

तुम्हें बहनों के विवाह का प्रवन्ध करना चाहिए अथवा नही, इस सम्बन्ध में मैं किसी निष्कर्ष पर नही पहुँच सका हूँ। अगर मैं तुम्हारे स्थान पर होऊँ तो मैं पिता जी से स्पष्ट रूप से वात कर लूँ अथवा यदि उनका विवाह करने का अधिकार मेरे ही हाथ में हो तो जिसने नरसिह मेहता की ओर से भोज की व्यवस्था

---

१. कृष्णदास, गांधीजी के सचिव।

२. अनुमानतः यह पत्र प्रापक को २४ दिसम्बर, १९२१ को उनके जेल जानेसे पूर्व लिखा गया था। उनके पिता उस समय जीवित थे और तबतक उनकी किसी भी बहिन की शादी नहीं हुई थी। उनकी एक बहिन का विवाह १९२२ में हुआ और १९२३ में उनके पिता की मृत्यु हुई।

कर दी थी उस भगवान पर विश्वास रखता और अपनी बहन के गले में सूत की माला पहना कर उसे ससुराल भेज देता। मेरी सलाह यही है। तुम्हें दुर्गा[1] से सलाह...वह दुखित हो तो...पिता जी ने तो बात...[2] उनकी सलाह तो लेनी ही चाहिए और बाद मे तुम्हारी आत्मा जो कहे सो करना चाहिए। तुम सब कुछ दे दो तो भी कोई हर्ज नही और यदि कुछ भी न दो तो भी मै समाज के सामने तुम्हारा समर्थन करूँगा। मेरी कल की बात मेरे अन्तस्तल से निकली हुई विचारधारा थी। उस धारा में मुझे ही बहना है, किसी दूसरे को नहीं। इस प्रवाह को देखकर यदि दूसरों के हृदय में भी वैसी ही भावनाएँ प्रस्फुटित हो जायँ तो वे उनमें खुशी से अवगाहन करे। सिखाये पूत दरबार नहीं चढ़ते। मथुरादास ने जो उत्तर दिया वह सही था। जो सर्वस्व अर्पण करना चाहता है वह स्वतः करेगा ही।

हाँ, तुमने मुझसे पूछा सो ठीक ही किया। मैंने जो ऊपर कहा है वही तुमसे भी कहूँगा। हमें अधिक से अधिक श्रद्धावान् बनने का प्रयत्न तो करना ही होगा।

बापू के आशीर्वाद

—मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७६३) की फोटो-नकल से। २३।१२।-१९२१।]

८६. तार : देवदास गांधी को

(२४ दिसम्बर, १९२१ या उसके पश्चात)

महादेव के सम्बन्ध मे आह्लादित। आशा है दुर्गा सशक्त और स्वस्थ होगी। चाहे तो वापस आ सकती है। आशा है तुम गिरफ्तार होने तक अखबार जारी रक्खोगे और अन्य लोग तुम्हारा स्थान लेने के लिए तैयार होंगे।

बापू

—अंग्रेजी। बाम्बे क्रानिकल, ३।१।१९२२। सं० गा० वां०, खण्ड २२, पृष्ठ ९६।]

---

१. महादेव देसाई की पत्नी।

२. साधन-सूत्र जहाँ-तहाँ क्षतिग्रस्त है।

३. स्पष्ट है कि यह तार २४ दिसम्बर, १९२१ को महादेव देसाई को इण्डिपेण्डेण्ट का हस्तलिखित संस्करण प्रकाशित करने के जुर्म में दण्डविधि संशोधन अधिनियम (क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट ऐक्ट) के अन्तर्गत सजा होने के तुरन्त बाद भेजा गया था।

८७. पत्र : देवदास गांधी को[1]

शुक्रवार (३० दिसम्बर, १९२१)

चि० देवदास,

श्रीमती जोजेफ का पत्र इसके साथ है। मैंने उन्हें लिखा है कि तुम उन्हें वहाँ से पैसा भेजोगे। 'इण्डिपेण्डेण्ट' के संचालकों से मिलकर आवश्यक प्रवन्ध कर लेना या जैसा तुम्हें सूझे, वैसा करना। ध्यान रहे कि तुम्हारे जेल जाने के बाद भी उन्हें कोई तकलीफ न हो।

गोविन्द[2] के चले जाने से मुझे तो बड़ा सन्तोष हुआ है। उन्होंने तुम्हें अभी तक गिरफ्तार नही किया है, सो तो जानवूझ कर ही नहीं किया। इसकी चिन्ता नही करनी चाहिए। यदि वे तुम्हें गिरफ्तार नहीं करते, तो नया काम सम्पन्न किया जा सकेगा; अगर पकड़ लें तो लोगों का जोश वढेगा।

इस समय पाल रिशार[3] यहाँ है। मैंने किशोरलाल[4] से उन्हें मिलाया। किशोरलाल अभी-अभी उनसे मिलकर गया है, इसलिए मुझसे भी मिल गया। कुमारी पीटर्सन[5] आज यहाँ है। कल आई थी, आज चली जायगी। श्री रिशार रविवार को जायँगे। श्रीमती सन्तानम् अभी तक यहाँ है।

वापू के आशीर्वाद

—गुजराती पत्र (एस० एन० ७६८३) की फोटो-नकल से। ३०।१२।१९२१।
संo गा० वां० खण्ड २२, पृष्ठ १२५ में भी।]

---

१. इस पत्र के आखिरी हिस्से में पाल रिशार का उल्लेख है और वह दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अहमदावाद में थे। श्री रिशार शनिवार ३१ दिसम्बर, १९२१ को गांधीजी के साथ गुजरात महाविद्यालय देखने गये थे।

२. पं० मदनमोहन मालवीय के पुत्र। उन्हें धरना देने के आरोप में २० दिसम्बर, १९२१ को गिरफ्तार किया गया था किन्तु वाद में छोड़ दिया गया था।

३. एक फ्रांसीसी लेखक।

४. किशोरलाल मशरूवाला, प्रसिद्ध विचारक, वाद में गांधी-सेवा-संघ के अध्यक्ष।

५. एन० मेरी पीटर्सन, जिन्होंने एक डेनिश मिशनरी एस्थर फैरिंग के साथ दक्षिण अफ्रीका में कार्य किया और कुछ समय के लिए सावरमती में भी रहीं।

८८. तार : मौलाना अब्दुल बारी[1] को

जब तक कार्यसमिति की बैठक बुलाई जा सकती हो तबतक डिक्टेटर का प्रश्न नही उठता। कार्य समिति की बैठक बुलाना सम्भव न होने पर डिक्टेटर के अधिकार कार्य-समिति जैसे होगे। जेल जाना, मार खाना, प्राण देना अपने आप में उद्देश्य नही है, इन कष्टो को धर्म या देश के लिए ही सहना है।

गांधी

—अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७७७९) की फोटो-नकल से। १।१।१९२२।
सं० गां० वां० खण्ड २२ पृष्ठ १२९।]

८९. पत्र : देवदास गांधी को

बुधवार (४ जनवरी, १९२२)[2]

चि० देवदास,

तुम्हारा समाचार-पत्र[3] मुझे मिलता ही रहता है, किन्तु तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया है। इस समस्त परिश्रम के बीच तुम अपनी लिखावट सुधारने की बात मत भूलना। इस बार के 'यंग इण्डिया' मे तुम्हें 'इण्डिपेण्डेण्ट' की बहुत-सी सामग्री

---

१. यह तार मौलाना अब्दुल बारी-द्वारा बम्बई से ३१ दिसम्बर १९२१ को प्रेषित उस तार के उत्तर में था जिसमें कहा गया था"...कृपया निम्न प्रश्नों का उत्तर तार से भेजें ताकि मैं धार्मिक दृष्टि से उठनेवाले सन्देह दूर कर सकूं। क्या डिक्टेटर की हैसियत से आपके अधिकार वही हैं जो कार्य-समिति के या उससे अधिक हैं? क्या कार्य-समिति डिक्टेटर के अधिकार छीन सकती है? स्वयंसेवक दलों का मुख्य उद्देश्य क्या होगा, देश के लिए काम करते हुए जेल जाना, मार खाना और प्राण तक दे देना या ये अपने आप में उद्देश्य माने जायं?"

२. नेहरू परिवार के सदस्य २८ दिसम्बर को कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त होने के बाद अहमदाबाद से रवाना हुए थे और गोविन्द मालवीय को ८ जनवरी, १९२२ से पहले सजा दे दी गई थी।

३. हस्तलिखित 'इण्डिपेण्डेण्ट' जिसे महादेव देसाई की गिरफ्तारी और सजा के बाद देवदास निकाल रहे थे।

मिलेगी। हमने तुम्हारे सव अंकों का सार देने का निश्चय किया है, इसलिए वह सप्ताह में एक वार तो तुम्हें आसानी से मिल जायगा। तुमने 'गूँगा मौन' (म्यूट साइलेंस) शव्दों का प्रयोग किया है। यह 'गूँगा मौन' क्या होता है ?

अभी तुम्हारे अक्षर इतने स्पष्ट नहीं होते कि वे पढ़े जा सकें। तुम टाइप कराना बिल्कुल छोड़ दो, यह वात मुझे अधिक ठीक जान पड़ती है। जिस व्यक्ति से समाचारपत्र की सामग्री लिखवाते हो उसकी लिखावट तो अच्छी है।

तुम्हारा तीसरा पृष्ठ अच्छा नही है। टाइप करनेवाले ने वहुत-सी जगह खाली छोड़ दी है। बंगाल के गवर्नर के सम्वन्ध में खवर कौन देगा ? मालवीय जी कानून भंग करते हैं, यह लिखनेवाले को सूली पर चढ़ा देना चाहिए। वह तो मद्रास गये भी नहीं।

दूसरे पृष्ठ पर 'गोलमेज सम्मेलन' शीर्षक दो वार आया है।

आज नेहरू-परिवार के लोग लखनऊ के लिए रवाना हो गये। वे सव तीसरे दर्जे में गये है, यह टिप्पणी तुम दे सकते हो। उर्मिला देवी भी उसी वर्ग में यात्रा कर रही है।

१४ तारीख को मैं वम्बई में होऊँगा। वहाँ उसी दिन नरमदलीय सम्मेलन है। मुझे १५ तारीख को भी वहाँ रहना पड़ेगा। सुन्दरम् फिलहाल यही रहेगा।

तुम्हें अपने पत्र की प्रत्येक पंक्ति पढ़ लेनी चाहिए। सामग्री अभी और कम कर सकते हो, लेकिन जितनी दो उतनी ठोस हो, और उसे सुन्दर भी वनाओ।

वापू के आशीर्वाद

(पुनश्चः)

स्वदेशी की खवर तो देनी ही चाहिए। जिन्हें अवकाश हो उन्हें स्वदेशी का प्रचार करना चाहिए। उन्हे सूत कातना, रूई पीजना, कपड़ा वुनना और वेचना चाहिए।

गोविन्द के फिर गिरफ्तार होने का तार मिला है। इस वार किसलिए पकड़ा गया है, इस वात का पता नही चलता। इसके वाद की खवर तुमसे मिलेगी।

—गुजराती पत्र (एस० एन० ७७२०) की फोटो-नकल से। ४।१।१९२२।
सं० गां० वा० खण्ड २२, पृष्ठ १३१।]

९०. तार : देवदास गांधी को

अहमदावाद
६ जनवरी १६२२

देवदास गांधी
आनन्द-भवन
इलाहावाद

कृष्णकान्त[1], खन्ना, सैयद मुहीउद्दीन और गोविन्द को उनके सौभाग्य पर वधाई।

वापू

—अंग्रेजी। अहमदावाद, ६।१।१९२२।]

९१. पत्र : देवदास गांधी को

रविवार (२२ जनवरी १६२२)[2]

चि० देवदास,

आखिर आज मुझे तुम्हारा पत्र मिल ही गया। 'इण्डिपेण्डेण्ट' की प्रति साफ नहीं होती। प्रति ऐसी होनी चाहिए जिससे पढ़ने में तनिक भी कठिनाई न हो। भले ही उसकी सख्या कम हो। तुम्हारे लेख भी तो साफ होने चाहिए न? इस तरह से समाचार-पत्र निकालना भी एक कला है। लीयोग्राफिग कैसी होती है; यह तुम्हें समझ लेना चाहिए।

माडर्न हाई स्कूल के सम्वन्व में जोजेफ से तुम्हारी जो वात-चीत हुई है, उसका पूरा व्यौरा भेजो।

वापू के आशीर्वाद

मास्टर देवदास गांधी
आनन्द-भवन
इलाहावाद

—गुजराती। २२।१।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

---

१. पण्डित कृष्णकान्त मालवीय, पण्डित मदनमोहन मालवीय के भतीजे और अभ्युदय के सम्पादक।
२. डाक की मुहर से यह तिथि ली गई है।

९२. पत्र : जोसेफ जे० घोष को

(मंगलवार, २४ जनवरी, १९२२)[१]

प्रिय श्री घोष[२]

आपके पत्र के लिए धन्यवाद। आपका पत्र मिलते ही मैंने उसे अपने पुत्र के पास भेज दिया था। उसका यह तार अभी-अभी आया है:

"घोष का पत्र विस्मयकारी। आरोप झूठे। इलाहाबाद के स्वयंसेवकों का सबसे अच्छा आचरण।"

क्या ऐसी कोई सम्भावना है कि आपको गलत सूचना दी गई हो? सम्भव है मेरे पुत्र को ही गुमराह किया गया हो। ऐसी तो कल्पना भी नही कर सकता कि वह मुझसे छल करेगा। मैं चाहता हूँ कि आपके सहयोग से मै मतभेद की असलियत का पता लगाऊँ। इतना और कह दूँ कि मेरा पुत्र बड़ा सावधान रहता है और उसकी राय हमेशा ठीक उतरती है। मै यह भी मानता हूँ कि वह संघर्ष की भावना को बड़ी अच्छी तरह समझता है। अच्छा हो, आप उससे मिल कर इस मामले पर बात कर लें। मै उसे आपसे मिलने के लिए लिख रहा हूं।

मैं सभी प्रकार के धरनों को बन्द करने की बात नही सोचता। मै समझता हूं कि धरने यदि पूर्णतया शान्तिपूर्ण हों तो इनका एक नैतिक महत्व होता है।

आज्ञा पालन न करने वाले लड़को को दण्ड देने का आपको अवश्य पूर्ण अधिकार था। अवज्ञा करने वाले लड़कों को निकाले जाने का खतरा उठाने के लिए भी तैयार रहना ही चाहिए।

मुझे दुःख है कि आपको यह तमाम परेशानी उठानी पड़ रही है।

—अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७६५६) की फोटो-नकल से। २४।१।१९२२। सं० गां० वा० खण्ड २२, पृष्ठ २५५ पर भी।]

---

१. घोष के ३१ जनवरी, १९२२ के उत्तर (एस० एन० ७८१०) से।

२. जोजेफ जे० घोष, इलाहाबाद के माडर्न हाई स्कूल के तत्कालीन प्रधानाध्यापक; यह बाद में एक अच्छे प्रेतविद् भी निकले।

९३. पत्र : देवदास गांधी को

मंगलवार (२४ जनवरी, १९२२)[1]

चि० देवदास,

तुम्हारे तार मिले। शेरवानी को (वकीलों की सूची से) खारिज कर दिया गया, यह ठीक ही हुआ। जबतक देश का कार्य-भार हमारे हाथ में नहीं आजाता तबतक क्या वह वकालत करनेवाले हैं?

मैंने श्री घोष को तुम्हारे तार की नकल भेज दी है। तुम उन्हें पहले से लिखकर (और समय लेकर ही) उनके पास जाना और सब कुछ स्पष्ट रूप से कह देना। मैंने उन्हें जो पत्र लिखा है, उसकी नकल तुम्हें भेज रहा हूं।

हममें यदि मलिनता है तो उसका छिपाया जाना बिल्कुल उचित नहीं है। गुरुवार की रात को बारडोली के लिए रवाना हो रहा हूं। बाद में तो अधिकतर वहीं रहना होगा।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। २४।१।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्र की फोटो-नकल से।]

९४. पत्र : महादेव देसाई को

बारडोली

३ फरवरी, १९२२

चि० महादेव,

तुम्हारे पत्र का उत्तर मैंने भेजा है। आशा है तुम्हें मिला होगा। तुम्हारे पत्रों का उपयोग मैं नियमित रूप से करता रहता हूं।

जबतक तुम जेलर की अनुमति से कुछ भी काम करते हो तबतक मैं कोई कठिनाई नहीं देखता। और जब जान-बूझ कर और खुले तौर पर जेल के नियमों को भंग करने की बात हो तब तो कठिनाई का कोई सवाल ही नहीं उठता। नियमों का भंग कब किया जा सकता है, इसके बारे में मैं तुम्हें लिख ही चुका हूं।

---

१. श्री शेरवानी को सूची से खारिज किये जाने का समाचार देवदास ने गांधीजी को तार-द्वारा २३ जनवरी १९२२ को दे दिया था। मंगलवार २४ तारीख को पड़ता था।

यह तो तुमने देखा ही होगा कि वारडोली शुरुआत करे, यह निश्चय हो चुका है। अब मैंने नियमानुसार वाइसराय को अल्टीमेटम भेजा है। उसकी अवधि ११ तारीख को पूरी होती है। इसलिए ११ तारीख को हमें कुछ करके बताना होगा। मेरा पत्र वाइसराय को आज मिल जाना चाहिए। उसमें लिखी हुई माँगों को यदि वह स्वीकार करते है तो फिलहाल सविनय अवज्ञा वन्द रहेगी। मेरी माँग यह है कि वाइसराय अपनी विज्ञप्ति वापस ले लें, कैदियों को रिहा करें और भविष्य में शान्त प्रवृत्तियों में हस्तक्षेप न करने की घोषणा करें। अगर वह ऐसा करें तो हम फिर से शान्तिपूर्वक अपने कार्य का संगठन करने में जुट जायँगे। इन माँगों में समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता प्रदान करने की वात आ जाती है। इस माँग को तो वाइसराय कदाचित स्वीकार नही करेंगे अन्ततः उन्हे इसे स्वीकार करना ही होगा, वशर्ते कि वारडोली वलिदान की शक्ति का परिचय दे और देश के अन्य भाग शान्त रहें।

तुम लोग तो अब वहां स्वराज्य का तन्त्र चलाने लगे होगे। तुम्हें अध्यक्ष आदि का चुनाव करके ऐसा प्रवन्ध करना चाहिए कि हर एक व्यक्ति का मिनट-मिनट का हिसाव लिया जा सके।

मेरे साथ रामदास और कृष्णदास है। गंगावेन भी आई हैं। थोड़े समय में आश्रम से कातने और वुननेवाले लोगों को वुलाने वाला हूं। यहां वुनाई का काम कुछ ढीला जरूर है।

विट्ठलभाई अधिकतर यही रहेगे।

तुम्हारा स्वास्थ्य वहुत अच्छा होना चाहिए।

वापू के आशीर्वाद

--गुजराती। वारडोली, ३।२।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

९५. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

(६ फरवरी, १९२२)[1]

चि० परसराम[2],

तुम्हारा खत मीला। इलाहाबाद में चर्खा का कुछ भी काम होता है क्या?

बापू के आशीर्वाद

मास्टर परसराम मेहरोत्रा
आनन्द भवन
इलाहाबाद

—हिन्दी। ६।२।१९२२। सं० गां० वा० खण्ड २२ से।]

९६. तार : देवदास गांधी को

बम्बई
९ फरवरी, १९२२

देवदास गांधी
कांग्रेस कार्यालय
गोरखपुर

तार मिला। सही-सही पूरा ब्योरा भेजो।[3] लोगों को हिंसा से दूर रक्खो। पूरी जानकारी प्राप्त करो। कार्यकर्त्ताओं से कहो, मुझे बहुत दुःख पहुँचा है। शान्त रहो, ईश्वर सफलता देंगे। आज रात बारडोली वापस जा रहा हूं।

बापू

—अंग्रेजी। बम्बई, ९।२।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

---

१. डाक की मुहर से।
२. इन दिनों परशुराम मेहरोत्रा 'इण्डिपेण्डेण्ट' में कार्य करते थे, बाद में आश्रम में हिन्दी के अध्यापक हुए।
३. चौरी-चौरा की घटना के बारे में।

९७. पत्र : देवदास गांधी को

मौनवार (१२ फरवरी १९२२)[1]

चि० देवदास

मुझे हमेशा तुम्हारी याद आती रहती है लेकिन तुम्हें पत्र लिखने की फुरसत ही नही मिलती।

तुम्हारा तार मिला है। मैंने बम्बई से जो तार दिया था वह तुम्हे मिल गया होगा।

मैंने आज से उपवास शुरू किया है। यह शुक्रवार की शाम को छूटेगा। इतना किये विना तो चल ही नही सकता था। सॉप की बाँबी में हाथ डालना और इस अविनय के वातावरण में सविनय अवज्ञा करना दोनों एक जैसे है। मेरे उपवास से तुम घबराना मत। तुम इसमे मेरा अनुकरण तो कदापि न करना। पीड़ा तो प्रसूता को ही भोगनी पड़ती है। दूसरे तो केवल उसकी मदद कर सकते हैं। मुझे भी अहिसा और सत्य-धर्म को जन्म देना है इसलिए उपवासादि की पीड़ा तो मुझे ही भोगनी होगी। तुम सब तो उसके लिए आत्म-शुद्धि करो और निर्धारित कार्य करते रहो। सो तो तुम करते ही हो। इन पापों में तुम्हारा कोई भाग नही है।

वहाँ से मुझे खबर बरावर भेजते रहना।

तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हरिलाल की सजा कम नही हुई है। मुझे (उसकी सजा कम होने की) खबर अच्छी नही लगी थी। वह वहां प्रसन्न है। मालवीय जी कल बम्बई रवाना हो गये। वह कार्य समिति की बैठक में हाजिर हुए थे।

मै तुम्हें निम्नलिखित तार भेज रहा हूं:

"तुम्हारा तार। कार्य समिति ने वड़े पैमाने पर सविनय अवज्ञा अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी है और आक्रामक प्रकार की अन्य छोटी प्रवृत्तियाँ भी। प्रायश्चित्त के रूप में और उन लोगों को चेतावनी के रूप मे, जिन्होंने मेरे नाम पर सिपाहियों की निर्दयतापूर्वक हत्या की है, शुक्रवार शाम तक उपवास कर रहा हूं। अपराधियो को अपना अपराध स्वीकार करने और अपने-आपको

---

१. गांधीजी ने चौरीचौरा की घटना पर प्रायश्चित्त के रूप में पाँच दिन का उपवास किया था। उपवास रविवार, १२ फरवरी, १९२२ की शाम को शुरू हुआ था।

अधिकारियों के हवाले कर देने की जोरदार सलाह दे रहा हूं। तुम उपवास मत करना। चिन्ता न करके काम करो और प्रार्थना करो।"

तुम नियमपूर्वक तार और पत्र लिखते रहो। मालवीयजी को दो-चार दिनों में वहां पहुँच जाना चाहिए।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। १२।२।१९२२।]

० पीड़ा तो प्रसूता को ही भोगनी पड़ती है। मुझे भी अहिंसा और सत्य-धर्म को जन्म देना है इसलिए उपवास की पीड़ा तो मुझे ही भोगनी होगी।

९८. तार : देवदास गांधी को

बारडोली
१५ फरवरी, १९२२

देवदास
कांग्रेस कमेटी
गोरखपुर

अखबारी गलतबयानियों की परवाह न करो। भूल सुधार दो और भूल जाओ। सब हालात सविस्तार लिखो। मैं बहुत ठीक हूं।

गांधी

—अंग्रेजी। बारडोली, १५।२।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्र की फोटो-नकल से।]

९९. पत्र : महादेव देसाई को

बारडोली
१५ फरवरी १९२२

प्रिय महादेव,

बहुत लम्बे अर्से से तुम्हारा कोई पत्र नही आया, न तुम्हारे साथ के कैदियों के बारे में किसी से कुछ मालूम हुआ। तुम्हें जेल से लिखने की अनुमति है या नही, इसके बारे में मुझे सूचित करना। तुम गुजराती में पत्र नही लिख सकते, केवल इसी कारण लिखना मत छोड़ देना, क्योंकि मुझे यह मालूम नहीं कि तुम्हें जेल में क्या छूट दी गई है। मैने गोविन्द को कोई पत्र नही लिखा, मुझे उसका ध्यान तो निरन्तर बना रहता है। उसने मुझे बहुत सुन्दर पत्र लिखा है। मालवीय जी ने मुझे गोविन्द और कृष्णकान्त को लिखे अपने पत्रों को उद्धृत करने की अनुमति दे दी है। मैं किसी समय उन्हें उद्धृत करूंगा।

मुझे उम्मीद है कि सार्वजनिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित किये जाने की बात तुम सबको पसन्द आई होगी। अगर तुम्हें 'यंग इण्डिया' पढ़ने की अनुमति हो तो तुम 'यंग इण्डिया' के आगामी अंक[1] में यह सब देख सकोगे जिसके कारण मैने आन्दोलन स्थगित किया है। मेरे उपवास को लेकर तुम चिन्ता न करना। जबतक तुम्हें यह पत्र मिलेगा तबतक मेरा छोटा-सा उपवास खत्म हो चुका होगा। मेरा इरादा तो इससे भी बड़ा उपवास करने का था, लेकिन मैंने सोचा कि मेरे लिए और उन गलती करनेवाले लोगों के लिए, जिनके कारण मैंने यह उपवास किया है, अभी इतना ही काफी है।

मालवीय जी, श्री जयकर और श्री नटराजन् पिछले शनिवार को यहां आये थे। मालवीय जी दो दिन और अन्य लोग एक दिन ठहरे। देवदास अभी तक गोरखपुर में हैं और वहां बहुत-अच्छा काम कर रहा है। प्यारेलाल और परसराम[2] इलाहाबाद में हैं। मैं अभी कुछ दिनों के लिए बारडोली में हूं। आश्रम से मगनलाल और कुछ अन्य लोग भी कुछ दिनों के लिए यहां आये हुए है। ये लोग हाथ-करघे और चर्खे के आन्दोलन का प्रसार करने के उद्देश्य से आये है।

मेरे उपवास का यह तीसरा दिन है। अभी पौ फटी है, और मैं यह पत्र बोल कर लिखा रहा हूं। मुझे उपवास के कारण कोई कमजोरी महसूस नहीं हो रही

---

१. १६ फरवरी, १९२२ का ।

२. परशुराम मेहरोत्रा।

है। इसलिए उम्मीद है कि मुझे शुक्रवार को भी ज्यादा कमजोरी महसूस नही होगी।

तुम्हारा
वापू

श्रीयुत महादेव ह० देसाई
मार्फत सुपरिण्टेण्डेण्ट
जिला जेल
आगरा
——अंग्रेजी। वारडोली, १५।२।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

१००. पत्र : देवदास गांधी को

शुक्रवार (१७ फरवरी, १६२२)[1]

चि० देवदास,

तुम्हारी ओर से कोई पत्र नही आया, यह दुःख की वात है। मैं समझता हू कि तुम्हे काम रहता है लेकिन ऐसे समय मे मैं तुमसे पूरी-पूरी रिपोर्ट की आशा तो रखता ही हू। वह मिले तो मैं (वस्तु स्थिति को) अच्छी तरह समझ सकूंगा और अधिक विचार भी कर सकूगा। सिपाही का काम है कि वह अपने जनरल को सव वातो की पूरी-पूरी रिपोर्ट दे।

उपवास आज अभी एक घण्टे मे खत्म हो जायगा। मुझे कमजोरी के अलावा और कोई कष्ट नही हुआ। 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' तो तुम्हें मिलते ही होंगे।

२४ तारीख को मै दिल्ली में होऊंगा। यहाँ से २२ तारीख की शाम को निकलूंगा। २४-२५ के दिन दिल्ली में समझो। वाद में कदाचित् कलकत्ते जाना पड़े। निश्चित कुछ भी नही है। वा यही है।

आशा है, तुम्हारी तवीयत अच्छी होगी।

वापू के आशीर्वाद

---

१. चौरीचौरा हत्याकाण्ड के कारण गांधीजी ने पाँच दिन का जो उपवास किया था, यह पत्र उस उपवास के आखिरी दिन लिखा गया था।

पुनश्च :

यह 'टाइम्स' में प्रकाशित हुआ है। जवाब देने-जैसा लगे तो देना, मुझे भेजना। कतरन भी वापस भेजना।

बापू

—गुजराती। बारडोली, १७।२।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्र की फोटो-नकल से।]

१०१. पत्र : जवाहरलाल को

[आँधी की भाँति चलते हुए असहयोग आन्दोलन में, जब हजारों आदमी जेल, जब्ती तथा अन्य अनेक प्रकार से मातृभूमि के स्वातन्त्र्य-युद्ध में अपनी भेंट दे रहे थे, चौरी-चौरा (गोरखपुर) में भयानक हिंसाकाण्ड हुआ। किसानों की एक उत्तेजित भीड़ ने वहाँ की पुलिस चौकी पर हमला करके उसे जला दिया और सिपाहियों को मार डाला। इस पर क्षुब्ध होकर गांधीजी ने आन्दोलन को स्थगित करने का आदेश प्रचारित किया, जिसे कांग्रेस कार्यसमिति ने मंजूर कर लिया। उस समय देश के प्रायः सब बड़े नेता जेलों में थे, केवल गांधीजी बाहर थे। उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि किसी एक समूह के अनैतिक आचरण के कारण एक महान आन्दोलन इस प्रकार वापिस ले लिया गया। जवाहरलाल इत्यादि ने अपनी मानसिक व्यथा गांधीजी तक पहुँचवा दी। गांधीजी ने उसी का जवाब महादेव भाई की पत्नी दुर्गा बहिन-द्वारा जवाहरलाल की बहिन सरूपकुमारी (बाद की विजयलक्ष्मी पण्डित) को इस उद्देश्य से भेजा कि जब वह जेल में मिलने जायं तो पत्र पढ़कर जवाहरलाल को सुना दें।—सम्पा०]

बारडोली
१९ फरवरी १९२२

प्रिय जवाहरलाल,

मुझे मालूम हुआ है कि तुम सबको कार्यसमिति के प्रस्तावों पर भयंकर पीड़ा हुई है। मुझे तुमसे हमदर्दी है और पिताजी की बात सोचकर मेरा दिल टूटता है। उन्हें जो पीड़ा हुई होगी, उसकी मै अपने मन में कल्पना कर सकता हूं। परन्तु मुझे यह भी अनुभव होता है कि यह पत्र अनावश्यक है, क्योंकि मै

जानता हूं कि पहिले आघात के बाद स्थिति ठीक तरह से समझ में आ गई होगी। बेचारे देवदास की बचपनभरी नासमझियों का हमारे दिमाग पर बहुत बोझ नही होना चाहिए। बिल्कुल सम्भव है कि उस गरीब लड़के के पैर उखड़ गये हों और उसका मानसिक सन्तुलन जाता रहा हो। परन्तु इससे इन्कार नही किया जा सकता कि असहयोग आन्दोलन से सहानुभूति रखनेवाली क्रोध से पागल भीड़ ने पुलिस के सिपाहियों की बर्बर ढंग से हत्या की। इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह भीड़ राजनीतिक चेतना रखनेवाली भीड़ थी। ऐसी साफ़ चेतावनी पर ध्यान न देना बड़ा अपराध होता।

मैं बता दू कि यह चरम सीमा थी। वाइसराय के नाम मेरी चिट्ठी शंकाओं से रहित नही थी, जैसा कि उसकी भाषा से प्रकट है। मद्रास की करतूतों से भी मैं बहुत अशान्त हुआ था, किन्तु मैने चेतावनी की आवाज को दबा दिया। मुझे कलकत्ता, इलाहाबाद और पंजाब से हिन्दुओं और मुसलमानों के पत्र मिले थे। यह सब गोरखपुर की घटना से पहिले की बात है। उनका कहना था कि सम्पूर्ण दोष सरकारी पक्ष का ही नही है, हमारे लोग आक्रामक, हैकड़ और धमकानेवाले बनते जा रहे है; हाथ से निकले जा रहे हैं और उनका रवैया अहिंसक नही है। जहां फीरोजपुर जिले की घटना सरकार के लिए अपयशकारी है, वहां हम भी एकदम निर्दोष नही है। हकीम जी ने बरेली के बारे में शिकायत की। मेरे पास झज्झर के विषय में कड़ी शिकायते है। शाहजहांपुर में भी टाउनहाल पर जबर्दस्ती कब्जा करने की कोशिश की गई। कन्नौज से भी स्वयं कांग्रेस के मन्त्री ने तार दिया कि स्वयंसेवक उद्दण्ड हो गये है और हाईस्कूल पर धरना देकर सोलह वर्ष से छोटे लड़कों को स्कूल जाने से रोक रहे है। गोरखपुर में छत्तीस हजार स्वयंसेवक भरती किये गये, जिनमें से सौ भी कांग्रेस की प्रतिज्ञा का पालन नही करते। जमनालाल जी मुझे बताते है कि कलकत्ता में घोर असंगठन है। स्वयंसेवक विदेशी कपड़े पहनते हैं और अहिंसा की प्रतिज्ञा से कतई बँधे हुए नही है। ये सब खबरें और दक्षिण से आई इससे भी अधिक सूचनाएँ मेरे पास थी, तब चौरी-चौरा के समाचारों ने बारुद मे जबर्दस्त चिनगारी का काम दिया और आग लग गई। मै उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि यदि यह चीज स्थगित न कर दी जाती तो हम एक अहिंसक आन्दोलन के स्थान पर वस्तुतः हिंसक संग्राम को चलाते। यह निस्सन्देह सत्य है कि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक अहिंसा गुलाब के इत्र की सुगन्ध की भाँति फैल रही है। परन्तु हिंसा की दुर्गन्ध भी अभी तक प्रबल है और उसकी उपेक्षा करना, उसे तुच्छ समझना, बुद्धिमानी नहीं है। हमारे इस तरह पीछे हटने से काम आगे बढ़ेगा। आन्दोलन, अनजाने ही, सही रास्ते से हट गया था। अब

हमने अपनी पतवार फिर सँभाल ली है और सीधे आगे जा सकते है। घटनाओं को सही रूप में देखने के लिए तुम्हारी स्थिति जितनी प्रतिकूल है मेरी उतनी ही अनुकूल है।

दक्षिण-अफ्रीका का अपना अनुभव मै वताऊँ? जेलों में हमारे पास तरह-तरह की खबरें पहुँचाई जाती थी। अपने पहिले अनुभव के दो-तीन दिनों में तो मैं इधर-उधर के समाचार सुनकर प्रसन्न होता रहा, किन्तु मैने तुरन्त समझ लिया कि इस रिश्वतखोरी में मेरा दिलचस्पी लेना बिल्कुल व्यर्थ है। मै कुछ कर तो सकता नही था, मेरे किसी सन्देश के भेजने से कोई लाभ नही था और मैं व्यर्थ अपनी आत्मा को कष्ट पहुँचाता था। मैने अनुभव किया कि जेल में बैठकर आन्दोलन का पथ-प्रदर्शन करना मेरे लिए असम्भव है। इसलिए मैं तो तवतक प्रतीक्षा ही करता रहा जबतक बाहरवालों से मुलाकात होकर खुलकर बातें नहीं हुई। फिर भी मेरी बात सच मानो कि मैने दिमागी दिलचस्पी ही ली, क्योंकि मैने अनुभव किया कि किसी वात का निर्णय करना मेरे अधिकार के वाहर है। और मुझे मालूम हो गया कि मैं सही रास्ते पर हूं। मुझे याद है कि किस तरह हर वार मेरे जेल से छूटने के समय तक जो विचार वनते थे, वे रिहाई के बाद और रूवरू जानकारी मिलने पर तुरन्त बदल जाते थे। जो हो, जेल के वायुमण्डल के कारण हमारे मन में सारी बातें नही रहती। इसलिए मै चाहूँगा कि तुम बाहर की दुनिया को अपने खयाल से ही निकाल दो और यही समझ लो कि वह है ही नही। मैं जानता हूं कि यह काम बहुत ही कठिन है, परन्तु यदि कोई गम्भीर अध्ययन शुरू कर दो और कोई शरीर-श्रम का काम हाथ में ले लो तो यह काम हो सकता है। सबसे वड़ी वात यह है कि तुम कुछ भी करो किन्तु चर्खे से न उकताओ। तुम्हारे और मेरे पास बहुत-सी बातें करने और बहुत-सी मान्यताएं रखने पर अपने-आपसे अरुचि होने के कारण हो सकते हैं, किन्तु इस वात पर अफसोस करने का कभी कारण न मिलेगा कि हमने चर्खे पर श्रद्धा क्यों केन्द्रित कर ली या मातृभूमि के नाम पर हमने नित्य इतना अच्छा सूत क्यों काता। तुम्हारे पास "सांग सिलेशियल" है। मै तुम्हें एडविन आर्नल्ड जैसा अप्रतिम अनुवाद तो नही दे सकता, किन्तु मूल संस्कृत का उल्था यों है:—"शक्ति व्यर्थ नही जाती, नष्ट तो होती ही नही। थोड़े-से धर्म से भी मनुष्य कई वार गिरने से वच जाता है।"[1] इस धर्म का आशय

---

१. नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

—गीता, २–४०।

कर्मयोग से है और हमारे युग का कर्मयोग चर्खा है। प्यारेलाल की मार्फत तुमने मुझे खून मुखानेवाली खुराक पिलाई है, उसके वाद तुम्हारा उत्साहवर्द्धक पत्र आना चाहिए।

तुम्हारा
मो० क० गांधी

प्रिय सरुप,

यदि तुम्हारा खयाल हो कि उपर्युक्त पत्र से लखनऊ के वन्दियों को कुछ ढाढ़स मिल सकता है तो अगली मुलाकात में जवाहरलाल को पढ़कर सुना देना। वैसे भी मुझे अवश्य वताना कि वहां के क्या हाल-चाल है। आशा है, तुम लोगों में से कोई दिल्ली जा रहा है। तुम्हारे नाम पिता जी के पत्रों में से एक रणजीत[1] ने मेरे पढ़ने के लिए भेजा था।

तुम्हारा
वापू

वारडोली
२०।२।१६२२

प्यारेलाल वताते हैं कि तुम्हारे नाम भेजे पत्र देर से मिल सकते हैं। इसलिए यह पत्र दुर्गा[2] की मार्फत भेजा जा रहा है।

—अंग्रेजी। वारडोली, २०।२।१९२२। नेहरू संग्रहालय, नई दिल्ली में प्राप्त पत्रावली से।]

---

१. श्री रणजीत पण्डित, सरूपकुमारी (वाद की विजयलक्ष्मी) के पति।

२. उस समय 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादकीय विभाग में काम करनेवाले महादेव भाई देसाई की पत्नी।

१०२. तार : देवदास गांधी को

वारडोली
२० फरवरी, १९२२

देवदास गांधी
कांग्रेस कमेटी
गोरखपुर

यदि सम्भव हो तो दिल्ली अवश्य आओ।[1]

—बापू

—अंग्रेजी। बारडोली, २०।२।१९२२। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

१०३. पत्र : मुहम्मद अली को[2]

सैसून अस्पताल
पूना
७ फरवरी, १९२४

प्यारे दोस्त और भाई

आपके कांग्रेस अध्यक्ष होने के नाते मैं आपको कुछ शब्द लिख रहा हूं। मैं जानता हूं कि मेरी इस अचानक रिहाई के सम्बन्ध में मेरे देश-भाई मुझसे कुछ सुनने की आशा रखते है। मुझे खेद है कि सरकार ने मुझे बीमारी के कारण अवधि के पहिले छोड़ दिया है। ऐसी रिहाई मेरी प्रसन्नता का कारण नही बन सकती क्योकि मै मानता हूं कि कोई कैदी बीमारी के आधार पर रिहा नही किया जा सकता।

---

१. २४ और २५ फरवरी को होने वाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में भाग लेने के लिए गांधीजी अपने पाँच दिन के उपवास के बाद दिल्ली के लिए रवाना होने वाले थे।

२. यह पत्र ८।२।१९२४ के बाम्बे क्रानिकल और हिन्दू में भी प्रकाशित किया गया था।

वीमारी के दिनों में जेल और अस्पताल के अधिकारियों ने पूरी मेरी देखभाल की है, यदि यह वात मैं आपसे और आपके द्वारा सर्वसावारण से न कहूं तो यह अकृतज्ञता होगी। यरवदा जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल मरे को ज्योंही मेरी वीमारी के जरा भी गम्भीर होने का शक हुआ, त्योंही उन्होंने कर्नल मैडाक को अपनी मदद के लिए वुलाया और इसमें सन्देह नही कि मेरे लिए जल्दी-से-जल्दी अच्छे-से-अच्छे इलाज की व्यवस्था की गई। मुझे डेविड अस्पताल और सैसून अस्पताल में जल्दी-से-जल्दी पहुँचाया गया। कर्नल मैडाक तथा उनके अमले ने वड़ी चिन्ता और ममता के साथ मेरी शुश्रूषा की है। मै उन नर्सो का उल्लेख करना भी कैसे भूल सकता हूं जिन्होंने मेरी स्नेहपूर्ण परिचर्या की है। यद्यपि अव अस्पताल में रहना न रहना मेरी मर्जी की वात है, पर मै जानता हूं कि इससे अच्छा इलाज दूसरी जगह नही हो सकता। मैने कर्नल मैडाक की कृपापूर्ण अनुमति से यह तय किया है कि जवतक विलकुल घाव अच्छा न हो जाय और फिर किसी इलाज की जरूरत न रहे तवतक मै उन्ही की देखरेख में रहू।

इससे जनता आसानी से यह समझ सकती है कि अभी कुछ समय तक मै सक्रिय कार्य के सर्वथा अयोग्य रहूंगा। जो लोग यह चाहते है कि मैं शीघ्र ही सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में उतर पड़ूं, यदि वे मुझसे मिलने आने की अपनी स्वाभाविक इच्छा को रोके रहे तो यह जल्दी सम्भव हो सकेगा। मै अभी इस योग्य नही हू कि वहुत से लोगों से मिल-जुल सकू और शायद कुछ सप्ताहों तक यही हाल रहेगा। मित्रगण, आज अपना जितना समय राष्ट्रीय कार्यो और खासकर चर्खा कातने मे लगा रहे है यदि वे उससे अधिक समय लगाने लगें तो मै उनके प्रेम को अधिक मूल्यवान मानूंगा।

अपनी इस रिहाई से मुझे कोई राहत नही मिली। तव तो मैं जिम्मेदारियो से मुक्त था, उन दिनो मेरा सिर्फ इतना ही काम था कि मैं अपने को जेल-जीवन के अनुशासन में रक्खूं और अधिक कार्यक्षम वनूं; अव ऐसी जिम्मेदारियो के खयाल मुझे घेरे हुए है कि जिन्हे उठाने में मैं इस समय असमर्थ हूँ। मेरे पास वधाई के तौर पर तार आ रहे हैं। मेरे प्रति मेरे देश-भाइयो के प्रेम के जो वहुत से सवूत मिलते रहे हैं, इनसे उनकी संख्या में वृद्धि हो गई है। इससे मुझे स्वभावतः खुशी और तसल्ली तो होती है, पर कितने ही तार ऐसे भी आये है जिनसे यह जाहिर होता है कि देश मेरी सेवाओ से वड़े-वड़े परिणामों की आशा लगाये वैठा है और यह वात मुझे विकल वनाये हुए है। यह खयाल कि मै अपने सामने पड़े हुए कामों को निभाने मे विलकुल असमर्थ हूँ, मेरे गर्व को चूर-चूर कर देता है।

यद्यपि मैं देश की मौजूदा हालत के वारे मे वहुत कम जानता हूँ फिर भी

मेरे पास यह समझ सकने के लिए पर्याप्त जानकारी है कि देश की समस्याएँ बार-डोली के प्रस्तावों के समय जितनी जटिल थीं, आज उससे भी अधिक जटिल हो गई है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हिन्दू-मुसलमान, सिख-पारसी, ईसाई तथा दूसरी जातियों की एकता के बिना स्वराज्य की बात करना ही व्यर्थ है। जिस एकता को मैं १९२२ में गलती से देश मे लगभग पूर्णतः स्थापित समझता था, देखता हूँ कि जहाँ तक हिन्दू-मुसलमानों का ताल्लुक है उसमें बड़ा व्यवधान उपस्थित हो गया है। परस्पर विश्वास की जगह अविश्वास ने ले ली है। यदि हमें आजादी हासिल करनी है तो विभिन्न जातियों को मित्रता के अटूट बन्धन में बाँधना ही होगा। मेरी रिहाई पर राष्ट्र जिस सद्भावना का प्रदर्शन कर रहा है, क्या वह विभिन्न जातियों की पक्की एकता के रूप में परिणत हो सकेगा? किसी भी उपचार, या विश्राम की अपेक्षा मैं इस तरह कहीं जल्दी स्वास्थ्य-लाभ कर सकूँगा। जब जेल में मैंने सुना कि कुछ स्थानों में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच तनातनी की हालत है तब मेरे मन में उदासी छा गई। मुझे डाक्टरों ने आराम करने की सलाह दी है। किन्तु जबतक आपसी फूट का घुन मेरे मन को खा रहा है तबतक डाक्टरों के बताये हुए विश्राम से मुझे आराम नही मिलसे का। जो लोग मेरे प्रति प्रेम-भाव रखते है उन सबसे मेरा अनुरोध है कि वे इस प्रेम का उपयोग उस एकता को बढ़ाने में करें जो हम सबको प्रिय है। मैं जानता हूँ कि यह काम कठिन है किन्तु हमारे अन्दर ईश्वर के प्रति जीवन्त श्रद्धा हो तो कोई भी काम कठिन नही। आइए, हम अपनी कमजोरियों को समझें और ईश्वर की शरण में जायँ, वह अवश्य मदद करेगा। कमजोरी में डर और डर से अविश्वास पैदा होता है। आइए, हम दोनों डर को अपने दिल से निकाल दें। मैं जानता हूँ कि यदि हममें से एक भी अपने डर को दूर कर दें तो हमारे लड़ाई-झगड़े बन्द हो जायँ। मै तो यहाँ तक कहता हूँ कि आपके कार्य-काल का महत्व केवल इस बात से आँका जायगा कि आप एकता के लिए क्या कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि हम एक दूसरे से भाई की तरह प्रेम करते है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी चिन्ताओं में हाथ बटाइए और मेरी मदद कीजिए, जिससे मैं अपनी बीमारी के दिन हलके मन से बिता सकूँ।

यदि हम सिर्फ देश की बढ़ती हुई दरिद्रता का चित्र अपनी आँखों के सामने ला सकें और यह समझें कि चर्खा ही इस रोग की एकमात्र दवा है तो वही एक काम हमें लड़ने के लिए फुरसत नही मिलने देगा। मुझे पिछले दो वर्षो के दौरान गहराई के साथ सोचने के लिए काफी समय और एकान्त मिला है। उसने मेरे विश्वास को बारडोली कार्यक्रम की क्षमता में और इसलिए भिन्न-भिन्न जातियों की एकता,

चर्खे, अस्पृश्यता-निवारण और स्वराज्य के लिए कायिक, वाचिक, मानसिक अहिंसा की अनिवार्यता में और भी अधिक दृढ वना दिया है। यदि हम ईमानदारी के साथ इस कार्यक्रम को पूरा-पूरा चलायें तो हमें सविनय अवज्ञा का सहारा लेने की जरा भी आवश्यकता नही है और मेरा खयाल है कि उसकी कभी आवश्यकता भी नही होगी। तथापि मै यह जरूर कहूँगा कि एकान्त में प्रार्थनापूर्वक चिन्तन और मनन करने पर भी सविनय अवज्ञा की क्षमता तथा उसके औचित्य पर मेरा विश्वास जरा भी कम नही हुआ है। मै इस वात को पहले से भी अधिक दृढ़ता के साथ मानता हूँ कि जव किसी व्यक्ति या राष्ट्र भी आत्मा पर ही आघात हो रहा हो तव सविनय अवज्ञा मे कम खतरा है। युद्ध के अन्त में जहाँ विजेता और विजित दोनों को हानि पहुँचती है वहाँ सविनय अवज्ञा दोनों का मगल करती है।

आप मुझसे इस वात की उम्मीद नही रक्खेंगे मैं कि यहाँ कांग्रेसियों के विधान परिपदों तथा सभाओं में प्रवेश के जटिल प्रश्न पर अपनी राय जाहिर करूँ। यद्यपि मैने परिषदों, अदालतों और सरकारी शिक्षालयों के वहिष्कार के सम्वन्ध में अपनी राय किसी भी रूप में नही वदली है, तथापि दिल्ली में जो परिवर्तन किये गये उनके सम्वन्ध में अपनी राय कायम करने योग्य सामग्री अभी मेरे पास नही है और इस पर तवतक अपनी राय जाहिर करने का मेरा इरादा नही है जवतक कि मुझे उन प्रसिद्ध देश-भाइयों से इस प्रश्न पर विचार करने का अवसर नही मिलता, जिन्होंने देश-हित के खयाल से विधान-सभाओं के वहिष्कार हटा लेना जरूरी माना है।

अन्त में मैं अपनी मार्फत वधाई भेजने वाले तमाम सज्जनों को धन्यवाद देता हूँ। हर शख्स को अलहदा उत्तर देना मेरे लिए असम्भव है। कितने ही पत्र नरम दल के अपने मित्रों की ओर से भी मुझे मिले है, यह देखकर मुझे वड़ी खुशी हुई। मेरा उनसे कोई झगड़ा नहीं है और न असहयोगियों का ही हो सकता है। नरम दलवाले भी देश के हितैपी है और प्रामाणिक रूप से अपनी मान्यताओं के अनुसार देश की सेवा करते हैं। यदि हम समझते हों कि वे गलती पर हैं, तो हम मित्र-भाव और धीरज के साथ उनसे दलील करके ही उन्हें अपने पक्ष में लाने की आशा कर सकते है, उन्हें गालियाँ देकर हरगिज नही। वस्तुतः हम अंग्रेजों को भी अपना मित्र समझना चाहते हैं; उन्हे अपना शत्रु समझकर उनके सम्वन्ध मे कोई गलत खयाल नही वनाना चाहते। यदि आज ब्रिटिश सरकार के साथ हमारी लड़ाई चल रही है तो वह उनके खिलाफ नही वल्कि उनकी शासनप्रणाली के खिलाफ है। मुझे मालूम है कि हममे से वहुतो ने इस वात को नही समझा है और हमेशा

इस भेद को ध्यान में नहीं रक्खा है और जिस हद तक हमने इसमें गफलत की है उस हद तक खुद अपना ही नुकसान किया है।

आपका सच्चा मित्र और भाई
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। पूना, ७।२।१९२४। यं० इं०, १४।२।१९२४।]

१०४. तार : मुहम्मद अली को[1]

पूना
२४ फरवरी, १९२४ या उसके पश्चात

समिति के मार्गदर्शन के लिए पर्याप्त जानकारी अथवा योग्यता नहीं।

गांधी

—अंग्रेजी। पूना, २४।२।१९२४। सं० गां० वा० खण्ड २३, पृ० २२४ से।]

१०५. पत्र : मुहम्मद अली को

सैसून अस्पताल
पूना
५ मार्च, १९२४

प्यारे दोस्त और भाई,

आपके दुःख में मेरी पूरी सहानुभूति आपके साथ है। अमीना की बीमारी का दुःखद ब्यौरा हयात ने मुझे लिखा है।[2] मैंने अखबार में भी पढ़ा था कि आप

---

१. यह मुहम्मद अली के २४ फरवरी, १९२४ के इस तार के उत्तर में भेजा गया था "आवश्यक समझें तो हाल में उत्पन्न स्थिति पर दिल्ली में २६ को होने वाली कार्यसमिति को तार से सन्देश तथा आदेश दें" (एस० एन० ८३७१)।

२. अलीगढ़ राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के एच० एम० हयात ने २८ फरवरी को गांधीजी को पत्र लिखा था। मुहम्मद अली की बेटी अमीना का स्वर्गवास इसके एक महीने बाद हुआ था।

सिन्ध के खिलाफत सम्मेलन में भाग नही ले सके। इसी बात से जाहिर होता है कि वह कितनी बीमार है। ईश्वर हमारी परीक्षा कई तरह से लेता है। वह जानना चाहता है कि उसका बन्दा जिन तकलीफो से बचा रहना चाहता है; वे अगर आही पड़ें तो उस समय उसका क्या आचरण होगा। मैं जानता हूँ कि परिणाम चाहे कुछ भी हो, आप इस परीक्षा में खरे उतरेंगे। अमीना को मेरी ओर से ढाढ़स बँधायें और कहें कि जिनका भगवान में विश्वास है उन्हे भगवान चाहे धरती पर रखे चाहे उठा ले, दोनों स्थितियों में उनका कल्याण है। मैं जानता हूँ कि आपकी बहादुर बीबी इस संकट की घड़ी मे वही करेगी जिसकी उनमे आशा की जाती है।

—अंग्रेजी। पूना, ५।३।१९२४। अमृत बाजार पत्रिका, ११।३।१९२४]

१०६. पत्र : महेन्द्र प्रताप को[1]

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर बहुत प्रसन्नता हुई। मैं जब प्रेम विद्यालय गया था, तब मेरा खयाल है, भाई कोतवाल ने आपके सम्बन्ध में मुझसे बातचीत की थी। यद्यपि यह सच है कि हमे प्रकृति में अच्छी और बुरी दोनो तरह की शक्तियाँ पूरे जोरों पर काम करती दिखाई देती है किन्तु मेरा निश्चित विश्वास है कि इस शाश्वत द्वन्द्व से ऊपर उठना तथा चित्त की समवृत्ति प्राप्त करना मनुष्य का अपना विशिष्ट अधिकार है। और इसे प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है सत्यबल; दूसरे शब्दों में प्रेम-बल अथवा आत्मिक बल पर पूर्णतया आचरण करना। मैं यह बात तर्क-द्वारा सिद्ध करके बताऊँ, इसकी अपेक्षा तो आप मुझसे नही ही करेंगे। इस सम्बन्ध में मैं केवल अपने दीर्घ-कालीन अनुभव से उत्पन्न दृढ़ विश्वास को ही आपके सामने रख सकता हूँ। इस सुदीर्घ अनुभव के दौरान मुझे स्मरण नही आता कि मेरे सामने एक भी ऐसा अवसर आया हो, जब किसी समस्या के समाधान के लिए सत्यबल का सहारा लेने पर मुझे पूरी सफलता न मिली हो।

१. राजा, सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन के संस्थापक।

निःसन्देह इसके लिए धैर्य, विनम्रता और इसी तरह के अन्य गुणों का विकास करना जरूरी होता है।

हृदय से आपका,

श्री एम० प्रताप
बाग बाबर
काबुल

—अंग्रेजी, अन्धेरी, १५।३।१९२४। सा० सं० में प्राप्त पत्र की फोटो-नकल से।]

१०७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

पोस्ट अन्धेरी
१५ मार्च, १९२४

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र[1] मिला। पणिक्कर के सम्बन्ध में तुम्हारा और मुहम्मद अली का, दोनों तार पहिले ही मिल गये थे। तुम्हारे पत्र से मैं कुछ परेशानी में पड़ गया हूँ।

---

१. प्रतीत होता है कि गांधी जी ने १२ मार्च को पण्डित जवाहरलाल नेहरू को तार दिया था। उक्त तार उपलब्ध नहीं है। श्री नेहरू ने १३ मार्च को इसका उत्तर दिया। उन्होंने लिखा था : "श्री पणिक्कर प्रसिद्ध व्यक्ति है। मैं कई वर्षों से उन्हें जानता हूँ। कोकोनाडा में कुछ समय के लिए मैं उनसे मिला भी हूँ। मुझे विश्वास है कि अमृतसर में उनकी उपस्थिति उपयोगी सिद्ध होगी। उनमें एक कमी अवश्य है कि वह हिन्दुस्तानी नहीं जानते, लेकिन उनकी अन्य अनेक योग्यताएं इस कमी को बखूबी पूरा कर देंगी। प्रचार कार्य के लिए वह अत्यन्त उपयोगी व्यक्ति साबित होंगे। भाषा-सम्बन्धी कठिनाई के कारण, शायद वह सिखों और हिन्दुओं को एक दूसरे को समीप लाने में बहुत अधिक सहायक नहीं होंगे। लेकिन कुल मिलाकर श्री पणिक्कर अमृतसर के लिए एक उपलब्धि ही होंगे। जहाँ तक नौकरी की शर्तें तय करने की बात है, आप जो कुछ भी उचित समझेंगे वह निःसन्देह सब लोगों को मान्य होगा। जहाँ तक कार्य-समिति की विधिवत् बैठक की बात है, वह २१ अप्रैल तक न हो सकेगी। आपके तार में नौकरी की जिन शर्तों के सुझाव

नियुक्तियाँ और वेतन-निर्धारण आदि के बारे में कोई निश्चित मत बनाने का न मेरा इरादा कभी रहा और न इस समय है। चूँकि मैं जोजेफ के इस विचार से सहमत था कि पत्नी जब इतने कष्ट में है तब उनका उसके पास रहना जरूरी है और चूंकि जो सिख भाई मुझसे मिलने आये, वे इस बात के लिए बहुत उत्सुक जान पड़े कि गिडवानी के स्थान पर कोई अच्छा व्यक्ति मिल जाय, ऐसा व्यक्ति जो उनके पत्र 'आनवर्ड' का सम्पादन-भार भी सम्हाल ले, इसलिए मैं उसकी तलाश मे था। वे सुन्दरम को लेना चाहते थे, जो 'इण्डिपेण्डेण्ट' में काम करते थे, और उन्होंने कहा कि वह प्रचार-कार्य और सम्पादन दोनो कर सकते है। जब मैं अन्धेरी के निकट स्थित विश्राम-गृह में आया तो यहीं पणिक्कर से मेरी मुलाकात हुई। श्री पणिक्कर को 'इण्डियन डेलीमेल' ने अपने यहाँ नौकरी करने को आमन्त्रित किया था। वह श्री एण्डरूज से इसी सम्बन्ध मे सलाह-मश्विरा करने आये थे। वह इस नौकरी को स्वीकार करने में हिचकिचा रहे थे, क्योंकि 'मेल' का राजनीतिक दृष्टिकोण उनके विचारों से भिन्न था, तब मुझे प्रचार कार्य का ध्यान आया और मैंने उनसे पूछा कि क्या वह इस भार को सँभाल सकेंगे। चूँकि मैं उन्हे अच्छी तरह से नही जानता था, मैने श्री एण्डरूज से भी सलाह की, और जब श्री पणिक्कर ने यह कहा कि अगर नेहरू जी को जरूरत हो तो मैं अमृतसर जा सकता हूँ। और चूंकि एण्डरूज की राय थी कि वह श्री गिडवानी के स्थान पर योग्य ठहरेंगे, मैंने तुम्हें तार कर दिया। लेकिन मेरी यह इच्छा नही थी कि तुम सिर्फ इसलिए अपगे निर्णय में कोई रद्दोबदल करो कि तार मैंने भेजा है। यदि मैं स्वस्थ होता और सभी तथ्यों की जानकारी पा सकता तो मैं उम्मीदवारों के चुनाव के सम्बन्ध में बेशक, अपनी सलाह और विचार व्यक्त करता। लेकिन इस समय तो मै उन चन्द बातों के अलावा, जो अत्यन्त आवश्यक हैं, और किसी भी बात में अपनी शक्ति नही लगान चाहता।

हैं वे कुछ हद तक पेचीदा हैं। लेकिन यह तो आपके तय करने की बात है। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि श्री पणिक्कर अमृतसर में लम्बे समय तक रहने का इरादा रखते है। वैसे मेरा निजी ख्याल यह है कि वहाँ उन्हें ज्यादा अर्से तक रखना आवश्यक न होगा। बहुत सम्भव है कि गिडवानी शीघ्र ही रिहा हो जायँ और यह भी उतना ही सम्भव है कि गिडवानी का उत्तराधिकारी (श्री पणिक्कर) भी जल्दी ही गिरफ्तार कर लिया जाय। निःसन्देह श्री पणिक्कर अकारण ही कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे उन्हें जेल जाना पड़े, लेकिन श्री गिडवानी ने भी तो ऐसा नहीं किया था।"

जहाँ तक वेतन का सवाल है, स्थिति यह थी। पणिक्कर 'स्वराज्य' कार्यालय में ७०० रुपये माहवार पर नियुक्त हुए थे, लेकिन चूंकि पत्र आत्मनिर्भर नही है, वे लोग उन्हें कुछ महीनों का वेतन नही दे पाये है। श्री पणिक्कर ने नौकरी छोड़ दी, क्योंकि इस सवाल पर श्री श्रीनिवास आयंगार से उनका समझौता नहीं हो पाया। उन्हें मद्रास में ६०० रुपये का एक कर्ज चुकाना है। उन्हें ३०० रुपये माहवार की जरूरत है। इसलिए मैने सोचा उन्हे ६०० रुपये पेशगी दे दिये जायँ तो वे अपना कर्ज चुकाकर अमृतसर के लिए रवाना हो जायँगे। अमृतसर में अपना खर्च चलाने के लिए तो उन्हे फिर भी पैसों की जरूरत होगी ही। इसके लिए उन्हें ऋण के रूप में १०० रुपये प्रतिमास दिया जाना चाहिए। इस तरह तीन महीने नौकरी करने के बाद वह कांग्रेस के ३०० रुपये के कर्जदार होगे। फिर यह रकम १०० रुपये प्रतिमास के हिसाव से उनके वेतन से ली जा सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्हें जो कर्ज मिलेगा उसे चुकाने के लिए उन्हें छः महीने तक काम करना होगा। लेकिन अव मै परेशानी में पड़ गया हूँ, क्योंकि तुम्हारे पत्र के द्वारा पता चलता है कि इतने अर्से के लिए शायद उनकी सेवाओं की जरूरत नहीं पड़ेगी। मै कांग्रेस पर व्यर्थ का खर्च लादने का निमित्त नही वनना चाहूँगा। इसलिए मै सारी स्थिति श्री पाणिक्कर के सम्मुख रख देना चाहता हूँ। वह शायद इस वात पर सहमत हो जायँगे कि अगर उनकी नौकरी छः महीने से पहले ही खत्म हो गई तो वह कर्ज की वकाया रकम अदा करने के लिए जिम्मेदार होंगे। वह इस समय यहाँ नही है, अन्यथा मै तुम्हें अधिक निश्चित पत्र भेजता।

मेरा खयाल है, मुमकिन हुआ तो तुम नहीं चाहोगे कि मैं नौकरी की वावत पणिक्कर के साथ तय हुई वात तोड़ दूँ। इसलिए उस वात को वरकरार रखकर मैं उन्हें कल अमृतसर भेज रहा हूँ। तुम्हारे सवसे आखिरी तार के मुताविक वह सीधे अमृतसर जायँगे। मैं श्री पणिक्कर को जो रकम दूंगा, तुम खजांची से वह रकम फिर मुझे वापस देने को कह देना।

निश्चय ही अगर मेरा इरादा तुमसे अपने विचारों के अनुसार काम कराने का हो तो मै तुमसे हर नियुक्ति के वारे में दो वातों को ध्यान में रखकर फिर से विचार करने के लिए कहूँगा।

(१) क्या कांग्रेस को कांग्रेस से वाहर के कार्य पर पैसा खर्च करना चाहिए?

(२) कांग्रेस को अपने सेवकों को अधिक-से-अधिक कितना वेतन देना चाहिए?

यह तो हुई काम-काज की वात। मेरा घाव पूरी तरह भर गया है, लेकिन चीरे की जगह अभी नरम है और उसके वारे में देखभाल और सावधानी रखना अत्यन्त

आवश्यक है। अभी जो मैं समुद्र-तट पर आराम ले रहा हूँ, आशा है वह अनुकूल पड़ेगा। इसलिए सामान्यतया यहाँ तीन महीने रहने का इरादा करता हूँ। इस अवधि में मुझसे जितना हो सकेगा उतना ही लिखने का काम करूँगा और कौंसिल-प्रवेश आदि के सम्बन्ध मे नेताओं से सलाह-मशविरा करता रहूंगा। इस महीने के अन्त तक (तुम्हारे) पिता जी, हकीम जी और अन्य लोगों के यहाँ आने की आशा है। मेरे साथ सलाह-मशविरा करने के लिए जब भी तुम्हारी इच्छा हो तुम नि.संकोच यहाँ आ जाया करो। चाहे जो हो, मुझे उम्मीद है कि तुम अगले महीने की २० तारीख के आस-पास तो मुझसे मिलने आओगे ही, क्योकि मुझे मालूम हुआ है कि इस तारीख को कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक होनेवाली है। मुझे विश्वास है, तुम स्वस्थ हो और अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रख रहे हो।

पणिक्कर ने इस पत्र को पढ़ लिया है और तुम जब भी चाहोगे, वह नौकरी से मुक्त होने तथा कर्ज की बाकी रकम चुकाने के लिए तैयार रहेंगे।

हृदय से तुम्हारा,

पण्डित जवाहरलाल नेहरू।

—अंग्रेजी। अँधेरी, १५।३।१९२४। सं० गां० वा० खण्ड २३ से।]

१०८. पत्र : शौकत अली को

१८ मार्च, १९२४

प्रिय मित्र तथा बड़े भाई,

आपको मियादी बुखार या किसी भी बुखार का होना ठीक नही। हमारे बीच बीमारी मेरी ही किस्मत मे रहे। लेकिन मैं आपको लम्बा पत्र देकर परेशान नही करूँगा। ईश्वर आपको शीघ्र ही स्वस्थ करे।

हृदय से आपका

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। १८।३।१९२४। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

१०९. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

अन्धेरी
१८ मार्च, १९२४

प्रिय मोतीलाल जी[1],

वित्त विधेयक की[2] अस्वीकृति के बारे में आपका तार मिला। मैं इससे प्रसन्न हुआ हूँ क्योंकि इस विजय से आप प्रसन्न हुए है। किन्तु मैं इसे लेकर बहुत खुशी दिखाने से रहा, और मै इस विजय से चकित भी नही हुआ हूँ। उचित अनुशासन और कौशल का उपयोग करने पर इसका सध जाना असम्भव नही था और मैंने आपकी जबरदस्त व्यवहारकुशलता, कायल कर देने वाली वाग्मिता और धमकियों के सामने आपके धैर्य पर कभी भी सन्देह नही किया। मै आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि यदि आपके पास संगठन के लिए और समय होता और आपको देश का अधिक समर्थन प्राप्त होता तो आप प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधान सभा में बाजी मार ले जाते। फिर भी मैं एक बात अपने मन को समझा नही पा रहा हूँ। इसके बारे में मैंने लाला जी[3] से थोड़ी बात. . .की थी। तब से मैं बराबर उसी दिशा में सोचता रहा हूँ। एक बार तो यह भी मन में आया कि मैं अपने विचार व्यक्त करते हुए एक लम्बा-सा पत्र लिखवा भेजूं। किन्तु मैने लिखवाया नही। इसके तीन कारण रहे। एक तो मुझे इसी में सन्देह था कि यह उचित होगा कि नही। दूसरे आपकी व्यस्तता को मैं जानता हूँ। इसलिए लम्बा पत्र न लिखना ठीक जान पड़ा। और तीसरे यह कि मैं अपने रोजमर्रा के आवश्यक कार्यो के लिए अपनी शक्ति सुरक्षित रखना चाहता था। यदि आप मूल कार्य-क्रम को पूरा करने में सफल हो गये तो फिर हम जल्दी ही मिलेगे।

---

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू (१८६१-१९३१), वकील और राजनीतिज्ञ, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दो बार अध्यक्ष।

२. १७ मार्च को मदनमोहन मालवीय के एक प्रस्ताव पर केन्द्रीय विधान सभा ने वित्त विधेयक पर विचार करने के लिए लाये गये एक प्रस्ताव को ५७ के विरुद्ध ६० मतों से ठुकरा दिया था। १८ मार्च को मोतीलाल नेहरू ने तार में लिखा था कि वाइसराय की सिफारिश से आज फिर वित्त विधेयक लाया गया। विधान सभा ने बिना मत लिए अनुमति देने से इन्कार कर दिया।

३. लाला लाजपतराय।

मुझे आशा है कि आप तमाम बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कामों को करते हुए भी स्वस्थ होंगे।

हृदय से आपका,

(पुनश्चः)

आपका दूसरा तार मुझे अभी मिला है। मैं कितना चाहता हूं कि मेरे विचार आपके विचारों से मिल सकते और मैं आपकी खुशी में पूरी तरह हिस्सा बँटा सकता।

पण्डित मोतीलाल नेहरू
२५, वेस्टर्न होस्टल
दिल्ली

—अंग्रेजी। अंधेरी, १८।३।१९२४। सं० गा० वां० खण्ड २३ से।]

११०. पत्र : राजबहादुर को

पोस्ट अन्धेरी
२० मार्च, १९२४

प्रिय तरुण मित्र,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुमने अपने पिता की आज्ञा का पालन नही किया, यह निश्चित ही अशिष्टता हुई। उन्होने तुम्हें जो करने को कहा था वह अपने-आप में शुद्ध था और यदि तुम्हारी अन्तरात्मा ने उसे शुद्ध कहने की अनुमति न दी हो तो भी वह निश्चय ही अशुद्ध नही था। किन्तु तुम्हारे यह स्वीकार करने पर कि तुमने भूल की है, पिता ने तुम्हे जो दण्ड दिया वह आज्ञोल्लंघन के अनुपात में बहुत ही अधिक हुआ। पिता का अपने बच्चे के बुरे काम के कारण स्वयं अपने को किसी चीज से वंचित करना एक तरह का दण्ड ही है। तुमने मेरे प्रति कोई अपराध नही किया, इसलिए मेरे क्षमा करने का प्रश्न नही उठता। फिर भी तुमने अपने पिता को नरम बनने और अपनी शपथ वापस लेने के लिए अभिप्रेरित किया, इसके लिए मै तुम्हें

अपनी तरफ से हजार बार माफ करता हूं। यह पत्र उन्हें दिखाओ और मुझे लिखो कि उन्होंने तुम्हारा दिया हुआ भोजन लेना शुरू कर दिया अथवा नही।

हृदय से तुम्हारा,

श्रीयुत राजबहादुर
कक्षा ८ सेक्शन बी
सनातन धर्म हाई स्कूल
इटावा नगर।

—अंग्रेजी। अँधेरी, २०।३।१९२४। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

१११. पत्र : मुहम्मद अली को

पोष्ट अन्धेरी
२५ मार्च, १९२४

प्यारे दोस्त और भाई

आपका पत्र[1] मिला। मैं समाचारपत्रों के जरिये आपकी गति-विधियों की जानकारी रखता आया हूं और मैंने देखा है कि अपने परिवार पर टूटनेवाली इस विपत्ति[2] का सामना आपने जिस साहस और तितिक्षा-भाव से किया वह आपके ही योग्य है। मुझे भी ठीक यही उम्मीद थी। आपने अमीना के अन्तिम क्षणों का जो विवरण मुझे लिखा है, उसे मै अपनी दोस्ती का एक खास हक मानता हू। वह बड़ी अच्छी और प्यारी बच्ची थी। बहुत ही अच्छा हो, अगर मेरे साथ आप एक हफ्ता गुजार सकें। मेरी तो इच्छा है कि आप बेगमसाहिबा और अपने समस्त परिजनों के साथ आयें। लेकिन इस इतने बड़े बँगले में भी जगह की कुछ तंगी हो गई है। आपकी देख-भाल तो मै आसानी से कर सकता हूं; मतलब यह कि आप अपनी मर्जी के मुताबिक रहेंगे और इस बँगले में जो अस्पताल ही बन गया है, जितना भी मुमकिन है उतना आराम पा सकेंगे। मैं यहां मरीजों के बीच रह रहा हूं। मगनलाल की पुत्री राधा और वल्लभभाई की पुत्री मणिबाई ने चारपाई तो नहीं पकड़ी है, पर वे चलने-फिरने से लाचार हैं। और मैंने पगले मजली को भी यहां आने के लिए लिखा है। मैं कह नही सकता कि बड़े भाई की भी तीमार-

---

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. तात्पर्य मुहम्मद अली की पुत्री, अमीना की मृत्यु से है।

दारी करने से मुझे कितनी खुशी हासिल होगी, लेकिन यह तभी हो सकता है जब मै चंगा हो जाऊं। इन सब मरीजों को यहां रखने का मशा भी साफ-साफ समझा जाना चाहिए। आपको मालूम होना चाहिए कि मैं अगर्चे एक सियासी आदमी हूं फिर भी मुझमे नर्स होने का माद्दा उससे भी बढ़कर है। और इतना ही नहीं, मुझे तो शर्म महसूस हो रही थी कि मैं अकेले ही इतना बड़ा बँगला दबाये बैठा हूं जबकि बाहर इतने सारे मरीज पड़े है और उनमें कुछ तो ऐसे है जो मेरी ही देख-रेख में बड़े हुए हैं और जिन्हें तीमारदारी और आबोहवा की तब्दीली की कही ज्यादा जरूरत है। इसलिए वे सब यही आ गये हैं—मेरे दिमागी सुकून के लिए नहीं, अपने ही भले के लिए। पर बँगले को इस तरह अस्पताल बना देने पर अब मैं खुद मेहमानों की देखभाल नही कर पाता। और मैं अगर अपने मेहमानों की तरफ जरूरत के मुताबिक तवज्जह न दे पाऊँ, तो मैं उन्हें आने की दावत ही नही दूंगा। मैं आपको तो बड़ी खुशी से आपकी मर्जी पर छोड़ सकता हूँ, और सोच सकता हूँ कि मैने काफी कुछ कर लिया पर बेगमासाहिबा के बारे में तो मैं ऐसा महसूस नही कर सकता।

अब आप मेरे बारे मे सभी कुछ जान गये हैं। इसलिए लिखिए कि आप कब आ रहे हैं। हफ्ते भर के अन्दर-अन्दर यहाँ कुछ नेता लोग आ रहे हैं; मैं चाहता था कि आप भी उनके साथ बहस-मुबाहिसे मे शामिल हो सकते। शौकत से कहिए कि उन्हे खाट पकड़ लेने का कोई हक नही है। उनके सामने सबसे अच्छा रास्ता यही है कि वह जल्द-से-जल्द चगे हो जायँ।

हयात का क्या हाल है ? उसे मेरे एक पत्र का जवाब देना है।

आपको प्यार

स्नेहाधीन,

मौलाना मुहम्मद अली

अलीगढ़

—अंग्रेजी। अँधेरी, २५।३।१९२४। सं० गां० वा० खण्ड २३, पृ० ३२९ से।]

११२. पत्र : ए० डब्ल्यू० मैकमिलन को

पोष्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय श्री मैकमिलन,

पत्र के लिए आपको अनेक धन्यवाद।

आप फीजी में वहाँ के भारतीय निवासियों की ओर से जो उद्योग कर रहे हैं, उसमें मैं आपकी पूरी सफलता चाहता हूँ। उन लोगों के लिए मेरा सन्देश यही है कि उन्हें अपने-आपको इस तरह तैयार कर लेना चाहिए कि जिससे वे हर तरह की कठिनाइयों का सामना कर सकें।

आप फीजी में अपने देश-बन्धुओं से निरन्तर विरोध रखकर रहना नही चाहते, मैं आपकी इस भावना से पूरी तरह सहमत हूँ। मेरा निश्चित विश्वास है कि आप अपने देश-भाइयों से विरोध रखकर भारतीयों की सेवा कर भी नही सकते। मेरे खयाल में आवश्यकता इस बात की है कि जो सचाई है उसे साफ-साफ कहा जाय और चाहे कुछ भी हो, न्याय का आग्रह रक्खा जाय। इसमें किसी का विरोध करने की कोई आवश्यकता भी नही पड़ सकती।

हृदय से आपका,

श्री ए० डब्ल्यू मैकमिलन
बनारस छावनी
बनारस

—अंग्रेजी। अँधेरी, २८।३।१९२४। सा० सं० में प्राप्त पत्रावली से।]

११३. पत्र : रामानन्द संन्यासी को

पोष्ट अन्धेरी
२८ मार्च, १९२४

प्रिय रामानन्द संन्यासी,

मुझे आपका २३ तारीख का पत्र मिला, धन्यवाद।

पूरी बातें जाने बिना आपको सलाह देना मेरे लिए कठिन है।

(१) क्या भरती अभी शुरू हुई है और यदि हुई है तो किस तारीख से?

(२) क्या इसके पहिले भरती नही हुई?

(३) यदि नही हुई तो यह कब से बन्द हुई?

(४) चाय-बागानो में जाकर किस बात की जाँच करनी है?

जबतक बागान के मालिको की शर्तों मे रद्दोबदल न हो, तबतक हालात पहले से बेहतर नही हो सकते। यदि शर्तें भिन्न प्रकार की हैं तो उनकी एक नकल आपको उन गाँवों मे मिल जानी चाहिए, जहाँ भरती हो रही है। इसलिए मेरी समझ में नही आता कि अभी चाय-बागानों में जाकर जाँच करने से क्या लाभ हो सकता है। इसके अलावा, कोई भी कदम उठाने से पहले असम की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी से पत्र-व्यवहार कर लेना चाहिए। इसलिए मैं तो यह सुझाव दूँगा कि आप उल्लिखित जिलों मे हो रही भरती का पूरा विवरण देते हुए एक पत्र[1] लिखें। यदि आप मेरे सुझाव को मान लें, तो उत्तर देते समय असम कमेटी को लिखे गये अपने पत्र की नकल भी कृपया मेरे पास भेज दें।

हृदय से आपका,

रामानन्द संन्यासी
बलदेव आश्रम, खुर्जा यू० पी०

—अंग्रेजी। अँधेरी २८।३।१९२४। सं० गां० वा० खण्ड २३, पृष्ठ ३५०।]

११४. तार : कानपुर की अग्रवाल परिषद् को[2]

(१ अप्रैल १९२४ या उसके पश्चात्)

अग्रवाल परिषद्
कानपुर

परिषद् की सफलता की कामना करता हूँ। आशा है परिषद् खद्दर की जो कि अकेले लाखो देशभाइयों की भुखमरी को दूर कर सकता है, और दक्षिण भारत मे हिन्दी प्रचार की मदद करेगी, जिसमें अब तक अग्रवाल लोग इतनी उदारता से हाथ बँटाते रहे हैं। सेठ जमनालाल जी इतने कमजोर हैं कि इतनी थकान बरदाश्त नही कर सकते।

गांधी.

—अंग्रेजी। १।४।१९२४। सं० गां० वा० खण्ड २३, पृ० ३६२।]

---

१. रामानन्द संन्यासी ने १ अप्रैल को फिर पत्र लिखा और उसमें गांधीजी ने जो ब्योरा माँगा था वह सब दिया और साथ में जैसा गांधीजी ने सुझाया था असम कांग्रेस कमेटी को लिखे पत्र की एक नकल भी भेजी।

२. यह तार गांधीजी ने तार-द्वारा प्राप्त निम्नलिखित सन्देश के जवाब में दिया

११५. तार : अल्मोड़ा कांग्रेस कमेटी को[1]

(५ अप्रैल १९२४ या उसके पश्चात्)

धन्यवाद। आपका कृपापूर्ण आतिथ्य स्वीकार करने में असमर्थ हूँ।

गांधी.

—अंग्रेजी। अँधेरी, ५।४।१९२४, सं० गां० वा० खण्ड २३ से।]

११६. पत्र : परसराम को

चैत्र शुक्ल ४ (८ अप्रैल, १९२४)

चि० परसराम,

तुम्हारा खत मीला। मैंने कुछ तार तो कान्फरेन्स में भेजा था। कुछ परिणाम आया? अव तुम्हारा काम नियमवद्ध होगा।

वापु के आशीर्वाद

परसराम मेहरोत्रा
स्पिनिंग स्कूल
फीलखाना
कानपुर

—मूल हिन्दी। अँधेरी, ८।४।१९२४। गां० स्मा० संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित फोटो-नकल से।]
सौजन्य : श्री परशुराम मेहरोत्रा।

था—"अखिल भारतीय मारवाड़ी अग्रवाल परिषद् ५, ६, ७ अप्रैल को। निर्वाचित अध्यक्ष वम्वई के सेठ आनन्दीलाल जी पोद्दार वहाँ ४ को पहुँच रहे हैं। सेठ जमनालाल जी की भी उम्मीद है। आपके आशीर्वाद और आध्यात्मिक सन्देश की हृदय से याचना है, स्वागत"। (एस० एन० ८६४१)।

जमनालाल जी वजाज ने भी १ अप्रैल को देवदास गांधी को तार भेजा था जो इस प्रकार था : "कानपुर अग्रवाल परिषद् उपस्थिति के लिए जोर दे रही है। कृपया पूना के वैद्य से निजी राय देने के लिए विनती कीजिए। यदि अनुमति मिले तो तीन तारीख को अवश्य रवाना होना चाहिए। वापू की भी राय लेनी जरूरी है।" (एस० एन० ८६४२)।

१. यह तार अल्मोड़ा कांग्रेस कमेटी के मन्त्री द्वारा ५ अप्रैल, १९२४ को भेजे

११७. पत्र : मुहम्मद अली को

पोस्ट अन्धेरी
१० अप्रैल, १९२४

मेरे अजीज दोस्त और भाई,

आपके दोनों पत्र मिल गये, एक आपके सेक्रेटरी का लिखा हुआ पत्र जिसके साथ वह पत्र नत्थी है जो आपको मिला है और दूसरा आपका अपना लिखा हुआ।

मैं सहपत्र के सम्बन्ध में अपने ढंग से कार्रवाई कर रहा हूँ। आप जब यह समझें कि आप बड़े भाई साहब[1] के पास से बिना कोई जोखिम उठाये हट सकते हैं, तभी आयें।

मैंने आपको अपनी ओर से आश्वासन भेज दिया है और उसे यहाँ फिर दोहराता हूँ कि इन दोनों प्रश्नों के सम्बन्ध में आपसे मिले बिना मैं अपने विचार प्रकाशित नहीं करूँगा। आप अपना काम फुरसत से करें। आप देखेंगे कि आपने स्वामी जी को जो पत्र लिखा है उसका मैंने "यंग इण्डिया"[2] के स्तम्भों में उपयोग किस तरह किया है।

वर्तमान उत्तेजना का दोष दोनों पक्षों पर है, मुझे इस कथन के पक्ष में करने के लिए किसी भी प्रकार का अनुरोध जरूरी नहीं है, और मैं आशा कर रहा हूँ कि जब अवसर उपस्थित होगा ईश्वर मुझे सत्य, पूर्ण सत्य और उतना ही सत्य कहने की शक्ति और साहस देगा जितनेका मुझे बोध है।

मैं नहीं जानता कि देवदास ने डाक्टर अन्सारी को क्या लिखा है, किन्तु उस बेचारे ने मुझे बताया कि उसके पत्र में ऐसा एक भी शब्द नहीं है जिससे आपको अथवा डा० अन्सारी को कुछ भी परेशानी हो। लेकिन शायद आप यह चाहते

गये इस तार के उत्तर में था—"नववर्ष के अवसर पर बधाई। स्वास्थ्य-लाभ के लिए अलमोड़ा का जलवायु अत्युत्तम। ठहरने के लिए बँगले की व्यवस्था कर ली गई है। कृपया अवश्य आइए।"

१. शौकत अली जो बीमार पड़े थे और जिनकी हालत फिर खराब हो गई थी। गांधीजी को शौकत अली के लड़के जहीर अली का ६ अप्रैल को एक पत्र मिला था कि मुहम्मद अली गांधीजी से मिलने के लिए तबतक बम्बई रवाना नहीं हो सकते जबतक उनके भाई की हालत में सुधार नहीं हो जाता।

२. देखिए 'मौलाना मुहम्मद अली और उनके आलोचक' १०।४।१९२४।

है कि देवदास उक्त अंशों को लिखकर मेरे पास भेज दें ताकि मुझे उन अंशों पर कार्रवाई करने योग्य हकीकत का पता चल जाय।

मुझे अभी डा० अन्सारी का तार मिला कि शौकत अली का ज्वर फिर उतर गया है। मन को धीरज हुआ।

सस्नेह,

हृदय से आपका

मौलाना मुहम्मद अली
मार्फत डा० मु० अ० अन्सारी
१, दरियागंज
दिल्ली

— अंग्रेजी। अँधेरी, [१०।४।१९२४। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित फोटो-नकल से।]

११८. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

जुहू
रविवार (१३ अप्रैल, १९२४)[1]

प्रिय मोतीलाल जी,

साथ में मस्विदे को संशोधित करके भेज रहा हूँ। यदि आपको तथा अन्य मित्रों को यह स्वीकार हो तो आप जितना जल्दी चाहें, मैं उसे प्रकाशित करा सकता हूँ। मुझे तो लगता है कि प्रायोगिक कलावधि नियत करने से सम्बन्धित धारा हटा दी जानी चाहिए। परन्तु मैं उन सज्जनों से यह बात अवश्य कहूंगा कि मेरा इरादा कोकोनाडा के प्रस्ताव को रद्द कराने के लिए प्रस्ताव पेश करने का नही है। बात केवल इतनी है कि यह धारा जिस रूप में है, उस रूप में उसके फलितार्थ मैं नहीं जानता। शेष संशोधनों के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु मस्विदे के अन्त में मैंने जो दो वाक्य जोड़े हैं, उनकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। उनका अर्थ स्पष्ट है। ये दो वाक्य जोड़ने में

---

१. पहला मस्विदा ११ अप्रैल, १९२४ को तैयार किया गया था और उसके बाद जो रविवार पड़ता था, उसकी तारीख १३ अप्रैल थी।

मेरा उद्देश्य कल की वात-चीत के निष्कर्ष को इसमें किसी हद तक शामिल करना है।

हृदय से आपका,
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। जुहू, १३।४।१९२४। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित फोटो-नकल से।]

११९. तार : मदनमोहन मालवीय को[1]

वम्वई
(१६ अप्रैल १६२४ या उसके पश्चात्)

आशा है आपके स्वास्थ्य में सुधार हो रहा होगा। स्वास्थ्य का हाल तार-द्वारा सूचित कीजिए। कहीं वाहर जाने के पहले पूरा विश्राम कर लीजिए।

गांधी

—अंग्रेजी। वम्वई, १९।४।१९२४। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रा-वली से।]

१२०. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

ज्येष्ठ सुदी १ (३ जून १६२४)[2]

चि० परसराम,

तुम्हारा पोस्ट कार्ड मीला। रामायण का अभ्यास खूव ध्यान से करना।

---

१. यह तार मालवीय जी के १९ अप्रैल १९२४ के निम्नलिखित तार के उत्तर में भेजा गया था—"खेद है कि अस्वस्यता के कारण अभी एक सप्ताह और वम्वई नहीं आ सकता।"

२. डाकखाने की मुहर से।

एक बार पढ़ने से काफी नहिं होगा। मेरा विश्वास है कि "रामायण" तुमको शांतिप्रद होगा। सब बीमार खरे तो रहे?

बापू के आशीर्वाद

परसराम मेहरोत्रा[1]
यू० पी० खद्दर बोर्ड
कानपुर

—हिन्दी। ३।६।१९२४। सं० गां० वा०, खण्ड २४, पृष्ठ १८२ से।]

१२१. जवाहरलाल के लिए रुक्का

[निम्नलिखित नोट अंग्रेजी में शान्ति-निकेतन से २७।५।२४ को सी० एफ० एण्डरूज-द्वारा जवाहरलाल जी को भेजे गये एक पत्र पर है। जवाहरलाल जी ने ३०।५।२४ को नोट देकर वह पत्र देवदास जी को भेज दिया था कि बापू उसके विषय में क्या सोचते हैं, यह लिखो। एण्डरूज ने आसाम में गांधीजी द्वारा किये गये दौरे से हुई जागृति का उल्लेख किया था और उस सम्बन्ध में अफीम पर एक रिपोर्ट तैयार करने को कहा था। गांधीजी ने उस पर पेंसिल से जो "नोट" लिखा था, उसका हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।—सम्पा०]

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मि० एण्डरूज ने मुझे भी लिखा था। जब स्वयं मेरे-सहित सब कुछ अनिश्चय की स्थिति में है, तब मै कोई निश्चित सलाह नही देना चाहता। कदाचित् मामला हम लोगों के मिलने तक रुका रह सकता है। पर मैं नही जानता।

आशा करता हूँ, इन्दु ठीक होगी।

तुम्हारा
मो० क० गांधी

६।६।२४

—अंग्रेजी से। ६।६।१९२४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित गांधीजी के स्वाक्षरों में लिखा "नोट"।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

---

१. आश्रमवासी और गांधीजी के सचिव।

१२२. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

३ जुलाई १९२४

प्रिय मोतीलाल जी,

आज मैने एक पत्र[1] पढ़ा है। मै उससे बहुत क्षुब्ध हुआ हूँ। मैं सोच रहा हूँ कि इसके बारे में कुछ लिखूँ तो मित्रता के अधिकार का दुरुपयोग तो नही होगा ? मेरी अन्तरात्मा की आवाज कहती है कि मुझे इस प्रश्न का निर्णय स्वयं न करके इसे आप पर छोड़ देना चाहिए। यदि आप इसे दुरुपयोग समझें तो इस अपराध के लिए मुझे क्षमा कर दें और इस पत्र पर कोई विचार न करें।[2] लेखक ने पत्र के साथ ('लीडर' की) एक कतरन भी नत्थी करके भेजी है।[3] इसे मैंने पहले नही पढ़ा था। उनका कहना है कि किसी अन्य सान्ध्य भोज में आपने यह कहा बताते है :—"पानी शुद्ध बताया गया है, किन्तु शराब भबके से तीन बार खीची जाने पर बनती है, इसलिए वह पानी से भी अधिक शुद्ध है।"[4] कृपया मेरी बात का गलत अर्थ न लगाइयेगा। यदि आपने फिर शराब पीना शुरू कर दिया हो तो इस बारे मे मुझे कुछ नही कहना है। यदि यह समाचार विश्वस्त है तो मुझे इससे दुःख हुए बिना नही रह सकता। आपका मद्यपान-विरोधी आन्दोलन चलाते हुए

---

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है। इसमें स्पष्ट रूप से यह कहा गया था कि मोतीलाल नेहरू ने शिमला में एक सान्ध्य भोज में मद्यपान किया। इस भोज में वह मुख्य अतिथि थे। देखिए मुकुन्दराव जयकर की 'द स्टोरी आफ माई लाइफ', खण्ड २।

२. मोतीलाल नेहरू ने १० जुलाई को इसका लम्बा उत्तर देते हुए लिखा था : "मैं प्रारम्भ में ही आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आपके उक्त पत्र को मैं मित्रता के अधिकार का दुरुपयोग नहीं समझता, बल्कि यह जानना आपका अधिकार और कर्त्तव्य समझता हूँ कि आपके द्वारा अपने प्रति सार्वजनिक रूप में अविश्वास प्रकट किये जाने पर भी जो आपके साथ और आपके आधीन काम करने का यथाशक्ति प्रयास कर रहे हैं, उनका आपके प्रति क्या भाव है।"

३. "लीडर" में छपी इस खबर में, जिसको जयकर ने उद्धृत किया है, इस घटना पर व्यंगपूर्ण टिप्पणी की गई थी।

४. इस सम्बन्ध में मोतीलाल जी ने लिखा था कि यह शराब से सम्बन्धित एक फारसी शेर का अभिप्राय भर था।

खुले आम शराब पीना बुरा है और शराबबन्दी का मज़ाक उड़ाना तो इससे भी बुरा है।

मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं पत्र की प्रतीक्षा बड़ी व्यग्रता से करूँगा।

हृदय से आपका
मो० क० गांधी

(पुनश्च:)

मैं जानता हूँ कि यदि कोई आदमी अपने घर शराब पीता है तो वह खुले आम भी पी सकता है फिर भी यदि खुले आम शराब पीने से लोगों की भावना को ठेस लगने की सम्भावना हो तो एक लोक-सेवक को खुले आम शराब नहीं पीना चाहिए। मैं अपने घर शराब पीने और छिपकर शराब पीने में भेद करता[1] हूँ।

मो० क० गांधी

——अंग्रेजी। दि स्टोरी आफ माई लाइफ, खण्ड २-३।७।१९२४। सं० गां० वा० भाग २४, पृष्ठ ३५८-५९।]

१२३. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

२६ जुलाई, १९२४

प्रिय मोतीलाल जी,

नीचे आपके प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूं :

(१) मेरे विचार से अपरिवर्तनवादियों को कौंसिल-प्रवेश के खिलाफ सक्रिय प्रचार करने की पूरी छूट है, लेकिन राष्ट्रीय उद्देश्य की दृष्टि से मैं इसे सर्वथा अवाञ्छनीय मानता हूं।

---

१. श्री मोतीलाल जी ने इसका यह उत्तर दिया था:—"मेरी दृष्टि में यह बात स्पष्ट है कि झूठा दिखावा करके लोगों को धोखा देने से उनकी भावना को ठेस पहुँचाना अधिक अच्छा है। मैं यह बात समझने में बिलकुल असमर्थ हूं कि यदि मुझे शराब पीनी हो तो अपने घर में पीऊँ, आपके ऐसे सुझाव का आपके स्वभाव से कैसे मेल बैठ सकता है! आप घर में शराब पीने और छुपकर शराब पीने में जो अन्तर करते हैं, मैं उससे भी सादर मतभेद प्रकट करता हूँ।"

(२) अगर एक पक्ष ऐसा कोई प्रचार शुरू करदे तो दूसरे पक्ष को भी विरोधी प्रचार करने का उतना ही अधिकार है लेकिन मै तो दोनों से संयम से काम लेने को कहूंगा।

(५)[१] वहुमत के पक्ष से मैं न कुछ कर रहा हूं और न तवतक कुछ करने के लिए ही तैयार हूं, जवतक कि उस काम मे कताई और ऐसी ही दूसरी चीजें शामिल न की जायँ।

(६) अपरिवर्तनवादी लोग चाहे जो करें या न करें, वेशक मै ऐसा मानता हूं कि स्वराज्यवादियों को हर उचित तरीके से अपनी शक्ति वढ़ाने का अधिकार है।

(७क) इन सवको कार्यकारिणी संस्थाएं होना चाहिए। मुझे नही मालूम कि आज वे क्या है। जैसा कि मै आपको वता चुका हूं कांग्रेस को अधिक प्रभावकारी वनाने के खयाल से मै संविधान में कुछ संशोधन करने का सुझाव देना चाहूंगा।

(७ख) मेरा निश्चित मत है कि अगर कांग्रेस को कुछ प्रभावकारी काम करना हो तो इसकी सभी कार्यकारिणी समितियां ऐसे लोगों के हाथ में रहनी चाहिएं, जिनका कांग्रेस के कार्यक्रम में पूरा विश्वास हो और जो फिलहाल कांग्रेस कार्यक्रम पर अमल करें।

मेरा खयाल है कि मौलाना मुहम्मद अली आपके प्रश्नों के उत्तर देंगे। ३० अगस्त को मैं वम्वई में रहूंगा। आशा है, आपके पिछले पत्र के उत्तर में भेजा गया मेरा कार्ड आपको मिल गया होगा।

हृदय से आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। २६।७।१९२४। महादेव देसाई की डायरी से।]
सौजन्य : नारायण देसाई

---

१. प्रश्न ३, ४ के उत्तर उपलब्ध नहीं हैं।

१२४. पत्र : जवाहरलाल को

[संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने स्व० रामदास गौड़ की राष्ट्रीय विद्यालयों में चलनेवाली पोथियों को जब्त कर लिया था। यह पत्र उसी ओर इंगित करता है।—सम्पा०]

२७।७।२४

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मेरी राय में, तुम्हें जब्ती के कारण का पता लगाने के लिए सरकार से पत्र-व्यवहार करना चाहिए, जिसमें तुम कहो कि यदि समिति को सचमुच आपत्तिजनक कोई बात बताई जायगी तो तुम्हारी समिति उन अंशों को निकाल देने के लिए तैयार होगी। यदि सरकार असन्तोषप्रद उत्तर भेजती है, तो तुम उसे सूचित कर सकते हो कि कृतियां बन्द नहीं की जायंगी।

सरकार के बच्चों को छेड़ने की उम्मीद नही है और यदि वह ऐसा करती भी है तो वह सिर्फ इतना ही कर सकती है कि वह बच्चों से किताब ले ले। ऐसी हालत में बच्चो को सलाह दी जा सकती है कि पर्वा न करें और पुस्तकें पुलीस को सौंप दें। मै नही समझता कि इसमें कोई दूसरा दण्ड भी है। कृपया कानून देखकर सूचित करो। मैं अनुभव करता हूं कि हम चाहे जितने भी दुर्बल हो गये हों, यदि हम पर लड़ाई थोपी गई तो हम उससे भाग नही सकते। हम भले ही आक्रामक सविनय अवज्ञा न करें, हम भले ही सामूहिक सविनय अवज्ञा न शुरू करें, किन्तु जो हमारी राह में आता है और हमारी परीक्षा लेता है, उसका सामना तो हमें करना ही पड़ेगा। क्या तुम ऐसा नहीं समझते? लड़ाई कैसे की जाय, यह ऐसा सवाल है जिसका स्थिति की आवश्यकतानुसार तुम्हें निर्णय करना है।

तुम्हारा सच्चा
मो० क० गांधी

२७।७।२४

मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता मत करो। वह ठीक है और मेरे काम लायक है। चर्खे के विषय में तुम्हें पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। मुठिया के लिए तुम्हें बस इतनी ही जरूरत है कि वह काठ की जगह लोहे की हो। सदा लोहे से चलाओ। ज्योंही तुम उसमें लोहे का छल्ला लगा लोगे, तुम देखोगे कि वह बिल्कुल ठीक

चलता है। कृपा करके याद रखो कि केवल कँटियों से यह न होगा। मुठिया का कोई हिस्सा लोहे के एक्जल से रगड़ नही खाना चाहिए।

—अंग्रेजी। साबरमती, २७।७।१९२४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित गांधीजी के पेंसिल से लिखे पत्र से।]
सौजन्य : श्रीमती इंदिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

१२५. पत्र : बाबू भगवानदास को

२७ जुलाई १९२४

प्रिय बाबू भगवानदास,

पत्र के लिए धन्यवाद। विश्वास कीजिए मैं बराबर सोचता रहता हूं कि इस विवाद को कैसे खत्म किया जाय। मै जानता हूं कि दोनो नीतियो के लिए गुंजाइश है। आपने बहुत ही ठीक ही कहा है कि इन दोनों नीतियों को पनडुब्बी और विमान की तरह समझिए। दोनो के कार्य-क्षेत्र अलग-अलग होने चाहिए। तब वे नीतियां एक-दूसरे से टकरायेंगी नही, बल्कि परस्पर मदद पहुँचायेंगी। मैं कांग्रेस से निकल आने का कोई ऐसा उपाय सोच रहा हूं कि निकल भी आऊं और उसकी ज्यादा बात भी न हो। श्री तिलक के समय मुझे अपने तरीकों से काम करने में कोई कठिनाई नही होती थी। मैं जानता हूं, मेरे हृदय में उनके प्रति श्रद्धा थी और वह भी मुझे नापसन्द नही करते थे, बल्कि जहां-कही बन पड़ता, मेरी सहायता ही करते थे।

आपका
मो० क० गांधी

बाबू भगवानदास जी
सेवाश्रम, सिगरा
बनारस कैण्ट

—अंग्रेजी। साबरमती, २७।७।१९२४। महादेव देसाई की हस्तलिखित डायरी से।]
सौजन्य : नारायण देसाई

१२६. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

साबरमती
२६।७।१६२४

प्रिय मोतीलाल जी,

आपके प्रेमपूर्ण पत्र के लिए आभारी हूं। मैं आपकी बात जरूर मान लेता, यदि आपने ही मुझे न कहा होता कि आपके एक वहुत घनिष्ठ मित्र खूब बुखार होने पर भी विधानसभा में बैठे रहे और डाक्टरों की सलाह के बावजूद विधानसभा नही छोड़ी। विधानसभा की चर्चा पूरी होने के बाद भी उन्होंने आराम नहीं लिया। ऐसे घनिष्ठ मित्र को आप नही समझा सके, तो मुझे कैसे समझा सकते है ? हमारी कापियों में शिक्षा का सूत्र होता है कि "कहने से करके दिखाना बेहतर है।" परन्तु मेरे स्वास्थ्य के लिए तो सचमुच जरा भी चिन्ता करने की बात नही। यह बात सच है कि मैंने इतना वजन खोया है, जिससे डर पैदा हो। परन्तु जब काम का दवाव होता है, तव मैं खुराक नहीं ले सकता। उन सभाओं के बीच केवल बैठे रहने का श्रम ही मेरे लिए भारी था। वहुत कामों में मैं व्यस्त नहीं होता तो मैंने गंगा किनारे शान्ति से आराम लेने के आपके सुझाव का उत्साहपूर्वक स्वागत कर लिया होता। परन्तु दिल्ली के लोग मुझे लिखते ही रहते हैं। फिर आश्रम में वहुत से नाजुक सवाल मुझे हल करने है। इस बारे में आपको लिखना मुझे वहुत अच्छा लगता है। लिखकर मैं हलका होता हूं। परन्तु यह सब लिखने का मुझे समय कहां है ? और आप भी यह सव सुनने का वक्त कहां से लायें ? इसीलिए मैं नही लिखता।

आज ही मैं आपको एक जरूरी खत लिखने का विचार कर रहा था, परन्तु कुछ मित्र मिलने की प्रतीक्षा में बैठे हैं, इसलिए आज नहीं लिखा जा सकता। कल लिखने का प्रयत्न करूंगा। मेरा आपसे अनुरोध है कि आपको काम-काज के मामले में कभी भी मुझे कुछ कहने जैसी बात लगे, तो लिखने में संकोच न करें।

मैने मुहम्मद अली को पत्र लिखा है कि आपको जवाब दें। आपको मैंने जो उत्तर लिख भेजे हैं, उनकी नकल मैने उन्हें भेजी है।

सेवक
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, २९।७।१९२४। म० भा० डा० भाग ३ से।]
सौजन्य : श्री नारायण देसाई।

१२७. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

साबरमती
६ अगस्त, १९२४

अति गोपनीय

प्रिय मोतीलाल जी,

मैंने आपको एक महत्व-पूर्ण पत्र लिखने का वादा किया था किन्तु अभी तक लिख नही पाया था। अभी चार दिन पहले मैं लिखने जा ही रहा था कि श्रीमती नायडू का पत्र आ गया, जिसमें उन्होंने सूचित किया था कि वह यहां आ रही है। इसलिए उनके आने तक मैं फिर रुक गया। मैं यह कहना चाहता था कि कांग्रेस आपके नियन्त्रण में आ जाय। इसके लिए मैं आपका रास्ता सुगम बनाने, वास्तव में उसमे आपको सहायता देने के लिए तैयार हूं। लेकिन मतदाताओं को अपने पक्ष में करने का जो अर्थ लगाया जा रहा है, उस अर्थ में मैं उन्हे किसी पक्ष में करने के प्रयत्न में शामिल नही होऊंगा। मैं कांग्रेस से बाहर रहकर काम करने को तैयार हूं किन्तु उसके विरोध मे काम करने के लिए तैयार नही हूं। वातावरण मे शान्ति लाने, खद्दर तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने और अस्पृश्यता को दूर करने के अलावा और किसी बात में मेरी दिलचस्पी नही है। मैं जानता हूं कि इस सब में मुझे आपकी मदद मिलेगी। स्वाभाविक है कि उस काम के लिए मैं अपने अधीन कोई संगठन भी चाहूंगा लेकिन ऐसी किसी इच्छा से नही कि मैं किसी दिन कांग्रेस पर कब्जा कर लूं। आज जैसा वातावरण है, उसमें मैं नही चाहूंगा कि बहुमत प्राप्त करने के लिए विवाद खड़ा हो और उसमें राष्ट्र का समय बर्बाद हो।

अगर आप पूरे कांग्रेस संगठन की बागडोर हाथ में लेने को तैयार न हों तो मैं उन प्रान्तों की कांग्रेस को हाथ में लेने में आपकी मदद करने के लिए बिल्कुल तैयार हूं जहां उसके संचालन में आपको कोई कठिनाई दिखाई न देती हो। आपके कार्यक्रम में शामिल होने की बात को छोड़कर आप और जो कुछ चाहें, मैं करने को तैयार हूं।

फिर कांग्रेस अध्यक्ष का सवाल भी एक बड़ा सवाल है। राजगोपालाचारी, गंगाधर राव और राजेन्द्र बाबू का आग्रह है कि यह पद मैं स्वीकार कर लू। लेकिन वल्लभभाई और शंकरलाल को मेरा यह विचार ठीक जान पड़ता है कि मैं उसे स्वीकार न करूं। जमनालाल तटस्थ हैं और शायद यही स्थिति श्रीमती नायडू की भी है। हां, यह बताना भूल गया कि शौकत अली का भी आग्रह है कि मैं यह

पद स्वीकार कर लूं। लेकिन मैं एक ही हालत में अपने निर्णय पर पुनः विचार कर सकता हूं—यानी अगर आप चाहें कि मुझे यह पद स्वीकार कर लेना चाहिए तो आप कृपया श्री दास, केलकर तथा अन्य सज्जनों से सलाह-मश्विरा करके सूचित करें कि जिन दोनों बातों के बारे में मैंने आपसे पूछा है उन पर आपका क्या सुझाव है।

यह पत्र मैंने श्रीमती नायडू को पढ़कर सुना दिया है।

हृदय से आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, ९।८।१९२४। सं० गां० वा० खण्ड २४, पृष्ठ ५४१-४२।]

१२८. पत्र : तीरथराम जुनेजा को

साबरमती
९ अगस्त, १९२४

प्रिय मित्र,

इस दुःख में आपके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। आत्म-हत्या पाप है और हर एक पाप वियोगकारी होता है। इसलिए आत्म-हत्या करने से तो आपके और आपकी पत्नी के बीच की दूरी बढ़ेगी ही। फिर मृत्यु से समस्या हल भी नहीं होगी, क्योंकि तब आप वहां चले जायँगे जहां जाना आपके भाग्य में लिखा है और वह वहां रहेंगी जहां रहना उनके भाग्य में लिखा है। लेकिन आप इस शरीर को छोड़ने तक खुद को सुधार सकते है। आप उनके शरीर को प्यार करते थे या उसमें प्रतिष्ठित आत्मा को? यदि आप शरीर को प्यार करते थे तब तो आपको चाहिए था कि उस पर मसाले चढ़ाकर उसे अपने कमरे में बन्द करके रखते। यदि उनकी आत्मा को प्यार करते थे तो वह तो अब भी आपके साथ है। उनमें जो कुछ अच्छा था, उसकी स्मृति ही क्या आपके लिए पर्याप्त नही है? या आपका

प्रेम स्वार्थपूर्ण था? जिन्हें हम प्यार करते हैं उनकी मृत्यु के बाद तो हमें ऐसा अनुभव होना चाहिए कि वे हमारे और भी निकट आ गये हैं।

हृदय से आपका
मो० क० गांधी

श्री तीरथराम जनेजा
कानपुर

—अंग्रेजी। साबरमती, ९।८।१९२४।] सं० गां० वा० खण्ड २४, पृष्ठ ५४५।]

- आत्म-हत्या पाप है।
- ...हर एक पाप वियोगकारी होता है।
- जिन्हें हम प्यार करते हैं उनकी मृत्यु के बाद तो हमें ऐसा अनुभव होना चाहिए कि वे हमारे और भी निकट आ गये हैं।

१२९. पत्र : लाला बालकिरण को

साबरमती
१०।८।१९२४

लाला बालकिरण
भास्कर प्रेस
५, कचहरी रोड
देहरादून

प्रिय मित्र,

अमीर (अफगानिस्तान के) को कोई सन्देश भेजने की मेरी इच्छा नहीं होती। मैं चाहता हूं कि मेरा काम ही बोले। इसी तरह उन्हें कोई भेंट भेजने को भी जी नहीं चाहता। मेरे सूत का अलग कपड़ा नहीं बुना जाता।

सेवक
मो० क० गांधी

पुनश्च :

अभी-अभी आपका दूसरा पत्र मुझे मिला। ये त्याग-पत्र मुझे अच्छे लगते हैं। हम सत्य का अनुसरण करते हैं। सत्याग्रह में उत्तेजना नहीं होती,

उसमें ठण्डा निश्चय होता है। अनिश्चित काल तक मैं प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हूं।

—हिन्दी। साबरमती, १०।८।१९२४। म० भा० डा० ३ से।]

सौजन्य : श्री नारायण देसाई।

१३०. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

साबरमती
१५ अगस्त, १९२४

प्रिय मोतीलाल जी,

पत्र के लिए धन्यवाद देता हूं।

मैं अपने मन की सारी बात आपके सामने रख रहा हूं।

मैं जितना ही सोचता हूं मेरी अन्तरात्मा बेलगांव में सत्ता के लिए होने वाली रस्साकशी के खिलाफ उतना ही अधिक विद्रोह करती है। परन्तु मैं कौंसिलों के कार्यक्रम के झमेले में अपने को नहीं डालना चाहता। यह तभी हो सकता है जब स्वराज्यवादी कांग्रेस पर छा जायँ या फिर वे कांग्रेस से हट जायँ। आपको और हमारे मित्रों को इनमें से जो रास्ता ठीक जँचे, मैं उसी पर चलने के लिए बिल्कुल तैयार हूं। मैं कांग्रेस में रहता हूं तो कौसिलों के समर्थक उससे बाहर रहें। मैं तभी आपको मदद पहुंचा सकता हूं, और यदि वे लोग कांग्रेस में रहते है तो फिर मुझे कांग्रेस से व्यवहारतः बाहर हो जाना चाहिए। तब मेरी जो स्थिति १९१५ से १९१८ तक थी, मैं बड़ी खुशी से उसी स्थिति में रह सकूंगा। मेरा उद्देश्य स्वराज्यवादियों की शक्ति को कम करना नही है और उनके काम में अड़चन डालने का तो है ही नही। आप रास्ता सुझाइए, आपकी इच्छानुसार चलने का भरसक प्रयत्न करूंगा। यदि कोई बात बिल्कुल साफ न हो पाई हो तो कृपया लिखिएगा।

मैं मुहम्मद अली के तार पर कल दिल्ली जा रहा हूं।

हृदय से आपका,
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, १५।८।१९२४। सा० सं० में प्राप्त पत्र की फोटो-नकल से।]

१३१. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

बम्बई, ता० ३०।८।१६२४

प्रिय मोतीलाल जी,

आपका मेरे नाम लिखा हुआ पत्र श्रीमती नायडू ने कल दिया। असल पत्र तो साबरमती पहुँचा होगा। आपको लिखे गये दो पत्रो में मैंने पूरी तरह छोड़ देने की अर्थात् जहां तक मैं कर सकता हूं, वहां तक छोड़ देने की तैयारी बताई है। आपको लिखने के बाद बहुत समय पहिले के प्रसंग का मुझे पता चला। इससे भी अधिक छोड़ देने की बात रही होती तो इस प्रसंग की बात सुनने के बाद बाकी चीज भी छोड़ने के बारे में मैंने आपको तार दिया होता।

इसलिए अब आप लगभग अपनी शर्त पर मुझे स्वीकार कर सकते हैं। "लगभग" इसलिए आवश्यक है कि कुछ चीजें ऐसी हैं, जिन्हें अपने प्राणों से और इस दुनिया के तमाम बन्धनों से अधिक मानता हूं। आप राजी-खुशी से और पूरे हृदय से अर्थात् यह मानकर कि यह देना उचित है, मुझे देना चाहते हैं तो मैं इस प्रकार चाहता हूँ।

हमारा प्रस्ताव ऐसा होना चाहिए कि

१. पूर्ण असहयोग के सिद्धान्त और नीति में, विधानसभाओं के बहिष्कार तक में, कांग्रेस को अपना विश्वास फिर से प्रकट करना चाहिए।

२. परन्तु विदेशी कपड़े के सिवा और सब बहिष्कार १६२५ के अन्त तक मुल्तवी रक्खे जायं।

३. सबको कांग्रेस में शामिल होने का निमन्त्रण दिया जाय।

४. साम्राज्य के माल का बहिष्कार उसमें न आना चाहिए।

५. हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी का प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता और हिन्दुओं के लिए अस्पृश्यता-निवारण—इन्ही तक कांग्रेस की प्रवृत्ति सीमित रक्खी जाय।

इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेसियो के नाते उनका विधानसभाओं अथवा बहिष्कारों के साथ कोई सम्बन्ध नही होगा। परन्तु जो विधान-सभा का कार्यक्रम चलाना चाहते हो, और ऐसी दूसरी प्रवृत्तियां करना चाहते हो जो कांग्रेस की प्रवृत्तियो से असंगत न हों, वे कांग्रेस से स्वतन्त्र रूप में अपना अलग संगठन बना लें। अर्थात् प्रस्ताव में स्थगित रक्खे गये कौंसिलों के अथवा अन्य बहिष्कारों के अमल के लिए कोई संगठन नहीं होगा। मौजूदा राष्ट्रीय पाठशालाओं की मदद

जारी रहनी चाहिए। और जहां सम्भव हो, वहां नई पाठशालाएँ भी खोली जायं। परन्तु सरकार के साथ उनका कोई सम्वन्ध न होना चाहिए।

कांग्रेस के सदस्य बनने के लिए चार आने की फीस हटा दी जाय, उसके बजाय जो मनुष्य कांग्रेस का सदस्य बनें, उसे खादी पहनना चाहिए। और सदस्य होने के लिए हर महीने अपना ही काता हुआ कम-से-कम दो हजार गज सूत देना चाहिए। किसी सदस्य को पूरे वर्ष का सूत इकटठा देना हो, तो उसे ऐसा करने की छूट होनी चाहिए।

कांग्रेस को सच्ची और जीवन्त वस्तु बनाने का और कोई उपाय मुझे दिखाई नही देता। और भारत के गरीबों के लिए चर्खे के सिवा और कोई आशा मुझे नजर नहीं आती। साथ ही जबतक हम खुद न कातें, तबतक हम उसके हृदय को हिला नहीं सकते।

मैं संविधान में और कुछ परिवर्तन भी सुझाना चाहता हूं। परन्तु इस समय मैं इसमें नही आऊंगा। यह सिर्फ इसलिए है कि कांग्रेस का काम अधिक कारगर ढंग से और तेजी से हो। हमें यह भी घोषित करना चाहिए कि कांग्रेस की सभी कार्य-समितियों को अमली काम करनेवाली समितियां मानना चाहिए और महा-समिति विचार या सलाह-मशविरा करनेवाली संस्था मानी जाय।

कार्य-समितियों में ऐसे ही आदमी जायँ, जो कांग्रेस के सम्पूर्ण कार्यक्रम से बँधे हुए हों। मेरे प्रस्ताव के अनुसार कार्य-समिति में चुने जाने के लिए आप भी मेरे बराबर योग्य माने जायं। मै जो कहना चाहता हूं, वह यह है कि यदि चार बहिष्कार स्थगित रखे जायं, तो विधान-सभा-प्रवेश अथवा अदालतों में वकालत करना उसमें चुने जाने के लिए वाधक न होना चाहिए। वस्तुतः ऐसा हो सकता है कि वकालत में अथवा कौंसिल में पूरा समय देनेवाले के लिए कार्य-समिति में आना वाञ्छनीय न हो, क्योंकि उसके सदस्य कांग्रेस कार्यक्रम की तीन चीजों को अपना पूरा समय और पूरा ध्यान देनेवाले होंगे।

मेरी योजना में बंगाल का कोई अपवाद नही हो सकता। वस्तु-स्थिति यह होगी कि प्रत्येक प्रान्त में काग्रेस की तरफ से किसी भी प्रकार की वाधा या कठिनाई के विना स्वराज्यवादी अपना संगठन पूरी तरह कर सकेंगे। परन्तु कांग्रेस संस्था का प्रत्येक स्थान पर एक ही कार्यक्रम होगा। इसलिए दासबाबू कांग्रेस संगठन को स्वराज्य संगठन में परिवर्तित कर सकेंगे और केवल तीन कार्य-क्रमोंवाला कांग्रेस संगठन दूसरों को करने देंगे या स्वयं करेंगे। विचार यह है कि जिस तरह कांग्रेस दूसरे संगठनों को सहायता न पहुंचाये, उसी तरह उनमें वाधा भी न डाले, परन्तु दूसरे संगठनों में यदि कांग्रेसी सदस्य होंगे, तो उन्हें कांग्रेस के

कार्यक्रम की सहायता करनी होगी। इसके विपरीत जो कांग्रेसी कांग्रेस-द्वारा वर्जित अन्य वस्तुओं को मानते होंगे, वे अपनी अन्य प्रवृत्तियों के लिए दूसरे संगठनों में शामिल हो सकेंगे।

० ० ०

काम-काज के बारे में मैं देख सकता हूँ, उसके अनुसार सदस्य बनने की योग्यता का मापदण्ड शायद बाधक सिद्ध हो। परन्तु मैं आशा रखता हूं कि आप यह स्वीकार करेंगे कि यदि हम सब खादी को एक आर्थिक आवश्यकता के रूप में मानते हो तो मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करना जरूरी है।

आप देखेंगे कि मुझे जैसे विचार आते गये, वैसे इस पत्र में लिख डाले हैं। अपनी चिन्ता मैं नही करता, क्योंकि आप जितना करने देंगे उतना ही मुझे करना है।

स्नेहाधीन
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। बम्बई, ३०।८।१९२४। म० भा० डा० भाग ३ से।]
सौजन्य : श्री नारायण देसाई

१३२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सावरमती, ता० ६।९।१९२४

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा तार मिला। पिता जी की ओर से भी मुझे तार और पत्र मिले है। जो कुछ हुआ, उसके लिए मुझे खेद है। मैंने सोचा था कि अपनी भावना की उत्कटता बताने के लिए मैं एक निर्दोष पत्र लिख रहा हूं।

० ० ०

मैंने पिता जी से प्रार्थना की है कि मेरे प्रस्ताव के गुण-दोष पर ही वह मुझे अपने विचार बतायें। स्वराज्य दल के बहुत मित्रो के साथ मैंने इसकी चर्चा कर ली है। कठिनाई मे से और कोई सम्मानपूर्ण मार्ग मुझे दिखाई नही देता। इस बारे में उनका क्या खयाल है, मुझे लिखना।

नाभा का जवाब उनके दृष्टिबिन्दु से तो पूरा और आखिरी था। उन्हें एक ही उत्तर दिया जा सकता है कि कैद करने की उनकी चुनौती स्वीकार कर ली जाय। परन्तु वर्तमान स्थिति में यह कदम उठाना समझदारी का काम नही

दीखता। इसलिए उत्तम वात यह है कि मौन रखकर और अधिक अच्छे अवसर की प्रतीक्षा की जाय।

अमेठी के वारे में तुमने जल्दी ही विवरण भेजा, वह मुझे मिल गया। गुलवर्गा की घटनाओं की जाँच करने के लिए मैंने श्वेव और कृष्णदास को खानगी तौर पर भेजा है। तुम यथाशक्ति जल्दी साँभर जाओ। अपने साथ...को और...को (ये नाम पढ़े नहीं जाते) लेते जाना। वे वहां के जानकार जरूर होंगे। मुहम्मदअली कोई खास प्रगति नहीं कर सके, इसलिए मेरे कार्यक्रम के सम्वन्ध में कुछ कहना कठिन है। सोमवार तक तो यहां हूं ही।

वापू के आशीर्वाद

—हिन्दी। सावरमती, ६।९।१९२४। म० भा० डा० भाग ३ से।]
सौजन्य : श्री नारायण देसाई

१३३. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

सावरमती
६।९।१९२४

प्रिय मोतीलाल जी,

आपका पत्र मुझे कल सूरत में मिला। आपके तार का उत्तर मैंने संक्षेप में वम्वई से दिया था। आपके पत्र के जवाव में कल एक संक्षिप्त तार दिया है। मेरे पत्र से आपको वुरा लगा, इसका मुझे अफसोस है। मुझे क्षमा कीजिए। मैंने जो सुना, उसे मैं अपने मन में ही रक्खूं, इसके वजाय आपसे कह देना क्या वेहतर नही? क्या मेरा कहना आप मानेंगे कि मेरे आस-पास वाले शायद ही कभी मेरे साथ वोलते भी हैं?

मेरे प्रस्ताव का उसके गुणों पर से आप विचार करें। इस प्रकार विचार करके मुझे आभारी करेंगे? आप जानते हैं कि श्रीमती वेसेण्ट तथा श्री जयकर और श्री नटराजन के साथ मैंने इसकी चर्चा कर ली है। पूना के स्वराज्यवादियों के साथ भी मैंने इसकी चर्चा की है। मेरा प्रस्ताव मंजूर हो या न हो, परन्तु मेरा निर्णय तो अन्तिम है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कांग्रेस में मतगणना कराकर फूट डालने में मैं कारणीभूत नही वनूंगा। जो कुछ हो, सो समझौते से होना चाहिए।

आपका तार मिला। जो कुछ ऊपर लिखा है, उसमें कुछ भी जोड़ने की जरूरत मुझे दिखाई नहीं देती।

आपका

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, ६।९।१९२४। म० भा० डा० भाग ३ से।]

सौजन्य : श्री नारायण देसाई

१३४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[जवाहरलाल जी अपने पिता के लाडले थे। बचपन से उन पर बहुत व्यय किया जा रहा था। किन्तु असहयोग-काल में वकालत छोड़ देने के कारण मोतीलाल जी की आय का स्रोत बन्द हो गया था। खर्चे बहुत कुछ वैसे ही थे। इसलिए जवाहरलाल जी के मन में इस बात को लेकर बड़ा द्वन्द्व चलता था कि वह अपने पिता के ऊपर भार-रूप हैं। उनकी इच्छा थी कि वह अपने पैरों पर खड़े हों। इसके लिए उन्होंने गांधीजो से मार्ग-प्रदर्शन की प्रार्थना की। उधर मोतीलाल जी को जवाहरलाल जी की मनःस्थिति से अलग चिन्ता हुई। गांधीजो का यह पत्र जवाहरलाल के ऐसे हो पत्र के उत्तर में है।—सम्पा०]

१५ सितम्बर, १९२४

प्रिय जवाहरलाल,

दिल को छूनेवाला तुम्हारा निजी पत्र मिला। मैं जानता हूं कि इन सब चीजों का तुम बहादुरी से सामना करोगे। अभी तो पिता जी चिढ़े हुए हैं और मैं बिल्कुल नही चाहता कि तुम या मैं उनकी झुँझलाहट बढ़ाने का जरा भी मौका दें। सम्भव हो तो उनसे जी खोलकर बातें कर लो और ऐसा कोई काम न करो, जिससे वह नाराज हों। उन्हें दुःखी देखकर मुझे दुःख होता है। उनकी झुँझलाहट उनके दुःख की अचूक निशानी है। हसरत[1] आज यहां आये थे। उनसे पता चला कि हर कांग्रेसी के कातने-सम्बन्धी मेरे प्रस्ताव से भी उन्हें अशान्ति होती है। मुझे ऐसा महसूस होता है कि कांग्रेस से हट जाऊं और चुपचाप तीनों काम करने लगूं। उनमें जितने भी सच्चे स्त्री-पुरुष मिल सकते हैं उन सबके खपने की गुंजाइश है। किन्तु इससे भी लोगो को अशान्ति होती है। पूना के स्वराज्यवादियों

---

१. उर्दू के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि, कानपुर के मौलाना हसरत मोहानी।

से मेरी लम्बी बात-चीत हुई। वे कातने को भी जरा राजी नहीं और मेरे कांग्रेस छोड़ देने से भी सहमत नही। उनकी समझ में यह नही आता कि ज्योंही मै अपना स्वरूप छोड़ दूंगा, मेरा कोई उपयोग नहीं रह जायगा। यह भद्दी स्थिति है, किन्तु मैं निराश नही हूं। मेरा ईश्वर पर विश्वास है। मैं तो इतना ही जानता हूं कि इस घड़ी मेरा क्या धर्म है। इससे आगे का मुझे मालूम ही नही। फिर मै क्यों चिन्ता करूं?

क्या तुम्हारे लिए कुछ रुपये का प्रबन्ध करूं? तुम कुछ कमाई का काम हाथ में क्यों न ले लो? आखिर तो तुम्हें अपने ही पसीने की कमाई पर गुजर करनी होगी, भले ही तुम पिता जी के घर में रहो। कुछ समाचारपत्रों के सम्वाद-दाता बनोगे? या अध्यापकी करोगे?

प्रेम सहित, तुम्हारा
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। १५।९।१९२४।]

१३५. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

दिल्ली, ता० १७।९।१९२४

प्रिय मोतीलाल जी,

आपका तार मिला। थोड़े समय तो अभी मै दिल्ली में ही हूं। इसलिए आप और दासबाबू जब आयें, तब आपसे मिलकर मुझे आनन्द होगा। जिसे आखिरी छलांग कहा जा सकता है, वह मैंने तो लगा दी है। आज से मेरे इक्कीस दिन के उपवास शुरू होते हैं। मैने धर्म को इसी प्रकार पहचानना सीखा है।

आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। दिल्ली, १७।९।१९२४। म० भा० डा० भाग ३ से।]
सौजन्य : श्री नारायण देसाई

१३६. पोस्टकार्ड : जवाहरलाल नेहरू को

१७।९।२४[1]

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

कृपया गोरखपुर कमेटी से कहो कि इस समय मैं (कार्यक्रम के लिए) कोई समय देने की जुर्रत नहीं कर सकता। मुझे खुशी है कि 'मावटना' हमारी कारगुजारी की चीज नहीं है। क्या तुम ऐसे ठोस उदाहरण दे सकते हो जहां मुसलमानों ने चमारों के लिए एतराज किया हो? क्या वे दूसरे हिन्दुओं को सुविधा देते है?

तुम्हारा सच्चा

१७।९।२४ मो० क० गांधी

टिप्पणी—कार्ड पर पता है : पं० जवाहरलाल नेहरू, आनन्द भवन, इलाहावाद। उस पर दिल्ली आर० एम० एस० १७ सिदम्बर, २४ साढे सात बजे शाम की मुहर है।

—अंग्रेजी। दिल्ली, १७।९।१९२४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित गांधीजी की हस्तलिखित प्रति से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय, नई दिल्ली

१३७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[१९२४ ई० में बढ़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य से क्षुब्ध होकर गांधीजी ने तीन सप्ताह का उपवास किया था। निम्नलिखित पत्र उसी सन्दर्भ में लिखा जान पड़ता है।—सम्पा०।]

---

१. इसी दिन गांधीजी ने बढ़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के कारण दिल्ली में २१ दिन का उपवास शुरू किया था। इस पत्र के लिखने के बाद ही यह निश्चय हुआ होगा। इसी दिन महादेव भाई ने जवाहरलाल जी को निम्नलिखित तार दिया था—"पं० जवाहरलाल नेहरू, इलाहावाद। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के लिए बापू ने प्रायश्चित्त रूप २१ दिन के उपवास की घोषणा की है। —महादेव।" इलाहावाद तार-घर में यह तार १३ बजकर ११ मिनट (दिन में १-११) बजे पहुँचा था।

१६ सितम्बर, १६२४

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हें स्तब्ध नहीं होना चाहिए, बल्कि हर्ष मनाओ कि ईश्वर तुम्हें अपना कर्त्तव्य पालन करने का बल और आदेश दे रहा है। मै और कुछ कर ही नही सकता था। असहयोग के प्रवर्त्तक की हैसियत से मेरे कन्धों पर भारी जिम्मेदारी है। लखनऊ और कानपुर में क्या छाप पड़ी, यह मुझे जरूर लिख भेजो। मुझे यह प्याला पूरा पी लेने दो। मुझे पूर्ण आन्तरिक शान्ति है।

प्रेम सहित

तुम्हारा

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। १९।९।१९२४। 'ए बंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

१३८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

१२।११।२४

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे यह बात जरूरी लगती है कि हमारे पास हिन्दू और मुसलमान कार्यकर्त्ताओं की एक द्रुतगामी टुकड़ी होनी चाहिए जो क्षणभर की सूचना पर प्रभावित क्षेत्रों में जाँच के लिए जा सके। हमें सदा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के ही जाने की राह नही देखनी चाहिए। उदाहरण के लिए कल जो मामला तुम्हारे पास भेजा गया है उसे ही लो। यदि उसमें दिये गये बयान ठीक है, तो अपराधियों का पर्दा फाश हो जायगा। यदि वे झूठे है तो समाचारपत्रों के सम्वाददाता दोषी सिद्ध होंगे। जाँच-कार्य तुरन्त और मुकम्मिल होने चाहिए। मैं महादेव[1] को इस काम के लिए तैयार कर रहा हूं और प्यारेलाल[2] को भी इसके लिए राजी करना चाहता हूं, जो अनावश्यक रूप से झिझक रहा है। क्या मंसूर अली यह काम करेंगे? उन्हें इसके लिए उजरत दी जा सकती है। उन्हें पारिश्रमिक लेने पर कोई एतराज नही होना चाहिए। उनके चर्खे के काम में बाधा पड़ने की जरूरत नहीं। उनका कार्यक्षेत्र संयुक्त प्रान्त तक ही सीमित रखा जा सकता है, यद्यपि मैं तबतक इस प्रकार

---

१. स्व० महादेव देसाई।

२. प्यारेलाल नैयर, गांधीजी के संयुक्त निजी सचिव।

के प्रतिबन्ध लगाने को तर्जीह न दूंगा जबतक हमें इस क्षेत्र में काम करने के लिए कार्यकर्त्ताओं की एक सेना न मिल जाय।

जो मामला कल तुम्हारे पास भेजा गया है, उसके लिए मुझे आशा है, तुम तुरन्त किसी को भेजोगे। उस मामले का क्या हुआ जो कुछ हफ्ते पहिले तुम्हे भेजा गया था?

तुम्हारा सच्चा

१२।११।२४ मो० क० गांधी

मैं मान लेता हूं कि तुम पिता जी के साथ बम्बई में, यदि और पहिले नहीं तो गुरुवार की सुबह तो आही जाओगे। मैं उसी दिन सुबह (वहां) पहुंचूंगा। श्रीमती नायडू यहां से कल रवाना हो रही हैं।

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी से। १२।११।१९२४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

१३९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

१६ नवम्बर, १९२४

प्रिय जवाहरलाल,

यह पंक्ति इस मंगल-कामना के साथ लिख रहा हूं कि मातृभूमि की सेवा और आत्म-दर्शन के हेतु यह शुभ दिन बार-बार आता रहे।

सम्भव हो तो पिता जी को लेकर जरूर आना।

सस्नेह तुम्हारा
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। १६।११।१९२४। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौज़न्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

१४०. तार : जवाहरलाल नेहरू को

[नवम्बर १९२४ में जवाहरलाल एवं कमला जी को एक पुत्र पैदा हुआ था किन्तु एक ही सप्ताह में चला गया। यह तार उसी अवसर पर दिया गया था।—सम्पा०]

साबरमती
२८ नवम्बर, १९२४

नेहरू, इलाहाबाद

बालक की मृत्यु से दुःख हुआ। ईश्वरेच्छा बलीयसी।

—गांधी

[अंग्रेजी। साबरमती, २८।११।१९२४। 'ए बंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

१४१. तार : मदनमोहन मालवीय को

९ फरवरी, १९२५

पण्डित मालवीय
बिड़ला भवन
दिल्ली

गोरक्षा संविधान की क्या स्थिति है? आशा है आप आज रावलपिंडी जा रहे हैं।

—गांधी

[अंग्रेजी। ९।२।१९२५। सं० गां० वां० खण्ड २६, पृ० ११९।]

१४२. तार : मदनमोहन मालवीय को

जैतपुर
१६ फरवरी, १९२५

मालवीय जी
विड़ला भवन
दिल्ली

आपके लिए नकलें मुहैया कर रहा हूं।[1] आशा है आप रावलपिण्डी[2] हो आये होंगे।

गांधी

—अंग्रेजी। जैतपुर, १६।२।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २६, पृ० १५२।]

१४३. तार : मोतीलाल नेहरू को

पोरबन्दर
२० फरवरी, १९२५

पण्डित नेहरू
वेस्टर्न होस्टल
दिल्ली

मेरी राय में डा० बेसेण्ट अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर सकती हैं।

गांधी

—अंग्रेजी। पोरबन्दर, २०।२।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २६, पृष्ठ १७१।]

---

१. पत्र की।

२. देखिए "तार : मदनमोहन मालवीय को" ९।२।१९२५।]

१४४. तार : मोतीलाल नेहरू को[1]

२३ फरवरी, १९२५

लाला जी को तार भेजा है। अन्य सदस्यों की राय लिये विना मुल्तवी नही कर सकता। वैठक होनी चाहिए।

गांधी

—अंग्रेजी। २३।२।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २६, पृष्ठ १८४।]

१४५. पत्र : शौकत अली को

सावरमती
२३ फरवरी, १९२५

प्यारे दोस्त और भाई,

मैंने आज कोहाट-सम्वन्धी अपने वक्तव्य पर आपकी टिप्पणी पढ़ी। आपकी स्पष्टवादिता से मेरे दिल में आपके प्रति और भी ज्यादा प्रेम और सम्मान पैदा हो गया है। पर आपकी टिप्पणी से यह जाहिर होता है कि कभी-कभी हम लोगों की तरह परस्पर इतने घनिष्ट सम्वन्व रखनेवाले व्यक्ति भी पूरी तौर पर तटस्थ और निष्पक्ष रहने के वावजूद, हुवहू एक-से तथ्यों के आवार पर भी, सर्वथा विपरीत निष्कर्षो पर पहुँच जा सकते है। इससे मैं अपने विरोवियों के प्रति पहले से ज्यादा उदार और अपने निर्णयों के प्रति और अविक अविश्वस्त वन गया हूं। टिप्पणी दूसरी वार भी गौर से पढ़ ली है और मैंने देखा है कि इस मामले में मेरे और आपके विचारों के वीच वहुत ही चौड़ी खाई है। मैं कविता के प्रकाशन की जोरदार शब्दों में निन्दा करने को तैयार हूं, किन्तु लूटमार तथा आगजनी को मैं माफ़ नही कर सकता। मैं आपकी इस राय की पुष्टि नहीं करता कि उपद्रवों का कारण पुस्तिका थी। उसकी पृष्ठभूमि तो पहले ही तैयार हो चुकी थी। मैं उन धर्म-परिवर्तन के मामूलों को उतना मामूली नही मान सकता जितना आप मानते है। मेरी राय में खिलाफती लोगों ने अपने कर्त्तव्य की वुरी तरह उपेक्षा की है और मौलवी अहमद गुल ने निश्चय ही, उन पर जो विश्वास किया जाता था, उसका घात किया है।

---

१. यह २३ फरवरी को मिले, मोतीलाल नेहरू के एक तार के उत्तर में भेजा गया था।

मैं ये सब बातें आपकी राय को, यदि उसके बदले जाने का आप कोई कारण न माने तो, बदलने के लिए नहीं कह रहा हूं। किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि आपने तथ्यों पर जितनी गहराई से गौर किया है उससे ज्यादा गहराई तक आप जायें और देखें कि क्या फिर से गौर करने की जरूरत है। मैं आपका वक्तव्य प्रकाशित करने के विचार तक से काँप उठता हूं। उसके प्रकाशन से कटुतापूर्ण विवाद छिड़ जायगा। इसलिए मै तो यह भी सुझाव दूंगा कि हकीम साहब या डा० अंसारी पूरे मामले की जांच कर लें। इस प्रश्न पर कोई नये विचार या तथ्य सामने आये तो मुझे बड़ी ही खुशी होगी। मैं यह भी चाहूंगा कि सभी मित्र तथ्यों पर विचार करें और हम दोनों को अपनी-अपनी राय बदलने को प्रेरित करें। लेकिन यदि एक ही निष्कर्ष पर पहुँचने के हमारे सभी उपाय विफल हो जायँ तो हमे जनता के समक्ष अपने मतभेद प्रस्तुत करने और उस पर यह बात जाहिर कर देने का साहस अवश्य करना होगा कि इन मतभेदों के बावजूद हम दोनों के बीच प्रेम बना रहेगा, और हम साथ-साथ काम करते रहेंगे। किन्तु इसी प्रेम का तकाजा है कि हम जल्दबाजी में कोई कदम न उठायें। क्या आप दिल्ली आ रहे हैं? यदि आ रहे हैं तो क्यों न हम साथ-साथ सफर करें? मैं २६ तारीख को छोटी लाइन से रवाना होऊँगा। यदि आप आ रहे हों और आप पंजाब मेल से रवाना हो सकें, तो मै आपको बड़ौदा में मिल जाऊँगा। अच्छा हो कि हमारी बातचीत फुरसत से हो। और ऐसी बातचीत के लिए तो मुझे रेलगाड़ी ही सबसे अच्छी जगह जान पड़ती है। आप जो निश्चित करें उसकी सूचना अवश्य दीजिए, और हो सके तो तार दीजिए। वक्तव्य को मै इस सप्ताह प्रकाशित नहीं कर रहा हूं।

सस्नेह

आपका

मो० क० गांधी

(पुनश्च :)

मुझे खुशी हुई कि आप डा० कूने की पद्धति से इलाज कर रहे है। निश्चय ही आपको काफी व्यायाम की जरूरत है।

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। मस्विदे साबरमती, २३।२।१९२५, सं० गां० वा० खण्ड २६, पृष्ठ १८४-८५।]

१४६. तार : अब्दुल मजीद को

दिल्ली
२८ फरवरी, १९२५

ख्वाजा साहब अब्दुल मजीद
अलीगढ़

आशा है कल सुबह आप यहाँ जरूर पहुँच जायँगे। मै शायद कल शाम चल दूँगा।

गांधी

—अंग्रेजी। दिल्ली, २८।२।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २६, पृष्ठ २०१।]

१४७. तार : मदनमोहन मालवीय को

बम्बई
२६ मार्च, १९२५

पण्डित म० मो० मालवीय
बिड़ला मिल
दिल्ली

गोरक्षा बैठक बाईस अप्रैल को बम्बई में बुलाने का विचार। अनुकूल हो तो साबरमती तार दें।

गांधी

—अंग्रेजी। बम्बई, २६।३।१९२५।]

१४८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

२५ अप्रैल, १९२५

प्रिय जवाहरलाल,

मै तीथल में हूं। यह जगह कुछ-कुछ जूहू जैसी है। यहां मैं बंगाल की अग्नि-परीक्षा के लिए तैयार होने को चार दिन से आराम ले रहा हूं। मैं यहां अपना पत्र-व्यवहार निपटाने की कोशिश कर रहा हूं। उसमें तुम्हारा वह पत्र भी है,

जिसमें 'ईश्वर और काग्रेस' शीर्षक लेख का जिक्र है। तुम्हारी कठिनाइयों में मेरी सहानुभूति तुम्हारे साथ है। चूंकि सच्चा धर्म जीवन में और संसार मे सबसे बड़ी चीज है, इसलिए इसी का सबसे अधिक दुरुपयोग किया गया है, और जिन लोगो ने इन शोपको और शोपण को तो देखा और वास्तविकता को नही देख पाये, उन्हें स्वभावतः इस वस्तु से ही अरुचि हो गई। परन्तु धर्म तो आखिर प्रत्येक व्यक्ति की वस्तु है और वह भी हृदय की वस्तु है, फिर चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारो। जो चीज मनुष्य को घोर ज्वालाओं के बीच अधिक-से-अधिक सान्त्वना देती है वही ईश्वर है। कुछ भी हो, तुम सही रास्ते पर हो। बुद्धि ही एकमात्र कसौटी हो तो भी मुझे पर्वा नही। हालांकि उससे प्रायः मनुष्य पथभ्रष्ट हो जाता है और ऐसी गलतियाँ कर बैठता है जो लगभग अन्धविश्वास के निकट पहुँच जाती हैं। गोरक्षा मेरे लिए केवल गाय को बचाने से कहीं बड़ी चीज है। गाय तो प्राणि-मात्र का केवल प्रतीक है। गोरक्षा का मतलब है दुर्बलो, असहायों, गूंगों और बहरों की रक्षा। फिर तो मनुष्य सारी सृष्टि का प्रभु और स्वामी न रह कर सेवक बन जाता है। मेरी दृष्टि में गाय दया का जीता-जागता उपदेश है। फिर भी हम तो गोरक्षा के साथ निरा खिलवाड़ करते है, किन्तु हमें शीघ्र ही वस्तु-स्थिति के साथ जूझना पड़ेगा।

आशा है, मेरे पिछले सब पत्र तुम्हें मिल गये होगे। डा० सत्यपाल[1] का एक दुःखभरा पत्र मुझे मिला है। काश तुम, भले कुछ ही दिन के लिए सही, पंजाब जा सको। तुम्हारे जाने से उनका उत्साह बढ़ेगा। मै चाहता हूं कि पिता जी दो महीने किसी शान्त और ठण्डे स्थान पर रहें, और तुम हफ्ते-दस दिन के लिए अल्मोड़ा क्यों नही चले जाते, ताकि काम के साथ-साथ ठण्डी हवा में भी साँस ले सको ?

सस्नेह, तुम्हारा
बापू

—अंग्रेजी। २५।४।१९२५। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

● मेरी दृष्टि में गाय दया का जीता-जागता उपदेश है।

---

१. तत्कालीन पंजाब के एक प्रसिद्ध नेता।

१४९. पत्र : राजा महेन्द्रप्रताप को

१५ जून, १६२५ या उससे पूर्व

आप मुझे जब-तब लिखते रहे है। मैं जानता हूँ कि जीवन के बारे में हमारे दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है। मै जानता हूँ कि जितने लोग हैं उतने ही सोचने के तरीके है। लेकिन जैसे एक ही समय में, एक ही परिस्थिति में और एक ही जगह पर सर्दी और गर्मी का साथ-साथ रहना सम्भव नही, इसी तरह एक ही समय, स्थान और एक ही परिस्थिति में हिंसा और अहिसा का एक साथ रहना असम्भव है।

हृदय से आपका,
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। १५।६।१९२५।]

१५०. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

बारीसाल
१५ जून, १६२५

प्रिय पण्डित जी,

आपके पत्र मे जवाहर को फिर से बुखार आने की वात पढ़कर मुझे बड़ा सन्ताप हुआ। आशा है कि पत्र लिखने के बाद आप दोनों शीघ्र ही स्वस्थ हो गये होंगे और अव स्फूर्तिदायक जलवायु का आनन्द ले रहे होंगे।

ख्वाजा के[1] सम्बन्ध में मैने आपको तार[2] दे दिया है। वह मुझ पर जिम्मेदारी डालने की गलती कर रहे है लेकिन अगर उन्हें यह करना ही हो तो मैं क्या कह सकता हूं? परन्तु उनके स्थान पर वैठ कर मै करूँ क्या? यदि जामिया असहिष्णुता की भावना पैदा करती है, तो यह ख्वाजा का ही तो दोष है। वह उसके प्रधान हैं। उसकी शुरुआत भले-से-भले मुसलमानों ने की थी। अगर उसमें बुराई आ गई हो तो सुधार किया जा सकता है, लेकिन मेरी राय में उसकी तरफ से ऐसी लापरवाही नही की जानी चाहिए कि वह खत्म ही हो जाये। इसलिए उसे ख्वाजा का पूरा समय और ध्यान माँगने का हक है और तभी वह फल-फूल

१. जामिया मिलिया इस्लामिया, अलीगढ़ के ए० एम० ख्वाजा।
२. यह तार उपलब्ध नहीं है।

सकती है। ख्वाजा केवल नाम के प्रधान तो नही है। वह तो इस आन्दोलन के प्राण हैं। वह प्रशासक भी है। इसलिए मैं सिद्धान्त के आधार पर नहीं, नीति के आधार पर ही आपत्ति उठा रहा हूं और इस मामले में अभी नीति तो सिद्धान्त से भी अधिक महत्व रखती है। ख्वाजा के सामने अब चुनाव कराने का बस यही मार्ग रह गया है कि वह कालेज के लिए अपने समान ही योग्य अन्य व्यक्ति ढूंढ़ लें।

और फिर मैं अकेला ही तो सलाह देनेवाला नही हूं। ख्वाजा यदि अली-बन्धुओं से मशविरा न करें तो भी हकीम साहब और डा० अन्सारी से तो करना पड़ेगा। वे उनके सह-न्यासी है। आशा है कि अब आप मेरी कठिनाई समझ गये होंगे। मुझे लगता है कि मै पूरे दिल से इस पक्ष की मदद कर रहा हूं। मैं अपने मित्रो के सन्तोष को बड़ा महत्व देता हूं, पर मैं इस संस्था की सहायता अपने मित्रों के सन्तोष की अपेक्षा अपने स्वयं के सन्तोष के लिए ही अधिक करना चाहता हूं।

अगर इससे उन्हें स्वतन्त्र निर्णय करने में मदद मिल सके तो आप इस पत्र को ख्वाजा को दिखा सकते हैं।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

पुनश्च :

आशा है कि आपके पहले पत्र के उत्तर में लिखा मेरा पत्र आपको मिल गया होगा।[1]

—अंग्रेजी। बारीसाल, १५।६।१९२५। महादेव देसाई की डायरी से।]
सौजन्य : नारायण देसाई।

---

१. गांधीजी ने २३ मई को ख्वाजा को एक पोस्टकार्ड लिखा था लेकिन वह उपलब्ध नही है। २५ को इसकी प्राप्ति-स्वीकार करते हुए, ख्वाजा ने लिखा था "पण्डित मोतीलाल नेहरू मुझे राज्य परिषद् के लिए खड़ा करने पर जोर दे रहे हैं। मैने आपके आदेश की माँग की थी, क्योंकि मैने उन्हें लिखा था कि मैंने एक वर्ष तक के लिए अपनी सेवाएँ आपकी मरजी पर छोड़ दी है। आपकी अनुमति के बिना मैं कुछ भी नहीं करूँगा। पहाड़ जाते समय रास्ते में पण्डित जी से मेरी मुलाकात हो गई और उन्होंने आपकी इजाजत लेने की जिम्मेदारी अपने पर ले ली है, किन्तु मैंने आपसे कोई आदेश मिले बिना इसकी घोषणा नही की है।"

१५१. तार : मुहम्मद अली को

खुलना
१७ जून, १९२५

दिल्ली के उपद्रवों के सिलसिले में दोषी या अपराधी कौन इस पर कुछ कहना नहीं चाहता। आपकी सत्यनिष्ठा और धर्मपरायणता पर पूरा-पूरा विश्वास है। ईश्वर हम सब का पथप्रदर्शन करे।

गांधी

—अंग्रेजी। खुलना, १७।६।१९२५। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१५२. तार : मोतीलाल नेहरू को

कलकत्ता
(१८ जून, १९२५)[1]

पण्डित मोतीलाल जी नेहरू
हर्स्ट लाज
डलहौजी

मैं यहाँ आपके प्रतिनिधि के रूप मे हूँ। जानते-बूझते कोई ऐसा काम नही करूँगा जो आपको नापसन्द हो। वासन्ती देवी के पास से हिलता नही हूं। कृपया विश्राम कीजिए, कोई जोखिम मत उठाइए। आपको पूरी ताकत आ जाने पर ही पहाड़ों से लौटना चाहिए। श्रद्धांजलि-सभा तक तो कलकत्ता में रुकूंगा ही। तार-द्वारा सूचित कीजिए कि स्वास्थ्य में कितना सुधार हो पाया है। क्या जवाहरलाल वहीं है?

गांधी

—अंग्रेजी। कलकत्ता, १८।६।१९२५। सा० सं० में सुरक्षित पत्रावली से।]

---

१. चित्तरंजन दास के अस्थि-अवशेष इसी दिन कलकत्ता पहुँचे थे।

१५३. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

[स्वराज्य-कौंसिल तथा कार्य-समिति की बैठक और महासमिति के वहाँ मौजूद सदस्यों के साथ पारस्परिक परामर्श के वाद गांधीजी ने नीचे लिखा पत्र पण्डित मोतीलाल जी के नाम भेजा।—सम्पा०]

कलकत्ता, १९ जुलाई (१९२५)

प्रिय पण्डित जी,

इन कुछ दिनों से मै यह सोच रहा हूं कि देशबन्धु की यादगार मे और लार्ड वरकनहेड के भाषण से उत्पन्न स्थिति पर मै अपने अकेले की तरफ से कौन-सा काम करूं और मै इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि मैं स्वराज्य-दल को पिछले साल के ठहराव के वन्धन से मुक्त कर दूँ। इस कार्य का फल यह होगा कि अव आगे महासभा के मुख्यतः कताई-संघ रहने की आवश्यकता नही। मैं मानता हूँ कि उस भापण से उत्पन्न परिस्थिति में स्वराज्य-दल की सत्ता और प्रभाव बढ़ाने की आवश्यकता है। और यदि मैं अपने वस भर उस दल को मजवूत वनाने के लिए एक भी काम से विमुख रहूँगा तो मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत होऊँगा। यह तभी हो सकता है जव महासभा मुख्यतः राजनीतिक संस्था हो जाय। मौजूदा ठहराव के अनुसार महासभा का कार्य रचनात्मक कार्यक्रम तक ही परिमित है। मैं समझता हूँ कि अव परिवर्तित दशा में, जो देश के सामने है, इस कैद के कायम रहने की आवश्यकता नही। इसलिए मैं स्वयं ही आपको इस वन्धन से मुक्त नही करता वल्कि मैं आगामी महासमिति से भी कहना चाहता हूं कि वह भी ऐसा ही करे और महासभा की सारी सत्ता आपके हवाले कर दे जिससे कि आप उसमें ऐसे राजनीतिक प्रस्ताव ला सके जिन्हें आप देश-हित के लिए आवश्यक समझते हैं और जिन-जिन मामलों मे मैं अपनी अन्तरात्मा को सामने रखकर आपकी सेवा और स्वराज्य-दल की सेवा कर सकता हूं उन उन में मुझे सदा आप अपना ही समझिएगा।

आपका स्नेहांकित
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। कलकत्ता, १९।७।१९२५। यं० इं० २३।७।१९२५।]

१५४. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

कलकत्ता
श्रावण सुदी ६ (जुलाई २७, १९२५)[1]

भाई बनारसीदास जी,

मेरी दाहिनी अंगुली में दर्द होने के कारण मैं बायें हाथ से लीखता हूं. तुम्हारा पत्र मीला है. पैसे के लीये मैने चि० छगनलाल को लीखा है कि उसको कुछ उजर न हो तो बाकी के सब पैसे तुमको भेज दे. मैं समझता हूं कि हिसाब भी पीटीट को सीधा भेजते रहोगे. मैने यह भी मान लीया है कि इस समय जो हम कर रहे है वह सब ठीक मी० पेटीट के साथ के समझौता के अनुकूल है।

तुमारे पत्र के अंतीम हिस्से में मुझे रोष और निराशा प्रतीत होते है। ऐसा क्यों?

मोहनदास के वं० मा०

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी
फिरोजाबाद
जिला आगरा

—हिन्दी। कलकत्ता, २७।७।१९२५। गांधी-स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित पत्रावली से।]

१५५. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

श्रावण कृष्ण १५, (१९ अगस्त, १९२५)[2]

भाई बनारसीदास जी,

मैने भाषा पर से रोष का अनुमान कीया था. न था तो मुझे कुछ कहने का रहता नहिं है. स्वास्थ्य अच्छा रहता होगा.

मोहनदास गांधी

---

१. डाक की मुहर २८ जुलाई, १९२५ की है।

२. डाक की मुहर से।

(पुनश्चः)

दक्षिण भुजा में दुःख होने के कारण यह उत्तर से लीखा गया है।

पंडीत वनारसीदास चतुर्वेदी
फीरोजावाद
डिस्ट्रिक्ट आगरा

—हिन्दी। १९।८।१९२५। गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित पत्रावली से।]

१५६. तार : इलाहाबाद की रामलीला समिति के मन्त्री को

रांची
(१७ सितम्बर, १९२५ या उससे पूर्व)[1]

खेद है दोनों में से किसी भी पक्ष पर मेरा कोई प्रभाव नही है।[2]

गांधी

—अंग्रेजी। राँची, १७।९।१९२५ या पूर्व। 'लीडर', २०।९।१९२५।]

१५७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[बहुत अधिक काम करने के कारण दाहिना हाथ थक जाता था। इसलिए गांधीजी ने वाय हाथ से लिखना शुरू किया था। उसी अवधि का लिखा यह पत्र है। —सम्पा०]

३० सितम्बर, १९२५

प्रिय जवाहर,

हम विचित्र समय में रह रहे है। शीतला सहाय अपना वचाव कर सकते हैं। आगे की घटनाओं से मुझे परिचित रखना। वह क्या है? वकील है? उनका कभी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों से कोई सम्वन्ध रहा है?

---

१. साधन-सूत्र के अनुसार यह तार १७ सितम्बर को मिला था।
२. यह स्पष्ट नहीं है कि तार किस सम्वन्ध में भेजा गया था। लेकिन सन्दर्भ से ऐसा लगता है कि दशहरा के त्यौहार के सिलसिले में भेजा गया होगा।

कांग्रेस की बात यह है कि उसे जितना सादा बना दिया जाय उतना अच्छा है ताकि जो कार्यकर्त्ता रह गये है, वे उसे सँभाल सकें। मैं जानता हूँ, तुम्हारा बोझ अब बढ़ेगा। परन्तु तुम्हें अपने स्वास्थ्य को किसी भी तरह खतरे में नहीं डालना चाहिए। मुझे तुम्हारी तन्दुरुस्ती की चिन्ता है। तुम्हें बार-बार बुखार आना मुझे बिल्कुल पसन्द नही है। काश तुम स्वयं और कमला[1] थोड़ी छुट्टी ले लो।

पिताजी का पत्र मेरे पास आया है। बेशक जहाँ तक उनकी मान्यता है, उतनी दूर जाना मैं हर्गिज नही चाहता था। मैं पिताजी को आर्थिक सहायता देने के लिए किसी से कहने की बात सोचता तक नही। किन्तु किसी मित्र या मित्रों से, जो तुम्हारी सार्वजनिक सेवाओं के बदले में तुम्हारी सहायता करना अपना सौभाग्य समझें, कहने में मुझे कोई संकोच न होगा। मैं तो आग्रह करूँगा कि तुम्हारी जो स्थिति है और रहेगी, उसके कारण, यदि तुम्हारी आवश्यकताएँ असाधारण न हों तो तुम्हें सार्वजनिक कोष से लेना चाहिए। मेरा अपना तो दृढ़ मत है कि कोई व्यवसाय करके या अपनी सेवा सुरक्षित रखने के लिए किसी मित्र को अपने लिए रुपया जुटा देने देकर तुम सामान्य कोष की वृद्धि करोगे। तुरन्त कोई जल्दी नहीं है, किन्तु इधर-उधर परीशान न होकर किसी अन्तिम निश्चय पर पहुँच जाओ। तुम कोई व्यवसाय करने का फैसला करो तो भी मुझे आपत्ति नही होगी। मुझे तो तुम्हारी मानसिक शान्ति चाहिए। मैं चाहता हूँ कि किसी व्यवसाय के प्रबन्धक की हैसियत से भी तुम देश की सेवा ही करोगे। मुझे विश्वास है, जबतक तुम्हारे किसी भी निश्चय से तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलती होगी, तबतक पिता जी को कोई आपत्ति नही होगी।

सस्नेह, तुम्हारा
बापू

मै समझता हूं मुझे दायां हाथ य० इं० के लिए ही सुरक्षित रखना चाहिए।

—अंग्रेजी। ३०।९।१९२५। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

---

१. कमला नेहरू, जवाहरलाल जी की पत्नी।

१५८. पत्र : लखनऊ के एक कार्यकर्त्ता को

(पटना)
१२ अक्तूबर, १६२५

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे एक तार मिला है, जिसमे यह शिकायत की गई है कि मैं सीतापुर के कार्यक्रम में व्याघात डाल रहा हूँ। मुझे आपका तार भी मिला था। इसलिए मैने आपको इस आशय का तार भेजा कि आप सीतापुर कमेटी की सहमति से अपने यहाँ का कार्यक्रम निर्धारित करें। फिर भी मैं यह वता दूं कि यदि लखनऊ में वीच में पाँच घण्टे का भी अन्तर पड़े तो इतना समय मुझे आराम के लिए मिलना चाहिए। लेकिन यह यदि सम्भव न हो तो आप मुझे लखनऊ में पाँच घण्टे व्यस्त न रक्खें, वल्कि मोटर से सीतापुर पहुँचा दे। मोटर-यात्रा की अपेक्षा रेल-यात्रा मैं ज्यादा पसन्द करूँगा पर देर तक काम करने से तो मोटर-यात्रा करना ही ज्यादा पसन्द करूँगा। मै इतना ज्यादा कमजोर हो गया हूँ कि शाम को ७ वजे तक थक कर चूर हो जाता हूँ। जव रात की सभाओं मे शामिल होता हूँ, तो मुझे जम्हाइयाँ आने लगती है। इस तरह मैंने अपनी हालत और मेरी इच्छा क्या है सो सव वता दिया। अव आप सार्वजनिक हित में जो भी काम ठीक समझें, कर सकते है। कारण, अव मै भाषण आदि देना नही चाहता। इससे कही अच्छा तो यह होगा कि आप मुझसे कताई-प्रदर्शन करने के लिए कहे।

हृदय से आपका,
मो० क० गांधी

[—अंग्रेजी। पटना, १२।१०।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २८, पृष्ठ ३२४।]

१५९. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

अहमदावाद
२४ नवम्बर, १६२५

प्रिय मोतीलाल जी,

आपका पत्र मिला। मैं तीन दिन से आपको पत्र लिखने की वात सोच रहा था। इलाज के लिए कमला का जवाहरलाल के साथ स्विटजरलैण्ड जाने का विचार

बहुत ही अच्छा है। यहाँ की बनिस्वत वहाँ के इलाज से निश्चय ही अधिक स्थायी लाभ होगा। लेकिन सोचता हूँ कि उसे वहाँ जाड़ों में न भेजा जाये, बल्कि अप्रैल में ही वह वहाँ जाये। इसलिए मेरा ऐसा विचार है कि इस समय बिना आगा-पीछा किये उसे लखनऊ भेजना ठीक रहेगा, और जवाहरलाल को चाहिए कि वह जहाँ तक बने ज्यादा-से-ज्यादा उसी के पास रहें। मेरा मन आपकी इस पारिवारिक परेशानियों के बारे में सोचता रहता है। मै आशा करता हूँ कि कमला फिर से जल्द ही स्वस्थ हो जायगी।

पर पारिवारिक परेशानियों के कारण ही सही आपको काम में थोड़ी फुरसत मिल जाना ठीक ही है। लगातार परिश्रम करते हुए आपको बीच-बीच में आराम लेना ही चाहिए। राजनीतिक परेशानियाँ और मतभेद तो हमेशा बने रहेंगे। इसलिए थोड़े समय विश्राम कर लेने में कुछ खास हानि नही है। मैने बैठकों की पूरी-पूरी रिपोर्ट नही देखी है, लेकिन मैं सम्बन्धित मोटी-मोटी सुर्खियों और विवरणों की दो-चार लकीरें जरूर देखता रहा हूँ। इस तरह सरसरी निगाह डालते रहने से मुझे इतना अन्दाज तो हो ही गया है कि आपको काफी सफलता मिल रही है; इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।

आपने मेरा ध्यान मेरे द्वारा दी गई किसी भेंट की तरफ दिलाया है। लेकिन मैंने ऐसी कोई भी भयंकर भूल करने का अपराध नही किया है। हमारे मित्र सदानन्द[1] ने मेरे पास भेंट के लिए कहलवाया था, लेकिन मैंने उन्हें खबर भेज दी थी कि मुझे कुछ भी नही कहना है। एसोसिएटेड प्रेस का संवाददाता मेरे पास अनेक बार आ चुका है और मैंने उसे भी वही जवाब दिया है। मैंने देवदास से कहा है कि समाचारपत्रों में क्या छपा है, मुझे बतायें। उसने भी किसी सम्वाददाता की ओर से एक अंश के सिवाय कुछ और नहीं देखा। मेरा खयाल है कि वह अंश 'यंग इण्डिया' से लिया गया है।

श्रीमती नायडू एक दिन अहमदाबाद रही। उन्होंने कहा तो यह कि यात्रा के दौरान यहाँ केवल यह देखने के लिए उतर गई हूँ कि कच्छ में कुछ पौड वजन खोकर अब मैं कैसा लग रहा हूँ। उन्होंने मुझे बताया कि भाषण में क्या-कुछ कहा जाये इसकी चर्चा करने वह महीने के अन्त में यहाँ आयेंगी। इस समय वे बम्बई में है। सात दिसम्बर को मैं बम्बई से सत्याग्रह आश्रम के लिए रवाना होकर आठ को बम्बई पहुँच रहा हूँ। मैं ९ को बम्बई से वर्धा के लिए रवाना होकर १० को वहाँ पहुँच जाऊँगा। यदि आप समझते हैं कि तबतक रुकने में हर्ज नही है तो हम

---

१. बम्बई के अंग्रेजी दैनिक फ्री प्रेस जर्नल के सम्पादक।

वर्धा में मिल सकते है। लेकिन शायद श्रीमती नायडू खुद तबतक न रुक सकें। यों आप कभी भी यहाँ आये मुझे तो अवकाश रहेगा और वेशक वर्धा में भी। यदि आप सुनें कि मैं फिर उपवास कर रहा हूँ तो चिन्तित न हों। यह केवल एक सप्ताह का उपवास है, यह मैने आश्रम से सम्बद्ध शाला में पढ़नेवाले कुछ-एक बच्चों के गलत बर्ताव के सिलसिले में आत्मशुद्धि के निमित्त किया है। ऐसे उपवास करना मेरी जरूरतो का अंग बन गया है। उससे मुझे लाभ होता है और कम-से-कम कुछ समय के लिए आसपास का वातावरण शुद्ध हो जाता है। उपवास मंगलवार की सुबह समाप्त होगा और जल्दी ही ताकत वापस पा लेने मे कोई कठिनाई नही होगी। मैं दास्ताने को पहले ही लिख चुका हूँ। गंगाधर राव चूँकि यहाँ थे, इसलिए उनसे मैंने खुद ही कह दिया था।

मै आशा करता हूँ कि इस संकट से अपको जो मानसिक चिन्ता और परेशानी इन दिनों है उसके बोझ के बावजूद आप अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रक्खेंगे।

हृदय से आपका,
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। अहमदाबाद, २४।११।१९२५। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१६०. तार : जवाहरलाल नेहरू को

अहमदाबाद, १-१२-१९२५

जवाहरलाल नेहरू, आनन्द भवन, इलाहाबाद

उपवास टूटा। हालत बिल्कुल ठीक है। आशा है, कमला बराबर प्रगति कर रही होगी। सरूप यहां है।

गांधी

—अंग्रजी। अहमदाबाद, १।१२।१९२५।[1] 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

१६१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[इलाज के बावजूद कमला नेहरू की तवीयत अधिकाधिक बिगड़ती जा रही थी। इसलिए उनको यूरोप ले जाने की सलाह चिकित्सकों ने दी थी। निम्नांकित पत्र उसी सन्दर्भ में है।—सम्पा०।]

२१ जनवरी, १९२६

प्रिय जवाहर,

मुझे खुशी है कि तुम कमला को अपने साथ ले जा रहे हो। हाँ, दोनों नहीं आ सको तो जाने के पहिले कम-से-कम तुम्हें तो यहाँ आना चाहिए। देशबन्धु-स्मारक के बारे में जमनालाल जी के नाम तुम्हारा पत्र काफी होगा। चर्खा संघ के मन्त्री तो तुम रहोगे ही, किन्तु यदि कोई सहायक चाहिए तो शंकरलाल के पास होना चाहिए। नक़्शा तैयार न करने के लिए मैं तुम्हे दोष नही दे सकता। तुमने अपना समय व्यर्थ नहीं गंवाया है। तुम्हारे पास यूरोप में काम करने लायक कपड़े होने चाहिए।

सस्नेह, तुम्हारा
बापू

—अंग्रेजी। २१।१।१९२६]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

१६२. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

आश्रम, सावरमत्ती
फरवरी १७, १९२६

प्रिय मोतीलाल जी,

मुझे आपका पत्र मिल गया है। मै जानता हूँ कि बीमार पड़ जाना मेरे लिए लज्जा की बात है। अव मैं दूने एहतियात से काम ले रहा हूँ। वर्ष के अन्त तक अपने को स्वस्थ रूप में पेश करने के लिए मैं कुछ भी उठा न रखूँगा। और यदि आपके पास कोई ऐसी होमियोपैथी की गोलियाँ हों जो पूर्ण रोग-निवारण की गारण्टी कर सकें और ५६ वर्ष के बूढ़े की जगह मुझे २६ वर्ष का जवान बना दें, तो मैं उन्हें प्रतिदिन उतनी मात्रा में ले लूंगा जितनी कि आप मुझे लेने के लिए कहेंगे !

मुझे वहुत खुशी है कि जवाहरलाल और कमला जा रहे है, और उनके साथ सरूप और रणजित भी रहेंगे। मुझे इससे आश्चर्य नही हुआ कि कृष्णा भी पीछे छोड़ दिये जाने के लिए तैयार नही है। मैं तो आशा करता हूँ कि उसे किसी-न-किसी तरह यों निचोड़ना (दवाना) सम्भव हो जायगा कि वह जितना भी सम्भव हो, वाहर घूमने जाने लगे। मैं इस यात्रा से वहुत वड़े परिणामो की आशा करता हूँ,—न केवल कमला के लिए, वल्कि जवाहरलाल के लिए भी।

हाँ, मैंने इस तथ्य पर ध्यान दिया था कि वाइसराय और दोनों सदनों के नेताओ के वीच जो सम्मेलन हुआ, उसमें आप उपस्थित थे। मुझे खुशी है कि आप भी उस दल में से एक थे।

यदि असेम्वली की समस्त समितियों को छोड़ना है तो मुझे वहुत भय है कि स्कीन कमेटी[1] के वारे में भी वैसा ही करना होगा, यद्यपि उसमें वह प्राविधिक अन्तर है जिसकी ओर आपने इशारा किया है किन्तु हमारे मतलव के लिए वह काफी नही होगा। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से स्कीन कमेटी से आपके हटने की वात मैं नापसन्द करता हूँ किन्तु यदि कौसिलों से वाहर चले जाना अच्छा है तो स्कीन कमेटी से वाहर आजाना भी जरूरी हो जायगा।

यदि आप सव इस माह एक दिन के लिए भी यहाँ आ सकें तो मुझे वड़ा आनन्द होगा। चूंकि आप कठिनाइयों पर जीवित रहनेवाले व्यक्ति है, मुझे उम्मीद है कि आप पूर्णतः स्वस्थ एवं सुदृढ़ होगे।

आपका विश्वासपात्र

—अंग्रेजी। सावरमती, १७।२।१९२६। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

---

१. यह कमेटी १९२५ में सर एण्डरू स्कीन की अध्यक्षता में भारत में एक सैनिक कालेज की स्थापना के वारे में विचार करने के लिए नियुक्त की गई थी। इसे 'इण्डियन सेण्डहर्स्ट' कमेटी भी कहा जाता था।

१६३. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

२७ फरवरी, १६२६

प्रिय मोतीलाल जी,

मैने आपको मु० शफी का पत्र दिखा दिया है। कृपया उनको तथा अन्य मुसलमान मित्रों को बता दीजिए कि जो प्रस्ताव[1] पश्चिमोत्तर प्रान्तों के बारे में पेश किया गया है, मेरी सम्मति में उसका समर्थन करना स्वराजियों के लिए गलत होगा। इसके साथ ही कांग्रेस यदि स्वशासन की किसी योजना को स्वीकार करती है तो उसमें मैं इन प्रान्तों के शामिल किये जाने का समर्थन करूँगा। उस दिशा में मैने आपको दो प्रस्तावों के मस्विदे सुझाये हैं, जिन्हें, मैं आशा करता हूँ, मुसलमान मित्र स्वीकार कर लेंगे। अगर कोई रज़ामन्दी नहीं हो सकती तो मै अनुभव करता हूँ कि (उस अवस्था में) स्वराजी सदस्यों द्वारा मत देने पर आपका रोक लगा देना ही एक मात्र सम्मानपूर्ण रास्ता होगा।

आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, २७।२।१९२६। हिन्दुस्तान टाइम्स, १९।३।१९२६।]

१६४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम, साबरमती
५ मार्च, १६२६

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पहिली तारीख का पत्र मिला। यद्यपि तुम डा० मेहता के नाम पत्र छोड़ ही गये हो, फिर भी दुगनी निश्चिन्तता कर लेने के लिए मैने भी उन्हें लिखा है। आशा है, जहाज पर कमला का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहा

---

१. सय्यद मुर्त्तजा साहब बहादुर ने केन्द्रीय धारा-सभा में पश्चिमोत्तर प्रान्तों के विषय में यह प्रस्ताव पेश किया था।

होगा। तुम सबको समुद्र-यात्रा से लाभ हुआ? अधिक लिखने के लिए समय नहीं है।

सस्नेह, तुम्हारा
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, ५।३।१९२६।]
सौजन्य: श्रीमती इन्दिरा गांधी

१६५. पत्र: सुन्दर स्वरूप को

आश्रम, साबरमती
मार्च ११, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिल गया है। 'यंग इण्डिया' से जो कुछ आपको पसन्द हो उसका अनुवाद आप कर सकते हैं, किन्तु कोई चीज मेरे द्वारा प्रमाणित कह कर नहीं छाप सकते क्योंकि मैं आपके अनुवादों की जाँच नहीं कर सकता। इसलिए आप जो कुछ करें सिर्फ अपनी जिम्मेदारी पर करें और अपने प्रयास में मेरे नाम का प्रयोग न करें। मैं तो सिर्फ इतना ही कर सकता हूँ कि आपके मार्ग में कोई कानूनी बाधा आती हो तो उसे दूर कर दूँ। इस पत्र-द्वारा वह दूर हो गई है।

आपका
. . .

श्रीयुक्त सुन्दर स्वरूप
लखनरा भवन
मेरठ सिटी

—अंग्रेजी। साबरमती, ११।३।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१६६. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

[टिप्पणी : पत्र की मूल हिन्दी प्रतिलिपि, परिस्थिति-वश, प्राप्त नहीं की जा सकी, यह उसके अंग्रेजी अनुवाद से किया गया हिन्दी रूपान्तर है। डाक की मुहर से जान पड़ता है कि यह पत्र २० मार्च १९२६ को लिखा गया था।—सम्पा०]

आश्रम, साबरमती
शनिवार

भाई परसराम,

तुम्हारा पत्र। विद्यापीठ की जगह भर गई तो उसकी चिन्ता न करो। तुम विलम्ब भी करोगे तो दूसरी जगह भरी नहीं जायगी। तुम वहाँ का काम खतम करने के बाद भी आ सकते हो। यह अच्छी बात है कि तुम टाइप-राइटिंग का अभ्यास कर रहे हो।

बापु के
आशीर्वाद

श्री परसराम
"स्त्रीदर्पण" कार्यालय,
कानपुर (सं० प्रा०)

—मूल हिन्दी। साबरमती, २०।३।१९२६। कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी खण्ड ३० से।]
सौजन्य : श्री परशुराम मेहरोत्रा

१६७. पत्र : ज० प्र० नैयर को

आश्रम, साबरमती
मार्च २७, १९२६

प्रिय मित्र,

आपने मुझे जो खुली चिट्ठी लिखी थी उसका उत्तर न देने पर आपको दुःख का अनुभव हुआ है। किन्तु मुझे आपसे कहना चाहिए कि किसी खुली चिट्ठी पर

विचार प्रकट करने या उसकी प्राप्ति देने की आवश्यकता नही हुआ करती। खुली चिट्ठियाँ सार्वजनिक पुरुषों को इसलिए लिखी जाती हैं कि जिन बातों से उनका सम्बन्ध होता है उनपर उनका ध्यान विशेष रूप से दिलाया जाय। जब मैं अनुभव करता हूँ कि उनमे यदि किसी बात को तुच्छ ठहराया गया है या उसके बारे में गलतबयानी की गई है तब मैं उस पर यह सोचकर ध्यान देता हूँ कि इससे मैं उस विषय में कुछ सेवा कर सकूगा। आपके प्रति अशिष्ट होने की कोई इच्छा नही थी। इस बार आपने जो अनुरोध किया है वह कठिन है। जब मै नहीं जानता कि जो पत्र आप प्रकाशित करने जा रहे है उसकी नीति क्या होगी, तब मैं आपको पथ-दर्शन या प्रेरणा कैसे दे सकता हूँ? आपने जो नाम चुना है वह निश्चित रूप से मुझे चौंका देता है। यह बात नही कि मैं गणराज्यवाद (रिपब्लिकनिज़्म) की प्रशंसा नही करता, किन्तु इस समय भारत के लिए गणराज्य की बात मेरी राय मे, एक निरर्थक पद है। मै जानता हूँ कि इस मामले में मत-भेद है किन्तु मुझे तो अपने ही विचार पर कायम रहना चाहिए। मै तरुण पीढ़ी के साथ मिल कर काम करने को उत्सुक हूँ किन्तु मै उनकी दृष्टि से देख नही सकता। ज्यादा-से-ज्यादा मै यह कर सकता हूँ कि अपने को पृष्ठभूमि में रख लूँ और जो कुछ वे दूसरों के अनुभव से सीखने को तैयार नही है उन्हे उन्ही के कड़ुवे अनुभवों से सीखने का अवसर दूँ।

आपका

...

श्री ज० प्र० नैयर
सम्पादक
'रिपब्लिक'
मालरोड, कानपुर

—अंग्रेजी। साबरमती, २७।३।१९२६। सा० सं० में सुरक्षित पत्रावली से।]

१६८. पत्र : स० प० एण्डरूज दुबे को

आश्रम, साबरमती
एप्रिल १, १९२६

मेरे प्रिय दुबे,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैं नही जानता कि वे लोग मसूरी में मुझे कहाँ ठहराने की व्यवस्था करने जा रहे हैं।सारा प्रबन्ध बिड़लाओं और जमनालाल जी बजाज द्वारा किया जा रहा है। किन्तु मैं समझता हूँ कि जब मै मसूरी पहुँचूँगा तो तुम्हें वहाँ पाऊँगा, और तुम अपने कटु अनुभवों के विषय में सब कुछ मुझे बताओगे।

रामदास अमरेली से अभी यहाँ आया है। मैं तुम्हारा पत्र उसे दिखा रहा हूँ।

तुम्हारा

श्री स० प० एण्डरूज-दुबे
सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी
लखनऊ

—अंग्रेजी। साबरमती, १।४।१९२६। सा० सं० नं० १९४०३ से।]

१६९. पत्र : ज० प्र० नैयर को

आश्रम, साबरमती
अप्रैल ३, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिल गया है। 'रिपब्लिक' (गणतन्त्र) शब्द के अर्थ के विषय में आपने मुझे पहले से भी ज्यादा चक्कर में डाल दिया है। मै देख रहा हूँ कि आपके और मेरे विचारों के बीच सर्वाधिक-सम्भव अन्तर है। तब भला मैं आपको प्रोत्साहन देनेवाली कोई चीज कैसे भेज सकता हूँ?

मै क्षण-भर के लिए भी यह विश्वास नही करता कि अ० (असहयोग) आन्दोलन का चमत्कार समाप्त हो गया है, न तो मुझे यही यकीन है कि बारडोली का निर्णय एक भूल थी। और मै तो पहिले से इस बात पर कही ज्यादा विश्वास रखता हूँ कि जो लोग गरीबों का खयाल रखते है और जो उन्हें समझते हैं वे इससे ज्यादा

अच्छी सेवा नही कर सकते कि चर्खे, खद्दर और विदेशी वस्त्र-वहिष्कार के प्रचार-प्रसार में अपनी सारी शक्ति लगा दें।

आपका,

श्रीयुक्त ज० प्र० नैयर,
सम्पादक 'रिपब्लिक'
मालरोड, कानपुर

—अंग्रेजी। साबरमती, ३।४।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७०. पत्र : ग० ग० राय को

आश्रम, साबरमती
एप्रिल ७, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिल गया है। जो दिलचस्प कतरन आपने भेजी है वह मुझे बिल्कुल "हिस्टीरिकल" लगती है। उस ज़माने में वहाँ ३३ शाकाहारी जलपान-गृह थे। मैं नही जानता कि इस समय कितने हैं। और जहाँ तक मेरी जानकारी है, लेखक ने जिन (भोजनयुक्त) तश्तरियों का ज़िक्र किया है उन्हें लोग बड़े स्वाद से ग्रहण किया करते थे और उनसे लाभान्वित होते थे। परन्तु ये सब तो मन के विषय है। जिन चटनियों का उसने बड़े आन-बान से वर्णन किया है वे मुझमें उबकाई पैदा करती हैं।

आपका निश्छल
...

श्री ग० ग० राय
मोतीमहल
कानपुर

—अंग्रेजी। साबरमती, ७।४।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७१. पत्र : जे० (जोगेश) चटर्जी को

आश्रम, साबरमती
एप्रिल १०, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिल गया है जिसके लिए धन्यवाद करता हूँ। मैंने आपका पत्र, कतरन-सहित, डा० राय[1] के विशेषज्ञ सतीश[2] बाबू, जो सहायता-भण्डार का काम देखते हैं, के पास भेज दिया है। मैं स्वयं भी भण्डार की क्रिया-विधि से परिचित हूँ और मैं आपको सूचित कर सकता हूँ कि वेलफेयर में जो आँकड़े दिये गये हैं उनके आधार पर भी आलोचना का जवाब देने में कठिनाई नहीं है। किन्तु मैं इस बात से सहमत हूँ कि जो लोग भण्डार को चला रहे हैं उनके द्वारा औपचारिक प्रतिवाद ज्यादा सन्तोषजनक होगा।

आपका, निश्छल

. . .

श्रीयुक्त जे० चटर्जी,
१, जःस्टनगंज,
इलाहाबाद

[अंग्रेजी। साबरमती, १०।४।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७२. पत्र : गांधी आश्रम, बनारस को

आश्रम, साबरमती
एप्रिल १९, १९२६

प्रिय मित्रगण,

मैंने आशा की थी कि विद्यापीठ के काम से कृपालानी जी को अलग कर सकूँगा और पूरी तरह आप लोगों को फिर सौंप दूँगा। किन्तु हम सबने अपने को

---

१. डा० सर प्रफुल्लचन्द्र राय।

२. डा० सतीशचन्द्र दास गुप्त; खादी-प्रतिष्ठान, सोडपुर (बंगाल) के संचालक।

वेवस पाया। इस समय तो उन्हें मुक्त करना सम्भव नही है। अभी दो साल उन्हें छोड़ना असम्भव हो सकता है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में, जव हम स्वभावत: अपनी मुक्ति प्राप्त करने के लिए अधीर है, दो वर्ष एक लम्वा समय है। मै आप सवको अपना आश्वासन देता हूँ कि यदि कोई ऐसा सुयोग उपस्थित होता है कि कृपालानी जी को इसके पूर्व मुक्त किया जा सके, तो मैं सम्पूर्ण हृदय के साथ वैसा करूँगा क्योंकि मै जानता हूँ कि आपका काम कितना मूल्यवान है और यदि आपके अध्यवसाय को उससे कही ज्यादा फलप्रद वनाना है, जितना वह अव तक रहा है, तो आपके वीच उनका निरन्तर रहना कितना जरूरी है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि उनके यहाँ का कार्य संगठित करने मे आप कृपालानी जी का मार्ग सरल वनायेंगे।

आपका निश्छल

. . .

गांधी आश्रम,
वनारस

—अंग्रेजी। सावरमती, १९।४।१९२६। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम, सावरमती
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय जवाहरलाल,

मैं प्रति सप्ताह तुम्हे लिखने का विचार करता रहा और हर वार असफल रहा। किन्तु यह सप्ताह मै यो ही नही गुजर जाने दूंगा। तुम्हारे वारे में ताजे समाचार मुझे पिता जी से मिले, जव वह प्रतिसहयोगवादियो[1] के साथ यहाँ आये थे। जो समझौता हुआ, वह तुमने देख लिया होगा।

हिन्दू और मुसलमान दिन-दिन एक-दूसरे से दूर होते जा रहे है, किन्तु इस

---

१. तात्कालिक भारतीय राजनीति का एक दल, जिसका मुख्य गढ़ था महाराष्ट्र। मुकुन्दराव जयकर एवं नरसिंह चिन्तामणि केलकर इसके नेताओं में थे।

बात से मुझे अशान्ति नहीं होती। किसी भी कारण से सही, मुझे मालूम होता है कि यह अलगाव इसीलिए बढ़ रहा है कि आगे चलकर वे सब और नजदीक आयें।

मैं आशा करता हूँ, कमला को लाभ हो रहा है।

सस्नेह, तुम्हारा
बापू

[अंग्रेजी। साबरमती, २३।४।१९२६। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : इन्दिरा गांधी

१७४. पत्र : जी० स्टेनली जोंस को

आश्रम, साबरमती
एप्रिल २४, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका खत तथा आपके पत्र की एक, दो नहीं, प्रति प्राप्त हुई है।

यह साप्ताहिक है या मासिक? मेरे सामने जो प्रति है उससे मुझे इसकी जानकारी नही मिलती। ज्योंही मुझे कुछ फुर्सत मिलेगी, मैं आपके पास कुछ (लिख) भेजूंगा, किन्तु आप से इस पत्र का उत्तर पाने के बाद।

मै मसूरी जा रहा था किन्तु जो मित्र मुझे वहाँ भेजने में दिलचस्पी ले रहे थे उन्होंने अपना आग्रह ढीला कर दिया है और आश्रम में रहने दिया है। मैं आश्रम में आपके आगमन की प्रतीक्षा करूँगा और चाहे जितने भी कम समय के लिए हो अपने बीच आपके ठहरने की राह देखूँगा। आपने मुझसे ऐसा कहा था न कि आप इसके पहिले आश्रम में एक-दो दिन रह चुके हैं? यदि मैं किसी कारण से, जुलाई में आश्रम से कही चला जाऊँ, तब भी आप आयेंगे। मुझे आशा है कि विश्व-छात्र-सम्मेलन में मेरे फिनलैण्ड जाने की किञ्चित् सम्भावना है। मैं कहता हूँ किञ्चित् सम्भावना क्योंकि मामला बात-चीत के स्तर से आगे नही बढ़ा है।

आपका निश्छल
...

जी० स्टेनली जोंस महोदय,
सीतापुर, यू० पी०

[अंग्रेजी। साबरमती, २४।४।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७५. पत्र : श्रीप्रकाश को

आश्रम, साबरमती
मई १, १९२६

प्रिय मित्र,

अभी तक मैं तुम्हारे पत्र तक नही पहुँच पाया। 'फ़्रीडम' के लिए मेरा लेख यह रहा[1] यदि इसे लेख कहा जा सके।

तुम्हारा निश्छल
...

श्रीयुक्त श्रीप्रकाश,
सेवाश्रम
बनारस कैण्ट

—अंग्रेजी। साबरमती, १।५।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित सामग्री से।]

१७६. पत्र : शरदिन्दु बी० बनर्जी को

आश्रम, साबरमती
मई ११, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र मिली गया है। मुझे स्पष्ट नहीं हुआ कि आप सचमुच चाहते क्या हैं। क्या आप थोड़े समय के लिए मेरे साथ ठहरना चाहते हैं? और यदि ऐसा है तो आप करना क्या चाहते है? जैसा कि आप जानते हैं, मेरा अत्यन्त व्यस्त जीवन है। मुझे लोगों से बात करने का समय मुश्किल से मिलता है। और मैं अपने तात्पर्य के सिवा ऐसा क्वचित् ही करता हूं। इसलिए यदि कोई मेरे पास आता है तो उसे तुरन्त किसी उपयोगी काम पर लगा दिया जाता है और वह

---

१. देखिए 'फ्रीडम' पत्र के लिए सन्देश।

पन-खुड्डियों की सफाई से अपने काम का आरम्भ करता है, और कताई तो आवश्यक है ही।

आपका निश्छल

....

श्रीयुक्त शरदिन्दु बी० बनर्जी
१३ एडमांस्टन रोड
इलाहाबाद

—अंग्रेजी। साबरमती, ११।५।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७७. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

महाबलेश्वर
मई १६, १९२६

प्रिय मोतीलाल जी,

मुझे देवदास के बारे में आपका तार मिल गया था। डा० दलाल को अपेण्डिसाइटिस का शुबहा था और उन्होंने आपरेशन की सलाह दी थी। मुझे राजी होने में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। इसलिए जमनालाल जी और महादेव की उपस्थिति में आपरेशन हुआ। मैं उपस्थित नहीं था। किन्तु महाबलेश्वर और देवलाली, जहां मै बीमार मथुरादास को देखने गया था, के रास्ते में मैने उसे गुरुवार को देखा था। देवदास अच्छी तरह है और २५ के लगभग अस्पताल से छोड़े जाने की आशा रखता है। ज़रा भी चिन्ता का कारण नही है। मैं यह पत्र बोलकर महाबलेश्वर में, जहां मैं आज तीसरे पहर ५ बजे पहुँचा, लिखवा रहा हूं। मुझे मंगलवार[1] को गवर्नर से मिलना है।

विट्ठलभाई के पत्र की प्रतिलिपि साथ है। पत्र लिखने के बाद वह आश्रम आये थे। मैने उनसे उस वार्तालाप की चर्चा की, जो हमारे बीच स्पीकर (केन्द्रीय धारा सभा के अध्यक्ष) के वेतन के विषय में हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा कि तन-

---

१. अर्थात् मई १८, १९२६ को। दूसरी मुलाकात के लिए १९ तारीख का निश्चय हुआ था।

ख्वाह का आधा या कोई भी अंश दलीय कोप में देने के विषय में उन्हें किसी व्यवस्था का ज्ञान नहीं है। इस पर मैंने उनसे कहा कि चेक स्वीकार करने के पूर्व मुझे आपसे मश्विरा करना ही होगा। क्या आप कृपापूर्वक वतायेंगे कि क्या करना है?

जब हम टहल रहे थे, सर चुन्नीलाल मेहता[1] ने मुझे वताया कि आपने इंग्लैण्ड न जाने का निश्चय किया है और दल का नेतृत्व श्री एयंगर[2] के लिए छोड़कर किसी पहाड़ी पर विश्राम करना चाहते हैं। क्या आप इंग्लैण्ड नहीं जा रहे है?

आपका निश्छल

....

पण्डित मोतीलाल नेहरू
आनन्द भवन,
इलाहावाद,

—अंग्रेजी। महावलेश्वर, १६।५।१९२६। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७८. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

मई २४, १९२६

प्रिय मोतीलाल जी,

सफर मंसूख करने के लिए आपने मुझे जो कारण वताये है उनकी मैं कल्पना नही कर सकता था। किन्तु कारण जान लेने के वाद, मैं इस मंसूखी के लिए दुःख नही करता। कृष्णा के जवाहर के पास चली जाने से आपकी सव चिन्ताएं छूट गई हैं। मैं जानता हूं कि आप 'चेम्वर प्रैक्टिस' से अपनी सारी जरूरतों के लिए, वल्कि उससे भी ज्यादा, कमा लेगे!

मुझे अभी तक आपका वोलकर लिखाया पत्र नहीं मिला है। मैं इसके लिए प्रतीक्षा कर सकता हूं। महावलेश्वर के वारे में मैं आपको इतनी ही रिपोर्ट दे सकता हूं कि मैंने गवर्नर के साथ तीन सुखद घण्टे विताये। ज्यादातर हमने चर्खे पर, और

---

१. महावलेश्वर में गांधी जी के मेज़वान।
२. श्री निवास एयंगर, कांग्रेस-स्वराज्य दल के प्रसिद्ध नेता।

थोड़ी बहुत भारत के पशु-धन पर बातें कीं। यदि इस मुलाकात के पीछे कुछ और रहा हो तो मैं उसे भांप नही पाया, न मैंने उसके लिए कोशिश की।

देवदास को उम्मीद है कि वह (अस्पताल से) एक सप्ताह में छूट जायगा; तब बहुत करने वह स्वास्थ्य-लाभ के लिए मसूरी जायगा।

फिनलैण्ड के बारे में अभी तक कुछ भी निश्चय नही हुआ है। सम्भावना यही है कि मैं नही जा रहा हूं। एक हफ्ते के अन्दर मै जान सकूंगा।

आपका निश्छल

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, २४।५।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित सामग्री से।]

१७९. पत्र : मोतीलाल नेहरू को

आश्रम, साबरमती

जून ३, १९२६

प्रिय मोतीलाल जी,

आपके पत्र की जो प्रतिलिपि मैंने विट्ठल भाई को भेजी थी, उसका उत्तर साथ है।

मुझे आशा है कि मसूरी-निवास से आपको लाभ हो रहा होगा।

आपका निश्छल

. . . .

संलग्न १

पण्डित मोतीलाल नेहरू

मसूरी

—अंग्रेजी। साबरमती, ३।६।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१८०. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

सावरमती आश्रम
जून १८, १९२६

चि० परसराम,

अव मैं जानना चाहता हूं कि तुम कव आ सकते हो। मै हिन्दी नवजीवन के लिए तुम्हारा उपयोग करना चाहता हूं। काम शीघ्रता के साथ होना चाहिए।

वापु के आशीर्वाद

श्री परसराम जी
"मालव-मयूर" कार्यालय
अजमेर।

—हिन्दी। सावरमती, १८।६।१९२६। मूल हिन्दी के कलेक्टेड वर्क्स द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवाद से अनूदित। क० व० म० गां०, खण्ड ३१ से।]

१८१. पत्र : ए० एस० डेविड को

आश्रम, सावरमती
जून १९, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका पत्र[1] मिला है। आपका जो अभिप्राय है उसे मै समझता हूं। किन्तु मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं आपके इस सवसे ताज़े पत्र को और भी कम पसन्द करता हूं। किन्तु मैं वहस मे पड़ना नही चाहता। मैं अपनी इस सलाह को दोहराता हूं कि कोई कदम उठाने के पहिले आपको यहां आना और खुद सव वातें देख लेनी चाहिए।

आपका निश्छल

ए० एस० डेविड महोदय
७१, दिलकुशा
लखनऊ

—अंग्रेजी। सावरमती, १९।६।१९२६। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्र की फोटो-नकल से।]

---

१. अपने १०।६।१९२६ के इस पत्र में श्री डेविड ने शरीर-श्रम करके आजीविका प्राप्त करने के सिद्धान्त में अपनी दिलचस्पी वताते हुए आश्रम में शामिल होने की इच्छा प्रकट की थी।

१८२. पत्र : मोतीलाल को

आश्रम,
जून २९, १९२६

भाई श्री मोतीलाल,

तुम्हारा पत्र (मिला)। जो व्यक्ति सद्गुरु की खोज में निकलता है, मेरा विश्वास है कि उसे खुद त्रुटियों और वासनाओं से मुक्त होना चाहिए। त्रुटियों और वासनाओं से मुक्त होने का मतलब पूर्णतः परिपूर्ण होना नहीं है। वह गुरु की जरूरत अनुभव होने का लक्षण है। गुरु का जीवित पुरुष होना भी जरूरी नहीं है। आज भी मैं कुछ ऐसे लोगों को अपना पथप्रदर्शक मानता हूं, जो यद्यपि अभी परिपूर्ण नही हो पाये हैं, किन्तु (आध्यात्मिक विकास के) उच्च धरातल पर पहुंच गये है। परिपूर्ण व्यक्ति तथा परमेश्वर के बीच के अन्तर की जानकारी प्राप्त करने में कोई सार नहीं है। चूंकि इसका परिपूर्ण उत्तर प्राप्त करना असम्भव है, इसलिए उसे अपने ही अनुभव में इसका उत्तर खोजना चाहिए।

मोहनदास गांधी का
वन्देमातरम्

श्री मोतीलाल
द्वारा मेसर्स कुंवरजी उर्मषि ऐण्ड कम्पनी,
कूपरगंज,
कानपुर

—गुजराती। साबरमती, २९।६।१९२६। साबरमती आश्रम में सुरक्षित पत्रावली से।]

१८३. पत्र : जफरुलमुल्क अलवी को

आश्रम, साबरमती
जुलाई १६, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका खत मिला है। आपने आश्रम में आने के बारे में जो कुछ कहा है, उसे मैंने नोट कर लिया है।

मेरी राय में, आपने मेरे पास जो स्कीम भेजी है उससे पता चलता है कि अका-

दमी एक अर्द्ध-सरकारी संस्था होगी। किन्तु सच पूछिए तो इसके सर्वोत्तम निर्णायक तो आप ही हो सकते है कि आपको क्या करना चाहिए। चाहे संस्था कितनी ही उपयोगी हो, आपकी जगह मैं तो उसमें शामिल हूंगा नही। हमारे असहयोग का रहस्य है उस प्रणाली के लाभों का त्याग, जिसे लेने की हमें आवश्यकता नही है। उन लाभों में से भी जिन्हें हम स्वेच्छया प्राप्त करते हैं, असहयोग शुरू होने पर हमने कुछ को चुन लिया। शिक्षण-संस्थाएं इनमें से एक चीज थी। किन्तु वर्तमान परिस्थिति मे, जव असहयोग केवल व्यक्तियो तक सीमित है, हर आदमी का दर असल, खुद अपने लिए तय करना होगा। और जहां उसके अन्तःकरण में चुभता न हो, उसे विना किसी हिचकिचाहट के, असहयोग को छोड़ देना चाहिए।

यदि मैं हर एक स्वराजी को कौंसिलें छोड देने के लिए प्रेरित कर सकता तो मै उसी दिशा मे अपना सब प्रभाव लगाता और मैं जानता हूं कि इससे वड़ा लाभ होता। इसी प्रकार वे अपरिवर्तनवादी, जो अदालतों में अपनी वकालत शुरू कर रहे है या सीनेट में स्थान ग्रहण कर रहे है, अपरिवर्तनवादी नही हैं। किन्तु मैं नही चाहता कि आप असहयोग को अन्धश्रद्धा की चीज़ वनालें या किसी भी सत्ताधीश के फतवे पर निर्भर करे, भले आप उसकी चाहे जितनी इज्जत करते हों। आप अपने हर काम को अन्तःकरण की कसौटी पर कसिए और जिसे आपका अन्तःकरण कहे, उसे विना किसी हिचकिचाहट के ग्रहण कीजिए।

आपका निश्छल

जफरुलमुल्क अलवी महोदय,
लखनऊ

—अंग्रेजी। सावरमती, १६।७।१९२६। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित सामग्री से।]

१८४. पत्र : डाक्टर मुरारीलाल को

आश्रम,
सावरमती
जुलाई २८, १९२६

प्रिय श्री मुरारीलाल,

वम्बई के राष्ट्रीय स्त्री-मण्डल की कुमारी मीठूवेन पेटिट ने मुझसे कहा है

कि कुछ शर्तों पर खादी की फैंसी-सुदर्शन-वस्तुएँ उन्होंने कांग्रेस सप्ताह में लगी नुमाइश में बिकने के लिए भेजी थीं। वह बार-बार हिसाब भेजने के लिए लिखती रही है किन्तु उन्हे कोई उत्तर नही मिला है। क्या आप कृपापूर्वक इस ओर ध्यान देंगे? उन्हें अनिश्चित काल तक बिना पैसे के नहीं रखना चाहिए।

यह संस्था दानशीला-महिलाओं-द्वारा चलाई जा रही है। वे कोई मुनाफा नही उठातीं और प्रत्येक पैसा उन गरीब स्त्रियों के हाथ में जाता है जो इन मनोहर डिज़ाइनों को बनाने में लगी हुई हैं। फिर इसके विशुद्ध उदारता का काम होने के अलावा हमें खुद भी अव्यावसायिक ढंग नही अपनाना या किसी का आभार नही लेना चाहिए। मुझे पता लगा है कि स्त्री-मण्डल तथा प्रदर्शनी-समिति के बीच का इक़रारनामा सब लिखित हैं।

आपका निश्छल

डा० मुरारीलाल,
कानपुर

—अंग्रेजी। साबरमती, २८।७।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१८५. पत्र : आचार्य गिदवाणी को

आश्रम,
साबरमती
जुलाई ३०, १९२६

मेरे प्रिय गिदवाणी,

मुझे तुम्हारा खत[1] मिला है। नमूने का एक तकुवा तुम्हें भेजा जा चुका है। मैं आशा करता हूँ कि इस नमूने के अनुसार ही कारखाना तकुए बनायेगा।

न सिर्फ अंगूरों के लिए बल्कि अन्य पौधों के लिए भी खाद-सम्बन्धी साहित्य चारों ओर से मुझे मिलता रहा है। इसलिए तुम्हारे मित्र जो कुछ भेजेंगे, वह एक और वृद्धि होगी?[2]

---

१. श्री गिदवाणी ने यह पत्र २२।७।१९२६ को भेजा था।

२. गिदवाणी ने अपने हैदराबाद के एक मित्र को लिखा था कि वह अपने द्राक्षा-

कताई और बुनाई सिखाने के लिए मैं तुम्हें संयुक्तप्रान्त का रहनेवाला एक होशयार लड़का भेज सकता हूँ। वह लगभग निरक्षर है। किन्तु वह परिश्रमी है, जितनी हिन्दी जानता है उससे ज्यादा पूर्णता के साथ उसे सीखना चाहता है; वह अंकगणित भी सीखना चाहता है। अगर उसे वहाँ दो घण्टे किसी दर्जे में बैठने की सुविधा मिल जाय तो उसे सन्तोष होगा। तुम्हें उसके रहन-सहन का और आने-जाने का खर्च उठाने के अलावा और कुछ देना नही पड़ेगा। अगर तुम समझते हो कि मैं उसे भेज सकता हूँ तो वह तुरन्त ही भेज दिया जायगा। वह धुनाई, कताई और बुनाई जानता है और अक्सर इनका प्रदर्शन करने के लिए भेजा जाता रहा है।

कृपया गंगाबेन से कहो कि वह मुझे लिखे और अपनी धमकी पूरी करे। जब वह भूगोल और इतिहास में अपना पाठ्यक्रम पूरा कर ले तो एक कुशल धुन-वैया, कतवैया इत्यादि बनने के लिए अन्तिम शिक्षण ग्रहण करने यहाँ आ जाय जिससे वह कोटि-कोटि जनों का साथ देना चाहे तो ग्राम्य पुर्ननिर्माण कार्य उठा सके।

तुम्हारा निश्छल

आचार्य ए० टी० गिदवाणी
प्रेम महाविद्यालय
वृन्दावन

—अंग्रेजी। साबरमती, ३०।७।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

कानन में उगाये अंगूरों का नमूना गांधी जी को भेज दें, तथा जो खाद अंगूर की खेती में प्रयोग कर रहे हैं, उसके सम्बन्ध में भी सूचना दें।

१. गिदवाणी ने एक अध्यापक के लिए गांधी जी को लिखा था।

१८६. पत्र : गंगा बेन को

आश्रम,
साबरमती,
अगस्त ६, १९२६

मेरी प्रिय वहिन,

मैं देखता हूँ कि तुम अंग्रेजी लिखने लगी हो, यद्यपि गुजराती नहीं (लिखती)। तुम यह क्यों कहती हो, "मेरे पति छोटे बच्चों को कैसे पढ़ा सकते हैं?" क्या उनको पढ़ाना एक सुविधा की बात नहीं है? और जो इस समय गन्दा और अस्वास्थ्यकर है उसे तुम स्वच्छ और स्वास्थ्यकर वनाओगी। अहमदाबाद के प्रति तुम्हारी आसक्ति को मैं समझता हूँ। किन्तु मैं नहीं चाहता कि तुम वहाँ की लड़ाई छोड़ दो। यह चेतावनी देने के बाद, मैं कह सकता हूँ: जब चाहो, आओ और इसे अपना ही घर समझो।

तुम्हारा निश्छल

श्रीमती गंगा बेन
द्वारा आचार्य गिदवाणी
वृन्दावन

—अंग्रेजी। साबरमती, ६।८।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१८७. पत्र : आचार्य गिदवाणी को

आश्रम,
साबरमती
अगस्त ६, १९२६

मेरे प्रिय गिदवाणी

मुझे तुम्हारा पत्र मिला है। अब तो तकुवे भी मिल गये हैं। तकुवे अच्छे नही हैं। थोड़े ही दवाव से वे सिरे पर झुक जाते है। यह इतनी नाजुक चीज है कि रेतते समय भी गरम हो जाती है, इसलिए वीच-बीच में ठण्डा करना पड़ता है। आशा करता हूँ कि तुम्हें नमूनेवाले तकुवे नहीं मिले हैं। यदि वहाँ के कारखाने में

वैसे तकुवे तैयार हो सकें तो बहुत बड़ी बात होगी। वैसे कई हजार के आर्डर पड़े हुए हैं। जो नमूने तुमने भेजे हैं वे ठीक भी नहीं हैं। अगर कोई तकुवा बिलकुल ठीक नहीं है तो चक्कर खाते समय वह डगमगाता रहता है और यह डगमगाना अच्छी कताई के लिए घातक है। मैं भरत, उस तरुण के साथ तकली का भी एक नमूना भेज रहा हूँ। जितनी जल्दी सम्भव होगा, वह भेजा जायगा।

तुम्हारा निश्छल

आचार्य ए० टी० गिदवाणी
प्रिंसपल
प्रेम महाविद्यालय
वृन्दावन

—अंग्रेजी। सावरमती, ६।८।१९२६। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१८८. पत्र : आचार्य गिदवाणी को

आश्रम,
सावरमती
अगस्त १२, १९२६

मेरे प्रिय गिदवाणी,

कताई-शिक्षक, भारत, कल तुम्हारे यहाँ गया। मुझे आशा है कि वह हिफाजत के साथ तुम्हारे पास पहुँच गया होगा। भरत नाम उसने तुलसीदास की रामायण के भरत के गुणों के लिए ग्रहण किया है; वह उन गुणों का अपने अन्दर विकास करना चाहता है। मुझे आशा है, तुम उसे पूर्ण कुशल और श्रमशील पाओगे। वह अपनी नयनदृष्टि में किसी दोष की शिकायत करता रहा है। तुम्हारे यहाँ जाने के पूर्व एक डाक्टर ने उसकी परीक्षा की और बताया कि उसकी आँखों में कोई दोष नहीं है, किन्तु यदि वह अपनी आँखों में कोई खराबी होने की शिकायत करे, तो तुम खुद समझ लोगे कि तुम्हें क्या करना चाहिए। भरत तुम्हें एक तकली देगा। कुछ दिन पहिले एक तकुवा भेजा गया था। अपने आदमियों को तीसरा प्रयत्न करने दो जिससे वे चीज बना सकें जिसे हम चाहते हैं।

राय ने प्रार्थना-सम्बन्धी जो कठिनाई उठाई है उसका समाधान तो तुम मुझसे न चाहोगे।

स्टैनगर के लोग जैसा शिक्षक चाहते है वैसा कोई शिक्षक इस समय हमारे पास नही है। वह पत्र तुम्हें वापिस भेज रहा हूँ कि शायद तुम्हें उसकी जरूरत हो।

तुम्हारा निश्छल

—अंग्रेजी। साबरमती, १२।८।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१८९. पत्र : डा० मुरारीलाल को

आश्रम,
साबरमती
अगस्त १७, १९२६

प्रिय डा० मुरारीलाल,

बम्बई की राष्ट्रीय स्त्री-सभा का प्रदर्शिनी समिति के नाम जो रुपया निकलता है उसके सम्बन्ध में मैंने आपको जो पत्र लिखा था, उसका प्राप्तिस्वीकार अभी तक मुझे नही मिला है। अब मुझे श्री कोटक से यह दूसरी शिकायत मिली है कि उनका पैसा भी बाकी है और वह कहते है कि उन्हें रजिस्ट्री से भेजे गये पत्रों तक का प्राप्ति-स्वीकार नहीं मिलता है। यह सब लापरवाही किस कारण है? क्या वहाँ कोई भी कांग्रेस का कार्य निपटानेवाला या अत्यन्त जरूरी पत्रों को देखनेवाला नही है? कृपया इन छोटी तफसील की बातों के लिए भी कुछ क्षण निकालिए।

आपका निश्छल

डा० मुरारीलाल
कानपुर

—अंग्रेजी। साबरमती, १७।८।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१९०. तार : मोतीलाल नेहरू को

अगस्त २०, १९२६

पण्डित नेहरू
इलाहाबाद

गोरखपुर से घनश्यामदास की उम्मीदवारी की बात जानता तक नहीं था। इसमे जरूर कोई गलती होगी।[१]

गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, २०।८।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

१९१. पत्र : कृष्णकान्त मालवीय को

भाद्र शुक्ल, १, १९८२ (सितम्बर ८, १९२६)

मुझे तुम्हारा तार मिला। यह रहा मेरा लेख।

एक सरल बालिका थी। कई वक्ताओं के भाषण सुनने के बाद, वह अपनी माँ के पास गई और बोली :—"माँ! देखो तो। ये पगले लोग न जाने क्या बक रहे है! मै तो सिर्फ चर्खा का मधुर संगीत सुनना चाहती हूँ। मैं यह पागलपन नहीं चाहती।" अपने वक्ताओं के भाषण सुनने और हमारे समाचारपत्र जो कुछ लिखते है उसे पढ़ने के बाद मैं भी उस लड़की की तरह ही परीशानी में पड़ जाता हूँ।

तुम्हारा
मोहनदास गांधी

भाई कृष्णकान्त मालवीय
अभ्युदय प्रेस, इलाहाबाद

—हिन्दी। साबरमती, ८।९।१९२६। कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी, भाग ३१ के अंग्रेजी अनुवाद से।]

---

१. देखिए १९।८।१९२६ का श्री मोतीलाल नेहरू का तार गांधी जी के नाम।

१९२. पत्र : आचार्य गिदवाणी को

आश्रम,
साबरमती,
सितम्बर ९, १९२६

मेरे प्रिय गिदवाणी,

तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया है। श्री बसु के आगमन पर उनका उचित सत्कार किया जायगा। उन्होंने अभी तक कोई सूचना नहीं दी है।

मै जुगल किशोर[1] के बारे में सब कुछ भूल गया हूँ। उनके प्रति क्षमा माँगता हूँ। मै समझता हूँ कि यदि वह किसी विशेष बात की सीमा मुझ पर नहीं लगाते, तो लेने की बिल्कुल सम्भावना की जा सकती है। इसका आशय यह है कि क्या खादी में उनका विश्वास है? और क्या वह खादी-विभाग में काम करने को तैयार होंगे? उनकी जरूरतें क्या होंगी? क्या वह विवाहित है?

तुम्हारा निश्छल

आचार्य ए० टी० गिदवाणी,
प्रेम-महाविद्यालय,
वृन्दावन

—अंग्रेजी। साबरमती, ९।९।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रा-वली से।]

१९३. तार : बाबा राघवदास को[2]

२४ सितम्बर, १९२६ या उसके बाद

मैंने किसी चुनाव के लिए कुछ भी स्वीकृति नहीं दी है, न मुझे अधिकार ही है।

गांधी

—अंग्रेजी। साबरमती, २४।९।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

---

१. बाद के आचार्य जुगल किशोर, जो भारतीय कांग्रेस के मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश के शिक्षा-मन्त्री तथा कानपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति हुए।
२. देखिए २३।९।२६ का राघवदास जी का तार।

१९४. पत्र : डाक्टर मुरारीलाल को

आश्रम,
अक्तूबर ७, १९२६

प्रिय डा० मुरारीलाल,

मुझे आपका पत्र मिल गया है। आपकी महती क्षति में मेरी सारी सहानुभूतियाँ आपके साथ हैं। मुझे कोई खयाल नहीं था कि आपके भाई गत हो गये। किन्तु यह एक ऐसा अधिभार है जो हर सार्वजनिक कार्यकर्त्ता को चुकाना पड़ता है।

चुनाव की कटुता के प्रसंग मे आप मुझ पर ऐसी शक्तियो का आरोप कर रहे है जो मुझमें नही है। यदि मैं अनुभव करता कि मैं उपयोगी रूप से हस्तक्षेप कर सकता हूँ तो किसी आवाहन की प्रतीक्षा न करता; मैं पण्डित जी[1] और लालाजी[2] का ध्यान वलात् अपनी ओर खीचता। किन्तु मै अपनी अक्षमता जानता हूँ, इसलिए छटपटाता हूँ और सहन कर रहा हूँ।

आपका निश्छल

डा० मुरारीलाल
कानपुर

—अंग्रेजी। साबरमती, ७।१०।१९२६। साबरमती आश्रम में सुरक्षित पत्रावली से।]

१९५. पत्र : चन्द्र त्यागी को

२१-३-२७

आपके साथ मै रात्री को वाते करना चाहता था परंतु आप नहि थे. दस वजने पर मैंने मौन ले लीया. क्या इच्छा है? यदि आप यहा निश्चित है और शात है तो जिन चीजों को आप मानते है उसका प्रचार करें और उस द्वारा देश की सेवा करे.

---

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू।

२. लाला लाजपत राय।

आप जब दिल चाहे आश्रम में जा सकते है. इस समय मेरा तो वहां रहना नहि होता है. इसलीये मैं नहि जानता आप वहां जाना चाहेंगे या नहि।

मुझको भी जव चाहें लीख सकते हैं।

[हिन्दी। वर्धा, २१।३।१९२७। जी० एन० ६६२८ तथा सी० डवल्यू० ४२७६ की फोटो-नकल से।]

१९६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

नन्दी पर्वत (मैसूर राज्य)
२५ मई, १९२७

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र तब मिला जब मै रोग-शय्या पर था और बहुत पत्र-व्यवहार नही कर सकता था। अभी मैं अच्छा हो रहा हूँ और हल्का-हल्का काम ही कर पाता हूँ। किन्तु मेरी प्रगति बराबर जारी है।

अब तुम्हें वहाँ[1] लम्बा समय हो गया, किन्तु मै जानता हूँ कि तुमने उसे बेकार नही खोया है। फिर भी मुझे आशा है कि जब तुम लौटोगे तबतक कमला पूरी तरह स्वस्थ हो जायगी। यदि उसके स्वास्थ्य के लिए ज्यादा दिन रहना जरूरी हो तो मै मान लेता हूँ कि तुम वहाँ रह जाओगे।

दलित राष्ट्र-सम्मेलन की कार्रवाइयों के बारे मे मैने तुम्हारा सार्वजनिक विवरण और तुम्हारा निजी गुप्त विवरण भी खूब ध्यान लगाकर पढा। खुद मुझे इस सघ से बहुत आशा नही है, क्योंकि और कुछ कारण न भी हो तो यह तो है ही कि उसकी स्वतन्त्र प्रवृत्ति का दारोमदार उन्ही सत्ताओं के सद्भाव पर है,

---

१. युरोप में जहाँ जवाहरलाल अपनी रुग्णा पत्नी के इलाज के लिए गये थे और बीच बीच में युरोपीय प्रवृत्तियों में भी शामिल होते रहते थे।

जो दलित राष्ट्रो के शोषण में भागीदार है, और मेरा खयाल है कि युरोपीय राष्ट्रों के जो सदस्य इस संघ मे सम्मिलित हुए वे अन्त तक गर्मी कायम नही रख सकते। कारण, जिसे वे अपने स्वार्थ की हानि समझेगे उसमें वे अपने को अनुकूल नही बना सकेंगे। इधर यह खतरा है कि हमारे लोग अपनी भीतरी शक्ति का विकास करके मुक्ति प्राप्त करने के बजाय उसके लिए फिर बाहरी शक्तियों की ओर देखने और बाहरी सहायता ढूँढने लगेंगे। किन्तु यह तो कोरी दिमागी राय है। मै युरोप की घटनाओ का ध्यानपूर्वक अवलोकन नही कर रहा हूँ। तुम मौके पर हो और तुम्हें वहाँ के वातावरण मे वास्तविक सुधार दिखाई दे सकता है, जो मुझे बिल्कुल दिखाई नही देता।

तुम्हारे आगामी कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने की कुछ चर्चा है। इस विषय में मेरा पिताजी से पत्र-व्यवहार हो रहा है। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर महासमिति के सर्वसम्मत प्रस्ताव के बावजूद यहाँ भविष्य बिल्कुल उज्ज्वल नही है। पता नही कि सिर फोड़ने का सिलसिला किसी भी तरह रोका जायगा या नही। आम लोगों पर हमारा नियन्त्रण नही रहा और मुझे ऐसा दिखाई देता है कि अगर तुम अध्यक्ष बन गये तो सर्वसाधारण की दृष्टि से तुम कम-से-कम साल भर के लिए तो खो जाओगे। फिर भी इसका यह अर्थ नही कि कांग्रेस के काम की उपेक्षा करनी है। किसी-न-किसी को तो उसे करना ही है। किन्तु बहुत लोग हैं जो इस काम को करने के लिए रजामन्द और उत्सुक है, उनकी नीयत मिली-जुली या स्वार्थपूर्ण भी हो सकती है, परन्तु वे कांग्रेस की गाड़ी किसी-न-किसी तरह चलाते रहेंगे। संस्था सदा उनकी मर्जी पर उनके हाथ में रहेगी, जिनमे सामूहिक कार्य करने के गुण होंगे और जिनका आम लोगों पर काबू हो जायगा। तब प्रश्न यह है कि तुम्हारी सेवाओं का सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जा सकता है? तुम्हारा अपना जो विचार हो, वह तुम्हें करना चाहिए। मुझे मालूम है कि तुम में अनासक्त विचार करने की क्षमता है और तुम दादाभाई या मैकस्विनी की तरह बिल्कुल नि.स्वार्थ होकर कहोगे कि "यह ताज मेरे सिर पर रख दो।" और मुझे कोई सन्देह नही कि वह रख दिया जायगा। स्वयं मुझे मार्ग इतना स्पष्ट नही दिखाई देता कि मै वह ताज जबर्दस्ती तुम्हारे सिर पर रख दूँ और उसे पहिनने के लिए तुम्हे समझाऊँ। पिताजी ने यदि पहिले ही न लिख दिया हो तो इसी डाक से तुम्हे लिखेंगे। इस पत्र की एक नकल उनके पास भिजवा रहा हूँ।

अच्छा हो, तुम भी अपनी इच्छा की सूचना समुद्री तार द्वारा दे दो। जुलाई के अन्त तक मेरे बंगलौर में रहने की सम्भावना है। इसलिए तुम अपना तार सीधे बंगलौर भेज सकते हो, या बिल्कुल पक्की बात करनी हो तो

आश्रम के पते पर भेज दो। मैं जहाँ भी जाऊँगा वही वह तार दोहरा दिया जायगा।

तुम सबको प्यार।

तुम्हारा,

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। नन्दी पर्वत, २५।५।१९२७।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

१९७. पत्र : श्रीप्रकाश को

नान्दी पर्वत

२६वी मई, १६२७

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश,

आश्रम से पुनः प्रेषित तुम्हारा पत्र पाकर आनन्दित हुआ। तुम्हारा सूत काम-चलाऊ है और तुम्हें सूत्रकार संघ (चर्खा संख) के सदस्य के रूप में, बिना किसी खरखशे के, भरती हो जाना चाहिए।

मैं समझ सकता हूँ कि गर्मी के दिनों में तकली तुम्हें कष्ट देती होगी। ऐसे दिनों में उसे उषःकाल में जब तुम बिना किसी नकली रोशनी के तार को साफ साफ देख सको, चलाना सबसे अच्छा होगा। उस समय, सूखे से सूखे मौसम में भी, कुछ नमी रहती है जिसके कारण पूनियाँ ज्यादा अच्छा काम देती हैं। और तकली चलाते समय, यदि उसे तुम एकान्त में चला रहे हो, तुम अपने सब भगवद्गीता के या अन्य प्रिय श्लोकों का पाठ भी कर सकते हो।

यह रही रु० २६५-३ की रसीद जो आश्रम से लोगों ने मेरे पास भेज दी है।

मुझे प्रसन्नता है कि तुमने विद्यापीठ में खद्दर पहनना और चर्खा चलाना अनिवार्य करने का निश्चय किया है।

मुझे आशा है, तुमने कुछ समय आश्रम में विताने के विचार का त्याग नही कर दिया है।

तुम्हारा विश्वसनीय

मो० क० गांधी

संलग्न १ : (गुजराती में सत्याग्रह आश्रम, सावरमती से २२।५।२७ तिथि में श्रीप्रकाश जी के नाम कटी रसीद।)

—अंग्रेजी। नान्दो पर्वत, २६।५।१९२७। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश
तथा नेहरू संग्रहालय।

१९८. पत्र : श्रीप्रकाश को

कुमार पार्क,
वंगलौर
१५ जून, १९२७

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा भय विश्वास में परिवर्तित होना चाहिए कि विद्यापीठ के सम्वन्ध में भेजी हुई तुम्हारी विज्ञप्ति 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित हो जायगी।

कुछ दिन पहिले जो एक चेक तुमसे मिला था उसकी पावती दी जा चुकी है। मैंने २० मई को तुम्हें लिखा था। क्या तुमने उसके वाद भी कोई चेक भेजा था?

तुम्हारा शुभैषी
मो० क० गांधी

श्री श्रीप्रकाश
सेवाश्रम
वनारस कैण्ट

—अंग्रेजी। वंगलौर, १५।६।१९२७। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश
तथा नेहरू संग्रहालय।

१९९. पत्र : राजकिशोरी को

(पोस्टकार्ड)

बंगलौर
२६-७-२७

चि० राजकिशोरी,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला है। वैसे ही लिख भी रहा। आज कल मदनमोहन क्या हो रहा है? दिनचर्या क्या है? शरीर प्रकृति कैसी है? अगस्त मास तक मैं बंगलौर में ही हूं। मुझको शक्ति आ रही है।

बापु के
आशीर्वाद

(टिप्पणी—पत्र लिखा किसी और के हाथ का है। हस्ताक्षर गांधी जी के हैं।—सम्पा०)

—हिन्दी। बंगलौर, २६।७।१९२७। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ६०९९) से।]

२००. तार : जवाहरलाल नेहरू को

[टिप्पणी। कोष्ठक के शब्द सम्पादक-द्वारा, अर्थ समझने की दृष्टि से जोड़े गये हैं। आलोचनाओं और कांग्रेस के आन्तरिक विरोधों से क्षुब्ध होकर जवाहरलालजी कांग्रेस से पद-त्याग करना चाहते थे। गांधीजी ने उसी ओर इशारा किया है:—सम्पा०]

मथुरा से ६।९।१९२७

जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

(तुम्हारी) नैतिक कठिनाई (मैं) गहराई के साथ समझ रहा हूँ, किन्तु निर्णय तक पहुँचने में कोई जल्दी नही होनी चाहिए। इस्तीफे पर

जोर नही देना चाहिए। अगर अब भी क्षुब्ध हो तो जहाँ भी चाहो, मुझसे मिलो।

गांधी

—अंग्रेजी। मथुरा, ६।९।१९२७। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२०१. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

(पोस्टकार्ड)

भाई बनारसीदास जी,

आप के दो पत्र मीले थे परतु मुसाफरी के कारण इसके आगे मैं उत्तर न लीख सका.

अब कुछ स्थायी काम ले लिया है. उससे मुझे बहोत अच्छा लगता है.

गेरीसन की जीवनी तो आश्रम में है. उसको भेजने का मैं आश्रम में लीखता हूं. उपयोग होने के बाद आप वापिस भेज देंगे.

आपका
मोहनदास

७-११-२७

अफरीका जाने का छोड़ दीया. उचित हुआ है.

—हिन्दी। ७।११।१९२७। जी० एन० २५५८ को फोटो-नकल से।]

२०२. पत्र : रमेशचन्द्र को

भाई रमेशचद्र जी,

आपको उत्तर देने की आशा से आपका पत्र मैंने आज तक रक्खा. आज उत्तर दे सकता हूं.

मांस भक्षण और वनस्पति भक्षण दोनों हिंसा है परंतु एक वस्तु के सिवा मनुष्य कही भी नही जी सकता है दूसरी के सिवा प्रायः सब जगह में जी सकता

है. यदि जीव जीव मे दुःख के ज्ञान का भेद है तो जो दुःख गाय के मरने के समय होता है वह वनस्पति जीव को नहि होता है. जीव मात्र के लीये कुछ कुछ हिंसा अपरिहार्य है अहिंसा धर्म का पालक अल्पतम हिंसा करेगा. अन्य धर्मों में मांसाहार की आज्ञा नहि है उसका प्रतिबंध नहि है, दूसरे धर्मो में या तो हिंदु धर्म में भी ऐसी प्रथा है हमारे जाणना अच्छा है परंतु यदि हमारी बुद्धि निरामिषा-हार को नैतिक दृष्टि से विषेश माने तो हमारे उसका स्वीकार करना चाहीये अहिंसा का उपासक वनस्पति के उपभोग में भी मर्यादित होता जायगा. ग्रीन लैंड इ० प्रदेश मे निरामिषाहारी रहना कठिन है, असभवित नही. यदि असंभवित भी सिद्ध किया जाय तो भी हमारे हर जगह मांसाहार की आवश्यकता सिद्ध नहि हो सकती है. प्रवृत्तिमात्र सदोष होते हुए भी हम तुलना करके वहोत त्याग करते रहते हैं. मुमुक्षु के जीवन में निरंतर त्याग वृत्ति की वृद्धि होती है, ऐसा होना आवश्यक है

दूध अंडे में भेद है. अंडे अनावश्यक है. दूध भी करोड़ो के लीये अनावश्यक है. मैंने मूर्छा के वश होकर विलायत मे अंडे खाये है जैसे इस देश में मांस. परंतु जब मै सावधान हुआ तब मैने उसका त्याग कर दिया और निरामिषाहारी मित्रों के साथ तो इतनी हि चीझ लेता था जिसमें अंडे न थे. इतना मैंने अब समझ लीया है कि निर्जीव अंडे वहुत पैदा होते है. इसका शोर है और प्रामानिक निर्जीव अंडे ही लोक खाते है परंतु इस वात से अंडे खाद्य पदार्थ नहि वन सकते हैं.

अहिंसा व्यापक धर्म है. शरीर को प्राण से अलग करना हि हिंसा नहिं है. ब्रह्मचर्य का त्याग भी मेरी दृष्टि मे हिंसा है. प्रसिद्ध वात है की मांसाहार अंडे और दूध भी ब्रह्मचारी के लीये त्याज्य वस्तु है. केवल वनस्पति के आहार से ब्रह्मचर्य सुलभ हो जाता है.

अंत में, यद्यपि आहार का विषय धार्मिक मनुष्य के लीये अत्यावश्यक है तथापि न इसी में धर्म अथवा अहिंसा की समाप्ति है न यहि सर्वोपरि वस्तु है. धर्म और अहिंसा का पालन हृदय की वात है. हृदय को विशुद्ध वनाने में जिसको मांसा-हार के त्याग की आवश्यकता प्रतीत न हो वह त्याग न करे.

आपका

मोहनदास

मुसाफरी में

१३-१२-२७

—हिन्दी। १३।१२।१९२७। श्री रमेशचन्द्र (इलाहाबाद) को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ४२७९) से।]

२०३. पत्र : जवाहरलाल को

[जवाहरलाल जी दिसम्बर १९२७ ई० में युरोप से लौटे और कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में सीधे चले गये। उस अधिवेशन में उन्होंने कुछ ऐसी बातें की, जो गांधीजी को पसन्द नहीं आईं। निम्नांकित पत्र उसी सन्दर्भ में लिखा गया है।---सम्पा०]

सत्याग्रह-आश्रम,
साबरमती
४ जनवरी, १९२८

असंशोधित

प्रिय जवाहरलाल,

मेरा खयाल है, तुम्हें मुझसे इतना अधिक प्रेम है कि मैं जो कुछ लिखने जा रहा हूँ उसका तुम बुरा नहीं मानोगे। मुझे तो तुमसे इतना अधिक प्रेम है कि जब मुझे लिखने की आवश्यकता प्रतीत हो तब मैं अपनी कलम को रोक नहीं सकता।

तुम बहुत ही तेज जा रहे हो। तुम्हें सोचने और परिस्थिति के अनुकूल बनने के लिए समय लेना चाहिए था। तुमने जो प्रस्ताव तैयार किये और पास कराये उनमे अधिकांश के लिए एक साल ठहरा जा सकता था। "गणतन्त्री सेना" (रिपब्लिकन-आर्मी) में तुम्हारा कूद पड़ना जल्दबाजी का कदम था। परन्तु मुझे तुम्हारे कामों की इतनी चिन्ता नही, जितनी तुम्हारे शरारतियों और हुल्लडबाजों को प्रोत्साहन देने की है। पता नही, तुम अब भी विशुद्ध अहिंसा मे विश्वास रखते हो या नही। परन्तु तुमने अपने विचार बदल दिये हों तो भी तुम यह नहीं सोच सकते कि अनधिकृत और अनियन्त्रित हिंसा से देश का उद्धार होनेवाला है। यदि अपने यूरोपीय अनुभवों के प्रकाश में देश के ध्यानपूर्वक अवलोकन से तुम्हे विश्वास हो गया हो कि प्रचलित तौर-तरीके गलत है तो बेशक अपने ही विचारों पर अमल करो, किन्तु कृपा करके कोई अनुशासनबद्ध दल बना लो। कानपुर का अनुभव तुम्हें मालूम है। प्रत्येक सग्राम में ऐसे मनुष्यों की टोलियाँ चाहिए जो अनुशासन मानें। तुम अपने अस्त्रो के बारे मे लापरवाह होकर इस तत्व की उपेक्षा कर रहे हो।

अब तुम राष्ट्रीय महासभा के कार्यवाहक मन्त्री हो। ऐसी सूरत में मैं तुम्हें सलाह दे सकता हूँ कि तुम्हारा कर्त्तव्य है कि केन्द्रीय प्रस्ताव अर्थात् एकता पर और

साइमन कमीशन के बहिष्कार के महत्वपूर्ण किन्तु गौण प्रस्ताव पर अपनी सारी शक्ति लगा दो। एकता के प्रस्ताव के लिए संगठन करने और समझाने-बुझाने के तुम्हारे समस्त बडे गुणों के उपयोग की जरूरत है। मेरे पास अपनी बातों का विस्तार करने के लिए समय नही है, परन्तु बुद्धिमान के लिए इशारा काफ़ी होना चाहिए।

आशा है, कमला का स्वास्थ्य यूरोप की तरह ही अच्छा होगा।

सप्रेम तुम्हारा,
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, ४।१।१९२८।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२०४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
११।१।१९२८

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र।

मैं आशा करता हूँ, चाँद संकट से मुक्त हो गई होगी।

मेरा मुद्दा यह नही है कि तुमने अपने किसी प्रस्ताव पर विचार नहीं किया था, फिर स्वतन्त्रता के प्रस्ताव की तो बात ही क्या, किन्तु मेरा मुद्दा यह है कि न तो तुमने, न और किसी ने सम्पूर्ण परिस्थिति का विचार किया या प्रस्तावों के परिणाम एवं औचित्य पर ध्यान दिया। सर्वोत्तम प्रस्ताव भी असम्बद्ध और अप्रासंगिक हो सकते हैं। किन्तु तुम्हें कांग्रेस पर मेरे लेखों को ध्यान देकर पढ़ना चाहिए। स्वतन्त्रता पर मेरा विशेष लेख कल प्रकाशित होगा।

एकता प्रस्ताव में बहुत सुधार की जरूरत है।

जब भी तुम आ सको, अवश्य आओ और जब आने लगो तो अपनी रचना साथ ले आओ और अपने को काफी वक्त दो।

यह (पत्र) खण्डान्वित-सा लगेगा परन्तु इस समय मैं तुम्हें और ज्यादा नहीं लिख सकता।

बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, ११।१।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२०५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[यह पत्र महादेव देसाई की हस्तलिपि में है, परन्तु नीचे बापू जी ने हस्ताक्षर किये हैं।—सम्पा०]

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
बी० बी० सी० आई रेलवे
१५-१-२८

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला है जिसे तुम्हारे द्वारा मुझे लिखे जा सकनेवाली और सब चीजों से मैंने ज्यादा पसन्द किया है क्योंकि इसे तुमने पूरी तरह खुलकर लिखा है, और मै वह लेख लिखकर प्रसन्न हूँ कि (उसके कारण) मैं तुम्हारे मन से वे सब बातें बाहर ला सका, जिन्हें तुम इन लम्बे वर्षो मे अपने अन्दर रक्खे हुए थे। किन्तु इसके विषय मे बाद में।

यह पत्र बोलकर मैं तुम्हें यह कहने के लिए लिखा रहा हूँ कि बेचारा ब्राकवे[1] बुरी हालत में है। मुझे ज्ञात हुआ है कि उन्हें और भी गम्भीर ढंग का एक दूसरा आप्रेशन करवाना होगा, और हिन्दुस्तान में और कई महीनो तक रुकना पड़ेगा। मुझे यह भी पता चला है कि पिताजी-द्वारा भारतीय कांग्रेस कमेटी के साथ यह बात हुई थी कि उनके इंग्लैण्ड से भारत आने और लौटने का राह-खर्च कांग्रेस देगी। अगर बात ऐसी ही है, तो मैं समझता हूँ कि हमें उनका अस्पताल का खर्च

१. फेनर ब्राकवे—आंग्ल पार्लमेण्ट के सदस्य, लेखक तथा भारतीय स्वातन्त्र्य के प्रेमी।

भी देना चाहिए, यह देखते हुए कि वह कांग्रेस मे ही आ रहे थे। मुझे पता चला है कि अपने अस्पताल के खर्च के कारण वह शीघ्र ही ऋणी हो जायँगे। क्या तुम पता लगाकर आवश्यक कार्रवाई करोगे तथा जरूरी हो तो खुद ही कार्रवाई चालू करोगे।

मुझे पता लगा है कि मद्रास कमेटी ने पहिले ही लगभग चार सौ दिये है। सिर्फ अस्पताल के चार्ज ही बारह रुपये प्रतिदिन हो जाते हैं। मैं श्रीनिवास आयंगर को भी लिख रहा हूँ।

तुम्हारा सच्चा
वापू

—अंग्रेजी से। साबरमती, १५।१।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२०६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम, सावरमती
१७ जनवरी, १९२८

प्रिय जवाहरलाल,

मुझे वोलकर लिखवाने के द्वारा समय वचाना और अपने दुखते हुए कन्धे को आराम देना होगा। रविवार को मैने तुम्हें फेनर ब्राकवे के वारे मे लिखा था। आशा है, तुम्हे वह पत्र ठीक समय पर मिल गया होगा।

तुम्हे मालूम है कि जिन लेखो की तुमने आलोचना की है, उन्हें, सिवा कथित 'अखिल भारतीय प्रदर्शिनी' वाले लेख के, मैने इसीलिए लिखा था कि तुम उल्लिखित कार्य-विवरण में मुख्य हिस्सेदार थे। मुझे एक प्रकार की सुरक्षा महसूस होती थी कि तुम्हारे-मेरे वीच के सम्वन्धो को देखते हुए मेरे लेखो को उसी भावना से समझा जायगा, जिससे वे लिखे जाते थे। फिर भी मैं देखता हूँ कि यह तो सब ओर भूल-ही-भूल हुई। मुझे इसकी पर्वा नही। कारण, यह स्पष्ट है कि ये लेख ही तुम्हें उस आत्मदमन से मुक्त कर सकते थे, जिसके नीचे तुम इतने वर्षों से दबे जा रहे थे। यद्यपि मझे तुम्हारे मेरे वीच का दृष्टि-भेद कुछ-कुछ दिखाई देने लगा था,

फिर भी मुझे तनिक भी कल्पना नहीं थी कि ये मतभेद इतने भयंकर हो जायँगे। जहाँ तुम देश की खातिर और इस विश्वास में कि मेरे साथ और मेरे नीचे अपनी इच्छा के विरुद्ध भी काम करके तुम राष्ट्र की सेवा करोगे और आँच आये विना निकल आओगे, तुम अपने-आपको वहादुरी के साथ दवा रहे थे, वहाँ तुम इस अस्वाभाविक आत्मदमन के भार के नीचे दव कर कुढते रहे। और जबतक तुम उस स्थिति मे रहे, तुम उन्ही चीजों की उपेक्षा करते रहे, जो अव तुम्हे मेरी गम्भीर त्रुटियाँ दिखाई देती है। मै 'यंग इण्डिया' के पृष्ठो मे तुम्हे दिखा सकता हूँ कि इतने ही जोरदार लेख मैने महासमिति की कार्रवाइयो की वावत तव लिखे थे जव मै कांग्रेस का सक्रिय पथ-प्रदर्शन कर रहा था। जव कभी महासमिति की बैठकों मे गैर-जिम्मेदारी और जल्दबाजी की वाते या कार्रवाई होती थी तव भी मैं इसी तरह बोला हूँ। किन्तु जवतक तुम मूर्छित अवस्था में थे तवतक ये चीजे आज की तरह नही खटकी और इसलिए तुम्हारे पत्र की असंगतियाँ वताना मुझे वेकार मालूम होता है। इस समय मुझे तो भावी कार्रवाई की ही चिन्ता है।

यदि मुझसे कोई स्वतन्त्रता चाहिए तो मै उस नम्रतापूर्ण अचूक वफादारी से तुम्हें पूरी स्वतन्त्रता देता हूँ, जो तुमसे मुझे इन तमाम वर्षो में मिली है और जिसकी मैं तुम्हारी स्थिति की जानकारी प्राप्त हो जाने के कारण अव और भी कद्र करता हूँ। मुझे विल्कुल साफ दिखाई देता है कि तुम्हे मेरे और मेरे विचारों के विरुद्ध खुली लड़ाई लड़नी चाहिए। कारण, यदि मै गलती पर हूँ तो मैं स्पष्ट ही देश की वह हानि कर रहा हूं, जिसकी क्षतिपूर्ति नही हो सकती और उसे जान लेने के बाद तुम्हारा धर्म है कि मेरे विरुद्ध विद्रोह मे खड़े हो, अथवा तुम्हें अपने निर्णयो के ठीक होने मे कोई शका है तो मै खुशी से तुम्हारे साथ निजी रूप मे उनकी चर्चा करने को तैयार हूँ। तुम्हारे और मेरे वीच मतभेद इतने विशाल और मौलिक है कि हमारे लिए कोई मिलन की जगह दिखाई नही देती। मै तुमसे अपना यह दुःख नही छिपा सकता कि मै तुम्हारे-जैसा वहादुर, वफादार, योग्य और ईमानदार साथी खोऊँ, परन्तु कार्य की सिद्धि के लिए साथीपन की बलि देनी पडती है। इन सब विचारों से कार्य को श्रेष्ठ मानना चाहिए। किन्तु साथीपन के इस विछोह से—यदि विछोह होना ही है—हमारी व्यक्तिगत घनिष्ठता मे कोई अन्तर नही पडेगा। हम लम्बे अर्से से एक ही परिवार के सदस्य वन चुके है और राजनीतिक मतभेदो के होते हुए भी हम वैसे ही वने रहेगे। मुझे कई लोगो के साथ ऐसे सम्वन्ध रखने का सौभाग्य प्राप्त है। उदाहरण के लिए शास्त्री को ही ले लो। उनके मेरे राजनीतिक दृष्टिकोण में जमीन-आसमान का फर्क है, किन्तु उसके मेरे वीच जो स्नेह-सम्बन्ध

राजनीतिक मतभेदों का भान होने के पहिले ही पैदा हो चुका था, वह बना हुआ है और कई अग्नि-परीक्षाएँ पास करके भी जीवित रह गया है।

तुम्हारी पताका फहरे, इसका एक शानदार तरीका सुझाऊँ? मुझे प्रकाशन के लिए एक पत्र लिखो, जिसमें तुम्हारे मतभेद प्रकट किये गये हों। मैं उसे 'यंग इण्डिया' मे छाप दूंगा और उसका संक्षिप्त उत्तर लिख दूंगा। तुम्हारा पहिला पत्र मैंने पढ़ने और जवाब देने के बाद फाड़ दिया था। दूसरा रख लिया है और अगर तुम कोई और पत्र लिखने का कष्ट नही उठाना चाहते तो जो पत्र मेरे सामने है उसी को छापने के लिए तैयार हूँ। मुझे पता नही, इसमें कोई बुरा लगनेवाला अंश है। किन्तु कोई हुआ तो, विश्वास रक्खो, मै ऐसे हर अंश को निकाल दूंगा। मैं उस पत्र को एक स्पष्ट और प्रामाणिक दस्तावेज मानता हूँ।

सप्रेम तुम्हारा,
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, १७।१।१९२८।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२०७. तार : जवाहरलाल नेहरू को

साबरमती
२६।१।२८

जवाहरलाल नेहरू,
आनन्दभवन, इलाहाबाद,

तुम्हारा पत्र। मेरा (पत्र) तुम्हे राहत (और) स्वाधीनता देने के लिए लिखा गया था। तुम्हारा लिखा कुछ भी प्रकाशित करने की इच्छा नही। यदि सम्भव हो तो पिता को (साथ) लाओ। प्रेम।

बापू

—अंग्रेजी। साबरमती २६।१।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२०८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम,
साबरमती
२६।२।१९२८

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारे पत्र मिले हैं। दिल्ली मे जो हो रहा है वह सब मैं महसूस कर रहा हूँ और तुमने अपने पत्र में जो कुछ लिखा है, उसका प्रत्येक शब्द समझ सकता हूँ। ज्यों-ज्यो दिन-प्रति-दिन मैं कान्फरेंस[1] की कार्रवाई का अध्ययन करता हूँ और उनके आशय का अनुमान करता हूँ तो उससे मुझे कितनी वेदना होती है उसकी पर्याप्त धारणा तुम्हे नही करा सकता। पिताजी के प्रकाशपूर्ण पत्र ने दूर से किये मेरे अध्ययन की पुष्टि ही की है। इसके बाद कल कृष्णदास को कृपालानी का पत्र मिला और उस पर आखिरी रंग देनेवाला तुम्हारा पत्र आज मिला। हम लोग लार्ड बर्केनहेड की गुस्ताखी और कमिश्नरो की कुटिलता के विरुद्ध कैसा दुःखद पार्ट कर रहे है? मैंने सर जान साइमन से कुछ विशेष आशा नही की थी, किन्तु मैं उनके द्वारा नौकरशाही की सब ज्ञात चालबाजियाँ ग्रहण किये जाते देखने के लिए तैयार नही था, और यह, अस्पृश्यों-विषयक नवीनतम व्यापार तो सम्पूर्ण चित्र को ही गन्दा कर देता है। फिर भी हमे धीरज रखना होगा। इसलिए तुम धैर्यपूर्वक इस यन्त्रणा को बर्दाश्त करो और उसमें जहाँ सुधार कर सको, करो।

जितनी जल्द सम्भव हो, आ जाओ। मै आशा करता हूँ कि कमला, यदि अपनी शक्ति बढा नही पा रही है तो उसे रख तो रही है। मुझे पता नही कि पिताजी ने तुमसे वह बात कही है या नही कि जब तुम्हारे आने के पूर्व, वह मेरे साथ बंगलौर मे थे तो उन्होने और मैंने, गर्मियो में उसके भव्य मौसिम के कारण बंगलौर मे तुम्हारे ठहरने के बारे में सोचा था। अब कष्टप्रद मौसिम के सिर्फ चार सप्ताह ही शेष बचे है किन्तु तुम सदा नन्दी हिल पर जा सकते हो, जो बंगलौर से केवल ३५ मील की दूरी पर है और जहाँ तुम्हे आनन्ददायिनी शीतल ऋतु

---

१. साइमन कमीशन के साथ की जानेवाली चर्चाओं और बैठकों से आशय है।

मिलेगी। स्वीजरलैण्ड में कमला ने जो प्राप्त किया है उसे किसी भी तरह खोने का मौका उसे नहीं देना चाहिए।

तुम्हारा सच्चा
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, २६।२।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

२०९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
२०।३।२८

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। अभी तो मैं तुम्हारे द्वारा बताये हुए मित्र को एक सन्देश भेजने के लिए ही यह पत्र लिख रहा हूँ। अब तो उन्होंने सीधे मुझे लिखा है किन्तु जैसा कि मैंने वादा किया था, सन्देश तुम्हे भेज रहा हूँ। वह साथ है।

मैं आशा करता हूँ कि तुम मेरे लेखों को, जो मैं बहिष्कार और मिलों के ऊपर लिख रहा हूँ, पढते जा रहे होगे। मैं मिलमालिकों के साथ सलाह-मश्विरा भी कर रहा हूँ। मैं नही जानता कि वे किसी बात पर राजी होंगे किन्तु यदि तुम्हें कोई बात गलत या कमजोर मालूम पड़े, तो तुम कृपा करके मुझे बता दोगे।

कमला का क्या हाल-चाल है? गर्मियों की ऋतु में उसे रखने के लिए तुम कहाँ जा रहे हो?

तुम्हारा सच्चा
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, २०।३।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२१०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
सावरमती
१-४-२८

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है।

साथ की प्रतियो से तुम्हें मालूम हो जायगा कि मिल-मालिकों के साथ समझौते में क्या प्रगति हुई है। फिर भी मै तुम्हारी इस वात से सहमत हूँ कि इस समय उनसे कुछ परिणाम नही निकल सकता। किन्तु उचित समय आने पर समझौतों का फल निकल सकता है। एक समय वह था जव मिल-मालिक वहिष्कार तथा खादी-प्रचार के सर्वथा विरुद्ध थे। इन समझौते की वातों के समाप्त होने पर मैं फिर लिखूंगा।

यद्यपि रोमें रोला का प्रथम पत्र, जिसकी उम्मीद थी, आ गया है और उसमें मेरे प्रस्तावित प्रवास के प्रति वड़े उत्साह का भाव है, फिर भी उससे मै किसी निर्णय पर नही पहुँच सका हूं। ज्यों-ज्यों किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचने का समय नजदीक आता जा रहा है, मेरी हिचकिचाहट वढ़ रही है। परन्तु शायद अगले सप्ताह रोलां से कोई समुद्री तार प्राप्त हो और वह मेरे भाग्य का निर्णय कर दे।

इस वीच, सिंगापुर जाना तो नही ही हो रहा है। अभी तो मै यही रहूंगा। यदि मैं यूरोप नही गया तो मुझे वर्मा जाना और दो महीने वहां पहाड़ियों में जाकर तथा अपने निवास-काल को वहां धनसंग्रह करके विताना है।

मैं भी तुम्हारे इस मत का हूं कि किसी-न-किसी दिन हमे धनिकों और वोलने वाले शिक्षित वर्ग के विना ही कोई गहरा आन्दोलन छेड़ना होगा। किन्तु वह समय अभी नहीं आया है।

तुमने यह नहीं लिखा कि कमला गर्मी के महीने कहाँ वितायेगी ?

तुम्हारा सच्चा
वापू

—अंग्रेजी। सावरमती, १।४।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२११. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम,
साबरमती, ५-४-२८

मेरे प्रिय जवाहर,

'यंग इण्डिया' के अंक में तुम मिलों पर मेरा लेख देखोगे। सबसे ताजी बात यह है कि वे, हमारे सन्दर्भ के बिना ही, अपनी तरफ़ से एक स्वदेशी-संघ खोलना चाहते है। ऐसा ख्याल न करो कि मेरी चेष्टा से कोई ठोस बात होनेवाली है। उन्हें अपनी योजनाओं पर जाने दो। जहां तक मैं देखता हूं, हमें निश्चित रूप से अपना ध्यान घूम-घूम कर खादी बेचने पर सीमित करना चाहिए।

यूरोपीय-प्रवास के विषय में अभी तक कोई अन्तिम निर्णय नही हो पाया है। मैं खुद ही इससे दूर हट रहा हूं और यह रोलां से कुछ और संकेत पाने पर, जो मुझे अगले सप्ताह मिलेगा, निर्भर करता है।

तुम्हारा सच्चा
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, ५।४।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी,
तथा नेहरू संग्रहालय

२१२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम
साबरमती, ८-४-२८

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। मुझे याद नहीं पड़ता कि पिताजी ने मुझसे यह बात कही हो कि वह इस महीने के अन्तिम सप्ताह में मिल-मालिकों से मश्विरा करने के लिए बम्बई लौटेंगे। किन्तु उन्होंने और मैंने विस्तार के साथ, विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के प्रश्न पर बात-चीत की थी और (इस विषय पर) सेठ लाल जी,

शान्तिकुमार, सेठ अम्बालाल, कस्तूरभाई और मंगलदास की कान्फ्रेंस में मश्विरा भी किया था। यह एक अच्छी कान्फरेंस थी किन्तु उसमें कोई निश्चित बात नहीं हुई। अब मैंने निश्चित रूप से सुना है कि मिल-मालिक अपनी खुद की स्वदेशी लीग स्थापित करने जा रहे हैं, जिसका मतलब यही है कि हमारे बीच किसी प्रकार का समझौता नहीं हो पा रहा है।

आज लाल जी से मेरी लम्बी वार्त्ता हुई है क्योंकि वह यहां दो दिनों तक थे। वह विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के विषय में उत्साहित हैं। मैंने उन्हें साहित्य दिया है। उन्होंने यहां तक सुझाव दिया कि मैं कुछ नेताओं को निमन्त्रित करूं और उनसे बहिष्कार के विषय पर बातचीत करूं। मैंने उनसे कहा कि मुझमें वैसा करने की हिम्मत नही है। उनकी राय यह है कि यदि बहिष्कार के विषय में गहरा प्रचार-कार्य करना है तो मुझे देश के बाहर नही जाना चाहिए। इस बात में तो मैं भी उनसे सहमत हूँ, किन्तु जबतक राजनीतिक मानस वाला भारत पूरे हृदय से मेरे साथ न हो और जबतक ब्रिटिश माल, मुख्यतः ब्रिटिश वस्त्र, के अस्थायी बहिष्कार का आन्दोलन बन्द न कर दिया जाय, तबतक मैं गहरे प्रचार का काम नहीं ले सकता। इसलिए हम इस अस्थायी व्यवस्था पर सहमत हुए हैं कि यदि प्रसिद्ध नेताओं की ओर से स्वयंप्रसूत कार्य के रूप में कोई ठोस बात सामने आती है, तब मैं यूरोप जाने का विचार छोड़ दूंगा। इसके विपरीत यदि कोई ठोस बात नही होती, और मुझे और तरह से भी अपना रास्ता साफ दिखाई देता है, तो मैं यात्रा पर रवाना हो जाऊँ और लाल जी तथा दूसरे ऐसे लोग जो उनके जैसे मानस के हों, विदेशीवस्त्र-बहिष्कार के गहरे प्रचार-कार्य के लिए वातावरण तैयार करें—फिर चाहे इसमें मिलों की मदद न भी मिले। इसलिए मेरा सुझाव है कि तुम डा० अंसारी तथा दूसरों से सलाह-मश्विरा करो—मैं समझता हूँ कि सभी पंजाब जायँगे—और खादी के जरिये विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का प्रस्ताव पास करो। मैं तुम्हें चेतावनी देना चाहूँगा कि उसमे विदेशी मिलों के वस्त्र की कोई चर्चा न हो। तुम तो बस इतना कह सकते हो : "चूंकि राष्ट्र की सम्मिलित शक्ति के तुरन्त प्रदर्शन रूप में विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का एक मात्र साधन ही उपलब्ध है, यह सम्मेलन सब सम्बन्धित जनों से अनुरोध करता है कि वे विदेशी वस्त्रों का पूर्ण बहिष्कार करें और उनकी जगह हाथ की कती-बुनी खादी को अपनायें—फिर चाहे इसके कारण परिधान के विषय पर अपनी रुचि बदलनी ही क्यों न पड़े और चाहे इसमें कुछ आर्थिक क्षति ही क्यों न हो।" तुम मुझे उस व्यक्तिगत 'वार्तावलाप के परिणाम से भी सूचित करना जो तुम मित्रों के साथ करोगे, और फिर मुझे सलाह भी देना कि क्या मुझे यूरोप जाने के विचार का त्याग

कर देना चाहिए। डा० अंसारी को, वस्तुतः, यह निर्णय करने मे समर्थ होना चाहिए।

तुम्हारा सच्चा
बापू

--अंग्रजी। साबरमती-आश्रम, ८।४।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२१३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम
साबरमती, १७।४।२८

प्रिय मेरे जवाहर,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। क्या तुम जानते हो कि जब तुमने मुझे लिख दिया था कि तुम पंजाब जा रहे हो, तब भी मुझे यह मालूम नहीं था कि तुम सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में जा रहे हो? जब डा० किचलू ने मुझे लिखा था तब उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा कि अध्यक्ष कौन होनेवाला है। जो भी हो, जब मुझे मालूम हुआ कि अध्यक्षता तुमने की, तो मुझे खुशी हुई।

निश्चय मैं सब जगह वही देखता हूं जो तुमने सम्मेलन मे देखा। मुझे ताज्जुब है कि मैं जो कुछ सर्वत्र अनुभव कर रहा हूं—गम्भीरता का सर्वथा अभाव तथा निरन्तर लगन के साथ कोई ठोस काम करने की ओर अरुचि, उस पर तुम्हारा ध्यान गया है या नहीं।

क्या तुम्हें पंजाब में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए कोई आशा प्राप्त होती है?

जहां तक युरोप-यात्रा का सवाल है, अब भी मैं तुम्हें कोई निश्चित समाचार देने में असमर्थ हूं।

जहां तक मिलों की निष्फल वात-चीत का सवाल है, तुम अव तक पिताजी से सब कुछ जान चुके होंगे।

बापू

——अंग्रेजी। सावरमती आश्रम, १७।४।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावरी से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२१४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम
सावरमती, २४-४-२८

मेरे प्रिय जवाहर,

तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया। मगनलाल की मृत्यु के रूप में मुझपर जो विपत्ति आई है, उसे तुम निश्चित रूप से जान ही चुके हो। यह स्पष्ट ही असह-नीय है। फिर भी, मै वीर मुद्रा वनाये हुए हूँ।

मैने उस प्रस्ताव को नही पढ़ा था जिसमें कांग्रेस से "शान्तिमय एवं उचित साधनो का "त्याग कर" सम्पूर्ण सम्भव उपायों के रूप में अभिव्यक्ति को वदलने के लिए कहा गया था। मैं स्वतन्त्रता (इण्डिपेण्डेण्ट) को तो निगल सकता हूँ, 'सम्पूर्ण सम्भव उपायो' तो अग्राह्य है। किन्तु मैं समझता हूँ कि हमें ऐसे पेट का विकास करना होगा जो किसी भी विप को घूंटने के लिए पर्याप्त शक्तिमान हो। फिर भी मैं आशा करता हूँ कि तुम अपनी इच्छा और सामर्थ्य के वाहर अपना शोषण नही होने दोगे।

अव यह स्पष्ट हो गया है कि मिल-मालिक कांग्रेस से सौदा करना चाहते थे। किन्तु मै इन निष्फल समझौता-वार्त्ताओं के लिए दुखी नहीं हूँ। उन्होंने वातावरण को स्पष्ट कर दिया है।

रोमें रोलां के जिस पत्र की प्रतीक्षा थी, वह रविवार को मिल गया। मैं उनसे जिस भार को उठाने की आशा रखता था, उसे वह न उठा सकेंगे। इसलिए

मैं इस साल (यूरोप) नहीं जा रहा हूँ। किन्तु इस विषय में सब-कुछ 'यंग इण्डिया' के पृष्ठों में पढ़ोगे।

तुम्हारा सच्चा
बापू

—साबरमती आश्रम, २४।४।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२१५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
बी० बी० सी० आई रेलवे
तिथि १७-६-२८

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिल गये। कमला और इन्दु-विषयक समाचार चिन्ताजनक है। मैं तुमसे और निश्चित सूचना की आशा कर रहा हूँ। मैं दोनों के लिए, और कम-से-कम कमला के लिए तो निश्चित रूप से, गरीब आदमियों की दवा अर्थात् नितम्ब-स्नान एवं कटि-स्नान सुझाने को ललच रहा हूँ। परन्तु मैं जानता हूँ कि यह व्यावहारिक नहीं है और उसे मामूली उपचार के बीच से ही गुजरना होगा।

मुझे आशा है, एक सर्वसम्मत विधान का मस्विदा परिपूर्ण रूप में कमेटी द्वारा प्रकाशित किया जायगा।

महादेव एक आश्रम-कूप के चबूतरे से बुरी तरह गिर पड़े है। वह शय्याग्रस्त परन्तु पहिले से अच्छे है।

बापू

—अंग्रेजी। सत्याग्रहाश्रम साबरमती, १७।६।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२१६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला है, पिता जी ने कमला एवं इन्दु के विषय में सब-कुछ मुझे लिखा था।

इतना स्पष्ट है कि हमें किसी उचित समझौते के योग्य वातावरण प्राप्त नहीं है। जरा खड्गपुर की विभीषिका को तो देखो। दोनों पक्ष अपने होश में आवें, इसके पहले जमकर और लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी।

मेरी कामना है कि तुम इकला अनुभव न करोगे। हमें इतना मान लेना चाहिए कि कार्यकर्त्ताओं के सामने का काम सरल नही है, जैसा कि एक समय हम, उसे समझते थे। मै चाहूंगा कि तुम धीरज न खोओ और कोई मशक्कत का काम, उसमें जीवित श्रद्धा रखकर, अपना लो। भगवद्‌गीता तुम्हारी पथदर्शक पुस्तिका हो।

प्रेमपूर्वक
बापू

—अंग्रेजी। ३।७।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२१७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैं आशा करता हूँ, कमला और इन्दु विकसित हो रही है। मुझे तुम्हारा तार और पत्र मिल गये है। अध्यक्षता का मामला तो अब खत्म हुआ।

मैं यह पत्र भीवर जी (भुवरजी ?) के विषय में तुमसे सलाह लेने के लिए लिख रहा हूँ। उन्होने आश्रम से अपने को बीस रुपया प्रति मास देने को कहा है, और इसके लिए वह एक सौ रुपये पेशगी चाहते है। मै चाहूँगा कि तुम मुझे बताओ. कि वह कैसा काम कर रहे है, और आया तुम्हें सन्तोप दे रहे है। अखिल भारतीय चर्खा-संघ तो उन्हे कुछ देगा नही और दे सकता भी नही। क्या तुम आश्रम

को उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की सलाह देते हो? वह किस तरह काम कर रहे हैं?

तुम्हारा सच्चा
बापू

—अंग्रेजी। २९।७।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२१८. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

(पोस्टकार्ड)

भाई बनारसीदास जी,

आपका पत्र मीला है. भाई ओझा को जो उत्तर भेजा गया है योग्य है. तार भेजने की आवश्यकता नहि है. क्योंकि मैंने पहले एक तार भेज दिया.

आपका
२-८-२८ मोहनदास

—हिन्दी। २।८।१९२८। जी० एन० २५६३ की फोटो-नकल से।]

२१९. पत्र : श्रीप्रकाश को

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
२।१०।२८

मेरे प्रिय प्रकाश,

तुम्हारा सूत पहिले से अच्छा है किन्तु अभी तक जैसा होना चाहिए नही है। तुम्हें ठीक ढंग बताने के लिए कृपालानी के आश्रम से किसी को पकड़ना चाहिए या सीखने के लिए यहाँ आना चाहिए।

वनारस वाली घटना के सन्दर्भ में मैं कहूँगा कि मैंने जानवूझकर उसे छोड़ दिया है, जैसा कि मैंने अपने जीवन के कितने ही अन्य मनोरंजक अध्याय छोड़ दिये है। वल्कि बात तो यह है कि ज्यों-ज्यों मैं इन अध्यायों के साथ आगे वढ़ रहा हूँ, मेरी परीशानी वढती जाती है क्योंकि प्रमुख अभिनेता अभी जीवित हैं और वे वहुत कुछ जनता की आँखो में हैं। कभी-कभी तो मैं अनुभव करता हूँ कि मुझे अगले अध्याय लिखना बन्द कर देना चाहिए, यद्यपि वैसा तवतक कर नहीं पाऊँगा जवतक कि (कांग्रेस के) १९२० के विशेष अधिवेशन तक पहुँच न जाऊँ। निस्सन्देह मै वनारस के उस प्रसंग को अपने जीवन के गौरवमय प्रसंगों में मानता हूँ। मैं सचमुच उसके लिए तैयार नही था और मैं आज तक नहीं जानता कि उस परीक्षा में खड़े होने की शक्ति मुझमें कहाँ से आ गई। अपने जीवन के अनेक प्रसंगों के विषय में मै कह सकता हूँ––"तेरी श्रद्धा ने मुझे पूर्ण वना दिया।"

तुम्हारा भेजा चेक मुझे विधिवत् प्राप्त हो गया है।

तुम्हारा शुभैषी
मो० क० गांधी

श्रीयुक्त श्रीप्रकाश
सेवाश्रम,
वनारस कैण्ट

––अंग्रेजी। सावरमती, २।१०।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय।

२२०. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई वनारसी दास,

आपके दो पत्र मेरे पास है. 'चाकलट'[1] नाम पुस्तक पर जो पत्र था उसका

---

१. स्व० पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' ने अप्राकृतिक व्यभिचार की समस्या पर यह पुस्तक लिखी थी जो मतवाला-मण्डल, कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी। इसे लेकर चतुर्वेदीजी ने 'हिन्दी में घासलेटी साहित्य' के विरोध में आन्दोलन

मैंने यं० इं० के लीये नोट लीखकर भेज दीया. पुस्तक तो नहिं पढ़ा था. टीका केवल आपके पत्र पर निर्भर थी. मैंने सोचा इस तरह टीका करना उचित नहिं होगा. पुस्तक पढ़ना चाहिए. मैंने पुस्तक आज खतम की. मेरे मन पर जो असर आप पर हुआ, नहिं हुआ है. मैं तो पुस्तक का हेतु शुद्ध मानता हुं. इसका असर अच्छा पड़ता है या बूरा मुझे मालम नहिं है. लेखक ने अमानुषी व्यवहार पर घृणा ही पैदा की है. आपके पत्र की चिन्ह अब खुलवा दुंगा.

महाराज कुंवर सींग जी के बारे में मैं क्या लीखुं? वहोत सोच रहा हुं। सिर्फ लीखने से कुछ नहीं हो सकेगा, शास्त्री जी प्रयत्न कर रहे है. मैं सावधान हुं.

पर कु० सीग के वारे में बिहार सरकार कुछ करे तो हो सकता है. अन्यथा क्या हो सकता है? इस विषय में मैं कुछ हिस्सा लेना नहीं चाहता हुं।

आपका
मोहनदास

१९-१०-२८
श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
९१, अपर सर्कूलर रोड
कलकत्ता

—हिन्दी। १९।१०।१९२८। जी० एन० २५२१ की फोटो-नकल से।]

२२१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
१७-११-२८

मेरे प्रिय जवाहर,

तुम्हारे पत्र से मेरी सब चिन्ता दूर हो गई है। जबतक तुम एजेण्ट' के रूप

चलाया था। उनकी चिट्ठी पर गांधी जी ने यं० इं० में टिप्पणी लिखी थी
किन्तु बाद में स्वयं पुस्तक पढ़कर उसे मंसूख कर दिया था।—सम्पा०
१. जवाहरलालजी उस समय संयुक्तप्रान्त में चर्खासंघ के एजेण्ट थे। कार्य

में काम करने को राजी हो, तव तक कोई परिवर्तन करने की जरूरत नहीं, और तव तो निश्चित रूप से नहीं, जव तुम्हारे पकड़कर भगा लिये जाने की अफवाह उठ रही है। जव वह घटना घटेगी तव हम देखेंगे। जव तुम अपने कन्धे पर यह वोझ न उठा सको तव के लिए मैं व्यक्तिशः कृपालानी[1] के एजेण्ट वनने के विचार को पसन्द करता हूँ। यदि तुम १८ दिसम्वर को वर्धा आ सकते हो तव हम इस विषय पर और वातचीत कर लेंगे या फिर वैसा कलकत्ता में करेंगे।

शीतला सहाय, और किसी वात से अधिक अपने मानसिक सन्तुलन के खयाल से, कुछ महीने आश्रम में रहना चाहता था। कुछ घरेलू तथा अन्य चिन्ताएँ उसके दिमाग पर सवार हैं। वह शान्त समय चाहता था। और वह उसे पा रहा है।

कमला के लिए मैं दुःखी हूँ। स्पष्ट है कि स्वीज़रलैण्ड में वह पूर्णतः नीरोग नहीं हुई थी। मुझे खुशी है कि तुम उसे कलकत्ता ले जा रहे हो। (वहाँ) उसे सम्भव सर्वोत्तम सलाह तो मिलेगी।

मुझे आशा है, तुम अपनी सीमा से ज्यादा श्रम नहीं कर रहे हो। लालाजी[2] की मृत्यु एक भारी संकट है।

तुम्हारा सच्चा
वापू

पण्डित जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहावाद

—अंग्रेजी। सावरमती, १७।११।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

पद्धति में कुछ मतभेद के कारण उनके परिवर्तन की वात कुछ क्षेत्रों में उठी थी।

१. आचार्य जीवतराम भगतराम कृपालानी। गांधीजी के पुराने साथी, प्रमुख अनुयायी, गांधी आश्रम के संस्थापक। भारतीय कांग्रेस के वर्षों तक प्रधानमन्त्री और वाद में अध्यक्ष। स्वतन्त्र गांधीवादी विचारक।

२. लाला लाजपत राय।

२२२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
वर्धा
२८-११-२८

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारा पत्र प्राप्त हो गया है। यदि तुम फिर म्यूनिसपलटी में प्रवेश करते हो—जबतक कि तुम इस शर्त पर प्रवेश नहीं करते कि तुम्हारे प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता का पालन किया जायगा, निश्चय ही मुझे दुःख होगा। यदि तुम्हें झगड़ों को सुलझाने के लिए अन्दर जाना पड़ रहा हो, तो यह तुम्हारे योग्य बात नहीं है। मेरा विश्वास है कि तुम अपने अखिल भारतीय काम को ठोस म्युनिसपल कार्य के साथ संयुक्त नही कर सकते। ठोस म्युनिसपल कार्य खुद अपने में एक पूरा काम है और वह एक आदमी की सम्पूर्ण क्रियाशक्ति, जो वह लगा सकता है, चाहता है, और मैं यह नहीं पसन्द करूँगा कि वहाँ तुम्हारा काम ठोस के सिवा कुछ और हो।

मुझे क्रिश्चियन कान्वेन्शन में शरीक होने के लिए मैसूर जाना था। मैंने वर्ष के मध्य भाग में मित्रों को ऐसी आशा दिलाई थी, किन्तु एक महीने पूर्व उन लोगों को सूचित कर दिया कि यदि मुझे जरा भी विश्राम लेना हो तो मेरा जाना असम्भव है।

तुमने कमला के विषय में मुझे जो समाचार दिया था, वह बुरा है। कलकत्ता में उसका इलाज किये जाने का विचार मुझे पसन्द है। वहाँ उसे सर्वोत्तम सम्भव डाक्टरी सलाह प्राप्त होगी।

मै आशा करता हूँ कि तुम यहाँ बैठक में उपस्थित होने के लिए समय निकालोगे।

तुम्हारा सच्चा
मो० क० गांधी

पण्डित जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद

—अंग्रेजी। वर्धा, २८।११।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२२३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[लखनऊ में साइमन-कमीशन का वहिष्कार संघटित करने के सिलसिले में जवाहरलाल जी तथा अन्य लोगों पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया था। यह पत्र उसी के सन्दर्भ में लिखा गया है।—सम्पा०]

वर्धा
३ दिसम्बर, १९२८

प्रिय जवाहर,

तुम्हे मेरा प्यार। सव काम वीरतापूर्वक किया गया। तुम्हें इससे भी अधिक वीरता के कार्य करने हैं। भगवान तुम्हें दीर्घायु करे और भारत को गुलामी के जुए से छुड़ाने से तुम्हे अपना विशेष अस्त्र वनाये।

तुम्हारा,
वापू

—अंग्रेजी। वर्धा, ३।१२।१९२८]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२२४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम,
सावरमती, १२-१-२९

मेरे प्रिय जवाहर,

तुम्हारा तार मुझे मिला। वाँदा और झाँसी के कुछ कार्यकर्त्ताओं के आग्रह को मानकर मैं निश्चय ही संयुक्तप्रान्त के कुछ हिस्सों की यात्रा करना चाहता था। किन्तु संयमशील होने के कारण उन्होंने अपना आग्रह वापिस ले लिया। अब एक दूसरी सम्भावना और है और वह मेरठ तथा दिल्ली के समीप की है। वे लोग चाहते है कि मैं वहाँ मार्च में जाऊँ किन्तु मार्च के लिए मेरे पास इतने अधिक ठहराव हैं कि उनमें से मुझे चुनाव करना पड़ेगा। दिल्ली और मेरठ के साथ आंध्र की वात है, कर्नाटक भी है और वर्मा की वात भी है, फिर पंजाव भी तो है। लाला जी की सोसाइटी[1] के लोग अपने वार्षिक समारोह के लिए मुझे वहां चाहते

---

१. सर्वेन्टस आफ पीपुल सोसाइटी।

हैं। प्रस्तावित यूरोपीय प्रवास के विषय में मैं पिता जी के निर्णय की राह देख रहा हूँ। यदि वह उस प्रवास को खत्म कर देते है तो मेरा समय लेने की सब माँगों को सन्तुष्ट कर सकने की राह मेरे लिए खुल जायगी। यदि वह चाहते हैं कि युरोप की यात्रा हो तब मै अपना दौरा एप्रिल के प्रथम सप्ताह के आगे नहीं बढ़ा सकता। फिलहाल मैं इस मामले को इससे आगे नही ले जा सकता। किन्तु मै चाहूंगा कि चुनाव करने में तुम मेरी मदद करो। तुम पिताजी से उनकी इच्छा के बारे में राय लोगे तो इससे तुम मेरा ज्यादा अच्छी तरह पथ-दर्शन कर सकोगे।

जबतक यह (पत्र) तुम्हारे पास पहुंचेगा तबतक शायद पिताजी मुझे अपनी राय तार से भेज चुके रहेंगे। यदि वह न भेज पायें तो कृपया देखना कि वह वैसा करें।

अब कमला की क्या हालत है? और खुद तुम कैसे हो? तुम सेक्रेटरी (सचिव) हो गये हो, इसलिए मै चाहता हूं कि तुम दिलोजान से अपने को कार्यक्रम में लगा दो और कार्य-समिति के आदेशों का पालन हो, इस पर बाध्य करो और वर्तमान लज्जाजनक अव्यवस्था के बीच व्यवस्था लागू करने की कोशिश करो।

तुम्हारा सच्चा
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, १२।१।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२२५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
तिथि, १७-१-२९

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया। संयुक्त प्रान्त के दौरे के विषय में मैं तुम्हें पहिले ही लिख चुका हूं। यह (पत्र) मैं कृपलानी के बारे में लिख रहा हूं।

जमनालाल जी ने मुझे बताया कि तुम्हारी इच्छा है कि कृपलानी तुम्हारे नीचे संघटन का काम करें—मतलब यह कि वह काम करें, जो शीतला सहाय कर रहे थे तथा उसमे और जो वृद्धि कर सकें करें। तुम्हारे जिस पत्र का मैं उत्तर दे रहा हूं, उससे तो मुझ पर ऐसी छाप नही पड़ती। मैं समझता हूं कि कृपलानी तुमको इसके पहिले ही लिख चुके है, क्योंकि तुम्हारा पत्र पाने के पहिले ही, जमनालाल जी के पत्र के आधार पर मै उनसे बातें शुरू कर चुका था; शंकरलाल[1] ने भी ऐसा ही किया था। इसलिए अब तुम मुझे लिखो कि इस मामले में ठीक-ठीक क्या चाहते हो।

यदि मैं निकट भविष्य में संयुक्त प्रान्त का प्रवास नही करता, और यदि तुम एक-दो दिन के लिए भी साबरमती आ सको तो हम बहुत-सी बातों पर विचार कर सकते है।

वे अनुकूल हों या प्रतिकूल, मैं कमला के विषय में डाक्टरों की रिपोर्टों पर पूर्णतः अविश्वास करता हू। मेरी इच्छा है कि तुम और पिता जी तथा कमला अपने मन को इस बात के लिए तैयार करलें कि वह प्राकृतिक चिकित्सा का आश्रय ले—इसका मतलब है कूने के स्नान तथा सूर्य-स्नान। सूर्यस्नान तो अब डाक्टरी पेशे मे भी प्रचलित हो गया है और उससे असाधारण परिणाम निकलने का दावा किया जाता है।

यदि जरूरी हो तो कृपलानी के विषय में तुम तार दे सकते हो।

तुम्हारा सच्चा
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, १७।१।१९२८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. शंकरलाल बैंकर, भारतीय चर्खा-संघ के प्रधान मन्त्री।

२२६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम,
साबरमती, २४।१।२९

मेरे प्रिय जवाहर,

युरोप-प्रवास के विषय में पिताजी को लिखा मेरा पत्र तुम देखोगे। मैं चाहता हूं कि तुम इस पर मुझे अपनी राय दो। इससे कोई निर्णय पर आने में मदद मिलेगी।

मुझे कृपालानी के विपय में तुम्हारा तार मिला है। जमनालाल जी और शंकरलाल, खासकर जमनालाल जी, ने अपने दिल कृपालानी पर लगा दिये हैं। उन लोगों को शीतला सहाय के कुछ ज्यादा कर सकने पर विश्वास नहीं है। उनका विचार है कि संयुक्तप्रान्त में अपने काम के तीन वर्षों की अवधि में वह कुछ ज्यादा उपयोगी साबित नही हुए हैं। इसलिए मैं शीतलासहाय से चर्चा करनेवाला हूं और देखूंगा कि उन्हें क्या कहना है। किन्तु इसके पहिले कि मैं अन्तिम रूप से कोई निर्णय करूं, मै चाहूंगा कि तुम शीतलासहाय के बारे में अपना विचार मुझे भेज दो।

इसके साथ मेरे सिन्ध कार्यक्रम की एक प्रति है।

तुम्हारा सच्चा
बापू

नत्थी : १

इतना लिख चुकने के बाद, तुम्हारा पत्र मिला। अब मै शीतलासहाय से बात कर चुका हूं। सब मिलाकर उनके लिए त्यागपत्र देना ही अच्छा है। जहां तक उनके भावी कार्यक्रम की बात है, आज रात को मैं उनसे बातें करनेवाला हूं।

बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, २४।१।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२२७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती, २६।१।२६

मेरे प्रिय जवाहर,

मैंने शीतलासहाय से बात कर ली है, और हम दोनों एक परिणाम पर पहुंचे है, कि सब बातों का विचार करते हुए उनके लिए त्यागपत्र देना ही सबसे अच्छा रहेगा। फिलहाल उन्हें अपनी पत्नी-सहित आश्रम मे रहना चाहिए। इस अवधि मे वह खादी की सारी तकनीक (यन्त्रकौशल) मे उस्तादी हासिल कर लेगे और आश्रम के और सब ऐसे दूसरे कार्यो में भी भाग लेंगे जो जरूरी होगे। मै उनसे यह भी चाहता हूं कि तैयारी और परिवीक्षा की इस अवधि मे वह मेरे कार्य करने के ढंग को समझ लें।

मै तुमसे इस बात मे सहमत हू कि वह एक मूल्यवान कार्यकर्त्ता है, इसलिए उन्हे उतना कुशल होना चाहिए जितना सम्भव है—सिन्ध के लिए मेरे रवाना होने के तुरन्त बाद, वह इलाहाबाद आयेंगे—अपना घरबार उठा देने तथा चार्ज सौंपने को कागदपत्र तैयार करने तथा बैलेंसशीट अद्यतन बनाने के लिए, जिससे जब भी कृपालानी वहा जाने को तैयार हो, वह चार्ज ले सके।

मै चाहता हूं कि जब डाक्टर भारतीय सूर्य पर एतराज करें तो तुम उनकी बाते न सुनो। तुमने डा० मुथ्थू के बारे मे सुना होगा। रेवाशकर भाई का पुत्र धीरू अस्थि-क्षय से पीडित था। सोलन मे सैनिटोरियम मे चिकित्सा करने और जो कुछ बम्बई में सब डाक्टर लोग कर सकते थे. उसे कर लेने के बाद, उन्होंने डा० मुथ्थू को बुलवा भेजा। उन्हे एक हजार रुपये प्रतिदिन के हिसाब से फीस दी। डा० मुत्थू यह निर्धारित करने से ज्यादा अच्छी दूसरी कोई सलाह न दे सके कि मुक्त वायु, हलका भोजन और सूर्य-चिकित्सा का ही आश्रय लेना चाहिए। रुग्ण अस्थि से कभी-कभी तो एक पौण्ड मवाद प्रतिदिन निकलता था। रुग्ण अस्थि को हर सुबह कुछ घण्टो तक सूर्य की धूप मे रक्खा जाता था। और उसे खुली हवा मे सारे दिन लेटे रहना पड़ता था। वह सैनिटोरियम मे भी नहो भेजा गया। अब वह पूरी तरह नीरोग हो गया है। युरोपीय सूर्य ज्यादा अच्छा हो सकता है, किन्तु भारतीय प्रतिद्वन्द्वी के प्रति किसी तरह के तिरस्कार की ज़रूरत नही है। यहा डाक्टर प्रातःकालीन सूर्य का सुझाव देते है। उनका कथन है कि अल्ट्रा वायलेट किरणे लेने का सर्वोत्तम समय ८ से १० बजे तक होता है, और

गर्मियों में ७ से ८ तक। किन्तु यह सब वस्तुतः रोगी की दशा पर निर्भर करता है।

तुम्हारा सच्चा
बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, २६।१।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२२८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

आश्रम,
साबरमती १-२-२९

मेरे प्रिय जवाहर,

कलकत्ता में जो कुछ किया गया था, उसके विषय में 'यंग इण्डिया' मे मैने जो 'पंजाब की चिट्ठी' छापी है वह तुम ध्यान से पढ़ना। चिट्ठी में जो कुछ कहा गया है उसमें से शायद हर एक वात जानते थे। मेरी इच्छा है कि कांग्रेस कमेटी को व्यवस्थित करने को तुम अपना पहला काम बनाओगे, और उसके वाद रचनात्मक कार्यक्रम-सम्बन्धी काम को संगठित करोगे। यदि अज्ञात परिस्थितियों में ग्रेट-ब्रिटेन के साथ कोई सम्मानपूर्ण समझौता नही होता, तो देश में, व्यवहारतः स्वतन्त्रता की पार्टी के सिवा कोई दूसरी पार्टी नहीं होगी। किन्तु यदि हम समुचित लड़ाई नही लड़ सकेगे तो शोर प्रभावहीन होगा। और यदि वह लड़ाई कांग्रेस के जरिए लड़ी जानी है, तो कांग्रेस को एक जीवन्त पदार्थ होना पड़ेगा। और यह लड़ाई अहिंसात्मक लड़ाई होगी, तो वर्तमान रचनात्मक कार्यक्रम पर, उसका जो भी मूल्य है, अमल करना होगा। इसलिए इस तथ्य के सिवा भी कि जैसी तुम्हारी आदत है, सचिव पद स्वीकार करने के वाद तुम अपने कार्यालय में पूरा दिल लगाकर काम करोगे, मै चाहता हूं कि योग्यता के बल पर भी कांग्रेस कार्यक्रम पर तुम अपना सम्पूर्ण ध्यान लगाओगे। मैं यह महसूस किये विना नही रह सकता कि हम खादी के द्वारा विदेशी वस्त्र-वहिष्कार का, और यदि काफी कार्यकर्त्ता हों तो शराब की दुकानों की पिकेटिंग का भी, वहुत ज्यादा काम कर सकते है। और

यदि इन कामों को करना है तो मेरी समझ में तुम्हारे लिए यह जरूरी है कि सब प्रान्तों में दौरा करके पहिले यन्त्र को ठीक स्थिति में ले आओ।

लोगों ने मुझे कल सिन्ध जाने से इसलिए रोक दिया कि सहसा सिन्ध को भयानक सर्द हवाओं ने दबोच लिया है। मुझे रोकना उनकी मूर्खता थी, किन्तु मैं असहाय था। अब मैं कल रवाना हो रहा हूं। इसलिए तुम कार्य-क्रम में दो दिनो वाद की तिथियां वढ़ा लेना।

वैलेसशीट आदि तैयार करने के लिए, शीतला सहाय कल जा रहे हैं। मैं आशा करता हूं कि जवतक मैं सिन्ध से लौटूंगा, वह भी यहां लौट आयेंगे।

अव जव कि युरोपीय प्रवास का त्याग कर दिया गया है, तुम मुझे संयुक्त प्रान्त ले जाने के लिए आजाद हो। आन्ध्र और वर्मा, जिनमें पहिले ही जाना होगा, मुझे एप्रिल के अन्तिम सप्ताह से पहिले वहां (संयुक्त प्रान्त) जाने से विरत रक्खेंगे।

मुझे उम्मीद है कि कमला पहिले से अच्छी है।

तुम्हारा सच्चा
वापू

पण्डित जवाहरलाल नेहरू,
११ क्लाइव रोड, नई दिल्ली

—अंग्रेजी। सावरमती आश्रम, १।२।१९२९। नेहरू संग्रहालय सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२२९. तार : जवाहरलाल नेहरू को

जैकोवावाद (सिन्ध) से
७।२।२९

जवाहरलाल नेहरू
११ क्लाइव रोड, नई दिल्ली

तुम्हारा तार। कार्यसमिति में १७ को उपस्थित हो सकता हूं। शिकारपुर तार दो।

गांधी

—अंग्रेजी। सावरमती आश्रम, १।२।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२३०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[निम्नलिखित पत्र के अन्त में एस० सुब्बैया (गांधी जी के स्टीनोग्राफर) ने इस टिप्पणी के साथ गांधी जी की जगह स्वयं हस्ताक्षर किया है कि "रात ज्यादा हो जाने के कारण बापू ने मुझे हस्ताक्षर कर आपको भेजने की आज्ञा दी है।"—सम्पा०]

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
२६-२-२९

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारे पत्र मिल गये है। मैं तुम्हें एक लम्बी चीज (चिट्ठी) भेजना चाहता हूं, किन्तु वह इस समय हर्गिज न लिखनी चाहिए। मैं शीतला सहाय के विषय में तुम्हें तार दे चुका हूं। आज मैंने तुम्हें तार दिया है कि "मै इलाहाबाद से गुजर रहा हूं और यह कि मै दिल्ली में सात घण्टे तक रूकूंगा। मेरी इच्छा है कि हम एक दूसरे से दिल्ली या इलाहाबाद में मिलें, और यदि ऐसा करना सम्भव हो तो तुम कुछ दूर तक मेरे साथ भी चल सकते हो।"

मैं बहिष्कार-समिति के लिए जयरामदास की सेवाएं उसके सचिव के रूप मे प्राप्त करने की कोशिश कर रहा हूं। वह कल यहां आ रहे है। यदि वह राजी हो जाते है तो निश्चय ही कम-से-कम इस साल के लिए तो उन्हे कौंसिल छोड़नी ही पड़ेगी। हम बहिष्कार-समिति के भावी कार्यक्रम पर बाते करेंगे। मुझे दी जानेवाली थैलियों के उपयोग के विषय में तुमने जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल ठीक है। मुख्यत: खादी के कार्य में उनका उपयोग किया जायगा। दौरा खादी के लिए ही था, किन्तु स्वभावत: मैं अब रचनात्मक कार्यक्रम के विषय में बात करूंगा। किन्तु यदि लोग पैसा बिना किसी शर्त के देते है, जैसा कि उन्हें देना चाहिए, और यदि तुम सोचते हो कि थैली के किसी अंश का कुछ और भी उपयोग हो सकता है, तो इस पर भी हम चर्चा कर लेंगे। किन्तु तुम इसे भी हमारे मिलने पर होनेवाली चर्चा के एक विषय के रूप में लिख लेना जिससे जब हम मिलें तो मै इसे भूल न जाऊं।

मैं तुमसे चाहूंगा कि तुम मेरे लिए आंधी की चाल से दौरे का कार्यक्रम न रक्खो, बल्कि कुछ ऐसे केन्द्रों को ज्यादा समय दो, जहां निकटवर्ती स्थानों मे लोग एकत्र हो सकें, तथा एक गांव (स्थान) मे बहुत से समारोह न हों। यदि

तुमने इसके वारे में 'यंग इण्डिया' में मेरी टिप्पणी न पढ़ी हो तो कृपया अव पढ़ लो।

तुम्हारा सच्चा
एस० सुब्वैया
वापू के लिए

--अंग्रेजी। सावरमती, २६।२।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२३१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रहाश्रम
सावरमती
३-४-२६

मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला है। जैसा कि अभी तक है, आन्ध्रवालों ने एक दिन भी मेरे लिए ऐसा नही छोड़ा है कि मैं आश्रम जा सकूं और वहां से वम्बई आ सकूं, और जैसा कि अभी है, मेरे प्रवास का मई वाला अंश तो सचमुच मेरी तफरीह के लिए है, इसलिए मै इलाहावाद जाने के लिए २७ मई को वम्वई नहीं छोड़ना चाहूंगा। किन्तु मैं चन्द दिनों के लिए आश्रम जाना चाहूंगा, और तव अलमोड़ा जाऊंगा। मैं तव भी, अलमोड़ा जाने के पहिले कानपुर, इलाहावाद और लखनऊ निपटा सकता हूं, और यदि पजाव के लोग वैसा आवश्यक समझते हों तो पंजाव भी जा सकता हू। अभी कोई घोपणा करने की जरूरत नही है। किन्तु यदि तुम कानपुर और लखनऊ, तथा अलमोड़ा के लिए भी पहिले से तिथि निश्चित करना चाहते हो तो उसे १० जून के वाद ही रहने दो। मै तुमसे चाहूंगा कि वाहर निकलने के पहिले आश्रम को साफ़ एक सप्ताह दो। मै तुमसे यह भी चाहूंगा कि पंजाव के लोगों से पता लगा लो कि वे मुझसे क्या कराना चाहते है।

मुझे अब तक भी आन्ध्रप्रदेश का अविचल रूप से निश्चित कार्यक्रम प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए फिलहाल तुम बेजवाड़ा का प्रधान कार्यालय के रूप में उपयोग करना। मैं आठ को बेजवाड़ा पहुंचने की आशा करता हूं।

मै चाहता हूं कि यदि शीतलासहाय की जरूरत वहां न हो तो वह फिलहाल यहां आ जाय। मैं उन्हें उनकी पत्नी और पुत्री के सन्दर्भ में चाहता हूं—विशेपरूप में मेरी अनुपस्थिति के दौरान।

मैं पद्मा के चश्मे की नापे भेज रहा हूं, जिसे कृपया उसको दे दें। मैंने ये नापें लेकर उन्हें उनके पास भेजने का वादा किया था।

तुम्हारा सच्चा
बापू

——अंग्रेजी। साबरमती, ३।४।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२३२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहर,

तुम्हे पत्र लिखने के लिए मुझे बिलकुल समय नहीं मिल रहा है। मैं बरेली रिपोर्ट देख गया हूं। जहां तक मैं देख पाता हूं, इसमें खादी की सम्भावना की कोई बात नहीं है। तुमने इसे पढ़ा है? इसके बारे में तुम्हारा क्या प्रस्ताव है?

जहा तक दौरे का सवाल है, तुम जिस रूप में सर्वोत्तम समझो, व्यवस्था करो। प्रभुदास ने एक त्वरित पत्र भेजा था। मैंने उससे कह दिया है कि मैं १० जून के बाद ही जाने के लिए तैयार हो सकूंगा और तुमसे सलाह करके महीना कार्यक्रम तय करेगा।

यह दौरा कुछ कष्टप्रद है किन्तु मैं उसे भलीभांति निबाह रहा हूं।

मैंने तुम्हारे व्याख्यान का संक्षेप 'हिन्दू' में देखा। मुझे पसन्द आया।

२६।४।२६ तुम्हारा
वापू

मेरे प्रवास का कार्यक्रम तुम्हें भेजा गया है।

—अंग्रेजी। २९।४।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२३३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

कावली
१०वी मई १९२९

मेरे प्रिय जवाहर,

कमला और कृष्णा दोनों पर (रोग के) जिस कठोर आक्रमण का जिक्र तुमने किया है उससे तुम्हारे मन पर कितना वोझ आ पड़ा होगा! मेरी तो कल्पना है कि इन कौटुम्बिक आपदाओं को निश्चित रूप से राष्ट्रीय अनुशासन के अंश के रूप ग्रहण किया जाना चाहिए। मुझे खुशी है कि कृष्णा को किसी आपरेशन की जरूरत नही है।

तुम नही जानते होगे कि आन्ध्र देश प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए मशहूर है, और उनमें से कुछ तो सचमुच वीर पुरुष हैं—वीर इस अर्थ मे कि कठिनाइयो की पर्वा किये विना कठोरता के साथ वे अपने अनुसन्धान मे लगे हुए हैं। इसचिकित्सा ने वहुतेरे मामलों मे, वहां भी सफलता प्राप्त की है, जहां और सव वातें निष्फल हो गई है। फिर इसके साथ सरलता की विशेषता भी है और जहां रोगमुक्ति न भी हो तहां पूर्ण हानिरहितता की वात तो साथ में है ही। मेरी ख्वाहिश है कि तुम इन उपचारों पर ध्यान दो। यह तो जरूर है कि इसमें कठोर आहारसंयम वड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लेता है। जहां रोगी आहार-प्रतिवन्धो का पालन नही करते वहां चिकित्सा निरर्थक हो जाती है।

मैं मानता हूं कि स्थगन के लिए वंगाल की इच्छा होने पर भी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी विज्ञापित तिथि को मिल रही है।

मुझे अल्मोड़ा के विषय में तुम्हारा तार मिल गया था। मैं १० जून के वाद आश्रम छोड़ने की आशा करूंगा, जिससे १५ वी को अल्मोड़ा पहुंच सकूं।

हां, तुम संयुक्तप्रान्त और पंजाब तथा दिल्ली के लिए मुझे पूरे सितम्बर भर और अक्टूबर की जरूरत हो तो अक्टूबर में भी, ले सकते हो। इलाहाबाद म्युनिस्पिल वोर्ड के बारे में तो तुम्हीं निर्णय करोगे। मै तो अभिनन्दनपत्रों से ऊब गया हूं। इसलिए यदि इसमें कोई राजनीति हो या इससे कुछ और फायदा निकल सकता हो, तो मेरी ओर से तुम उसे स्वीकार कर सकते हो। यदि वोर्ड से मेरे पास कोई पत्र आया भी हो तो मुझे उसकी याद नहीं है।

आन्ध्र पी० सी० सी० (प्रदेश कांग्रेस कमेटी) ने जून तक समय बढ़ाये जाने की मांग, इस बिना पर की है कि अधिकांश कांग्रेस कार्यकर्त्ता अपने जिलों में दौरे के प्रबन्ध में व्यस्त है और मै जो सूचनाएं चाहता हूं, उनकी पूर्ति करने में असमर्थ है। यह तथ्य खुद अपने में ही उस अव्यवस्था का प्रमाण है जिसका राज्य हमारे घर में फैला हुआ है। जो कुछ मैं सारे आन्ध्र में देख रहा हूं, वही प्रायः प्रत्येक प्रान्त के लिए सही है।

उत्कल से कोई सन्तोष प्राप्त करने में मै असफल रहा हूं। रविवार को तमिल-नाड के सेक्रेटरी के नेल्लोर में आने की आशा करता हूं।

बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के हिसाव-किताव की जांच करने के लिए राम जी भाई की जगह मैने घनश्यामदास विरला को लिखा है कि वे किसी यशस्वी आडिटर को खोज रक्खें।

तुम्हारा सच्चा
वापू

——अंग्रेजी। कावली (आन्ध्र प्रदेश), १०।५।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२३४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे खुशी है कि दौरे में तुम मेरे साथ रहोगे। रिपोर्टों की प्रतियों का पाठ दुःखदायी है। मेरा सुझाव है कि अपनी निरीक्षाओं और सुझाओं के साथ तुम्हें ये प्रतियां सम्वन्वित कमेटियों के पास भेजना चाहिए। विहार-विषयक रिपोर्ट

ने तो मुझे आश्चर्य में डाल दिया है। किन्तु इससे पता चलता है कि हम कहां तक गिर गये है।

आशा करता हूं, कमला और कृष्णा अच्छी है।

५।६।२९ वापू

--अंग्रेजी। ५।६।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२३५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैंने प्रोग्राम पर सरसरी नजर डाल ली है। जहां तक मेरा सम्वन्ध है, यह ठीक है। मै समझता हूं कि इतना आसानी से झेल सकूँगा। मैने सोमवारों के लिए इसे जाँचा नही है। किन्तु मै मान लेता हूं कि तुमने सोमवारों को यात्रा न रक्खी होगी।

प्यारेलाल, देवदास और कुसुम वहन मेरे साथ होंगी। वल्लभ भाई, महादेव और मणिवहन जवलपुर होते हुए पहुचेगी। मैं नही सोचता कि मेरे साथ कोई और होगा।

कृपा करके मुझे २८ को मत रोकना। २७वी को समाप्त करने के वाद ही मै पहिली गाडी से चला जाना चाहूंगा।

मै आशा करता हूं कि कमला पहिले से अच्छी है। इलाहावाद आने पर मैं उसे स्वस्थ और दीप्तिमयी देखना चाहता हूं।

तुम्हारा

२०।७।२९ वापू

--अंग्रेजी। २०।७।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२३६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

रेल से
२६ जुलाई, १६२६

प्रिय जवाहरलाल,

इन्दु के नाम तुम्हारे पत्र बहुत अच्छे हैं[1] और प्रकाशित होने चाहिए। काश तुम उन्हें हिन्दी में लिख सकते ! जैसे भी है, उन्हें साथ-साथ हिन्दी में भी छपवाना चाहिए।

तुम्हारा विषय-निरूपण बिल्कुल पुराने ढंग का है। मानव का आदि अब एक विवादपूर्ण विषय है। धर्म का आदि और भी विवादास्पद है। परन्तु इन मतभेदों से तुम्हारे पत्रों का मूल्य घट नही जाता। उनका महत्व तुम्हारे निर्णयों की सचाई में नही, वरं निरूपण के ढंग में और इस तथ्य में है कि तुमने इन्दु के हृदय तक पहुंचने और उसकी ज्ञान की आँखें खोलने की कोशिश अपनी बाह्य प्रवृत्तियों के बीच में की है।

जो घड़ी मैं ले आया हूं उसके बारे में कमला से झगड़ना नहीं चाहता था। इस भेंट की तह में जो प्रेम है, उसका मै सामना नहीं कर सका। किन्तु फिर भी घड़ी इन्दु के लिए धरोहर के रूप में रक्खी जायगी। इतने सारे छोटे-छोटे शैतानों से घिरा रहकर मैं शोभा की इस चीज को सुरक्षित नही रख सकता। इसलिए मुझे जानकर खुशी होगी कि इन्दु को उसकी प्यारी घड़ी वापस मिल जाने पर कमला राजी हो जायगी।

कांग्रेस के 'ताज' पर मेरा लेख पहिले ही लिखा जा चुका है। वह यं० इं० के अगले अंक में निकलेगा।

सप्रेम तुम्हारा
बापू

—अंग्रेजी। २९।७।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय

---

१. ये पत्र बाद में अंग्रेजी और हिन्दी में 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' शीर्षक पुस्तक में प्रकाशित हुए।

२३७. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

(पोस्टकार्ड)

भाई वनारसी दास,

आपका खत मीला है. मराठा का लेख पढ़ गया. मेरा अभिप्राय है कि हमारे इस वारे में कुछ भी नहीं लीखना चाहीये. मेरा विश्वास है इसका कोई असर पश्चिम में नहिं पड़ेगा. यदि पड़ा तो उसका जो कुछ उत्तर हम देंगे उससे काम और विगड़ेगा. सेवकों पर ऐसा हमला होता ही रहेगा. कुछ भी आवश्यक होगा तो दीनवंधु[1] मुझे अवश्य लीखेगा।

आपका

५-८-२६　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　मोहनदास

—हिन्दी। ५।८।१९२९। जी० एन० २५५६ की फोटो-नकल से।]

२३८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैं 'इतिहास का उपःकाल' (डान आव् हिस्ट्री) शीर्षक पसन्द नहीं करता। 'एक पिता के पत्र उसकी पुत्री के नाम', 'इन्दिरा को चिट्ठियां' की अपेक्षा ज्यादा अच्छा शीर्षक हो सकता है, यद्यपि वादवाले पर भी मुझे एतराज नहीं है।

मेरी कामना है कि कमला इन आवर्ती वेदनाओं से मुक्त हो जायगी। यदि डाक्टर करने को तैयार हों तो मैं आपरेशन का खतरा भी मोल ले लूंगा।

मैंने घड़ी ताले-कुंजी में वन्द कर रक्खी है और वहां आते समय ले आऊंगा।

जिन्ना से मिलने के लिए मैं ११ वीं को वम्वई जा रहा हूं। मैं सरोजनी देवी की आशावादिता की कदर करता हूं। वम्वई मैं वड़ी आशा के साथ जा रहा हूं।

तुम्हारा

वापू

—अंग्रेजी। ७।८।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. दीनवन्धु=सी० एफ० एण्डरूज

२३९. पत्र : मदनमोहन मालवीयजी को

(पोस्टकार्ड)

भाई साहेब,

ब्राह्मण महा सम्मेलन नाम का अखवार है. काशी में प्रकट होता है. सनातन धर्म का रक्षक अपने को मनाता है (मानता) है. उसमें महर्षि दयानंद स्वामी पर वहोत गंदे आक्षेप आते हैं. इस बारे में आर्यसमाजी पत्रों में वहोत टीका भी आती है. क्या आप इन लेखों को रोक नहीं सकते है?

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा.

आपका

भा० र० मोहनदास

पंडित मदनमोहन मालवीय जी
विश्वविद्यालय, वनारस सिटी

(टिप्पणी—यह पत्र लिखा किसी और का है। हस्ताक्षर मात्र गांधीजी के है।—सम्पा०)

—हिन्दी। साबरमती, ७।८।१९२९। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ६८८३) से]

२४०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

यह वर्णन भेजा है लोगों ने सत्याग्रहियों के उस लघुदल का, जो आपको अभिनन्दन पत्र देना चाहता है।

तुम्हें जो तार और विरोध (पत्र) प्राप्त हो रहे हैं उनका खयाल नहीं करना चाहिए। यदि कमला की स्थिति तुम्हें काठियावाड़ जाने की अनुमति देगी तो तुम वहां आने पर स्वयं ही फैसला कर सकोगे।

मैं ७ सितम्बर को भोपाल के लिए वम्बई से रवाना हूंगा और कार्यक्रम के अनुसार ११ को आगरा पहुंचूंगा—हां, तुम कोई परिवर्तन चाहो तो वात और है।

तुम्हारा

११।८।२९ बापू

—अंग्रेजी। ११।८।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित भारतीय कांग्रेस समिति की पत्रावली संख्या ४१।१९२९ अनुक्रम २७३ से।]

सौजन्य : नेहरू संग्रहालय तथा भारतीय कांग्रेस समिति।

२४१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

कमला के आपरेशन से मैं आह्लादित हूं। मुझे आशा है, अव वह पूरी तरह से स्वस्थ हो जायगी।

तुम्हारा नाम राष्ट्र के ऊपर अनुचित रूप से न थोपने के वारे में तुम मुझपर निर्भर कर सकते हो। लाहौर से कमेटी के तार के जवाव में अपनी राय प्रकट करने के लिए मैंने अपने को वँधा हुआ अनुभव किया। तुम्हारे आत्म-सम्मान के लिए इतना काफी है कि तुम मुकुट नहीं चाहते। इस वार किसी भी आदमी के लिए यह एक भद्दा काम है। मैंने तो एक सिद्धान्त की दृष्टि से तुम्हारे नाम पर जोर दिया है। यदि देश उस सिद्धान्त को दृढ़ करने के लिए तैयार नहीं है तो हम प्रतीक्षा कर सकते हैं।

यदि तुम कर्णवार नहीं वनते हो तो इस समय एक मात्र विकल्प, जो मैं सोच सकता हूं, पिताजी का पुनः निर्वाचन है या ऐसा न हो सके तो डा० अंसारी है। क्या तुम दूसरा कोई नाम सोच सकते हो?

मैं संयुक्त प्रान्त के दौरे के लिए तैयार हो रहा हूं। प्रतिदिन खोई हुई शक्ति प्राप्त कर रहा हूं। मैं अपने प्रयोग के लिए किसी प्रकार भी दुःखी नहीं हूं, मैंने उससे वहुत कुछ सीखा है।

तुम्हारा

२८।८।२९ वापू

—अंग्रेजी। २८।८।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय

२४२. पत्र : वनारसीदास चतुर्वेदी को

(यह पत्र लिखा किसी और का है। हस्ताक्षर मात्र गांधीजी के है। सम्पा०)

आगरा
१५-९-२९

भाई श्री वनारसीदास!

आपके दोनों पत्र मिले। दयालवाग देख लूंगा। फिरोजावाद में आपके

पिता और पुत्रादि को मिलने की उम्मीद अवश्य रहता हूं। रामनारायण[1] यदि मुझको मिल गया है तो उसने मुझको अपनी पहचान नहीं करवाई। चिरंजीलाल जी से भी मिलने की उम्मीद रखता हूं। मेरी उम्मीद है कि विशाल भारत का घाटा शीघ्रता से दूर हो जायगा। बंगाल में हिन्दी-प्रचार का काम कैसे चल रहा है।

आपका

मोहनदास

—हिन्दी। आगरा, १५।९।१९२९। जी० एन० २५२२ की फोटो-नकल से।]

२४३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

अलीगढ़

४ नवम्बर, १९२९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र अभी मिला। मै तुम्हें कैसे सान्त्वना दू? दूसरो से तुम्हारी हालत सुनकर मैने अपने मन में कहा—"क्या मैने तुम पर वेजा दवाव डालने का अपराध किया है?" मैने सदा यह माना है कि तुम पर वेजा दवाव पड़ नही सकता। मैने सदा तुम्हारे प्रतिरोध का सम्मान किया है। वह सदैव सम्मानपूर्ण रहा है। इसी विश्वास पर मैंने अपना दावा आगे बढाया। इस घटना से सबक लेना चाहिए। मेरा सुझाव जब भी तुम्हारे दिल या दिमाग को न जँचे तभी अड़ जाओ। ऐसे अड़ने से मेरा प्रेम तुम्हारे प्रति घटेगा नही।

किन्तु तुम उदास क्यों होते हो? आशा है, तुम्हे लोक-मत का भय नही है। तुमसे कोई बेजा बात नही की है, तो उदासी क्यों? स्वाधीनता का आदर्श अधिक स्वतन्त्रता से टकराता नहीं। इस समय कार्यकारी अधिकारी की और अगले साल अध्यक्ष की हैसियत से, तुम अपने अधिकांश साथियों की सामूहिक कार्रवाई से अपने-आपको अलग नही रख सकते थे। मेरी राय में तुम्हारा हस्ताक्षर करना तर्कसंगत, बुद्धिमत्तापूर्ण और अन्यथा भी ठीक था। इसलिए मैं आशा करता हूं कि तुम्हारी उदासी दूर हो जायगी और तुम्हारी अचूक प्रसन्नता वापिस आ जायगी।

वक्तव्य तुम जरूर दे सकते हो, किन्तु इस विषय में जल्दी करने की जरा भी आवश्यकता नही है।

---

१. रामनारायण, बनारसीदास जी के छोटे भाई।

अभी-अभी जो दो समुद्री तार मिले है उनकी नकलें साथ में हैं। इन्हें पिताजी को भी दिखा देना।

यदि मुझसे चर्चा करने की जी में हो तो जहां चाहो मुझे पकड़ लेने में संकोच न करना।

आशा है, जब मैं इलाहाबाद पहुंचूंगा, तब कमला को स्वस्थ और प्रसन्न पाऊंगा।

हो सके तो तार देना कि उदासी मिट गई है।

सप्रेम तुम्हारा,
बापू

—अंग्रेजी। अलीगढ़, ४।११।१९२९।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२४४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वृन्दावन
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय जवाहर,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें मेरा तार मिल गया होगा। तुम्हें अभी इस्तीफा नहीं देना चाहिए। अपनी बात पर बहस करने का समय मेरे पास नहीं है। मैं इतना ही जानता हूं कि इससे राष्ट्रीय कार्य पर असर पड़ेगा। कोई जल्दी नही और किसी उसूल को खतरा नही। ताज की बात यह है कि उसे और कोई नही पहिन सकता। वह कभी फूलों का ताज नही होने वाला है। अब तो काँटों-ही-काँटे हैं। मै उसे पहिनने को अपने-आपको राजी कर सकता तो मैं लखनऊ में ही पहिन लेता। मुझे विवश होकर पहिनना पड़ेगा, इसके लिए इस प्रकार की स्थिति मेरे ध्यान में नहीं थी। उन स्थितियों मे से एक तुम्हारी गिरफ्तारी होने तथा दमन बढ़ जाने की थी! किन्तु ये सब बातें जब हम मिलें तब शान्त एवं अनासक्त चर्चा के लिए रख छोड़ें।

तब तक ईश्वर तुम्हें शान्ति दे।

बापू

—अंग्रेजी। वृन्दावन, ८।११।१९२९।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२४५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहर,

यह रहा मेरा मस्विदा। मै चाहता हूं कि तुम इस पर सावधानी के साथ विचार करो या आज रात चर्चा में पूरी तरह भाग लो। मै नही चाहता कि चाहे किसी भी तरह तुम अपने को दबाओ,—सिवाय उस जगह के जब तुम अनुभव करो कि विशेष अवसरों पर आत्म-दमन ही ज्यादा अच्छा आत्मप्रकाशन होता है। आखिरकार हम में से हर एक को अपने ही प्रकाश (ज्ञान) के अनुसार, न कि उधार लिये हुए प्रकाश से, सेवा करनी चाहिए।

१८-११-२९ बापू

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, १८।११।१९२९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२४६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[यह पत्र तिथि-विहीन है पर स्पष्टतः गांधी जी के अलमोड़ा-प्रवास के बाद का लिखा है। गांधीजी १९२९ के अन्तिम भाग में संयुक्तप्रान्त (अब उत्तर-प्रदेश) के दौरे के बाद अलमोड़ा गये थे। इससे उसकी तिथि १९२९ अन्तिमांश हो सकती है।—सम्पा०]

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैंने ताज़ा कांग्रेस बुलेटिन पढ़ी। मेरा विचार है कि उस वक्तव्य का प्रकाशन एक ऐसे संस्थागत प्रकाशन में अप्रासंगिक था जो केवल कांग्रेस की कार्रवाइयों का विवरण देने के लिए जारी किया गया है। क्या यह गवर्नमेण्ट गजट की भांति नही हो गया? योग्यता की दृष्टि से भी, मैं समझता हूं, यह उनके वकील ने तैयार किया था। जैसा कि तुमने और मैंने सोचा था, यह ईमानदार आत्माओं के उद्गार नही है।

वे जो अनशन कर रहे हैं उसकी तुमने जो वकालत की है और सहमति दी है, उसे भी मैंने पसन्द नही किया। मेरी राय में यह एक असम्बद्ध कार्य है, और जहां

तक सम्बद्ध भी हो तो यह एक मक्खी मारने के लिए लोहार के हथौड़े का इस्तेमाल करने-जैसा है। पर यह तो तुम्हारे विचार करने की बात है।

मैं चाहता हूं कि अध्यक्षता[1] के सम्बन्ध में तुम जल्दी कोई निर्णय ले लो। यह हिचकिचाहट क्यों? मैंने तो सोचा कि अलमोड़ा में इस पर सहमति हुई थी कि तुम्हीं मुकुट धारण करोगे। इस विषय पर संलग्न को पढ़ लो और पिताजी को दे दो।

आशा करता हूं, कमला अच्छी है।

तुम्हारा
बापू

—अंग्रेजी। १९२९ का अन्तिमांश। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२४७. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई बनारसीदास चतुर्वेदी,

प्रवासी भारतीयों के उद्यम में और उनके व्यवहार मे आज कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता नहि देखता हुं. परंतु इस बारे में चर्चा अनावश्यक है.

दीनबंधु के विरोध मे अमेरिका में जो कुछ हुआ उसका मुझे पूरा पता है.

आपका
मोहनदास

१९-१-३०

—हिन्दी। १९।१।१९३०। जी० एन० २५६१ की फोटो-नकल से।]

---

१. कांग्रेस की।

२४८. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई बनारसी दास,

इतना निराश होने का कोई कारण नहिं है. जो अपनी दुर्बलता का दर्शन करता है और उसे दूर करने की इच्छा रखता है उसका आधा काम तो वन गया. शेष जीवन सेवा में देने का संकल्प कल्याणकारी होगा. जो दुःख आ पड़ा है उसमें से बड़ी शक्ति पैदा कर लो. तुम्हारे सामने बहोत सेवाकार्य पड़े है. बालक अच्छा है जानकर संतोष होता है.

बापु के आशीर्वाद

४-२-३०
यं० मं०

—हिन्दी। यरवडा-मन्दिर, पूना, ४।२।१९३०। जी० एन० २५२३ की फोटो-नकल से।]

२४९. पोस्टकार्ड : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैंने कभी सोचा नहीं था कि तुम ११ मुद्दों का महत्व भूल जाओगे। खैर, चूंकि इसके पहुंचने के बाद एक-दो ही दिन रह जायंगे जब तुम साबरमती के रास्ते में होगे तब तर्क करके तुम्हरा समय मैं नष्ट नही करूंगा। मै १२ को निश्चित रूप से तुम्हारे यहां होने की आशा करता हूं। आशा है, मैं तुम्हें सन्तुष्ट कर सकूंगा कि ११ मुद्दों से हमारा मामला कमजोर नहीं, बल्कि मजबूत ही हुआ है।

क्या कमला तुम्हारे साथ आयेगी ?

तुम्हारा
बापू

६-२-३०

—अंग्रेजी। साबरमती, ६।२।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२५०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैंने भाषण पढा नही था। मुझे पढ़ने के लिए मुश्किल से ही वक्त मिलता है। आगामी अंक को देखना। उसमें वहुत कुछ होगा। सारांश तो गुजराती न० जी० में निकल भी चुका है। जव हम पहिली मार्च को मिलेंगे तव शायद वातों पर और पूर्णता के साथ चर्चा करने के लिए हमें कुछ क्षण मिल जायंगे। वा० (वाइसराय) के नाम मेरे पत्र से भी मामला साफ़ हो जायगा।

मुझे खुशी है कि कमला के विषय में कोई खतरे की वात नही है। किन्तु अब वह अस्पताल जाकर अवश्यक इलाज क्यों नही करा रही है?

तुम्हारा
वापू

२४-२-३०

—अंग्रेजी। २४।२।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२५१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

शीतला सहाय से वात करने के वाद मैंने उसे वहीं भेजने का निश्चय किया है। उसे देखने दो कि वह वहां क्या कर सकता है और तुम भी आगे की बातों पर ध्यान रक्खोगे। यदि वह और तुम निश्चय करो कि उसे लौट आना चाहिए, तो वह वैसा कर सकता है। उसकी स्त्री और वच्चे यहीं रहेंगे और वह अपनी जीवन-रक्षा भर के लिए आश्रम से ले सकता है। शेष तुम उसी से सुनोगे।

तुम्हारा
वापू

७-३-३०

—अंग्रेजी। सावरमती, ७।३।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२५२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[दिसम्बर २९ तथा जनवरी ३० के लाहौर कांग्रेस में स्वाधीनता का निश्चय किया गया। २६ जनवरी ३० को सम्पूर्ण भारत में 'स्वाधीनता दिवस' मनाया गया। इसके बाद गांधीजी सत्याग्रह आन्दोलन के सर्वाधिकारी बना दिये गये। उन्होंने नमक-कानून तोड़कर सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ करने का निश्चय किया। १३ मार्च को अपने चुने हुए सत्याग्रहियों के साथ उन्होंने अहमदाबाद से दाण्डी के लिए २०० मील लम्बा अभियान शुरू किया। ६ एप्रिल को नमक-सत्याग्रह करने की बात तय हुई। इसी अभियान-यात्रा के पूर्व तथा उसके बीच गांधीजी ने अगले दो पत्र जवाहरलाल जी को लिखे थे।—सम्पा०]

११ मार्च, १९३०

प्रिय जवाहरलाल,

अब रात के १० बजने वाले हैं। यहां जोरों की अफवाह फैली हुई है कि रात में ही पकड़ लिया जाऊंगा। मैंने तुम्हें विशेष रूप से तार इसलिए नही दिया कि सम्वाददाता लोग अपना समाचार स्वीकृति के लिए पेश करते है और सभी पूरी गति से काम कर रहे है। तार देने लायक कोई विशेष बात थी भी नही।

घटनाएं असाधारण रूप में ठीक हो रही है। स्वयंसेवकों के नाम धड़ाधड़ आ रहे है। टोली कूच करती ही रहेगी, भले ही मैं पकड़ लिया जाऊं। मैं गिरफ्तार न हुआ तो मेरी तरफ से तारों की आशा रख सकते हो, नही तो मैं हिदायत छोड़े जा रहा हूं।

मेरे पास कोई विशेष बात कहने को मालूम नही होती। मै काफी लिख गया हूं। आज शाम रेती[1] पर प्रार्थना के लिए एकत्र विशाल भीड़ को मैंने अन्तिम सन्देश दे दिया था।

भगवान तुम्हारी रक्षा करे और भार वहन करने की शक्ति तुम्हें दे।

तुम सबको प्यार,

बापू

—अंग्रेजी। साबरमती, ११।३।१९३०।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

---

१. साबरमती नदी के तट पर।

२५३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

१३ मार्च १९३०

प्रिय जवाहरलाल,

आशा है, तुम्हे मेरा पत्र मिल गया होगा, जो आखिरी हो सकता था। मेरी होनेवाली गिरफ्तारी की जो खबर मुझे दी गई थी, वह बिल्कुल विश्वस्त बताई गई थी। परन्तु हम दूसरी मंजिल पर सुरक्षित पहुंच गये हैं। तीसरी आज रात को शुरू करेंगे। मैं तुम्हें कार्यक्रम भेज रहा हूं। सभी साथियों का आग्रह है कि मुझे कार्यसमिति के लिए अहमदाबाद नहीं जाना चाहिए। इस सुझाव में काफ़ी बल है। इसलिए कार्यसमिति उस जगह आ जाय, जहां उस दिन हम हों या तुम अकेले आ सकते हो। यह भावना कि हम लड़ाई को पूर्ण किये बिना स्वेच्छा से वापिस नही लौटेंगे, अच्छी तरह घोषित की जा रही है। मेरे वापिस जाने से इसमे कुछ बट्टा लग जायगा। जमनालाल जी ने मुझे बताया कि उन्होने इस बारे में तुम्हे लिखा था। आशा है, कमला का स्वास्थ्य अच्छा है। मैंने कल कह दिया था कि तुम्हे पूरे तार भेजे जायं।

सप्रेम तुम्हारा
बापू

—अंग्रेजी। १३।३।१९३०। दांडी-यात्री की दूसरी मंजिल से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२५४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हें सारी रात जागरण करना है, किन्तु यदि तुम्हें कल रात से पहिले लौटना है तो यह अनिवार्य है। जहां भी मैं रहूंगा सन्देशवाहक तुम्हें वहां ले आवेगा। तुम प्रयाण-यात्रा के सबसे कष्टकर भाग में मेरे पास पहुंच रहे हो। तुम्हें रात के दो बजे अभ्यस्त मछुवों के कन्धो पर एक सोता पार करना होगा। मैं राष्ट्र के सबसे मुख्य सेवक के लिए भी प्रयाण को रोक नही सकता।

प्रेम
बापू

१९-३-३०

यह वही जगह है जहां वल्लभभाई गिरफ्तार हुए थे। इस गांव के सब पुश्तैनी अधिकारी मेरे हाथ में अपने त्यागपत्र रखकर अभी-अभी गये हैं।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू।

—अंग्रेजी। दांड़ी-यात्रा के दौरान, १९।३।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२५५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

३१ मार्च, १९३०

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने तार नही दिया। क्योंकि मै नही समझता कि दाण्डी में कोई पठान है, और होंगे तो हम उनसे निपट लेंगे। सरहद से अच्छे और सच्चे मित्रों के आने से भी पेच पैदा होंगे। मुझे दाण्डी पहुँचने दिया गया तो वहाँ पेचीदगियाँ बचाकर अकेला यही प्रश्न उपस्थित करना चाहता हूं। सचमुच गुजरात में घटनाएं बहुत अच्छा रूप धारण कर रही है।

मुझे आश्चर्य है कि रायबरेली में इन लोगों ने अभी से इतनी गिरफ्तारियाँ कर ली हैं। मेरे खयाल से फिलहाल नमक-कर पर ही अपना ध्यान सीमित करके तुम ठीक कर रहे हो। अगले पखवारे में हमें पता चल जायगा कि हम और क्या कर सकते है या करना चाहिए।

मेरी ओर से कोई और समाचार न मिले तो एक साथ सब जगह आन्दोलन शुरू कर देने के लिए ६ अप्रैल का दिन समझ लो।

अब रात के दस बजनेवाले है। इसलिए राम-राम।

बापू

—अंग्रेजी। ३१।३।१९३०। दांड़ी-यात्रा के बीच से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२५६. पत्र : शीतला सहाय को

[शीतला सहायजी शिवगढ़ राज्य, जिला रायवरेली के निवासी, कांग्रेस के एक प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ता थे। वह और उनकी पत्नी तथा वच्चे सावरमती आश्रम में, गांधी जी के पास काफी समय तक रह चुके थे। वाद में नमक-सत्याग्रह चलाने के लिए उन्हें गांधी जी ने रायवरेली भेज दिया था।—सम्पा०]

दांडी
११-४-३०

भाई सीतला सहाय,

तुम्हारे खत का उत्तर देर से जा रहा है। कालाकांकर के भाई[1] को नमक वनाने के लिये भेजे जायं भले वे जेल चले जायं काम तो सव जगह वहुत अच्छा चल रहा है। अधिक लिखने का समय नही है।

वापु के आशीर्वाद

(केवल 'वापू के आशीर्वाद' वापू-द्वारा)

—हिन्दी। दांडी (गुजरात), ११।४।१९३०]
सौजन्य : श्री सुरेश सिंह, कालाकांकर (अवध)

२५७. तार : जवाहरलाल नेहरू को

नवसारी
१८-४-३०

नेहरू इलाहावाद।

धन्यवाद। तुमने वहुत दूर तक मुझे चिन्तामुक्त कर दिया है। ईश्वर तुम्हे शक्ति दे।

गांधी

—अंग्रेजी। नवसारी, १८।४।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. उत्तरप्रदेश (तव संयुक्त प्रान्त) में रायवरेली को नमक सत्याग्रह का केन्द्र वनाया गया था। गांधीजी की आज्ञा थी कि कालाकांकर के कुंवर सुरेश सिंह पैदल जत्था लेकर वहां जायं और सत्याग्रह करें।

२५८. पत्र : जीवनकृष्ण शर्मा[1] को

मेरे प्रिय शर्मा,

तुम जल्दबाजी में हो। तुम्हारा काम तो अनेक को अपने मत का बनाना है। मैं मामले पर आगे विचार कर रहा हूं। अभी तक जो पत्र मिले है उनसे यही पता चलता है कि प्रतिबन्ध[2] लाभदायक और आवश्यक है। वे कहते है कि मिल के वस्त्रों के साथ-साथ खादी का प्रदर्शन करने से खादी को कुछ फायदा नही होता है। यह उसकी कमी की पूर्ति के लिए नहीं होती, बल्कि उसको स्थानच्युत करने लिए होती है। खादी का अपना एक मिशन है। वह राष्ट्रीय शिक्षण का अंग है और कम-से-कम भारत के लिए वह एक नई और सच्ची अर्थ-व्यवस्था को सूचित करती है।

खादी कार्यकर्त्ताओं की अपनी आलोचना में तुम संकीर्ण हो। वे अपने अनुभव के प्रकाश में और गरीबों की एकमात्र भलाई के लिए काम कर रहे हैं। उनकी आलोचना करने के पूर्व तुम्हें उनका दृष्टिकोण और उनकी कठिनाई को समझना चाहिए।

तुम्हारा निश्छल
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। वर्धा, १७।६।१९३०। जी० एन० ८८ की फोटो-नकल से।]

२५९. पत्र : कमला नेहरू को

(मूल हिन्दी में)

चि० कमला,

तुम्हारा खत पाकर मुझे बहोत आनन्द हुआ. शरीर को बिगड़ने मत दो उससे बहोत काम लेना है. इन्दु का शरीर अब कैसा है? कुछ बढ़ी है?

---

१. श्री जे० के० शर्मा, ला जर्नल प्रेस, इलाहाबाद।

२. गांधी जी की सम्मति से यह प्रतिबन्ध लगाया गया था कि स्वदेशी-प्रदर्शनियों में खादी संस्थाएँ तभी भाग लेंगी जब वहां मिल के वस्त्रों की दुकानें नहीं होंगी।

माता जी को प्रणाम। सरूप कृष्णा को आशीर्वाद।

वापु के आशीर्वाद

य० म० ३०-६-३०

—हिन्दी। यरवदा मन्दिर, ३०।६।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

२६०. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

चि० परसराम,

तुमारा खत मिला. जैसे शंकरलाल जी कहें ऐसा करो. लोक भले उपहास करे. तुमारे तो वही काम करते रहना. मील पुनी वेचनेवालों को प्रेम से मनाओ. धरणा मत दो. सत्य और अहिंसा हरगीज मत छोड़ो. ऐसा करने से वुद्धिवल अपने आप आवेगा. मुझे लिखते रहो.

वापु के
३-१०-३० आशीर्वाद

—हिन्दी। ३-१०-१९३०। पत्र की फोटो-नकल (सी० डवल्यू० ४९६५) से।]

२६१. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई वनारसीदास,

तुमारी धर्मपत्नी के देहांत की खवर भाई काशीनाथ ने दी है. तुमारे शीर पे यह वड़ी आपत्ति आइ है. मृत्यु से तो हमने डर को छोड़ हि दिया है. दुःख स्वार्थ का है. मैं समझा हूं तुमारे छोड़े (छोटे ?) वाल वच्चे है। परंतु इससे भी दुःख क्यों मानें? ऐसी घटनाएं जगत में वनती ही रहती है. हमारी परीक्षा का ये सब घटनाएं काल है. हमने परिश्रम करके जो ज्ञान पाया है वह हृदयगत

हुआ है या नहिं उसकी कसौटी भी ऐसे मौके पर हो सकती है. ईश्वर तुमको शांति बक्षे।

य० म०

१९-१०-३१ मोहनदास के व० मा०

[— हिन्दी। यरवडा मन्दिर, पूना, १९।१०।१९३०। जी० एन० २५२५ की फोटो-नकल से।]

२६२. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

यरोड़ा मंदिर
४-१२-३०

रामनाम का चमत्कार सबको प्रतीत नहिं होता है क्योंकि वह हृदय से निकलना चाहीये. कंठ से तो तोता भी निकालता है. परन्तु जो मनुष्य भावपूर्वक कंठ से रामनाम निकालता रहेगा उसके लिये आशा रखी जा सकती है कि वह सुवर्ण मंत्र कंठ के नीचे जाकर हृदय में प्रवेश करेगा.

मोहनदास गांधी

[— हिन्दी। यरवडा मन्दिर, ४।१२।१९।३०। गांधीजी के स्वाक्षरों में लिखी मूल प्रति से।]
सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

२६३. पत्र : चन्द्र त्यागी को

भारतीय पाठशाला
फरुखाबाद

भाई त्यागी जी,

तुमारा खत पाकर मुझको बहोत आनंद हुआ. यदि नियम-पालन से भी अशक्ति न हटे तो दूध लेना—उसके पहले पका हुआ अन्न खाकर देख लेना। हठ नहिं करना. गुरुकुल के हाल सुनकर मुझे खेद होता है अभय जी[1] जानते हैं

१. अभयदेव विद्यालंकार, हिन्दी के सुलेखक। एक समय गुरुकुल के मुख्याति-ष्ठाता तथा अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी के सदस्य।

क्या? रामदेव जी ने क्या उत्तर दिया था. वलदेव सुतारी काम भले सीखे, उसे लिखो चर्खा, करघा, तकली इ, वनाने का सीख लेवे. वह. गु० (गुरुकुल) में आज-कल कौन मुख्य अध्यापक है?

प्रेमराज जी से कहो मुझे सव हाल लिखे—वहां क्या चल रहा है?

वापु के
आशीर्वाद

मुझे कभी पता नहि था कि तुमारे उर्दू हरफ छपे हुए जैसे है. वहोत ही अच्छे है.

--हिन्दी। फर्रुखावाद, ५।१२।१९३०। जी० एम० ३२६६ की फोटो-नकल से]

२६४. पत्र : भवानीदत्त को

भाई भवानीदत्त,

तुमारा खत पाकर मुझे आनंद हुआ—जिसको सेवा का ध्यान है उसे ईश्वर ऐसा मौका दिया करता है—प्रभुदास के चर्खे पर हाथ जम जाने से अच्छा परिणाम आ जावे तो उस चर्खे के मार्फत वहोत काम हो सकेगा.

मोहनदास के
आशीर्वाद

— हिन्दी। यरवडा मन्दिर, १८।२१।१९३०। श्री भवानीदत्त जोशी, वरेली को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० १०४) से।]

२६५. पत्र : चन्द्र त्यागी को

भाई त्यागी जी,

तुमारा खत मिला—वलवीर मुझे क्यों नहि लिखता है. वह क्या चाहता है मुझे लिखे. आश्रम जाना हि चाहेगा तो अवश्य जा सकेगा. प्रेम महाविद्यालय में आजकल आचार्य कौन है? देवशर्मा जी को क्यों कानपुर ले गये? उपवास इ०

पर जो लिखना है वह लिख रखो—छापने का आगे देखा जायेगा. एक दिन की पूरी दिनचर्या लिखो.

३-१-३१[1] वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। ३।१।१९३१। जी० एन० ३२६७ की फोटो-नकल से]

२६६. पत्र : साहेब जी महाराज को

प्रिय मित्र,

आज ही मुझे कुछ शान्ति मिली है कि मैं अपने पड़े हुए पत्रादि को देखूं। मैं आपके पत्र के लिए आपका धन्यवाद करता हूं।

आपका निश्छल
मो० क० गांधी

अहमदावाद
१६-४-३१
श्री साहेवजी महाराज,
दयालबाग, आगरा

—अंग्रेजी। अहमदाबाद, १९।४।१९३१। जी० एन० २१५८ की फोटो-नकल से।]

२६७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

केम्प वोरसद
मई ८, १९३१

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा तार मिल गया था और अव विगत ३०वीं का तुम्हारा पत्र भी मिल गया है, किन्तु पिछला पत्र नही मिला है। निश्चय ही तुम्हारे लौटने की तुरन्त

---

१. स्पष्ट नहीं है। ३।२।१९३१ भी हो सकता है।

कोई आवश्यकता नही है। तुम्हारे पत्र से मैने यह समझा है कि जिस ठिठुरन की वात तुमने अपने पत्र में लिखी है उसके वावजूद तुम सव खूव अच्छे हो। तुमने समाचारपत्रो में मेरी सेहत फिर खराव होने की जो वात पढ़ी, वह निरावार तो नही थी किन्तु इस समय गुजरात में स्वास्थ्य-भंग का फिलहाल कोई खतरा नही है। कुछ अनिष्पन्न मामलो पर मि० इमर्सन से मश्विरा करने के लिए मैं अगले हफ्ते शिमला जा रहा हूं। वह अपने पत्र में कहते है कि घटनाक्रम से गोलमेज सम्मेलन के वारे में सरकार से चर्चा भी हो जायगी। वह मुझसे १८ को या उसके आस-पास नैनीताल जाने की भी आशा रखते है। मै नही जानता कि संयुक्तप्रान्त में इस समय स्थिति कैसी चल रही है, किन्तु मेरे लिए नैनीताल जाना भी अच्छा ही होगा। जिस स्पष्टता के साथ तुमने हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर अपने पत्र में लिखा है, उसको मुझे लिखने में तुमने विल्कुल सही काम किया है। यदि तुमने इससे कम कुछ किया होता तो मुझे चोट लगती। मेरे द्वारा गलत समझे जाने का जरा भी भय किये विना तुम्हें अपने दिल का वोझ उतारने का पूरा अघिकार है। यह जरूर है कि मै अपने को तुम्हारे आरोपों का अपराधी नही स्वीकार करता। मैंने सदा यह कहने में काफ़ी सावधानी रक्खी है कि मैं सिर्फ अपने लिए कह रहा हूं। जवतक हमने कोई ठोस नीति का निर्धारण नही किया है, तवतक मै अपने व्यक्तिगत विचारों को प्रकट किये विना कैसे रह सकता हूं? किन्तु ऐसे अवसर ज्यादा नही रहे है जव मैने अपने को इस प्रकार चलने दिया हो। मैं तुमसे विल्कुल सहमत हूं कि पंच-निर्णय के वारे मे डा० अंसारी का प्रस्ताव, जिसके लिए उन्होने वहुत से नाम सुझाये है, वहुत ही अव्यावहारिक है। वेशक इसका कुछ फल नही निकला है। डा० महमूद का भय सर्वथा निरावार है। मैने भोपाल (के नवाव) से उनके ही कहने से भेंट की थी और जव उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम सवाल पर चर्चा की तो मैने स्वभावतः कहा कि वह शौकतअली तथा अपने अन्य मित्रों को वुला लें, और अगर समझे कि कुछ किया जा सकता है तो मुझे भोपाल वुला सकते हैं। मैं उनसे यह नही कह सकता था कि वह इस मामले में पहल न करें। उसी दिन श्रीमती नायडू शौकत अली को "मणि भुवन"[१] ले आई और भोपाल (नवाव) से मेरी जो वातचीत हुई थी, मैंने उन्हें बता दी। इससे ज्यादा कुछ नही हुआ है। मैने कोई पहल नही की है और यह कहने के सिवा एक पंक्ति भी नही लिखी है कि मै प्रार्थना कर रहा हूं—और वह मैं शब्दशः कर रहा हूं। जव डा० महमूद ने मुझसे शिकायत की कि मैंने मूक रहने के समझौते को तोड़ दिया है, तब उनको भी गत सप्ताह मैने इतना

---

१. बम्बई में गांधीजी और सरदार पटेल के ठहरने का स्थान।

ही लिखा था। जब तुम पूरी तरह स्वस्थ होकर लौटोगे, तब हमें निश्चित रूप से (कांग्रेस) कार्य-समिति की बैठक बुलानी होगी और यदि हम सब कांग्रेसियों के पथप्रदर्शन के लिए कोई फार्मूला निकाल सकेंगे, तो मेरे लिए उससे ज्यादा खुशी की बात दूसरी नही होगी। निजी तौर पर मै सोचता हूं कि हम इस समय कोई फार्मूला नही बना पायेंगे और मै तो दिन-दिन उसी विचार की ओर खिचता जा रहा हूं जिसे मैने विदा होने के दिन या एक दिन पहिले तुम पर प्रकट किया था। बम्बई पहुंचने पर, मैं चाहे जहां भी होऊं पहिले तुम मुझसे मिलना। बहुत सम्भव है कि उस समय तक मै बोरसद या बारडोली में होऊं।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के बिना लन्दन जाना नही हो सकता।

तुम सबको प्रेम।

बापू

पण्डित जवाहरलाल नेहरू
नूवेरा एलिया, सीलोन

—अंग्रेजी। बोरसद (गुजरात), ८।५।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२६८. पोस्टकार्ड : जवाहरलाल नेहरू को

[निम्नलिखित पोस्टकार्ड में गांधीजी ने कोई तिथि नहीं दी है किन्तु डाकखाने की मुहर के अनुसार वह ५ जून १९३१ है। बम्बई में वह ६ जून को प्राप्त हुआ था।—सम्पा०]

मुझे आशा है कि तुमने सीलोन (लंका) में जो कुछ प्राप्त किया उसे दक्षिण भारत में खो नहीं दिया होगा। अगर तुम ताज़े हो और यात्रा (की कठिनाई) का खयाल नही करते हो तो रविवार के लिए बारडोली आजाओ, जिससे मंगलवार को कार्रवाई शुरू करने के पहिले हम एक शान्त वार्ता कर सकें। मुझे आशा है कमला और इन्दु को विश्राम से लाभ हुआ होगा।

तुम्हारा
बापू

पण्डित जवाहरलाल नेहरू
द्वारा श्रीयुक्त गुलभाई नवरोजी,
नेपियनसी रोड, बम्बई।

—अंग्रेजी। वारडोली, ५।६।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२६९. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

चि० परसराम,

तुमारा खत मिला. विश्वास के भाजन बने या नहिं ऐसा क्या पूछते हो. यदि नहिं होता तो मैं तुमसे कठिन त्याग कैसे करवाता. हां यह कह दुं तुमारी विह्वलता अब गई ऐसा मैं नहिं कह सकता—घंटे में २५० गज तकली पर कात लेते हो ? जो चित्र तुम भेज रहे है वहोत हि बुरे हैं. सब के सब जला देने के योग्य है.

बापु के आशीर्वाद

सदस्यों के कातने के बारे मे देखुंगा.

बोरसद, २०।६।३१

श्री परसराम मेहरोत्रा,

फीलखाना कानपुर (सं० प्रा०)

—हिन्दी। बोरसद, २०।६।१९३१। सी० डबल्यू० ४९६६ की फोटो-नकल से।]

२७०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

बोरसद

२८ जून, १९३१

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र और पोस्टकार्ड मिले। खुशी है कि रायबरेली में धारा १४४ की नोटिस वापिस ले ली गई। निश्चय ही इसका कारण मुख्य सचिव के नाम तुम्हारा स्पष्ट पत्र था। जबतक तुम कार्यसमिति के लिए बम्बई पहुँचोगे तबतक समिति को निश्चित मार्ग-दर्शन के लिए तैयार रहना चाहिए।

मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि हमारा मामला सम्पूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है कि तुम गवर्नर को मिलने के लिए कहो। यह मुलाकात माँगते हुए तुम उनसे कहो कि तुम इस प्रयत्न में कोई कसर बाकी नही रखना चाहते कि प्रान्त के सर्वोच्च अधिकारी के सामने स्पष्ट स्थिति रख दी जाय। कदाचित् गवर्नर से तुम कुछ भी लेकर नही आओगे, किन्तु उनसे मिलने और समझौते[1] का पालन कराने का प्रयत्न करके तुमअवश्य ही हमारी स्थिति को पहिले से सुदृढ़ बनाओगे। उनसे मिलने का प्रस्ताव करके और वह प्रस्ताव स्वीकार कर लें तो उनसे मिलकर हम कुछ खोयेंगे नही।

उन्नाव जिले की घटनाओं के विषय में मैने 'यंग इंडिया' में जो लिखा है वह तुमने देखा होगा। तुमने और दूसरे लोगों ने जो सामग्री भेजी है उसके आधार पर मै फिर लिखनेवाला हूं।

यह दुर्भाग्य की वात हुई कि कार्यसमिति को स्थगित करना पड़ा। वहां की वर्तमान परिस्थिति में वल्लभभाई का इलाहाबाद जाने के लिए घोर विरोध था। मेरा भी यही खयाल है कि कानपुर और उत्तरप्रदेश की अन्य उत्तेजनाओं को देखते हुए फिलहाल इलाहाबाद को छोड़ देना ही अच्छा था।

वापू

पण्डित जवाहरलाल नेहरू,
आनन्द भवन, इलाहाबाद

—अंग्रेजी। बोरसद, २८।६।१९३१। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२७१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वारडोली
जुलाई २५वीं, १९३१

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैं सी० एम० एस० पार्सनेज, क्वीयूर से आया एक पत्र नत्थी कर रहा हूं। क्या तुम इस मामले के बारे में खतौली के कांग्रेसियों से तथ्य प्राप्त करोगे?

तुम्हारा सच्चा
वापू

---

१. गांधीजी को लन्दन के गोलमेज सम्मेलन में भेजने के लिए वायसराय लार्ड विलिंगडन के साथ हुआ समझौता।

मुझे शिमला से एक तार प्राप्त हुआ है जिसमें कहा गया है कि वे लोग बम्बई सरकार से पत्र-व्यवहार कर रहे है और मुझे कोई उत्तेजक कार्रवाई नही करनी चाहिए।

संलग्न २

पण्डित जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद।

—अंग्रेजी। बारडोली, २५।७।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२७२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

हमने अभी-अभी पोर्ट सईद छोड़ा है। बड़े भाई[1] यहां हममें शरीक हो गये हैं। आज मेरा मौनवार है। बातचीत के लिए हम कल मिलेंगे। ये रही डेलीमेल और डी० टी०[2] से ली गई दिलचस्प कतरनें, जिन्हें किनारे से कुछ मित्र ले आये हैं। ये तुम्हारे विनोद और दिलबहलाव के लिए हैं। तुम इनसे निपट चुको तो वल्लभ भाई को दे सकते हो।

तुम्हारी इन्दिरा के नाम और चिट्ठियां देवदास ने मुझे दी है। अभी तक उनको देखने का समय मुझे नही मिला है। मेरा सारा समय यं० इं० एवं न० जी०[3] की तैयारी करने, पत्र लिखने और कुछ लोगों से भेंट मे तथा इनके बीच सोने में लग गया।

मैं आशा करता हू कि संयुक्तप्रान्त की परिस्थिति सुधरी होगी। मै तुम्हारे पास से खबर पाने को उत्सुक हूं। मै जानता हूं कि जब जरूरत होगी, तुम समुद्री तार का उपयोग करने में हिचकिचाओगे नही।

क्या तुम अ० गफ्फार खां से सम्बन्ध बनाये हुए हो? जयप्रकाश कैसा काम कर रहे है?

---

१. मौलाना शौकत अली, जिन्हें गांधी जी 'बिग ब्रदर' कहते थे।
२. डेली टेलीग्राफ।
३. नवजीवन।

मिस्र से आने वाले स्नेहपूरित सन्देशों के विषय में सब कुछ तुम्हे यं० इं० से मालूम होगा।

मालवीयजी बहुत अच्छी सेहत रख रहे हैं। एक दिन के अलावा समुद्र ने उन्हें तंग नही किया। समुद्री बीमारी का सबसे बड़ा हिस्सा मीराबहन ने भोगा है। प्यारेलाल और देवदास को भी काफ़ी हिस्सा मिला है। महादेव बिल्कुल मुक्त रहा है। और उसने काम भी सबसे ज्यादा किया है।

तुम्हारा
बापू

७-६-३१

संलग्न : ३ कतरनें।

—अंग्रेजी। जहाज से ७।९।१९३१। नेहरू संग्रहलाय में सुरक्षित सामग्री से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२७३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[गांधीजी लन्दन गोलमेज-सम्मेलन से लौटकर आ रहे थे। जवाहरलालजी इनसे मिलने बम्बई जा रहे थे कि इलाहाबाद से कुछ दूर पर गिरफ्तार कर लिये गये। सारे देश में दमन शुरू हो गया। तरह-तरह के आर्डिनेंस जारी किये गये। स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि गांधीजी के भारत की भूमि पर पैर रखने के पूर्व ही आन्दोलन कुचल दिया जाय, ऐसी इच्छा भारत-सरकार की है। इसी सन्दर्भ में गांधीजी ने यह पत्र लिखा था।—सम्पा०]

२८ दिसम्बर, १९३१

प्रिय जवाहर,

इन्दु[1] ने तुम्हारा पत्र मुझे दिया। कुछ भी हो, तुम्हारी गिरफ्तारी से मुझे आश्चर्य नही हुआ। मैं अभी तक कमला[2] के पास नही जा सका हूं। आज रात को जा सकता हूं, कल तो जरूर ही। तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इन्दु के नाम तुम्हारी दूसरी पत्र-माला मैंने पढ़ ली है। मुझे कुछ सुझाव देने थे, परन्तु यह तो शायद तभी होगा जब हम अपने-अपने स्वरूप में होंगे।

---

१. जवाहरलाल जी की पुत्री (बाद की इन्दिरा गांधी)
२. जवाहरलाल जी की पत्नी।

इस बीच तुम्हें और शेरवानी[1] को प्यार।

वापू

—अंग्रेजी। २८।१२।१९३१। 'ए बंच' आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२७४. पत्र : चन्द्र त्यागी को

(पोस्टकार्ड)

भाइ चंद त्यागी,

पत्र मिल गया। मैं दिन को करीव सारा दिन आकाश के नीचे ही वैठता हूं और धूप में। उंगली अच्छी है। दूध खजूर नारंगी, मिलता है तव पपीता--इतना खुराक है। मीरा वहन वंवई के जेल में है। स्थूल और सूक्ष्म ब्रह्मचर्य का पालन शरीर और मन को रोके रखने से साध्य है।

मगन भाई जोशी भी आजकल मेरे साथ ही है। हम सव अच्छे हैं।

१७-१-३२ वापु के आशीर्वाद

[टिप्पणी—यह पत्र भी महादेव भाई के हाथ का लिखा है। हस्ताक्षर मात्र गांधी जी के है।]

—हिन्दी। यरवडा मन्दिर, १७।१।३२। जी० एन० ३२६१ की फोटो-नकल से।]

२७५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

२६ जनवरी, १६३२

प्रिय जवाहर,

तुम्हारा पत्र पाकर हर्ष हुआ। हम वेचारे वाहरवालों से ईर्ष्या करने का तुम्हारे लिए कोई कारण नहीं। परन्तु हमें तुमसे इस वात की ईर्ष्या अवश्य है कि तुम्हे तो सारा गौरव प्राप्त हो रहा है और हम वाहरवालों के भाग्य में वेगार

---

१. उत्तर प्रदेश के एक नेता तसद्दुक अहमद शेरवानी जो जवाहरलाल जी के साथ ही गिरफ्तार कर लिये गये थे।

लिखी है। परन्तु हम बदला लेने का षडयन्त्र रच रहे है। आशा है, तुम्हें कुछ अखबार दिये जाते होंगे। मैं जो कुछ कर रहा हूं, उसमें तुम सदा मेरे मन में बसे रहते हो।

उस दिन कमला से मिला था। उसे बहुत अधिक विश्राम की आवश्यकता है। मैं उससे एक बार फिर मिलने की कोशिश करूंगा और आग्रह करूंगा कि जबतक वह पूरी तरह अच्छी न हो जाय अपना कमरा न छोड़े। आशा है कि डाक्टर महमूद[1] के बारे में की गई कार्रवाई से तुम सहमत होगे। मुझे विश्वास है कि आनन्द भवन पर लगाया गया कर चुकाने का वचन पूरा किया जायगा।

तुम दोनों को प्यार।

बापू

ईश्वर ने और सरकार ने चाहा तो कल आश्रम जाऊंगा और दो-तीन दिन में लौट आऊंगा।

——अंग्रेजी। २९।१।१९३२। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२७६. पत्र : बाबा राघवदास को

भाई राघवदास जी,

आपका पत्र. पाकर बहोत आनंद हुआ. गीता रामयण का प्रचार कल्याणकारी है, उसमें कुछ संदेह नहि है. जेल में कितने महिने काटे? कुछ कष्ट था?

४-२-३२ बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। ४।२।१९३२। गांधीजी के स्वाक्षरों में लिखे मूल पत्र से।]

सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार।

२७७. पत्र : चन्द्र त्यागी को

६-४-३२[2]

भाइ त्यागी जी,

तुम्हारा पत्र मिलने से आनंद हुआ, और ज्यादह इस जानने से कि प्लेग के रोगीयों की सेवा का काम कर रहे हैं। आजकल मै दूध नही लेता हूं। डबल

---

१. पटना के डा० सय्यद महमूद, जो बहुत दिनों तक कांग्रेस के प्रधान मन्त्री रहे हैं।

२. तारीख सम्भवतः अंग्रेजी में लिखी है। यहां अंग्रेजी में लिखी मानकर तारीख

रोटी, वादाम, खजूर, भाजी और नीवु इससे यहां तो काम निपटता है। मन जैसे था वैसा ही है। देवशर्माजी के खत की प्रतीक्षा करता हूं। दाहिने हाथ में सिर्फ लिखने से ही दर्द होता है। यह करीव एक वर्ष की वात है। और तो कुछ नहीं है। वलवीर के हरफ अच्छे हैं। पुराने दोषों को अव तो भूल गया है ना?

महादेव मेरे साथ है। यह कार्ड उन्ही के हाथ लिखा गया है।

६-४-३२ वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। यरवदा जेल, ६।४।१९३२। जी० एन० ३२५९ की फोटो-नकल से।]

२७८. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

[श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार को हिन्दी में लिखाया गया पत्र जिसमें उनके पूछे हुए कितने ही प्रश्नों के उत्तर हैं।—सम्पा०]

१-२ ईश्वर को मानना चाहिए, क्योंकि हम अपने को मानते हैं। जीव की हस्ती है तो जीवमात्र का समुदाय ईश्वर है और यही मेरी दृष्टि में प्रवल प्रमाण है।

३. ईश्वर को नही मानने से सवसे वड़ी हानि वही है जो हानि अपने को नहीं मानने से हो सकती है। अर्थात् ईश्वर को न मानना आत्म-हत्या-सा है। वात यह है कि ईश्वर को मानना एक वस्तु है और ईश्वर को हृदयगत करना और उसके अनुकूल आचार कर सकना यह दूसरी वस्तु है। सचमुच इस जगत् में नास्तिक कोई है ही नही। नास्तिकता आडम्वर मात्र है।

४. ईश्वर का साक्षात्कार रागद्वेपादि से सर्वथा मुक्त होने से ही हो सकता है। अन्यथा कभी नही। जो मनुष्य ऐसा कहता है कि मुझे साक्षात्कार हुआ है, उसे साक्षात्कार नही हुआ ऐसा मेरा मत है। यह वस्तु अनुभवगम्य है, परन्तु अनिर्वचनीय है। इसमे मुझे कोई सन्देह नही है।

५. ईश्वर मे विश्वास रखने से ही मैं जिन्दा रह सकता हूं। ईश्वर की मेरी व्याख्या याद रखना चाहिए। मेरे समक्ष सत्य से भिन्न ऐसा कोई ईश्वर नहीं है। सत्य ही ईश्वर है।

—हिन्दी। ८।४।१९३२। महादेव भाई की डायरी भाग १, पृष्ठ ८१।]

दी गई है। यदि उसे नागरी में माना जाय तो यह ७।५।३२ हो जायगा, यद्यपि पहली सम्भावना ही अधिक जान पड़ती है।—सम्पा०।

२७९. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

य० मं०[1]

२१-७-३२

भाई हनुमान प्रसाद,

आपका पत्र मिला और आज तार भी....[2]देवदास के लिये चिता नहीं करूंगा क्योकि आप वहां है और देवदास ने मुझको लिखा भी———[3] (है) कि आपने उससे बड़ा प्रेम किया था। डाकतर तो अच्छा है ही। आपके पत्र की आजकल हमेशा आजकल प्रतीक्षा करता रहुंगा।

जो मनुष्य सांसारिक वस्तु की प्राप्ति के लिये या और किसी कारण असत्य का सहारा लेता है, रागद्वेष से भरा है, उसको भगवत्प्राप्ति हो ही नहीं सकती है। और दूसरा दृष्टान्त जो आपने दिया है उसे मैं असंभवित मानता हूं। सत्य के मार्ग पर चलना और प्रपंच अर्थात् प्रवृत्ति से अलग रहना आकाश-पुष्प जैसी (बात[4]?) हुई। जो प्रवृत्ति से अलग रहता है, वह किस मार्ग पर चलता है वह कैसे कहा जाय। सत्य के मार्ग पर चलने में ही प्रवृत्ति प्रवेश आ जाता है। बगैर प्रवृत्ति प्रवेश के सत्य के मार्ग पर चलने न चलने का कोई मौका ही नहीं रहता। गीतामाता ने कई श्लोकों से स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य बगैर प्रवृत्ति एक (क्षण)[5]के लिये भी रह नही सकता। भक्त और अभक्त में भेद यह है कि एक परमार्थ दृष्टि से ही प्रवृत्ति में रहता है और प्रवृत्ति (में)[6] रहते हुए सत्य को कभी छोड़ता नहीं है, और रागद्वेषादि को क्षीण करता है। दूसरा अपने भोगों के लिए ही प्रवृत्ति में मस्त रहता है और अपना कार्य सिद्ध करने के लिए असत्यादि आसुरी चेष्टा से अलग रहने की कोशिश तक भी नही करता है। यह प्रपंच कोई निदा की वस्तु नही है। प्रपंच के ही मार्फत भगवद्दर्शन शक्य है। मोहजनक प्रपंच निद्य और सर्वथा त्याज्य है। यह मेरा दृढ़ अभिप्राय है और अनुभव है।

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। यरवदा जेल, २१।७।१९३२। गांधी जी के स्वलिखित मूल पत्र की प्रतिलिपि।]

सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

---

१. यरवदा मन्दिर।

२-३-४-५-६. यहां कागज कीड़ों ने खा लिया है।

२८०. कार्ड : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

भाई हनुमानप्रसाद,

देवदास की चिंता तुमारे सिर से उतरी मुझे सब खत मिले है. मैं अनुग्रह क्या मानु. क्यों मानु. ऐसी सेवा मूक रहकर लेना हि मुझे तो सभ्यता प्रतीत होती है. सब सच्ची सेवा का बदला मनुष्य नहि दे सकता है. ईश्वर हि दे सकता है.

२-८-३२ बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। २।८।१९३२। गांधी जी के स्वाक्षरों में लिखी मूल प्रति से।]
सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

२८१. पत्र : हीरालाल शर्मा को

प्रिय डा० शर्मा,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। प्राकृतिक चिकित्सा का अध्ययन पूर्ण करने के लिए योरप और अमेरिका जाने से मै तुमको दृढ़तापूर्वक रोकूंगा। यह काम तो तुमको अपने निरीक्षणों की पूर्णता तथा मौलिक अनुसन्धानो के द्वारा यही करना है। पश्चिमी देशों में भी जिन लोगो ने इस दिशा में कुछ किया है तो उन्होने अपने निजी अनुभवों से ही सीख कर किया है। किसी दूसरे से नही सीखा था। यह मानना बहुत बड़ी भूल है कि पश्चिम जाकर तुम इस बारे मे कुछ सीख सकोगे। वहां भी तो यह अपनी शैशवावस्था में ही है। पर सबसे पहिले तो तुम्हे यह करना होगा कि तुम अपने आपको स्वस्थ बनाओ। अगर तुम्हारा ही शरीर जर्जर हो तो लोग तुम्हारी सुनेगे ही नही। यह निश्चित है कि तुम्हारा रोग[1] सूर्य-स्नान और दृढ़ संयम से जायगा ही।

अपनी कोहनी[2] के दर्द के लिए मैं तुम्हें कष्ट देना नही चाहता। फिर भी सेवा के लिए तुम्हारी उत्सुकता के वास्ते धन्यवाद।

तुम्हारा शुभचिन्तक
मो० क० गांधी

१२-८-३२
यरवदा मन्दिर।

---

१. उन दिनों श्री शर्मा को भारी जुकाम हो गया था।

२. यरवदा जेल में गांधीजी के दाहिने हाथ की कोहनी में दर्द रहता था।

—अंग्रेजी। य० म० (पूना), १२।८।१९३२। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

२८२. पत्र : हीरालाल शर्मा को

प्रिय मित्र,

तुम्हारा पत्र मिल गया। पश्चिम में प्राकृतिक चिकित्सा की संस्थाओं के विषय में तुमने जो सुना या पढ़ा वह केवल दूर के सुहावने ढोल है। एक ऐसी संस्था के विषय में जिसका अत्यधिक विज्ञापन किया गया था, जब एक मित्र ने पूछ-ताछ की तो ज्ञात हुआ कि उसी स्थान के लोग भी उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें कुछ है ही नहीं। मेरा तो तात्पर्य है कि यह समूचा ही विज्ञान अपनी शैशवास्वथा में है। और इन संस्थाओं में कोई एक व्यापक विधि नहीं है। वे जो कुछ भी है अपनी संस्थाओं के मौलिक अनुसन्धानों का ही फल-मात्र हैं। हम भारतीयों को तो अपनी परिस्थितियों के अनुसार ही अपना अनुसन्धान करना होगा। उनके अनुसन्धानों से हमें जो कुछ मिल सकता है वह उनके प्रकाशित साहित्य से भी हम आसानी से पा सकते हैं। तुम्हारे स्वास्थ्य के बारे मे तो तुम्हारे पत्र से ही मुझे कुछ ऐसा लगा कि वह ठीक नही है।

तुम्हारे लिए रूढ़िवादी चिकित्सकों का अनुकरण करना काम न देगा। तुम तो एक पथ-प्रदर्शक हो अतएव तुम्हें ऐसा काम कर दिखाना है जो कठिन-से-कठिन कसौटी पर भी चढ़ सके। मुझे प्रसन्नता है कि तुमने पश्चिम जाने का विचार छोड़ दिया है। अपने शरीर को ही बनाओ। ऐसा करने से तुम बहुत से आविष्कार स्वयं कर लोगे। हो सकता है कि तुम्हारी प्रगति धीमी हो परन्तु यदि मूलाधार ठोस है तो उन्नति भी निश्चय होगी...

तुम्हारा शुभचिन्तक
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। २।९।१९३२। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

२८३. तार : जवाहरलाल नेहरू को

२४ सितम्बर, ३२

पण्डित जवाहरलाल नेहरू,
जेल, देहरादून।

वेदना के इन सारे दिनों में तुम मेरे मनश्चक्षु के सामने रहे हो। तुम्हारी राय जानने को उत्सुक हूँ। तुम जानते हो (कि) मैं तुम्हारी राय की कितनी कदर करता हूँ। इन्दु, सरूप और बच्चों को देखा। इन्दु मस्त नजर आई, पहले से ज्यादा मांस की स्वामिनी है। अच्छी तरह है। तार से जवाब दो। प्रेम।

बापू

—अंग्रेजी। पूना, २४।९।१९३२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२८४. पत्र : चिन्तामणि को

त्रिविध ताप के इन दिनों में ईश्वर मेरा पथ-प्रदर्शक और सहारा था।

—अंग्रेजी। यरवदा मन्दिर, ३०।९।१९३२। महादेव भाई की डायरी (नवजीवन), भाग २, पृष्ठ ८१ से।]

२८५. पत्र : यज्ञेश्वर चिन्तामणि को

माफी माँगने की जरा भी जरूरत नहीं। पहले आपका पत्र आया था। आशा है जवाब में लिखा हुआ मेरा पत्र आपको मिल गया होगा। आपके बताये हुए मार्ग के अपनाने में ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिन्हें पार नहीं किया जा सकता। कैदी होने के कारण मैं उन सबकी चर्चा नहीं कर सकता। अगर कर सकता होता, तो मेरा विश्वास है कि अपनी दलीलों के ठोस होने का मैं आपको यकीन करा सकता हूँ। इतना आपसे कह दूं कि सरकार और लोगों या कांग्रेस के बीच अमन कायम हो जाय, इसके लिए मुझसे ज्यादा उत्सुक और कोई नहीं हो सकता। उम्मीद है आपकी तबीयत अच्छी होगी।

—अंग्रेजी। यरवदा-मन्दिर, ८।१०।१९३२। महादेव भाई की डायरी भाग २, पृष्ठ १०० से।]

२८६. पत्र : श्रीरामनाथ 'सुमन' को

"सामुदापिक प्रार्थना की जड़ वैयक्तिक प्रार्थना ही हो सकती है। सामुदायिक प्रार्थना पर मैंने वजन दिया है, उसका यह अर्थ कभी नही है कि वह वैयक्तिक प्रार्थना से अधिक महत्व रखती है। परन्तु क्योंकि हमें सामुदायिक प्रार्थना की आदत ही नही है इसलिए मैंने उस प्रार्थना की आवश्यकता वताने की चेष्टा की है। जो कुछ अनुभव एकान्त में बैठकर तुम्हें होता है, वह समूह में होना अशक्य नही तो कठिन तो है ही और मैंने ऐसा भी देखा है कि कई लोग एकान्त मे बैठकर प्रार्थना कर ही नही सकते, समुदाय मे ही कर सकते है। उनके लिए वैयक्तिक प्रार्थना आवश्यक हो जाती है। मै यह भी कबूल करूँगा कि सामुदायिक प्रार्थना के विना मनुष्य रह सकता है, वैयक्तिक के बिना कभी नही रह सकता।

अस्पृश्यता के बारे में आज कुछ भी लिख (नही) सकता। थोड़े दिनों के वाद दुबारा पूछिए।

— हिन्दी। यरवदा-मन्दिर, २६।१०।१९३२। प्रधान सम्पादक द्वारा सुरक्षित पत्रावली से।]

- **सामुदायिक प्रार्थना के विना मनुष्य रह सकता है, वैयक्तिक के बिना कभी नहीं रह सकता।**

२८७. पत्र : प्रो० हबीबुर्रहमान को

आपका पत्र पाकर मुझे आनन्द हुआ। अब आपकी पहचान भेजिए। आपने संस्कृत भाषा का अभ्यास कहाँ तक किया? कितने वरसों तक किया? आपकी उम्र कितनी है? कितने वरसों से आप अध्यापक हुए है? कितने लड़के संस्कृत का अभ्यास कर रहे हैं? उनमें से कितने मुसलमान है? कितने हिन्दू? आपके माता-पिता जीते है? और है तो पिता जी क्या करते है?

अब आपके प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करता हूँ। हिन्दू धर्म की खसूसियत यह है कि उसमें काफी विचार-स्वातन्त्र्य है। और उसमें हरएक धर्म के प्रति उदार भाव होने के कारण उसमें जो कुछ अच्छी वातें रहती है उनको हिन्दूधर्मी मान सकता है। इतना ही नही, परन्तु मानने का उसका कर्त्तव्य है। ऐसा होने के कारण हिन्दू धर्मग्रन्थों के अर्थ का दिन प्रतिदिन विकास होता रहा है।

महाभारत और गीता के पात्रों के वारे में जो कुछ मैने कहा है, वह मेरा कोई

मौलिक खयाल नही है, लेकिन मैंने टीकाग्रन्थों में से यह विचार पाया है। सदानन्द मिश्र-कृत भगवतगीता की एक टीका है। उसमें इस विचार को अच्छी तरह बढ़ाया है। प्राकृत ग्रन्थों में भी ऐसे विचार बताये गये है। हिन्दू धर्म के नाम से प्रचलित ग्रन्थो मे जो कुछ लिखा गया है वे सब-के-सब धर्म-वचन है, ऐसा नही है और हिन्दू जनता को यह अब मानना चाहिए, ऐसा भी नही है। वेद-पाठ सुननेवाले शूद्र के कान में गरम सीसा डालने की बात को अगर ऐतिहासिक माना जाय, तो मैं उसे धर्म मानने के लिए हर्गिज तैयार नही हूं और ऐसे असंख्य हिन्दू है जो उसे धर्म-वचन नही मानते है। हिन्दू धर्म के लिए एक कसौटी रक्खी गई है, जिसको एक बालक भी समझ सकता है। जो बुद्धिग्राह्य वस्तु नही है और बुद्धि से विपरीत है, वह कभी धर्म नही हो सकती और जो सत्य और अहिंसा से विपरीत है वह भी धर्म नही हो सकती है।

अब रही यरवदा समझौते की बात। कम-से-कम मेरे नजदीक वोट की गिनती की वह बात किसी हालत में नही थी। मेरे नजदीक हरिजन भाइयों का अंग्रेजी मन्त्रि मण्डल के प्रस्ताव से जो बुरा हो रहा था उसी को मिटाने की बात थी। अनशन व्रत के बारे में आपसे मैं क्या विनय करूँ? इतना ही कह सकता हूँ कि वह ईश्वर-प्रेरित बात थी, उसको मैं रोक नही सकता था।

—हिन्दी। यरवदा-मन्दिर, ५।११।१९३२। महादेव भाई की डायरी, भाग २, पृ० २७३-७४।]

२८८. पत्र : राधाकान्त मालवीय को

श्री चिन्तामणि और श्री कुंजरू के बारे में तुमने जो जानकारी अपने पत्र में दी है, वह मेरे लिए महत्व की है। इसलिए या तो तुम्हें उनसे इस बात की तसदीक और सहमति प्राप्त करके भेजनी चाहिए या मुझे प्राप्त करने की स्वतन्त्रता देनी चाहिए।

—हिन्दी। यरवदा-मन्दिर, ८।११।१९३२। म० भा० डा० भाग २, पृ० १८२]

२८९. पत्र : चिन्तामणि को

[श्रीराधाकान्त ने चिन्तामणि और कुंजरू से पूछ लेने की अनुमति दे दी। इसलिए बापू ने चिन्तामणि और कुंजरू दोनों को एक ही तरह का पत्र लिखवाया था।—सम्पा०।]

"अस्पृश्यता-निवारण पर मेरे चौथे वक्तव्य में जिस पत्र का उल्लेख है, उसका लिखनेवाला कौन है, यह अन्दाज आपने जरूर लगा लिया होगा। उसमें जिन नामो का जिक्र है, उनमें से एक आपका और दूसरा पं० हृदयनाथ कुंजरू का है। मेरी प्रार्थना पर उस पत्र के लेखक श्री राधाकान्त मालवीय ने अपना नाम आप दोनों को बता देने की मुझे इजाजत दे दी है। मैं कुछ भी कहूँ उससे पहले आपसे यह जान लेना मेरा फर्ज है कि मेरे उपवास से क्या आपको सचमुच बलात्कार महसूस हुआ था? और आपने अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण किया था? मैं पण्डित कुंजरू को भी लिख रहा हूँ।"

—अंग्रेजी। यरवदा-मन्दिर, ११।११।१९३२। म० भा० डा० भाग २, पृष्ठ १९६।]

२९०. पत्र : गोविन्दलाल शाह को

यरवडा जेल
२६-११-३२

भाई गोविन्दलाल जी,

प्रभुदास लिखता है कि आप बीमार हो गये है, यहाँ तक कि आपरेशन के लिये रांची जाने की तैयारी कर रहे थे। मेरी उम्मीद है कि अब अच्छा होगा। सम्पूर्ण हकीकत लिखें।

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। यरवडा जेल, पूना, २६।११।१९३२।]
सौजन्य : श्री राजीवलोचन शाह, नैनीताल

२९१. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

य० मं०
१६-१२-३२

[टिप्पणी : सिरनामे पर श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर (गोरखपुर यू० पी० अंग्रेजी में भी) लिखा गया था। जान पड़ता है उस समय श्री पोद्दारजी रतनगढ़ (बीकानेर राज्य) चले गये थे। इसलिए पत्र का पता गीताप्रेस से काटकर 'रतनगढ़ (हिन्दी) रतनगढ़, बीकानेर (अंग्रेजी) किया गया है।—सम्पा०]

भाई हनुमान प्रसाद,

तुम्हारे पत्र मुझको हमेशा प्रिय लगते है। अब के पत्र अधिक प्रिय लगते है क्योंकि उनमें से तुम्हारी सत्यपरायणता का और भी अनुभव मिलता है। बुद्धि के प्रयोग करके मैं अब मेरी बात नही समझा सकुंगा। इतना मानो कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ ऐसा लगता है वह मै नही कर रहा हूँ। मुझको कोई करा रहा है। वह मेरी दृष्टि से निरंजन निराकार राम है, लेकिन दशमुख रावण भी हो सकता है। इसका पता तो मृत्यु के बाद ही जहाँ तक शक्य है मिल सकता है, और थोड़ा परिणाम से मिल सकता है। पूर्णतया तो मिल ही नही सकता है क्योंकि मनुष्यहृदय की बात अंतर्यामी के सिवा कोई जानता ही नही है।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा हो रहा होगा। मुझको लिखा करो।

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। यरवदा जेल, १६।१२।१९३२। मूल हिन्दी पत्र से।]
सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

२९२. पत्र : चिन्तामणि को

[श्री चिन्तामणि का पत्र आया था कि "कितने ही प्रसंग ऐसे होते है जहां मौन सम्मति-सूचक नहीं होता। मुझे आपके उपवास के प्रसंग पर न बोलने में कोई सत्य-त्याग नहीं लगा। और 'लीडर' में पूना-करार के बारे में कुछ नहीं लिखा था, इसलिए लोगों ने कुछ-कुछ अनुमान भी किया होगा।" इस पर गांधी जी ने उन्हें निम्नलिखित उत्तर दिया था।—सम्पा०]

"मैं अपने मित्रों का न्याय करने नही बैठता। अपनी राय मैं उन्हे बता देता हूँ और वह यदि उन्हे सही लगे तो वे उसके अनुसार सुधार कर लें। आपको लगता हो कि बम्बई में आपने अपने कृत्य से अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध कुछ नही किया तो मुझे सन्तोष है। मगर मै आपसे एक वचन माँग लेता हूँ। प्रकट रूप से जब आप मेरा विरोध न करें, तब भी निजी रूप से तो आपको मुझे सावधान कर ही देना चाहिए। इस चेतावनी का मुझ पर बाह्यतः कोई असर न भी हो मगर मेरा मन विचारो को ग्रहण करनेवाला है, इसलिए ऐसी चेतावनियो से हमेशा मुझे मदद मिली है।"

—अंग्रेजी। यरवदा-मन्दिर, १९।१२।१९३२। म० भा० डा० भाग २, पृ० ३०६।]

२९३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

यरवदा सेण्ट्रल जेल
पूना।
३१ दिसम्बर, १९३२

प्रिय जवाहरलाल,

सरूप[1] उस दिन अस्पृश्यता-सम्बन्धी अपनी योजना पर चर्चा करने मेरे पास आई थी। उसने कहा कि तुम्हारी सलाह सीलोन में विश्राम लेने की है। मैं इसे अनावश्यक समझता हूँ। वह थोड़ा काम करने लायक जरूर है और कुछ अस्पृश्यता का काम करने को बिल्कुल रजामन्द है। मेरे खयाल से जबतक वह काम करना चाहती है, करने देना चाहिए।

उसने मुझे बताया कि तुमने कुछ दाँत और निकलवा दिये है। उधर वह अपने बाल सफेद करने पर तुली है। मुझे तो आँखों देखनेवालों ने बताया है कि वैसे तुम्हारा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक रहता है। मालूम होता है कि तुम अब भी मिलने आनेवालों से मुलाकात नही कर रहे हो। मै चाहता हूँ कि यदि सम्भव हो तो तुम मुलाकातें करो। इससे तुम्हें सन्तोष मिलेगा।

छगनलाल जोशी के आ जाने से हमारी चार की सुखद टोली बन गई है। मुझे पता नही कि तुम हरिजन-कार्य मे दिलचस्पी ले रहे हो या नही। शास्त्रियों के साथ अच्छा समय बीत रहा है। शास्त्रों का अक्षर-ज्ञान मेरा पहिले से अच्छा हो गया है। परन्तु सच्चे धर्म का ज्ञान वे मुझे थोड़ा ही दे सकते है।

बापू

—अंग्रेजी। यरवदा जेल, पूना, ३१।१२।१९३२। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२९४. पत्र : चन्द्र त्यागी को

भाई चंद त्यागी,

तुमारा खत पाकर खुशी हुइ. दूध लेने का शुरु किया तो अच्छा

---

१. सरूप कुमारी, श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित का पूर्व नाम।

किया। हरिजनों का कार्य अच्छा तरह हो रहा है। कुछ चिंता न करें, वलवीर कहां है?

वापु के आशीर्वाद

१।१।३३, य० मं०
श्री चन्द्र त्यागी
वन्दी, जेल सहारनपुर (सं० प्रा०)

—हिन्दी। यरवडा मन्दिर, १।१।१९३३। जी० एन० ३२६० की फोटो-नकल से।]

२९५. पत्र : हीरालाल शर्मा को

यरवदा सेण्ट्रल प्रिजन,
२४ जनवरी, १९३३

प्रिय शर्मा,

अम्तुल सलाम ने तुम्हारा १५ जनवरी का पत्र मेरे पास भेज दिया है। उसे पढ़ कर मुझे प्रसन्नता हुई। तुमने वास्तव में अपनी स्वयं-धारित प्रतिज्ञा का पालन किया है। कारण कि जो पत्र तुमने मुझे लिखा है वह अपने लिए नहीं लिखा है। मैंने अम्तुल सलाम को दिल्ली जाने के लिए पहिले ही कह दिया है और मुझे आशा है कि वह आश्रम से तत्काल चल देगी और उस समय तक दिल्ली ठहरी रहेगी जवतक कि तुम उसको पूर्णतः नीरोग करके छुट्टी न दो। तव ही वह आश्रम को लौटेगी। आश्रम आने से पूर्व अपने वहाँ के वर्तमान कर्त्तव्यों को पूर्ण करने की जो तुम्हारी इच्छा है उसका मैं आदर करता हूँ। वह सराहनीय ही है।

तुम्हारा, शुभचिन्तक.
मो० क० गांधी

श्रीयुत एच० एल० शर्मा
सन-रे हास्पिटल,
करोलवाग, दिल्ली।

—अंग्रेजी। यरवदा जेल (पूना), २४।१।१९३३। 'वापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा।

२९६. पत्र : श्रीप्रकाश को

यरवडा केन्द्रीय कारागार
१४वी फरवरी, १६३३

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश,

विषादमय होने पर भी तुम्हारा पत्र पाकर मुझे आनन्द हुआ। मुझे इसमें किसी प्रकार का सन्देह नही है कि ग्राम-परिवेश की शान्ति में शीघ्र ही तुम अपना खोया स्वास्थ्य प्राप्त कर लोगे और अपने टूटे उत्साह को सुधार लोगे। तुम कोई बूढ़े आदमी नही हो किन्तु आवेगपूर्ण व्यक्ति और भावनात्मक प्रकृति का होने के कारण तुम हर तरह की बुराई की कल्पना कर लेते हो। तुम्हारे सामने तो क्रियाशील जीवन एवं सेवा के कितने ही वर्ष पड़े हैं। तुम्हें जो शारीरिक कष्ट है उससे कही ज्यादा कष्ट से वहुत से लोग गुजर चुके है, फिर भी मैं उन्हें अच्छे स्वास्थ्य और खूव उत्साह से भरा हुआ पाता हूं। तुमने अपनी जवानी मे सीखा था कि 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क रहता है', इसलिए ज्योंही शरीर स्वस्थ हो जायगा, मस्तिष्क मे भी तदनुकूल प्रतिक्रिया होगी। इसलिए इस वीच तुम्हारा प्रथम और अन्तिम कर्तव्य अपने स्वास्थ्य को फिर से प्राप्त करना और कुटुम्व, देश या दुनिया के भविष्य की चिन्ता न करना है। हम इनमें से किसी के निर्माता नही बन सकते किन्तु तुम तीनों की प्रगति में अपना हिस्सा अदा कर सकते हो। जीवन की सच्ची योजना में एक ही वास्तविक प्रगति सव की प्रगति का कारण होती है। तुम्हें अपने इर्द-गिर्द होने वाली घटनाओं के कोई अनुभव लिखने की जरूरत नही है। वह निश्चित रूप से मेरे लिए वन्द किताव की तरह रहना चाहिए —सिवाय इसके कि जिन समाचारपत्रों को प्राप्त करने की इजाजत मुझे है उनके जरिये मुझे कुछ मालूम हो जाय; प्रकृति ने जिस प्रकार मुझे गढ़ा है उसके कारण मुझे उनके जानने की जरा भी उत्सुकता नही है। एक क़ैदी, नागरिकता की दृष्टि से वाहरी दुनिया के लिए मृत होता है और वह ठीक भी है। यदि वह प्रति-वन्वित क्षेत्र में झांकने की चेष्टा करता है तो वह उस मृतात्मा की भाँति है जो मृत्यु के फरिश्ते-द्वारा इस दुनिया से मुक्त कर दिये जाने के वाद भी उससे सम्वन्ध रखने की कोशिश करता है और इस प्रकार हमारे विश्वास के अनुसार दुष्ट आचरण करता है। जो कैदी, मृतात्मा की भाँति अनुचित आचरण करता है, अपनी छोड़ी हुई दुनिया से वास्तविक सम्पर्क कायम करने से वञ्चित रह जाता है और उस निरर्थक प्रयत्न मे उस आनन्द को भी खो वैठता है जो कैदी के भाग्य में भी होता है। इस सुन्दर सत्य का अनुभव करने के कारण मैंने कभी मृतात्मा का-सा व्यवहार नहीं किया है।

तुमने अपने नाम की वर्त्तनी के विषय में जो कुछ कहा है, उसे मै याद रक्खूंगा। पिता[1]जी ने ही मुझे यह वात वताई थी कि तुम अपने नाम की ठीक-ठीक वर्त्तनी के आग्रही हो, अव तुमने उन्हे उनके ही सिक्कों में चुका दिया है और जवाव भी उन्हे दे दिया है कि तुम नही वह आग्रही है। मैने तो झगड़े का सव पिता पुत्र के वीच फेक दिया है। अव तुम लोग आपस में लड़कर तय कर लो। मुझे चिन्ता नही है क्योकि मै आघात के मार्ग से दूर हूं, और चूंकि मुझे तुम्हारी अनुमति है, मै अपने ही ढंग से तुम्हारे नाम की हिज्जे करता रहूंगा।

किन्तु यदि मै तुम्हारे स्वास्थ्य के विपय में चिन्तित नही हूं तो मै शिवप्रसाद[2] के स्वास्थ्य के विपय में जरूर वहुत चिन्तित हूँ। अव मै समझता हूं कि मुझसे यह वादा करने के वाद भी, कि वह मुझे अपने स्वास्थ्य के विपय में साप्ताहिक रिपोर्ट भेजा करेगा, वह चुप क्यों है। मै उसे लिखूंगा, किन्तु चाहे जो हो, तुम्हे जो कुछ समाचार मिले, वह मुझे भेजते रहोगे और यद्यपि तुम मुझे वाहरी दुनिया की कोई खवर नही दोगे किन्तु अपनी प्रगति के वारे मे मुझे लिखना जारी रक्खोगे।

वच्चो से मेरी याद दिलाना और हम सव का प्रेम उन तक पहुँचाना और तुम अपने लिए भी हमारी ओर से उसे ग्रहण करना।

वापू

—अंग्रेजी। यरवदा जेल, १४।२।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय।

२९७. पत्र : जवाहरलाल को

यरवदा सेण्ट्रल जेल,
पूना
१५ फरवरी, १९३३

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे सुन्दर पत्र के उत्तर में अच्छा पत्र लिखने की आशा से मै तुम्हे लिखना

---

१. श्री प्रकाश जी के पिता डा० भगवानदास से आशय है।

२. काशी के प्रसिद्ध राष्ट्रवादी श्री शिवप्रसाद गुप्त।

टालता गया। परन्तु अब अधिक देर नही कर सकता। रोज काम बढ़ रहा है। इसलिए मुझे अभी, जैसा कि लिखा जा सके, लिखना होगा। पता नही तुम्हें 'हरिजन' जैसा निर्दोष पत्र भी दिया जाता है या नही। मैं तो इस आशा से भेज रहा हूं कि तुम्हे मिलता होगा। यदि मिलता हो तो मुझे अपनी राय लिखो। सनातनियों के विरुद्ध लड़ाई दिन-दिन दिलचस्प होती जा रही है, साथ ही अधिकाधिक कठिन भी। एक अच्छी बात यह है कि वे दीर्घकालीन मानसिक आलस्य से जाग उठे है। मुझ पर जिन गालियों की बौछार ये कर रहे है वे अजीब ताजगी लानेवाली है। दुनिया भर की बुराइया और भ्रष्टाचार मुझमें मौजूद है। मगर तूफान ठण्डा हो जायगा, क्योंकि मैं अहिसा की—अप्रतिशोध की, रामबाण दवा का प्रयोग कर रहा हूँ। मैं गालियों की जितनी उपेक्षा करता हूं उतनी ही वे भयंकर होती जा रही है। परन्तु यह तो दीपक के आस-पास पतंग का मृत्यु-नृत्य है। बेचारे राजगोपालाचार्य और देवदास की भी अच्छी खबर ली जा रही है। लक्ष्मी[1] की सगाई को बीच में घसीट कर उस विषय में गन्दे आरोप गढ़े जा रहे है। अस्पृश्यता का समर्थन इस तरह होता है। घरू मुलाकात के तौर पर इन्दु और अस्पृश्यता के बारे में सरूप और कृष्णा मुझसे उस दिन मिली थी। इन्दु का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था और वह बिल्कुल प्रसन्न दिखाई देती थी। सरूप अस्पृश्यता-निवारण के लिए काठियावाड़ और गुजरात में थोड़े दिन का दौरा कर रही है और कृष्णा इलाहाबाद जानेवाली थी। देवदास दिल्ली में है और राजा जी की, जो कि अस्पृश्यता-निवारण के लिए कानून बनवाने में असेम्बली के सदस्यों के सम्पर्क स्थापित कर रहे हैं, सहायता कर रहा है। हमारा समय पूरी तरह अस्पृश्यता के काम में लग रहा है। सरदार वल्लभभाई बाहर जानेवाले पत्रों की बढ़ती हुई संख्या के लिए सारे लिफाफे बनाकर देते है। वह समाचार-पत्रों को परिश्रम से पढ़ते हैं और अस्पृश्यता के विषय में और न जाने कहां-कहां की छोटी-छोटी बातों की जानकारी खोद-खोदकर निकाल लाते है। वह विनोद के भी अटूट भण्डार हैं। मुआइने का दिन उनके लिए वैसा ही होता है जैसा कोई और दिन। वह कभी कोई माँग नही करते। मेरा कोई भी दिन ऐसा नही जाता जब मैं कोई-न-कोई माग न रक्खूं। पता नही हम दोनों में से कौन अधिक सुखी है। मुंह फुलाये बिना मैं अपनी हार को सहन कर लूं तो मैं भी उनकी तरह सुखी क्यों नही हो सकता।

---

१. चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (राजाजी) की पुत्री। बाद में गांधीजी के पुत्र देवदास गांधी की पत्नी।

तुम्हारे एकान्त और तुम्हारे अध्ययन से हम सबको ईर्ष्या होती है। यह सच है कि हमारे भार हमारे अपने ही या यों कहो कि मेरे ही ओढ़े हुए हैं। मैंने वल्लभभाई की संस्कृत के अच्छे पण्डित बनने की सारी आशा चूर-चूर कर दी है। वह हरिजन कार्य की उत्तेजना के बीच में अपने अध्ययन पर ध्यान नहीं जमा सकते। बंगाल के फुटबाल के खिलाड़ी जैसे अपने खेल का मजा लूटते हैं वैसे ही वल्लभभाई चटपटी आलोचना का आनन्द लेते हैं। महादेव तो, जैसा शौकत ने वर्णन किया था, टोली के हमाल बने हुए हैं। कोई भी काम उनके लिए अधिक या उनसे परे नहीं है। छगनलाल जोशी अभी पैर जमाने में लगे हुए हैं। किन्तु मजे में हैं। वसन्त आ रहा है, उन पर भी बहार आये बिना नहीं रह सकती। वैसे हमें छाँट-छाँट कर रखा गया है। हम खेल के नियमों का पालन करते हैं और वर्णाश्रम-धर्म के नियमों का कठोर पालन करने वाला एक खासा भद्र परिवार बनाये हुए हैं। इससे डाक्टर अम्बेदकर और मेरी मिलीभगत बनकर सनातनियों के लिए नई सनसनी का सामान मुहय्या हो जायगा। मेरी परीशानी बढ़ जायगी, परन्तु विश्वास रक्खो कि वह मेरी मोल ली हुई नहीं होगी। समय रह अब मेरे पास इतना ही कहने का स्थान और गया है कि हम सबको आशा है कि तुम्हारी चतुर्मुखी प्रगति बराबर जारी होगी।

हम सबकी ओर से प्यार।

बापू

—अंग्रेजी। यरवदा जेल, पूना १५।२।१९३३। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

२९८. पत्र : कालीचरण को

भाई कालीचरण जी,

तुमारा खत मिला है, मेरे बारे में जो लिखा जाता है वह मैं जानता हूं। मैं नहिं समझता उसका शान्ति के सिवाय और कोई इलाज हो सकता है। मेरी उम्मेद है कि कोई उसे मानता ही नहीं होगा। और मानने वालों पर मेरे

इनकार का असर भी कैसे हो सकता है। तो भी चालू हरिजन में इस बारे में मैंने कुछ लिखा है।

२६-२-३३

मोहनदास गांधी

——हिन्दी। २६।२।१९३३। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ८०३९ से।]

२९९. पत्र : हीरालाल शर्मा

यरवदा सेण्ट्रल प्रिज़न,
३ मार्च, १९३३

प्रिय डा० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मिला और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आखिर तुम आश्रम में आ रहे हो। अपने बच्चे को अवश्य लाना और मुझे प्रसन्नता होगी यदि आश्रम तुम दोनों को अनुकूल सिद्ध होगा।

नारायण दास[1] ने मुझे सूचना दी है कि प्रमुख रोगी आश्रम से अभी-अभी चले गये है। मुझे इसकी कुछ परवाह नही है। तुम्हारे लिए वहां प्राकृतिक, चिकित्सा के विचार से देखने-भालने और परखने के लिए बहुत-सी चीजे है। मलावरोध को तो वहां एक साधारण शिकायत है जिस पर तुम्हें ध्यान देना होगा।

मुझे प्रसन्नता है कि तुमने अम्तुल सलाम का यह वहम निकाल दिया है कि उनको क्षय रोग है। उसकी कल्पना-शक्ति बड़ी तीव्र है। वह तो कुछ न होते हुए भी कल्पित बीमारियां खड़ी कर लेती है।

आश्रम में तुम्हारी उपस्थिति से मेरा अभिप्राय केवल इन गिने-चुने रोगियो का इलाज ही नही, कुछ और भी है। मैं स्वयं प्राकृतिक चिकित्सा में दृढ विश्वास रखता हूं। मैं समझता हूं कि मै तुममें मेरी तरह के अनुसन्धान की अनन्य निष्ठा रखने वाला एक साथी पाऊंगा। और यदि मुझे ऐसा आदमी आश्रम के उद्देश्यों में भी विश्वास रखने वाला मिल जाये तो मैं बडी बात समझूंगा। मैं जानता हूं कि तुम भी इसी विचार से आश्रम आ रहे हो। अतएव आश्रम में पूर्णरूप से आराम और घर की तरह शान्ति से रहो और उसका बारीकी से निरीक्षण करो। मेरा तो विश्वास है कि प्राकृतिक चिकित्सा जानने वाला जलवायु पर अवलम्बित नही

---

१. साबरमती आश्रम के मैनेजर।

होगा। लाखों आदमी अपने को नीरोग रख सकते हैं अगर हर तरह के जलवायु को अपने अनुकूल बनाने का रहस्य वे समझ लें। उनको स्थान-परिवर्तन के वे साधन तो प्राप्त नही हो सकते जो धनिकों को प्राप्त होते है। और मेरी समझ में नही आता कि प्रकृति इतनी निर्दयी हो सकती है कि धनिकों का पक्ष ले और निर्धनों की उपेक्षा करे। इसके विपरीत मुझे तो बाइबिल की इस कहावत में विश्वास है कि "एक ऊंट सुई के नकुए मे से निकल सकता है परन्तु धनवान के लिए स्वर्ग में प्रवेश नही मिल सकता।' बाइबिल का एक और वाक्य है कि 'स्वर्ग हमारे अन्दर ही है' इसलिए मेरा तो सदैव यही विचार रहा है कि प्रकृति के नियम सरल. सीधे-सादे और सर्व-साधारण के अनुसरण करने योग्य होते हैं।

अतएव मैं तुमसे कहूं कि तुम साधारण भारतीय जलवायु में स्वास्थ्य बनाये रखने और खोये हुए स्वास्थ को पुनः प्राप्त करने के साधनों की खोज करने के निश्चित उद्देश्य से आश्रम मे आओ।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
बापू

डा० एच० एल० शर्मा,
सन-रे हास्पिटल, करोलबाग, दिल्ली।

—अंग्रेजी: यरवदा जेल (पूना), ३।३।१९३३। 'बापू की छाया में हमारे जीवन के सोलह वर्ष' से।)
सौजन्य: श्री हीरालाल शर्मा, खुर्जा

३००. पत्र : हीरालाल शर्मा को

यरवदा सेण्ट्रल प्रिज़न,
१४ मार्च, १९३३

प्रिय डा० शर्मा,

तुम्हारा पत्र आज मिला और अम्तुल सलाम का पत्र पढ़ने से पहले ही मैं तत्काल उसका उत्तर दे रहा हू। मेरा तुमसे कहना यह है कि तुम आश्रम चले जाओ। उन रोगियों को देखो जो अब भी वहा है और वहां कुछ समय तक रहेंगे और यह भी देख लो कि ठण्डे जलवायु के स्थान पर जाने के बगैर उनकी चिकित्सा हो सकती है कि नही। अहमदाबाद में अप्रैल तक तो इतनी गर्मी नही पड़ती जितनी लोग समझते है। रातें तो काफी ठण्डी रहती हैं और मुझे तो गर्मियों के दिन भी

कुछ कष्टकारी नही प्रतीत हुए। मैने तो स्वयं अपना इलाज आश्रम में एक से अधिक बार कराने में झिझक नही की, यद्यपि मुझे कुछ डाक्टरों ने परामर्श दिया था कि मैं किसी पहाड़ी स्थान या कम-से-कम किसी समुद्र-तट के किसी स्थान पर चला जाऊं। परन्तु तुमको तो स्वयं ही निश्चय करना है और यदि तुम यह आवश्यक समझो तो मैं कोई ठण्डी जगह ढूंढ़ने का प्रयत्न करूंगा। तुम्हारे आश्रम आने से दो काम बनेंगे—एक तो तुम जगह और परिस्थिति से परिचित हो जाओगे और आश्रम-जीवन का अनुभव ले सकोगे; साथ ही साथ वहाँ पुराने मलावरोध के रोगियों पर अपनी चिकित्सा आजमा सकोगे। आश्रम में तो यह रोग व्यापक-सा है। दो रोगी वहा पुराने दमा से पीड़ित है जो प्रायः वे इन रोगों को दूर करने वाले जलाशयों का सेवन करने कही बाहर नही जाते और जहां तक बस चलता है आश्रम में ही रहते है। तुम आश्रम में जब चाहो जा सकते हो और यदि अम्तुल सलाम को भी साथ ले जाना चाहो तो ले जा सकते हो।

मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारी बच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-द्वारा चेचक के रोग से ठीक हो गई है।

यदि तुम्हारा इरादा आश्रम आने का हो तो केवल एक तार या एक पत्र अपने वहां पहुंचने की तिथि का भेज देना ही काफी होगा। मै इस पत्र की एक प्रतिलिपि मैनेजर को भेज दूंगा।

तुम्हरा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

डा० एच० एल० शर्मा,
सन-रे हास्पिटल, करोलबाग, दिल्ली।

—अंग्रेजी। यरवदा जेल (पून), १४।३।१९३३। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

३०१. पत्र : श्रीप्रकाश को

यरावडा केन्द्रीय कारागार
१८वीं मार्च, १९३३

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है और मुझे खुशी है कि शरीर के पुनः स्वस्थ

होने के साथ तुम्हारी वह निराशा भी दूर होती जा रही है जो तुम पर छा गई थी और मुझे सन्देह नहीं है कि यदि तुम काफ़ी विश्राम लोगे और दूसरी सव चीजों को भुला दोगे तो उसके फन्दे से पूरा तरह छूट जाओगे। यद्यपि हम सव उस गीताधर्म के अनुयायी माने जाते है जो हमारे लिए कर्त्तव्य-स्वरूप मानता है कि किसी चीज़ की भी चिन्ता न करो और फल को ईश्वर के सर्वशक्तिमान हाथों में छोड़ दो, फिर भी मै सोचता हूं कि इस मामले में अंग्रेज हमे हरा देते है। मुझे याद आता है कि स्वर्गीय लार्ड एसक्विथ, डाक्टरी सलाह मानकर उस समय भूमध्यसागर की समुद्री सैर के लिए चले गये थे जव युद्ध अपनी पूरी ऊंचाई पर था और राज्य की चिन्ता अपने उत्तराधिकारियों के हाथ मे छोड़ गये थे।

यद्यपि श्रेणी-विभाजन के सम्वन्ध में मै वड़े तीव्र विचार रखता हूं, फिर भी चर्चा के अनुमतिप्राप्त विषयो के वाहर होने के कारण, मुझे इस पर चर्चा नही करनी चाहिए।

मै विश्राम लेने का अनुरोध करते हुए वावूजी को पत्र लिखूंगा, किन्तु मैं जानता हूं कि उनका दिल पूरी तरह अस्पृश्यता के विरुद्ध इस लड़ाई में लगा हुआ है।

हां, मुझे शिवप्रसाद से एक साप्ताहित विज्ञप्ति मिलती है जिसकी हम सव हर हफ्ते उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते रहते है। जमनालाल जी का स्वास्थ्य काफी अच्छा है। अपनी आख की शिकायत से तो वह पूरी तरह मुक्त हो नही सकते। सरदार, महादेव और छगनलाल जोश, जिनसे तुम शायद मिल नही पाये किन्तु जिन्हे तुमने आश्रम मे देखा जरूर होगा, मेरे साथ तुम्हें अपना प्रेम भेजते है।

प्रेम

तुम्हारा निश्छल

वापू

—अंग्रेजी। यरवदा जेल, १८।३।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय।

३०२. पत्र : श्रीप्रकाश को

यरवडा केन्द्रीय कारागार
८वीं एप्रिल, १९३३

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश,

मुझे तुम्हें तुम्हारी इस आशा में निराश करना होगा कि मैं आगे सब पत्राचार वन्द कर दूं, किन्तु आस्थगित आशा के कारण हृदय को अस्वस्थ न होने देना। तुम्हारे पत्र, यद्यपि लम्वे होते है किन्तु तुम्हारे पत्र मन का अधिकाधिक अन्तर्दृश्य प्रदान करते है और मैं इसे सभी साथी कार्यकर्त्ताओं के बारे में पसन्द करता हूं। तुमने यह खयाल नही किया कि जो प्रस्ताव तुमने रक्खे है, उसमे तुमने घोड़े के आगे गाड़ी खड़ी कर दी है। तुम्हारे किसी भी प्रस्ताव मैं उस प्रयास की झलक नही है जो हमें खुद करना है। हर चीज व्यवस्थापकों-द्वारा, इसलिए सरकार द्वारा, होनी है, और यही सम्पूर्ण इतिहास में विनाश का मार्ग रहा है। वह सब सुधार, जिसकी रूपरेखा तुमने दी है, तभी आ सकते है जब हम लोग अस्पृश्यता-राक्षसी के विरुद्ध कम-से-कम जन-मानस को खड़ा करने के लिए काफ़ी प्रयत्न कर चुकेंगे। उच्च वर्ण के हिन्दुओं द्वारा कथित निम्न जातियों का जो दमन है, अस्पृश्यता उसका अन्तिम रूप है। इसलिए मै तुमसे चाहूंगा कि तुम अस्पृश्यता के उद्गम तथा उसके दूरगामी प्रभावों का उससे अधिक पूर्णता के साथ अध्ययन करो, जितना तुमने किया जान पड़ता है।

मुझे आशा है कि तुमने अपना खोया स्वास्थ्य अब तक प्राप्त कर लिया होगा।

मुझे खुशी है कि पिता जी बीच-बीच में आते रहे है।

कलकत्ता से प्राप्त साप्ताहिक विज्ञप्ति से मालूम होता है कि शिवप्रसाद अब भी अच्छे होने से काफ़ी दूर हैं। हम सबको आशा करनी चाहिए कि हमें उनके वारे मे ज्यादा अच्छा समाचार मिलेगा।

तुम्हारा निश्छल
वापू

श्रीयुक्त श्रीप्रकाश,
सेवाश्रम,
वनारस छावनी।

—अंग्रेजी। यरवडा जेल (पूना), ८।४।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय

३०३. पत्र : हीरालाल शर्मा को

यरवडा सेण्ट्रल प्रिजन,
पूना।

प्रिय डा० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मुझे बहुत पसन्द आया। यह तुम्हें शोभा देता है। तुमने मेरे सामने एक आदर्श चिकित्सक का चित्रण ही कर दिखाया है। हां, यदि आवश्यक समझो तो बेशक उसके कपड़े तुम स्वयं साफ करो। यद्यपि आश्रम में वह पूरी तरह से तुम्हारी देख-रेख में है, उसे नियमित खुराक तथा आराम लेने के लिए काफी जोर दिया जाय। मै चाहता हूं कि तुम आश्रम की हर चीज को सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि से देखो और तत्सम्बन्धी अपने विचारों से मुझे सूचित करते रहो। प्रत्येक आश्रम-निवासी, जो तुम्हे निरीक्षण करने दे उन सबके स्वास्थ्य का तुम अवलोकन करते रहना। हां, यह आवश्यक है कि जिन रोगियों का रोग तुम्हारी समझ से बाहर हो, उनके विषय में मुझे स्पष्ट कह देना होगा। मै चाहता हूं कि तुम कुसुम बहन को भी देखो। आज तो वह डा० तलवलकर के इलाज में है किन्तु मै चाहता हूं कि तुम मुझे बता दो कि यदि वह तुम्हारे हाथ में सौंप दी जाय तो तुम उसके लिए क्या उपचार नियत करोगे। और जमुना[1] बहिन भी तो है; वह पुराने दमा की रोगिणी है। यदि वह तुम्हारे देख-रेख में आना पसन्द करे तो तुम्हारे द्वारा उसका इलाज हो सकता हैं। एक रमा बहिन है। उनके कन्धे की हड्डी बढ़ी हुई है। मै अभी तक उसके रोग को अच्छी तरह नही समझ पाया। कदाचित् इनका रोग तुम्हारे क्षेत्र से बाहर है। यदि नही, तो कृपया बताओ कि तुम उनके लिए क्या उपचार निश्चित करोगे। अन्त में आनन्दी भी है। उसका अभी 'एपेण्डिसाइटिस' का आपरेशन हुआ है। केवल मेरा ही इलाज चल रहा है जैसा कि और लोग भी थोड़ा-बहुत करते रहते है। ये मुख्य-मुख्य रोगी है जिनको मै चाहता हूं कि जितनी जल्दी हो सके तुम इन्हे देख लो और उनके विषय में सब-कुछ बता दो। रोगी और भी है जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

अब कुछ तुम्हारे विषय में कहना है। जहां एक ओर मै चाहता हूं कि तुम आश्रम की दिनचर्या मे रम जाओ, वहा दूसरी ओर यह भी कहना है कि तुमको अपनी शक्ति के बाहर नही जाना है। हर काम को आराम के साथ करते रहना है। अपनी विशेष आवश्यकताएँ पूरी करा लेना। यदि असावधानी के कारण

---

१. श्री नारायणदास गांधी जी की धर्मपत्नी।

तुम्हारा अपना ही स्वास्थ्य संकट में पड़ गया तो मुझे बड़ा दुःख होगा। मुझे बड़ी सान्त्वना रहेगी यदि तुम आश्रम को अपने घर-जैसा समझोगे और अपनी आवश्यकताओं को बताते रहोगे। मैं चाहता हूं कि तुम भगवान जी भाई के साथ हरिजन बस्ती देखने जाओ और रोगियों तथा वहां की सफाई की परिस्थितियों को देखो। अच्छा होता यदि तुम्हारे दोनों बच्चे तुम्हारे साथ आये होते। कोई बात नही। यदि सब ठीक-ठीक रहता है तो पीछे देखा जायगा।

तुम्हारा,
बापू

—अंग्रेजी। यरवदा जेल (पूना), १९।४।१९३३। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

३०४. पत्र : हीरालाल शर्मा को

यरवदा सेण्ट्रल प्रिजन,
पूना।

भाई हीरालाल शर्मा,

तुम्हारा हिन्दी पत्र पाकर मुझको बहुत ही आनन्द हुआ। हिन्दी में यह पहिला पत्र और ऐसे स्वच्छ अक्षर! आश्चर्यजनक बात है। हिन्दी भी अच्छी ही है। यह कैसे? मैंने पत्र और Prescriptions सब ध्यान से पढ़ लिये हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा से गांधी कुटुम्ब अनभिज्ञ नही है। यह तो विनय की भाषा हुई। उनका विश्वास कम है लेकिन यह भी सबके लिए नही कहा जा सकता है। वे और दूसरे भी बेचारे क्या करें? जो कुछ प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान और प्रेम हो सकता था वह मेरी ही वजह से। लेकिन मेरा ज्ञान इतना अधूरा कि जिससे जल्द रोगों में निकम्मा बन जाता हूं। कभी व्यवस्थित तौर पर उस शास्त्र का अभ्यास करने का मुझको समय ही नही मिला। मेरे शौक की यह वस्तु होने के कारण थोड़ा बहुत मैं जान सका हूँ। मेरे अधूरापन के कारण हमेशा प्राकृतिक चिकित्सा विशारद को मैं ढूंढ रहा हूं। ऐसे उपचारक एक भक्त और बड़ा सज्जन हनुमन्त राव था। अपने उपचारों का बलि होकर वह मर गया। उनका ज्ञान

कम था। उसकी श्रद्धा अपूर्व थी। पीछे आया था गोपालराव। वह एक अस्पताल रखकर राजमन्द्री में बैठ गया है। उसी पर विश्वास करके मैंने एक मूर्ख प्रयोग किया। उसका वर्णन मैंने अखबार में भी दिया था। गोपालराव के परिचय से मुझको निराशा पैदा हुई। गोपालराव श्रद्धालु है लेकिन उसका ज्ञान बहुत ही अधूरा है और दु:ख यह है कि अपने अधूरापन का उसको पूरा ख्याल नही है। अब तुम मिल गये हो। मैं तो चाहता हूं कि मुझे मत छोड़ो। आश्रम में और भी रहो, नम्रतापूर्वक अपने ज्ञान की मर्यादा को पहचान लो। आश्रम के लोगों का विश्वास संपादन करो और पीछे ऐसे उपचार के लिए जगत को निमन्त्रण भेजो। अगर आश्रम से शीघ्र लौट जाने की आवश्यकता नही है तो कम-से-कम थोड़े दर्दियों को तो अच्छे करके जाओ। अगर आश्रम तुमको अच्छा लगे और नारायणदास जी को तुम अच्छे लगो तो आश्रम में अवश्य रह जाओ। प्राकृतिक चिकित्सा का तुम्हारा ज्ञान पूरा हो अथवा अपूर्ण हो उसकी मुझे दरकार नही है। मुझे दरकार है सत्य की, जहा तक हम जा सकें वही तक जाकर सन्तुष्ट रहें तो कोई हानि नही हो सकती। अगर पत्नी भी आश्रम के नियमों का पालन करने को तैयार है तो कोई कारण नही है वह भी आश्रम मे आकर क्यों नही रहे। तुम्हारी धर्मपत्नी को मै खत लिखता हू। इसी के साथ रक्खूगा।

भगवान जी के साथ हरिजनों के पास गये सो अच्छा हुआ। यदि सम्भव है तो आश्रम छोड़ने के पहिले ही और जितना जल्दी हो सके उतना जल्दी मेरे पास आ जाओ। तब हरिजनों में आरोग्य के बारे मे क्या करना चाहिए उस बारे में हम कुछ वार्तालाप कर लें। इतवार छोडकर जब दिल चाहे तब आ सकते हो। दोपहर को मिलने का हो सकता है।

आश्रम में खुराक के बारे मे तुम्हारी सूचना की प्रतीक्षा करूंगा। आरोग्य की दृष्टि से आश्रम की खुराक को मैं सम्पूर्ण बनाना चाहता हूं। हरिजन बालकों को आश्रम मे रखने का इरादा तो हमेशा रहा ही है लेकिन ऐसे बालक बहुत नही मिल सकते है। आश्रम में जो लोग अपना रोग छिपाते है उसको सलाह दे दो कि वे उसे प्रकट कर दें और जो अपने विकारों को शान्त नही कर सकते है वे भाग जायं।

कुसुम के बारे में मैं सोच रहा हूं क्या किया जाय। रमा बहिन के बारे मे तो अगर उनके रोग का निदान के बारे में और चिकित्सा के बारे में तुम को कुछ भी शंका नही है तो वही उपचार किये जायं जो तुम्हे पसन्द हो। इसी तरह जमना बहन के लिए। अमीना से अगर भात और दूसरे स्टार्च के पदार्थ और तम्बाकू छोड़वा दोगे तो बहुत अच्छा होगा। प्रातःकाल दांतो पर तमाकू घिसती है। बम्बई के

अखवारों में जो तुम्हारे आने का उल्लेख था उस वारे में जो तुमने किया वह अच्छा ही हुआ और योग्य हुआ।

वापु के
२-५-३३ आशीर्वाद

[मूल हिन्दी। यरवदा जेल (पूना), २।५।१९३३। 'वापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

३०५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

यरवदा सेण्ट्रल जेल,
पूना
२ मई, १९३३

प्रिय जवाहरलाल,

जव मैं आनेवाले उपवास[1] से जूझ रहा था, तव तुम मानो सशरीर मेरे सामने थे। किन्तु कोई लाभ नहीं। काश मुझे अनुभव हो सकता कि तुमने उपवास की नितान्त आवश्यकता को समझ लिया है। हरिजन-आन्दोलन मेरे वौद्धिक प्रयत्न के लिए वहुत वड़ी चीज है। सारे संसार में इतनी वुरी चीज कोई नही है। फिर भी मैं धर्म को और इसलिए हिन्दुत्व को छोड़ नही सकता। यदि हिन्दू धर्म से मैं निराश हो जाऊं तो मेरा जीवन मेरे लिए भार वन जायगा। मैं हिन्दुत्व के द्वारा ईसाई, इस्लाम और कई दूसरे धर्मों से प्रेम करता हूं। इसे छीन लिया जाय तो मेरे पास रह ही क्या जाता है? किन्तु मैं इसे छुआछूत और ऊंच-नीच की मान्यता के रहते हुए सहन भी नही कर सकता। सौभाग्य से हिन्दू धर्म में वुराई का रामवाण इलाज भी है। मैंने उसी इलाज का प्रयोग किया है। सम्भव हो तो मैं तुम्हें यह महसूस करवाना चाहता हूं कि यदि मैं उपवास के वाद वच रहूं तो अच्छा ही है और यदि जीवित रहने की कोशिश के वावजूद यह शरीर नष्ट हो जाता है तो भी क्या वुराई है? आखिर यह है ही क्या?—एक चोट से टूट जानेवाली चिमनी

१. हरिजनों को हिन्दुओं से अलग कर देने के ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मैकडानल्ड के निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन।

से भी अधिक नाशवान है। उस कांच के गोले को फिर भी दस हजार वर्ष तक ज्यों-का-त्यों रखा जा सकता है, परन्तु उस शरीर को एक मिनट के लिए भी जैसे-का-तैसा नही रख सकते। और मृत्यु से अवश्य ही प्रयत्न-मात्र का अन्त नही हो जाता। ठीक ढंग से सामना किया जाय तो मौत उसी उदात्त प्रयत्न का आरम्भ भी हो सकता है। परन्तु यह सत्य तुम्हें स्वयं-स्फूर्ति से दिखाई न देता हो तो मैं दलीलों से तुम्हे कायल नही करना चाहता। मैं जानता हूं कि तुम्हारी स्वीकृति मेरे साथ न भी हुई तो भी अग्नि-परीक्षा के इस सारे दौरान मे तुम्हारा बहुमूल्य स्नेह मेरे साथ रहेगा।

तुम्हारा पत्र मिल गया था, जिसका उत्तर मैंने सोचा था, फुर्सत से दूंगा, परन्तु ईश्वर की इच्छा और ही कुछ थी। कृष्णा[1] से मेरी बातें हुई थीं। मेरा ख्याल है कि सरूप के काठियावाड़ के काम के बारे में मैंने तुम्हें लिखा था। कमला ने तो मुझे अपना पता तक नही भेजा। बहुत दिनों से उसका कोई पत्र नहीं आया है। जब तुम उससे मिलो, उसे और इन्दु को मेरा प्यार पहुंचा देना। कमला को उपवास की चिन्ता नही करनी चाहिए। हो सके तो मुझे तार देना।

हम सब की ओर से प्यार।

बापू

—अंग्रेजी। यरवदा जेल, पूना, २।५।१९३३। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

३०६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

२२ जुलाई, १९३३

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने तुम्हें लिखने की कई बार इच्छा की। परन्तु विवश था। नई प्राप्त होनेवाली रत्ती-रत्ती भर शक्ति सामने रखे हुए आवश्यक कार्य को निबटाने में लगाता रहा।

---

१. जवाहरलाल की बहिन, बाद की कृष्णा हठी सिंह। १९६८ ई० में लन्दन में उनका देहान्त हो गया।

माता जी और कमला के साथ वहुत अच्छा समय बीता। सरूप और रनजीत[1] से अधिक नही मिल सका।

माता जी को कृष्णा की चिन्ता है। उसके भविष्य के वारे में उन्होंने मुझसे लम्वी वातचीत की। इस मामले में तुम्हारे पास मेरे लिए कोई सुझाव हो तो वताओ। अलबत्ता मेरी गति-विधियां अनिश्चित है। परन्तु इसकी पर्वा नही।

देवदास और लक्ष्मी को मैंने पूना में छोड़ा था। अव वे आनेवाले है। बहुत करके देवदास अभी दिल्ली में बस जायगा। महादेव,[2] वा और प्रभावती[3] मेरे साथ हैं। खयाल है कि वे सब शीघ्र ही बिखर जायंगे।

उपवास से पहिले की शक्ति फिर से प्राप्त करने में मन्द गति रही है। परन्तु मेरी दशा धीरे-धीरे सुधर रही है।

सप्रेम
वापू

—अंग्रेजी। २२।७।१९३३। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स'।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

३०७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
३१-८-३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तो तुम अपनी अवधि के पहिले बाहर आ गये। आशा है, तुम्हें मेरा तार मिला होगा। मैने सोचा था कि मां इलाहाबाद वापिस जा रही है; मैं तुमसे पूरे विवरण की आशा करता हूं।

इन्दु मेरे पास अक्सर आती रही है। आज शाम फिर आनेवाली है।

यदि किसी तरह सम्भव हो तो हमें शीघ्र मिलना चाहिए। किन्तु अगर मां (की हालत) ख़राव बनी रहती है तो तुम्हें वहां रुकना पड़ेगा। मै तुम्हारे पूरे पत्र की आशा रखूंगा। यह और भी अच्छा होगा कि तुम उसे रजिस्ट्री कराके भेजो।

---

१. रणजित पण्डित, सरूपरानी (वाद की विजयलक्ष्मी) के पति।
२. महादेव हरिभाई देसाई, गांधी जी के वैयक्तिक सचिव।
३. श्री जयप्रकाश नारायण की पत्नी।

मै प्रवल रूप से खोई शक्ति प्राप्त कर रहा हूं। अतीत के विपय में मैं कुछ नही कहता क्योकि मुझे उम्मीद है, अव तुम उसके वारे में सव कुछ जान चुके हो। अधिक, मिलने पर।

प्रेम

वापू

—अंग्रेजी। वर्धा, ३१।८।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय

३०८. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

पर्णकुटी, पूना
२-९-३३

भाई वनारसीदास,

तुम्हारा पत्र मिला। आनंद हुआ। वंगाल में हिन्दी प्रचार के लिये वेतन देकर अच्छे शिक्षक रखने चाहिए। रामानंद वावु ने हिदी भाषा की वड़ी सेवा की है इसमें कोई संदेह नहीं है। विशाल भारत स्वावलंवी करने के लिए तुमको धन्यवाद। मद्रास के दौरे का ब्यान मैने देख लिया है। अच्छा है। तुम्हारी शारीरिक प्रकृति अच्छी होगी।

वापु के आशीर्वाद

[टिप्पणी—पत्र लिखा दूसरे के हाथ का है। हस्ताक्षर मात्र गांधीजी के है।]

—हिन्दी। पर्णकुटी, पूना, २।९।१९३३। जी० एन० २५६४ की फोटो-नकल से।]

३०९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। स्पष्टतः तुम्हारी उपस्थिति ने मां के लिए 'टानिक' (वल्य औषधि) का काम किया है। यदि वह ज्वर से मुक्त रहती है तो तुम चन्द दिनों के लिए वाहर जाने के लिए स्वतन्त्र हो सकते हो। यदि ऐसा हो तो जितना

जल्द सम्भव हो तुम मेरे पास आओ। मैं यहां से आगामी शुक्रवार या शनिवार को बम्बई जाने को उत्सुक हूं— वहां लगभग एक हफ्ता रहूंगा और फिर वर्धा जाऊंगा।

जिस युवक के नाम का जिक्र तुमने किया है, उसे मैं नहीं जानता। मैं परिवार को अच्छी तरह जानता हूं। मैं उस (युवक) से भी जरूर ही मिला हूंगा किन्तु यदि मैं उसे देखूंगा तो पहिचान न सकूंगा। परिवार की परम्परा उदार है। इसलिए उन लोगों के साथ कृष्णा के खूब सुखी होने की सम्भावना है। मैंने अनसूया बहन को लिखा है। जरूरत होने पर मैं तुम्हे तार दूगा। निश्चय ही, मैं मामले को बिल्कुल गुप्त रख रहा हूं। मैं यह माने लेता हूं कि र० ब० को मेरे लिखने का तुमने कुछ बुरा न माना होगा।

कमला को उत्तेजना और चिन्ता से मुक्त रखने की आवश्यकता है। मेरा यह मानने का मन होता है कि बम्बई में वह नौरोजी बहिनों के साथ सुखी नहीं है। इसलिए मैं महसूस करता हूं कि जब तुम यहां आओ तो उसे साथ ले आओ, और फिर उसे यही छोड़ दो।

इस आशा से कि हम जल्दी ही मिल रहे हैं, मै राजनीतिक स्थिति या अपने उपवास के पराक्रमों के बारे में कुछ नही कह रहा हूं। मैं तेजी से खोई हुई शक्ति प्राप्त कर रहा हूं।

बेचारा महादेव बेलगाम में है। आग में से गुजरना अच्छा ही है।

कृपया मां से कहो कि वह निरन्तर मेरे विचारों में है। उन्हें बादलों को हटते देखने के लिए काफी दिन जीना है।

तुम सबको मेरा प्रेम

३-९-३३ बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, ३।९।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१०. तार : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धागंज

२३ सितम्बर ३३

जवाहरलाल नेहरू,

लखनऊ

तुम्हारा तार (मिला)। आज पत्र भेजा है। कल जांच पूरी करली।

सब मिलाकर सन्तोषप्रद। तुम श्रीमती हथीसिंह को बाजाब्ता हस्त प्रदान[1] करोगे। प्रसन्न (हूं कि) मां पहिले से अच्छी है।

बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, २३।९।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३११. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
२३-९-३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

कल ही मै तुम्हें लिखने को तैयार हो सका हूं। मेरी जांच १ बजे दोपहर मे पूरी हुई। मै अब तक कस्तूर भाई, श्री हथीसिंह और शंकरलाल से, जो परिवार को भलीभांति जानते है, मिल चुका हूं। अपने अनुभवों से मुझे पूरा सन्तोष नहीं है। मुझे साफगोई नही मिली। फिर भी प्रस्तावित विवाह के विरुद्ध कुछ कहने को मेरे पास नही है। नवीन परिस्थितियों मे कृष्णा काफ़ी सुखी रहेगी। इससे भी बड़ी बात यह है कि उसने इस विवाह पर अपना दिल जमा लिया है। वह राजा की मां से पत्र-व्यवहार करती रही है। राजा बाबू उसके चुने (जीवनसाथी) का प्यार का नाम है। कृष्णा के नाम पर वह कुछ छोड़ जायंगे, इसका तो कोई सवाल ही नही है। निश्चय ही मैंने उन लोगों पर इसे पूरी तरह स्पष्ट कर दिया कि कृष्णा के नाम से कुछ कर देने का सुझाव सिर्फ मेरा था। किन्तु वैसा होते हुए भी उसे विवाह की कोई शर्त बनाने का विचार नही था। मैंने उनसे कह दिया कि मैंने यह प्रस्ताव इसलिए किया था कि जहां तक सम्भव हो, मैं सभी लड़कियो के लिए ऐसी व्यवस्था करने में विश्वास रखता हू। यदि इस विवाह का अन्तिम रूप में निश्चय करना है तो तुम्हें निश्चित प्रस्ताव करते हुए श्रीमती हथीसिंह को अहमदाबाद लिखना चाहिए और वह तुम्हे अपनी स्वीकृति भेज देंगी। वह जितनी जल्द कृष्णा चाहे, विवाह के लिए तैयार है। वह इच्छुक है और मेरा खयाल है

१. मतलब है अपनी बहिन के ब्याह के लिए लिखोगे।

कि मंगनी और विवाह एक साथ ही कर देना चाहिए। अब तुम युवक हथीसिह को जब चाहे बुलाने के लिए लिख सकते हो।

मुझे आशा है कि मां, और कमला भी, पहिले से अच्छी है।

मैं आज सुबह ही वर्धा पहुंचा हूं। सिवाय ऊंचे रक्तचाप के, जिसे डाक्टरों ने लिखा है, मुझमें कोई खराबी नही है, फिर भी आज से कम-से-कम तीन हफ्तों तक, यानी आगामी १५ अक्तूबर तक, मेरा घूमना-फिरना बन्द रहेगा।

मथुरादास बम्बई में हैं। चन्द्रशंकर और नायर, निश्चय ही बा, मीरा बहन और प्रभावती के अलावा, मेरे साथ हैं। प्रभुदास जी मेरे साथ है।

प्रेम

२३-६-३३ बापू

— अंग्रेजी। वर्धा, २३।९।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
२४-६-३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

प्रस्तावित परिणय[1] के विषय में आज जमनालाल जी से मेरी बात हुई। लगता है, वह परिवार को अच्छी तरह जानते है। उनकी निश्चित राय है कि परिवार, निश्चय ही कस्तूर भाई को छोड़कर, उतनी अच्छी हालत में नहीं है जैसा ऊपर से लगता है। उनकी राय तो यहां तक है कि वे अभावग्रस्त हो सकते है। मैंने सोचा कि मैं यह सूचना तुम तक पहुंचा दूं। वह खुद भी इसके लिए उत्सुक है कि उनकी राय तुम्हें मालूम हो जाय। निजी तौर पर तो मैं इससे अप्रभावित हूं। किन्तु वह सोचते हैं कि कृष्णा को इसका पता होना चाहिए। जहां तक मैं विचार कर सकता हूं, कोई चीज कृष्णा के चुनाव को तबतक प्रभावित नही कर सकती जबतक कि उसे तरुण (वर) के विरुद्ध कोई निश्चित बात न मिले।

---

१. कृष्णा का हथीसिंह के साथ।

और वह बिल्कुल सही है। कस्तूर भाई का दृढ मत है कि कृष्णा का चुनाव अच्छा है।

तुम सबको प्रेम

२४-६-३३ बापू

जो कुछ मैं सुझाना चाहता था वह यह है कि यदि विवाह होता है, और यदि मा राज़ी होती है तो धार्मिक संस्कार वर्धा में किया जा सकता है। कठिनाई को मै जानता हूं। मै जानता हूं कि मैं स्वार्थवश सोच रहा हूं। मैंने सिर्फ सुझाव फेंक छोडा है। हम देखें कि क्या होता है। कस्तूर भाई से मेरी भेंट की सम्भावना है। तुम इस बात में सफल हो सकते हो कि मेरे-जैसे आदमी तुम्हें पण्डित न लिखें किन्तु मै देखता हूं कि (यह) विशेषण तुम्हरे साथ बना रहेगा।

—अंग्रेजी। वर्धा, २४।६।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे कई पत्र मिले। मैंने रफ़ी[1] से लम्बी वार्ता की है। वह तुम्हें इसके बारे में सब कुछ बतायेंगे। मेरी राय यह है कि भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक करने से कोई लाभ नही होगा। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि अगर ऐसी बैठक की गई तो इससे मुझे कोई गहरा आघात पहुँचेगा। इसके विपरीत, यदि पर्याप्त संख्या में लोग इसे चाहते है, तो उनका कर्त्तव्य है कि ऐसी बैठक के लिए अधियाचना भेजें। मैं महसूस यह करता हूं कि हमें पहल नही करनी चाहिए। यदि तुम व्यक्तिगत रूप से यह महसूस करते हो कि अधियाचना न होते हुए भी बैठक बुलाना ज्यादा अच्छा होगा, तो तुम्हे बैठक बुलानी चाहिए। मैं जानता हूं कि मैं कार्यकर्त्ताओं की सम्मति के भी स्पर्श में नही हूं। इसलिए मेरी राय उन लोगों को बिना किसी डर के निरस्त करनी चाहिए जो दूसरी राय रखते है।

रफ़ी हमारी बातचीत का जो वर्णन देंगे उसके अतिरिक्त दूसरे जिस मुद्दे को

१. स्व० रफी अहमद किदवई।

मैं स्पष्ट करना चाहूंगा, वह है कार्यकर्त्ताओं के विषय में। यद्यपि मैं जो कुछ कर सकता हूं वह तो करूंगा ही, किन्तु यह मेरी सम्मति है कि हर सूबे को अपने कार्यकर्त्ताओं की सहायता करनी चाहिए, यह भी कि हर जिले या तहसील को भी अपने-अपने कार्यकर्त्ताओं का बोझ उठाना चाहिए। जबतक हम इस स्थिति पर नहीं पहुंचते, हम बालू के घरौंदे की भांति रहेंगे। मै समझता हूँ कि तुम्हे सूबे में भिक्षापात्र लेकर निकल पड़ना चाहिए और लोगों को इस ओर गतिमान करना और उदाहरण उपस्थित करना चाहिए। मेरा आदर्श तो यह है कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता को अपनी जीविका उसी क्षेत्र से, जिसकी सेवा वह करता है, प्राप्त करनी चाहिए और इसमें गौरव का बोध करना चाहिए। प्रत्येक श्रमिक अपनी मजदूरी के योग्य होता है।

शेष रफ़ी से।

आशा है, मां और कमला, दोनों, पहिले से अच्छी हैं। समय पर तुम मुझे बताना कि डा० विधान राय क्या कहते है।

प्रेम

२८-६-३३ बापू

निजी पत्रों के बारे में मुझे कुछ कहने की जरूरत नही है। आशा करता हूं, उनके साथ मेरे दो पत्र भी तुम्हें मिल गये होंगे।

—अंग्रेजी। वर्धा, २८।९।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
७-१०-३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले है। पहिले का उत्तर देने की जरूरत नही है।

मैं देखता हूं कि कृष्णा का विवाह २० वी को हो रहा है। मैं खुश हूं कि मुझे इलाहाबाद आने की चेष्टा न करनी चाहिए। मेरे लिए यह कही ज्यादा अच्छा है कि मैं तबतक पर्दे में रहूं जबतक कि डाक्टर लोग मुझे बिल्कुल स्वस्थ नही घोषित कर देते। साथ में कृष्णा के लिए पत्र है।

मैं देख रहा हूं कि मां अब भी मुसीबत के बाहर नहीं हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि वह विवाह-समारोह में उपस्थित होने योग्य तन्दुरुस्ती हासिल कर लेगी।

मैंने ड० ह० (डेली हेरल्ड?) के लिए लिखे तुम्हारे लेख को बहुत पसन्द किया। मैं इसे अगाथा[1] के पास भेज रहा हूं कि वह इसका जो उपयोग ठीक समझे करले। वह एक अद्भुत कार्यकर्ती है। मीरा अपने जेल-सम्बन्धी अनुभवों के नोट की सब बात भूल गई थी। अब उसका मस्विदा तैयार हो गया है। वह एण्डरूज़ को देने के लिए तथा उसका और भी जो उपयोग तुम करना चाहो, उसके लिए तुम्हारे पास भेजा जायगा।

मैं सोच रहा हूं कि कार्यकर्त्ताओं के लिए क्या किया जा सकता है।

यह जो मैं टण्डन[2] के मतभेदों के बारे मे पढ़ता हूं, वह क्या बात है? क्या तुमने वह अनुच्छेद देखा है?

प्रेम

बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, ७।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा तार मिला था, जिसका जवाब मैंने तीसरे पहर भेज दिया। मैं आशा करता हूं कि मां इतनी सबल हो जायंगी कि विवाह (समारोह) में उपस्थित रह सकें।

आज मुझे संलग्न (पत्र) सरला देवी से मिला है। मैंने उन्हें कह दिया है कि इन्दु जैसा भी चुनाव करना चाहे, करने के लिए स्वतन्त्र है, और जान नहीं पड़ता कि वह विवाह के किसी प्रस्ताव पर विचार करेगी, क्योंकि अभी पढ़ ही रही है। मैंने उनसे यह भी कह दिया है कि मैं पत्र तुम्हारे पास अग्रसर कर रहा हूं। यदि इन्दु विवाह-प्रस्ताव पर विचार करने को तैयार हो तो मैं समझता हूं कि दीपक एक अच्छा वर है।

---

१. अगाथा हैरिसन : ब्रिटेन की एक समाज-सेविका।

२. स्व० पुरुषोत्तमदास टण्डन।

हार्डीकर[1] तथा कमला चट्टोपाध्याय आज आये है। हार्डीकर भगन्दर से पीड़ित हैं और उनको आपरेशन की जरूरत पड़ेगी। ज्यादा मुझे कल मालूम होगा। जमनालाल जी एक मित्र की, जो आर्थिक संकट में है, मदद करने बम्बई गये है। वह चार दिनों में लौटेंगे।

यदि सब कुछ ठीक रहा तो मेरा दौरा ८ नवम्बर को शुरू हो रहा है। मैं खूब विश्राम ले रहा हूं।

आजकल कमला कभी (पत्र) नही लिखती।

वर्धा प्रेम

९-१०-३३ बापू

[अंग्रेजी। वर्धा, ९।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१६. तार : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
९-१०-३३

जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद।

ईश्वर का धन्यवाद। आशा है, मां आगामी विवाह (संस्कार) में उपस्थित रहने के लिए काफ़ी अच्छी और खूब स्वस्थ होंगी।

बापू

[अंग्रेजी। वर्धा, ९।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रह आश्रम, वर्धा
अक्तूबर १५, १९३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा पत्र, जिसके साथ तुमने मदुरा के कृष्णमूर्ति को लिखे अपने पत्र की प्रतिलिपि भेजी है, मिल गया।

---

१. श्री एन० एस० हार्डिकर जो कांग्रेस-सेवा दल के प्रधान थे।

यह रही हेल्स को लिखे मेरे उस पत्र की एक प्रतिलिपि, जो उनके पत्र के उत्तर में मैंने लिखा है। उनका पत्र तुमने अखवारों में देखा होगा। मालवीयजी को लिखे पत्र की प्रतिलिपि भी नत्थी है। यह खुद ही अपनी वात कहता है।

परिणय के लिए मेरी समस्त शुभ कामनाएं। उस दिन मै भावना में तुम्हारे साथ रहूंगा।

प्रेम

वापू

श्री जवाहरलाल नेहरू,
आनन्द भवन, इलाहावाद।

—अंग्रेजी। वर्धा, १५।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१८. पत्र : मालवीयजी को

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा, अक्तूबर १५, १९३३

चूंकि, जो भी शक्ति मै फिर से प्राप्त कर सका हूं, वह सव हाथ मे लिये हुए तुरन्त के कामों में लग जाती रही है, मैं आपको लिख नही पाया हूं। मेरे पास कोई नई वात कहने के लिए नही थी, और मैं जानता था कि मै जो भी कार्रवाई करूंगा उसके वारे में आपको गलतफहमी नही होगी। इसीलिए मैने अपनी सफाई नही भेजी, क्योकि मुझे विश्वास था कि यदि मेरे किये किसी काम में स्पष्टीकरण की जरूरत होगी तो आप उसको मुझसे तलव करने में कोई आनाकानी नही करेंगे।

मैं आपके स्वास्थ्य, वल्कि स्वास्थ्य के अभाव, के विषय में सूचना प्राप्त करता रहा हूं, और मैंने वहुत दिन पहिले समझ लिया था कि आप यह या वह परिवर्तन करें, इसके वारे मे आपसे कुछ कहना ही व्यर्थ है। इस वात में, जैसा कि दूसरे विपयों मे भी है, आप स्वयं ही अपने नियम है। इसलिए मै इतनी प्रार्थना से ही सन्तोप कर लेता हूं कि जिस ईश्वर ने, इतने लम्वे वर्षो तक आपकी सार-संभाल रक्खी है, और जिसने आपको ऐसी ऊर्जा से सुशोभित किया है, जिस पर भारत के युवक ईर्प्या कर सकते है, आगे भी, जवतक उसे आपकी सेवा की आवश्यकता होगी, आपकी सार-संभाल करता रहेगा।

यह पत्र मैं आपके सबसे ताजे वक्तव्य के सन्दर्भ में लिख रहा हूं। मेरा अपना खयाल है कि यदि भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक होती है तो वह अत्यधिक बहु-मत से सविनय प्रतिरोध आन्दोलन को जारी रखने का प्रस्ताव पास करेगी। मेरा ऐसा विश्वास होने के कारण ऐसी मंजूरी के लिए बैठक बुलाने की कोई आवश्यकता मै नहीं समझता, क्योंकि मंजूरी से सविनय प्रतिरोध की गति नही बढ़ जायगी। उसे तो अपनी ही प्राकृतिक गति से चलना होगा। किन्तु, यदि आपका विश्वास हो कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति एक नया कार्यक्रम स्वीकार करेगी और सविनय प्रतिरोध का त्याग कर देगी तो इसके लिए किसी भी प्रकार का कोई ऐसा कारण नहीं कि आप बैठक के लिए अधियाचना के पक्ष में क्रियात्मक रूप से 'कन्वेंसिग' न करें। ऐसी अधियाचना प्राप्त होने पर जवाहरलाल बैठक बुलाने के लिए बाध्य है। मैं यह निवेदन करने का भी साहस करूंगा कि यदि आप ऐसी अधियाचना को आगे बढ़ाते है तो अधियाचकों से सलाह करके आप कोई निश्चित नीति और कार्यक्रम भी निर्मित करें जिसे आप अविचल रूप से कार्यान्वित करने को तैयार हों। यदि ऐसा नहीं किया जाता और सिर्फ अधियाचना ही भेजी जाती है तो बैठक का अन्त केवल निरर्थक चर्चा और अविचारपूर्ण प्रस्तावों में होकर रह जायगा। यद्यपि मै ऐसी किसी बैठक में प्रसन्नतापूर्वक भाग लूगा और अपनी बात भी कहूंगा, किन्तु मैं ऐसी किसी बैठक में भाग लेने के लिए उत्सुक नही हूं और यदि आप या जिम्मेदार सदस्यों का कोई समूह उच्च उद्देश्य से, चाहेगा कि मैं अनुपस्थित रहूं तो मैं खुशी के साथ उसमें भाग लेने से विरत रहूंगा।

पण्डित मदनमोहन मालवीय
मसूरी।

—अंग्रेजी। वर्धा, १५।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : नेहरू संग्रहालय।

३१९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा, अक्तूबर १६, १९३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

यह रहा जमनालाल जी का त्यागपत्र। यदि तुम सोचते हो कि इसे नही भेजा

जाना चाहिए और इससे उलझन पैदा होगी तो तुम इस पर कोई कार्रवाई न करना। उस हालत में, विवाह की तैयारियों से छुट्टी पाने के वाद तुम इसे अपने कारण लिखकर लौटा सकते हो। किन्तु यदि तुम समझते हो कि त्यागपत्र स्वीकार किया जा सकता है, तो तुम इसे तुरन्त प्रकाशित कर सकते हो। मै जानता हूं कि कोपाध्यक्ष केवल अखिल भारतीय कांग्रेस समिति-द्वारा ही नियुक्त किया जा सकता है। इसलिए फिलहाल कोषाध्यक्षता जमनालाल जी के हाथों में वनी रह सकती है। मुख्य वात तो यह है कि वह कार्यसमिति के सदस्य नही रह जाते। मेरी समझ में यह कदम वुद्धिमत्तापूर्ण और आवश्यक है। जिस हालत मे वह है, उनके लिए इस समय जेल जाना—मतलव विशेषज्ञ जिस विश्राम की आवश्यकता समझता है उसे लिये विना जाना—खतरा मोल लेना है। किन्तु सामान्यतः सैनिक उस सीमा तक अपने स्वास्थ्य की पर्वा नही कर सकते जिस सीमा तक जमनालाल जी के स्वभाव की मांग है और चूकि वह सविनय प्रतिरोध के कर्त्तव्य के विषय मे वही दृष्टि रखते है जो मै रखता हूं, कांग्रेस सगठन में एक जिम्मेदारी के पद पर रहते हुए उन्हें वेचैनी होती है।

मैने तुम पर अपनी वह तर्कना प्रकट कर दी है जिसके कारण जमनालाल जी के त्यागपत्र देने के प्रस्ताव पर स्वीकृति देने का निर्णय मुझे करना पड़ा।

तुम्हारा
वापू

श्री ज० ला० नेहरू,
इलाहावाद।

—अंग्रेजी। वर्धा, १६।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३२०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[जवाहरलाल की छोटी वहिन कृष्णा का विवाह राजा हर्थीसिंह से होने के अवसर पर लिखा गया पत्र। —सम्पा०]

१८ अक्तूबर, १९३३

प्रिय जवाहरलाल,

साथ मे दो मालाएं है। ये वर-वधू के लिए आज मेरे विशेष रूप से काते हुए सूत से वनाई गई है। इनके साथ मेरे शुभ आशीर्वाद जुड़े हुए है। मेरी

ओर से उनके गले में डाल देना। आशा है, ये तुम्हारे पास समय पर पहुँच जायंगी।

मुझे इस वात का अवश्य दुःख है कि श्रीमती हथीसिंह ने इस संस्कार के विरुद्ध राय दी है, परन्तु मेरा खयाल है कि इन मामलों में मैं पिछड़ा हुआ हूं। दीपक के वारे मे मैंने तुम्हारा कहना समझ लिया। मैं सरला देवी को जितने कोमल ढंग से लिख सकता हूं, लिखूगा।

तुम सवको प्यार।

वापू

जव सव काम निपट जाय तव मै चाहता हूं कि तुम मुझे तार से वताओ कि माताजी ने यह सव श्रम सहन कर लिया है।

—अंग्रेजी। १८।१०।१९३३। 'ए वंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

३२१. पत्र : कमला नेहरू को

चि० कमला,

तुमने मेरा त्याग ही कर दिया? एक भी खत नहिं. ऐसा भी नहिं है कि लिख नहि सकती, क्योंकि जवाहरलाल लिखता है वेटी के लिये खर्च करने में तो घूम मचा रही थी. एक ओर तुम, दूसरी ओर सरूप, वीच में पैसे की थैली. पीछे पूछना क्या था? और अखवारनवीस लिखता है लग्न वहुत सादा था. हां सादा तो था लेकिन पूंजीवालों की दृष्टि से, मिस्कीनों की दृष्टि से नहिं!!

अव तो लग्न खतम हुआ. कुछ लिखने का समय मिल सकता है?

वापु के
आशीर्वाद

२३-१०-३३

—हिन्दी। वर्धा, २३।१०।१९३३। गांधी जी के स्वलिखित पत्र की प्रतिलिपि। प्रधान सम्पादक के निजी संकलन से]

३२२. पत्र : रानी विद्यावती को

चि० विद्या०,

क्या तुमको मेरे खत मिले ही नहिं हैं? तुम्हारा खत आज मिला, उसमें कुछ

उल्लेख नहि है. दर्द होते हुए भी हरदोई क्यो गई. सेवा का भी मोह हो सकता है, मोह मात्र छोड़ने से ही सच्ची सेवा हो सकती है. क्या अपंग भक्ति नहि कर सकते हैं? मन से भी सेवा हो सकती है. एक-दो हरिजन बालकों को घर में रखो और पालो. लक्ष्मी तो कुछ लिखती ही नहि. यह कैसे? उनसे लिखो मुझे एक कार्ड देगी तो संतोष होगा. 'हरिजन-सेवक' मिलता है ना?

२३-१०-३३ बापु के
आशीर्वाद

रानी विद्यावती
बिरुआगढ़ी, हरदोई जिला (यू० पी०)

—हिन्दी। वर्धा, २३।१०।१९३३। गांधी जी के स्वलिखित पत्र की प्रधान-सम्पादक द्वारा की हुई अपनी प्रतिलिपि से।]

● सेवा का भी मोह हो सकता है; मोह-मात्र छोड़ने से ही सच्ची सेवा हो सकती है।

३२३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे दो पत्र मिले थे, एक तुम्हारे यहां से और दूसरा कृष्णा तथा राजा[1] से। ईश्वर का धन्यवाद है. मां की बहादुरी मेरी पूजा की पात्री है। जब से मेरी उनकी भेंट हुई तभी से मैंने शान्त, गरिमामय शौर्य एवं बलिदान की मूर्ति के रूप में उनकी कल्पना कर रखी है।

एक बात मैं तुम्हें लिखने को भूल जाता रहा हूं। यदि तुम कभी महसूस करो कि तुम अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बुलाना चाहते हो तो तुम उसे बुलाने में आनाकानी न करना। तुम्हें मेरी अरुचि का विचार करने की जरूरत नही है। मेरी अरुचि तो इस कारण है कि मैं समझता हूं, इससे भ्रान्ति और भी जटिल हो जायगी तथा उसका मतलब होगा—शक्ति, समय और धन का अपव्यय। किन्तु मैं बिल्कुल ग़लत हो सकता हूं।

तुम सबको प्यार।

२३-१०-३३ वर्धा बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, २३।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. राजा हथीसिंह, कृष्णा (जवाहरलालजी की बहिन) के पति।

३२४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

इसके साथ है डा० आलम[1] का त्यागपत्र। मैंने उनसे कह दिया है कि इसे तुम्हारे पास भेजा जाता चाहिए था। मैं इसे स्वीकार कर लेने की सलाह देता हूं। इसका उदय तीखी शिकायत के एक पत्र से हुआ है जो उनके विरुद्ध लाहौर से मिला था। मैंने उनको उसकी एक नक़ल भेज दी थी। उसमें लगाये गये आरोपों में से कुछ को उन्होंने जोरों के साथ अस्वीकार किया, किन्तु प्रैक्टिस के बारे में एक (आरोप) को मंजूर किया।

जमनालाल जी अपने त्यागपत्र के बारे में चिन्तित हैं। मेरी अपनी राय यह है कि उनका (त्यागपत्र) भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। वह जेल जाने को उत्सुक है, किन्तु यह बात उन्हें खलती है कि वह तुरन्त नही जा रहे है।

मेरा अनुमान है कि कृष्णा अब बम्बई में है।

आजकल मै अखबारों में मां के विषय में कुछ नही देख रहा हूं। क्या वह पहिले से अच्छी हैं ?

विट्ठल भाई की मृत्यु की तो मुझे पूरी उम्मीद थी किन्तु वास्तविक घटना, मुझे अशान्त करती है। उनके विरोध की ही तो मैं कद्र करता था। वह मेरे दिमाग को स्पष्ट करता था और मुझे मौका देता था कि देश के सामने अपनी स्थिति को उससे ज्यादा साफ़ तौर पर रक्खूं, जितनी कि मैं दूसरी हालत में रखता।

प्यार

२६-१०-३३ बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, २६।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. डा० मुहम्मद आलम लाहौर के प्रसिद्ध कांग्रेस नेता।

३२५. तार : अद्वैतकुमार को

वर्धा, २८-१०-३३

अद्वैतकुमार रावारमन
मुंडेरी, वृन्दावन

यदि वह चाहे तो तुम नागिनी[1] देवी को आश्रय दे सकते हो।

गांधी

—अंग्रेजी। वर्धा, २८।१०।१९३३। जी० एन० ८०६ की फोटो-नकल से।]

३२६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा, अक्तूबर, ३०, १९३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे अस्पताल के विषय में तुम्हारा पत्र मिला है। विना प्रतिवाद की आशंका के तुम में यह कहने की सामर्थ्य होनी चाहिए कि स्वराज्य भवन औपधालय पूरी तौर पर एक धोखा है और उसका पूर्ण वहिष्कार किया जाना चाहिए। पूर्ण प्रमाण के विना मुझे यह विश्वास करने का जी नही करता कि वे नकली मामले वनाते हैं। यह प्रमाण पाने को मैं उत्सुक हूं, क्योकि कांग्रेस अस्पताल के विपय में अपनी राय वनाने के लिए यह आवश्यक है; मैं यह महसूस करता हूं कि यदि सरकारी प्रवन्ध निष्फल सावित हुआ है तो विशुद्ध अस्पताली काम के लिए स्वराज-भवन पर हम कव्जा कर सकेंगे। अगर तुम समझते हो कि कांग्रेस अस्पताल या औषधालय उसी स्थान पर चलाना चाहिए, जहां कि इस समय वह चलाया जा रहा है और स्वराज्य भवन को फिर से कव्जे में लेने के लिए कोई यत्न नही करना चाहिए, तव अपील आवश्यक हो जाती है, और वह मोहनलाल नेहरू तथा कमला के नाम पर प्रकाशित होनी चाहिए।

मुझे खुशी है कि मां की हालत वरावर सुधर रही है। उनमें जो मानसिक तनाव था वह निश्चय ही विवाहोत्सव की सफल समाप्ति से कम हुआ जान पड़ता है।

एण्डरूज के यहां वुधवार को आने की उम्मीद है।

---

१. नीला नागिनी नामक विदेशी महिला, जो कुछ समय आश्रम में रही थी।

तुम जमनालाल जी के विषय में जो कुछ कहते हो, उसे मैं समझता हूं। तुम्हारी राय में उसे कब सुरक्षित रूप से घोषित किया जा सकता है?

ठक्कर बापा ने यह कहते हुए पत्र लिखा है कि तुमने कांग्रेसियो को हरिजन कार्य करने से मना कर दिया है—चाहे वे सविनय प्रतिरोध न कर रहे हों। सत्य क्या है? मैं तो ऐसे किसी प्रतिबन्ध को नहीं जानता।

तुम्हारा
बापू

श्रीयुक्त जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद

—अंग्रेजी। वर्धा, ३०।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३२७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

फिर से पढ़ा नही है

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे कई पत्र मिले है। मैं देखता हूं, तुमने दोनों त्यागपत्र अखबारों में (प्रकाशनार्थ) दे दिये हैं। उनसे वातावरण कुछ साफ़ होगा।

मैं हिन्दू सभा की कार्रवाइयों को समझ नही पाता। वे दूषित है। यदि वे शुद्धि के विषय में मेरे नाम का इस्तेमाल कर रहे है तो यह उनकी अशिष्टता है। अगर तुम्हारे पास (ऐसा) कोई साहित्य हो तो कृपया मुझे भेज दो। मैं समझता हूं कि तथाकथित या यथार्थ, राष्ट्रीय पत्रों ने उसकी कार्रवाइयों का स्वागत नहीं किया है, बल्कि अक्सर निन्दा भी की है। मुझे मौ० अ० क० आजाद की किताब पर किसी प्रतिबन्ध का ज्ञान नही है। जहां तक हरिजन कार्यो का सम्बन्ध है, शिकायत पूरी तौर पर नामुनासिब है। मेरा अन्तःकरण पूर्णतः स्वच्छ है। जहां तक तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध है, अगर तुम चाहो तो हम चिट्ठियों का विनिमय करके, अपने दिमाग़ और हाथ साफ़ कर सकते है। मैं नहीं जानता कि निश्चित कार्यों की अभ्रान्त निन्दा के अलावा कौन-सी आक्रामक कार्रवाई सम्भव या वाञ्छनीय है।

जहां तक गोरखपुर की बात है, मुझे समझ में नही आता कि क्या किया जा सकता है। मैं दल के लोगों में काम करनेवाले तुम्हारे कार्यकर्ताओं के लिए ही पैसे

जुटाने में कठिनाई का अनुभव कर रहा हूं। मैं अब भी दोनों के बारे में बात कर रहा हूं। बाबा राघवदास ने मुझसे कहा कि विपत्तिग्रस्त किसानों के लिए अन्न का संग्रह कर रहे है। उन्होंने मुझसे वादा कर रखा है कि जुल्म के प्रामाणिक ब्यौरे मुझे भेजेंगे।

कल नरीमन[1] यहां थे। मैंने उन्हें तुमसे मिलने की सलाह दी है और कह दिया है कि तुम मेरे राजनीतिक प्रधान हो। और मैं क्या कर सकता हूं? एक धार्मिक मुक्तिदाता के रूप मे मैं पूरी तरह असम्मानित हो चुका हूं। और मैं मुख्यत. एक सामाजिक कार्यकर्त्ता हूं। मैंने उनसे कह दिया है कि यदि मुझे यह विश्वास हो जाय कि भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य स० अ० (सविनय अवज्ञा) आन्दोलन बन्द करना और कौंसिल प्रवेश कार्यक्रम पसन्द करते हैं, तो मैं तुरन्त तुम्हें अ० भा० का० क० की बैठक बुलाने के लिए कहूंगा। मेरा विश्वास है कि बहुमत स० अ० (सविनय अवज्ञा) कार्यक्रम पर जोर देगा और मैं नही चाहता कि इसके लिए अध्यादेशों को जारी करने का निमन्त्रण मैं दूं। मैंने उनसे कह दिया है कि अ० भा० कां० क० जो भी कार्यक्रम चाहे उसका प्रतिरोध मैं नही करूंगा, यद्यपि मैं स० अ० (सविनय अवज्ञा) के स्थगित किये जाने के लिए अपनी मंजूरी नही दे सकता। मैं केलकर के आचरण को ईमानदारी का और संगत मानता हूं। वह स्पष्ट रूप से असहयोग और स० अ० (सविनय अवज्ञा) को नापसन्द करते हैं। वह आतंकवादियो, या उन्हें जो भी नाम दिया जाय, का साथ नही देंगे। वैसी हालत में राजनीतिक कार्य करनेवाले आदमी के लिए कौंसिल-प्रवेश ही एक मात्र कार्य-क्रम रह जाता है। निराशापूर्ण निष्क्रियता सबसे बुरी चीज है और उसका अनुमोदन नही होना चाहिए।

मैं समझता हूं कि तुम्हारे पत्र में उठाई गई और न उठाई गई भी सब बातों का जवाब मैंने दे दिया है। अब प्रातः ४ बजनेवाले हैं।

आशा करता हूं, मां की प्रगति जारी है।

कमला के लिए एक रुक्का संलग्न है।

प्रेम

पहली नवम्बर, १९३३ बापू

वर्धा

— अंग्रेजी। वर्धा, १।११।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. के० एफ० नरीमन, बम्बई के एक राष्ट्रीय नेता।

३२८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा, नवं० ३, १९३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

सीमाप्रान्त वाली टिप्पणी में जिन अत्याचारों का जिक्र किया गया है, उनके विषय में मेरी अपनी राय तो यह है कि पहिले उनके लिए व्यक्तिगत रूप से प्रयत्न किया जाना चाहिए और इससे कम निर्दय उपाय ग्रहण करने के लिए अधिकारियों को तैयार करने में हम जो भी साधन इस्तेमाल कर सकें, उनसे काम लेना चाहिए। मैं एण्डरूज से कह रहा हूं कि वह सीमाप्रान्त वाली टिप्पणी का मामला अपने हाथ में लें। और यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मै चाहूंगा कि तुम वह टिप्पणी सर तेजबहादुर को भी दिखा दो, और देखो कि उसके बारे मे उनके पास कहने के लिए क्या है—यह भी कि क्या वह इस विषय में कुछ करने की इच्छा रखते है।

हिजली में जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में मैने बंगाल के गवर्नर को जो पत्र लिखा है उसकी एक प्रति इसके साथ संलग्न कर रहा हूं।

प्रेम
बापू

श्रीयुत ज० लाल० नेहरू
आनन्द-भवन, इलाहाबाद

—अंग्रेजी। वर्धा, ३।११।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३२९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा, नव० ११, १९३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैं अभी एक भारी दौरे के कार्यक्रम से लौटा हूं और तुम्हारा पत्र पढ़ने के बाद यह तार दिया है :

"दो दिन देने नें असमर्थ। किसी भी सोमवार के तीसरे पहर तीन घण्टे दे सकता हूं। सत्ताईसवीं को रायपुर (में), चौथी दिसम्बर जबलपुर।"

एक दिन से ज्यादा और तीन घण्टे से ज्यादा देना असम्भव है। कार्यक्रम इतना भरा हुआ है कि विश्राम के लिए भी शायद ही समय मिल पाता है। विश्राम, स्नान और भोजन के चार घण्टे घटकर अब दो ही रह गये है। एक कार्यक्रम जिससे

दसियों हजार आदमियों का सम्बन्ध है, आसानी से स्थगित या परिवर्तित नही किया जा सकता। संलग्न प्रति से तुम काम की कुछ कल्पना कर सकोगे, और जहां विश्राम के घण्टों का जिक्र है, वे शुक्रवार की दोपहर के अतिरिक्त और दिन १० से २ की जगह, समय पर अनधिकृत कब्जे के कारण, १२ बजे से २ बजे दिन तक ही रह गये हैं।

मै तुम से पूरी तरह सहमत हूं कि प्रस्तावित वार्त्ता से, मामलों की किसी सन्तोषजनक सीमा तक, सफाई नही हो पायेगी। यदि अ० भा० कां० क० की बैठक होती है, तो मै नही जानता कि मै बैठकों में कैसे उपस्थित हो सकूंगा। क्या यह मेरे लिए ज्यादा अच्छा न होगा कि मै अनुपस्थित ही रहूं? यदि यह वाञ्छनीय है तो मैं अपने विचार लिखकर भेज दूंगा। जो राय मैंने तुमको लिखे अपने पिछले पत्र मे व्यक्त की है, वह अधिकाधिक पक्की होती जा रही है।

तुमने हिजली जेल के बारे में लाहिड़ी का वक्तव्य जरूर ही देखा होगा। उससे सतीश बाबू के पत्र की जरूरत से ज्यादा पुष्टि होती है। मुझे गवर्नर का पत्र भी मिला है। उनके सचिव ने लिखा है कि "महामहिम उस मामले को, जिसके बारे में आपने लिखा है, देखेंगे।"

मैने अस्पताल वाली अपील पढ़ी है। मुझे आशा है कि लोग इसका इसके योग्य उत्तर देगे।

सरकारी मॉग के विषय मे तुम्हारा पत्र मैंने ध्यान से पढ़ा है। तुम स्वराज भवन के बारे मे जो कुछ करो, क्या तुम यह नही सोचते कि तुम्हें न्यासियो (ट्रस्टियों) से सलाह लेनी चाहिए, नकि उन्हे केवल सूचना देनी चाहिए? मै निपट समयाभाव के कारण तुम्हारा पत्र जमनालाल जी तक को दिखा नही पाया हूं। वह मुझे लिखकर कहते है कि चूकि मै वर्धा में हू, तुम उनकी पूर्णत. उपेक्षा कर रहे हो—यहां तक कि उनके पत्रों की प्राप्ति की सूचना भी नही देते। मैने उनसे कह दिया है कि मुझको लिखे हुए तुम्हारे पत्र जैसे मेरे लिए है वैसे ही उनके लिए भी हैं, और हम मे से थोड़े से जो लोग बाहर है, उनके पास केवल शिष्टाचार के कामों के लिए मुश्किल से समय है।

मां-जैसी एक वृद्ध मरीजा के लिए तेजी से सुधार की आशा तुम नही कर सकते। मेरे लिए तो आश्चर्य यही है कि उनपर जो आक्रमण हुआ था, उसे वह झेल कैसे गई। मुझे आशा है, सुधार धीमा होते हुए भी बराबर जारी है।

श्रीयुत ज० ला० नेहरू प्रेम
आनन्द भवन, इलाहाबाद बापू

— अंग्रेजी। वर्धा, ११।११।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३३०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

१३-११-३३

दोहराया नही गया

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैं अभी-अभी चांदा[1] पहुंचा हूं, और जबतक और लोग आते हैं, तबतक मैने तुम्हारा पत्र हाथ में लिया है। इस समय रात को नौ बज गये है। कार्यक्रम बड़ा श्रमसाध्य है। ६ बजे शाम मै हींगनघाट में था।

तिवारी ने मुझे तुम्हारा पत्र दिया। मैने ज०[2] के नाम भी तुम्हारा (पत्र) पढ़ा है। जहां तक उनको पता है, भारतीय कांग्रेस कमेटी के हिसाब में अब बहुत ही कम बच गया है। बहियां उनके पास नही हैं। उन्होंने हिसाब मंगाया है। इस बीच मैंने सुझाव दिया है कि हिसाब में से कम-से-कम ५०० रुपये भेजे जा सकते हैं। यदि कोष रिक्त हो गया है तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्या किया जाय। मेरे पास एक नामांकित हिसाब है, मैं उसमें से रुपया निकालने को नापसन्द करता हूं। मैं उसमें से हर्डीकर के लिए खर्च कर रहा हूं और तुमने मेरे पास कार्यकर्त्ताओं की जो सूची भेजी है उनके लिए भी वैसा ही करना चाहता हूं। वह भी शीघ्र ही खतम हो जायगा। ऐसी परिस्थिति में कार्यालय की कर्मचारी-मण्डली को यदि पूर्णतः खतम नहीं तो कम तो किया ही जा सकता है—मतलब उस हालत में, जब सविनय प्रतिरोध आन्दोलन को जारी रखना है। मैं अपने चतुर्दिक जितना ही देखता हूं, उतना ही ज्यादा मुझे इसका निश्चय होता जाता है कि जो लड़ाई में है उन्हें बिना पैसों के काम चलाना होगा—सिवाय इस अपवाद के कि मेरे जैसे कुछ लोगों के हाथों में कुछ पैसा रह जाय। मैने कभी-कभी गुजरात और कर्नाटक की व्यवस्था की है। जिस महिला को ५०००० रुपये देना था, उसने अभी सन्देश भेजा है कि वह तुम्हें १०००० रुपये देना चाहती है। यदि वह देती है तो मैं तुमसे यह अपेक्षा रखूंगा कि तुम उसमें से उत्तर प्रदेश के कार्यकर्त्ताओं को दे दो। कुछ भी हो, तुम्हारे लिए सबसे अच्छा यह होगा कि जो कोष अब भी प्राप्य है उनके बारे में जमनालाल जी से, और जरूरी समझो तो मुझसे भी, सलाह कर लो। मैंने सब जगह सूचना भेज दी है कि मुझसे अब और सहायता पाने की आशा न की जाय। जो कुछ मेरे पास (बच गया) है उसी से काम चलाने का मैं यत्न कर रहा हूं।

---

१. पुराने मध्यप्रान्त (अब महाराष्ट्र) का एक नगर।

२. जमनालाल जी से आशय है।

अब अनौपचारिक बैठक की बात लो। जो कार्यक्रम संलग्न है, उससे तुम देख सकते हो कि १० से १४ दिसम्बर के बीच मैं दिल्ली रहूंगा। ठक्कर बापा[1] कह रहे है कि अपनी बैठक के लिए १४ का अधिकांश मै ले सकता हूं। १४ को ही ४ बजे दिन के बाद तुरन्त मुझसे आन्ध्र की ट्रेन पकड़ने की आशा की जाती है। अंसारी[2] ने, जो मेरे पास रविवार को मौजूद थे, दिल्ली का सुझाव दिया। यदि परामर्श-सम्मेलन को होना ही है तो तुम २७ (नवम्बर), ४ दिसम्बर और १४ दिसम्बर में से अपना चुनाव कर सकते हो।

जहां तक हरिजन-प्रवास का सम्बन्ध है, मै उत्तर प्रदेश में प्रस्तावित बहिष्कार से बिल्कुल चिन्तित नही हूं। मुझे यहां कोई कठिनाई महसूस नही हो रही है। कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी प्रवास की व्यवस्था करने में सहयोग दे रहे हैं। तुम उदारदल वालों पर, जिन्हे मैं गैर-कांग्रेसियों में शामिल करूंगा, अनावश्यक रूप से कठोर हो। हमे तो उनसे भी काम लेना है। वे अपने विवेक के अनुसार काम करते है। किसी भी हालत मे मै ऐसे एक भी कांग्रेसी से, जो जेल जानेवाला हो, इस आन्दोलन में काम नही लेना चाहता। मेरे पास जो कोई आया है, उससे मैंने यही बात कही है। कुछ सर्वोत्तम कार्यकर्ताओं को, जो अभी-अभी बाहर आये हैं, मैं पुनः (जेल) भेज रहा हूं। मुझे आशा है, बा भी शीघ्र ही जा रही हैं मणिबहन[3] पटेल भी वैसा ही करेगी। काका साहब,[4] स्वामी,[5] सुरेन्द्र[6] जा रहे हैं। जो कांग्रेसी जाने के लिए बहुत दुर्बल हैं अथवा जिनका विश्वास स० अ० (सविनय अवज्ञा) से उठ गया है, और जो हरिजनो के लिए काम करने को उत्सुक हैं, उन्हें ही मैं ले रहा हूं, किन्तु उन्हे नही, जो हरिजन कार्य को सिर्फ़ एक आड़ बनाना चाहते है। इस आन्दोलन को, यदि इसे सार्वदेशिक बनना है तो तब भी चलना ही चाहिए जब हर एक कांग्रेसी जेल चला जाय, या फिर इसे नष्ट हो जाना चाहिए। मैं यह भी महसूस करता हूं कि कांग्रेसियों को इस आन्दोलन का उपयोग सविनय अवज्ञा

---

१. स्व० अमृतलाल ठक्कर, हरिजनों एवं दलित वर्गों के परम बन्धु। उस समय हरिजन-सेवक-संघ के प्रधान मन्त्री।

२. डा० अंसारी, दिल्ली के प्रमुख चिकित्सक तथा कांग्रेसी नेता।

३. वल्लभभाई पटेल की पुत्री।

४. आचार्य दत्तात्रेय विष्णु कालेलकर, प्रमुख गांधीवादी, शिक्षण-शास्त्री, साहित्यकार और विचारक।

५. स्वामी आनन्द, नवजीवन और यं० इं० के मुद्रक-प्रकाशक, साधक।

६. प्रमुख आश्रमवासी।

आन्दोलन या जनता पर कांग्रेस के अधिकार को दृढ़ करने में नही करना चाहिए। यह इसे गलत दिशा में ले जाना होगा। ऐसा रुख कांग्रेस और हरिजन कार्य दोनों को हानि पहुँचायेगा। ऐसे मामले हमारी नजर मे आ चुके है। मैने ऐसे किसी काम के प्रति अपनी प्रबल नापसन्दगी जाहिर की है। मै समझता हूं कि मैने अब काफ़ी तौर पर तुम्हारे सब सवालों का जवाव दे दिया है। यदि ऐसा नही है तो कृपया पूछना।

तुमने ध्यान दिया होगा कि हिजली में "सरकार सलाम" वन्द हो गया है। क्या सीमाप्रान्त के व्यवहार के बारे में मैं सर तेज को लिखू ?

मुझे कृष्णा का एक सुन्दर पत्र मिला था। वह अपने नये घर में सुखी जान पड़ती है।

मै आशा करता हूं कि मां की प्रगति जारी है।

प्रेम

१३-११-३३, चांदा बापू

——अंग्रेजी। चांदा, १३।११।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३३१. पत्रांश : रामनरेश त्रिपाठी को

घमतरी
२४-११-३३

दूसरी भापाओं से शव्द लेकर हिदी ने कुछ नही गमाया है। हम से वन पड़े तो हम भापा में भी छुआछूत कर सकते है लेकिन ईश्वर का अनुग्रह है कि हिन्दी अस्पृश्यता के कलंक से वच रही है।

वापू के आशीर्वाद

—हिन्दी। घमतरी, २४।११।१९३३। प्रधान सम्पादक-द्वारा सुरक्षित प्रति-लिपि से।]

३३२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

यह रहा गोसावी का पत्र। मैं उनको यह (लिख) रहा हूं कि मुझे उनके प्रति तबतक कोई आपत्ति नहीं मालूम पड़ती जबतक कि उनके कांग्रेस छोड़ देने का

दावा नहीं किया जाता, और यह कि हर हालत में उन्हें तुम्हारी सलाह लेनी चाहिए।

मैंने नोट कर लिया है कि हमें ५ दिसम्बर को जबलपुर में मिलना है। यदि किसी तरह भी सम्भव हो सका, तो मैं और ज्यादा समय देने का प्रयत्न करूंगा।

क्या मैंने तुम्हे सी० पी० (मध्य प्रान्त) का कार्यक्रम भेजा नहीं है? उससे ज्यादा अब तक तैयार नहीं था।

तो तुम धीरे-धीरे शेयरों और वैसी चीजों के बोझ से मुक्त हो रहे हो। मुझे इसका अफसोस नहीं है। मेरे दृष्टिकोण से तो आदर्श बात यही होगी कि तुम स्वेच्छा से जो कुछ सम्पत्ति तुम्हारे पास है उसे या तो किसी संस्था को दे दो या कुटुम्ब के उन सदस्यों को, जो अपने को इस संग्राम में डालना नहीं चाहते—इस संग्राम मे जिसका लम्बे समय तक चलना निश्चित है और जिसके शायद अधिकाधिक कठोर होते जाने की सम्भावना है। अन्तिम मोर्चे पर तो सिर्फ वे ही खड़े हो पायेंगे जिनके पास कोई जायदाद नहीं है और जिनके लिए सिर रखने को कोई जगह नहीं है। किन्तु भविष्य को लेकर चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं है। चाहे जो हो, तुम तो अगली पंक्ति में ही पाये जाओगे।

मुझे खुशी है कि मां निरन्तर प्रगति कर रही हैं। पता नहीं, कि जो कुछ घटनाएं घट रही हैं इसकी जानकारी उन्हें है या नहीं।

हां, मैंने हिन्दू सभा पर तुम्हारा आक्रमण पढ़ा था। वह इससे कम कठोर हो सकता था। संक्षेप-सार से तुम एकपक्षीय जैसे बोलते दिखते हो।

प्रेम

२७-११-३३ बापू

तिथियां तुम्हें सलग्न कार्यक्रम में मिल जायंगी।

—अंग्रेजी। २७।११।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२२३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मद्रास, २६-१२-३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

यह है 'म० (मद्रास?) मेल' की एक कतरन। यद्यपि सम्पूर्ण वार्त्तालाप तुम्हारे विचारों के सन्दर्भ में है, स्वभावतः भेंट लेनेवाला उसे (ज्यों-का-त्यों)

प्रकट नही कर सका। मुझे प्रूफ़ तो दिखाया था। जो कुछ मैंने कहा था उसके सार की यह अच्छी प्रस्तुति है। कृपया इसे ध्यान से पढ़ना और जहां तुम्हें लगे कि मैंने तुम्हारे वारे में गलती की है वहां मुझे सही करना। हमारे हलके में भी तुम्हारे वारे में वहुत काफ़ी गलतफ़हमी है। किन्तु इससे मुझे परीशानी नही होती।

जहां तक कार्यक्रम निश्चित है (इसके साथ) तुम्हें वह भी मिलेगा।

मुझे आशा है, मां प्रगति पर है।

प्रेम

२६-१२-३३ वापू

—अंग्रेजी। मद्रास, २६।१२।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३३४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मेरे सामने तुम्हारे तीन पत्र पड़े है।

जहां तक रुपये की वात है, मैंने समझा था कि अव तक वे तुम्हें मिल चुके होंगे। मैंने आदेश दे दिया था। मैं स्मरणपत्र भेज रहा हूं।

मै आशा करता हूं कि कलकत्ता में दी गई सलाह से कमला को कुछ लाभ हुआ होगा।

मुझे तुम्हारे लिए क्षमा मांगने की इच्छा नहीं थी। उस भेंट में भेंटकर्ता पर पड़ी, विचारों की छाप है। किन्तु उसमें क्षमाप्रार्थना नही है। मैंने तुम्हारे मानस और कार्यों की अपनी व्याख्या दी है। मैं महसूस करता हूं कि तुम्हारा ठोस कार्यक्रम अव भी द्रवणशील (अनिश्चित) स्थिति में है। तुम वैसा कहने के लिए अत्यधिक सच्चे हो। मुझे आज अपना सारा कार्यक्रम मालूम है। तुममें समाजवाद के विज्ञान के वारे में कोई अनिश्चितता नही है किन्तु तुम पूरी तरह नही जानते कि सत्ता प्राप्त होने पर उसे किस प्रकार लागू करोगे।

तुमने कांग्रेस में अपने स्थान का सवाल अनावश्यक रूप से खड़ा कर दिया है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, तुम्हारे कारण मुझे कोई परीशानी नही है। तुम्हारे विना मैं खुद कांग्रेस में वीराना हो जाऊंगा।

इस समय इससे ज्यादा नही कहूंगा। लम्बा पत्र लिखने के लिए भी मेरे पास समय नही है।

दावा नही किया जाता, और यह कि हर हालत में उन्हें तुम्हारी सलाह लेनी चाहिए।

मैने नोट कर लिया है कि हमे ५ दिसम्बर को जवलपुर में मिलना है। यदि किसी तरह भी सम्भव हो सका, तो मैं और ज्यादा समय देने का प्रयत्न करूंगा।

क्या मैने तुम्हें सी० पी० (मध्य प्रान्त) का कार्यक्रम भेजा नही है? उससे ज्यादा अब तक तैयार नही था।

तो तुम धीरे-धीरे शेयरों और वैसी चीजों के वोझ से मुक्त हो रहे हो। मुझे इसका अफसोस नही है। मेरे दृष्टिकोण से तो आदर्श वात यही होगी कि तुम स्वेच्छा से जो कुछ सम्पत्ति तुम्हारे पास है उसे या तो किसी संस्था को दे दो या कुटुम्व के उन सदस्यों को, जो अपने को इस संग्राम में डालना नहीं चाहते—इस सग्राम में जिसका लम्बे समय तक चलना निश्चित है और जिसके शायद अधिकाधिक कठोर होते जाने की सम्भावना है। अन्तिम मोर्चे पर तो सिर्फ वे ही खड़े हो पायेंगे जिनके पास कोई जायदाद नही है और जिनके लिए सिर रखने को कोई जगह नही है। किन्तु भविष्य को लेकर चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं है। चाहे जो हो, तुम तो अगली पंक्ति मे ही पाये जाओगे।

मुझे खुशी है कि मा निरन्तर प्रगति कर रही हैं। पता नही, कि जो कुछ घटनाएं घट रही है इसकी जानकारी उन्हे है या नही।

हां, मैने हिन्दू सभा पर तुम्हारा आक्रमण पढ़ा था। वह इससे कम कठोर हो सकता था। संक्षेप-सार से तुम एकपक्षीय जैसे वोलते दिखते हो।

प्रेम

२७-११-३३

वापू

तिथियां तुम्हे संलग्न कार्यक्रम में मिल जायंगी।

—अंग्रेजी। २७।११।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३३३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मद्रास, २६-१२-३३

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

यह है 'म० (मद्रास?) मेल' की एक कतरन। यद्यपि सम्पूर्ण वार्त्तालाप तुम्हारे विचारों के सन्दर्भ में है, स्वभावतः भेंट लेनेवाला उसे (ज्यों-का-त्यों)

'हरिजन' नहीं पढ़ते हो। मैंने समझा था कि उसे मेरे यहां से आये एक सामान्य साप्ताहिक पत्र की तरह पढ़ने का नियम बनाओगे। अब भी इस सुधार के लिए ज्यादा देर नहीं हुई है। मैं इसे नियमित रूप से प्राप्त करने और पढ़ने की सिफारिश करता हूं।

अब तुम्हारे तर्क को लेता हूं।

मैंने यह कभी नही कहा कि विदेशी वस्त्र खुद अपने में कोई बुराई है। मैंने कहा यह था और अब भी इसे कहता हूं कि भारत में भारतीयों-द्वारा विदेशी वस्त्र का उपयोग एक बुराई है।

मैं आभूषणों के उपयोग को उसी श्रेणी में नही रखता जिस श्रेणी में विदेशी वस्त्र को रखता हूं। किन्तु आभूषणों का उपयोग न करने का उपदेश करता हूं। विदेशी वस्त्र के उपयोग की भांति आभूषणों के उपयोग के प्रति कोई मौलिक आपत्ति नही है, और जो पहनना ही चाहे उन्हें आभूपण बेचे जाने पर मैं कुछ एतराज नहीं करता। अगर मुझे गहनों का त्याग करनेवाली एक स्त्री भी मिल जाती है तो मेरे लिए काफी है। तुमको मालूम नही होगा कि उसका सौवा भाग ही आभूषणों के लिए बिकता है, निन्यानवे सैकड़ा गलाकर सोने मे तब्दील कर दिया जाता है और मुद्रा के रूप मे बिकता है। तुम्हारे तर्क के अन्य भाग वृहत्तर क्षेत्र को स्पर्श करते है और उनमें पूंजी तथा श्रम, गरीबी और अमीरी के विपयों की चर्चा आ जाती है। उन्हें मै समयाभाव के कारण छोड़ देता हूं।

क्या तुम्हारे पत्र का मै यह आशय लू कि तुम अभी तक पूर्ण स्वस्थ नही हो पाये, न निराशा की अधेरी के ऊपर उठ पाये हो? मुझे आशा है कि बाबूजी अच्छे होगें।

तुम्हारा निश्छल

२२-१-३४ बापू

—अंग्रेजी। २२।१।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय।

३३६. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

चि० परसराम,

तुमारा खत मिला. जो लड़कियां हिंदी मे लिखती हैं बहोत अच्छे खत लिखती हैं. हरेक प्रार्थना पर भगवान को रीझना हि क्यों चाहिये और वह कब

२६ वी के बारे में मुझे तुम्हारी नोटिस मिली है। मै तो इसे तबतक जारी न किये होता जबतक मै निश्चित रुप से यह कहने की स्थिति में न होता कि क्या करना चाहिए। किन्तु मैं इसका कुछ खयाल नही करता।

मिदनापुर मे की गई सरकारी कार्रवाई के बारे में 'हिन्दू' में जो संक्षिप्त तार छपा है उसने मुझे स्तब्ध कर दिया है। (ये) कार्रवाइयां १९१९ की पंजाबवाली कार्रवाइयों से भी बुरी जान पडती है। आघात प्राय: असह्य है। हमारी कायरता मुझे व्याकुल कर देती है। यह जाने बिना कि अखबार क्या कहते है, यदि वह कुछ कहते भी है, मै अपने विश्लेपण में गलत भी हो सकता हूं, मैने कभी अपने को ऐसा असहाय नही अनुभव किया, जैसा इस समय कर रहा हू।

मैने डा० बिधान[1] और गुरुदेव[2] को लिखा है।

मुझे आशा है, मां पहिले से अच्छी है।

रफी[3] का क्या हाल है?

२१-१-३४ प्रेम

दि केप बापू

जयप्रकाश ने अपने मामले के बारे में मुझे लिखा था, और मैंने विस्तार से उसे (पत्र) लिखा। उसके भाई को छात्रवृत्ति मिलेगी। जो भार उसपर है (उसे देखते) उसे सचमुच कमाना शुरू करना चाहिए। किन्तु वह ऐसा न करेगा। मैं उससे सम्बन्ध बनाये हुए हू।

—अंग्रेजी। कुमारी अन्तरीप, २१।१।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरु संग्रहालय।

३३५. पत्र : श्रीप्रकाश को

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश,

मुझे खुशी है कि आभूपणों पर मेरे लेख को तुम समझ नही पाये। उसके कारण मुझे तुमसे एक पत्र प्राप्त हो सकता है और यह भी छाप पड़ी है कि तुम

---

१. कलकत्ता के प्रसिद्ध डाक्टर स्व० बिधानचन्द्र राय।

२. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

३. रफी अहमद किदवई।

'हरिजन' नहीं पढ़ते हो। मैंने समझा था कि उसे मेरे यहां से आये एक सामान्य साप्ताहिक पत्र की तरह पढ़ने का नियम बनाओगे। अब भी इस सुधार के लिए ज्यादा देर नहीं हुई है। मैं इसे नियमित रूप से प्राप्त करने और पढ़ने की सिफारिश करता हूं।

अब तुम्हारे तर्क को लेता हूं।

मैने यह कभी नहीं कहा कि विदेशी वस्त्र खुद अपने में कोई बुराई है। मैने कहा यह था और अब भी इसे कहता हूं कि भारत में भारतीयों-द्वारा विदेशी वस्त्र का उपयोग एक बुराई है।

मैं आभूषणों के उपयोग को उसी श्रेणी में नही रखता जिस श्रेणी मे विदेशी वस्त्र को रखता हूं। किन्तु आभूषणों का उपयोग न करने का उपदेश करता हूं। विदेशी वस्त्र के उपयोग की भांति आभूषणों के उपयोग के प्रति कोई मौलिक आपत्ति नही है, और जो पहनना ही चाहे उन्हें आभूषण बेचे जाने पर मैं कुछ एतराज नही करता। अगर मुझे गहनो का त्याग करनेवाली एक स्त्री भी मिल जाती है तो मेरे लिए काफी है। तुमको मालूम नही होगा कि उसका सौवां भाग ही आभूषणों के लिए बिकता है, निन्यानवे सैकड़ा गलाकर सोने में तब्दील कर दिया जाता है और मुद्रा के रूप में बिकता है। तुम्हारे तर्क के अन्य भाग वृहत्तर क्षेत्र को स्पर्श करते है और उनमें पूंजी तथा श्रम, गरीबी और अमीरी के विषयों की चर्चा आ जाती है। उन्हें मै समयाभाव के कारण छोड़ देता हूं।

क्या तुम्हारे पत्र का मै यह आशय लूं कि तुम अभी तक पूर्ण स्वस्थ नहीं हो पाये, न निराशा की अंधेरी के ऊपर उठ पाये हो? मुझे आशा है कि बाबूजी अच्छे होंगे।

तुम्हारा निश्छल

२२-१-३४ बापू

—अंग्रेजी। २२।१।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय।

३३६. पत्र : परशुराम मेहरोत्रा को

चि० परसराम,

तुमारा खत मिला. जो लड़कियां हिंदी मे लिखती है वहोन अच्छे खत लिखती हैं. हरेक प्रार्थना पर भगवान को रीझना हि क्यों चाहिये और वह क्त्र

रीझता है और कव रूठता है इसका हमें क्या पता. प्रार्थना हि प्रार्थना का फल या वदला है.

सत्य में सत्य हि सवसे वड़ी युक्ति यों लिखि है. जही टेकटी (टैक्ट?) है वही डेलिकसि (डेलीकेसी) है. टेक्ट का तर्जुमा मृदुता कहा जाय. इस जगत में शुद्ध सत्य से वढ़के न कोई पोलिसि है, न टेक्ट है न डेलिकसि है।

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। ४।२।१९३४। पत्र की फोटो-नकल (सी० डवल्यू० ४९६८) से।]

३३७. पत्र : द्रौपदी देवी को

चि० द्रौपदी,[1]

तुम्हारा आश्रम में आना मुझे वहुत प्रिय लगा है। जो सीखने का कार्य-क्रम अव वनाया है सो अच्छा लगता है। मेरी उम्मीद है तुम सवका स्वास्थ्य वर्धा में अच्छा रहेगा। आश्रम जीवन समझने की पूरी कोशिश करो। सव वहिनो का परिचय करके उनकी यथाशक्ति सेवा करो। तुमको आश्रम मे लाने मे वहुत आशाये वांध रक्खी है। मुझे खत अवश्य लिखो।

वापु के
आशीर्वाद

९-४-३४

—मूल हिन्दी। ९।४।१९३४। 'वापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

३३८. पत्र : हीरालाल शर्मा को

भाई शर्मा,

तुम्हारा खत मिला है। अम्तुल सलाम को मैं तो लिखता रहूंगा लेकिन अव मैं उसके वारे मे चिन्तामुक्त हुआ हूं। उसका इलाज दिल चाहे ऐसे करो। अच्छी हो जाय तो सव झंझट मिट जाय। मुझे लिखा करो कैसे चल रहा है। तुमको तो मैंने लम्वा खत दिया है।

वापु के
आशीर्वाद

१४-४-३४

---

१. श्री हीरालाल शर्मा, प्राकृतिक चिकित्सक, खुर्जा की पत्नी।

खुराक के बारे में कुहने, जुस्ट, कैलोग, कैरिंगटन अच्छे है। कोई पूर्ण नहीं है। मैने जो परिणाम निकाला है वह यह है :

रसदार फल सबसे निर्दोष खुराक है। शक्ति के लिए दूध के पदार्थों की अत्यावश्यकता है। कच्चा ताजा दूध उत्तम है। नित्य बहुत चीज नही खाना। एक-एक चीज भिन्न खाना आवश्यक है। सिरियल्स में गेहूं अच्छे है। चावल अनावश्यक है दाल अनावश्यक हैं इतना संक्षेप में।

बापु

—हिन्दी। १४।४।१९३४[1]। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

३३९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

बचे हुए काम को निबटाने के लिए मैं आज सुबह (रात ?) १२-१५ पर उठ गया हूं।

तुम सदा ही मेरे मन में रहे हो। मुझे आशा है, तुम्हें यह पत्र प्राप्त करने की अनुमति मिल जायगी। मैं तुमसे इस आशय की एक पंक्ति चाहूंगा कि तुम कैसे हो और क्या कर रहे हो।

तुमने निश्चय ही मेरे दो निर्णय देखे होंगे। वे दोनों एक ही समय हुए, यह तो केवल एक संयोग है। स्वराज्य दल का पुनर्जीवन ठीक कदम है। इसमें कोई सन्देह नही कि कांग्रेस में हमारे बीच ऐसे आदमियों का एक दल है जो कौंसिल-प्रवेश में विश्वास रखते है और जिन्हें यदि वह कार्यक्रम नही प्राप्त हुआ तो और कुछ नही करेंगे। उनकी महत्वाकांक्षा की पूर्ति होनी ही चाहिए। दूसरा निर्णय, जिसमें जहां तक लक्ष्य का सम्बन्ध है, स० प्र० (सविनय प्रतिरोध) केवल मुझ तक सीमित कर दिया गया है, उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह अनिवार्य था। उस पर पहुंचने के बाद, मैं हजारों कारणों से निर्णय के औचित्य को देख सकता हूं। मैने निदान कारण दिया है। किन्तु निर्णय धीरे-धीरे मुझमें रूप ले रहा था।

---

१. श्री शर्मा ने लिखा है कि गांधी जी ने यह पत्र रांची से लिखा था जो गलत मालूम होता है। १४।४ को गांधी जी रांची नहीं, गौहाटी (आसाम) में थे। रांची वह ३०।४ को पहुंचे थे। —सम्पा०]

मैं आशा करता हूं कि इससे तुम्हें परीशानी नही होगी। जव निर्णय रूप ले रहा था तव उस सारे समय तुम मेरे मनश्चक्षु के सम्मुख थे। मैं इस निदान पर पहुंचा कि यद्यपि यह क्षणिक आघात पहुंचायेगा, अन्त मे तुम इसके सत्य को देख सकोगे और खुश होगे।

हम सव अक्सर तुम्हारे वारे में वात करते हैं। हमारा एक वड़ा दल है। जव मैं इलाहावाद से गुजरा तो मां तथा कुटुम्व के सदस्यों के साथ लगभग दो घण्टे तक था।

प्रेम

गौहाटी वापू

१४-४-३४

अलीपुर सेण्ट्रल जेल के सेंसर-द्वारा पास

—अंग्रेजी। गौहाटी, १४।४।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३४०. पत्र : श्रीप्रकाश को

पोस्ट कार्ड

[डाकखाने की मुहर से पता लगता है कि यह पोस्टकार्ड वनारस में २० अप्रैल, १९३४ को प्राप्त हुआ था।—सम्पा०]

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश,

(इस) निर्णय तक पहुंचने में, मैंने किसी भी अनुयायी या सहकार्यकर्त्ता का न्याय नही किया है। मैंने यदि किसी का न्याय किया है तो अपना न्याय किया है। निर्णय करने के कारण मैं अधिक मुक्त हो गया हूं। यदि मैं अपने तई सच्चा रहता हूं तो उससे हम सव का भला होगा। सत्याग्रह एक अद्भुत अस्त्र है। इसलिए तुम्हें अपनी मलामत करने की जरूरत नही है। किन्तु मैं यह जरूर चाहता हूं कि जव वक्त आये तव तुम तैयार मिलो।

प्रेम

१६-४-३४ वापू

—अंग्रेजी। १६।४।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय।

३४१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

टिप्पणियां पढ़ने से अच्छी लगती है। तुम्हारे उत्तर काफी पूर्ण और निश्चय ही वेलाग थे।

तुम आगामी बैठक के वारे में चिन्तित क्यों होते हो? यदि चर्चा होती है तो वह एक-दूसरे के विचारों की उपयुक्तता को एक दूसरे को समझाने के लिए ही तो होगी। जब तुम समझना कि किसी प्रस्ताव पर भली प्रकार तर्क हो चुका है, तो तुम वहस वन्द कर देना। आखिर तो तुम दलबद्ध काम चाहते हो, और अगर ऐसा हो जाता है तो मुझे तो वड़ी आशा हो जाती है।

मैं २३ की शाम नागपुर पहुंच रहा हूं।

मेरी कामना है, रंजीत[१] अपना भार खुद उठायेगा। मुझे खुशी है कि वह खाली[२] गया है। मैं आशा करता हूं कि सरूप[३] तुम्हारे साथ आयेगी।

सरदार[४] अब भी पीड़ित है और इस समय सिर्फ मखनिया दूध पर हैं। ८ मई के वाद मैं उनको नान्दी दुर्ग ले जा रहा हूं। मेरी कामना है कि तुम भी आ सकते।

प्रेम

२१-४-३४ वापू

—अंग्रेजी। २१।४।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३४२. पत्र : श्रीप्रकाश को

जैसे पटना में हूं

मेरे प्रिय श्रीप्रकाश, ६ ठी मई, १९३४

मुझे तुम्हारा लम्बा और वाद में छोटा पत्र मिला। मुझे मार्कण्डेय मन्दिर-विषयक सही सूचना देने के लिए तुमने जो तकलीफ उठाई, उसका मुझे ध्यान

---

१. स्व० रणजित पण्डित, सरूप कुमारी (वाद की विजयलक्ष्मी जी) के पति।
२. खाली, अलमोड़ा, जिले का एक सुन्दर स्थान जहां श्री पण्डित ने 'ऋतु संहार' नामक एक सुन्दर आवास का निर्माण कराया था।
३. श्रीमती विजयलक्ष्मी।
४. सरदार वल्लभभाई पटेल।

है। यदि 'सनातन धर्म' का तुम्हारा अर्थ स्वीकार कर लिया जाय तो फिर बिला-शक कोई कठिनाई नही रह जायगी।

अगर भारत-सेवक-समाज (सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सुसाइटी) के सदस्यों के साथ मेरा दृष्टिकोण मिलता होता, तो मै इस तरह उसका एक अमान्यताप्राप्त सदस्य मात्र न रह जाता। मैं सदस्य होने का दावा करता हूं क्योंकि जिस प्रेरणा ने गोखले को अनुप्राणित किया था, वही मुझे भी अनुप्राणित करती है। और कौन जानता है कि यदि १९१९ और बाद की घटनाएं उनके जीवन-काल में हुई होतीं तो तराजू के किस पलड़े पर वह अपना भार रखते?

तुम्हे शब्दग्राही नही होना चाहिए। "अक्षर मार डालता है, अन्तर्भावना जीवन देती है" वाली उक्ति केवल ईसाइयो के लिए ही सत्य नही है, वह सम्पूर्ण जगत् के लिए सत्य है। देखो तो, अपने आपको सनातनी कहनेवाले सनातनियों को अक्षर किस तरह मार रहा है।

तुम्हारा
बापू

श्री श्रीप्रकाश,
सेवाश्रम, सिगरा, बनारस

—अंग्रेजी। पटना जाते हुए, ६।५।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश। तथा नेहरू संग्रहालय।

३४३. पत्र : द्रौपदी देवी को

चि० द्रौपदी देवी,

तुमारा खत मिला. अच्छा है. माता पिता को अपने बच्चों का भार नहि लगना चाहिये. भले क्यों ब्रह्मचर्य का निश्चय भी किया हो. उसका पालन कर्त्तव्य समझ करना आवश्यक है. उसी के साथ दूसरी सेवा की जाय. इसका परीणाम यह आवेगा कि बालक भी सच्चे सेवक होंगे. यह तो हुई मेरी राय. इससे संतोप न रहे तो जैसा दिल कहे ऐस किया जाय. मुझे लिखा करो.

बापु के
आशीर्वाद

७-५-३४
पुरी

—हिन्दी। पुरी, ७।५।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

३४४. पत्र : गोविन्दलाल शाह को

भाई गोविंदलाल,

तुम्हारा खत बहुत दिनों से मिला। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक ही होगा।

बापु के
१५-५-३४ आशीर्वाद

—हिन्दी। दिल्ली, १५।५।१९३४।]
सौजन्य : श्री राजीवलोचन शाह, नैनीताल।

३४५. पत्र : हीरालाल शर्मा को

भाई शर्मा,

अमतुल सलाम तुमारी तारीफ करती है. इतनी ही शिकायत वह लिखती है कि तुम्हारा वजन बहूत कम हो गया है. खाना कम कर दिया है. मैं इतना हि कहना चाहता हूं कि शरीर को निरर्थक कष्ट देना इतना हि गुनाह है जितना शरीर को पंपालना. इसलिये शरीर रक्षा के लिये जो आवश्यक है वह किया जाय. इतना तो चार दिनों के पहले लिख चूका था. अब तुमारा खत मिला है. दिल चाहे तब मेरे पास आ सकते है. लेकिन वहां के मरीजों को छोड़कर नहि. मेरा मुसाफिरी क्रम तो तुमारे पास होगा. जुन १२ तक तो यही काम चलेगा. पीछे शायद मुंबई.

तुमारी इच्छा[1] सिद्ध होने में कुछ देर लगेगी. मैं चाहता हूं थोड़े और स्थिर-चित्त बनो. लेकिन यह सब बातें करने पर. इस समय तो सब का प्रेम संपादन कर रहे है सो अच्छा ही है.

बापु के
२३-५-३४ आशीर्वाद

—हिन्दी। पटना, २३।५।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

---

१. आश्रम में रोगियों के लिए एक अलग वार्ड बनाने की बात।

३४६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
१० अगस्त १९३४

प्रिय जवाहरलाल,

खानसाहब[1] को बम्बई की बैठकों में आने के लिए साधारण सूचना मिल गई है। उनकी इच्छा आने की नही है और मैं उन्हे दबाना नही चाहता। बम्बई मे उन्हे सभाओं और समारोहों में शरीक होने को कहा जायगा और बोलने का अनुरोध किया जायगा। मैं नही चाहता कि अभी वह ऐसा करे। मैं यह चाहता हूं कि वह यह साल मेरे साथ बितायें। दूसरे, बीमारी के हमलों को रोकने की भी उनमें बहुत शक्ति नही है। इसलिए उन्हें सम्मिलित होने से माफ कर दोगे?

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १०।८।१९३४। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

३४७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
१४-८-३४

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

यद्यपि तुम संकटापन्न परिस्थितियों मे बाहर आये हो, तुम्हारी रिहाई से मेरे दिमाग का एक बड़ा बोझ उतर गया है, क्योंकि यह कमला के लिए तीन-चौथाई दवा है। मैंने जो महत्वपूर्ण पग ग्रहण किये है उन सब के बीच तुम्हारी अनुपस्थिति मुझे बहुत खलती थी। किन्तु इनके बारे मे तो तब बातें होगी जब हम मिलेंगे।

मैं ठीक हूं, यद्यपि अन्तिम दिन सब दिनों से कष्टकर था, और उसने मुझे पूरी तरह धोकर रख दिया। किन्तु मुझे सन्देह नही है कि मै अपनी खोई तन्दुरुस्ती तेजी से प्राप्त कर लूंगा।

मै यह पत्र तुम्हे यह सुझाव देने के लिए लिख रहा हूं कि तुम्हें कोई सार्वजनिक

---

१. सीमान्त गांधी खान अब्दुल गफ्फार खां।

राजनीतिक वक्तव्य नही देना चाहिए। मैंने महसूस किया है कि घरेलू बीमारी या शोक के मामलों में सरकार ने उचित ढंग से काम किया है। इललिए मैं महसूस करता हूं कि हमें इस तरह प्राप्त स्वतन्त्रता को किसी ऐसे कार्य में इस्तेमाल नही करना चाहिए जो सरकार के प्रतिकूल हो—विशेषतः तब जब सविनय प्रतिरोध स्थगित कर दिया गया हो। अगर मेरा तर्क तुम्हारे विवेक को अपील करता हो तो तुम एक योग्य ढंग पर अपने आत्म-नियन्त्रण की घोषणा करोगे। जब कमला की हालत कुछ अच्छी हो जाय तब तुमसे मैं यहा आने की आशा करूंगा। मै वर्धा में (इस) महीने के अन्त तक रहूंगा—सिवाय इस अपवाद के कि इसी महीने के अन्दर शायद जमनालालजी का जो कठिन आपरेशन हो उसमें उपस्थित रहने के लिए मुझे बम्बई जाना पडे।

मुझे आशा है कि मां ठीक है और कृष्णा भी अच्छी है। तुम मुझे यह जानकारी दोगे कि इस बार जेल में तुम कैसे रहे ?

प्रेम

बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, १४।८।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३४८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

१७ अगस्त १९३४

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी पत्र मिला। उसका उत्तर मेरी सामर्थ्य से कही अधिक लम्बा होना चाहिए।

मुझे सरकार से अधिक शराफत की आशा थी। किन्तु तुम्हारी उपस्थिति ने कमला के लिए और साथ ही मां के लिए जो काम किया वह किसी दवा या डाक्टर से नहीं हो सकता था। मुझे आशा है कि तुम जितने थोड़े-से दिनों की अपेक्षा कर रहे हो, उनसे अधिक ठहरने दिये जाओगे।

तुम्हारे गहरे दुःख को मै समझता हूं। अपनी भावनाओं को पूरी तरह और स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट करके तुमने सर्वथ उचित किया है, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे सामान्य दृष्टिकोण से लिखित बात को अधिक गहराई से अध्ययन करने पर तुम्हें पता चल जायगा कि तुमने जो इतना सारा दुःख और निराशा का

अनुभव किया है उसके लिए पर्याप्त कारण नही है। मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूं कि तुमने मुझमें अपना साथी खोया नही है। मै वही हूं जैसा तुम मुझे १९१७ में और उसके वाद से जानते हो। मुझे देश के लिए पूरे अर्थ मे सम्पूर्ण स्वाधीनता चाहिए और प्रत्येक प्रस्ताव जिसमें तुम्हे पीड़ा हुई है, उसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। इन प्रस्तावों के लिए और उनकी सारी कल्पना के लिए पूरी जिम्मेदारी मेरी है।

किन्तु मेरा विचार है कि मुझे समय की आवश्यकता को पहिचान लेने का अन्दाज आता है। ये प्रस्ताव उसी का परिणाम है। हां, उपाय या साधन पर हमारे जोर देने मे अन्तर है। मेरे लिए साधन उतने ही महत्वपूर्ण है, जितना लक्ष्य वल्कि एक प्रकार से साधन वहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन पर तो हम कुछ नियन्त्रण रख सकते है। यदि साधनो पर हमारा कावू न हो तो लक्ष्य पर वह कहां रह जायगा।

'विचारहीन वातों' के वारे मे प्रस्ताव को निर्विकार होकर जरूर पढ़ो। समाजवाद के विषय में उसमे एक भी शब्द नही है। समाजवादियों का अधिक-से-अधिक लिहाज रक्खा गया है, क्योकि उनमें से कुछ के साथ मेरा घनिष्ट परिचय है। क्या मुझे उनका त्याग मालूम नही है?

किन्तु मैंने देखा है कि वे सव-के-सव जल्दी में है। क्यों न हों? वात इतनी ही है कि यदि मैं उनकी तरह तेज नही चल सकता तो मुझे उनसे कहना पड़ता है कि ठहरो और मुझे अपने साथ ले चलो। अक्षरशः मेरा यही रवैया है। मैंने शब्दकोश मे समाजवाद का अर्थ देखा है। परिभाषा पढ़ने से पहिले जहां मैं था उससे आगे नही पहुंच सका। तुम वताओ, पूरा अर्थ जानने के लिए मुझे क्या पढ़ना चाहिए? मैंने मसानी[1] की दी हुई पुस्तको में से एक पुस्तक पढ़ी है और अव मैं अपना सारा फालतू समय नरेन्द्रदेव[2] की सिफारिश की हुई पुस्तक पढ़ने में लगा रहा हूं।

तुम कार्यसमिति के सदस्यों के साथ कठोरता कर रहे हो। वे जैसे भी है, हमारे साथी है। आखिर तो हमारी एक स्वतन्त्र संस्था है। यदि वे विश्वासपात्र नही है तो उन्हें हटा देना चाहिए। परन्तु जो कष्ट कुछ दूसरे लोग सह चुके है, उन्हें वे न सह सके तो इसके लिए उन्हे दोष देना अनुचित है।

---

१ उस समय के एक भारतीय समाजवादी नेता।

२. आचार्य नरेन्द्रदेव, पहिले काशी विद्यापीठ के उपाचार्य, वाद में भारतीय समाजवाद के एक प्रवर्त्तक, लखनऊ तथा काशी विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर।

विस्फोट के बाद हम रचना चाहते है। कदाचित् हमारा मिलना न हो, इसलिए अव मुझे ठीक-ठीक बतादो कि तुम मुझसे क्या कराना चाहते हो ? और तुम्हारे खयाल से तुम्हारे विचारों का सबसे अच्छा प्रतिनिधि कौन होगा ?

दुःख की बात यह है कि मैं तो उपस्थित नहीं था। वल्लभभाई थे। तुम्हारे रवैये से क्रोध प्रकट होता है। तुम्हें ट्रस्टियों पर विश्वास रखना चाहिए कि वे अपना कर्त्तव्य पूरा करेंगे। मैं नही समझता कि कोई बेजा बात हुई। मै इतना व्यस्त था कि उस पर एकाग्रता से ध्यान नही दे सका। अव मै कागजात और हर चीज का अध्ययन करूंगा।

बेशक तुम्हारी भावनाओं का आदर दूसरे ट्रस्टी पूरी तरह करेंगे। यह आश्वासन देने के बाद मै तुमसे कहूंगा कि इस मामले को इस प्रकार व्यक्तिगत न समझो, जैसा तुमने समझा है। यह तुम्हारे उदार स्वभाव के अधिक योग्य होगा कि पिताजी की स्मृति के लिए जितना लिहाज तुमको है उतना ही अपने साथी ट्रस्टियों को होने का श्रेय दे सको। पिताजी की स्मृति का संरक्षक राष्ट्र को बना दो और तुम राष्ट्र के एक अंग बन जाओ।

आशा है, इन्दु अच्छी तरह होगी और उसे अपना नया जीवन पसन्द होगा। कृष्णा का क्या हाल है ?

स्नेह,
बापू

—अंग्रेजी। १७।८।१९३४। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

३४९. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

शरनामें में मेरी गलती[1] हो गई, इसका दुःख है होनी नहीं चाहिए थी. रामदास के हाल तुमारी दृष्टि से लिखो.

---

१. बापू ने किसी लिफाफे पर शर्माजी का पता लिखते समय 'खुर्जा' की जगह 'खुर्दा' लिख दिया था। वह पत्र बहुत दिन बाद उड़ीसा से लौट कर खुर्जा आया था। उसकी इत्तला शर्माजी ने बापू को दी थी। उसी की ओर इशारा है।

मे मेरे अनुभव विस्तृत हो सकते है, किन्तु आपने जिस दिशा में दयालवाग का निर्माण किया है उसमें मै वहुत कम अनुभव का दावा कर सकता हूं। फिर मेरे पास साधन भी अपरिमित नही है। फिर भी जव मैं तैयार हो जाऊं तव हरिजनों के लिए औद्योगिक गृहों की स्थापना में मैं आपसे हरिजन-सेवक-संघ की मदद करने को कहूंगा। इसलिए निश्चित रूप से उन्हें अमहत्वाकाक्षी वनना पड़ेगा।

मुझे खुशी है कि आपने एक चर्मालय भी खोल दिया है। क्या आपके विशेषज्ञ मुझे एक संक्षिप्त लेख दे सकेंगे जिसमें चर्मकला की पद्धति का ऐसा वर्णन हो जिसे पढ़कर कोई वुद्धिमान पाठक चर्मकला में खुद अपने प्रयोग कर सके? क्या आपकी चर्मकला मे लाशो की व्यवस्था, उनकी खाल उतारने और चमड़े को हड्डी-मांस से अलग करने की क्रिया भी शामिल है? और अगर ऐसा ही है तो हड्डी, रक्त, मांसादि का क्या उपयोग होता है? मेरे लिए तो गोवंश की पवित्रता के हिन्दू विश्वास के अनुसार चलते हुए, चर्मकला का पशु-रक्षण के महान प्रश्न से वहुत सम्वन्ध है। और क्या आप चमड़ा लेते भी हैं? या आप कत्ल किये हुए पशु की जगह केवल मरे हुए जानवरों के चमड़े तक ही अपने को सीमित रखते है?

क्या आपके कृपापूर्ण प्रस्ताव से मै यह आशय निकाल सकता हूं कि हरिजन-सेवक-सघ अपने हरिजन छात्रों को कई दस्तकारियों में प्रशिक्षण के लिए जिन हरिजन वस्तियों मे भेज सकता है उनमें दयालवाग भी शामिल है? और यदि संघ उन्हे भेज सकता है तो किन शर्तो पर?

जैसी कि मुझे हुई है, मीरा वहिन भी यह जानकर खुश होंगी कि आपने रेडियम नोकवाली ऐसी स्वर्ण-निवों के वनाने में सफलता प्राप्त कर ली है जो ग्यारह बटे वारह स्वदेशी है। आपने जो शुभ समाचार भेजा है उसे मैं मीरा वहिन को सूचित कर दूगा।

आपने मेरे स्वास्थ्य के सम्वन्ध में कृपापूर्वक पूछा है, उसके लिए मैं आपका धन्यवाद करता हूं। उपवास के वाद जितनी प्रगति की आशा की जा सकती है उतनी अच्छी प्रगति मै कर रहा हूं।

आपका निश्छल
मो० क० गांधी

साहेवजी महाराज,
श्री आनन्दस्वरूप,
दयालवाग, आगरा।

—अंग्रेजी। वर्धा, २।१।१९३४। जी० एन० २१५९ की फोटो-नकल से।]

३५२. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

दतून करके तुम्हारा पत्र पढ़ गया. कल पूरा नहिं पढ़ सका था. ऐसे आजकल मेरे हाल हो गये है, कल के तार का तो उत्तर दे दिया है आज भी वही उत्तर है. धीरज से काम करो. वहां से हट जाओगे तो रामदास का शरीर और बिगड़ेगा. यह तो यहां बैठे हुए मेरा अभिप्राय, सुरेन्द्र[1] वहां है वह जैसा कहे ऐसे किया जाय. मेरा अभिप्राय यह है तुमारे मूक नर्स बन जाना. दाक्टरों का अपमान भी सहन करके रामदास जहां तक खुश रहता है उसको साथ देना. जो बनता रहे मुझे बताते रहो. बा को सहन करो. जो वहां बन रहा है उस बारे में मैने चेतावनी दी थी. कनु[2] को अभी भी यहां भेज दिया जाय तो अच्छा है ही. लेकिन इन सब बातों में सुरेन्द्र की सुनो. मैं यहां बैठे हुए कर्तव्यविमूढ़ हूं.

मेरे कारण लोग भयभीत हो जाते है यह मैं जानता हूं. क्या करूं? इसी कारण मै कांग्रेस छोड़ना चाहता हूं इसी कारण सबसे अलग रहना पसंद करता हूं लेकिन यह सब बलात्कार से नहि होगा. जैसे ईश्वर चाहता है ऐसे ही होगा. तुम्हारा अंतिम वचन सर्वथा योग्य है. हिंदुस्तान का अथवा एक मनुष्य के किस्मत का ठेका लेने वाला मै कौन? ऐसा होते हुए भी रागादि के कारण मैं अनजानपन में भी भ्रम में पड़ता हूं.

सब कुछ देखते हुए यदि रामदास को छोड़ना ही पड़े तो यहां होकर जाना. द्रौपदी और बच्चों का ख्याल यहां कर लेंगे. मुझे भी उनकी चिता है ही. लेकिन किसी बात में जल्दबाजी नही करेंगे. भविष्य की बात भी कर लेंगे.

बापु के
आशीर्वाद

१३।९।३४, वर्धा

—हिन्दी। वर्धा, १३।९।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

---

१. सुरेन्द्र, बापू के पुराने साथी।

२. कनु—श्रीरामदास का पांचवर्षीय पुत्र।

३५३. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई बनारसीदास,

कोई और चीज ढुढ रहा था वह मिली और तुमारा २१ जुलाई का पत्र भी देखने मै आया. यह पत्र तो यात्रा मै ही मिल सकता था. मैने पढ़ भी लिया था. उत्तर देने के लिए खास जगह रखा तो उत्तर ही रह गया.

उमेद है कि अभी भी उत्तर समय के बाहर नहि हो गया है, जब दिल चाहे आजाइये. जितने दिन ठहरना हो ठहरिये. तुमारा विरोध मुझे प्रिय लगता है. यह तुमको आने से रोकने का कभी कारण नही हो सकता था न हो सकता है.

आने का दिन बता देना—मतलब मैं यह समझता हूं कि मेरे निकट रहना है. मेरा समय ज्यादा नहि लेना है. समय तो मेरे पास कम ही रहता है.

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, १८।९।१९३४। जी० एन० २५१५ की फोटो-नकल से।]

३५४. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

तुमारा तार मिला था. तार का अमल मिलते ही किया और द्रौपदी को कल तार भेज दीया. यदि रामदास तुमको छोड़ने पर राजी हो गया है तो शीघ्र वर्धा आ जाओ और मेरे पास दो तीन दिन अथवा कम रह कर अब तो खुर्जे ही चले जाओ. द्रौपदी के खत का मेरे पर असर यह हुआ है कि तुमारे उससे अलग रहना पाप है देवी की देखभाल करना तुमारा प्रथम कर्त्तव्य है यदि उसकी रक्षा तुमारे से हो ही न सके तो तुमारे उसको दिल्ली में छोड़ना शायद उचित होगा. मेरी दृष्टि में तो वह तुमारा पतन की निशानी होगी. लेकिन तुमारा धर्म नियत करने वाला मै कौन? अंत में तो तुम्हारा हृदय कहे वही तुम्हारा धर्म हो सकता है. और तो क्या लिखूं?

२०।९।३४ वर्धा

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, २०।९।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा।

३५५. पत्र : चन्द्र त्यागी को

भाई चन्द्र त्यागी,

तुमारा खत मिला.

गीता के उपरांत रामायण भी पढ़ी जाय तो अच्छा होगा.

ज्ञानमयी श्रद्धा के साथ बुद्धि तेज होती जाती है. श्रद्धा पीछे पीछे चलती है.

मीरां वहन के बारे मैं जो खत आया सुमधुर था. मीरां बहन , आजकल प्रचारार्थ विलायत मै घूमती है. अक्तूबर के अंत मैं यहां पहूंच जायगी.

कर्मयोग मै पूजा केवल भगवान की होती है. और भी उसकी पूजा की श्रद्धा से जो मनुष्य शक्ति पावे...[1]

राजकिशोरी के बारे मैं तजवीज़ करूंगा. आजकल मैं वर्धा में ही रहता हूं.

जनवरी मै मेरे पास आना है तो आ सकते है वहां तक का मेरा कोई कार्यक्रम निश्चित नही है. आजकल बा साबरमती में रामदास[2] के पास है. रामदास वीमार है. मेरे पास प्रभावती[3] अमतुलसलाम...[4] और उमीया है, महादेव, प्यारेलाल...[5] और मृदुराज है, अमीना अपने पति की देहात में आजकल रहती है.

मेरी खुराक दूध फल और उबाली हुई कोई भाजी. पपीता मिलने से खाना अच्छी बात है. मेरा स्वास्थ्य अच्छा है. जमनालाल ने जानकी बहन...[6]अक्तूबर मैं यहां भी आयंगे।

बापु के आशीर्वाद

श्रीचन्द्र त्यागी
कैदी, सहारनपुर

सत्यदेव जी से अभी पता लगा है कि राजकिशोरी को...[7]मैं कुछ मुश्केली है. सेठ जी की सम्मति चाहिये।

—हिन्दी। वर्धा, २१।९।१९३४। जी० एन० ३२७० की फोटो-नकल से।]

---

१. ४. ५. ६. ७. साधनसूत्र धूमिल पड़ जाने के कारण ठीक पढ़ा नहीं जाता।

२. रामदास गांधी।

३. जयप्रकाशनारायण की पत्नी।

३५६. पत्र : सुरेश सिंह को

[यह पत्र गांधी जी ने कालाकांकर के राजा और श्री सुरेश सिंह के बड़े भाई राजा अवधेश सिंह के देहावसान के बाद लिखा था।—सम्पा०]

चि० सुरेश,

तुम्हारा पत्र मिला था राणी साहेवा को मेरा तार मिल गया होगा. जन्म मृत्यू तो हमारे नसीब में लिखा ही है. इसमे हर्ष शोक क्या करे. तुम्हारे दादा[1] के शुभ कार्य को सुशोभित रखना है. राणी साहेवा को धैर्य देना है. मेरी यह उम्मीद है कि सव व्यवस्था जैसे पहले थी वैसी ही रहेगी. मुझे खत लिखा करो.

वापु के
२६।६।३४ वर्धा आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, २९।९।१९३४।]

सौजन्य : श्री सुरेश सिंह, कालाकांकर (अवध)

३५७. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

तुमारा लवा खत पढा दु.ख हुआ और सुख भी हुआ. दुःख हुआ क्योंकि खत तुम्हारी अशांति का अच्छा प्रदर्शन है. सुख हुआ क्योंकि तुम्हारे हृदय में मैं स्वच्छता पाता हू लेकिन मुझे शक है कि तुम अपने को दवा रहे हो. शक्ति वाहर जाकर काम कर रहे हो. यह अच्छा नहि लगता है. तुमारा दिल मेरे पास पाता हू. तुमारा दिमाग लड़ाई कर रहा है. मेरी बुद्धिमत्ता के वारे में तुमको शक है. मेरे साथियों की ओर तुम शक की नजर से देख रहे हो, ऐसी हालत में मैं तुमको कैसे शाति दे सकता हूं. मै यह भी महसूस करता हूं कि द्रौपदी का वियोग तुम्हारे लिए दु:खद है. अगर तुमारे खुर्जा जाने की कोई जरूरत है तो अवश्य जाओ. नरहरि भाई से पैसे लेना, अगर नही जाना हो तो वही रहो सुरेंद्र की प्रतीक्षा करो उसको मिलने के वाद आ जाओ. किसी हालत में शांत रहो. मुझे दूसरा खत लिखो. यहां सोमवार तक तो हूं.

वापु के
२४।१०।३४ मुवई आशीर्वाद

—हिन्दी। बम्बई, २४।१०।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा।

---

१. वड़े भाई।

३५८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव (वर्धा)
२५-१०-३४

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैं अमरीकी चीज को देख गया हूं। यह बहुत व्यय-साध्य है। दूसरी बातों में भी, यह मुझे आकर्षित नहीं करती। मुझे आशा है कि तुम्हें इन्दु के बारे में खुशखबरी मिली होगी।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २५।१०।१९३४। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३५९. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

तुमारा खत मिला. सुरेन्द्र का भी पढ़ा. तुमारे यहां आना है बाद में देखा जाय क्या करना उचित है. तुमारे बाहर रहने से तो लोग निर्भय नही होंगे. निर्भय बनाने के लिए भी तुमारे यहां आना है. विनोबा तो तुमारे आने से बिलकुल राजी है. बाबा जी[1] के मीजबान बनो तो वह भी प्रसन्न रहेगे. और मैं तो हूं ही, मै जब बरदाश्त न करूं तब देखा जायगा. एक वर्ष की मर्यादा तो तुम्हारे लिए रखी है. भले (ही) अमर्यादित कैद में रहो. द्रौपदी के पास रहना, कुटुंब-सेवा में ग्रस्त होना यह सब तो सोचने की बात है. हमारे बीच में इतना समझौता है न कि तुम कोई भी चीज जबरदस्ती से नही करोगे. शक्ति के बाहर जाकर भी नही करोगे. इतना अभयदान मुझे चाहिये. दूसरा मै देख लूंगा. योगानंद[2] को भूल जाओ. बाहर क्या बातें कर रहा है सो तो वही जाने यहा उसका कोई असर नहीं

---

१. आश्रम के मैनेजर श्री मोघे जी बाबा जी के नाम से पुकारे जाते थे।
२. खुर्जे का एक स्वामी, जिसे आश्रम में बापू के सामने शर्मा जी के विषय में कुछ कहलाने के लिए वहां के अधिकारियों ने बुलाया था।

है। मेरे पर तो उसने कोई असर ही नही डाला जिससे मेरे दिल में तुमारे बारे में किसी प्रकार का संशय हो. मैंने जो निदान किया है उसी पर मैं कायम हूं. वहम, अभिमान और परदोषदर्शन. वहम का औषध काल ही है अभिमान का औषध शून्यवत् बनना है, परदोषदर्शन का औषध स्वदोषदर्शन है. हम अपने को सबसे बुरा मानें तो किसी का दोष नही देखेंगे और दोष मात्र रोग का रूप लेगा. बातें करने का थोड़ा-थोडा समय तो मै दूंगा लेकिन बात से हमारा काम नही बनेगा. तुमारे लिए मेरे पास मजदूरी का बहुत काम पडा है और इसी के साथ मैं थोड़ा और भी काम ले लूंगा.

आज तार दिया है आ जाने का।

२।११।३४ वर्धा बापु के आशीर्वाद

——हिन्दी। वर्धा, २।११।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा।

३६०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
२२ नवम्बर, १९३४

प्रिय जवाहरलाल,

कुछ दिन हुए, मैंने तुम्हे पत्र भेजा था, जिसमें केवल तुम्हारे स्वास्थ्य के समाचार पूछे थे। माता जी कल यहा आई थी। कहती थी कि तुम्हें कमला के लिफाफे में भेजे हुए पत्रों के सिवा और पत्र नही मिलते। मैं जानना चाहता हूं कि तुम्हारे पत्र-व्यवहार के लिए क्या नियम है? लिखो, तुम्हारे क्या हाल-चाल है और तुम अपना समय किस तरह बिता रहे हो।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, २२।११।१९३४। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

३६१. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

तुमारा पत्र कल मिला. सम्भव है उससे सामान का पता मिल जाय.

उसमें तुमने जो लिखा है वह शोध करने के लिए काफ़ी है. तुमको यहां इस काम के लिए कैसे बुलाऊं तुम्हारे वहां जाने का एक बड़ा सबब द्रौपदी और बच्चों के पास रह कर उनकी सेवा करना है. यही तुमारी शिक्षा का आरम्भ है इसी से नेचरोपेथी शुरू होती है फिर तुम लिखते हो डा० अनसारी क़बूल करे तो उनके घर के एक कमरे में रहोगे. यह भी द्रौपदी को छोड़कर कृष्णा को हाड़ पिंजर की हालत में रखे हुए? नही, तुमारी शिक्षा, तुम्हारा कर्त्तव्य, आज तो द्रौपदी और बच्चों के पास रहते हुए जो कुछ हो सकता है सो करने का है.

द्रौपदी और बच्चों को लेकर खुर्जे के नजदीक के गाव में कहीं रहो. ऐसा न हो तो और किसी देहात में. दिल्ली के नजदीक नरेला है वहां कृष्णन नेयर रहता है सज्जन है उसके पास भी रह सकते हो. मतलब वह जगह बतायेगा अथवा अपने साथ रखेगा. खुर्जे में भाइयों के साथ तो रहने का नहीं है. जो भाई खर्च देते हैं वह तो जहां होगे वहां खर्च देता ही रहेगा. बताओ उनकी आमद कितनी है?

अमतुल की इच्छा तुम्हारे साथ रहकर कुछ करने की है. यदि किसी देहात में रह सकते हो तो यह इच्छा भी फलित हो सकती है. वह द्रौपदी और बच्चों की सेवा करना चाहती है लेकिन इस बात का तुमारे देहात में जाकर रहने से कोई सम्बन्ध नही है

ऐसा तो मुझे नही कहोगे कि ऐनेटमी के पुस्तक नही मिले है इस कारण तुमारा अभ्यास रुक गया है. पुस्तक कभी भी मिले तुमारा अभ्यास तो व्यवस्थित जीवन व्यतीत करने से हो ही रहा है. वहम मात्र निकालने से भी होता है. देखो ज्ञानोबा को मेरे पास नही लाने में मेरी रक्षा ही कारण था. अगर लोई मिल जाय तो मुझे उसे (ज्ञानोबा) मिलने का कोई कारण नही था. किशोरीलाल (मशरूवाले) को मैने ही नीचे भेजे थे. ऐसे ही कमल नयन और मोघे जी की बात है जब बातें हुईं तब अमतुल वहां खड़ी थी. उसने सब बातें सुनीं. वह कहती है कि कमलनयन और मोघे जी सिर्फ मजाक करते थे. उसमें तुमारे जाने में खुशी की कोई बात नही थी. सम्भव है तुमारे जाने का उनको न रंज था न खुशी। नेचरोपैथ बनना चाहता है वह आदमी किसी पर वहम नही करेगा. जल्दबाजी नही करेगा, किसी के दोष का ध्यान नही धरेगा.

तुलसीदास के इस दोहे का नित्य मनन करेगा

जड चेतन गुण दोपमय विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गर्हाहि पय परिहरि वारि विकार॥

तब तो दूसरों की दवाई करेगा, दूसरों के रोग का निदान सच्चा करेगा. रामदास यदि आयेगा तो मेरे साथ ही चलेगा. देखता हूं क्या होता है.

आजकल समय कैसे व्यतीत करते हो? क्या पढ़ते हो? तुमारे पास किताब तो काफी है ही.

दिल्ली[1] से मनाई हुक्म तो आया है. अब पत्र व्यवहार चल रहा है. देखें क्या होता है.

बापु के
४।१२।३४ वर्धा आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, ४।१२।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा।

३६२. पत्र : साहेबजी महाराज को

प्रिय साहेबजी महाराज,

मैंने आपका ६ सितम्बर का पहलेवाला पत्र अपने पास रख छोड़ा है। मैं मैं अपकी 'गौवे, गौवों की मदद करो' (पुस्तिका) सिर्फ़ पिछले हफ्ते ही पढ सका हूं। वह बड़े सुन्दर ढंग से लिखी गई है। किन्तु मैं गौ के एक विनम्र प्रतिनिधि के रूप में शिकायत करना चाहता हूं। कुछ विशेषज्ञ उस मिश्रण के बारे में जैसा आप सोचते है, मुझसे कह रहे हैं कि वह पूर्णातः सफल नहीं होता। मैं तो समझता हूं कि ऐसे प्रयोगों की आवश्यकता है जिनसे ग्रामवासियों को उन्ही के अपने गांवों में मदद मिले। अगर हम उस दिशा में कोई चीज नहीं प्राप्त कर सकते तो फिर दयालबाग-जैसे ग्राम से दूर स्थानो की अल्प संख्या को जीवित रखने के लिए गौवों को मरना होगा।

मैं ग्रामोद्योग कार्य में आपकी मदद चाहूंगा।

आपका निश्छल
वर्धा १५।१२।३४ मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। वर्धा, १५।१२।१९३४। साहेबजी महाराज, आगरा को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० २१६) से।]

३६३. पत्र : साहेबजी महाराज को

प्रिय साहेब जी महाराज,

स्टेनलेस फौलादी निबों के साथ आपका तुरन्त भेजा हुआ पूरा उत्तर कल प्राप्त हुआ। (ये निबें) मुझे आनन्द और गौरव प्रदान करती है। मै उनका

१. दिल्ली से वाइसराय और बापू की मुलाकात के सिलसिले में पत्र-व्यवहार चल रहा था उसके लिए वाइसराय की ओर से मनाही हो गई थी।

प्रयोग करूंगा। किन्तु इस समय तो मेरी आत्मा गांवों में बस रही है। जिस कागज पर मै लिख रहा हूं वह गांव का बना है और जिस नरकुल से मेरी कलम बनाई गई है, वह गांव में पैदा होती है और बहुतेरे नियमों की भांति, आर्थिक नियम (कानून) भी दो तरह के होते है—भले और बुरे। अच्छे कानून सबके लिए अच्छे होने चाहिए। इस समय तो आदमी भी, गौवों की भांति ही, धरती पर भार से मालूम होते है। क्या बहुसंख्या को इसलिए मरने की जरूरत है कि कुछ नगर-वासी जीवित रहें? मेरा विनम्र प्रयास यह दिखाने का है कि गांववालों को मरने की जरूरत नही है और उनमें जीवित रहने की अन्तर्हित क्षमता है, यदि वे सिर्फ अपना आलस्य छोड़ दें और संघटित रूप से जीने की चेष्टा करें। नगर-वासियों में ऐसी अन्तर्हित शक्ति नहीं है। इसलिए वे तो चंगेज की तरह सिर्फ मृत मानवों की ढेरियां ही पैदा कर सकते हैं।

आप मुझे कृपया तर्क करने के लिए क्षमा करेंगे। मैं ऐसा इसलिए करता हूं कि मै सर्वांगीण सुख के सामान्य लक्ष को पाने के अपने साधन में यदि कोई त्रुटि हो तो उसे जानना चाहता हूं।

आपका निश्छल
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। वर्धा, २५।१२।१९३४। साहेबजी श्री आनन्दस्वरूप महाराज, दयालबाग, आगरा को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० २१६०) से।]

३६४. पत्र : चन्द्र त्यागी को

भाई चन्द्र त्यागी,

तुमारा खत पाकर बहुत खुशी हासिल हुई.

यदि संभव है तो राजकिशोरी को लेकर यहां मिल जाओ. देखने के बाद कह सकूंगा क्या उचित है. शरीर अच्छा होगा. बलबीर संतोष दे रहा है, सुनकर आनंद होता है.

बापु के
आशीर्वाद

दिल्ली ६-१-३५

—हिन्दी। दिल्ली, ६।१।१९३५। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ६६३० तथा सी० डब्ल्यू० ४२७८) से।]

३६५. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

तुमारा खत मिला. मुझे वहुत ही अच्छा लगा है. अविश्वास आया था क्योंकि अमतुल ने वहुत सख्त लिखा था. मुझको साथ देना कोई मामूली चीज नहिं है. सब चीजो को, मोहमात्र को छोड़ देना और छोड़ने में खुशी मानना सबसे नही हो सकता. तुमने वाज चीज तो वहुत छोड़ दी है लेकिन भीतरी ज्ञान नहिं होगा तो भीतरी आनंद कैसे? और जिसको भीतरी आनंद नही मिलता है वह गुस्से भी होता है और वीमार भी होता है और सव कुछ कर वैठता है.

अव मैं तुम जितना लिखोगे वह सव सत्य में ऐसा ही है ऐसा मान कर चलूंगा. इसमे कठिनाई है. यह भी समझो और कठिनाई का कारण तुमारे में जल्दीपन है क्रोध भी है और क्रोध के मारे जल्दी में कुछ लिख दिया उसे ऐसा ही मानकर मैं बैठ जाऊं तो उचित नहिं होगा. लेकिन तुमारे साथ चलने मे और कोई चारा पाता नहिं हूं. गाय रखना तो मुझे अच्छा लगता है. इतना याद रखो कर्जा विलकुल न करना. हरिजन का सम्पर्क होता है वह भी वहुत अच्छा है।

तुमारी डाक्टरी पढाई के वारे मे नित्य खयाल आता है. डा० अंसारी को लिखा है. उत्तर का ठिकाना नही उसकी शिकायत भी क्या करे? शक्ति से ज्यादा काम ले लेता है.

मैं नही जानता किस चीज में वहतरी है. मद्रास का क्या कोर्स है मुझे पता नही है लेकिन मैं पता निकाल सकता हूं. कोई सर्जन के यहां रहना नहिं हो सकेगा. अगर मद्रास जाना हुआ तो अकेले जाओगे? द्रौपदी का खुर्जे में अकेले रहना मेरे लिए असह्य हो जायगा. मेरे साथ रहे, मेरा काम करे, वा के स्वभाव को वर्दाश्त करे तो मुझे सवसे अच्छा लगेगा और जब वह इस तरह से रहने के लिए तैयार हो जायगी तब तुमारा काम और मेरा भी सरल हो जायगा. तुमारे वारे में मैंने वहुत आशायें वांध रखी है. तुमारे सव दोष निकल जाने से तुमारे पास से वहुत ही काम मैं ले सकता हूं ऐसा प्रतीत होता है. आखिर अगर तुमारा विलायत जाने का होगा तो भी साथ में द्रौपदी और वच्चों को ले जाने में मैं कभी तैयार नही हूगा क्योंकि उसको मै अनावश्यक मानता हूं. तुमको भेजने के लिए कुछ तैयारी है वह पश्चिम के वारे में तुमारा मोह उतारने के लिए है. सच्ची नैसर्गिक चिकित्सा देहात मे ही है. पश्चिम का जो ज्ञान है उसमे से जो लेना वह उनकी कितावों से ले लें. वाकी सव देहात में से ही मिलने वाला है. और अन्त में हम जो सेवा करना चाहते है वह भी देहातियो की ही है न? यह सव सोचो

और बाद में लिखो तुमारी दृष्टि से क्या किया जाय? द्रौपदी मेरे साथ रह सकती है?

तुमारा टाइम टेबिल अच्छी है. कौन सी किताब पढ़ते हैं? बालकों को क्या पढ़ाते (हो)?

आटा घर पर पीसा जाता है? चावल बगैर पोलिश के है? बगैर पोलिश के चावल बाजार में आते ही नहि यह पता मुझे अब लगा. बगैर पोलिश के चावल निकालना बहुत आसान है ऐसा सुना है. मैंने पेड़ी पैदा कर ली है और उसको पीस कर छिलका निकालने की कोशिश यही करुंगा.

पं० कौन है जो सिखाता है मैं नही जानता, ऊपर के हरुफ पढ़ सकते हो या नहीं. मैं दाहिने हाथ से सिर्फ़ सोमवार को लिखता हूं. उसे थोड़ा आराम पहुंचे।

बापु के
१३।२।३५ वर्धा आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, १३।२।१९३५। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य: श्री हीरालाल शर्मा

३६६. पत्र : रमेशचन्द्र को

भाई रमेशचंद्र जी,

आपका पत्र उचित है। निर्णय करने का मार्ग हिंदु, मुसलमानादि भेद नहीं है। ऐसे बहूत मुसलमान को जानता हूं जो स्वच्छता का पालन भलीभांति करते है। चंद निरा (मिष) भोगी भी होते है। इसलिये जिस जगह पर स्वच्छता के नियमों का पालन होता है वही खाना, पीना की मर्यादा रखें तो सब कुछ हो जाता है। मुझे तो ऐनोक्युलेशन मात्र अप्रिय है। लेकिन खुन इत्यादि के सर्वथा त्याज्य है। वनस्पति अथवा खनिज पदार्थ के इस तरह त्याज्य नही है।

मो० क० गांधी

१६।२।३५ वर्धा

[टिप्पणी—यह पत्र लिखा किसी और के हाथ का है। केवल हस्ताक्षर गांधी जी ने किये है।—सम्पा०]

—हिन्दी। १६।२।१९३५। श्री रमेशचन्द्र, रिटायर्ड चीफ़ इंजीनियर, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद से प्राप्त पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ६०९३) से।

३६७. पत्र : सुरेश सिंह को

[यह पत्र गांधीजी ने कालाकांकर, अवध के राजा अवधेश सिंह जी की मृत्यु के ५-६ महीने बाद उनके छोटे भाई सुरेश सिंहजी को लिखा था।—सम्पा०]

तुम्हारा खत मिला है. जितना हो सके इतना किया जाय. कोर्ट आफ वार्डस तरफ से नियामक कौन है? जितनी सादगी ग्रहण कर सकते हैं इतनी सादगी रखकर जीवन व्यतीत किया जाय. मुझे लिखा करो. देहातियों की जो कुछ सेवा हो सकती है वह की जाय.

बापु के आशीर्वाद

वर्धा १६।२।३५

—हिन्दी। वर्धा, १६।२।१९३५।]

सौजन्य : श्री सुरेश सिंह, कालाकांकर (अवध)

३६८. पत्र : चन्द्र त्यागी को

भाई चन्द्र त्यागी,

मुझे तो तुम्हारा काम का ब्यान चाहिये। राजकिशोरी को मैंने रख लिया क्योंकि दोनों अपने विवाह के बारे में तटस्थ थे। किसी को एक दूसरे के साथ रहने की लालसा ही न थी। भाई को कुछ परवाह न थी। मैने कड़ी शर्त रखी उसका सबने खुशी से स्वीकार कर लिया। तुम्हारे सर पै उसका बोझ रखना और तुमसे काम भी लेना गैरमुनासब जंचा। यह सबब था राजकिशोरी को रख लेने का। उसका काम अच्छी तरह से चल रहा है। कुछ जानती नही है लेकिन सरल लड़की है। शरीर अच्छा रहता है।

बापु के आशीर्वाद

वर्धा ता० ८-३-३५

(टिप्पणी—यह पत्र भी लिखा किसी और के हाथ का है। हस्ताक्षर गांधी-जी के हैं।—सम्पा०]

— हिन्दी। वर्धा, ८।३।१९३५। जी० एन० ३२६२ की फोटो-नकल से]

३६९. पत्र : भगवानदीन मिश्र को

भाई भगवानदिन,

भाई अवधेश पर आया हुआ तुमारा पत्र मैने पढ़ा है. अवधेश के जैसी गलती

बहूत युवक करते हैं. अवधेश ने गलती महसूस की है. प्रायश्चित्त भी कर लिया है इससे अबी उस बारे में कोई कलंक न माना जाय. हरिजन में भी मैं ऐसे लिखूंगा.

मो० क० गांधी

वर्धा, ३०।३।३५

—हिन्दी। वर्धा, ३०।३।१९३५। श्री भगवानदीन मिश्र, बहराइच को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ७३६) से]

३७०. पत्र : अवधेशदत्त को

अच्छी बात है. मेरे निकट ही रहोगे जैसे कि आज है. तुमको कातना इ० नहिं आता होगा तो सिखा दूंगा. दूसरा देख लूंगा. जहां तक रहोगे रु० २५ माहवार दिया जायगा. खाने का खर्च उसमें से कट जायगा. खाने के खर्च का हिसाब करा रहा हुं. दिल में कुछ भावना पैदा हो तो मुझे वताते रहो.

वापु के आशीर्वाद

३१।३।३५

अखबार में भेज रहा हूं.

—हिन्दी। वर्धा, ३१।३।१९३५। जी० एन० ३२१९ की फोटो-नकल से]

३७१. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई बनारसी दास,

तुमारा खत मिला. कुछ आघात नही पहोंचा है. अंत में तो मनुष्य जो कर सकता है वही करे. मेरी सलाह है कि प्रथम तो तुमारे शादी कर लेना. हिंदी प्रचार का काम करना. इसमें तीन अर्थ सिद्ध होते है. विशाल भारत हिंदी प्रचार और लेखन प्रवृत्ति.

वापु के आशीर्वाद

वर्धा, ११।४।३५

—हिन्दी। वर्धा, ११।४।१९३५। जी० एन० २५५५ की फोटो-नकल से]

३७२. पत्र : अवधेशदत्त[1] को

चि० अवधेश,

तुमारा खत अच्छा है. ठीक बात है. तुमारा तनख्वा नहि मानेंगे लेकिन जब तुमारे जाने का होगा तब किराया दे दूंगा. तुमारा क्रोध निकाल दो. नम्र बन जाओ. यहां कोइ न ऊंच है न नीच है सब एक सा है. कोई सरदार नही है कोई नौकर नही है. हम सब सेवक हैं. किसी मजदूरी की हमें शर्म नही है.

बापु के आशीर्वाद

१२।४।३५

—हिन्दी। वर्धा, १२।४।१९३५। जी० एन० ३२१० की फोटो-नकल से)

३७३. पत्र : अवधेशदत्त को

चि० अवधेश,

इसमें कुछ नही था. अवश्य दिल में जो ख्याल आवे उसे लिखा करो. रामायण का तुम्हारा ज्ञान कैसा है?

२४।४।३५ बापु

—हिन्दी। वर्धा, २४।४।१९३५। जी० एन० ३२११ की फोटो-नकल से]

३७४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

महादेव ने अपनी सीमाप्रान्त-यात्रा के विषय में जो टिप्पणियां लिखी हैं उनकी एक प्रति यह रही। चूंकि मैं नही जा सका और चूंकि हमें अशान्तिकर समाचार मिल रहे थे, मैंने महसूस किया कि उसे भेजा जाना चाहिए। मैं ये टिप्पणियां सब सदस्यों में नही घुमा रहा हूं। मैं (इसकी) प्रतिलिपियां

---

१. अवधेशदत्त युवक थे और बहराइच, उत्तर प्रदेश के एक गांव के निवासी थे। उन दिनों वर्धा में गांधीजी के पास आकर रहे थे।

मौलाना[1] और सुभाष[2] को भेज रहा हूं। ये टिप्पणियां उद्विग्न कर देती हैं। महादेव के पास तो कहने के लिए और बातें भी हैं। बेशक, मैं एक प्रतिलिपि (अली) भाइयों को भेज रहा हूं। मुझे आशा है कि तुम (अली) भाइयों पर अपने महत प्रभाव का उपयोग करने को प्रेरित होगे। निस्सन्देह मै भी तार-द्वारा सम्बन्ध रख रहा हूं। यदि खां साहब[3] चाहेंगे तो जो आघात मुझे लगा हैं उसके वावजूद मै चन्द दिनों के लिए प्रान्त में जा भी सकता हूं। ऐसा लगता है कि हम अन्दर से दुर्बल होते जा रहे है। जब मै देखता हूं कि अपने इतिहास के इस खतरनाक समय में महत्वपूर्ण प्रश्नों पर हम लोग एक दूसरे से सहमत नही हैं मुझे चोट लगती है। यह जानते हुए कि आजकल मैं तुम्हें अपने साथ नही ले जा पाता (सहमत नही कर पाता) मैं अपने को कितना अकेला अनुभव करता हूं, यह मैं तुम्हें बता नही सकता। मै यह जानता हूं कि तुम स्नेह की खातिर बहुत कुछ करोगे, किन्तु राज्य के बारे में जब बुद्धि विद्रोह करती है तब, स्नेह को आत्मार्पण नही किया जा सकता। तुम्हारे विद्रोह के कारण तुम्हारे प्रति मेरा आदरभाव और गहरा हो गया है। किन्तु इससे इकलेपन का दुःख और बढ़ जाता है। पर अब मुझे खतम करना चाहिए।

प्रेम

सेगांव, २५-४-३५ बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (सेवाग्राम) वर्धा, २५।४।१९३५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

३७५. पत्र : अयोध्याप्रसाद को

भाई अजोध्याप्रसाद,

अवधेश पर तुमारा पत्र है. सो मैंने सुना. यदि उसको मेरे पास ही रखना

---

१. मौलाना अबुल कलाम आजाद।

२. सुभाषचन्द्र बोस।

३. खां साहब, अब्दुल गफ़्फ़ार खां के बड़े भाई, सीमाप्रान्त के मुख्य मन्त्री।

है तो थोड़ दिनों के लिये अपने पास बुलाने का मोह छोड़ दिया जाय. ऐसा करने से कार्य में बाधा आती है और पैसे बरबाद होते हैं.

मो० क० गांधी

६।५।३५ वर्धा के व० मातरम

—हिन्दी। वर्धा, ६।५।१९३५। जी० एन० ३२१६ की फोटो-नकल से]

३७६. पत्र : अवधेशदत्त को

चि० अवधेश,

तुलसीदास ने ही कहा है ना कि राम से नाम बड़ा है अर्थात् देहधारी राम से देहातीत अरूपी अनामी राम बड़ा है. दशरथनंदन सीतापति राम सही तदपि हमारी कल्पना के पूर्ण पुरुषोत्तम राम क्योंकि अव्यक्त भी व्यक्त से भिन्न नही है. अव्यक्त की ही यह सब माया है. राम शब्द पर मेरा कोई आग्रह नही. भले ओंकार, कृष्ण इ० भी क्यों न हो.

क्रोध तो आता है. उस पर क्रोध करता हूं. पूर्ण विजय आत्मदर्शन से ही संभव है।

हमको कोई कैसा भी नीच माने उनपर भी प्रेम करें वही अहिंसा बाकी सब माया.

७-५-३५ बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, ७।५।१९३५। जी० एन० ३२१२ की फोटो-नकल से]

३७७. पत्र : ठाकुरप्रसाद[1] शर्मा को

भाई ठाकुरप्रसाद शर्मा,

दोष छुपाकर हम इत्तेफाक नही पढ़ा सकते हैं. यदि दोनों पक्ष मिलकर पंच

---

१. श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा हिन्दी के सुलेखक और बनारस म्युनिस्पल बोर्ड के भूतपूर्व एक्जिक्यूटिव अफसर।

नियत करें तो अदालत छोडे. यदि ऐसे नहीं हो सकता है तो अदालती न्याय लेने की कोशीश करने में कोई दोप नही पाता. ऐसे कामों में कोई निश्चित सिद्धांत नही हो सकता है. प्रत्येक केस का निर्णय उसके गुणदोष पर निर्भर रहता है.

वर्धा मो० क० गांधी

१३-५-३५

—हिन्दी। वर्धा, १३।५।१९३५। श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा, काशी को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० १५६) से]

३७८. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

भाई हनुमान प्रसाद,

मैने अखवार में ही देखा था कि...[1] कृष्णकांत के सामने खड़ी होगी. मुझे किसी ने पूछा भी नही था. इलेक्शन के मामले में मैं पड़ता ही हूं थोड़ा, और कांग्रेस छोड़ने के बाद तो खतम हो गया.

मालवीय जी महाराज ने वड़ी उदारता से और दूरंदेशी से कार्य कर लिया.

पंजाब की बात तो मेरे पास भी बहुत आई है. जैसे पजाब में ऐंसे अन्य प्रान्तों में भी है. न्यूनाधिकता की ही वात है।

उसका औषध हमारी लेखनी नही है. हमारे आचार ही है. यदि हम थोड़े भी सही इस कुत्सित वायु में सन्तुलित रहेंगे तो सब कुशल ही होगा. मै असावधान नही हूं, प्रयत्नशील भी हूं.

कुछ मतभेद होते हुए भी तुमारे प्रेम में कुछ भी न्यूनता नही आ सकती है, यह मैं जानता हूं. यही हाल कई मित्रों के है. यह ज्ञान मुझे नम्र बनाता है.

वापु के

वर्धा १४।५।३५ आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, १४।५।१९३५। गांधी जी के स्वाक्षरों में लिखी हुई मूल प्रति से।]

सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार।

---

१. यहां शब्द स्पष्ट नहीं हैं, किसी का नाम जान पड़ता है... प्रभाजी या ऐसा ही कुछ।

३७९. पत्र : अवधेशदत्त को

चि० अवधेश,

अपना देश सब नैतिक बात मे सर्वोत्क्रष्ट बने और रहे. मनष्य का स्वाभिमान है कि वह आत्मोन्नति करे और करने में मत्यु से भी न डरे.

स्वाभिमान और गौरव की रक्षा के लिये अथवा कुचेष्टा दूर करने के लिये क्रोध क्यों चाहीये. मुझे कोई कहता है नाक घसीटो. मैं क्रोध न करूं लेकिन नाक न रगड़ु. इसके लिये जो दण्ड मिले उसे प्रसन्नता से सहन करूं.

धर्म उसे कहते है जो आत्मा को ऊंचे ले जाता है. ईश्वर सत्य का नाम है. सत्य रूप है ऐसी कल्पना करे.

वर्धा
१५।५।३५

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, १५।५।१९३५। जी० एन० ३२१७ की फोटो-नकल से]

३८०. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

भाई हनुमान प्रसाद,

तुमारा खत मिला. तुमारे विचारों को पढ़कर मेरे को बड़ी खुशी होती है और संतोप भी। कभी कभी ऐसा दिल भी करता है कि तुम जैसा आदमी मेरे साथ रहता. भाई जमनालाल जी भी ऐसा ही चाहते हैं. पर जहां पर भी तुम रहो मन साथ है तो साथ ही हो. तुम कल्याण और गीताप्रेस से जो काम कर रहे हो वह ईश्वर की बड़ी सेवा है. तुमारी सेवा मे मै भी अपना हिस्सा मानता हूं. क्योंकि तुम मुजको अपना समजते हो, वैसा ही मै भी समजता हूं.

कल्याण में जो तस्वीर छपती है उससे मुजको संतोष नही है. इतने दागीने[1] और शृंगार ईश्वर को क्यों. मैं राघवदास को भी इस बाबत लिखा था.

वर्धा १६।५।३५

बापु के आ०

—हिन्दी। वर्धा, १६।५।१९३५। गांधी जी के मूल पत्र से।]
सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार।

---

१. आभूषण।

३८१. पत्र : शालिग्राम वर्मा को

भाई शालिग्राम वर्मा,

मैंने जो कुछ कहा वह निर्दोष भाव से था. जो दलील पेश की गई थी उसे सुनकर मेरे पर जो असर हुआ मैंने कह दिया. उसमें किसी पर आक्षेप तो हो ही नही सकता था. मैंने राय ली उस बारे में मै कह चुका था की वह 'इन-फोर्मल' थी. मैं तो वाद में समझ भी गया था कि प्रकाशकों को मंत्री पद से मुक्त ही रखना योग्य नही होगा. आपको संवंध छोड़ने का कोई कारण नहीं है. मेरी आशा है कि आप इस्तीफा भेजने का इरादा छोड देंगे.

आपका
मो० क० गांधी

१९।५।३५ वर्धा

—हिन्दी। वर्धा, १९।५।१९३५। श्री शालिग्राम वर्मा, मन्त्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ८२१९) से]

३८२. पत्र : राजकिशोरी को

चि० राजकिशोरी,

तुमको मैं साथ नही ले चला उसका मुझको दुःख था. लेकिन तुमारा कल्याण तुमको वही रखने में था. लेकिन कोई अवसर आवेगा जव मेरे साथ ही चलेगी. खुश होगी.

वापु के
आशीर्वाद

बोरसद २३।५।३५

—हिन्दी। बोरसद, २३।५।१९३५। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ६६३६) से]

३८३. पत्र : अवधेशदत्त को

चि० अवधेश,

मनुष्य जीवन का उद्देश्य प्राणीमात्र की सेवा माना जाय.

२. एकादश व्रत का पालन और उसके विरोधी वस्तु का त्याग आवश्यक है.

३. गरुड़ के वचन में क्रोध अवश्य था. उसका अर्थ यह कभी नहीं है कि हम भी क्रोध करें.

२४।५।३५　　　　　　　　　　　　　　　　बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, २४।५।१९३५। जी० एन० ३२१५ की फोटो-नकल से]

३८४. पत्र : अवधेशदत्त को

चि० अवधेश,

माता पिता पत्नी आदि के प्रति जो धर्म है उसका त्याग करके समाज सेवा कभी हो नहीं सकती है। वह धर्म सेवाधर्म का विरोधी नहीं है। माता पिता आदि (के) प्रति क्या धर्म है, उसकी क्या मर्यादा है, यह जानना आवश्यक है। पत्नी का पालन करना और जहां तक वह सहधर्मिणी रह सकती है, वहां तक संयम में रहकर उसको साथ देना पति का धर्म है। माता पिता अपंग है और धनहीन हैं, उनके और कोई पुत्र नहीं है, इस हालत में उनका पोषण और उनकी सेवा करने का धर्म प्राप्त होता है।

बकरी का दूध लेता हूं क्योंकि लाचार बन गया था। व्रत के कारण गाय भैंस का तो ले ही सकता न था। व्रत का संकुचित अर्थ करके बकरी का दूध लेने की छूट ले ली।

यदि अंगार से पका कर कुछ न लेना है तो फलाहार से ही निपटारा हो सकता है।

　　　　　　　　　　　　　　　　बापु के
वर्धा २३।६।३५　　　　　　　　　　　आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, २३।६।१९३५। जी० एन० ३२१३ की फोटो-नकल से]

३८५. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

भाई हनुमान प्रसाद

हिन्दी साहित्य सम्मेलन (की?)[1] परीक्षा के लिये जो मुझे लिखा है सो

---

१. यहां कागज फटा हुआ है।

समिति को लिखा जाय तो अच्छा होगा। काका साहव को आज प्रयाग भेज रहा हूं। तुम्हारे पत्र का वे उपयोग करेंगे। मैंने सोचा कि तुम्हारे जैसे सज्जन समिति में सदस्य होंगे और उसको पत्र द्वारा भी मदद देते रहेंगे तो भी अच्छा होगा। कितना भी काम है, कोई कोई समय तो हाजरी भरना भी संभव होना चाहिये। हिन्दी भाषा की उन्नति हिन्दी साहित्य की शंसुद्धि (संशुद्धि?) तुम्हारा विषय भी तो है...[1]और जो काम के लिए मेरे लिखने का एक अर्थ था उसका उल्टा राघवदासजी ने वना लिया। कुछ भी लिखने की इच्छा नहीं होती है। लेकिन तुमको मैं क्या कहूं? यह मेरा एक वाक्य लेख—योगों के (का) सम्राट निष्काम कर्मयोग है।

हरिजन पानी फंड के पैसे दिल्ही ही भेज दीजिये।

मगनवाड़ी, वर्धा — वापु के आशीर्वाद

ता० १२।७।३५

—हिन्दी। वर्धा, १२।७।१९३५। गांधी जी के मूल पत्र से।]

सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार।

३८६. पत्र : गोविन्दलाल शाह को

भाई गोविदलाल जी,

तुम्हारा खत वहुत दिनों के वाद आया। जव म्युनिसिपालीटी से वादा कर लिया है तो कुछ कहने को ही नही है। यों भी हरिजन सेवक संघ इस जमीन व मकान का कवजा नहीं ले सकते है। म्युनिसिपालीटी को देना ही वेहतर है।[2]

तुम सवका स्वास्थ्य वेहतर है।

३०।७।३५ वर्धा — बापू के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, ३०।७।१९३५]।

सौजन्य : श्री राजीवलोचन शाह

नैनीताल।

---

१. यहां पत्र फटा है।

२. गोविन्दलाल जी ने ताकुला (नैनीताल) में स्थित अपनी जमीन दान करने के विषय में गांधी जी की सलाह मांगी थी।

३८७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मुंबई जाते हुए
१०-८-३५

चि० जवाहरलाल,

तुम्हारा खत मिला है. चर्खा संघ की काश्मीर शाखा की थोड़ी वात तो मैं जानता हूं. दवाखाना क्यों वंद हुआ, मैं नही जानता हूं. तुमने मुझको लिखा सो तो अच्छा हुआ. मैने खत की नकल जाजू[1] को भेज दी है. मैं तो मुंवई जा रहा हूं. वहां से सरदार को लेकर पूना जाउंगा. वहां कितना रहना होगा मुझे पता नहीं है. जाजू जी का जवाव आने पर फिर लिखुंगा.

तुमको काश्मीर की मुसाफिरी से फायदा होना ही था.

मोलाना साहव पर क्या हमला हूआ था ?

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। १०।८।१९३५। गांधी जी के स्वाक्षरों में लिखे पत्र की प्रतिलिपि। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३८८. पत्र : अवधेशदत्त को

चि० अवधेश,

जो धर्म तुमारे सामने तात्कालिक पैदा हो उसका पालन करने से सव अच्छा ही होगा.

जो सदस्य अपनी संस्था के नियमों को जानवूझकर भंग करते हैं उनको उस स्थान में रहने का कोई अधिकार नही है.

वर्धा, २६-८-३५ वापु के आशीर्वाद

श्री अवधेशदत्त अवस्थी,
गांव रमपुरवा, पो० वड़वापुर
(जिला वहराइच)

—हिन्दी। वर्धा, २६।८।१९३५। जी० एन० ३२१८ की फोटो-नकल से]

---

१. श्रीकृष्णदास जाजू, चर्खा संघ के प्रमुख।

३८९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा तार मिलने पर मुझे जो आराम मिला, उसकी तुम कल्पना कर सकते हो। सदा की तरह महादेव इसे अपने साथ ले जा रहा है। काश मैं खुद आया होता किन्तु मुझे नही आना चाहिए। सामान्य दिलचस्पी की सब बातों पर तुम मुझे साफ-साफ़ अपनी राय देना। यदि कोई अलंघ्य अवरोध न हो तो अगले वर्ष तुम्हें कांग्रेस-जलयान को अपने हाथ में लेना चाहिए। वहां पहुंचने पर तुम कमला की दशा का तार मुझे दोगे। तुम्हारी रिहाई की खबर से ही उसे काफ़ी आराम पहुंचा होगा।

मुझे आशा है, तुम अच्छे होगे।

प्रेम

वर्धा ४-६-३५ बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, ४।९।१९३५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३९०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

कैसा अच्छा हुआ, तुम कमला के पास पहुंच गये। उसके लिए यही सर्वोत्तम 'टानिक' (बल्य औषधि) है। इसके साथ मैं उसके लिए (भी) एक रुक्का रक्खूंगा। तुम्हारे संदेश यहां बाकायदा पहुंच रहे है। जो कुछ सरूप के पास आता है वह उसे दोहरा देती है। हमें आशा करनी चाहिए, अन्त में सब अच्छा ही होगा। कृपया डा० अटल को उनके सन्देशों और पत्रों के लिए धन्यवाद दो, जो बड़े उपयोगी साबित हुए है। जबतक खतरा बना है मैं तुमसे बराबर पत्र की आशा करता हूं। टाइप किये हुए पन्ने मेरे पास है। जितनी जल्दी सम्भव होगा, मै उन्हें पढ़ जाऊंगा।

किसी जांच-कार्य में वल्लभभाई को मदद देने के लिए महादेव को बम्बई जाना पड़ा। वह अब भी वही है। राजगोपालाचारी[1] लक्ष्मी[2] और उसके शिशु-

---

१. चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, गांधी जी के प्रमुख सहयोगी, समधी, स्वतन्त्र भारत के प्रथम गवर्नर-जेनरल, अब स्वतन्त्र दल के संस्थापक।
२. राजगोपालाचार्य की छोटी लड़की जिनका विवाह गांधी जी के सबसे छोटे पुत्र देवदास के साथ हुआ था।

पुत्र अभी-अभी आये हैं। देवदास बुरी तरह बीमार था। अंसारी ने उसे शिमला भेज दिया है। मीरा मेरे पास है किन्तु दूषित ज्वर में चित्त पड़ी हुई है।

मैं चाहता हूं कि अगले साल के लिए तुम अपने को अध्यक्ष निर्वाचित होने देने की अनुमति दोगे। तुम्हारी स्वीकृति से अनेक कठिनाइयां हल हो जायंगी। यदि तुम ठीक समझो तो मुझे एक तार भेज दो।

क्या इन्दु का तय हो गया ?

खुर्शेद यहां है। वह तुम्हें मामूली डाक से (पत्र) लिखेगी।

हम सब से प्रेम

वर्धा बापू

१२।६।३५

—अंग्रेजी। वर्धा, १२।९।१९३५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३९१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे तीन स्वागत (सु-आगत) पत्रों ने हम सब को कमला के विषय में सही खबर दी। कुछ समय के लिए तुमसे इसी व्यवहार का अनुसरण करने की आशा करता हूं। मैंने नित्य तार देने के लिए तार किया है क्योंकि जनता की वैसी मांग है। किन्तु जब परिवर्तन नही था तब कोई (तार) न भेजकर तुमने ठीक ही किया। प्रेषक का नाम निकालकर भी तुमने ठीक किया। वहां तुम्हारी उपस्थिति से यहां के तुम्हारे मित्रों को बडा सन्तोष मिला है, क्योंकि वह कमला के लिए अमृत का काम करेगी। इस हवाई डाक से मैं उसके लिए कोई अलग पत्र नहीं लिख रहा हूं।

अब मैं तुम्हारी पाण्डुलिपि को लेता हूं। जहां तक सिद्धान्तों की स्थापना का सवाल है, तुम्हारे साथ सहमत होने में मुझे कोई कठिनाई नहीं है। किन्तु जब हम ठोस जमीन पर उतरते हैं, तो आमतौर पर हम उसी भाषा का इस्तेमाल करते है जिसे मैंने किया है। कांग्रेस ने जिस विराट संस्था का रूप ग्रहण कर लिया है, उसमें कोई एक आदमी तमाशे को जारी रखने की उम्मीद नहीं रख सकता। किन्तु किसी-न-किसी को तो कन्धे पर बोझ उठाना ही पड़ेगा और लोग कुछ पथ-दर्शन चाहते हैं। मेरे पूछने का यही कारण है। यदि तुम चुने जाते हो तो तुम

जिन नीतियों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हो उन्ही के लिए चुने जाओगे। इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम मुझे बता दो कि क्या कांटों के ताज के लिए तुम अपने नाम का प्रस्ताव किये जाने की अनुमति देते हो ?

मेरा खयाल है कि अब इन्दु कमला की हालत सुधरने का इन्तजार करेगी।

मै कांग्रेस का विधान भेज रहा हूं। यदि तुम इसपर अपना ध्यान केन्द्रित कर सको तो मैं चाहूंगा कि तुम इस पर अपनी सुविचारित आलोचना मुझे भेज दो।

जहां तक कांग्रेस की वर्तमान नीति का सम्बन्ध है, यद्यपि मै किसी तरह भी इसके ब्यौरेवार अमल के लिए जिम्मेदार नही हो सकता किन्तु प्रधानतः उसका यह रूप मेरा ही दिया हुआ है। वह कोई विचलन की नीति नही है। वह इस केन्द्रीय धारणा पर निर्मित है कि शान्तिपूर्ण कार्रवाई के लिए जन-शक्ति को कैसे संगठित किया जाय। किन्तु तुम्हारी अनुपस्थिति में हम लोग बँधे-बँधे चल रहे थे। अब जब तुम मुक्त हो तब तुम्हें रास्ता दिखाना है और अपने साथ अपने ऐसे साथियों को लेना है जो पूरे दिल से तुम्हारे साथ चल सकें। जहां तक मैं जानता हूं, वे तुम्हारे रास्ते में रुकावट नहीं डालेंगे—वहां भी नहीं, जहां वे तुम्हारा अनुगमन करने में असमर्थ होंगे। जब तुम वहां कमला की शुश्रूषा में लगे हुए हो तब इस प्रकार की और बातें लिखकर मैं तुम्हें थकाऊंगा नहीं।

प्रेम

२२।९।३५ वर्धा बापू

ज० नेहरू महोदय

बेडेनविला (स्वीजरलैण्ड)

—अंग्रेजी। वर्धा, २२।९।१९३५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३९२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[१९३५ ई० में कमला जी का स्वास्थ्य फिर बहुत खराब हो जाने के कारण उन्हें जर्मनी के ब्लैक फारेस्ट आरोग्याश्रम में रखा गया था। जब उनकी हालत बिगड़ने लगी तो जवाहरलाल जी को अल्मोड़ा जिला जेल से मुक्त कर दिया गया और वह तुरन्त उनके पास जर्मनी चले गये। गांधीजी के पत्र वहीं भेजे गये थे।—सम्पा०]

वर्धा
३ अक्तूबर, १६३५

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे पत्र घड़ी की-सी नियमितता से आते हैं और एक देन-जैसे लगते हैं। देखता हू कि कमला बड़ी बहादुरी से प्रयत्न कर रही है। इसका फल मिलेगा। प्राकृतिक चिकित्सा के लिए मेरा पक्षपात तुम्हें मालूम है। स्वयं जर्मनी में अनेक प्राकृतिक चिकित्सालय है। सम्भव है, कमला का मामला उस मंजिल से गुजर गया हो। परन्तु कौन जाने कब क्या होता है। मुझे ऐसे मामले मालूम है जो चीर-फाड़ के योग्य बताये जाते थे, किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा से अच्छे हो गये। जैसा भी है, मै अपना अनुभव तुम्हे लिख रहा हूं। अगले वर्ष के लिए ताज पहिनने के बारे में तुम्हारा पत्र हर्षदायक था। तुम्हारी स्वीकृति पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। मुझे विश्वास है कि इससे बहुत-सी कठिनाइयां हल हो जायंगी और देश के लिए यही सबसे ज्यादा सही चीज हो सकती थी।

लाहौर में तुम्हारी अध्यक्षता लखनऊ की अध्यक्षता से बिल्कुल भिन्न वस्तु थी। मेरी राय मे लाहौर में हर बात में रास्ता साफ़ था। लखनऊ में किसी भी बात मे ऐसा नही होगा। परन्तु मेरे खयाल से उस परिस्थिति का सामना जितनी अच्छी तरह तुम कर सकोगे, और कोई नही कर सकेगा। भगवान तुम्हें यह भार उठाने की पूरी शक्ति दे।

मैं तुम्हारे अध्यायों को अधिक-से-अधिक तेजी से पढ़ रहा हूं। वे मेरे लिए बड़े दिलचस्प है। इससे अधिक अभी नही कहूंगा।

इस पत्र के साथ तुम सबके लिए हम सबका प्रेम।

बापू

— अंग्रेजी। वर्धा, ३।१०।१९३५। 'ए बंच' आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

३९३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मै तुरन्त तुमको वह पत्र नही भेज सकता जिसे तुम मुझसे लिखवाना चाहते हो। यदि तुम पसन्द करते हो तो इसे अग्रसर कर देना। तुम 'हरिजन' में मेरा लेख देखोगे जिसमे स्पेन का भी सन्दर्भ आया है।

मुझे आशा है, इन्दु तेजी से प्रगति कर रही है, और सरूप परिवर्तन का पूरा लाभ उठा रही है।

सम्मान की कीमत पर यह कैसी शान्ति है।

काश, विस्तार से लिखने का समय मेरे पास होता।

महादेव पीछे विश्राम के लिए ठहर गया है। मैं सीमाप्रान्त जा रहा हूं।

तुम तीनों को प्रेम

दिल्ली
बापू

४।१०।३५

—अंग्रेजी। दिल्ली, ४।१०।१९३५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३९४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[निम्नलिखित पत्र की टाइप की हुई प्रति ही उपलब्ध है। पता नहीं, मूल का क्या हुआ।—सम्पा०]

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मै तुम्हें रविवार को लिखना चाहता था किन्तु मैं इतना व्यस्त था कि वैसा कर नही पाया। मैं तुम्हारे उस पत्र का जवाब लिखना चाहता था जिसके साथ तुमने अगाथा को लिखे अपने पत्र की प्रतिलिपि नत्थी की थी। तुमने अगाथा को जो कुछ लिखा उससे मुझे तुम्हारी मनःक्रिया की एक आन्तरिक झांकी मिली। मै उसके लिए किसी तरह बुरा नही मानता। वह पूरी तरह इस स्पष्टता के योग्य थी। मै तुम्हारी अधिकांश भावनाओं का अनुमोदन कर सकता हूं। तुम नही जानते कि मैं उसे एक से अधिक बार इसी लय में, यद्यपि अपने ढंग पर और अपनी भाषा में, लिख चुका हूं। फिर भी अगर कमला में निश्चित सुधार के लक्षण प्रकट होते है और तुम लन्दन जाने को मुक्त हो जाते हो और रास्ता खुल जाता है, तो मै पसन्द करूंगा कि तुम वहां बड़ों-बड़ों से मिलो और अपना हृदय उसके सामने भी खोल दो, जैसा कि तुमने अगाथा के प्रति किया है।

किन्तु कल तुम्हारा जो पत्र मिला है उससे मालूम पड़ता है कि अभी तुम कमला की शय्या के पास से हट नहीं सकते। आखिर तुम उसी अभिप्राय के लिए तो छोड़े ही गये हो और यदि प्रभु तुम्हें कमला की शय्या के साथ बांध रखना चाहते है, तो हमें कुढ़ना नहीं चाहिए। तुम वहां इसीलिए गये हो कि उसे भयानक कष्ट

से वाहर निकलते देखो। मैं कितना चाहता हूं कि मैं तुम्हारा वोझ वँटाने और कमला को प्रसन्न करने के लिए वहां होता। रवाना होने के पहिले मैंने दो दिनों तक उसे वम्वई में देखा था। मैंने देखा कि उसके मन में ऐसी शान्ति थी जैसी कि पहिले मैंने कभी नही देखी थी। उसने कहा कि ईश्वर की दया मे उसका विश्वास कभी इतना ज्योतिर्मय नही था जैसा कि उस समय था। उसकी मानसिक अशान्ति लुप्त हो चुकी थी और उसे यह पर्वा नही थी कि उसका क्या होता है। वह यूरोप इसलिए गई कि तुम सव वैसा चाहते थे, और वैसा करना उसे अपना स्पष्ट कर्त्तव्य प्रतीत हुआ। यदि वह जीवित रहती है तो अभी तक जो सेवा उसने की है उससे कही वड़ी सेवा के लिए जियेगी, यदि वह मरती है तो इसलिए मरेगी कि आज जो देह उसके पास है उससे अधिक समर्थ देह लेकर पुन. पृथ्वी पर आये।

यह भी अच्छा ही है कि इन्दु का साहित्यिक अध्ययन कुछ समय के लिए स्थगित हो गया है, क्योकि वह इस समय जो प्रशिक्षण प्राप्त कर रही है वह उससे कही ज्यादा मूल्यवान है जो वह किसी.कालेज मे प्राप्त करती। वह अपना प्रशिक्षण प्रकृति के विश्वविद्यालय में पा रही है। अपना साहित्यिक अध्ययन पूरा करके वह उसका अन्तिम शृंगार कर सकेगी।

मैं वड़ी दिलचस्पी के साथ तुम्हारा ग्रन्थ पढ़ रहा हूं। मैं एक ही वैठक में उसे पूरा पढ़ना चाहता हू, जैसा कि महादेव ने किया था, या जैसा कि खुर्शेद करीव-करीव कर चुकी है। किन्तु मेरी किस्मत वैसी अच्छी नही है। अन्तिम अध्याय पढ़ने तक मैं अपनी सम्मति सुरक्षित रखता हूं। मैं धन्यवाद करता हू कि तुमने उन्हे मेरे पास भेजा।

मैं तुमसे राजनीति के विषय में वात नही करूंगा। मेरे मतलव के लिए इतना ही वस है कि यदि वोझ तुम पर आ पड़ेगा, तो तुम उसे उठाओगे। वह तुम पर पडेगा, इस निष्कर्ष पर मैं पहिले से ही पहुंच चुका हूं।

अगर तुम ठीक समझो तो साथ की पंक्तिया कमला को पढ़कर सुना देना। जव तुम वहा नही थे, तव इन्दु चन्द लाइने मुझे लिखा करती थी। अव शायद वह समझती है कि उस श्रम से उसे मुक्ति मिल गई है।

प्रेम
वापू

वर्धा १५-१०-३५

तुम (यह पत्र) ग्राम्य [illegible] पर ग्रामीण [illegible] और ग्रामीण रोशनाई से यह पत्र लिखने की मेरी [illegible]

—अंग्रेजी। वर्धा, १५।१ [illegible] [illegible]क्षित पत्रावली से।]

[illegible]

३९५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[निम्नलिखित पत्र की जीरोग्राफ और टाइप की हुई प्रति ही नेहरू संग्रहालय में है। मूल का पता नहीं लग सका।—सम्पा०]

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र मिला। स्वराज भवन के बारे में मैने राजेन्द्र बाबू को तार दिया है। मुझे नही मालूम कि क्या हो रहा है। मैं बिल्कुल तुम्हारे इस मत का हूं कि कमेटी की नीति की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए।

जहां तक वर्तमान विश्व-परिस्थिति के विषय में हमारे रूख का सवाल है, मैं यह नही समझता कि उसकी समझ का अभाव है। किन्तु यह हमारी बेबसी है जिसके कारण हमें चुप रहना पड़ता है। कोई दुर्बलता भी नही है। अगर तुम कहना चाहो, तो इसे अपने सर्वोत्तम अर्थ में व्यूह-कौशल कह सकते हो। कुछ भी हो, मै अपने अन्दर किसी प्रकार की दुर्बलता की भावना नही पाता। किन्तु मैं जानता हूं कि इस समय मैं प्रभावपूर्वक कुछ कह नही सकता। यह जाने बिना कि लोग क्या कर सकते है, मैं नेतृत्व नही प्रदान कर सकता। मै यह जानता हूं कि उन्हें क्या करना चाहिए। और जो कुछ मेरे बारे में सत्य है वही शायद हमारे कार्यकर्त्ताओं में से अधिकांश के बारे में भी सत्य है। किन्तु इन सब मामलों में मुझे तुम्हारे अन्दर बड़ा विश्वास है। निश्चय ही तुमको स्थिति पर उससे कही ज्यादा अधिकार प्राप्त है जितना हममें से किसी को है—बिलाशक जितना मैं कभी पाने की आशा कर सकता हूं। इस बात को मानते हुए कि वर्तमान समय में सीधी कार्रवाई की कोई गुंजाइश नही है, वाणी और कार्य में राष्ट्रीय आत्माभिव्यक्ति का कोई सम्मानपूर्ण सूत्र निकालने में तुम समर्थ हो सकते हो।

कमला-विषयक तुम्हारा अनुच्छेद कुछ चिन्ताजनक है। किन्तु इस प्रकार के ऊंच-नीच के लिए हम तैयार है।

कुछ कहने के पहिले विधान पर मैं तुम्हारे और विचार जानने की प्रतीक्षा करूंगा। मुझे खुशी है कि विधान को जितनी जल्द सम्भव था तुम तक पहुंचाने के लिए मैंने पैसे खर्च किये। तुम सबको प्यार।

१७।१०।३५ बापू

वर्धा

—अंग्रेजी। वर्धा, १७।१०।१९३५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३९६. पत्र : हीरालाल शर्मा को

[यह पत्र लिखा किसी दूसरे के हाथ का है। हस्ताक्षर गांधी जी के हैं।
—सम्पा०]

चि० शर्मा,

तुम्हारा खत बहुत इन्तजारी के बाद मिला। ताज्जुबी की बात है कि मेरी तरफ से एक भी खत अमेरिका में तुमको नही मिला है। कम से कम दो तीन खत मिलने चाहिए थे ही। मेरे पास पोस्ट करने की तारीख है। इस खत के अन्त में तारीख दी जायगी[1] क्योंकि रोजनिशी[2] में से ढूंढना होगा। लेकिन मैं लिखूं या न लिखूं तुम्हारे तो हर हफ्ताह लिखना ही था ऐसा हमारा करार था। यहां से मुझको कुछ ज्यादा लिखने का भी नही हो सकता है लेकिन तुम्हारे तो हमेशा नई-नई बात लिखने की होनी ही चाहिये। खैर, जो हुआ सो हुआ, अब तो प्रति सप्ताह तुम्हारे खत की इन्तजारी में रहूंगा। मैंने तुम्हारे खत द्रौपदी को और रामदास को भेजने का सिलसिला भी जारी कर दिया है। रामदास ने खनुस (न) मांगा था। द्रौपदी को ऐसे ही भेजने का आरम्भ कर दिया था। इसका एक नतीजा यह हुआ है कि द्रौपदी उसके उत्तर में कुछ न कुछ भेजने के लिए मजबूर हो जाती है, अन्यथा वह कहां से मुझको लिखने वाली थी ?

अमेरिका में जल्दी से स्वावलम्बी बन जाओगे ऐसी तो मैं कोई आशा नही रखता था, लेकिन ऐसा जरूर माना था कि कम खर्च में रहना मुश्किल नही होगा। कैसे भी हो, अब तो अमेरिका में हो, जबतक तुमको सन्तोप न मिले तबतक रहो। जब ऐसी प्रतीती हो जाय कि तुमको नैसर्गिक दृष्टि से कुछ भी अधिक नहीं मिलनेवाला है तब ही वहां से छूटना। जो अनुभव अमेरिका में होते हैं, वही करीब-करीब इंग्लैण्ड में भी होने वाले हैं। वहां भी नैसर्गिक दृष्टि से ज्यादा नही पाओगे। लेकिन तुमको पश्चिम में जाना आवश्यक था ही। कई प्रकार के भ्रम रहते हैं जो अनुभव बिना दूर होते ही नही, इस दृष्टि से तुम्हारा जाना बेकार नही समझता हूं।

तुमने शेल्टन का स्थान नही देखा होगा तो अवश्य देखो। गोविल उसकी बडी तारीफ करता था। उसकी हेल्थ स्कूल सेन ऐनटोनियो टेक्सास (में) है।

१: यह यहाँ नहीं दिया गया है।
२: रोजनिशी अर्थात् रोजनामचा या डायरी।

तुमने इंगलैण्ड के लिए एक खत मांगा था तो मैने भेज दिया था। मिल गया होगा।

अमेरिका जाकर तुम खुल जाओगे ऐसा मैने कहा था। उसका अर्थ तुमने मांगा है। इसका अर्थ यह था कि जो एक प्रकार की अस्वाभाविकता याने एक प्रकार का टेढ़ापन कहो कि जो कुछ था वह दूर हो जायगा और सबके साथ मिलजुलकर रहने की आदत बन जायगी। तुम्हारा हिसाब मिला है। भाई व्रजमोहन[1] को खत लिखा करो। उनको हिसाब भेजने की आवश्यकता नही हैं। तुमारे 'हरिजन' मिलता होगा। मेरे खत और 'हरिजन' डा० होम्स के ठिकाने से आज तक तो गये हैं। अब तुमने जो ठिकाना डा० कैलोग का भेजा है उस ठिकाने पर यह खत भेजता हूं। डा० कैलोग का जो खत मेरे पास आया था वह तो मैने तुमको भेज ही दिया था। तुम्हारे शरीर के बारे में यहां से मैं क्या लिखू ? इतना तो है कि ठण्डी से बचो, नित्य कम से कम दस मील घूमो। दूध और फल अच्छी तरह खाओ। सेलाड (Salad) भाजियां भी खाओ। इतना करने से अवश्य शरीर अच्छा रहेगा। प्राणायाम का अभ्यास रखा जाय।

वापू के आशीर्वाद

मगनवाड़ी, ७-११-३५

--हिन्दी। मगनवाड़ी (वर्धा), ७।११।१९३५। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

३९७. पत्र : रमेशचन्द्र को

२७-११-३५ वर्धा

भाई रमेशचन्द्र जी,

कृत्रिम उपाय साधित संतति-निरोध हानिकर है। ऐसा तो मैने कहा ही है और अभी भी मानता हूं। यदि कोई अपवाद शक्य है तो उसका ख्याल तक करना अनुचित समझा जाय। ठीक इसी तरह वीमा की बात समजी जाय। फरक इतना है कि वीमा में ज्यादा मात्रा में अपवाद हो सकते है। जो आत्मिक हानि संततिनिरोध में कृत्रिम उपाय से होती है उतनी हानि वीमा से नहीं होती है।

मो० क० गांधी

---

१. श्रीव्रिजमोहन बिरला।

[टिप्पणी—पत्र किसी दूसरे के हाथ का लिखा है। हस्ताक्षर-मात्र गांधीजी के है।—सम्पा०]

—हिन्दी। वर्धा, २७।११।१९३५। श्री रमेशचन्द्र, इलाहाबाद के पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ६०९४) से]

३९८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

काश, मै तुम्हारे साथ अजन्ता गया होता।

तुम्हारा पत्र प्राप्त होने के पहिले ही मै जोरदार ढंग पर खां साहब से कह चुका था और उनसे मेहर ताज को वकील के स्कूल[1] में भेजने का अनुरोध किया था। किन्तु वह अडिग थे। वह नहीं चाहते थे कि वह किसी मिश्रित[2] स्कूल में जाय। मैंने मेहर ताज से भी बात की। निस्सन्देह वह बेचैन है। किन्तु खां साहब कठोर है और उनका विश्वास है कि मेहरताज अपनी सामान्य उत्फुल्लता पुनः प्राप्त कर लेगी।

मै आशा करता हू कि तुम अपनी हिफाजत रक्खोगे और अपने को थका नहीं दोगे।

स्मारक के विषय में मैने सरूप से संक्षिप्त वार्ता की थी। मै इस विषय में निश्चिन्त हू कि और कुछ करने के पहिले कम-से-कम जमीन प्राप्त कर लेनी चाहिए। जिस प्लाट के बारे मे तुमने मुझे बताया था उस पर या आनन्द-भवन के पास के किसी दूसरे प्लाट पर अड़े रहने की जरूरत नही है।

प्रेम

३-२-३६, वर्धा

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (सेवाग्राम), वर्धा ३।२।१९३६। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. वकील का स्कूल, बम्बई।

२. जहां लड़के-लड़कियां साथ पढ़ते हों।

३९९. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई बनारसीदास,

परभुदयाल ने तुमारे भाई के देहान्त की खबर दी. तुमारे मे ज्ञान है इसलिये आश्वासन की आवश्यकता कम है. जो रास्ते रामनारायण गये वही रास्ते हमको सबको जाना होगा. समय का ही फरक है. उसमें शोक क्या? लेकिन हां, प्रेमीओं के मुत्यृ से हमारी जिम्मेदारी बढ़ती है और तुमारी तो बहूत ही बढ़ गई. ईश्वर ही ऐसे मौके पर सच्चा मददगार है. वही तुमको मार्ग बतायगा।

बापु के आशीर्वाद

सेगांव-वर्धा, १६-२-३६

[हिन्दी। सेगांव (वर्धा), १९।२।१९३६। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० २५१६) से]

४००. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[श्रीमती कमला नेहरू का युरोप में चिकित्सा-काल में ही देहान्त हो गया था। यह पत्र उसके सन्दर्भ में लिखा गया है।—सम्पा०]

दिल्ली

६ मार्च १६३६

प्रिय जवाहरलाल,

तो तुम कमला को सदा के लिए युरोप में छोड़कर लौट आये! फिर भी उसकी आत्मा कभी भारत से बाहर नही थी और हममें से अनेक की भांति सदा तुम्हारा रत्न-भाण्डार बनकर रहेगी। मैं उस अन्तिम वार्तालाप को कभी नही भूलूगा, जिसने हमारी चार आंखों को गीला कर दिया था।

यहां भारी जिम्मेदारी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। वह तुम पर डाली गई है, क्योंकि तुम उसे उठाने की क्षमता रखते हो। तुम्हारे पास आने का मेरा साहस नही होता। मेरे शरीर मे मूल लचक वापिस आ गई होती तो साहस करता। मुझमें कोई तीसरी खराबी नही है। शरीर का वजन तो बढ़ा ही है। परन्तु तीन ही महीने पहिले जो जीवन-शक्ति इसमे थी वह जाती रही। आश्चर्य की बात यह है कि मुझे कभी बीमारी महसूस नहीं हुई। फिर भी शरीर कमजोर हो गया था और यन्त्र ऊंचा रक्तचाप बतलाता था। मुझे सावधान रहना पड़ेगा।

मैं आराम लेने के लिए कुछ दिन दिल्ली मे हूं। अगर तुम्हारी मूल योजना कार्यान्वित हो जाती तो मै अपनी मुलाकात के लिए वर्धा में रह जाता। तुम्हारे लिए वहां अधिक शान्ति होती। किन्तु तुम्हारे लिए एक सी ही बात हो तो हम दिल्ली मे मिल सकते है। यहां मै कम-से-कम इस महीने की २३ तारीख तक रहूंगा। किन्तु यदि तुम्हें वर्धा ज्यादा पसन्द हो तो मैं वहां इससे पहिले लौट सकता हूं। यदि तुम दिल्ली आओ तो किंग्सवे में नये बनाये गये हरिजन-निवास में मेरे साथ ठहर सकते हो। यह काफी अच्छी जगह है। जब बता सको मुझे बता देना कि हमारे मिलने की कौन-सी तारीख रहेगी। राजेन्द्रबाबू और जमनालालजी तुम्हारे साथ है, या होगे। वल्लभभाई भी होते, परन्तु हम सबने सोचा कि वह दूर रहे तो ज्यादा अच्छा होगा। दूसरे दोनो वहां राजनीतिक चर्चा के लिए नही, मातमपुर्सी के लिए गये है। राजनीतिक चर्चा तब होगी जब हम सब मिलेगे और तुम घरू काम-काज निपटा लोगे।

आशा है, इन्दु ने कमला के निधन का और तुम्हारे तुरन्त के वियोग का दुःख भली प्रकार सहन कर लिया होगा। उसका पता क्या है?

तुम सब प्रकार सकुशल होगे।

सप्रेम,

बापू

--अंग्रेजी। दिल्ली, ९।३।१९३६। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४०१. पत्र : हीरालाल शर्मा को

चि० शर्मा,

तुमारा खत मिला है. उस पर से मैंने द्रौपदी को यहां बुलाई. परिणाम में यह खत मिला. मैंने फिर भी उसे आने का लिखा है.

तुम अनुभव ठीक ले रहे हो. यहां आने पर कुछ कालेजों में सीखने का बाकी न रहे तो अच्छा होगा वहां जबतक कुछ ज्ञान पाने का बाकी रहे तबतक रहो. बाकी मेरे विचार तो है ही कि नैसर्गिक उपचार के लिए भिन्न साधना ही है. हां शरीर के प्रत्येक अवयवों का ज्ञान और रसायणशास्त्र का अत्यावश्यक है सही.

बापु के
आशीर्वाद

१४।३।३६

—हिन्दी। १४।३।१९३६। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

४०२. पत्र : इन्दिरा को

लखनऊ
३०।३।३६

चि० इंदु,

कमला के जाने से तुमारी जिम्मेदारी कुछ बढ़ जाती है लेकिन तुमारे लिए मुझ को कोई चिंता नही है। ऐसी शाणी हो गई है कि अपना धर्म अच्छी तरह समझती है। कमला में ऐसे गुण थे जो सामान्यतया अन्य स्त्रियों में नही पाये जाते है। मैं ऐसी आशा बांध बैठा हूं कि यह सब गुण तुमारे में इतनी ही मात्रा मे प्रदर्शित होंगे जैसे कमला में थे। ईश्वर तुमे दीर्घायु करे और कमला के गुणों का अनुकरण करने की शक्ति दे।

जवाहरलाल से इस वक्त खूब बातें कर सका हूं। ३ अपरैल को यहां से इलाहाबाद जाऊंगा। कांग्रेस तक रहने का निश्चय हो गया है। मुझे वर्धा ही उत्तर भेजो।

बापू के आशीर्वाद

—हिन्दी। गांधी जी के स्वाक्षरों में मूल प्रति। लखनऊ, ३०।३।१९३६। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४०३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

२१ अप्रैल, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

टिप्पणियां अच्छी लिखी गई हैं। तुम्हारे उत्तर काफी पूर्ण है और सीधे तो हैं ही।

आगामी बैठक के बारे में चिन्तित क्यों होते हो? यदि चर्चा हुई तो वह

एक दूसरे को अपने विचारों के ठीक होने का विश्वास कराने को ही तो होगी। जब तुम समझो कि किसी प्रस्ताव पर पूरी तरह बहस हो चुकी तब चर्चा बन्द कर देना। आखिर तो तुम्हें एकता के साथ काम करना चाहिए और मुझे ऐसा होने की बड़ी आशा है।

मै २३ तारीख की शाम को नागपुर पहुँच रहा हूं।

मै चाहता हूं कि रनजीत अपनी देखरेख स्वयं कर लें। मुझे खुशी है कि वह खाली[1] चले गये। आशा है, सरूप तुम्हारे साथ रहेगी।

सरदार[2] अभी तक बीमार है और अभी तो सिर्फ छाछ पर है। ८ मई के बाद मैं उन्हे नन्दी पर्वत पर ले जा रहा हूं। काश, तुम भी आ सकते।

सस्नेह

बापू

—अंग्रेजी। २१।४।१९३६। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

४०४. पत्र : चन्द्रत्यागी को

भाई चन्द त्यागी,

पिता का मृत्यु तो सब पुत्र को चुभता है. लेकिन ऐसा होना तो नही चाहीये. क्योंकी हम सब को भी किसी न किसी रोज वही राह जाना है. जो चीज जन्म के साथ ही लेकर हम इस जगत् मे प्रवेश करते है इसका शोक क्यों? शोक हो तो जन्म का हो.

मैने तो समजा था कि राजकिशोरी को वहां नही आना है. हम गरीब है. गरीब के जैसे रहना चाहते है. ऐसी हालत में हम रेलगाडी में पैसे खामखा क्यों खर्च करे. ऐसा मानने में मैने कुछ गलती की है क्या? अथवा तुमने विचार बदल दिया है? कैसा भी हो मेरे तरफ से राजकिशोरी को कोई रुकावट नही होगी. जब चाहे तब जा सकेगी.

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, २१।४।१९३६। पत्र की फोटो-नकल (जी०एन० ६०९८) से]

---

१. रणजीत पण्डित ने अल्मोड़ा के खाली नामक स्थान पर 'ऋतुसंहार' नाम के फार्म-हाउस का निर्माण किया था।

२. सरदार वल्लभभाई पटेल।

४०५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मेरा दाहिना हाथ आराम चाहता है। तुम शायद संलग्न (पत्र) पढ़ना पसन्द करोगे। इसे लौटाने की जरूरत नही है।

कमला स्मारक की मर्यादा-विषयक अपने नये सुझाव के बारे में खुर्शेद ने मुझे लिखा है। यदि वह अस्पताल का विकल्प है तो मेरी राय में अविचारणीय है। और वह तीन लाख में हो भी नही सकता।

प्रेम
बापू

वर्धा
३-५-३६

[अंग्रेजी। वर्धा, ३।५।१९३६। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४०६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

नन्दी पर्वत
१२ मई १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

अगाथा[1] के नाम मेरा उत्तर मैने तुम्हारे पास इस कारण भेजा कि मैं जान लूं कि मैने तुम्हारा रवैया ठीक-ठीक बयान किया है या नही।

किन्तु मुझे खुशी है कि तुम मुझी से निपट रहे हो। मैं किसी ऐसी प्रणाली का समर्थन करने का, जिसमे सतत और विनाशकारी वर्ग-युद्ध निहित है या ऐसी प्रणालियो को पसन्द करने का, जिसका वास्तविक आधार हिंसा पर है या कुछ लोगो के छोटे-मोटे अपराधों के लिए आलोचना और निन्दा करने का और जो दूसरे लोग कही अधिक महत्वपूर्ण दुर्बलताओ के अपराधी है, उनकी प्रशंसा करने का दोषी नही हूं।

सम्भव है, अनजाने मुझसे तुम्हारे बताये हुए अपराध होते हों। ऐसा है

---

१. कुमारी अगाथा हैरिसन क्वेकर समुदाय की अंग्रेज महिला। गांधी जी एवं भारत के प्रति अगाध प्रेम रखनेवाली।

तो तुमको मुझे ठोस उदाहरण देने चाहिए। मैं पहिले ही स्वीकार कर चुका हूं कि तुम्हारा काम करने का जो तरीका मुझे दिखाई देता है उससे मेरा ढंग भिन्न है। किन्तु वर्तमान प्रणाली-सम्वन्धी दृष्टिकोण में कुछ भी अन्तर नही है।

डा० अंसारी की मृत्यु एक कठोर चोट है। मेरे लिए उनकी मित्रता राजनीतिक मैत्री से कही अधिक थी।

आशा है, तुम थोड़ी-सी ठण्डी हवा खाने के लिए खाली[1] जा रहे हो या मेरे पास आ रहे हो।

सरूप से कह देना कि उसके दो पत्र मिले है। सर तेजवहादुर को मैं लिखूंगा।

सस्नेह,
वापू

— अंग्रेजी। नन्दी पर्वत, १२।५।१९३६। 'ए वंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

४०७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

नन्दी पर्वत
२१ मई १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

'हिन्दू'[2] की दो कतरनें भेज रहा हूं। मैने यह नही माना है कि संवाददाता ने तुम्हारे विचार ठीक-ठीक व्यक्त किये है। किन्तु दोनों विषयो पर तुम सही विवरण भेज सको तो मै देखना चाहूंगा। स्त्रियो को न रखने का काम पूरी तरह तुम्हारा अपना ही था। सचमुच किसी और ने सोचा तक नही था कि मन्त्रिमण्डल में किसी स्त्री को न रखना सम्भव भी है। खादी के वारे मे मैंने तुम्हारा कथन सही समझा है कि देश की वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में वह अपरिहार्य है और जव

---

१. खाली अल्मोड़ा जिले का एक रमणीक स्थान, जहां श्री रणजीत पण्डित ने एक सुन्दर उद्यानगृह वनवाया था।
२. मद्रास का एक प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक।

राष्ट्र अपने स्वरूप में आयेगा तब मिल के कपड़े का स्थान हाथ के बने कपड़े को देना पड़ सकता है।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। नन्दी पर्वत, २१।५।१९३६। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४०८. पत्र : मुहम्मद अशरफ को

[श्री अशरफ उस समय भारतीय कांग्रेस कमेटी इलाहाबाद के राजनीति एवं अर्थ-विभाग का कार्य देखते थे।—सम्पा०]

प्रिय अशरफ,

तुम मुझसे क्या उम्मीद रख सकते हो? निस्सन्देह, तुमने कुमारप्पा और शंकरलाल बैंकर को लिखा होगा। इन दोनों संस्थाओं से थोड़ा-सा साहित्य निकला है उसे वे तुम्हें भेज सकते है। मुझे विश्वास है, तुमको 'हरिजन' नही चाहिए, जो मुख्यतः अस्पृश्यता से सम्बन्धित है।

तुम्हारा निश्छल
मो० क० गांधी

वर्धा
२७।५।३६

—अंग्रेजी। वर्धा, २७।५।१९३६। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित ए० आई० सी० सी० की फाइल ३-१ से।]

४०९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

बंगलौर
२९ मई १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा २५ तारीख का पत्र मिला। भगवान तुम्हें आवश्यक शक्ति दें। खाली में एक सप्ताह रहना भी नियामत होगा।

मेरा इरादा खादी पर तुम्हारे बयान का सार्वजनिक उपयोग करने का है।

मुझसे वहुत लोग पूछ-ताछ कर रहे है। हमारे जो लोग खादी में विश्वास रखते है, उनमे तोड़-मरोड़ कर भेजे गये सार से घवराहट फैल गई है। तुम्हारे वयान से स्थिति में कुछ सुधार होगा।

कार्य-समिति मे किसी स्त्री के न लेने के वारे में तुम्हारे स्पष्टीकरण से मेरा समाधान नही होता। यदि समिति मे किसी स्त्री को रखने की तुमने जरा भी इच्छा प्रकट की होती तो वडो में से किसी को छोड़ देने के वारे में कुछ भी कठिनाई न होती। दवाव कहें तो केवल भूलाभाई के लिए था। और जव उनका नाम पहिली वार लिया गया तव तुम्हे कोई आपत्ति नही थी। और किसी सदस्य के लिए कोई दवाव नही था। फिर किसी समाजवादी का नाम छोड़कर किसी स्त्री को चुन लेने का अधिकार तो तुम्हारे हाथ मे अवाधित ही था। परन्तु जहां तक मुझे याद है, तुम्हे स्वय सरोजिनी देवी के स्थान पर किसी को चुनने में कठिनाई थी और सरोजिनी देवी को तुम रखना नही चाहते थे; तुमने तो यहां तक कहा था कि कार्य-समिति मे सदा किसी-न-किसी स्त्री को और मुसलमानो को एक निश्चित संख्या मे रखने की परम्परा में तुम्हारा विश्वास नही है। इसलिए जहां तक किसी स्त्री को न लाने का सम्वन्ध है, मेरे विचार से, यह तुम्हारा अवाधित निर्णय था। इस परम्परा को तोड़ने की इच्छा या साहस और कोई सदस्य न करता। मैं तुम्हें यह भी वता दू कि कुछ कांग्रेसी हल्को मे सारा दोष मुझ पर थोपा जा रहा है, क्योकि यह कहा जाता है कि मैंने सरोजिनी नायडू को नही रखने दिया और यह आग्रह किया कि कोई स्त्री न रक्खी जाय। यह वात, जैसा मैने तुमसे कहा, ऐसी है जिसका मैं साहस भी नही कर सकता। किसी भी स्त्री की वात तो क्या, मै श्रीमती नायडू को भी अलग नही कर सकता।

दूसरे सदस्यों के विषय में भी मेरा यह खयाल रहा है कि तुमने उन्हे इसीलिए चुना कि कार्य की दृष्टि से ऐसा करना ठीक था। "वेहया" या "हयादार" का कोई सवाल नही था, जव सभी अपने-अपने अन्तःकरण के अनुसार सेवा की उच्च भावनाओ से प्रेरित होकर काम कर रहे थे। मै वता दूं कि तुम्हारे बयान से, जिसका समर्थन तुम्हारे पत्र से भी होता है, राजेन्द्रवावू, राजा जी और वल्लभभाई को वड़ा दुःख हुआ। उनका खयाल है, और मै उनसे सहमत हूं कि उन्होंने तुम्हारे साथी के रूप मे सम्मान और पूर्ण निष्ठापूर्वक तुम्हारे साथ चलने की कोशिश की। तुम्हारे वयान से ऐसा प्रकट होता है कि तुम पीड़ित पक्ष हो। मैं चाहता हूं कि तुम इस दृष्टिकोण को समझ लो और किसी भी तरह सम्भव हो तो इस समाचार में सुधार कर लो।

तीसरी वात के वारे मे मैं उत्सुक हूं कि सफाई हो जाय। मैं अनुमान नहीं कर

सकता कि तुम क्या कहते हो, परन्तु उसे हमारे मिलने तक रहने दिया जाय। तुम जिस दवाव को सहन कर रहे हो, मैं उसे वढ़ाना नही चाहता।

डा० अन्सारी-स्मारक के विषय में मैने आसफ अली को अपनी स्पष्ट राय दे दी है कि पिताजी की तरह डाक्टर के स्मारक को भी राजनीतिक दृष्टि से अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करनी चाहिए। तुम्हारा कुछ और खयाल है ?

कमला-स्मारक धीरे-धीरे प्रगति कर रहा है। राजकुमारी[1] का पत्र साथ में है। इसमें इन्दु का उल्लेख है।

सस्नेह,
वापू

१० तारीख तक बंगलौर शहर में

——अंग्रेजी। बंगलौर, २९।५।१९३६। 'ए वंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४१०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[यदि लिखावट इतनी धुंधली हो कि पढ़ी न जा सके तो इस पत्र को फेक देना।]

सेगांव
१६ जून १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

मै तुम्हारी जानकारी के लिए साथ का पत्र भेजने वाला था कि कल तुम्हारा पत्र मिला।

मुझे खुशी है कि रनजीत[2] पहिले से अच्छे है। उन्हें स्वयं अपनी देख-रेख रखनी चाहिए।

मै नही चाहता कि तुम अपनी कार्यसमिति में किसी स्त्री को न रखने के बारे में कोई विशेष वक्तव्य निकालो। मेरे खयाल से स्त्री को न रखने की वात का वही महत्त्व नही है, जो दूसरों को रखने या न रखने का है। हममे से किसी को भी कार्यसमिति में से स्त्री मात्र को अलग रखने का न साहस था, और न इच्छा। यदि

---

१. राजकुमारी अमृत कौर।
२. स्व० रणजीत पण्डित, सरूप कुमारी (वाद को श्रीमती विजयलक्ष्मी) के पति।

तुम्हारे रवैये का यह ठीक-ठीक अर्थ है तो अवसर उपस्थित होने पर इसका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।

दूसरों के वारे मे मुझे अफसोस है कि तुम अभी तक जो हुआ, उसपर खिन्न हो। ध्येय के हित में भूलाभाईवाली गोली तुमने निगल ली, और पहिली चर्चा में, तुम्हारे जिक्र करने के पहिले, मैंने निश्चित रूप से कह दिया था कि कार्यसमिति में समाजवादी होने ही चाहिए। मैंने नामों का भी जिक्र किया था। किन्तु मैं जिस वात पर जोर देना चाहता हूं, वह यह नही है कि किसने किसका नाम लिया वल्कि मेरा जोर इस वात पर है कि सब समान ध्येय की सेवा से प्रेरित होकर ही काम कर रहे है।

जहां तक मुझे याद है, तुम्हारा भेजा हुआ वयान वह नही है, जो मैंने देखा था। तुम्हारी भेजी हुई चीज तो शायद मैं पहिली ही वार देख रहा हूं। डा० हार्डीकर से पूछ लो कि उन्होंने कोई और वयान जारी किया था क्या? तुमने जो मेरे पास भेजा है वह भी उससे भिन्न है जो डाक्टर मुझे वताया करते थे। उनके विचार मेरी राय मे दोपपूर्ण तो है किन्तु उनके प्रकट करने पर मुझे कोई एतराज नही है। मेरी शिकायत यह है कि उन्होने मुझसे एक वात कही और प्रकाशित दूसरी वात कराई। तुम यह पत्र डा० हार्डीकर को वता सकते हो।

आशा है, तुम अच्छे होगे। तुम्हारे पंजाव के तूफानी दौरे का हाल मैं में चिन्तित होकर पढ़ता रहा।

सस्नेह
वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १९।६।१९३६। 'ए वंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४११. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
८ जुलाई, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र अभी मिला। वर्धा की घटनाओं को तुम्हें लिख सकने के लिए मैं समय ढूंढ़ रहा था। तुम्हारे पत्र ने इसे कठिन बना दिया। परन्तु मैं इतना ही

कहना चाहूंगा कि हट जाने के पत्र का वह अर्थ नही है जो तुमने इसे लेते समय लगाया। वह मेरे देख लेने के बाद तुम्हें भेजा गया था। त्यागपत्र के स्थान पर इस तरह का पत्र भेजने का सुझाव मेरा था। मैं चाहता हूं कि तुम इस पत्र के विषय में अधिक न्यायपूर्ण विचार करोगे। हर हालत में मेरा यह दृढ़ मत है कि वर्ष के शेष समय में सारी खींचतान बन्द रहे और कोई त्यागपत्र न दिये जायं। संकट का सामना करने में महासमिति का सब काम ठप्प हो जायगा और वह सामना कर भी नही सकेगी। वह दो भावनाओं के बीच छिन्न-भिन्न हो जायगी। लोकतन्त्र के नाम पर उस पर एक ऐसा संकट अचानक लाद देना अत्यन्त अन्यायपूर्ण होगा, जो पहिले कभी उसके सामने नही आया। तुम उस पत्र के गूढ़ार्थ को बढ़ा-चढ़ा कर समझ रहे हो। मै बहस नही करूंगा, परन्तु यह आग्रह अवश्य करूंगा कि स्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो और अपनी शान के सामने उदासी की घड़ी में हथियार न डाल दो। कार्यसमिति की बैठकों में अपने विनोद को खुलकर क्यों न खेलने दो ? जिन लोगों के साथ तुमने वर्षो तक बेखटके काम किया है, उनका साथ निभाना तुम्हारे लिए इतना कठिन क्यों होना चाहिए। यदि वे असहिष्णुता के अपराधी है तो उनमें तुम्हारा हिस्सा अधिक है। तुम्हारी पारस्परिक असहिष्णुता के कारण देश की हानि नही होनी चाहिए।

आशा है, तुमने जर्मन डाक्टर की बहुत विवेकपूर्ण सलाह मान ली है।

सस्नेह,
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ८।७।१९३६। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४१२. पत्रः साहेबजी महाराज को

सेगांव, वर्धा
११वीं जुलाई, ३६

प्रिय साहेब जी महाराज,

मैं जानता हूं कि आपने कराची-हरिजन चर्मालय को जूते बनाने के लिए एक कुशल शिक्षक दिया है और ऐसा ही हरिजन निवास, दिल्ली के लिए भी किया है। हमारे पास वर्धा में भी एक चर्मालय है जिसमें कुछ नवयुवक, प्रधानतः

हरिजनों के प्रति अपने प्रेम के कारण, समय दे रहे हैं। किन्तु हम सब जूता बनाने तथा चमड़े के अन्य पदार्थों के निर्माण के लिए एक कुशल शिक्षक के अभाव का अनुभव कर रहे हैं। यदि हम हरिजनों को जूता बनाने तथा अन्य लोगों को ग्रामीण चर्मकला की शिक्षा दे सकते हैं तो उनको कमाई की एक अतिरिक्त क्षमता प्राप्त हो जायगी और यदि हम उत्तम कोटि की चर्मकलायुक्त वस्तुओं के निर्माण की व्यवस्था कर दें तो हम और अधिक आदमी रख सकते हैं। यदि आपके पास ऐसा कोई शिक्षक हो, जिसे हमें दिया जा सकता हो तो क्या ऐसे एक शिक्षक को आप हमें कुछ महीनो के लिए दे सकेंगे? विचार यह है कि वह शिक्षक छात्रों में से ही किसी होनहार नवयुवक को शिक्षक के रूप में तैयार कर देगा। यदि आप ऐसा कोई आदमी भेज सकते हों तो कृपया मुझे बतायें कि वह कब आ सकेगा और वह कितना (वेतन) पाने की आशा करेगा?

मैं हूं
आपका निश्छल
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ११।७।१९३६। जी० एन० २१६३ की फोटो-नकल से]

४१३. पत्र: जवाहरलाल नेहरू को

दुबारा मैंने नही देखा है
सेगांव,
१५ जुलाई, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

१. आशा है तुमको 'टाइम्स आव इण्डिया' के पत्र के बारे में मेरा तार मिला होगा। मैंने कल प्राप्त करके उसे पढ़ा। इसके विषय में मुझे कभी किसी ने नही लिखा। पत्र को पढ़ कर मेरी राय पक्की हुई कि तुम्हे इस पर मान-हानि की कानूनी कार्रवाई करनी चाहिए।

२. यदि तुम मुझे गलत न समझो तो मैं चाहूंगा कि तुम मुझे नागरिक स्वातन्त्र्य-संघ से मुक्त रक्खो। फिलहाल मै किसी राजनीतिक संस्था में शामिल होना पसन्द नही करता और किसी पक्के सत्याग्रही के उसमें शरीक होने का कोई अर्थ

भी नहीं। परन्तु इस संघ में मेरे सम्मिलित होने-न-होने के परिपक्व विचार के बाद मेरी यह राय पक्की हुई कि सरोजिनी को या यों कहो कि किसी भी सत्याग्रही को अध्यक्ष बनाने में भूल होगी। मेरा अब यह मत है कि अध्यक्ष कोई प्रसिद्ध वैधानिक कानूनी वकील होना चाहिए। यदि यह बात तुम्हें न जंचती हो तो तुम्हें एक टिप्पणी-लेखक को, जो कानून-भंग करनेवाला न हो, रखना चाहिए। मै यह भी कहूंगा कि सदस्यों की संख्या सीमित रखो। तुम्हें संख्या के बजाय गुणों की आवश्यकता है।

३. तुम्हारा पत्र मर्मस्पर्शी है। तुम ऐसा अनुभव करते हो कि तुम सबसे अधिक पीड़ित पक्ष हो। किन्तु हकीकत यह है कि तुम्हारे साथियों में तुम्हारे-समान साहस और स्पष्टतावादिता नहीं है। परिणाम विनाशकारी हुआ है। मैने सदा उन्हें समझाया है कि वे तुमसे साफ-साफ और निडर होकर बात कर लें। परन्तु साहस न होने के कारण जब कभी वे बोले, भद्दी तरह से बोले और तुम्हें उत्तेजना हुई। मैं तुम्हें बताता हूं कि वे तुमसे डरते रहे, क्योंकि तुम्हें उनसे चिड़-चिड़ाहट और अधीरता हो जाती है। वे तुम्हारी झिड़कियों और तुम्हारे हाकिमाना ढंग पर कुढ़ते रहे और सबसे अधिक इस बात से कि उनके खयाल से तुम अपने-आपको अचूक और ज्ञानवाला समझते हो। वे महसूस करते है कि तुम उनके साथ शिष्टता से पेश नहीं आये और समाजवादियों के उपहास और गलत अर्थ लगाने में तुमने उनकी कभी रक्षा नही की।

तुम्हें शिकायत है कि उन्होंने तुम्हारी प्रवृत्तियों को हानिकारक बताया। इसका यह अर्थ नही था कि तुम हानिकारी हो। उनके पत्र में तुम्हारे गुणों या तुम्हारी सेवाओं की प्रशंसा करने का कोई अवसर नही था। वे पूरी तरह जानते है कि तुममें जीवट है और आम जनता तथा देश के युवकों पर तुम्हारा काबू है। वे जानते है कि तुम्हें छोड़ा नही जा सकता और इसलिए वे झुक जाना चाहते है।

मुझे यह सारा मामला दुःखद लगता है। साथ ही हास्यजनक भी। इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम सारी बात विनोदवृत्ति के साथ देखो। मुझे इस बात की चिन्ता नही कि तुम ए० आई० सी० को अपने विश्वास में लो, परन्तु मैं नही चाहता कि उस पर तुम्हारे घरेलू झगड़े ठीक करने का या तुममें और उनमें चुनाव करने का असह्य भार डाला जाय। तुम कुछ भी करो, उनके सामने बनी-बनाई सी बातें रखनी चाहिए।

तुम इस बात पर रोप क्यों करते हो कि तमाम समितियों में उनका बहुमत प्रकट हो। क्या यह अत्यन्त स्वाभाविक चीज नहीं है? तुम उनके सर्वसम्मत

चुनाव से पदारूढ़ हो, किन्तु अभी तक सत्ता तुम्हारे पास नही है। तुम्हे पदारूढ करना तुम्हें शीघ्र सत्तारूढ करने का प्रयत्न था। और किसी तरह ऐसा न होता। जो हो, मेरे दिमाग में यही वात थी, जव मैंने कांटों के ताज के लिए तुम्हारा नाम सुझाया था। सिर पर घाव हो जाय तो भी इसे पहिने रहो। समिति की बैठकों मे फिर से अपनी विनोद-प्रियता दिखाओ। तुम्हारा यही अत्यन्त सामान्य स्वरूप होना चाहिए। न कि एक चिन्तामग्न क्षुव्ध व्यक्ति का, जो जरा-जरा सी वात पर उवल पड़ने को तैयार हो।

काश तुम मुझे तार से खवर दो कि मेरा पत्र पढ़ लेने के वाद तुम्हें उतनी ही प्रफुल्लता अनुभव हुई जितनी लाहौर में नववर्ष के दिन हुई थी, जव तुम तिरंगे झण्डे के चारों ओर नाचते वताये गये थे! अपने गले को भी तो तुम्हें अवसर देना ही चाहिए।

मैं अपना वयान फिर से देख रहा हूं। मैंने निश्चय किया है कि जवतक तुम इसे देख न लो, मै इसे प्रकाशित न करूँ।

मैने यह भी निर्णय किया है कि हमारे पत्र-व्यवहार को महादेव[1] के सिवा कोई और न देखे।

सस्नेह
वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १५।७।१९३६। नेहरू संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४१४. पत्र : चन्द्रत्यागी को

भाई त्यागी,

तुमारा खत पूरा पढ़ा नही जाता वलवीर को क्षय होना दुःखद वात है. अव कैसे है?

वापु के
आशीर्वाद

२१।७।३६, सेगांव

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), २१।७।१९३६। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ६०९७) से]

---

१. महादेव देसाई, गांधी जी के वैयक्तिक सचिव।

४१५. पत्र : राजकिशोरी को

चि० राजकिशोरी,

तेरा खत मिला. जिस जगह तुमको शांति मिले वही रहो.

बापु के
आशीर्वाद

सेगांव
२१-७-३६

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), २१।७।१९३६। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ६६३८) से]

४१६. पत्र : साहेबजी महाराज को

प्रिय साहेबजी महाराज,

मेरे पत्र पर आपके तुरन्त ध्यान देने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। मिस्त्री जितनी जल्द आ सके कृपया उसे भेज दीजिए। मैं यह भी बता दूं कि नौ कास्ट, एक सादी सर्विग मशीन तथा ग्रामीण निहाई के सिवा स्मारे पास औजार भी नही है। जिन औजारों की जरूरत हो उन्हें मिस्त्री को साथ लाना चाहिए। यदि वे हमारे खर्च की क्षमता के अन्दर होंगे तो हम उन्हे खरीद लेंगे। यदि वे हमारे साधन के बाहर होंगे तो जब उसके लौटने का समय आ जायगा तो वे सब मिस्त्री के साथ चले जायंगे। जिस दिन वह वर्धा पहुंचेगा, उसी दिन से उसे ६० रुपये माहवार दिये जायंगे या अगर आप ज्यादा अच्छा समझेंगे तो यह वेतन उसके आगरा छोड़ने के दिन से भी दिया जा सकता है। क्या आप कृपापूर्वक हमें यह भी बतायेंगे कि उसके निवासादि के लिए हमसे क्या उम्मीद की जायगी ? चर्मालय खुली जगह में स्थित है और डाकघर से लगभग १॥ मील दूर है। हम उसके उपयोग के लिए चर्मालय में दो कमरे दे सकेंगे।

मैं आपकी इस कृपापूर्ण आकांक्षा की कदर करता हूं कि चाहे आपकी नई दुग्धशाला को देखने के लिए ही हो, मुझे एक बार फिर दयालबाग आना चाहिए। मुझे ऐसा करने में खुशी होगी। किन्तु मेरी वर्तमान साधना सेगांव न छोड़ने में ही स्थित है। मैं इस लघु ग्राम में अपने चरण (स्थिति) का अनुभव करना चाहता हूं और उसमें निरन्तर तीनों ऋतुओं में रहना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि इस अवधि में भी मुझे इसके तीन उल्लंघन करने होंगे। इस सूची को मैं बढ़ाना नही

चाहता परन्तु मै इतना कह सकता हूं कि दयालवाग जाने के लिए मुझे किसी प्रलोभन या सिफारिश की जरूरत नही है।

आपका निश्छल
मो० क० गांधी

सेगांव
वर्धा २२-७-३६
—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २२।७।१९३६। साहेवजी महाराज, आगरा को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० २१६४) से]

४१७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

३० जुलाई १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

मै कितना चाहता हूं कि तुम 'पागलपन' के कामों को वन्द कर दो और आम भलाई के लिए अपनी शक्ति को वचाओ।

अगर तुम अपना विनोद कभी न छोड़ो और अपना पूरा कार्यकाल पूरा करो तथा अपनी नीति वर्तमान साथियो के द्वारा ही अधिक-से-अधिक चलाने का प्रयत्न करो तो सव ठीक हो जायगा। समय आ पहुंचा है कि भविष्य का अर्थात् अगले वर्ष की योजनाओं का विचार किया जाय। कुछ भी हो, तुम्हें विरोध में नही होना चाहिए। यह मेरी पक्की राय है। जव पिताजी की तरह तुम महसूस करो कि तुम कांग्रेस को अकेले ही संभालने को तैयार हो तव मेरे खयाल से वर्तमान साथियों की ओर से कोई विरोध नहीं पाओगे। आशा है, वम्वई में तुम्हारा मार्ग साफ रहेगा।

कमला-स्मारक से मुझे वेचैनी हो रही है। मुझे मालूम नही कि चन्दे या योजना के विषय में क्या हो रहा है। अगर खुरशेद[1] या सरूप या दोनों इस चीज पर पूरा ध्यान लगा रही है तो अच्छा है। सरूप से कहना है कि मैं आशा रखता हूं कि इस सम्वन्ध में वह जो कुछ करेगी उससे मुझे परिचित रक्खेगी।

---

१. खुरशेद कैप्टेन, वम्वई की प्रसिद्ध पारसी महिला, जिन्होंने असहयोग और सत्याग्रह-युग में वहां अपने रचनात्मक कार्यो से काफी जागरण पैदा किया था।

मैं यहां समाजवाद के प्रश्न की चर्चा नही करूंगा। ज्योंही मैं अपनी टिप्पणी को दुबारा देख लेना समाप्त कर दूंगा, उसका मस्विदा तुम्हारे पास पहुंच जायगा, और अखबारों को बाद में भेजा जायगा। मेरी कठिनाई सुदूर भविष्य के विपय में नही है। मैं तो सदा वर्तमान पर ही पूरा ध्यान लगा सकता हूं। और उसी की मुझे कभी-कभी चिन्ता होती है। यदि वर्तमान को सँभाल लिया जाय तो भविष्य अपने-आप सँभल जायगा। किन्तु मुझे आगे की वात नहीं सोचनी चाहिए।

आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य सचमुच अच्छा रह रहा होगा।

सस्नेह,
वापू

मेरे और जेनकिंस के वीच का पत्र-व्यवहार तुम देख लेना। मुझे भी कानूनी कार्रवाई से घृणा है। परन्तु यह मामला मुझे ऐसा लगता है, जिसमें कार्रवाई जरूरी है।

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ३०।७।१९३६। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४१८. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

भाई हनुमान प्रसाद,

तुमारा वर्णन हृदयद्रावक है. वावा राघवदास का वर्णन भी आ गया है. तुम सव पारमार्थिक काम कर रहे है. अच्छा है, ईश्वर तुम्हें सराहेगा और हजारों गरीवों की रक्षा होगी.

बापु के आशीर्वाद

४-८-३६

—हिन्दी। ४।८।१९३६। गांधी जी के स्वाक्षरों में लिखे मूल पत्र से।]
सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार।

४१९. पत्र : साहेबजी महाराज को

[यह पत्र महादेव भाई के हाथ का लिखा जान पड़ता है। हस्ताक्षर मात्र गांधीजी ने अपने हाथ से किये हैं।—सम्पा०]

प्रिय साहेबजी महाराज,

आपके पत्र के लिये अनेक धन्यवाद। हम १२ वीं को मिस्त्री की प्रतीक्षा करेंगे, उसे आने का यात्रा-व्यय दिया जायगा और उसकी तनख्वाह आगरा से उसके रवाना होने के दिन से शुरू होगी।

इस प्रयोग से मैं वहुत प्राप्त होने की आशा करता हूं।

आपका निश्छल
मो० क० गांधी

सेगांव-वर्धा
५-८-३६

—अंग्रेजी। सेगांव, वर्धा, ५।८।१९३६। जी० एन० २१६५ की फोटो-नकल से]

४२०. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को

भाई हनुमान प्रसाद,

मनुष्य वहुत कमजोर प्राणी है. वह जितना दूसरों के छोटे पाप को वडा करके मानता है, वैसा अपने पाप को भी नही मानता. ऐसा कोई आदमी नही जो यह दावा करे कि जिदगी में मैने कोई पाप नही किया. लेकिन जो अपने को सदाय देखता रहता है, ईश्वर की खोज मे लगा है उसे तो अपने थोड़े पाप भी पहाड़ लगेंगे और वह उनसे छूटने के लिए द्रौपदी की तरह ईश्वर को पुकारेगा. ईश्वर ऐसे की पुकार सुनता है. और उसको पापमुक्त कर देता है.

वर्धा ११।८।३६　　　　बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। वर्धा, ११।८।१९३६ गांधीजी के मूल पत्र से।]
सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार।

४२१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगाव
२८ अगस्त १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

कल की हमारी वात-चीत ने मुझे विचार मे डाल दिया है। क्या कारण है कि पूरी इच्छा होते हुए भी मै उस चीज को नही समझ सकता, जो तुम्हारे लिए

इतनी स्पष्ट है? जहां तक मैं जानता हूं, मुझे बौद्धिक ह्रास का मर्ज नहीं लगा है। तो फिर तुम्हें कम-से-कम मुझे यह समझाने के लिए कि तुम चाहते क्या हो पूरा दिल क्यों न लगा देना चाहिए? सम्भव है, मै तुमसे सहमत न होऊं किन्तु मेरी स्थिति तो ऐसा कहने की होनी चाहिए। कल की बात-चीत से इसपर प्रकाश नही पड़ता कि तुम्हारे जी में क्या है? और शायद जो बात मेरे लिए सही है वही और भी कुछ लोगों के लिए हो। मै इस समय इसकी चर्चा राजा से कर रहा हूं। तुम भी समय निकाल सको तो मैं चाहूंगा कि अपने कार्यक्रम की चर्चा उनसे कर लो। मेरे पास समय नहीं है, इसलिए विस्तार से नही लिखूंगा। तुम जानते हो, मेरा क्या मतलब है।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २८।८।१९३६। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४२२. पत्र : चन्द्रत्यागी को

(पोस्टकार्ड)

सेगांव, वर्धा
१४-९-३६

भाई चन्द त्यागी,

तुम्हारा पत्र कई दिनों से मेरे सामने पड़ा है लेकिन आजतक मैं उसको पहूंच नही सका। बलबीर के बारे में तुमने खबर अच्छी दी है। मैं उसे मेरे पास नही बुला सकता हूं क्योंकि देहाती जीवन व्यतीत करने की बड़ी कोशिश कर रहा हूं। इस देहात में मेरे पास रहने की जगह भी नही है। न मैं यहां का कुटुम्ब बढ़ाना चाहता हूं; जो मै साबरमती इत्यादि जगह में कर सकता था वह करने की न शक्ति रही है, न इच्छा रही है। देहात की मेरी साधना परिमित कुटुम्ब को रखकर ही हो सकती है। यदि जीवनदोरी आगे चलनेवाली है तो भविष्य में क्या हो सकता है यह तो ईश्वर ही जाने। राजकिशोरी तो मुझको बिलकुल भूल गई ही है न? कभी लिखती भी नही है। क्या करती है कितना खर्च करती है?

बापू के आशीर्वाद

[टिप्पणी—पत्र लिखा दूसरे का है। हस्ताक्षर-मात्र गांधी जी के है।]
—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), १४।९।१९३६। जी० एन० ६६३३ तथा सी० डवल्यू० ४२८० की फोटो-नक़ल से]

४२३. पत्र : साहेबजी महाराज को

प्रिय साहेवजी महाराज,

जिस मिस्त्री को आपने कृपापूर्वक मेरे पास भेजा था, वह हमें पूर्ण सन्तोप देता रहा है। वह सव असामान्य समयों मे भी इस हेतु से काम करता रहा है कि यदि सम्भव हो तो उसे अपने समय के पहिले ही मुक्त किया जा सके। वह १२ तारीख तक काम चलाने के लिए काफी-कुछ सिखा देगा। वह १३वी को विदा होना चाहता है। यदि मैनेजर जोर देते तो वह पूरे छः महीने रह सकता था। किन्तु उतने समय तक उसे रोक रखना आवश्यक नही था।

अप मैं चाहता हूं कि मैनेजर श्री वालूजकर दयालवाग जायं और वहां कुछ दिन रहकर देखें।...[1]

सेगांव-वर्धा
७।१०।३६

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ७।१०।१९३६। जी० एन० २१६६ की फोटो-नक़ल से]

४२४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

प्रिय जवाहरलाल,

जैसी मुझे आशा है, तुम आज खत्म कर लो तो शायद मुझे कल दोपहर के वाद चले जाने दोगे।

यदि भविष्य में कांग्रेस अविवेशन गांवों मे करने के विपय में मेरा सुझाव तुम्हें पसन्द आ गया हो तो मैं चाहूंगा कि तुम कांग्रेस से फरवरी और मार्च के वीच मे अविवेशन करने के पुराने नियम को फिर से चालू कर देने के लिए कहो। सम्भव

---

१. यहां पत्र के अक्षर वहुत धूमिल पड़ गये हैं और पढ़े नही जाते।

हो तो हजारों को जाड़े के मौसम के कष्टों से बचाना चाहिए। संसदीय लोगों को इस व्यवस्था के अनुकूल बन जाना चाहिए। यदि विधान-मण्डलों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हो जाय तो कोई कारण नही कि बड़े दिन, ईस्टर आदि की तरह उन्हें छुट्टी क्यों नहीं रखनी चाहिए। मैने सरूप से कहा है कि कमला-स्मारक के लिए कही-न-कही जल्दी जमीन जुटा लेनी चाहिए और फिर उसके लिए घर-घर चन्दा इकट्ठा करने का काम शुरू कर देना चाहिए।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। २८।१२।१९३६। नेहरू संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४२५. पत्र : हनुमानप्रसाद पोद्दार को[1]

भाई हनुमान प्रसाद,

तुम्हारा पत्र तुम्हारे प्रेम का प्रतीक है. बाकी मृत्यु तो जन्म का साथी ही है और है बड़ा वफादार. कभी धोखा नही देता.

भगवद्भजन, मृत्यु के नजदीक ही होने से क्यों? जिसे मै भगवद्भजन मानता हूं वह तो प्रतिक्षण चलता ही है. भगवान की सृष्टि की भगवत्प्रीत्यर्थ सेवा उसका भजन है. आजकल उसमें सूर देता है तेनत्यक्तेन भुंजीथा.

तुमारा स्वप्ना झूठा क्यों हो? १०० वर्ष तक जीऊंगा तो भी मित्रों को मृत्यु जल्दी जचेगा. तब आज या कल की बात क्या? और भजन तो सदाय करते रहें—तुम जवान भी और मैं वृद्ध भी.

सेगांव
१०-२-३७

बापू के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), १०।२।१९३७। गांधी जी के स्वाक्षरों में लिखित मूल प्रति से।]
सौजन्य : श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार।

---

१. देखिए श्री पोद्दार का स्वप्नवाला आशंकापूर्ण पत्र।

४२६. पत्र : सुरेश सिंह को

भाई सुरेश सिह

तुम्हारा खत मिला. दिल चाहे तब आजाना. सब काम अच्छी तरह से चलता होगा कौटुम्बिक कलह कुछ नहिं होगा.

१२-२-३७ बापू के आशीर्वाद

सेवा गांव-वर्धा

— हिन्दी। सेवाग्राम, वर्धा, १२।२।१९३७।]

सौजन्य : श्री सुरेश सिंह, कालाकांकर।

४२७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा

५ अप्रैल, १९३७

दुबारा नही देखा

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हे बीमार क्यो होना चाहिए ? बीमार हो जाने पर तुम आराम क्यो नही करते ? मैने सोचा था कि इन्दु के आने के बाद तुम चुपके से कही चले जाओगे। जब वह आ जाय तो उसे मेरा प्यार पहुँचा देना। इस पत्र के साथ उसे भी दो शब्द लिख रहा हूं।

अब तुम्हारे रूठने की बात। किसी भी तरह सही, मैं जो भी कहता या शायद करता भी हूं, वही तुम्हे खटकता है। चुप रहना असम्भव था। मेरा खयाल था कि सन्दर्भ में शिष्टता और अशिष्टता शब्द बिल्कुल ठीक आ गये। बयान के बारे मे कांग्रेस की ओर से शिकायत का पहिला स्वर तुम्हारा निकला है। यदि सभी को शिकायत थी तो मै क्या कर सकता था ? मुझे खुशी है कि तुमने लिख दिया। जबतक मेरी समझ साफ न हो जाय या तुम्हारे डर दूर न हो जाय तबतक तुम्हे मुझे बर्दाश्त करना होगा। मुझे अपने बयान से कोई हानि होने का अन्देशा नही है। क्या तुम्हारे दिमाग में कोई ऐसी चीज है जिसे मै नही समझता ?

कमला देवी ने वर्धा से मद्रास तक हमारे साथ सफर किया। वह दिल्ली से आ रही थी। वह मेरे डब्बे मे दो बार आई और लम्बी बाते कर गई। अन्त में वह जानना चाहती थी कि सरोजिनी देवी को क्यों नही शामिल किया गया, लक्ष्मी-

पति को राजा जी अलग क्यों रख रहे है, अनुसूया बाई को क्यों बाहर रक्खा गया ? तब मैने उन्हें बताया कि अलग रखने के मामले में मैने क्या भाग लिया और उस दिन मौनवार को मैने तुम्हारे लिए जो नोट लिखा था उसका जितना भाग मुझे याद था, लगभग सारा उन्हें कह सुनाया। अवश्य ही मैंने उन्हें बताया कि गुरु में सरोजिनी को न लेने और बाद में ले लेने में मेरा कोई हाथ नही था। मैंने उनसे यह भी कहा कि जहांतक मुझे मालूम है, लक्ष्मीपति को न लेने से राजा जी का कोई वास्ता नही था। मैने सोचा तुम्हें यह सब मालूम होना चाहिए।

आशा है, इस पत्र के पहुंचने तक तुम फिर पूरी तरह तन्दुरुस्त हो जाओगे। माताजी के विषय में तुमने कुछ नही लिखा।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, ५।४।१९३७। नेहरू संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४२८. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई बनारसीदास,

सुमात्रा ईत्यादि की यात्रा का जो कारण है उसके साथ मारिशियस ई० की यात्रा किसी तरह नही मिलती है। ब्रह्मदेश, सुमात्रा, जावा, सायाम इ० पूर्व की संस्कृति से संबंध रखनेवाले देश हैं। उनका हिदुस्तानी भाषाओ के साथ संबंध होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसमें मतलब यह नही कि वे लोग सबके सब हिदी सीखेंगे, लेकिन उनमें से कोई हिन्दी का अभ्यास करे तो आश्चर्यजनक न माना जाय।

बापु के आशीर्वाद

५-५-३७
सेगांव, वर्धा

[टिप्पणी—यह पत्र लिखा किसी और के हाथ का है। हस्ताक्षर मात्र गांधी जी के है।]

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), ५।५।१९३७। जी० एन० २५५९ की फोटो-नक़ल से]

४२९. तार : जवाहरलाल नेहरू को

[यह तार वर्धागंज तारघर से १४।६।३७ को दिया गया था और कलकत्ता में १५।६।३७ को प्राप्त हुआ था।—सम्पा०]

जवाहरलाल मार्फत डाक्टर विधान राय वेलिंगटन स्ट्रीट, कलकत्ता

मुझे आशा है तुम (और) इन्दु अच्छे हो। उसको और मौलाना[1] के साथ आगामी हफ्ते में आओ, मोसिम ठण्डा होने लगा है।

प्रेम

बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, १४।६।१९३७। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

४३०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मुझे अभी-अभी मिला है। यद्यपि तीन दिन बहुत थोड़े सिद्ध हो सकते है, फिर भी वे कुछ न होने से तो अच्छे ही रहेंगे। यह अफसोस की बात है कि इन्दु तुम्हारे साथ नही आ सकती। मैंने तो सोचा था कि उसने गत साल पहिले टासिल का जो आपरेशन करवाया था वह आसरी था। मैं माने लेता हूं कि यह भी पहिले की भांति ही सरल होगा।

तुम सबको प्रेम

२२-६-३७

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २२।६।१९३७। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. मौलाना अबुलकलाम आजाद।

४३१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२५ जून, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

सीमा-नीति पर तुम्हारा वक्तव्य अभी मिला। खानसाहब ने और मैंने उसे पढ़ लिया। मुझे वह बहुत पसन्द आया। पता नहीं स्पेनवालों और अंग्रेजों की बमबारी बिल्कुल एक-सी है या नहीं। क्या अंग्रेजों-द्वारा की हुई हानि की मात्रा मालूम कर ली गई है? अंग्रेजों की बमबारी का प्रकट कारण क्या बताया गया है? इस बात पर हँसना भी मत और क्रोध भी न करना कि मैं इन चीजों को उतनी अच्छी तरह नही जानता जितना तुम जानते हो। अखबारों को जितना कम मैं देखता हूं उससे मुझे बहुत कम ही जानकारी हो सकती है। किन्तु मेरे प्रश्नों का उत्तर देने का कष्ट मत उठाना। तुम्हारे बयान पर होनेवाली प्रतिक्रियाओं का मैं ध्यान रखूंगा। शायद उनसे कुछ प्रकाश पड़े और जो कमी रह जाय वह जब हम मिलेंगे तब तुम पूरी कर ही दोगे। आशा है, मौलाना आयंगे। लेकिन वह न आ सकें तो भी मैं चाहूंगा कि तुम तो उस तारीख पर अवश्य पहुंच जाओ। इन तीनों शान्त दिनों में हम साथ रहेंगे।

आशा है, इन्दु अच्छी तरह होगी।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २५।६।१९३७। नेहरू संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४३२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
१० जुलाई, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

कल मौलाना साहब[1] से मेरी लम्बी बातें हुईं। यदि प्रान्तों में मुस्लिम मन्त्रियों

---

१. मौलाना अबुल कलाम आजाद।

का चुनाव उनकी सलाह से करना है तो मेरे विचार से इस आशय की सार्वजनिक घोषणा कर देना बेहतर होगा। मौलाना सहमत है। यदि तुम्हारे खयाल में कार्य-समिति से परामर्श लेना चाहिए तो मेरा सुझाव है कि तार से ले लिया जाय।

मै आशा करता हूं कि तुम हिन्दी-उर्दू के विषय में जल्दी ही लिखोगे।

सनेह
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १०।७।१९३७। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४३३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
१५ जुलाई, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

आज चुनाव का दिन है। मै निगाह रख रहा हूं।

परन्तु यह पत्र मैं तुम्हें यह बताने के लिए लिख रहा हूं कि मैंने कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलो के कार्यकलाप और सम्बन्धित विषयों पर लिखना शुरु कर दिया है। मुझे हिचकिचाहट थी परन्तु मैने देखा कि जब मेरी भावनाएं इतनी तीव्र हो गई है तो लिखना मेरा कर्त्तव्य है। काश मैं तुम्हें 'हरिजन' के लिए अपने लेख की अन्तिम प्रति दे सकता! यह महादेव देख लेगे। यदि उनके पास नकल होगी तो भेज देगे। तुम देख लो तो मुझे बताना कि मैं इस तरह लिखता रहूं क्या? सारी स्थिति से निपटने के तुम्हारे काम मे मुझे हस्तक्षेप नही करना चाहिए, क्योकि देश के लिए मैं तुम्हारा अधिक-से-अधिक उपयोग चाहता हूं। यदि मेरे लिखने से तुम्हे अशान्ति हो तो मेरे हाथो निश्चित हानि होगी।

आशा है, मौलाना-सम्बन्धी मेरा पत्र तुम्हें मिला होगा।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १५।७।१९३७। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४३४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२२ जुलाई १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

मौलाना साहब एक दिन वर्धा ठहर गये थे और हमारी लम्बी बात-चीत हुई। उन्होंने मुझे विधान-सभा के मुस्लिम लीगी और कांग्रेसी सदस्यों के समझौते का मस्विदा दिखाया। मेरे विचार से यह अच्छा दस्तावेज है। परन्तु उन्होंने मुझे बताया कि तुम्हें तो यह पसन्द है, टण्डनजी को नही है। मौलाना के सुझाव के अनुसार मैंने इसके विषय में टण्डनजी को लिखा है। आपत्ति क्या है?

पांच सौ रुपया वेतन, बड़ी-सी कोठी और मोटर पर कड़ी आलोचनाएं हो रही है। मैं जितना ही सोचता हूं उतना आरम्भ में ही इतनी फिजूलखर्ची बुरी मालूम होती है। इसके विषय में मैने मौलाना से भी बातचीत की थी।

इन्दु कैसी है?

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २२।७।१९३७। नेहरू संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४३५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
३०।७।१९३७

प्रिय जवाहरलाल,

आशा है कि महादेव ने तुम्हारे हिन्दी-सम्बन्धी निबन्ध की पहुँच के अतिरिक्त कल यह भी बता दिया होगा कि वाइसराय ने मुझे ४ तारीख को दिल्ली बुलाया है—किसी विशेष कारण नहीं, केवल मिलने की खातिर। मैंने उत्तर दिया कि उन्होंने मेरी इच्छा का पहिले से ही अनुमान कर लिया क्योंकि खां साहब पर लगे प्रतिबन्ध और सीमाप्रान्त की अपनी यात्रा के विषय में उनसे मुलाकात मांगने की मेरी इच्छा थी ही। तदनुसार मै ४ तारीख को दिल्ली पहुंच रहा हूं। मुलाकात

का निर्धारित समय ११-३० बजे है। इसलिए मुझे उसी दिन लौटकर ५ को सेगांव पहुंच जाने की आशा है।

परन्तु यह पत्र तो तुम्हें जाकिर के पत्र की नक्ल भेजने के उद्देश्य से है जो बम्बई के हाल के दंगे और हिन्दी-उर्दू के दुर्भाग्यपूर्ण विवाद पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मैंने लिखा था। मैंने सोचा कि इस सुविचारित पत्र को मैं तुम पर भी प्रकट कर दूं।

मैं झांसी के चुनाव को भयंकर पराजय नहीं मानता। यह एक सम्मानपूर्ण पराजय है और उससे यह आशा होती है कि यदि हम परिश्रम करते रहें तो मुसलमानों तक कांग्रेस का सन्देश कारगर ढंग पर पहुंचा सकते हैं। परन्तु मेरी यह राय अब भी कायम है कि केवल सन्देश ही पहुंचाया जाय और साथ-साथ देहात में ठोस काम न किया जाय तो अन्ततः हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा। परन्तु यह सब इस पर निर्भर है कि हम शक्ति किस ढंग से पैदा करना चाहते हैं।

मेहरअली का मद्रास का भाषण मेरे लिए आँखें खोलने वाला है। पता नहीं, वह सामान्य समाजवादी विचार को कहां तक व्यक्त करते हैं। राजाजी ने मुझे उनके भाषणवाली एक कतरन भेजी थी। आशा है, उन्होंने तुम्हें भी एक नकल भेजी होगी। मैं इसे बुरा भाषण कहता हूं। तुम्हें इस पर ध्यान देना चाहिए। कांग्रेस की नीति के, जैसी मैं समझता हूं, यह विरुद्ध पड़ता है।

मद्रास में राय का भाषण भी हुआ है। मैं मान लेता हूं कि तुम्हें ऐसी सब कतरनें मिलती होंगी। फिर भी तुरन्त तुम्हारे देखने के लिए कतरनें साथ में हैं, जो प्यारेलाल[1] ने मेरे लिए तैयार की है। राय मुझे भी लिखते रहे हैं। तुम्हे उनका ताजा पत्र देखना चाहिए। मैंने फाड़ न दिया हो तो वह इस पत्र के साथ होगा। उनके रवैये पर तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया है? जैसा मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूं, उन्हे समझना मेरे लिए कठिन हो रहा है।

खादी के लिए तुम्हारा दिया हुआ नाम 'आजादी की वर्दी' जबतक हिन्दुस्तान में अंग्रेजी भाषा बोली जायगी तबतक जिन्दा रहेगा। इस मनोहर शब्द-प्रयोग के पीछे जो विचार है उसका पूरी तरह हिन्दी में अनुवाद करने के लिए किसी प्रथम श्रेणी के कवि की आवश्यकता होगी। मेरे लिए वह केवल काव्य ही नहीं, परन्तु एक ऐसा महान सत्य का प्रतिपादन करता है जिसका पूरा अर्थ समझना अभी शेष है।

सस्नेह

बापू

---

१. प्यारेलाल, गांधी जी के एक निजी सचिव।

यद्यपि राय के भाषण से सम्बन्धित अंश मेहरअली वाले अंश के बाद ही आता है फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि वह मेहरअली के अंश के मुकाबले का है।
——अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ३०।७।१९३७। नेहरू संग्रहालय से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४३६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

रेल में
३ अगस्त १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

यह मैं दिल्ली ले जानेवाली गाड़ी में लिख रहा हूं। मेरा प्राक्कथन, या जो कुछ भी इसे कहो, साथ में है। मैं तुम्हें कोई लम्बी-चौड़ी चीज नही दे सका।

तुमने 'पख्तो' और पंजाबी के पहिले 'शायद' रखा है। मेरा सुझाव है कि तुम यह क्रियाविशेषण हटा दो। मिसाल के लिए खानसाहब 'पख्तो' को कभी नहीं छोड़ेंगे। मेरा ख्याल है, यह किसी लिपि में लिखी जाती है, यद्यपि मैं भूल गया हूं कि किस लिपि में। और पंजाबी? गुरुमुखी में लिखी हुई पंजाबी के लिए सिख तो मर मिटेंगे। उस लिपि में कोई शोभा नही है। किन्तु मुझे मालूम हुआ है कि सिन्धी की तरह वह भी सिखों को हिन्दुओं से अलग करने के लिए खासतौर पर ईजाद की गई थी। यह बात हो या न हो। फिलहाल तो सिखों को गुरुमुखी छोड़ने को राजी करना मुझे असम्भव लगता है।

तुमने चारों दक्षिणी भाषाओं में से कोई सामान्य लिपि तैयार करने का सुझाव दिया है। मुझे उनके लिए चारों की मिली-जुली लिपि की तरह ही देवनागरी भी उतनी ही आसान मालूम होती है। व्यावहारिक दृष्टि से उन चारों में से मिली-जुली लिपि का आविष्कार हो नहीं सकता। इसलिए मेरा सुझाव है कि तुम केवल इतनी ही सामान्य सिफारिश करो कि जहां कहीं सम्भव हो, जिन प्रान्तीय भाषाओं का संस्कृत से सजीव सम्बन्ध है, वे यदि उसकी शाखाएं नही है तो उन्हें संशोधित देवनागरी अपना लेनी चाहिए। तुम्हें मालूम होगा कि यह प्रचार जारी है।

बस अगर तुम मेरी तरह सोचते हो तो तुम्हें यह आशा प्रकट करने में संकोच नही होना चाहिए कि चूंकि किसी-न-किसी दिन हिन्दुओं और मुसलमानों को दिल से एक होना ही है, इसलिए जो हिन्दुस्तानी बोलते है उन्हें भी एक देवनागरी

लिपि ही अपना लेनी चाहिए, क्योंकि वह अधिक वैज्ञानिक है और संस्कृत से निकली हुई भाषाओं की महती प्रान्तीय लिपियों के निकट है।

अगर तुम मेरे सुझाव आंशिक या पूरे स्वीकार कर लेते हो तो तुम्हें आवश्यक परिवर्तन मंजूर करते हुए स्थानों को खोज निकालने में कोई कठिनाई नहीं होगी। तुम्हारा समय बचाने की खातिर मैंने स्वयं ही ऐसा करने का इरादा किया था, परन्तु अभी मुझे अपने शरीर पर इतना भार नहीं डालना चाहिए।

मैं यह मान लेता हूं कि तुम्हारे सुझाव के मेरे समर्थन का यह अर्थ नही है कि मैं हिन्दी सम्मेलन वालों से हिन्दी शब्द का प्रयोग छोड़ देने के लिए कहूं। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा यह मतलब नही हो सकता। मैं जहां तक सोच सकता हूं, उस मतलब को अन्तिम सीमा तक ले गया हूं।

यदि तुम मेरे सुझावों को स्वीकार नहीं कर सकते तो ठीक-ठीक बात बताने की खातिर 'प्राक्कथन' में यह वाक्य जोड़ देना बेहतर होगा। "बहर हाल मुझे उनका सामान्य ढंग पर समर्थन करने में कोई संकोच नही है।"

आशा है, इन्दु का आपरेशन अच्छी तरह हो जायगा।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। ३।८।१९३७। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४३७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

रेल में
४ अगस्त १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

मैं मूर्ख हूं। तुम्हारा पत्र मिलाने पर मैने अपनी फाइल देखी तो मेहरअली के भाषणवाली कतरन मिल गई। मैने उनके भाषण का, न कि मसानी के भाषण का, हवाला दिया था।

यह पत्र मुझे वर्धा ले जानेवाली गाड़ी में लिखा जा रहा है। अब रात के १०-

३० बज गये हैं। मैं नीद से जग उठा, भाषण का खयाल आया और ढूंढ़ने लगा। कलवाला डिब्बा ज्यादा अच्छा था।

मैं वाइसराय से मिला। तुमने सरकारी विज्ञप्ति देखी होगी। उसमें मुलाकात का सार सही-सही दिया गया है। कुछ और प्रासंगिक बातें भी थी, जिनका जिक्र कृपलानी तुमसे मिलने पर करेंगे। एक बात का उल्लेख यहां कर दूं। जैसे मुझे बुलाया वैसे शायद वह तुम्हें भी बुलायें। मैने उनसे कहा कि अगर निमन्त्रण भेजा जायगा, तो शायद तुम इन्कार नही करोगे। क्या मैने ठीक कहा?

मुझे अफसोस है कि मैंने राय के भाषण तुम पर थोपे। मैने सोचा कि तुम उन्हें पढ़ोगे तो अवश्य ही। उन पर तुम्हारी राय जानने की जल्दी मुझे नही है। यदि तुम पहिले ही पढ़ न चुके हो तो सुविधा से पढ़ लेना।

मैंने जान लिया कि तुम इन्दु का आपरेशन बम्बई में करा रहे हो।

सस्नेह
बापू

—अंग्रेजी। ४।८।१९३७। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४३८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
८ अगस्त १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

मेहरअली के भाषण-सम्बन्धी तुम्हारे पत्र के एक मुद्दे पर लिखना मै भूल गया था। मेरा मतलब ग्रीष्म-विद्यालय के कैदियों को छोड़ने के बारे में राजाजी की विज्ञप्ति से है। तुम्हारा पत्र प्राप्त होने से पहले मैं उसे पढ़ चुका था, परन्तु उस पर मैंने बुरा नही माना। मेरा विचार है कि चूंकि तुमने तो ग्रीष्म-विद्यालय के छात्रों की कार्रवाई को पसन्द किया था और मै किसी भी तरह से उसका समर्थन नहीं कर सकता था, इसलिए मेरे विचार से इस बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक था कि रिहाई का अर्थ इस कानून-भंग का समर्थन करना नही है, और कानून-भंग तो था ही। मुझे अन्देशा है कि जब कांग्रेस सत्ता में होगी तब वह अक्सर वही भाषा काम में लेगी, जो उसके पहिले शासन इस्तेमाल किया करते थे। फिर भी उसका हेतु दूसरा ही होगा।

आशा है बम्बई में आपरेशन के सिलसिले में तुम्हारी अच्छी गुजर रही होगी। जब वह हो जाय, तो तार देना।

सस्नेह,
बापू

यदि नरीमान[1] तुम्हारे पास आयें तो उन्हें जांच की आज्ञा दे देना। मुझे खेद है कि बम्बई में तुम्हें इस मामले की झंझट रहेगी। महादेव[2] तुम्हें बतायेंगे कि मैं क्या करता रहा हू।

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ८।८।१९३७। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४३९. पत्र : सम्पूर्णानन्द को

भाई सपूर्णानन्द,

मैने तो सोचा था कि आपकी तबियत हमेशा अच्छी ही रहति है और आपका शरीर खूब मजबूत है. नरेंद्र देव बहूत बिमार है, जयप्रकाश जैसा वैसा और आपको कमल और हृदय-कपन ?

गूजरात में दिनकर हमेशा का बिमार. मेहरअली तो दूर्बल ही है. मसानी के हाल नही जानता हूं. मुझे कुछ ऐसे ही लगता है कि आप सब लोगो के लिए मैं एक नैसर्गिक आवासगृह खोलु, दूसरी प्रवृत्ति छोड़ दूं. आपतो जानते है कि मैं नैसर्गिक उपचार-दिवाना हू इसलिए मेरा दीवानापन को उत्तेजित न करने के निमित्त से भी अच्छे हो जाओ.

आपका खत मेरे प्रश्नों पर अच्छा प्रकाश डालता है मेरे प्रश्नों के बारे मे अब कुछ पूछना हमको नहि है लेकिन आपके पत्र से और कई प्रश्न पैदा होते है उस बारे मे तो हम जब मिल सकते है तब ही कुछ वार्तालाप करेगे. एक बात कह दूं. ऐसा कहना कि 'समझौते से हम अपने आदर्श के नजदीक कभी नही जा सकते

---

१. के० एफ० नरीमान, बम्बई के प्रसिद्ध पारसी राष्ट्रीय नेता।
२. महादेव देसाई, गांधी जी के अवैतनिक निजी मन्त्री।

है' ठीक नहीं जंचता है. हां, इतना है (कि) समझौता का कारण दूर्बलता...[1] नहीं होना चाहिये।

दूसरी किताव जो लिखना चाहते हैं, अवश्य लिखें. मुझे तो आपकी शैली अच्छी लगती है.

आपका
मो० क० गाधी

सेगाव
वर्धा १७-८-३७

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), १७।८।१९३७।]

सौजन्य : श्री सर्वदानन्द।

४४०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
१ अक्तूबर, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

जहांतक मेरा सम्वन्ध है, पट्टाभि भी अच्छा चुनाव है। परन्तु मेरे खयाल से, समिति के सदस्यों की राय ले लेनी चाहिए।

पता नही, वर्धा मे होनेवाले शिक्षा-सम्मेलन में शरीक होने का समय तुम निकाल सकोगे या नहीं। इसके लिए तुम्हें निमन्त्रण गया है; समय निकाल सको तो मैं चाहता हूं कि आ जाओ। परन्तु मैं यह नही चाहता कि अधिक महत्व-पूर्ण कार्य के कारण तुम्हारी कही और आवश्यकता हो तो भी तुम सम्मेलन के लिए समय निकालो। वेशक दो दिन तक जोर पड़ेगा, परन्तु तुम आ सको तो तुम्हारे रहने से शान्ति मिलेगी।

सस्नेह
बापू

पुनश्च—

इस पत्र के साथ सय्यद हवीव से मेरे पत्र-व्यवहार का परिणाम एक चेक और पत्र के रूप में भेजा जा रहा है। मैंने तुम्हारे साथ हुई वातचीत का जिक्र किये विना उन्हें इधर-उधर से रुपया ले लेने के लिए खूब झिड़क दिया है।

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १।१०।१९३७। नेहरू संग्रहालय से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. यह शब्द ठीक पढ़ा नहीं जाता।

४४१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
१२ अक्तूबर, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। २५ तारीख को यहां से चलकर कलकत्ता आने की कोशिश कर रहा हूं। तव मुझे कांग्रेसी प्रान्तों में मन्त्रि-मण्डलों के कार्य-कलाप का सब हाल बताना। आशा है गले की खरावी और जुकाम थोड़े ही दिन रहे होंगे और तुमने पंजाव का श्रम वर्दाश्त कर लिया होगा। सरहद की जलवायु तो वहुत ही सुखद होगी। मैं कितना चाहता हूं कि कम-से-कम कुछ ही समय के लिए तुम आराम कर लो।

सस्नेह,
वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १२।१०।१९३७। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४४२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा जाते हुए
१८ नवम्बर, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

मेरा खयाल है कि उस भयंकर रविवार की रात मे और सोमवार के मौन मे जब तुम मेरे आस-पास मँडरा रहे थे, तव तुम्हारी आंखों में मैं वह खानगी पत्र पढ़ सकता था। कमजोरी ने अभी मुझे छोड़ा नही है। सारे मानसिक श्रम से मुझे लम्बे विश्राम की आवश्यकता है, परन्तु शायद वह मिल नही सकता। यह पत्र तुम्हें यह खबर देने को लिख रहा हूं कि मैंने वंगाल के कैदियो के वारे में क्या किया है; मै यह भी जानना चाहता हूं कि मेरा काम तुम्हे पसन्द आया है या नही। समझौते की वात-चीत का दिमाग पर काफी वोझ रहा है। उसे शुरू करने से पहिले मैंने दोनों भाइयो से परामर्श कर लिया था कि वातचीत के द्वारा राहत प्राप्त करना वाञ्छनीय है या नहीं। परिणाम के वारे में उदासीन रहना और रिहाई के लिए जव

भी हो जाय, लोकमत के विकास पर निर्भर रहना सम्भव था। जबकि सार्वजनिक आन्दोलन चल रहा है उसी समय दोनों भाई[1] स्पष्ट बातचीत के पक्ष में थे। मैंने अपनी योजना भी बताई। वह उसी ढंग की थी जैसी अण्डमान के कैदियों के नाम मेरे तार में बताई गई थी। तदनुसार मै देवली से वापस लाये गये नजरबन्दों से और कल रात को हिजली के कैदियों से मिला। मन्त्रियों ने उन नजरबन्दों को, जिन्हें वे 'गांव और घर में' 'नजरबन्द' करते है, लगभग तुरन्त छोड़ देना स्वीकार कर लिया है और नजरबन्दों की छावनियों में, जिन्हें छोड़ना वे सुरक्षित समझेगे उन्हें भी, चार महीने के भीतर रिहा कर दिया जायगा। बाकी के लिए, यदि वे पहिले ही न छोड़ दिये गये हों तो मेरी सिफारिश मान ली जायगी।मेरी सिफारिश नजरबन्दों के वर्तमान विश्वास का पता लगा लेने पर निर्भर रहेगी। यदि मै सरकार से कह सकूगा कि लोग स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए हिसक उपायों में विश्वास नही रखते और समय-समय पर कांग्रेस-द्वारा पसन्द की गई कांग्रेस की प्रवृत्तियों में लगे रहेंगे तो उन्हें छोड़ दिया जायगा। नीति की घोषणा किसी भी समय की जा सकती है। कई जेलखानों में और हिजली की छावनी में कैदियों के साथ जो बातचीत हुई, उसका ब्यौरा देने की मुझे आवश्यकता नही है। मुझे पता नही कि यह सब तुम्हें पसन्द है या नहीं। यदि बहुत नापसन्द हो तो मै चाहूंगा कि तुम मुझे तार कर दो। नही तो मै तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूंगा।

अहमदाबाद की हड़तालों से मुझे अशान्ति हुई। अखबारों से जो कुछ जानकारी होती है उसके सिवा उनके बारे में मैं कुछ नहीं जानता। शोलापुर के विषय में भी यही बात है। यदि हम स्थिति पर काबू नही रख सकते, या तो इसलिए कि कुछ कांग्रेसी लोग कांग्रेस के अनुशासन को नहीं मानना चाहते, या इसलिए कि जो लोग कांग्रेस के प्रभाव से बाहर है, उनकी प्रवृत्तियों का नियन्त्रण कांग्रेस नही कर सकती तो हमारा पदारूढ़ रहना कांग्रेस के हित में बाधक सिद्ध हुए बिना नही रहेगा।

'वन्देमातरम'[2] का विवाद अभी तक शान्त नही हुआ है। कार्यसमिति के निश्चय पर अनेक बंगालियों को हार्दिक दुःख है। सुभाष ने मुझे बताया कि वह वातावरण को शान्त करने की कोशिश कर रहे है।

---

१. सम्भवतः शरत और सुभाषबोस से आशय है।

२. कांग्रेस कार्यसमिति ने निर्णय किया था कि राष्ट्रीय अवसरों पर बन्देमातरम गान की आरम्भिक पंक्तियां ही गाई जायं। उसी पर कुछ विवाद उठ खड़ा हुआ था।

आने वाले गवर्नर के पद संभाल लेने के बाद शायद मुझे बंगाल लौट जाना होगा।

आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। सरूप के बारे में अखबारों की खबर चिन्ताजनक थी। उस पर जो जोर पड़ रहा है, क्या उसका स्वास्थ्य उसे सहन नही कर सकता?

यह पत्र नागपुर के निकट आते-आते लिखा जा रहा है। हम आज शाम को वर्धा पहुंच रहे है।

सस्नेह

बापू

—अंग्रेजी। १८।११।१९३७। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४४३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
७ दिसम्बर, १९३७

प्रिय जवाहरलाल,

मैने मथुरा के प्रस्तावों या तुम्हारे भाषण को नही पढ़ा। मै दोनो देखना चाहता हूं।

महादेव के पत्र में तुम्हारी कोमल शिकायत पढ़ी। मैं क्या कर सकता हूं? मैं जैसा हूं तैसा ही तुम्हें मुझको स्वीकार करना होगा। मैं जानता हूं, तुम कर रहे हो। मैं यह भी जानता हूं कि मेरे प्रति तुम कितने कोमल हो।

क्रिप्स को जब चाहो अपने साथ ला सकते हो।

सस्नेह

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ७।१२।१९३७। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४४४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

यह अन्तिम मसविदा नही है। मैं चाहता हूं कि तुम इसे सहानुभूतिपूर्वक पढ़ो।

मैं महसूस करता हूं कि जबतक हम ऐसा कोई काम नहीं करेंगे, तनातनी जारी रहेगी। खैर, मै कैसे भी एक वजे रात तुम सबको आश्चर्य में डाल दूंगा। मैंने मौलाना के साथ इस विपय पर कुछ विस्तार से विचार-विमर्श किया है।

तुम्हारा सच्चा
४-४-३८ वापू

—अंग्रेजी। ४।४।१९३८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४४५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव
२५ अप्रैल, १६३८

प्रिय जवाहरलाल,

महादेव के सीमाप्रान्त के दौरे के विवरण की प्रतिलिपि साथ में है। चूंकि मै नही जा सकता था और हमे अशान्तिप्रद समाचार मिल रहे थे, इसलिए मुझे लगा कि उन्हें भेज दिया जाय। मै यह विवरण सब सदस्यों में नही घुमा रहा हूं। मैं मौलाना[1] और सुभाष[2] को नकलें भेज रहा हूं। विवरण से मै वेचैन हो गया हूं। महादेव को अधिक कहना है। अवश्य ही एक प्रति भाइयों[3] को भेज रहा हूं। आशा है, तुमको भाइयों पर अपना बड़ा असर इस्तेमाल करने की प्रेरणा होगी। मैं तो तार-द्वारा उनके सम्पर्क में हूं ही। मुझे जो आघात लगा है, उसके वावजूद अगर खान साहब चाहेगे तो मैं कुछ दिनों के लिए उस प्रान्त में जा भी सकता हूं। मालूम होता है, हम भीतर से कमजोर होते जा रहे है। इससे मुझे चोट लगती है कि हमारे इतिहास के इस वहुत नाजुक अवसर पर हम महत्वपूर्ण मामले में सहमत दिखाई नही देते। मै तुम्हें वता नही सकता कि यह जानकर मुझे कितना घोर अकेलापन होता है कि आजकल मै तुम्हें अपने विचार का नहीं वना सकता। मैं

---

१. मौलाना अवुल कलाम आजाद।
२. सुभाषचन्द्र बोस।
३. अब्दुलगफ्फार खां और खान साहव।

जानता हूं कि तुम प्रेमवश बहुत-कुछ करोगे। परन्तु राजनीतिक मामलों में स्नेह के आगे आत्मसमर्पण नही हो सकता, जब बुद्धि विद्रोह करती हो। तुम्हारी बगावत के कारण तुम्हारे प्रति मेरा आदर और भी गहरा है। परन्तु इससे अकेले-पन का दु:ख और भी तीव्र हो जाता है, लेकिन अब मुझे अपनी कलम रोकनी चाहिए।

प्यार,

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २५।४।१९३८। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४४६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

पेशावर जाते हुए, रेल में
३० अप्रैल, १९३८

प्रिय जवाहरलाल,

जिन्ना के साथ ३॥ घण्टे की बातचीत का जो संक्षिप्त विवरण लिख डाला है, उसकी नकल साथ में है। सम्भव है, तुम्हें और दूसरे सदस्यों को बातचीत का आधार पसन्द न आये। स्वयं मुझे तो कोई चारा नही दीखता। आज मेरी कठिनाई यह है कि मै तुम्हारी तरह देश मे इधर-उधर घूमता नही और इससे भी गंभीर बाधा वह भीतरी निराशा है, जो मुझ पर छा गई है। मै काम चला रहा हूं, परन्तु यह सोचकर आत्म-ग्लानि होती है कि मेरा वह आत्म-विश्वास जाता रहा, जो मुझमें एक महीने पहिले था। मुझे आशा है कि मेरे जीवन में यह सिर्फ एक अस्थायी घटना है। मैने यह जिक्र इसलिए कर दिया कि तुम्हे प्रस्तावों को उनके गुणों के आधार पर जाँचने में मदद मिले। मै नही समझता कि पहले प्रस्ताव के बारे में कठिनाई पेश आयेगी। दूसरा प्रस्ताव अपने सारे गूढ़ार्थों-सहित अनोखा है। अगर वह तुम्हें न जंचे तो उसे योंही अस्वीकार कर देने में संकोच न करना। इस मामले में तुम्हें आगे होना पड़ेगा।

मैं ११ तारीख को लौट आने की आशा रखता हूं। मेरे इस तार के उत्तर मे कि फिर सुभाष को जिन्ना के साथ जाब्ते से समझौते की बातचीत शुरू करनी चाहिए, उनका तार है कि वह १० तारीख को बम्बई मे होंगे। मैं चाहता हूं कि

तुम भी वहां जल्दी जा सको। मैं मौलाना साहब को इसी ढंग से लिख रहा हूं और इस पत्र की नकल उन्हें भेज रहा हूं।
प्यार,

बापू

—अंग्रेजी। ३०।४।१९३८। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय

४४७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

७ मई, १९३८

प्रिय जवाहरलाल,

गांधी-सेवा-संघ[1] के नये स्वरूप में ऐसी कौन सी बात है, जिसने तुम्हें अशान्त बना दिया? मैं स्वीकार करता हूं कि उसकी जिम्मेदारी मेरी है। मैं चाहता हूं कि तुम मुझे निःसंकोच बताओ कि तुम्हें किस चीज से अशान्ति हुई है? अगर मेरी भूल हुई है तो तुम जानते हो कि भूल मालूम होते ही मैं अपने कदम पीछे हटा लूंगा।

आम हालत खराब होने के बारे में मैं तुमसे सहमत हूं, भले ही दुर्बल स्थानों के सम्बन्ध में हमारा मतभेद हो।
शेष मिलने पर।
प्यार,

बापू

—अंग्रेजी। ७।५।१९३८। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४४८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२६ मई, १९३८

प्रिय जवाहरलाल,

तुम कितने काम से काम रखनेवाले और मुस्तैद हो। मुझे खुशी है कि तुमने

---

१. देखिए जवाहरलाल का पत्र दिनांक २८।४।१९३८।

गुड़गांव जिला कांग्रेस कमेटी के मामले की जांच कर ली है। आशा है, दोनों पक्ष तुम्हारी सलाह मान लेंगे। ऐसा ही होना चाहिए।

आज तुम्हारा पत्र मेरी और जिन्ना की वातचीत के मेरे विवरण के वारे में मिला और मेरा खयाल है कि उनसे मेरी दूसरी वातचीत अनिवार्य थी। मुझे आशा है कि इससे कोई हानि नही होगी। तुम्हें समय मिल जाय तो जाल[1] से मिलने के वाद मैं चाहूंगा कि तुम मुझे दो शब्द लिख भेजो। क्या अच्छा हो, यदि तुम अपने युरोप के दौरे के दिनों थोडा सा आराम ले लो और यहां की तरह सारा समय भाग-दौड़ मे ही न विता दो।

प्यार,

वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २६।५।१९३८। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय

४४९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
३१ अगस्त १९३८

प्रिय जवाहरलाल,

अपनी सीमित शक्ति के कारण मुझे मजबूर होकर तुम्हें लिखने की इच्छा को दवा देना पड़ा था।

इन्दू के वारे में मेरे तार के तुम्हारे जवाव की प्रतीक्षा है।

संघ[2] के सम्वन्ध मे तुम्हारी चेतावनी मैंने समझ ली है। मैं इस खवर पर विश्वास नही करता यानी अगर वह अफवाह से कुछ अधिक है तो। पहले कांग्रेस की अनुमति लिये विना वे उसे आमन्त्रित नही करेंगे। अनुमति उन्हें मिल नही सकती।

फिर रही वात यहूदियों की, सो मेरा विल्कुल तुम्हारे जैसा ही खयाल है। मैं विदेशी माल का वहिष्कार करता हूं; विदेशी योग्यता का नही। और पीड़ित

---

१. वम्वई के जाल नौरोजी।

२. गांधी-सेवा-संघ, जिसका जिक्र जवाहरलाल ने अपने २८।५।१९३८ के पत्र में किया है।

यहूदियों के लिए तो मेरी भावना तीव्र है। एक ठोस प्रस्ताव के रूप में मेरा सुझाव है कि तुम सबसे योग्य व्यक्तियों के नाम इकट्ठे कर लो और उन्हें साफ बता दो कि उन्हें हमारे भाग्य के साथ अपना भाग्य मिला देने और हमारा जीवन-स्तर स्वीकार करने को तैयार होना पडेगा। बाकी महादेव लिखेंगे।

प्यार,

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ३१।८।१९३८। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४५०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे आशा है कि तुम और इन्दु दोनों को समुद्री यात्रा से लाभ पहुंचा होगा। मैं आशा करता हूं कि तुम २० के लगभग वर्धा में होगे। किन्तु निश्चय ही तुम जितनी जल्दी तुम्हारी इच्छा होगी आ जाओगे। जटिल समस्याएं हल के लिए तुम्हारा इन्तजार कर रही हैं।

तुम दोनों को प्रेम

सेगांव
१६-११-३८

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १६।११।१९३८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४५१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मैं आशा करता हूं कि बम्बई में तुम्हें मेरी टीप मिली होगी। मैं दो बजे के पहिले मौन नही ले सका। मुझे आशा है कि तबतक तुम्हें थोड़ी शान्ति मिल

जायगी और बम्बई में गुजरे कठोर समय के बाद तुम उसका आनन्द लोगे। इन्दु अच्छी है।

प्रेम
बापू

२१-११-३८

—अंग्रेजी। २१।११।१९३८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४५२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२४ नवम्बर, १९३८

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा खत मिला। मैं जानता था कि जहां घोड़े पर सवार हुए वहां फिर तुम अपने समय के मालिक नही रहोगे। मुझे जो कुछ मिल जायगा उसी से सन्तोप कर लूंगा।

पत्र-वाहक द्वारा गुरुदेव से मिला हुआ एक खत भेज रहा हूं। मैंने उत्तर दे दिया है कि मेरी अपनी राय यह है कि अगर उन्हे बंगाल को भ्रष्टाचार से मुक्त करना है तो अध्यक्ष के काम से छुटकारा पा लेने की जरूरत है। मुझे सन्देह नही कि गुरुदेव या तो तुम्हें सीधा लिखेंगे या तुमसे बात करेंगे। तुम अपनी ही राय देना।

आशा है, इन्दु को यात्रा से कोई हानि नही हुई होगी।

प्यार।

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २४।११।१९३८। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४५३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
३० नवम्बर, १९३८

प्रिय जवाहरलाल,

चीनी मित्र आये और पांच के बजाय पैंतीस मिनट ले लिये। अन्त में मुझे कोमलता से कहना पड़ा कि वे अपने समय से सात गुना अधिक ठहर गये।

अगाथा की वाइसराय से जो मुलाकात हुई उसके विवरण की तुम्हारी प्रति साथ में है। मेरा सन्देश इतना ही कहने को था कि वे मुझे अंग्रेज जाति का मित्र समझें और उसका राजनीति से कोई सरोकार नही।

आशा है, तुमको मेरा वह पत्र ठीक तरह मिल गया होगा, जिसमें मैंने सुभाप-सम्बन्धी गुरुदेव का पत्र भेजा था।

मै आशा रखता हूं कि तुम काम से अपने आपको मार नहीं रहे हो और इन्दु के हालचाल अच्छे है।

सरूप जो भारी काम कर रही है उससे उसे छुड़ा देना चाहिए। उसे अपना जर्जर शरीर फिर से वना लेना चाहिए।

प्यार।

वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ३०।११।१९३८। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

४५४. पत्र : हरिशरण वर्मा को

भाई हरसरन वर्मा,

क्या आप चाहते है कि मै आपका ख़त श्री रनजित[1] पंडित को भेजुं ?

मो० क० गांधी

सेगांव, वर्धा
५-१२-३८

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), ५।१२।१९३८। श्री हरिशरण वर्मा, लखनऊ को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ९१) से]

---

१. रणजित पण्डित (जवाहरलाल नेहरू के वहनोई) उस समय भारतीय कांग्रेस कमेटी का काम-काज देखते थे।

४५५. पत्र : हरिशरण वर्मा को

सेगांव, वर्धा
१२-१२-३८

भाई हरसरन वर्मा,

तुमारा खत मिला है. अच्छा किया मुझको लिखा. जो कुछ लिखा है वह कांग्रेस कमिटी के पास भी रखना चाहिये.

मो० क० गांधी

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), १२।१२।१९३८। हरिशरण वर्मा, लखनऊ को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ९०) से]

४५६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव वर्धा
२१।१२।३८

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मौलाना साहब काँटों का मुकुट नही चाहते। अगर तुम फिर उसे (पहनना) चाहते हो तो कृपया वैसा करो। अगर तुम न पहनोगे या वह न सुनेंगे, तब फिर चुनने को पट्टाभि[1] ही एकमात्र व्यक्ति रह जाते है।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २१।१२।१९३८। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. पट्टाभिसीतारामैया, आन्ध्र के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता।

४५७. पत्र[1] : हीरालाल शर्मा को

२-२-३९
सेगांव, वर्धा

चि० शर्मा,

वारडोली में इतनी काम में फंस गया था की बीमार होकर आज आया. यही कारण है तुम्हारे खत का देर से उत्तर भेजने का. चिन्ता की वात नहीं है. ठीक हो जायगा.

३-२-३९

लेकिन मैं किसी को एक लाइन भेजने का कह सकता था कि उत्तर जल्दी नही भेजा जायगा. यह नही किया क्योंकि शीघ्र उत्तर भेजने की आशा वनी रही.

डिस्ट्रकशन कनेस्ट्रक्शन साथ चलनेवाली चीज है. तुमारा डिस्ट्रक्शन कुछ ऐसा लगता है कि उसकी तुम वर्दाश्त न कर सको. आज एक करें और कल दूसरा ऐसे न वनने पाय.

पत्रिका मैं नहीं लिख सकता हूं. तुमने ठीक ही लिखा है कि जबतक कनस्ट्रक्शन शुरू नही हुआ तबतक सब बात बेकार है. जो चल रहा उसमें पत्रिका को शायद स्थान नही है.

तुमारे अगले खत में कुछ सिद्धांत की बात थी कि समाज और कुटुंब अलग बात है और होनी चाहिये. अगर दोनो एक समजते हो लेकिन आज वहां तक नही पहोंचते हो तो कहना क्या.

मेरे साथ रहनेवाले और तुममें भेद नहीं है यह बात अमल में बता दोगे तब मेरा काम हो गया समजुंगा.

कुत्ता की मिसाल तो कठोर है लेकिन वात सही है. यों तो हम सब कुत्ते के जैसे है. सहिष्णुता नही है. लेकिन समाज में रहना और असहिष्णु रहना वड़ी विपरीत बात है.

बापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेगांव, वर्धा २-३।२।१९३९। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

---

१. बापू ने इस खत को दो दिन में पूरा किया मालूम होता है।

४५८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेगांव, वर्धा
३ फरवरी, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

चुनाव के वाद और जिस ढग से वह लड़ा गया उसे देखते हुए मैं महसूस करता हूं कि मै कांग्रेस के अगले अधिवेशन में अनुपस्थित रहकर देश की मेवा करूंगा। इसके अलावा मेरा स्वास्थ्य भी वहुत अच्छा नही है। मैं चाहता हू, तुम मेरी मदद करो, मुझे शरीक होने को दवाना नही।

आशा है, तुम्हें और इन्दु को खाली[1] में आराम लेने से लाभ हुआ। होगा इन्दु को मुझे लिखना चाहिए।

प्यार,

वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ३।२।१९३९। 'ए वंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४५९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

९-२-३९

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैं तुम्हारे विश्लेषण को समझता हूं। सुभाप ने तार दिया है कि वह वर्धा आना चाहता है। देखें, क्या होता है। निस्सन्देह, मै जल्दवाजी में कोई निर्णय नही करूंगा। मुझे खुशी है कि सरूप जल्दी आ रही है। मै आशा कर रहा हूं कि सेगांव की शान्ति उसके अनुकूल सिद्ध होगी।

प्रेम
वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ९।२।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. अलमोड़ा जिले का एक स्थान, जहां रणजित पण्डित ने एक सुन्दर कुटीर 'ऋतु संहार' का निर्माण कराया था।

४६०. तार : जवाहरलाल नेहरू को

[यह तार वर्धागंज से ९।२।३९ को दिया गया था और इलाहाबाद कचहरी तारघर में दूसरे दिन रविवार को प्राप्त हुआ था।—सम्पा०]

जवाहरलाल नेहरू
आनन्दभवन, इलाहाबाद

मै समझता हूं कि सब बातों का विचार करके लुधियाना सम्मेलन को काग्रेस के बाद के लिए स्थगित कर देना बुद्धिमत्ता का काम होगा। प्रमुख कार्यकर्त्ता विविध राज्यों में चल रही लड़ाई में लगे हुए है।

बापू

—अंग्रेजी। वर्धागंज, ९।२।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

४६१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
११-२-३६

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा तार और पत्र मिल गया। मैं सम्मेलन और व० क० (वर्किंग कमेटी-कार्य समिति) के विषय में तुम्हारी स्थिति को समझता हूं। मैं किसी कार्य के विषय में उनको चलानेवाले आदमियों के बिना सोच ही नही सकता। मैने तो जो कुछ बलवन्तराय मेहता से सुना था उसी के बल पर स्थगन के विषय मे लिख दिया था। वह काठियावाड़ की लड़ाई में लगे हुए है। अचिन्तराम बिना उनके कुछ कर नही सकता। इसीलिए मैने तुम्हें तार दिया। मै लुधियाना की परिस्थिति के विषय में कुछ नही जानता।

सरूप के लिए मुझे अफसोस है। मै तो उसके कुछ दिन अपने साथ बिताने की प्रतीक्षा कर रहा था।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ११।२।३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४६२. पत्र : सुरेश सिंह को

[श्री सुरेश सिंह ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के पहिले गांधीजी से पूछा था कि क्या वह शीघ्र ही कोई नया आन्दोलन चलाने जा रहे हैं ? इस पत्र में उसी का सन्दर्भ है।—सम्पा०]

सेगांव, वर्धा
१४-२-३६

भाई सुरेश,

मैने, कानून भंग का तो अब तक कुछ नहि सोचा है, न मैं ऐसी आबोहवा पाता हूं.

बापू के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेगांव, वर्धा, १४।२।१९३९]
सौजन्य : श्री सुरेश सिंह, कालाकांकर।

४६३. पत्र : बालकृष्ण शर्मा नवीन को

सेगांव, वर्धा
२०।२।३६

भाई बालकृष्ण शर्मा,

कानपुर में क्या किया? क्यो इतनी अशांति? कोई गणेशशंकर विद्यार्थी ने बलीदान दिया?

बापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेगांव (वर्धा), २०।२।१९३९। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ७५१६) से]

४६४. तार : जवाहरलाल नेहरू को

राजकोट ६-३-३६

जवाहरलाल नेहरू
त्रिपुरी कांग्रेस

यदि आन्तरिक भ्रष्टाचार से कांग्रेस को निकालने का प्रस्ताव नही लिया गया तो यह प्रथम श्रेणी की गलती होगी। कांग्रेस के सामने आवश्यक रूप से लाये विना

विधान में जरूरी परिवर्तन करने का अधिकार भारतीय कांग्रेस कमेटी को दिया जाना चाहिए। मै अच्छा हूं।

बापू

— अंग्रेजी। राजकोट, ९।३।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४६५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्रिय जवाहरलाल,

शौकत अभी-अभी तुम्हारा रुक्का ले आया है। जो खबर तुमने दी है वह हतबुद्धि कर देनेवाली है। मै तो सिर्फ इतनी ही आशा करता हूं कि इसमें कोई गलतफहमी है। क्या तुमको उस कांग्रेसी का नाम मालूम हुआ? मै दरियाफ्त करता हूं।

मुझे आशा है कि मौलाना साहब पहिले से बहुत अच्छे है। कृपया मेरा प्रेम उनको दें और उनसे कहें कि मैं उन्हें देखने को उत्कण्ठित हूं। जितनी जल्द मैं सुरक्षापूर्वक रवाना हो सकूगा, ऐसा करूंगा।

प्रेम

नई दिल्ली २०-३-३९ बापू

— अंग्रेजी। नई दिल्ली, २०।३।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४६६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

नई दिल्ली
३० मार्च, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे दो पत्र मिले। दोनों अच्छे थे। तुम्हें पत्र-व्यवहार की नकलें भेज रहा हूं। यू० पी० की घटनाओं से मुझे अशान्ति होती है। मेरा हल यह है कि या तो तुम्हें प्रधान मन्त्री बन जाना चाहिए या मन्त्रि-मण्डल को तोड़ देना चाहिए। तुम्हे उच्छृखल तत्वों पर काबू पाना चाहिए।

जो समाजवादी यहां आये थे, उनसे मेरी तीन दिन दिल खोलकर बातें हुईं। नरेन्द्रदेव तुम्हें खबर देंगे। वह अपने आप न दें तो तुम मंगा लेना।

प्यार,

बापू

—अंग्रेजी। नई दिल्ली, ३०।३।१९३९' 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४६७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

नई दिल्ली
६-४-३९

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

आज घटनाएं जो रूप ले रही हैं उन पर व्यथित होने से कौन रह सकता है? हमे आशा करनी चाहिए कि शीघ्र ही बादल छंट जायंगे।

राजकोट-निर्णय लक्ष्य की ओर एक कदम भर है। मैं अगले कदम की प्रतीक्षा करूंगा। मैंने आज डाक्टर खान साहब[1] को टेलीफोन किया है। उन्होंने टेलीफोन करने और यदि उन्हें मेरी जरूरत है तो वैसा करने का वादा किया है। वायसराय से मिलना है। कमेटी के सिलसिले में मुझे राजकोट जाना पड़ सकता है।

इन्दु को मेरा प्यार। मैं समझता हूं कि कृष्णा भी जा रही है। इसका मतलब यह होता है कि तुम १५ को बम्बई मे होगे?

प्रेम
बापू

तुमने झगड़ों के विषय में जो कुछ कहा है उसे मैंने नोट किया है।

—अंग्रेजी। नई दिल्ली, ६।४।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. सीमाप्रान्त के कांग्रेसी शासन में मुख्य मन्त्री तथा अब्दुलगफ्फार खां, सरहदी गांधी, के बड़े भाई।

४६८. पत्र : दिनेशसिंह को

नयी दिल्ली
७-४-३६

चि० दिनेश,

तुमारा खत मिला था. माता जी ही आ गई. मेरे साथ दो दिन रही. मेरी कोशीश चल रही है. तुमारे निश्चित होकर अभ्यास करना. मुझे लिखा करो.

बापु के
आशीर्वाद

(पीछली ओर)

माता जी की तबीयत कुछ अच्छी हो रही थी. यहां से दवा भी ले गई है.

—हिन्दी । नई दिल्ली, ७।४।१९३९ । पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ८६७३) से]

४६९. तार : जवाहरलाल नेहरू को

२७-७-३६
दिल्ली

जवाहरलाल नेहरू
द्वारा कांग्रेस
गिरगांव, बम्बई

तुमने बहादुरी तथा उत्साह के साथ अपना काम किया है।

बापू

—अंग्रेजी। दिल्ली, २७।७।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४७०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२६ जुलाई १६३६

प्रिय जवाहरलाल,

धामी के लोगों का पथप्रदर्शन करने के बजाय मैंने उन्हें तुम्हें सौंप दिया है।

मेरे खयाल से मेरी तरफ से किसी हस्तक्षेप के विना तुम्ही को यह भार वहन करना चाहिए। राज्यों का यह विचार दिखाई देता है कि कांग्रेस को अलग रक्खा जाय और उसकी तथा देश राज्य-परिषद की उपेक्षा की जाय। मैं 'हरिजन' में पहिले ही सुझाव दे चुका हूं कि तुम्हारी समिति से पूछे विना किसी रियासती संघ या मण्डल को अपने आप कार्रवाई नही करनी चाहिए। मुझे खुद करना ही हो तो तुम्हारे मार्फत करना चाहिए अर्थात् जव तुम मुझसे पूछो तो जैसे कार्यसमिति को अपनी राय दे देता हूं वैसे ही तुम्हे दे दूं। कल ग्वालियर वालों को भी मैने ऐसा ही कहा है। तुम्हारी समिति को ठीक ढंग से काम करना है तो उसे थोड़ा सा पुनर्गठित करना होगा।

आखिर मेरा काश्मीर जाना नही हुआ। शेख अव्दुल्ला और उनके मित्रों को मेरा सरकारी मेहमान वनने का विचार सहन नही होता। अपने पिछले अनुभव के आधार पर मैने शेख अव्दुल्ला की अनुमति की आशा से राज्य का प्रस्ताव मंजूर कर लिया था। परन्तु मैने देखा कि मेरी भूल हुई। इसलिए राज्य के आतिथ्य की स्वीकृति रद्द करके मैंने शेख का आतिथ्य स्वीकार किया। इससे राज्य को परेशानी हुई। इसलिए मैंने वहां जाने का विचार ही छोड़ दिया। मुझसे दोहरी मूर्खता का अपराध हुआ। एक तो तुम्हारे विना वहां जाने का विचार करने का दुःसाहस किया और दूसरे राज्य का प्रस्ताव मान लेने से पहले शेख की इजाजत नही ली। मैने सोचा था कि राज्य का प्रस्ताव मंजूर करके मैं प्रजा की सेवा करूँगा। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि शेख और उनके मित्रों से मुझे खुशी नही हुई। वे हम सवको वहुत ही वेतुके मालूम हुए। खान साहव ने उन्हे समझाया मगर कोई नतीजा नही निकला।

तुम्हारी लंका-यात्रा शानदार रही। मुझे इसकी पर्वा नही कि तात्कालिक परिणाम क्या हुआ। सालेह तैयव जी मुझसे अनुरोध कर रहे है कि तुम्हें वर्मा भेजूं और एण्डरूज तुम्हारा विचार दक्षिण अफ्रीका के सम्वन्ध में कर रहे है। लंका के लिए तो कांग्रेस के शिष्टमण्डल की कल्पना मुझे स्वयं स्फूर्ति से हुई। इन दो स्थानों की प्रेरणा उकसाने पर भी नही होती। लेकिन ये वातें जव मिलेंगे, तव करेंगे। आशा है, तुम ताजे हो और कृष्णा मजे में है।

प्यार।

वापू

——अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २९।७।१९३९। नेहरू संग्रहालय से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४७१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
११ अगस्त १६३६

प्रिय जवाहरलाल,

योजना-समिति के बारे में (और समय न होने के कारण) कार्यसमिति की मौजूदगी में तुमसे बात करने को आधा ही मन था। शंकरलाल आज सुबह तुमसे बात करके आये थे। साथ में इस मामले पर कृपलानी को उन्होंने जो पत्र लिखा था उसकी नकल भी लाये थे। उनकी आपत्ति से मेरी सहानुभूति थी। इस समिति के काम-काज को न तो मैं कभी समझ सका हूं और न उसकी कद्र कर सका हूं। पता नही, वह समिति को बनाने वाले प्रस्ताव की चहारदीवारी के भीतर ही काम कर रही है या नही। मै नही जानता कि उसके कार्यकलाप से कार्यसमिति को परिचित रक्खा जा रहा है या नही। उसकी अनेक उप-समितियों का हेतु भी मेरी समझ में नही आया है। मुझे ऐसा लगा है कि एक ऐसे प्रयत्न में जिसका कोई फल नही निकलेगा, बहुत-सा रुपया और परिश्रम बर्बाद किया जा रहा है। ये मेरी शंकाएं है। मैं प्रकाश चाहता हूं। मै जानता हूं। तुम्हारा मन चीन में है। अगर तुम्हारे खयाल से शाह तुम्हारे विचार प्रकट कर सकते है तो मैं उनसे जान लेने की कोशिश करूंगा या तुम अपने महान मिशन से लौट आओ तब तक प्रतीक्षा करूँगा। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और तुम्हे मातृभूमि में सुरक्षित लौटा लाये।

प्यार।

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ११।८।१९३९। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४७२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
१८ सितम्बर, १६३६

प्रिय जवाहरलाल,

च्यांग काई शेक के नाम मेरा पत्र साथ में है। पत्र मैं चाहता था उससे लम्बा

हो गया। शायद मूल के साथ टाइप की हुई प्रति भेजना अच्छा रहेगा। महादेव कल मद्रास गये।

प्यार।

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १८।९।१९३९]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४७३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२४।९।३९

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

संलग्न तार तुम्हारे द्वारा कार्रवाई के लिए भेजता हूं। यह तुम्हारा खास विभाग है।

मैं फिर शिमला जा रहा हूं। मैं केवल माध्यम के रूप मे काम करनेवाला हूं। यदि तुम्हें कोई आदेश देना हो तो मुझे भेज देना। मुझे उम्मीद है कि यदि निमन्त्रण तुम्हारे पास आता है तो उसका उत्तर देने को तैयार रहोगे।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २४।९।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४७४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा (सी० पी०)
२५।१०।३९

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मैं अमरीकी चीज को देख चुका। यह बड़ी व्ययसाध्य है। दूसरी दृष्टियों से भी यह मुझे आकर्षित नहीं करती।

मुझे आशा है, इन्दु के बारे में तुम्हें खुशखबरी मिली होगी।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी। से गांव (वर्धा), २५।१०।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४७५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने देख लिया है कि यद्यपि मेरे प्रति तुम्हारा स्नेह और आदर कायम है, फिर भी हमारे बीच दृष्टिकोण का अन्तर दिन-दिन तीव्र होता जा रहा है। शायद हमारे इतिहास में यह सबसे नाजुक काल है। जिन अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्नों पर हमारा ध्यान लगा हुआ है उनपर मेरे बहुत प्रबल विचार हैं। मैं जानता हूं कि उनपर तुम्हारे भी प्रबल विचार है, परन्तु वे मुझसे भिन्न हैं। प्रकट करने का तुम्हारा तरीका मुझसे अलग है। मुझे भरोसा नही कि जिन विचारों को मैं बहुत प्रबल रूप में रखता हूं उनमें दूसरे सदस्य मेरे साथ है या नहीं। मैं इधर-उधर घूम नही सकता। मैं आम लोगों के, कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के भी, सीधे सम्पर्क में नही आ सकता। मुझे लगता है कि तुम सबको मैं अपने साथ नही रख सकता तो मुझे नेतृत्व नही करना चाहिए। मैं महसूस करता हू कि तुम्हें पूरी तरह काम संभाल कर देश का नेतृत्व करना चाहिए और मुझे राय प्रकट करने को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। अगर तुम सबका यह खयाल हो कि मुझे पूरी तरह से मौन रखना चाहिए तो मुझे आशा है कि मुझे उसी के अनुसार करने में कोई कठिनाई नही होगी। अगर जरूरी समझो तो आकर तुम्हें सारी चीज पर चर्चा कर लेनी चाहिए।

प्यार।

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २६।१०।१९३९। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

४७६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव
वर्धा (सी० पी०)
२६-१०-३६

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

कल मैने तुम्हे लिखा था। यह पत्र मेरठ से प्राप्त एक शिकायत तुम्हारे पास भेजने के लिए लिख रहा हूं। कृपया पता लगाकर पत्र-लेखक को सीधे जवाब दे देना। मैने उन्हें कह दिया है कि पत्र मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूं।

प्रेम
वापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २९।१०।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४७७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

रेलवे स्टेशन, दिल्ली
४ नवम्बर, १६३६

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे चले जाने के वाद ही कृपलानी ने मुझे वताया कि उत्तर प्रदेश में सविनय भंग के लिए वड़ा जोर और तैयारी है। उन्होने यह भी कहा कि गुमनाम कागज घुमाये गये है और लोगों से तार काटने और रेलें उखाडने के लिए कहा गया है। मेरी राय यह है कि अभी सविनय भंग के लिए वातावरण नही है। यदि लोग कानून अपने ही हाथ में ले लेते है तो मुझे सविनय भंग की कमान छोड़ देनी होगी। मैं चाहता हूं कि तुम इस सप्ताह का 'हरिजन' पढ़ो। उसमें इस सम्बन्ध में मेरी स्थिति वताई गई है। तुमसे इसकी चर्चा करने का मेरा इरादा था। परन्तु वह होना नही था। हमारे इतिहास के इस नाजुक वक्त में हममें कोई गलतफहमी नही होनी चाहिए और सम्भव हो तो एक विचार होना चाहिए।

प्यार

वापू

—[illegible] ४।१ [illegible] वंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]

२ ५

४७८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
१४ नवम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे पत्र नियमित आते रहते है। राजेन्द्रबाबू के नाम तुम्हारा खत मैंने देख लिया। उसे देखने से पहले उस पर मैं 'हरिजन' के लिए एक टिप्पणी लिख चुका था। मैं तुम्हारे पास पेशगी नकल भेजने की कोशिश करूंगा।

अगर इलाहाबाद में तुम्हें मेरी ज्यादा जरूरत हो तो रख लेना। हमारे यहां के बयानों के लन्दन में होने वाले स्वार्थपूर्ण सम्पादन की मुझे चिन्ता नही होती। समय मिला तो 'न्यूज क्रानिकल' के लिए एक संक्षिप्त सन्देश लिख डालूंगा। उस पत्र की ओर से मुझे समूल्य अधिकार प्राप्त है।

शेष मिलने पर। प्यार,

बापू

महादेव ने मुझे अभी याद दिलाया है कि आज तुम्हें ५० वर्ष पूरे होते हैं। आशा है तुम ५० भी पूरे करोगे और वही शक्ति, स्पष्टतावादिता और प्रबल प्रामाणिकता कायम रखोगे।

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), १४।११।१९३९। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४७९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा
२८ दिसम्बर, १९३९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं चीनी पत्र सुरक्षित रखूंगा।

मुक्ति-दिवस को 'टाइम्स आव इण्डिया' में पूरे पृष्ठ का विज्ञापन मिला है। परन्तु यह सच है कि सब जगह उसका कोई असर नही हुआ दीखता।

फजलुल हक का अभियोग-पत्र तुमने पढ़ा है? उसके बारे में कुछ भी कहना या करना नहीं चाहिए?

तुमने मुझे कुमारप्पा के पत्र नही भेजे, जिन पर तुमने सख्त एतराज किया

था। वह यहां है। मैने उनसे पूछा तो वह कहते है कि हाल में तो उन्होंने कुछ नही भेजा। तुम्हारे पास जो कुछ हो, जरूर मेरे पास भेज दो।

प्यार।

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), २८।१२।१९३९। नेहरू संग्रहालय से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय

४८०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मुझे दुःखित करता है। तुमने नापसन्दगी के स्वर में कहा है कि कु० (कुमारप्पा) एक वाहियात आदमी है। और वह भी तुमने नगण्य प्रमाण पर ही किया है। मैने तुमसे वह पत्र-व्यवहार मांगा था; तुमने कहा कि वह तुम्हारे पास नही है किन्तु (प्राप्त कर) मेरे पास भेज दोगे। अब मै देखता हू कि तुमने दूसरों की व्याख्या मजूर करली है। मेरा आशय यह नही है कि वह व्याख्या गलत थी किन्तु एक साथी कार्यकर्त्ता के बारे में ऐसी सुनी-सुनाई बातों से निर्णय करना गलत था। मेरा सुझाव है कि तुम पत्र-व्यवहार प्राप्त करके मेरे पास भेज दो।

यह रहा जेनरलिजमो (प्रधान सेनापति, च्यांग-काई-शेक) के नाम मेरा पत्र। मैंने उनका पत्र अखबारो को छपने के लिए नही दिया है। यदि तुम इसे जरूरी समझो तो वैसा कर सकते हो।

प्रेम

सेगांव ५-१-४०

बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ५।१।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४८१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव, वर्धा

३०-१-४०

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

कानपुर के पद्मपन्त ने तुम्हे लिखे पत्र की प्रतिलिपि मेरे पास भेजी है। मुझे आशा है कि तुम इस मामले की छानबीन करोगे।

क्या तुमने जमैयत-उल्मा-ए-हिन्द की सबसे ताजी पुस्तिका देखी है? वे लोग खतरनाक मित्र है। पता नहीं कि कार्यसमिति ने मौलवी किफायत उल्ला साहब से पूरी बातें की या नही।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी। सेगांव (वर्धा), ३०।१।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४८२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[श्री कुमारप्पा के सम्बन्ध में गांधी जी ने जो पहिला पत्र जवाहरलाल जी को लिखा था उसकी तिथि ५।१।१९४० है। निश्चित रूप से यह पत्र उसके बाद का होगा जब जवाहरलाल जी के मन से श्री कुमारप्पा-विषयक गलत छाप दूर हो गई होगी और उन्होंने क्षमा मांगते हुए गांधीजी को इस सम्बन्ध में पत्र लिखा होगा जिसकी प्राप्ति का उल्लेख इस पत्र में है।—सम्पा०]

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया। मैं गलतफहमियों की सम्भावना को जानता हूं। इन्होंने तथा अज्ञान या स्वार्थपूर्ण आलोचना ने कभी मुझे प्रभावित नहीं किया। मैं जानता हूं कि यदि हम अन्दर से शक्तिमान है तो सब कुछ अच्छा होगा। जहां तक बाह्य मामलों का सम्बन्ध है, तुम मेरे पथ-दर्शक हो। इसलिए तुम्हारा पत्र मुझे मदद देता है।

कुमारप्पा के बारे में तुमने अपने में काफ़ी से ज्यादा संशोधन कर लिया है। तुम उनका पत्र देखना पसन्द करोगे। पढ़ने के बाद इसे नष्ट कर सकते हो। हां, हमारे पास उनके-जैसे बहुत ही कम कार्यकर्त्ता हैं।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी जनवरी, १९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४८३. पत्र : श्रीप्रकाश को

(मूल हिन्दी : पोस्टकार्ड)

भाई श्रीप्रकाश,

तुमारे लिखने पर वह जजमेंट पर मैंने टीका हरिजन मे भेजी थी. बाद में पता चला कि जजो ने ऐसा नही कहा था और तुमने अपनी टीका खीच ली थी. यह सब मैंने देखा तो नही है लेकिन मैंने मेरी टीका रोक ली है. क्या कुछ लीडर[1] की गलती थी ?

बापु के
आशीर्वाद

सेवाग्राम
वर्धा ११।४।४०

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ११।४।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित-पत्रावली से।]

सौजन्य : श्री श्रीप्रकाश तथा नेहरू संग्रहालय।

[टिप्पणी : उपर्युक्त पोस्टकार्ड बनारस में १४।४।१९४० को प्राप्त हुआ था, जैसा कि डाक की मुहर से जान, पड़ता है।—सम्पा०।]

४८४. पत्र : दिनेश सिंह को

सेवाग्राम, वर्धा
११।४।४०

चि० दिनेश,

तुमारा खत मिला था. दादू का खत मेरे पास कुछ दिनों के पहले था कि उसका दिल मां के पास रहने का है मैने मां पर खत लिखकर भी भेज दिया था. वाद में क्या हूआ मुझे पता नहि है. यों तो दादू को कोई हटायगा नही. मुझे लिखा करो क्या होता है. दादू की इच्छा मां के पास रहने की हूई है क्या ?

वापु के आशीर्वाद

---

१. इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाला अंग्रेजी दैनिक, जो अब बन्द हो गया है।

श्री दिनेश सिंह, कालाकांकर
दून स्कूल
देहरादून (सं० प्रा०)

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ११।४।१९४०। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ८६७४) से]

४८५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

संलग्न को पढ़ो और मुझे रास्ता बताओ। मैंने लेखक से कहा है कि उसका सुझाव[1] मुझे आकर्षित करता है। और अगर मुझे अपना रास्ता साफ दिखाई देगा तो मै अंशतः या पूर्णतः उस पर अमल करूंगा।

प्रेम
तुम्हारा
बापू

सेवाग्राम
वर्धा २३-५-४०

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), २३।५।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४८६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम
वर्धा
२६-५-४०

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मुझे श्री स्पाल्डिंग के संलग्न पत्र के साथ तुम्हारा पत्र मिला। थामसन

---

१. देखिए गांधी जी के नाम लखनऊ से श्री अब्दुल हई अब्बासी का पत्र।

का (पत्र) उसमें नही था। मैं स० (स्पाल्डिग ?) को सा·ान्यतः तुम्हारे उत्तर की पुष्टि करते हुए पत्र लिख रहा हूं।

सर सिकन्दर को दिये हुए उत्तर की तथा मौलाना को लिखे पत्रों की जो प्रतियां तुमने संलग्न की है, वे भी मुझे मिल गई है। तुम्हारे वक्तव्य अच्छे और पूर्ण है। मै किसी तात्पर्य से ही वक्तव्य देने से वच रहा हूं। किन्तु जव मैं देखूंगा कि आवश्यक है तव तो दूंगा ही।

मुझे आशा है, कश्मीर में तुम्हारा समय मज़े में वीत रहा होगा।

प्रेम

वापू

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), २९।५।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४८७. पत्र : भगवानदीन मिश्र को

भाई भगवान दिन,

मुझको जो कहा गया है सो तो कोई मसलीम देहात में मसलीम घर[1] में रहने का. कुछ निर्णय हूआ नहि है.

आपका

मो० क० गांधी

सेवाग्राम,
वर्धा २२-६-४०

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २२।६।१९४०। श्री भगवानदीन मिश्र को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ७३७) से]

---

१. लखनऊ के एक मुसलमान एडवोकेट ने गांधी जी को सलाह दी थी कि यदि वह हिन्दू-मुस्लिम समस्या को हल करना चाहते हैं तो उत्तर प्रदेश के किसी मुस्लिम गांव में मुसलमान के घर में रहें और उनकी मनोवृत्तियों का अध्ययन करें। श्री मिश्र ने खबर सुन कर गांधीजी को अपने गांव में आकर रहने को लिखा होगा। इसमें उसी की ओर संकेत है। लखनऊ के मुस्लिम एडवोकेट के पत्र के लिए देखिए परिशिष्ट भाग।

४८८. पोस्टकार्ड : जवाहरलाल नेहरू

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

उर्दू के बारे में विचार अच्छा है। तुम्हें हिन्दुओं-द्वारा लिखी उर्दू रचनाओं की तथा उर्दू की पत्रिकाओं एवं पुस्तकों की एक समीक्षा करानी चाहिए। इन झूठी बातों का निरुद्वेग-उत्तर देनेवाला एक उर्दू साप्ताहिक होना चाहिए। जानबूझकर फैलाई जानेवाली झूठी बातों का नियन्त्रण दुष्कर कार्य है किन्तु करने योग्य है।

प्रेम

सेवाग्राम
वर्धा १५-७-४०

बापू

[अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), १५।७।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४८९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम
वर्धा
८-८-४०

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मौलाना साहब[1] ने मुझे हैदराबाद की प्रारम्भिक रिपोर्ट दी है। पढ़ने में यह भयावह लगती है। मेरे लिए इसमें कुछ नया नहीं है किन्तु कोई बुरे-से-बुरे भय की पुष्टि नहीं चाहता। मैं खुद इसका उपाय ढूंढ़ता रहा हूं। कल मै कार्यकर्त्ताओं से मिलूंगा। अगर तुम्हारे पास कोई विचार हो तो मुझ तक पहुंचा देना।

प्रेम

बापू

जबर्दस्ती युद्ध के लिए चन्दा वसूल करने का कोई प्रामाणिक साक्ष्य तुम्हारे पास हो तो क्या वह मुझे भेज दोगे?

[अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), ८।८।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. मौलाना अबुल कलाम आजाद।

४९०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम, वर्धा
६-१०-४०

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले हैं। जब हम मिलें तो तुम रजनी पटेल के विषय में मुझे और बातें बताओगे। नेपियर के बारे में, संलग्न कागज के साथ, तुम्हारा पत्र मैं वाइसराय को भेज रहा हूं। यह करुणाजनक मामला है।

मै ऊपर से नीचे तक काम से दबा हुआ हूं। इसलिए और कुछ नही लिखता।

प्रेम
बापू

––अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा) ६।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४९१. पत्र : हीरालाल शर्मा को

सेवाग्राम, वर्धा
६-१०-६४०

चि० शर्मा, तुमारा खत मिला, मैं तुमको लड़ाई में शीघ्र बुलाना चाहता हूं अब तो तबीयत अच्छी करो।

बापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम, वर्धा, ७।१०।१९४०। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा।

४९२. पत्र : हीरालाल शर्मा को

सेवाग्राम, वर्धा
१६-१०-४०

चि० शर्मा,

आज का सी० डी०[1] और पुराने में बहुत फर्क है. शायद ही और किसी को बुलाना पड़े. तुमारा नाम तो मेरे पास है ही लेकिन कोई खास तैयारी न की जाय. ऐसा समझो कि किसी को बुलाया नहिं जायेगा. सब रचनात्मक[2] काम करते है।

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम, वर्धा, १९।१०।१९४०। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

४९३ पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
२१ अक्तूबर, १६४०

[१९४० में गांधी जी ने अपने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन को पूर्ण अहिंसात्मक रखने के लिए कुछ चुने हुए आदमियों तक उसे सीमित रक्खा था। प्रथम सत्याग्रही थे विनोबा, दूसरे थे जवाहरलाल। इस पत्र में इसी की ओर इशारा है।
—सम्पा०]

प्रिय जवाहरलाल,

तो विनोबा का निश्चय कर दिया गया। उनकी चार दिन की वजारत मेरी दृष्टि से बिल्कुल सफल रही।

मैं एक टिप्पणी जारी कर रहा हूं, जिसे तुम देखोगे। प्रोफेसर ने टेलीफोन पर कहा कि तुम तैयार हो। मैने तुम्हारा बयान भी देख लिया। मैं अब भी तुमसे पूछना चाहूंगा कि मै जो कुछ लिख और कर रहा हूं, उसमें तुम्हें कोई भी

---

१. सिविल डिसओबीडिएन्स।
२. शिमले से लौटती बार ही बापू को यह खयाल आया मालूम हुआ था कि वह अपने रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं को 'व्यक्तिगत आन्दोलन' से अलग रक्खें।

चीज पसन्द आ रही है या नही। मैं नही चाहता कि केवल अनुशासन-प्रेमी की तरह चलो। मेरी वर्तमान कल्पना में उन लोगों की जरूरत है, जो योजना में उसकी सव वातों में नही, परन्तु मुख्य वस्तु में विश्वास रखते हों। अक्लमन्द को इशारा काफी है।

सम्भव हो तो तार दे देना।

प्यार।

वापू

—अंग्रेजी। वर्धा, २१।१०।१९४०। 'ए वंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४९४. तार : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धागंज
२१-१०-४०

जवाहरलाल नेहरू
फैजावाद

विनोवा तड़के गिरफ्तार हो गये। आज ही उनका मुकदमा है। आगे के कदम के वारे में सोच रहा हूं।

वापू

—अंग्रेजी। वर्धागंज, २१।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रा-वली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४९५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा
२४ अक्तूबर, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा तार पाकर खुशी हुई। यदि मेरा वयान जाने दिया गया है तो तुमने इससे पहले देख लिया होगा।

अगर तुम तैयार हो तो अब अपना सविनय भंग बाकायदा घोषित कर सकते हो। मेरा सुझाव है कि तुम अपने श्रोताओं के लिए कोई गांव चुन लो। मै नहीं समझता कि ये लोग तुम्हें अपना भाषण दोहराने देंगे। जहां तक विनोबा का सम्बन्ध है वह अपनी योजनाओं के साथ तैयार नही थे। परन्तु उन्हें वे आजाद रहने दें तो मेरा सुझाव है कि तुम विनोबा के लिए निश्चित की गई योजना पर चलो। परन्तु तुम्हारा और कुछ खयाल हो तो तुम अपने ही मार्ग का अनुसरण करो। मैं इतना ही चाहता हूं कि मुझे अपना कार्य-क्रम दे दो। अपनी तारीख आप ही तय कर लो, लेकिन इस तरह से कि तारीख और जगह का एलान करने का मुझे समय मिल जाय। सम्भव है, वे लोग तुम्हें अपना पहला कार्य-क्रम भी पूरा न करने दें। सरकार की तरफ से ऐसे हरेक कदम के लिए मैं तैयार हूं। हमारे कार्य-क्रम को प्रकाश में लानेवाले हर उचित उपाय का तो मैं उपयोग कर लूगा, मगर मेरा आधार इसी पर रहेगा कि नियमित विचार अपना असर आप पैदा करता है। यदि यह मानना तुम्हारे के लिए कठिन हो तो मैं तुमसे कहूंगा कि निर्णय स्थगित रक्खो और परिणाम देखते रहो। मै जानता हूं कि तुम खुद धीरज रक्खोगे। और अपनी तरफ के लोगों को भी धीरज रखने को कहोगे। मुझे मालूम है, मेरे प्रति वफादारी रखकर तुम कितना जोर बर्दाश्त कर रहे हो। मेरे लिए वह अमूल्य है। आशा है, वह उचित साबित होगी, क्योंकि अब तो 'करने या मरने' की बातें हैं। पीछे तो लौटना नही है। हमारा पक्ष अकाट्य है। झुकने का सवाल नही। इतना ही है कि मुझे प्रत्यक्ष रूप में यह दिखा देने के लिए कि अहिंसा जब विशुद्ध होती है तब उसमें क्या ताकत है, अपने ढंग से चलने दिया जाय।

मौलाना साहब ने फोन से कहा कि दूसरी बार सत्याग्रह के लिए मुझे दूसरा आदमी चुनना चाहिए। मैंने उन्हे बताया कि तुम जाने को राजी हो तो मैं ऐसा नही कर सकता। 'हरिजन' के सम्बन्ध में मैंने जो कदम उठाया है, उस पर तुम्हारी प्रतिक्रिया जानना चाहूंगा।

प्यार। बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, २४।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४९६. तार : जवाहरलाल को

वर्धा
२५-१०-४०

जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन, इलाहाबाद

आज पत्र डाक से भेजा है।

बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, २५।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

४९७. पत्र : हीरालाल शर्मा को

सेवाग्राम, वर्धा
२७-१०-४०

चि० शर्मा,

तुम्हारा सुंदर खत मिला. चूंकि इस वक्त संपूर्ण अहिंसा का दर्शन कराना चाहता हूं—जैसी मैं जानता हूं—सिवाय दो-तीन के किसी को भेजना नहिं चाहता हूं और किसी को न भेजूं ऐसा भी हो सकता है.

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम वर्धा, २७।१०।१९४०। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

४९८. पत्र : हीरालाल शर्मा को

सेवाग्राम, वर्धा
४-११-४०

चि० शर्मा,

तुमारी बात समझा हूं. सब ईश्वर के हाथों में है. उसी के हाथ में हम सब

हैं वह चाहे तो मेरे से करायेगा. तुमारे अपने काम में ध्यानावस्थित हो जाना है.

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम, वर्धा, ४।११।१९४०। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

४९९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम,
वर्धा (मध्यप्रान्त)
२०-१-४१

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मुझे अभी पता चला है कि तुम दोनों और मौलाना साहब[1] आ गये है। मैंने मौलाना साहब से कहा था कि मै दो बजे से मौन लूंगा। जब मैंने ऐसा कहा तव मै भूल गया था कि मैने ४-३० वजे तीसरे पहर प्रो० कोपलैण्ड को मिलने का समय दे रक्खा है। मै उसे खतम नही कर सकता था। इसलिए मैने ५-२५ वजे शाम को मौन लिया। मैं तुम्हारे और उनके लिए उस समय के वाद खाली रहूँगा। कृपया इसे मौलाना को भी पढ़कर सुना दें।

इन्दु को कल आना चाहिए।

प्रेम
बापू

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), २०।१।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. मौलाना अबुलकलाम आजाद।

५००. पत्र : जवाहरलाल को

सेवाग्राम, वर्धा
२६।१।४१

यह काम-काजी पत्र है। आवयक।

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मुझे अस्पताल के बारे में तुम्हारा सन्देश मिला था। डा० मेहता इलाहाबाद गये थे और उनकी राय है कि उसका उद्घाटन मेरे द्वारा २८ फरवरी को होना चाहिए। सब बातों का विचार करने के बाद मैं उनसे सहमत हूं कि मुझे उसका उद्घाटन करना चाहिए और जल्दी-से-जल्दी वह तिथि २८ फरवरी हो सकती है। अगर मैं जाता हूं तो सोची हुई रकम की बाकी राशि के एकत्र हो जाने की सम्भावना है और तब भविष्य की बहुत ज्यादा चिन्ता न करते हुए अस्पताल का आरम्भ किया जा सकता है। मैं जानता हूं कि तुम सब आत्मा से मेरे साथ होगे। मैं समझता हूं कि हमें सरूप तथा इन्दु के लिए प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नही है।

यदि तुम्हें अपनी राय को तार देने से की छूट हो तो कृपया वैसा करना। तब मैं इलाहाबाद हल्के हृदय से जाऊंगा।

प्रेम
बापू
(मो० क० गांधी)

[टिप्पणी : यह पत्र देहरादून जेल में नजरबन्दी की स्थिति में रहते हुए जवाहरलाल जी को भेजा गया था। इसे २६।१।४१ को सेंसर ने पढ़ा है और ३०।१।४१ के दिन इस टिप्पणी के साथ जवाहरलाल जी को दिया गया—

"रिसीव्ड ऐण्ड रिटर्नड आफ्टर सेंसर" (प्राप्त तथा सेंसर के बाद लौटाया)"]

३०।१।४१

--अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा) २६।१।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी
तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. डा० जीवराज मेहता।

५०१. पत्र : जवाहरलाल को

(मूल हिन्दी)

सेवाग्राम
वर्धा, मध्यप्रान्त
११-२-४१

चि० जवाहरलाल,

काशी के भाषण के बाद तो मैं तुमको भी राष्ट्रभाषा में क्यों न लिखुं? सरूप को तो रा० भा० में लिखता हूं : रणजीत[1] को गुजराती में, तुमको क्यों इंग्रेजी में?

यह है दो खत, अगर पसंद पड़े तो दे देना. मैं सभापति को तार भी भेजुंगा. यह खत तो रात को स्मशान भूमी से आकर लिख रहा हूं ताकि कल सवेरे चला जाय.

जमनालाल जी का तो क्या लिखुं?

चन्द्र सिंह यहां जम गये है. खुश रहते है खादी का काम अच्छी तरह से सीख रहे है. उनकी पत्नी विलासगृह में शांत नही रह सकती हैं. चन्द्रसिह को खत लिखती है. मृदु को लिखा है कि दिल चाहे तब भेज देवे.

स्टेट्स पीपल[2] की ओफिस तो आ रही है. जमनालाल जी के जाने से कुछ फरक होता है क्या? अमृत[3] की मदद से यहां चल तो सकता है, लेकिन तुमारे सोच लेना है. अब तो देर हो गई, ज्यादा नहिं लिखुंगा.

बापू के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ११।२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. रणजित पण्डित, विजयलक्ष्मी (सरूप कुमारी) के पति।
२. देशी राज्य परिषद से अभिप्राय है।
३. अमृतलाल सेठ, देशी राज्यों के प्रमुख कार्यकर्त्ता और लेखक।

५०२. पत्र : अद्वैतकुमार गोस्वामी को

(पोस्टकार्ड)

सेवाग्राम,
वर्धा होकर (मध्यप्रान्त)

१४-२-४१

भाई अद्वैत कुमार—तुमारा खत अभी मिला. मेरा अभिप्राय है कि साम्-दायिक प्रार्थना के लिए लड़ाई न करें. व्यक्तिगत में बाधा करें तो दूसरी बात है. कमरे में भी चीखकर नहि होनी चाहिये.

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), १४।२।१९४१। श्री अद्वैतकुमार गोस्वामी, वृन्दावन को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० १५०) से]

५०३. पत्र : सुरेश सिंह

[व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन के आरम्भ होने पर श्री सुरेशसिंह ने उसमें सम्मिलित होने की आज्ञा गांधी जी से मांगी थी। इस पत्र में उसी का उत्तर है। श्री सुरेश सिंह बाद में गांधी जी द्वारा कोई तिथि नियत करने के पूर्व ही, बड़े भाई स्व० ब्रजेश सिंह जी के साथ भारत-रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिये गये थे। पत्र सम्भवतः फरवरी १९४१ का है—सम्पा०]

सेवाग्राम, वर्धा सी० पी०

भाई सुरेश

तुम्हारा पत्र मिला नाम भेजा तो ठीक किया. नियमपूर्वक कातते होगे ? तीनों दल के चले जाने के बाद में तुमारे जाना होगा. नये दलों के लिये मै तारीख निश्चित करूंगा.

बापू के आशीर्वाद.

—हिन्दी। सेवाग्राम, वर्धा। सम्भवतः फरवरी १९४१।]
सौजन्य : श्री सुरेशसिंह, कालाकांकर।

५०४. पत्र : शान्तिस्वरूप को

ट्रेन में
२-३-४१

भाई शांति स्वरूप,

तुमारा खत मिला है. तुमारी दलील बिलकुल ठीक है और तुमारे रिश्तेदारों को मान्य होनी चाहिये.

मो० क० गांधी के
आशीर्वाद

—हिन्दी। २।३।१९४१। श्री शान्तिस्वरूप श्रीवास्तव, किरावली, आगरा उ० प्र० को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ५६७७) से]

५०५. पत्र : रघुवंश गौड़ को

सेवाग्राम, वर्धा
९-३-४१

भाई रघुवंश,

तुमारे पास राजकुमारी बहन मेरे कहने से गई और जो कुछ कहा वह मेरी बात... [1] बहन को जो खत तुमने लिखा है ठीक है. तुमारे घर जाना. यहां से जो कुछ हो सकता है किया जायगा. तुमारे लिये रेल किराया दिया जायगा जो कानपुर पहूंच कर वापिस करोगे.

बापु के...[1]

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ९।३।१९४१। श्री रघुवंशरत्न गौड़, एटा को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० १३९) से]

५०६. पत्र : अद्वैतकुमार गोस्वामी को

(पोस्टकार्ड)

सेवाग्राम
वर्धा होकर (मध्य प्रान्त)
२४-३-४१

भाई अद्वैतकुमार—तुमारे खत का उत्तर बहुत देर से देता हूं. समय नहि

---

१. यहां लेखन अस्पष्ट है।

मिलता, वहां की हालत के बारे में मैं क्या लिख सकता हूं. बावा राघवदास, मोहनलाल जी इ० को मैं लिख तो नहिं सकता. इसलिये जो हो सके वही अच्छा करने की चेष्टा करो.

आपका
मो० क० गांधी

(अंग्रेजी में पता)
श्री अद्वैतकुमार गोस्वामी
बी क्लास
सेण्ट्रल जेल, बनारस, यू० पी०

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २४।३।१९४१। श्री अद्वैतकुमार गोस्वामी को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० १५१) से]

५०७. पत्र : दिनेश सिंह को

सेवाग्राम, वर्धा
३१।३।४१

चि० दिनेश,

तुमारा खत मिलने से आनंद हुआ. हो सके तो दीनबंधु एन्डरूज स्मारक के लिये विद्यार्थियों से चंदा इकट्ठा करो और भेजो.

बापु के आशीर्वाद

कुमार श्री दिनेश सिंह
कालाकांकर
३६५ कश्मीर हाउस
दून स्कुल
देहरादून (सं० प्रा०)

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ३१।३।१९४१। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ८६७५) से]

५०८. पत्र : चन्द्र त्यागी को

[यह कार्ड बापूजी की ओर से श्री किशोरलाल मशरूवाला ने लिखा है। — सम्पा०]

सेवाग्राम
वर्धा होकर (मध्यप्रान्त)

श्री चन्द त्यागी जी,

पू० बापू जी ने आपका पत्र देखा। उनके उत्तर नीचे मुताबिक हैं—

१. परेड दी जाय २. जेल टीकट जिस तरह अधिकारी सूचना करें, उस तरह पकड़ा जाय, ३. लोहे के तस्लों में खाने में दोष नही है, ४. जेल में झण्डावन्दन और वन्देमातरम का आग्रह नहीं रखा जा सकता।

श्री राजकिशोरी बहन का पत्र भी देखा। आशीर्वाद भेजा है। बहन मनु का पता—

मनुबहन मशरूवाला
साउथ ऐवेन्य
जुहू (बम्बई)

५।४।४१

आपका
किशोरलाल मशरूवाला

श्री चन्दत्यागी जी
चर्खाभवन, अछेना
पो० हापुड़
(जिला मेरठ) सं० प्रा०

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ५।४।१९४१। जी० एन० ३२६३ की फोटो-नक़ल से]

५०९. पत्र : रघुवंश गौड़ को

सेवाग्राम, वर्धा
१५-४-४१

चि० रघुवंश,

तुमारा खत मिला. मुझे शक नहि है, मैजीस्ट्रेटको लिखा है सो गलती है. . .[1] का यह केश हरगीज नहि है. किसी कालेज को हम मजबूर कैसे करें? जो ज्ञान पाया है उसका उपयोग करो और आजीविका पैदा करो. मुझे अच्छा

---

१. यहां साधन-सूत्र अस्पष्ट है।

लगेगा. अगर हठ छोड़ दो तो रा० कु० वहन ने तो तुमारे लिये वहुत कष्ट उठाया.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), १५।४।१९४१। श्री रघुवंश गौड़, खैर, अलीगढ़ को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० १४१) से]

५१०. पत्र : रघुवंश गौड़ को

सेवाग्राम, वर्धा होकर
(मध्यप्रान्त)
२४-५-४१

प्रिय रघुवंश,

राजकुमारी वहन ने प्रयत्न किया पर असफल हुई। इस परिस्थिति मे, फिलहाल, तुम ऐसे किसी अर्जनशील काम मे अपने को लगाओ कि तुमारा ज्ञान खतम न हो जाय और अहिंसा का विकास करो।

तुम्हारा
वापू

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), २४।५।१९४१। श्री रघुवंशरत्न गौड़, एटा को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० १४०) से]

५११. पत्र : जीवनकृष्ण शर्मा को

सेवाग्राम, वर्धा
२८-६-४१

भाई जीवकृष्ण शर्मा,

खादी और ग्राम उद्योग की वस्तुओ की नुमाइश करना और उसमें जो लाभ होगा वह सव कमला नेहरू अस्पताल मे देने का तुमारा इरादा स्तुत्य है. मैं आशा करता हूं कि उसमे सफलता मिलेगी.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम, २८।६।१९४१। श्री जीवनकृष्ण शर्मा, इलाहाबाद को लिखे गये पत्र (जी० एन० ८९) की फोटो-नक़ल से]

५१२. पत्र : हीरालाल शर्मा को

सेवाग्राम
१२-८-४१

चि० शर्म्मा,

तुमारा खत मिला. मेरी गलतफहमी नही है. तुमने तो कहा है कि आखिर तो मैं कहूं सो सही होगा. यह काफी नही है. तुमारा अभिप्राय स्पष्ट नहिं है तो मेरा निर्णय निकम्मा माना जाय. द्रौपदी की भी हार्दिक सम्मति नही है तो भी यह दान दूषित समझा जाय. कोई त्याग वगैर वैराग्य के अचल नहिं रहता है. मैने तो नैतिक वात उठाई है.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम, १२।८।१९४१। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

५१३. पत्र : अद्वैतकुमार को

सेवाग्राम,
वर्धा होकर (मध्यप्रान्त)
२४-८-४१

भाई अद्वैत कुमार,

तुमारा खत मिला है. तुमको सलाह देना कठिन है. वगैर परिचय के क्या कह सकता हूं ? फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि तुम्हारे निश्चयवान वनने के लिये सव छोड़कर कुछ अरसे के लिये कुछ ऐसा उद्यम करना चाहिये जिससे तुम्हारा खर्च अच्छी तरह निकल सके. जो मनुष्य अपना वोज अपने आप उठाता हे और किसी को कष्ट नहि देता है वह भी एक प्रकार की देशसेवा करता है.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २४।८।१९४१। श्री अद्वैतकुमार गोस्वामी, वृन्दावन को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० १४९) से]

५१४. पत्र : सुरेश सिंह को

१७-६-४१

भाई सुरेश,

तुमने प्रश्न ठीक पूछा है. मुझे कुछ भी कहने का उत्साह नहि होता है. ऐसे काम में मैंने जवाहरलाल को प्रधानपद दिया है. वह तो हैं नहि, जो उनकी नीति वह कांग्रेस की नीति थी. वह जेल में होने से मेरी बुद्धि इसमें नहि चलती है. रूस स्पेन, चीन जैसा देश नहि है. इंग्रेज तो मदद दे हि रहे हैं. स्टेलीन और लेनिन में मैं वड़ा फरक पाता हूं. लेनिन का रूस आज नहि रहा है. लेकिन यह तो गुण दोष देखने की वात हुइ. यह निरीक्षण में मेरी गलती भी हो सकती है। जवतक मैं हृदय से कुछ न कह सकु तवतक मौन रखना हि मेरे स्वभाव को अनुकूल है. अलसर दुरुस्त हो गया होगा.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। १७।९।१९४१।]
सौजन्य : श्री सुरेश सिंह, कालाकांकर।

५१५. पत्र : रघुवीर सहाय को

सेवाग्राम,
वर्धा
१०-१०-४१

प्रिय रघुवीर सहाय,

मैं तुम्हारे अत्यन्त पूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक पत्र के लिए धन्यवाद करता हूं। जो कुछ मैं अपने विविध पत्रलेखकों के द्वारा जान पाया था, तुम्हारे इस परिपूर्ण पत्र से उसकी पुष्टि हो गई। मैं नजर रख रहा हूं। आशा है, तुम अच्छे हो।

तुम्हारा
वापू

श्री रघुवीर सहाय,
वदायूं (सं० प्रा०)

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), १०।१०।१९४१। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० १०२०६) से]

५१६. पत्र : रघुवंश गौड़ को

सेवाग्राम, वर्धा
२६।१०।४१

भाई रघुवंश,

तुमको प्रभावती बहन ने लिखा वह भूल थी. मुझे तो तुमारा खत मिला ही नहि था. मैने रा० कुमारी को खत का उत्तर देने का कहा था कि वे मदद नहि दे सकेगी. तुम्हारे ऐसी भिक्षा मांगना भी नहि चाहिये. कही मित्र वर्ग से पैसे न मिले तो पढ़ना छोड़ो और उद्योग करो.

वापु के आशीर्वाद

— हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २९।१०।१९४१। श्री रघुवंशरत्न गौड़, एटा को लिखे पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० १४२) से

५१७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम
वर्धा, मध्यप्रान्त
५-१२-४१

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

जेल के बाहर तुम्हें लिखने योग्य होना अच्छा है। किन्तु यह खुशी केवल क्षणिक है। क्योंकि मैं इस प्रकार की रिहाइयों के प्रति अपने को अनुकूल नहीं कर पाता हूं। खैर, हम इस नये संकट का सामना करते है।

यह सिर्फ़ तुम्हें जताने के लिए लिख रहा हूं कि चूकि तुम्हारी रिहाई की अफ-वाह से वातावरण पूर्ण था, मैने तुम्हारे सवाल का जवाब देने में विलम्ब किया।

मैंने तुम्हारे पत्रों को बड़े मनोयोग से पढ़ा है। मै तुम्हारे निष्कर्षो से सहमत हूं और मैं उस अत्यन्त उदार ढंग को पसन्द करता हूं जिसके साथ तुमने सारी बात को ग्रहण किया है। मेरी एफ़ (फ०)[1] से एक, केवल एक, ही बार बात हुई है और उसने मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार किया है कि वह तुम्हारी सहमति एवं आशीर्वाद

---

१. फीरोज गांधी।

के विना इन्दु से शादी करने की वात नही सोचेगा। इन्दु ने फ० को लिखा; वह आकर मुझसे मिल भी रही है। अव जव कि तुम वाहर आ गये हो, और ज्यादा नही तो सम्भवत. कुछ दिन तो रहोगे, तुम इस चीज को जैसी शक्ल देना चाहोगे, दोगे।

मुझे आशा है कि तुमने मेरे द्वारा जारी किये हुए हाल के वक्तव्यों को पसन्द किया होगा। तुम मुझे वताओगे कि कव आ रहे हो। आज मौलाना ने टेलीफोन किया और कहा कि वह दो या तीन दिनों वाद आने की सोच रहे है। मै यहां से ६ को एक महीने के लिए वारडोली जाना चाहता हूं। सरदार मुझसे चाहते हैं कि मैं गुजरात को एक महीना दूं। वह चिकित्सा में हैं—मुख्यत. आहार-सम्वन्धी। मैने ही उनके आहार का निश्चय किया है। मैं समझता हूं कि इसके कारण उनकी वेदना सह्य हो गई है। जहां तक सम्भव है, हमारी वार्ताएं और वैठकें वारडोली में होगी। रिहाइयां एक चुनौती है। मै महसूस करता हूं कि हमें जितनी जल्द हो सके, कार्यसमिति तथा भारतीय कांग्रेस कमेटी की वैठकें करनी चाहिए। किन्तु इस विपय के सर्वोत्तम निर्णयकर्ता तो तुम और मौलाना है। मैं यह समयाभाव के वीच लिख रहा हू

प्रेम

वापू

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), ५।१२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५१८. तार : जवाहरलाल नेहरू को

वर्धा

६-१२-४१

जवाहरलाल नेहरू

लखनऊ

कल लिखा था (कि) तुम्हारा तार (मिला)। जव भी आ सको आओ। सरदार ने वहुत पहले वारडोली कार्यक्रम तय कर दिया था। उनका शरीर टूट गया है। उनके शरीर की सेवा-शुश्रूषा में मैं ही उनका एकमात्र पथप्रदर्शक हूं।

उनको अशान्त करना नहीं चाहूंगा किन्तु तुम्हारी और मौलाना की राय ही चलेगी।

प्रेम

बापू

—अंग्रेजी। वर्धा, ६।१२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५१९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम,
वर्धा (मध्यप्रान्त) ६-१२-४१

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र।

आज रात मैं राजेन्द्र बाबू के साथ बारडोली जा रहा हूं।

जितनी जल्दी आ सको, आओ।

मौलाना साहब ने तार दिया है कि कार्यसमिति १८ को बारडोली में होगी। अगर उन्होंने अभी सूचना न प्रसारित की हो तो मैने उन्हें २३ का सुझाव दिया है क्योंकि १७, १८, १९ को मेरी भारी बैठकें हैं। किन्तु मैंने निर्णय मौलाना साहब पर ही छोड़ दिया है।

आशा है तुम्हें मेरा पत्र मिल गया होगा।

प्रेम

बापू

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), ९।१२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५२०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

बारडोली, १३-१२-४१

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

मुझे तुम्हारा पत्र मिला है। मुझे खुशी है कि इन्दु तुम्हारे साथ आयेगी। यहां जाड़ा अपने नाम के लायक नही है। रातें ठण्डी हैं, दिन गरम हैं।

जिन प्रश्नों पर हमें विचार करना है, वे अनेक है। मुझे विश्वास है कि तुम और मौलाना साहब कार्यसमिति की तिथि के पूर्व ही यहां आ जायंगे।

१७ से आल इण्डिया स्पिनर्स एसोसियेशन (भारतीय सूत्रकार संघ या चर्खा संघ) तथा गां० से० सं० की भारी बैठके शुरू हो रही है। मैं २० को सब खत्म करने की आशा करता हूं।

सरदार अपने को अच्छी तरह सहन कर रहे है।

प्रेम

बापू

—अंग्रेजी। बारडोली, १३।१२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रा-वली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५२१. पत्र : नरेन्द्रदेव को

(मूल हिन्दी)

बारडोली

१६-१२-४१

भाई नरेन्द्रदेव,

आपके पत्र का उत्तर मैंने जानबूझकर रोक रक्खा। इनकार करने की हिच-किचाहट होती थी। लेकिन दूसरी मांगे भी आने लगी। मैंने देखा कि निमंत्रणों के स्वीकार का मेरा समय गया। काशी के बहुत तो मैंने रोके लेकिन सबका इनकार नही कर सकता था। मालवीय जी का आग्रह का इनकार कहां तक करूं? इसलिए लखनऊ से मुझे मुक्ति दें।

प्रकृति अच्छी होगी। यहां आओगे?

आपका

मो० क० गांधी

—हिन्दी। बारडोली, १६।१२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रा-वली से।]

सौजन्य : नेहरू संग्रहालय।

५२२. पत्र : मालवीयजी महाराज को

(पोस्टकार्ड)[1]

सेवाग्राम
वर्धा होकर (मध्यप्रान्त)
२६-१-४२

भाई साहेब,

आपसे मिलने पर मुझे जो आनंद हूआ मैं कैसे बताउं? मेरी उमीद है कि आपने कहा है वह शुरू कर दिया होगा. तार भेजवा दें.

आपका,
मो० क० गांधी

(पोस्टकार्ड पर पता)
भा० भु० मदनमोहन मालवीय जी,
(अंग्रेजी में) पो० बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी

— हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २६।१।१९४२। जी० एन० २२०२ की फोटो-नक़ल से]

५२३. पत्र : श्यामलाल[2] को

सेवाग्राम
वर्धा, १४-२-४२

भाई शामलाल,

यह खत तुमारे लिये, बापा[3] के लिये और वियोगी[4] जी के लिये समझो. बालकोबा[5] साधु पुरुष है. भोजु भाई सब सेवा तो करेंगे हि. लेकिन जो चाहिये

---

१. कार्ड पर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी पोस्ट आफिस की डिलीवरी-मुहर २८ जनवरी ४२, १२ बजे दिन की पड़ी है।

२. श्री श्यामलाल, काशी-निवासी, प्रधान सम्पादक श्री सुमनजी के छोटे भाई। पहिले हरिजन-सेवक-संघ और अब कस्तूर बा-स्मारक निधि में हैं।

३. श्री ठक्कर बापा।

४. श्री वियोगी हरि।

५. विनोबा के छोटे भाई।

सो सुचिता कर देना. उसको खर्च के लिये जो चाहिये सो देना. मेरे खाते में लिखना.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), १४।२।१९४२। जी० एन० ११९० की फोटो-नकल से]

५२४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम
वर्धा (सी० पी०)
२३-२-४२

चि० जवाहरलाल,

अब तो मुझको कुछ फुरसत होगी। स्टेट्स पीपल के दफ्तर का क्या करना है, अखवार का क्या करना है, पट्टाभी[1] लिखते है वे मछलीपट्टम से अखवार निकाल सकते है, उनका खत इसके साथ है। दा० मेनन यहां है। मंत्री पद वलवंत[2] राय नही ले सकते है। न जयनारायण[3] व्यास ले सकते है। रंगीलदास[4] है। वापा[5] पसंद नही करते है। अगर यहां ही दफ्तर रखना है तो चल तो सकता है। पैसे की वात सोचना होगा।

वापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २३।२।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. पट्टाभि सीतारामैया, प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक तथा कांग्रेस-इतिहास के लेखक।
२. वलवंतराय मेहता, देशीराज्यों के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता, बाद में सौराष्ट्र के मुख्य मन्त्री।
३. जयनारायण व्यास, राजस्थान के प्रमुख कार्यकर्त्ता, पत्रकार। बाद में मुख्यमन्त्री।
४. रंगीलदास कापड़िया : देशी राज्यों एवं पीड़ित वर्गों के एक जन-सेवक।
५. पीड़ित, शोषित तथा अछूतों के प्रसिद्ध नेता अमृतलाल ठक्कर।

५२५. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम
वर्धा सी० पी०
१-३-४२

चि० जवाहरलाल,

तुम्हारा खत कल मिला. मैं उत्तर नही देना चाहता था. न अब देना चाहता हूं. आज जो गरमी पड़ रही है उसका खयाल देता हूं. बहुत सख्त है. मैंने भीगा कपड़ा सर से लपेटा है. ऐसी गरमी में इन्दु को इस ओर नहि आना चाहिये. मेरी तो सलाह है कि दोनों खाल (खाली ?) जायं या काश्मीर. जब बारिश शुरू होवे तब सेवाग्राम इ० जगह जांय. लेकिन इन्दु की हिम्मत अगर यहां की गरमी को बरदाश्त करने की है तो मैं तो दोनों को देखकर खुश ही हूंगा.

एक और बात खुरशेद बहन ने तुमको लिखा था. वह लिखती है. उसके जवाब में तुमने लिखा है "मैं तो महात्मा के निमंत्रण की राह देख रहा हूं". मेरा निमंत्रण क्यों ? मेरा निमंत्रण तो हमेशा है ही. खास तो कुछ नही था कि मैं यहां तक आने की तकलीफ दूं। ओपन सिटी की बात मैं नही समजता हू इसलिये मैंने कहा अगर मैं कुछ कहूं तो भी पहले तो जवाहरलाल की राय जानना होगा. ऐसी बातो में मैं जवाहरलाल पर निर्भर रहता हूं. अब तो जल्दी मिलेंगे ही.

बापु के आशीर्वाद

— हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा) १।३।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५२६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

सेवाग्राम
४-३-४२

चि० जवाहरलाल,

तुम्हारा खत कल मिला. आशा है कि इस खत के अक्षर पढ़ने में मुश्किली नही होगी.

इंदु की शादी के बारे में मेरी तो पक्की राय है कि बाहर से किसी को न बुलाया जाय. इलाहाबाद में जो है उनमें से साक्षी के रूप में भले ही कुछ लोग को बुलाये जाय. लग्नपत्रिका दिल चाहे इतनी भेजो. सबसे आशीर्वाद मंगाओ लेकिन पत्रिका में साफ लिखना कि खासकर किसी को आने की तकलीफ़ नही दी गई है. अगर एक को भी बुलावे तो किसी को छोड़ नही सकेंगे. इंदु इतनी सादगी तक जाना चाहती है या नही यह सोचना होगा. तुम भी शायद इतनी सादगी तक जाना पसन्द न करो तो मेरी राय फेंक देना.

इंदु के बारे मे तुम्हारा निवेदन मैने देखा. अच्छा लगा. मेरे पर रोज खत आते है. कई तो विषाक्त है. सब फाड़ डाले. इन सबके उत्तर में मैने एक नोध[1] हरिजन के लिये भेजी है. उसकी नकल इसके साथ रखता हूं. नोंध लिखी गई सोमवार को. कल से मुसलमानों के खत शुरू हुए है. हमले का मुद्दा सरूपवाला किस्सा है. ऐसा तो चलता ही रहेगा.

देशी राज्य के बारे में मै हो सके वह करूंगा पैसे की मुश्केली बराबर पड़ेगी. जमनालाल जी ने सब बोज उठा लिया था. किस तरह वह निश्चित नही हूआ था. अब मैं सोच रहा हूं कि कैसे पैसे पैदा किया जाय. अखबार के बारे में पट्टाभी से मश्विरा कर रहा हूं. बलवन्त राय नही आ सकेंगे. उससे बहूत फरक नही पड़ेगा. यहां से मदद मिलती रहेगी. यहां आओगे तब दूसरी बातें करेंगे. मेनन आज मुंबई जाते है—वहां का काम पूरा करने के लिए.

च्यांग काई शेक का बयान देखा था. अच्छा था. तुम्हारी इजाजत तो आई लेकिन मैंने सोचा, अब इस खत (को) प्रकट करने की आवश्यकता नही रही. बात पुरानी हो गई.

भागीरथी आ गई है. चन्द्रसिह को रखना कठिन तो है. बहूत तामसी है. ब्रहन कमजोर है. थोड़ी सी बात में लड़ बैठते है. किसी को पीटे तो मुझे आश्चर्य नही होगा. महेनती तो है देखता हूं तुम्हारे चिता नहि करना. मेरे खत पढ़ने में कठिनाई आवे तो मै और भी साफ अक्षर लिखने की कोशिश करूंगा. लेकिन हमारा धर्म है कि हम एक दूसरों (दूसरे) से राष्ट्रभाषा मे लिखते हो जायें (लिखने लगे) कुछ अर्से मे इस तरह लिखने में हम ज्यादा आसानी महसुस करेंगे. गरीबों को बहूत लाभ होगा.

बापु के
आशीर्वाद

---

१. टिप्पणी।

—हिन्दी। सेवाग्राम, ४।३।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

- हमारा धर्म है कि हम एक दूसरों से राष्ट्रभाषा में लिखते हो जायं (एक दूसरे से राष्ट्रभाषा में लिखनेवाले वन जायं)।

५२७. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेवाग्राम
वर्धा सी० पी०
६-३-४२

चि० जवाहरलाल,

तुम्हारा खत मिला. अगले खत का उत्तर मैंने तुरन्त दे दिया था. मिल गया होगा.

मुकरजी हमारा अच्छा और नेक कामदार हैं. उसके पास जमीन है. उसको मैंने पूछा था. उसने कहा मैं दान हरगीज नहीं चाहता हूं. मुझे तो कुछ शक नहीं है कि वह पूरा रुपया वापस करेगा. सूद देने की भी उसकी तैयारी थी. हमने दूसरे कामदारों को काफी मदद दी है. मेरा तो निश्चित मत है कि हम भाई मुकरजी को रु० ३००० छे मास के लिये दे.

वापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ६।३।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५२८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[यह पत्र मूलतः हिन्दी में लिखा गया था। —सम्पा०]

सेवाग्राम
वर्धा, सी० पी० १५ अप्रैल, १९४२

चि० जवाहरलाल,

प्रोफेसर यहां आये हैं उनसे सब सुना। तुम्हारा प्रेस-स्टेटमेन्ट भी सुना।

मैं देखता हूं कि हमारे विचारो में तो भेद था ही लेकिन अव अमल में हो रहा है। इस हालत मे वल्लभ भाई वगैरा क्या करें? तुम्हारी नीति को स्वीकार किया जाय तो कमिटी जैसी आज है ऐसे नही रहनी चाहिए।

ज्यों-ज्यो मै सोचता हूं मुझे लगता है कि तुम कुछ गलती कर रहे हो। अमरीकी लश्कर, चीनी लश्कर हिन्दुस्तान में आवे और हम गुरिल्ला लड़ाई में पड़ें, इसमे मैं कुछ भी भला नही पाता हूं।

मेरा धर्म है, मैं तुम्हें सावधान करूं।

इन्दू फीरोज ठीक होंगे। मैंने कल सुना कि उत्कल में फारवर्ड ब्लाक वाले हथियारवन्द हैं और कम्युनिस्ट गुरिल्ला लड़ाई के लिए। सत्य कितना है, मैं नहीं जानता।

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), १५।४।१९४२। 'ए वंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य: श्रीमती इन्दिरा गांधी

५२९. पत्र: जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

सेगांव
वर्धा होकर (मध्यप्रान्त)
१६-४-४२

चि० जवाहरलाल,

मौलाना का खत आज आया. वे मुझे लिखते है मुझे इलाहावाद जाना है. मैं कैसे जाऊं? मैंने वही कह दिया था मैं अव मुसाफरी के लायक नही रहा हूं. और मैं आकर भी क्या करूंगा. मेरे पास वही चीज है और मैंने यहां तीन मीटीग वुलाई है. एक तो कव से वुलाई गई थी. एक भी मैं छोड़ नही सकता हूं. इसलिए तुम्हारे (तुम्हें) मुझे वचा लेना है. मौलाना से (को) लिखो कि मुझे रिहाई दे दें।

वापु के आशीर्वाद

जानकी वहन ने तुमको कल खत लिखा की (कि) दोनों मीटीग वर्धा में

करो. मैने उसे रोक लिया. जब मेरी हाजरी की जरूरत मानी जाय तब मीटींग वर्धा में ही करना चाहिए.

— हिन्दी। सेगांव (वर्धा), १९।४।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५३०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

सेवाग्राम, वर्धा सी० पी०
२४।४।४२

चि० जवाहरलाल,

मीरा बहन ने मान लिया कि मुझे कुछ न कुछ कदम उठाना होगा, और उसे कुरबानी करना (करनी) होगा। मै इलाहाबाद न जाउं तो भी वह जाना चाहती थी। इसलिये मैंने उसे यहां बुला ली (लिया)। उसके साथ मैं अपने ख्याल प्रस्ताव के रूप में भेजता हूं। मौलाना साहब का आग्रह था कि मै इलाहाबाद जाउं। मैंने लाचारी बताई। इन दिनों में मुसाफिरी करना मेरे लिए कठिन बात है। इतना ही नहीं, लेकिन मैंने उसी अरसे में तीन मीटिंग बुलाई है। इसलिये मैंने मौलाना से माफी मांग ली और लिखा कि मै अपने विचार प्रस्ताव के रूप मे भेजुंगा।

प्रस्ताव के समर्थन में दलील देने की आवश्यकता मै नही समझता हूं। अगर मेरा प्रस्ताव आप लोगों को अच्छा न लगे तो मेरा आग्रह हो नही सकता है। हमारे लिये मौका ऐसा आया है कि हरेक को अपना मार्ग सोच लेना है।

फंनी वगैरह में सल्तनत का वर्ताव ऐसा चल रहा है कि वह बर्दास्त के काबिल नही है। ऐसी सल्तनत बचकर भी क्या करेगी? और आज तो वह बचने की कोशिश कर रही है। मेरा विश्वास हो गया है कि सल्तनत उठ जाने से हम जपान के साथ अच्छी तरह से हिसाब कर सकते है। यह दूसरी बात है कि सल्तनत उठ जाने पर हम आपस में लड़ मरेंगे। भले ऐसा भी हो। हम थोड़े सल्तनत की महेरबानी से आपस आपस के झगड़ो से बचना चाहते हैं?

आचार्य नरेन्द्रदेव ने प्रस्ताव देखा है, और पसंद किया है।

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २४।४।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]

सौजन्य: श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय

५३१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

सेवाग्राम
वर्धा सी० पी०, ९-५-४२

चि० जवाहरलाल,

तुमारे खत की मैं रोज आशा रखता था. आज आया. तुमारे थोड़ा तो आराम चाहिये ही. इंदु के काम का बयान मुझे बहोतों से मिला. हमेशा अच्छी तबीयत रहे तो इंदु बिलकुल अच्छी हो जायगी.

फिरोज भी बहूत काम कर रहा है, ऐसा सबने सुनाया.

चंद्रसिंह के लिए जो कुछ शक्य है, सो होता है. माधी को बड़ी खांसी हो गई है. मैं रोज देखने जाता हूं. चंद्रसिंह और भागीरथी खुश देखने में आते है. गरमी की भी अब तो बहूत शिकायत नही करते हैं. चंद्रसिंह की पढ़ाई की समस्या कठिन है. मैं दीनबंधु स्मारक के लिये आठ दिन के लिये मुंबई जा रहा हूं. वापस आने के बाद जो हो सके करुंगा. चिंता न करें.

मौलाना के खत आते रहते है. वे भी बीमार है. लिखते हैं इस महीने की आखरी में वर्धा आवेंगे. शायद उन्ही के साथ तुम भी आओगे.

बा अच्छी है.

दोनों को

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ९।५।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्राहालय।

५३२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

सेवाग्राम
वर्धा सी० पी०, ५-६-४२

चि० जवाहरलाल,

तुम्हारा खत मिला. मौलाना से कुछ नहीं है. एक खत था जिसमें लिखा था तुम्हारे साथ आवेंगे.

फिशर[1] आ गये हैं. रोज एक घंटा तो देता हूं. आश्रम में ही रहता है. यहां तो गरम पवन फूंक रहा है.

वापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ५।६।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५३३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

सेवाग्राम वर्धा सी० पी०
१३-७-४२

चि० जवाहरलाल,

मैं प्रस्ताव पढ़ गया हूं. मै देखता हूं कि तुमने मेरी वात में से कुछ लेने की कोशीश की है. मैं कोई परिवर्तन नही चाहता हूं.

हां मै इतना जरूर चाहता हूं कि हम सव जहां तक हो सके एक ही मानी इस दरख्वास्त के करें. अलग अलग आवाज से वोलें तो अच्छा नहीं होगा.

जो चीज तुमने अपने वारे में कही और जिसमें मैंने १६ आना साथ दिया उस पर मैं कायम हूं. वहूत विचार करने पर भी मुझे लगता है कि तुम्हारे निकलने से तुम्हारी सेवाशक्ति वढ़ेगी. और इतना तुमको भी संतोप मिलेगा. जैसे मौके पर मैं कमिटी में आता रहा हूं, नरेन्द्रदेव आते रहे हैं ऐसे तुम भी करोगे और तुमारी भरसक मदद मिलेगी और तुम्हारी आझादी विलकुल सुरक्षित रहेगी.

मोलाना साहव के वारे में मेरी यह दरख्वास्त है. मैं पाता हूं कि हम दो एक दूसरे से दूर गये है. मै उनको नहीं समझता हूं न वे मुझको समझते हैं. हिंदु मुस्लीम मस्ले के वारे में भी हम दूर जा रहे हैं. ऐसे ही वाकी ख्यालों में मुझे कुछ ऐसा भी डर है कि मोलाना साहव को अव की कारंवाई पसंद नही है. इसमें दोप किसी का नही है. हकीकत हम पहचाने. इसलिए मेरी दरख्वास्त है कि मौलाना सिदारत छोड़ दें, कमिटी में रहें, हंगामी सदर कमेटी चुन ले, वे और सव एक वन कर चले. यह भारी जंग एकमत के सिवाय और सोलह आना साथ देने वाले सदर सिवाय काम ठीक नहीं चलेगा.

---

१. लुई फिशर।

यह खत मौलाना साहब को भी पढा दो. इस वक्त तो तुम दोनों के लिये ही है. मेरी एक भी बात और दोनों (को) ठीक न लगे तो उसे फेंक देना. मैंने तो सिर्फ खिदमत के भाव से ही लिखा है. कबूल होवे न होवे. उसमें रंज की बात है ही नही.

तुमारे मुस्वीह में ए० आई० सी० सी० की तारीख और जगह नही दी गई है. जहां तक मेरा तालुक है दरख्वास्त प्रेस में भेज सकते हो.

प्रस्ताव की बहस के लिए तो यहां आने की भी जरूरत नही है लेकिन जैसा मौलाना साहब का हूक्म.

बापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), १३।७।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५३४. पत्र : मिश्रजी महाराज, दयालबाग को

सेवाग्राम, वर्धा (मध्यप्रान्त)
७-९-४४

मीसीरजी महाराज,

कस्तुर बा स्मारक निधि के लिये आपने जो चेक भेजा है उस लिये आपको धन्यवाद. कोई रोज आपके दर्शन की आशा रखता हूं.

आपका
मो० क० गांधी

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), ७।९।१९४४। जी० एन० २१६७ की फोटो-नक़ल से]

५३५. पत्र : मदनमोहन मालवीयजी को

सेवाग्राम १८-११-४४

भाई साहब,

भाई सुन्दरम् ने महादेव-मन्दिर के बारे में आपका ख़त मुझे बताया. मेरा तो आपसे विनत है कि मन्दिर बहुत सादा बनने दीजिए. बड़े मकान मे महादेव

की प्रतिष्ठा होगी कि सादे में? उच्चतम विचार सादे मन्दिर में रहते हैं. ऐसी मेरी नम्र मान्यता है. चौक तो अच्छा है ही, सादी छटा करने से हजारों लोग महादेव का ध्यान कर सकेंगे. इस समय तो मन्दिर बनाने की आवश्यकता नही है. सब वस्तु नेधी[1] है. दृढ़ संकल्प किया जाय और उसकी पूर्ति के लिए प्रतिज्ञा की जाय तो आपका चित्त प्रसन्न होना चाहिये.

आपका कनिष्ठ बन्धु
मो० क० गांधी

——हिन्दी। सेवाग्राम, १८।११।१९४४।]
सौजन्य : श्री वी० ए० सुन्दरम

५३६. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

(पोस्टकार्ड)

सेवाग्राम २७-१२-४४

भाई बनारसीदास,

पिता जी के स्वर्गवास से कुछ दुःख होना स्वाभाविक तो है लेकिन क्षण भर विचार करें तो हमें पता चलता है कि जो बिल्कुल अनिवार्य है उसका खेद क्यों? और मरता है कौन? जीव तो हरगीज नहीं जिसके साथ हमारा संबंध था और रहेगा.

पिताजी के अंतीम वचन मुझे बहूत मीठे लगते हैं. मै उसे आशीर्वाद रूपसे मानूंगा.

बापु के आशीर्वाद

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी
फीरोजाबाद, जिला आगरा

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), २७।१२।१९४४। जी० एन० २५७५ की फोटो-नक़ल से]

५३७. पत्र : तेजबहादुर सप्रू को

सेवाग्राम, ८।२।४५

प्रिय डा० सप्रू

यद्यपि समझा यह जाता है कि मैं विश्राम कर रहा हूं और ८-१५ प्रातः से ८-१५ रात तक मौन रखता हूं, किन्तु मैं अन्दर से वहुत अधिक काम कर रहा हूं। इसीलिए आपको उत्तर देने में देर हुई।

---

१. मंहगी।

अगर आपको ज्यादा तकलीफ न हो तो मै चाहूंगा कि आप कायदे आजम (जिन्ना) से मेरी वार्त्ता के विषय में कुछ निश्चित प्रश्न करें। मै अपने को उन्ही प्रश्नों तक सीमित रक्खूंगा।

मै देखता हूं कि आप एक बहुत बड़े कार्यक्रम में प्रवेश कर रहे हैं। मैं सब तरह से आपकी सफलता चाहता हूं और उस कार्य के लिए आपको पूर्ण शक्ति पाने की प्रार्थना करता हूं।

मुझे आशा है कि रोगी खतरे में बाहर निकल चुका होगा।

आपका निश्छल
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), ८।२।१९४५। जी० एन० ७५७१ की फोटो-नक़ल से]

५३८. पत्र : तेजबहादुर सप्रू को

सेवाग्राम, ९।३।४५

प्रिय डा० सप्रू

आज पी० (प्यारेलाल ?) शिमला में, सम्भवतः राजकुमारी के साथ, है। यह शुभाकांक्षा का पत्र आपको श्री नरहरि परीख देंगे जो प्राचीनतम आश्रम-वासियों मे से एक है। आप इन्हें जो भी सन्देश देना चाहें, दे सकते है। मुझे आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

कृपया हिन्दुस्तानी के विषय में अपना वादा न भूलिएगा, यद्यपि आप कह चुके हैं कि आप सदस्य नहीं बन सकेंगे।

आपका निश्छल
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), ९।३।१९४५। जी० एन० ७५६९ की फोटो-नक़ल से]

५३९. पत्र : तेजबहादुर सप्रू को

सेवाग्राम, १८।३।४५

प्रिय डा० सप्रू,

मैने आपकी प्रस्तावित सिफारिशों के बारे में सुना है। मैं आशा करता हूं कि रिपोर्ट किसी भी जगह कमजोर नही होगी।

आपका
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। सेवाग्राम (वर्धा), १८।३।१९४५। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ७५६८) से]

५४०. पत्र : रमेशचन्द्र को

१-५-४५, न० दि०

भाई रमेशचंद्र,

तुमको न मिल सका उसका खेद है. प्रश्नों का जवाव हरिजन सेवक में भेजता हूं. वहां देखोगे.

वापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। नई दिल्ली, १।५।१९४५, जी० एन० ६०९५ की फोटो-नक़ल से]

५४१. पत्र : पुरुषोत्तमदास टण्डन को

२, महावलेश्वर २८।५।४५

भाई टण्डन जी,

मेरे पास उर्दू खत आते है, हिन्दी आते है और गुजराती। सव पूछते है, मैं कैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मे रह सकता हूं और हिन्दुस्तानी सभाओं मे भी? वे कहते है, सम्मेलन की दृष्टि से हिन्दी ही राष्ट्रभापा हो सकती है, जिसमें नागरी लिपि को ही राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है, जब कि मेरी दृष्टि में नागरी और उर्दू लिपि को यह स्थान दिया जाता है और उस भापा को जो न फारसीमयी है, न संस्कृतमयी। जव मै सम्मेलन की भापा और नागरी लिपि को पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूं, तब मुझे सम्मेलन में से हट जाना चाहिए। ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है। इस हालत में क्या सम्मेलन से हटना मेरा फर्ज नही होता है? ऐसा करने से लोगों को दुविधा न रहेगी, और मुझे पता चलेगा कि मैं कहां हूं।

कृपया शीघ्र उत्तर दें। मौन के कारण मैने ही लिखा है। लेकिन मेरे अक्षर पढ़ने में सवको मुसीवत होनी है, इसलिये इसे लिखवाकर भेजता हूं। आप अच्छे होगे।

आपका,
मो० क० गांधी

—हिन्दी। महावलेश्वर, २८।५।१९४५।]

५४२. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

(कार्ड)

११-६-४५, पंचगनी

भाई बनारसीदास,

दा. जाकर साहेब का निवंध कल पढ़ पाया. इतना काम मे फंसा हूं. उनको आज लिखा है. निवंध रसिक है, अच्छा है. अगर पत्रिका रूप में छपवाया हो तो कुछ प्रतियां भेजो. सेहत अच्छी होगी.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। पंचगनी, ११।६।१९४५। जी० एन० २५१९ की फोटो-नक़ल से]

५४३. पत्र : पुरुषोत्तमदास टण्डन को

पंचगनी,

१३-६-४५

भाई पुरुषोत्तमदास टण्डन जी,

आपका पत्र मिला। आप जो लिखते है, उसे मैं वरावर समझता हूं, तो नतीजा यह होना चाहिए कि आप और सब हिन्दी प्रेमी मेरे नये दृष्टिकोण का स्वागत करे और मुझे मदद करे। ऐसा होता नही है। और गुजरात में लोगों के मन में दुविधा पैदा हो गई है। और मुझसे पूछ रहे है कि क्या करना? मेरे ही भतीजे का लड़का और दूसरे हिन्दी का काम कर रहे है, और हिन्दुस्तानी का भी। इससे मुसीबत पैदा होती है। पेरीन वहिन को आप जानते है। वे दोनों काम करना चाहती है लेकिन अव मौका आ गया है कि एक या दूसरे को छोड़ें। आप जो कहते है, वह सही है, तो ऐसा मौका आना ही न चाहिए। मेरी दृष्टि से एक ही आदमी हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा का और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का मन्त्री या प्रमुख वन सकता है। वहुत काम होने के कारण न हो सके, वह दूसरी वात है। और जो मै कहता हूं वही अर्थ आपके पत्र का है, और होना चाहिए, तव तो कोई मतभेद का कारण ही नही रहता और उससे मुझे वड़ा आनन्द होगा। आपका वक्तव्य जो आपने भेजा था, मै पढ़ गया हूं। मेरी दृष्टि से हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा विल्कुल आप ही का काम कर रही है, इसलिए वह आपके धन्यवाद की पात्र है। और कम-से-कम उसमें आपको सदस्य होना चाहिये, मैने तो आपसे विनय भी किया कि आप उसके सदस्य वनें, लेकिन आपने इन्कार किया है, ऐसा कहकर कि जवतक डाक्टर

अब्दुलहक न बनें, तबतक आप भी बाहर रहेंगे। अब मेरी दरखास्त यह है कि अगर मैं ठीक लिखता हूं, और हम दोनों एक ही विचार के है, तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। अगर इसकी आवश्यकता नहीं हो, तो मेरा कुछ आग्रह नही है। कम-से-कम दोनों में तो इस बारे में मतभेद नही है, इतना स्पष्ट होना चाहिए। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में से निकलना मेरे लिए कोई मजाक की बात नही है। लेकिन जैसे मै कांग्रेस में से निकला तो कांग्रेस की ज्यादा सेवा करने के लिए, उसी तरह अगर मैं सम्मेलन से भी निकला तो सम्मेलन की अर्थात् हिन्दी की ज्यादा सेवा करने के लिए निकलूगा।

जिनको आप मेरे नये विचार कहते है, वे सचमुच तो नये नही हैं। लेकिन जब मैं सम्मेलन का प्रथम सभापति हुआ, तब जो कहा था और दुबारा सभापति हुआ तब अधिक स्पष्ट हुआ था, उसी विचार-प्रवाह का मैं अभी स्पष्ट रूप से अमल कर रहा हूं, ऐसा कहा जाय। आपका उत्तर आने पर मै आखिर निर्णय कर लूंगा।

आपका,
मो० क० गांधी

—हिन्दी। पंचगनी, १३।६।१९४५।]

५४४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[यह पत्र किसी और से बोल कर गांधीजी ने लिखवाया है। केवल 'चि० जवाहरलाल' तथा पत्र का अन्तिम पैरा 'तुम्हारी. . .हैं' एवं 'बापू के आशीर्वाद' गांधीजी ने अपने हाथ से लिखा है।—सम्पा०]

मेनर विल सिमला
२५-६-४६

चि० जवाहरलाल,

कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट में कई नाम है, ट्रस्ट बनवाया गया तब तुम्हारा और सरदार का नाम उसमें दाखल करने की इच्छा मैंने प्रकट की थी. सब ट्रस्टी राजी थे कि जब तुम बाहिर आओगे तब मै दोनों के नाम दाखल कर दूं. तुमको पूछना भूल गया था. आज प्रात.काल ख्याल आया. इसमें आना पसन्द करोगे? बिल्कुल देहाती औरतों और उनके बच्चों का काम करना है. और वह मेरे ढंग से. उसमें दिलचस्पी ले सको तो मै तुम्हारे देखने के लिए कागजात भेजूं. यही बात मैंने सरदार को सुनाई है. वह विचार कर रहे हैं. मैंने कहा है कि इसमें मान की कोई बात नही है. काम की ही है.

ऐसे ही हिन्दोस्तानी प्रचार का है. अगर आ सकते हो तो उसमें मुझे तुम्हारे नाम की वहुत दरकार है. इस वारे में भी कहो तो देखने लायक कागजात भेजूं. तुम्हारे सिर पर वहुत काम पड़ा है. इसलिए और वोझ डालने से डरता हूं. लेकिन क्या करूं?

तुमारी गैरहाजिरी यहा सवको चुभती है.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। सिमला, २५।६।१९४५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५४५. पत्र : पुरुषोत्तमदास टण्डन को

सेवाग्राम १५-७-४५

भाई टण्डन जी,

आपका ता० ११-७-४५ का पत्र मिला. मैंने दो वार पढ़ा. वाद में भाई किशोरलाल को दिया, वे स्वतन्त्र विचारक है, आप जानते होगे. उन्होंने लिखा है, सो भी भेजता हूं. मैं तो इतना ही कहूंगा कि जहां तक हो सका मै आपके प्रेम के अधीन रहा हूं. अव समय आया है कि वही प्रेम मुझे आपसे वियोग करायेगा. मै अपनी वात नही समझा सका हूं. यही पत्र आप सम्मेलन की स्थायी समिति के सामने रखें. मेरा खयाल है कि सम्मेलन ने हिन्दी की मेरी व्याख्या अपनाई नही है. अव तो मेरे विचार इसी दिशा में आगे वढ़े है. राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों शैली का ज्ञान आता है. ऐसा होने से ही दोनों का समन्वय होने का है, तो हो जायगा. मुझे डर है कि मेरी यह वात सम्मेलन को चुभेगी. इसलिए मेरा इस्तीफा कवूल किया जाय. हिन्दुस्तानी प्रचार का कठिन काम करते हुए मै हिन्दी की सेवा करूंगा और उर्दू की भी।

आपका,

मो० क० गांधी

—हिन्दी। सेवाग्राम, १५।७।१९४५।]

५४६. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

पुना १-६-४५

चि० जवाहरलाल,

तुमारा खत मिला. मेनन ने ठीक खवर दी है. सरदार ने वह खत पढ़ा है।

तुमने बहुत काम सरहद वगैरा में किया है.

सरदार १२ तारीख को पुना से नही जा सकेंगे. चार हफ्तों में तो पुना छूट ही नही सकता है. डाक्टर दीनशा को और उनके उपचार को इनसाफ करना है. यहां की हवा भी उनके लिए अच्छी है. आराम तो ठीकर है. उनका दरबार भरा रहता है.

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। पूना, १।९।१९४५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५४७. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

भाई बनारसीदास,

तुम्हारा खत पाकर दुःख हूआ. लेकिन उस कारण इस्तीफा देना अच्छा नही है. शक्कर इ० के त्याग से ही काम नही चलता है. मन पर काबु पाना भिन्न विषय है.

बापु के आशीर्वाद

पुना १६-९-४५

—हिन्दी। पूना, १६।९।१९४५। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० २५१७) से]

५४८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

[यह लम्बा पत्र दूसरे के हाथ का लिखा है। केवल आरम्भ में 'चि० जवाहरलाल' तथा अन्त में 'बापु के आशीर्वाद' गांधी जी के अपने हाथ से लिखा है।—सम्पा०]

पुना ५-१०-४५

चि० जवाहरलाल,

तुमको लिखने का तो कई दिनों से इरादा किया था, लेकिन आज ही उसका अमल कर सकता हूं। अंग्रेजी में लिखूं या हिन्दुस्तानी में, यह भी मेरे सामने सवाल रहा था। आखर मैंने हिन्दुस्तानी में ही लिखने का पसंद किया।

पहली बात तो हमारे बीच में जो बड़ा मतभेद हुआ है, उसकी है। अगर वह भेद सचमुच है तो लोगों को भी जानना चाहिए। क्योंकि उनको अंधेरे में रखने से हमारा स्वराज्य का काम रुकता है।

मैने कहा है कि 'हिन्द स्वराज' में मैने लिखा है उस राज्य पद्धति पर मै विल्कुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की वात नही है, लेकिन जो चीज मैने १६०८ साल में लिखी है उसी चीज का सत्य मैने अनुभव से आज तक पाया है। आखर में मैं एक ही उसे मानने वाला रह जाऊं उसका मुझको जरा सा भी दुःख न होगा। क्योकि मै जैसे सत्य पाता हूं उसका मै साक्षी वन सकता हूं। हिन्द 'स्वराज' मेरे सामने नही है। अच्छा है कि मैं उसी चित्र को आज अपनी भापा में खैचु। पीछे वह चित्र १६०८ जैसा ही है या नही, उसकी मुझे दरकार न रहेगी, न तुम्हें रहनी चाहिये। आखर मे तो मैने पहले क्या कहा था, उसे सिद्ध करना नही है, आज मै क्या कहता हू वही जानना आवश्यक है। मैं यह मानता हूं कि अगर हिन्दुस्तान को सच्ची आझादी पानी है और हिन्दुस्तान के मार्फत दुनिया को भी, तव आज नही तो कल देहातो मे ही रहना होगा——झोपडियो में, महलो में नही। कई अरव आदमी शहरो मे और महलो मे सुख से और शान्ति से कभी नही रह सकते, न एक दूसरे का खून करके——मायने हिसा से, न झूठ से——यानी असत्य से। सिवाय इस जोड़ी (यानी सत्य और अहिसा) के मनुष्य जाती का नाश ही है उसमें मुझे जरा भी शक नही है। उस सत्य और अहिसा का दर्शन हम देहातों की सादगी में ही कर सकते है। वह सादगी चर्खा मे और चर्खा मे जो चीज भरी है, उसी पर निर्भर है। मुझे कोई डर नही है कि दुनिया उलटी ओर ही रही दिखती है। यों तो पतंग जव अपने नाश की ओर जाता है तव सवसे ज्यादा चक्कर खाता है और चक्कर खाते-खाते जल जाता है। हो सकता है कि हिन्दोस्तान इस पतगे के चक्कर से न बच सके। मेरा फर्ज है कि आखर दम तक उसमें से उसे और उसके मारफत जगत् को वचाने की कोशिश करूं। मेरे कहने का निचोड़ यह है कि मनुष्य जीवन के लिए जितनी जरूरत की चीज है उस पर निजी कावू रहना ही चाहिए——यदि न रहे तो व्यक्ति वच ही नही सकती (सकता) है। आखर से जगत व्यक्तियों का ही वना हैं। विन्दु नही है तो समुद्र नही है। यह तो मैने मोटी बात ही कही——कोई नई वात नहीं की।

लेकिन 'हिन्दस्वराज' मे भी मैने यह वात नही की है। आधुनिक शास्त्र की कदर करते हुए पुरानी वात नये लिवास में मुझे वहुत मीठी लगती है। अगर ऐसा समझोगे कि मैं आज की (के) देहातों की वात करता हूं तो मेरी बात नही समझोगे। मेरी (मेरा) देहात आज मेरी कल्पना मे ही है। आखर में तो हर एक मनुष्य अपनी कल्पना की दुनिया मे ही रहता है। इस काल्पनिक देहात मे देहाती जड़ नहीं होगा——शुद्ध चैतन्य होगा। वह गन्दगी में, अंधेरे मे जानवर की जिन्दगी वसर नही करेगा, मरद और औरत दोनों आजादी से रहेंगे और सारे

जगत् के साथ मुकाबला करने को तैयार रहेंगे। वहां न हैजा होगा, न मरकी होगी, न चेचक होगे। कोई आलस्य में रह नहीं सकता है, न कोई ऐश-आराम मे रहेगा। सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी। इतनी चीज होते हुए मै ऐसी वहुत सी चीज का ख्याल कर सकता हूं जो बड़े पैमाने पर बनेगी। शायद रेलवे भी होगी, डाक-घर तार-घर भी होगे। क्या होगा, क्या नही, उसका मुझे पता नहीं। न मुझको उसकी कुछ फिकर है। असली बात को मै कायम कर सकू तो बाकी आने की और रहने की खूबी रहेगी। और असल बात को छोड़ दूं तो सब छोड़ देता हूं।

उस रोज जब हम आखर के दिन वर्किंग कमेटी मे बैठे थे तो ऐसा कुछ फैसला हुआ था कि इस चीज को साफ़ करने के लिए वर्किंग कमेटी २-३ दिन के लिए वैठेगी। वैठेगी तो मुझे अच्छा लगेगा, लेकिन न बैठे तब भी मै चाहता हूं कि हम दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लें। उसके दो सबब है। हमारा सम्बन्ध सिर्फ राजकरण का ही नही है। उससे कई दर्जे गहरा है। उस गहराई का मेरे पास कोई माप नहीं है। वह सम्बन्ध टूट भी नही सकता। इसलिए मै चाहूंगा कि हम एक दूसरे को राजकारण में भी भलीभाति समझें। दूसरा कारण यह है कि हम दोनों में से एक भी अपने को निकम्मा नही समझते है। हम दोनों हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए ही जिन्दा रहते हैं और उसकी आजादी के लिए हमको मरना भी अच्छा लगेगा। हमें किसी की तारीफ़ की दरकार नही है। तारीफ हो या गालियां—एक ही चीज है। खिदमत में उसे कोई जगह ही नही है। अगरचे मैं १२५ वर्ष तक सेवा करते-करते जिन्दा रहने की इच्छा करता हूं तब भी मैं आखर में बूढ़ा हूं और तुम मुकावले में जवान हो। इसी कारण मैने कहा है कि मेरे वारिस तुम हो। कम से कम उस वारस को मै समझ लू और मै क्या कहूं वह वारस भी समझ ले तो अच्छा ही है और मुझे चैन रहेगा।

और एक बात। मैने तुमको कस्तूरवा ट्रस्ट के बारे मे और हिन्दुस्तानी के वारे में लिखा था। तुमने सोच कर लिखने का कहा था। मै पाता हूं कि हिन्दुस्तानी सभा में तो तुम्हारा नाम है ही। नाणावटी ने मुझको याद दिलाया कि तुम्हारे पास और मौलाना के पास वह पहुंच गया था और तुमने अपने दस्तखत दे दिये है। वह तो सन् १९४२ में था। वह जमाना गुजर गया। आज हिन्दुस्तानी कहां है, उसे जानते हो। उसी दस्तखत पर कायम हो तो मैं उस वारे में तुमसे काम लेना चाहता हूं। दौड़-धूप की जरूरत नही रहेगी, लेकिन थोड़ा काम करने की जरूरत रहेगी।

कस्तुरवा का काम पेचीला है। ऊपर मैंने जो लिखा है वह अगर तुमको

चुभेगा या चुभता है तो कस्तुरबा स्मारक में भी आकर तुमको चैन नही रह सकेगा, यह मैं समझता हूं।

आखर की वात शरत बाबू के साथ जो कुछ चिनगारिया फूटी है वह है। इससे मुझे दर्द हुआ है; उसकी जड़ मै नही समझ सका। तुमने जो कहा है इतना ही है और वाकी कुछ नही रहा है तो मुझे कुछ पूछना नही है। लेकिन कुछ समझने जैसा है तो मुझको समझने की दरकार है।

इस सबके बारे मे अगर हमे मिलना ही चाहिए तो हमारे मिलने का वक्त निकालना चाहिए।

तुम बहुत काम कर रहे हो, स्वास्थ्य अच्छा रहता होगा। इन्दु ठीक होगी।

वापु के आशीर्वाद

-- हिन्दी। पूना, ५।१०।१९४५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५४९. पत्र : दिनेश सिंह को

पुना, ११-१०-४५

चि० दिनेश,

तुम्हारा खत पाकर राजी हूआ. सब साथ है सो अच्छा लगता है. अभ्यास पूरा करो और लोकसेवा पेट भर के करो.

वापू के आशीर्वाद

श्री दिनेशकुमार
कालाकांकर कोठी
लखनऊ (सं० प्रा०)

— हिन्दी। पूना, ११।१०।१९४५। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ७६७६) से]

५५०. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

(पोस्टकार्ड)

[टिप्पणी—पत्र किसी और के द्वारा लिखा गया है। हस्ताक्षर-मात्र गांधी जी के है।]

२३-१०-४५ पुना

भाई बनारसीदास,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। उमें मैं श्रीमन जी[1] को भेजता हूं।

न करो हिन्दी का प्रचार या न करो उर्दू का प्रचार, रोकनेवाले हम कौन है? ऐसा प्रयत्न भी करें तो निष्फल ही हो सकता है। हमारा कर्त्तव्य तो दोनों प्रथा का—हिन्दी और उर्दू जहां तक हो सके एक करने का है और यह तो तब ही हो सकता है जब दोनों लिपि और दोनों प्रथा का जाननेवाला एक वर्ग पैदा हो।

राष्ट्रभाषा का तुम क्या अर्थ करते हो वह कुछ समझने में नहीं आया है। मेरा अर्थ तो अब स्पष्ट ही है कि वही मनुष्य राष्ट्रभाषा जानता है जो दोनों लिपियों को समझता है और दोनों में लिख सकता है।

बापु के
आशीर्वाद

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)

—हिन्दी। पूना, २३।१०।१९४५। जी० एन० २५१८ फोटो-नकल से]

५५१. पत्र : हीरालाल शर्मा को

[यह पत्र बोल कर दूसरे से लिखाया गया है। हस्ताक्षर बापू जी ने किये हैं।—सम्पा०]

२७-१०-४५, पुना

चि० शर्मा,

तुम्हारा रात्रि को बारह बजे लिखा हुआ पत्र मिला। तुम्हारे भाई चले गये इसका व्यवहार में तो शोक होना ही चाहिए लेकिन पारमार्थिक दृष्टि से अथवा नैसर्गिक दृष्टि से मृत्यु का शोक क्या, जन्म का हर्ष क्या? दोनों की जोड़ी है और एक के पीछे दूसरा रहता ही है ऐसी दोनों की अविच्छिन्न मित्रता है। इसलिए कम से कम तुम्हारे में तो इस मृत्यु की ग्लानि होनी नही चाहिये। तुम्हारे सामने धर्म-पालन का एक विशेष कारण उत्पन्न हुआ।

---

१. श्री मन्नारायण अग्रवाल, जो उस समय हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा, वर्धा के मन्त्री थे और अब गुजरात के राज्यपाल हैं।

एसेम्वली में जाने का विचार स्वर्गस्थ भाई के कहने से हुआ यह और भी दु.खद वात है।

गाडोदिया जी के वारे में। अगर तुम सव चीजों पर क़ायम हो तो १, २, ३, ऐसा करके मुझको लिखो, मै उनके पास भेजने को तैयार हूं और पंच के सामने उन चीजों को रखने की सूचना भी करूंगा। इसमें जो शिकायत तुमने मेरे सामने रखी थी वह सब आनी चाहिये।

दूसरी चीजो का फैसला भले इस वात पर निर्भर रहे। आज तो मेरे मन में शक पैदा हो गया है इतना मुझे कवूल करना होगा।

सरदार का तो अव कुछ नही लिख सकता हूं, क्योंकि सरदार और दिनशा जी मुवई में है। १ली तारीख को वापिस आयेंगे।

वड़े भाई के जाने से घर का कारोवार किसको संभाल्ना हुआ। तुम कितने भाई हो ?

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। पूना, २७।१०।१९४५। 'वापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

५५२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

पुना
१३-११-४५

चि० जवाहरलाल,

हमारी कल की वात से मुझे तो वड़ा आनंद हुआ। उससे अधिक वात कल तो कर नही सकते थे और मेरा ख्याल है कि हम एक ही वक्त मिलकर सव काम पूरा नही कर सकेंगे। समय समय पर हमें अवश्य मिलना चाहिए। मै तो ऐसे वना हूं कि अगर मेरी शक्ति इधर-उधर जाने की रहे तो मै तुमको ढूंढ़ लूं, एक दो दिन साथ रह लूं, कुछ वार्तालाप कर लू और भाग जाउं। ऐसी आज मेरी स्थिति नहीं रही है लेकिन ऐसा मैने किया है इतना समझो. मै चाहता हूं कि हम एक दूसरे को समझें। ऐसे ही लोग भी हमको समझें। अन्त में ऐसा हो सकता है कि हमारा

मार्ग ही अलग है तो अलग सही। हमारा हृदय तो एक ही रहेगा, क्योंकि एक है। कल की वात से मैं यह समझा हूं कि हम दोनों में विचार श्रेणी में या तो वस्तु समझने में बड़ा अन्तर नही है। तुमको किस तरह से समझा हूं यह बताना चाहता हूं जिससे अगर फरक है तो मुझे बता दोगे।

(१) तुम्हारी दृष्टि से हर एक इन्सान की बौद्धिक, आर्थिक , राजकीय और नैतिक शक्ति कैसे बढ़े, वही सच्चा प्रश्न है। मेरा भी वही है।

(२) और उसमें भी हरेक इन्सान को ऊंचे चढ़ने का एक सा हक और मौका होना चाहिए।

(३) इस दृष्टि से देखते हुए देहात की और शहर की एक ही हालत होनी चाहिए। इसलिए खाना, पीना, रहना, पहनना और रमत-गमत एक ही होनी चाहिए। आज जो यह स्थिति पैदा करने के लिए अपने कपड़े, खोराक और मकान अपने आप पैदा करना और वनाना चाहिए। और ऐसे ही अपना पानी या बत्ती भी अपने आप पैदा करना चाहिए।

(४) इन्सान जंगल में रहने के लिए पैदा नही हुआ है, लेकिन समाज में रहने के लिए पैदा हुआ है। एक पर दूसरा सवारी न कर सके, यह विचार करते हुए पता चलता है कि युनिट एक काल्पनिक देहात या ग्रूप होना चाहिए, जो स्वावलंवी रह सके और उस ग्रुप में एक दूसरे पर अवलंबन तो होना ही होगा। इस तरह से सोचने से सारी दुनिया के इन्सानों के सम्वन्ध का नक्शा बन जाता है।

यहां तक अगर मैं ठीक समझा हूं तो दूसरा हिस्सा मैं शुरू करूंगा। जो खत मैंने तुमको पहले लिखा था उसका अंग्रेजी राजकुमारी[1] से करवा लिया था। वह मेरे पास पड़ा है। इनकी अंग्रेजी भी करवा लेता हूं और उसे साथ में ही भेजता हूं। अंग्रेजी करवाकर मै दो काम कर लेता हूं। एक तो मैं अपना कहना तुमको अंग्रेजी में ज्यादा समझा सकता हूं तो समझाऊं और दूसरा मै तुम्हारी वात पूरी समझा हूं कि नहीं, उसका भी अंग्रेजी करने से मुझे ज्यादा पता चलेगा।

इंदु को आशीर्वाद

बापु के आशीर्वाद

साथ में २

— हिन्दी। पूना, १३।११।१९४५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. राजकुमारी अमृत कौर से अभिप्राय है।

५५३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

कैम्प महिषादल
पो० सोडपुर
२८-१२-४५

चि० जवाहरलाल,

इसके साथ एक पत्र भेज रहा हूं क्योंकि लेखक ने लिखा है कि मैं भेजूं. दक्षिण आफ्रिका में मिला होगा, लेकिन मुझे कुछ ख्याल नहीं है. मैंने तो उसे लिख दिया है कि उसके एड्रेस में वहुत वड़ा दावा किया है. आदमी दीवाना-सा लगता है।

विहार में विद्यार्थियों के सामने तुमने जो कहा, उसे पढ़ने की यहां कुछ फुर्सत मिली; मुझे वहुत अच्छा लगा.

तुम्हे थोड़ा आराम लेने की आवश्यकता है. लिया जाय तो अच्छा होगा.

कम्युनिस्टों के वारे में तुम्हे लिखने को मैंने राजकुमारी से कहा था. आज अखवार में दूसरा किस्सा पाता हूं. कतरन इसके साथ है. यह क्या है? इस पर कुछ प्रकाश डाल सकते है?

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। महिषादल (बंगाल), २८।१२।१९४५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५५४. पत्र : अद्वैतकुमार गोस्वामी को

[गांधीजी की ओर से अमृत कौर ने उत्तर दिया है]

सेवाग्राम
वर्धा सी० पी०

१०-८-४६

भाई श्री अद्वैतकुमार गोस्वामी,

आपके दोनों पत्र पू० गांधी जी को मिले. संदेश तो वे कहीं भी नहीं भेजते।

राजा महेन्द्रप्रताप वापिस आ रहे हैं सो अच्छा हुआ। आप लोगों को हर्ष तो होगा ही।

दक्षिण अ० (अफ़्रीका) के बारे में गांधी जी राय है कि वहां हममें से किसी को नहीं जाना चाहिए। वहां तो जत्था को उतरने ही नही देगे।

आपकी
अमृत कौर

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), १०।८।१९४६। जी० एन० ८०५ की फोटो-नक़ल से]

५५५. पत्र : हीरालाल शर्मा को

न० दि० १६-१०-४६

चि० शर्म्मा,

तुम्हारा खत मिला. मैं यहां २३ तारीख तक हूं ऐसा आज तो लगता है. लेकिन ऐसा मानो कि मैं क्षणजीवी हूं.

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। नई दिल्ली, १६।१०।१९४६। 'वापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा

५५६. पत्र : अद्वैतकुमार गोस्वामी को

सेवाग्राम १.[illegible]११[illegible]४६

भाई अद्वितीय कुमार,

मेरा अभिप्राय है कि कोई भी कांग्रेसमैन व्यक्तिगत रूप में कुछ भी कर सकता है जो कांग्रेस की दर्शित नीति के विरोव में न हो. याद रक्खो मै कांग्रेस रजीस्टर पर नहि हूं।

बापु के
आशीर्वाद

—हिन्दी। सेवाग्राम (वर्धा), १३।११।१९४६। श्री अद्वैतकुमार गोस्वामी, वृन्दावन को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ८०४) से]

५५७. पत्र : दिनेशसिंह को

श्रीरामपुर २०-१२-४६

चि० दिनेश,

नवखोली कष्ट निवारण के लिए तुमारे तरफ से भाइ फिरोज गांधी ने रु० १००० का चेक भेजा है सो भी मीला. भाई फिरोज को खबर भेज दीजीये.

तुमको लीखने का मुझे याद नही रहेगा. मुझे यहां से मुक्त पाओ तो लिखो और मिलो. सब ठीक चल रहा होगा.

बापु के
आशीर्वाद

राजासाहब कालाकाकर
कालाकांकर हाउस
परतापगढ (सं० प्रां०)

—हिन्दी। श्रीरामपुर (बंगाल), २०।१२।१९४६। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ८६७७) से]

५५८. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

[नीचे गांधी जी का वह पत्र दिया जा रहा है, जो उन्होंने जवाहरलाल को उस दिन लिखा था, जिस दिन उन्होंने उपवास तोड़ा था। उनका उपवास कई दिन चला। उपवास उन्होंने दिल्ली में साम्प्रदायिक झगड़ों के लिए अपना दुःख जाहिर करने के लिए किया था।

दिल्ली में जो घटनाएं हो रही थीं, उनसे और गांधी जी के उपवास से जवाहरलाल जी बहुत बेचैन थे, यहां तक कि एक-दो दिन उन्होंने कुछ भी नहीं खाया। यह बाकायदा उपवास नहीं था, बल्कि घटनाओं के प्रति उनकी निजी प्रतिक्रिया थी, जिसे कोई नहीं जानता था। गांधीजी को किसी तरह पता चल गया और इसलिए उन्होंने जवाहरलालजी को सलाह दी कि वह उसे खत्म कर दें।

यह आखिरी खत था जो उन्होंने जवाहरलालजी को लिखा था; बारह दिन बाद, ३० जनवरी १९४८ को एक हत्यारे के हाथों उनकी मौत हो गई।—सम्पा०]

चि० जवाहरलाल,

उपवास छोड़ो. साथ मे पंजाब के स्पीकर के तार की नकल भेजता हूं. सैयद

हुसन ने मैने तुमसे कहा वही कहा था. बहूत वर्ष जीयो और हिन्द के जवाहर बने रहो.

१८-१-४८ वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। दिल्ली, १८।१।१९४८। 'कुछ पुरानी चिट्ठियां' से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

तिथि-विहीन चिट्ठियां

५५९. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

[इस कार्ड पर कोई तिथि नहीं है। उद्गमस्थान के डाकखाने की मुहर स्पष्ट नहीं है। जनवरी ३ जान पड़ता है परन्तु सन विल्कुल अस्पष्ट है। इलाहाबाद की डिलीवरी की मुहर में ५ तारीख है, सुबह ८-३० परन्तु उसमें भी सन स्पष्ट नहीं है। मा० शु० ६ तिथि कार्ड के अन्त में गांधी जी ने दी है, इससे तो जनवरी का ही अनुमान होता है। १९२४ में गांधी जी ने 'पाठ्यपुस्तकों की जब्ती' पर लिखा था। पर यह लेख जुलाई २५ में छपा था। सम्भवतः यह जनवरी २५ में लिखा गया होगा।—सम्पा०]

भाई जवाहरलाल

प्रो० रामदास गौड़ के पाठ्य पुस्तकों के लीये मैने कुछ यं० इं० में लीखा है. इस लीये अलग उत्तर नहि देता—अ० सौ० कमला की तवीयत अच्छी होगी. मैं पंजाव जा रहा हूं.

मोहनदास गांधी के

मा० शु० ६ आशीर्वाद

—हिन्दी। तिथि अज्ञात। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५६०. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

सेगांव

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारे खत मुझे अच्छे लगते हैं। उनसे जो जानकारी मुझे होती है वह

मुझे अन्यथा नहीं मिलती। इस्लाम-पक्षी आन्दोलन का मुझे कुछ भी पता नहीं था। उस पर मुझे आश्चर्य नही होता। मुलाकात पर तुमने मेरा बयान देखा होगा।

मेरा तरीका तुम्हे मालूम है। मुझे इन मुलाकातों से वल मिलता है। यह देखना तुम्हारा और दूसरे साथियों का काम है कि देश को, मैं जो कुछ करता हूं उसका, ठीक-ठीक अर्थ प्राप्त हो। मै चाहता हूं कि तुम राजाजी के वारे में कोई चिन्ता नही करोगे। वह विल्कुल ठीक है। फिर भी मैं चाहूंगा कि तुम अपनी शंकाएं उन पर प्रकट कर दो। मै १५ तारीख की शाम को शान्ति-निकेतन के लिए और उसके वाद १६ तारीख को मलिकन्दा के लिए रवाना हो रहा हूं।

सस्नेह

बापू

—अंग्रेजी। तिथि-विहीन। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५६१. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

(मूल हिन्दी)

[जिस कागज की पीठ पर पेंसिल से यह पत्र वापू जी ने लिखा है वह श्री एन० एल० वर्मा, डेण्टल सर्जन ७।९० कनाट सर्कस, नई दिल्ली का २७।३।१९४२ का विल है, जिसमें 'ब्लेसिंग' (आशीर्वाद) की रकम चार्ज की गई है। इससे जान पड़ता है कि इसके १-२ दिन वाद ही यह पत्र लिखा गया होगा। पत्र में 'आफ़र' का भी जिक्र है जो सर स्टैफर्ड क्रिप्स का 'आफर' जान पड़ता है। सर क्रिप्स मार्च १९४२ में यहां आये थे। इससे अनुमानतः यह पत्र मार्च १९४२ का जान पड़ता है।—सम्पा०]

मालीश के समय लिखा

चि० जवाहरलाल,

खुरशेद वहन वहूत दुखी है. उसे लगता है उसके प्रति तुम्हारा दिल सुख गया है. उसे वुलाओ, प्यार करो. तुम्हें मालूम है, तुमको पूजती है.

आज दो वजे जागा. तुम्हारा और राजा जी का ही ख्याल रहा. मेरी राय निश्चित है कि हम इस 'आफर' का स्वीकार नही कर सकते हैं. उसमें मुलक

का नाश है. अगर तुम्हारी भी यही राय है तो राजाजी से बात करो और आखरी निर्णय कर लो. अगर तुम्हारी राय राजा जी की सी है तो सोचने जैसा रहता है.

बापु के आशीर्वाद

— हिन्दी। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५६२. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिलने पर मैंने तुम्हें प्रकाशन स्थगित करने की सलाह देते हुए तार किया है। देखो, नवाब मु० इ० खां क्या कहते हैं। इन्हें इस बात से चोट पहुंची है कि तुम पत्र-व्यवहार प्रकाशित करना चाहते हो। इस स्थिति में सबसे अच्छा यही होगा कि जबतक मै इ० से मिल नही लेता तबतक प्रकाशन पर तुम्हें जोर नही देना चाहिए। उनके मुझे लिखने का भी यही अर्थ है। यदि पत्र-व्यवहार छापने से विरोधभाव बढ़ता है तो उसे छापना निरर्थक है। क्या तुम नही सोचते कि प्रतीक्षा करना ज्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण होगा ?

प्रेम

बापू

— अंग्रेजी। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५६३. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

जे० (जिन्ना ?) से अपनी वार्ताओं के विषय में मैं उद्विग्न होता जा रहा हूं। क्या तुम मामले में शीघ्रता कर रहे हो ? मैं अपनी कुछ कार्रवाइयां उसी के लिए रोके हुए हूं।

मुझे आशा है कि इन्दिरा के विषय मे खुशखबरी का क्रम जारी होगा।

प्रेम

बापू

— अंग्रेजी। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५६४. पत्र : जवाहरलाल नेहरू को

मेरे प्यारे जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र। तनख्वाहों के विषय में तुम्हारा वक्तव्य मुझे पसन्द आया। मेरी सुविधा की बात छोड़ दे तो भी मैं समझता हूं कि कार्य-समिति की बैठकों के लिए वर्धा सबसे अच्छी और सबसे शान्तिपूर्ण जगह है।

नरीमन से मेरा निरन्तर पत्रव्यवहार जारी है। उसका पत्र अविवेक का एक अद्भुत नमूना है। मैंने जो अन्तिम दो पत्र उसे लिखे हैं उन्हें देखना। म० (महादेव) उनकी प्रतियां तुम्हारे पास भेजेगा। यदि वह मेरा प्रस्ताव स्वीकार नही करता, तो मैं अपना बयान प्रकाशित करूंगा। उसमें मैं उससे कहना चाहता हूं कि तुम्हें कार्यसमिति और उसके बीच हुए पूरे पत्रव्यवहार को प्रकाशित करने में कोई आपत्ति नही है। तुम्हे भी एक वक्तव्य देना होगा। यदि मेरा वक्तव्य देना अनिवार्य हो जाता है तो तुम्हारा वक्तव्य मेरे वक्तव्य के बाद आयेगा। तुमने हिन्दी में जो निबन्ध लिखा है उसके बारे में लिखने के लिए मैं समय निकालने की कोशिश कर रहा हूं।

प्रेम

बापू

—अंग्रेजी। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५६५. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदी को

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

भाई बनारसीदास,

आपका खत मिला है. अंग्रेजी लेख छप जायगा. यंग इन्डिया के वाचक वर्ग सिर्फ अंग्रेजी हि पढ लेते हैं. अंग्रेजों के लिये और जिनको अंग्रेजी हि पढ़ने का महावरा हो गया है उन लोगों के लिये यं० इ० छपता है. उसमें हिंदी लेख छाप कर न मैं हिंदी की उन्नति कर सकता हूं, न मैं उसमें लिखा हुआ विषय को कुछ जोर दे सकता. यं० इ० का ध्येय को समझना चाहिये.

फिजी से जो तार आया है उसका मायना ठीक हि है. क्योंकि गिरमीट बंद

करने की योजना हो रही थी और वाइसराय साहेब ने तो स्पष्टतया कह भी दिया था कि थोड़े समय में गिरमीटीयों का बंधन छूट जायगा. यदि मेरा फिजी का तार का वैसा हि अर्थ है तो भी आपका पत्र छापने में कोइ हानि नही है. उसको मैं एक मार्मिक वचन वाण समझता हूं.

तोताराम जी कहां है? उनके हस्ताक्षर से लिखा हुआ लेख ज्यादे जोर दे सकेगा. भले हिंदी में हि हो. उसका तर्जुमा कर के मैं असल के साथ छपवा लूंगा. लेख विशेषणों से रहित सिर्फ हकीकत, दृष्टांत व दलील से हि भुषित होना चाहिये.

आपना
मोहनदास गांधी

(टिप्पणी—पत्र लिखा किसी और का है। हस्ताक्षर गांधी जी के हैं।)
——हिन्दी। सत्याग्रह आश्रम, साबरमती। जी० एन० २५५४ की फोटो-नकल से]

५६६. पत्र : मदनमोहन मालवीयजी को

भाई साहब,

आपके तार का उत्तर मैने दीया था. अब मुझे आपकी सम्मति जामीया फंड के लीये चाहीये.

विदेसी कपड़ों के बहिष्कार की बात आपने उठाइ है. परंतु उसी के साथ आपने मीलों के कपड़े की बात भी कही है. मैं आपको कीस तरह समझा दुं कि जब तक मीलवाले हमारे साथ कुछ संधि न करें और उनके दामो पर हम अंकुश न रख सके तबतक मीलों की मदद निरर्थक ही नहि परंतु हानिकर है. उसमें जैसे पूर्वकाल में बंगाल मे हुआ इसी तरह अब भी होगा और लोगों का विश्वास बहिष्कार की शक्यता पर से उठ जायगा.

यदी मेरी भाषा या मेरे अक्षर समजने में कठिनाइ है तो आप मुझे कह देंगे. मैं अंग्रेजी में विवस होकर लीखुंगा. मुझको तो यही टूटी-फूटी राष्ट्रभाषा ज्यादा प्रिय है.

आपका
मोहनदास

साबरमती
भा० कृ० १३
—हिन्दी। साबरमती, सन-संवत् अज्ञात, सम्भवतः १९३०-३२। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ८६८२) से]

५६७. पत्र : अवधेशदत्त को

चि० अवधेश,

वहुत दिनों के वाद तुम्हारा पत्र आया. क्या अव तक निश्चित कार्य नही लिया है? भययुक्त होने के लिये हमारे सवसे प्रेम करना और सत्य के राह पर रहना. पुण्यात्मा वनना सरल है. यह कहने का मतलव यह है कि सवको ऐसे अपने को मनवाना प्रिय है और कोई अपने को पापी मनवाना नही चाहता है इसलिये पापी वनना कठीन है ऐसा कहा जाय।

वापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। अवधेशदत्त को लिखे पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ३२१४) से]

५६८. पत्र : राजकिशोरी परशुराम को

तुम्हारे साथ वहोत वातें करने का मेरा दिल था परंतु मुझे समय न मीला. परसराम के कहने पर मुझे पता मीला कि तुम्हारा चित्त आश्रम में शांत नहि रहता है। तुमको आश्रम में वलात्कार से रखने का परसराम का इरादा नहि है. यदि तुमारा दिल किसी और जगह रहना है तो तुम रह सकती है. परसराम को आश्रम से हटने के लीये मजवूर नहि करना चाहिये. परसराम तुमारी आजीविका के लीये वद्ध है तुमारे ही साथ रहने के लीये नहि. यदि तुमारा दिल जहां वह रहे वहां रहने का न हो तो पत्नि पति के पीछे जाती है पति पत्नि के पीछे नहि जा सकता है क्योंकि पति आजीविका या आत्मोन्नति के कारण और जगह जाने के लीये कोई वार मजवूर हो जाता है।

तुमारी और लड़कों की तवीयत अच्छी होगी. तुमारे सव ख्याल मुझे वगैर संकोच के लीखो.

वापु के
आशीर्वाद

वर्धा—सोमवार

—हिन्दी। वर्धा, तिथि अज्ञात। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ७४६७ तथा सी० डब्ल्यू० ४९५३) से]

५६९. पत्र : राजकिशोरी परशुराम को

चि० राजकिशोरी,

तुमारा खत मीला. तुमको किसी जगह शिक्षा के लीये भेजना तो मुझको वहोत प्रिय है परंतु इसका यह अर्थ है कि तुमने और प्रजोत्पत्ति का मोह छोड़ दीया है, ब्रह्मचर्य का पालन करने का निश्चय कीया है, सेवा में हि अपना जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की है, तुमारे माता पिता और ससुर सास का आश्रय छोड़ दीया है. उनकी आज्ञा ली है? स्वाश्रयी बनने में नौकर इ० की सेवा का त्याग करना पड़ता है. मेरा अवलोकन यह है की अब तक तुमने स्वादेंद्रि का संयम नहि कीया है और न तुमने दूसरे भोगों का त्याग कीया है. इन सब बातों को सोच कर मुझे निश्चयपूर्वक लीखो. दरम्यान आश्रम में होते हुए भी तो वहोत अभ्यास हो सकता है सो करो।

बापु के
आशीर्वाद

बुधवार

— हिन्दी। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ७४०७९ तथा सी० डब्ल्यू० ४९५४) से]

५७०. पत्र : चन्द्र त्यागी को

मगनवाड़ी, वर्धा
१६–

चि० चन्द्र त्यागी,

राजकिशोरी आ रही है। कोई ऐसी बात नही है लेकिन वह भी थोड़ी चिन्तित रहती थी। ९९ टेम्परेचर हो जाता है। यों भी वहां आने का इरादा रखती थी। एक मास की छुट्टी लेकर जाती है। ऐसी अच्छी लड़की है कि सबको प्रिय लगती है। सादी, भोली, निर्मल हम सबको लगती है। मेरे सामने प्रतिज्ञा करके जाती है कि मुझको वख्तन वख्तन खत लिखती रहेगी—इस प्रतिज्ञा पालन मे उसको प्रोत्साहन दिया जाय। कैसा चलता है मझको लिखा करो।

बापु के आशीर्वाद

(टिप्पणी—पत्र दूसरे के हाथ का लिखा है। हस्ताक्षर मात्र गांधी जी के हैं।—सम्पादक

— हिन्दी। वर्धा, मास, सन-सम्वत् अज्ञात। जी० एन० ६६३४ की फोटो-नक़ल से]

५७१. पत्र : अम्बिकाप्रसाद को

भाई अम्बिका प्रसाद जी,

आपका पत्र मीला है. हिंदु मुस्लीम बारे मे कुछ भी मार्गदर्शक बात कहने की योग्यता मेरे में अब नहि है. इस बारे में मेरा मौन ही मेरी सेवा है ऐसा मुझे प्रतीत होता है. इसलीये आप मुझे क्षमा प्रदान करें.

आपका
मोहनदास गांधी

आ० गु० २

—हिन्दी। स्थान-तिथि अज्ञात। जी० एन० ७४८३ की फोटो-नक़ल से]

५७२. पत्र : चन्द्र त्यागी को

भाई त्यागी जी,

बलबीर और वायुमंडल के बारे में पं० देव शर्मा जी ने पूछो. नारीयल न मीले तो तिल का या अलसी का प्रयोग कीया जाय.

मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है.

बापु के आशीर्वाद

प्रयाग
मौनवार

—हिन्दी। इलाहाबाद। पत्र की फोटो-नक़ल (जी० एन० ६०९६) से]

———

: पाँच :

निवेदन

[उत्तर प्रदेश-वासियों के तार-पत्र : गांधीजी के नाम]

१. रेवरेण्ड वेल्स ब्रांच का पत्र : गांधीजी के नाम

रेवरेण्ड एम० वेल्स ब्रांच
मैनेजर
लखनऊ क्रिश्चियन स्कूल आफ कामर्स
लखनऊ, भारत
२ मई, १९१९

श्री मो० क० गांधी
बम्बई

प्रिय श्री गांधी,

प्रेम और सत्य में मनुष्य को सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से बिल्कुल बदल देने की कितनी शक्ति है, इस विषय में आपके वक्तव्य मैंने अत्यन्त दिलचस्पी के साथ पढ़े। यह शिक्षा बाइबिल की शिक्षा से इतनी अधिक मिलती-जुलती है और ईसामसीह के जीवन तथा व्यक्तित्व में इस शिक्षा की इतनी पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है कि मुझे आपको यह पत्र लिखकर निम्नलिखित प्रश्न पूछने ही पड़ रहे हैं:—

१. आपके विचार से भारत के भावी विकास में ईसाइयत (यह आवश्यक नहीं कि इसका पाश्चात्य रूप ही) का क्या हाथ रहेगा?

२. क्या भारत की आधुनिक जागृति ईसाई शिक्षा का परिणाम है या यह किसी और धर्म से उद्भूत हुई है?

३. (१) शिक्षक (२) अवतार तथा (३) संसार के त्राता के रूप में ईसा-मसीह के प्रति आपकी व्यक्तिगत भावना क्या है?

मैं ये प्रश्न आपसे इसलिए नहीं पूछ रहा हूं कि इन्हें प्रकाशित करूंगा। मैं तो सिर्फ अपनी इस जिज्ञासा को शान्त करना चाहता हूं कि इनके सम्बन्ध में सचमुच आपका दृष्टिकोण क्या है। मैं भारत को प्यार करता हूं और भारत के लोगों को प्यार करता हूं और मेरा यह व्यक्तिगत विचार है कि भारत एक दिन दुनिया को यह दिखलायेगा कि ईसाइयत का प्रवर्तन जिस रूप में हमारे त्राता ईसामसीह ने किया उस असली रूप में उसका क्या अर्थ है। मुझे लगता है कि समय की मांग

यह है कि उनके प्रच्छन्न अनुयायी, जिनमें से हजारों भारत में भी है, सामने आकर उनके प्रति अपनी आस्था की घोषणा करें।

आपका एक ईसाई वन्धु
एम० वेल्स ब्रांच

—अंग्रेजी २।५।१९१९। एस० एन० ६६०८ की फोटो-नकल से]

२. मोतीलाल नेहरू का पत्र : गांधीजी के नाम

चेस्टनट लाज, अल्मोड़ा
३ जून, १९२१

प्रिय महात्मा जी,

मैने, अखवारों को दिये अली-भाइयों[1] के वयान के वारे में, परसों आपको लिखा था। ऐसा मैने ३१ मई के 'इण्डिपेण्डेण्ट'[2] में छपे एक संक्षिप्त विवरण के आधार पर किया था। अभी-कभी मैने पूरा वयान और उससे सम्वन्धित भारत-सरकार की घोषणा को देखा और चेम्सफोर्ड क्लव में दिये गये वाइसराय के भाषण को भी पढ़ा है। वड़े दुःख के साथ कहूगा कि इन सबको पढ़कर मुझे कोई तसल्ली नही हुई है।

अलीभाइयों का वयान अपने-आप में, और अगर उसे आगे-पीछे की घटनाओं के हवाले से न पढ़ा जाय तो, एक काफ़ी मर्दानगी की चीज है। अगर तैश में आकर उन्होने कुछ ऐसी वातें कह दी है, जिनसे उन्हें अव यह लगता है कि शायद वे हिसा को भड़कायें, तो दुःख प्रकट करके उन्होने सम्मान के उसी मार्ग को अपनाया है, जो उन जैसे जनता के सेवक को अपनाना चाहिए था। आगे के लिए जो वचन उन्होने दिया है उसे भी मै उचित मान लेने को तैयार होता, वशर्ते कि यह वचन अपने उन साथियों को दिया गया होता, जो उनके जैसे न होकर हिसा

१. मौलाना शौकत अली एवं मुहम्मद अली, जो उस काल में व्रिटिश सरकार के विरुद्ध खिलाफत आन्दोलन में गांधीजी के प्रधान सहयोगी थे किन्तु जिनपर हिंसात्मक होने का आरोप लगाया गया था।

२. पं० मोतीलाल एवं पं० जवाहरलाल द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक पत्र जो इलाहावाद से प्रकाशित होता था।

में किसी भी दशा में विश्वास नही रखते। किन्तु इस प्रकार के सामान्य शब्द जैसे "सार्वजनिक भरोसा और वादा उन लोगों के प्रति, जिनके लिए वह आवश्यक हो", आज की स्थिति में किसी को संशय में नही रख सकते कि यह "भरोसा और वादा" किसी विशेष जमात ने माँगा है और किसके कहने पर यह दिया गया है। वाइसराय के भाषण ने अब उसे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है और हमारे सामने यह बात पक्की शकल में आती है कि असहयोग-आन्दोलन के नेता ने भारत-सरकार से सुलह कर ली है और अली-भाइयों से खुलेआम माफ़ी और वचन दिलवाकर उन पर मुकदमा चलाना रुकवा दिया है।

मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, और मैं नही जानता कि और किस दृष्टि से इसे देखा जा सकता है, पूरे आन्दोलन के विषय में विचार करने योग्य बड़े गम्भीर प्रश्न उठ खड़े होते है। वस्तुतः मुझे तो लगता है कि असहयोग के सारे सिद्धान्त का ही त्याग कर दिया गया है।

मैं उन लोगों में नही हूं जो सरकार के नाम से ही बिदकते है। न मै उन लोगों मे से हूं, जो समझते हैं कि अन्त में सरकार से समझौता करना ही अकेला ऐसा साधन है जिससे हम अपने ऊपर अत्याचारों को खतम कर सकते है और स्वराज्य की स्थापना कर सकते है। मेरा भरोसा तो उस बात में है, जो आप बराबर सिखाते रहे है, अर्थात् स्वराज्य प्राप्त करना एकदम हमारे ही हाथ मे है। साथ ही मै इस बात की सम्भावना को अलग नही करता, और जहा तक मै जानता हूं आप भी नही करते कि उचित स्थितियो में सरकार से समझौता हो सकता है। किन्तु ऐसे समझौते का सम्बन्ध केवल सिद्धान्तों से हो सकता है, न कि व्यक्तियों की सुविधा और सुरक्षा से। साथ काम करने वालों मे आप आदमी-आदमी के बीच भेद नही कर सकते और छोटे-से-छोटा आदमी भी नेताओं से वही सुरक्षा पाने का अधिकारी है जो बड़े-से-बड़ा आदमी। हमारे सैकड़ो नही तो बीसियों लोग अली-भाइयों से कही कम कड़ी बात कहने पर खुशी-खुशी जेल गये हैं। इनमें से कम-से-कम कुछ इसी तरह से माफ़ी मांगकर या वचन देकर आसानी से बचाये जा सकते थे। किन्तु ऐसा करने की सलाह देने की किसी को नही सूझी, बल्कि नेताओ ने और सभी असहयोगी समाचारपत्रों ने उनके कदम की तारीफ़ की। एक उदाहरण, जो विशेषतः औरों की अपेक्षा कही जोर के साथ इस समय मेरे मन में उठ रहा है, वह हमीद अहमद का है जिसे हाल ही में आजीवन कालेपानी और जायदाद की जब्ती की सजा मिली है। मै उस आदमी को निजी तौर पर जानता हूं। वह बड़ा ही सीधा-सादा है, बुद्धि मे औसत से भी कम है और कुछ

अच्छा वक्ता भी नही है। किन्तु उसने दूसरों के भाषण सुन और पढ़ रक्खे थे और अपने ढंग पर उनकी नकल करने की कोशिश करता था। ऐसा करने में वह शायद निशाना चूक गया। किन्तु मुझे विश्वास है कि वस्तुतः हिंसा का प्रचार करने का कभी उसका इरादा नही था। क्या कोई कारण है कि इस आदमी का बचाव न किया जाय? मुझे पता लगा है कि मुहम्मद अली ने ३० मई की अपनी बम्बई की वक्तृता में उसकी बड़ी तारीफ की है। मैं नहीं कह सकता कि हमीद अहमद को एक ऐसे आदमी की इस प्रशंसा से क्या दिलासा मिलेगा जिसने वैसी ही परिस्थितियों मे माफ़ी मांगकर और आश्वासन देकर अपने को बचा लिया है। फिर न जाने कितने और लोग हैं जो जेलों में सड़ रहे हैं, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया और कितने ही औरों को इसी के लिए छांट दिया गया है। क्या हमारे लिए इतना ही काफी होगा कि हम सुरक्षित स्थिति में रहते हुए इन लोगों को अपनी शुभ कामनाएं भेजते रहें ?

वाइसराय ने अपने भाषण में यह बात साफ कर दी है कि आपने उनसे जो कई मुलाकातें की, उनका एक ही पक्का नतीजा हुआ है और वह है अली-भाइयों का माफ़ी मांगना और वचन देना। आपने अपनी बाद की वक्तृता में यह बिल्कुल साफ़ कर दिया है कि हमारा आन्दोलन बेरोक चलते रहना चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि इस प्रकार की कोई समस्या तय नही हुई जिसमें सिद्धान्त की बात हो, सिवाय इसके कि हिंसा को कोई उत्तेजना न मिले और वह ऐसी बात थी जिसके लिए दोनों मे से किसी ओर कोई समझौते की जरूरत नही थी। मैं यह नही कहता कि इस स्थिति में सरकार से बातचीत करने की कोई जरूरत नही थी, यद्यपि इस दृष्टिकोण के समर्थन में भी बहुत-कुछ कहा जा सकता है। जब यह मालूम हो गया था कि खेल तो आखिर खेला जायगा, तो आप और लार्ड रीडिंग-जैसे सम्मान्य प्रतिपक्षी के लिए यह सर्वथा उचित होता कि खेल के कायदे तय करते, जिससे किसी तरफ से बेईमानी न हो। ये कायदे निश्चय ही खेल में सभी हिस्सा लेनेवालों पर लागू होते, न कि कुछ इने-गिने प्रिय लोगों पर। सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की थी कि कौन-कौन से हथियार काम में लाये जायं, इस पर समझौता हो जाता। कुछ स्थानीय सरकारें कहने को तो यह कह देती है कि वे प्रचार का जवाब प्रचार से दे रही है, किन्तु वस्तुतः वे बुरे-से-बुरे ढंग पर दमन कर रही है। इसी तरह के बहुत से और मुद्दे, मेरी राय में, बातचीत के उचित मुद्दे बन सकते थे, चाहे खास मुद्दे पर कोई समझौता न हुआ होता।

मैं आशा करता हूं कि आप मुझे गलत न समझेंगे। अली-भाइयों के बलिदान की प्रशंसा में मैं किसी से पीछे न रहूंगा, और इसे मैं अपना बड़ा सौभाग्य मानता

हूं कि मुझे उनकी विशेष मैत्री प्राप्त है। जो बात मेरे मन पर कुछ समय से भार डाल रही है, वह यह है कि हम लोग, जो अपने बहुत-से कार्यकर्त्ताओं के जेल जाने और दूसरे कष्टों के भुगतने के लिए सीधे-सीधे जिम्मेदार है, स्वयं उन कष्टों से सर्वथा बचे हुए है। उदाहरण के लिए सरकार मुझे तकलीफ और दिमागी परीशानी पहुंचाने के लिए इससे ज्यादा सजा का कोई तरीका नही निकाल सकती थी कि मेरे लिखे पर्चे बांटने पर वह निरपराध लड़कों को जेल में डाले। मै समझता हूं कि अब वह समय आ गया है जब नेताओं को कष्ट भोगने के अवसरों का स्वागत करना चाहिए और बचाव के फुसलावों से बिल्कुल इन्कार कर देना चाहिए। मामले को इस दृष्टि से देखते हुए मैने अली-भाइयों के काम पर आपत्ति की है। निजी रूप से मैं उन्हें प्यार करता हूं।

अब मैं बिल्कुल थक गया हूं। आपसे जल्दी मिल पाता तो अच्छा होता। बात करने के लिए बहुत-कुछ है। यहां रहते हुए मुझे चार दिन हो गये है और स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ है, किन्तु दमा बिल्कुल गया नही है और दुर्बलता तो इतनी कभी नही जान पड़ती थी। १४ तारीख की बैठक के लिए बम्बई पहुंच पाऊंगा, इसमें बड़ा सन्देह है।

आपका,
मोतीलाल नेहरू

—अंग्रेजी। अल्मोड़ा, ३।६।१९२१]

३. रामानन्द संन्यासी का पत्र : गांधीजी के नाम

बलदेव आश्रम
खुर्जा (संयुक्त प्रान्त)
१ अप्रैल, १९२४

श्रीमान् महात्माजी,

आपका २८ ता० का पत्र मिला। मुझे खेद है कि पहले पत्र में मैंने आप को कोई ब्यौरा नहीं लिखा।

(१) १९२१ के घटना के बाद भरती बिल्कुल बन्द हो गई थी। व्यापार मन्दी पर था। और इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों ही जगह भारत की चाय काफी जमा थी। इस समय बाजार के भाव चढ़ने सेऔर जमा चाय के खप जाने से चाय-

वागान के मालिकों को और ज्यादा मजदूरों की जरूरत महसूस हुई ताकि १९२१ मे छोड़े हुए वगानों में फिर चाय की खेती की जा सके। इस समय भरती पिछले नवम्वर में शुरू हुई थी। मुझे सूचना अपने एक दोस्त से मिली थी। वे जिला गुड़गांव (पंजाव) में डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर है। उसके वाद मुझे संयुक्त प्रान्त के लगभग छः जिलो से और पंजाव के दो जिलों से सूचना मिली। मैंने जनवरी में समाचारपत्रों के नाम एक वक्तव्य जारी किया था जिसमें मैंने लोगों को भरती के परिणामों से आगाह किया था। वागानो के आंग्ल-भारतीय एजेण्टों ने सावधानी से उन जिलों को छोड़ दिया था जिनसे वे १९२१ की घटना से पहले मजदूर भरती किया करते थे।

(२) उपर्युक्त विवरण में आपके दूसरे और तीसरे प्रश्नों के उत्तर भी आ जाते है।

(३) मै चाय के वगानों में यही जाच-पड़ताल करना चाहता हूं कि वहां इस समय वास्तव में कैसी स्थिति है, क्या मजदूरों की नैतिक और आर्थिक स्थिति मे पहले से सुधार हुआ है। और यदि किसी भी दिशा में कोई भी सुधार नही हुआ हो तो क्या उन क्षेत्रो में मजदूरो का जाना वन्द करना देश के सामान्य हित में नही होगा, ताकि और अधिक लोगों का चारित्रिक और नैतिक पतन न हो ?

(४) जहां तक मुझे पता लगा है भरती किये जानेवाले मजदूरों को काम की कोई शर्ते नही वताई गई। लेकिन मुख्यतः उनकी शर्तें इस प्रकार थी :

(१) पति और पत्नी दोनों को ३० रु० मासिक मजदूरी (२) मकान, ईंधन और डाक्टरी देखभाल मुफ्त। (३) यदि नये मजदूर को जगह पसन्द न हो तो रेल का वापसी टिकट मुफ्त। लेकिन आप स्वयं अन्दाज लगा सकते हैं कि यदि एक वार कोई चाय वगान के जिलों में मजदूर के रूप में चला जाता है तो उसके लिए वहां से लौटना कितना कठिन होता है। मै आपके इस सुझाव को विल्कुल स्वीकार करता हूं कि वहां जाने से पहले असम कांग्रेस कमेटी की मार्फत जॉच-पड़ताल करा ली जाय, और मै तदनुसार कमेटी को एक पत्र लिख रहा हूं जिसकी नकल इस पत्र के साथ संलग्न है। कुछ दिन पहले मुझे विसवां कांग्रेस कमेटी का एक पत्र मिला था। मै इसके साथ वह मूल पत्र भी भेज रहा हूं।

हृदय से आपका
रामानन्द संन्यासी

—अंग्रेजी। खुर्जा, १।४।१९२४। सावरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]

४. मोतीलाल नेहरू का पत्र : गांधीजी के नाम

'सुनीता'
रिज रोड, मलाबार हिल, बम्बई
२५ जुलाई, १९२४

प्रिय महात्माजी,

मैंने मौलाना मुहम्मद अली को हाल ही में उनके इलाहाबाद आने पर लिखित उत्तर पाने की दृष्टि से एक प्रश्न-सूची दी थी। उसकी एक प्रति मैं पत्र के साथ भेज रहा हूं। मौलाना हमारे घर पर ही ठहरे थे और प्रश्न-सूची दिये जाने के बाद वह पूरा दिन इलाहाबाद में रुके थे। जाते समय मैंने उनको प्रश्नों की याद दिलाई थी। इस पर उन्होंने इतना ही कहा कि कुछ कुशकाएं पैदा हो गई हैं। उन्होंने अधिक जानकारी के लिए मुझे मौलवी रफी अहमद से मिलने को कहा। मौलवी साहब भी वही मौजूद थे। उन्होंने उसी वक्त कहा कि उनको कोई जानकारी नही। लेकिन मौलाना ने मजाकिया लहजे में कुछ कहकर बात टाल दी और चले गये। इसके बाद मैंने जवाहरलाल से पूछा कि क्या उसे कुछ अन्दाज है कि मौलाना साहब जवाब देंगे भी या नही। उसने कहा कि उसे कुछ अन्दाज नही है। यह ठीक है कि मौलाना साहब को इन या अन्य किसी भी प्रश्न का उत्तर देने पर कोई आपत्ति नही है, लेकिन इन प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर न मिलने पर मुझे अपने ही निष्कर्ष निकालने की छूट है, फिर मेरे निष्कर्ष भले ही सही न हों।

मैं आपको बतला दूं कि तीसरे और चौथे प्रश्न मे जिन तथ्यों का उल्लेख है मैंने विश्वस्त प्रमाण के आधार पर उनके बिल्कुल सही होने की तसल्ली कर ली है। इनके सम्बन्ध मे आपके विचार जानने की भी मेरी बड़ी इच्छा है। यदि शेष प्रश्नों के बारे में भी आपके विचार मुझे मालूम हो जायं तो मुझे आगे की कार्रवाई के बारे में फैसला करने में बड़ी मदद मिलेगी।

मैं बम्बई में चार या पांच दिन रुकूगा। कृपया लिखें कि आप कबतक बम्बई पहुंच रहे हैं?

सादर,

हृदय से आपका,
मोतीलाल नेहरू

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष, मौलाना मुहम्मद अली को पण्डित मोतीलाल नेहरू द्वारा उत्तर पाने की दृष्टि से दिये गये प्रश्न।[1]

(१) कांग्रेस-द्वारा दिल्ली और कोकोनाडा में पास किये गये प्रस्तावों को देखते हुए क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी-द्वारा अहमदाबाद की पिछली बैठक मे पास किये प्रस्तावों का आप यह अर्थ लगाते है कि अपरिवर्तनवादी लोग कौसिल-प्रवेश के विरुद्ध देश मे सक्रिय रूप से प्रचार कर सकते हैं?

(२) यदि हा, तो क्या आप मानते है कि स्वराज्यवादी भी इस प्रकार की काट के लिए प्रचार करने को स्वतन्त्र है?

(३) क्या यह सच है कि आपने और मौलाना शौकत अली ने कौसिल-प्रवेश के विरुद्ध सक्रियरूप से प्रचार शुरु भी कर दिया है, और आपने लखनऊ में अपने प्रभाव का इस्तेमाल करते हुए विधान परिषदों के स्वराज्यवादी सदस्यों को परिषदो से बाहर आ जाने के लिए राजी करने की कोशिश भी की थी?

(४) क्या यह सच है कि आपने, मौलाना शौकत अली ने या दोनों ने ही स्वराज्यवादियो और अन्य कांग्रेसियों के सामने समस्या को इस रूप में पेश किया था कि मुख्य प्रश्न तो यह है कि वे महात्मा गांधी को नेता स्वीकार करते हैं या पण्डित मोतीलाल नेहरू को ?

(५) क्या आप कांग्रेस के आगामी अधिवेशन में सदस्यों का बहुमत निम्नलिखित बातों के पक्ष में लाने के लिए प्रयत्नशील है?

(१) आमतौर पर ऐसे हर प्रस्ताव के पक्ष में जो महात्मा गांधी के सामने पेश करें?—

(२) और खासतौर पर—

(क) कौसिल-प्रवेश के बारे में दिल्ली और कोकोनाडा अधिवेशनों-द्वारा स्वीकृत समझौते के प्रस्तावों को रद्द कराने के पक्ष में?

(ख) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अहमदाबाद में पास किये गये हाथ-कताई सम्बन्धी प्रस्ताव मे सम्मिलित दण्ड की व्यवस्था को पुनः लागू करने, और

(ग) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और विभिन्न प्रान्तीय जिला तथा तहसील कांग्रेस कमेटियों की सदस्यता से सभी स्वराज्यवादियो को अलग करने के पक्ष में?

---

१. गांधीजी ने प्रश्न-सूची के प्रश्न १, २, ५, ६ और ७ वें प्रश्नों के उत्तर दिये थे। [देखिए पत्र : मोतीलाल नेहरू को, २६।७।१९२४]

६. यदि उपर्युक्त प्रश्नों के किसी भी भाग का उत्तर आप 'हां' में देते हैं तो क्या आप इस वात से सहमत है कि स्वराज्यवादियों को इसकी काट के लिए प्रचार करने की पूरी छूट है ?

७. (क) क्या आप इन वातों से सहमत हैं कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और विभिन्न प्रान्तीय जिला तथा तहसील कमेटियां हालां कि मोटे तौर पर काग्रेस की कार्यकारिणी समितियां मानी जाती है पर वे वास्तव में विचार-विमर्श करनेवाली ऐसी समितियां ही हैं जिनमें सैकड़ों सदस्य होते है और फिर प्रत्येक समिति की एक अपनी परिषद होती है, जो ठीक कार्यकारिणी समिति के रूप में कार्य करती है ?

(ख) यदि हां, तो क्या आपका मंशा स्वराज्यवादियों को केवल केन्द्रीय और प्रान्तीय संगठनों को शुद्ध कार्यकारिणी समिति से अलग करने का ही है या ऊपर वताई गई ज्यादा बड़ी विमर्शकारी समितियों से भी उनको अलग किया जायगा ?

मौलाना मुहम्मद अली को इलाहावाद में १८-७-१९२४ को दस्ती दिया गया।

मो० ला० ने०

—टाइप की हुई अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९००२) की फोटो-नकल से।
: २५।७।१९२४। सं० गां० वा० खण्ड २४, पृष्ठ ६०७-८-९ में भी]

५. मोतीलाल नेहरू का पत्र : गांधीजी के नाम

"सुनीता"
रिज रोड, मलावार हिल, वम्बई
२८ जुलाई, १९२४

प्रिय महात्मा जी,

आपका पत्र मिला। मौलाना मुहम्मद अली के सामने रक्खे गये प्रश्नों में से कुछ प्रश्नों के उत्तर देने के लिए धन्यवाद।

प्रश्न-सूची की एक प्रति के साथ अपना पिछला पत्र भेज चुकने के बाद, मैंने समाचारपत्रों में देखा कि आप सिर-दर्द और बुखार से जब-तब पीड़ित रहते हैं और आपका वजन भी काफ़ी घट गया है। ऐसी हालत में मैंने प्रश्न भेजकर आपको

परेशान किया, इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूं। यदि पत्र लिखने से पहले मैंने ऐसे समाचार पढ़े होते तो मै कदापि वैसा न करता।

मै अब आपके बारे में काफी चिन्तित हूं। ऐसी हालत में सबसे पहला काम यही हो जाता है कि आप तुरन्त सारा काम बन्द कर दें और पूर्णतया विश्राम करें परन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि आप ऐसा नहीं करेंगे। सभी महान व्यक्तियों की अपनी कुछ कमजोरियां होती है और कभी-कभी वे कमजोरियां साधारण व्यक्तियों में पाई जाने वाली कमजोरियों की अपेक्षा बड़ी मात्रा में होती है। अपनी सेहत की ओर ध्यान न देने की कमजोरी ऐसे लोगों में विशेष तौर पर पाई जाती है। आप मानते हैं कि आपने जिस काम का बीड़ा उठाया है उसे सम्पन्न करने लायक शक्ति आप के शरीर में नही है, फिर भी आप सिर्फ वही एक काम नही करेंगे जिसे कि हर आदमी और खुद आप भी जानते-समझते है कि आपके स्वास्थ्यलाभ के लिए अत्यावश्यक है। इसे मैं राष्ट्रीय विपत्ति के अतिरिक्त अन्य कोई संज्ञा नही दे सकता।

मै आपके साथ पूरी स्पष्टवादिता से काम लूगा चाहे आप नाराज ही क्यों न हो जायँ। मैं आप से बिल्कुल खरी बात कह देना चाहता हूं कि आप इस समय जो काम कर रहे है वह अभी कुछ दिनों तक रुका रह सकता है और यदि वह बिल्कुल किया ही न जाय और यदि उसके बदले एक या दो महीने में भी हमें अपना गांधी पूर्णतः स्वस्थ होकर मिल जाय तो राष्ट्र की जरा भी हानि नही होगी। मेरा बस चले तो मै कुछ समय के लिए भारत से आपका सारा सम्पर्क तुड़वा दूं, बिल्कुल पूरी तरह से और आप को ऐसी लम्बी समुद्री-यात्रा पर भेज दूं जहां आपको छः सप्ताह तक कही भी भूमि का दर्शन ही न होने पाये। आप कम-से-कम लंका की यात्रा तो कर ही सकते है। वहां आपका सारा वातावरण बदल जायगा। आपकी अनुपस्थिति मे आपकी सारी चिट्ठी-पत्रियां आश्रम में ही रख ली जायं। लेकिन इस लहजे में लिखते जाने से कोई लाभ नही। मुझे तो लगता है कि मैं आपसे अपनी बात मनवा ही नही सकता और हम सिवाय इसके कुछ कर ही नही सकते कि हाथ पर हाथ धर कर देखते रहें कि भविष्य क्या दिखाता-दिखलाता है। लेकिन मैंने एक बात अपने तईं तय कर ली है। वह यह कि आप इस समय जो आत्मघाती काम कर रहे है मै उसमें सहभागी नही बनूंगा। जबतक आप काफी स्वास्थ्य-लाभ नही कर लेते तबतक और अधिक पत्र-व्यवहार या बातचीत करके आपकी परीशानी नही बढाऊंगा। भले ही काम कितना ही फौरी क्यों न हो।

आपका पोस्टकार्ड[1] मुझे शायद इलाहाबाद पहुंचने पर मिलेगा। मै परसों

---

१. उपलब्ध नहीं है।

रात वापस जा रहा हूं। यदि मैं समझता कि मेरे मिलने का कुछ उपयोग होगा तो मै एक दिन के लिए साबरमती भी पहुंच जाता लेकिन मुझे अपनी यात्रा से कोई लाभ नही दिखाई देता और इसलिए मैने उसका विचार छोड़ दिया है। फिर भी मै आपसे एक प्रश्न पूछता हूं। यदि मैं आप से कहूं कि आप इलाहाबाद से पांच मील की दूरी पर गंगा तट पर स्थित मेरे एक मित्र की वाटिका में आकर चन्द सप्ताह रहें तो क्या आप मुझे पागल करार देंगे? वाटिका पूरी तरह से मेरे ही हाथ में है। आपके स्वास्थ्य-लाभ के लिए समुद्री यात्रा का एक यही विकल्प मुझे सूझ रहा है।

हृदय से आपका,
मोतीलाल नेहरू

—हस्तलिखित अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९००४) की फोटो-नकल से, २८।७। १९२४]

६. मोतीलाल नेहरू का पत्र : गांधीजी के नाम

कलकत्ता
२१ जुलाई, १९२५

प्रिय महात्मा जी,

स्वराज्य-दल के महान नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास की असामयिक मृत्यु से होने वाली हानि पर, जिसकी कि पूर्ति नही हो सकती, आपने जो सहायता उसे उदारतापूर्वक दी है उसके लिए स्वराज्यदल आपका अत्यन्त ऋणी है। और अब तो आपने अपने १९ जुलाई के पत्र में जिस शिष्ट देन का जिक्र किया है, उसके द्वारा उस ऋण को और दुगुना कर दिया है। मैं समझता हूं कि आपके इस ऋण को अदा करने का यही एकमात्र रास्ता है कि आपकी उस देन को विनय-पूर्वक स्वीकार कर लूं और आपकी सहायता से उस स्थिति का मुकाबला, फरीदपुर वाले देशबन्धु के आखिरी ऐलान को सामने रखकर, करने का यत्न करूं जो कि लार्ड बरकनहेड के भाषण से उत्पन्न हुई है।

ऐसा जान पड़ता है कि लार्ड बरकनहेड ने देशबन्धु दास के सम्मानपूर्ण सहयोग को दुरदुरा दिया है, और यह बात स्पष्ट कर दी है कि हमारी इस आजादी के संग्राम में हमें अभी और कितने ही अनावश्यक विघ्नों और बहुतेरे गलत खबरें

पानेवाले विरोधियो का सामना करना वाकी है। इसलिए इस मौके पर हमारा यही स्पष्ट कर्त्तव्य है कि हम अपने लिए निश्चित मार्ग पर आगे वढते चले जायं और इस गैर-जिम्मेदारी और गुस्ताख हुकूमत को खासी कारगर चुनौती देने के लिए देश को तैयार करे। फरीदपुरवाले उस भाषण के शब्दो में हमारी लड़ाई जारी रहेगी, पर होगी वह स्वच्छ-शुद्ध। हम इस वात को न भूलेगे कि जव निपटारे का समय आवेगा और जो आये विना रह नही सकता, हम सन्धि-परिषद में उद्धत वनकर नही वल्कि समुचित नम्रता के साथ प्रवेश करेंगे जिससे कि लोग कहें कि विफलता के दिनो की अपेक्षा सफलता के समय में हमने अधिक वड़प्पन दिखाया। अव आपने महासभा की सारी संयुक्त शक्ति हमारे हाथ मे देकर देशवन्धु के उस सन्देश को पूरा करने का अवसर दे दिया है। ऐसे मंगलाचरण को देख कर हमें इसके परिणाम के विषय मे कोई सन्देह नही रह सकता अर्थात् वही जो कि प्रायः हर देश और हर समय में ऐसे मौकों पर हुआ है—पशु-वल पर न्याय और स्वत्व की विजय।

जिस ठहराव के वन्धनों से आपने स्वराज्य-दल को उदारता-पूर्वक मुक्त कर दिया है उसके सम्वन्ध में मैं दो शब्द कहना चाहता हूं। आप जानते ही हैं कि देशवन्धु और मै दोनों यह नही चाहते थे कि इस साल के भीतर वह वदला जाय। हम चाहते थे कि इसकी परीक्षा के लिए आपको पूरा और अच्छा मौका दिया जाय और हम खुद भी इसे हर तरह से सफल वनाने के लिए आपको सहायता देना चाहते थे। परन्तु अस्वास्थ्य तथा दूसरे पहले से निश्चित जरूरी कामों ने हम दोनों को उतनी सहायता न करने दी जितनी कि हमने चाही थी, पर हां, मै आपकी इस वात से पूर्णतः सहमत हूं कि इन हाल की घटनाओं के कारण ऐसी नई स्थिति उत्पन्न हो गई है कि इस हालत में महासभा अपने को मुख्यत. राजनीतिक संस्था घोषित कर तुरन्त स्थिति के अनुकूल वना ले। इसलिए मै आपकी इस देन का स्वागत करता हूं। पर इसका यह अर्थ नही है कि महासभा रचनात्मक कार्यक्रम को किसी भी तरह से छोड़ दे। हमारी तमाम कोशिशे वेकार होगी यदि उनके पीछे देश की सुसंगठित शक्ति न होगी।

अव हम धारासभाओ के अन्दर तथा वाहर देश मे अपना काम करने के लिए पूरे विश्वास के साथ आगे वढेंगे और यदि देश की संगठित शक्ति को लेकर लड़ने का मौका किसी समय आया, तो मुझे आपको यह यकीन दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि स्वराज्य-दल उस कार्य में आपको हृदय से मदद देगा।

आपका स्नेहांकित

मोतीलाल नेहरु

—अंग्रेजी। कलकत्ता, २१।७।१९२५। यं० इं०। हि० न० जी०, २३।७।
१९२५]

७. मोतीलालजी का तार : गांधीजी के नाम

इलाहाबाद
१९-८-१९२६

महात्मा गांधी
आश्रम साबरमती

घनश्यामदास बिड़ला के कार्यकर्त्ता कह रहे है कि आप बनारस-गोरखपुर कमिश्नरी से उनकी उम्मीदवारी का समर्थन करते है, जबकि वहां से श्रीप्रकाश कांग्रेस उम्मीदवार के रूप में नामांकित है और कार्य समिति इसकी पुष्टि भी कर चुकी है। कृपया खण्डन करने का अधिकार दीजिए।

मोतीलाल नेहरु

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, १९।८।१९२६। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की पत्रावली से]
सौजन्य : नेहरू संग्रहालय तथा कांग्रेस महासमिति।

८. (बाबा) राघवदास का तार : गांधीजी के नाम

गोरखपुर २३-९-१९२६

महात्मा गांधी
साबरमती, अहमदाबाद

रघुपति सहाय के भाषण के अनुसार गोरखपुर की जनता जानना चाहती कि क्या आपने पच्चीस हजार रुपये चुनाव के लिए मंजूर किये है ?

राघवदास

—अंग्रेजी। गोरखपुर, २३।९।१९२६। साबरमती संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]

९. चन्द्र त्यागी का पत्र : गांधीजी के नाम

२१।३।२७

प्यारे बापू,

अंग्रेजी दफ्तरों की तरह गुरुकुल के दफ्तर मे भी बीस रूपये से अधिक लेनेवाले से एक आने के टिकट पर दस्तखत लेते है. न समझने से मैंने इस पर अमल नहीं किया. क्या यह ठीक है?

आपका

चन्द

(टिप्पणी : उत्तर में गांधी जी ने लिखा है:

"आज्ञा लेकर टीकट न देने मे कोई हर्ज नहि है. अविनय न होना चाहिये.)"

—हिन्दी। २१।३।१९२७। जी० एन० ६६२९ तथा सी० डब्ल्यू ४२७७ की फोटो-नकल से]

१०. मोतीलाल नेहरू का पत्र : गांधीजी के नाम

११ जुलाई, १६२८

प्रिय महात्मा जी,

आखिरकार अब मैं यह कह सकता हूं कि कमेटी[1] की रिपोर्ट के बारे में एक प्रकार की सहमति हो पाई है। न तो यह पक्की है, न खरी ही, किन्तु कुछ हो गया है, जिसका समर्थन हम सर्व-दल-सम्मेलन और सामान्यत: देश में कर सकते हैं। अन्तिम अवधि में जो कार्रवाइयां हो रही है, उनकी नकल भेज रहा हूं, जिससे आपको मालूम हो सकेगा कि किस तरह से हम लोगो ने वहस के मुद्दों को निवटाया है। सभी सदस्य अपने-अपने घर चले गये हैं और जवाहर तथा मुझे रिपोर्ट तैयार करने का काम सौंप गये है और अब हम उन पर जुटे है।

आपने समाचारपत्रों में देखा होगा कि कनाडियन डेलीगेशन की सदस्यता से मैंने अपना स्तीफा भेज दिया है, क्योंकि मैंने महसूस किया कि सर्वदल-सम्मेलन

---

१. सर्वदल-सम्मेलन द्वारा भारतीय संविधान का ढाँचा तैयार करने के लिए नियुक्त समिति जिसके अध्यक्ष मोतीलाल जी थे, और जिसे इसी कारण नेहरू कमिटी भी कहा जाता था।

के द्वारा हमारी रिपोर्ट स्वीकार किये जाने की जो भी सम्भावना है वह मेरे देश से बाहर रहने से कम हो जायगी।

अब ताजपोशी[1] का सवाल आता है। मेरे मन में यह बात साफ़ है कि आज के नायक वल्लभभाई है और उनकी सेवाओं की प्रशंसा के लिए हम कम-से-कम जो कर सकते है, वह यह है कि ताज उन्ही को दें। वह राज़ी न हों तो, मेरी समझ में, परिस्थिति को देखते हुए, दूसरा सबसे अच्छा चुनाव जवाहर का होगा। यह ठीक है कि उसने हमारे अनेक नाजुकमिजाज लोगों को अपनी स्पष्टवादिता से डरा दिया है। किन्तु अब समय आ गया है कि ज्यादा फुर्ती रखनेवाले और दृढ़ कार्यकर्त्ताओं को देश के राजनीतिक कामों को अपने ढंग से चलाने का अवसर मिलना चाहिए। मैं मानता हूं कि इस दर्जे में और उस दर्जे में जिसमें कि आप और मैं हूं, अन्तर की बातें हैं किन्तु कोई कारण नहीं कि अपने विचारों को हम उन पर लादते रहें। हमारी पीढ़ी तो अब तेजी से समाप्त हो रही है। जल्दी या देर से लड़ाई को जवाहर-जैसे लोग ही चालू रख सकेंगे। जितनी जल्दी शुरू करें उतना ही अच्छा है।

जहां तक मेरी बात है, मैं महसूस करता हूं कि अपने में जो भरोसा मुझे रहा है, उसे मैं बहुत-कुछ खो चुका हूं और मेरी शक्ति प्रायः समाप्त हो गई है। महत्व ताज का उतना नही होता, जितना ताज के पीछे की शक्ति का होता है, और वह शक्ति जिस पर मैं भरोसा कर सकता हूं, मुझे नही दिखाई देती। बेशक आपकी बात दूसरी हैं। आपके ज़ोर देने पर मैने अपने विचार आपके सामने रख दिये हैं। फैसला करना आपके हाथ में है।

आपका,
मोतीलाल नेहरू

—अंग्रेजी। ११।७।१९२८]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

११. मोतीलाल नेहरू का पत्र : गांधीजी के नाम

आनन्दभवन, इलाहाबाद
१६ जुलाई, १९२८

प्रिय महात्मा जी,

साथ का पत्र-व्यवहार अपने-आप में स्पष्ट है। जवाहरलाल कमला और

---

१. कांग्रेस की अध्यक्षता से अभिप्राय है।

इन्दु का प्रवन्ध करने मसूरी गया है, किन्तु सेनगुप्त[1] के नाम मेरे पत्र की प्रतिलिपि से आपको यह सब पता लगेगा कि उसे कुछ न वोलने का कडा हुक्म है। सेनगुप्त का आपसे किया गया हठ कि आप जवाहर से कहे कि वह अलग हो जाय, मुझे पसन्द है। मेरा खयाल है कि ऐसा करने से रोकने के लिए उसे काफ़ी समझाना होगा।

मैं कमेटी की रिपोर्ट तैयार करने में जुटा हुआ हूं। मेरे लिए जवाहर लम्बे-चौड़े नोट छोड़ गया है और जब मै रिपोर्ट लिखता हूं तो कदम-कदम पर ऐसे मुद्दे उठते है जो न उसके दिमाग मे आये थे न मेरे। यह कमेटी के निर्णयों की असावधानीपूर्वक लिखी हुई भाषा के कारण है। वे निर्णय लम्बी वैठको के अन्त मे लिखे गये थे, जवकि प्रत्येक आदमी इतना थका हुआ था कि भाषा की पर्वा नही कर सकता था। मुझे वार-वार सदस्यों से पूछना पड़ता है (जो सभी अपने-अपने घर जा चुके है), जिससे उनका अभिप्राय ठीक तरह जान सकू, या ज्यादा सही यह कहना होगा कि जिससे उनसे अपना अभिप्राय मनवा सकू, जैसा कि वे अब तक विना किसी हिचकिचाहट के करते आये हैं। मैं अपनी अन्तिम पूछ-ताछ के उत्तरों की प्रतीक्षा मे हूं और जैसे ही वे मिल जायंगे, रिपोर्ट का मस्विदा सदस्यो के पास भेज दिया जायगा।

वारडोली में या उसके आस-पास जो घटनाएं हो रही हैं उन्हें मै चिन्ता के साथ देख रहा हू। किन्तु फिलहाल समझ नही पा रहा हूं कि मै उनके लिए किस प्रकार अपने को उपयोगी वना सकता हूं।

साथ के पत्र-व्यवहार पर और उन दूसरी खवरों पर, जो आपको मिली हों, गौर करके, 'ताज' के वारे में अपना फैसला तार से भेजने की कृपा कीजिए।

आपका,

मोतीलाल नेहरू

—अंग्रेजी। इलाहावाद, १९।७।१९२८]

[सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

१२. राजा महेन्द्रप्रताप का पत्र : गांधीजी के नाम

[राजा महेन्द्रप्रताप एक वड़े भारी देशभक्त हैं। इन भले मानस ने निर्वासित रहना ही पसन्द कर लिया है। इन्होंने वृन्दावन की अपनी सुन्दर जागीर शिक्षा-

---

१. जे० एम० सेनगुप्त, वंगाल के तत्कालीन एक प्रसिद्ध लोकनायक।

कार्य के लिए समर्पित कर दी है। वृन्दावन का प्रेम-महाविद्यालय, जो आजकल आचार्य जुगलकिशोर जी की अध्यक्षता में चल रहा है, इन्हीं की सृष्टि है। राजा साहब का अक्सर मेरे साथ पत्र-व्यवहार रहा है। पर उन पत्रों को मैंने प्रकाशित नहीं किया है। परन्तु अभी-अभी उनका जो पत्र मिला है, उसे रोकने को मेरा हृदय तैयार नहीं है। पत्र यों है।—मो० क० गांधी]

अहिंसा क्या है ?

मै अपने को अहिंसा का सच्चा अनुयायी मानता हूं। मगर अपने पक्ष को स्पष्ट करने के लिए इस शब्द की व्याख्या कर देना जरूरी है। जब मै यह कहता हूं और जोर देकर कहता हूं कि कई लोग, जो अपने आप को इस पवित्र शब्द का पुजारी मानते हैं, इसका भाव तनिक भी नही समझे है, तब तो इसकी व्याख्या कर देना और भी जरूरी हो पड़ता है।

अहिंसा का अर्थ, जैसा मैं समझता हूं, यही है कि मन, वचन और कर्म से किसी के दिल या शरीर को चोट न पहुंचाई जाय। फिर भी इस सिद्धान्त के लिए इतना ही काफी नही है। अहिसा के अनुयायी को उन सभी परिस्थितियों को बदलना पड़ता है, जिनमें हिंसा होती हो, या उसका होना सम्भव हो। जब कोई आदमी किसी की हिसा को सह लेता है, या उसमें सहायता देता है, तब मै उसके कार्य को अहिंसा के बदले बुरी-से-बुरी हिसा कहता हूं।

आज भारत में ऐसे बहुत-से लोग है, जो अहिंसा के नाम पर सुन्दर-सुन्दर व्याख्यान दे डालते हैं, मगर अंग्रेजों की हिसा का अन्त करने के लिए कुछ नही करते। मै कहता हूं कि ऐसे सभी व्यक्ति उस अपराध को कराने तथा उसे सहायता पहुंचाने के अपराधी है, जिसे अंग्रेज भारत में भूखों, निर्बलों और असहायो पर किया करते है।

इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे महान् नेता गांधीजी में भारतीय राष्ट्र की सेवा करने की आन्तरिक अभिलाषा है। फिर भी मुझे भय है कि बिना किसी जोशीले और सक्रिय कार्यक्रम के समर्थन के सिर्फ उन्ही के ढंग से काम करने से लोग सुखी नही हो सकते।

मैं गांधीजी के खादी-आन्दोलन की बड़ी सराहना करता तथा उसका हृदय से समर्थन करता हूं। हमारे जनसमाज की आर्थिक दशा में वह किसी अच्छी हद तक सुधार करे या न करे—क्योंकि इस समय समाज में कई नई-नई शक्तियां काम कर रही है—, यह तो हर हालत में मानना ही पड़ेगा कि मानसशास्त्र की दृष्टि से खादी-आन्दोलन का विचार प्रशंसनीय है। वह लोगों को सादगी की दिशा बतलाता और उनमें एक हद तक एकता की भावना जागृत करता है।

मगर मुझे कहना चाहिए कि हमें तो इससे कही ज्यादा की जरूरत है। अहिंसा की सच्ची भावना से प्रेरित होकर हमें हिसा की प्रतिमूर्ति-रूप तमाम ब्रिटिश संस्थाओं का सत्यानाश करना है।

सारे राष्ट्र को एक होकर इस ध्येय के लिए कोशिश करनी चाहिए। आओ, हम सब मिलकर शीघ्र ही ब्रिटिशों की भारत में, न केवल भारत मे वल्कि सारे विश्व मे, व्यापी हुई पशुता का अन्त कर दे। हर एक भारतीय अपनी अपनी शक्ति के अनुसार अपना कर्त्तव्य पालन करे। अहिसा की सच्ची भावना की रूप से मैं अपने विचार जवरन किसी पर लाद नही सकता। हां, हरएक खुद होकर अपना कर्त्तव्य निश्चित कर ले। मै तो सिर्फ उस शाश्वत सत्य की ओर इशारा मात्र कर सकता हूं और वह यह है कि विधाता निस्सन्देह प्राणिमात्र का हित चाहता है—प्रत्येक स्त्री और पुरुष का—प्रत्येक मानव का। अगर कोई मनुष्य या जाति स्वार्थ से प्रेरित होकर काम करती है, दूसरो को सताती है, तो अवश्य ही वह अपने गुणों का दुरुपयोग करती है और विधाता की इच्छा के विरुद्ध जा रही है। मै सिर्फ यह कहता हूं कि आओ, हम सब व्यक्तिशः हिसा का नाश करने की भरसक कोशिश करें। यही सच्ची अहिसा है।

—हिं० न० जी०, २५।७।१९२९]

१३. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

[अक्तूबर १९२९ में दिल्ली में एक नेता-सम्मेलन हुआ था। उसके वाद नेताओं के हस्ताक्षर से भारतीय राजनीतिक परिस्थिति के विषय में एक वक्तव्य प्रकाशित किया गया। उस समय जवाहरलाल जी भारतीय राष्ट्रीय महासभा के प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने भी उस पर हस्ताक्षर कर दिया था, यद्यपि सुभाष वावू ने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। वाद में जवाहरलाल जी के मन में द्वन्द्व उत्पन्न हुआ कि उन्होंने हस्ताक्षर क्यों किये। इसी क्षुब्ध मनःस्थिति में उन्होंने यह पत्र गांधी जी को लिखा था।—सम्पा०]

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी
५२ हीवेट रोड, इलाहावाद
४ नवम्वर, १९२९

प्रिय वापू,

मैंने दो दिन भलीभांति विचार किया है। मेरा खयाल है, अव मैं स्थिति

पर दो दिन पहिले की अपेक्षा कुछ ज्यादा शान्त चित्त से विचार कर सकता हूं, किन्तु मेरा मानसिक ताप अभी दूर नहीं हुआ है। अनुशासन के आधार पर आपने मुझसे जो अपील की है, उसे मैं दर-गुजर नहीं कर सकता था। मैं स्वयं अनुशासन का भक्त हूं। फिर भी मेरा खयाल है कि अनुशासन की ज्यादती भी हो सकती है। परसों शाम को मेरे अन्दर कुछ ऐसी बातें उठी, जिनको मै एक सूत्र में नहीं बांध सकता। प्रधान मन्त्री होने के नाते कांग्रेस के प्रति मेरी निष्ठा होनी चाहिए और उसके अनुशासन में मुझे रहना चाहिए। मेरी और हैसियतें और वफादारियां भी हैं। मै इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सभापति हूं और 'इण्डिपेण्डेंस फार इण्डिया लीग' का सेक्रेटरी हूं, और युवक आन्दोलन से मेरा गहरा सम्बन्ध है। इन दूसरी संस्थाओ के प्रति, जिनसे मेरा सम्बन्ध है, अपनी निष्ठा के लिए मै क्या करूं? मैं इस बात को पहिले से ज्यादा अब अनुभव करता हूं कि कई घोड़ों पर एक साथ सवारी करना काफ़ी मुश्किल है। जब जिम्मेदारियों और वफ़ादारियों की आपस मे टकराहट हो तो इसके अतिरिक्त कोई क्या कर सकता है कि अपनी सहज प्रवृत्ति और बुद्धि पर भरोसा करे?

इसलिए सभी बाहरी लगावों और वफ़ादारियो से अलग रहकर मैंने हालत पर गौर किया है और मेरा यह विश्वास अधिक दृढ़ हो गया है कि परसों मैंने जो किया, वह गलत किया। मै वक्तव्य की अच्छाइयों या उसकी नीति के विषय में कुछ न कहूंगा। मुझे भय है कि उस प्रश्न पर हमारा मौलिक मतभेद है और यह सम्भव नही कि मैं आपकी राय बदल दूं। मै केवल इतना ही कहूंगा कि मेरा विश्वास है कि वह वक्तव्य हानिकारक है और मजदूर सरकार[1] की घोषणा का बिल्कुल अपर्याप्त उत्तर है। मेरे खयाल से कुछ प्रतिष्ठित लोगो को खुश करने और अपने साथ बनाये रखने के प्रयत्न में हमने अपने दल के बहुत-से उन दूसरे लोगों को परेशानी मे डाल दिया है और उन्हें प्रायः दल के बाहर कर दिया है, जिनको साथ रखना कही अच्छा था। मेरा खयाल है कि हम लोग एक खतरनाक जाल में उलझ गये है, जिससे निकल सकना सरल नही, और मैं समझता हूं कि हमने दुनिया को दिखला दिया है कि यद्यपि हम लोग बातें तो ऊंची करते है, किन्तु सौदाबाजी छोटी-मोटी चीजों के लिए कर रहे है।

मैं नहीं जानता कि ब्रिटिश सरकार अब क्या करेगी। सम्भव है वह आपकी बातों को नही मानेगी। किन्तु मुझे इसमें तनिक भी संशय नही कि अधिकांश

१. इंग्लैण्ड की मजदूर सरकार, जिसने भारत के सम्बन्ध में अनिश्चित भाषा में अपनी नीति की घोषणा की थी।

हस्ताक्षरकर्त्ता—निश्चय ही आपको छोडकर—उन शर्तो में ब्रिटिश सरकार जो भी परिवर्तन सुझायेगी उसे स्वीकार कर लेंगे। हर हालत में मुझे यह जान पड़ता है कि कांग्रेस के भीतर मेरी स्थिति दिन-दिन अविक कठिन होती जायगी। मैंने काग्रेस की अध्यक्षता वड़े संशय-सन्देह के साथ स्वीकार की थी, किन्तु इस आशा से कि अगले साल हम एक निश्चित मस्ले को लेकर लड़ लेंगे। उस मस्ले पर पहले से ही वादल छा गये है, और इस पद को स्वीकार करने का जो एकमात्र कारण था, वह अव नही रह गया है। 'इन "नेताओं के सम्मेलनो" से मुझे क्या सरोकार? मै अपने को अनविकार-चेप्टा करनेवाला समझने लगा हूं और इसके कारण मुझे परीशानी है। मै अपनी वात खुलकर इसलिए नही कह पाता कि सम्मेलन के विगड़ने का मुझे डर है। मै अपने को दवाता हूं और यह दवाना कभी-कभी मेरे लिए भारी पड़ता है। मै भभक उठता हूं और ऐसी चीजें भी कह जाता हूं जिनको कहने का मेरा अभिप्राय नही होता।

मै अनुभव करता हूं कि मुझे ए० आई० सी० सी०[1] के मन्त्री के पद से इस्तीफा देना चाहिए। मैंने पिताजी के पास एक जाब्ते का पत्र भेज दिया है, जिसकी नकल साथ में भेज रहा हूं।

अव्यक्ष का प्रश्न इससे अधिक कठिन है। मैं नही समझता कि ऐन मौके पर मैं क्या कर सकता हूं। मुझे इस वात का विश्वास हो गया है कि मेरा चुनाव गलत था। इस अवसर पर और इस साल के लिए केवल आपको ही चुना जाना चाहिए था। यदि कांग्रेस की नीति वही है, जिसे मालवीयजी की नीति कह सकें तो मैं सभापति नही रह सकता। अव भी यदि आप राजी हों तो विना ए० आई० सी० सी० की वैठक वुलाये एक रास्ता निकल सकता है। ए० आई० सी० सी० के सदस्यो के नाम एक गश्ती चिट्ठी भेजी जा सकती है कि आप सभापति वनने के लिए रजामन्द है। मैं उनसे क्षमा मांग लूंगा। यह सिर्फ जाब्ते की कार्रवाई होगी, क्योंकि सभी या प्रायः सभी सदस्य आपके निर्णय को प्रसन्नतापूर्वक मान लेंगे।

एक दूसरा रास्ता यह है कि मैं यह घोषणा कर दूं कि वर्तमान स्थिति में और इस विचार से कि इस समय दूसरा अध्यक्ष चुनने में कठिनाई होगी, अभी अध्यक्षता न छोड़ूंगा किन्तु कांग्रेस के फौरन वाद छोड़ दूंगा। मैं चेयरमैन के रूप में काम करूंगा और मेरी कोई भी पर्वा किये विना कांग्रेस चाहे जैसा निर्णय कर सकती है।

---

१. आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी।

यदि मै अपना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखना चाहूं तो इन दो में से एक रास्ता मेरी समझ से जरूरी है।

जैसा कि मैंने दिल्ली से आपको लिखा था, मै कोई सार्वजनिक वक्तव्य नही दे रहा हूं। दूसरे लोग क्या कहते है क्या नही, इसकी मुझे ज्यादा चिन्ता नही है। किन्तु स्वयं मुझे शान्ति होनी चाहिए।

सप्रेम आपका,
जवाहरलाल

पुनश्च:

इस पत्र की एक नकल मैं पिताजी के पास भेज रहा हूं। यह पत्र लिखकर मै कुछ हल्कापन अनुभव कर रहा हूं। मुझे भय है कि इससे आपको कुछ परीशानी होगी। ऐसा मैं करना नही चाहता। आधा मन कर रहा है कि इसे आपके पास न भेजूं, वल्कि आपके यहां आने की प्रतीक्षा करूं। दस दिन और बीतने पर निश्चित रूप से मेरी उत्तेजना कम हो जायगी और मेरी दृष्टि अधिक स्पष्ट हो जायगी। किन्तु यह अच्छा है कि आप जान लें कि मेरा दिमाग किस प्रकार काम कर रहा है।

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, ४।११।१९२९]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

१४. मोतीलाल नेहरू का पत्र : गांधीजी के नाम

आनन्द भवन
इलाहाबाद, एप्रिल २५, १९३०

प्रिय गांधीजी,

घटनाए इतनी तेजी से प्रयाण कर रही हैं कि कोई नही जानता कि कहां से शुरू किया जाय और कहा खत्म किया जाय। आप और मैं अब भी बाहर छूटे हुए है, यह एक आश्चर्य है किन्तु जिस तेजी से बातें हो रही है, हमारी कार्य की स्वतन्त्रता ज्यादा दिनों के क्रय के योग्य नहीं है।

मुझे ताज्जुब है कि आपको मेरा पिछला पत्र मिला या नही। सेंसर ने अपनी गिरफ्त मुझ पर कड़ी कर दी है और मेरे पास निश्चित सूचना है कि मेरे नाम आये पत्रो और तारों मे से आधे भी मुझे नही मिलते। इसलिए मै आपके पास कृपलानी

के आगमन का फायदा उठा रहा हूं और यह पत्र मै आपको देने के लिए उन्हे दे रहा हूं।

नमक कानूनो के खिलाफ आन्दोलन उतनी तेजी से चल रहा है जितना इस प्रान्त की परिस्थिति को देखते हुए चल सकता है। हमारे यहां नमक के भण्डार नही है और मुश्किल से आधा दर्जन ऐसे स्थान होगे, जो दूर-दूर तक के क्षेत्र में फैले हुए है, जहां नमकीन मिट्टी प्राप्त है। अभी तक नमक-कानूनों का भग इस अर्थ में केवल प्राविधिक रहा है कि नमक वनाने का खर्च उसके मूल्य के अनुपात में ज्यादा है। नमकीन मिट्टी वहुत दूरियों से लाई जाती है, और कुछ लोगों ने एक रुपया मन के लगभग वेच कर इसमे व्यापार करना शुरु कर दिया है। यहां चन्द ही ऐसे केन्द्र है, जहां नमक का व्यापारिक आवार पर निर्माण करना सम्भव समझा जाता है। इसलिए मै इस नतीजे पर पहुंचा हूं, निश्चय ही जव आपकी स्वीकृति हो, कि हमारा ध्यान यह देखने के लिए इन्ही केन्द्रो में सीमित होना चाहिए कि क्या इससे हम संयुक्तप्रान्त की सरकार को अपना वर्तमान आलस्य छोड़कर लडाई करने के लिए उत्तेजित कर सकते है। जिसे मैने कानून का प्राविधिक या तकनीकी भंग कहा है, उसका वे लोग कोई ख्याल नही कर रहे हैं। पुलीस सिपाही खुद ही भीड़ में शामिल होकर नमक वनाना देखते और तमाशे का मजा लेते हैं। खास इलाहावाद में तो सिर्फ जवाहर की गिरफ्तारी हुई है और एक तहसील मे तीन और आदमी पकड़े गये हैं। संयुक्त प्रान्त के दूसरे जिलों में भी चन्द गिरफ्तारियां करने के वाद उन्होने अपना हाथ रोक लिया है। प्रतिबन्धित नमक तो अव भी करीव करीव सभी जगहों में वनाया जा रहा है, किन्तु उत्तेजना के अभाव मे लोगों की दिलचस्पी खतम होती जा रही है।

अन्य अन्तर्वर्ती प्रान्तों, विशेषतः विहार और मध्य प्रान्त मे आन्दोलन जोरदार ढंग पर चल रहा है। मध्यप्रान्त मे अभी तक कोई गिरफ्तारी नही हुई है और विहार मे भी, पुलिस की गुण्डागर्दी के प्रथम अध्याय के वाद सत्याग्रहियों के काम में कोई हस्तक्षेप नही किया जा रहा है। नमक वनाने के काम में पजाव ने कुछ ज्यादा नही किया है किन्तु दिल्ली प्रदेश ने जेलवासियों की संख्या का अपना अश पूरा कर दिया है। यह जनता की निश्चित विजय है, क्योंकि इसका एक मात्र अर्थ यही है कि नमक-कानूनो के खुले भंग के आगे सरकार ने घुटने टेक दिये हैं। मेरी सम्मति मे, इस प्रक्रिया को आगे चलाने से, जो सफलता मिल चुकी है, उसमे कुछ ज्यादा इजाफा नही किया जा सकेगा। इसके खिलाफ इससे लोगों के उत्साह का शिथिल पड़ जाना निश्चित है। इसलिए अन्तर्वर्ती प्रान्तों में नमक-कानूनों के विरुद्ध कोई सच्चा सामूहिक आन्दोलन, मुझे असम्भव जान पड़ता है। इसलिए]

मै चुने हुए क्षेत्रों में इसे चलाता रहूंगा और शेष देश की शक्ति विदेशी वस्त्र तथा शराब की दुकानों की पिकेटिंग की ओर मोड़ना चाहूंगा।

जहां तक विदेशी वस्त्र-विक्रेताओ की पिकेटिंग का सवाल है, वे इस समय पहिले के किसी भी समय की अपेक्षा अधिक सुधरी हुई मानसिक स्थिति में है। मुझे बताया गया है कि दिल्ली और अमृतसर में वे न केवल आगे कोई माल मांगने का आर्डर न देने के लिए बल्कि जो आर्डर दिये जा चुके है उनको भी मन्सूख करने तथा उसके परिणाम भोगने के लिए तैयार है, बशर्ते कि उनको वर्तमान स्टाक बेंच लेने की आज्ञा दी जाय। मैं स्वयं कानपुर के आयातकर्त्ताओं से मिल चुका हूं और मैंने उन्हें काफी समझदार पाया। दिल्ली और अमृतसर के व्यापारियों से जो समझौता हो, उसे मानने को वे भी तैयार है। उनके वर्तमान रुख के प्रति हम, ज्यादा-से-ज्यादा इतनी छूट दे सकते है कि उनके वर्तमान स्टाक को खतम करने के लिए एक अवधि निर्धारित कर दें। यह बात भी उन आयात-कर्त्ताओं के लिए ही लागू होती है जिन्हें दिये गये आर्डरों को मन्सूख करने में बहुत ज्यादा पैसों की हानि होगी। यदि हम फुटकर विक्रेताओं को भी यह सुविधा देते है तो इसका मतलब पिकेटिंग के सारे आन्दोलन को तबतक के लिए स्थगित कर देना होगा जबतक कि निर्धारित अवधि समाप्त न हो जाय किन्तु जनता की वर्तमान मनोभावना को देखते, ऐसी सलाह नही दी जा सकती। यदि एक बार लोगों के उत्साह को ठण्डा हो जाने दिया गया तो फिर वर्तमान मनःस्थिति तक उन्हें लाने में बड़ा समय लगेगा। इसलिए मैं फुटकर विक्रेताओं के विरुद्ध गहरी पिकेटिंग करने के पक्ष में हूं।

किन्तु इससे ज्यादा गम्भीर सवाल जो सामने आता है वह यह है कि खादी की मांग की पूर्ति कैसे की जाय। खादी भण्डारों पर भीड़ अत्यधिक है और अधि-कांश इच्छुक खरीददारों की सेवा नहीं की जा सकती। आपके इस विश्वास पर एतराज किये बिना कि अन्त में केवल खादी के द्वारा ही पूर्ण विदेशी वस्त्र-बहिष्कार हो सकता है, इस समय तो विदेशी वस्त्र के बहिष्कार को चलाने के लिए भारतीय मिलों के बने वस्त्र की सहायता लेने के सिवा और कोई चारा नही है।

इसमें यह खतरा जरूर है कि भारतीय मिलों के मालिक कहीं अपने दाम न बढ़ा दें। यदि मैं गलती पर नही हूं तो उनमें बहुतेरे ऐसे है जो इस बात पर राजी है कि वे अपने दाम नही बढ़ायेंगे, परन्तु यदि उनकी अपेक्षा ज्यादा नही तो उतने ही ऐसे भी हैं जो ऐसा कोई वादा करने को तैयार नहीं हैं। इस सम्बन्ध में मैं आपको अम्बालाल के प्रस्ताव की याद दिलाना चाहता हूं कि हम केवल उन्ही मिलों को स्वीकार करें जो यह शर्त मानने को तैयार हों और खादी की कमी की पूर्ति के लिए

उनके उत्पादनों की अनुज्ञा प्रदान करे। क्या आप कृपापूर्वक इस वात पर विचार करेंगे और आवश्यक आदेश जारी करेंगे? पिछले साल विदेशी वस्त्र-वहिष्कार के लिए जो समिति वनाई गई थी वह इस साल की शुरूआत से काम नही कर रही है। आप ही समिति के अध्यक्ष हैं तथा जयरामदास मन्त्री हैं तथा सदस्यों में से एक मैं भी हूं। दूसरे सदस्य हैं: मौलाना अवुल कलाम आजाद, डा० अंसारी, राजगोपालाचारी तथा जमनालाल जी। जयरामदास अभी तक अस्पताल से वाहर नही आये हैं। और वहां से निकलने के वाद भी शायद कुछ समय तक कोई क्रियात्मक भाग लेने योग्य न होंगे। मैं समझता हूं कि उनकी जगह तुरन्त ही किसी को नियुक्त किया जाना चाहिए और सम्पूर्ण समिति का फिर से निर्माण होना चाहिए।

शराव की दुकानों की पिकेटिंग मे ऐसी कठिनाइयां नहीं हैं। यहां की तथा अन्य स्थानो की महिलाएं वा के उदाहरण का अनुसरण कर रही हैं और अपने को पिकेटिंग करनेवालियो के रूप में संगठित कर रही हैं।

१९वी को मैंने जवाहरलाल से भेंट की थी। वह काफ़ी खुश है, गोकि कुछ उकताया हुआ है। वे लोग उसके साथ वहुत अच्छा सलूक कर रहे हैं जो उसके लिए सन्तोपप्रद होने से ज्यादा खीझ का कारण हो रहा है। वह जो कुछ चाहे वाहर से मंगा सकता है। किन्तु चन्द फलों के सिवा वह और सव चीज़ों का साफ इन्कार करता है। उसने अपनी पसन्द की कितावों का एक पूरा पुस्तकालय वना रक्खा है, और परिवर्तन की शकल में, वच्चों के लिए एक किताव लिखने मे अपना समय लगा रहा है। कसरत के लिए भी उसके पास काफी खुली जमीन है। किन्तु जो वैरक उसे रहने के लिए दी गई है, उसमें वस अकेला वही है।

पेशावर की घटनाएं कुछ परीशानी पैदा करती है। उनसे यह तथ्य प्रकट होता है कि पेशावर के पठान अलीवन्धुओं के अनुयायी नही हैं। अहिंसात्मक सत्याग्रहियों के रूप में उनका वयान नही किया जा सकता, और वख्तरवन्द गाड़ियों का, जिनके अन्दर सैनिक वैठे थे, जलाना ऐसी वात नही है जिससे एक पठान के दिमाग की किसी पश्चात्तापपूर्ण भावना का पता लगता हो। सव मिलाकर हमारे स्वयंसेवकों और कार्यकर्त्ताओं ने, वल्कि शहरों और गांवों में वड़ी-वड़ी भीड़ ने भी, जो सामान्य अहिंसात्मक वातावरण वना रक्खा है, मैं समझता हूं कि उसके लिए हमारे पास अपने को वधाई देने के अच्छे कारण हैं। पेशावर की वात अपवाद रूप है और उसे उसी रूप मे लिया जाना चाहिए।

पुलीस और जेल की वर्वरताओं के इतिहास में अलीपुर जेल की नृशंसताओं

की तुलना नहीं है। इस क्षण तक, जब मैं यह पत्र लिखवा रहा हूं, सेनगुप्त तथा सुभाष की यथार्थ दशा के विषय में कोई निश्चित समाचार नही मिले है।

आपका सच्चा
मोतीलाल नेहरू

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २५।४।१९३०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

१५. बनारसीदास चतुर्वेदी का पत्र : गांधीजी के नाम

विशाल भारत
१२०।२।अपर सर्कूलर रोड,
कलकत्ता
२४।१२।३०

पूज्य बापू जी,

मैं चिट्ठी आपको नही भेज सका। मुझे यह लिखते हुए शरम आती है कि मेरा हृदय कमजोर हो गया है। परमात्मा ने मुझे जो सजा दी है वह मेरे असंयम, कुदृष्टि तथा मानसिक पापाचार के लिए है यह वात मुझे अव ठीक तरह दीख पड़ती है। मुझे पत्नी की मृत्यु से जो दुःख है उसमें मुख्य भाग इस कारण से है कि मैने उसके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया—उसके प्रति अपने को सत्य सिद्ध नही किया। मैं लज्जापूर्वक आपके सामने यह स्वीकार करूंगा कि मैं फेल हो गया। कमजोरी से मुझे अव यह आशंका होने लगी कि मैं अपने (अपनी ?) वृद्ध माता के प्रति तथा वच्चों के प्रति भी अपना कर्त्तव्य पालन नही कर सकूंगा, देश के प्रति तथा प्रवासी भाइयों के प्रति कर्त्तव्य पालन करना तो दूर रहा। मेरे मन मे और भी आत्मग्लानि होती है जव मैं ख्याल करता हूं कि मैं, जिस पर आपने इतना समय दिया, जिसकी ट्रेनिंग पर आपने सहस्रो रुपये व्यय किये और इतनी कृपा की, ऐसा कुपात्र सिद्ध हुआ।

पुरुष की तरह इस दु:ख को सहन करने की वजाय मैं रो-रो कर उल्टा कमजोर और वन गया। मेरी इच्छा है कि शेष जीवन प्रायश्चित्त-स्वरूप संयमपूर्वक विताऊं। आपके नियमों के महत्व को अब कुछ कुछ समझने लगा हूं। इसलिए

आपको चिट्ठी में 'वापू' शायद पहली वार लिख रहा हूं। मुझे दिखता है कि मुझको अयोग्य और कमजोर जानकर भी आपकी कृपा मुझ पर कम नही होगी।

तीन महीने का वच्चा अच्छी तरह है। मेरी मां उसे पालती है।

(टिप्पणी : नीचे हस्ताक्षर नही हैं।)

—हिन्दी। कलकत्ता, २४।१२।१९३०। जी० एन० २५२४ की फोटो-नकल से]

१६. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

जुलाई २८, १९३१

मेरे प्यारे वापू,

मुझे खतौली-विषयक आपका पत्र मिल गया है। मैंने इस स्थान के वारे में पहिले कभी नही सुना किन्तु मुझे पता लगा है कि वह मुजफ्फरनगर जिले में है, जो दिल्ली प्रान्त[1] में है। मैं वहा की काग्रेस कमेटी को जांच और रिपोर्ट करने के लिए लिख रहा हूं। मैंने रेवरेण्ड के० एम० मैथ्यू को जो पत्र लिखा है, उसकी एक प्रतिलिपि भेज रहा हूं। दूसरे पत्रो की प्रतिलिपियां भी।

जे० एल०

महात्मा गांधी
वोरसद (गुजरात)

——अंग्रेजी। इलाहावाद, २८।७।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

१७. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

[यह पत्र हवाई डाक से भेजा गया था। इसकी एक प्रतिलिपि मामूली डाक से भेजी गई थी। उस समय गांधी जी लन्दन जाते हुए मार्ग में जहाज पर थे। यह पत्र जहाज से महादेव भाई-द्वारा भेजे पत्र के वाद जवाहरलाल जी ने लिखा था।—सम्पा०]

---

१. कांग्रेस के अपने प्रान्त-क्षेत्र के अनुसार।

सितम्बर १ ली, १६३१

मेरे प्यारे बापू,

आखिरकार आप गये, और बहुत से क्षेत्रों में बड़ी खुशियां मनाई गई और अखबारों में ५-५ कालम की सुर्खियां छपी। किन्तु आपके बिना भारत ज्यादा रिक्त और ज्यादा जड़ दिखाई पड़ता है और मुझे भय है कि बहुत से लोग धर्मिष्ठ मुसलमान के पांच बार प्रतिदिन काबा की ओर देखने की अपेक्षा भी ज्याद मर्त्तबे पश्चिम की ओर ताकेंगे और घर के काम पर बहुत कम ध्यान देंगे। बेतार-के-तार की रिपोर्ट हमे बताती है कि जहाज पर आप खूब मौज में है और अरब सागर की दुष्टताओं के बीच भी अनुद्विग्न है, यद्यपि दूसरे कई लोग बिस्तर पकड़ चुके है। मै भी कम-से-कम एक कारण से खुश हूं कि आप गये। आपको एक पखवारे तक, अपने ढंग पर, आराम मिलेगा और समुद्री हवा आपको ताजा कर देगी।

मैं बम्बई से इलाहाबाद लौटा तो देखा कि कमला बीमार है। उसे तेज बुखार आ गया था—शायद मलेरिया ज्वर रहा होगा। अब वह पहिले से अच्छी है—किन्तु असाधारण रूप से नाजुक और दुर्बल हो गई है।

मैं कुल कागजात नत्थी कर रहा हूं। इसमें वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी को लिखे गये और उनके पास से आनेवाले पत्रों की प्रतिलिपियां है। अखबार की एक कतरन है जिसमें किसी मिस्री अखबार का एक लेख दिया गया है। मुझे आशा है, आप इसे पढ़ेंगे, खासतौर से इसलिए कि शौकतअली पोर्ट सईद में आप पर धावा करनेवाले है। इस लेख में कुछ हितकारी सलाह दी गई है, जिसे ग्रहण करके शौकत भला करेंगे; किन्तु मुझे भय है कि वह ऐसा नही करेंगे। हम पर अक्सर मिश्र का उदाहरण थोपा गया है। यह अच्छा ही है कि हम जान लें कि वह क्या था।

मैं 'पायनियर' की एक कतरन भी नत्थी कर रहा हूं—सिर्फ आपको यह दिखाने के लिए कि आपके मित्र न्यूनहैम—यदि यही उनका नाम है—क्या-कुछ कर सकते हैं। यह एक निर्लज्ज लेख-खण्ड और प्रचार है। मैंने कल इसके विषय में पत्र-प्रतिनिधियों से कुछ कहा था किन्तु भेंट के उस अंश को छोड़ देने में 'लीडर' ने खासतौर की तवज्जुह रक्खी। पर सब होने पर भी मेरे लिए इसका खण्डन करना ठीक नही था। यह अब्दुल गफ्फार का काम था, और मैंने उनका ध्यान इस ओर आकर्षित कर दिया है।

मैंने कमला के भाई, कैलाश कौल को, खां साहब के पास भेजने का निश्चय किया है। मैंने उन्हें यहां बुलाया था और समझा दिया कि उनका काम क्या होगा।

उन्हें जाने का विचार पसन्द आया। मैं समझता हूं खान उन्हें पसन्द करेंगे और उनसे कुछ काम ले लेंगे।

मैंने वल्लभ भाई को सुझाव दिया है कि वह ८ को कार्य-समिति की बैठक में अब्दुल गफ्फार को निमन्त्रित करे। मुझे आशा है कि वह आयेंगे।

दूसरा संलग्न पत्र उस पत्र की प्रतिलिपि है जो मैंने स्लोकाम्ब को भेजा है।

संयुक्तप्रान्त मे परिस्थितियां खराब हैं किन्तु उनमें कोई लाल बब्बे नहीं हैं। लोग अपने भाग्य को पकड़कर बैठ गये दिखते हैं। इलाहाबाद जिले में हैजा फैला हुआ है और ध्यान फेरने मे मदद कर रहा है। बेदखलियां जारी हैं और हमारे अच्छे कार्यकर्त्ता जहां-तहां फौजदारी कानून के दफा १०८ के जाल में फँसाये जा रहे है। किन्तु यह सब बड़ी शान्ति के साथ बिना शोर-गुल के हो रहा है। शिकायतों के विषय में मुख्य-सचिव—जगदीश प्रसाद मुझे लम्बे-लम्बे खत लिखते है, जो शिष्ट और तफसील से भरे होते हैं। मै असामियों का पक्ष पेश करता हूं; वह दूसरा पक्ष पेश करते है और बिना पूरी जांच किये यह कहना जरा मुश्किल है कि सचाई क्या है। सम्भवतः मुबालगे दोनों तरफ से होते है। किन्तु यह ठोस तथ्य तो तब भी रह ही जाता है कि हजारों पट्टेदार, और खासतौर से दखिल-कारी पट्टेदार बेदखल कर दिये गये है और वे बड़े संकट में है। इस सवाल को हल करने का कोई स्पष्ट रास्ता मुझे दिखाई नही पड़ता। बेशक, मै जगदीश प्रसाद को तो लिखना जारी ही रक्खूंगा।

संयुक्तप्रान्त की सरकार द्वारा नियुक्त भूमिधारी समिति (एग्रेरियन कमेटी) की रिपोर्ट किसी कदर भी सन्तोपजनक नही है। अभी तक हमें सारे ब्योरे मालूम नही हुए है किन्तु मुझे भय यह है कि इसने एक जटिल योजना पैदा की है और कमी की मिकदार काफ़ी नही है। बहुत कुछ तो छोटे राजस्व-अधिकारियो पर निर्भर करेगा और इसका मतलब होगा संकट।

इस बीच वर्षा भी पिछड़ रही है और खराब फसल होने की सम्भावना है।

आपने मुझे लिखा था कि हवाई जहाज से भेजे गये सब पत्रों की प्रतिलिपियां मामूली डाक से भी भेजी जायं। यह जरा मुश्किल मालूम पडता है। सब कतरनों एवं संलग्न पत्रों की दूसरी नकलें मुझे आसानी से प्राप्त नही हो सकती। इस पत्र की प्रतिलिपि कराना भी सरल नही है, जब तक कि कृष्णा अपना टाइप-राइटर न सँभाल ले। भारतीय कांग्रेस कमेटी का जो कार्यालय यहां है उसमे भी कर्मचारियों की कमी है और कोई जरा भी बीमार पड़ा तो काम चलाना भी

मुश्किल हो जाता है। जो हो, यदि मेरा पत्र गड़बड़ हो जाता है तो उससे कुछ ज्यादा फर्क नहीं पड़ता।

प्रेम और सम्पूर्ण शुभाकांक्षाओं-सहित

मैं हूं आपका प्रिय
जे० एन०

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, ११।९।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

१८. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

विद्यापीठ,
अहमदाबाद, सितम्बर ११वीं, १९३१

मेरे प्यारे बापू,

तीन दिनों से कार्य समिति की बैठकें होती रही हैं। उसने काम अब भी खतम नही किया है। सम्भवतः आज खतम हो जायगा। जैसा कि आप चाहते थे, हमने इस पर विचार किया कि हमारी लघुत्तम मांग क्या होनी चाहिए, और इसी तरह का एक 'नोट' तैयार किया गया है। जाब्ते से यह कोई प्रस्ताव नहीं है। निस्सन्देह हमने इसे 'विश्वसनीय' रक्खा है। वल्लभ भाई आपको इसकी एक प्रतिलिपि भेजेंगे। मै भी इसे संलग्न कर रहा हूं।

इस 'नोट' में वे सब मुद्दे आ जाते है जो आपने लिखे हैं—सिवाय एक मत के इच्छित प्रकार तथा विषयों के विभाजन के। अलग होने के पहिले हम उस पर भी विचार कर सकते है।

आपके सुझाव के अनुसार मैंने सेना के मामले में रामानन्द[1] बाबू को लिखा था। अभी तक उन्होने जवाब नही दिया है। किन्तु उनके सहायक सम्पादक ने जवाब भेजा है और चूंकि जवाब दिलचस्प है, मैं उसे इस पत्र के साथ आपके पास भेज रहा हूं।

हम लोगों को जो नोट आपके पास भेजना था, उस पर चर्चा करते समय अंसारी[2] इसके लिए बहुत जोर दे रहे थे कि इसमें राजाओं को कुछ आश्वासन और

---

१. स्व० रामानन्द चटर्जी, 'माडर्न रिव्यू' तथा 'प्रवासी' (बंगला) के सम्पादक।
२. स्व० डा० मुख्तार अहमद अंसारी, दिल्ली के प्रमुख चिकित्सक, कांग्रेस के अध्यक्ष।

दिया जाय। हममें से अधिकांश इसके लिए राजी नही थे। वह मुझसे कह रहे हैं कि वह इस विषय पर आपको लिख रहे है।

वंगाल हमें वहुत ज्यादा परीशान कर रहा है। सेनगुप्त[1] आक्रामक ढंग पर काम कर रहे है और हमको वहुत गलत स्थिति मे डाल रहे है। सीमाप्रान्त भी कुछ खराव जान पडता है। मथुरा जिले में अगस्त में २००० से ज्यादा वेदखलियां हुई है। हमारे कुछ विशेप कार्यकर्त्ता पकड़ लिये गये है (मथुरा में नही)।

मै 'भारत की सुरक्षा' पर एक लेख की प्रतिलिपि नत्थी कर रहा हूं जिसे मैने 'यंग इंडिया' के लिए कुमारप्पा को दिया है।

हम सरकार के प्रति अपना प्रत्युत्तर शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहते है।

यह पत्र आज जाने वाली मामूली डाक से जा रहा है। एक-दो दिन में मैं हवाई डाक से पत्र लिखूंगा।

विदा होने के पहिले जिन्ना ने साम्प्रदायिक सवाल पर एक भेंट दी है जिसे शौकत अली मुश्किल से पीट सकते है। यह वेहूदगी और संकुचित मानस की साम्प्रदायिकता की एक आश्चर्यजनक खिचड़ी थी।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

—अंग्रेजी। अहमदावाद, ११।९।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

१९. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

आनन्द भवन,
इलाहावाद, १७-९-३१

मेरे प्रिय वापू,

अदन से (लिखा) महादेव का एक पत्र मुझे मिला है। उन्होंने जहाज पर की कुछ घटनाओ के वारे मे वताया है। हमें आपके समाचारों का कोई अभाव नही है। हमे आपके भोजन तथा प्रार्थनाओं तथा आप कब उठते है तथा आपके

---

१. श्री जे० एम० सेनगुप्त, कलकत्ता के एक कांग्रेस नेता।

घूमने और सबके ऊपर आपकी प्रसिद्ध लंगोटी के विषय में जरा-जरा सा व्यौरा मिलता रहता है।

काफ़ी लम्बे अर्से तक टिकने के बाद मैं अहमदाबाद से कल ही इलाहाबाद लौटा हूं। कार्य समिति मेरा ज्यादा और ज्यादा वक्त लेती जा रही है। हम २४ अक्तूबर को फिर, शायद दिल्ली में, मिल रहे हैं।

मैं अपनी यहां की कठिनाइयों के बारे में आपको परीशान नहीं करना चाहता, केवल इस बात की सूचना देना चाहता हूं कि मेरे अनुरोध से वल्लभभाई ने इमर्सन को संयुक्त प्रान्त की संकटापन्न स्थिति के बारे में लिखा है। मैं खुद भी संक्षेप में वाइसराय के सचिव को लिखने की सोच रहा हूं।

अगले हफ्ते मैं अपनी 'एग्रेरियन इनक्वायरी कमेटी' (भू-जांच-समिति) की रिपोर्ट आपको भेजूंगा।

मैंने महाराज पटियाला को जो पत्र भेजा है, उसकी एक प्रतिलिपि नत्थी कर रहा हूं।

आखिरकार डब्लू० सी० (कार्य समिति) ने संघ (फेडरेशन) और कार्य-विभाजन के प्रश्न पर विचार नहीं किया। किन्तु इस विषय पर समिति के विचार काफ़ी स्पष्ट है। एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन में उसका विश्वास है। नेहरू रिपोर्ट में केन्द्रीय विषयों की जो सूची दी हुई है, उनको चर्चा का एक अच्छा आधार बनाया जा सकता है।फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी (संघ-विधान समिति) में शफात अहमद खां[1] की वक्तृता की रिपोर्ट में मैं देखता हूं कि उन्होंने प्रान्तों की सर्वस्वायत्तता की मांग की है। यह एक दिलचस्प बात पैदा हुई है। शफात अहमद आधे से ज्यादा पागल है और उन्हें गम्भीरता से नहीं ग्रहण किया जा सकता किन्तु यह मुमकिन है कि कुछ और बड़े मुसलमान उनका समर्थन करें। मैं समझता हूं कि इस विषय पर कुछ साफ बातें हो जानी चाहिए।

आपने चटगांव के विषय में तो जरूर ही सुना होगा। काफी बुरी बात हुई, किन्तु जो रिपोर्टें आपको मिली होंगी, वे निस्सन्देह अत्युक्तिपूर्ण हैं। नेतागण खुलेआम कहते रहे हैं कि यह सारा मामला सरकारी और गैर-सरकारी यूरोपियों द्वारा खड़ा किया हुआ है। यह बात दूसरों ने भी कही है, और इन आरोपों में सच्चाई जान पड़ती है।

---

१. सर शफात अहमद खां—इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष। बाद में प्रसिद्ध लीगी नेता, गोलमेज सम्मेलन के मुस्लिम प्रतिनिधि।

पिछले दिनों 'पंच'[1] में एक बढ़िया कार्टून 'इल्यूजिव महात्मा' (परिहारी महात्मा) के विषय में निकला था—शायद आपने देखा हो। मैं तो उससे इतना प्रभावित हुआ कि तुरन्त 'पंच' तथा दूसरे भी आंग्ल पत्रों का ग्राहक बन गया जिससे पढ़ सकू कि वे आपके विषय में क्या कहते है।

मै आशा करता हूं, आप रोगर वाल्डविन से मिले होंगे। उनके एक पत्र में, जो अभी-अभी मुझे मिला है, एक अनुच्छेद है जो सम्भवतः आपके लिए दिलचस्प होगा—"...नवीन ब्रिटिश 'अधिनायकत्व' (डिक्टेटरशिप) अमरीकी साहूकारों का सृजन है। अब से आपको दो शत्रुओं से लड़ना होगा, वाल स्ट्रीट[2] का छिपा दुश्मन, जिसकी पीठ पर अमरीकी सरकार है, तथा ब्रिटेन। ब्रिटेन के लिए भारत को, आर्थिक दृष्टि से ह्रासशील साम्राज्य के व्यापार के अर्थ आय के मुख्य स्रोत के रूप में सुरक्षित रखने के लिए वालस्ट्रीट अपनी सारी ताकत लगायेगा।"

आपका स्नेहपात्र
ज० ने०

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, १७।९।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२०. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

स्वराज भवन
इलाहाबाद, सितम्बर १९वी, १९३१

मेरे प्यारे बापू,

जो पत्र मै हवाई जहाज से भेजता हू उनकी दूसरी प्रति भी भेजने की अपनी इच्छा के कारण मै गड़बड़ी में पड़ता जा रहा हू। और मुझे भय है कि मैने आपको भी जरूर परीशानी मे डाल दिया होगा। कभी-कभी प्रतिलिपि आपके पास मूल प्रति के पहिले पहुंच गयी होगी। मूल के साथ जो संसग्न कागज होते है वे

---

१. इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध हास्य-व्यंग-प्रधान पत्र।
२. वाल स्ट्रीट प्रमुख अमरीकी बैंकों का केन्द्र है, इसलिए यह शब्द अमरीकी वित्तशक्ति के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

प्रतिलिपि के साथ फिर से भेजे नहीं जा सके। जो भी हो, मैं इसी अस्तव्यस्त ढंग पर इस आशा के साथ आगे भी काम करता रहूंगा कि कुछ तो आपके पास पहुंचता है।

मै इसके साथ स्वराज भवन के न्यासपत्र का एक प्रारूप भेज रहा हूं। यदि आप इस पर अपनी स्वीकृति देंगे तो मुझे प्रसन्नता होगी। जमनालालजी ने जो सवाल उठाया है और जिसका हवाला मैंने अपने 'नोट' में दिया है, उस पर मैं खासतौर से आपकी राय चाहूंगा हूं।

मथुरा जिले पर एक लेख भी, जो मैंने यं० इं० के लिए कुमारप्पा के पास भेजा है, आपकी सूचना के लिए नत्थी है। हमारे जिलाधिकारी गण, निस्सन्देह जिनकी तनख्वाहों और भावी प्राप्तियों को सदा-सदा के लिए गारण्टी करने की वात आपसे कही जायगी, मौज में अपने काम कर रहे हैं। अभी दो ही घण्टे पहिले इलाहावाद के निकट के किसानों का एक दल मुझसे मिल गया है। उनके शरीरों पर चोट के निशान हैं, यहां तक कि उनकी औरतों पर भी खरोंच और खून के चिह्न हैं और उनके दाँत तक टूट गये हैं। जो गम्भीर रूप से घायल हुए हैं, वे तो हमारे पास आ ही न पाये। यह सव शेष लगान चुका देने के लिए नम्रतापूर्ण समझावन का परिणाम था! और जव मैं इन भद्रतापूर्ण उपायों के वारे में सोच रहा था, तव मेरा दिमाग एक सुस्मृत धारा की ओर चला गया:—"ऐसी पिकेटिंग अनाक्रामक होगी, और उसमें जवरदस्ती, धमकी, रोक, शत्रुतापूर्ण प्रदर्शन तथा जनता का मार्गावरोध नही होगा।" इत्यादि इत्यादि।

यह एक अद्भुत दुनिया है जिसमें हम रह रहे हैं और नित्य हमारे अनुभव में वृद्धि होती जा रही है। लन्दन नगर में शान्ति और सामञ्जस्य है—कम-से-कम मैं ऐसी कल्पना करता हूं—तथा भारत के भविष्य पर वहस करके उसे रूप दिया जा रहा है। (पर) यहां, वह भविष्य कितना दूर मालूम होता है! वर्तमान ही हमारा ध्यान तल्लीन कर लेता है। आज (वर्तमान) के लिए तो उसकी वुराइयां ही काफ़ी है और जिन वैधानिक समस्याओं पर गोलमेज सम्मेलन में वहस हो रही है—प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष निर्वाचन, द्वितीय सभाएं इत्यादि—उनमें ज्यादा दिलचस्पी लेना जरा कठिन लगता है। मैं ताज्जुव करता हूं कि कव असली सवालों से आपकी मुठभेड़ होगी।

मैं अलग, हवाई डाक से, एक एग्रेरियन रिपोर्ट भेज रहा हूं। इसमें वहुत-सी छपाई की गलतियां है। अभी तक मैं इसे पूरा पढ़ नही पाया हूं, क्योंकि अभी ही यह प्रेस से निकली है।

मैं कल चिन्तामणि[1] को देखने गया था। उनकी स्थिति काफ़ी खराब है और वह इतने अच्छे हो जायं कि गोलमेज सम्मेलन में जा सकें, इसकी सम्भावना कम ही है। न जा सकने का उनको वड़ा रंज है क्योंकि उन्होंने सप्रू के विरोध में सुदृढ़ मोर्चा लेने का निश्चय कर लिया था।

प्रेम

आपका स्नेहपात्र
ज० नें०

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, १९।९।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२१. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

दिल्ली
२४।९।३१

मेरे प्यारे बापू,

झंग में होनेवाले पंजाब प्रान्तीय सम्मेलन में शामिल होने के लिए मैं पंजाब जाने के मार्ग में हूं।

बंगाल में हिजली नजरबन्द छावनी में गोलियां चलने की घटनाएं हुई हैं। यदि सेंसर ने रोका न होगा तो उनके विषय में आपको समुद्री तार मिले होंगे। मैं अखबारों की कुछ कतरनें भेज रहा हूं। बंगाल की हालत बुरी है और गैर-सरकारी तथा सरकारी युरोपीयों ने एक ओर कांग्रेस कार्यों के विरुद्ध और दूसरी ओर नजरबन्दों तथा उनके साथियों के खिलाफ़ कड़ा मोर्चा लगा रखा है। मैं महसूस करता हूं कि हम लोग बंगाल की उपेक्षा करते रहे हैं और हम ऐसा कर नहीं सकते। सुभाष ने बी० पी० सी०[2] से इस्तीफ़ा दे दिया है—दूसरे कइयों ने भी ऐसा ही किया है। किन्तु सेनगुप्त का दल कुछ अधिक भव्यतापूर्वक काम नहीं कर रहा है।

---

१. सर सी० यज्ञेश्वर चिन्तामणि, प्रयाग के दैनिक 'लीडर' के सम्पादक, जो उस समय बीमार थे।
२. बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस।

आखिरकार मैं आपको संयुक्तप्रान्त की एग्रेरियन रिपोर्ट हवाई डाक से नही भेज सका; मामूली डाक से ही भेज पाया। हवाई डाक का महसूल १२ रुपये था और वह मुझे भयानक जान पड़ा। मैंने महसूस किया कि आप इस फिजूल-खर्ची को मंजूर नहीं करेंगे।

प्रेम

आपका स्नेहपात्र
जवाहरलाल

जान पड़ता है कि लन्दन में आप अपना प्रधान कार्यालय बदल रहे है किन्तु मै अपना पत्र 'वो' के पते ही भेज रहा हूं।

अखबारी कतरनें अलग भेजी जा रही है।

--अंग्रेजी। दिल्ली, २४।९।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२२. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

इलाहाबाद
अक्तूबर पहली, १९३१

मेरे प्यारे बापू,

आज मैं पंजाब से लौटा हूं; रास्ते में तीन संयुक्तप्रान्तीय जिलों में भी हो आया यहां आने पर विस्तीर्ण सागर से लिखा हुआ आपका पत्र मेरी प्रतीक्षा करता मिला। आंग्ल अखबारों की कतरनें पढ़ने में दिलचस्प थी। आपकी इच्छानुसार मैं उन्हे आगे वल्लभभाई के पास भेज रहा हूं।

संयुक्तप्रान्त के विषय में लिखने लायक कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुआ है। बीच-बीच में मुझे संयुक्तप्रान्त के चीफ़ सेक्रेटरी (मुख्य सचिव) जगदीश प्रसाद के पत्र मिलते रहते है, और वे सदा ही शिष्ट होते है तथा की गई शिका-यतों की जांच का आश्वासन देते हैं। कभी-कभी छोटी-मोटी राहत मिल भी जाती है। उदाहरण के लिए, आपको याद होगा कि मैंने आपका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि मेरठ का ज्वाइण्ट मैजिस्ट्रेट एक धरना-विरोधी संघ में शामिल हो गया है। उसे उससे इस्तीफ़ा देने को कहा गया है। मुख्य सवाल भूमि से बेदखली का—अभी तक हल नही हुआ है। सरकारी अधिकारियों ने मुझे बताया है कि बेदखल किसानों की काफ़ी अच्छी तादाद को, उनके जमींदारो के साथ की गई निजी व्यवस्था के अनुसार, भूमि पर काबिज रहने दिया गया है, किन्तु

मैं इसकी जांच नही कर सका हूं। मथुरा की और कोई खबर मुझे नही है। अगले तीन दिनो मे मै बारावंकी, गोंड़ा, बहराइच और रायबरेली के एक छोटे से दौरे पर जाऊंगा और वहा पता लगाऊंगा कि क्या हो रहा है। इस बीच मुझे लगता है कि स्थानीय सरकार अपने जिलाधिकारियों को अंकुश में रखने का यत्न कर रही है, किन्तु इसमें उसे पूरी तौर पर सफलता नही मिली है। स्वभावतः वर्षा ने कार्रवाइयो में बाधा डाली है—किसानों की तरफ भी और जमीदारों की ओर भी। पिछले दस दिनों में जो गहरी वर्षा हुई है उसके कारण फसल को काफ़ी नुकसान पहुंचा है। बेदखल किसानो की मुख्य कठिनाई है—अपनी फसल खो देने का भय। इस भय के कारण वे बेचने और उधार लेने या अपनी फसल को अपने लिए बचा रखने के लिए कोई भी काम करने को प्रेरित होते हैं।

मै कुछ अखबारों की कुछ कतरनें नत्थी कर रहा हूं। इनमे से दो हिजली के सम्बन्ध में हैं। टागोर की वक्तृता से आप देखेंगे कि बंगाल ने इस मामले पर कितनी गहराई से महसूस किया है। सचमुच यह एक भयानक काण्ड हो गया है। बंगाल मे यह भावना है कि चटगाव और हिजली दोनो मे उनकी तकलीफों की कांग्रेस कार्यसमिति ने निर्दयतापूर्वक उपेक्षा की है। मुझे मालूम हुआ है कि हिजली-काण्ड के विषय में निष्पक्ष जांच करने के लिए वल्लभभाई ने इमर्सन को लिखा है।

दूसरी कतरनों मे बंगाल कांग्रेस के झगड़े पर आगे का पंचनिर्णय है। एक समझौता हो गया है, जो उचित और विवेकसम्मत लगता है। फिर भी 'एडवांस'[1] दल मे इसे लेकर हल्ला मचाने की दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्ति है।

मैंने अब्दुलगफ्फार खां से सम्पर्क रखने की पूरी चेष्टा की है। कमला के भाई, कैलास, दो हफ्ते पहिले, उनके पास भेजे गये थे। मुझे उनकी या उनके काम की कोई खबर नही मिली है। मैं नही जानता कि पत्र लिखे ही नही जाते या वे रास्ते में रोक लिये जाते है। खुर्शेद बेशक वहां है। मै प्रायः अब्दुलगफ्फार तथा उनके भाई डाक्टर खां साहब को लिखता रहा हूं किन्तु उनकी तरफ से एक या दो संक्षिप्त पहुंच भर प्राप्त हुई है। जहां तक सरकार का सम्बन्ध है, मै नही जानता कि वर्तमान स्थिति क्या है। किन्तु पुराने जिर्गा वालो और पेशावर के काग्रेसियो के बीच का संघर्ष जारी है। मैने पिछले वर्ग के एक आदमी से लाहौर में लम्बी वार्ता की; उसके पास शिकायतें थी। मैने उसे शान्त किया और कई सुझाव दिये। फिर भी मैं अनुभव करता हूं कि हममे से किसी को वहा अवश्य जाना चाहिए और इस झगड़े

---

१. बंगाल के एक गुट के कांग्रेस नेता श्री जे० एम० सेनगुप्त का अंग्रेजी दैनिक।

को दूर करने में निजी तौर पर मदद देनी चाहिए। सीमाप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी और अफगान जिर्गा तथा खुदाई खिदमतगारों के विषय में हमारा जो प्रस्ताव था, वह कार्यरूप में परिणत करने में कठिन था ही। वह तब दुगना मुश्किल हो जाता है जब सम्बन्धित जनों को विधानों तथा ऐसी दूसरी चीजों का बहुत कम खयाल हो और वे पत्र लिखने के शौकीन भी न हों। अब्दुल गफ्फार खां को भी जिर्गा के अपने आदमियों से कुछ कठिनाई पेश आ रही है। अहमद शाह-जैसे कुछ लोगों ने कार्य-समिति के प्रस्ताव की कड़ी आलोचना की है। किन्तु जिर्गा में अब्दुल गफ्फार की स्थिति बहुत मजबूत है और वह सचमुच ही इसमें सफल हो सकते है। मै रफी अहमद किदवई को उनके पास भेजने की कोशिश कर रहा हूं। मै समझता हूं कि इस काम के लिए रफ़ी अच्छा आदमी है।

जय प्रकाश यही है। इधर उनके कुटुम्ब में बड़ी मुसीबतें रही हैं—मौत और बीमारियां—और वह बहुत गैरहाजिर रहे है। वह दुखी है और अपने को अस्थिर तथा बेनींव अनुभव करते है। मैं नही समझता कि बिरला के साथ अपने कार्य की ओर उनका आकर्षण है।

कमला मेरे साथ पंजाब गई थी किन्तु अधिकांश समय अस्वस्थ रही। ऐसा लगता है कि उसे एक अवधि तक पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। वह बहुत कम-जोर हो गई है और यह सिर्फ उसका उत्साह और संकल्प है जो उसे चलाये जा रहा है।

हमारे शासकों के देश में आप जो नई विजयें और अधिकार प्राप्त कर रहे है उनके बारे में हम रोज पढ़ा करते है। जो भी हो, इतना तो बहुत स्पष्ट है कि आपके प्रवास से लाभ-ही-लाभ हुआ है और इसका पर्याप्त फल निकलेगा: कल आपका जन्मदिवस है, और हम सब नगरों और गांवों में एकत्र होंगे, आपका ध्यान करेंगे तथा अपनी प्रेमपूर्ण श्रद्धाञ्जलि एवं शुभाकांक्षाएं आपको भेजेंगे। किन्तु आपको याद करने के लिए हमें जन्मदिवस की आवश्यकता नही है। मन को पूरित कर देने तथा भावनाओं को उभार देने का एक विचित्र ही ढंग आपका है, और मेरे-जैसा एक निष्ठुर व्यक्ति भी आपके बारे में सोचते समय अपने को कुछ कम निष्ठुर अनुभव करने लगता है।

मैने इमर्सन को जो पत्र भेजा है, उसकी एक प्रति संलग्न है। इसे मेरे पिछले हवाई डाकवाले पत्र के साथ ही जाना चाहिए था, किन्तु उस समय मैं इस पर अपने हाथ नही डाल पाया।

मुझे आशा है कि आपको स्वराज्य भवन-न्यास पत्र का मस्विदा मिल गया होगा, जिसे मैंने कुछ समय पहिले भेजा था। इस मामले में मैं आपके आदेशों

की प्रतीक्षा करूंगा। अंसारी और पेरिन[1] न्यासपत्र में सम्पत्ति-विक्रय का कोई जिक्र किये जाने के सख्त खिलाफ़ हैं। उनका कहना है कि किसी भी हालत में इसकी अनुमति नही दी जानी चाहिए। अभी तक विधान[2] और जमनालाल जी की राय मेरे पास नही आई है। किन्तु जमनालाल जी के विचार तो मै पहिले से ही जानता हू।

जब से आप (भारत से) गये है काफी नियमितता के साथ आपको लिखता रहा हूं—हफ्ते में दो बार, हवाई डाक से और मामूली डाक से। मुझे आशा है कि मेरे पत्र आपको मिल गये है। कभी-कभी मैने महसूस किया है कि मेरे पत्र आपके लिए त्रास का कारण हो रहे होगे। जबतक आपको कोई खास बात कहनी न हो, मुझे लिखने का कष्ट मत कीजिएगा।

वल्लभभाई ने मुझे लिखा है कि उन्होंने आपको एक समुद्री तार भेजा है किन्तु वह मुझे उसकी प्रतिलिपि भेजना भूल गये है। जाहिर है कि समुद्री तार पौण्ड तथा रूपये के अपवित्र परिणय की तथा उसके कारण भारत से सोना खीच लिये जाने की जो सम्भावना है उसकी बात कहता है। मैं चल-मुद्रा तथा वित्त की गुत्थियो को समझने का दावा नहीं करता किन्तु हाल की घटनाओं ने मुझे बहुत चिन्तित कर दिया है। मै महसूस करता हूं कि अंग्रेज लोग, बल्कि उनके साहुकार जबतक स्वराज आयेगा तबतक हमें कंगाल और दीवालिया राष्ट्र बना देने का निश्चय कर चुके हैं। आपने यह तो देखा ही होगा कि पीपुल्स बैंक फेल हो गया है। मुझे लगता है कि कही दूसरे भारतीय बैंक भी इसका अनुसरण न करें।

मदाम जगलोल पाशा तथा नहसपाशा के सन्देश पढ़ कर मुझे खुशी हुई। मेरी कामना है कि लौटते वक्त आप मिस्र भी होते आते।

आपका स्नेहपात्र
जवाहरलाल

संलग्न: अखबारों की कतरनें
इमर्सन के नाम पत्र की प्रतिलिपि

मै अपने पिछले हवाई डाक वाले पत्र की प्रतिलिपि आपको नही भेज रहा हूं क्योकि मै उसकी प्रतिलिपियां नही करा सका।

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, १।१०।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. पेरिन बहन कैप्टेन, बम्बई की प्रसिद्ध समाज-सेविका।
२. डा० विधानचन्द्र राय, बंगाल के प्रसिद्ध नेता।

२३. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

स्वराज्य भवन

इलाहावाद, अक्तूवर १६वीं, १९३१

मेरे प्यारे वापू,

आज मैने आपको एक समुद्रीतार भेजा है, जो, मुझे भय है, आपकी परीशानियों में वृद्धि करेगा। इस समुद्री तार में इलाहावाद जिला कांग्रेस कमेटी के उस निर्णय की वात कही गई है जो इस वात की अनुमति मांगती है कि चालू वर्ष का लगान न देने के लिए वह किसानों को राय दे सके। मैं इस समुद्रीतार की, और जो पत्र मैंने वायसराय के वैयक्तिक सचिव तथा कुवर जगदीश प्रसाद को लिखे है, उनकी प्रतिलिपियां भी नत्थी कर रहा हूं। आपके लिए इन पत्रों को, विशेषतः उस पत्र को जिसमें संख्याएं ही संख्याएं हैं, पढ़ने का कष्ट करने की आवश्यकता नही है। फिर भी मैंने सोचा कि सन्दर्भ की सुविधा के लिए उन्हें आपके पास होना चाहिए। मैंने ये सब कार्रवाइयां, खुद अपने आप, कामोवेश, निजी रूप से, की है। किन्तु अन्तिम सूचना तो हमारी प्रान्तीय और इलाहावाद जिला कांग्रेस कमेटी द्वारा ही भेजी जायगी। यह सचमुच खेदजनक है कि हमने जो सलाह किसानों को दी थी वहुत कुछ उसके कारण किसान कैसी सकट की स्थिति में आ गये है। उन्होने कुछ समय तक उस सलाह का अनुसरण किया और ८ आना (आधा) तथा १२ आना (तीन चौथाई) देकर भरपाई की रसीदें ले लेने की वातें की, किन्तु (उनकी) इस वात का किसी पर विशेष प्रभाव नही पड़ा, और उनके खिलाफ़ कानूनी कार्रवाई की गई और वे वेदखल कर दिये गये। इस अवधि में भी हर तरह का उत्पीड़न जारी रहा। अपनी वेदखलियों के वाद भी उनको आशा वनी रही कि उनकी जमीनों की रक्षा के लिए कांग्रेस कुछ करेगी। किन्तु अपराधिक अनधिकारप्रवेश के वहुसंख्यक मामलों के सिवा कुछ नही हुआ। वे न केवल अपनी जमीनों से वेदखल कर दिये गये, वल्कि उन्हे जेल भेजा गया और अनधिकार-प्रवेश के लिए उन पर जुर्माने किये गये। अन्त में वे कांग्रेस की ओर से कोई मदद मिलने के वारे में निराश हो गये। और कही से सहायता आने की उम्मीद उन्हें नही रह गई। इतने पर भी उन्होने हमें दोष नहीं दिया, न हमारी ईमानदारी में ही अपने विश्वास को डिगने दिया, किन्तु इतना उन्होंने अवश्य अनुभव कर लिया कि उनके लिए कुछ करने की स्थिति मे हम नही है। अन्त में, पूरी तरह नाउम्मीदी से भरे हुए और किसी भी कीमत पर अपनी जमीनें वचा लेने की एक मात्र इच्छा से, उन्होंने अपने चौपायों को वेच दिया, और जहां ... कर्ज ले सकते थे, फिर चाहे किसी

भी दर पर हो, वहां परिणाम की वात सोचे विना ही, कर्ज लिया। सिर्फ एक ही विचार उन्हें परीशान कर रहा था—अपनी जमीनों को वचा लेने का विचार। इसलिए उन्होंने चालू साल की पूरी रक़म ही नही अदा की, वल्कि अक्सर कुछ वक़ाया तथा भारी खर्चे भी दिये। इस तरह, आखिरकार उन्हे अपनी ज़मीनें प्राप्त करने के लिए उससे कहीं ज्यादा देना पड़ा, जितनी रक़म विना कुछ छूट के भी उन्हें शुरू में देनी पड़ती। उनका स्थायी अधिकार भी चला गया और वे जीवन भर के लिए ही दखिलकार रह गये।

अव नये मौसम की मांगों की धमकी उनके सामने है और सम्भवतः वही सव ढंग फिर इख्तियार किये जायंगे। उनके लिए और हमारे लिए यह एक मुश्किल सवाल है। वहुत सावधानी के साथ विचार करने के वाद हमारी जिला कांग्रेस कमेटी ने अनुभव किया कि लगान रोक लेने की सलाह देने के अलावा अव कोई रास्ता नहीं रह गया है। अगर समयोचित और प्रभावकारी वनानी हो तो यह सलाह अगले दो या तीन सप्ताहों के अन्दर ही दी जानी चाहिए। इसलिए यह मामला तुरन्त ध्यान देने का है। निस्सन्देह हमारा जिला और प्रान्त कार्यसमिति की अनुमति के विना कोई क़दम नहीं उठायेगा। कार्यसमिति इस महीने की २७ तारीख को दिल्ली में मिल रही है। हमारी प्रान्तीय समिति की वैठक उसके वाद तुरन्त होगी।

यह स्पष्ट है कि इलाहावाद जिला जो भी क़दम उठायेगा उसका असर पास-पड़ोस के जिलों पर भी होगा, जो समान रूप से पीड़ित है। मामला प्रान्तव्यापी हो सकता है। आप इसके दूरगामी परिणामों की खुद ही कल्पना कर सकते हैं।

मैं नहीं जानता कि यह आपके लन्दन के काम को किस रूप में प्रभावित करेगा। जहां तक मुझे दिखाई पड़ता है, गोलमेज सम्मेलन दरवाजे की कील की तरह मर चुका है। और इससे कुछ ज्यादा फरक नही पड़ता कि उसके ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है।

मैं इस पत्र को हवाई डाक की तारीख के चन्द दिनों पहिले भेज रहा हूं। अगर जरूरी होगा तो आगे और व्योरा देते हुए मैं दूसरा पत्र भी लिखने की कोशिश करूंगा।

आपका स्नेहपात्र
जवाहरलाल

—[इलाहावाद, १६।१०।१९३१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२४. जवाहरलाल का तार : गांधीजी के नाम

२५।९।३२

एक्सप्रेस

गांधी जी

यरवदा जेल, पूना

आपके तार और संक्षिप्त समाचार ने कि कुछ समझौता हो गया है, मुझे राहत (और) आनन्द से भर दिया। आपके उपवास के प्रथम समाचार से मानसिक वेदना (और) भ्रान्ति हुई थी किन्तु अन्त में आशावादिता विजयिनी हुई और पुनः मन को शान्ति मिली। दलित पददलित वर्गो के लिए (किया) कोई भी बलिदान अधिक नही है। स्वतन्त्रता की कसौटी निम्नतम की स्वतन्त्रता ही होनी चाहिए किन्तु (मुझे) खतरा लगता है कि अन्य प्रश्न एक मात्र लक्ष्य को ओझल न कर दें। धार्मिक दृष्टिकोण से निर्णय करने में (मैं) असमर्थ हूं। खतरा है कि आपके साधनों का दूसरे लोग दुरुपयोग न करें किन्तु मैं जादूगर को सलाह देने की कल्पना कैसे कर सकता हूं।

प्रेम

जवाहर

—अंग्रेजी। देहरादून जेल, २५।९।१९३२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

२५. चिन्तामणि का पत्र : गांधीजी के नाम

[महादेवभाई ने अपनी डायरी में चिन्तामणिजी के पत्र का जिक्र ८।१०।३२ की तिथि में किया है। स्पष्ट है कि यह पत्र चिन्तामणि ने अक्तूबर ३२ के प्रथम सप्ताह में किसी दिन लिखा होगा।—सम्पा०]

मैं यह पत्र आपको एक उदारदली के नाते नही लिख रहा हूं, मगर एक हिन्दुस्तानी की हैसियत से, जिसे कांग्रेस की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचने पर दुःख हुए बिना नही रह सकता, लिख रहा हूं। फिर भी कहता हूं कि सविनय भंग की लड़ाई समेट लीजिए। और कुछ नही तो इस लड़ाई को मुलतवी रखने का विचार कीजिए।

—अंग्रेजी। ८।१०।१९३२ के आस-पास। महादेव भाई की डायरी भाग २ पृ० ९९]

२६. प्रो० हबीबुर्रहमान[1] का पत्र : गांधीजी के नाम

हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता तो जरूर है। आपके शास्त्र तो शूद्र वेदोच्चार सुन लें तो उनके कानों में सीसा भर देने की सलाह देते हैं। पहले इन शास्त्रो पर पावन्दी लगवाइए, फिर अस्पृश्यता-निवारण की वात कीजिए। भगवद्गीता के उपोद्-घात में कृष्णार्जुन की वात को काल्पनिक वताया है, यह भी हकीकत के खिलाफ़ है। करार आपने हिन्दुओ की मत-संख्या वढ़ाने के लिए किया है, दुनिया से अस्पृ-श्यता मिटाने के लिए करने की वात ग़लत है। ऐसा होता तो दुनिया में अस्पृश्यता के रहते हुए भी आपने उपवास कैसे तोड़ दिया ?

—अक्तूवर, १९३२। महादेव भाई की डायरी, भाग २, पृ० १७३]

२७. राधाकान्त मालवीय का पत्रांश : गांधीजी के नाम

[श्री राधाकान्त मालवीय ने गांधीजी के उपवास का विरोध करते हुए एक लम्वा पत्र लिखा था। पत्र की चर्चा गांधीजी ने ८।११।१९३२ के अपने उत्तर में की है। वह पत्र प्राप्त नहीं है किन्तु श्री महादेव भाई ने अपनी डायरी में उसका निम्न अंश दिया है।—सम्पा०]

उपवास वुरा-से-वुरा वलात्कार है। आपका समझौता किसी को पसन्द नहीं आया। चिन्तामणि और कुंजरू तक को। और लोग भी यों ही हांजी-हांजी करते हैं।

—प्रथम सप्ताह, नवम्वर १९३२। म० भा० डा० भाग २ पृ० १८२]

२८. राधाकान्त का पत्रांश : गांधीजी के नाम

आपके साथ लोकमत नही है।

१. आपको मन्दिर में नियमित जानेवालों की मतगणना करानी चाहिए।

२. इस मन्दिर में दूर दूर से आनेवालों का मत लेना चाहिए।

---

१. अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यापक। यह पत्र अक्तूवर १९३२ के अन्त या नवम्वर ३२ के आरम्भ में लिखा गया होगा।

[राधाकान्त को जब बापू ने समझाया कि ऐसे मन्दिर में जानेवालों की ही राय ली जाती है, तब उसने कहा "मुझ पर गलत असर था। मैंने ऐसी खबरें पढ़ी थीं कि हर किसी हिन्दू का मत लिया जा रहा है।"]
—९।१२।१९३२[1], म० भा० डा० भाग २, न० जी० प्र० मं० पृष्ठ २६६।]

२९. शिवप्रसाद गुप्त[2] का पत्रांश : गांधीजी के नाम

"जो चीज सदियों से किसी की सम्पत्ति के रूप में चली आरही है, क्या वह उससे ले ली जा सकती है? और वह बलात्कार न होगा? गोमांस खानेवाले आदमी को मन्दिर में प्रवेश करने से रोकने का हिन्दू समाज को हक़ नही है? आपको अपना शरीर छोड़ देने का क्या अधिकार है? वह तो समर्पित ही है?

गांधी जी ने इन्हें उत्तर दिया था—"मन्दिर किसी की निजी सम्पत्ति हो और उसे खुलवाने की इच्छा की जाय तो यह सही है कि वह बलात्कार है।"
—म० भा० डा० भाग २, प० २८६, १४।१२।१९३२।[3]]

३०. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

[डाक की मुहर से मालूम होता है कि यह पत्र ६।१।१९३३ को 'सर्टिफिकेट आफ पोस्टिंग' के अन्तर्गत भेजा गया था।—सम्पा०]

देहरादून जेल
५-१-३३

मेरे प्यारे बापू,

आपका पत्र सदैव 'टानिक' (बलकारी) होता है, और जब वह लम्बे अन्तरा-

---

१. यह पत्र कुछ दिन पूर्व लिखा गया होगा। महादेव भाई ने ९।१२।३२ के दिन इसे उद्धृत किया है।

२. वाराणसी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता; 'आज' एवं काशी-विद्यापीठ के संस्थापनकर्ता। कुछ समय तक कांग्रेस के कोषाध्यक्ष।

३. यह पत्र कुछ दिन पूर्व लिखा गया होगा। १४।१२।३२ की डायरी में महादेव भाई ने इसका उल्लेख किया है।

वकाश के वाद आता है, तो वह अपने साथ एक पुलक लेकर आता है एवं तव उसका प्रभाव और भी उल्लासकारी होता है। मै तो लिफ़ाफे पर महादेव की हस्तलिपि (देखते ही) पहिचान गया। आपकी (हस्तलिपि) पहिले जैसी नही लगती। शायद आपका वायां हाथ काम कर रहा था, और मै उससे इतना परिचित नही हूं।

निस्सन्देह, जहां तक 'स्टेट्समैन' और 'पायनियर' से मालूम हो सकता है मै अस्पृश्यता के विरुद्ध आपके आन्दोलन को वड़ी दिलचस्पी के साथ देख रहा हूं। जो कुछ आप करेंगे, वह निश्चय ही मेरी दिलचस्पी और आकर्षण का कारण होगा। (इस) विपय में खुद ही विराट सम्भावनाएं है। धार्मिक आदमी न होने के कारण मेरी दिलचस्पी मुख्यतः सामाजिक पक्ष और अन्तर्हित व्यापक प्रश्नों तक ही सीमित है।

निस्सन्देह सरूप को अस्पृश्यता का काम करना चाहिए—यदि वह वैसा महसूस करती है। सीलोन (लंका) में एक संक्षिप्त अवकाश का मेरा सुझाव मुख्यतः कृष्णा के भले के लिए था। उसके लिए मैं कुछ परीशान हूं। साल भर तक जेल में रहने तथा हमारा घर व्यवहारतः टूट जाने के वाद, वह अपने को एक असम्वद्ध किनारे पर अनुभव करती है और नही जानती कि क्या करना चाहिए। फिर अपने वचपन से ही यह गरीव लड़की यथार्थ गृह-जीवन और उचित शिक्षण से वञ्चित रही है—हमारी व्यस्तता और वार-वार जेल जाने के कारण। वह एक एकाकिनी कन्या के रूप मे वड़ी हुई—उसे उतनी मैत्री और सहानुभूति नही मिली जितनी की हकदार वह थी।

पिता की मृत्यु ने उसे वुरी तरह हिला दिया। मैंने उसे सान्त्वना देने और उसका विश्वास प्राप्त करने की चेष्टा की और मुझे यह कहते खुशी है कि मुझे कुछ दूर तक इसमें सफलता हुई। किन्तु १६३१ हम सवके लिए कार्य और परीशानी तथा चिन्ता से पूर्ण था। तदनन्तर उसके लिए जेल का लम्वा व्यवधान आ गया और किशोरिका के लिए यह उससे कही ज्यादा परीक्षा की घड़ी सावित हुआ जितना यह हममे से अधिकांश के लिए हो सकता था। जव उसकी रिहाई नजदीक आई, मैं कल्पना करने लगा कि वह कैसा महसूस करती होगी, और किस प्रकार आनन्द भवन का जीवन, जैसा कि आज वह है, उसके लिए आनन्द का कारण न होगा। वह विखराव का अनुभव करेगी। वह कुछ करना चाहेगी, और फिर भी न जान पायेगी कि क्या करना चाहिए—और इससे उसके मन की शान्ति छिन जायगी। मै खुद इस विपय में स्पष्ट नही था कि उसे क्या सुझाऊं। पिछले दिनों वह मेरी ओर कुछ इस तरह देखने लगी है जैसे एक मित्र-रहित जगत् मे मैं ही उसका आश्रय

हूं, शरणस्थल हूं। अगर मै वाहर होता तो शायद उसकी मदद कर सकता किन्तु देहरादून जेल से मै वहुत कम ही कर सकता हूं।

मैंने महसूस किया कि निरपेक्ष वातावरण में एक संक्षिप्त अवकाश विताने से उसके मन को शान्ति मिलेगी और द्वन्द्व मिट जायगा। इसीलिए सीलोन-विषयक मेरा प्रस्ताव था। सीलोन में तीन हफ्ते विताने से कोई समस्या तो हल न हो जाती किन्तु उसमे एक ताज़गी आ जाती और वह जीवन का ज्यादा प्रकाशमान दृष्टिकोण लेकर लौटती। ये थे मेरे कारण। मै शारीरिक स्वास्थ्य से ज्यादा मानसिक स्वास्थ्य के विषय में सोच रहा था। किन्तु प्रस्ताव गिर गया प्रतीत होता है, क्योकि कोई इसके बारे में उत्साहित नही जान पड़ता। इसलिए फिलहाल तो सीलोन दूर रह गया है।

शायद कृष्णा आपसे मिलने के लिए पूना जाय और उसके काम के विषय मे आप उसे सलाह दे सकें। सम्भव है, मेरी भी उससे भेंट हो। छोटे-छोटे कार्य-खण्डों का सुझाव देना तो काफी आसान है किन्तु सम्वन्धित जन को वह 'अपील' तो करे।

जहां तक मेरी मुलाकातों का सवाल है, करीव-करीव सात महीने होते हैं जव मेरी एक मुलाकात हुई थी। उनका अभाव मुझे वहुत खला है किन्तु संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने मां तथा कमला के प्रति शिष्टतारहित व्यवहार किया और मैंने महसूस किया कि मेरे लिए और कोई विकल्प नही है; इसके सिवा अभी तक मै अपने जिद्दीपन को छोड़ नही पाया हूं—जिद्दीपन जो मेरी खानदानी कमजोरी है और जिसके वारे में आप अनभिज्ञ नही हो सकते। सरकार ने कुछ आंशिक सुधार किये और होम मेम्वर, छतारी के नवाव आये और उन्होंने अपनी चिन्ता प्रकट की पर यह सव, कमोवेश मुद्दे के वाहर की वातें थी, और भव्यतापूर्ण वात तथा ठीक वात नही की गई, किन्तु ठीक वात तो क्वचित् ही की जाती है। मैंने फिर सरकार को लिखा। फिर भी अपने मन मे मैंने निश्चय कर लिया था कि अगर कोई खास जरूरत पैदा हुई तो मै अपनी मनाही को वापिस ले लूंगा और किसी भेंट के लिए स्वीकृति दे दूगा। यह मामला पिछले कुछ हफ्तो से इसी रूप मे रहा है। मैंने शीघ्र किसी मुलाकात का सुझाव नही दिया, क्योकि मेरा तवादला फिर नैनी जेल में किये जाने की कुछ वात उठी थी।

अव जव आपने भी इसके विषय मे लिखा है तो मैं क्या कर सकता हूं, सिवाय इसके कि तुरन्त आपके आगे कन्धे डाल दूं? इसलिए अव मै, और जवतक कोई अनुचित वात वाधक नही होती, मै अपनी सामान्य मुलाकातें लूंगा। अभी कई और हफ्ते कमला तो मुझसे भेंट नही कर पायेगी। वह विधान के इलाज में कलकत्ता

में है। लेकिन मैं मा और इन्दु और सरूप और कृष्णा, या इनमें से जो मुझे खोज पायें, उनसे भेंट करूंगा।

मुलाकाते वन्द करने से मै अपने ही अन्दर कुछ और एकान्त मे चला गया। किन्तु मुझे एक आमोदकारी और मैत्रीपूर्ण पडोसी मिल गया—हिमालय। आकाश के पार्श्व पर उसकी रूपरेखा का दृश्य, और इस समय ताजी वर्फ से आवृत्त उसकी चोटियों और घाटियो, का मेरे लिए विशेप अर्थ रहा है। ऐसा लगता है कि वे उन सुदूर युगो की पुरातन स्मृतिया मेरे अन्दर जगा रही है जब शायद मेरे पूर्वज कश्मीर के पर्वतो में घूमते फिरते थे और उनकी हिमराशियों और हिम-नदियों में खेला करते थे। मुझे यहा साथी तो मिलते रहे हैं, किन्तु अविकतः मुझे खुद अपने तक ही छोड़ दिया गया है, और मैं आनुवशिक तथा कौटुम्बिक परम्पराओं तथा अपनी निजी आदत की भी अवजा करके कुछ चिन्तनशील वन गया हूं। किन्तु यह पतला छिलका है, जो मुझे भय है कि क्षुद्र उत्तेजना या छेडछाड़ मे गिर जायगा। भला इथोपियन (हब्शी) अपना रंग कैसे वदल सकता है?

मैंने खूब पढा है, और यदि किताबो से मनीषा प्राप्त हो सकती हो तो मैं मनीषी हो सकता हूं। किन्तु मनीषा मुझसे दूर भागती है और मै जिवर निगाह डालता हूं वही एक वड़ा प्रश्न-चिह्न मेरे सामने आकर खड़ा हो जाता है। कभी-कभी मैं राजकुमार सिद्धार्थ के पुराने सवाल की वात सोचता हू और कोई उत्तर नहीं सुझाई देता।

"यह कैसे हो सकता है कि ब्रह्म एक जगत् की रचना करे और उसे इस प्रकार आर्त्त-दुखी रक्खे ? क्योंकि यदि वह सर्वशक्तिमान है और फिर भी इसे ऐसा रखता है तो वह भला नहीं है, और यदि वह शक्तिमान नहीं है तो वह ईश्वर नहीं है।"

अखबारों में जितने भी विवरण निकले हैं उनके अनुसार सदा की भांति आप अध्यवसाय के दास है, और जेल मे भी खुद से शक्ति से अविक काम ले रहे हैं। पश्चिम की नवीन औद्योगिक प्रणाली की प्रायः इसलिए आलोचना तथा निन्दा की जाती है, कि वह निरन्तर काम के लिए मनुष्य को मशीन वना देती है और उससे उसका समस्त अवकाश छीन लेती है। आपके वारे में कल्पना की जाती है कि आप इस प्रणाली के प्रेमी नही हैं, फिर भी मेरे लिए आप अक्सर इसी औद्योगिक प्रणाली को अपने में मूर्त्त करते दिखते है।

मै आपकी इस वात से उलझन मे पड़ गया हू कि प्रत्यक्षदर्शी गवाहों ने आपसे कहा कि मेरी तन्दुरुस्ती ठीक है। सूचना तो सही है किन्तु वे कौन से प्रत्यक्षदर्शी गवाह हो सकते है जो आप तक पहुंचने मे सफल हो गये? काफी अर्से से मैंने कोई मुलाकात नही ली है, और सिवाय एक साथी के, जो महीना भर पहिले रिहा हो

गया, मैं हाल के किसी चश्मदीद गवाह की बात नहीं सोच सकता। यह सच है कि मैं चार दांतों से गरीब हो गया हूं। शारीरिक स्वास्थ्य की देवी को प्रसन्न करने के लिए आधुनिक विज्ञान की वेदी पर मैंने उनकी बलि दे दी है।

यह सदा से लम्बा पत्र है। किन्तु यह मैं आपको एक साल से भी ज्यादा समय के बाद लिख रहा हूं—और मैंने सोलह महीने से भी ज्यादा समय तक आपके दर्शन नहीं किये हैं। मुझे आपकी आखरी झलक तब मिली थी जब आप सुदूर पश्चिम की समुद्री यात्रा पर रवाना हो रहे थे और ज्यों-ज्यो जहाज आपको हमसे दूर लेता गया आपकी आकृति लघुतर, और लघुतर होती गई, और हम सब पोतघाट पर अपने को ज्यादा एकाकी और निरवलम्ब अनुभव करते हुए रह गये।

यरवदा के सुखी परिवार में सबको मेरा प्रेम।

आपका स्नेहपात्र

ज० ने०

—अंग्रेजी। देहरादून, ५।१।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

दे० दू० जेल

७।३।३३

मेरे प्यारे बापू,

आपके पत्र तथा 'हरिजन' के प्रथम दो अंकों के लिए धन्यवाद। निस्सन्देह 'हरिजन' को मैंने दिलचस्पी के साथ पढ़ा, और अत्यधिक कृपा तथा अक्षयशील धैर्य का वह पुराना कटार की धारवाला स्पर्श देखकर खुश हुआ, जो विरोधी को समाप्त, या जैसा आप कहते हैं निष्प्रभाव, कर देता है। गरीब सनातनियों पर मुझे दया आती है। अपने क्रोध और गालियों तथा उन्मत्त शापों के साथ वे इस प्रकार के सूक्ष्म आक्रमण का सामना करने लायक नहीं है। इतने पर भी मूढ़ता और पुरावादिता तथा इस संसार में परिखाबद्ध सुविधा की शक्ति अद्भुत है। महात्मा और सन्तगण भी इनके संघात को तबतक सरलता से छिन्नभिन्न नहीं कर सकते, जब तक कि परिस्थितियों ने उसके लिए जमीन न तैयार कर दी हो। क्या आपने बर्नर्डशा का 'सेण्ट जान'—जोन आफ आर्क-विषयक नाटक पढ़ा है? यदि नहीं तो मैं चाहता हूं कि आप उसे पढ़ें, विशेषतः नाटक की भूमिका को। यह बहुत

में है। लेकिन मै मां और इन्दु और सरूप और कृष्णा, या इनमें से जो मुझे खोज पायें, उनसे भेट करूंगा।

मुलाकाते बन्द करने से मै अपने ही अन्दर कुछ और एकान्त में चला गया। किन्तु मुझे एक आमोदकारी और मैत्रीपूर्ण पड़ोसी मिल गया—हिमालय। आकाश के पार्श्व पर उसकी रूपरेखा का दृश्य, और इस समय ताजी वर्फ से आवृत्त उसकी चोटियो और घाटियो, का मेरे लिए विशेप अर्थ रहा है। ऐसा लगता है कि वे उन सुदूर युगो की पुरातन स्मृतियां मेरे अन्दर जगा रही है जव शायद मेरे पूर्वज कश्मीर के पर्वतों में घूमते फिरते थे और उनकी हिमराशियों और हिम-नदियों में खेला करते थे। मुझे यहां साथी तो मिलते रहे है, किन्तु अधिकतः मुझे खुद अपने तक ही छोड़ दिया गया है, और मैं आनुवंगिक तथा कौटुम्बिक परम्पराओं तथा अपनी निजी आदत की भी अवज्ञा करके कुछ चिन्तनशील वन गया हूं। किन्तु यह पतला छिलका है, जो मुझे भय है कि क्षुद्र उत्तेजना या छेड़छाड़ मे गिर जायगा। भला इथोपियन (हब्शी) अपना रंग कैसे वदल सकता है?

मैने खूब पढा है, और यदि कितावों से मनीषा प्राप्त हो सकती हो तो मैं मनीषी हो सकता हूं। किन्तु मनीपा मुझसे दूर भागती है और मै जिधर निगाह डालता हूं वही एक वड़ा प्रश्न-चिह्न मेरे सामने आकर खड़ा हो जाता है। कभी-कभी मैं राजकुमार सिद्धार्थ के पुराने सवाल की वात सोचता हूं और कोई उत्तर नही सुझाई देता।

"यह कैसे हो सकता है कि ब्रह्म एक जगत् की रचना करे और उसे इस प्रकार आर्त्त-दुखी रक्खे? क्योंकि यदि वह सर्वशक्तिमान है और फिर भी इसे ऐसा रखता है तो वह भला नहीं है, और यदि वह शक्तिमान नहीं है तो वह ईश्वर नहीं है।"

अखवारों में जितने भी विवरण निकले हैं उनके अनुसार सदा की भांति आप अध्यवसाय के दास है, और जेल में भी खुद से शक्ति से अधिक काम ले रहे हैं। पश्चिम की नवीन औद्योगिक प्रणाली की प्रायः इसलिए आलोचना तथा निन्दा की जाती है, कि वह निरन्तर काम के लिए मनुष्य को मशीन वना देती है और उससे उसका समस्त अवकाश छीन लेती है। आपके वारे में कल्पना की जाती है कि आप इस प्रणाली के प्रेमी नही है, फिर भी मेरे लिए आप अक्सर इसी औद्योगिक प्रणाली को अपने में मूर्त्त करते दिखते हैं।

मैं आपकी इस वात से उलझन में पड़ गया हूं कि प्रत्यक्षदर्शी गवाहो ने आपसे कहा कि मेरी तन्दुरुस्ती ठीक है। सूचना तो सही है किन्तु वे कौन से प्रत्यक्षदर्शी गवाह हो सकते हैं जो आप तक पहुंचने मे सफल हो गये? काफी अर्से से मैने कोई मुलाकात नही ली है, और सिवाय एक साथी के, जो महीना भर पहिले रिहा हो

गया, मैं हाल के किसी चश्मदीद गवाह की बात नही सोच सकता। यह सच है कि मैं चार दांतों से गरीब हो गया हूं। शारीरिक स्वास्थ्य की देवी को प्रसन्न करने के लिए आधुनिक विज्ञान की वेदी पर मैने उनकी बलि दे दी है।

यह सदा से लम्बा पत्र है। किन्तु यह मै आपको एक साल से भी ज्यादा समय के बाद लिख रहा हूं—और मैंने सोलह महीने से भी ज्यादा समय तक आपके दर्शन नही किये है। मुझे आपकी आखरी झलक तब मिली थी जब आप सुदूर पश्चिम की समुद्री यात्रा पर रवाना हो रहे थे और ज्यों-ज्यों जहाज आपको हमसे दूर लेता गया आपकी आकृति लघुतर, और लघुतर होती गई, और हम सब पोतघाट पर अपने को ज्यादा एकाकी और निरवलम्ब अनुभव करते हुए रह गये।

यरवदा के सुखी परिवार में सबको मेरा प्रेम।

आपका स्नेहपात्र

ज० ने०

—अंग्रेजी। देहरादून, ५।१।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३१: जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

दे० दू० जेल

७।३।३३

मेरे प्यारे बापू,

आपके पत्र तथा 'हरिजन' के प्रथम दो अंकों के लिए धन्यवाद। निस्सन्देह 'हरिजन' को मैंने दिलचस्पी के साथ पढ़ा, और अत्यधिक कृपा तथा अक्षयशील धैर्य का वह पुराना कटार की धारवाला स्पर्श देखकर खुश हुआ, जो विरोधी को समाप्त, या जैसा आप कहते है निष्प्रभाव, कर देता है। गरीब सनातनियो पर मुझे दया आती है। अपने क्रोध और गालियों तथा उन्मत्त शापों के साथ वे इस प्रकार के सूक्ष्म आक्रमण का सामना करने लायक नही है। इतने पर भी मूढता और पुरावादिता तथा इस संसार में परिखाबद्ध सुविधा की शक्ति अद्भुत है। महात्मा और सन्तगण भी इनके संघात को तबतक सरलता से छिन्नभिन्न नही कर सकते, जब तक कि परिस्थितियो ने उसके लिए जमीन न तैयार कर दी हो। क्या आपने बर्नर्डशा का 'सेण्ट जान'—जोन आफ आर्क-विषयक नाटक पढ़ा है ? यदि नहीं तो मै चाहता हूं कि आप उसे पढें, विशेषतः नाटक की भूमिका को। यह बहुत

नन्ही-सी चीज है और ज्यादा समय न लेगी। कुछ समय पहिले मैंने इस किताब की एक प्रति इन्दु को भेजी थी और आप आसानी के साथ उससे मंगवा सकते हैं।

सनातनियों का कवीला, निश्चय ही नष्ट हो जायगा, क्योंकि वे वीते हुए युग के भग्नावशेष है। उनका क्रोध ही उस खतरे के विस्तार को प्रदर्शित करता है जो उनके सामने खड़ा है। दवाव पड़ते ही सम्पूर्ण सहिष्णुता लुप्त हो जाती है और इस समय की उनकी असहिष्णुता उस महत् दवाव का लक्षण है जो आप उन पर डाल रहे है। सप्रू और मेरे-जैसों (एक अद्भुत समवाय है !) के लिए उस समय धर्म के मामले मे आडम्वरपूर्वक और अपनी सहनशीलता के महत्तर ढंग पर वातें करना वहुत अच्छा है, जव हममे से किसी में कहने लायक कोई धर्म वाकी नही रह गया है—इसी प्रकार हम लोगों के लिए उस समय मन्दिर प्रवेश-आन्दोलन को आशीर्वाद देने की भी वात है, जव हममे से किसी के मन मे भी मन्दिर से १०० मील दूर तक जाने की न्यूनतम इच्छा भी नही है—सिवाय इसके कि जहा तक मेरा ताल्लुक है, स्थापत्य या मूर्तिकला देखने को भले चला जाऊं। किन्तु हम दोनों में से किसी को किसी विषय-विशेष पर छू दीजिए और आपको हमारा कच्चा पहलू दिखाई पड़ जायगा, जहां शायद ही कोई सहिष्णुता हो। कुछ मामलों में आपसे वढ़कर और कौन असहिष्णु होगा ? सचाई यह है कि वास्तविक सहिष्णुता का शायद ही कही अस्तित्व होगा; सहिष्णुता के नाम पर जो चीज चलती है, वह उदासीनता है। जिसकी हम कोई कीमत नही आंकते, उसे दूसरों में सहन करने को गुण वना लेते है। जो आदमी, इस या उस किसी वस्तु के वारे मे आक्रामक रूप से असहिष्णु नही है, वड़ा निरर्थक प्राणी है। इस रूप मे सनातनियो के प्रति कुछ सहानुभूति का, कुछ उलटे प्रकार की सहानुभूति का—अनुभव करता हूं। वे किसी चीज की कदर तो करते है, जिसके लिए कि वे लड़ने को तैयार है। सवाल वहुत जकड़ा हुआ है। खतरनाक लोग तो सदा वे होते है जो कठिनाइयों को झांसापट्टी देते या उनसे कतराते रहते है—या तो उनको भुला देने के यत्न में रहते हैं या फिर उनको सिर्फ एक आंख से ही देखते है।

निस्सन्देह यदि आप वँधे हुए पानी का विलोड़न करेगे तो वदवू निकलेगी ही, और हिन्दू सामाजिक ढांचा सव तरह से पर्याप्त रूप मे वँधकर रह गया है। किसी वंधे हुए स्थिर जलाशय के लिए मेरी दवा यह होगी कि उसका पानी पूरी तरह से निकाल दिया जाय और तव उसे सूर्य-द्वारा सुखाये जाने और पेंदे तक उसे शुद्ध किये जाने के लिए छोड़ दिया जाय। उसके वाद उसमे शीतल ताजा जल छोड़ा जा सकता है और ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि वह वरावर प्रवाहित होता रहे, जिससे फिर उसमे अटकाव न आने पावे। दिखाऊ या ऊपरी नालियां वना

देने से पेंदे में एकत्र मल-भण्डार साफ़ नही किया जा सकता। किन्तु आप कुछ सीमा तक जलाशय को रिक्त कर रहे है और हो सकता है कि हम उसके पेंदे को देख पायें।

मै माने लेता हूं कि 'हरिजन' एक भी कट्टर सनातनी का विचार परिवर्तन न कर पायेगा। किन्तु वह निस्सन्देह दूसरे ऐसे वहुसंख्यकों को प्रभावित करेगा जिनकी आंखे हमारी सामाजिक वुराइयों की ओर अभी तक, वन्द रही है। हम वहुत जल्द अपने चतुर्दिक की गन्दगी के अभ्यस्त हो जाते है। मेरी कामना है कि 'हरिजन' दलित वर्गो के विषय में व्यौरेवार तथ्य देगा—देश के विविध भागों में उनके साथ कैसा सलूक किया जाता है, उनकी निर्योग्यताएं, और विशेष रूप से उनकी आर्थिक अवस्था, जहां तक कि उसका सम्वन्ध सामाजिक दशा के कारण है। तथ्यों का यह भण्डार निरपेक्ष मानव को प्रभावित करेगा और सनातनियो पर चढ़ वैठेगा। आपकी सही युक्तियुक्तता के वावजूद सनातनियो के विचार में कोई प्रदर्शनीय परिवर्तन नही होगा। अगर मै आपको विक्टोरिया काल के एक अति समादरणीय व्यक्ति—जान स्टुअर्ट मिल का उद्धरण दू तो—

"नैतिक विश्वासों की शक्ति का मूल्य कम आंकने में हम अन्तिम होंगे। किन्तु मानव जाति के समूह के विश्वास अपने हितों या वर्गगत भावनाओं के साथ जुड़े हुए चलते हैं। मनुष्य के मन पर विवेक और सदाचरण के प्रभाव के रूप में हमारे पास एक प्रबल वस्तु है—उससे प्रवलतर जितनी राजनीतिज्ञों या दार्शनिकों के पास सामान्यतः पाई जाती है। किन्तु इस विवेक और सदाचरण में समस्या का एक ही पहलू आता है। विवेक के वल पर एक से दूसरे पक्ष में हम चन्द ही मतपरिवर्तनों की आशा करते हैं।"

आपके एक लेख को लेकर एक पुराने स्कूल मास्टर ने 'हरिजन' में ही आपकी आलोचना की थी। चूकि आप आलोचना पसन्द करते हैं, यह रही दूसरी—वाहरी-सी। 'हरिजन' के सम्वन्ध में मेरा प्रथम दर्शन अनुकूल नही था। उसके छैले रूप'[1]—आकार-सज्जा, टाइप आदि-को देखकर मेरे मनश्चक्षु के सामने आडम्वरयुक्त व्यर्थता का वह पुराना और अत्यन्त सम्मानास्पद पत्र, 'इण्डियन सोशल रिफार्मर', आ गया। मै नही जानता कि यह योग्य परन्तु अन्ततः निरर्थक एवं परिहास-रहित पत्र जड़ और गम्भीर लोगो की ज्ञानवृद्धि के लिए अपने नीरस ढंग पर अव भी निकल रहा है या नही। यदि वह हमसे दूर हटा रहे तो मुझे इसके खिलाफ कोई शिकायत नही है। उसके वाहरी रूप से हरिजन की समानता ही

---

१. यह श द व्यंग में प्रयुक्त हुआ पे।

उसके पक्ष में एक वात नहीं। निस्सन्देह, यह मिलती-जुलती शकल-सूरत उसी समय लुप्त हो गई जब मैंने पत्र को पढ़ना शुरू किया।

किन्तु जिस लिफाफे में आपका पत्र आया उसके खिलाफ मैं अपना विरोध जरूर प्रकट करूंगा। यदि इसके लिए वल्लभभाई जिम्मेदार हैं, जो यद्यपि मैं उन्हें बहुत प्यार करता हूं, मुझे साफ़ कहना होगा कि लिफाफा वनाना उनकी कोई खुसूसियत नही जान पड़ती। या शायद दोप सव उनका ही न होगा—जबकि जो कच्ची सामग्री उन्हें दी जाती है वह रद्दी की टोकरी से आती हो।

कृपया मेरे सतहीपन को क्षमा करें। मै अपने हीरों को चिकना और चमकता हुआ रखना पसन्द करता हूं। आपने हमें विराट रूप मे जीवन जीने की कला और शैली वताई है। असल चीज वही है, किन्तु हम जीवन की छोटी छोटी बातों मे भी शैली और कला की उपेक्षा क्यों करें? हममें से अधिकांश हिमधवल ऊंचाइयों तक नही पहुंच सकते। क्या आप हमें घाटियों के फूलों से वञ्चित करेंगे?

मै काफ़ी लम्बा पत्र लिख चुका हूं, फिर भी वहुत सी वातें जो मै कहना चाहता था, अनकही ही रह गई हैं। हरिजन आन्दोलन के विपय मे मेरे लिखने का क्या उपयोग है? आपने इस विपय पर पर्याप्त से अधिक लिखा है। आपका मन वदलने और उसमें ताज़गी लाने के लिए मैं अपनी कुछ दिलचस्पियों के वारे में आपको लिखना पसन्द करूंगा। वर्तमान में कर्म से दूर हटा दिये जाने के कारण मै कुछ-कुछ भविष्य में किन्तु प्रधानतः अतीत मे रहता हूं। मै तो आपसे गोवी मरुस्थल की उस आनन्ददायिनी सभ्यता की वात करना चाहूंगा जो तेरह सौ से भी अधिक वर्षो पहिले वहां फैली हुई थी—जिसमें भारतीय, चीनी और रूसी संस्कृतियों का विचित्र संगम हुआ था, यहां तक कि उसमें रोमन संस्कृति का भी कुछ अंश था, और संस्कृत ज्ञान की भाषा थी तथा वौद्ध गाथा वह स्वर्ण-सूत्र थी, जिसमें ये देश एक में वंधे हुए थे। मैं आपसे गांधार, अफगानिस्तान और रूस में गाथिक स्थापत्य के जन्म की कहानी कहना चाहूंगा जो यूरोप के मध्ययुग के भी लगभग हजार साल पहिले शुरू हुई—उस मध्ययुगीन युरोप के, जिसने धर्म-विश्वास की उद्वेगपूर्ण स्फूर्ति मे उन अद्भुत गिर्जाघरों का निर्माण किया जो गगन को मूर्त्त प्रार्थनाओं की भांति छूते है। इसी प्रकार मै अपने उन पुराने दिनों में मध्य एशिया के ओजपूर्ण जीवन और वहुरंगी उन कारखानों की कहानी कहना पसन्द करूंगा जो वहुमूल्य और सुन्दर वाणिज्य को लेकर अनेक विद्वज्जनों एवं तीर्थयात्रियों के साथ पश्चिमी एशिया एवं भारत तथा सुदूर पूर्व के वीच आया-जाया करते थे। इनके वाद मै उसी क्षेत्र की एक दूसरी दुनिया, अरव दुनिया, की भी वात करना चाहूंगा क्योकि वह भी जीवन से स्पन्दित था। इन्दोनेशिया समुद्र में मैं श्री विजय

के साम्राज्य की बात करना चाहूंगा, जो विदेश में भारत का एक यथार्थ खण्ड था और जहां भारतीय संस्कृति की प्रधानता थी तथा जहां भारतीय कला अपने शिखर पर पहुंची बताई जाती है। मैं विचार में आपके साथ मध्य एशिया के इन विशाल क्षेत्रों के पार चल सकता और उन परिवर्तनों को देख सकता हूं जो काल ने कर दिये है, तथा मरुस्थलों के उत्तप्त बालुकाकणों के नीचे से प्राचीन युगों के उन भग्नावशेषों को बाहर निकाल सकता हूं जो बहुत पहिले के मृत लोगों, संस्कृतियों और सभ्यताओं की बातें हमसे कह सकते है। इस तरह मैं अपनी दमित शक्ति को-अभिव्यक्त करने के लिए आगे और आगे तबतक लिखता चला जा सकता हूं जब तक मेरा लम्बा पत्र आपको परेशान और जेल-अधिकारियों को उससे भी ज्यादा कुछ न कर दे।

मां ने पूना जाने का निश्चय किया है। मैने उन्हें एक पखवारे पूर्व देखा था। मुझे वह पहिले से ज्यादा बूढ़ी दिखाई पड़ी। मै आशा करता हूं कि आप उन्हे इधर-उधर ज्यादा यात्रा न करने देंगे। वह आराम चाहती है। पिछली बार पूना में जहां ठहरी थी उससे कुछ ज्यादा खुश नही थी। यदि सम्भव होगा तो शायद वह कही दूसरी जगह ठहरेंगी।

साढ़े तीन महीनों तक वहां इलाज कराने के बाद कमला आखिरश कलकत्ता से विदा हो गई है—इतने पर भी वह कमोबेश छुट्टी के टिकट पर ही है। इस समय वह पटना में है जहां कुछ दिनों के लिए अपने भाई के साथ टिकी हुई है। महीने के अन्त तक वह यहां पहुंचने का जुगाड़ कर पायेगी। अब वह देहरादून मे दो या तीन महीने रहने की इच्छा रखती है और अपने अवकाश की अवधि में इन्दु भी उसके साथ रह सकती है। हम एक गृहहीन और विच्छिन्न कुटुम्ब है!

चूंकि मैं न जन्म से, न स्वीकृति से 'हरिजन' हूं, स्पष्टतः मैं इस पत्र की निःशुल्क प्रति पाने का अधिकारी नही हूं। इसलिए मै सरूप से कह रहा हूं कि एक साल का चन्दा भेज दे और पत्र सीधे मुझे यहां भेजने का प्रबन्ध कर दे। मैं समझता हूं कि यह एक अनुमतिप्राप्त चीज है।

यहा जाड़े के महीने मे मैं सूर्य-पूजक बन गया था और मेरे शरीर ने सूर्य की ऊर्जा ग्रहण कर ली है। किन्तु अब वसन्त आ गया है और सूर्य असुखद रूप से गर्म होता जा रहा है। और वसन्त के साथ वृक्षों पर केवल नई कोपले ही नही आई है बल्कि मक्खियों के झुण्ड भी आ गये है और इनके आगमन से मेरी निष्ठा डगमगा रही है।

अंसारी मुझसे मिल गये। उन्हें फिर से देखना बड़ा अच्छा लगा।

ऐसा लम्बा पत्र लिखने मे मैने जेल-अधिकारियों की उदारता की बहुत-ज्यादा कल्पना कर ली है। किन्तु परिकल्पना मेरी एक पुरानी दुर्बलता है।

आपको और आपके साथियो को प्रेम

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

७।३।३३
महात्मा गांधी
यरवदा सेण्ट्रल प्रिजन
पूना।

—अंग्रेजी। देहरादून, ७।३।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३२. हीरालाल शर्मा का पत्र : गांधीजी के नाम

करोलबाग, दिल्ली
७ अप्रैल, १९३३

मम प्रिय गांधी जी,

आपके तीन तारीख के कृपापूर्ण तथा स्फूर्तिप्रद पत्र के लिए धन्यवाद। मेरे आश्रम-निवास के इतने थोड़े समय में जो शिक्षाप्रद कार्यक्रम आपने मेरे लिए निर्धारित किया है समझ मे नही आता कि उसमें मैं कैसे उत्तीर्ण हो सकूंगा, फिर भी यथाशक्ति सफल होने का प्रयत्न तो करूंगा ही।

मेरा भी यही विश्वास है कि मनुष्य कैसी भी जलवायु में क्यों न हो अपना स्वास्थ्य बनाये रख सकता है यदि वह केवल प्रकृति के साधारण नियमों का पालन करता रहे। किन्तु ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने उसके नियमों का उल्लंघन करके अपना स्वास्थ्य खो दिया है या शरीर को रुग्ण बना लिया है तो फिर उसके लिए मुझे जल्दी विश्वास नही होता कि अपनी अवहेलना के लिए किसी भी तरह का भारी दण्ड चुकाये बिना वह आसानी से अपना खोया हुआ स्वास्थ्य फिर सदा ही प्राप्त कर सके।

प्रकृति तो धनी अथवा निर्धन सभी के लिए निष्पक्ष है। यदि आदरपूर्वक उससे परामर्श लिया जाय तो वह एक सच्चा उपकारी मित्र सिद्ध होगी, किन्तु

उसकी अवहेलना की जाय तो एक दु:साध्य अनुशासक से भी वह कम नही। मैं नही समझता कि प्रकृति कभी धोखा दे सकती है। जो लोग उसकी चेतावनियों पर ध्यान देते है और उसके आदेशों पर चलते है वे ही उसके असीम वरदानों से अपने जीवन-पर्यन्त लाभ उठाते है। मनुष्य को तो केवल प्रकृति को समझना और उससे सहयोग करना ही है। क्योंकि प्रकृति तो बड़ी उदारतापूर्वक अपने विशाल तथा परिपूर्ण कार्यालय से प्रत्येक प्रकार के उपचार स्वयं ही देती है और वह भी इतने प्रचुर रूप में कि जिसकी कोई सीमा नही।

अभी तो मैने एक महीने के लिए ११ अप्रैल को आश्रम जाने का निश्चय किया है। मैं अपने छः वर्षीय बच्चे को अपने साथ आश्रम ले जाना चाहता हूं किन्तु उसके और उसकी चार वर्षीय बहिन के बीच एक विवाद-सा खड़ा हो गया है। दोनों ही साथ रहना चाहते हैं। इसलिए यदि दोनों के बीच १० अप्रैल की सयंकाल तक कोई समझौता न हो सका तो या तो लड़के को यहां छोड़ना होगा और फिर उसकी बहिन को भी अपने साथ लाऊंगा।

वीवी अम्तुल सलाम गत मास की ३१ ता० को पटियाला चली गई हैं। अच्छा हो यदि उसी दिन वह भी आश्रम आना पसन्द कर लें।

भवदीय

एच० एल० शर्मा

--अंग्रेजी। दिल्ली, ७।४।१९३३। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष से']
सौजन्य : श्री हीरालाल शर्मा।

३३. जवाहरलाल का तार : गांधीजी के नाम

देहरादून जेल
५।५।३३

गांधी जी,
यरवदा प्रिजन (कारागार)
पूना।

आपका पत्र। जिनको मैं समझता नही, उन मामलों के विषय में क्या कह सकता हूं। मैं ऐसे विचित्र देश में अपने को खोया हुआ महसूस करता हूं, जहां आप

ही एक परिचित सीमाचिह्न है, और मैं अन्धकार में अपनी राह टटोलने की कोशिश करता हूं, किन्तु लड़खड़ा जाता हूं। जो कुछ भी हो, मेरा प्यार और विचार आपके साथ रहेंगे।

जवाहर

--अंग्रेजी। देहरादून, ५।५।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३४. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

दे० दू० जेल
५।५।३३

मेरे प्यारे बापू,

आपका पत्र आज आया। मैं कुछ-कुछ इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था, क्योंकि आपका महत् हृदय, आपको अनुमति नही देता कि किसी को भी भूले। मैं आपको एक तार इसके पहिले ही भेज चुका हूं।

जैसा कि मेरा तार बतायेगा, मैं अपने को बिल्कुल असमर्थ अनुभव करता हूं, और नही जानता कि मै आपको क्या कह सकता हूं। धर्म मेरे लिए परिचित भूमि नही है, और ज्यों-ज्यो मेरी उम्र बढ़ी है, मै निश्चित रूप से इससे दूर भटक गया हूं। मैं खयाल करता हूं कि मेरे पास इसकी जगह कुछ दूसरी ही चीज है, केवल बुद्धि और युक्ति से अलग कोई चीज, जो मुझे शक्ति और आशा प्रदान करती है। इस अपरिभाषेय तथा अनिश्चित प्रेरणा, जिसके अन्दर धर्म की हलकी-सी आभा हो सकती है पर जो उससे बिल्कुल भिन्न है, के सिवा मैंने सेवा की क्रियाशीलता पर ही पूरी तरह विश्वास रखना सीखा है। शायद ये विश्वास करने के लिए कमजोर आधार है, किन्तु यद्यपि मैं खोजूंगा अवश्य, मुझे उनसे अच्छे दूसरे (आधार) तो दिखाई नही पड़ते। मुझे लगता है कि धर्म मनोवेग तथा भावप्रवणता की ओर ले जाता है और ये उनसे भी ज्यादा अविश्वसनीय पथ-दर्शक हैं। अन्तःप्रेरणा (इनट्यूशन) निश्चय ही ऐसी कोई चीज है, यद्यपि मैं कह नही सकता कि वह आती कहां से है, शायद मन के पार्श्व में संचित अनुभूतियां—अवचेतन आत्मा।

हरिजन-समस्या बुरी (टेढ़ी) है, बहुत बुरी किन्तु यह कहना मुझे गलत

मालूम पड़ता है कि सारी दुनिया में इतनी बुरी कोई और चीज नहीं है। मेरा खयाल है कि मैं बहुतेरी ऐसी बातें बता सकता हूं जो इतनी ही बुरी हैं, बल्कि इससे भी ज्यादा खराब है। सारी दुनिया में यही हरिजन सवाल विविध रूपों में पाया जाता है। क्या यह विशेष कारणों का परिणाम नही है? बिला शुबहे केवल अज्ञान तथा दुर्भावना की अपेक्षा कुछ और चीज ही इसका कारण है। इस मामले की जड़ तक पहुंचकर उसे सुधारने का एक मात्र मार्ग उन कारणों को दूर करना अथवा उनके प्रभाव को निष्फल कर देना ही जान पड़ता है। किन्तु इस समय मे इन मामलों पर क्यों लिख रहा हूं। मैं इस पत्र में तर्क नहीं करना चाहता क्योंकि तर्क की स्थिति बीत चुकी है।

आपसे इतनी दूर रहना कठिन है, किन्तु आपके पास रहना और भी कठिन होगा। यह जनाकीर्ण जगत् बड़ा ही एकान्त-सूना-स्थान है, और आप इसे और एकान्त बना देना चाहते हैं। जीवन और मृत्यु का तो विशेष महत्व नही है, या विशेष महत्व होना नही चाहिए। जो चीज महत्वपूर्ण है, वह है वह प्रयोजन, वह उद्देश्य जिसके लिए आदमी काम करता है, और यदि किसी को निश्चय हो जाय कि उसके लिए मरने से ही उसके प्रति अन्तिम सेवा हो सकती है, तो मृत्यु सरलतर अनुभव होगी। मैंने जीवन को प्यार किया है—पर्वतों और समुद्रों को, धूप और वर्षा को, तूफान और बर्फ को, तथा पशुओं और किताबों को, और कला, तथा मानव प्राणियों को भी—; और जीवन ने मेरे साथ भला ही सलूक किया है। किन्तु मृत्यु के विचार ने मुझे कभी भयभीत नही किया है; दूर से वह एक प्राणी के प्रयास के मुकुट-स्वरूप सुन्दर है। किन्तु निकट से उसका ध्यान करना सुखद नही है।

पिछले चौदह या पन्द्रह वर्ष का समय जब से विविध कार्यों में मैं आपके साथ रहा हूं, मेरे लिए अद्भुत रहा है। जीवन ज्यादा पूर्ण और ज्यादा समृद्ध एवं और जीवनीय हो गया, और यह एक प्यारी और मूल्यवान स्मृति है जिसे कोई भी चीज मुझसे छीन नही सकती। और जब भी भविष्य अंधेरा होगा, अतीत का यह दृश्य अंधियारी को दूर कर देगा और मुझे शक्ति देगा।

आपको मेरा समस्त प्रेम

आपका स्नेहपात्र

ज० ला०

कमला देहरादून में ठहरी हुई है। आपका सन्देश मैं उस तक पहुंचा दूंगा।

—अंग्रेजी। देहरादून, ५।५।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३५. जवाहरलाल का तार : गांधीजी के नाम

देहरादून जेल
८।५।३३

महात्मा गांधी
पूना।

अब जब कि आप अपने महत् प्रयास का आरम्भ कर चुके हैं, क्या मैं पुनः अपना प्रेम और बधाइयां भेज सकता हूं और आपको विश्वास दिला सकता हूं कि अब मैं ज्यादा स्पष्टता से महसूस करता हूं कि जो कुछ होगा, अच्छा ही होगा और चाहे जो भी हो, विजय आपकी होगी।

जवाहर

—अंग्रेजी। देहरादून, ८।५।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३६. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

देहरादून जेल
२५।७।३३

मेरे प्यारे बापू,

आपका रुक्का मुझे कल मिला। कृष्णा के विषय में मां की, विशेषतः एक हिन्दू मां की चिन्ता स्वाभाविक है, और वह मुख्यतः इस बात में है कि उसकी बेटी का विवाह कहीं योग्य रीति पर हो जाय। उनकी पसन्द तो यही हो सकती थी कि वह उसे कश्मीरियों में विवाहित होते देखतीं और वैसा न हो सकता तो कम-से-कम विवाह ब्राह्मणों में तो होता। यह विचार कि कृष्णा किसी ऐसे आदमी से शादी करे, जो ब्राह्मण भी नहीं है, ऐसी बात है जिसे वह पूरी तरह निगल नहीं पाती। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, उसके विवाह का सवाल मुझे इतना परीशान नहीं करता, यद्यपि मैं उसके बारे में सोचता जरूर हूं। इसके विषय मे मेरे विचार मां के विचारों के ठीक उलटे है। पुरानी परम्परा में जितनी चौड़ी दरार सम्भव हो, मैं उसका स्वागत करूंगा। सब मिलाकर कश्मीरी समाज (निश्चय ही इसमें अपवाद भी है) मुझमे अरुचि पैदा करता है, यह मध्यवर्गीय क्षुद्र दुर्गुणों का प्रतिरूप है—ऐसे

दुर्गुणों का, जिन्हें मै घृणा करता हूं। किसी आदमी के ब्राह्मण, अ-ब्राह्मण या कुछ और होने में कोई ख़ास दिलचस्पी नही रखता। तथ्य की वात तो यह है कि इन सबका औचित्य समझने में मैं असमर्थ हूं। कोई शादी किसी व्यक्ति से करता है, पूरी जाति से नही। फिर ये सब वातें तो विचारविन्दु से अलग हैं क्योंकि निर्णय तो कृष्णा को, न मां को न मुझे, करना है, और एक वय:प्राप्त कन्या के साथ किसी और तरह का व्यवहार करना बिल्कुल असम्भव है।

मै ठीक नही जानता कि हममें से कोई इस मामले में क्या कर सकता है। कुछ दिन पहिले कृष्णा का जो पत्र मुझे मिला था, उससे मैं इतना समझ सका कि इस विषय पर मुझसे कुछ कहने के लिए वह मेरे वाहर आने की प्रतीक्षा कर रही है। जबतक मै जान न लूं कि उसके मन में क्या है तवतक मैं कोई निश्चित अनुमान लगाने में असमर्थ हूं। किन्तु इस बारे में वह खुश जान पड़ती है। यदि उसके मन में किसी के लिए स्पष्ट तर्जीह है और उसमें कोई अलंघ्य आपत्ति नही है (और मै ऐसी किसी आपत्ति की कल्पना नही कर पाता) तो मै मानता हूं कि मामला उसी रूप में तय हो जायगा। ज्योंही मुझे कुछ और मालूम होगा, मै आपको लिखूंगा।

मै नही जानता कि आपने मेरे परिवार में एक प्रस्तावित विवाह की वात सुनी है या नही। मेरे चचेरे भाई ब्रजलाल के लड़के ने, जो लन्दन के अर्थशास्त्र विद्यालय में पढ़ता रहा है, अपनी सहपाठिनी एक हंगेरियन लड़की से विवाह तय कर लिया है। उसके पिता और माता इस समाचार से कुछ उखड़ से गये और वे हड़वड़ाकर लन्दन भगे और वाद में लड़की के माता-पिता से मिलने वुदापेस्त भी गये। लेकिन लड़की ने उन पर विजय प्राप्प की और वे उसकी प्रशंसा से भरे हुए वापिस लौट आये हैं।

ऐसी मिश्रित शादियों मे कुछ कानूनी कठिनाइयां है। ब्रजलाल का विचार हंगेरियन लड़की को जाब्ते से हिन्दू धर्म में परिर्वातित करने और तव हिन्दू या आर्य पद्धति से उसके साथ शादी करने का है। व्यक्तिगत रूप से किसी दूसरे अभिप्राय की पूर्ति के लिए मैं धर्म-परिवर्तन करने या दूसरा धर्म ग्रहण करने को नापसन्द करता हूं।

मै धार्मिक विचार का अधिकाधिक विरोधी होता जा रहा हूं। अपवादों को छोड़कर (और उनमें से कुछ महत् अपवाद हैं) वह मुझे वास्तविक आध्यात्मिकता का निषेध और केवल संवेग तथा भावोत्तेजना का जनक प्रतीत होता है। जहां तक मुमकिन हो, मैं अपने को सव धार्मिक रीतियों और अनुष्ठानों से—धर्म के सव ऊपरी चिह्नों से, दूर रखना चाहूंगा—पूर्णत: धर्मनिरपेक्ष। मां के प्रति सम्मान के कारण और उसकी जिन्दगी के इस समय में उसकी भावनाओं को चोट न पहुंचाने

के खयाल के कारण कभी-कभी मैं किसी समारोह या संस्कार में शरीक होने को राजी हो जाता हूं। पर तब भी यह एक अनिच्छुक या असौम्य सम्मिलन ही होता है और मैं निःश्चत नही कर पाता कि इसके विना ही काम चला लेना क्या ज्यादा अच्छा न होगा।

आज ही सुबह मैंने सेनगुप्त की आकस्मिक मृत्यु की खवर पढ़ी है। वह एक आघात के रूप मे आई। यद्यपि कभी उनके साथ घनिष्ठता नही रही, मैं उन्हें लगभग २६ साल से जानता हूं। वह मुझसे कही ज्यादा वड़े थे किन्तु कैम्ब्रिज मे उनका अन्तिम वर्ष मेरे प्रथम वर्ष के साथ पड़ा था, और हम पहिली वार १६०७ में मिले थे। जीवन हमारे पास से किस प्रकार भागता है, और जव हम अपने विचारों से घिरे हुए वैठे होते हैं तो दृश्य वदल जाता है।

कमला अभी देहरादून मे ठहरेगी। शायद मेरी रिहाई तक वह यही रहेगी। मामूली तौर पर यह रिहाई सितम्वर के दूसरे हफ्ते मे होनी चाहिए। मुझे आशा है कि आप शीघ्र ही पूर्णतः स्वस्थ हो जायंगे।

प्रेम

आपका स्नेहमात्र

महात्मा गांधी
अहमदावाद।

ज० ल०

—अंग्रेजी। देहरादून, २५।७।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

३७. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

आनन्द भवन
इलाहावाद, अक्तूवर २७, १६३३

मेरे प्यारे वापू,

मैं इलाहावाद कांग्रेस-अस्पताल के मामले मे आपकी सलाह लेना चाहूंगा। यह अस्पताल स्वराज भवन में स्थित था, और १६३१ के अन्त तक, जव स्वराज भवन को पुलीस ने जब्त कर लिया, सफलतापूर्वक चलता रहा। हमारे सव कीमती सामान और दवाइयों—जिनमें दो हजार रुपये की कीमत के ताजी दवाइयो के ६ अनखुले वक्से भी थे—पर पुलीस ने कब्जा कर लिया। एक रोगिवाहक गाड़ी (एमवुलेंस कार) का भी यही हाल हुआ। कुछ दिनो के वाद, ब्रिटिश अधिकारियो

ने, दूसरी किसी बात की अपेक्षा केवल दिखलाने के लिए, घोषणा की कि वे जनता के लिए स्वराज भवन में एक औषधालय जारी रक्खेंगे। ऐसा समझा जाता है कि पिछले दो-एक वर्ष से यह औषधालय चलता रहा है। लेकिन इसका कोई प्रमाण नही कि जनता के एक भी आदमी ने कभी इसका लाभ उठाया हो। इलाज के लिए कभी-कभी कुछ पुलीस वाले वहां जाते हैं। आनन्द भवन से स्वराज भवन दिखाई देता है, और यहां से किसी ने कभी उसमें किसी रोगी को प्रवेश करते या वाहर निकलते नही देखा है, फिर भी मुझे बताया गया है कि उनकी किताबों में यह दिखाने के लिए झूठे इन्दराज कर लिये जाते हैं कि वहुत से मरीजों का वहां इलाज किया जा रहा है। जो भी हो, मुझे इस बात में कोई दिलचस्पी नही है।

स्वराज भवन से निकाल वाहर किये जाने के वाद कांग्रेस अस्पताल के पास कोई घर नहीं रह गया और कई हफ्तों तक वह पास के एक सार्वजनिक उद्यान में एक वड़े वृक्ष के नीचे चलता रहा। इस खुली जगह से दवाइयां वाटी जाती रही, और दो महीनों के अन्दर उस पेड़ के नीचे उसने दवा ले जानेवाले २५०० मरीजों का इलाज किया।

अप्रेल १९३२ में मेरी मिल्कियत के एक कुटीर में यह अस्पताल खोला गया। यह क्षुद्र गृह आनन्द भवन से कुछ हटकर स्वराज भवन से लगा हुआ है। पहिले यह मकान किराये पर दिया गया था। जितनी जल्द हम इसे खाली करा सके, खाली कराके उसमें अस्पताल खोला गया। और तव से वह इसी में चल रहा है। अधिकारियों ने कुछ धमकियां दी किन्तु उसकी पर्वा नही की गई। उनकी ओर से यह सुझाव भी दिया गया कि अगर उसके नाम में से कांग्रेस शब्द हटा दिया जाय तो वे कोई दस्तन्दाजी न करेंगे। इस प्रस्ताव को अमान्य कर दिया गया और अस्पताल को उसके साइन वोर्ड पर कांग्रेस अस्पताल ही कहा जाता रहा, और उस पर राष्ट्रीय झण्डे का फहराना भी जारी रहा। तव सरकार ने उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

यद्यपि अन्तर्वासी रोगी नहीं लिये जाते थे, फिर भी मार्च ३१ को समाप्त होने वाले वर्ष में ५८००० बाहरी रोगियों का इलाज किया गया। ३० सितम्बर १९३३ को समाप्त होनेवाली छमाही में ३७०३५ वाहरी रोगियों का इलाज किया गया है। हमने अपने खर्चे बहुत घटा दिये हैं और पिछले अट्ठारह महीनों में अस्पताल पर कुल ८३६० रुपये ख़र्च किया है, जो लगभग ४६५ रुपये माहवार पड़ता है। इस कोष का वहुत वड़ा हिस्सा इलाहावाद स्वदेशी प्रदर्शनी के मुनाफे से प्राप्त हुआ है। हमें सीधे जनता से कुछ ज्यादा नहीं मिला है—सिवाय इसके कि वम्वई की कुछ फर्मों ने दवाइयां और शल्यचिकित्सा के औज़ार प्रदान किये है, जिसका ज्यादातर

हिस्सा सरकार के हाथ में चला गया।अव हमारे सावन-स्रोत प्रायः खतम हो गये है। थोड़ा रुपया अगली स्वदेशी प्रदर्शनी से आ सकता है किन्तु ऐसा अस्तित्व वहुत संकटपूर्ण है और मै अस्पताल के लिए—कम से कम अगले दो साल के लिए कुछ इन्तजाम करना चाहता था। यह अच्छा काम कर रहा है और काफ़ी संकट के वीच भी इसने झण्डा ऊंचा रक्खा है।

क्या आप हमें यह सलाह देंगे कि हम इन सव तथ्यों को देते हुए सहायता के लिए सार्वजनिक अपील करे? मुझे भय है कि वहुत से लोग जो मदद करते, वर्तमान परिस्थिति में खुले तौर पर मदद करना पसन्द न करेंगे, यद्यपि अस्पताल का राजनीति से किसी तरह का सम्वन्व नही है। यदि सार्वजनिक अपील की जाय तो कौन करे? अस्पताल से सवसे अविक सम्वद्ध व्यक्ति तो मेरे चचेरे भाई मोहनलाल नेहरू है। कमला भी इसमें वहुत दिलचस्पी लेती रही है। स्थानीय समिति में कोई महत्व का आदमी नही है और तूफान तथा संकट के पिछले दो सालों में उनमें से कुछ तो अमली तौर पर अलग ही हो गये है।

मै यह वात भी वता दूं कि अस्पताल के खर्च का हिसाव लगाने में मैंने मकान के किराये को नही जोड़ा है। मकान का किराया जो पहिले ७५ रुपये मासिक था, अस्पताल के खर्च मे मेरी अपनी सहायता है।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

महात्मा गांधी
वर्धा

—अंग्रेजी। इलाहावाद, २७।१०।१९३३। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

३८. श्रीप्रकाश का पत्र : गांधीजी के नाम

[घटनाक्रम से जान पड़ता है कि यह पत्र १९३३ के अन्त या १९३४ के आरम्भ में लिखा गया होगा।—सम्पा०]

मेरे प्यारे वापू जी,

मुझे आपका प्यारा पोस्टकार्ड मिला है और मै केवल प्रार्थना कर सकता हूं

कि मैं आपके स्नेह, विश्वास और आशा के योग्य बनूं। इससे अधिक मै कुछ कहने का साहस नही कर सकता।

१. मुझे बाल जी भाई देसाई का एक पोस्टकार्ड मिला था कि आप हमारे जिले के एक गांव में हुए मार्कण्डेय मन्दिर सत्याग्रह का ब्यौरा चाहते है। मैं नही जानता कि आपको वह स्थान याद आयेगा, किन्तु मैं आपको याद दिलाना चाहूंगा कि आपने जब अपनी इकसठवी वर्षगांठ के दिन दूसरे तट पर एक सभा में बोलने के लिए गंगा पार किया था तब आप उस स्थान में स्थित मन्दिर के पास से गुजर चुके है और अपने १९२९ के उस दौरे में लौटती बार गाज़ीपुर जाते हुए आपने पुनः गोमती पार किया था।

२. ज्यों ही मुझे बाल जी भाई का पत्र मिला मैंने तफतीश शुरू कर दी। कल ही मुझे आखरी दस्तावेज मिले है। विलम्ब का यही कारण है, जिसके लिए मुझे बड़ा दुःख है।

नीचे मैं इस मामले के सब तथ्य, जहां तक मैं उन्हे एकत्र कर सका, देता हूं। मै कह सकता हूं कि मैंने इस काम को उतनी ही निःस्वार्थ और निष्पक्ष भावना से किया है जितना मेरे जैसे किसी भी सामान्य मानव के लिए सम्भव है। मैंने सरकारी और कांग्रेस दोनों स्रोतों से सूचनाएं प्राप्त की है। मेरा विश्वास है कि सूचना सही है।

३. आपके मई १९३३ के उपवास की घोषणा के तुरन्त बाद ही मार्कण्डेय मन्दिर के, जो स्वयं कैथी गाव में, बनारस से लगभग १७ मील की दूरी पर है, निकटवर्ती गांवों के कांग्रेसी तथा हरिजन कार्यकर्त्ताओं ने सार्वजनिक सभाएं करके हरिजनो को मन्दिरों में प्रवेश दिलाने के औचित्य और उनकी सामान्य स्थिति सुधारने के बारे में जनता को प्रशिक्षित करना तथा उसका मत-संग्रह करना शुरू किया।

४. इन सार्वजनिक सभाओं में हुए अनुभव के परिणाम-स्वरूप कार्यकर्त्ताओं ने ईमानदारी से समझा कि सामान्यतः जनता हरिजनों के मन्दिरप्रवेश को पसन्द करती है और वह मार्कण्डेय मन्दिर में भी उनके प्रवेश का समर्थन करेगी। इसलिए उन्होंने एक तारीख तय की और उस दिन पं० रामसूरत मिश्र, श्री त्रिभुवननारायण सिंह, श्री आद्याप्रसाद सिंह जैसे प्रमुख स्थानीय कांग्रेसियों के नेतृत्व में, कुछ हरिजन मित्रों के साथ १५ कार्यकर्त्ता इस कामना के साथ मार्कण्डेय मन्दिर तक गये कि यदि अनुमति मिल जाय तो उसमें प्रवेश करें। उन्होंने सब सम्बद्ध जनों को विश्वास दिलाया कि वे बलात् मन्दिर में प्रवेश न करेंगे और तभी प्रवेश करेंगे जब जनता उनका समर्थन करेगी। रात को उन्होने मन्दिर के पास डेरा डाला और दूसरे दिन प्रातःकाल गंगा स्नान करने के बाद, वे मन्दिर की ओर रवाना हुए।

५. मन्दिर में कुछ गुसाई पुजारी का काम करते हैं। पुजारियों ने जब लोगों को उस ओर आते देखा तो मुख्य मन्दिर-द्वार को बन्द कर दिया। पर उन्होंने एक पृष्ठ द्वार को खुला रखा जिससे चुने हुए यात्रियों को प्रवेश करने दिया जाता था और जिनसे ये गुसाई सामान्य पूजासामग्री और दक्षिणा ग्रहण करते थे। आपके लिए यह जानना मनोरंजक होगा कि ये गुसाई जन्म या जाति से ब्राह्मण नही हैं किन्तु कुछ विचित्र परिस्थितियों के कारण ये मन्दिर के पुजारी बन गये थे। कुछ साल पहिले उनके और निकटवर्ती ठाकुरों (क्षत्रिय जमींदारों) के बीच, गुसाइयों द्वारा बहुत दिनों से परम्परागत रूप से की जानेवाली सेवाओं के मामले को लेकर झगड़ा खड़ा हो गया था। उस समय भारत धर्म-महामण्डल ने निर्णय दिया था कि गुसाइयो को यज्ञोपवीत धारण करने का भी अधिकार नही है। पर यह तो एक बात हुई।

६. जब मन्दिर बन्द हो गया तो स्वयंसेवकों का दल, अपने हरिजन मित्रों के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। उन्होने बार-बार गुसाइयों से अनुरोध किया कि वे द्वार खोल दें। उन्होने उन्हे यह भी विश्वास दिलाया कि वे बलात् मन्दिर में प्रवेश न करेगे। उन्होने प्रार्थना की कि जिन्हें अधिकार है उन्हे दर्शन से वञ्चित न किया जाना चाहिए। जब गुसाइयों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया, तब विरोध-स्वरूप उन्होंने भोजन त्याग दिया। यह सारी घटना ७ जुलाई, १९३३ को हुई।

जब लोग उनके पास गये और उनसे भोजन करने को कहा तो उन्होने उत्तर दिया कि वे अनशन नही कर रहे हैं; वे चाहते है कि सामान्य जनता की पंचायत यहां बैठे और यदि पंचायत उनके विरुद्ध निर्णय देगी तो भी वे उपवास भंग कर देगे।

७. ८ जुलाई, १९३३ को गुसाइयों की ओर से जिला मजिस्ट्रेट, बनारस को एक प्रार्थनापत्र दिया गया जिसमें स्वयंसेवकों की शिकायत थी और उनके विरुद्ध कानूनी संरक्षण की मांग की गई थी। जब जिले के सदर स्थान मे मजिस्ट्रेटी जांच-पड़ताल चल रही थी, तभी चूंकि शान्ति भंग होने का खतरा था, ९ जुलाई के दिन तीसरे पहर मार्कण्डेय मन्दिर मे एक पंचायत हुई जिसमें झगड़ा तय हो गया। स्थानीय ठाकुरों और गुसाइयो के सामने, सब सम्बन्धित लोगों की स्वीकृति से, समझौता हो गया। इसलिए स्वयसेवकों के उपवास का भी अन्त हो गया।

यहां मै यह जिक्र कर दूं कि, इसके कुछ समय पहिले से गुसाई चाह रहे थे कि वे मन्दिर के महन्त के रूप में कार्य करें। ठाकुरो का विरोध था कि उनकी वैसी कोई स्थिति नही है। मन्दिर उनके पुरखो का है। गोसाइयों और ठाकुरों के बीच अच्छी भावना न थी।

८. ऊपर जिस समझौते का उल्लेख किया गया है वह यह था कि हरिजनो

को एक स्थान तक, जहां से शिवलिंग दिखाई पड़ता है, जाने का अधिकार दिया गया। उसके अनुसार शिवशंकर सिंह, एक भूतपूर्व एम० एल० सी०, जिनमें कांग्रेस के प्रति बिल्कुल सहानुभूति नहीं है, सबकी उपस्थिति में, स्वयंसेवकों एवं हरिजनों के साथ मन्दिर के अन्दर नियत स्थान तक गये, और लौट आये।

९. अगला दिन १० जुलाई श्रावणमास का सोमवार था, जब इस मन्दिर पर (दर्शनार्थियों की) बड़ी भीड़ होती है। उस दिन सवेरे वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ वालों ने जिला मजिस्ट्रेट को सूचित किया कि मन्दिर के पास दंगा हो जाने की सम्भावना है। जिला मजिस्ट्रेट ने एस० डी० ओ० (सब-डिवीजनल अफसर) को भेजा। वह गये और उन्होंने वहां सब कुछ शान्त पाया। तेईस गुसाइयों ने उन्हें एक वक्तव्य दिया कि हरिजनों का प्रवेश परस्पर रजामन्दी से हुआ है और वे एक विशेष स्थान तक आये और दर्शन करके लौट गये।

१०. झूठी अफवाहें फैल गई कि हरिजनों ने जबर्दस्ती मन्दिर में प्रवेश किया है और उन्होंने शिवलिंग का स्पर्श तक किया है। १२ जुलाई को भारत धर्म महा-मण्डल की ओर से स्वामी लालनाथ, जिन्हें मेरा विश्वास है, आप खूब जानते हैं, तथा दूसरे लोग वहां पहुंचे और शुद्धि के हेतु मन्दिर को दो दिनों के लिए बन्द कर दिया। मन्दिर फिर से १४ जुलाई को खोला गया।

११. इसके बाद ६७ स्थानीय ठाकुरों ने अदालत से प्रार्थना की कि बिना किसी औचित्य के दो बार मन्दिर को बन्द कर देने और इस प्रकार उस पर अपना स्वामित्व जिसके वे पात्र नहीं है, स्थापित करने के कारण, शान्ति-भंग होने का खतरा है इसलिए गुसाइयों के खिलाफ़ फौजदारी कानून की ११७ धारा के अनुसार मामला चलाया जाय। इस मुकदमे के सिलसिले में सम्बन्धित मजिस्ट्रेट ने गुसाइयों से जमानत मांगी जिसे वे समय पर न दे पाये। उन्हें चन्द दिनों तक जेल में रहना पड़ा। किन्तु वस्तुतः इसका नामांकित सत्याग्रह से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि यह घटना सत्याग्रह के बहुत दिनों बाद हुई और इसका कोई सम्बन्ध मन्दिर-प्रवेश से नहीं था, बल्कि वह गुसाइयों और ठाकुरों के बीच शान्ति-भंग न होने देने के लिए की गई कानूनी कार्रवाई घटित हुई थी।

१२. यह मुकदमा परस्पर समझौते में खत्म हुआ जिसमें निम्नलिखित बातें तय हो गई।

१. (मन्दिर के) भवन व्यक्तिगत जनों द्वारा निर्मित किये गये थे किन्तु वे थे जनता के लिए, २. पहिले की भांति कैथी गांव के सनातनी ठाकुर मन्दिर का सब प्रबन्ध देखेंगे, ३. केवल गुसाइयों को पूजा करने और दान-दक्षिणा लेने का अधिकार है, ४. गुसाई अपनी पारी में पूजा और चढ़ावा लेने का अधिकार केवल

गुसाईं को ही हस्तान्तरित कर सकते है, किसी अजनवी को नही। ५. गुसाइयों को मन्दिर स्वच्छ रखना पड़ेगा। ६. मन्दिर में चढ़ाये वर्तनों को एक निश्चित संख्या तक मन्दिर में ही अच्छी हालत में रखना पड़ेगा; वे उन्हे निजी व्यवहार में तभी ला सकते है जव वे निश्चित संख्या के अतिरिक्त हों, ७. गुसाईं मन्दिर के आस-पास के किसी भवन को अपने आवास के लिए नही इस्तेमाल कर सकते, क्योंकि वे यात्रियों की सुविधा के लिए है।

१३. इस समझौते के लगभग दो महीने वाद गुसाइयों ने दीवानी अदालत में मामला चलाया कि उन्हे मन्दिर के चतुर्दिक की भूमि पर कव्जा दिलाया जाय। मेले के समय स्थानीय जमीदार इस भूमि पर लगी दुकानों से पैसा वसूल करते हैं। गुसाइयो का दावा है कि वे इस आय को लेने के अधिकारी नही हैं। हाल मे एक खटिक-द्वारा कुछ गुसाइयो के खिलाफ फौजदारी मुकदमा चलाया गया है, जिसमें कहा गया है कि उस (खटिक) ने ठाकुरो से दो पेड़ पट्टे पर ले रखे है जिसके फल गुसाई चुरा लेते है। ये पेड़ उसी झगड़ेवाली जमीन पर हैं।

ये मुकदमे चल रहे है।

१४. मामला अव तक यही है। उस एक प्रवेश के वाद हरिजन मन्दिर में नही जाते और यह वात स्पष्ट नही है कि जो समझौता उस समय हुआ था उसके द्वारा सिर्फ एक प्रवेश की या हरिजनों को सदा के लिए प्रवेश की अनुमति दी गई थी।

१५. इतनी ही वात है जिसका मै पता लगा सका हूं। यदि आप मुझे किसी विशेप भाग के सम्वन्ध मे कोई और जांच-पड़ताल करने को कहेंगे तो वैसा करूंगा।

...मै सदा आपकी सेवा के लिए प्रस्तुत हू। मैं आशा करता हूं कि आपका स्वास्थ्य अच्छा है और वर्तमान कार्य का भार आपके लिए वहुत ज्यादा नही सावित हो रहा है।...

आपका कृपापात्र
श्रीप्रकाश

३९. चन्द्र त्यागी का पत्र : गांधीजी के नाम

ॐ

[टिप्पणी—केवल ऊपर के ॐ को छोड़ सारा पत्र उर्दू मे है।—सम्पा०]

१६ मार्च सन् ३४

प्यारे वापू,

वगैर नमक मिठाई घी हमेशा अच्छा लगता है।

आपकी इजाजत से जेल में दूध लेने लगा। लेकिन अभी तक इस्तेमाल कर रहा हूं। इससे मेरे दिल और सब्र में कभी-कभी खलल मालूम हुआ है। अगर यह जरूरी न हो तो न लेने की इजाजत फर्माई जाय।

आपका
चन्द्र त्यागी

बापू जी ने उर्दू अक्षरों में ही उस पर लिख दिया है:—

"तुम्हारे उर्दू हरफ़ पढ़कर मैं हैरान होता हूं। दूध न छोडा जाय, लेकिन मिठाई घी छोड़ दिया जाय। बापू के आशीर्वाद।"

—हिन्दी। १६।३।१९३४। जी० एन० ३२६५ की फोटो-नकल से।]

४०. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

[कमला नेहरू के अत्यधिक अस्वस्थ होने तथा उनकी दशा खराब होने के कारण जवाहरलाल जी दस दिन के लिए अकस्मात् जेल से रिहा कर दिये गये थे। जेल से बाहर जाने के बाद उन्होंने अपने अन्तर्द्वन्द्व के विषय में गांधीजी को निम्नलिखित लम्बा पत्र लिखा था। इसमें जिस स्वाराज भवन का उल्लेख है वह नेहरू परिवार का निवास था, जिसे पिता की मृत्यु के बाद, उनकी इच्छानुसार जवाहरलाल जी ने राष्ट्र को अर्पित कर दिया था तथा उसका एक ट्रस्ट बना दिया था। —सम्पा०]

आनन्द-भवन,
इलाहाबाद
१३ अगस्त, १९३४

प्रिय बापू,

छः महीने बिल्कुल अकेले रहने और कुछ भी न करने के बाद पिछले २७ घण्टों की चिन्ता, उत्तेजना और भाग-दौड़ में मैं खो-सा गया हूं। मैं बहुत थकान महसूस कर रहा हूं। अर्धनिशीथ में यह पत्र आपको लिख रहा हूं। सारे दिन लोगों की भीड़ आती रही है। मौका मिला तो आपको फिर लिखूंगा, किन्तु कई महीने तक ऐसा कर भी सकूंगा, इसमें मुझे सन्देह है। इसलिए मैं थोड़े में बताना चाहूंगा कि पिछले कोई पांच महीनों में कांग्रेस के जो महत् निर्णय हुए हैं, उनके प्रति मेरी क्या प्रतिक्रिया रही है। मेरी जानकारी के साधन, स्वभावतः, बहुत सीमित रहे हैं

किन्तु मैं समझता हूं कि वे इतने पर्याप्त है कि मै घटनाओं की सामान्य धारा का वहुत कुछ सही अनुमान कर सकता हूं।

जब मैने सुना कि आपने सत्याग्रह-आन्दोलन वन्द कर दिया है, तो मुझे दुःख हुआ। पहिले छोटी-सी घोषणा मुझे मिली। उसके वहुत वाद मैने आपका वयान पढ़ा और उससे मुझे इतना जवर्दस्त धक्का लगा, जितना शायद पहिले कभी नही लगा होगा। सत्याग्रह-आन्दोलन को वन्द कर देने पर मै अपने मन को तैयार कर सकता था, किन्तु ऐसा करने के जो कारण आपने वताये और आगे के काम के लिए जो सुझाव आपने दिये, उसने मुझे हैरत में डाल दिया। मैने अकस्मात् और जोरों के साथ, महसूस किया, मानों मेरे भीतर की कोई चीज टूट गई, ऐसा कोई वन्धन टूट गया, जिसकी मेरे लिए वड़ी कीमत थी। मैने अपने को इस लम्वी-चौड़ी दुनिया में भयानक रूप से अकेला महसूस किया। मैने प्रायः वचपन से ही अपने को सदैव कुछ अकेला ही अनुभव किया है। किन्तु कुछ लगाव मुझे शक्ति देते रहे है, कुछ मजवूत सहारे मुझे थामे रहे है। वह अकेलापन कभी गया तो नही किन्तु कम हो गया था। परन्तु अब मैने अपने को विल्कुल अकेला समझा, ऐसा जैसे किसी मरुस्थलीय द्वीप पर पटक दिया गया हूं।

लोगो में परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालने की प्रवल शक्ति होती है और मैने भी कुछ सीमा तक नई परिस्थिति के अनुसार अपने को वना लिया। इस विषय मे मेरी भावनाओं की तीव्रता, जो वहुत-कुछ शारीरिक पीड़ा वन गई थी, ठण्डी पड़ गई; उसकी धार भोथरी हो गई। किन्तु धक्के-पर-धक्के लगने और एक-के-वाद-एक घटनाओं के होने से वह तेज हो गई और मेरे मन एवं भावनाओं को उसने चैन और आराम न लेने दिया। फिर मुझे आध्यात्मिक एकाकीपन अनुभव हुआ, मानो मैने केवल अपने सामने से गुजरती भीड़ से, वल्कि जिन्हें मैं अपना प्यारा और नजदीकी साथी मानता था, उनसे भी विल्कुल अजनवी हूं, और उनके साथ मेरा कोई मेल नही है। इस वार का मेरा जेल में रहना मेरे तन्तुओं के लिए जितना अधिक कष्टप्रद रहा, उतना पहिले किसी वार का जेल-गमन नही हुआ था। मैं करीव-करीव यह चाहने लगा कि सभी समाचारपत्र मुझसे दूर रक्खे जायं, जिससे कि मै इन वार-वार लगनेवाले धक्कों से वच सकूं।

शरीर से मै ठीक ही रहा। जेल में मैं सदैव ऐसा ही रहता हूं। मेरे शरीर ने मेरा अच्छा साथ दिया है और वह वहुत दुर्व्यवहार तथा वोझ सह सकता है। यह सोचने की ढिटाई करके कि शायद मैं उस भूमि के लिए, जिससे कि मेरा भाग्य वंधा हुआ है, अव भी कुछ विशेष कार्य कर सकूं, मैं अपने शरीर की सदा अच्छी तरह देखभाल करता रहा हूं।

किन्तु मैंने प्रायः यह सोचा है कि कहीं गोल छिद्र में चौकोर खूंटी के जैसा तो नहीं हूं, या अहंकार के बुलबुले के समान तो मैं नहीं हूं, जो मेरा तिरस्कार करते हुए समुद्र में जहां-तहां उठ रहे थे। किन्तु घमण्ड और गर्व की विजय हुई और उस बौद्धिक यन्त्र ने, जो मेरे भीतर चलता रहता है, हार मानने से इन्कार कर दिया। यदि वे आदर्श, जिन्होंने मुझे काम करने को उकसाया और तूफानी ऋतु में भी उमंग में रक्खा, ठीक थे—और उनके ठीक होने का विश्वास मुझमें सदैव बढ़ता रहा है—तो उनकी अवश्य विजय होगी, चाहे हमारी पीढ़ी उस विजय को देखने के लिए जीवित न रहे।

किन्तु इस साल के इन लम्बे और थकानेवाले महीनों में उन आदर्शों का क्या हुआ, जबकि मैं एक मौन और दूर के दर्शक की तरह, अपनी लाचारी पर बेचैन था? रुकावटों का आगमन और अल्पकालिक पराजय सभी बड़े संघर्षों में बहुत सामान्य बातें हैं। उनसे दुःख तो होता है, किन्तु आदमी जल्दी ही संभल जाता है। यदि उन आदर्शों की ज्योति को फीकी होने से बचाया जाय और सिद्धान्तों का लंगर सुदृढ़ रहे तो यह संभाल शीघ्र चरितार्थ हो जाती है। किन्तु मैंने जो देखा वह रुकावट और हार नही थी, बल्कि आध्यात्मिक हार थी, जो सबसे-अधिक भयंकर है। ऐसा न समझिए कि मेरा संकेत कौंसिल-प्रवेश के सवाल की ओर है। उसे मैं बहुत महत्व नही देता। किन्हीं परिस्थितियों में इन व्यवस्थापिका सभाओं में स्वयं जाने की कल्पना कर सकता हूं। किन्तु मैं चाहे व्यवस्थापिका-सभा में प्रवेश करके काम करूं चाहे बाहर से, मैं केवल एक क्रान्तिकारी के रूप मे काम कर सकता हूं, जिसका अभिप्राय ऐसे इंसान से है, जो मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहता है, फिर वह चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक क्योंकि मुझे विश्वास हो गया है कि किन्ही अन्य प्रकार के परिवर्तनों से हिन्दुस्तान और दुनिया को न शान्ति मिल सकती है, न सन्तोष।

ऐसा मैंने सोचा। प्रकट है कि जो नेता बाहर काम कर रहे थे, वे कुछ और ही ढंग से सोचते थे। उन्होंने ऐसे युग की भाषा बोलना आरम्भ किया, जो बीत चुका था और जो असहयोग तथा सत्याग्रह के हम पर चढ़े नशे से पहिले का था। कभी-कभी वे उन्हीं शब्दों और मुहाविरों का इस्तेमाल करते थे, किन्तु वे निष्प्राण और अर्थहीन होते थे। कांग्रेस के मुखिया अचानक वे ही लोग बन बैठे, जिन्होंने हमारे आगे रोड़े अटकाये थे, हमें रोका था, संघर्ष से दूर रक्खा था, बल्कि हमारी बड़ी आवश्यकता के समय विरोधी दल के साथ सहयोग किया था। अब ये हमारे स्वतन्त्रता-मन्दिर के बड़े पुजारी बन बैठे, और बहुत-से वीर सिपाही, जिन्होंने युद्ध की गर्मी और धूल में बोझ को कन्धा लगाया था, मन्दिर के अहाते में घुस भी नहीं

पाते। वे और उन-जैसे लोग अछूत और पास न आने लायक हो गये थे और वे यदि अपनी आवाज वुलन्द करते और उन नये पुजारियों की टीका-टिप्पणी करते तो चीख कर उन्हें वैठा दिया जाता और कहा जाता कि वे लक्ष्य के प्रति विद्रोही हैं, क्योकि वे मन्दिर के पवित्र अहाते की एकरसता को भंग करते हैं।

और इस तरह भारतीय स्वतन्त्रता का झण्डा वड़े आडम्वर और घटाटोप के साथ उन्हें सौप दिया गया, जिन्होने दरअसल दुश्मन के कहने पर उसे तव नीचे झुकाया था, जवकि हमारा राष्ट्रीय संग्राम वड़े जोरों पर था,—उन लोगों को, जिन्होने घर के मुंडेरों पर चढ़कर यह एलान किया था कि वे राजनीति से नाता तोड़ वैठे है—क्योंकि राजनीति उस समय खतरे से खाली नही थी—कि जो अव कूद कर आगे की पक्ति में आ गये थे क्योंकि अव राजनीति में खतरा नही था।

और उनके सामने आदर्श क्या थे, जव कि वे कांग्रेस और राष्ट्र की ओर से वोल रहे थे? आदर्श के नाम पर उनके यहां एक वड़ी ही वेहिसाव हालत थी, जिसमें असली मुद्दों से कतराना होता, कांग्रेस के राजनीतिक उद्देश्यों तक को, जहां तक उनकी हिम्मत पड़ती, नरम करना होता, प्रत्येक निहित स्वार्थ के प्रति कोमल चिन्ता प्रकट करना होता, स्वतन्त्रता के माने हुए वहुत से दुश्मनों के आगे झुकना होता, किन्तु कांग्रेसी सेना के प्राणोत्सर्ग करने वाले अगुआ सिपाहियों के सामने साहस और मर्दानगी दिखाना होता। क्या कांग्रेस तेजी से गिरकर कलकत्ता कार्पोरेशन के पिछले कई सालों के लज्जाजनक दृश्य का एक वड़ा संस्करण नही वनती जा रही है? वंगाल-कांग्रेस का शक्तिशाली भाग क्या आज 'श्री नलिनीरंजन[1] सरकार संवर्धन समाज' नही कहा जा सकता? और यह वही सज्जन है, जो सरकारी कर्मचारियो, गृह-सदस्यों और इसी तरह के लोगों को दावतें देकर प्रसन्न हुआ करते थे, जवकि हममे से वहुत से जेलों में थे, और सविनय अवज्ञा आन्दोलन धूमधाम से चलता हुआ समझा जाता था। क्या दूसरे भाग को कुछ वैसे ही ऊंचे उद्देश्य के संवर्धन के लिए एक वैसा ही समाज नही माना जा सकता? किन्तु दोष वगाल तक सीमित नही है। करीव-करीव सभी जगह ऐसी ही दृष्टि है। कांग्रेस ऊपर से नीचे तक दलवन्दी मे पड़ गई है और अवसरवादिता का वोलवाला है।

इस परिस्थिति की सीधी जिम्मेदारी कार्यसमिति पर नही है। फिर भी कांग्रेस-समिति को यह जिम्मेदारी उठानी चाहिए। नेताओं और उनकी नीति के आधार पर ही अनुयायी अपना कार्यक्रम वनाते है। अनुयायियों पर दोष डालना न

१. कलकत्ता के एक वड़े व्यवसायी और नेता।

उचित है, न ठीक है। प्रत्येक भाषा में कोई-न-कोई कहावत है, जिसमें काम करने वाले अपने औजारों को दोष देते हैं। कार्य-समिति ने जानबूझ कर हमारे आदर्शों और ध्येयों की परिभाषा को गोलमोल रखने को बढ़ावा दिया है और इसका नतीजा यही नही होगा कि गड़बड़ फैले, बल्कि यह भी कि प्रतिक्रिया के अवसरों पर गिरावट होगी, और ढोल पीटनेवाले और प्रतिक्रियावादी आगे आवेंगे।

मेरा संकेत विशेषतः राजनीतिक लक्ष्यों की ओर है, जो कि कांग्रेस का विशेष क्षेत्र है। मैं समझता हूं कि बहुत पहिले ही कांग्रेस को सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर साफ़-साफ़ ध्यान देना चाहिए था, किन्तु मैं यह भी मानता हूं कि इन मुद्दों की शिक्षा के लिए समय की आवश्यकता है और हो सकता है कि कुल मिलाकर कांग्रेस फिलहाल उतनी आगे न जा सके, जितनी मैं चाहूंगा कि वह जाय। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि कार्यसमिति किसी विषय को जानती हो, चाहे न जानती हो, वह सदा उन लोगों पर इलजाम लगाने और उन्हें निकाल बाहर करने के लिए तैयार रहती है, जिन्होंने इन विषयों का खास अध्ययन किया है और जो अपने कुछ विचार रखते हैं। उन विचारों को समझने की कोई कोशिश नही की जाती, जिनके बारे में यह कुख्यात है कि ये आज की दुनिया के कुछ सबसे योग्य और सबसे ज्यादा त्यागी लोगों के विचार है। ये विचार सही हों या गलत, किन्तु इसके पहिले कि कार्यसमिति उनकी निन्दा करे, उसे कम-से-कम उन्हें समझ तो लेना चाहिए। एक सधे-सधाये तर्क का उत्तर भावुकताभरी अपीलों से नही दिया जा सकता, न इस प्रकार के हल्की उक्तियों से कि हिन्दुस्तान में परिस्थितिया कुछ दूसरे प्रकार की है और जो आर्थिक नियम दूसरी जगह लागू होते है, वे हमने यहां चालू नही किये हैं। कार्य-समिति के इस विषय के प्रस्ताव मे समाजवाद की मोटी बातों की इतनी आश्चर्य-पूर्ण अज्ञानता दिखाई दी कि उसे पढ़कर दुःख हुआ और यह जानकर भी कि उसे हिन्दुस्तान से बाहर भी लोग पढ़ेंगे। ऐसा जान पड़ता है कि समिति की सबसे बड़ी इच्छा यह रही है कि निहित स्वार्थो को, जैसे भी हो, आश्वासन दिलाये, फिर ऐसा करने में भले ही उसका वक्तव्य बकवास ही क्यों न जान पड़े।

समाजवाद विषय के व्यवहार का एक अजीब ढंग यह है कि इस शब्द को, जिसका अंग्रेजी भाषा में एक निश्चित अर्थ है, एक बिल्कुल ही दूसरा अर्थ दिया जाय। यदि लोग शब्दों को अपने-अपने अलग अर्थ देने लगें तो विचारों के आदान-प्रदान में मदद नहीं मिलती। कोई अपने को इंजिन-चालक कहे और फिर यह जोड़ दे कि उसका इंजिन लकड़ी का है और उसे बैल खीचते है तो वह इंजिन-चालक शब्द का दुरुपयोग करता है।

यह पत्र आशा से अधिक लम्बा हो गया है और अब रात भी काफ़ी हो गई है।

शायद मैंने जो कुछ लिखा है, एक उलझे हुए ढंग से और बिना किसी तरतीब के लिखा है, क्योंकि मेरा दिमाग थका हुआ है। फिर भी उसमें मेरे मन की एक तस्वीर मिलेगी। पिछले कुछ महीने मेरे लिए बड़ी तकलीफ़ के रहे हैं और मैं समझता हू कि बहुत से और लोगो के लिए भी वे वैसे ही रहे होंगे। कभी-कभी मैंने महसूस किया है कि आज की दुनिया मे, और शायद पुराने जमाने की दुनिया मे भी, यह प्रायः पसन्द किया गया है कि कुछ लोगों के दिलों को तोड़ना, औरों की जेबों को छूने की अपेक्षा अच्छा है। दिलो, दिमागो, देहों, मानवीय न्याय और सम्मान की तुलना में सचमुच जेबों की कीमत और कद्र ज्यादा बढ़ रही है।

एक और विषय है, जिसका जिक्र मैं करना चाहूगा: स्वराज-भवन-ट्रस्ट। मालूम हुआ है कि कार्यसमिति ने हाल मे स्वराज-भवन की देखभाल के सवाल पर विचार किया था और इस नतीजे पर पहुंची थी कि यह उनकी जिम्मेदारी नही है। उसने पहिले, लगभग तीन साल हुए, इसके लिए एक ग्राण्ट देना मंजूर किया था किन्तु वह अभी तक मिली नही है, यद्यपि उसके आधार पर खर्चे तो हो गये। अब फिर से नई ग्राण्ट मंजूर हुई है। यह शायद कुछ महीनों के लिए काफ़ी होगी। भविष्य के लिए, कार्यसमिति, जाहिरा तौर पर, चिन्तित रही है कि मकान और साथ की जमीन पर होनेवाले खर्च का बोझ उसे न उठाना पड़े। यह बोझ सौ रुपये महीने का है, जिसमें टैक्स इत्यादि शामिल हैं। मै समझता हूं कि ट्रस्टियो को भी इस बोझ से कुछ डर हो रहा था और उन्होने सुझाव दिया कि मकान के कुछ हिस्से को मामूली तौर पर किराये पर उठा दिया जाय, जिसमें कि उसकी देख-रेख और सार-संभाल का खर्च निकाला जा सके। एक दूसरा सुझाव यह था कि इस काम के लिए जमीन का कुछ हिस्सा बेच दिया जाय। इन सुझावों की बात सुनकर मुझे हैरत हुई। क्योंकि इनमें से कुछ मुझे ट्रस्ट की शर्तों के विरुद्ध लगे और उसकी भावना के तो सभी विरुद्ध थे। ट्रस्ट के एक सदस्य की हैसियत से मेरा इस विषय मे एक ही मत है, बल्कि मैं कहना चाहूंगा कि ट्रस्ट की जायदाद के इस दुरुपयोग के विरुद्ध मुझे कठोर आपत्ति है। मेरे पिता की इच्छाओं के इस तरह निरादर की कल्पना ही मुझे सह्य नहीं है। ट्रस्ट न केवल उनकी इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि एक प्रकार से उनकी स्मृति की भी। और उनकी इच्छाएं एवं स्मृतियां मुझे सौ रुपये महीने से ज्यादा प्यारी है। इसलिए मैं कार्यसमिति और ट्रस्टियों को यह विश्वास दिलाना चाहूगा कि इस जायदाद की देखरेख के लिए जितने धन की आवश्यकता है उसकी चिन्ता उन्हें करने की जरूरत नही। कार्यसमिति ने जो रकम कुछ महीने के लिए मंजूर की है उसके समाप्त होते ही मैं उसकी देख-रेख की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लूंगा और कार्यसमिति को आगे ग्राण्ट देने की

जरूरत न होगी। मैं ट्रस्टियों से यह अनुरोध करूंगा कि इस विषय में वे मेरी भावनाओं का आदर करेंगे और जायदाद के न तो टुकड़े करेंगे और न उसे किराये पर उठावेंगे। मैं स्वराज-भवन जायदाद की देखरेख तबतक करूंगा जबतक कि वह किसी सत्कार्य के उपयोग में नहीं आती।

मेरे पास आंकड़े नही है किन्तु मेरा विश्वास है कि इस समय तक भी स्वराज-भवन, किसी अर्थ में, पैसे के खयाल से कार्यसमिति पर बोझ नही रहा है। जो ग्राण्ट उसके लिए दी गई है, वह ए० आई० सी० सी० के आफ़िस के लिए काम में आनेवाली जगह के उचित किराये से किसी कदर भी ज्यादा न होगी। यह किराया छोटे और सस्ते मकान में दफ्तर के चले जाने से कम हो सकता था। साथ ही यह भी है कि पहिले मद्रास में एक मकान के केवल ऊपर तल्ले के लिए ए० आई० सी० सी० ने १५० रुपये महीना किराया दिया है।

शायद इस पत्र के कुछ अंशों से आपको तकलीफ़ पहुंचे, किन्तु आप यह भी न पसन्द करते कि मैं अपने दिल की बात आपसे छिपाऊं।

सप्रेम आपका,
जवाहर

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, १३।८।१९३४। 'ए बंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

४१. हीरालाल शर्मा का पत्र : गांधीजी के नाम

खुर्जा
ता० १५-१२-३४

पूज्य बापू जी,

कल १४-१२-३४ का लिखा हुआ पत्र मेरी भीरुता की निशानी समझा जाय। आपके पत्रों से मुझे लगा है कि मै आपसे बहुत दूर हूं अतः मेरे हृदय की आवाज आप तक पहुंच नही पाती। 'पुत्र, पिता के अधिक समीप आकर अपने हृदय की आवाज सुना सके' केवल इस हेतु मैने कल सुबह १६ ता० से १४ दिन का उपवास आत्म-शुद्धि के लिए करना निश्चय किया है। यह मेरा पहला दण्ड समझा जाय। सम्भव है, आगे आवश्यकतानुसार और भी ऐसे दण्ड हों। यह मेरा उपवास आध्यात्मिक है। केवल आपको ही सूचना दी है। आप इसे अपने तक ही सीमित

रक्खें। मुझे इस अग्नि-परीक्षा से आशा है कि (१) चि० कृष्णा अच्छी होगी (२) आश्रम के बारे में मेरी विनम्र, सरल और सीधी प्रार्थना पर आप विचार करेंगे तथा (३) पश्चिमी देशों में जाने का मेरा असल अभिप्राय जान पायेंगे। ईश्वर मेरी सहायता करे, यही प्रार्थना है। आपके कागजात मिले क्या? 'हरिजन' का नोटिस क्या दूसरे अखबारों में छपा है? रामदास भाई का क्या हाल है?

आपका आज्ञाकारी पुत्र,
शर्मा का प्रणाम

—हिन्दी। खुर्जा, १५।१२।१९३४। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]

४२. अवधेशदत्त का पत्र : गांधीजी के नाम

पूज्य बापू जी,

१. मुझे दो तीन आवश्यक प्रश्न पूछने हैं। यदि आज्ञा हो तो अभी सेवा में उपस्थित करूं, अथवा इन्दौर से लौटने के पश्चात्।

आपके इतने अधिक कार्य तथा मौन को देखकर ही अभी तक इन प्रश्नों को छिपाये बैठा हूं।

२. क्या मैं आशा कर सकता हूं कि मुझे आपके साथ किसी भी सेवाकार्य-वश चलने का अवसर मिलेगा? यदि ऐसा सम्भव हुआ तो मेरे लिए परम सौभाग्य की बात होगी।

दयापात्र
अवधेश अवस्थी
(वर्धा)
१६-४-३५

टिप्पणी—इस पर गांधी जी ने लिखा है—"मौका आने पर हो सकता है।"

—हिन्दी। वर्धा, १६।४।३५। अवधेशदत्त अवस्थी के पत्र (जी० एन० ३२२०) की फोटो-नकल से।]

४३. अवधेशदत्त का पत्र : गांधीजी के नाम

॥ ओ३म् ॥

पूज्य बापू जी,

१. किसी आदर्श गांव के लिए सफाई तथा आटा, चावल, गुड़, तेल आदि खाने-पीने के सुधारों के अतिरिक्त और कौन कौन सी बातें आवश्यक है ?

२. यदि मुझे ठीक पता हो कि माता-पिता आदि सम्बन्धी केवल मोह के कारण ही मुझे किसी सर्वहितकारी कार्य में सम्मिलित होने से रोकते है तो क्या मुझको उनकी इस आज्ञा को मानकर बैठ रहना चाहिए ?

३. अपने गुरुजनों (माता, पिता, गुरु तथा शासक वर्ग) की ऐसी आज्ञा का मानना जिससे सत्य, अहिंसा आदि व्रतों में से किसी एक व्रत का विरोध पाया जाता हो, ठीक होगा अथवा नही ?

४. आर्य समाज के १० नियमों में एक नियम यह भी है प्रत्येक हितकारी नियम-पालन में परतन्त्र रहना चाहिए। क्या यह ठीक है ? यदि ठीक है तो क्या इसका यह अर्थ नही होगा कि किसी समाज में कोई बुरी प्रथा है उसका मिटाना आवश्यक है लेकिन जबतक कुल समाज अथवा बहुमत मिटाने के पक्ष में न हो तबतक उस प्रथा को मानना ही चाहिए अर्थात् अकेले ही उस प्रथा का सक्रिय विरोध न करना चाहिए। हां, दूसरे प्रयत्न भले ही करता रहे।

नोट—एक साधारण व्यक्ति के लिए क्या उचित होगा, यही बताया जाय। महान् पुरुष जो भी करेगा उसके पीछे तो बहुमत हो ही जाता है।

५. आपने यह बताया है कि जेल के उसी नियम को न मानना चाहिए जो सचमुच स्वाभिमान के विरुद्ध हो। इसलिए यह बताया जाय कि जोड़े-जोड़े से गिनती देना, मार तथा गाली खाते हुए काम करते रहना, हथकड़ी पहिनकर बाल बनवाना, प्रार्थना न करना, टिकट लेकर परेड पर खड़े होना, परेड लगाना, सायं प्रातः अनुचित ढंग से तलाशी देना, इन सब बातों में सचमुच कौन बातें स्वाभिमान के विरुद्ध हैं। क्योंकि इन्ही बातों पर प्रायः जेलों में हर जगह झंझट पैदा होती थी।

६. आपने यह बतलाया है कि पत्नी का पालन करना और जहां तक वह सहधर्मिणी रह सकती है उसका साथ देना पति का धर्म है। सो यदि पत्नी सहधर्मिणी न हो, विरोधी विचारवाली हो तो पति का पत्नी के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिए और ठीक ऐसी ही दशा में पति के प्रति पत्नी का क्या होगा।

७. यदि मेरी मौजूदगी मे किसी मौके पर किसी भाई को (विशेपकर दरिद्र-नारायण तथा हरिजन) रियासत का पुलिस का सिपाही अथवा कोई मिथ्याभि-

मानी (विशेपकर सवर्ण) मनुष्य किसी कारण से गाली देने अथवा मारने लगे, जैसा कि प्राय: हुआ ही करता है, तो ऐसे मौके पर मेरा क्या कर्त्तव्य होगा ?

८. एक पागल हाथी (अथवा कुत्ता) जो किसी प्रकार कावू में नही आता है और अनेक जानें ले चुका है तो क्या उसको मार देना उचित न होगा ? यदि उचित है तो ऐसे ही स्वार्थ तथा काम-क्रोध आदि से पागल मनुष्यों के लिए ऐसी ही अथवा इससे मिलती-जुलती व्यवस्था (राज्य से) करना उचित ही होगा।

९. क्या स्त्री से पुरुष में प्राकृतिक रूप से कुछ श्रेष्ठता मानी जा सकती है ?

१०. प्राय: स्त्रियां पुरुषों की पोशाक पहिनने मे संकोच नही करती हैं जबकि पुरुष स्त्री की पोशाक पहिनना ग्लानि की वात समझता है। इसका क्या कारण है ?

नोट—मेरी समझ से तो स्त्रियां पुरुपत्व को कुछ श्रेष्ठ समझती हैं।

११. आपके अंगार से पके हुए अन्न न लेने का क्या कारण है ?

१२. कुछ कारणों से मेरी यह धारणा हो गई है कि जबतक विद्योपार्जन करना अभीष्ट हो तवतक राष्ट्रीय अथवा सामाजिक आन्दोलन से सर्वथा पृथक् ही रहे। क्या यह धारणा ठीक है ?

दयापात्र
अववेश

वर्धा,
२५-७-३५ ई०

[टिप्पणी : गांधी जी ने प्रश्नों के सामने हाशिये पर इन प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर दिये है:

१. हर एक में देखना चाहिए.

२. तव नहीं मानना धर्म हो सकता है.

३. नहीं.

४. ठीक समज में नहीं आता.

४. नोट—व्यक्ति को कर्त्तव्य पर डटे रहना चाहिए.

५. जिसमें हम धर्महानि मानें सो नहीं करना.

६. दोनों का अलग रहना और पति का आजीविका देना.

७. अन्यायी से रुक जाने का विनय करना. मजलुम को अहिंसक सहारा देना.

८. पागल हाथी पर भी यदि सच्चा प्रेम है तो संभव है वश में आवे. पागल मनुष्य के लिए ऐसा करना अधर्म है.

९. नहीं.

१०. क्योंकी पुरुष स्त्री को दुर्बल मानता है.

११. हिंसा, खर्च, समय का बचाव, आरोग्य.

१२. इसका निर्णय तुमारे करना है.

२७-७-३५ बापु

—हिन्दी। वर्धा, २५।७।१९३५। जी० एन० ३२२१ की फोटो-नकल से।]

४४. अवधेशदत्त शर्मा का पत्र : गांधीजी के नाम

॥ ओ३म् ॥

पूज्य बापू जी,

परिस्थिति की विवशता के कारण ५ मास और १ सप्ताह के पश्चात् इस तीर्थ से खेद के साथ विलग होना पड़ रहा है। जिस तीर्थभूमि को प्राप्त होकर यद्यपि मेरी पशुता बिल्कुल नष्ट नही होने पाई है फिर भी पशुता से मुक्त हो जाने का मार्ग तो मिल ही गया है। यहां से विलग होने से मुझे इस बात का भय अवश्य है कि अज्ञान-तिमिर में पड़कर शायद मुक्ति मार्ग मुझसे छूट न जाय। अतएव—

मेरे धैर्य और सन्तोष के लिए निम्नलिखित दो आवश्यक आश्वासन प्रदान किये जायं।

१. यहां ही की भांति मैं अपनी अज्ञानजनित आन्तरिक व्याकुलता को तथा जीवन संग्राम की कठिनाइयो को आपकी सेवा में (पत्र-द्वारा) अर्पित करके आपके उत्तरों से आत्म-शान्ति-लाभ करता हूं।

२. जब कभी मैं ऐसी व्याकुलता को प्राप्त हो जाऊं जो केवल आपकी समीपता ही से दूर हो सकती हो, तब मै आपकी शरण में उसी प्रकार आश्रय पा सकूं जिम प्रकार एक बालक को अपनी माता का आश्रय प्राप्त होता है।

इति

दयापात्र

अवधेश

वर्धा १-८-३५ ई०

नोट—स्वीकृति इसी पत्र पर।

(टिप्पणी—गांधी जी ने २।८।३५ को इस पत्र के नीचे अपने हाथ से लिखा है:

"लिखा करो और उत्तर देने की चेष्टा करूंगा. जब आने का दिल हो तब लिखो. मै यहीं हूंगा तो सम्मति भेजने का प्रयत्न करूंगा".

बापू के आशीर्वाद

२-८-३५

—हिन्दी। वर्धा, १।८।१९३५। जी० एन० २३३४ की फोटे-नकल से।]

४५. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

इलाहाबाद

५ जुलाई १९३६

प्रिय बापू,

मै यहां कल रात पहुंचा। जब से मैने वर्धा छोड़ा तब से मेरे जिस्म में कमजोरी और दिमाग़ में परेशानी मालूम होती है। इसका कुछ कारण बेशक शारीरिक है। ठण्ड लग जाने से मेरे गले की खराबी बढ़ गई है। कुछ और कारण भी है जो सीधे मन और आत्मा से सम्बन्ध रखते हैं। यूरोप से लौटने के बाद मैंने देखा है कि कार्यसमिति की बैठकों में मैं बहुत थक जाता हूं। मुझपर उनका निष्प्राण करनेवाला असर होता है और हर नये अनुभव के बाद मुझे लगभग ऐसा महसूस होता है कि मै बूढ़ा हो गया हू। मुझे आश्चर्य नही होगा, यदि समिति के मेरे साथियों को भी ऐसा ही महसूस होता हो। यह अच्छा अनुभव नही है और इससे प्रभावशाली कार्य के रास्ते में रुकावट होती है।

जब मै युरोप से लौटा तब मुझसे कहा गया कि देश गिर गया है, और इसलिए हमे धीरे चलना पड़ता है। किन्तु चार महीने के मेरे थोड़े-से अनुभव से इस खयाल की पुष्टि नही होती। सच तो यह है कि मैं जहां कही गया हूं वहा मैने उभरती हुई प्राण.शक्ति पाई है और जनता की सहायता की भावना पर मुझे आश्चर्य हुआ। इसका क्या कारण है, यह तो मै निश्चित रूप से नही कह सकता। मैं केवल कई तरह की अटकले ही लगा सकता हू। जनता के उत्साह ने स्वाभाविक रूप से, मेरा दिल बढ़ा दिया है और मुझमे नई शक्ति भर दी है। परन्तु जान पड़ता है कि यह शक्ति कार्यसमिति की हर बैठक मे बाहर निकल जाती है, और मै बहुत-कुछ ऐसा महसूस करता हुआ लौटता हू, जैसे किसी बैटरी की बिजली खतम हो गई हो। इस बार यह प्रतिक्रिया सबसे अधिक हुई है, क्योकि मेरी शारीरिक हालत गिरी हुई है।

किन्तु मै आपको अपनी शारीरिक या मानसिक अवस्था के विषय में लिखना नही चाहता था। इससे अधिक महत्वपूर्ण मामले ऐसे हैं जिनकी मुझे चिन्ता है और अभी तक मुझे कोई साफ़ रास्ता नजर नही आया। मैं जल्दवाजी में या मामले पर पूरा विचार किये बिना काम नही करना चाहता। परन्तु मेरे अपने मन में निश्चय होने से पहिले मैं आपको वता देना चाहता हुं कि मैं किधर देख रहा हूं। आपने मामले को ठीक-ठाक करने के लिए और संकट को टालने में सहायता देने के लिए जो कष्ट उठाया उस सबके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं। मुझे तव भी पक्का विश्वास था और अब भी पक्का विश्वास है कि जिस तरह कि अलहदगी की वात सुझाई गई, उसका हमारे सारे काम पर, जिनमें चुनाव शामिल है, गंभीर असर होता। वहरहाल इस समय हम कहां है और भविष्य में हमारे लिए क्या वदा है? मैंने अपने नाम राजेन्द्रवावू का पत्र (दूसरा) और मुझपर लगाये गये जवर्दस्त आरोपों को फिर से पढ़ा। यह अभियोगपत्र जवर्दस्त तो है परन्तु निश्चित नही है। केवल स्त्रियों की सभा में मेरे भाषण की वात निश्चित है किन्तु वास्तव में उसका किसी व्यापक प्रश्न से सम्वन्ध नहीं है। खास वात यह है कि मेरी प्रवृत्तियां कांग्रेस के लक्ष्य को हानि पहुंचानेवाली है, उनसे कांग्रेस का नुकसान हो रहा है और चुनावों में सफलता की सम्भावना घट रही है। यदि मेरा यही हाल रहा तो हालत और विगड़ सकती है और मेरे साथी इस जवर्दस्त मामले में कोई जोखिम नहीं उठाना चाहते।

अव जाहिर है कि यदि इस आरोप में कोई सचाई है तो उसका मुकावला होना चाहिए। मामला इतना गम्भीर है कि उसपर लीपापोती नही की जा सकती। इसमें कुछ काले और सफेद रंग नही है और न कोई भले और वुरे का सन्तुलन करने वाली वातें है। यह तो सब काला-ही-काला है और इससे निर्णय करना सचमुच आसान हो गया है। कारण तथ्य को कितनी ही कोमलता के साथ वयान किया जाय वह यह है: कि मै एक असह्य कण्टक हूं और मुझमें जो गुण है—यानी थोड़ी-सी योग्यता, शक्ति, लगन, थोड़ा व्यक्तित्व जिसका कुछ असर होता है—वे ही खतरनाक वन जाते है, क्योंकि वे गलत आदमी के साथ लगे हुए हैं। इस सबसे जो नतीजा निकलता है, वह साफ़ है।

लखनऊ से पहिले और किसी हद तक लखनऊ मे भी खुद मुझपर यह असर पड़ा कि इस साल हम सवके लिए साथ-साथ चलने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अव यह साफ़ है कि मेरा खयाल गलत था हालांकि दोनों तरफ़ से यत्न में कोई कसर नही रही। सम्भव है, दोष मेरा ही हो। मुझे इसका पता नही है, किन्तु आदमी को अपनी आंख का शहतीर शायद ही दिखाई देता है। वास्तविकता यही है कि

आज वह आत्मिक निष्ठा—वफादारी—नहीं है, जो हमारे दल को बांधकर रखती है। यह एक मशीन-जैसा दल है और दोनो ओर एक निस्तेज रोष और दमन की-सी भावना है और जैसा मनोविज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है इनसे सब प्रकार की अनुचित निजी और सामाजिक उलझनें पैदा होती हैं।

इस बार जब मै बम्बई पहुंचा तो बहुत लोग मेरे मुंह की ओर देखते रहे, क्योंकि उनके लिए यह मानना कठिन हो गया था कि मैं बच कैसे गया। वहां सबको मालूम था (जैसा 'टाइम्स आव इण्डिया' मे पहिले समाचार आया था) कि मेरी शान्तिपूर्वक समाप्ति होनेवाली है—अवश्य राजनीतिक समाप्ति ही। दाह-क्रिया के सिवा और सब कुछ तय हो चुका था, इसीलिए उन्हें आश्चर्य था। मुझे यह विचित्र-सी बात मालूम हुई कि जब बाजार में बहुत लोगों को ये सब विश्वासपूर्ण अफवाहें मालूम थीं, तब मुझे इनका कुछ भी पता नही था। लेकिन हालाकि मुझे उनकी जानकारी नही थी तो भी अफवाहों का होना बिल्कुल वाजिब था। इसी से मेरी वर्तमान अलहदगी का अन्दाज लगाया जा सकता है।

मैं अपने वर्तमान विचारों के विषय में अपनी पुस्तक में और बाद में भी विस्तार से लिख चुका हूं। मेरे बारे मे राय बनाने के लिए मसाले की कमी नही है। ये मेरा अंग है, और यद्यपि भविष्य में मैं उन्हें बदल सकता हूं, फिर भी जबतक वे मेरे विचार है, तबतक मुझे उनको प्रकट करना ही चाहिए। चूंकि मैं एक बड़ी एकता को महत्व देता था, इसलिए मै उन्हे नरम-से-नरम ढंग से प्रकट करने की कोशिश करता था। इसका एक बड़ा कारण यह भी था कि निश्चित निर्णयों की अपेक्षा मैं विचार को निमन्त्रण देता था। मुझे इस दृष्टिकोण में और कांग्रेस कुछ भी कर रही हो उसमें कोई संघर्ष दिखाई नही दिया। जहांतक चुनावों का सम्बन्ध था, मैं निश्चित रूप से अनुभव करता था कि मेरा निश्चित दृष्टिकोण हमारे लिए लाभ की चीज है, क्योकि उससे आम लोगो में उत्साह पैदा होता है। परन्तु मेरे दृष्टिकोण के नरम और अस्पष्ट होते हुए भी मेरे साथी उसे खतरनाक और हानिकारक समझते है। मुझसे तो यहां तक कहा गया कि हिन्दुस्तान की गरीबी और बेकारी पर मेरा सदैव जोर देना बुद्धिमानी की बात नही थी। कम-से-कम जिस ढंग से मैं जोर देता था, वह बेजा था।

आपको याद होगा कि दिल्ली और लखनऊ दोनों जगह मैंने स्पष्ट कर दिया था कि सामाजिक मामलों पर मुझे अपने विचार प्रकट करने की आजादी होनी चाहिए। मैने यह समझा था कि आप और समिति के सदस्य इससे सहमत है। अब प्रश्न स्वयं उन विचारो की अपेक्षा उनको प्रकट करने की स्वतन्त्रता का अधिक

हो जाता है और इससे भी बड़ा प्रश्न जीवन के मूल्यों का है। यदि हम किसी चीज का बड़ा मूल्य समझते हैं तो हम उसका वलिदान नही कर सकते।

यह संघर्ष है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। कौन सही है और कौन गलत, इसकी बहस करना व्यर्थ है। परन्तु पिछले सप्ताह की घटनाओं के वाद मुझे यह सन्देह होने लगा है कि क्या हम सचमुच सही रास्ते पर चल रहे है। मेरा यह विचार होता है कि हमारे लिए ठीक वात यह होगी कि मामला महासमिति की अगली वैठक में संक्षेप में रख दिया जाय और उसका आदेश ले लिया जाय। यह किस प्रकार अच्छी तरह किया जाय, इसके बारे में मेरा दिमाग़ अभी साफ़ नही है, परन्तु वह होना चाहिए सादे-से-सादे ढंग पर और विना वहुत वहस-मुवाहिसे के। जहां तक मेरा सम्वन्ध है, मेरी ओर से बहुत कम तर्क होगा।

शायद इसका परिणाम यह होगा कि मै हट जाऊंगा और एक जैसे विचार के अधिक लोगों की समिति वन जायगी।

आपने मुझसे कहा था कि किसी-न-किसी प्रकार का वयान जारी करने का आपका इरादा है। मैं इसका स्वागत करूंगा, क्योंकि मैं मानता हूं कि प्रत्येक दृष्टि-कोण देश के सामने स्पष्ट रख दिया जाय।

मैं अभी इस मामले का जिक्र किसी से नही कर रहा हू। हां, भेद लेने वाली और अशिष्ट आंखे इसे आपके पास पहुंचने से पहिले रास्ते मे ही देख लेगी। उन्हें वरदाश्त करना पड़ेगा।

वम्वई में मृदुला[1] से वात हुई थी। वह अहमदावाद से कुछ घण्टों के लिए खास तौर से मेरे अनुरोध पर आई थी। उसने मुझे वताया कि जहां तक तथ्यो का सम्वन्ध था, जो कुछ आपने उससे कहा था, और जो कुछ मैने लिखा या कहा था, उसमे कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ा था (और न वताया था)। सच तो यह है कि उसने आपके नाम अपने पत्र में यह स्पष्ट कर दिया था, किन्तु शायद एक-दो वाक्य आपके देखने से रह गये। उसका इरादा है कि अपने पिछले पत्र की नकल आपके पास भेज दे, ताकि आप स्वयं इस वात को देख लें।

वर्धा में मुझसे कहा गया कि गुजरात की स्त्रियां यह कह रही हैं कि आप या वल्लभभाई दोनों स्त्रियों को कार्यसमिति से अलग रखने के लिए जिम्मेदार हैं। मैने मृदुला से पूछा था। उसने मुझसे कहा कि जहां तक उसे मालूम है, किसी ने ऐसा कहा या सोचा नही।

---

१. मृदुला साराभाई, अहमदावाद के प्रसिद्ध उद्योगपति स्व० अम्वालाल साराभाई की कन्या।

मैंने इस विषय में सरोजिनी से भी वात की थी। मैं डा० जीवराज मेहता और खुरशेद से मिला। जीवराज खर्च वगैरह के वारे में विधान से पूरी तरह सहमत नही है, परन्तु उन्होने पहिले के अपने आंकड़ों को कुछ कम कर दिया। अव वह कहते है कि अस्पताल की इमारत और सामान इत्यादि के लिए दो लाख काफ़ी होने चाहिए।

और दो लाख वह सुरक्षित कोष के लिए चाहते हैं। उनकी यह भी राय है कि इमारत स्वराज-भवन की जमीन पर नहीं वनानी चाहिए, जैसी कि शुरू में योजना थी, वल्कि आनन्द-भवन के पूर्व मे खेतों पर वनानी चाहिए। मैं इसके वारे मे म्युनिसपलिटी से पूछताछ करूंगा।

मेरा इरादा महासमिति के अधिवेशन के आसपास वम्वई में कमला-स्मारक के ट्रस्टियों की वैठक वुलाने का है। स्वराज-भवन के ट्रस्टियों की वैठक भी।

वम्वई में नरगिस ने आग्रह करके मुझे गले के एक जर्मन विशेषज्ञ के पास भेज दिया। इस आदमी ने मुझसे कहा है कि अपने गले को आराम देने के लिए मैं एक हफ्ता विल्कुल चुप रहूं। यह तो मुश्किल काम है।

सस्नेह आपका
जवाहरलाल

—अंग्रेजी। इलाहावाद, ५।७।१९३६। 'ए वंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]

४६. हनुमानप्रसाद पोद्दार का पत्र : गांधीजी के नाम

[इस पत्र पर सन या सम्वत नहीं है। किन्तु विचार करने पर जान पड़ता है कि यह १९३७ की जनवरी में या फरवरी मास के आरम्भ में लिखा गया होगा, वहुत करके जनवरी में, क्योंकि माघ कृष्ण ९ की तिथि सम्भवतः जनवरी में ही पड़ी होगी। गांधीजी ने इस पत्र का उत्तर अपने १०।२।१९३७ के पत्र-द्वारा दिया है।—सम्पा०]

श्रीहरि:

गोरखपुर
माघकृष्ण ९

पूज्यपाद वापू जी,

चरणों में सादर प्रणाम

गत माघ वदी ६ सोमवार रात को करीव ३ वजे स्वप्न में मुझे ऐसा प्रतीत

हुआ मानों मुझसे कोई कह रहा है—"गांधी का शरीर अब बहुत दिन नहीं रहेगा। उनसे कहो बाकी जीवन केवल भगवान के भजन में ही बितावें।" स्पष्ट यही वाक्य थे।

मुझे स्वप्न बहुत कम आते हैं। भगवान करे, वह सपना झूठा हो। तीन दिन तक इसी असमंजस में रहा कि आपको लिखूं या नहीं, आखिर लिख देना ही उचित समझा। अवश्य मेरा यह लड़कपन ही है। चरणों में निवेदन है, इस ढिठाई के लिए क्षमा करें। इस परचे को पढ़कर आप कृपया फाड डालें, जिससे मेरी यह ढिठाई किन्हीं भी महानुभाव के उद्वेग का कारण न हो।

आपका बालक
हनुमानप्रसाद पोद्दार

—हिन्दी। सम्भवतः जनवरी १९३७। पोद्दार जी के स्वाक्षरों में लिखी प्रति-लिपि से।]
सौजन्य : श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार

४७. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

१४ नवम्बर १९३७

प्रिय बापू,

महासमिति के अधिवेशन पर आपका लेख मैंने अभी पढ़ा। मैसूर के प्रस्ताव के विषय में आपने कहा है कि महासमिति के लिए वह अनियमित था। यदि ऐसी बात थी तब तो उस पर चर्चा होने देना मेरा काम नहीं था और मुझे उस पर रोक लगा देनी चाहिए थी। मुझे किसी ऐसे संवैधानिक नियम की जानकारी नहीं है, जिससे यह नतीजा निकलता हो, और इस तरह का कोई नियम हो तभी ऐसे प्रस्ताव को रोका जा सकता है जो सामान्य रीति से रक्खा जाय और महासमिति का बहुमत जिसका समर्थन करे। संविधान को छोड़ दें तो भी मुझे कांग्रेस या महासमिति के पहिले के किसी ऐसे फैसले का पता नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि ऐसे मामलों पर विचार नहीं होना चाहिए। ऐसा कोई प्रस्ताव होता तो भी मेरी समझ में नहीं आता कि वह महासमिति को किसी मामले पर विचार करने से, यदि वह विचार करना चाहे तो कैसे रोक सकता है, जबतक कि उस प्रस्ताव में कोई नियम न बना लिया जाय। महासमिति को किसी ऐसे प्रस्ताव पर विचार करने की पूरी आजादी

है, जो खुद उसके पास किये हुए किसी पिछले प्रस्ताव के खिलाफ जाता हो। किन्तु यदि कोई अमल या कार्य-विधि का नियम है तो जबतक महासमिति उसे बदल नहीं देती तबतक उसपर अमल करना पड़ता है। ऐसे किसी नियम का तो सवाल नहीं है, परन्तु मुझे तो किसी ऐसे प्रस्ताव का भी पता नही है, जिसमें ऐसी नीति तय की गई हो, जिसका मैसूर के प्रस्ताव से उल्लघन होता है। हमारे जारी किये हुए पहिले के वक्तव्यो में उल्लेख किया गया है कि कांग्रेस रियासतों में हस्तक्षेप न करने की नीति का अनुसरण करना चाहती है। वे वक्तव्य, स्वयं महासमिति को हस्तक्षेप करने से, यदि वह हस्तक्षेप करना चाहती हो, रोक नही सकते। मेरी समझ में नही आता कि कानूनी शब्द 'अनियमित' कैसे लागू किया जा सकता है?

एक और सवाल उठता है कि हस्तक्षेप क्या है। क्या किसी प्रस्ताव में किसी राज्य का जिक्र करना ही हस्तक्षेप है? क्या नागरिक स्वतन्त्रताओं की मांग अथवा दमन की निन्दा हस्तक्षेप है? यदि ऐसा है तो कांग्रेस स्वयं पिछले दो वर्षों में निश्चित और असन्दिग्ध शब्दो मे उसकी दोषी रही है।

महासमिति के मैसूरवाले प्रस्ताव की भाषा बहुत खराब है और मैं किसी भी सूरत में नही चाहता था कि महासमिति उसे पास करे। किन्तु इस मामले का मेरी भावनाओं से सम्बन्ध नही है। मुझे तो एक लोकतन्त्री सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से काम करना पड़ता है। प्रस्ताव मैसूर में दमन की निन्दा का था। यह दमन कैसा भी हो तो क्या भविष्य में राज्य के दमन की निन्दा करने से भी हमें परहेज रखना है? यदि इस दमन में खुद कांग्रेस पर हमला करना, हमारे झण्डे का अपमान करना या हमारे संगठन पर रोक लगा देना आदि बातें होती हैं तो क्या हम चुप रहे? इन बातों की सफाई हो जानी चाहिए ताकि हमारे दफ्तर और हमारे संगठन को निश्चित रूप से मालूम हो जाय कि हमें क्या ढंग अपनाना है।

आपने कहा है कि महासमिति को कम-से-कम दूसरे पक्ष की बात सुने बिना यह प्रस्ताव पास नही करना चाहिए था। क्या आपके खयाल से हमारे लिए यह सम्भव है कि हम राज्यों मे जाकर जांच करने के लिए समितियां नियुक्त करे? क्या रियासतें रजामन्द होंगी? मैंने रियासतों को कई मौकों पर यह सुझाव दिया है—जांच-समिति का नही, वरं इतना ही कि कोई व्यक्ति वहां जाकर दोनों ओर से जांच कर ले। इसको उन्होंने हमेशा ठुकराया है।

यह मैसूरवाला मामला लम्बे समय से चला आ रहा है। कर्नाटक-प्रदेश कांग्रेस कमिटी ने इस मामले में कुछ क़दम उठाये हैं। उसके मन्त्री ने मैसूर के दीवान से लम्बी मुलाकात की है। मैंने दीवान को बार-बार लिखा है और उनके सामने बहुत से निश्चित मामले रक्खे हैं। उन्होंने लम्बे जवाब दिये हैं और मेरी

राय में राज्य की नीति को मुनासिब सावित नही कर सके है। महीनों से मैं मैसूर के कांग्रेसियों को आज्ञा भंग करने से रोकता हूं और हाल ही में नरीमान के सिवा और किसी ने आज्ञा भंग की भी नही। अन्त में कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस समिति ने स्थिति पर विचार किया और मैसूर की दमन-नीति की निन्दा की और आगे के लिए हमसे निर्देश मांगे कि उन्हें क्या करना चाहिए। इसलिए यह कहना सही नहीं है कि महासमिति ने किसी को, उसकी वात सुने विना या एक पक्ष की वात सुनकर किसी की निन्दा की हो। हमारे लिए जितने मामूली रास्ते खुले हुए थे, उन सवको हमने आजमाया।

यह सव मै आपको लिख रहा हूं, क्योंकि मैं स्वयं अपने दिमांग में साफ रहना चाहता हूं कि हमारी नीति क्या है। महासमिति ने और मैंने जो राह अपनाई उसपर आपने आपत्ति उठाई है। मै अभीतक समझ नही पाया कि मैंने कैसे और कहां भूल की है और जबतक मै यह समझ नही लेता तवतक दूसरी तरह काम नही कर सकता।

सप्रेम आपका,
जवाहरलाल

महात्मा गांधी,
वर्धा (मध्य प्रदेश)
—अंग्रेजी। इलाहावाद, १४।११।१९३७। 'ए वंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४८. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम[1]

इलाहावाद
२८ अप्रैल, १९३८

प्रिय वापू,

मै आज सुवह लखनऊ से इलाहावाद लौटा। आपका पत्र और साथ मे महादेव की सरहदी यात्रा पर उनके नोट की नकल मिली। मैंने इस नोट को पढ़ लिया है और मैं खान साहव और अब्दुलगफ्फार खां को लिखूंगा। महादेव ने जो कुछ लिखा है, उस पर मुझे अचरज नही है। मैंने स्वयं जो कुछ देखा, यह उनका

१. देखिए गांधीजी का पत्र दिनांक २५।४।१९३८।

स्वाभाविक विकास है, किन्तु मैने यह आशा रक्खी थी कि वहां उस समय जो वृत्तियां देखने में आई, उनपर कुछ रोक लगाई जायगी। आपके सिवा यह काम कारगर तरीके पर कोई आदमी कर सकता है तो वह मौलाना अब्दुल कलाम ही है। मेरे खयाल से यह बहुत आवश्यक है कि वह सरहद जायं। इस बीच मुझे यह आशा जरूर है कि दोनों खानबन्धु मन्त्रियो की सभा और कार्यसमिति के लिए आयेंगे।

जैसा आपको मालूम है, पिछले छ. महीनो में कांग्रेस की राजनीति मे घटनाओं ने जो रुख इख्तियार किया है, उससे मुझे बड़ा दुःख हुआ है। जिन मामलों ने मुझे अशान्त किया है, उनमे से गाधी-सेवा-संघ का नया रूप भी है। हम बहुत तेजी से टैमनी हाल[1] का ढग अपना रहे है और यह देखकर तकलीफ होती है कि गांधी-सेवा-संघ भी मामूली सतह पर उतर आया है। वह तो दूसरो के लिए नमूना कायम कर सकता था और किसी-न-किसी तरह चुनाव जीतने पर उतारू एक दलगत संगठन बन जाने से इन्कार कर सकता था। मुझे बहुत दुःख होता है कि काग्रेस-मन्त्रिमण्डल क्षमता के साथ काम नही कर रहे हैं और जो वे कर सकते थे वह भी बहुत नहीं कर रहे है। वे पुरानी व्यवस्था के बहुत ज्यादा अनुकूल बन रहे है और उसे उचित साबित करने की कोशिश कर रहे हैं। परन्तु बुरी होते हुए भी ये सब बातें बर्दाश्त की जा सकती थी। इससे कही बुरी बात यह है कि हमने जो ऊंची प्रतिष्ठा इतनी मेहनत करके लोगों के दिलो मे बना ली है, उसे खो रहे है। हम मामूली राजनीतिज्ञों की सतह पर उतरते जा रहे है, जिनके कोई उसूल नही होते और जिनका काम रोजमर्रा के अवसरवाद के असर से होता है।

इसका कुछ कारण तो अलबत्ता दुनिया भर भी आम खराबी है और कुछ जिस संक्रमण-काल से हम गुजर रहे है वह है। फिर भी इससे हमारी खामियां सामने आती हैं और यह देखकर दुःख होता है। मेरे खयाल से कांग्रेस में काफी सदभावनावाले लोग है, जो ठीक ढंग से काम मे जुट जायं तो स्थिति का सामना कर सकते है। परन्तु उनके दिमाग दलगत संघर्षो से और इस व्यक्ति या उस गुट को कुचलने की इच्छा से भरे है। जाहिर है कि भले आदमियों की अपेक्षा बुरे ज्यादा पसन्द किये जाते है, क्योंकि बुरे दलबन्दी में साथ देने का वचन देते है। जब ऐसा होता है तब बिगाड़ तो होगा ही।

महीनों से मैं महसूस करता हू कि जिस तरह से चीजें चल रही थी उसमें मैं

---

१. अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाजोपयोगी कार्यो के लिए न्यूयार्क में स्थापित संस्था, जो आगे लकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभी तरीके अपनाने के कारण भ्रष्टाचार का प्रतीक बन गई।—सम्पा०

हिन्दुस्तान में कारगर तौर से काम नही कर सकता था। जैसे हमेशा काम चलाया जा सकता है, वैसे अलबत्ता मैंने भी चलाया, परन्तु मुझे यह महसूस हुआ है कि मैं ठीक जगह पर नही हूं और अयोग्य हूं। (कारण तो और भी थे) परन्तु यह एक कारण था जिससे मैंने युरोप जाने का निश्चय किया। मैंने महसूस किया कि मैं वहां अधिक उपयोगी हो सकता हूं और हर हालत में मैं अपने थके हुए और चक्कर में पड़े हुए दिमाग को तो ताजा कर ही लूंगा। मुझे आपके साथ विस्तार से किसी मामले की चर्चा करने में कठिनाई मालूम हुई, क्योंकि आपके स्वास्थ्य की मौजूदा हालत में मैं आपको थकान और चिन्ता में डालना नही चाहता, और फिर मुझे यह भी अनुभव हुआ कि ऐसी चर्चाओं से कोई ठोस नतीजे नही निकलते।

मैने २ जून को बम्बई से जहाज पर रवाना होने का फैसला किया है। पता नही, मैं कितने अर्से दूर रहूंगा। परन्तु सम्भव है, मै सितम्बर के अन्त तक लौट आऊं।

पहली मई को मै एक सप्ताह के लिए गढ़वाल जा रहा हूं। स्वरूप[1] मेरे साथ जायगी और हम बदरीनाथ और बर्फ पर थोड़ी-सी हवाई उड़ान करेंगे। गढ़वाल से लौट कर मैं मन्त्रियों की सभा और कार्यसमिति के लिए बम्बई जाऊंगा।

सप्रेम आपका
जवाहरलाल

महात्मा गांधी, जुहू (बम्बई)
—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २८।४।१९३८। 'ए बंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी

४९. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

मार्च २२, १९३९

मेरे प्यारे बापू,

आपके पत्र के लिए धन्यवाद। मै उन कांग्रेसियों के नाम नही जानता, जिनके बारे मे दिल्ली में एक सरकारी अधिकारी तक पहुंचने का अनुमान है। मुझसे नाम नही बताये गये।

---

१. श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित।

आज मुझे झरिया से सुभाष का निम्नलिखित तार मिला है:

"तुम्हारा तार कल ही मिला है। वह तुम्हारी अपनी निजी राय बताता है या दूसरों की भी? और यदि ऐसा है तो किनकी?"

इसका मैंने निम्नलिखित जवाब दिया:

"तुम्हारा तार। मेरा पिछला सन्देश मेरी अपनी ओर से, किन्तु गांधीजी से बात करने के बाद, भेजा गया था, जो तीव्रता से अनुभव करते हैं कि कांग्रेस कार्य को, और कार्यालय (सम्बन्धी) व्यवस्था को भी, नुकसान पहुंच रहा है। राष्ट्रीय (और) अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति निरन्तर सजगता की मांग करती है। मैंने बाद में उन्हें (गांधी जी को) अपने सन्देश की सूचना दे दी है।"

मौलाना बहुत कुछ वैसे ही हैं। उनका दर्द आमतौर पर कम है और सूजन भी अंशतः कम हो गई है। वह आपके यहां आने की राह देख रहे हैं और उसके बाद कलकत्ता जाने का इरादा रखते हैं।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

म० गांधी, बिड़ला हाउस, अलबुकर्क रोड, न० दि०
—अंग्रेजी। २२।३।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५०. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

मार्च २४, १९३९

मेरे प्यारे बापू,

मैं सुभाष को जो पत्र भेज रहा हूं, उसकी एक नकल इसके साथ नत्थी है। जैसा कि आप इसमें देखेंगे, मुझे टेलीफोन पर एक दूसरा सन्देश, इस बार कलकत्ता से सुनील बोस का, मिला। यह भी कुछ उसी तरह का था, जैसा झरिया वाला सन्देश था। यह जान कर कि आप दिल्ली लौट गये हैं जाहिरा वह कुछ उसी आशय का तार आपको भी भेजना चाहते थे।

आपका स्नेहपात्र
ज० ल०

महात्मा गांधी, बिरला भवन, नई दिल्ली
—अंग्रेजी। २४।३।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५१. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

एप्रिल १, १६३६

मेरे प्यारे बापू,

मुझे आपका ३० मार्च का पत्र, जिसके साथ सुभाष से हुए पत्र-व्यवहार की प्रतिलिपियां भी है, मिला। पटना जाते हुए जयप्रकाश कल थोड़ी देर के लिए मिले थे। मैं समझता हूं कि जो कुछ आपने सुभाष को लिखा है उससे ज्यादा कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता।

लखनऊ बारादरी की घटना बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण थी। फिर भी मुझे आशा है कि आप इसे बहुत ज्यादा महत्व नहीं देंगे। मैं आपके पास इस घटना की 'नेशनल हेराल्ड' वाली रिपोर्ट भेज रहा हूं। यह एक कुशल प्रत्यक्षदर्शी की सच्ची रिपोर्ट है। दूसरे ही दिन मैंने घटना के सम्बन्ध में एक वक्तव्य प्रकाशित किया था, उसकी भी प्रतिलिपि संलग्न है। गौतम का जो पत्र अखबारों में छपा है उससे भी (घटना की) पार्श्वभूमि को समझने में मदद मिलती है।

साम्प्रदायिक परिस्थिति बड़ी चिन्ताजनक है। इसमें अब कुछ नई बातें पैदा हो गई हैं। बीते हुए वर्षों में जब इस तरह के दंगे होते थे तो लोगों में बड़ी भावना और आवेग होता था। उदाहरण के लिए पिछले साल के इलाहाबादी दंगों का उद्गम स्पष्टत: राजनीतिक था, फिर भी जनता की बहुत बड़ी तादाद उसमें प्रभावित और उत्तेजित थी। इस साल तो यह पहिले से भी ज्यादा राजनीतिक है और स्पष्टत: ऊपरी है। मेरा कहने का मतलब यह है कि नगर में कोई उत्तेजना, उद्वेग या भावना नहीं दिखाई पड़ती। हां, भय काफी मात्रा में है और कुछ नाराजी भी है। जाहिर है कि दंगे सिर्फ किसी तरह का राजनीतिक दबाव डालने के लिए कराये जाते हैं। यह भी लगता है कि लोग उसके कुछ-कुछ अभ्यस्त होते जाते हैं और उनके कारण पहिले जितना आतंकित हुआ करते थे, अब नहीं होते। आज इलाहाबाद में सामान्य भीति या दबी भावना नही है। काफ़ी मात्रा में व्यापार भी चलता है। ज्यादातर दुकानें खुली हैं, फिर भी सूनी राहों पर छुरेबाजी की इक्की-दुक्की घटनाएं हो ही जाती हैं। लोगों की बड़ी भीड़ या सामूहिक स्तर पर संघर्ष होते नही दिखाई पड़ते। जो कुछ हो रहा है उससे आम तौर पर लोग नाराज़ और ऊबे हुए हैं। कोई स्थानीय या धार्मिक समस्या भी नहीं है जिसके समाधान की आवश्यकता हो। आज दोपहर के पहिले मैं शहर के कुछ हिस्सों में मोटर से गया और तीन छुरेबाजी के मामले देखे जो मेरे जाने के पांच मिनट पहिले ही हुए

होंगे। हर मामले में जिस आदमी ने यह काम किया, वह उसे करने के वाद गायव हो गया।

मेरे खयाल से जो कुछ हो रहा है उसमे से अधिकांश के लिए मुस्लिम लीग के स्थानीय नेताओं को निश्चित रूप से जिम्मेदार ठहराना चाहिए।

मुझे भय है कि इस तरह की वैयक्तिक हिंसा, छोटे पैमाने पर, हमारे कुछ शहरों में, कुछ दिनों तक चलती रहेगी। क्रमशः वह मिट जायगी। कांग्रेस कर्मियों या पुलीस के लिए इनसे निवटना सरल नही है।

मन्त्रिपरिषद के लिए आपका जो सुझाव है, मै नही समझता कि वह सम्भवनीय है। किसी आकस्मिक परिवर्तन से ज्यादा अन्तर नही पड़ेगा, वल्कि उससे अतिरिक्त समस्याएं उठ खड़ी होंगी। निस्सन्देह, जहां तक मेरा सम्वन्ध है, मैं संयुक्त प्रान्तीय मन्त्रिपरिपद को हर तरह से मदद देने को तैयार हूं।

आपका स्नेहपात्र

ज० ला०

महात्मा गाधी, विरला भवन, नई दिल्ली

—अंग्रेजी। १।४।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५२. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

इलाहाबाद

१७ अप्रैल, १९३९

प्रिय वापू,

प्यारेलाल सुभाप के साथ आपके पत्र-व्यवहार की नकलें मेरे पास भेजते रहे हैं। मुझे अन्देशा है कि उस चिट्ठी-पत्री से अड़चन की स्थिति आ गई है और मुझे कोई रास्ता इससे निकलने का दिखाई नही देता। मै उस आदमी की जैसी वद-किस्मती की हालत मे हूं, जो दोनो मे से एक भी दृष्टिकोण से सहमत नही है। इस कारण मैने यही उत्तम समझा कि चुप रहूं और किसी को कुछ न लिखूं और न जनता मे कुछ कहूं। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि हमारे लिए इस तरह लाचारी में वहते चले जाना वहुत अच्छा नही है। मामले इतने गम्भीर और नतीजे इतने दुःखदायी है कि उनकी कल्पना नही की जा सकती।

मुझे लगता है कि कोई रास्ता नही निकलेगा, जवतक कि आप वहुत हद तक

खुद जिम्मेदारी उठाने को तैयार नही होंगे। आपको अगुआ बनना होगा और आप घटनाओं के होते रहने के लिए ही इन्तजार नही कर सकते। सुभाष में अनेक कमजोरियां हैं, परन्तु प्रेम से उन्हें समझाया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि आप निश्चय कर लेंगे तो कोई रास्ता निकाल सकेंगे।

राजकोट का महत्व मैं खूब समझता हूं, परन्तु आप मेरे इस विचार से सहमत होंगे कि कांग्रेस का बड़ा सवाल उससे कही अधिक महत्वपूर्ण है और वह हमारी सारी प्रवृत्तियों का नियमन करेगा। इसलिए मेरी आप से प्रार्थना है कि थोड़े दिन राजकोट के मामलों पर ध्यान न देकर भी आप कांग्रेस की तरफ ध्यान दें। इस विचार से घबराहट होती है कि शायद आप महासमिति की बैठक में शरीक न हों। इसका तो यही मतलब है कि हालात बिगड़ते जायं और कांग्रेस चूर-चूर हो जाय। सही तरीका यह है कि महासमिति की बैठक से पहले कोई निपटारा कर लिया जाय। महासमिति पर इस मामले को छोड़ देना तो और भी गड़बड़ पैदा करना होगा। काश आप सुभाष से मिल लेते। इस मुलाकात का कोई अच्छा नतीजा निकलने के अलावा भी इससे कई तरह की मदद मिलती।

कार्यसमिति के बनने में देर लगना बुरा हुआ। परन्तु हम झगड़ने के लिए मिलें तो यह और भी बुरा होगा। हालांकि यह मुझे बहुत ही नापसन्द है, फिर भी एक-दो सप्ताह के लिए महासमिति का अधिवेशन मुल्तवी कर देना बेहतर होगा, ताकि आपको सुभीता रहे और निपटारे का ज्यादा मौका मिले।

मुझे अभी ही सुभाष का एक पत्र मिला है। उनका कहना है कि मै उनसे स्थिति की चर्चा करने के लिए कुछ घण्टों के लिए मिल लूं। मुझे अन्देशा है कि हमारी बातचीत का कोई निश्चित परिणाम नही निकल सकेगा, क्योंकि मेरे हाथ में कुछ है नही। फिर भी मैं उन्हें इन्कार नही कर सकता और एक-दो दिन में जाने का विचार है। मै उनसे क्या कहूंगा, इसका मेरे मन मे स्पष्ट विचार नही है। मेरे खयाल से मै उन्हे यही सलाह दे सकता हूं कि वह आपसे यह कह दें कि कार्यसमिति के नाम सुझाने का काम वह पूरी तरह आप पर छोड़ते है। वह अपने सुझाव आपको दे सकते है, परन्तु साफ तौर पर यह समझकर कि आप उन्हे स्वीकार या अस्वीकार कर सकते है। कार्यक्रम की बात यह है कि वह त्रिपुरी-कांग्रेस के प्रस्तावों के अनुसार होगा जिनमें और बातों के साथ-साथ निश्चित रूप से यह बात बता दी गई है कि पिछले कार्यक्रम में कोई भंग नही होगा।

अगर सुभाष इससे सहमत हो जाते है तब जिम्मेदारी आप पर रहती है और आप उससे बच नही सकते। मेरा दिल्ली मे भी यह खयाल था और अब भी है कि आप सुभाष को अध्यक्ष मान लें। उन्हे निकाल देने का प्रयत्न करना मुझे निहायत

गलत कदम मालूम होता है। रही वात कार्य-समिति की, सो इसका फैसला करना आपका काम है। लेकिन मैं यह जरूर समझता हूं कि एक जैसे विचारोंवाली कल्पना का संकीर्ण अर्थ किया गया तो उससे शान्ति अथवा कारगर काम नहीं हो सकेगा। कुछ-न-कुछ तो एक जैसे विचार जरूर होने ही चाहिए, नहीं तो हम काम नही कर सकते। मै नही समझता कि कार्यसमिति में चन्द लोगों के होने से नीति मे कोई वुनियादी फर्क हो जायगा। अवश्य ही जिन आदमियों की नेकनीयती पर हमें जरा भी विश्वास न हो उन्हें स्वीकार करना कठिन होता है। परन्तु समान विचारों के सिद्धान्त का विस्तार राजनीतिक दृष्टिकोण के भेद तक नही करना चाहिए, वशर्ते कि काम की सामान्य पृष्ठभूमि स्वीकार कर ली जाय। आखिर तो हमे याद रखना होगा कि समान विचारों की कार्यकारिणी वना देने से हम समान विचारों की कांग्रेस तो नही वना लेते। दूसरी वात ज्यादा आसान हो जाती है, यदि हममे विचारों की व्यापक समानता हो।

आपको पिछले कई महीनों से कांग्रेस की घटनाओं से वड़ा कष्ट हुआ है और आपने भ्रष्टाचार आदि की निन्दा की है। मैं समझता हूं कि कांग्रेस में हरेक सयाना तत्व, चाहे उसके राजनीतिक विचार कुछ भी हों, इस समस्या को हल करने के लिए उत्सुक है। मैं कांग्रेस के वाहर की वहुत सी वातों पर काफी ध्यान देता रहा हूं और मुझे कहना पड़ता है कि घटना-चक्र और नई शक्तियों के पैदा होने से मुझे घवराहट होती है। मैं केवल साम्प्रदायिक प्रश्न का ही जिक्र नही कर रहा हूं। उससे भी गहरी शक्तियां काम कर रही है। अगर इस नाजुक अवसर पर कांग्रेस कमजोर और छिन्न-भिन्न हो जाती है तो परिणाम विनाशकारी हो सकते हैं। हमें एक होकर रहना ही चाहिए। इसलिए मै आपसे प्रार्थना करता हूं कि इस मामले को निपटाने का आप निश्चय कर लें, भले ही निपटाने का तरीका हम सवको पसन्द न हो। हम इसी तरह अपनी पसन्द की दिशा में जा सकते है, नहीं तो हमारे पैर रुक जाते है।

एक वात अपने वारे में भी। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अत्यधिक व्यक्तिवादी हूं। पिछले दिनों कार्यसमिति की वैठकों मे मुझे अपना निभाव वहुत कठिन मालूम हुआ और शायद मै अपने साथियों के लिए भी एक आफत हो गया था। इसका कारण दोनो तरफ सद्‌भाव की कमी नही थी। इसलिए मुझे महसूस हुआ कि मुझे कमेटी में नही रहना चाहिए। इससे भी अधिक प्रवल कारणों से सुभाष की वनाई हुई भिन्न प्रकार की कमेटी में शरीक होने का विचार मुझे कठिन लगा। मेरे भाव अव भी वे ही है, लेकिन जो रुकावट पैदा हो गई है उसे देखते हुए कोई रास्ता निकल आता और कमेटी में मेरा रहना सहायक समझा जाता है तो मैं

रहना मंजूर कर लूंगा। मुझे यह चीज कोई बहुत प्रिय नहीं है, परन्तु मैं यह जरूर महसूस करता हूं कि मौजूदा गैरमामूली हालात में अगर यह जिम्मेदारी मुझे दी गई तो मैं उससे बच नही सकता।

सप्रेम, आपका
जवाहरलाल

महात्मा गांधी,
राजकोट।

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, १७।४।१९३९। 'ए बंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

५३. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

लखनऊ
सितम्बर २३, १९३९

मेरे प्यारे बापू,

मै चन्द लेख, जो मैंने लिखे हैं, संलग्न कर रहा हूं। पहिला 'भारत तथा युद्ध' मेरे नाम से भारत के विविध पत्रों को भेजा गया था। तीन लेखों का एक सेट—'युद्ध के उद्देश्य तथा शान्ति के उद्देश्य'—मैंने 'नेशनल हेरल्ड' के सम्पादकीय स्तम्भों में प्रकाशित कराया था। इसमें मेरा नाम नही दिया गया है। मैं अनुभव करता हूं कि इस विषय पर निर्वैयक्तिक रूप से विचार करना ही ज्यादा अच्छा होगा।

मैं यहां अभी दो या तीन दिन और ठहरूंगा। उसके बाद के बारे में मैं ठीक से नही जानता। एक-दो बड़े शहरों में जा सकता हूं।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

महात्मा गांधी,
वर्धा

—अंग्रेजी। लखनऊ, २३।९।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५४. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

लखनऊ
नवम्बर ८, १९३९

मेरे प्यारे बापू,

कल संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की परिषद ने जो प्रस्ताव पारित किया है उसकी एक प्रतिलिपि मैं आपकी सूचना के लिए संलग्न कर रहा हूं।

सब सदस्यों की आकांक्षा थी कि यदि सम्भव हो और आपको असुविधा न हो तो इलाहाबाद में आपके ठहरने की अवधि में उन्हें आपसे भेंट करने का एक अवसर मिल जाता। मैंने कल आपको इसके विषय में लिखा है।

सम्भावना है कि कार्यसमिति २१ तक या शायद २२ तक समाप्त हो। क्या मैं आपके और संयुक्त प्रान्त के अपने कुछ प्रमुख कार्यकर्त्ताओं—समझिए कि लगभग ३० या ऐसे ही कुछ—के बीच एक अनौपचारिक भेंट के लिए २३ का सुझाव दे सकता हूं? यदि आप समझते हों कि यह सम्भव है तो मेरे पास इलाहाबाद कृपया एक तार भेजवा दीजिएगा।

जेटलैण्ड के भाषण ने कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच चलनेवाली सब बातों पर डाट लगा दी है।

आपका स्नेहपात्र
महात्मा गांधी, सेगांव, वर्धा। ज० ला०

—अंग्रेजी। लखनऊ, ८।११।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५५. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

लखनऊ
नवम्बर, ९, १९३९

मेरे प्यारे बापू,

मैं लन्दन से आये हुए एक स्मृतिपत्र को नत्थी कर रहा हूं जो वहां की स्थिति पर प्रकाश डालता है। शायद इसमें आपको दिलचस्पी हो।

आपका स्नेहपात्र
महात्मा गांधी, सेगाव, वर्धा ज० ला०

—अंग्रेजी। लखनऊ, ९।११।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५६. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

दिसम्बर २, १६३६

मेरे प्यारे बापू,

सर स्टैफर्ड के हवाई मार्ग से ८ दिसम्बर को इलाहाबाद पहुंचने की सम्भावना है, किन्तु अभी तक तारीख के बारे मे मै बिल्कुल निश्चित नही हूं। वह भारत में दो या तीन सप्ताह तक बिताना चाहते है और तब बर्मा और चीन जाना चाहते है। मै समझता हूं कि इस अल्प अवधि में वह वर्धा, बम्बई, दिल्ली, लाहौर और कलकत्ता की यात्रा करना चाहते हैं। यहां आ जाने के बाद वह मुझसे परामर्श कर अपना कार्यक्रम बनायेंगे। मेरी कल्पना है कि उनके लिए यह अधिक सुविधापूर्ण और उपयोगी होगा कि कार्यसमति की बैठक के ठीक पहिले या बाद वह वर्धा मे हों जिससे वह आपसे तथा दूसरों से मिल सकें। क्या आप सोचते है कि यह सही रास्ता होगा?

मैं स० ब० ल० भटनागर से पत्रव्यवहार की प्रतिलिपियां संलग्न कर रहा हूं।

आपका स्नेहपात्र

ज० ला०

मैने पुनः जिन्ना को लिखा है।

महात्मा गांधी, सेगांव, वर्धा

—अंग्रेजी। २।१२।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५७. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

दिसम्बर २५, १६३६

मेरे प्यारे बापू,

मै आपके लिए च्यांग-काई-शेक[1] का पत्र भेज रहा हूं। मूल पत्र चीनी भाषा में है, किन्तु उन्होने अंग्रेजी में उसका अनुवाद भी भेजा है। मै आशा करता हूं कि आप इस चीनी पत्र को नष्ट नही करेंगे। यह मनगवाड़ी में सुरक्षित रखने लायक

---

१. चीन के राष्ट्रपति जिन्होंने भारतीय आकांक्षाओं का समर्थन किया था।

है। यदि आप इसका उत्तर देना चाहें तो अपना जवाब मेरे पास भेज देंगे और मै उसे चीनी वाणिज्य-दूत के जरिये आगे भेज दूगा।

"मुक्ति दिवस"[१] की ओर संयुक्त प्रान्त में कोई विशेप आकर्पण नही दिखाई पड़ा। हकीकत की वात तो यह है कि सव मिलाकर वह असफल ही रहा। वहुतेरी सभाएं थोड़े लोगों को लेकर शुरू हुई, किन्तु वाद में उत्सुक दृश्य-दर्शनार्थी जिसमें अधिकांश हिन्दू थे, यह जानने के लिए शामिल हो गये कि वात क्या है। उस दिन मुसलमानों ने कुछ सभाएं, मस्जिदों में तथा वाहर भी कीं जिनमें मुस्लिम लीग के प्रस्ताव की निन्दा की गई। मैं ऐसे एक उदाहरण के लिए एक पत्र संलग्न कर रहा हूं। आप पढ़ने के वाद इस पत्र को नष्ट कर सकते हैं क्योकि मैं इसे अपने पास लौटाना नही चाहता।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

महात्मा गांधी, सेगांव, वर्धा होकर
—अंग्रेजी। २५।१२।१९३९। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५८. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

जनवरी ३, १९४०

मेरे प्यारे वापू,

मैं अभी-अभी इलाहावाद लौटा हूं, तव मुझे आपका २८ का पत्र मिला है। मैं ठीक-ठीक नहीं समझ पाता कि फजलुलहक के आरोप के विषय में किसी को क्य करना चाहिए। किसी भूतपूर्व कांग्रेसी मन्त्री के लिए इस मामले का उत्तर देना सम्भव हो सकता है।

जहां तक योजना-समिति के साथ कुमारप्पा के पत्र-व्यवहार का सवाल है, मुझे अम्वालाल तथा डा० नजीर अहमद ने वताया है कि उन लोगों ने गृहोद्योगों के विषय में कुछ सूचनाएं प्राप्त करने के लिए उनसे सम्पर्क किया था तथा उनसे सम्वद्ध कुछ और मामलों में भी उनका सहयोग चाहा था। कुमारप्पा के उत्तर दोनों वड़े दुखित थे जिसमे किसी प्रकार का सहयोग या सहायता देने से इन्कार

---

१. जो मुस्लिम लीग-द्वारा कांग्रेस-नीति के विरुद्ध मनाया गया था।

किया गया था। अम्बालाल और नजीर अहमद दोनों ने बड़े उत्तेजित ढंग पर मुझ से बातें की और कहा कि यदि ऐसा रुख ग्रहण किया गया तो वह दुर्भाग्यपूर्ण होगा क्योंकि ग्रामोद्योग-संघ (विलेज-इण्डस्ट्रीज असोसियेशन) द्वारा सञ्चित सूचनाएं उनके निर्णयों पर पहुंचने के लिए उनको प्रभावित न कर सकेंगी।

आपका स्नेहपात्र

ज० ला०

महात्मा गांधी, सेगांव, वर्धा होकर (मध्य प्रान्त)

—अंग्रेजी। ३।१।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

५९. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

२४ जनवरी, १९४०

प्रिय बापू,

आपने मुझसे मोलोतोव के युद्ध-सम्बन्धी भाषण के बारे में सेगांव में पूछा था और मैंने जवाब में कुछ कहा था, जो अस्पष्ट-सा था। मोलोतोव के भाषण के बाद बहुत सी घटनाएं हुई हैं और स्थिति बहुत कठिन हो गई है। मेरे अपने मन में कोई शंका नहीं है कि फिनलैण्ड के मामले में रूस ने बहुत बेजा कार्रवाई की और इसके लिए उसे भुगतना पड़ेगा। परन्तु इससे भी अधिक चिन्ता की बात हमारे लिए यह है कि इंग्लैण्ड, फ्रांस और जर्मनी की लड़ाई के पीछे वास्तव में जो कुछ हो रहा है, वह यह है कि रूस से लड़ने के लिए साम्राज्यवादी और फासिस्ट शक्ति मजबूत हो। अब यह पहले से भी अधिक स्पष्ट हो गया है कि लड़ाई दोनों तरफ से विशुद्ध साम्राज्यवादी दुस्साहस है। १९१४ की तरह राजनीतिज्ञ सुन्दर भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। मुझे यह बहुत महत्वपूर्ण और जरूरी मालूम होता है कि इस भाषा से और नेक बातों से हमें धोखे में नही आना चाहिए। इन सब बातों का हिन्दुस्तान में हमारी अपनी स्थिति और ब्रिटिश सरकार के साथ की बातचीत से गहरा ताल्लुक है। सरकार का उद्देश्य उनकी लड़ाई के लिए हमारा सद्भाव प्राप्त करना है। मौजूदा हालात में हिन्दुस्तान का सवाल छोड़ दें तो भी मेरी समझ में नही आता कि हम एक साम्राज्यवादी युद्ध को अपना नैतिक समर्थन क्यों दें ? अलबत्ता अगर ब्रिटेन हिन्दुस्तान के प्रति अपना रवैया बुनियादी तौर पर बदल ले और हमारी आजादी को मान ले तो इसका ही मतलब यह हो जायगा

कि उसके साम्राज्यवाद में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया है। परन्तु अधिक सम्भावना यह मालूम होती है कि बुनियादी तौर पर यह साम्राज्यवाद बना रहेगा और इसकी खातिर लड़ाई जारी रहेगी हालांकि हालत से मजबूर होकर हिन्दुस्तान के बारे में कुछ अस्पष्ट घोषणाएं की जाती है। यह कहा जायगा कि इन घोषणाओं पर भी युद्ध के अन्त में अमल किया जायगा। मुझे हमारे लिए यह स्थिति बहुत खतरनाक दिखाई देती है, क्योंकि हम चाहे या न चाहे, हम अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का समर्थन करने के लिए फंस जायंगे और कई तरह के बुरे कामों में शरीक हो जायगे। इसलिए मेरा खयाल है कि हमे बहुत सावधान और सतर्क रहना चाहिए और बिल्कुल साफ कर देना चाहिए कि हम युद्ध के इन साम्राज्यवादी उद्देश्यों का समर्थन नही करेंगे।

जैसा मैंने ऊपर बताया है कि स्थिति जल्दी ही बहुत ज्यादा पेचीदा हो सकती है, अगर पश्चिमी शक्तियां रूस के विरुद्ध गतिमान हो जाय और इटली के साथ उनका षड्यन्त्र सफल हो जाय। वे इसे साम्राज्य के विरुद्ध धर्मयुद्ध बतायेंगे और उसकी आड़ में न केवल अपने साम्राज्य को मजबूत करने की कोशिश करेंगे बल्कि सोवियत रूस के समाजवादी राज्य को भी छिन्न-भिन्न कर देंगे। इसी नीति के साथ हम सहमत हों या न हों, यह हर दृष्टि-बिन्दु से एक विपत्ति होगी। मेरी आपसे प्रार्थना है कि इस बात को ध्यान में रक्खें और हिन्दुस्तानी वार्ताओं को इस दृष्टि से देखें।

आप देखेंगे कि आप के लेखो में एक-दो आशावादी शब्दों के प्रयोग और उत्तर-प्रदेश के गवर्नर के आनन्द भवन में आने-जैसी छोटी घटनाओं से हर जगह यह असाधारण असर पड़ा कि ब्रिटेन के साथ किसी-न-किसी तरह का निपटारा हो रहा है और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल जल्दी ही फिर पदारूढ़ हो जायंगे। जिन्ना हमारी आजादी का मजाक उड़ाकर इससे फायदा उठा रहे हैं। मुस्लिम लीग को अपना सिर उठाने का मौका मिल जाता है। और हमारे पत्र-सम्पादक तो हमेशा की तरह गलत व्यवहार करते ही है। इन सब बातो से हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड दोनो में जनता के मन पर गलत असर होता है। इससे समझौते की सम्भावना भी बहुत कम हो जाती है। फिर भी यही होगा कि वाइसराय शिकायत करेगा कि उसे गुमराह किया गया। 'पायनियर' ने यह शीर्षक लगाया है—"कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र, एक धोखा-धड़ी" इत्यादि। हर जगह पूछा जा रहा है कि पर्दे के पीछे क्या हो रहा है? हर जगह किसी बडी और आकस्मिक घटना की आशा लगी हुई है।

इन सब बातो का हकीकत से और वर्तमान परिस्थिति से मेल नही बैठता।

इतना ही नहीं, किसी भी तरह की दिमागी या दूसरी तैयारियों के लिए गलत वातावरण पैदा होता है।

मुझे खुद को तो यकीन है कि निपटारे की कोई वास्तविक सम्भावना नहीं है, हालांकि ब्रिटिश सरकार वेशक उसे पसन्द करेगी। लेकिन जो हमारी कम-से-कम मांग है, उसे वे मानने वाले नहीं है। आज ब्रिटिश सरकार पहले से कहीं ज्यादा प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवादी है और उससे हमारी वात मान लेने की आशा रखना ऐसी वात की आशा रखना है जो इस स्थिति में हो नहीं सकती। झूठी आशाएं पैदा करना इन्साफ और मसलहत दोनों के खिलाफ है और उससे हमारी स्थिति कमजोर भी हो सकती है। मेरा सुझाव है कि दूसरे पहलू पर जोर देना अधिक न्यायपूर्ण है ताकि दूसरा पक्ष ठीक-ठीक जान सके कि क्या मामला है और वह उसके अनुसार अपने को बना ले।

सप्रेम आपका
जवाहरलाल

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २४।१।१९४०। 'ए बंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

६०. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

निजी

इलाहाबाद
४ फरवरी, १९४०

प्रिय बापू,

आप कल दिल्ली पहुंचेंगे और ऐसा मालूम होता है कि आप एक सप्ताह या अधिक वहां ठहरने वाले हैं। मुझे पता नहीं कि वहा क्या घटनाएं होंगी और हममें से किसी को बुलाने की आपको जरूरत हो सकती है या नहीं। मैं खुद तो नहीं समझता कि ऐसा होने की जरा भी सम्भावना है, क्योंकि मुझे सरकारी रवैये में रत्तीभर भी फर्क दिखाई नहीं देता। जो हो, मैं आपको खबर देना चाहता था कि अगले दो सप्ताहों में दिल्ली जाने का विचार करना मेरे लिए बहुत ही कठिन है। मेरा यह सारा समय पूरी तरह भरा हुआ है। आज रात को मैं दो दिन के लिए लखनऊ जा रहा हूं। ७ ता० को एक दिन के लिए इलाहाबाद आऊंगा और ८ की सुबह बम्बई के लिए रवाना हो जाऊंगा। वहां मुझे योजना-समिति की

महत्वपूर्ण वैठकों में शरीक होना है, जो मैंने कुछ मामलों पर विचार करने के लिए खास तौर पर वुलाई है। अगर मैं वहां नही गया तो सारी वैठक का काम विल्कुल गड़बड़ और वेकार हो जायगा। वम्वई में मैं ६ तारीख की सुवह से १२ तारीख की रात तक रहूंगा। १२ की रात को लखनऊ के लिए रवाना हो जाऊंगा। १४, १५ और १६ को प्रान्तीय कांग्रेस और प्रतिनिवियों की सभाओ के लिए लखनऊ में रहूंगा। वाद के दो दिन, मुझे आशा है, वड़ी सभाओं के लिए गोरखपुर में होऊंगा। अगले दो सप्ताह के लिए फिलहाल मेरा यह कार्यक्रम है।

पिछले महीने में जो घटनाएं हुई है, उन सवसे मेरा यह विश्वास पक्का हुआ है कि इस आशा के लिए जरा-सा भी कारण नही है कि ब्रिटिश सरकार हमारी स्थिति को स्वीकार कर लेगी। असल में वहुत-सी घटनाएं ऐसी हुई हैं, जिनसे साफ जाहिर होता है कि वे लोग एक वहुत निश्चित साम्राज्यवादी नीति पर चल रहे हैं। आपने देखा होगा कि ब्रिटिश संसद ने अभी एक विल पास किया है, जिसमें "गवर्नमेण्ट ऑव इण्डिया ऐक्ट" में सुवार करके कर लगाने के वारे में प्रान्तीय सरकारों के अविकार सीमित कर दिये हैं। यह खास तौर पर उत्तर प्रदेश के सम्पत्तिकर को ध्यान में रखकर किया गया है। इस तरह वह कर उठा दिया गया। ऐसे फैसलों में यह दोष तो है ही कि वह प्रान्तीय विवान सभा के अविकारों को कम कर देता है। इसके अलावा उसके लिए जो समय और तरीका चुना गया वह ब्रिटिश सरकार के साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का प्रमाण है और इससे जाहिर होता है कि उस दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नही हुआ।

पता नही, आपका ध्यान रायल सेण्ट्रल एशियन सोसायटी-द्वारा संगठित लन्दन के हाल के एक सामाजिक समारोह की तरफ आकर्पित किया गया है या नहीं। लार्ड जेटलैण्ड सभापति थे और कई मन्त्रिमण्डल के मन्त्री मौजूद थे। वाह्य उद्देश्य तो लन्दन में मुस्लिम संस्कृति और वर्म का एक केन्द्र स्थापित करना था, पर असली उद्देश्य इस्लामवाद के प्रचार को वढ़ावा देना और हिन्दुस्तान में इस भावना का दुरुपयोग करना और इस्लामी देशों में युद्ध के मित्र राष्ट्रों को लाभ पहुंचाना था। यह असावारण वात है कि किस तरह लड़ाई सच्चे साम्राज्यवादी ढंग पर वढ़ रही है और किस तरह घटनाएं दोहरायी जा रही हैं।

इन सव वातों का इस वारणा के साथ मेल नही वैठता कि इंग्लैण्ड अपने साम्राज्य को समेटने की तैयारी कर रहा है, न यह देखकर तनिक भी प्रोत्साहन मिलता है कि वाइसराय से मुलाकात करने के लिए आपके नेतृत्व में फिर लोगों का एक जुलूस वनाया जा रहा है। वही पुराना खेल फिर खेला जा रहा है; पृष्ठभूमि वही है; विविघ उद्देश्य वे ही है; पात्र भी वे ही है और परिणाम भी वही होना चाहिए।

किन्तु कुछ दुर्भाग्यपूर्ण अप्रत्यक्ष परिणाम भी है। देश में आनेवाले समझौते का वातावरण फैला हुआ है, जबकि वास्तव में उसके लिए कोई कारण नहीं है। वह कमजोर करनेवाला और हिम्मत तोड़नेवाला है, क्योंकि वह ताकत से पैदा नहीं हुआ है। कई आदमियों के मामले में तो किसी भी तरह संघर्ष से बचने और सत्ता के जो छिछड़े हमारे पास पहले थे, उन्हें फिर से प्राप्त करने की अत्यधिक लालसा से पैदा हो रहा है। संघर्ष अवाञ्छनीय तो है, परन्तु जाहिर है कि वह हर कीमत पर नही टाला जा सकता, क्योंकि कभी-कभी टालना खुद ही एक निहायत महंगा और हानिकारक मामला होता है। लेकिन अभी तो संघर्ष का कोई तात्कालिक प्रश्न नही है। सवाल है हमारी अपनी स्थिति को शान के साथ कायम रखने का और उसे किसी तरह कमजोर न करने का। मुझे अन्देशा है कि इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनों में यह असर व्यापक रूप में फैला हुआ है कि हम किसी भी हालत में कोई संघर्ष नहीं करेंगे और इसलिए हम जो भी शर्तें हमें प्राप्त हो जायंगी उन्हें स्वीकार कर लेंगे। इस प्रकार का खयाल हमें साहसहीन बनाता है। मैने पिछले पखवारे में देखा है कि हमारे कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव पर भी इसका असर पड़ा है। बहुत लोग, जो संघर्ष की सम्भावना के डर से पीछे-पीछे रह रहे थे अब फिर आगे आ गये है। क्योंकि पद और सत्ता के आनन्द भोगने की सम्भावना उन्हें फिर सामने दिखाई दे रही है। अवाञ्छनीय लोगों को कांग्रेस के बाहर रखने का कई महीने का प्रयत्न कुछ असफल हो गया, क्योंकि हिन्दुस्तान के वातावरण में इस आकस्मिक परिवर्तन के कारण उन्हें विश्वास हो गया कि समझौता होनेवाला है।

ब्रिटिश सरकार भाषा चाहे नरम काम में ले, परन्तु उसकी प्रतिक्रिया भी हमारे प्रतिकूल हो रही है। अवश्य ही वह हमारे साथ समझौता करना चाहती है, क्योंकि उसे युद्ध में हमारा समर्थन चाहिए लेकिन यह बहुत निश्चित है कि वह जरा-सी वास्तविक सत्ता छोड़ना और हमसे समझौता करने के लिए अपनी बुनियादी साम्राज्यवादी नीति को बदलना नही चाहती। साम्प्रदायिक सवाल पर वह अपना पुराना षड्यन्त्र जारी रख रही है और रक्खेगी, भले ही कभी-कभी वह कांग्रेस को तसल्ली देने के लिए मुस्लिम लीग के विरुद्ध कुछ आलोचना के शब्द इस्तेमाल करती है। जहां तक उसका सम्बन्ध है, वह अपनी वर्तमान स्थिति को ज्यों-की-त्यों रखते हुए हमें अपने पक्ष में करने की कोशिश करेगी। यह सम्भव हो तो उसके लिए बहुत अच्छा है। यह नहीं होता है, जैसा कि उसे भी दीखता है तब वह समय-समय पर हिन्दुस्तानी नेताओं से बात-चीत करती रहेगी; मामले को अधिक वक्त तक खींचेगी; यह दिखीयेगी कि हम समझौते के किनारे पर आ गये हैं और इस प्रकार संसार और हिन्दुस्तान दोनों के लोकमत को शान्त रक्खेगी।

उनके दृष्टिकोण से इस दूसरी नीति में यह लाभ और है कि वह हमारी शक्ति को थका देगी और हमे ठण्डा कर देगी, ताकि यदि अन्त में संघर्ष आ ही जाय तो उसके लिए जरूरी वातावरण न रहे। इंग्लैण्ड के सरकारी हलकों में यह आम विश्वास है कि बात-चीत करने और उन्हें स्थगित कर देने की उनकी नीति का यह परिणाम हुआ है और कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों के इस्तीफे के समय हिन्दुस्तान में जो स्थिति खतरनाक मालूम होती थी, वह अब बहुत आसान हो गई है और खतरों का कोई अन्देशा नही रहा।

मुझे ऐसा मालूम होता है कि जहां हम संघर्ष को जल्दी नही ला सकते और नही लाना चाहिए और जहां हमे किसी सम्भव और सम्मानपूर्ण समझौते के लिए दरवाजा बन्द कर देने की आवश्यकता नही, क्योंकि आपके तरीके में दरवाजा कभी बन्द नही किया जाता, वहां हमे यह भी बहुत साफ कर देना चाहिए कि हमारी पहले बताई हुई शर्तो के अलावा और किसी तरह न समझौता हो सकता है, न होगा। सच तो यह है कि इन हालात का भी लड़ाई की घटनाओं के दृष्टिकोण से थोड़ा-सा सिंहावलोकन करना पडेगा। जैसा हमने पहले कहा था, वैसा अब नही कह सकते कि हम यह जानना चाहते है कि यह युद्ध साम्राज्यवादी है या नही। हमे ब्रिटिश सरकार ने जो उत्तर दिया है वह और लड़ाई में और विदेशी मामलो में उसकी नीति बराबर पूरी साम्राज्यवादी रही है। इसलिए हमें जरूर इस माने हुए तथ्य के आधार पर चलना पड़ेगा कि यह एक सामाज्यवादी युद्ध है। चाहे दावा इसके विरुद्ध कुछ भी किया जाय, युद्ध और ब्रिटिश-नीति दिन-दिन अधिकाधिक अपशकुनवाली होती जा रही है, और मै हर्गिज नही कहूंगा कि हिन्दुस्तान किसी भी तरह उस साम्राज्यवादी दुस्साहस में फँसे, क्योंकि इससे हिन्दुस्तान को न केवल भौतिक बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि से भी हानि ही हो सकती है। आज मुझे यह मुद्दा बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण दिखाई देता है।

हर तरह मुझे मालूम होता है कि हमें सबसे महत्वपूर्ण काम यह करना है कि हम ससार के, ब्रिटिश सरकार के और हिन्दुस्तानी जनता के सामने अपनी स्थिति बिल्कुल साफ कर दे। समझौते के इस मुद्दे पर बहुत ज्यादा गलतफहमी है और यह गलतफहमी बिल्कुल हमारे विपरीत और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अनुकूल है, क्योंकि वह हमारे साधनों का युद्ध के लिए दुरुपयोग कर रहा है और यह बहाना भी कर रहा है कि उसे हमारा बहुत सद्भाव प्राप्त है। ब्रिटिश सरकार या वाइ-सराय के पास हमारे जाने से वे गलतफहमियां बढ़ती है और ब्रिटिश सरकार सम-झौते से और भी दूर हटती है।

राजगोपालाचारी के कुछ हाल के भाषणों से मुझे दुःख हुआ है, क्योंकि उनमें

औपनिवेशिक दर्जे और इसी तरह की बहुत सी ही समझौते की सी बातें है। कांग्रेस बहुत-सी आवाजों में बोलती है और आश्चर्य नही कि इसका नतीजा गड़बड़ और परेशानी हो। कम-से-कम आजादी के सवाल पर तो एक ही आवाज निकलनी चाहिए।

मैने आज आप पर दो लम्बे पत्र थोप दिये है, जिसके लिए मै आपसे क्षमा चाहता हूं।

सप्रेम आपका,
जवाहरलाल

महात्मा गांधी,
नई दल्ली
—अंग्रेजी। इलाहाबाद, ४।२।१९४०। 'ए बंच आफ़ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

६१. अब्दुल हई अब्बासी का पत्र : गांधीजी के नाम

[१३।५।१९४० को गांधीजी ने जो पत्र जवाहरलाल जी को लिखा था उसी के साथ श्री हई का यह पत्र भी उनके अवलोकनार्थ भेजा था, जैसा कि उस पत्र में स्पष्ट उल्लेख है। पत्र टाइप किया हुआ है जिस पर पुनः हाथ से लिखा गया है :—

"Suggest your shifting to a Muslim Village in U. P, if you really want to solve H. M. question."

अर्थात् "यदि आप सचमुच हिन्दू-मुस्लिम सवाल को हल करना चाहते हैं तो मैं आपको सुझाव देता हूं कि संयुक्त प्रान्त के किसी मुस्लिम गांव में आप अपना डेरा डाले।" गांधीजी ने २३।५।४० को इसका उत्तर दिया था पर क्या उत्तर दिया, यह ज्ञात नहीं है।—सम्पा०]

नजरबाग, लखनऊ
अप्रैल ८, १९४०

आदरणीय महात्मा जी,

'हरिजन' के हाल के अंक मे आपने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य मे अपने विश्वास की पुनः पुष्टि की है और कहा है कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की सिद्धि आपके जीवन का 'मिशन' है। इसके पहिले कि आप भारतीय राजनीति की इस जटिल समस्या को हल करने के लिए कोई दूसरा गम्भीर प्रयत्न करें, मैं आपसे अनुरोध करना

चाहता हूं कि इस प्रश्न का समीप से अध्ययन करें। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न से सम्बन्धित झगड़े सदा ही उत्तर भारत के किसी ऐसे भाग से शुरू होते हैं जहां ये दो जातियां पास-पास रहती हैं। आप अहमदाबाद या सेवाग्राम में रहते हुए इस प्रश्न का अध्ययन पूरे तौर पर नहीं कर सकते। आदरपूर्वक मेरा सुझाव है कि आप उत्तर भारत के किसी भाग मे अपने को स्थानान्तरित कर लें और किसी निकट ग्रामीण क्षेत्र में बस जायं। और स्पष्ट होने की खातिर मैं सुझाव देना चाहता हूं कि आप संयुक्त-प्रान्त के बहराइच या सीतापुर जिले में कोई गांव चुन लें। राजा साहब जहांगीराबाद या महमूदाबाद के ताल्लुकेदारी-क्षेत्र में कोई गांव चुनना और भी अच्छा होगा और वह गांव मुख्यतः मुसलमानों की बस्ती का होना चाहिए। इस प्रकार आप एक ही समय में दो समस्याओं का अध्ययन कर सकेंगे। आप इस स्थिति में होंगे कि मुस्लिम समाज की प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं को समझ सकें और अपने असामियों के प्रति उन मुस्लिम ताल्लुकेदारों का बर्ताव भी देख सकें, जो साम्प्रदायिक आन्दोलनों के मुख्य कर्णधार होते हैं।

सयुक्तप्रान्त में चुने जाने वाले स्थान का काशी, इलाहाबाद या अयोध्या, जो हिन्दू संस्कृति के केन्द्र हैं, होना आवश्यक नही क्योंकि वहां आप मुस्लिम मनोदशा का अध्ययन न कर पायेंगे।

आगे मै सच्चाई के साथ आपसे अनुरोध करता हूं कि सेवाग्राम का त्याग करें और संयुक्तप्रान्त के किसी भाग में बस जायं। मुझे विश्वास है कि आपकी यह 'हिजरत' उस खाई को भरने में काफी दूर तक कामयाब होगी जिसे स्वार्थी लोगों ने जान-बूझ कर चौड़ा कर दिया है।

आशा है, आप मेरे सुझाव पर गम्भीर विचार करके मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

आपका बन्धुतायुक्त
हई अब्बासी

—अंग्रेजी। लखनऊ, ८।४।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६२. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

लखनऊ
जुलाई, १७, १९४०

मेरे प्यारे बापू,

मुझे आपका पोस्टकार्ड अभी मिला है। आपने जो राह बताई है उसके अनु-

सार बहुत-कुछ किया जा सकता है और जैसा कि होता है, इसे करने के लिए हमारे पास अच्छे-योग्य आदमी भी हैं। (पर) दुर्भाग्यवश काफी बड़े पैमाने पर ऐसा कोई काम करने के लिए हमारे पास काफी रकम नही है।

हकीकत की बात तो यह है कि पिछले दो सालों से हम एक उर्दू साप्ताहिक निकालते भी रहे है। यह जाब्ते से कांग्रेस की ओर से तो नही शुरू किया गया था किन्तु प्रान्त के प्रमुख कांग्रेसजनों द्वारा प्रेरित था। इसका नाम है—"हिन्दुस्तान।" जहां तक साहित्यिक और राजनीतिक रचनाओं का सवाल है, मेरे खयाल से यह भारत का सर्वोत्तम उर्दू साप्ताहिक है। किन्तु, जैसा कि अक्सर होता है, व्यवस्था-विभाग निराशाजनक रूप से अयोग्य था, और सब प्रकार के प्रयत्न के बावजूद, यह साप्ताहिक हम पर एक बढ़ता हुआ भार है। युद्ध के कारण कागज की कीमतें बढ़ गई है और इसे आगे चलाना लगभग असम्भव हो गया है। बहुत मुमकिन है कि इसका आखरी अंक इस हफ्ते निकले। यह एक करुणाजनक बात होगी।

एक साप्ताहिक पर बहुत ज्यादा खर्च नही पड़ता और वह बहुत भला कर सकता है किन्तु उसके लिए पैसे आते रहना चाहिए। जिस प्रकार के साप्ताहिक का उल्लेख आपने किया है उससे तथा सरल उर्दू में निकाली गई बहुसंख्यक लघु पुस्तिकाओं द्वारा मुझे विश्वास है, हम मुसलमानों पर उल्लेखनीय प्रभाव डाल सकते हैं। इस समय उनका झुकाव बातों को समझने की तरफ़ है और मुस्लिम लीग के नेतृत्व के विरुद्ध भावना बढ़ी है। सब कुछ होते हुए भी, संयुक्तप्रान्त में हमें सदा से मुसलमानों का कुछ समर्थन मिलता रहा है तथा कुछ अच्छे मुसलमान कार्यकर्ता प्राप्त होते रहे हैं। दिल्ली में तो मुस्लिम लीग-विरोधी भावना तगड़ी है।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

महात्मा गांधी,
सेवाग्राम
वर्धा होकर (सी० पी०)

—अंग्रेजी। लखनऊ, १७।७।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६३. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

अगस्त १०, १९४०

मेरे प्यारे बापू,

मुझे अभी-अभी आपका ८ तारीख का पत्र मिला है। हैदराबाद के विषय में मैं कोई सुझाव नही दे सकता। लोगों की अपनी शक्ति और उनके संगठन पर बहुत-कुछ निर्भर करता है। फिर भी मै सोचता हूं कि उनके लिए ऐसे ग्रामीण अंचलों में अपने को केन्द्रित करना ज्यादा अच्छा होगा, जहां साम्प्रदायिक झगड़े होने के मौके सम्भवतः कम होगे। मै समझ नही पाता कि ऐसी परिस्थिति में वे निष्क्रिय कैसे रह सकते है। फिर भी सब मिलाकर भारत की राजनीतिक स्थिति में होनेवाले तीव्र परिवर्तनो को देखते हुए शायद तुरन्त कोई बड़ा सकट पैदा न करना ही ज्यादा अच्छा होगा। जब यह अखिल भारतीय परिस्थिति और आगे गतिशील होगी तो हैदराबाद की जनता अपने अधिकारों को सिद्ध करने के लिए ज्यादा अच्छी हालत में होगी।

एक दृष्टि से मैं हैदराबाद की घटनाओं के लिए दुखी नही हूं। बहादुर यार खां और दूसरों ने जो असम्भव रुख ग्रहण किया है उसकी प्रतिक्रिया उन्ही के खिलाफ होगी। बिलाशक इसके कारण झगड़े-फसाद होंगे। खून-खच्चर होगा। हर हालत में राज्य के कांग्रेस-कर्मियों को यह बात पूर्णतः स्पष्ट कर देनी चाहिए कि वे उत्तरदायी शासन की अपनी मांग को जरा भी कम नही कर पायेगे।

मैं समझता हूं कि आठ-नौ दिनों के अन्दर ही कार्यसमिति के वर्धा मे बैठने की सम्भावना है। तब वहा मैं आपसे मिलने की आशा करता हूं।

जहां तक युद्ध-कोप के लिए बलात् चन्दा वसूल करने की बात है मैने संयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी को लिखा है कि वह आपके पास कुछ विवरण भेज दें। कुछ तो अखबारो मे भी प्रकाशित हुए है और काफी स्पष्ट है। कुछ दूसरे यद्यपि समान रूप से स्पष्ट है, किन्तु उनकी सफाई दूसरे रूप मे दी जा सकती है। उदाहरणार्थ, एक आम ढंग यह है कि एक आदमी से चन्दा देने को कहा जाता है। वह इन्कार करता है या जितनी रकम की मांग है उससे कुछ कम देना चाहता है। तुरन्त ही या एक-दो दिन बाद वह इस आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाता है कि दूसरों को युद्ध-कोष में चन्दा देने से रोक रहा था और इस प्रकार युद्ध-प्रयत्नो मे बाधा डाल रहा था।

मुझे हाल मे ही इलाहाबाद जिले के एक ऐसे ही मामले की जानकारी हुई है। एक गरीब ग्रामीण दुकानदार से १५ या २० रुपये देने को कहा गया। उसने कहा कि

अधिक से अधिक वह पांच रुपए दे सकता है। उसे अपशब्द कहे गये और धमकी दी गई तथा तुरन्त ही उस पर एक नोटिस तामील की गई कि क्यों न भारत-रक्षा कानून के अनुसार उस पर मुकदमा चलाया जाय। आज यहां एक अदालत में उसका मुकदमा है। सामान्यतः ऐसी बात खालिस कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के साथ नही की जाती क्योंकि उनसे तो उम्मीद ही की जाती है कि वे इन्कार करेंगे। एक दूसरा मामला हमारे पास आज एटा जिले के कासगंज से आया है। २ अगस्त को एक नायव-तहसीलदार एक कांग्रेसी की दुकान पर गये और उससे युद्ध-कोष के लिए रुपया मांगा। इसके लिए इन्कार किया गया और उसने कहा कि कांग्रेसी होने के कारण वह ऐसा नही कर सकता। इस पर नायव-तहसीलदार ने उसके खिलाफ़ कार्रवाई करने की धमकी दी और उसका नाम दर्ज करा दिया। दूसरे ही दिन, यह आदमी, जो जिले के एक सुप्रतिष्ठित काग्रेसी का भतीजा है, अचानक एक दण्डात्मक पुलिस टैक्स न देने के अपराध मे गिरफ्तार कर लिया गया। वह हवालात मे डाल दिया गया और ३० घण्टे तक उसे खाने या नहाने आदि की भी सुविधाएं नहीं दी गई। यह गिरफ्तारी पूर्णतः गैरकानूनी थी क्योंकि दण्डात्मक टैक्स सिर्फ जायदाद की जव्ती-द्वारा ही वसूल किया जा सकता है, और सम्वन्धित आदमी के पास, जिसका नाम ओमप्रकाश है, वहुत काफी चल और अचल सम्पत्ति है। दण्डात्मक टैक्स की रकम सिर्फ छः रुपये थी, जो बड़ी आसानी से जव्ती द्वारा वसूल की जा सकती थी। इस पर ओमप्रकाश के चचा मानपाल गुप्त ने बड़ा हो-हल्ला मचाया और अन्त में ओमप्रकाश रिहा कर दिया गया। इस समय मामला इसी अवस्था में है।

दूसरा दिलचस्प मामला रायवरेली जिले में सिमरी के ताल्लुकेदार ठाकुर सुरेन्द्र वहादुर सिह का है। वह एक कांग्रेसी एम० एल० ए० है। उनके ताल्लुकेदार पिता की हाल में ही मृत्यु हुई है और उनके अपने ही अनुरोध पर उनका ताल्लुका कोर्ट आफ वार्डस के प्रवन्ध में ले लिया गया। डिपुटी कमिश्नर ने उन्हें सूचित किया कि उन्हें युद्ध-कोष में १५०० रुपये चन्दा देना चाहिए। एक कांग्रेसी की हैसियत से उन्होने ऐसा करने से इन्कार किया। तव उनसे कहा गया कि तालुका उन्हें वफादारी और अच्छी सेवा की शर्तो पर दिया गया है और कोर्ट आफ वार्ड्स का पूरा अधिकार है कि ताल्लुका की आमदनी में से वह यह दान दे दे। इस पर उन्होने डिपुटी-कमिश्नर को रजिस्ट्रीशुदा नोटिस दी जिसमें इस वलात् चन्दा लगाने का विरोध किया गया और इस कार्य को सर्वथा गैर-कानूनी वताया गया। उनका केस यह है कि वफादारी के अभाव में उनके तालुके को जव्त करना या न करना सरकार के अधिकार के अन्तर्गत हो सकता है, किन्तु यह उनके अविकार

की वात नही है कि मेरी इच्छा के खिलाफ मेरी ओर से चन्दा दे दें। इसके वावजूद डिपुटी-कनिश्नर ने यह रकम या तो शुद्ध कोष में दे दी है या देने जा रहे है। सुरेन्द्र-वहादुर सिंह किसी अदालत में उन पर दावा करने की सोच रहे हैं।

मुझे विभिन्न जिलों से शिकायतें मिल रही है कि किसान से प्रति हल आठ आने या एक रुपया देने के लिए दवाव डाला जा रहा है। यह तो साफ है कि वे देना नही चाहते परन्तु वैसा करने को मजवूर किये जा रहे है।

छोटे सरकारी नौकर और लघु अधिकारी तो चन्दा मांगने पर नही कह ही नहीं सकते। हाल का एक मामला वेजाब्ते, किन्तु सही तौर पर मेरी दृष्टि में लाया गया है। यह एक जिला मजिस्ट्रेट के स्टीनोटाइपिस्ट का मामला है। उससे दो सौ रुपए देने को कहा गया। उसकी तनख्वाह सवा सौ रुपये महीना थी। उसने हिचकिचाते हुए वताया कि उस पर एक वड़े कुटुम्व का भार है और यह रकम देना उसके वूते के विल्कुल वाहर है। तव उससे कहा गया कि यदि अंग्रेज लड़ाई हार गये तो भी उसके कुटुम्व को फाके करने पड़ेंगे। इसलिए उसके लिए यह चन्दा देना एक वीमे के समान है। अन्त में यह तय पाया कि युद्धकोष में वह १५० रुपये देगा। एक अचम्भे की वात यह है कि उच्चाधिकारियो से चन्दे की वात ज्यादा सुनाई नही पड़ती। वे अपने लिए इतना काफ़ी समझते हैं कि वड़ी तनख्वाह लेकर वे वड़ी कुशल सेवा प्रदान कर देते है।

उच्च वेतन पर नई-नई नियुक्तियों की संख्या दिन-दिन वढ़ती जाती है। जो कोष एकत्र किया जा रहा है सम्भवतः उसका एक वड़ा भाग इन्ही उच्च वेतनों का भुगतान करने में लग जाता है। मुझे पता चला है कि इस प्रकार के अधिकारियों से, जो जरा से या किसी भी काम के लिए नहीं मोटी-मोटी तनखाह ले रहे है, शिमला भरा हुआ है। अभी हाल की ही वात है कि एक अंग्रेज अधिकारी, जिन्हे अव तक ७५० रुपये मासिक मिल रहा था, किसी युद्धकार्य में भिड़ा दिये गये और अव उनको २५०० रुपये मासिक दिया जा रहा है। कहा तो यह गया कि उन्होने अपने तईं वड़ा भारी त्याग करके इस नये काम को स्वीकार किया है।

आपका प्यारा
जवाहरलाल

महात्मा गांधी

—अंग्रेजी। इलाहावाद, १०।८।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६४. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

सितम्बर, २१, १९४०

मेरे प्यारे बापू,

एक मामला ऐसा था, जिसे मैं आपसे कहना भूल गया। १७ सितबर को, जब हम लोग बम्बई में थे, एक तरुण लड़का, रजनी पटेल नाम का, बम्बई में (जहाज से) उतरते ही गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरुण व्यक्ति में मेरी खास-तौर से दिलचस्पी है, और मैं उसे बड़ा बुद्धिमान और योग्य व्यक्ति मानता हूं। विदेश में ५-६ साल बिताने के बाद वह भारत को लौट रहा था और अपने घर पहुंचने को बड़ा उत्सुक था; खास तौर से वह मुझे पत्र लिखा करता था कि पहुंचते ही वह मुझसे भेंट करने आयेगा, जिससे वह कांग्रेस का या इसी प्रकार का कोई सम्बन्धित उचित कार्य तुरन्त अपने हाथ में ले सके। उसके लिए यह एक विचित्र गृहागमन था कि धरती पर पांव रखते ही भारत-रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया जाय! जब वह भूमि पर उतरा उसके घर का कोई आदमी वहां मौजूद नही था, क्योंकि पहिले से आने के समय का किसी को पता न था। तथ्य की बात तो यह है कि उसकी गिरफ्तारी की खबर पहिली बार मुझे बम्बई के सन्ध्याकालीन समाचारपत्र से मालूम हुई। मैने तुरन्त ही पुलीस हवालात में उससे भेंट करने की कोशिश की किन्तु मुझे इन्कार कर दिया गया और मुझे सूचना दी गई कि जबतक बम्बई सरकार का विशेष अनुमतिपत्र न हो कोई मुलाकात नही दी जा सकती। दूसरे दिन सुबह उसे नासिक जेल भेज दिया गया।

रजनी पटेल गुजरात में आनन्द के पास सर्सा का रहनेवाला है। उसे लगभग ५-६ साल पूर्व—मैं ठीक तिथि नही जानता—सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए इंगलैण्ड भेजा गया था। उसने परीक्षा की तैयारी की, यहां तक कि परीक्षा-भवन में भी गया। जब वह परीक्षा-भवन में बैठा हुआ था तब उससे कहा गया कि चूंकि इण्डिया आफिस उसके राजनीतिक विचारों को उचित नहीं समझता इसलिए उसे बाहर निकल जाना चाहिए। वह सभाओं में तथा अन्यत्र ये विचार प्रकट करता रहा था। मुझे याद है कि यह मामला प्रश्नों-द्वारा उस समय केन्द्रीय धारा सभा में उठाया गया था।

उसके बाद विभिन्न स्थानों मे उसने अपना अध्ययन जारी रखा और अन्त में बैरिस्टर बन गया, यद्यपि उसे वकालत करने की कोई विशेष इच्छा नहीं थी: अपनी इंग्लैण्ड की यात्राओं मे मैं उसके घनिष्ठ सम्पर्क में आया; मैंने देखा कि वह बहुत बुद्धिमान और प्यारा आदमी है। तथ्य तो यह है कि वह इंग्लैण्ड में सब तरह

के आदमियो, विशेषत. अग्रेज छात्रो मे, वडा लोकप्रिय था। वह वहां छात्र-आन्दोलन, तरुण सघो, मजूर-आन्दोलन और इण्डिया लीग के साथ काम करता रहा। यहां तक कि इन कामों से उसके अध्ययन मे भी कुछ वाधा हीं पड़ी।

जव मै पिछली वार इंग्लैण्ड मे था तव मैने उससे वादा किया था कि भारत मे लौटने के बाद हम किसी मुनासिव काम मे उसका उपयोग करने की चेप्टा करेगे। मै उससे पत्र-व्यवहार कर रहा था और अपने प्रत्येक पत्र मे वह मुझे यही कहता था कि वह मेरे निदेशो के अनुसार कार्य करने की प्रतीक्षा में है।

पिछले नवम्वर में किसी समय, अर्थात् युद्ध छिडने के बाद उसने इंग्लैण्ड को अन्तिम रूप से छोड दिया और अमेरिका चला गया कि एक-दो माह वहां विताने के बाद चीन होते हुए भारत लौटेगा। चूकि वह ब्रिटिश तरुण-आन्दोलन में सुविख्यात था, अमरीकी तरुण-आन्दोलन ने उसका लाभ उठाया और सारे देश में उसका दौरा कराया। उसने नौ या दस महीने अमरीका मे विताये और तरुणों के प्रतिनिधि रूप में संयुक्त राज्य के समस्त भागो का दौरा किया। ऐसा लगता है कि वहा वह काफी लोकप्रिय रहा। मेरा ख्याल है कि वहां उसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध कड़े व्याख्यान दिये। जव वह वहां था तो श्रीमती रुजवेल्ट ने उसे ह्वाइट हाउस[1] में चाय पर बुलाया।

अन्त मे वह अमरीका से चीनी तरुण-आन्दोलन के लिए विभिन्न चिट्ठियां और सन्देश लेकर विदा हो गया। उसे यह देखकर आश्चर्य और अपमान का अनुभव हुआ कि ब्रिटिश अधिकारियो ने उसे हांगकांग मे जमीन पर उतरने नही दिया और सीधे भारत जाने के लिए विवश किया। सिगापुर में दूसरे यात्रियों को दी जानेवाली सुविधा उसे नही दी गई। और उसे थोडी देर के लिए भी भूमि पर उतरने नही दिया गया। शायद यही वात कोलम्वो मे भी हुई होगी। वम्वई आने पर उसे इस अभियान मे गिरफ्तार कर लिया गया कि उसके पास वहुत-सी आपत्तिजनक पुस्तके और कागज हैं। तथ्य तो यह है कि पुलीसवालो ने हमसे कहा कि वे वहुत दिनों से उसकी खोज में थे और किसी-न-किसी तरह उसे गिरफ्तार करना चाहते थे।

मुझे नही मालूम कि उसके खिलाफ यथार्थ आरोप क्या है, या उसके पास कौन-सी पुस्तकें या कागज थे। वहुत दिनो की अनुपस्थिति के वाद घर लौटते हुए, उसके पास वहुत-सी किताबे इकट्‌ठी हो गई होगी। जहां तक मैने उसकी वक्तृताओ की रिपोर्टे पढी है, निश्चय ही वे कडी थी, परन्तु उनसे ज्यादा भिन्न न

---

१. अमरीकी राष्ट्रपति का निवास-स्थान।

थीं, जो हममें से बहुतेरे यहां दिया करते है। वह एक स्पष्टतावादी, ईमानदार आदमी है और छिपाकर कोई काम करने का अभ्यस्त नहीं है। वह साम्यवादी नहीं है, यद्यपि इसमें सन्देह नही कि वह इंग्लैण्ड और सम्भवतः अमेरिका में भी, साम्यवादियों के सम्पर्क में आया होगा। उसका सामान्य दृष्टिकोण ऐसा है कि उसे समाजवादी कहा जा सकता है।

बम्बई छोड़ने के कुछ पहले मैंने वल्लभभाई से रजनी के बारे में कहा था और भूलाभाई से भी जिक्र किया था। मैंने उनसे, यथासम्भव उसकी मदद करने और उसके घर के लोगों से सम्पर्क स्थापित करने का अनुरोध किया था। रजनी पटेल के पिता का पता निम्नलिखित है:—

मोतीभाई वेनीभाई पटेल,

सर्सा

आनन्द होकर (गुजरात)

मुझे एक हलका-सा खयाल है, किन्तु मैं इसके विषय में निश्चित नही हूं, कि रजनी ने १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे भाग लिया था और जेल भी गया था।

मैं यह सब आपको इसलिए लिख रहा हूं कि आपको मालूम रहे और यह भी आशा रखता हूं कि सम्भवतः आप उसके लिए कुछ कर सकें।

आपका स्नेहपात्र
जवाहरलाल

महात्मा गांधी
सेवाग्राम, वर्धा होकर (म० प्र०)

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २१।९।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६५. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

सितम्बर, २३, १९४०

मेरे प्यारे बापू,

मैं 'नेशनल हेरल्ड' से एक पृष्ठ लेकर संलग्न कर रहा हूं, जिसमें संयुक्तराज्य

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के दो बड़े ही दिलचस्प फैसले प्रकाशित हुए है। ये फैसले न केवल स्वयं में दिलचस्प और अत्यन्त सु-लिखित है, वल्कि एक ऐसा विचार भी खड़ा करते हैं जो निर्णय के लिए भारत में भी उठ सकता है। निःसन्देह इस मामले में कोई तुरन्त की जरूरत नहीं है, और यदि आप वहुत व्यस्त हों तो आपके इन फैसलों को पढ़ने की आवश्यकता नही है। किन्तु मैंने सोचा कि शायद आप उनमें दिलचस्पी लें।

आपने शायद सुना होगा कि मुकुन्दराव जयकर चन्द दिनों पूर्व इंग्लैण्ड से लौट आये है। मुझे वताया गया कि आपके वम्बई से रवाना होने के ठीक पहिले वह आपसे भेंट करना चाहते थे किन्तु चूंकि वह वहां आपका आखरी दिन था, वैसा करने में उन्हें हिचकिचाहट हुई। मैं भी उनसे भेंट नही कर सका। ऐसा मालूम पड़ता है कि भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार के व्यवहार से वह विल्कुल निराश हो गये है और उनको विश्वास हो गया है कि यह सरकार कांग्रेस को दवा देने पर तुली हुई है। कहा जाता है कि भारतीय कांग्रेस कमेटी के निर्णय के विषय में उन्होने एक अद्भुत आलोचना की है। उन्होंने कहा है कि वैयक्तिक नही, सामूहिक सविनय अवज्ञा चलाई जानी चाहिए, क्योंकि मेरा ख्याल है कि वह ब्रिटिश सर-कार के आक्रमण का हमारे द्वारा जहां तक सम्भव हो वड़े-से-वड़े ढंग पर उत्तर दिया जाना पसन्द करते है।

आपको यह जानने में दिलचस्पी होगी कि सुप्रसिद्ध कांग्रेसियों के निजी वैंक-खातों की जिला अधिकारियों के आदेशों पर पुलिस-द्वारा विस्तृत जांच-पडताल की जा रही है।

पिछले दिनों लखनऊ मे एक दिलचस्प घटना घटी जव एक कांग्रेसी को ऐसे भाषण के लिए सजा दी गई जिसकी कोई मुनासिव रिपोर्ट नही थी। एक लम्वे भाषण में से एक कांस्टेवल ने कुछ वाक्य लिख लिये थे। जव इस तरह की रिपोर्ट पर एतराज किया गया तो मैजिस्ट्रेट ने कहा कि "हम पुलीस से यह आशा नही कर सकते कि वह किये जानेवाले भाषणों की रिपोर्ट लिखने की व्यवस्था करेगी", और उन्होने उसी अत्यन्त अपर्याप्त आधार पर कार्रवाई चालू कर दी। यह दिलचस्प सिद्धान्त रहा।

मुझे अभी-अभी होरेस-अलेक्जेण्डर का एक पत्र मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है कि चूंकि एंग्लो-इण्डियन अधिकारी-वृन्द ने ब्रिटिश सरकार को विश्वास दिलाया है कि कांग्रेस कमजोर है और गांधीजी का प्रभाव मिट रहा है इसलिए भारत के विषय में वह कठोर हो गई है।

मै २६ की रात को लखनऊ जा रहा हू और वहा चार दिन ठहरने की

आशा करता हूं। वहां हमारी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी तथा कुछ अन्य कमेटियों की बैठकें है।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

महात्मा गांधी
सेवाग्राम, वर्धा (सी० पी०)
—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २३।९।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६६. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

आनन्द भवन,
इलाहावाद
२।१०।४०

मेरे प्यारे बापू,

जब छः हफ्ते पहले नियोजन समिति (प्लैनिंग कमेटी) के लिए मैं वम्वई में था, तब मुझे एक उल्लेखनीय अनुभव हुआ, जो तव मे मुझे प्रायः व्यथित करता रहा है। अब आप पिछली वार बम्बई में थे तभी यह बात मुझे आप से कह देनी चाहिए थी किन्तु कार्य-समिति तथा भारतीय कांग्रेस कमेटी मेरे दिमाग पर इस तरह छा गई थी कि मैं भूल गया। मैं डाक के जरिये इसके बारे में लिखना नहीं चाहता था।

जब दोपहर को मध्यान्तर हुआ तो मैं नियोजन-समिति से घर खाना खाने को लौटा। मुझे जल्दी ही लौट जाना था और समय की वड़ी खीचातानी थी। ठीक उसी समय एक तरुण अंग्रेज युवक मेरी वहिन के आवास पर आया। वह खादी के परिधान में था—कमीज, ढीला पायजामा और टोपी में। उसने मुझे वताया कि वह सेना में एक अफसर—सेकेण्ड लेफ्टिनेण्ट—है और सेना की नौकरी छोड़ देने का निश्चय कर लिया है तथा इसके जो परिणाम हों उन्हे भुगतने को तैयार है। उसने एक कागज निकालकर दिखाया और कहा कि उसने इसे अपने कमाण्डिंग अफसर को दे दिया है और जिसे विचारार्थ सेना के प्रधान कार्यालय शिमला भेज दिया गया है। मैंने उसे पढ़ा और चकित हो गया। वह वड़ा ही

सुन्दर वक्तव्य था। मै उसकी एक प्रतिलिपि संलग्न कर रहा हु और आप खुद इसे पढ सकते है।

उसका नाम नेपियर था। वह उस नेपियर का पडपोता (प्रपौत्र) था जिसको सिन्ध का विजेता कहा जाता है। इस परिवार का सेना मे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जाहिर है कि वह वाद में जमीन पर आ गया। युद्ध आरम्भ होने के चन्द साल पहिले किशोर नेपियर एक 'प्राइवेट' के रूप में आया। किन्तु चूकि वह तेज लड़का था, और सम्भवत: अपने परिवार के कारण भी, उसे सैण्डहर्स्ट के लिए छात्रवृत्ति मिल गई और वाद में कमीशनप्राप्त अफसर वन गया। युद्ध शुरू होने के महीने दो महीने वाद अपनी टुकड़ी (रेजीमेण्ट) के साथ उसे भारत भेज दिया गया। वह मध्यभारत के महू मे रक्खा गया किन्तु स्पष्ट है कि अपने वन्धु-अफसरों से उनका मेल नही वैठा। वह अधिक गम्भीर तथा वौद्धिक व्यक्ति था और उसमें भारत, विशेषत: दीन वर्गो, के प्रति आकर्षण था। वह अफ़सरों के 'मेस' मे जाने से वचता और दूसरी जगह वाजार में अपना समय विताता जहां वह छोटे-छोटे दुकानदारो और मजदूरों से वातचीत करता। उसने हिन्दुस्तानी सीखने की कोशिश की। मै समझता हू कि अपनी तनख्वाह का काफी अच्छा हिस्सा वह गरीवों में वाट देता था

अफसर-वन्धुओं ने इसे पसन्द नही किया। कमाण्डिग अफसर ने इसके वारे मे उससे कहा और उन दोनों में काफी वहस हुई। वह अपने पेट की ओर से विशेषत: भारत मे नौकरी करने की ओर से, अधिकाधिक विरक्त रहने लगा। वह उसे छोड़ देना चाहता था किन्तु युद्धकाल में यह सम्भव न था। अन्त में उसने संलग्न रुक्का अपने सी० ओ० (कमाण्डिग अफसर) को दिया।

उसकी रेजीमेण्ट महू से झांसी को स्थानान्तरित कर दी गई। तव उसने अन्तिम निश्चय करने की सोची---फिर परिणाम कुछ ही क्यों न हो। उसने जाकर अपना यूनीफार्म---परिधान---वेच दिया। मुख्यत: तो यह अपने सैनिक जीवन को निश्चित रूप से समाप्त करने के लिए, और उससे कुछ पैसा भी खड़ा कर लेने के लिए, किया गया था। खास तौर से वह इसे पसन्द नही करता था कि उसे भारत से इंगलैण्ड भेज दिया जाय।

तव मुझसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए उसने इलाहावाद टेलीफोन किया। उसे मालूम हुआ कि मैं वम्वई मे हूं। वहां से उसने मेरा पता भी ले लिया। सीधे वम्वई गया और स्टेशन से मेरी वहिन के घर पहुंच गया।

मेरे लिए यह एक नई स्थिति थी, और मैं पूर्णत: चकित रह गया। २५ साल के इस भयानक रूप से सच्चे तरुण के प्रति मेरा हृदय उमड़ पड़ा किन्तु मैं यह समझ

नहीं सका कि मुझे क्या करना चाहिए। बम्बई आकर वह सेना से भाग खड़ा हुआ था—और वह भी युद्धकाल में। सैनिक कानून में यह गम्भीरतम अपराध है और इसमें कोई सन्देह नहीं था कि एक-दो दिन में वह गिरफ्तार कर लिया जायगा और उसका कोर्ट-मार्शल (फौजी न्यायालय के सामने मुकदमा) होगा। उससे मुझे पता चला कि दूसरे दिन उसे झांसी पहुंचकर अपनी उपस्थिति की रिपोर्ट देनी है। यदि वह अगली ट्रेन पकड़ ले, जो थोड़ी देर बाद ही छूटती थी, तो समय पर उसके झांसी पहुंचने की सम्भावना की जा सकती थी।

मैं नेपियर से और लम्बी बातचीत करना चाहता था किन्तु अब भी मैं नियोजन-समिति को काफी इन्तजार करवा चुका था। यदि उसे अगली ट्रेन से झांसी जाना है तो दूसरा अवसर उसे नहीं मिलेगा। मैंने महसूस किया कि उसे वहां जाना ही चाहिए। भगोड़ेपन का आरोप लगाये जाने से अन्य परिणामों के अलावा मुख्य प्रश्न भी उलझ जाता। उसने सैनिक अधिकारियों पर अपनी स्थिति पूरेतौर पर स्पष्ट कर दी थी और उस सवाल पर वह उनका सामना कर सकता था तथा उनसे लड़ सकता था। अपनी निष्ठा और विश्वास की घोषणा के बाद, मैं मुश्किल से ही उसके ब्रिटिश सेना में बने रहने की कल्पना कर सकता था किन्तु मैं यह भी नहीं देख पाता था कि वह उससे कैसे निकल सकता है। सेनाधिकारी ऐसी बातों की अनुमति नहीं देते। मैं इसका अनुमान नहीं कर सकता था कि उसका क्या होनेवाला है, किन्तु इतनी बात मेरे सामने साफ थी कि आगे उसके सामने कठिन समय आनेवाला है। कुछ भी हो मैंने महसूस किया कि इस सवाल को भगोड़ेपन के साथ मिश्रित नहीं करना चाहिए। इसलिए मैंने उसे सलाह दी कि दूसरी ट्रेन से उसे झांसी चला जाना चाहिए और वहां अपने कमाण्डिग अफ्सर को आगमन की सूचना देनी चाहिए। मैंने उसे यह भी सुझाव दिया कि वहां उसे खादी कुर्त्ता और पायजामे में अफसर के सामने नहीं जाना चाहिए। उसने कहा कि उसके पास शार्ट्स इत्यादि हैं और वह उन्हें पहन लेगा। मैंने पूछा कि क्या उसके पास काफी रकम है। उसने कहा, अपने मतलब भर के लिए उसके पास काफी है।

उसने मेरी सलाह मान ली और कहा कि वह लौटकर जा रहा है। मैंने उससे कहा कि यदि सम्भव हो तो मुझको या मेरी बहिन को पत्र भेजता रहे और मुझे सूचित करे कि आगे क्या हुआ। तब से मुझे उसकी कोई खबर नहीं मिली है। अब मुझे बताया गया है कि जो भी रेजीमेण्ट झांसी भेजी जाती है, वह शीघ्र ही मिस्र चली जाती है। अब मैं पता लगाने की कोशिश कर रहा हूं कि नेपियर की रेजीमेण्ट का क्या हश्र हुआ। बहुत सम्भव है कि उसके विचारों के कारण और उसके भागकर चले जाने के कारण उसे गिरफ्तार करके रखा गया हो और बाहर समाचार

भेजने का मौका ही उसे न दिया गया हो और वाद में उसे भारत के वाहर भेज दिया गया हो।

उसका चेहरा मेरे सामने उभर आता है और मैं अक्सर सोचा करता हूं कि क्या मैने उसे ठीक सलाह दी।

आपका स्नेहपात्र
जवाहरलाल

—अंग्रेजी। इलाहावाद, २।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६७. जवाहरलाल का तार : गांधीजी के नाम

१८।१०।४०

महात्मा गांधी
सेवाग्राम
वर्धा

प्रतापगढ़ को रवाना हो रहा हूं। वाद का कार्यक्रम—कल रायवरेली, २० सुल्तानपुर, २१ फैजावाद, २२ वारावंकी, २३ लखनऊ, फिर इलाहावाद।

जवाहरलाल

—अंग्रेजी। इलाहावाद, १८।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६८. जवाहरलाल का तार : गांधीजी के नाम

२४।१०।४०

महात्मा गांधी
सेवाग्राम
वर्धा

आपका पत्र (मिला) सामान्यतः सहमत हूं।

जवाहरलाल

—अंग्रेजी। २४।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

६९. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

अक्तूबर २४, १९४०

मेरे प्यारे बापू,

मैं एक पत्र, जो मै मौलाना को भेज रहा हूं, का प्रतिलिपि संलग्न करता हूं। आपको याद होगा कि एक दिन आपने महमूद का हवाला दिया था। मै नही जानता कि आपकी सूचना का स्रोत क्या था किन्तु कम-से-कम इस मामले में तो मै सोचता हूं कि महमूद निन्दा के योग्य नही है।

आज यहां आने पर मुझे आपका दिनांक २१ अक्तूबर का पत्र मिला। उसके उत्तर में मैंने आपको एक संक्षिप्त तार भेजा है। निश्चय ही एक तार में कोई बात साफ़ व्यक्त करना कठिन ही है। मेरा दिमाग इस बात में किसी तरह साफ नही है कि भविष्य क्या होने वाला है। मैं भारत की समस्या को उसके वृहद् विश्व-पार्श्व-भूमि पर रखकर अधिकाधिक देखने लगा हूं। स्वभावतः राजनीति की दृष्टि से मैं उसके बारे में सोचता हूं। मै सोचता हूं कि आपकी योजना में महती सम्भावनाएं है इसलिए मै पसन्द करता हूं कि वह आगे बढ़े और जहां तक मै कर सकता हूं, उसमें मदद करूं। किन्तु ठीक-ठीक यह न जानने के कारण कि आप उसे किस प्रकार विकसित करना चाहते है, मैं कुछ उलझन का अनुभव करता हूं।

मैं नही जानता कि आप संसार के आध्यात्मिक नेता (यही पद आपने प्रयोग किया है) किन्हे समझते है किन्तु यदि वे संगठित धर्मो या धार्मिक समूहों के नेता है, तो मुझे पूरा यकीन है कि वे निराशाजनक वर्ग है। वह सामान्य मानव ही है जो अन्त में कुछ अन्तर डाल सकेगा और उस तक पहुंच ऐसी होनी चाहिए कि वह उसे समझ सके। यदि वह पहुंच या राह उसकी शक्ति या समझ के विल्कुल परे है तो वह निष्फल हो जायगी। मै समझता हूं कि युद्ध की विभीपिका एक प्रवल प्रतिक्रिया उत्पन्न करने को विवश है। किन्तु यह प्रतिक्रिया आयेगी तभी, जव उससे निकलने का कोई रास्ता , जो वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय स्वाधीनता की सुरक्षा का आश्वासन (गारण्टी) दे, खोज लिया जायगा। इस गारण्टी के विना अहिसा लोगों के दिमाग में गुलामी और भाग्य के प्रति कन्धा डालने के अर्थ में आती है। यह तर्क भारत पर भी लागू होता है। हमे अपने देशवासियो में एक छलना-पूर्ण वातावरण मिला है, इसके साथ उनमें भविष्य तथा इसके वारे में उलझन भी है कि उन्हें क्या करना चाहिए।

मुझे मंगल सिह का पत्र मिल गया है। मै नही जानता कि आप इसके सम्वन्व में मुझसे क्या करने को आशा रखते है। वह जो कुछ कहता है उसके सव फलि-

तार्थों को मैं समझता हूं। मंगलसिंह बहुत ज्यादा विश्वसनीय आदमी नहीं है, फिर भी मैं समझता हूं कि इस मामले के बारे में मुख्य रूप में उसकी बात सही है। मैं सिखों और कांग्रेस विषय पर अखबारों के लिए एक लेख लिख रहा हूं। यह काफ़ी साफ वक्तव्य होगा।

सुलतानपुर जिले के अपने दौरे में मुझे युद्ध-कोष के लिए बलात् चन्दा वसूल करने की बहुसंख्यक शिकायतें प्राप्त हुईं। इसके बारे में मैं एक पत्र संलग्न करता हूं। जांच करने पर मैंने इसे पूर्णतः ठीक पाया। मेरे पास कोड़ियों ने आकर शिकायत की कि स्कूल के अधिकारियों द्वारा उनमें से हर एक से युद्धकोष के लिए पाठ्य-शुल्क के साथ जबर्दस्ती एक आना मासिक वसूल किया गया—उनके विरोध के बावजूद। इन बच्चों को इस प्रकार चन्दा देने को मजबूर करना मुझे खास तौर से नीच कृत्य लगता है।

आपका स्नेहपात्र

ज० ला०

महात्मा गांधी

सेवाग्राम

वर्धा (सी० पी०)

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २४।१०।१९४०। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

७०. जवाहरलाल का तार : गांधीजी के नाम

४ दिसम्बर, १९४१

महात्मा गांधी

वर्धा

अभी पहुंचा हूं। कल सुबह दो दिन के लिए लखनऊ लौट रहा हूं। फिर इलाहाबाद। भविष्य मौलाना और आपके आदेश पर निर्भर है। समझता हूं आपका बारडोली जाना लम्बी यात्रा का कारण नहीं होगा।

मौलाना तथा दूसरों को प्यार।

जवाहर

—अंग्रेजी। ४।१२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

७१. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

आनन्द भवन,
इलाहाबाद, दिसम्बर १०।१९४१

मेरे प्यारे बापू,

मुझे लखनऊ में विलम्ब हो गया और आज सुबह ही मैं यहां लौटा हूं, तब आपका ५ दिसम्बर का पत्र मिला है।

जैसा कि मैंने आपको लिखा था, मौलाना से मिलने एक दिन के लिए मै कलकत्ता जाना चाहता था किन्तु उन्होंने मुझे कह दिया कि वह बारडोली जाते हुए खुद ही यहां आना और मेरे साथ एक दिन बिताना चाहते है। इसलिए मै कलकत्ता नही जाऊंगा। मै नही जानता कि वह यहां कब आ रहे है, मै तो चाहता हूं कि वह जल्दी आयें जिसमें हम दोनों कार्यसमिति की बैठक की वास्तविक तिथि से दो दिन पूर्व बारडोली पहुंच सकें। सम्भवतः हम बम्बई होते हुए जायंगे। ज्योही मौलाना से मुझे निश्चित खबर मिली मै आपको सूचित करूंगा। सम्भावना है कि इन्दु भी मेरे साथ बारडोली आये।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

महात्मा गांधी, बारडोली (जिला सूरत)

--अंग्रेजी। इलाहाबाद, १०।१२।१९४१। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

७२. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

जनवरी ५, १९४२

मेरे प्यारे बापू,

मै पिछली रात यहां पहुंच गया। बारडोली में हुई घटनाओं ने दूसरों की भांति मुझे भी स्वभावतः उग्रतापूर्वक सोचने को विवश किया है। मैं सच्चाई के साथ यह आशा करता हू कि हमारे वर्धा में मिलने तक ऐसा सन्तोपजनक रास्ता निकल आयेगा जिससे आपको और दूसरों को भी खुशी हो। यह बड़ा दुःखदायी है कि इस खतरनाक अवसर पर कोई ऐसी बात हो, जिससे जन-मानस में कोई उलझन वा भ्रान्ति पैदा हो। मै ११ की सध्या को वर्धा पहुंचने और दूसरे दिन आश्रम में उपस्थित होने की आशा करता हूं।

मैं चाहता हूं कि वर्धा से वनारस की अपनी यात्रा का कार्यक्रम वनाने में आप चन्द घण्टे के लिए इलाहावाद मे अपनी यात्रा भंग करने और वहां से ज्यादा सुविधा-जनक ट्रेन पकड़ने के औचित्य पर विचार करें। इससे आप एक रात के कष्ट और रात के वड़े ही असुविधाजनक समय पर वनारस पहुंचने से वच जायेंगे। यह इलाहा-वाद में आपको किसी प्रकार का कष्ट देने के विचार से नही कह रहा हूं,—वहां चन्द आदमियों को ही यह वात जानने की जरूरत है,—वल्कि पूर्णतः आपके आराम और सुविधा की दृष्टि से कह रहा हूं। सम्भवतः मै भी आपके साथ ही वर्धा से यात्रा करूंगा क्योकि मेरा भी वनारस जाने का विचार है।

इन्दु वम्वई में है और सम्भवतः वह भी लगभग उसी समय वर्धा पहुंचेगी जव मैं पहुंचूंगा।

आपका स्नेहपात्र
ज० ला०

महात्मा गांधी
स्वराज्य आश्रम, वारडोली

—अंग्रेजी। इलाहावाद, ५।१।१९४२। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

७३. पुरुषोत्तमदास टण्डन का पत्र : गांधीजी के नाम

१० क्रास्थवेट रोड, इलाहावाद
८-६-४५

पूज्य वापू जी, प्रणाम।

आपका २८ मई का पत्र मुझे मिला। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और हिन्दु-स्थानी-प्रचार-सभा के कामो में कोई मौलिक विरोध मेरे विचार में नही है। आपको स्वयं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सदस्य रहते हुए लगभग २७ वर्ष हो गये। इस वीच आपने हिन्दी-प्रचार का काम राष्ट्रीयता की दृष्टि से किया। वह सव काम गलत था, ऐसा तो आप नही मानते होंगे। राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दी का प्रचार वाञ्छनीय है, यह तो आपका सिद्धान्त है ही। आपके नये दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू-शिक्षण का भी प्रचार होना चाहिए। यह पहले काम से भिन्न एक नया काम है, जिसका पिछले काम से कोई विरोध नही है।

सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभापा मानता है। उर्दू को वह हिन्दी की एक शैली मानता है, जो विशिष्ट जनों में प्रचलित है।

वह स्वयं हिन्दी की साधारण शैली का काम करता है, उर्दू शैली का नहीं। आप हिन्दी के साथ उर्दू को भी चलाते हैं। सम्मेलन उसका तनिक भी विरोध नहीं करता। किन्तु राष्ट्रीय कामों में अंग्रेजी को हटाने में वह उसकी सहायता का स्वागत करता है। भेद केवल इतना है कि आप दोनों चलाना चाहते है। सम्मेलन आरम्भ से केवल हिन्दी चलाता आया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सदस्यों को हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा के सदस्य होने में रोक नही है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से निर्वाचित प्रतिनिधि हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सदस्य हैं, और हिन्दुस्तानी एकेडेमी हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियां और लिपियां चलाती हैं। इस दृष्टि से मेरा निवेदन है कि मुझे इस बात का कोई अवसर नही लगता कि आप सम्मेलन छोड़ें।

एक बात इस सम्बन्ध में और भी है। यदि आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अब तक सदस्य न होते, तो सम्भवतः आपके लिए यह ठीक होता कि आप हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा का काम करते हुए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में आने की आवश्यकता न देखते। परन्तु जब आप इतने समय से सम्मेलन में है, तब उसे छोड़ना उसी दशा में उचित हो सकता है, जब निश्चित रीति से उसका काम आपके नये कामों के प्रतिकूल हो। यदि आपने अपने पहले काम को रखते हुए उसमें एक शाखा बढ़ाई है, तो विरोध की कोई बात नही है।

मुझे जो बात उचित लगी, ऊपर निवेदन की। किन्तु यदि आप मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं है, और आपका आत्मा यही कहता है कि सम्मेलन से अलग हो जाऊं, तो आपके अलग होने की बात पर बहुत दुःख होते भी नतमस्तक हो आपके निर्णय को स्वीकार करूंगा।

हाल में हिन्दी और उर्दू के विषय में एक वक्तव्य मैने दिया था उसकी एक प्रतिलिपि सेवा में भेजता हूं। निवेदन है कि उसे पढ़ लीजियेगा।

विनीत,

पुरुषोत्तमदास टण्डन

पुन :—इस समय न केवल आप किन्तु हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के मन्त्री श्रीमन्नारायण जी तथा कई अन्य सदस्य सम्मेलन की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के सदस्य है। एक स्पष्ट लाभ इसमें यह है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के कामों में विरोध न हो सकेगा। कुछ मतभेद होते हुए भी साथ काम करना हमारे नियन्त्रण का अंश होना उचित है।

पु० दा० टण्डन

—हिन्दी। इलाहाबाद, ८।६।१९४५।]

७४. पुरुषोत्तमदास टण्डन का पत्र : गांधीजी के नाम

१०, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद
११-७-४५

पूज्य बापूजी, प्रणाम।

आपका पचगनी से लिखा हुआ १३ जून का पत्र मिला था। उसके तुरन्त बाद ही राजनीतिक परिवर्तनों और पंचगनी से हटने की बात सामने आई। मेरे मन मे यह आया कि राजनीतिक कामों की भीड़ से थोड़ी सुविधा जब आपको पास देखू तब मैं लिखू। आज ही सबेरे मेरे मन मे आया कि इस समय आपको कुछ सुविधा होगी। उसके बाद श्री प्यारेलालजी का ८ तारीख का पत्र आज ही मिला, जिसमे उन्होंने सूचना दी है कि आप मेरे उत्तर की राह देख रहे हैं।

आपने अपने २८ मई के पत्र मे मुझसे पूछा था कि मैं कैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मे रह सकता हूं, और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा मे भी? इस प्रश्न का उत्तर मैंने अपने ८ जून के पत्र मे आपको दिया है। मेरी बुद्धि में जो काम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कर रहा है, उससे आपके अगले काम का कोई विरोध नही होता। इस १३ जून के पत्र में आपने एक दूसरे विषय की चर्चा की है; आपने लिखा है कि आप और सब हिन्दी-प्रेमी मेरे नये दृष्टिकोण का स्वागत करें और मुझे मदद करें। मैने मौखिक रीति से आपको स्पष्ट करने का यत्न किया था, और जिस वक्तव्य की नकल मैंने आपको भेजी थी, उसमें भी मैंने स्पष्ट किया है कि मैं आपके इस विचार से कि प्रत्येक देशवासी हिन्दी और उर्दू दोनों सीखें, सहमत नहीं हो पाता। मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करती कि आपका यह नया कार्यक्रम व्यावहारिक है। मुझे तो दिखाई देता है कि बंगाली, मराठी, उड़िया आदि बोलनेवाले इस कार्यक्रम को स्वीकार नही करेंगे।

हिन्दी और उर्दू का सम्मेलन हो, इस सिद्धान्त मे पूरी तरह से मैं आपके साथ हूं। किन्तु यह समन्वय, जैसा मैंने आपसे बम्बई में निवेदन किया था और जैसा मैने वक्तव्य में लिखा है, तब ही सम्भव है, जब हिन्दी और उर्दू के लेखक और उनकी सस्थाएं इस प्रश्न में श्रद्धा दिखायें। मैंने इस प्रश्न को प्रयाग में प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सामने, थोड़े दिन हुए रक्खा था। मेरे अनुरोध से वहा यह निश्चय हुआ है कि इस प्रकार के समन्वय का हिन्दी वाले स्वागत करेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि उर्दू की संस्थाएं भी इस समन्वय के सिद्धान्त को स्वीकार करे। उर्दू के लेखक न चाहें और आप हम समन्वय कर लें, यह असम्भव है। इस काम के करने का क्रम यही हो सकता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागरी-प्रचा-

रिणीसभा, काशी विद्यापीठ, अंजुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू, जामिया मिल्लिया तथा इस प्रकार की दो-एक अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों से निजी बात की जाय, और यदि उनके संचालकों का रुझान समन्वय की ओर हो, तो उनके प्रतिनिधियों की एक बैठक की जाय और इस प्रश्न के विविध पहलुओ पर विचार हो। भाषा और लिपि दोनों ही के समन्वय का प्रश्न है, क्योंकि अनुभव से दिखाई पड़ रहा है कि साधारण कामो में तो हम एक भाषा चलाकर दो लिपि में उसे लिख लें, किन्तु गहरे और साहित्यिक कामों में एक भाषा और दो लिपि का सिद्धान्त चलेगा नही। भाषा का स्थायी समन्वय तभी होगा, जब हम देश के लिए एक साधारण लिपि का विकास कर सके। काम बहुत बड़ा अवश्य है, किन्तु राष्ट्रीयता की दृष्टि से स्पष्ट ही बहुत महत्व का है।

मेरे सामने यह प्रश्न १६२० से रहा है, किन्तु यह देखकर कि उसके उठाने के लिए जो राजनीतिक वायुमण्डल होना चाहिये, वह नही है, मै उसमें नही पड़ा, और केवल राष्ट्रभाषा के हिन्दी रूप की ओर मैंने ध्यान दिया—यह समझकर कि इसके द्वारा प्रान्तीय भाषाओं को हम एक राष्ट्रभाषा की ओर लगा सकेंगे। मैं स्वीकार करता हूं कि पूर्ण काम तभी कहा जा सकता है कि जब हम उर्दूवालों को भी अपने साथ ले सकें। किन्तु उस काम को व्यावहारिक न देखकर देश की अन्य भाषा-भाषी बड़ी जनता को हिन्दी के पक्ष में करना, एक बहुत बड़ा काम राष्ट्रीयता के उत्थान में कर लेना है। अस्तु, इस दृष्टि से मैने काम किया है। उर्दू के विरोध का तो मेरे सामने प्रश्न हो ही नही सकता। मै तो उर्दूवालों को भी उसी भाषा की ओर खीचना चाहूंगा, जिसे मैं राष्ट्रभाषा कहूं। और उसे खीचने की प्रक्रिया में स्वभावतः उर्दूवालों का मत लेकर भाषा के स्वरूप-परिवर्तन में भी बहुत दूर तक निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर जाने को तैयार हूं। किन्तु जबतक वह काम नही होता, तबतक इसी से सन्तोष करता हूं कि हिन्दी-द्वारा राष्ट्र के बहुत बड़े अशो में एकता स्थापित हो।

आपने जिस प्रकार से काम उठाया है, वह ऊपर मेरे निवेदन किये हुए क्रम से बिल्कुल अलग है। मै उसका विरोध नही करता, किन्तु उसे अपना काम नही बना सकता।

आपने गुजरात के लोगों के मन में दुविधा पैदा होने की बात लिखी है। यदि ऐसा है तो आप कृपया विचार करें कि इसका कारण क्या है? मुझे तो यह दिखाई देता है कि गुजरात के लोगों (तथा अन्य प्रान्तों के लोगो) के हृदयों में दोनों लिपियों के सीखने का सिद्धान्त घुस नही रहा है। किन्तु आपका व्यक्तित्व इस प्रकार का है कि जब आप कोई बात कहते है, तो स्वभावतः इच्छा होती है कि उसकी पूर्ति की जाय। मेरी भी तो ऐसी ही इच्छा होती है किन्तु बुद्धि आपके बताये मार्ग का निरीक्षण करती है, और उसे स्वीकार नही करती।

आपने पेरीन वहिन के वारे मे लिखा है। यह सच है कि वे दोनों काम करना चाहती है। उसमें तो कोई वावा नही है। राष्ट्रभापा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के कार्यकर्ताओं मे विरोव न हो और वे एक-दूसरे के कामो को उदारता से देखे, इसमें एक वात सहायक होगी कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा और राष्ट्रभापा-प्रचार-समिति का काम अलग-अलग संस्थाओं द्वारा हो, एक ही संस्था द्वारा न चले। एक के सदस्य दूसरे के सदस्य हों, किन्तु एक ही पदाविकारी दोनों संस्थाओ के होने से व्यावहारिक कठिनाइयां और वुद्धिभेद होगा। इसलिए पदाविकारी अलग-अलग हों। आपको याद दिलाता हूं कि इस सिद्धान्त पर आपसे सन् ४२ मे मेरी वाते हुई थीं। जव हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा वनने लगी, उसी समय मैंने निवेदन किया था कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का मन्त्री और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा का मन्त्री एक होना उचित नही। आपने इसे स्वीकार भी किया था। और जव आपने श्रीमन्नारायण जी के लिए हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा का मन्त्री वनना आवश्यक वताया, तव ही आपकी सम्मति से यह निश्चय हुआ था कि कोई दूसरा व्यक्ति राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के मन्त्रिपद के लिए भेजा जाय। और उसके कुछ दिन वाद आनन्द कौसल्यायनजी भेजे गये थे। यही सिद्धान्त पैरीन वहिन के लिए लागू है। जिस प्रकार श्रीमन्नारायणजी हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के मन्त्री होते हुए राष्ट्रभापा-प्रचार-समिति के स्तम्भ रहे है, उसी प्रकार पैरीन वहन दोनों सस्थाओ में से एक की मन्त्रिणी हों, और दूसरी में खुलकर काम करें। इसमें तो कोई कठिनाई नही है। यही सिद्धान्त सव प्रान्तों के सम्वन्व में लगेगा। सम्भवतः श्रीमन्नारायणजी उन सव स्थानों में, जहां राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का काम हो रहा है, हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा की शाखाएं खोलने का प्रयत्न करेंगे। उन्होंने राष्ट्रभापा-प्रचार-समिति के कुछ पदाविकारियों से हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा का काम करने के लिए पत्र-व्यवहार भी किया है। आपस में विरोव न हो, इसके लिए यह मार्ग उचित है कि दोनों संस्थाओं की शाखाएं अलग-अलग हों, और उनके मुख्य पदाविकारी अलग हों। साथ ही, मेल और समझौता रखने के लिए दोनों की सदस्यता सवके लिए खुली रहे। यह तो मेरी वुद्धि में ऐसा काम है जिसका स्वागत होना चाहिए।

आपने मेरे वक्तव्य को पढ़ने की कृपा की, और उससे आपने यह परिणाम निकाला कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा विलकुल मेरा ही काम करेगी, और मुझे उसका सदस्य होना चाहिए। आपने यह भी लिखा कि आपने मुझे सदस्य होने के लिए कहा था। किन्तु मैंने यह कह कर इन्कार किया कि जवतक अव्दुलहक साहव उसके सदस्य न वनेंगे, मैं भी वाहर रहूंगा। यह सच है कि मैं हिन्दुस्तानी-प्रचार-

सभा का सदस्य नहीं बना हूं। इस सम्बन्ध में सन् ४२ में काका कालेलकर जी ने मुझसे कहा था और हाल में डा० ताराचन्द ने। आपने बम्बई पंचगनी जाने से पहले एक लिफाफा मे दो पत्र मुझे भेजे थे। उनमें से एक में आपने इस विषय में लिखा था। किन्तु मुझे बिल्कुल स्मरण नही है कि कभी आपने मौखिक रीति से मुझको हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा का सदस्य बनने के लिए कहा हो, और मैंने अब्दुलहक साहब का हवाला देकर इनकार किया हो। मुझे लगता है कि आपने एक सुनी हुई बात को अपने सामने हुई बात में, स्मृतिभ्रम से, परिणत कर दिया है। सन् ४२ में काका जी ने जब चर्चा की उस समय मैंने उनसे मौलवी अब्दुलहक तथा उर्दूवालों को लाने की बात अवश्य कही थी। तात्पर्य वही था जो आज भी है, अर्थात् यह कि जबतक उर्दू और हिन्दी के लेखक हिन्दी और उर्दू के समन्वय में शरीक नही होते तबतक यह प्रश्न हल नहीं हो सकता। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा यदि उस काम में कुछ भी सफलता प्राप्त करेगी, तो वह अवश्य मेरे धन्यवाद की पात्री होगी। आज तो हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा में शामिल होने में मेरी कठिनता इसलिए बढ़ गई है कि वह हिन्दी और उर्दू को मिलाने के अतिरिक्त हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियों और लिपियों को अलग-अलग प्रत्येक देशवासी को सिखाने की बात करती है।

यह तो मैने आपके पत्र की बातों का उत्तर दिया। मेरा निवेदन है कि इन बातों से यह परिणाम नही निकलता कि आप अथवा हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के अन्य सदस्य सम्मेलन से अलग हों। सम्मेलन हृदय से आप सबों को अपने भीतर रखना चाहता है। आपके रहने से वह अपना गौरव समझता है। आप आज जो काम करना चाहते है, वह सम्मेलन का अपना काम नही है। किन्तु सम्मेलन जितना करता है, वह आपका काम है। आप उससे अलग जो करना चाहते है, उसे सम्मेलन मे रहते हुए भी स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते है।

विनीत

पुरुषोत्तमदास टण्डन

—हिन्दी। इलाहाबाद, ११।७।१९४५]

७५. पुरुषोत्तमदास टण्डन का पत्र : गांधीजी के नाम

१०, क्रास्थवेटरोड, इलाहाबाद

२।८।४५

पूज्य बापू जी, प्रणाम,

आपका १५ जुलाई का पत्र मिला। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार खेद के साथ आपका पत्र स्थायी समिति के सामने रख दूंगा। मुझे तो जो निवेदन करना था, अपने पिछले दो पत्रों में कर चुका।

आपके पत्र के साथ भाई किशोरलाल मशरूवाला जी का पत्र मिला है। उनको मैं अलग उत्तर लिख रहा हूं। वह इसके साथ है। कृपया उन्हें दे दीजिएगा।

विनीत

पुरुषोत्तमदास टण्डन

—हिन्दी। इलाहाबाद, २।८।१९४५]

७६. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

२१ एकमान रोड

लाहौर

अगस्त २७, १९४५

मेरे प्यारे बापू,

मैं कृष्ण मेनन के पास से आये हुए पत्र की प्रतिलिपि संलग्न कर रहा हूं जिसमे आपको दिलचस्पी हो सकती है। मैं इसे वल्लभ भाई को भेजना चाहता था किन्तु मुझे ठीक पता नही कि वह कहां है। शायद आप इसे उनको दिखा सकें।

मैं कुछ दिनो से सीमाप्रान्त और पजाब के मामलों मे फँसा रहा हू और मुझे काफ़ी समय तक कोई समाचारपत्र देखने का भी अवसर नही मिला है। इस तरह मैं वक्त से बहुत पिछड़ गया हूं। क्या मै आपको सुझाव दे सकता हूं कि आप बादशाह खां[1] को एक पंक्ति लिखकर कहे कि वह भारतीय कांग्रेस कमिटी की अगली बैठक मे उपस्थित हो। मैं विश्वास करता हूं कि मौलाना[2] उन्हे निमन्त्रित कर रहे है।

आपका स्नेहपात्र

ज० ला०

महात्मा गाधी

पूना

—अंग्रेजी। लाहौर, २७।८।१९४५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।],
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय।

---

१. खां अब्दुलगफ्फार खां।

२. मौलाना अबुलकलाम आजाद।

७७. जवाहरलाल का पत्र : गांधीजी के नाम

आनन्द भवन

इलाहाबाद, अक्तूबर ९, १९४५

मेरे प्यारे बापू,

लखनऊ से लौटने के बाद, आज मुझे आपका पांचवी अक्तूबर का पत्र मिला। मुझे खुशी है कि आपने मुझे पूरी तौर पर लिखा और मैं कुछ विस्तार के साथ जवाब देने की कोशिश करूंगा, किन्तु मैं आशा करता हूं कि यदि इसमें कुछ देर होगी, तो आप मुझे क्षमा कर देंगे, क्योंकि इस समय मैं चुस्ती के साथ फिट होनेवाले कार्यों में बँधा हुआ हूं। मैं यहां सिर्फ़ डेढ़ दिन के लिए हूं। अनौपचारिक वार्ता करना सचमुच ज्यादा अच्छा है किन्तु इस समय मै नही जानता कि कब उसके लायक हो सकूंगा। मै कोशिश करूंगा।

यदि संक्षेप में कहूं तो मेरा विचार यह है कि हमारे सामने जो सवाल है वह सत्य बनाम असत्य या हिंसा बनाम अहिंसा का नही है। एक आदमी मान लेता है, जैसा कि उसे मानना ही चाहिए कि सच्चे सहयोग और शान्तिपूर्ण साधन को ही लक्ष्य बनाना चाहिए और ऐसा समाज निश्चित रूप से साध्य होना चाहिए जो इन चीजों को प्रोत्साहित करे। सारा सवाल यह है कि ऐसा समाज कैसे सिद्ध किया जाय और उसके विषय क्या होने चाहिए। मैं यह नहीं समझ पाता कि क्यों एक ग्राम में आवश्यक रूप से सत्य एवं अहिंसा मूर्त्त होनी चाहिए। औसत रूप से कहा जाय तो गांव बौद्धिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ा होता है और पिछड़े हुए वातावरण में कोई प्रगति नही की जा सकती। संकुचित मानसवाले लोगों के कही अधिक असत्यमय एवं हिंसक होने की सम्भावना की जाती है।

फिर हमें कुछ और भी लक्ष्य रखने होंगे—जैसे भोजन की पर्याप्तता, वस्त्र, आवास, शिक्षण, सफाई इत्यादि जो देश तथा प्रत्येक व्यक्ति के लिए लघुत्तम आवश्यकता की चीजें होनी चाहिए। इन लक्ष्यों को सामने रखकर ही हमें खास तौर से पता लगाना चाहिए कि उन्हें शीघ्रतापूर्वक कैसे प्राप्त किया जा सकता है। फिर मुझे यह भी अपरिहार्य मालूम पड़ता है कि यातायात के आधुनिक साधन तथा और भी कितने ही आधुनिक विकास-प्रक्रियाएं जारी रहनी तथा विकसित की जानी चाहिए। यदि ऐसी बात है तो अनिवार्य रूप से भारी उद्योगों की आवश्यकता रहती है। विशुद्ध ग्राम-समाज में वह कहा तक फिट होगा? व्यक्तिगत रूप से मेरी आशा है कि जहां तक सम्भव हो भारी तथा हलके दोनों प्रकार के उद्योगों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए और विद्युत्-शक्ति के विकास के कारण अब ऐसा करना सम्भव है।

यदि देश में दो प्रकार की अर्थ-व्यवस्था रहती है तो या तो दोनों के वीच संघर्ष होगा या एक दूसरे पर सवार हो जायगी।

स्वतन्त्रता तथा विदेशी आक्रमण से सुरक्षा, राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों, पर भी इस पृष्ठभूमि को सामने रखकर विचार करना होगा। मैं नही समझता कि भारत के लिए तवतक यथार्थ रूप से स्वतन्त्र होना सम्भव है जवतक कि वह यन्त्र-प्रविधि की दृष्टि से प्रगतिशील देश न वन जाय। इस क्षण मैं केवल सेनाओं के अर्थ में यह बात नही सोच रहा हूं, वल्कि वैज्ञानिक विकास के अर्थ में सोच रहा हूं। संसार की वर्तमान परिस्थिति में हम तवतक सांस्कृतिक दृष्टि से भी प्रगति नही कर सकते जवतक कि प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिक अन्वेषण की एक शक्तिमती पृष्ठभूमि न हो। आज दुनिया में व्यक्तियों तथा समूहों और राष्ट्रों में एक प्रवल ग्रहणशील, अधिकारशील प्रवृत्ति है जो संघर्ष और युद्ध को जन्म देती है। न्यूनाधिक हमारा सम्पूर्ण समाज इस पर आधारित है। इस आधार को जाना ही होगा और इकलेपन की जगह जो असम्भव है, उसे सहयोग में रूपान्तरित होना होगा। यदि इसे मान लिया जाता है और ठीक पाया जाता है, तो उसे एक ऐसी अर्थ-व्यवस्था के अर्थ में सिद्ध करने का प्रयत्न करना होगा जो शेष दुनिया से कटकर न रह गई हो वल्कि ऐसी हो जो सहकार करती हो। आर्थिक या राजनीतिक दृष्टिकोण से अलग-अलग भारत एक ऐसा शून्य या रिक्त स्थान वन जायगा जो दूसरों की अधिकार करने की प्रवृत्तियों को वढ़ाता है और इस प्रकार संघर्ष पैदा करता है।

लक्ष-लक्ष आदमियों के लिए महलों का तो कोई सवाल नही है किन्तु कोई कारण नही दिखाई पड़ता कि लाखों-करोडों के पास आरामदेह आधुनिक गृह क्यों न हों जहां रहकर वे एक सांस्कृतिक जीवन विता सकें। आज जरूरत से ज्यादा वढ़ गये वर्त्तमान नगरो मे ऐसी वुराइयां वढ़ गई है जो निन्दनीय हैं। सम्भवतः हमें इस अतिवृद्धि को निरुत्साहित करना होगा और साथ ही गांव को नगर की संस्कृति के निकट पहुंचने को प्रोत्साहित करना होगा।

इस वात को वहुत साल हो गये है जव मैने "हिन्द स्वराज' पढ़ा था और मेरे दिमाग़ में उसका सिर्फ़ एक धुधला अस्पष्ट-चित्र है। किन्तु जव मैने उसे २० या उससे भी ज्यादा साल पहिले पढ़ा था तो मुझे वह पूर्णतः अवास्तविक लगा था। तव से आपकी रचनाओं और भापणों मे मैने ऐसा वहुत कुछ पाया जो मुझे पुरानी स्थिति से आगे वढ़ना और आधुनिक धाराओं की प्रशंसा-सा लगा। इसलिए जव आपने हमसे कहा कि आपके दिमाग़ में पुरानी तस्वीर अव भी ज्यों-की-त्यों है तो मुझे आश्चर्य हुआ। जैसा कि आप जानते हैं कांग्रेस ने ग्रहण करना तो दूर उस तस्वीर पर कभी विचार नही किया। आपने खुद भी उससे इसके अपेक्षाकृत चन्द

मामूली पहलुओं के अलावा इसे ग्रहण करने को नहीं कहा। इसका फैसला तो आप ही कर सकते है कि विविध जीवन-दर्शनों से सम्बद्ध इन आधारभूत प्रश्नों पर विचार करना कांग्रेस के लिए कहां तक वाञ्छनीय है। मै तो यही कल्पना करता हूं कि कांग्रेस जैसी संस्था को ऐसी बातों पर तर्क और बहस में अपने को नही खोना चाहिए क्योंकि इससे लोगों के दिमाग में बड़ी भ्रान्ति और उलझन पैदा होगी जिसका परिणाम वर्तमान समय में काम करने की अक्षमता होगा। इससे देश में कांग्रेस तथा दूसरों के बीच भी बाड़े और खाइयां पैदा हो सकती है। आखिरकार तो इस तथा दूसरे प्रश्नों का निर्णय स्वतन्त्र भारत के प्रतिनिधि करेंगे ही। मुझे ऐसा महसूस होता है इनमें से अधिकांश प्रश्नों पर सुदूर अतीत के अर्थ में विचार और बहस की जाती है, और पिछली पीढ़ी में या उससे अधिक पीढ़ियों में सारी दुनिया में जो व्यापक परिवर्तन हुए है उनको भुला दिया जाता है। ३८ साल हो गये जब 'हिन्द स्वराज' लिखा गया था। तब से दुनिया बिल्कुल बदल गई है—सम्भवतः गलत दिशा में बदली है। किन्तु किसी भी हालत में, इन सवालों पर कोई विचार करते समय हमें वर्तमान तथ्यों, शक्तियों तथा हमारे पास आज जो मानवीय सामग्री है, उसका ध्यान रखना ही पड़ेगा, नही तो वह यथार्थ से, वास्तविकता से रहित होगा। आपका यह कहना सत्य है कि विश्व या उसका बड़ा भाग आत्महत्या करने पर तुला दीख रहा है। यह पल्लवित सभ्यता में बुरे बीज का अनिवार्य विकास हो सकता है। मैं समझता हूं कि ऐसा ही है। इस बुराई का निराकरण कैसे किया जाय कि वर्तमान और भूत में जो अच्छाइयां है वे भी बनी रहें, यही है हमारी समस्या। स्पष्ट है कि वर्तमान में भलाइयां भी है।

जल्दी जल्दी में लिखे गये ये मेरे कुछ स्फुट विचार है और मुझे भय है कि वे उठाये गये प्रश्नों के गम्भीर आशय के प्रति अन्याय करते है। मुझे आशा है कि इस जोड़े हुए विचारों के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। बाद में मै इस विषय पर अधिक स्पष्टता से लिखने की कोशिश करूंगा।

जहां तक हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा और कस्तूरबा निधि की बात है, इतना तो स्पष्ट है कि दोनों के प्रति मेरी सहानुभूति है और मै समझता हूं कि वे अच्छा काम कर रही है। किन्तु मैं उनकी कार्य-प्रणाली के विषय मे बिल्कुल विश्वास से कुछ नही कह सकता, पर मुझमें यह भावना है कि वे सदैव मेरी पसन्दगी की नही होती। वस्तुत. मुझे उनके बारे में इतनी काफ़ी जानकारी नही है कि निश्चयपूर्वक कुछ कह सकू। किन्तु इस समय तो अपनी जिम्मेदारियों का बोझ बढ़ाने के प्रति मुझे अरुचि हो गई है, क्योंकि मैं महसूस करता हूं कि समयाभाव-वश मैं उनको उठा नहीं सकता। ये अगले कुछ महीने शायद और ज्यादा समय, मेरे और दूसरों के लिए सम्भवत.

बड़े व्यस्ततापूर्ण होंगे। अतः मेरे लिए यह वाञ्छनीय नहीं लगता कि सिर्फ़ अनुकूलता दिखाने के लिए किसी जिम्मेदार कमेटी में शामिल हूं।

जहां तक शरत बोस की बात है, मैं पूर्णतः अन्धकार में हूं कि सिवाय इसके कि वैदेशिक सम्बन्धों-विषयक मेरे सामान्य रुख के बारे में उन्हें कोई अतीत काल की शिकायत हो, वह मुझसे क्यों इतने नाराज है। मैं गलत रहा हूं या सही, मुझे ऐसा लगता है कि शरत ने बचपने और गैरजिम्मेदारी के ढंग पर काम किया है। शायद आपको याद होगा कि पुराने दिनों में सुभाष स्पेन, जेकोस्लोवाकिया, म्यूनिख तथा चीन के प्रति कांग्रेस के रुख को पसन्द नहीं करते थे। शायद यह उस पुराने विचार-भेद की छाया हो। मैं दूसरी कोई बात नहीं जानता, जो घटी हो।

मैं देखता हूं नवम्बर के शुरू में आप बंगाल जा रहे हैं। शायद उस समय मैं ३-४ दिनों के लिए कलकत्ता जाऊं। अगर ऐसा हुआ तो आपसे मिलने की आशा रखता हूं।

शायद आपने अखबारों में देखा होगा कि नवनिर्मित इन्दोनेशियन प्रजातन्त्र के राष्ट्रपति ने मुझे और कुछ दूसरों को जावा की यात्रा करने को निमन्त्रित किया है। इस मामले की विशेष परिस्थिति के कारण मैंने तुरन्त इस निमन्त्रण को स्वीकार करने का निर्णय किया है—निश्चय ही वहां जाने की आवश्यक सुविधाएं मिल जाने की शर्त्त पर। यह बहुत सन्देहास्पद है कि मुझे ये सुविधाएं मिलेंगी, इसलिए सम्भवत मैं न जा पाऊंगा। जावा भारत से सिर्फ़ दो दिन के हवाई मार्ग पर है, या कलकत्ता से तो एक ही दिन लगता है। इन्दोनेशियाई प्रजातन्त्र के उपराष्ट्रपति मुहम्मद हट्टा मेरे एक बड़े पुराने मित्र हैं। मैं समझता हूं कि आप यह जानते हैं कि जावा की आबादी लगभग पूर्णतः मुस्लिम है।

मुझे आशा है, आप की सेहत ठीक है और इन्फ्लुएंजा के आक्रमण से आप पूर्णतः स्वस्थ हो गये हैं।

आपका स्नेहपात्र
जवाहर

महात्मा गांधी, पूना

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, ९।१०।१९४५। नेहरू संग्रहालय में सुरक्षित पत्रावली से।]

सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा नेहरू संग्रहालय ।

७८. विचित्रनारायण शर्मा का पत्र : गांधीजी के नाम

मेरठ
जनवरी ४, १९४६

पूज्य बापू,

सादर प्रणाम। गाडोदिया जी और डा० शर्मा के बीच जो झगड़ा चल रहा है उसमें आपने मेरी जानकारी और मत भी मांगा है। इधर गाडोदियाजी से मेरी कोई भेंट नही हुई। चिकित्सालय के ट्रस्टी के नाते भी हम नही मिल सके। जो मीटिग चिकित्सालय में रक्खी उनमें वह न आ सके। कुछ दिन मैं बीच में जेल में ही रहा, उस वीच जो मीटिग हुई उसमें मैं न रह सका। बाद में जो मीटिग हुई उनमें गाडोदियाजी नही आये। उनकी सहूलियत का ख्याल रखकर मीटिग दिल्ली ही रक्खी पर उसमे भी वह शरीक न हुए।

पहिला परिचय गाडोदियाजी का और मेरा अवश्य है पर बदक़िस्मती से उसके आधार पर मैं कोई भी अच्छी धारणा उनके विषय में नही बना सका। दूसरों से भी जो सुना वह उनके अनुकूल नही सुना। पर ऐसी धारणाओं के आधार पर किसी व्यक्ति को दोषी नही करार दिया जा सकता। ट्रस्टी के नाते जो जानकारी हुई वह बहुत कुछ शर्माजी और उनके बीच हुए पत्र-व्यवहार पर। यह सारा पत्र-व्यवहार आपके सामने रहेगा ही, फिर भी मै अपना मत देने में कोई हानि नहीं देखता हूं।

खजानची के नाते जो धन गाडोदियाजी के पास जमा रहता था उसे देने में उनकी ओर से निरर्थक देरी की गई। और उससे असुविधा भी हुई। मुझे ऐसा लगता है यह उन्होंने चिढ़कर ही किया और शर्माजी पर नाजायज दबाव डालने की कोशिश भी की। शर्माजी मुर्गी पालते हैं या शायद अण्डे खाते है यह कारण न तो यथेष्ट है और न शुरू में सम्भवत. थे ही।

अपना तथा पत्नी का इलाज कराने में शर्माजी तथा संस्था के साधनों का तो उपयोग किया, पर उसके एवज में संस्था को पारितोपिक देते समय सरल और सत्य व्यवहार नही कायम रख सके।

यह सही है, शर्माजी ने कोई निश्चित बात तय नही की थी और आज कोई खास रकम गाडोदियाजी से मांगी नहीं जा सकती है फिर भी एक समझाव सा बीच में जरूर था और उसका जिक्र बार-बार पत्रों में हुआ है लेकिन गाडोदियाजी ने उसे सीधे तरह से "ना" न करके कभी एक बात कहकर कभी दूसरी बात कहकर देने से इन्कार किया। कभी कहा इलाज ही नही हुआ, कभी कहा फ़ीस दे दी जाती थी

जबकि पहिले आने जाने का किराया भी नही दिया गया। बाद में आडिटर की शिकायत पर ही १० रुपया वास्ते खर्च दिये गये।

शर्माजी की बाबत भी मैं इतना जरूर कहूंगा और वह इसलिए कि वह शिकायत करनेवाले है कि वह और भी सहिष्णुता दिखलाते और निभाने की कोशिश करते तो अच्छा होता। पर शर्माजी का दृष्टिकोण यह था कि गाडोदियाजी जब झूठ से काम लेते है और संस्था का कोई हित-साधन भी नही करते है तो वह ऐसा कुछ क्यों करे जो चापलूसी जैसा मालूम हो।

खादी के सम्बन्ध में मेरी जानकारी यों है। जब मै जेल में ही था तो जो भाई पीछे रह गये थे उन्होंने गाडोदियाजी के हाथ रेशमी माल जरूर बेचा था और गाडोदियाजी का यह सोच लेना कि रेशम लेकर वह एक खतरा उठा रहे है और भला काम कर रहे हैं यह स्वाभाविक ही है। साधारणतः रेशम उनके हाथ बेचा ही नही जा सकता था पर यह बात ठहरी थी कि वह दाम नहीं बढ़ायेंगे इसलिए उन्हें १० प्रतिशत बिक्री दरो पर कमीशन भी दिया गया था। पर इन भाइयों का यह कहना है कि उन्होंने बाद में दाम बढ़ाये और खूब बढ़ाये। उनके कार्यकर्त्ता स्वयं आकर इन लोगों से कहते थे। मैंने पक्की जांच नही की, पर लोग तो हिसाब आदि द्वारा प्रमाणित करने की बात भी कहते है। आवश्यक होने पर जांच हो सकती है।

उनका खादी कार्य परोपकार वृत्ति से है, ऐसी छाप मेरे ऊपर नही पड़ी। ऐसे काम की जरूरत तब रही भी हो जब हमारा काम नष्ट कर दिया गया था पर हमारे पुनः क्षेत्र में आ जाने पर उन्हे उसे छोड़ देना चाहिए था। कम से कम हमारी प्रतियोगिता नही करनी चाहिए थी। हमारे पास तो शिकायतें आती रही है कि वह हमारे कारीगर और हमारे कार्यकर्त्ता एवं हमारे क्षेत्र को भी ले लेते थे। पर मैंने इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा।

उन्होने प्रमाणपत्र के लिए भी मुझे लिखा था और एक ट्रस्ट जैसी चीज खड़ी की थी। मैंने यह कहकर प्रमाणपत्र देने से इन्कार कर दिया था कि ट्रस्ट के व्यक्तियों और नियमों को देखते हुए उसे सार्वजनिक ट्रस्ट नही कहा जा सकता। प्रायः सब ट्रस्टी घर के थे और गाडो.दया जी ने सब शक्तियां अपने हाथ में रख छोड़ी थी। सार्वजनिक ट्रस्ट में लोक-सेवा के नाते ट्रस्टी बनाये जायं, यही उचित है। दाता एक दो व्यक्ति अपने रक्खे पर उससे ट्रस्ट का सार्वजनिक रूप नष्ट न होना चाहिए।

मुझे इस विषय में इतना ही कहना है।

आज्ञाकारी पुत्र,
विचित्र

—हिन्दी। मेरठ, ४।१।१९४६। 'बापू की छाया में मेरे जीवन के सोलह वर्ष' से।]
सौजन्य : श्री विचित्रनारायण शर्मा।

: छः :

संवेदन

उत्तर प्रदेश के व्यक्तियों, समस्याओं, घटनाओं एवं
समाचारपत्रों पर गांधीजी की टिप्पणियाँ

१. श्रीमती बेसेण्ट को उत्तर

[बनारस की घटना]

श्री मो० क० गांधी ने हमें लिखा है:

" 'न्यू इण्डिया' में श्रीमती बेसेण्ट ने बनारस की घटना का जो उल्लेख किया है तथा अन्यत्र भी उसकी जो चर्चा की गई है, उसके कारण, चाहे मैं कितना ही अनिच्छुक क्यों न होऊं, मेरे लिए उस सम्बन्ध में फिर से कुछ कहना आवश्यक हो गया है। श्रीमती बेसेण्ट मेरे इस कथन से इनकार करती है कि उन्होंने राजाओं के कान में कुछ कहा था।[1] मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि यदि मैं अपने कानों और अपनी आंखों पर भरोसा कर सकता हूं तो मुझे, जो-कुछ मैंने पहले कहा है, उस पर अड़े रहना चाहिए। सभापति महाराजा दरभंगा के दूसरी ओर कुछ लोग अर्धवृत्त बनाकर बैठे हुए थे, और श्रीमती बेसेण्ट उस अर्धवृत्त की बाईं ओर बैठी हुई थी। उनकी बगल में कम-से-कम एक, या शायद दो, राजे बैठे हुए थे। जब मैं बोल रहा था, उस समय श्रीमती बेसेण्ट मेरे पीछे थी। जब महाराजा उठे तब श्रीमती बेसेण्ट भी उठ खड़ी हुई। राजाओं के मंच छोड़ने से पहले ही मैंने बोलना बन्द कर दिया था। श्रीमती बेसेण्ट मंच पर आसपास के लोगों से इस घटना के सम्बन्ध मे बातें कर रही थी। मैंने बहुत धीरे से उनसे कहा कि आप बीच में बिना कुछ बोले चुपचाप बैठी रह सकती थी और यदि मेरा व्याख्यान आपको पसन्द नही था तो उसकी समाप्ति पर कह सकती थीं कि मैं इन विचारों से सहमत नहीं हूं। लेकिन उन्होंने कुछ गरम होकर कहा, "जब आप अपने भाषण के द्वारा श्रोताओं पर ऐसी छाप डाल रहे थे, मानो मंच पर उपस्थित हम सब लोग आपके विचारों से सहमत हों, तब हम चुपचाप कैसे बैठे रह सकते थे? जो बातें आपने कही थी वे आपको नही कहनी चाहिए थी।" इस घटना का जो विवरण वह देती हैं, उनके अनुसार तो वह मेरे प्रति चिन्ता भाव से प्रेरित होकर ही मेरे भाषण के बीच में बोल पड़ी थीं। किन्तु, श्रीमती बेसेण्ट का उक्त उत्तर इस बात से मेल नहीं खाता है। मैं सिर्फ इतना कहूं कि यदि उनका उद्देश्य केवल मुझे बचाना ही था तो वे चुपचाप

---

1 देखिए परिशिष्ट।

एक पुर्जा पहुँचा दे सकती थीं अथवा धीरे से मेरे कान में अपनी सम्मति कह दे सकती थी। और फिर यदि मेरा बचाव करना ही उनका अभीष्ट था तो उन्हें राजाओं के साथ उठकर हाल से बाहर चले जाने की क्या पड़ी थी? और उनके हाल से उठकर चले जाने के सम्बन्ध मे मैं तो कहता हूं कि वे राजाओं के साथ ही चली गई थी।

अपने भाषणों मे मैंने जो-कुछ कहा, उसे लें तो मैं अभी यह नही जान पाया हूं कि उसमें ऐसी कौन-सी बात थी, जो इतनी आपत्तिजनक मालूम हुई कि वे बीच मे ही बोल पड़ी। वाइसराय महोदय के आगमन तथा उनकी सुरक्षा के लिए किये गये आवश्यक प्रबन्ध के सम्बन्ध में बोलने के बाद मैंने यह दिखलाया कि किसी हत्यारे की मृत्यु श्रेयस्कर कदापि नही होती और कहा कि अराजकता के विचार हमारे शास्त्रों के विरुद्ध है और भारत मे उनके लिए कोई स्थान नही है। फिर मैंने कहा कि श्रेयस्कर मृत्यु इससे बिल्कुल अलग चीज है। ऐसी मृत्यु का आलिंगन करनेवाले लोग इतिहास मे अपने विश्वास के लिए प्राण देनेवाले लोगों के रूप में समादृत होते है। लेकिन जब कोई बम फेकनेवाला अनेक प्रकार के षड़यन्त्र रचकर मरता है, तब उसे क्या मिल सकता है? उसके उपरान्त मैंने लोगों की इस भ्रमपूर्ण धारणा पर विचार आरम्भ किया कि यदि बम फेंकनेवालों ने बम न फेंके होते तो बंग-भंग आन्दोलन के सिलसिले में हमे जो कुछ मिला, वह न मिलता। लगभग इसी समय श्रीमती बेसेण्ट ने सभापति महोदय से मेरा भाषण बन्द करा देने का अनुरोध किया। व्यक्तिशः मैं यह चाहता हू कि मेरा सारा भाषण प्रकाशित कर दिया जाय, जिसके विचार-प्रवाह की दिशा से यह बात पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाती है कि मै विद्यार्थियों को हिंसात्मक कार्रवाई करने के लिए भड़का ही नही सकता। ऐसा करना मेरे लिए सम्भव ही नही है। वास्तव में उसमें मेरा अभिप्राय यह था कि हम कठोर आत्म-निरीक्षण करे।

मैने अपना भाषण इस बात से आरम्भ किया कि मैं अंग्रेजी में बोलूं, यह श्रोताओं के लिए भी और मेरे लिए भी लज्जाजनक है। मैने कहा कि अंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम बन गई है, जिससे देश को बडी भारी हानि पहुँची है और मैं समझता हू, मैंने सफलतापूर्वक यह समझाया कि यदि गत पचास वर्षों से हम लोगों को उच्चतर ज्ञान की शिक्षा देशी भाषाओ में ही मिलती तो इस समय तक हम लोग अपने लक्ष्य के बिल्कुल निकट पहुँच गये होते। इसके बाद मैने स्वशासन-सम्बन्धी उस प्रस्ताव का जिक्र किया जो कांग्रेस मे पास हुआ था और दिखलाया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा भारतीय मुस्लिम लीग जिस समय अपने भावी-शासन विधान का मस्विदा तैयार करे उस समय उनका यह कर्त्तव्य भी है कि वे अपने

कार्यों से अपने-आपको स्वराज्य के योग्य वनाये। और यह दिखलाने के लिए कि हम लोग अपने कर्त्तव्य से कितना पीछे रहते है, मैने लोगों का ध्यान काशी-विश्वनाथ के मध्य, मन्दिर के आसपास भूलभुलैया की तरह वनी गलियों की गन्दगी तथा हाल ही में वने उन राजसी भवनों की ओर आकृष्ट किया, जिनका निर्माण करते समय गलियो की चौड़ाई या सिधाई का कोई विचार नही रखा गया है। इसके वाद मैंने श्रोताओं को शिलान्यास के दिन के चाकचिक्यपूर्ण दृश्य का स्मरण दिलाया, और कहा कि यदि उस दृश्य को किसी ऐसे अजनवी ने देखा होता, जिसे भारत के वारे में कोई जानकारी नही हो, तो वह मन पर यह गलत छाप लेकर जाता कि भारत संसार के सर्वाधिक सम्पन्न देशों में से एक है। क्योकि उस दिन हमारे सरदार-सामन्तो ने ऐसे ही वहुमूल्य आभूपण धारण कर रक्खे थे। और मैंने महाराजाओं तथा राजाओं की ओर मुड़कर विनोदपूर्वक कहा कि आप लोगों के लिए यह आवश्यक है कि जवतक हम लोग अपने आदर्शो को सिद्ध न कर ले तवतक आप लोग इस सम्पत्ति को जाति की थाती समझ कर अपने पास रखें, और मैने उन जपानी सामन्तों के कार्य का उदाहरण दिया, जिन्होने आवश्यकता न होने पर भी अपनी सम्पत्ति और उन जमीदारियों का परित्याग कर देने में अपना परम सौभाग्य माना, जो उनके वंश में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही थी। इसके उपरान्त मैने श्रोताओं से अनुरोध किया कि आप जरा इस प्रतिष्टाजनक वात पर विचार कीजिए कि जव वाइसराय महोदय हमारे पूज्य अतिथि हों, तव हम लोगों से ही उनकी सुरक्षा का प्रवन्ध किया जाय। और मै यह दिखाने का प्रयत्न कर रहा था कि इस इहतियाती कार्रवाई के लिए भी दोपी हम ही हैं, क्योंकि इसकी आवश्यकता इसीलिए हुई कि भारत मे संगठित रूप से राज-पुरुषों की हत्यायों की प्रणाली शुरू हो गई है। इस प्रकार एक ओर मैं यह दिखलाने का प्रयत्न कर रहा था कि विद्यार्थी किस प्रकार समाज को उसके जाने-माने दोपो से मुक्त कराने के लाभदायक कार्य में सहायक सिद्ध हो सकते हैं और दूसरी ओर उन्हें हिसात्मक तरीको के विचार तक से दूर रहने के लिए समझा रहा था।

मुझे वीस वर्ष के सार्वजनिक जीवन का अनुभव है और इस बीच मैंने दीसियों बार वड़े ही अशान्त और क्षुव्ध श्रोताओ के सामने व्याख्यान दिये हैं। अत: मैं दावा कर सकता हूं कि मुझे अपने श्रोताओ की नब्ज पहचानने का कुछ अनुभव है। मैं ध्यान-पूर्वक यह देखता जा रहा था कि मेरे व्याख्यान के प्रति लोगों की क्या प्रतिक्रिया है, और निश्चय ही मैंने यह नही देखा कि विद्यार्थियों पर उसका कोई अनिष्ट प्रभाव पड़ रहा है। सच तो यह है कि दूसरे दिन सवेरे उनमें से कुछ लोगों ने मुझसे आकर कहा कि वे मेरी वातों को पूरी तरह समझ गये थे और उसका उन पर काफी प्रभाव पड़ा था

उनमें से एक बड़ा तार्किक था। उसने तो मुझसे जिरह ही कर डाली। किन्तु जब मैंने अपने भाषण के दौरान जो तर्क पेश किये थे, उन तर्कों पर और भी प्रकाश डाला तो वह उनसे कायल प्रतीत हुआ। मैंने समस्त दक्षिण-अफ्रीका, इंग्लैण्ड तथा भारतवर्ष में हजारों विद्यार्थियों और अपने अन्य देशभाइयों के सामने भाषण किये हैं, और मैं दावा करता हूं कि उस दिन सन्ध्या के समय लोगों के सामने मैंने जो तर्क उपस्थित किये थे उन्ही तर्कों के आधार पर मैंने बहुत-से लोगों को अराजकतावादी तरीकों के समर्थन से विमुख किया है।

और अब अन्त मे बम्बई के श्री एस० एस० सेटलूर की बात लीजिए। उन्होंने भी 'हिन्दू' में उस घटना के सम्बन्ध में लिखा है और उनका रुख भी मेरे प्रति कोई मैत्रीपूर्ण नही है। मेरा खयाल है, उन्होने कई बातो में अनुचित रूप मे, मेरी धज्जियां उड़ा देने का प्रयत्न किया है। श्री सेटलूर ने सभा की पूरी कार्रवाई अपनी आंखो से देखी थी। किन्तु मै देखता हूं कि उसका जो विवरण वह देते है, वह श्रीमती बेसेण्ट के विवरण से भिन्न है। उनका खयाल है कि मेरे भाषण की लोगो पर जो आम छाप पड़ी, वह यह नही थी कि उन्हें मै अराजकता के लिए उत्तेजित कर रहा था, बल्कि यह कि मैं गैर-सैनिक नौकरशाहों का पक्ष-पोषण कर रहा था। श्री सेटलूर ने मेरी जो आलोचना की है, वह यही सिद्ध करती है कि यदि वह सही है तो निश्चय ही मैंने किसी प्रकार हिंसात्मक कार्रवाई को उत्तेजन देने का अपराध नहीं किया, बल्कि मेरा अपराध यह था कि मैंने राजाओं के हीरे-जवाहरात के आभूषणों आदि का उल्लेख किया।

श्रीमती बेसेण्ट के साथ तथा मेरे साथ भी पूरा-पूरा न्याय हो, इस उद्देश्य से मैं नीचे लिखा सुझाव देना चाहूंगा। वह कहती है कि मेरे जिस वाक्य ने राजाओं को उठ कर चल देने को बाध्य कर दिया, उसे उद्धृत करके वह अपना बचाव नही करना चाहती क्योंकि उससे तो शत्रुओं का ही हित होगा। उनके इससे पहले के कथन के अनुसार मेरा व्याख्यान खुफिया पुलिस के हाथ में पहुँच चुका है, इसलिए जहां तक मेरे बचाव का सवाल है, उनकी यह क्षमाशीलता किसी काम की नही है। अतः क्या यह अधिक अच्छा न होगा कि यदि उनके पास मेरा व्याख्यान हो तो वह या तो उसे शब्दशः प्रकाशित करवा दे अथवा व्यक्त किये गये ऐसे विचारों को ही प्रकाशित करवा दे, जिनके कारण, उनकी राय में, उन्हें हस्तक्षेप करने तथा महाराजाओं को उठकर चले जाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

तो मैं अपने इस वक्तव्य को अपनी पहलेवाली बात दोहरा कर ही समाप्त करता हूं, वह यह कि यदि श्रीमती बेसेण्ट बीच में ही बाधा न उपस्थित करतीं तो

मैं कुछ ही मिनटों में अपना व्याख्यान समाप्त कर देता और तब अराजकता-सम्बन्धी मेरे विचारों के विषय में किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न होता।

--अंग्रेजी से। 'हिन्दू', १७।२।१९१६। सं० गां० वां० खण्ड १३ पृ० २४१-४४।]

२. पत्रः 'न्यू इण्डिया' को, बनारस की घटना के सम्बन्ध में

आज के अपने सम्पादकीय लेख में आपने कहा है कि मैंने ईसाई धर्म-प्रचारकों के कहने से बनारसवाली घटना का उल्लेख फिर से किया है। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि मेरे वक्तव्य के प्रकाशन में ईसाई-प्रचारकों का जरा भी हाथ न था और न मैंने किसी मिशनरी से उस सम्बन्ध में बातचीत ही की है।

--मद्रास, १७।२।१९१६। 'न्यू इण्डिया' १८।२।१९१६। सं० गां० वां० भाग १३, पृ० २४४।]

३. खिलाफत

इलाहाबाद के 'लीडर' और 'यंग इण्डिया' में स्पष्ट मतभेद हो गया है। मैं 'लीडर' का इतना आदर करता हूं कि वह जो भी विचार प्रकट करता है उसे स्वीकार करने के लिए मैं बहुत प्रयत्न करता हूं। किन्तु पिछले कुछ समय से कितनी ही कोशिश के बावजूद मै उसके विचारों को स्वीकार करने में असफल रहा हूं। इसका सबसे ताजा उदाहरण है बहिष्कार और असहयोग के मामले में वह उलझन, जिसमें 'लीडर' पड़ गया है। मैंने सोचा था कि मेरा अर्थ स्पष्ट है और उसमें कोई असंगति नही है। बहिष्कार एक दण्ड है और उसकी कल्पना बदले की भावना से की जाती है। अंग्रेजी माल के बहिष्कार के पीछे विचार ऐसा है कि अंग्रेजी माल दूसरे माल से, जैसे कि जपानी माल से, चाहे अच्छा ही क्यों न हो, लेकिन मुझे उसे न खरीदना चाहिए क्योकि ब्रिटिश मन्त्रियों ने हमारे साथ जो अन्याय किया है या कुछ अंग्रेजों ने खिलाफत के बारे में जो अत्यन्त दायित्वहीन और अशिष्ट भाषा का प्रयोग किया है उसका बदला मैं अंग्रेज जनता से लेना चाहता हूं। मैं यह मानता हूं कि बहिष्कार इन स्थितियों मे हिंसा का ही एक रूप है।

असहयोग का आधार भिन्न है। यदि सरकार अन्याय करती है तो उससे

सहयोग करने का मतलब यह है कि मैं भी उसके इस अन्याय में सहभागी हूं और इस प्रकार उसके लिए अन्याय करना सम्भव बनाता हूं। इस हालत मे उस सरकार को सहयोग न देना मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु ऐसा दण्ड के रूप मे बदला लेने की भावना से नही बल्कि इसलिए करना है कि उस अन्याय का दायित्व मुझ पर न आ सके। दरअसल अगर मै उस सरकार की गाडी बिल्कुल रोक भी दूं तो यह उचित ही होगा। इसलिए इस सम्बन्ध में मेरा विचार बिल्कुल स्पष्ट है कि असहयोग बहिष्कार से उतना ही भिन्न है, जितना हाथी गधे से।

मै जो हिसा को अस्वीकार करता हूं और हड़ताल को स्वीकार करता हू, उसमें 'लीडर' को असगति दिखाई देती है। किन्तु मुझे उसमे कोई असंगति नही दिखाई देती क्योकि मुझे लगता है कि यह आवश्यक नही है कि हड़ताल से हिंसा हो ही। कोई भी व्यक्ति उचित कार्य करने से बराबर इसीलिए कतराता नही रह सकता कि उसमें खतरे की भी आशंका होती है। कदाचित् 'लीडर' की कठिनाई का कारण उसका यह विश्वास है कि जोरदार और निश्चित कार्रवाई करना जरूरी नही है और मित्र-राष्ट्रों-द्वारा विपरीत निर्णय[1] किये जाने पर भी भारत के मुसलमानों के लिए शान्त रहना सम्भव है। मेरी राय में यदि कोई ऐसी अहिंसात्मक कार्य-पद्धति नही निकाली गई जिससे इस प्रश्न का उचित समाधान हो जाय तो वह आन्दोलन[2] अवश्य ही हिसा का समर्थन करेगा। पूरी जोरदार कार्रवाई करने में भी हिसा का खतरा है, किन्तु हमे मात्र इसी भय के कारण उचित कार्य करने से डरना नही चाहिए कि कही उसका गलत अर्थ न लगा लिया जाय और उसके फलस्वरूप अनर्थ न हो जाय। मानवीय दृष्टि से कहें तो जो सम्भव है वह इतना ही कि गलतियों और गलतफहमी से बचते हुए, ईश्वर में विश्वास रखकर हम आगे बढ़ते जायें। मै जानता हूं कि यदि खिलाफत के प्रश्नके उचित हल से कम कोई चीज इस प्रश्न पर हिंसा को टाल सकती है तो वह यही चीज, यही रास्ता है। इ सलिए मैं विश्वास करता हूं कि सब विचारोके भारतीय इस आन्दोलन में शरीक होकर कोई दृढ़ रुख अपनायेंगे तो उससे मुसलमानो के हृदय में साहस और आशा का सचार होगा। किसी भी तरह की ढिलाई या उपेक्षा का परिणाम होगा निराशा और निरुत्साह।

बहुत कुछ यही बात सत्याग्रह के विरुद्ध उठाई जानेवाली आपत्ति के बारे मे भी कही जा सकती है। मै अब भी यही मानता हूं कि फिलहाल विशुद्ध और उत्कृष्ट ढंग का सत्याग्रह करने में तो अकेला मै ही समर्थ हूं। लेकिन अगर इस विश्वास के कारण

---

१ तुर्की के सुलतान की राजनीतिक और आध्यात्मिक सत्ता के सम्बन्ध में।
२. खिलाफत आन्दोलन।

मै सत्याग्रह का प्रयोग ही न करूं तब तो उसका कभी प्रसार ही नहीं होगा। किन्तु यहां इसके अतिरिक्त एक अन्य तर्क-दोष भी है। अगर सत्याग्रह सविनय प्रतिरोधके रूप में किया जाय तो उसमें अशोभन बातें होनेकी सम्भावना तो है ही। किन्तु हड़ताल कोई नया शस्त्र नही है और वह सत्याग्रह के अन्तर्गत आ भी सकता है; नही भी आ सकता। और न असहयोग के लिए ही सत्याग्रह का होना कोई आवश्यक है। जब माननीय पं० मदनमोहन मालवीय ने इम्पीरियल कौंसिल से त्यागपत्र दिया था[1] या जब सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी उपाधि से मुक्त कर दिये जाने का अनुरोध किया था[2] तो उन्होंने ये क़दम सत्याग्रही के रूप में नही उठाये थे। वेशक व्यापक असहयोग करने मे खतरा है, किन्तु यह तो केवल एक सामान्य सत्य ही बताना है। याद रखने की बात यह है कि खिलाफत मुसलमानोंके लिए जीवन और मरण का प्रश्न है। उनके लिए इसका उचित समाधान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। इधर हिन्दुओं का पुनीत कर्त्तव्य है कि जबतक उनके मुसलमान भाई अहिसा के मार्ग पर दृढ़ रहकर काम कर रहे हों तबतक वे उनके लिए अपना सब कुछ दे दें। और मैं तो नही मानता कि उन्हें उस मार्ग पर दृढ़ रखने के लिए इससे कोई अच्छा उपाय भी है कि समस्त हिन्दू, ईसाई, पारसी और यहूदी, जिन्होंने भारत को अपना देश बना लिया है, पूरे मन से उनका समर्थन करें और उन्हें हिसा का आश्रय लिये बिना अपनी शिकायत दूर करवाने के प्रभावकारी उपाय सुझावें।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १७।३।१९२०।]

४. पागलपन

मैं कह चुका हूं कि असहकार आदि उग्र शस्त्र का प्रयोग करते समय हमें धैर्य से काम लेना सीखना चाहिए। यदि हम उसका उपयोग करते हुए क्रोध से काम लें तो बड़ा नुकसान हो जाय। सरकार गुस्से में आ जाय तो हम उसे भी सहन करें, यही उचित है।जब जब राजसत्ता के हाथों अन्याय होता है तब-तब लगभग वह यही चाहती है कि जनता उत्तेजित हो जाय और खून-खराबी हो। यदि जनता उस फन्दे में फँस जाती है तो उसका ध्यान उपर्युक्त अन्याय से हटकर अशान्ति मिटाने की ओर चला जाता है। फिर खून-खराबी करनेवालों को दबाने के लिए राजा और प्रजा एक

1. ६ अप्रैल १९१९ को।
2. उन्होंने अपनी नाइटहुड ('सर') की उपाधि १ जून १९१९ को त्यागी थी।

हो जाते हैं और मूल वात अन्याय को भुला दिया जाता है। अथवा जिस समय जनता अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करती है, उस समय राज्याधिकारी उस आन्दोलन को दवाने का भारी प्रयत्न करते हैं और किये गये अन्याय को छिपाने मे विवेक-बुद्धि का अतिक्रमण कर जाते है। परिणामस्वरूप अन्याय के विरुद्ध किये जानेवाले आन्दोलन को दवाने की कोशिश मे वे पागल हो जाते हैं।

मुझे लगता है कि हमारी सरकार ऐसे पागलपन का शिकार हो गई है। पं० मोतीलाल नेहरू को संयुक्त प्रान्त[1] में सब लोग जानते है। वहां के गवर्नर उन्हें तीस साल से पहिचानते है। उनके एक मात्र पुत्र जवाहरलाल नेहरू बैरिस्टर हैं और वह भी सुप्रसिद्ध हैं। वह अपने पिता को, उनके धन्धे तथा सार्वजनिक जीवन में पूरी-पूरी मदद करते है। संयुक्त प्रान्त मे सभी को मालूम है कि श्री जवाहरलाल नेहरू की माता हमेशा अस्वस्थ रहती हैं। उनकी धर्मपत्नी की तबीयत भी इस समय बहुत खराब है। नेहरू परिवार समय-समय पर गर्मियो मे वायु-परिवर्तन के लिए मसूरी जाता है। इस वार ऊपर बताई गई बीमारी के कारण मसूरी जाने की विशेष आवश्यकता थी। जव यह निश्चय हुआ तव यह वात उनके ध्यान में भी न थी कि अफगानी-शिष्ट-मण्डल के प्रतिनिधि भी मसूरी जानेवाले हैं और जिस स्थान पर उन्हे ठहरना था उसी स्थान पर ये लोग भी ठहरने वाले हैं। तथापि मसूरी में ठहरने की अधिक व्यवस्था न होने के कारण नेहरू परिवार तथा अफगानी शिष्ट-मण्डल के प्रतिनिधियों को एक ही स्थान पर जगह मिली। दोनों एक ही जगह रहे, यह सरकारी अधिकारी को वरदाश्त नही हुआ। इतना होने पर भी स्थिति कुछ ऐसी थी कि श्री जवाहरलाल नेहरू पर एकदम दवाव डाला जा सकता था, इससे पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उन्हे वुलाकर कहा कि यदि आप यह आश्वासन देंगे कि आप इन प्रतिनिधियो के साथ वोलचाल भी नही रक्खेगे तो आपको मसूरी में रहने दिया जायगा। जिस व्यक्ति को आत्म-सम्मान प्रिय है वह व्यक्ति ऐसी जमानत क्यों दे? भले ही प्रतिनिधियो के साथ कोई व्यवहार न हो, श्री जवाहरलाल पन्द्रह दिन तक मसूरी में रहकर भी इन प्रतिनिधियो के साथ एक शब्द भी नही वोले, लेकिन स्वेच्छया विना किसी प्रसंग के किसी के साथ न वोलना एक वात है और किसी के दवाव में आकर अमुक व्यक्ति के साथ न वोलने की प्रतिज्ञा करना दूसरी वात है। इसी से श्री जवाहरलाल ने ऐसा आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। इस पर उन्हे तुरन्त ही मसूरी छोड़ देने का आदेश दिया गया। श्री जवाहरलाल ने अधिकारी को सही स्थिति से अवगत करा दिया था, अपनी कठिनाइयों की चर्चा

---

१. अव उत्तर प्रदेश।

भी की थी लेकिन (उनकी) मुश्किलों से अधिकारियों को क्या लेनादेना हो सकता है?

यदि राजा अपनी रैयत के कमजोर-से-कमजोर अंग की मुश्किलों का ध्यान रखे तो वह रामराज्य कहलाये, प्रजातन्त्र कहलाये। आधुनिक युग में किसी भी प्रजातन्त्र राज्य से—फिर चाहे वह अंग्रेजी हो चाहे भारतीय, ईसाई-मुसलमान अथवा हिन्दू—ऐसी आशा नही की जा सकती। जिस यूरोप का अनुकरण करने के लिए हम अधीर हो गये दीख पड़ते है, वह यूरोप भी पशुबल की अथवा पशुबल के मुकाबले बहुमत की पूजा करता है और बहुमत वाले भी हमेशा अल्पसंख्यकों की रक्षा करते हो सो बात नही। सामान्यतया आम विषयों में बहुमत के न्याय को लौकिक न्याय कहा जा सकता है, लेकिन शुद्ध न्याय तो सब लोगो के कल्याण में ही हो सकता है।इसलिए जहां दुर्बल-से-दुर्बल व्यक्ति की भी पूरी-पूरी रक्षा की जाती हो और उसके अधिकारों को भी पूरा-पूरा संरक्षण दिया जाता हो वह शुद्ध प्रजातन्त्र कहा जा सकता है। प्रजातन्त्र का अर्थ बहुमत द्वारा शासन नही बल्कि उसका अर्थ है कि उससे जनता के छोटे-से-छोटे अंग का भी पोषण हो। इस समय हम अपनी सरकार से ऐसे न्याय और ऐसे पोषण की अपेक्षा नही कर सकते। लेकिन सरकार ने जो कदम[1] उठाया है वह तो निरा पागलपन है। ऐसा कदम उठाने के पहले उसके पास किसी भी ठोस कारण के होने की कल्पना नही की जा सकती।...

—गुजराती। न० जी०, ३०।५।१९२०।]

५. मुसलमानों का निर्णय : इलाहाबाद की खिलाफत-सभा में

इलाहाबाद की खिलाफत सभा[2] ने सर्व-सम्मति से असहयोग के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है और विस्तृत कार्यक्रम निश्चित और कार्यान्वित करने के लिए एक समिति नियुक्त की है। इस सभा के पहले हिन्दू-मुसलमानों की एक संयुक्त सभा भी की गई थी जिसमें हिन्दू नेताओं से अपना अपना मत प्रगट करने के लिए कहा गया। उस सभा में श्रीमती बेसेण्ट, माननीय पं० मालवीय जी, माननीय

---

१. जवाहरलाल नेहरू को मसूरी से चले जाने का जो आदेश दिया गया था, वह जून १९२० में वापस ले लिया गया था।

२. खिलाफत समिति के तत्वावधान में ९ जून १९२० को यह सभा हुई।

डा० सप्रू,[1] मोतीलाल नेहरू, श्री चिन्तामणि[2] आदि प्रमुख नेता उपस्थित थे। भिन्न-भिन्न मतों के हिन्दू नेताओ को उनकी राय जानने के लिए निमन्त्रित करके खिलाफत समिति ने बुद्धिमानी का काम किया। श्रीमती वेसेण्ट तथा डा० तेजवहादुर सप्रू ने मुसलमानो को जोरदार शब्दों मे असहयोग की वर्तमान नीति को मानने की सलाह दी। अन्य हिन्दू नेताओ ने पहलू वचाकर भाषण दिये। इन नेताओ ने अपने भाषणों मे सिद्धान्तत: तो असहयोग आन्दोलन को स्वीकार किया पर उसके संचालन में अनेक तरह की व्यावहारिक कठिनाइयां बताई। उन्हें इस बात का भी भय था कि यदि मुसलमानो ने अफगानों को भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए निमन्त्रित किया तो वखेड़ा मच सकता है। इस पर मुसलमान वक्ताओ ने स्पष्ट शब्दों मे कहा कि यदि कोई भी विदेशी शक्ति भारत पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन करने की चेष्टा करेगी तो उसके प्रतिरोध मे एक-एक मुसलमान बलिदान हो जायगा। किन्तु उन्होने यह वात भी स्पष्ट रूप से कही कि यदि कोई वाहरी शक्ति इस्लाम की प्रतिष्ठा की रक्षा और न्याय दिलाने के लिए भारत पर आक्रमण करेगी तो वे उसे वास्तविक सहायता न भी दे पर उसके साथ उनकी पूरी सहानुभूति होगी। हिन्दुओ की आशंका समझ में आती है और वह उचित भी है। पर मुसलमानों की स्थिति का विरोध करना भी कठिन है। तव मेरे विचार से अगर भारत को इस्लाम की शक्तियों और अंग्रेजी ताकत के वीच संघर्ष नही होने देना है तो उसका सवसे अच्छा तरीका यह है कि हिन्दू लोग असहयोग को पूरी तरह सफल वनायें और वह भी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी। और मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि मुसलमान लोग अपने घोषित इरादो पर डटे रहे, आत्म-सयम से काम ले सके और वलिदान कर सके तो हिन्दू लोग भी अपने वादे के अनुसार अवश्य ही उनका साथ देगे और असहयोग आन्दोलन मे शरीक होगे। लेकिन साथ ही मुझे इस वात का भी उतना ही अधिक भरोसा है कि हिन्दू लोग ब्रिटिश सरकार तथा उनके मित्र देश और अफगानिस्तान के वीच युद्ध की स्थिति पैदा करने में मुसलमानों की सहायता नही करेंगे। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सेना इतनी संगठित है कि कोई भी विदेशी शक्ति सहज ही भारत पर सफल आक्रमण नही कर सकती। इसलिए मुसलमानों के लिए इस्लाम की सम्मान-रक्षा के लिए प्रभावशाली ढंग से संघर्ष चलाने का एक उपाय यही है कि पूरी लगन

---

१ सर तेज वहादुर सप्रू (१८७५-१९४९) प्रसिद्ध वकील; १९२०-२२ में वाइसराय की कार्यकारिणी में कानून-सदस्य, १९२३ और १९२७ में लिवरल फेडरेशन के अध्यक्ष। २. सर चि० य० चिन्तामणि (१८८०-१९४१), 'लीडर' के सम्पादक, लिवरल फेडरेशन के अध्यक्ष (१९२०, १९३७)।

से असहयोग का रास्ता अपनायें। यदि लोगों ने व्यापक पैमाने पर इसे अपनाया तो वह केवल प्रभावकारी ही नही होगा, वल्कि प्रत्येक व्यक्ति को इसमे अपनी सद्-असद् वुद्धि का प्रयोग करने की भी पूरी छूट रहेगी। यदि मै किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था के अन्याययुक्त आचरण को नही सहन कर सकता और यदि मै प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उस व्यक्ति या संस्था का समर्थन करता हू, तो इसके लिए मुझे ईश्वर के सामने जवावदेह होना पडेगा। किन्तु अगर मै ऊपर वताये गये तरीके मे अन्यायाचरण का समर्थन नही करता तो इसका मतलव होगा कि अन्यायी तक के अहित करने का वर्जन करनेवाले नैतिक नियम के अनुरूप मुझसे जो कुछ वन सकता था, मैने किया इसलिए ऐसे महान अस्त्र का प्रयोग करने मे जल्दवाजी अथवा क्रोध से काम नही लेना चाहिए। असहयोग आन्दोलन हर तरह से आत्मप्रेरित होना चाहिए। इसलिए सव कुछ मुसलमानो पर ही निर्भर करता है। यदि उन्होंने अपनी सहायता आप की तो हिन्दुओं की सहायता उन्हे अवश्य प्राप्त होगी और सरकार को, चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, अवश्य ही इस दुर्निवार शक्ति के सामने झुकना पड़ेगा। किसी राष्ट्र की समस्त जनता के रक्तपातविहीन विरोध का सामना सम्भवतः कोई भी सरकार नही कर सकती।

——अंग्रेजी। यं० इं०, ९।६।१९२०।]

६. असहयोग समिति

२ जून को इलाहावाद में खिलाफत समिति ने जिस असहयोग समिति की नियुक्ति की, उसके विषय में तरह-तरह के भ्रम और गलत अनुमान फैले दिखते हैं।[1] उस सभा मे उपस्थित एक मित्र लिखते है कि यह समिति असहयोग को पूरी तरह से कार्यरूप देने के उद्देश्य से गठित की गई है और इसे असहयोग से सम्बन्धित सारे मामलो में जो चाहे करने का अधिकार दे दिया गया है—मानो यह अधिकारियों के पास निवेदन आदि भेजने के मामले में भी भारत की सारी मुसलमान आबादी का प्रतिनिधित्व करती हो। समिति का अधिकार-क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है, यही दिखाना इस लेख का उद्देश्य है।

इस समिति की स्थापना का सुझाव देते हुए जैसा मैंने बताया था, इसका उद्देश्य असहयोग के सम्बन्ध मे देश की इच्छा जानना और उसे कार्यान्वित करना था।

१. देखिए: 'भाषण : खिलाफत समिति की बैठक में', ३।६।१९२०।

यद्यपि यह एक प्रतिनिधि-संस्था है और इसे जो उचित लगे वह करने का पूरा अधिकार है फिर भी यह नही कहा जा सकता कि यह भारत के सभी अच्छे और प्रभावशाली मुसलमानों की प्रतिनिधि-संस्था है, और न इसे ऐसा रूप देने का कोई इरादा ही रहा है। उदाहरण के लिए, यह नवाब-जमीदार आदि वर्गो के मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नही करती। इसे जानबूझ कर उन्ही तक सीमित रक्खा गया है जो अपना सारा समय और ध्यान असहयोग-आन्दोलन का संगठन करने में और ऐसा करते हुए यह सुनिश्चित करने में लगा सकें कि कैसे लोग विभिन्न हिदायतों, अनुशासन तथा अहिसा का पालन कर सकते है। सो दरअसल वह कार्यकर्त्ताओ की समिति है। यह आशा नही की जा सकती कि भारत के सभी मुसलमान असहयोग के सम्बन्ध मे एक-सी तत्परता दिखायेंगे। कुछ को इसकी प्रभावकारिता में सन्देह है, तो कुछ इसे बहुत हलका इलाज मानते है। इसी तरह कुछ को भय है कि यह इलाज भारत के लिए बहुत सख्त है; उनका कहना है कि भारत में अभी बलिदान की भावना इतनी जाग्रत नही हुई है जिससे यहां असहयोग की सफलता निश्चित मानी जा सके। इस प्रकार की शकाएं उठानेवाले लोग, हो सकता है, इस समिति मे शामिल कई मुसलमानो से अन्यथा अधिक प्रभावशाली हों, लेकिन समिति न तो उनका प्रतिनिधित्व करती है और न उन्हे इसमें शामिल ही किया गया है। इसमे केवल ऐसे लोग ही शामिल किये गये है जिनका असहयोग मे अधिक-से-अधिक विश्वास है और जो असहयोग में अपनी पूरी निष्ठा घोषित करने के बावजूद इसकी गति इतनी तीव्र करने की कोशिश नही करेंगे कि औरों से इसका सम्बन्ध ही न रह जाय, बल्कि इसके विपरीत, जहां तक सम्भव हो समस्त राष्ट्र को असहयोग के कार्यक्रम मे साथ लेकर चलने की कोशिश करेंगे। दूसरी ओर ऐसा करते हुए वे स्वयं अधिक-से-अधिक साहसपूर्ण कदम उठाने मे नही हिचकेंगे और ऐसे लोगो को भी साथ लेते जायंगे जिनमे ऐसी निष्ठा और साहस हो। अतएव इस समिति को, जिसकी आज कोई ख्याति नही है, अपने सुपरिणामो के बल पर ख्याति प्राप्त करनी है, नाम कमाना है। अगर यह समिति काम करके नही दिखाती, या अपने काम के बावजूद कुछ परिणाम नही दिखाती तो इसका अस्तित्व ही नही रह जायगा। बाहरवालो की दृष्टि मे यह किसी तरह प्रतिनिधि-संस्था नही है। उनके विचार से शौकत अली स्वभाव से सरल तो है, लेकिन बिलकुल धर्मान्ध है और उनका किसी पर कोई प्रभाव नही है; हसरत मोहानी बेकार के आदमी है और उन्हे तो हमेशा स्वदेशी की ही धुन लगी रहती है; डा० किचलू अभी कल के छोकरे है और उन्हे अमृतसर से बाहर की दुनिया का कोई अनुभव नही है। दूसरों के बारे मे भी ऐसी ही बहुत-सी बाते कही जा सकती है। मै उनके विचार मे औरो से श्रेष्ठ तो हू,

लेकिन आखिरकार एक सनकी आदमी हूं और इस मामले से कोई सीधा सम्बन्ध न होते हुए भी इसमें जबरजस्ती टाँग अड़ाने को आ गया हूं। उनके खयाल से इसके सदस्यों के हस्ताक्षर से जो भी आवेदन जायगा उसका जहां तक इन हस्ताक्षर-कर्त्ताओं के निजी प्रभाव का सम्बन्ध है, कोई असर नही होगा। इसका यह मतलब नही कि यह अभी आवेदन देगी ही नहीं। जब फौरन किसी कार्रवाई की जरूरत होगी या जब अन्य लोग नीतिवश या किसी दूसरे कारण से आवेदनों पर हस्ताक्षर करने को तैयार नही होंगे तो यह अपने सदस्यों के हस्ताक्षरों से आवेदन अवश्य भेजेगी। हां, यह तो है ही कि महत्वपूर्ण आवेदनों पर लोगों से हस्ताक्षर कराने के प्रयत्न के सिलसिले में लोकमत का अन्दाजा भी हो जायगा और वह इस बात की भी कसौटी होगा कि देश के गण्यमान्य लोग बलिदान के लिए कहां तक तैयार हैं। लेकिन आम जनता के लिए और आन्तरिक कार्यो के लिए यह समिति पूर्ण-रूप से प्रतिनिधि-संस्था है। मुस्लिम लोकमत का शौकत अली और हसरत मोहानी से बढ़कर कोई दूसरा प्रतिनिधि मिल पाना मुश्किल ही है। दूसरे लोग यद्यपि इन-जैसे प्रसिद्ध नही है, लेकिन ऐसा माना जाता है कि उनमें उद्यमशीलता है, धैर्य है, शान्ति और सचाई है, कठिनाइयों के बीच साहस कायम रखने की क्षमता है, और बलिदान की भावना है, और उन्ही गुणों के कारण उन्हें चुना गया है।

यह भी कहा गया है कि इस आन्दोलन का नेतृत्व मैं करूंगा। लेकिन यह बात अंशतः ही सच है, और मै ऐसा सिर्फ विनयवश नही कह रहा हूं बल्कि इसलिए कह रहा हूं कि यह अक्षरशः सत्य है। अगर विश्वास जोर पकड़ गया कि इस आन्दोलन का नेतृत्व मैं कर रहा हूं तो वह इसके लिए घातक सिद्ध हो सकता है। मै इस आन्दोलन का नेतृत्व इस अर्थ में तो कर रहा हूं कि मै एक ऐसा सलाहकार हू जिसकी सलाह आज सबसे अधिक स्वीकार की जाती है और असहयोग के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए जिसके संकल्प का कोई मुकाबला नही कर सकता। लेकिन मैं मुस्लिम लोक-मत का प्रतिनिधित्व करने का झूठा दावा नहीं करता। मैं तो सिर्फ उसकी व्याख्या ही कर सकता हूं। मै अकेले खड़ा होकर मुसलमान जनता को अपने साथ ले चलने की आशा नही कर सकता। अगर किसी मिले-जुले मुस्लिम श्रोता-समूह के सामने मै धार्मिक मामलों मे गण्यमान्य मुसलमानों के खिलाफ कुछ कहना चाहूं तो लोग शायद मुझे बोलने भी नही देंगे और वह ठीक ही होगा। लेकिन अगर मैं मुसलमान होता तो मैं मुसलमानों की किसी सभा मे प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थितियो में भी अपनी बात कहने में नही हिचकता। मै अपने को एक बुद्धिमान कार्यकर्ता मानता हूं और मेरी बुद्धिमत्ता का मतलब इसके अलावा और कुछ नही है कि मै अपनी सीमाओं से भली-भांति परिचित हूं। मेरा खयाल

है, मै इन सीमाओ का अतिक्रमण कभी नही करता। कम-से-कम जान-बूझ कर तो मैने ऐसा कभी नही किया है। हर समझदार मुसलमान को मेरी इन सीमाओं और मेरे कार्यक्षेत्र की मर्यादाओ का ध्यान रखना चाहिए। किसी तरह का अज्ञान इस आन्दोलन की सफलता के मार्ग मे घातक सिद्ध हो सकता है। मैं इस आन्दोलन से सम्वद्ध हूं, इस कारण कार्यकर्त्ताओं को सुस्ती अथवा लापरवाही नही वरतनी चाहिए। अगर इस आन्दोलन के साथ मेरे सम्बन्ध से कुछ अच्छे परिणाम निकलते है तो इस सम्बन्ध का मतलब इतना ही समझना चाहिए कि लोगो को अधिक सर्तक रहना है, दायित्वभाव का अधिक अनुभव करना है, काम करने की अधिक क्षमता और इच्छा रखनी है तथा ज्यादा कुशलता दिखानी है। मै योजनाएं वना सकता हूं, लेकिन उन्हे कार्यरूप देना सदैव मुसलमान कार्यकर्त्ताओं के हाथो मे ही रहेगा। मेरे-जैसे मित्रों की सहायता से, और जरूरत हो तो उनकी सहायता के विना भी, यह आन्दोलन उन्हें ही चलाना है; इसका नेतृत्व उन्हे ही करना है। मुझसे ऐसी आशा नही करनी चाहिए कि मैं असहयोग करनेवाले लोग तैयार करूंगा, यह तो मुसलमान नेता ही कर सकते है। मै चाहे कितना ही वलिदान करूं, यानी (मुसलमानो के) इस धार्मिक मामले में कितना ही वलिदान करूं, उससे मुस्लिम संसार में असहयोग की भावना नही आ सकती। जव मुसलमान नेता अपने आचरण मे यह चीज दिखायेंगे तभी जन-साधारण में यह भावना विकसित होगी।

और अव इस प्रश्न का उत्तर देना वहुत आसान हो गया है कि समिति में हिन्दू नेता क्यों नही शामिल किये गये है। सर्वोच्च समिति तो विशुद्ध रूप से मुसलमानो से वनी होनी चाहिए। उसमे मेरा शामिल रहना भी एक वुराई ही है, लेकिन मेरी योग्यताओं को देखते मेरा उसमे रहना एक ऐसी वुराई है जिसे टाला नही जा सकता। मैने असहयोग का विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। मैने सफलता-पूर्वक इसका प्रयोग करके देखा है। इस असहयोग-विषयक प्रस्ताव की कल्पना दिल्ली सम्मेलन[1] में मैने ही की थी। अतएव मैं इस समिति में विशेषज्ञ की हैसियत से शामिल हू, हिन्दू की हैसियत से नही। अतः मेरा काम भी सिर्फ सलाहकार का काम है। हा, यह वात निस्सन्देह समिति के लिए लाभदायक है कि मै एक ऐसा कट्टर हिन्दू हू जो असहयोग में अपने मुसलमान भाइयो का पूरी हदतक साथ

---

१. जो जनवरी १९२० के तीसरे सप्ताह में हुआ था। वह १९ जनवरी को दिल्ली में वाइसराय से मुलाकात करनेवाले भारतीय खिलाफत शिष्टमण्डल के सदस्यों का सम्मेलन था।

देना प्रत्येक हिन्दू का कर्त्तव्य मानता हूं। लेकिन यह लाभ तो, मैं समिति में होता या न होता, उसे यों भी प्राप्त ही रहता।

जब खिलाफत से हिन्दुओं के सम्बन्ध पर विचार करते समय किंचित् पुनरावृत्ति का खतरा उठाकर भी मै अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहूंगा। चूंकि मैं मुसलमानो की मॉगो को (धार्मिक दृष्टि की बात अलग रक्खे तो भी) वास्तविक दृष्टि से उचित मानता हूं इसलिए मै उनके साथ असहयोग में पूरी हदतक चलने को तैयार हूं। और मै इस चीज को भारत के साथ ब्रिटेन के सम्बन्धों के प्रति मेरी जो निष्ठा है, उससे भी सर्वथा संगत मानता हूं। लेकिन मै किसी हिसात्मक लड़ाई मे मुसलमानों के साथ नही जाऊंगा। उदाहरण के लिए, अगर शान्ति-सन्धि की शर्तो को मुसलमानों के लिए अधिक अनुकूल बनवाने के उद्देश्य से अफगानिस्तान की ओर से या किसी और रास्ते भारत पर किसी आक्रमण को बढावा देने का प्रयत्न किया जाय तो मै उसमे सहायता नही दे सकता।[1] मेरे विचार से उपर्युक्त उद्देश्य से किये गये किसी आक्रमण का विरोध करना भी उसी तरह प्रत्येक हिन्दू का कर्त्तव्य है जिस तरह यह कि वह असहयोग या कष्ट-सहन के किसी और तरीके से लाख मुसीबतें झेलकर भी अपने मुसलमान भाइयों की उचित और न्यायसंगत मांगो को सरकार से स्वीकार करवाने के प्रयास में तबतक हाथ बँटाता रहे, जबतक कि उससे भारत की स्वतन्त्रता को कोई खतरा न हो। किसी के साथ हिसा न की जाये। मैं पूरे मन से असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ा हूं, और किसी कारण से नही तो कम-से-कम इसी कारण से कि मैं ऐसे किसी सशस्त्र संघर्ष को रोकना चाहता हूं।

--अंग्रेजी। यं० इं० २३।६।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १७ अप्रैल १९४४ संस्करण पृ० ५४९, ५०, ५१, ५२।]

---

१. १ और २ जून, १९२० को इलाहाबाद में आयोजित हिन्दुओं और मुसलमानों के संयुक्त सम्मेलन में हिन्दू प्रतिनिधियों ने यह आशंका व्यक्त की थी कि अगर भारतीय मुसलमान अफगानिस्तान को भारत पर आक्रमण के लिए बढ़ावा देंगे तो उलझन पैदा हो सकती है। मुसलमान वक्ताओं ने आश्वासन दिया कि अगर विशुद्ध रूप से भारत को जीतने के लिए इसपर कोई आक्रमण किया गया तो उसका प्रतिरोध करेंगे, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि इस्लाम की प्रतिष्ठा और न्याय के हक में किये गये किसी भी आक्रमण के साथ पूरी सहानुभूति होगी, भले ही वे उसमें वास्तविक सहायता न दें।

७. हिन्दू-मुस्लिम एकता : आगरा की घटना के सन्दर्भ में

इसमें सन्देह नही कि असहयोग की सफलता जितनी अहिसा पर निर्भर करती है उतनी ही हिन्दू-मुस्लिम एकता पर। इस संघर्ष में इन दोनो की वड़ी कड़ी कसौटी होगी और अगर वह उसमें टिकी रही तो विजय निश्चित है।

आगरा में उसकी कठिन परीक्षा हुई और कहा जाता है कि जव दोनों दल न्याय के लिए अधिकारियों के पास गये तो उन्होने उनसे शौकत अली और मेरे पास आने को कहा। सौभाग्य से उन्हे पास ही मे इस काम के लिए हम दोनों से भी ज्यादा उपयुक्त आदमी मिल गया। हकीम अजमल खां धार्मिक मुसलमान है और उनपर दोनो ही पक्षों का विश्वास है। हिन्दू और मुसलमान, दोनो ही उनका आदर करते है। वह अपने सहायक कार्यकर्ताओं के साथ शीघ ही आगरा पहुँचे। उन्होने झगडा निपटा दिया और दोनों पक्षो में फिर पहले से भी प्रगाढ़ मैत्री हो गई। ऐसी घटना, जो वढ़कर भयकर उत्पात का कारण हो सकती थी, वही शान्त हो गई।

लेकिन हकीम अजमल खां साहव शान्ति के देवदूत की तरह ठीक समय पर हर जगह तो नही पहुँच सकते। न शौकत अली या मै ही। और इस वात की जरूरत तो है कि इन दोनों में फूट डालने की जो भी कोशिशें की जायँ, उसके वावजूद उनके वीच पूरी शान्ति रहे।

सवाल यह है कि आगरा में अधिकारियों से सहायता की प्रार्थना की ही क्यों गई? अगर हम लोग असहयोग को तनिक भी सफल वनाना चाहते हैं तो जव हम आपस मे लड़ते है उस समय हमें इस वात की जरूरत नही होनी चाहिए कि हम सरकार से रक्षा करने के लिए कहे। यदि हम अपने झगड़ो के निपटाने के लिए या अपराधियों को दण्डित करने के लिए अन्त में ब्रिटिश सरकार पर ही भरोसा रखते है तो असहयोग की यह सारी योजना ही विफल हो जायगी। हर एक गांव में, छोटे-से-छोटे गाव में भी, कम-से-कम एक हिन्दू और एक मुसलमान ऐसा अवश्य होना चाहिए जिसका मुख्य कार्य हिन्दू-मुसलमानों मे झगड़ा न होने देना हो। लेकिन कभी-कभी तो सगे भाइयो मे भी मारपीट की नौवत आ जाती है। आरम्भिक अवस्था मे जहा-तहाँ हम भी ऐसा ही करेंगे। दुर्भाग्यवश सार्वजनिक सेवा का कार्य करने वाले हम लोगो ने अपनी जनता के मानस को समझने और उस पर अभीष्ट प्रभाव डालने का वहुत कम प्रयत्न किया है। उनमे भी जो ज्यादा झगड़ालू किस्म के है उन पर तो ध्यान ही नही दिया है। जवतक हम लोग जनता का आदर नही प्राप्त कर लेते और जवतक उद्दण्डो को अपने वश मे नही कर लेते

तबतक इस तरह की बदमिजाची की घटनाएँ कभी-कभी अवश्य हुआ करेंगी। पर ऐसी घटनाओं के हो जाने पर हमें सरकार का मुंह ताकना छोड़ देना चाहिए। हकीम जी ने हमें प्रत्यक्ष दिखला दिया कि यह कैसे किया जा सकता है। जिस एकता के लिए हम लोग चेष्टा कर रहे है, वह एकता बनावटी नही, दिली होनी चाहिए; उन्हें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जबतक हिन्दू और मुसलमान एक ग्रन्थि में सदा के लिए बँध नहीं जाते, तबतक जिस स्वराज्य का सुखस्वप्न देखा जा रहा है वह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। अस्थायी सन्धि से यह काम नही सिद्ध हो सकता। पारस्परिक भय भी उसका आधार नही हो सकता। यह मेल दो बराबर की हैसियत रखनेवालों का मेल होना चाहिए जिसमें दोनों बराबरी की हैसियत से मिलते है और एक-दूसरे के धार्मिक भावों का समुचित आदर करते हैं।

यदि कुरान में मुसलमानों से कही यह कहा गया होता कि वे हिन्दुओं को अपना सहज बैरी समझें या हिन्दुओं के धर्मशास्त्र मे ऐसी कोई बात होती जिसके कारण हिन्दू लोग मुसलमान को अपना चिरकालिक दुश्मन मानते तो मैं इस तरह के मेल को सर्वथा असम्भव समझता और इस ओर से सर्वथा निराश हो जाता।

यदि हम लोगो की यही धारणा है कि हम तो अतीत काल से आपस में लड़ते आये है, इसलिए भविष्य मे भी लड़ते रहेगे और हमारी यह लड़ाई तभी बन्द हो सकती है जब ब्रिटेन-जैसी कोई शक्तिशाली सत्ता हमारे बीच में पड़े और हमें बलपूर्वक एक-दूसरे का गला काटने से रोके तो हमें यही कहना पड़ेगा कि हम लोगों ने अपने इतिहास का ठीक तरह से मनन नही किया है। किन्तु हिन्दू या मुसलमान धर्म में ऐसी कोई बात नहीं जिसके आधार पर हम इस तरह की धारणा बना लें। यह सच है कि स्वार्थी पुरोहितों या मुसलमानों ने उन्हे एक दूसरे से लड़ने के लिए उभारा है। यह भी सच है कि ईसाई राजाओं की तरह मुसलमान बादशाहों ने भी इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए तलवार की सहायता ली थी पर अब यह समय नही रहा। यद्यपि वर्तमान युग के माथे पर तरह-तरह की बुराइयों का टीका लगा है तो भी जैसे वह आज जबरदस्ती लादी गई गुलामी सहन करने के लिए तैयार नही होगा उसी प्रकार धर्म-प्रचार में इस तरह का बलात्कार सहन करने के लिए भी तैयार नही होगा। आज का युग विज्ञान का युग है और इस वैज्ञानिक दृष्टि से हमने जो कुछ पाया है उसका शायद सबसे प्रभावकारी लाभ यही है।

विज्ञान की इस भावना ने ईसाई तथा इस्लाम धर्म की अनेक भ्रामक धारणाओं को बिल्कुल ही बदल डाला है। इस युग मे एक भी ऐसा मुसलमान नही दिखाई देता जो धर्म-प्रचार के हेतु किसी तरह की ज्यादती या बलात्कार का समर्थन करता

हो। इस समय जिन बातों का प्रभाव मनुष्य-हृदय पर पड़ सकता है उनके मुकाबले तलवार का प्रभाव कुछ नही है।

यद्यपि पश्चिम मे लोग रक्तपात, धोखेबाजी, दगाबाजी, आदि के प्रयोग में अब भी प्रवीण है और उसका धड़ाधड़ प्रयोग करते है तो भी समस्त मानव-समाज धीरे-धीरे उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है। और यदि भारत आज हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न हल करके अहिसात्मक असहयोग-द्वारा यानी विशुद्ध आत्म-त्याग के सहारे अपनी स्वतन्त्रता स्थापित कर लेगा तो वह संसार को वर्तमान अंधेरे से एक नया मार्ग दिखला देगा।

——अंग्रेजी। यं० इं०, ६।१०।१९२०]

८. अलीगढ़ के एक आलोचक को उत्तर[1]

यह काम डिस्ट्रक्शन (खण्डन) का अवश्य है लेकिन फिलहाल जो खराब घास उग आई है उसे जड़ मूल से उखाड़ने की ही जरूरत है जिससे कि अच्छे अनाज की बुवाई की जा सके।

० ० ०

जहां आपको घड़ी भर के लिए भी यूनियन जैक को स्वीकार करना पड़ता है, जहां किसी भी गवर्नर अथवा किसी अन्य उच्चाधिकारी के आने पर आपको यह कहने के लिए विवश होना पड़ता है कि आप उसके प्रति वफादार है, जब कि आप वफादार नही है, वहां आप पल भर के लिए भी कैसे रुक सकते है ?

० ० ०

जो कालेज स्वतन्त्र हो गया है उसके लिए तो ज्यादा-से-ज्यादा पैसा आयेगा। और फिर जहां मुहम्मद अली और शौकत अली जैसे श्रीमन्त है वहां पैसे की क्या चिन्ता हो सकती है ?

——अलीगढ़। १२।१०।१९२०। हिन्दी। श्री महादेव देसाई के गुजराती यात्रा-विवरण से संकलित। न० जी० २४।१०।१९२०।]

---

१. शौकत अली और मुहम्मद अली के साथ गांधी जी यूनियन हाल में विद्यार्थियों से मिले। उपर्युक्त बातें उन्होंने किसी व्यक्ति-द्वारा की हुई आलोचना के प्रत्युत्तर में कही थीं।

९. पत्र : अलीगढ़ कालेज के ट्रस्टियों को

२४-१०-१९२०

सज्जनो,

आप भारत के सभी मुसलमान, विश्व के एक अत्यन्त नाजुक विषय पर अपना निर्णय देने के लिए इकट्ठे होने जा रहे हैं। मैंने सुना है कि आपने अपनी बैठक के अवसर पर सरकार और पुलिस की मदद माँगी है। यह अफवाह सच हो तो आप निश्चित समझिए कि ऐसा करके आप बहुत बड़ी भूल करेंगे। अपने सर्वथा घरेलू मामले में आपको न तो सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता है और न पुलिस के संरक्षण की। अली भाई या मैं, दोनों में से कोई भी पशु-बल की लड़ाई में थोड़े ही लगे हैं। हमारी छेड़ी गई लड़ाई में एक मात्र हथियार जनमत है और हम जनता को अपने पक्ष में न रख सके, तो हम अपनी हार स्वीकार कर लेंगे। (हमारे बीच के) इस झगड़े में भी लोकमत की परीक्षा आपको बहुमत मिलने से ही होगी।इसीलिए इस मामले की पूरी चर्चा कर लेने के बाद भी आप बहुमत से इस नतीजे पर पहुँचें कि यदि कालेज या स्कूल के छात्र संस्था को सरकार से असम्बद्ध करने और सरकारी सहायता अस्वीकृत करने के विषय में अपना आग्रह नही छोड़ देते तो उन्हें छात्रावास में रहने या केवल कालेज में जाकर पढते रहने का अधिकार नही है तो वे शान्तिपूर्वक चले जायंगे। उस हालत में यथा-सम्भव अलीगढ़ में और न हो सके तो अन्यत्र हमने उनकी शिक्षा जारी रखने का विचार किया है। इच्छा तो यह है कि उनका धर्म-निरपेक्ष शिक्षण जितना बिल्कुल जरूरी है उससे अधिक एक क्षण के लिए भी न रुके परन्तु यह शिक्षा इस्लाम के कानून और भारत की इज्जत के अनुसार देने की हमारी दिली ख्वाहिश है। मैंने इस बारे में मशहूर उलेमाओं की राय ले ली है और उनका यह मत है कि जिस सरकार ने पवित्र खिलाफत को नष्ट करने या जजीरत-अल-अरब[1] के इस्लामी अधिकार में हस्तक्षेप करने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रयत्न किये हैं, उससे कोई धर्मनिष्ठ मुसलमान सहायता नही ले सकता। यह तो आप भी हमारे जितना ही जानते हैं कि इस हुकूमत ने भारत की इज्जत को किस प्रकार इरादतन मिट्टी में मिलाया है। इन कारणों से लोगों का जोश काबू में रखने की सावधानी के साथ जनता सरकार के साथ का सारा स्वेच्छा-पूर्ण सम्बन्ध तोड़ रही है। ऐसी हालत में मेरा खयाल है कि आपको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिए कि आइन्दा सरकारी मदद लेने से इन्कार कर दें, अपनी महान संस्था को सरकार से स्वतन्त्र बनालें और मुस्लिम विश्वविद्यालय के लिए

---

१. हेजाज के पवित्र स्थान।

मिला हुआ चार्टर (अधिकार-पत्र) लौटा दें। और यदि आप इस्लाम और भारत की पुकार अनसुनी कर दें, तो अलीगढ़-संस्था के छात्रों को, जिस सरकार ने इस्लाम और भारत की वफादारी का सारा हक़ खो दिया है, उसकी छत्रछाया स्वीकार करनेवाली, आपकी संस्था की परछाई तक छोड़ देनी चाहिए। तब उन्हें इस अलीगढ़ के स्थान पर अधिक विशाल, अधिक उदात्त और अधिक निर्मल अलीगढ़, उसके महान संस्थापक के हृदय की आकांक्षाओं को पूरा करनेवाला अलीगढ, खड़ा करना चाहिए। मेरी तो कल्पना में भी नही आ सकता कि स्वनामधन्य स्वर्गवासी सर सैयद अहमद खां[1] अपनी महान संस्था को मौजूदा सरकार के अधिकार या प्रभाव में एक क्षण भी रहने देते।

चूंकि अलीगढ़ संस्था को सरकारी नियन्त्रण और सरकारी सहायता से अलग कराने के विचार का मैं जन्मदाता हूं इसलिए मेरा खयाल है कि आपकी चर्चाओं के समय यदि मैं आपकी बैठक में उपस्थित रहूं तो शायद सहायक सिद्ध हो सकता हूं। इसलिए यदि मुझे उपस्थित रहने की आज्ञा देंगे तो मैं आनन्द से अपनी सेवाएं अर्पण करने को तयार हूं। इस समय मैं बम्बई जा रहा हूं और वहां आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूंगा।

परन्तु आप मुझे सभा मे बुलायें या न बुलायें, फिर भी कृपा करके साफ घरेलू मामलों के बीच सरकार को हर्गिज न डालिए।

और आपकी मार्फत मुझे इस सरकार को भी थोड़ा-सा कह लेने दीजिए। आजकल मेरे और अली भाइयों के बारे में सरकार के इरादों के सम्बन्ध में अफवाहें उड़ती रहती है। मैं आशा रखता हूं कि सरकार लड़ाई को अपने मार्ग पर शान्तिपूर्वक अग्रसर होने देगी और ऐसा हो सके इसलिए हमारी स्वतन्त्रता पर अंकुश नही लगायेगी। हम अपनी बात का प्रचार अत्यन्त वैधानिक रीति से करने की कोशिश कर रहे हैं। हम प्रयत्न कर रहे है कि सरकार को लोगों की इच्छा के सामने झुकायें और ऐसा करने को तैयार न हो तो पशुबल का आश्रय नही परन्तु शुद्ध लोकमत के जोर से उसे उलट दें। हम मानते है कि सरकार की शैतानियत का पर्दा फाश करना और लोगों से अपनी इच्छा शब्दो में नही बल्कि कार्यों के द्वारा यानी सरकार से अपना सारा सम्बन्ध तोड़ कर, व्यक्त करने के लिए कहना सर्वथा वैध, न्यायपूर्ण और अच्छा काम है। और लोगों से सरकार के साथ असहयोग की बात हम उनकी पशु-वृत्तियों को उकसाकर नही बल्कि उनकी बुद्धि और उनके हृदय को जगाकर ही करते है। फिर भी यदि

---

१. शिक्षाशास्त्री (१८१७-१८९८), सुधारवादी, मोहम्मडन ऐंग्लो ओरिएण्टल कालेज के संस्थापक।

सरकार का इरादा विचार-स्वातन्त्र्य और शान्तिपूर्ण कार्य तक को दबा देने का हो तो मैं आशा रक्खूंगा कि वह हमारे विरुद्ध नजरबन्दी या किसी खास प्रान्त मे ही रहने या किसी विशेष स्थान पर न जाने आदि का कोई हुक्म जारी न करके हमें सीधा कैद ही कर लेगी। कारण, हमारी हार्दिक इच्छा है कि इस घड़ी हमारे अपने ही हाथों कानून का सविनय भंग न हो। परन्तु यदि हमारी घूमने-फिरने की आजादी पर प्रत्यक्ष अंकुश रखने का कोई हुक्म हम पर लगाया जायगा, तो लाचार होकर उसका सविनय अनादर करना हमारा फर्ज हो जायगा। क्योकि जबतक हमारी घूमने-फिरने की आजादी पर प्रत्यक्ष बन्धन न लगा दिये जायें, तबतक अपने कार्य के हित में उसका उपयोग करते रहने के लिए हम कृतसंकल्प है।

कष्ट के लिए सविनय क्षमाप्रार्थी।

आपका सच्चा सेवक
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। २४।१०।१९२०। यं० इं० २७।१०।१९२०]

१०. अलीगढ़

अलीगढ़ विश्वविद्यालय एक पुरानी—पैंतालीस साल पुरानी—संस्था है। इसकी अपनी विशिष्ट परम्पराएं है। इसकी उपलब्धियों का इतिहास बड़ा गौरवमय है। इसने भारत को अली बन्धुओं-जैसी विभूतियाँ दी। यह भारत में इस्लामी संस्कृति का बहुत ही जाना-माना केन्द्र है।

फिर मैं इसके वर्तमान स्वरूप को ध्वस्त क्यो करना चाहता हूं? कुछ मुसलमान बहुत आसानी से ऐसा सोच लेते है कि मैं अलीगढ़ के कल्याण के बहाने वास्तव में इसका अकल्याण ही चाहता हूं। उन्हें शायद यह मालूम नही कि मैं अलीगढ़ विश्व-विद्यालय में जो-कुछ करने की मांग उसके न्यासियों से कर रहा हूं वही 'सब हिन्दू विश्वविद्यालय के सम्बन्ध मे करने का अनुरोध मैं पण्डितजी[1] से भी कर रहा हूं। और मैं निश्चय ही बनारस के विद्यार्थियो को भी वही बातें समझानेवाला हूं जो बातें मैंने अलीगढ़ के विद्यार्थियों को समझाने की कोशिश की है। मैंने खालसा कालेज के सम्बन्ध में भी यही किया है। यह कालेज सिख संस्कृति का एकमात्र केन्द्र है।

---

१. पण्डित मदनमोहन मालवीय।

मेरी यह उत्कट इच्छा है कि इन स्वतन्त्र संस्थाओं के वर्तमान स्वरूप को नष्ट कर दूं, और फिर मै इनके स्थान पर आज की अपेक्षा कही शुद्ध और सच्ची संस्थाएं खड़ी करने का प्रयत्न करूंगा।

मै यह मानने से इन्कार करता हूं कि ये संस्थाएं किसी भी तरह से अपनी-अपनी संस्कृतियों की सच्ची प्रतिनिधि है। और अंग्रेजों के हाथ से आज जितना खतरा इस्लाम को है उतना ही खतरा हिन्दुओं और सिखों को भी। मैंने अलीगढ़ के एक प्राध्यापक से पूछा कि क्या जरूरत पड़ने पर आप ऐसा प्रचार कर सकते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रता भारत का अन्तिम लक्ष्य है, अथवा क्या विश्वविद्यालय गवर्नर का ब्रिटिश शासक की हैसियत से अपने यहां स्वागत करने से इन्कार कर सकता है? उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि ऐसा सम्भव नही। और फिर भी मैं कहूंगा कि भारत के अधिकांश विद्यार्थियों के मन मे ब्रिटिश शासन के लिए प्रतिष्ठा या सम्मान का कोई भाव नही है। इस शासन से वे बिल्कुल ऊब चुके हैं। निश्चय ही इसके प्रति उनके मन मे कोई सद्भाव नही रह गया है। मै तो कहूंगा कि लड़कों को इस कृत्रिम वातावरण मे रखना उन्हे अपने धर्म से विमुख होने की सीख देना है, और उन्हें वहां रखकर उनकी अपनी-अपनी संस्कृति का बहुत बड़ा अपकार कर रहे हैं। हम यह नही चाहेंगे कि हमारा राष्ट्र दम्भियों और मिथ्याचारियों का राष्ट्र बन जाय।

ब्रिटिश सरकार के क्या इरादे है, हम जानते हैं। इस हालत में अगर हम जलियांवाला के निर्दोष रक्त से रंगे हाथो-द्वारा दिये गये पैसों में से छोटी-सी रकम भी स्वीकार करते है, जो पैसा दरअसल हमारा ही है, तो यह हमारी पुंसत्वहीनता और अभारतीयता का सूचक होगा। अगर हम ऐसा करते है तब तो जिस डाकू ने हमारी सारी सम्पत्ति लूट ली हो, हम उसके हाथों से भी निश्चय ही दान स्वीकार कर सकते है। इस सरकार ने हमसे हमारा सम्मान छीना है और हमारे एक धर्म को खतरे में डाल दिया है। मेरी नम्र सम्मति में ऐसे स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करना पाप है, जिनका खर्च सरकार उठाती हो या जो सरकार के प्रभाव में हों।

इसलिए मैं बेहिचक यह सलाह दे रहा हूं कि इन सारी संस्थाओं को, किसी भी कीमत पर, शीघ्र ही नष्ट कर देना चाहिए। लेकिन अगर इन संस्थाओं के न्यासी, शिक्षक और माता-पिता या बच्चे एक होकर काम करेंगे तो हमें कुछ भी गँवाना नही पड़ेगा बल्कि प्राप्त बहुत-कुछ होगा।

मै तो इन संस्थाओं का ढाँचा बदलने को कह रहा हूं, आत्मा नष्ट करने की कोशिश नही कर रहा हू। जिस प्रकार हम पुराने पड गये शरीर का त्याग कर देते है उसी प्रकार जो संस्थाएं पुरानी पड़ गई है, हमारी आवश्यकता पूरी करने लायक नही रह गई हैं, अत. इन संस्थाओं को भी छोड़ देना चाहिए, और उनके बदले ऐसी नई

संस्थाएं स्थापित करनी चाहिए जो हमारी आवश्यकताएं पूरी करने की दृष्टि से ज्यादा उपयुक्त हों। जब राष्ट्र अपना कदम बढ़ा रहा है तब अध्ययन व अध्यापन का काम करनेवाली संस्थाएं, जो राष्ट्र के युवक-समुदाय का प्रतिनिधित्व करती हैं, पीछे कैसे रह सकती है? गुजरात में ऐसे बहुत-से हाई स्कूलों ने, जिनकी उपलब्धियों का इतिहास न्यूनाधिक गौरवमय ही है, सरकारी अनुदान और सरकारी शिक्षा-व्यवस्था से जुड़े रहने के मोह से छुटकारा पा लिया है। और इससे उनका कुछ घाटा नही हुआ, बल्कि उनका स्वरूप हर दृष्टिसे अधिक निर्मल हो गया है। अब वहां के न्यासी और प्रधानाध्यापक अपने स्कूलों के विद्यार्थियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र वातावरण में शिक्षा दे सकते है।

आर्थिक कारण तो उन्ही लोगों के मार्ग में बाधक होता है जो काम नही करना चाहते। हमारी संस्थाएं उस हालत में नही चल सकेंगी, जब शिक्षक और न्यासी लोग अपने न्यास के प्रति ईमानदार नही होंगे या अगर राष्ट्र सचमुच ऐसी संस्था को नही चाहेगा। असहयोग का कार्यक्रम इस विश्वास पर आधारित है कि राष्ट्र वर्तमान सरकार से ऊब गया है और इसे हिंसा का सहारा लिये बिना बदलना चाहता है। अबतक का अनुभव यही बताता है कि राष्ट्र निश्चित रूप से परिवर्तन चाहता है। अगर इसमें असफलता मिलती है या विलम्ब होता है तो उसका कारण कार्यकर्त्ताओं का अभाव होगा।

——अंग्रेजी। यं० इं०, २७।१०।१९२०।]

११. लखनऊ के भाषण

अली-बन्धुओ के मेरे साथ लखनऊ पहुंचने पर अभी जो सभा हुई थी बहुत लोगों का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ है, क्योंकि उसके परिणामस्वरूप श्री डगलस ने, जो एक भारतीय ईसाई बैरिस्टर हैं, असहयोग आन्दोलन से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है। श्री डगलस के इस निर्णय का कारण है उस अवसर पर मौलाना अब्दुल बारी द्वारा दिया गया भाषण। श्री डगलस का आरोप है कि मौलाना साहब ने ईसाइयों को काफिर कहा और श्री विलोबी की हत्या की लगभग उपेक्षा ही कर दी।

मैं उस सभा में मौजूद था और मौलाना साहब का एक-एक शब्द ध्यान से सुन रहा था। इसलिए मैं कहना चाहता हूं कि उस भाषण में श्री डगलस के आन्दोलन से अलग होने की कोई गुंजाइश ही नही थी। यह कहना भी सही नहीं है कि मौलाना

साहव ने हत्यारे को क्षम्य कहा या विलोवी को काफिर कहने में उनका मंशा ईसाइयत का अपमान करना था। श्री डगलस के पास इस सम्वन्ध-विच्छेद का कोई भी औचित्य नही है। उन्होने सभा में कोई विरोव प्रगट नही किया, मुझसे कोई शिकायत नही की। वह जानते है कि मौलाना साहव का मै वड़ा सम्मान करता हूं, अगर उनके भापण में उस अपराव को क्षम्य मानने या ईसाइयत का किसी तरह से अपमान करने की कोई वात होती तो मै खुद ही उसका प्रतिवाद करता। दुनिया के महान धर्मों में से कोई व्यक्ति किसी धर्म का अपमान करे तो मैं उसमें भागी नहीं वन सकता। इसके अतिरिक्त श्री डगलस अपनी वकालत छोड़कर असहयोग में सिर्फ खिलाफत के सवाल को लेकर ही शामिल नही हुए थे, पंजाव मे किये गये अन्याय का भी उन्हे उतना ही ध्यान था, और उनका संकल्प स्वराज्य मिलने तक असहयोग की प्रगति के साथ कदम मिलाकर चलते रहने का था। क्या अव श्री डगलस पंजाव के अन्याय का निराकरण या स्वराज्य नही चाहते? और क्या सिर्फ इसी कारण खिलाफत आन्दोलन से उनका अलग हो जाना ठीक है कि एक मौलवी ने, चाहे वह कितना भी प्रतिष्ठित क्यों न हो, अपने भाषण से उनके मन को चोट पहुंचाई? निश्चय ही, श्री डगलस के इस रवैये मे कही कोई भ्रम है और समझ में न आने जैसी कोई ऐसी वात भी है। खैर, मैं इतना कहकर इस वात को यही समाप्त करता हूं कि श्री डगलस अगर ठीक समझे तो अपनी वात को और स्पष्ट करके समझायें[1] और आन्दोलन से अलग होने के अधिक संगत कारण वताकर उसका औचित्य सिद्ध करे।

अव उन भापणों और विशेपकर मौलाना अव्दुल वारी साहव के भापण पर विचार करना जरूरी है। रिपोर्टर का काम यों भी वड़ा कठिन होता है। लेकिन जव उसे किसी भाषण का विवरण आशुलिपि में न लिखकर सावारण लिपि में अनुवाद करते हुए पूरा-पूरा लिखना पड़े और साथ ही जव वह उस भापा का अच्छा जानकार भी न हो, जिसमे भापण किया जा रहा है तो यह काम और भी कठिन हो जाता है। मेरे सहयोगी श्री महादेव देसाई को मौलाना साहव का भापण नोट करते समय इसी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। 'नवजीवन' में प्रकाशित हो जाने के वाद मैने यह विवरण देखा और देखकर चिन्तित हुआ। मैने सोचा कि वह विल्कुल अनजाने एक वहुत वड़ी भूल कर गये है। रिपोर्ट में मौलाना साहव के साथ न्याय नही हुआ है। उनके मुंह से ऐसा कहलाया गया है कि श्री विलोवी का हत्यारा शहीद है, और मैं (मौलाना साहव) गांधीजी-द्वारा कही गई वातों के

---

१. देखिए परिशिष्ट : श्री डगलस का उत्तर, १७।११।१९२०।

मुकाबले में अलकुरान की बातों को तरजीह देता हूं। मैं श्री महादेव देसाई को अपने उत्तम और सर्वाधिक सावधान सहयोगियों में से मानता हूं। लेकिन ऐसे लोगों से भी, पूरी सदाशयता के बावजूद, कभी-कभी गलती हो सकती है।

जहां तक मुझे स्मरण है, मौलाना अब्दुल बारी साहब ने यह कहा था कि "दूसरों की तरह मुझे भी श्री विलोबी की हत्या बुरी लगी है। मैं जानता हूं कि इससे खिलाफत के उद्देश्य की बहुत क्षति हुई है। मै भलीभांति जानता हूं कि अगर इस हत्या के सम्बन्ध में मुझे पहले से कोई खबर होती तो मैं उसे रोकने की कोशिश करता। अगर दूसरे लोग भी मालूम हो जाने पर उसके आड़े आते तो मै उसे ठीक मानता। लेकिन मुझसे कुछ मित्रों ने हत्यारे के लिए जहन्नुम की बद्दुआ करने को कहा। यह बिल्कुल दूसरी बात है। एक धार्मिक व्यक्ति के नाते मुझे ऐसा करना असम्भव लगा। मैं नही जानता कि यह हत्या कैसे हुई और इसके पीछे क्या उद्देश्य थे। इसलिए मृत्यु के बाद हत्यारे का क्या होगा, यह स्पष्टतः उसके और खुदा के बीच की चीज है, और अगर कोई पहले से ही खुदा के फैसले के बारे में अन्दाजा लगाये तो यह गुस्ताखी ही होगी। श्री विलोबी काफिर जाति के थे और अगर जिहाद की घोषणा की गई होती तो शत्रु-जाति के किसी भी व्यक्ति को इस्लाम की तलवार के घाट उतारना उचित ही होता। लेकिन हमने तलवार न उठाने का निश्चय कर लिया है, इसलिए (अब) शत्रु-जाति के किसी भी व्यक्ति की जान लेना किसी मुसलमान के लिए उचित नही है। हमने श्री गांधी की असहयोग करने की सलाह मान ली है। क्योकि इसकी पुष्टि में कुरान और स्वयं हजरत मुहम्मद के जीवन में काफी प्रमाण मिलते है। और जबतक असहयोग चल रहा है, मैं पूरी तरह श्री गांधी के मार्गदर्शन मे चलूंगा। मुझे मूर्तिपूजक हिन्दुओं से मैत्री करने के कारण फटकारा जाता है। लेकिन मेरी यह निश्चित मान्यता है कि जिन काफिरों ने इस्लाम को संकट मे डालने के लिए कुछ भी उठा नही रक्खा, उन काफिरों के मुकाबले हिन्दुओं से मैत्री करने और यहां तक कि गोवध से भी अलग रहने का मुसलमानों को पूरा अधिकार है।"

यह है मौलाना साहब के भाषण का सार। निश्चय ही, भाषण में कड़वाहट बहुत थी। मौलाना अब्दुल बारी-जैसे धार्मिक आस्थावाले किसी व्यक्ति को अगर अपने धार्मिक सम्मान पर आंच आती दिखे तो भला उसके भाषण में कड़वाहट होने पर शिकायत कौन कर सकता है? व्यक्तिशः मुझे तो किसी के लिए भी काफिर शब्द का प्रयोग करना उतना ही बुरा लगता है जितना किसी हिन्दू-द्वारा किसी के लिए म्लेच्छ या अनार्य शब्द का प्रयोग बुरा लगता है। लेकिन जिन शब्दों

के प्रयोग की मुसलमानो और हिन्दुओं को वचपन से ही इतनी लत लग गई है, उसके लिए मै किसी मुसलमान या हिन्दू से झगड़ने को तैयार नही हूं। जैसे-जैसे अलग-अलग धर्मो और मजहवों के लोगों के वीच मैत्री वढती जायगी, वैसे-वैसे निश्चय ही ऐसे शव्दों का प्रयोग वन्द होता जायगा। क्या सिर्फ इस कारण से पादरी हेवर[1]-जैसे व्यक्ति की विद्वत्ता और नेकी से इन्कार किया जा सकता है कि उन्होने हिन्दुओं को हीदन[2] कहा और इसलिए उन्हे दयनीय तक वताया है? "मनुष्य ही क्रूर है"—ये शव्द पूरे मानव-समाज के लिए कहे गये थे, और आज भी प्रार्थना के समय कई ईसाई गिरजों मे इन शव्दों का उच्चार किया जाता है। इसलिए मुझे तो उक्त भाषण मे श्री डगलस के इस निर्णय का कोई कारण दिखाई नही पड़ता।

मौलाना शौकत अली का भाषण तो और भी निर्दोष था। उन्होंने कहा था कि "श्री विलोवी की हत्या का जितना दुःख मुझे है, उतना और किसी को नही हो सकता। अगर खिलाफत समितियों ने हिंसा को रोकने के लिए निरन्तर और यथासम्भव अधिक-से-अधिक प्रयास न किया होता तो ऐसी एक नही, अनेक हत्याएं हो चुकी होती। लेकिन अपने ही धर्म और सम्मान की खातिर हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जवतक हमने असहयोग को अपना रक्खा है तवतक हिंसा को रोके रहें। किन्तु हत्यारे की भर्त्सना करनेवाले इस चाटुकारिता-भरे प्रस्ताव से मैं सहमत नही हूं।"

मैं देखता हूं, मेरे भाषण की रिपोर्ट तैयार करने मे भी गलती की गई है। मैंने यह कभी नही कहा कि जव हम तलवार उठाना चाहेगे तो उसकी पूर्वसूचना दे देंगे। मैने जितने जोरदार शव्दों में हो सकता था, इस हत्या की भर्त्सना की और कहा कि "आज जव इस्लाम की अनेक मानी हुई धार्मिक संस्थाओं ने लोगों को सुरक्षा का आश्वासन दे रक्खा है, ऐसी हालत में एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या के अपराध को किसी भी तरह क्षमा करने से इस्लाम की प्रतिष्ठा को वट्टा लगेगा। मैने यह भी कहा कि स्वयं मेरा व्यक्तिगत धर्म तो अपने शत्रु के प्राण लेने की अनुमति कभी नही देता। लेकिन साथ ही मैने यह भी कहा कि इस्लाम वल्कि लाखों हिन्दुओं की भी ऐसी मान्यता है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में शत्रु को मारना उचित हो सकता है। और मैने कहा कि जव भारत के मुसलमान तलवार उठाना चाहेगे तो स्पष्ट शव्दों में उचित पूर्व-सूचना देने की ईमानदारी वे अवश्य दिखायेंगे।"

---

१. रेजीनाल्ड हेवर (१७८२-१८२६), कलकत्ता के विशप।
२. गैर-ईसाईयों के लिए प्रयुक्त घृणासूचक शव्द।

और जो बात मैं अक्सर कहता रहा हूं, उसे एक बार फिर दोहराता हूं कि मुसलमानों में जो लोग सबसे नेक और निर्भीक (मौलाना अब्दुल बारी और अली बन्धुओं को मै ऐसा ही मानता हूं) है, वे हिंसा को रोकने के लिए अपने तईं पूरा प्रयास कर रहे हैं। मै सचमुच ऐसा मानता हूं कि ऐसे लोगों ने इतना कठिन प्रयास न किया होता तो इस देश में हिंसा के विस्फोट को नहीं रोका जा सकता था। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि अगर ऐसा होता तो वह न इस्लाम के लिए हितकर होता और न भारत के लिए। उसका यही परिणाम होता कि इस्लाम और भारत को कोई सम्मान दिये बिना सरकार को निर्भयतापूर्ण दमन का अवसर मिल जाता।
——अंग्रेजी। यं० इं०, ३।११।१९२०।]

१२. अलीगढ़ के छात्रों के माता-पिताओं के नाम

मैं जानता हूं कि मेरे कुछ कामों से इस समय मेरे तमाम अच्छे-से-अच्छे मित्र हैरान हो उठे है; देश के नौजवानों को दी गई मेरी सलाह उन कामों में से एक है। मुझे मित्रों की इस हैरानी पर आश्चर्य नही होता। हम आज जिस शासन-प्रणाली का भार ढो रहे हैं, उसके सम्बन्ध में मेरा रुख बिलकुल बदल गया है। हमारे धर्मग्रन्थों में रावण के आसुरी शासन का वर्णन है। मेरे लेखे वर्तमान शासन-प्रणाली उसी प्रकार के आसुरी तत्वों से परिपूर्ण है। मेरी निश्चित मान्यता है कि अगर इस प्रणाली में आमूल परिवर्तन नही किया जाता और शासक लोग निश्चित रुप से पश्चात्ताप नही करते तो इस शासन को समाप्त कर देना चाहिए। किन्तु इस सम्बन्ध में मेरे मित्रों की मान्यता इतनी दृढ़ नही है।

अलीगढ़ में पढ़नेवाले अपने बच्चों के लिए आप चिन्तित है। आपकी चिन्ता मेरी भी चिन्ता है। आप विश्वास कीजिए कि मैं आपकी भावनाओं को चोट नहीं पहुंचाना चाहता। मैं स्वयं चार लड़कों का पिता हूं, और उनका लालन-पालन अपनी समझ से मैंने अच्छे-से-अच्छे ढंग से किया है। मैं सदा अपने माता-पिता के प्रति आज्ञाकारी रहा हूं और उसी तरह अपने शिक्षकों के प्रति भी। मैं माता-पिता के प्रति पुत्र के कर्त्तव्य का मूल्य भी जानता हूं। लेकिन ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्य को सर्वोपरि मानता हूं। और मेरे विचार से इस देश के युवकों और युवतियों के सामने वह घड़ी आ पहुंची है जब उन्हें चुनाव करना है कि ईश्वर के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाएं या अन्य लोगों के प्रति। मेरा दावा है कि अपने देश के युवा-समुदाय को मैं काफ़ी निकट से जानता हूं। मैं जानता हूं कि हमारे देश में अपने [illegible]

शिक्षण का स्वरूप तय करना-कराना ज्यादातर तो नौजवानों के ही हाथ मे है। मैं बहुत से ऐसे उदाहरण भी जानता हूं जिनमें माता-पिताओं को उच्चतर शिक्षा के प्रति अपने बच्चों का आकर्षण एक झूठा मोह जैसा लगता है, लेकिन तब भी वे उन्हें उस ओर से विमुख नही कर पाते। इसलिए मेरी यह निश्चित मान्यता है कि अगर मै नौजवानो से, अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध भी, अपने स्कूल और कालेज छोड़ देने को कहता हूं तो उससे माता-पिता की भावना को कोई चोट नही पहुंचती। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिन सैकड़ों बच्चों ने अपने स्कूल या कालेज छोड़ दिये है उनके माता-पिताओं में से केवल एक ने आपत्ति करते हुए मुझे पत्र लिखा है और ये सज्जन भी सरकारी नौकर है। आपत्ति का आधार यह है कि उनके बच्चों ने स्कूल और कालेज छोड़ते समय उनसे सलाह तक नही ली। दरअसल मैने तो लड़कों को यही सला दी थी कि उन्हे किसी निर्णय पर पहुंचने से पूर्व स्कूल या कालेज छोड़ने के सवाल पर अपने माता-पिता से बातचीत कर लेनी चाहिए।

स्वयं मैने बीसियों सभाओ में हजारों माता-पिताओं से अनुरोध किया है, लेकिन तब किसी माता-पिता ने सरकारी नियन्त्रण में चलनेवाले स्कूल छोड़ने के सुझाव का प्रतिवाद नही किया। सच तो यह है कि उन्होंने आश्चर्यजनक रूप से एक मत होकर असहयोग का प्रस्ताव पास किया, जिसमें स्कूलों से सम्बन्धित बात भी थी। इसलिए मैं मानता हूं कि दूसरों की तरह अलीगढ़ के बच्चों के माता-पिता भी इस बात को जानते है कि उनके बच्चों को सरकार के नियन्त्रण में चलनेवाले स्कूलों और कालेजों को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि नियन्त्रण वही सरकार कर रही है जो भारत के मुसलमानो के साथ छल करने में शामिल रही है और जिसने पंजाब मे बर्बरतापूर्ण व्यवहार करके बड़ी हृदयहीनता से इस राष्ट्र का अपमान किया है।

आशा है, आप यह भी जानते होंगे कि हमारे बच्चो की शिक्षा की उपेक्षा न हो, इस बात की चिन्ता मुझे भी उतनी ही है जितनी कि किसी और को हो सकती है। लेकिन बेशक मुझे औरो से अधिक इस बात की चिन्ता जरूर है कि उन्हें शिक्षा का यह दान पवित्र हाथो से मिले। जिस सरकार को हम हृदय से नापसन्द करते है उससे शिक्षा के लिए अनुदान प्राप्त करना मुझे तो हम सबकी पौरुषहीनता लगती है। मेरी नम्र सम्मति में तो यह चीज बेईमानी और ग़ैर-वफ़ादारी से भी भरी हुई है।

क्या यह बेहतर नही कि हमारे बच्चे, भले ही झोपड़ियों या पेड़ की छाया में किन्तु स्वतन्त्र वातावरण मे ऐसे शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करे जो स्वयं स्वतन्त्र

विचार रखते हों और हमारे बच्चों में भी स्वतन्त्रता की भावना भर सकते हों ? अगर आप लोग यह अनुभव कर लेते कि हमारी प्यारी मातृभूमि के भाग्य-विधाता हम माता-पिता नही बल्कि हमारे बच्चे है, तो कितना अच्छा होता ? जिस दासता के अभिशाप ने हमें पेट के बल रेंगने को मजबूर किया, क्या हम उन्हें उसके अभिशाप से मुक्त नहीं करायेंगे ? हम कमजोर हैं, इसलिए हो सकता है, हममें यह जुआ उतार फेंकने की शक्ति या इच्छा न हो। लेकिन क्या हम इतनी बुद्धिमानी नही दिखायेंगे कि अपने बच्चों के लिए यह अभिशापपूर्ण विरासत न छोड़ें।

स्वतन्त्र युवा और युवतियों के रूप में अपना अध्ययन जारी रखने से बच्चों का कुछ नुकसान नहीं होगा। निश्चय ही, उन्हें सरकारी विश्वविद्यालयों की डिग्रियों की जरूरत नही है। और अगर हम अपने बच्चों के प्रति मोह को छोड़ दें तो उनकी शिक्षा के लिए पैसा जुटाने की समस्या, दर असल बहुत आसान हो जाय। अगर राष्ट्र एक हफ्ते तक आत्मत्याग से काम ले तो उससे उसके स्कूली बच्चों के लिए एक साल का खर्च निकल आये। बल्कि हिन्दुओं और मुसलमानो के जो धर्मार्थ और परमार्थ कोष चल रहे हैं, उनके सहारे हफ्ते-भर के आत्म-त्याग के बिना भी हम अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर सकते हैं। वर्तमान प्रयास और कुछ नही, यह निश्चित करने के लिए लोकमत जानने का एक तरीका भर है कि हममें स्वशासन और अपने धर्मो तथा सम्मान की रक्षा करने की क्षमता है या नही।

भारतीय युवा-समुदाय का हितचिन्तक
मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। यं० इं० ३।११।१९२०।]

१३. संयुक्तप्रान्त में दमन

यदि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को दबाने में पंजाब सरकार सक्रिय हो उठी है तो संयुक्त प्रान्त की सरकार भी इस बात में उससे पीछे नहीं है। मौलाना जफरुल मुल्क को दो वर्ष का कारावास और ७५० रुपये जुर्माना अथवा जुर्माना न देने पर ६ महीने की अतिरिक्त सजा सुनाई गई है। और भी लोगों के गिरफ्तार होने की सम्भावना है। इतना ही नहीं यह भी सुझाव दिया गया है कि मेरी गति-विधिया अबाध नही रखी जानी चाहिए। मेरी गतिविधि का परिणाम थोड़े ही समय में स्वराज्य की प्राप्ति है और अगर इस दिन को दूर रखना है तो मेरी बातें सुनने और तदनुसार सोचने से जनता को वञ्चित रखा जाना चाहिए। यदि सरकार

की ऐसी ही राय हो कि मेरी गतिविधियां हानिकारक है तो उसे मेरी स्वतन्त्रता का अपहरण करने का अधिकार है। सच कहूं तो मेरे सहयोगियों को सजा देने के बजाय मुझसे निपट लेना ज्यादा ठीक है। मेरी और मेरे सहयोगियों की गतिविधियों में अन्तर करना ठीक नहीं है। हम सभी पूर्ण रूप से अहिंसक हैं। हम केवल कुछ ऐसे विचारों के प्रचार की चिन्ता कर रहे है जिनका यदि पालन किया जाय तो उसका परिणाम हिंसा तो हो ही नही सकता। जो सरकार शान्तिपूर्ण प्रचार का दमन करने की कोशिश करती है वह तो केवल एक अत्याचारी सरकार ही हो सकती है। इसलिए जबतक यह सरकार खिलाफत और पंजाब को न्याय देने से इन्कार करती चली जाती है, तबतक उसे दमन का सहारा लेना ही पड़ेगा। दमन ही उस अत्याचारी सरकार का एक मात्र साथी है जो अपने उद्देश्य की सफलता में बाधा का अनुभव करती है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ३।११।१९२०।]

१४. टिप्पणियां

चाय के प्याले में तूफान

एक जिला मजिस्ट्रेट का चाय-पान का निमन्त्रण स्वीकार कर लेने पर 'लीडर' ने श्री मुहम्मद अली पर जो आक्षेप किया है वह मुझे ऐसा ही दिखाई दिया है। अखबारों की टिप्पणियां पढ़ने का मुझे बहुत ही कम अवसर मिल पाता है। किन्तु मैंने संयोग से २५ नवम्बर का 'लीडर' पढ़ा। उसमें यह पढ़कर मुझे निश्चय ही दु:ख हुआ। यह अखबार सुलझी हुई, चुस्त और तीखी टिप्पणियां लिखने के लिए प्रसिद्ध है। फिर भी उसका प्रहार (प्राय:) अनुचित नही होता। किन्तु मेरी समझ में मौलाना मुहम्मद अली-सम्बन्धी उसकी टिप्पणी एक अनुचित प्रहार ही है। असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव में सरकारी समारोहों का बहिष्कार किया गया है। उसमें किसी चाय पार्टी के अवसर पर अधिकारियों और सार्वजनिक लोगों के बीच व्यक्तिगत बातचीत को निषिद्ध नहीं माना गया है। जहां 'लीडर' को मौलाना मुहम्मद अली के इस कार्य में विसंगति दिखाई देती है वहां वह मुझे एक सज्जनोचित कार्य ही लगता है। वह इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि यह आन्दोलन न तो घृणा पर आधारित है और न वह व्यक्तिश: अंग्रेजों को लक्ष्य में रखकर चलाया गया है। उसके द्वारा केवल एक ऐसी प्रणाली को नष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिसे अच्छे-से-अच्छा अंग्रेज भी सहज नही बना सकता।

उसका उद्देश्य शुद्धीकरण है, प्रतिशोधात्मक या दण्डात्मक विनाश नही। मेरी राय में यदि श्री मुहम्मद अली जिला मजिस्ट्रेट के चाय पीने और वातचीत करने के निमन्त्रण को ठुकरा देते तो वह एक लोक-सेवक के रूप में अपने कर्त्तव्य के पालन से च्युत माने जाते। हां, यदि जिला मजिस्ट्रेट अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा या वृद्धि करने के उद्देश्य से कोई सार्वजनिक समारोह करते तो दूसरी वात होती।

कुरुचि

मेरी विनम्र सम्मति में ऐसी ही कुरुचि का उदाहरण 'लीडर' की वह रोषपूर्ण टिप्पणी भी है जो उसने पं० मोतीलाल नेहरू पर होमरूल लीग की होनेवाली बैठक के ऊपर पंजाब सरकार-द्वारा रोक लगाई जाने की कार्रवाई के सम्वन्ध में भेजे गये उनके तार को लेकर लिखी है। कहते है पं० मोतीलाल नेहरू ने तार में यह कहा कि इस निषेधाज्ञा का पालन किया जाना चाहिए क्योकि (यहां) सविनय अवज्ञा अवाञ्छनीय है। इस तार के पीछे जो सराहनीय आत्म-संयम है उसको देखने के बजाय 'लीडर' ने यह कह कर पं० मोतीलाल नेहरू की हँसी उड़ाई है कि वे तात्कालिक उपयोगिता की नीति का यहां आश्रय लेने पर उतर आये है। यदि पण्डितजी ने सविनय अवज्ञा की सलाह दी होती, यदि सरकार हिसा करती और लोग उसका उत्तर हिसा से देते तो 'लीडर' का नाराज होना ठीक होता। मै तो 'लीडर' से 'लीडर'-विरोधियों के प्रति भी न्याय करने की आशा करता हूं। असहयोग का ध्येय सार्वजनिक जीवन को शुद्ध वना कर और अहिसात्मक अर्थात् शिष्टतापूर्ण या विनम्र साधनों से लोकमत को प्रेरित करके स्वराज्य प्राप्त करना है। मैं मानता हुं कि असहयोगी सामूहिक रूप से अपने व्यवहार में नम्रता का समावेश नही कर पाये हैं। लेकिन उनकी प्रवृत्ति निश्चय ही उसी ओर है। अव हम पण्डितजी की सलाह की अच्छाई-वुराई पर विचार करें। पुराने शव्दों को नये मूल्य मिल रहे है। 'तात्कालिक उपयोगिता' की नीति शव्दों में एक हीक आती है किन्तु वह शब्द समूह अपने आप मे वुरा नही है। सविनय अवज्ञा वैध है किन्तु वह तबतक वाञ्छनीय या उपयुक्त नही है जवतक समस्त राष्ट्र मे पूरा आत्मसंयम नही आ जाता और जवतक वह यह नही सीख लेता कि उचित कानूनों का पालन स्वेच्छापूर्वक किया जाना चाहिए। उनका पालन उनकी अवहेलना करने की दिशा में मिलनेवाले तत्सम्वन्धी दण्ड का भय छोड़कर करना आवश्यक है। कर देना वन्द करना वैध है, किन्तु जवतक राष्ट्र समष्टि की हैसियत से अहिसा को अपने में पूरी तौर पर पचा नहीं लेता तवतक यह अनुपयुक्त है। दूसरे शव्दो में कहा जाय तो अहिसा असहयोग का केवल उपसर्ग या प्रत्यय भर नही है, वह उसका अविभाज्य

और मुख्य भाग है। उसके अपेक्षाकृत रौद्र, अधिक उग्र और शक्तिशाली रूपों पर तबतक अमल नहीं किया जा सकता जबतक पर्याप्त भरोसे के साथ यह न कहा जा सके कि राष्ट्र ने स्थिति समझ ली है और वह शान्तचित्त रहकर प्रतिबन्ध, कैद और उससे भी कठोर यन्त्रणा को सहन कर सकता है।

--अंग्रेजी। यं० इं०, १।१२।१९२०।]

- अहिंसा असहयोग का केवल उपसर्ग या प्रत्यय भर नहीं है; वह उसका अविभाज्य और मुख्य भाग है।

१५. दो टिप्पणियां

१. पत्रकारों का अज्ञान : 'लीडर' की भ्रान्तियाँ

तीस वर्षों के व्यस्त जीवन में मेरा यही दुर्भाग्य रहा है कि जिन सरकारों से मेरा साबका पड़ा है उन्होंने अक्सर मेरे बारे में गलत बातें कही और मुझे गलत समझा है। और जिन लोगों की मैंने सेवा की कभी-कभी उनके हाथों में भी मुझे यही व्यवहार मिला है। पत्रकार होने के नाते भी, तथा एक लोक-सेवी व्यक्ति होने के नाते भी, समाचारपत्रों से मेरा सम्बन्ध रहा है। लेकिन मुझे उनके अज्ञान का भी शिकार बनना पड़ा है। फिर भी समाचारपत्रों द्वारा प्रदर्शित अज्ञान का ऐसा अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ जैसा इस समय हो रहा है। इंग्लैण्ड और अमेरिका से मेरे मित्र समय-समय पर समाचारपत्रों की जो कतरनें मेरे पास भेजते रहते हैं उनसे तो अज्ञान के साथ-साथ अविवेक भी प्रकट होता है। घोर अज्ञान और किसी चीज को लापरवाही से पढ़ने का जो उदाहरण सबसे हाल में मेरे सामने आया है, वह है 'लीडर' का। उसमें कताई पर एक लेख है, जिसमें उस लेख का ही गलत अर्थ लगाया है जिसे उसने उद्धृत किया है। मेरे साथ सफर कर रहे एक युवक ने मुझे वह लेख दिखाया। मुझे लेखक द्वारा प्रदर्शित अज्ञान एवं असवाधानी पर दुःख हुआ। मैंने उक्त युवक से कहा कि यदि 'लीडर' की भ्रान्तियां उसकी समझ में आ गई है तो वह स्वयं ही उनका जवाब लिखे। उसका जवाब इतना जोरदार है कि स्वयं जवाब देने का प्रयत्न करने के बजाय मैं वही जवाब अन्यत्र दे रहा हूं।[1]

---

१. नहीं दिया जा रहा है।

२. रघुपतिसहाय

गोरखपुर के श्री रघुपति सहाय[1] होना चाहते तो डिप्टी कलक्टर हो सकते थे। वह एक सुसंस्कृत शिक्षा-शास्त्री हैं किन्तु उनका यह दुर्भाग्य है कि उनमें संगठन की योग्यता है और गोरखपुर के नागरिकों पर उनका प्रभाव है। मुझे अभी अखबारो से मालूम हुआ कि उनकी भी वाणी की स्वतन्त्रता पर रोक लगा दी गई है। देश में कोई हिंसा का प्रचार नही करता—श्री रघुपति सहाय से तो ऐसी आशा ही नही की जा सकती। किन्तु इस 'अपनी' सरकार के अधीन एक मैजिस्ट्रेट को ऐसी सत्ता प्राप्त थी कि उसने उनके सार्वजनिक सभाओं में बोलने पर रोक लगा दी है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ९।३।१९२१।]

१६. संयुक्तप्रान्त से सम्बन्धित कुछ टिप्पणियां

पण्डित मालवीयजी

पं० मदनमोहन मालवीय के साथ जो दुर्व्यवहार किया गया वह जनता की मनःस्थिति को सूचित करता है। भारत में यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जिसका कदापि अपमान नही किया जाना चाहिए, तो वह पण्डितजी ही हैं। पंजाब के प्रति की गई उनकी सेवाएं आज भी हमारी स्मृति में ताजी[2] है। एक मात्र उन्ही के परिश्रम से बनारस के महान विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ। वह देशभक्ति में किसी से कम नही है। आवश्यकता से अधिक सज्जन है। यह भारत का दुर्भाग्य है, उनका दोष नहीं कि वह कुछ समय के लिए अपनी प्यारी चीज छोड़ने की जोखिम उठाने पर खुद को लाचार पाते हैं। उनका इस प्रकार अपमान किया जाना भारी दुःख की बात है। यदि संस्कृत के विद्यार्थियों ने अथवा तथा-कथित संन्यासियों ने विद्यार्थियों का मार्ग रोक लिया था तो निश्चय ही पण्डितजी को अधिकार था, बल्कि उनका कर्त्तव्य था कि वह बीच में पड़कर सहयोगी विद्यार्थियों को रास्ता दिलवाते। मेरे विचार से पुलिस ने सरगना लोगो को या जिन्हें उसने अगुआ समझा उन पर

---

१. रघुपति सहाय फिराक, बाद में प्रयाग विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक; उर्दू के प्रसिद्ध कवि।

२. जलियांवाला बाग की घटना के बाद १९१९ में मालवीयजी ने पंजाब का दौरा किया था।

मुकदमा चलाकर बिल्कुल ठीक किया। गिरफ्तार किये गये लोगों के साथ दुर्व्यवहार किया गया होगा, यह मै मानता हूं। किन्तु पुलीस से सौम्य व्यवहार की आशा हमें स्वराज्य प्राप्त करने के बाद भी नही करनी चाहिए। अतः मै उन लोगों के प्रति जरा भी सहानुभूति नही दिखा सकता, जिन्होने इतने स्पष्ट रूप से उस उद्देश्य के नाम मे बट्टा लगाया है, अज्ञानवश जिसके हामी होने का दावा वे करते है।

सच्चे और झूठे

किन्तु आन्दोलन मे होनेवाली ज्यादतियों की आलोचना करना एक बात है और स्वयं आन्दोलन की ही निन्दा करना बिल्कुल दूसरी बात है। सच्चे असहयोगियो और झूठे असहयोगियों में भेद करना जरूरी है। नासमझ विद्यार्थियों और अज्ञानी सन्यासियो का व्यवहार निःसन्देह लज्जाजनक तथा निन्दनीय था। किन्तु जनता का विशाल समुदाय असहयोग की सीमाओं को जानता है और उसका अतिक्रमण नही करता। मै साहसपूर्वक यह दावा करता हूं कि भारत आज जितना शान्त है उतना पहले कभी नही रहा, लेकिन यह शान्ति कमजोरों और अज्ञानियो की जड़ता, नही है, वरन् यह उन लोगों की प्रबुद्ध शान्ति है जिन्हे अपनी दिन-प्रति-दिन बढ़ती हुई शक्ति का भान हो रहा है। भारत उस रोग को जानता है, जिससे वह पीड़ित है और आन्तरिक शुद्धीकरण की प्रक्रिया से उस रोग से मुक्त होने की तैयारी कर रहा है।

सदा सावधान रहिए

लेकिन साथ ही हम क्या कहते और करते है इस विषय में हमें सावधान रहना चाहिए। भारत के कुछ सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति इसीलिए अलग खड़े है कि उन्हें यह विश्वास नही है कि उत्तेजनाओं के बावजूद जनता अहिसक बनी रहेगी। असहयोगियो की छोटी-से-छोटी गलती, यहा तक कि उनका अशिष्ट व्यवहार भी हमारे उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा पहुंचाता है। हम एक ही समय एक ओर समझदार तथा सयमी और दूसरी ओर क्रुद्ध नही हो सकते। एक बार में या तो हम हिसक हो सकते है या अहिसक; दोनो नही। हमने अपने लिए एक रास्ता चुन लिया है, और अब उसमें जो भी कठिनाइया झेलनी पड़े, उन्हे सहन करना चाहिए। अहिसा पर दृढ़ रहने का निश्चय कर लेने के बाद, हमें हिसा की ओर किसी प्रकार का झुकाव नही दिखाना चाहिए। अतः हमे सावधान रहना है कि किसी भी रूप मे हम हिसा का समर्थन नही करेगे। यदि हम अपने आन्दोलन को अहिसा के सुदृढ आधार पर स्थित नही करते तो वह

ताश के मकान की तरह किसी दिन एक फूंक में ही भरभरा पड़ेगा। हम एक ही साथ खुदा और शैतान दोनों की भक्ति नही कर सकते।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १६।३।१९२१। सं० गां० वां०, खण्ड १९ पृ० ४३६-३७।]

१७. खादी की महिमा

खादी के प्रचार का इतना ज्यादा असर हुआ है कि बुलन्दशहर में एक भिश्ती युवक के मर जाने पर उसके कफन के लिए उसके सगे-सम्बन्धियों ने खादी का कपड़ा खरीदा और जाति के पंचों ने निश्चय किया कि कफन के लिए आगे से खादी का ही इस्तेमाल किया जायगा। खादी के सम्बन्ध में यदि लोगों में ऐसी पवित्र भावना फैल जाय तो हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिलने में कितनी देर लग सकती है? जो समय नष्ट हो रहा है वह हमारी दुर्बलता अथवा हमारी अश्रद्धा के कारण ही हो रहा है। दुर्बलता अथवा अश्रद्धा के कारण हम अपना कर्त्तव्य पूरा नही करते।

—गुजराती। न० जी०, ३।४।१९२१]

१८. एक मजिस्ट्रेट की सनक

देहरादून छावनी के मजिस्ट्रेट ने सत्याग्रह दिवस पर यह हुक्म निकाला कि उस दिन उनकी छावनी में दुकानें अवश्य खोली जायं और यदि दुकानदारों ने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया तो वे छावनी से निर्वासित कर दिये जायंगे। इस आज्ञा ने यह दिखला दिया है कि भारत में ओ-डायरशाही[1] अभी तक मरी नही है। ज्यादातर लोगों को इस बात की जानकारी नहीं है कि छावनियों में मजिस्ट्रेटों को वे अधिकार प्राप्त रहते हैं, जिनका अन्य स्थानों में केवल 'मार्शल ला' के अधीन ही प्रयोग किया जा सकता है। छावनियों के निवासी मजिस्ट्रेटों की दया पर निर्भर रहते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि लोगों ने एक ऐसी शासन-पद्धति को इतनी लम्बी अवधि तक

---

१. सर माइकल ओ' डायर, पंजाब के लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर (१९१३-१९१९), जिसके शासन में किये गये अत्याचारों के कारण भारतीय इतिहास में वह 'डायरशाही' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

और इतने धैर्य के साथ बरदाश्त कर लिया, जिसका निर्माण ही इस दृष्टि से किया गया था कि उनकी स्वतन्त्रता को इतना नियन्त्रित किया जाय जिससे वे गुलामों-जैसे बन जायं।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २०।४।१९२१।]

१९. टिप्पणियां

मैं ये टिप्पणियां आनन्द भवन में बैठकर लिख रहा हूं। मुझे अभी-अभी एक पर्चा दिखाया गया जिसे किसानो के बीच बांटने के अपराध में पांच नौजवानों को सजा दी गई है। इस पर्चे में कहा गया है कि मैने एक साल के अन्दर स्वराज्य दिलाने का बिना शर्त्त वायदा किया है। इस बात को पढ़कर मुझे चोट लगी और थोड़ी झुंझलाहट भी हुई लेकिन यह तो ऐसी कोई आपत्तिजनक बात नही है। उलटे, पर्चे में किसानो को उत्तेजित किये जाने पर भी शान्ति से काम लेने की सलाह दी गई है। मजिस्ट्रेट ने इन पर्चो को राजद्रोहात्मक करार देकर उन नौजवानों से इस बात के लिए जमानत तलब की कि वे इन पर्चो को नही बांटेंगे। जमानत देने के बदले उन्होंने जेल जाना पसन्द किया। सरकार का विरोध करने का यह एक अच्छा और सुथरा तरीका है।

इलाहाबाद जिले के कलक्टर-द्वारा जारी की हुई एक नोटिस भी मैंने देखी जिसमे सरकारी नौकरों को गांधी टोपी पहनने से मना किया गया है। मैं हर एक सरकारी कर्मचारी को सलाह देता हूं कि वह इन सुन्दर, हलकी-फुलकी और कोई आपत्ति न करने योग्य टोपियों को पहनें और बरखास्त हो जायं और जरूरत पड़े तो जेल भी जायं। इलाहाबाद में मुझे यह बात भी बतलाई गई कि सरकार के कुछ ही खैरख्वाह कर्मचारी किसानों को धमकियां दे रहे है कि अगर उनके घरों में चर्खे पाये गये तो वे जेल भेज दिये जायगे। अगर चर्खे को रखना राजद्रोह में शुमार किया जाय, तो उसे घर मे रखना जेल जाने का बड़ा ही सम्माननीय ढंग हो जायगा।

जमींदार और रैयत

यह सच है कि संयुक्त प्रान्त की सरकार ने लोगों को आतंकित करने के मामले में औचित्य की सभी सीमाएं पार कर डाली है। लेकिन साथ ही यह भी निस्सन्देह सच है कि किसान अपनी नई मिली ताकत का इस्तेमाल कुछ बहुत समझदारी से

नहीं कर रहे हैं। कहा जाता है कि कई जमीदारियों में उन्होंने ज्यादतियां की हैं, कानून को वालाए ताक रख दिया है, मनमानी करने लगे है और जो उनकी मर्जी के मुताबिक चलने को तैयार नहीं उसे एक मिनट भी वरदाश्त नहीं कर सकते। वे सामाजिक बहिष्कार का गलत ढंग से इस्तेमाल कर रहे है और उन्होंने कई जगह अपने जमीदारों का पानी, नाई और धोबी तक बन्द कर दिया है। और किसी भी खिदमतगार को उनके यहां काम करने के लिए नही जाने देते। कही-कही तो उन्होंने लगान देना भी बन्द कर दिया है। असहयोग से किसान-आन्दोलन को प्रेरणा और गति तो जरूर मिली लेकिन उनका यह आन्दोलन असहयोग के पहले से चल रहा है और उससे स्वतन्त्र है। समय आने पर हमें किसानों से यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट न होगी कि वे सरकार को लगान देना मुल्तवी कर दें, लेकिन असहयोग के किसी भी दौर में हम जमीदारों को उनके लगान से वञ्चित करने की तो कोई भी वात नही सोचते। इसलिए किसान-आन्दोलन को किसानो की दशा सुधारने और किसान-जमीदार सम्वन्धों को वेहतर वनाने तक ही सीमित रखना चाहिए। किसानों को यह बात समझाई जानी चाहिए कि जमीदारों के साथ किये गये अपने इकरारनामे की शर्तो का वे ईमानदारी के साथ पूरा-पूरा पालन करें, चाहे वे इकरारनामे लिखित हों या रस्मी। अगर कोई रस्मी या लिखित इकरारनामा भी बुरा हो और उसे भंग करना जरूरी हो जाय तो पहले जमीदार को सूचना देकर केवल शान्तिपूर्ण तरीके से ही वैसा करना उचित है, हिंसा का सहारा तो कभी नही लेना चाहिए। हर हालत मे जमींदारों के साथ दोस्ताना ढंग से वातचीत करके समझौते की कोई सूरत निकालनी चाहिए। हमारा राष्ट्र दुनिया के सवसे वड़े और प्राचीनतम राष्ट्रों में से है, इसलिए इसके जीवन में एक साथ कई जटिल समस्याओ का उठ खड़ा होना स्वाभाविक ही है। उन सभी समस्याओं को सरकार की सहायता या उसके हस्तक्षेप के विना हल करने की हमारी सामर्थ्य पर ही स्वराज्य प्राप्त करने की हमारी सामर्थ्य निर्भर करती है।

अनुशासन

अव वह समय आ गया है जव हमें अवश्य ही अनुशासन का पालना करना सीख लेना चाहिए। अव यह वात टाली नहीं जानी चाहिए। स्टेशनों पर जो प्रदर्शन किये जाते हैं, वे यात्रियों के लिए काफी तकलीफ़देह वनते जा रहे है। मुझे वताया गया कि जो रेल यात्री स्टेशन पर प्रदर्शन होने के कुछ समय पहले मेरी तारीफ़ कर रहे थे वे ही अगले कुछ स्टेशनों पर दो एक प्रदर्शनों के वाद मुझे कोसने लगे। मुझे उनके साथ

पूरी सहानुभूति है। इलाहाबाद जाते हुए मेरे एक सहयात्री को भीड़ के कारण बडी तकलीफ हुई। प्लेटफार्म पर भीड़ इस तरह टूट पड़ी कि उन्हें एक प्याली चाय भी न मिल सकी, वह जलपान के लिए बाहर तो जा ही नही सके। अगर उन्होंने मुझे एक बवाल समझ लिया तो कोई ताज्जुब नही। इलाहाबाद से लौटते हुए कानपुर के प्लेटफार्म पर तो भीड़ बिल्कुल काबू से बाहर हो गई। हजारों आदमी शोर मचाते, राष्ट्रीय नारे लगाते हुए मेरे डिब्बे पर टूटे पड़ रहे थे। इससे सभी को खासी असुविधा हुई। नेताओं ने किसी तरह भीड़ को बिठा तो दिया, पर शोर और नारे बन्द न किये जा सके। अन्त तक गुलगपाड़ा मचता ही रहा। फिर मुझसे कहा गया कि मै दरवाजे पर आकर लोगो को दर्शन दूं। लेकिन मैंने साफ कह दिया कि जबतक शोर-गुल बिल्कुल थम नही जाता मैं अपनी जगह से हिलूंगा नही। दर्शन देने का आग्रह करनेवाले दोस्तो को इससे जरूर निराशा हुई होगी।

इस सारे शोरगुल और धक्का-मुक्की की खास वजह यह है कि पहले से सारी बाते सोच-विचार कर ठीक से इन्तजाम नही किया जाता और फिर संगठन की कमजोरी भी है। अच्छा तो यही होगा कि स्टेशनों पर प्रदर्शन कतई न किये जायें। रेल के यात्रियों की सुविधा का खयाल हमे करना ही होगा। अगर स्टेशनों पर स्वागत करना ही हो तो राष्ट्रीय नारे कम से कम और समझबूझ कर लगाये जायं और ऐसा इन्तजाम रहे जिससे मुसाफिरों को चढ़ने-उतरने और प्लेटफार्म पर आने-जाने में किसी तरह की दिक्कत न हो। वक़्त आ गया है कि जन-आन्दोलन को पूरी गम्भीरता और बाकायदा चलाने की तमीज और अनुशासन हमारे राष्ट्र में पैदा हो। इसका मतलब यह हुआ कि स्वयंसेवकों को पहले से इसकी तालीम दी जाय और जनता को भी अनुशासन का पालन करने की बात पहले से ही सिखा-समझा दी जाय। मोटी-मोटी बाते सिखलाने में ज्यादा दिन भी नही लगते। जहां-जहां लोगों को पहले समझा दिया गया था, वहां उनका बरताव काफी अच्छा रहा। अनुशासन की तालीम के बिना पता नही कब कैसी दुर्घटना हो जाय। अभी तक कोई अनर्थ नही हुआ, इसका कारण लोगों की सहज भलमनसाहत ही है, नही तो ऐसे भीड़-भड़क्के में उपद्रव होते क्या देर लगती है। अगर ठीक तरीके से तालीम दी जाय तो बडे-बड़े प्रदर्शनों के बावजूद हम सर्वथा निश्चिन्त और सुरक्षित रह सकते हैं, उससे किसी खतरे का अन्देशा नही रह जाता। सभा और जुलूसों में पागलों की तरह धक्का-मुक्की और शोरगुल करना हमारे लिए नुकसानदेह है।

—अंग्रेजी। इलाहाबाद (आनन्द भवन), ९।५।१९२१। यं० इं०, १८।५। १९२१।]

२०. मार्ग की कठिनाइयां

किन्तु हमारे मार्ग में जो कठिनाइयां है उनके प्रति मैं आंखें नहीं मूंदे हूं। अलीगढ़ से प्राप्त समाचार चिन्ताजनक[1] है, घटना का सरकारी विवरण और दूसरा विवरण मैने "इण्डिपेण्डेण्ट"[2] में देखा है। यदि मैं गलती पर हुआ तो मै अलीगढ़ की जनता से क्षमा-याचना कर लूगा, किन्तु 'इण्डिपेण्डेण्ट' के संवाददाता का विवरण तथ्यों से मेल नही खाता और तथ्यों से जितना निष्कर्ष निकल सकता है उससे कही अधिक निष्कर्ष निकालने की कोशिश करता है। वह इस बात से इन्कार नही करता कि भीड़ ने आगजनी की, और फिर भी भीड़ को दोषी न मानने का प्रयत्न करता है। यह विश्वास करने के लिए कि अलीगढ़ में अधिकारियो ने क्षोभ का कोई कारण उत्पन्न हुए बिना ही द्वेषपूर्ण ढंग से ज्यादती की है, मुझे बहुत स्पष्ट प्रमाण की जरूरत होगी। मुझे यह सम्भव लगता है कि पुलिस भीड़-द्वारा एक आक्रामक प्रदर्शन को रोकना चाहती थी और ऐसा करते हुए वह आत्म-संयम खो बैठी और उसने गोली चला दी। मेरा कहना यह है कि हमारी ओर से कोई आक्रामक कार्रवाई होनी ही नही चाहिए। असहयोगियों को किसी को सताना या धमकाना नही चाहिए। हमारे अन्दर एक अदम्य उत्साह बढ रहा है जो केवल भगवान पर भरोसा रखने, यानी अपने लक्ष्य की न्यायपूर्णता पर विश्वास का परिणाम है। यदि हम चाहते है कि अपने कार्यक्रमको सफल बनायें—और वह भी इसी साल के अन्दर—तो हमारे लिए धमकी देने या शक्ति प्रदर्शन करने का अवसर ही नही है। हमें अपने संकल्प के प्रति पूरी दृढ़ता के साथ सच्चे रहना चाहिए। हम आशातीत रूप से तभी सफल हो सकते है जब हम विचार, वाणी और कर्म मे अहिसा बरतें। अहिसा चाहे हमारा सर्वोपरि जीवन-सिद्धान्त न हो, किन्तु अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए हमारा वर्त्तमानकालिक सिद्धान्त तो होना ही चाहिए। इसमें कोई कठिनाई नही होनी चाहिए कि हमने जिस तरह अपने प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति बुरा बर्ताव न करना तय किया है उसी प्रकार हम उनके प्रति बुरा न सोचें, बुरा न कहे। अहिसा और सत्य की प्रतिज्ञा का उपयोग हमें हिंसा और असत्य-अतिशयोक्ति को छिपाने के लिए भी नही करना चाहिए, न हमें अपने अच्छे-से-अच्छे साथियों के जेल चले जाने से डरना चाहिए। मैं इस विश्वास पर कायम हूं—जो मैने अक्सर प्रगट किया है—कि पण्डित सुन्दरलाल[3] और पण्डित

---

१. देखिए 'सन्देश : अलीगढ़ की जनता को' १६-७-१९२१।

२. इलाहाबाद से प्रकाशित अंग्रेजी राष्ट्रीय दैनिक।

३. 'भारत में अंग्रेजी राज्य' के लेखक, हिन्दी के पुराने पत्रकार।

माखनलाल[1] अपनी आत्मा की शान्ति के लिए जेल जाकर वहां राष्ट्र की उससे अच्छी सेवा कर रहे है जितनी वे स्वतन्त्र रहने पर करते। जो ऐसा नही सोचते, वे असहयोग को नही समझते इस महान आन्दोलन की प्रेरक शक्ति मौखिक प्रचार नही, बल्कि मौन प्रचार है जो इस पागल सरकार के शिकार बननेवाले निर्दोष लोगों को यातना देता है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १३।७।१९२१।]

● हमारी ओर से कोई आक्रामक कार्रवाई होनी ही नहीं चाहिए।

२१. टिप्पणी (शस्त्र-अधिनियम)

स्वामी श्रद्धानन्द एक घटना प्रकाश में लाये है कि बिजनौर जिले के एक मजिस्ट्रेट ने गुरुकुल कागड़ी के सहायक प्रबन्धक की बन्दूक के लाइसेंस का नवीकरण करनेसे इन्कार कर दिया। यह सुधारों की निरर्थकता का खुला प्रदर्शन है। यदि स्वामी श्रद्धानन्द का यह अनुमान ठीक है कि लाइसेंस का नवीकरण न किये जाने का कारण असहयोग आन्दोलन से इसका सम्बन्ध है तो इससे यह जाहिर होता है कि जनता के दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बातों के प्रति सरकार का रवैया और शासन का तरीका बिल्कुल नही बदला है; जो कुछ थोडा परिवर्तन हुआ है वह असहयोग के प्रभाव के कारण लेकिन स्वामी श्रद्धानन्द जैसे जाने-माने नागरिक के प्रति बिजनौर के जिला मजिस्ट्रेट के ऐसे हृदयहीन व्यवहार के लिए जनता तैयार नही थी। मैने इस व्यवहार को हृदयहीन कहा है, क्योकि जिस बन्दूक के लिए लाइसेन्स लेना था उसकी जरूरत शिकार के लिए नही बल्कि एक घने जगल में जंगली जानवरों से बचाव के लिए थी।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १३।७।१९२१।]

२२. एक पीड़ित का पत्र

अपनी गिरफ्तारी के कुछ ही दिन पूर्व पण्डित सुन्दरलाल[2] ने एक लम्बा पत्र

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी, हिन्दी के जाने-माने कवि और देशभक्त, जो 'कर्मवीर' के सम्पादक हुए।

२. इलाहाबाद के निवासी, दैनिक 'भविष्य' के सम्पादक और प्रवर्त्तक, 'भारत में अंग्रेजी राज्य' के लेखक।

लिखा था। मै उसके सम्बन्धित भाग का भावानुवाद दे रहा हूं। पूरा पत्र मुझे स्वाभाविक और साफ लगा। यह कहना आवश्यक नहीं कि वह केवल मेरी सूचना के लिए लिखा गया था :—

"स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसा पर मेरा विश्वास दृढ़ हो गया है; मेरी बुद्धि ने यह सिद्धान्त पक्की तरह से ग्रहण कर लिया है। मैं अब उसे केवल निर्बल अस्त्र ही नहीं, अपितु बलवान का अस्त्र भी मानने लगा हूं। किन्तु मैं यह स्वीकार करना चाहता हूं कि कई वर्षो तक मेरा विश्वास इसके विरोधी और गलत सिद्धान्त, हिंसा, पर रहा है, इसलिए मैं बड़ी लगन के साथ इस नये सिद्धान्त के अनुसार अपने जीवन को ढाल रहा हूं। यदि मैं अपने जेल भेजे जाने के बारे में, जो सम्भावित लगता है, चिन्तित हूं तो यह चिन्ता उस काम को लेकर ही है जो मैंने यहां शुरू किया है। यदि लापरवाही से मेरे मुंह से निकली किसी बात से इस काम में बाधा पड़ेगी, तो मुझे दुःख होगा। किन्तु जो प्रसन्नता और सन्तोष मुझे इस समय है वह इस विचार से है कि शायद ब्रिटिश जेल के कठोर अनुशासन से मेरा जीवन अधिक अच्छी तरह गठित हो सकेगा। जेल में प्राण दे देना मुझे उतना ही प्रिय है जितना (नये ढंग से) ठोक-पीटकर मानवता की सेवा के लिए ठीक तरह गढ़ा जाना। इसलिए मैं आगा ी गिरफ्तारी के लिए पूरी तरह तैयार हूं।"

मुझे विश्वास है कि सैकड़ों असहयोगी जो जेल की सजा भोग रहे हैं इसी भावना से प्रेरित है जो पण्डित सुन्दरलाल ने दिखाई है। अलीगढ के लोगों को प्रसन्नता से अपने साथी को पकड़े जाने देना चाहिए था और उसका स्थान लेकर उसका काम करना चाहिए था। हमें सिर्फ इतना ही करना है कि हम अपने साथियों के जेल जाने से खाली होने वाली जगहों को भरते चले जायं। हमारा कार्यक्रम बिल्कुल स्पष्ट है। उसे पूरा करने का अर्थ वह-सब प्राप्त कर लेना है जिसकी हमें कामना है।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १३।७।१९२१।]

२३. कितना सुन्दर !

पं० मोतीलाल नेहरू की अनुमति से मै रामगढ़ में, जहां वह इन दिनों स्वास्थ्य-लाभ कर रहे है, व्यतीत किये हुए उनके जीवन का निम्नलिखित शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक वर्णन शब्दशः उद्धृत कर रहा हूं :—

"जिस छोटी पहाड़ी पर अकेला केवल अपने एक नौकर के साथ आराम कर रहा हूं, वहां का जलवायु और वातावरण मेरे लिए बहुत अनुकूल सिद्ध हो रहा है। कुछ दमा और खांसी अब भी शेष है पर स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त होने के साथ-साथ वह अवश्य ही दूर हो जायगी। दुःख की बात केवल यही है कि बीमारी के बाद की देख-भाल के लिए मेरे पास पर्याप्त समय नहीं है, और यह व्यावसायिक जीवन की पिछली बुराइयों के कारण है जो अब भी मेरे पीछे पड़ी हुई हैं। जब मैंने वकालत छोड़ी तब मेरे पास जो सैकड़ों मुकदमे थे उनमें से दो को मै छोड़ नही सका था। इनमें से एक मामला सरूप के विवाह के ठीक पहले आया था और कुछ सीमा तक मेरे स्वास्थ्य के खराब होने का कारण वह भी था और अब यह दूसरा मामला मेरे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक आराम में आड़े आ रहा है। यह एक लम्बा और नया मुकदमा है और ५ जुलाई को शुरू होगा जिसके लिए पहले से तीन या चार दिन का अध्ययन आवश्यक होगा। मैं इसे लखनऊ में होनेवाली अखिल भारतीय बैठक के बाद लेने का प्रयत्न कर रहा हूं, पर मैंने फिलहाल रामगढ़ से रवाना होने की तारीख ३० जून निश्चित कर ली है। यदि मुझे केवल कुछ ही सप्ताहों का समय और मिल जाय तो मै आपको विश्वास दिला सकता हूं कि मेरे अन्दर एक बैल-जितनी शक्ति आ जायगी। पर अहिंसावादी असहयोगी व्यक्ति के लिए शारीरिक दृष्टि से इतना अधिक शक्तिशाली होना शायद निरापद नहीं है।

"मै जिस प्रकार का जीवन यहां व्यतीत कर रहा हूं आप उसके बारे में जानना चाहेंगे। अतीत के उन सुखद (?) दिनों में, जब मैं पहाड़ों पर आया करता था तब मेरे साथ दो प्रकार का भोजन बनाने की व्यवस्था रहा करती थी—एक अंग्रेजी और दूसरी भारतीय। शिविर में छोटी हाजिरी के बाद हम जंगल की ओर रवाना होते और हमारे साथ रायफलों, छोटी बन्दूकों और और कारतूसों का पूरा इन्तजाम रहता और कभी-कभी तो हमारे साथ हांका करनेवालों की एक छोटी-सी फौज ही रहती थी। हम दिन ढले तक अपने रास्ते में आनेवाले भोले-भाले जानवरों को मारते रहते थे। इस बीच हमें जंगल में घर के समान ही बिल्कुल समय पर बाकायदा खाना और चाय मिल जाती थी। शिविर में लौटने पर हमारे लिए बढ़िया भोजन तैयार मिलता था, हम डट कर भोजन करते और निश्चिन्तता से गाढी नींद सोते थे। शान्त रूप से चलनेवाले जीवन-क्रम में अव्यवस्था उत्पन्न करनेवाली कोई बात नहीं होती थी। हां, असावधानी से निशाना चूक जाने पर किसी गरीब जानवर की जान बच जाती थी तो जरूर नाराज होने का प्रसंग उपस्थित हो जाता था। और अब पीतल के कुकरने (जिसे हमने तिब्बिया

कालेज के उद्‌घाटन के समय खरीदा था, उक्त दो भोजन-व्यवस्थाओं की जगह ले ली है; परिचारकों के दल के बदले अब केवल एक ही नौकर रह गया है जिसे बहुत होशियार नहीं कहा जा सकता। पहले हम अपना सामान जहां खच्चरों पर लाद कर ले जाते थे वहां अब चावल, दाल और मसाले के तीन छोटे-छोटे थैले, जिन्हें खादी के बदले विदेशी कपड़े का बनाने के लिए मैं कमला[1] को कभी क्षमा नहीं करूंगा, ही रह गये हैं। जहां पहले अंग्रेजोंकी तरह नाश्ता, दोपहर का और रात का भोजन करते और साथ ही सुबह-शाम की चाय के साथ बहुत सारे फल लेते और कभी-कभी उपलब्ध होने पर एक या दो अण्डे मिल जाते थे, वहां अब दोपहर में मुख्य भोजन के रूप में केवल चावल, दाल और सब्जी ही लेते हैं, अलबत्ता कभी-कभी खीर भी होती है। शिकार की जगह लम्बे सैर-सपाटों ने ले ली है और राइफलों की जगह पुस्तकों, पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों ने (पुस्तकों में मेरी प्रिय पुस्तक है एडविन अर्नाल्ड की सांग शिलेश्चियल[2], जिसे अब मैं तीसरी बार पढ़ रहा हूं)। जब जोर की वर्षा होती है, जैसी कि इस समय हो रही है, तब इस प्रकार के ऊल-जलूल पत्र लिखने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं रह जाता। (शेक्सपियर के शब्दों में कहूं तो) क्या से क्या हो गया? पर वास्तव में जीवन का जितना रस मुझे इसमें मिल रहा है उतना पहले कभी नहीं मिला। केवल चावल समाप्त हो गये हैं और मैंने ब्राह्मण के समान इस समय पास में विद्यमान जगतनारायण[3] के राजसी भण्डार से चावल के धर्मार्थ दान के लिए प्रार्थना की है।"

——अंग्रेजी से। यं० इं०, २१।७।१९२१।]

२४. अहिंसा

[संयुक्तप्रान्त की घटनाओं पर गांधीजी की प्रतिक्रिया]

मेरा विश्वास है कि हम अपने उद्देश्य के निकट पहुंच गये हैं, परन्तु जब विजय बहुत निकट दिखाई देती है तभी अधिकतम जोखम रहता है। किसी को जब भी कोई उल्लेखनीय विजय मिलती है उसे उससे पहिले समस्त पूर्व प्रयत्नों से

---

१. जवाहरलाल नेहरू की पत्नी।

२. भगवद्‌गीता का अंग्रेजी अनुवाद।

३. प्रमुख वकील, हण्टर कमेटी के सदस्य।

बड़ा एक अन्तिम प्रयत्न और करना पड़ता है। ईश्वर जो अन्तिम परीक्षा लेता है वह सदा कठिनतम होती है। शैतान का अन्तिम प्रलोभन सर्वाधिक मोहक प्रलोभन होता है। यदि हम स्वतन्त्र होना चाहते है तो हमें ईश्वर की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ेगा और शैतान के अन्तिम प्रलोभन को अमान्य करना पड़ेगा।

अहिंसा असहयोग का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है। यदि हम अहिसक बने रहे तो हम अन्य सब बातों को छोड़ देने पर भी अपना स्वातन्त्र्य-संग्राम चलाते रह सकते है। परन्तु यदि हम अहिंसा पर कायम नही रहेंगे तो हम बुरी तरह हारेंगे। हमें यह याद रखना चाहिए कि हिंसा तो वह आधारशिला है जिस पर सत्ता की इमारत टिकी है। चूंकि हिंसा सरकार का अन्तिम सहारा है, और उसका अन्तिम आश्रय है, इसलिए उसने लोगों के सभी प्रकार के हिसात्मक प्रयत्नों को व्यर्थ करने की तैयारी कर ली है और इस प्रकार यदि हम हिसा करें तो उसने अपने-आपको उससे पूर्ण सुरक्षित रखने का प्रबन्ध कर लिया है। इसलिए हिसा का आश्रय लेना अत्यन्त सक्रिय रूप से सरकार के साथ सहयोग करना है। यदि हमने किसी भी प्रकार की हिसा की तो वह हमारी मूर्खता और दुर्बलता-भरी नाराजी की निशानी होगी। गम्भीरतम उत्तेजना के बीच भी संयम बनाये रखना योद्धापन की सबसे सच्ची निशानी है। युद्ध-कला मे सर्वथा नौसिखुआ मनुष्य भी यह जानता है कि उसे उन स्थानों से बचना चाहिए जहां शत्रु घात लगाये हो। क्योकि खरे सैनिक की तो यह कसौटी ही है कि वह हर तरह की उत्तेजना से अपने को बचाये रखने की सावधानी बरते।

अलीगढ़ की घटना इस बात का उदाहरण है। यह बात बहुत साफ दिखाई देती है कि वहा पुलिस ने लोगों को उत्तेजना का काफी कारण दिया था। हम यह बात बहुत पहिले जान चुके है कि ऐसा करना उनका काम है। अलीगढ़ के लोग अपने लिए बिछाये गये जाल में फंसकर उत्तेजित हो गये और उन्होने आगजनी की। अभी तक यह ठीक-ठीक मालूम नही हुआ है कि बिना वर्दी के सिपाही को मारा किसने। यह साबित करने की जिम्मेदारी लोगों की है कि यह काम उन्होने नही किया है।

हमें अपने प्रति कठोर होना चाहिए। यदि हम सीधे और तंग रास्ते से जाना चाहते है (जो अवश्य ही सबसे छोटा रास्ता है)तो हमें अपने प्रति दयालु नही होना चाहिए। हम किसी भी दुर्घटना का दोष बदमाशो पर नही डाल सकते। उनके कामो के लिए हमें जिम्मेदार होना चाहिए। यदि यह असम्भव हो तो हमे कह देना चाहिए कि हम स्वराज्य के अयोग्य है। हमें उन पर भी नियन्त्रण रख सकना

चाहिए और उनको भी अनुभव कराना चाहिए कि जिस राष्ट्रीय और धार्मिक कार्य में हम लोग लगे है उसमें उनका हस्तक्षेप न करना आवश्यक है। शुद्धीकरण के आन्दोलन में पूरा देश ही ऊपर उठता है और उसमें दुष्ट और पतित लोग भी आ जाते है। यह हमारा समझ-बूझकर किया गया दावा है; इसके सम्बन्ध में किसी को कोई भ्रम नहीं रहना चाहिए। यदि हमारा यह दावा सिर्फ जवानी दावा ही हो तो हम जिस तन्त्र को शैतानी तन्त्र कहकर बुरा वताते है उससे भी अधिक शैतानी तन्त्र की स्थापना करने के दोषी सिद्ध होंगे।

इसलिए जव हम अहिंसात्मक असहयोग के मार्ग पर चल रहे हैं तो हम नैतिक दृष्टि से कर्त्तव्यवद्ध हो जाते है कि हम उस पर मन, वचन और कर्म से आचरण करे। यदि हम इतने कमजोर या सन्देहशील हैं कि अपने सिद्धान्त पर नहीं चल सकते तो हमें यह वात साफ-साफ स्वीकार कर लेनी चाहिए।

पाठकों को इससे यह विचार न वना लेना चाहिए कि मुझे लगता है हम परीक्षा में खरे नही उतर रहे हैं। इसके विपरीत मेरा यह विश्वास है कि हमने लोगो पर अपूर्व नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है, और उन्होंने अहिंसा की आवश्यकता इतनी पहले कभी नही समझी थी जितनी अव समझ ली है।

परन्तु जिस रास्ते को हमने सोच-समझकर चुना है उससे जरा-सा भी हटने से हमें जो उचित चेतावनी मिलती है उसको न समझना हमारे लिए अनुचित होगा।

मुझे सावधानी के तौर पर कुछ कहना भी आवश्यक मालूम होता है, क्योकि सरकार की ओर से दी जाने वाली उत्तेजना वढ़ती जा रही है। ऐसा संयुक्त प्रान्त में सवसे अधिक हो रहा है। श्री शेरवानी का सवेरे पांच बजे गिरफ्तार किया जाना, उन पर शीघ्रता से मुकदमा चलाया जाना, उनका अपराधी ठहराया जाना, उनको सजा का दिया जाना और उसी दिन वहां से अन्यत्र ले जाया जाना—ये सव वातें अत्यन्त विचारशील मनुष्य को भी चिढ़ा देने के लिए काफी है। मुकदमे के ब्यौरे से यह पता लगता है कि न्यायाधीश को कानून का ज्ञान नही था और उनको इसकी अधिक परवाह भी नही थी। यदि उनके सामने सिर्फ वे ही सबूत थे जो समाचारपत्रों में प्रकाशित हुए है तो वे सजा देने के लिए काफी नही थे। यह मालूम होता है कि उनको अपराधी ठहराने और दण्ड देने के बारे में सब वातें पहिले ही तय कर ली गई थी। इस मामले में गवाही लेने की कार्रवाई एक बहुत वड़ा झूठ-मूठ का दिखावा थी। हमारे यहां सर्वसाधारण कानून के अधीन मुकदमों के नाटक की तालीम चल रही है। प्रशासन के आदेश और अदालती अभियोग में अन्तर ही कहां है? अदालती अभियोग तो और भी घातक होता है क्योंकि

उसकी आलोचना करना अधिक कठिन होता है। "मुकदमा झूठा दिखावा था", कहने की अपेक्षा 'मुकदमा चलाया ही नहीं गया', यह कहने में अन्याय की अधिक प्रतीति होती है। दमनकारी कानून रद किये जा सकते हैं, परन्तु इससे यह निष्कर्ष तो नहीं निकलता कि दमन समाप्त हो जायगा। स्वरूप बदल जाने पर भी वस्तु तो वही रहेगी। हम चाहते हैं कि वस्तु, आत्मा अथवा हृदय बदल जाय।

और यदि हम ऐसा परिवर्तन चाहते हैं तो हमें पहिले अपने आप में परिवर्तन करना चाहिए, अर्थात् हमारे ऊपर दमन का कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। जिस प्रकार हम हिंसात्मक प्रतिकार नहीं कर सकते, उसी प्रकार हम दमन किये जाने पर कमजोर न हों, भले ही वह दमन कितना ही कठोर या कष्टकर क्यों न हो।

संयुक्तप्रान्त की एक विश्वसनीय अफवाह है कि तीन या चार प्रसिद्ध कार्य-कर्त्ताओं ने जेल-जीवन को बहुत अधिक कष्टप्रद पाया, अतः कुछ कामों को न करने का वचन दे दिया और जेल से छूट गये। यदि यह बात सच है तो यह खेदजनक है। हमें चट्टान की तरह दृढ होना चाहिए। हमें पीछे नहीं हटना चाहिए। भारत की जेलों में हमें जो भी कष्ट उठाने पड़ें हममें उनको खुशी से सहन करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। हमें सरकार से कोई आशा नहीं करनी चाहिए। हमें उससे यही आशा करनी चाहिए कि वह बुरा-से-बुरा जितना कर सकती है करेगी, फिर चाहे वह कानून के अनुसार हो, चाहे उसके खिलाफ़। उसका एक मात्र उद्देश्य हमको झुकाना है, क्योंकि वह अपने आप में सुधार करना नहीं चाहती।

मै सरकार के बारे में कठोर मत नहीं दे रहा हूं। धारवाड़ और अलीगढ़ की घटनाएं सरकार द्वारा शिष्टता का उल्लंघन किये जाने की सबसे ताजी मिसालें है। यदि मैं विश्वास करूं तो एक दूसरी अफवाह यह है कि संयुक्तप्रान्त की एक जेल में एक बहादुर मुसलमान कैदी को एक अंधेरी कोठरी में बन्द कर दिया गया और तीन दिन तक तेज बदबू में रखखा गया। जिस मनुष्य ने मुझे यह सूचना दी उसने मुझसे पूछा कि जो व्यक्ति इस तेज बदबू को सहन न कर सके उसे क्या करना चाहिए। मैने कठोरता से किन्तु विचारपूर्वक उत्तर दिया कि फिर भी उसे क्षमा नहीं मांगनी चाहिए; उसे अत्याचारी की इच्छा के सामने झुक जाने की अपेक्षा अपना सिर जेल की दीवारों से मार कर फोड़ लेना चाहिए। यह मेरा कोई ऐसा मत नहीं कि जिसे मैं व्यर्थ ही प्रकट कर रहा हूं, बल्कि ये मेरे दक्षिण अफ़्रीका के दिलचस्प छुटफुट अनुभव हैं। दक्षिण अफ़्रीका में जेल का जीवन सुख-सुविधापूर्ण नहीं था। बहुत से कैदियों को तनहाई की सजा भुगतनी पड़ती थी। सैकड़ों को

सफाई का काम करना पड़ता था। अनेक लोगों ने उपवास किये। एक स्त्री जब जेल से छोड़ी गई तब वह हड्डियों का ढांचा ही रह गई थी, क्योंकि जो कुछ भी वह खा सकती थी वह जेल के अधिकारी उसे देते नही थे। परन्तु वह स्वाभिमानिनी और दृढ़ थी। दक्षिण अफ़्रीका में जिन हजारों लोगों ने सजा भोगी, उसमें से शुरू मे एक या दो अपवादों को छोड़ कर मुझे ऐसे एक भी कैदी का उदाहरण याद नही आता जिसने जेल से छूटने के लिए किसी प्रकार की कमजोरी दिखाकर माफी मांगी हो। पारसी रुस्तम जी, इमाम अब्दुल कादिर बावजीर, थम्बी नायडू और अन्य बहुत से लोगों ने जिनके नाम मैं बता सकता हूं, कभी पीछे पांव नहीं हटाया। बल्कि वे बार-बार जेल गये। तपस्वियों के रक्तदान के बिना स्वतन्त्रता के मन्दिर का निर्माण नही हो सकता। अहिंसा की पद्धति सबसे त्वरित, निश्चित और सर्वोत्तम है। हमें कांग्रेस के और खिलाफत के सम्मेलनों में की गई अपनी प्रतिज्ञा के प्रति सच्चे बने रहना चाहिए, और विजय बिल्कुल पास है।
—अंग्रेजी। यं० इं०, २८।७।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २०, पृष्ठ ४५८।]

- शैतान का अन्तिम प्रलोभन सबसे मोहक प्रलोभन होता है।
- अहिंसा असहयोग का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है।
- हिंसा तो वह आधारशिला है जिस पर सत्ता की इमारत टिकी है।
- हमें अपने प्रति कठोर होना चाहिए।
- शुद्धीकरण के आन्दोलन में पूरा देश ही ऊपर उठता है।
- हमें चट्टान की तरह दृढ़ होना चाहिए।
- तपस्वियों के रक्तदान के बिना स्वतन्त्रता के मन्दिर का निर्माण नहीं हो सकता।

२५. अनुशासनहीनता

[संयुक्तप्रान्त के दौरे पर गांधीजी की प्रतिक्रिया]

मैने दुबारा जो दौरा शुरू किया है उसका अनुभव पहले के मुकाबले अच्छा नही रहा है। मैने तो सोचा था कि मै अनुशासन के बारे में इतना लिख और बोल चुका हूं और चूंकि हम अनुशासन के एक दौर से गुजर चुके है, इसलिए अब इस दौरे मे मुझे काफी अनुशासित और सन्तुलित किस्म के प्रदर्शन देखने को मिलेंगे। लेकिन मुझे यह देखकर आश्चर्य ही हुआ कि स्टेशनों पर लोगों की भीड़ ठेलाठेली और शोरगुल करते हुए मिलती है। आगरा और टूंडला में भीड़ उत्तेजित

थी और लोग किसी की बात सुनने को तैयार नहीं थे। टूंडला में तो भीड़ के कारण स्टेशन से बाहर निकलना तक कठिन हो गया था। जाहिर है कि उनसे जो भी कुछ कहा जा रहा था, वह उनको सुनाई नही देता था। उनमें कोई चुप रहने को कहता तो वे जोर-जोर से चीखने लगते थे। और मुझे जैसे-तैसे जब भोजन-कक्ष में पहुंचाया गया तो भीड़ वहां भी घिर आई। अन्दर झांकने के लिए उत्सुक लोगों ने दरवाजे के कांच तोड़-फोड़ डाले। लोग तबतक सन्तुष्ट नहीं हुए जब-तक मैं उन्हें लेकर स्टेशन के बाहर नही निकल आया। लेकिन मेरे भाषण के बाद काफी फर्क पड़ा। लोग हिदायतों पर कान देने लगे। शोर-गुल भी पहिले से कम हो गया। फिर लोग मेरे डिब्बे की ओर बेतहाशा नही भागे और हम लोगों को गुजरने के लिए रास्ता भी दे दिया। मैं टूंडला से कई बार गुजर चुका हूं, पर मैने पहिले कभी इतनी भीड़ वहां नही देखी थी। पूछ-ताछ करने पर मुझे पता चला कि इस बार आस-पास के गांवो के लोग सिर्फ दर्शनों के लिए सिमट आये थे। यह 'दर्शन' तो एक परेशानी बन गई है, और इसमें काफी कीमती समय बेकार चला जाता है। इससे मुझे सचमुच बड़ी परेशानी होती है और यात्रा के दौरान अपने लेखन-कार्य के लिए मुझे जिस शान्ति की जरूरत है, वह भी नही मिल पाती। इस सारी कठिनाई की जड़ मे यही बात है कि हम पहिले से कोई योजना नही बनाते और हम अच्छी तरह से संगठित भी नही हैं। कार्यकर्त्ताओ को या तो उन प्रदर्शनो को सर्वथा व्यवस्थित ढग से संगठित करना चाहिए या फिर इनका विचार ही त्याग देना चाहिए। गनीमत समझिए कि ये प्रदर्शन मैत्रीपूर्ण प्रदर्शन है और इसलिए कोई झंझट खड़ी नही होती। किन्तु सोचिए अगर हम विरोध मे कोई प्रदर्शन करें तो कैसी अन्धा-धुन्धी मच जाय। अगर हमें गोलाबारी के समय या लोगों के उत्तेजित रहते हुए भीड़ की व्यवस्था करनी पड़े तो क्या हो? मैने टूंडला मे देख लिया है कि ऐसी भीड़ को लेकर सार्वजनिक सविनय अवज्ञा-आन्दोलन चलाना असम्भव है। जबतक हम भीड़ के लोगों को आदेश देने और उनका पालन कराने की स्थिति मैं नही आ जाते, तबतक हम किसी भी काम को कारगर ढंग से अंजाम नही दे सकते। इसलिए हमारे स्वयंसेवकों को भीड़ को नियन्त्रित रखने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। भारतीय लोगो की भीड़ को नियन्त्रण में रखना और व्यवस्थित बनाना अत्यन्त ही सरल कार्य है। यह संसार के अन्य सभी देशों के लोगों को नियन्त्रण में रखने से कही आसान है। हां, इसके लिए पहले से तैयारी की जानी चाहिए। और यदि पहिले से तैयारी न हो तो समझदारी इसी में होगी कि भीड़ का जमाव ही न होने दिया जाय।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ११।८।१९२१।]

२६. संयुक्तप्रान्त में दमन

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने मेरे लिए आज से दो मास पूर्व निम्नलिखित टिप्पणी[1] तैयार की थी। इसमें उन्होंने ३० मई तक संयुक्त प्रान्त में होनेवाले दमन के तरीकों की समीक्षा की है। दूसरे मामलों में व्यस्त रहने के कारण मैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू की इन टिप्पणियों पर ध्यान नही दे सका। किन्तु वे आज भी उतनी ही ताजी लगती है, जितनी जून में थीं। सरकार की ओर से उत्पीड़न के आरोप का जो निराकरण किया गया है उसका लगभग पूरा जवाब पाठक को इन टिप्पणियों में पढ़ने को मिलेगा।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १८।८।१९२१।]

२७. मुसलमानों की बेचैनी

मैंने लखनऊ में मुसलमानों को खिलाफत के मामले में बेचैन पाया। उनकी बेचैनी स्वाभाविक है। मौलवी सलामतुल्ला ने कहा कि अंग्रेजों का रुख तो अब असह्य होता जाता है। यह कहकर उन्होंने सौम्य भाषा में अंकारा सरकार की स्थिति के विषय में लोगों की जो भावनाएं हैं उन्ही को व्यक्त किया है। इसमें कोई शक नही कि तुर्को के साथ मित्र-भाव रखने के सम्बन्ध में अंग्रेजों ने जो आश्वासन दिये है उनके प्रति अविश्वास बढ़ता जा रहा है। अब इन दों में से किसी बात पर कोई विश्वास नहीं करता कि अंग्रेजों के आश्वासन बिल्कुल सच्चे हैं या ब्रिटिश सरकार तुर्को की मदद करने में असमर्थ है, अतएव अधीर और क्रोधित होकर मुसलमान तुरन्त कांग्रेस और खिलाफत कमेटी की ओर से कोई कड़ी और जोरदार कार्रवाई की मांग करते हैं। मुसलमान तो स्वराज्य का अर्थ यह समझते है, और उनका ऐसा समझना ठीक है कि हिन्दुस्तान खिलाफत के मामले का निपटारा पक्के तौर पर करने लायक हो जाय। इसलिए वे कहते है कि अगर स्वराज्य के मिलने में काफी देरी है या उसके लिए प्रयत्न करते हुए मुसलमानों को कायरों की तरह लाचार भूमध्य सागर में तुर्की की बरबादी देखते रहना पड़े तो मुसलमान उसके लिए तैयार नही है।

यह नामुमकिन बात है कि ऐसी हालत में मुसलमानो के लिए हमदर्दी न पैदा

---

१. टिप्पणी के पाठ के लिए परिशिष्ट देखिए।

हो। यदि कोई कारगर इलाज मेरे खयाल में आया होता तो मैं जरूर खुशी से कोई फौजी कार्रवाई करने की सिफारिश करता। अगर मैं देखता कि स्वराज्य की हलचल को मुल्तवी कर देने से हम खिलाफत को ज्यादा फायदा पहुंचा सकेंगे तो मैं खुशी से ऐसी सलाह देता। करोड़ों मुसलमानों का दिल हलका करने के लिए अगर असहयोग के अलावा भी मुझे कोई उपाय नजर आता तो मैं खुशी से उसमें लग जाता।

मगर मेरी नाकिस राय में तो खिलाफत के अन्याय को जल्दी-से-जल्दी मिटाने का अगर कोई साधन है तो वह स्वराज्य ही है। और यही कारण है कि मेरे लिए तो स्वराज्य का पाना ही खिलाफत के सवाल का हल होना है और खिलाफत के सवाल का हल होना ही स्वराज्य पाना है। मुसीवत के मारे हुए तुर्कों को मदद पहुंचाने का सिर्फ एक ही उपाय हिन्दुस्तान के लिए है और वह है खुद अपने अन्दर इतनी ताकत पैदा कर लेना, जिससे वह अपने स्वत्व को प्रदर्शित कर सके। यदि वह एक मियाद के भीतर इतनी शक्ति नहीं वढ़ा सकता तो फिर हिन्दुस्तान के लिए दैवाधीन होने के सिवा वाहर निकलने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जिसे खुद लकवा मार गया है वह अगर दूसरे की मदद के लिए हाथ वढ़ाना चाहे तो वह पहिले खुद लकवे से अपना पीछा छुड़ाने के सिवा और क्या कर सकता है? इसके वजाय अगर हम केवल नासमझी, नादानी और गुस्से में आकर खून-खरावी कर वैठे तो इससे अन्दर की आग भले ही वाहर आकर धधक उठे, तुर्कों का दुःख दूर नहीं हो सकता। और न इससे हिन्दुस्तान में ऐसी ताकत ही आ सकती है कि वह अपने स्वत्व को प्रदर्शित कर सके और इसके अलावा उस दंगे-फसाद को दवाने के लिए जो उपाय काम में लाये जायंगे उनसे सम्भव है हमारा वह वेग, जिसके साथ आज हम अपने लक्ष्य की ओर दौड़े चले जा रहे हैं, वहुत मन्द पड़ जाय।

तो भी हमे किसी तरह निराश होने का कोई कारण नहीं। कांग्रेस का सारा कार्यक्रम ऐसा ही वनाया गया है और ऐसे ही उपाय किये जा रहे है जिनसे खिलाफत के संकट का सामना किया जा सके। स्वदेशी को पूरा करने की मियाद दो मास की रक्खी गई है। यह निस्सन्देह एक ऐसा तीव्र और प्रवल उपाय है जिसके द्वारा देश का सम्पूर्ण सत्व प्रकट हो सकेगा। और यदि भारत ने सितम्वर तक पूरा वहिष्कार कर दिखाया और अक्तूवर मे वह अपने पांवों पर खड़ा हो गया तो निश्चय ही इससे वड़े-वड़े तेजमिजाज लोगों और मुझे-जैसे अधीर तथा जोशीले खिलाफतियों की आत्मा को भी सन्तोष होगा।

पर वात यह है कि अभी हमारे काम करने वाले सभी लोगों को न तो इस

बात का यकीन हो पाया है कि बताई हुई मियाद के भीतर स्वदेशी का कार्यक्रम पूरा हो जायगा और जो करामात इसमें बताई जाती है न वे उसके कायल हो पाये है। ऐसे संशयात्मा लोगों को जबतक कि वे इससे वेहतर और जल्दी असर करनेवाला दूसरा उपाय नही बता सकते और उसे देश से स्वीकृत नही करा सकते, इससे अलग ही रहना लाजिम है। अथवा शंकालु होते हुए भी उन्हे शुद्ध हृदय से स्वदेशी के काम में जुट जाना चाहिए और इस प्रयोग को सचाई के साथ आजमाना चाहिए। सन्देह करना ठीक हो तो भी क्या यह सन्देह करना कि भारत स्वदेशी के कार्यक्रम के अनुसार काम करने में समर्थ नही है, यह नही वतलाता कि खिलाफत के काम में भारत का वास्तव में कोई अनुराग नही है और वह उसके लिए कुछ भी काम करना नही चाहता? क्या हर हिन्दू और मुसलमान के लिए विदेशी वस्त्र-मात्र को छोड़ कर सिर्फ खादी पहनना, कोई वड़ा भारी स्वार्थ-त्याग है? यदि भारतवर्ष ऐसी क्षमता प्राप्त नही करता तो क्या इस बात का सवूत नहीं होगा कि वह इससे अधिक स्वार्थ-त्याग के लायक नही है और इसलिए तुर्की की सहायता के योग्य भी नही है। आइए हम सब मिलकर विदेशी कपड़ों का पूरा वहिष्कार करें और जितनी जरूरत है उतनी खादी वनायें। इतना करने पर हमें अपना लक्ष्य समीप आता दिखाई देने लगेगा।

लखनऊ में यह मसला बड़ी संजीदगी के साथ पेश किया गया था कि हम राली ब्रदर्स का, जो कि एक यूनानी कम्पनी है, बहिष्कार करके यूनानियों से वदला चुका लें तथा उन मजदूरों से जो वन्दरगाहों पर काम करते हैं, कहे कि वे विदेशी जहाजो पर माल न चढायें। मैं तो समझता हूं कि ये दोनों सुझाव अस्वाभाविक हैं और उनको कार्यरूप में परिणत करना भी असम्भव है। जरा देर के लिए मान लीजिए कि हम एक क्षण में राली ब्रदर्स का कारोवार चौपट कर सकते है, पर इसका असर यूनान पर क्या पड़ सकता है? राली ब्रदर्स सारा या ज्यादातर माल यूनान नही भेजते। उनका व्यापार तो सारी दुनिया में फैला हुआ है। अतएव स्वदेशी का काम उठाने की अपेक्षा उनके व्यापार के साथ झगडना ज्यादा कठिन होगा। ऐसा करना गलत है, इस वात को जाने दे तो भी इस तरह के काम करके हम अपनी हंसी करायेगे, जो ठीक ही होगी। विदेश जानेवाले जहाजों पर काम करने वाले मजदूरों के काम में वाधा डालना भी उतना ही असगत है। यदि जनता पर हमारा इतना पूर्ण नियन्त्रण होता तो हम इस समर में अव तक कभी के जीत गये होते। माल का वाहर जाना वन्द कर देने के लिए हमें आज काम करनेवाले सारे मजदूरो का काम हमेशा के लिए या एक अनिश्चित समय तक बन्द रखना होगा। यही नही वल्कि ऐसा करते समय यह पहिले ही मान लिया

जाता है कि जो मजदूर वन्द कर देंगे उनकी जगह दूसरे मजदूरों को काम पर न आने देने की सामर्थ्य हममें है। मेरा तो खयाल है कि अभी हम इतने संगठित नहीं हैं। ऐसी कोशिश में नाकामयाव होने के सिवा और कुछ हासिल नही होगा। और भी वुरा नतीजा न निकले तो गनीमत समझिए।

इसका एक ही सम्भव उपाय है कि हम तुरन्त सविनय अवज्ञा शुरू कर दें। परन्तु मुझे इत्मीनान हो गया है कि देश अभी वड़े पैमाने पर इसे करने के लिए तैयार नही है। पर यदि देश इस वात को दिखा दे कि उसमें संगठन की इतनी काफी क्षमता है, उसके पास इतने विभिन्न सावन हैं और उसमें इतनी नियमवद्धता है जितनी कि स्वदेशी-जैसे सर्वथा व्यवहार्य कार्य को पूर्णतः सफल वनाने के लिए आवश्यक है, तो कानून का सविनय भंग विना जोखिम के सफलतापूर्वक शुरू किया जा सकता है। आइए, हम यह आशा और प्रभु से प्रार्थना करें कि देश ऐसा कर दिखाये।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १८।८।१९२१।]

- मेरे लिए तो स्वराज्य का पाना ही खिलाफत के सवाल का हल होना है और खिलाफत के सवाल का हल होना ही स्वराज्य पाना है।

२८. द्वेषपूर्ण अभियोग

संयुक्त-प्रान्त के दौरे में दमन की अजीव कहानियां मेरे सुनने में आईं। अभी तो मैं केवल उन दो अभियोगों की चर्चा करना चाहता हूं जिनको द्वेषपूर्ण कहने में मुझे कोई हिचक नही है। सीतापुर के जमींदार मोहनसिंह दरमल और भूतपूर्व तहसीलदार शम्भुनाथ को सम्मन भेजे गये हैं और पूछा गया है कि उनसे जमानत क्यों न माँगी जाय। उनका अपराव सम्मन में यह वताया गया है:

"चूंकि रामगढ़ के पटवारी की सूचना से यह प्रकट होता है कि

(१) ठा० मोहनसिंह रामगढ़ वाले

(२) वा० शम्भुनाथ, भूतपूर्व नायव तहसीलदार, जो अव भुवाली और भुन्याधर में हैं, सरकार के विरुद्ध आन्दोलन में भाग ले रहे हैं और तिलक स्वराज्य कोष की हुण्डियां वेच रहे हैं। चूंकि कानून-द्वारा संस्थापित सरकार के विरुद्ध ऐसे आन्दोलन से आम लोगों के अमन-चैन में विघ्न पड़ने और शान्ति के भंग होने का अन्देशा है अतः इन लोगों से स्पष्टीकरण मांगा जाता है कि उनमें से हर एक से साल भर तक शान्ति कायम रखने के लिए १००० रुपये के मुचलके और ५००-५०० रुपये की दो जमानतें क्यों न ली जानी चाहिए?"

ऊपरी तौर पर सम्मान से कोई अपराध प्रकट नही होता। परन्तु पटवारी का वयान पढ़कर स्थिति की दुःखजनक हास्यास्पदता वढ़ जाती है। इसमें कहा गया है कि अभियुक्त ने पण्डित मोतीलाल नेहरू को चन्दा दिया है और उसे रामगढ़-जैसी हवाखोरी की जगह में पण्डित (मोतीलाल) नेहरू जैसे पक्के असहयोगी के साथ देखा गया है। यह सच है कि न्यायाधीश में ऐसे प्रसंगोचित तथ्य का जिक्र करने का साहस नहीं है, परन्तु जैसा कि दूसरे अभियुक्त के वयान से सुस्पष्ट हो जाता है, उसका एक मात्र अपराध पण्डितजी के साथ रहना और उनकी सेवा करना ही है। अभियुक्त अपने जिले का एक प्रसिद्ध व्यक्ति है। यह भी सभी जानते है कि वह क्षयरोग से पीड़ित है और अव उसका रोग चरम अवस्था में है। उसका दाहिना फेफड़ा समाप्तप्राय है। उसका वायां फेफड़ा और उसकी आंतें भी वहुत खराव है। उसने महीनों से किसी राजनीतिक काम में भाग नही लिया है। उसने भाषण भी नहीं दिये हैं। वह रामगढ़ में पण्डितजी की तरह स्वास्थ्य सुधार रहा है। अतः न्यायाधीश के लिए उसे गिरफ्तार करने का या गिरफ्तारी के वाद उस पर मुकदमा चालू रखने का कोई कारण ही नही है। तथ्य यह है कि न्यायावीश असहयोग से तनिक भी सम्वद्ध लोगों को स्पष्टतः आतंकित करना चाहता है। इसमें वे लोग भी आ जाते है जो गांव में चन्दा इकट्ठा करते हैं या असहयोगियों की सहायता करते हैं। कहा जा सकता है कि ऐसी घटनाएं वास्तव में अपवादस्वरूप हैं और उनके महत्व की अतिरंजना की कोई जरूरत नही। मैं इस सिद्धान्त को मानने में असमर्थ हूं। इस दृष्टान्त में न्यायावीश ने सम्भवतः एक मौलिक तरीका अपनाया है, परन्तु संयुक्त-प्रान्त में मैंने जो कुछ देखा उससे मै इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि वहां एक ऐसा परोक्ष आतंकवाद चालू है जैसा शायद सिन्ध को छोड़ कर अन्यत्र कही नही है। इसका एकमात्र उद्देश्य असहयोग की समस्त प्रवृत्तियों को कुचल डालना है, चाहे वे कितनी ही अहिंसात्मक और सव प्रकार से निर्दोष क्यों न हों। अली भाइयों के क्षमा-याचना के वक्तव्य का भी अत्यन्त वेईमानी भरा उपयोग किया जा रहा है। उसका उपयोग करने वाले अली भाइयों की क्षमा-याचना की रीति और विधि से परिचित हैं। परन्तु अली भाइयों के इस वीरतापूर्ण कार्य को विकृत रूप में प्रस्तुत करना इन लोगों की इन-धूर्तताओं की तुलना मे कुछ नही है जिन्हें ये असहयोगियों को झुकाने और दूसरों को उनके मार्ग से हटाने के उद्देश्य से प्रयोग में लाते हैं। मुझे पक्का पता है कि असहयोग का झण्डा उठाने की हिम्मत करने वाले निर्धनों को इसलिए सताया जाता है कि वे कांग्रेस कमेटी में शामिल न हों और उनको वैसे ही आपत्तिजनक तरीकों से उन शान्ति-सभाओं में शामिल होने के लिए वाध्य किया जाता है जो

वस्तुत: गैर-क़ानूनी है, क्योकि उनके वनाने और चलाने मे अवैध और अनैतिक विधियां अपनाई जाती है। संयुक्त प्रान्त की सरकार कूट और भीरु ढग से वही कर रही है जो सर माइकेल ओडायर की सरकार ने लट्ठमार तरीके से किया था। उन्होने अपनी नीति के अनुरूप अमल किया और सव नेताओं को गिरफ्तार कर खुले-आम जलियावाला का वातावरण वनाने का साहस दिखाया था। मै इस तथ्य की ओर दूसरे स्थानो पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर चुका हूं कि पंजाव में सैनिक भरती के दिनों मे जलियावाला से भी भीषण घटनाएं हो चुकी है, किन्तु उनकी ओर किसी का ध्यान नही गया, क्योकि नेता गिरफ्तार नही किये गये थे। संयुक्त-प्रान्त की सरकार श्री शेरवानी के जैसे इक्के-दुक्के उदाहरणों को छोड़ कर वड़े नेताओं को गिरफ्तार नही करेगी। सरकार ने श्री रंगा अय्यर को गिरफ्तार किया है। उसने अभी तक पण्डित जवाहरलाल नेहरू या श्री जोजेफ को हाथ भी नही लगाया है, हालाकि चुनौती तीनों ने साथ-ही-साथ दी थी। मैने संयुक्त-प्रान्त के अपने निरीक्षण को लेखवद्ध करने का झंझट इसलिए उठाया है कि मैने श्री चिन्तामणि का वह भाषण पढ़ा है जिसमे उन्होंने सरकार की कारंवाई का जोरदार समर्थन किया है और मुझपर यह जोर भी डाला गया है कि मैं पूर्ण उत्तरदायी सरकार की तरह सुधारों को कार्यान्वित करने वाले उन मन्त्रियो को प्रोत्साहन दूं। मेरे तुच्छ विचार में जहां भी सम्भव है वहां सुधारो को और सुधारों के अन्तर्गत वनाये गये मन्त्रियों का उपयोग चतुर परन्तु वेईमान नौकरशाही को सहारा देने के लिए किया जा रहा है। मन्त्री इस वात को नही जानते और वे अनचाहे उनके हाथो की कठपुतली वन रहे है, किन्तु इससे नीति की सदोषता में कोई कमी नही आती। हां, इस स्थिति मे मन्त्रियो का दोष कुछ हल्का जरूर मालूम पडता है। मुझे यह विश्वास करने में हिचक है कि राजा साहव महमूदावाद और श्री चिन्तामणि यह जानते है कि वे क्या कर रहे है। मेरा ख्याल तो यही होता है कि वे नौकरशाही के जाल मे मजवूरन गये है और उनके सन्मुख जो प्रत्यक्ष उचित दिखने वाली दलीलें रक्खी गई है उनके कारण वे उन वातों को क्षम्य मान लेते है जिन्हे वे अन्यथा वेहिचक निन्दित ठहराते। 'इण्डिपेण्डेण्ट' ने लिखा है कि राजा महमूदावाद ने उस जिला न्यायाधीश के कार्य का समर्थन किया है जिसने पूर्वी वदायू के एक मुन्सरिम को अपने वेटे का, जिसे दफा १४४ के अन्तर्गत नोटिस दिया गया था, राज-भक्ति का शपथ-पत्र दाखिल न करने पर मुअत्तिल कर दिया था। वह जवतक आवश्यक शपथ-पत्र दाखिल न करे तवतक के लिए १० मई को मुअत्तल किया गया। यह वात सच है कि पुत्र पिता के साथ रहता था। फल यह हुआ कि मुन्सरिम ने ६ जून को अपने वेटे की ओर से अमन सभा में शामिल

होने की अर्जी पेश कर दी और अपने वेटे की इच्छानुसार काम करने की स्वतन्त्रता को वेचकर नौकरी पर अपनी वहाली हासिल कर ली। यदि हम पर्दे के पीछे झांक कर देख सकते तो सम्भवतः हमें वेचारे मुन्सरिम की मुअत्तिली के समर्थक गुप्त खरीते मिल जाते। खैर, जो भी हो यह दुःखजनक तथ्य है कि सरकारी नौकरों पर यह दबाव डाला जा रहा है कि वे अपने लड़कों को असहयोग आन्दोलन से हटा लें। मुझे कोई शक नही कि तीन साल पहिले राजा साहव स्वयं सरकारी नौकरों और उनके परिवारों के ऐसे भयंकर पतन के विरुद्ध मुझसे कही अधिक सशक्त रूप से लिखते और भाषण देते थे। मन्त्रिगण वेईमान लोगों के हाथों कठपुतली बनाये जा रहे है, इस सत्य की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने से भी अधिक मतलब की वात यह है कि असहयोगियों को सरकार के यहां उल्लिखित अवैध और अनैतिक कार्यो से हतोत्साह न होना चाहिए प्रत्युत यह समझ लेना चाहिए कि हमे ऐसे और इससे भी वड़े दमन की आशा रखने और उसे यह मानकर कि विश्व के सब सुधारकों के भाग्य में यही वदा है, प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करने की जरूरत है। आततायी सचमुच यही विश्वास रखते हैं कि हम गलती कर रहे हैं और देश को हानि पहुंचा रहे हैं और जिस आन्दोलन के हम समर्थक है वह कुचला जाता हो तो उसको कुचलने में कैसे साधन प्रयुक्त किये जाते हैं यह वात कोई महत्व नही रखती। अतः हमें दमन को विजय की प्रस्तावना समझना चाहिए और इस कारण उसका स्वागत करना चाहिए और उससे अपने निश्चय को दृढ़तर वनाना चाहिए।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १८।८।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २०, पृ० ५४५।]

• हमें दमन को विजय की प्रस्तावना समझना चाहिए।

२९. हिन्दू-मुस्लिम एकता

उन्नाव खिलाफत समिति के सभापति श्री सैयद मुहम्मद लिखते हैं:—

"आपके पत्रों में मुसलमानों के कांग्रेस में शामिल न होने के वारे में जव-तव छिट-पुट कुछ निकलता ही रहता है। मुछे इससे दुःख और चिन्ता होती है। खेद की बात है कि जिलों में हिन्दू नेता आम तौर पर अपने मुसलमान पड़ोसियों से कुछ परायापन महसूस करते हैं और छोटे जिलों में हिन्दू और मुसलमान कार्यकर्त्ता व्यक्तिगत विज्ञापन की महत्वाकांक्षा रखते हैं और अपनी श्रेष्ठता का दावा करते है, जो कि सच्ची एकता के लिए घातक है। फल यह है कि हिन्दू कार्यकर्त्ता खिलाफत

आन्दोलन में शायद ही कोई सक्रिय भाग लेते हैं और इस तरह वीच की खांई चौड़ी होती जाती है। जहां तक प्रचार के काम का सम्वन्ध है, कांग्रेस कमेटियों ने कुछ भी नहीं किया है, और वे समझती है कि उनका काम खिलाफत समितियों से विल्कुल भिन्न है। छोटे जिलों में यह दूषण वहुत शोचनीय है और पूरी एकता के लिए मेरे नितान्त सच्चे प्रयत्नों के वावजूद हम सतही एकता से अधिक कुछ नहीं पा सके हैं। हिन्दू एक वार एकता की इस शक्ति को समझ लें और महसूस करें तो मै दावे के साथ कह सकता हूं कि इस जिले में गोवलि नगण्य रह जायगी। उनका अलग रहना ही हमारे लिए सवसे वड़ी रुकावट है।"

यदि उन्नाव के हिन्दू खिलाफत के सवाल के प्रति उदासीन हों, तो मुझे सच-मुच वड़ा दुःख होगा। मुझे कोई सन्देह नही कि खिलाफत मे हिन्दू जितनी ज्यादा दिलचस्पी लेंगे उतना ही स्वराज्य निकट आयेगा। हमें याद रखना चाहिए कि अभी यह सम्भव नही कि हम खिलाफत के सिवा किसी अन्य रूप में मुसलमानों को स्वराज्य में दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित कर सके। यह दुःख की वात है, पर है सत्य। दोनों जातियां एक दूसरे से इतने समय तक विमुख रही हैं कि मुसलमान अनजाने लगभग यही समझने लगे थे कि भारत उनका घर नही। खिलाफत के खतरे ने उनकी आँखे खोल दी है। हिन्दू इस तथ्य को ध्यान में रखें और अपने मुसलमान भाइयों की मदद करके अपनी भी मदद करें और हमेशा के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता को पक्का करें। दोनों के लिए सौभाग्य की वात है कि उन्नाव मे जैसा भी हो दूसरी अनेक जगहों में निश्चय ही ऐसा नही है। वहां हिन्दू खिलाफत आन्दोलन के लिए भरसक पूरी सहायता कर रहे हैं।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २५।८।१९२१। 'टिप्पणियां' से।]

३०. टिप्पणी : हृषीकेश (ऋषिकेश)

हृषीकेश हरद्वार से गंगोत्री के मार्ग पर एक वड़ा तीर्थ है। यहां से यात्री धीरे-धीरे पहाडो में प्रवेश करते है। इसे प्रकृति ने सुन्दर वनाने में कोई कमी नही रखी है। पहाड़, उछलती-कूदती गंगा, निर्मल जल और ऐसी ही अन्य वातों को देखकर हमे ऋषियों की दूर दृष्टि, कला की परख और सरलता का पूर्ण भान होता है। किन्तु उनके उत्तराधिकारियों ने उसकी कैसी दुर्दशा की है, इसका कुछ-कुछ दुःखद अनुभव मुझे कुम्भ मेले के अवसर पर हुआ था। हृदय के मलिन और नाम के साधु श्रद्धालु यात्रियों को ठगते थे। मलिन-शरीर और आलसी

यात्री चाहे जहां शौचादि करके इस पवित्र स्थान को गन्दा करते थे। यह देखकर मेरा हृदय रोता था। पुराने ऋषि (शौचादि के लिए) जंगल जाते थे तो मीलों दूर एकान्त में चले जाते थे। आज तो ऋषिकेश में बहुत बड़ी आबादी है। वहां लोग गंगा के किनारे बेशर्मी से शौच के लिए बैठ जाते है और 'जंगल गये' ऐसी कल्पना कर लेते है। यह तो आलस्य, अज्ञान और गन्देपन की हद हो गई। ये सब बातें मैंने वहां पांच वर्ष पहले अपनी आंखों से देखी थी, किन्तु अब एक लेखक ने तीन महीने वहां रहने के बाद अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर एक हृदयविदारक विवरण भेजा है। इसे पढ़कर मेरा हृदय रो उठता है। और मुझे लज्जा लगती है। इस पुण्य-क्षेत्र में पापकर्मो की सीमा नही।

इस विवरण को जिसने भेजा है उसने अपना नाम-धाम भी दिया है और उसको छापने से मना भी नही किया है, किन्तु उसका नाम-धाम देकर इसे छापने की मेरी हिम्मत नही होती। उसकी कुछ बातें तो छापने योग्य ही नही है। इसमें वहां रहनेवाले साधुओं की स्वेच्छाचारिता का, उनके वैभव का और उनकी व्यभि-चार-लीलाओं का यथार्थ चित्र दिया गया है। उसमें यह भी बताया गया है कि इससे उन्हें कैसे-कैसे रोग हो जाते हैं। और यह भी बताया है कि गरीब यात्री कैसे लुटते हैं, तथा साधुवेश में अनेक दम्भी लोग कैसी मौज करते हैं। इस गन्दगी को कौन दूर कर सकता है? पत्र में कहा गया है कि इस सम्बन्ध में मुझे और शंकराचार्य को प्रयत्न करना चाहिए। मै जानता हूं कि मुझमें अभी तो इस गन्दगी को दूर करने की शक्ति नहीं है। मुझमें तो केवल इस वर्णन का सार छाप देने की शक्ति है। जो लोग वहा रहते है उनमें से कोई इसे देखकर कुछ कर सकें तो अवश्य करना चाहिए। हिन्दुओं के तीर्थस्थानों की गन्दगी इतनी भयंकर है कि उसे अधिकांश हिन्दुओं के मन को बदले बिना दूर नही किया जा सकता। इस समय जो यह धर्मयज्ञ चल रहा है, इसमें हिन्दुओं का मन कितना बदलता है, इसी पर इन पाप-क्षेत्रों को पुनः पुण्यक्षेत्र बनाना निर्भर है। इन स्थानों की शुद्धि करना हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार करने के समान है। इस कार्य को करने के लिए बहुत बड़ी तपस्या की आवश्यकता है। उसके लिए स्थानीय लोगों का प्रभाव भी चाहिए।
—गुजराती। न० जी०, ६।१०।१९२१।]

३१. टिप्पणी : मजिस्ट्रेट-द्वारा क्षमा-याचना

पाठकों को स्मरण होगा कि बुलन्दशहर के एक मजिस्ट्रेट के इजलास में

श्री त्यागी के मुकदमे की सुनवाई हो रही थी और इस प्रकार वह मैजिस्ट्रेट के संरक्षण में थे। तव भी मैजिस्ट्रेट ने उन्हे एक झापड़ लगवाया था। वाद को मैजिस्ट्रेट ने मुजरिम से क्षमा-याचना की। अव मुझे उसका पाठ प्राप्त हो गया है। जो इस प्रकार है:—

अदालत में हाजिर मुजरिम,

आज की कार्रवाई कुछ आगे वढ़े, इससे पूर्व मै कुछ कहना चाहता हूं। ऐसा मै दो कारणों से करना चाहता हूं। एक तो यह है कि मैं तुम्हारे मामले की सुनवाई कर रहा हूं ऐसी स्थिति में यह ठीक नहीं होगा कि तुम अथवा कोई अन्य व्यक्ति इस बात की शंका करे कि तुम्हारे मुकदमे की सुनवाई उचित ढंग से न्यायपूर्वक नहीं होगी। दूसरी बात यह है कि कोई भी सरकारी अधिकारी यह नहीं चाहेगा कि ऐसी कोई घटना घट जाय जिससे समाज के किसी वर्ग को शिकायत का कोई उचित अवसर मिले, विशेष रूप से ऐसे समय जब कि सिद्धान्त और मौके का नाजायज फायदा उठानेवाले लोग ऐसी घटनाओं को नमक-मिर्च लगाकर पेश करने की ताक में बैठे हुए है।

जब पहली सुनवाई शुरू हुई तब मैं अधीर हो रहा था और तुम उद्धत थे। मैंने तुम्हें थप्पड़ लगवाकर गलती की थी। उसके लिए मुझे खेद है।

अब मै तुम्हें बता दूं कि यदि तुम अदालत के प्रति आदर दिखाओगे तब मैं भी तुम्हारे प्रति शिष्टता दिखाऊंगा। यदि तुम्हारा आचरण ठीक नहीं रहा तो उसके निराकरण के लिए मुझे कोई उचित तरीका ही ढूंढ़ना होगा।

जो भी हो, अब तुम्हारे मुकदमे की सुनवाई धैर्यपूर्वक भलीभांति की जायगी और ठीक अवसर आने पर अगर तुम्हें कोई संगत बात कहनी होगी तो उसे कह डालने का तुम्हें पूरा-पूरा मौक़ा दिया जायगा। यहां मै इतना और बता दूं कि तुम पर जो अभियोग हैं उससे इस अदालत में या किसी अन्य अदालत में यदि तुम निर्दोष साबित हुए तो तुम्हारे समाज के लोग इस जिले में जो अच्छा काम कर रहे है उसका खयाल रखते हुए मैं मालावार सहायता कोष में पचास रुपए दूंगा।

डब्ल्यू० ई० जे० डाब्स

यह तो स्पष्ट ही है कि क्षमा-याचना दवाव मे पड़कर की गई है। पिछली कौंसिल में सर माइकेल ओ'डायर से भी क्षमा-याचना कराई गई थी क्योंकि उन्होने पिछली कौंसिल मे चोट पहुंचानेवाले वक्तव्य दिये थे। मैजिस्ट्रेट ने जो क्षमा-याचना की उसकी शब्दावली अविश्वसनीय एवं यान्त्रिक है। अभियुक्त के वक्तव्य की जो पंक्तियां उसे अच्छी नही लगी उन्हे निकाल कर मैजिस्ट्रेट ने अपनी वह प्रतिज्ञा भंग कर डाली जिसके अन्तर्गत उसने धैर्यपूर्वक सुनवाई करने

का आश्वासन दिया था। अभियुक्त के निर्दोष सिद्ध हो जाने पर राजभक्तो के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए मलावार सहायता कोष में पचास रुपए भेंट करने की बात से तो ऐसा लगता है कि मैजिस्ट्रेट सुधार के योग्य है ही नही। मैजिस्ट्रेट ने जो अपराध किया है उसे धो डालने के लिए ही वह दान देना चाहता है। अभियुक्त के अपराधी होने अथवा निर्दोष होने से वफादार लोगों का क्या सम्बन्ध बैठता है? फिर अभियुक्त की निर्दोषता के प्रमाण के साथ दान की शर्त क्यों बांधी गई? मैजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को थप्पड़ लगवा करके एक वहुत ही गम्भीर प्रश्न खड़ा कर दिया है। क्या ऐसा व्यक्ति किसी भी सभ्य सरकार के अन्तर्गत एक दिन के लिए भी मैजिस्ट्रेट के महत्वपूर्ण पद पर बना रह सकता है? उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड के मुख्य न्यायाधीश उस व्यक्ति को थप्पड़ लगवा कर अपने पद पर बने रह सकते है, जिस कैदी के मामले की सुनवाई उनके ही इजलास मे हो रही हो? अगर भारत-सरकार विल्कुल नियम-विधानरहित और सर्वथा गैर-जिम्मेदार सरकार नही होती तो मैजिस्ट्रेट को तुरन्त मुअत्तल करके उस पर एक जरायमपेशा आदमी की तरह मुकदमा चलाया जाता। एक न्यायाधीश-द्वारा किसी अभियुक्त के मुकदमे की सुनवाई के दौरान उस अभियुक्त को पिटवाना कोई मामूली वात नहीं है और उसे यों ही टाला नही जा सकता।

सहयोग करते जाने में भी धीरज की कोई हद होती है। क्या सम्बन्धित भारतीय मन्त्रियो की आत्मा, मैजिस्ट्रेट ने राष्ट्र के प्रति जो अपराध किया है उसके लिए उन्हे धिक्कार नही देती? या वे ऐसा मानते है कि चूकि मैजिस्ट्रेट उनके विभाग में नही है, इसलिए उन पर उसकी कोई जिम्मेदारी नही है?

असहयोगी का कर्त्तव्य सीधा-सादा है। सरकारी अधिकारियो-द्वारा कानून और नैतिकता को भंग करने के ऐसे एक-एक मामले से हमें अपने काम में और भी संकल्प के साथ जुड जाने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। जिस प्रणाली के अन्तर्गत ऐसा बर्बरतापूर्ण आचरण सम्भव है, वह प्रणाली जवतक जड़मूल से नष्ट नही हो जाती तबतक हम सन्तुष्ट नही हो सकते।

अभियुक्त का वयान

अपने मामले की दूसरी सुनवाई से दो दिन पूर्व श्री त्यागी ने मैजिट्रेट को निम्नलिखित वयान भेजा—

वन्देमातरम्

बुलन्दशहर के जिला मजिस्ट्रेट के न्यायालय में। भारतीय दण्ड संहिता के खण्ड १२४ और १५२ के अधीन अभियुक्त महावीर त्यागी की ओर से :—

मैं, महावीर त्यागी, एक निर्दोष अभियुक्त निम्नलिखित बयान देने पर मजबूर हो गया हूं। इस बयान में मैं कहना चाहता हूं कि उक्त मैजिस्ट्रेट ने अपने अत्याचार एवं अयोग्यता का परिचय देते हुए इसी ३ तारीख को खुली अदालत में मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया जो मेरे आत्म-सम्मान, धर्म और राष्ट्रीयता को चोट पहुंचानेवाला था। उसने मुझे सावधान मुद्रा में खड़े रहने को मजबूर किया और मुझे धमकी दी कि तुम्हें पुलिस से ठोकरें लगवाऊंगा और सचमुच मुझे थप्पड़ लगवाये भी। मैजिस्ट्रेट का यह कार्य सर्वथा गैर-कानूनी और बर्बरतापूर्ण था। इसलिए अपने राष्ट्रीय, धार्मिक और व्यक्तिगत सम्मान तथा स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए मैंने विरोध के तौर पर मौन-व्रत धारण करने का निश्चय किया है और यह तय किया है कि जिस अदालत ने सारे कानून-कायदे ताक में रख दिये हैं उसमें मैं अपना मुंह नहीं खोलूंगा।

(टिप्पणी—यहां बयान में से अदालत ने अभियुक्त की इच्छा के खिलाफ़ निम्नलिखित शब्द निकाल दिये और उस पर हस्ताक्षर और तारीख दिलवा दी : "जैसी कि पंजाब में मेरी बहनों की बेहुरमती की गई और वह बेहुरमती इन्साफ के लिए दरबार-ए-इलाही में पेश है", वैसे ही) मैं अपनी बेहुरमती को भी जो, उन बहनों को बेहुरमती के मुकाबले कुछ नहीं है, दरबार-ए-इलाही के इन्साफ पर छोड़ता हूं। यह सम्भव है कि मेरे साथ जो दुर्व्यवहार किया गया, उसका उद्देश्य जनता को भड़काना रहा हो, लेकिन मैं अपने अनुभव से यही कहूंगा कि अब भारत की जनता काफी समझदार हो गई है। वह हर अत्याचार बरदाश्त कर सकती है, लेकिन महात्मा (गांधी) ने उसके लिए जो अहिंसात्मक कार्यक्रम निर्धारित कर दिया है, उससे वह एक पग भी पीछे नहीं होगी।

अपने देश की आजादी के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ:—

मैं हूं,
मौनव्रती
महावीर त्यागी

बुलन्दशहर जेल। ४ अक्तूबर, १९२१

यह बड़ा साहसपूर्ण और निर्भीक बयान है और अगर इसमें कही गई बातें श्री त्यागी की अपनी ही भावनाएं व्यक्त करती हैं तो जिस समय उनको थप्पड़ लगाये गये थे उस समय के उनके आचरण में साहस का अभाव देखने वालों को अपना विचार बदलने की जरूरत है। मामला बहुत-ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे कैदियों की शारीरिक सुरक्षा का सवाल जुड़ा हुआ है। इसलिए इससे उठने-वाले सवाल पर कुछ विस्तारपूर्वक विचार करना जरूरी है।

मेरे विचार से तो मुंह बन्द रखने और मौनव्रती का खिताब लेने से कोई फायदा नही है। जिस दिन कैदी को पीटा गया उस दिन उसका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वह स्वेच्छा से अदालत में रहने से इन्कार कर देता। उसे तत्काल उसी स्थान पर उस तथाकथित जज द्वारा अपने मुकदमेकी सुनवाई की कार्रवाई में शरीक होने से इन्कार कर देना चाहिए था। उसे इतना तो करना ही चाहिए था कि वह वहां वैठ जाता और इस तरह जाहिर कर देता कि वह उस न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र को स्वीकार नहीं करता। इस सबका मतलब शायद यह होता कि उसे और भी मारा जाता और सजा तो ज्यादा दी ही जाती। लेकिन बलवान के अस्त्र के रूप में अहिंसा के प्रयोग का मर्म ही यह है कि अत्याचार के निवारण के लिए खुशी-खुशी कष्ट उठाया जाय और शारीरिक चोट सहने के लिए तैयार रहा जाय। सामान्यतया इस आन्दोलन में वारण्ट आने पर अदालत में हाजिर होने की अपेक्षा की जाती है या उसकी छूट दी गई है क्योंकि उसमें ऐसे आचरण की पूर्वकल्पना नहीं की गई थी जैसी कि बुलन्दशहर के मैजिस्ट्रेट ने किया। लेकिन मजिस्ट्रेट के इस असामान्य आचरण का तकाजा है कि उसके निराकरण के लिए आसामान्य उपाय भी अपनाया जाय।

बयान में अहिंसा पर जोर दिया गया है और यह ठीक ही किया गया है। लेकिन कोई मुझे गलत न समझे। अहिंसा की प्रतिज्ञा हम पर यह वन्धन नहीं डालती कि कोई हमारा अपमान करे और हम उसमें सहयोग करें। इसलिए अहिंसा की प्रतिज्ञा हमसे यह अपेक्षा नही रखती कि हम अधिकारियों का आदेश मिलते ही चुपचाप पेट के बल रेंगने लगें, या नाक से लकीरें खीचे, या ब्रिटिश झण्डे को सलामी देने जायं या ऐसा कुछ करें जो हमारे लिए अपमानजनक हो। इसके विपरीत, हमने जिस धर्म और सिद्धान्त को अपनाया है, उसका तकाजा यह है कि भले ही हमें गोली से उड़ा दिया जाय, किन्तु हम ऐसा कोई काम नहीं करे, तो उदाहरण के तौर पर कह सकते है कि जब जलियांवाला बाग में लोगों पर गोलियां चलने लगी तो उस समय वहां से भाग खड़े होना या कि पीठ दिखाना उनका कर्त्तव्य नहीं था। अगर उन तक अहिंसा का सन्देश पहुंचा होता तो उनसे अपेक्षा यही की जाती कि जब उन पर गोलियां चलने लगी, उस समय वे सीना खोल कर आगे बढ़ते और इस विश्वास के साथ अपने प्राण उत्सर्ग कर देते कि उनका यह प्राणोत्सर्ग उनके देश को मुक्त दिलायेगा। जो अहिंसा का व्रती है वह अत्याचारी की शक्ति पर हंसता है और उसके वार का जवाब न देकर तथा अपने स्थान पर डटा रहकर उसे निष्प्रभ बना देता है। हम लोग जनरल डायर के हाथों मे खिलौने बन गये क्योंकि हमने वैसा ही आचरण किया जैसे आचरण की वह आशा रखते थे। वह

चाहते थे कि उनकी गोलियों की बौछार से डरकर हम भाग जायं; वह चाहते थे हम अपने पेट के बल रेंगें, अपनी नाक से लकीर खींचे। यह उनके 'आतंक' के खेल का हिस्सा था। जब हम आमने-सामने डटकर आतंक का सामना करते हैं तो वह ऐसे विलीन हो जाता है मानो कोई परछाईं हो। यह हो सकता है कि हम सभी अपने भीतर वैसा साहस विकसित नही कर पाये, लेकिन मेरा निश्चित विश्वास है कि अगर हममे से कुछ में भी ऐसा साहस न जगे कि हम प्रतिकार के लिए अपना हाथ उठाये बिना चट्टान की तरह अडिग रह सकें तो इस वर्ष स्वराज्य मिलना असम्भव है। जब अत्याचारी के प्रहार का कोई उत्तर नही मिलता, कोई उस पर उलट कर प्रहार नही करता, तो वह स्वयं ही उस प्रहार का शिकार होता है—ठीक वैसे ही जैसे कोई हवा में जोर से अपना हाथ मारे तो उसका हाथ उखड़ जाता है और किसी का कुछ नही बिगड़ता।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २०।१०।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २१, पृष्ठ ३२४-३२८।]

३२. संयुक्त प्रान्त में स्वदेशी-आन्दोलन

संयुक्त प्रान्त में स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति से, जिसके सम्बन्ध में संयुक्त प्रान्त की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने एक रिपोर्ट तैयार की है,भारत के अन्य प्रान्तों में संगठन कार्य की कई दिशाओं में मिली सफलताओं के बारे मे और सामने आनेवाली कठिनाइयों के बारे में भी, कई बाते सीख सकते हैं। इस कार्य पर निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया गया था (१) चर्खों का वितरण (२) एक खादी-भण्डार की व्यवस्था करना (३) जुलाहों के हाथ का कता सूत देना और उन्हें केवल इसी तरह के सूत से कपड़ा बुनने के लिए प्रेरित करना और बहिष्कार आन्दोलन का प्रचार-प्रसार करना।

संयुक्त प्रान्त की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को स्वदेशी के कार्य की उसकी प्रगति पर बधाई दी जानी चाहिए। परन्तु, मुझे आशा है कि जबतक वहां सारी खादी हाथ के कते सूत से नही बनने लगेगी, तबतक वह चैन से नही बैठेगी। भारत की दरिद्रता को दूर करने का गुर हाथ की कताई का विकास ही है। हाथ से कते सूत की किस्म को सुधारने और सुस्थिर बनाने के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ८।१२।१९२१।]

३३. घृणा नहीं, प्रेम

साबरमती
८ दिसम्बर, १९२१

इलाहाबाद से तार प्राप्त हुआ है कि पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, पं० श्यामलाल नेहरु तथा 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादक जार्ज जोजफ महोदय गिरफ्तार कर लिये गये हैं। तार गत रात्रि ११ बजे प्राप्त हुआ था। इससे निस्सन्देह ही मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैने इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया।

मुझे पण्डितजी की गिरफ्तारी की आशा नही थी। अपनी चर्चाओं में पण्डित जी से कहा करता था कि उन्हे यदि सरकार गिरफ्तार करेगी भी तो सबसे बाद में। सर हारकोर्ट बटलर उन पर हाथ डालने का साहस नही करेंगे। यदि उन्हें गिरपतार किया गया तो उनके मित्र महमूदाबाद के राजा साहब अपने पद पर रहना स्वीकार न करेंगे। सर हरकोर्ट बटलर ने जिस निश्चित भाव से यह कदम उठाया है, उस पर मुझे हैरानी होती है। पण्डित जी अत्यन्त ही विषम परिस्थितियों में भी कार्य करते रहे है। न्न्हें अपने पुराने शत्रु दमे से भी जूझते रहना पड़ता है। मै जानता हूं कि उन्होने कभी भी अपने धनी-मानी मुवक्किलों के लिए इतना परिश्रम नही किया और न उन्होंने आपदग्रस्त पंजाब के लिए ही इतनी लगन से काम किया था जितना कि वे इस निर्धन भारत के लिए करते रहे है। मैने उनसे आराम करने का अनुरोध किया था, किन्तु उन्होने इसे अस्वीकार कर दिया। मुझे इस विचार से प्रसन्नता ही होती है कि अब वे शरीर को दिन-दिन जर्जर बनानेवाले कठोर परिश्रम से छुट्टी पा जायंगे। पर मुझे और भी अधिक प्रसन्नता यह सोच कर हुई है कि बम्बई के हमारे अपराध के कारण मैं समझ रहा था कि जो चीज इस वर्ष के खतम होने से पहले नही हो पायेगी वही अब देश के सर्वोच्च और बड़े-से-बड़े नेताओं के निरपराध कष्ट-सहन के कारण अभी इसी समय पूरी होने जा रही है। सर्वथा निरपराध व्यक्तियो की ये गिरफ्तारिया ही सच्चा स्वराज्य है। अब अलीबन्धु तथा उनके साथियों का जेल मे रहना कोई शर्म की बात नही। भारत उनके बलिदान के प्रति सदैव सचेत रहा है।

किन्तु मेरी प्रसन्नता, जिसमें मुझे आशा है कि और भी हजारों लोग साथ देंगे, तभी कायम रह सकेगी जब हमारे नेताओं के चुन-चुन कर जेल भेज दिये आने पर भी जनता पूर्णतः शान्तिपूर्ण बनी रहे। गिरफ्तारियों के बावजूद यदि हम पूरी तरह अहिसक बने रहे तो विजय बिल्कुल निश्चित है। उपर यदि हम सभी लोगों को नियन्त्रण में रख कर भी शान्ति बनाये रखने मे असफल हुए तो पराजय

निश्चित है। हम किसी की जान लिये विना जान देने के लिए तैयार हैं। क्रोध अथवा दुःख अनुभव किये विना जेल जाने का हमने निश्चय किया है। हमने स्वयं ही जो वन्दिश अपने ऊपर लगाई है, उसे हमें तोड़ना नहीं चाहिए।

वलिक इसके विपरीत हमारी अहिंसा तो हमें अपने शत्रुओं से भी प्रेम करना सिखाती है। हम अहिंसात्मक असहयोग-द्वारा अंग्रेज प्रशासकों तथा उनके समर्थकों के क्रोध पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। हमें उनसे प्रेम करना चाहिए तथा ईश्वर से यह प्रार्थना कि वह उनको इतनी सद्‌बुद्धि दे कि वे भी अपनी उन भूलों को समझ सकें जिनको हम भूलें मानते हैं। यह प्रार्थना सवल की होनी चाहिए, निर्वल की नहीं। हमे सशक्त होकर अपने ईश्वर के प्रति विनम्र होना चाहिए।

अपनी इस परीक्षा तथा विजय की घड़ी में मैं अपनी आस्था फिर व्यक्त कर देना चाहता हूं कि मैं अपने शत्रुओं को भी प्रेम करने मे विश्वास करता हू। मेरा विश्वास है कि केवल अहिंसा ही भारत के हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और यहूदियों के लिए एक मात्र उपाय है। मेरा विश्शस है कि कष्ट-सहन में कठोरतम हृदयों को भी पिघला देने की शक्ति है। युद्ध का प्रहार प्रथम तीन, अर्थात् हिन्दू, मुसलमान और सिखों को ही झेलना चाहिए। अन्तिम तीन, पारसी, ईसाई और यहूदी तो प्रथम तीन के सम्मिलित वल से भयभीत हैं। हमें अपने सत्यनिष्ठ आचरण से स्पष्ट कर देना चाहिए कि वे हमारे ही अपने वन्धु हैं। हमें अपने व्यवहार से प्रत्येक अंग्रेज को यह दिखा देना चाहिए कि वह भारत के किसी कोने में उतना ही निरापद है जितना कि मशीनगन के पीछे वह अपने-आपको अनुभव करता है।

इस्लाम, हिन्दू, सिख, जरतुश्त, तथा यहूदी प्रत्येक धर्म की वास्तव में यह परीक्षा है।हम ईश्वर पर तथा उसकी सत्यप्रियता पर विश्वास रखते हैं या नहीं रखते। भले-से-भले मुसलमानों के सम्पर्क में आकर मैंने यही सीखा है कि इस्लाम तलवार के वल पर नहीं अपितु उसके फकीरों और सन्तों के भक्तिपूर्ण प्रेम के वल पर फैला है। इस्लाम में तलवार के प्रयोग की आज्ञा है किन्तु इसकी शर्तें इतनी कठोर है कि उनका पालन प्रत्येक के वश की वात नहीं। ऐसा दोष-रहित सेनापति है कहां जो जिहाद का आदेश दे सके? कहां है वह कष्ट-सहन, प्रेम और पवित्रता जो तलवार के प्रयोग की एक अनिवार्य शर्त है? हिन्दू भी अपने धर्म के इसी प्रकार के प्रतिवन्धों-से-कम से कम इतने तो वँधे है जितने कि भारतीय मुसलमान। सिखों का अपना ही हाल का गौरवमय इतिहास उनको वल-प्रयोग के विरुद्ध आगाह करता है। हम इतने अपूर्ण, इतने दोषपूर्ण तथा इतने स्वार्थी है कि शौकत अली

के कथनानुसार ईश्वर के काम में भी सशस्त्र युद्ध करने को तैयार रहते हैं। क्या सब प्रकार से दोष-रहित भारत को कभी तलवार उठाने की आवश्यकता पड़ेगी ? गत वर्ष कलकत्ता में उमने दोष-रहित बनाने की, आत्म-शुद्धीकरण की इसी प्रक्रिया का सूत्रपात किया था।

तब हम क्या करें? निश्चित रूप से हम अहिंसावादी बने रहें तथा अपने अन्दर इतना सामर्थ्य रक्खें कि सरकार जितने भी व्यक्तियों को गिरफ्तार करना चाहे उतने ही व्यक्तियों को हम स्वेच्छापूर्वक प्रस्तुत करते जायं। हमारा कार्य घड़ी के कांटे की तरह नियमितता से चलता हो। प्रत्येक प्रान्त अपने यहां के उत्तराधिकारी नेताओं का चुनाव स्वयं करे। लालाजी ने सभी आवश्यक प्रबन्ध करके एक शानदार उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रत्येक प्रान्त में कांग्रेस के अध्यक्ष तथा मन्त्री को आपत्कालीन अधिकार दिये जाने चाहिए। कार्यकारिणी समिति यथा-सम्भव छोटी-से-छोटी हो। प्रत्येक कांग्रेसी को स्वयंसेवक बनना चाहिए।

हमें गिरफ्तारियों से बचना नही चाहिए, पर अनावश्यक ढंग से उसका अवसर भी नही पैदा करना चाहिए।

जबतक हम अपनी आवश्यकतानुरूप पूर्णरूपेण हाथ की कती खादी का उत्पादन करने में पूरी तौर पर संगठित न हो जायं तथा विदेशी वस्त्रों का पूर्ण बहिष्कार न कर दें, हमें स्वदेशी आन्दोलन में पूरी शक्ति से जुटे रहना चाहिए।

एक एक करके हमारे सभी नेताओं के गिरफ्तार हो जाने पर भी हमें हर कीमत पर कांग्रेस का अधिवेशन करना चाहिए, जबतक कि सरकार ही इसे बलात् भंग न कर दे। और यदि हम हतोत्साह हुए बिना और उत्तेजित होकर हिंसा को अपनाये बिना अपना राष्ट्रीय कार्य जारी रखने में समर्थ रहे, तो हम निश्चय ही स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। इसलिए कि संसार की कोई भी शक्ति शान्तिपूर्ण, दृढ़प्रतिज्ञ, तथा ईश्वर-भक्त लोगों को आगे बढ़ने से नही रोक सकती।

—अंग्रेजी। साबरमती। यं० इं०, ८।१२।१९२१।

• मेरा विश्वास है कि कष्टसहन में कठोरतम हृदयों को भी पिघला देने की शक्ति है।

३४. कुछ प्रमाण

हम नीचे संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के वर्तमान मन्त्री श्री जियाराम सक्सेना का पत्र दे रहे हैं; वह किसी टिप्पणी की अपेक्षा नही रखता।

"संयुक्त-प्रान्त की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभी स्थानीय पदाधिकारियों में से मैं ही एक अभागा अभी तक जेल से बाहर हूं। इसलिए यहां हाल में जो कुछ हुआ है वह बताना मेरा काम है।

"आधी रात के लगभग, प्रान्तीय कांग्रेस के कार्यालय की तलाशी ली गई और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, कार्य-समिति तथा अन्य उप-समितियों के रजिस्टर पुलिस-अधीक्षक, जिन्होंने तलाशी ली, उठा ले गये। इनके अतिरिक्त गिरफ्तार हुए सज्जनों के घरों और खिलाफत समिति के कार्यालय की भी तलाशी ली गई।

"हमने अब इलाहाबाद में भी सुनियोजित तथा संयत ढंग से सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक बड़ी तेजी से भरती हो रहे हैं। कल १२ स्वयंसेवकों की एक टोली ने अपनी बाहों पर राष्ट्रीय बिल्ले लगाकर देशभक्तिपूर्ण गीत गाते हुए नगर में चक्कर लगाया—किन्तु किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया गया।—आज पुनः वही टोली अन्य १२ स्वयंसेवकों-सहित नगर के विभिन्न भागों में घूमती रही।—आज भी कोई गिरफ्तारी नहीं हुई।"

—अंग्रेजी। यं० इं०, १५।१२।१९२१।]

३५. कृपालानी और उनके साथी

बनारस से एक तार मिला है जिससे मालूम होता है कि आचार्य कृपालानी[1] और उनके आश्रम के १५ सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये हैं। अपराधियों का बलिदान बढ़ता ही जा रहा है। आचार्य कृपालानी एक शिक्षा-शास्त्री हैं और उन्होंने अपने को छात्रों के साथ एकाकार कर दिया है। उनके अनेक निष्ठावान विद्यार्थी हैं जिनका जीवन उनके सम्पर्क में आकर एकदम बदल गया है। वह अहिंसा के पथ पर घूम-फिर कर आये हैं और अब बिल्कुल पूरी तरह उसमें विश्वास करते हैं। वह अपनी और अपने छात्रों की सारी शक्ति स्वदेशी के रचनात्मक पक्ष के विकास में लगा रहे हैं और बनारस में एक आदर्श संस्था का संचालन कर रहे हैं। उन्होंने अपनी जरूरत जितनी कम की जा सकती हैं, उतनी कम कर ली है और अपने विद्यार्थियों के साथ संस्था के रोजमर्रा के काम और सुविधा में हाथ बंटाते हैं। सुविधा के नाम पर वहां विद्यार्थियों को मिलनेवाला आचार्य

---

१. जीवतराम बी० कृपालानी (जन्म १८८८), शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ और १९४६ में कांग्रेस के अध्यक्ष, इस समय स्वतन्त्र संसद-सदस्य।

कृपालानी का प्रेरक सम्पर्क ही समझिए। अभी तक यह नही मालूम हो पाया है कि आचार्य कृपालानी और उनके १५ छात्र किसलिए गिरफ्तार किये गये है। मेरा खयाल है कि यह स्वयंसेवक की तरह काम करने का परिणाम ही होगा क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति नही है, जो जोखिम को देखकर डर जायं। कुछ भी हो, इस तरह उन्होंने ऐसी अन्य सस्थाओं के लिए मार्गदर्शन ही किया है। अधिक-से-अधिक पवित्र मन के व्यक्ति स्वयंसेवक बने और जेल जायं। इस सम्बन्ध में कार्यकारिणी की हिदायतों का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। जिनके मन बिल्कुल स्वच्छ है, सविनय अवज्ञाकारियों के रूप में वे ही जेल जाने के योग्य हैं और कोई नही। यदि हमसे इस सम्बन्ध में भूल हुई हो तो अब हम स्वयंसेवक भरती करते हुए अधिक-से-अधिक बारीकी और सख्ती से काम लें। मै पूरी तरह यह आशा करता हूं कि जिन लोगों के मन साफ नही है अथवा जो स्वदेशी, अहिसा या असहयोग के किसी ऐसे ही मार्मिक तत्व में विश्वास नही करते, वे स्वयंसेवक की तरह भरती होने के लिए प्रार्थनापत्र भी नही देगे। स्वयंसेवक न बनकर वे सेवा ही करेगे।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १५।१२।१९२१।]

३६. धन्य है यह नारी !

ख्वाजा साहब[1] राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय (अलीगढ़) के मुख्य व्यवस्थापक थे। मै उनकी गिनती अत्यन्त शुद्ध-हृदय मुसलमानो मे करता हूं। वे जितने धर्माभिमानी हैं उतने ही देशाभिमानी भी है। वे स्वयं एक रईस खानदान के है। बैरिस्टर के रूप में उनका वैभव विपुल था। आज वह धर्म और देश की खातिर फकीर बन गये है। उनको भी सरकार ने जेल भेज दिया है। इसका तार मुझे अभी-अभी उनकी बेगम की ओर से मिला है। उनका नाम खुर्शीद बेगम है। वह लिखती है:—"आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि मेरे पति को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है। अब विश्वविद्यालय को मैं चलाऊंगी।" मुझे जब यह तार मिला तब मेरा खून सवा सेर बढ़ गया क्योंकि जहां एक ओर ख्वाजा साहब की पाक कुर्बानी है, वहां दूसरी ओर उनकी बेगम की बहादुरी और धीरज है। जहां ऐसी बात हो वहां स्वराज्य को कौन रोक सकता है? खुर्शीद बेगम को

---

१. ख्वाजा अब्दुल मजीद।

अपना काम चलाने में तनिक भी अड़चन नही होगी। विश्वविद्यालय के वीर और शुद्ध-हृदय विद्यार्थी खुर्शीद बेगम के आसपास इकट्ठे हो जायंगे और सम्भव है कि जो काम वे ख्वाजा साहब की खातिर न करते, उसे अब उनकी बेगम की खातिर करेंगे। इसके अतिरिक्त खुर्शीद बेगम ख्वाजा साहब की अपेक्षा इन विद्यार्थियों को चर्खे की अधिक अच्छी तालीम देंगी। जब हिन्दुस्तान की बहुत सी स्त्रियों में ऐसी ही हिम्मत आ जायगी तब हमारी विजय अवश्य होगी। इस महाजागृति के समय बहिनों से मेरी इतनी प्रार्थना है कि वे अपने भीतर संगठन-शक्ति भली-भांति विकसित करें। उन्हें भी एक साथ मिल कर काम करना चाहिए। और ऐसा करने का सरल मार्ग यह है कि वे परस्पर एक दूसरे की टीका करने की बजाय अपने-अपने कार्यों में जुट जायं। जो सेवा को ही सर्वस्व समझता है उसे टीका करने का अवकाश ही नही मिलता।

--गुजराती। न० जी०, १८।१२।१९२१।]

० जो सेवा को ही सर्वस्व समझता है, उसे टीका करने का अवकाश ही नहीं मिलता।

३७. योग्य पति की योग्य पत्नी

"सूचित करते हुए हर्ष है कि मेरे पति आज सुबह गिरफ्तार हो गये। जाते हुए उनका दिल खुशी से भरा था, यह बात आपको तार से बताने को कह गये। उम्मीद है उनका काम अपनी बिसात भर जारी रखूंगी। अलीगढ़ पुरअमन लेकिन पूरी तौर पर तैयार है। खुर्शीद ख्वाजा।"

पति के जेल जाने के समय इतना शानदार सन्देश भेजने के लिए मैं खुर्शीद बेगम को मुबारकबाद भेजता हूं। ख्वाजा साहब[1] एक बैरिस्टर हैं जो सुख-वैभव की गोद में पले और बड़े हुए। मैंने उनके दोनों रूप देखे है। एक समय था जब वह बड़ी शौकीन तबीयत के आदमी थे। उन्हे अपनी सुन्दरता की अनुभूति थी जिसे वह अच्छे-से-अच्छे यूरोपीय ढंग के कपड़ों से और भी निखारने की कोशिश किया करते थे। और आज मैं उन्हें लगभग फकीरी के बाने में देखता हूं। सबसे बहादुर और सबसे सच्चे मुसलमानों में उनकी गिनती है। वह भारत को भी उतना ही प्यार करते है जितना इस्लाम को। मौलाना मुहम्मद अली ने जब देखा कि वह

---

१. ख्वाजा अब्दुल मजीद, उन दिनों अलीगढ़ राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के उपकुलपति

स्थायी तौर पर नेशनल मुस्लिम युनिवर्सिटी में नही रह पायेंगे, तव उनको ख्वाजा साहव ही एक ऐसे आदमी दिखे जो उनकी जगह ले सकते थे। ख्वाजा साहव ने विश्वविद्यालय की सेवा करने के लिए पटना में अपनी दिन-दिन और ज्यादा चमकती वकालत पर लात मार दी। मैं जानता हूं कि ख्वाजा साहव अपने ढंग से अहिसा में विश्वास रखते हैं, लेकिन वह कभी न टूटनेवाली हिम्मत मे भी विश्वास रखते है और जान देने की कला भी जानते है। रौलट अधिनियम लागू होने से पहले के दिनों में जव अली-भाइयों की रिहाई के लिए मै अपने कुछ मुसलमान दोस्तों के साथ सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार कर रहा था तव मैंने ख्वाजा साहव से पूछा था कि सत्याग्रह में कितने ऐसे मुसलमानों के सम्मिलित होने की आशा की जाय जो किसी की जान लिये विना अपनी जान देने को तैयार हो जायंगे। उन्होंने उसी दम कहा था:

"शुएव[1] यकीनन उनमें से एक है। वह हमारा हीरो है। और शायद मैं भी आधा शुएव हूं। अफसोस कि इससे ज्यादा के नाम मैं आपको नही गिना सकता।"

वात है १६१७ या १६१६ की, लेकिन ये कुछ वाक्य कहते समय उनके सुन्दर मुख पर मैने जिस ईमानदारी, सच्चाई और विनय की छाप देखी थी वह आज भी ताजा है। समय काफी वदल चुका है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ख्वाजा साहव के व्यक्तित्व में कही कोई कोर-कसर नहीं। उनकी आशा के अनुसार वहुत सारे मुसलमान अपनी वहादुरी का सवूत दे चुके हैं। और हमें कुछ भी आश्चर्य नहीं लगता जव उनकी पत्नी गर्व के साथ कहती है: "उम्मीद है मैं उनका काम अपनी विसात-भर जारी रक्खूंगी।" पाठकों को इस पर अविश्वास नहीं करना चाहिए। अलीगढ़ के विद्यार्थियों को मैं जानता हूं। वे लोग खुर्शीद वेगम के इशारे पर चलने के लिए पूरे उत्साह से तैयार रहेंगे जैसा कि शायद उन्होने ख्वाजा साहव के लिए नही किया। जव एक पाकदिल औरत अपनी पवित्रता मे वहादुरी और मातृत्व के गुण मिला देती है, तव उसमें एक ऐसी चुम्वक-शक्ति पैदा हो जाती है जैसी कि किसी पुरुष में सम्भव नही हे। डा० मुहम्मद आलम विद्यार्थियों के दिमागों का ख्याल रक्खेंगे पर वेगम साहिवा उनके दिलों को प्रभावित करके उन्हें खरे सोने मे ढाल देंगी। और इतना ही नहीं, चूंकि इन विद्यार्थियों को कताई में विशिष्टता प्राप्त करनी है, इसलिए मुझे पूरा विश्वास है कि खुर्शीद वेगम इस कला को सिखाने में अपने पति और डा० मुहम्मद आलम दोनों के मुकावले कही ज्यादा सफल सिद्ध होंगी। वेगम मुहम्मद अली ने जितना रुपया इकट्ठा कर लिया है

---

१. शुएव कुरैशी

उतना शायद उनके शौहर न कर पाते। मै अपनी राय प्रकट कर ही चुका हूं कि वह मौलाना से अच्छा भाषण करती है। मै पाठकों को रहस्य की एक बात बतलाता हूं। बंगाल को सक्रिय बनाने मे सबसे बड़ा हाथ श्रीमती वासन्ती देवी और उर्मिला देवी का ही है। मेरे सामने एक पत्र पड़ा है जिससे पता चलता है कि इन तीनों महिलाओं के बंगाल जाने और उनके गिरफ्तार होने की बात ने बंगाल की जनता को जितना आन्दोलित किया है उतना देशबन्धु दास के महान् बलिदान ने भी नहीं किया। और कुछ हो भी नही सकता था। इसलिए कि स्त्री तो एक मूर्तिमान बलिदान है। वह जब सच्ची भावना से किसी काम का बीड़ा उठाती है तो पहाड़ों को भी हिला देती है। हमने अपने देश में स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया है। जितनी बन सकी हमने उनकी उपेक्षा ही की है। लेकिन ईश्वर की कृपा से अब. चर्खा उनकी काया-पलट कर रहा है। और मुझे भरोसा है कि जब सभी नेता और सरकार के सभी विश्वासपात्र लोग जेलों में डाल दिये जायंगे, तब भारतीय महिलाएं पुरुषों का बाकी बचा हुआ काम पुरुषों से कही अधिक शालीनता के साथ पूरा कर दिखायेंगी।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २२।१२।१९२१।]

- **स्त्री तो एक मूर्तिमान बलिदान है। वह जब सच्ची भावना से किसी काम का बीड़ा उठाती है तो पहाड़ों को भी हिला देती है।**

३८. बाबू भगवानदास[1]

जब आचार्य और उनके विद्यार्थी पकड़े गये, तब मैने अपने मित्रों से कहा "क्या ही अच्छा हो यदि बाबू भगवानदास गिरफ्तार हो जायं। आखिर आचार्य कृपलानी तो बनारस के रहनेवाले नहीं हैं। लेकिन बाबू भगवानदास नही पकड़े जायंगे।" उस समय मुझे पता नही था कि बाबू भगवानदास ही उस पुस्तिका के रचयिता थे जिसे आचार्य कृपलानी बेच रहे थे। पुस्तक लिखने मे लेखक ने बड़ी सावधानी से काम लिया था। दूसरे ही दिन उनके पुत्र का शुभ संवाद मुझे मिला कि बाबूजी पकड़े गये।[2] गिरफ्तारी पर वह बड़े प्रसन्न थे। बाबू भगवानदास

---

१. १८६९-१९५९, वाराणसी के प्रसिद्ध विचारक, दार्शनिक और लेखक, भारत-रत्न। उन्होंने काशी विद्यापीठ की स्थापना में प्रमुख भाग लिया था।

२. देखिए "तार : श्री प्रकाश को", १५-१२-१९२१ या उसके पश्चात् की पाद-टिप्पणी।

असहयोगी है। ऐसे असहयोगी जो मनसा-वाचा-कर्मणा हमेशा हिंसा से दूर रहते हैं। वह संस्कृत साहित्य के अच्छे पण्डित है। वड़े ही धर्मनिष्ठ है; जमीदार है। श्रीमती वेसेण्ट यदि सेण्ट्रल हिन्दू कालेज की जन्मदात्री है तो बाबू भगवानदास उसके निर्माता है। अतएव उनकी गिरफ्तारी एक ऐसा बलिदान है जो ईश्वर को रुचिकर हुए बिना नही रह सकता। और वह पतित-पावनी विश्वनाथपुरी इससे अच्छा बलिदान और क्या करती? अखबार पढ़नेवाले लोग जानते ही होंगे कि बाबू भगवानदास कांग्रेस-द्वारा स्वराज्य-योजना तैयार कराने का प्रयत्न कर रहे थे। उसके लिए वह स्वयं भी घोर परिश्रम कर रहे थे। उन्होंने मुझे कितने ही सूचक प्रश्नों की एक लम्बी सूची भेजी थी, जिस पर मै वर्तमान घटनाओं के कारण अभी तक कोई घ्यान नहीं दे पाया। हिंसा न होने देने की वह बड़ी चिन्ता रखते थे। यदि उनकी गिरफ्तारी से भी सरकार की हिंसा-काण्ड को न्यौता देने की उत्सुकता का पता न चलता हो तो मैं नहीं कह सकता कि किस बात से चलेगा। मनुष्य के लिए यह बड़े भाग्य की बात है जो ईश्वर उसकी योजनाओं को अक्सर उलट-पलट देता है। और आजकल जो नितनई घटनाएं हो रही हैं उनसे तो यह अधिकाधिक निश्चित होता जाता है कि भगवान इस सरकार की तमाम योजनाओं को उलट रहा है। इतना होते हुए भी लोग शान्त बने हुए है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २२।१२।१९२१।]

३९. 'इण्डिपेण्डेण्ट' का दमन

पाठकों को याद होगा कि श्री जार्ज जोजफ की गिरफ्तारी के फौरन बाद जब प्रकाशक और मुद्रक के रूप में श्री महादेव देसाई ने नया डिक्लेरेशन दाखिल किया था, उस समय उनसे २,००० रू० की जमानत मांगी गई थी। पण्डितजी की सलाह पर जमानत जमा कर दी गई थी और एक दिन बन्द रहने के बाद यह अखबार फिर निकलने लगा था। जमानत इस महीने की ७ तारीख को जमा की गई थी। २० तारीख को वह जब्त कर ली गई। नीति या लहजे में कोई परिवर्तन नही हुआ था। क्योंकि उसमें बदलने के लिए कुछ था भी नही। 'इण्डिपेण्डेण्ट' का सम्पादन एक बैरिस्टर द्वारा किया जाता था जो लिखने में सदा संयम और मर्यादा का ध्यान रखते थे। श्री जोजफ के बन्दी बनाये जाने के बाद यह काम श्री महादेव देसाई ने अपने हाथ मे ले लिया था और उनकी शैली से 'यंग इण्डिया' के पाठक अपरिचित नही हैं। जमानत 'हमें यह काम पूरा करना है' और 'श्रीमती

नेहरू का सन्देश' शीर्षक से उसमें प्रकाशित दो लेखो के कारण जब्त की गई। पहले लेख मे स्वयं-सेवको की सूची दी गई है और दूसरे में वस्तु-स्थिति के बारे में बडे सन्तुलित विचार व्यक्त किये गये थे। लेकिन स्थानीय सरकार का कथन है कि इन लेखों मे "ऐसे शब्दो का समावेश है जो कानून और व्यवस्था कायम रखने के काम मे हस्तक्षेप करते है।" कानून क्या है, यह हमे मालूम है। यह अधिसूचना निकाली गई है कि स्वयंसेवक-दल को भग कर दिया जाय। व्यवस्था क्या है, यह भी हम जानते है, क्योंकि सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगा दी गई है। और यह निश्चित है कि समस्त राष्ट्रवादी अखबारो की तरह ही 'इण्डिपेण्डेण्ड' ने भी ऐसे कानून और ऐसी व्यवस्था मे हस्तक्षेप करने के लिए प्रोत्साहन दिया है।

लेकिन सरकार को जल्दी ही अपनी गलती मालूम पड़ जायगी। 'इण्डिपेण्डेण्ट' मर सकता है, किन्तु जनता मे जो भावना उसने जागरित कर दी है वह कभी नही मर सकती। 'इण्डिपेण्डेण्ट' भले ही न छपे, उसे लिखा तो जा ही सकता है। सम्पादक को जहा मालिको के हितों की रक्षा करनी पड़ती है वहां अपने व्यक्तित्व को भी अक्षुण्ण रखना पडता है। महादेव देसाई सम्पादक के रूप मे अब भी जीवित है, भले ही उनका मुद्रक वाला रूप थोड़ी देर के लिए सो गया हो। और मुझे आशा है कि अब वह छापने के स्थान पर अपना अखबार लिखना शुरू कर देंगे। खबरों और सम्पादकीय टिप्पणियों को मजबूरी के कारण और भी सार-रूप में प्रस्तुत करने से पाठको का ही लाभ होगा। अधिक संख्या मे प्रतियां तैयार करने के लिए मेरा सुझाव है कि रोनियो, साइक्लोस्टाइल अथवा कोमोग्राफ से काम लेना चाहिए। और यदि कानून और उसकी मनमानी व्याख्या सरकार को साइक्लो-स्टाइल अथवा रोनियो मशीन तक जब्त कर लेने की अनुमति देती हो, तब भी श्री देसाई की लेखनी तबतक देश की सेवा करती रह सकती है जबतक खुद उनको पकड़ कर इलाहाबाद की सेण्ट्रल जेल मे न डाल दिया जाय। राष्ट्रवादी अखबारों के मालिक खबरदार रहे। उन्हें आखिरी पाई खर्च होने तक अपना सकल्प नही छोड़ना चाहिए।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २२।१२।१९२१।]

४०. 'इण्डिपेण्डेण्ट' के साथ दुर्व्यवहार

मुझे 'इण्डिपेण्डेण्ट' पत्र के सम्पादक महादेव देसाई के साथ किये जा रहे व्यवहार का विस्तृत विवरण प्राप्त हुआ है, जिसे मै उद्धृत करता हूं। 'यंग इण्डिया'

के पाठक जानते है कि इस पत्र से उनका क्या सम्वन्ध है।[1] वह सब से ज्यादा संजीदा कार्यकर्ताओं में है और बहुत संवेदनशील है। श्री देसाई के एक मित्र श्रीमती देसाई के साथ उनसे मिलने गये। लेखक इस सम्वन्ध मे कहते है :—

"हमें जबरदस्त दमन सहना होगा, हम उसके लिए तैयार हो रहे हैं। मैंने आपको महादेव भाई के कारावास के बारे में तार भेजा है। उन्हें अदालत में हाजिर होने के लिए सम्मन मिला था। वह जेल जाते समय बहुत खुश थे। हम कल उनसे मिलने गये मगर हमें मिलने नहीं दिया गया। मैं खाना, कपड़े और कुछ किताबें ले गया था लेकिन जेलर ने लेने से इन्कार कर दिया। आज सवेरे हम उनसे मिल सके। उन्हें साधारण अपराधियों के साथ रखा गया था और जेल के सभी नियम उन पर लागू किये गये हैं। वह जेल के कपड़े एक काली कमीज, जिसकी वाहें कोहनी तक थीं और एक हाफ पैण्ट पहने हुए थे। उनके कपड़े गन्दे और वदवूदार थे और उनमें जुएं भी थीं। उनके पास दो कम्बल थे जो शायद महीनों से नहीं धोये गये थे और जिनमें निश्चय ही जुओं की भरमार रही होगी। पानी पीने के लिए एक जंग लगा लोहे का बर्तन था। जंग इतना ज्यादा था कि अगर उसमें पानी थोड़ी देर भी रखा रह जाय तो वह पीने योग्य न रहे। इसलिए रात को उसमें से पानी नहीं पिया जा सकता था। उस पानी का रंग बिल्कुल पीला हो जाता था। वहां एक गन्दी टंकी है जहां से पीने का पानी लिया जाता है और यही पानी नहाने-धोने के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। मुझे यह नहीं मालूम कि उन्हें वाल्टियां भी दी जाती हैं या नहीं। नहाने के लिए एक लंगोट दिया जाता है। लेकिन बदन पोंछने के लिए कोई तौलिया नहीं दिया जाता। जब धूप में बदन सूख जाय तो वही गन्दे कपड़े फिर पहनने पड़ते हैं। इस जगह की ठंडी जलवायु में महादेव भाई जैसे कमजोर आदमी के लिए कपड़े धोना असम्भव है क्योंकि जबतक धोये हुए सूख न जायं तबतक उन्हें नंगे बदन रहना पड़ता है। उन्हें सिर्फ जेल का ही खाना दिया जाता है। कल रात तो उन्होंने कुछ खाया ही नहीं; आज सुबह उन्होंने दलिया जैसी कोई चीज ली। इस खाने में कंकड़ और धूल थी। शौच के लिए कैदियों को बाहर जाना पड़ता है और शौच के लिए पानी उसी बर्तन में ले जाना पड़ता है जो उन्हें पानी पीने के लिए दिया जाता है। रात के लिए उन्हें बगैर ढक्कन का बर्तन दिया जाता है। हां, अभी सिर्फ एक कसर बाकी है और वह यह कि उनको हथकड़ियां नहीं डाली गई।"

मुझे एक दूसरे सूत्र से मालूम हुआ कि उनके साथ दुर्व्यवहार करने के लिए

---

१. महादेव देसाई 'यंग इण्डिया' के प्रकाशक थे।

विशेष आदेश जारी किये गये है और उसका कारण यह बताया जाता है कि महादेव देसाई ने जान-बूझकर शासन की आज्ञा का उल्लघन किया है। अधिकारियों को यह बात बहुत खटकी है कि 'इण्डिपेण्डेण्ट' को छपाई और छपाई के लिए आवश्यक डिक्लेरेशन दाखिल किये बिना ही निकाल पाना सम्भव हो गया है।

मुझे इसमे कोई सन्देह नही है कि जेल के सीकचों में बन्द रहकर भी महादेव देसाई अपनी सम्पादकीय दक्षता को सिद्ध करेंगे और शारीरिक यातनाओं के बावजूद अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखखेगे। मै यह सूचना देकर पाठकों को सान्त्वना देना चाहता हूं कि महादेव देसाई के पास प्रेम से ओतप्रोत ऐसा हृदय है जिसमें यातना पहुंचाने वाले के लिए भी स्थान है। पवित्र भजनो के रूप में उनके पास एक ऐसी आत्म-शक्ति भी है जिस पर यातनाओं का असर नही होता। वह भजन गाकर इन सारे कष्टो की पीड़ा को दूर कर सकेंगे। मेरा पूरा विश्वास है कि मीराबाई पर उनके पति द्वारा दी गई यातनाओं का कोई असर नही हुआ था। ईश्वर के प्रति प्रेम और उसके अमूल्य नाम का निरन्तर स्मरण उन्हें नित्य प्रसन्न बनाये रखता था। जब मै उन राजपूत वीरांगनाओ की याद करता हूं जो ईश्वर का नाम लेकर जलती हुई चिता में कूद जाती थी तब मेरे मन मे उनका जो चित्र उभरता है मैं उसमे उनके चेहरे पर आनन्द का ही भाव देखता हूं। लेटीमर[1] ने जब शान के साथ अपना हाथ फैलाकर आग में डाल दिया तो उन्हें तनिक भी कष्ट नही हुआ। उन्हे अगर किसी चीज ने बचाया तो वह थी ईश्वर में उनका विश्वास और उनकी सत्यनिष्ठा। चमत्कारों का युग आज भी समाप्त नही हुआ है। यदि हम ईश्वर की सत्ता और उसकी रक्षा करने की क्षमता में थोड़ा भी विश्वास करे तो हमें ऐसा कवच मिल जाता है जिसके बलपर हम उन सब पीड़ाओं को सह सकते है जिन्हे असह्य कहा जाता है। किसी भी सत्याग्रही को, जिसे अपने उद्देश्य में विश्वास है, इस सत्य मे तनिक भी सन्देह नही करना चाहिए कि संकट के समय ईश्वर उसकी रक्षा करेगा।

मुझे पूरा विश्वास है कि महादेव देसाई अपने विनम्र किन्तु गरिमापूर्ण व्यक्तित्व से दुर्व्यवहार करनेवाले पाषाण-हृदय व्यक्तियों का भी दिल पिघला सकेंगे।

लेकिन हम सरकार के दुर्व्यवहार के उदाहरणों की अपनी चर्चा पर वापिस आयें। लखनऊ का उदाहरण लीजिए। वहां सब ठीक चल रहा था। पण्डित नेहरू और उनके साथियो को आवश्यक सुविधाएं दी गई थी। मैं तो यह सोचने

---

१. ह्यू लेटीमर (१४८५-१५५५), अंग्रेज समाज-सुधारक जिन पर धर्म-विरोधी होने का आरोप लगा कर जीवित जला दिया गया था।

लगा था कि यद्यपि संयुक्त-प्रान्त की सरकार अपनी आज्ञा का उल्लंघन करनेवालों को बराबर जेल में डाल रही है फिर भी वह राजनीतिक वन्दियों के साथ शालीनता और नम्रता का व्यवहार कर रही है। लेकिन अब ऐसा मालूम होता है कि लखनऊ में भी कुछ परिवर्तन आ गया है। मुझे अभी-अभी खबर मिली कि शेख खलीकुज्जमा और उनके दस साथियों को जिला जेल से केन्द्रीय जेल में भेज दिया गया है और उन्हें जो सुविधाएं दी गई थी उनसे उन्हें वञ्चित किया जायगा और शायद उनसे किसी को मिलने की इजाजत भी नही मिलेगी। पण्डित नेहरू और वाकी कैदियों ने इस प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध एक कड़ा विरोध-पत्र भेजा है और इस बात की मांग की है कि उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा कि दूसरे राजनीतिक कैदियों के साथ किया जाता है। हर भारतवासी के लिए यह गर्व की बात होनी चाहिए कि भारत के कुछ वेहतरीन आदमी आज अपना सारा वड़प्पन भूलकर आम आदमी के साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर काम कर रहे है और अपने लिए किन्ही विशेष अधिकारों की मांग नही कर रहे हैं।[1] उपर्युक्त टिप्पणियां लिखने के बाद मुझे एक तार मिला। इस तार में कहा गया कि श्री देसाई से दुबारा मिलने दिया गया और वे विल्कुल स्वस्थ हैं और उनके साथ अव अच्छा व्यवहार किया जा रहा है। अधिकारियों की खातिर मुझे इस वात की खुशी है कि श्री देसाई के साथ किये जा रहे व्यवहार में सुधार किया गया है। खैर, यह तो ठीक है लेकिन ऊपर जिस अस्वच्छता का वर्णन हुआ है वह तो शुरू से ही नही होनी चाहिए थी। महादेव देसाई सरीखे किसी एक व्यक्ति के साथ मजवूरन अच्छा व्यवहार किया गया, यह बात खास महत्व नही रखती। सवाल एक का नही वल्कि वहुत से लोगों का है। सामान्य कैदियों की क्या हालत होगी? क्या उन्हें कोई अधिकार है? सुसंस्कृत लोगों का कैद में डाला जाना उस दृष्टि से एक अनायास प्राप्त सौभाग्य है। जेल में राजनीतिक कैदियों की उपस्थिति का एक आनुषंगिक लाभ यह होगा कि मानव-अधिकारों का यह सवाल हल हो जायगा।
—अंग्रेजी। यं० इं०, ५।१।१९२२।]

● चमत्कारों का युग आज भी समाप्त नहीं हुआ है।

४१. 'इण्डिपेण्डेण्ट' का नया रूप

श्री महादेव देसाई ने दो हजार रुपये की जमानत जब्त हो जाने पर 'इण्डि-

---

१. इस अनुच्छेद के अन्त में लेखन-तिथि, १ जनवरी का उल्लेख है।

पेण्डेण्ट' का जो हस्तलिखित संस्करण निकाला था वह कठिनाइयो के बावजूद अब भी निकल रहा है। वह अपने नये रूप मे नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। अगर वर्तमान सम्पादक गिरफ्तार कर लिया गया तो उसके बाद क्रमशः यह पद कौन-कौन लोग सँभालेंगे, इसकी व्यवस्था कर ली गई है। पत्र के मुख-पृष्ठ पर उन सम्पादकों और सहायक सम्पादको के नाम है जो कि इस थोड़ी सी अवधि मे गिरफ्तार कर लिये गये है। वे है: रंगाअय्यर,[1] जार्ज जोजेफ, कबाड़ी और महादेव देसाई। मेरा खयाल है कि लाहौर के 'जमीदार' पत्र को छोड़कर कोई ऐसा दूसरा पत्र नही है, जिसका ऐसा गौरवपूर्ण रेकार्ड हो। मैं एक दूसरे कालम मे पिछले सात अंकों से कुछ चुनी हुई सामग्री प्रकाशित कर रहा हूं। पहला अक तो मै पूरा प्रकाशित कर ही चुका हूं। पत्र की यह विशेपता पाठकों के ध्यान मे अवश्य आयेगी कि समाचार कितनी सावधानी से संकलित किये गये है, कैसे एक दूसरे से उनका ताल-मेल बैठाया गया है और उन्हे सक्षिप्त रूप में पेश किया गया है। पाठक यह भी देखेगे कि सम्पादकीय में कैसे ठोस विचार हैं। मै पूरी आशा करता हू कि इलाहाबाद की जनता इस प्रयोग के प्रति सहानुभूति जतायेगी और उसके युवा सम्पादक-द्वारा की गई अपील का समर्थन करेगी। यह एक साहसपूर्ण प्रयोग है और उसमे महत्वपूर्ण सम्भावनाएँ निहित है। मुमकिन है कि सरकार पत्र के खिलाफ अपनी कार्रवाई की कोई सीमा ही न बाँधे और प्रत्येक नये सम्पादक को गिरफ्तार करती चली जाय। इस नये प्रयोग का उद्देश्य यह दिखाना है कि जब सजा भुगतने के लिए काफी आदमी मौजूद हों तो कोई भी सरकार जनता की मर्जी के खिलाफ जबरदस्ती अपनी इच्छा नही लाद सकती। अपने को स्वतन्त्र अनुभव करने और स्वतन्त्र होने से पहले यह जरूरी है कि हम सभी सरकारी रियायतो को ठुकरा सके। हमें यह मानना पड़ेगा कि हमारे असहयोग आन्दोलन के बावजूद बहुत-सी ऐसी चीजे है जिनका लाभ हम सरकार की कृपा से उठाते है। अगर सरकार चाहे तो हम सबको बिल्कुल अलग-अलग कर सकती है और रेलगाड़ी, डाकतार आदि की सुविधाओ से हमें वञ्चित कर सकती है। हां, एक चीज ऐसी है जिसे सरकार हमारी मर्जी के वगैर नही दवा सकती और वह है हमारी आत्मा। इसलिए यदि हम भारत की आत्मा को स्वतन्त्र बनाये रखना चाहते है तो सरकार हमारे रास्ते मे, जो भी रुकावटे डाले उनका मुकावला करने और उन पर विजय पाने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

यदि सम्पादक को अच्छे प्रतिलिपिक मिल जायं तो वह आसानी से एक हजार

---

१. सी० एस० रंगा अय्यर।

प्रतिलिपियां तैयार करा सकता है। मेरी सलाह है कि सम्पादक अपनी बात और भी कम शब्दों में कहना सीखें। अगर वह थोड़ा-सा अभ्यास करें तो अपनी पूरी बात सिर्फ एक फूलस्केप कागज के दोनों तरफ लिख कर कह सकता है। रोजाना जनता जिन छपे हुए पत्रों को पढ़ती है और जिन्हें पढ़ने में उन्हें इतनी तकलीफ उठानी पड़ती है उनकी अपेक्षा यह संक्षिप्त समाचारपत्र कही ज्यादा पढ़ने योग्य होगा। अगर समाचारपत्र में से भरती की सामग्री, सुर्खियां और विज्ञापन हटा दिये जायं तो बाकी सामग्री एक फूलस्केप कागज में आ सकती है। सम्पादक को चाहिए कि वह ऐसे समाचार और विचार प्रकाशित करें जिन्हें पाठक और कही नही पा सकता। ऐसा करने से उसके पत्र की प्रचार-संख्या बिना प्रयत्न के हजार गुनी हो जायगी। साथ ही सम्पादक को यह याद रखना चाहिए कि लिखित दैनिक पत्र के लिए एक और तरह के संगठन की जरूरत है। इसके एजेण्टों को वितरकों का कार्य कम और प्रतिलिपिकों का कार्य ज्यादा करना होगा। लिखित दैनिक पत्र के प्रबन्धक को एजेण्टों की और उन ग्राहकों की सूची रखनी होगी जो इन एजेण्टों से पत्र खरीदते है। इन एजेण्टों को अपने-अपने क्षेत्रों के लिए स्थानीय प्रतिलिपिक रखने होंगे जो अपने क्षेत्रों के लिए काफी प्रतिलिपियां तैयार करेंगे। इस प्रकार लिखित दैनिक पत्र के कर्मचारियों और पाठको के बीच निकटतर और सजीव सम्पर्क स्थापित हो जायगा। इसके अलावा जब यह योजना ठीक तरह चल पड़ेगी तो आप देखेंगे कि परेशानी कम हो जायगी, समय शक्ति और पैसा भी कम खर्च होगा और इसके परिणाम अधिक टिकाऊ और शीघ्र फलदायी होंगे।
--अंग्रेजी। यं० इं०, ५।१।१९२२।]

० एक ऐसी चीज है जिसे सरकार हमारी मर्जी के बगैर नहीं दबा सकती, और वह है हमारी आत्मा।

४२. एक बैरिस्टर को नोटिस

अलीगढ़ में दंगों के तुरन्त बाद जब टी० ए० के० शेरवानी को गिरफ्तार किया गया, उस समय वह राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय के व्यवस्थापक थे। इस समय श्री शेरवानी इलाहाबाद की नैनी सेण्ट्रल जेल मे सजा काट रहे है। अभी उन्हें उच्च न्यायालय से यह नोटिस दिया गया है कि उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा १५३-ए के अन्तर्गत सजा हुई है। अतः वह बतायें कि उनका नाम एडवोकेटों की सूची से क्यो न हटा दिया जाय या उन्हें वकालत करने से

मुअत्तल क्यों न कर दिया जाय, उन्हें अपनी सफाई इसी माह की २३ तारीख को देनी है। दो साल पहले बड़े-से-बड़ा वकील ऐसा नोटिस पाकर सिहर उठता! उस समय इस तरह की कार्रवाई को भावी बर्बादी का सूचक समझा जाता। लेकिन खुशकिस्मती से स्थिति बदल गई है। मुझे पता है कि इस नोटिस से श्री शेरवानी की एक रात भी बेचैनी से नही कटी। उन्होंने असहयोगी की हैसियत से वकालत पहले ही छोड दी है। उन्हे अपने ऊपर और देश पर इतना विश्वास तो है ही कि वह यह विश्वास रक्खें कि जब स्वराज्य मिलेगा और वह निकट भविष्य में मिलनेवाला ही है, तब उनका नाम सूची मे सम्मान के साथ पुनः शामिल कर लिया जायगा, भले ही २३ तारीख को उच्च न्यायालय उसे हटाना चाहे तो हटा दे।

——अंग्रेजी। यं० इं०, ५।१।१९२२।]

४३. दूसरी मिसाल

श्री महादेव देसाई की धर्मपत्नी प्रयाग में है। वह स्वयं भी स्वयंसेविका बन गई हैं; वह सेवा करने के लिए जगह-जगह जाती हैं; दूसरे स्वयंसेवकों को खाना पकाकर खिलाती है और अन्य प्रकार से सहायता करती है एवं नित्य चर्खा चलाती हैं। श्री महादेवभाई के गिरफ्तार होते ही उन्होने मुझे एक पत्र भेजा, जिसे पढ़कर पाठक प्रसन्न होगें। मै इसी खयाल से उसे यहा दे रहा हूं।[1]

उन्हे मेरा आशीर्वाद तो प्राप्त है ही। परन्तु मैं आशीर्वाद देनेवाला हूं कौन? भारत की स्त्रियों को तो अपने ही तपोबल से साहस मिल रहा है। कोई एक-दो मनुष्य जेल नही गये है, कितने ही गये है और कितनों ही की धर्मपत्नियां साहस दिखा रही है। वे खुशी-खुशी अपने पतियो को और दूसरे रिश्तेदारो को जेल भेज रही हैं और खुद भी जेल जाने के लिए तैयार हो रही है। मुझे तार से यह खबर मिल गई है कि देसाई के साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया जा रहा था वह अब बन्द कर दिया गया है। जेल में कष्ट तो होते ही है। किन्तु धीरज और अपने विनययुक्त बर्ताव से अनुचित कष्टो का निवारण अवश्य ही होता है। ऐसा हो चाहे न हो, जेल के भयानक-से-भयानक कष्ट तो हमे सहन करने ही होंगे। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी गति ही नही है।

——गुजराती। न० जी०, ८।१।१९२२।]

---

१. यह पत्र यहां नहीं दिया गया है। इसमें दुर्गाबहन ने गांधीजी से आशीर्वाद मांगा था।

४४. मालवीय जी का पुत्र

पण्डित मदनमोहन मालवीय के सबसे छोटे पुत्र गोविन्द तथा उनके भतीजे कृष्णाकान्त मालवीय पहले एक बार पकड़े जाकर सजा भोगकर रिहा हो चुके हैं। उन्हे व्याख्यान देने के कारण अब दुबारा गिरफ्तार किया गया है और डेढ़-डेढ वर्ष की कड़ी कैद की सजा देकर जेल भेज दिया गया है। इसे मै भारतवर्ष का सौभाग्य मानता हूं। श्री मालवीयजी के पुत्र का असहयोग के कारण जेल जाना ही हमें अपनी प्राचीन धर्म-कथाओं की याद दिलाता है। भाई गोविन्द ने मालवीयजी से अनुमति प्राप्त करने की पूरी कोशिश की। उन्होने जहां तक बना अपने पूज्य पिता की इच्छा का मान रक्खा। पिता ने भी पुत्र को पूरी स्वतन्त्रता दी। जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू और अन्य लोगों के पकड़े जाने पर श्री गोविन्द से न रहा गया तब उन्होंने अपने पिता को एक बहुत ही विनययुक्त पत्र लिखा और रणांगण में कूद पड़े। मै जानता हूं कि इससे श्री गोविन्द की पितृभक्ति में रत्ती-भर भी कमी नहीं हुई है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि पण्डितजी के मन में श्री गोविन्द के प्रति इस काम के कारण तनिक भी रोष नही है। इन पिता और पुत्र का सम्बन्ध ऐसा ही मीठा रहा है और रहेगा। इस प्रकार इस स्वराज्य-यज्ञ में सब लोग अपनी-अपनी अन्तरात्मा के आह्वान को मानने लग गये है और हम पिता और पुत्र को जुदा-जदा मैदानों में देख रहे है। ये सब धर्म जागृति—स्वराज्य—के ही चिह्न है।

—गुजराती। न० जी०, ८।१।१९२२।]

४५. मालवीय परिवार

इस निराले असहयोग-संग्राम की एक अत्यन्त निराली बात यह है कि इसके कारण कितने ही परिवारों में मतभेद उत्पन्न हो गया है। और उनमें भी मालवीय-परिवार मे जो मतभेद उत्पन्न हुआ है वह तो विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मेरी राय में तो यह घटना भारतवासियों के लिए सहिष्णुता और सविनय अवज्ञा का अच्छा-खासा पाठ प्रस्तुत करती है। श्री मालवीयजी की सहिष्णुता तो अनुपम है ही। मुझे यह मालूम है कि वह जेल जाने के खिलाफ है। मैं यह भी जानता हू कि यदि वह उसके कायल होते तो ऐसे आदमी नही है जो उससे बचने की कोशिश करते और जब उनका सन्ताप हद दर्जे तक पहुंच जायगा और जब मेरी ही तरह

उनका भी विश्वास ब्रिटिश न्याय पर से पूरी तरह उठ जायगा तब यदि वह जेल जाने के लिए सबसे आगे बढ़ जायँ तो मुझे जरा भी आश्चर्य न होगा। परन्तु यद्यपि वह आज स्वयं सविनय कानून-भंग के खिलाफ है, तथापि उन्होने कभी उन लोगों तक के किये गये निश्चयों मे हस्तक्षेप नही किया जो उनके निकट सम्बन्धी है और जिन पर अपने प्रेम अथवा बुजुर्ग होने के नाते उनकी निर्विवाद सत्ता है। बल्कि इसके विपरीत उन्होंने अपने पुत्रो को अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार बरतने की पूरी आजादी दी है। गोविन्द की सविनय अवज्ञा का उदाहरण मेरी दृष्टि में सजोकर रखने लायक है। पण्डितजी ने अपने मृदुल और सौजन्यपूर्ण ढंग से उस वीर नवयुवक को अपने मार्ग से दूर रखने का भरसक प्रयत्न किया। गोविन्द ने भी अन्त तक अपने पूज्य पिता की इच्छा के अनुसार चलने का भरसक प्रयत्न किया। उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि मुझे मार्ग दिखा। वह परस्पर-विपरीत कर्त्तव्य को सामने देखकर गहरे असमंजस मे पड़ गया। गोविन्द पर नेहरुओं की गिरफ्तारी का बड़ा असर हुआ। और उसने अपने विशालहृदय पिता का आशीष प्राप्त करके संघर्ष मे कूद पड़ने का निश्चय कर लिया। जेलो को भी गोविन्द से बढ़कर उल्लासपूर्ण हृदयवाला युवक शायद ही मिला होगा। यह साहस के साथ कहा जा सकता है कि सविनय अवज्ञा करके गोविन्द ने अपने देश और पूज्य पिता के प्रति अपनी कर्त्तव्य-परायणता प्रमाणित की है। बालकों-द्वारा कर्त्तव्य-भाव से सविनय अवज्ञा करने के मामले मे गोविन्द का यह कार्य हमारे जमाने के सामने एक उदाहरण उपस्थित करता है। मुझे विश्वास है कि इसके कारण पिता और पुत्र के बीच कोई दरार पैदा नही हुई है। शायद मालवीयजी को आज गोविन्द पर पहिले की अपेक्षा अधिक गर्व होगा। ऐसे ही सत्य-युक्त कार्य इस युद्ध के धार्मिक स्वरूप को प्रमाणित करते हैं। गोविन्द ने अदालत में जो साहसपूर्ण बयान दिया है उससे पाठकों के सामने उपस्थित करने के मोह को मै नही रोक सकता।[१]

मैं पिता-पुत्र दोनों को बधाई देता हूं। मैं पाठको को भी आमन्त्रित करता हुं कि वे इसमें मेरा साथ दें। देश को दोनों पर गर्व करना चाहिए। जहां के युवकगण गोविन्द की तरह साहस दिखाते हैं वहां युद्ध का वाञ्छित फल मिले बिना रह ही नहीं सकता।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १२।१।१९२२।]

---

१. यहां उद्धृत नहीं किया गया है।

४६. क्षमा-याचना

इलाहावाद से खवर मिली है कि क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट ऐक्ट (फौजदारी कानून संशोधन अधिनियम) के अन्तर्गत गिरफ्तार आठ अभियुक्तों को छोड़ दिया गया क्योंकि उन्होंने माफी माँग ली और गैर-कानूनी सभाओं, तथा मूर्खता-पूर्ण एवं अशोभनीय आन्दोलनों में भाग लेने पर अफसोस जाहिर किया है। चूकि मथुरा में कुछ ही महीनों पहिले जो कुछ हुआ था उसे मैं भूला नही हूं इसलिए मुझे इस खवर पर विश्वास नही होता। मथुरा में कुछ नामधारी असहयोगी सत्याग्रही गिरफ्तार किये गये थे और फिर उनसे माफी मँगवाई गई थी। वाद में अधिकारियों की तरफ से यह दावा किया गया कि असहयोगियों ने माफी माँगी है। मैं इस समाचार को सत्य तो नही मानता लेकिन मैं यहां जरूर चाहता हूं कि कार्यकर्त्ता इससे फायदा उठायें। अगर उन बहुत से नौजवानों में से, जो कि रोजाना गिरफ्तार किये जा रहे है, कुछ लोग कमजोर पड़ जाते है और पीछे कदम उठाते हैं, खासतौर से उस हालत मे जबकि लोगों के साथ भले ही कुछ समय के लिए ही ऐसा वरताव किया जाता है जैसा कि महादेव देसाई के साथ किया गया है, तो हमें आश्चर्य नही करना चाहिए। हम लोगों को थोड़े-से ही आदमियों के गिरफ्तार होने पर सन्तोष मानना चाहिए, वजाय इसके कि हममें कुछ लोग दिल के कमजोर हों और किसी खास मौके पर आवेश में आकर गिरफ्तार तो हो जायं पर वाद मे घुटने टेक दें।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १२।१।१९२२।]

४७. उलझन में डालने वाली रिहाई

वावू भगवान दास को अचानक और विना शर्त कैद के समय से बहुत पहले छोड़ दिया गया है। उनके साथ मेरी हार्दिक सहानुभूति है। मै जन-साधारण को यह सूचित करना चाह रहा था कि वावू भगवानदास साहित्यिक शोध में लगे हैं और अपने एकान्तवास मे परम प्रसन्न है। ऊपर से उनके पक्ष मे लेकिन असल मे उनके विरुद्ध जो भेदभाव वरता गया है, वह उन्हें स्वभावतः बहुत अखर रहा है। जैसा कि उन्होंने अपने एक खुले पत्र में कहा है, यदि वह रिहाई के अधिकारी थे तो उसी तरह बहुत से अन्य लोग भी थे। वनारस मे जो लोग पकड़े गये थे उनमें वह निश्चय ही मुख्य अपरावी थे। हड़ताल-सम्बन्धी नोटिस का मस्विदा उन्होंने

ही तैयार किया था और उन्होंने ही उसे छपवाया था। प्रोफेसर कृपलानी को नोटिस बाँटने के लिए उन्होंने ही उकसाया था। इस तमाम शरारत के सरगना की रिहाई कैद के समय से पहले भला क्यों होनी चाहिए? बाबू भगवानदास ने इस तरह के अकाट्य तर्क दिये है। परन्तु मुझे इसमें सन्देह नही कि उन्हे अधिकारियो का ध्यान आकर्षित करने के बहुत से मौके मिलेंगे। बंगाल, पंजाब और अन्य स्थानों पर सार्वजनिक सभाओं का जबरदस्ती भंग किया जाना यदि अधिकारियो के मन का सूचक है, तो हमें उससे कही अधिक ताप सहन करना होगा जितना हमने अब तक सहा है। हमारे साथ जो बर्ताव हो रहा है वह तुर्की हमाम के ढंग का है। हम उसे सह सके, इसलिए सरकार हमे उत्तरोत्तर अधिक गर्म कमरों में ले जा रही है।

——अंग्रेजी। यं० इं०, २६।१।१९२२।]

४८. मेरठ में आतंक

जिला खिलाफत समिति के मन्त्री, काजी बशीरुद्दीन अहमद लिखते हैं:[1]

इसे तथा इससे अगले पत्र को उद्धृत करते हुए मुझे हार्दिक दु:ख हो रहा है। यह देखकर कि मानव-स्वभाव इतना नीचे गिर सकता है, मुझे अपमान और लज्जा का अनुभव हो रहा है। पत्र भेजनेवालों के बयानों की सचाई पर शक करने का तो कोई कारण ही नही है।

इस तमाम बहादुर साथियों को मेरी यही सलाह है कि अहिंसा की अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहो; अत्याचारियों को क्षमा करते रहो। जाहिर है कि वे पागल है। वे नही जानते कि क्या कर रहे है। गालियों की परवाह मत करो। जो गालियां देता है, वे उसी को दूषित करती है। जो सुनना नही चाहता उसका वे कुछ नहीं बिगाड़ती। मारपीट से तो हमारे जिस्म को चोट लगती है, लेकिन यदि हम उन्हे बिना क्रोध के बहादुरी से झेल सकें तो गालियों से हमे लाभ ही होगा। पुलिस का कानून के खिलाफ यह पौरुषविहीन आचरण इस प्रणाली की भ्रष्टता का एक और उदाहरण है। इस प्रणाली के अन्तर्गत बर्बरता का पोषण किया गया है और मानव-स्वभाव को पतन के गर्त में ढकेल दिया गया है। और यह सब सिर्फ

---

१. उनका पत्र यहां नहीं दिया जा रहा है। उसमें मेरठ सविनय अवज्ञा की हलचल और पुलिस के अमानुषिक व्यवहार का वर्णन किया गया था।

इसलिए किया गया है कि इस गरीब देश का, जिसके बारे में मेरी इच्छा ऐसा मानने की होती है कि वह किसी समय मानव-शक्ति तथा धन-धान्य से भरा-पूरा था, शोषण करने और इसकी सम्पत्ति लूटकर अपना घर भरने पर कटिबद्ध एक अल्प-संख्यक समुदाय के व्यापारिक हितों के लिए बलात् छीनी गई सत्ता को कायम रक्खा जाय।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २।२।१९२२]

४९. बनारस में बर्बरता

यहां मै एक तार का सार दे रहा हूं, जो बनारस से भेजा जानेवाला था, पर जिसे तारघर ने आपत्तिजनक बताकर लौटा दिया:

"अधिकारी लोगों को पीटते हैं और आधी रात को जाड़े में उन्हें नंगा घर भेज देते हैं। स्वयंसेवक लड़कों को गन्दी गालियां दी जाती हैं और उनके साथ गन्दे मजाक किये जाते हैं। देशभक्तों को सम्मेलन या समझौते की बात करने से पहले इस दिशा में राहत दिलानी चाहिए।"

जब बराबर इस प्रकार का अमानुषिक व्यवहार किया जा रहा हो तब सम्मेलनों और समझौतों की बात सोचने के लिए देशभक्तों को जो कड़ी फटकार बताई गई है, पाठकों का ध्यान उस पर जरूर जायगा। तार में जो तथ्य संक्षेप में रक्खे गये हैं, उनका विस्तृत विवरण उसके साथ के पत्र में दिया गया है। परन्तु मै अभी उन्हें यहां देने के लिए स्वतन्त्र नही हूं। इस तार के प्रेषक प्रोफेसर कृपलानी खुद जेल में ऐसे कदम उठा रहे है जिनसे तार में वर्णित अपमानजनक अमानुषिकताओं की समाप्ति सम्भव है।

जो लोग जेल से बाहर हैं, उन्हें क्या करना चाहिए यह बिल्कुल स्पष्ट है। क्षुब्ध और उत्तेजित होने से हमें कोई लाभ नही होगा। हमें समस्या की गम्भीरता को समझना चाहिए। गन्दगी जितनी ज्यादा हो, आत्मशुद्धि और आत्म-त्याग की आवश्यकता उतनी ही अधिक होती है। पुलिस को बुरा भला करने से हमें कोई लाभ नही हो सकता। पुलिसवाले परिस्थितियों की उपज है। उनके प्रशिक्षण से उनका सहज स्वभाव सुधरा नही है, वह शायद बिगड़ा ही है।

पहली ही बार उनका वास्ता अपने ऐसे देशवासियों से पड़ रहा है जो सुसंस्कृत हैं और उच्च उद्देश्य रखते हैं। हमें यह आशा नही करनी चाहिए कि पुलिस में एकाएक परिवर्तन आ जायगा। यदि हम उनके साथ धैर्य और नम्रता का व्यवहार

करेंगे तो वे भी शिष्ट मनुष्य बन जायंगे और हमारे दुःख-दर्द को समझने लगेंगे। जिस दिन हमारे सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति जेल की दीवारों के अन्दर पहुंचे, मेरे लिए तो स्वराज्य उसी दिन आरम्भ हो गया। तबसे निरन्तर शक्ति की अभिवृद्धि और सुधार का क्रम चल रहा है। सुधार झगड़े के निपटारे के बाद शुरु नही होना है बल्कि निपटारा वास्तविक और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए सुधार का फल होगा। और पुलिस की क्रूरता के लिए क्या हम स्वयं भी दोषी नही है? क्या हम बहुत काल तक उनकी उपेक्षा नही करते रहे हैं। बहुत काल तक उनसे डरते नहीं रहे हैं, उनका बुरा नही चाहते रहे है और यह नहीं मानते रहे है कि अब उनका उद्धार सम्भव नही है? यदि हमारी यही मनोवृत्ति रही तो हम बहुत-से समुदायों के बारे में मान बैठेंगे कि उनमें किसी प्रकार के सुधार की आशा नही रखनी चाहिए और तब अन्त में हम केवल मुट्ठी-भर लोग ही पूर्णता के प्रतिरूप और श्रेष्ठता के आदर्श रह जायंगे। दूसरे शब्दों में, यदि हम सिर्फ अपने को ही गुणी व्यक्ति मानेंगे तो अन्त में स्वराज्य से वञ्चित रह जायंगे। इसलिए हमें पुलिस के दुर्गुणों और अपनी आम परिस्थितियों की दुर्बलता के लिए कुछ दोष अपने ऊपर भी लेना चाहिए। किन्तु हमारा धैर्य केवल तभी सिद्ध होगा जब हम सहूलियत और आराम से प्यार करने की बजाय दर्द और कष्ट से प्यार करें। यदि हम इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनी-अपनी लघु भूमिका अच्छे-अच्छे ढंग से अदा करते जायं तो दिन-प्रतिदिन मिल रहे भयानक समाचारों के बावजूद हम प्रसन्न रह सकते हैं। फल तो हमें हर हालत में ईश्वर पर ही छोड़ देना चाहिए।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २।२।१९२२।]

५०. और लिखे हुए समाचारपत्र

इलाहाबाद का 'स्वराज्य' जिसकी जमानत जब्त हो गई थी, एक लिखित समाचारपत्र के रूप में निकलने लगा है। इसके सम्पादक बाबू रामकृष्ण लघाटे है। इसे बहुत साफ-सुन्दर अक्षरो में लिखा जा रहा है। छपाई और टाईपिंग के चलन से सुलेखन की कला का चलन उठता जा रहा है। हस्तलिखित पत्रों का निकलना यदि दीर्घकाल तक चलता रहा, तो इसके फलस्वरूप निश्चय ही इस सुन्दर कला का पुनरुत्थान होगा। कुछ प्राचीन पाण्डुलिपियां सौन्दर्य और आनन्द की अमर कृतियां है। गौहाटी से भी एक हस्तलिखित समाचार-पत्र निकला है। यह हिन्दी और असमिया दोनों में लिखा जाता है और हर पखवाड़े निकलता है।

मूल्य तीन धेले हैं। तीनों लिखित पत्रों में सबसे साफ लिखावट गौहाटीवाले पत्र की है: इसका नाम 'कांग्रेस' है। सुलेख की दृष्टि से 'स्वराज्य' सबसे अच्छा है। 'इण्डिपेण्डेण्ट' की छाप साफ नही है या तो रोनिओ या फिर साइक्लो पर ट्रेसिंग खराब होती होगी। तीनों पत्रों को स्वयंसेवकों या वेतन पर काम करने वाले खास कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देना होगा, जिससे वे ऐसी प्रतिया निकाल सकें जो छपे कागज की तरह आसानी से पढ़ो जा सकें। साथ ही उन्हें संक्षिप्त अभि-व्यक्ति की शैली भी विकसित करनी होगी। ये तीनों पत्र चुस्त शैली में लिखे जाते है, फिर भी मुझे विश्वास है कि विचार को अस्पष्ट किये विना संक्षिप्तीकरण की कला को अभी आगे बढ़ाया जा सकता है। उद्देश्य यह होना चाहिए कि विचार या तथ्यों के रूप में पाठक को कुछ ऐसा दिया जाय जो उसे और कही न मिल सकता हो। व्यवस्थापकों को प्रत्येक प्रति देखनी चाहिए और जिन-जिन पर छाप हलकी हो और पढ़ी न जा सके उन सबको नष्ट कर देना चाहिए जैसा कि मुद्रक भी करते हैं। इन सराहनीय पत्रों के संचालकों को मै यह बात याद दिलाना चाहता हूं कि 'सत्याग्रही' जो थोड़े ही समय चला था एक फुलस्केप कागज के सिर्फ एक ओर ही लिखा होता था।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २।२।१९२२।]

- छपाई और टाइपिंग के चलन से सुलेखन की कला का चलन उठता जा रहा है।

५१. शेरवानी वकालत करने से वञ्चित

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने श्री शेरवानी को, जो अदालत का हुक्म जारी होने के बहुत पहले ही खुद वकालत छोड़ चुके थे, वकालत करने के अधिकार से वञ्चित करके कोई अपनी प्रतिष्ठा नही बढ़ाई। स्पष्ट है कि किसी ने अदालत को ऐसा कदम उठाने के लिए उकसाया होगा। जिसने भी सरकार को यह सुझाया उसने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के साथ बदी ही की है। श्री शेरवानी के विरुद्ध की गई कार्रवाई से एक भी वकील भयभीत होनेवाला नही है। इन कार्रवाइयों से कुछ वकील इस बात पर शर्मिन्दा हुए होंगे कि हम एक ऐसे न्यायालय में वकालत कर रहे है जो एक व्यक्ति को उसके राजनीतिक सिद्धान्त के कारण दण्डित करता है। मेरी राय में अदालत सार्वजनिक रूप से इस बात पर ध्यान देने के लिए मजबूर थी कि असहयोग आन्दोलन एक वस्तुस्थिति है और इसलिए श्री शेरवानी अपने

सिद्धान्तों के कारण नीचे की अदालत में अपना बचाव करने के लिए जाने वाले नहीं है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ९।२।१९२२।]

५२. झूठे आरोप

दमन-नीति का पक्ष बनाये रखने के लिए नियुक्त अधिकारियों ने उस नीति का समर्थन करने की तीव्र उत्कण्ठा में निराधार बातें कहने में संकोच नहीं किया है। मौलाना अब्दुलबारी साहब मुझे लिखते हैं कि असहयोग आन्दोलन के सिल-सिले में जब से उन्होंने शुद्धतम अहिंसा-पालन करने के राष्ट्रीय संकल्प को स्वीकार किया है तब से उन्होने न तो हिंसा की बात सोची, न उसका समर्थन किया और न हिंसा के लिए किसी को उत्तेजित ही किया। वह कहते हैं कि उन्होंने अहिंसा-नीति का प्रतिपादन भी किया और पूरी ईमानदारी तथा हार्दिक रूप से उसका पालन भी किया। अपंजीयत 'इण्डिपेण्डेण्ट' समाचारपत्र लिखता हैं:—

"मौलाना अब्दुल बारी ने 'हमदम' दैनिक में लेख लिखकर सर विलियम विन्सेण्ट[1] के उस वक्तव्य के उन शब्दों का खण्डन किया है जो उन्होंने निन्दा प्रस्ताव पर हुई बहस के दौरान कहे थे—मानो कि मौलाना हिंसा के हामी है। मौलाना का कहना है कि उन्होंने पिछले चार महीनों में एक भी भाषण नहीं दिया। उन्होंने अपने सबसे अन्तिम लिखित भाषण में, जो उन्होने मुसलमानों की एक सभा के समक्ष पढ़ा था, अहिंसात्मक असहयोग की जोरदार वकालत करते हुए कहा कि भारतीय मुसलमानों के पास खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय दूर कराने के लिए एक मात्र सुलभ उपाय यही है। वह कहते हैं कि मेरे दिल में यह आशा हुई है कि अहिंसात्मक कांग्रेस और खिलाफत कार्यक्रम ब्रिटिश सरकार को अन्त में खिलाफत और पंजाब-सम्बन्धी अत्याचारों का निराकरण करने और भारत को स्वशासित राष्ट्रों के ब्रिटिश कामनवेल्थ में स्वतन्त्र साझेदार की तरह स्थान देने पर विवश करेंगे।"

अपने खिलाफ लगाये गये आरोप के सम्बन्ध में पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस प्रकार लिखते है:—

"कहा जाता है कि संयुक्त प्रान्त की सरकार के वित-सदस्य सर लुडविक पोर्टर

---

१. भारत-सरकार के तत्कालीन गृह-सदस्य।

ने २३ जनवरी को संयुक्त-प्रान्त की कौंसिल में भाषण देते हुए निम्नलिखित बातें कहीं—"अब मैं श्री जवाहरलाल नेहरू के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। उनका अन्तिम वार प्रान्त के पश्चिमी भाग में कहीं दिये गये एक भाषण के रूप में था। उन्होंने उसमें राजद्रोह-सम्बन्धी खण्ड को अर्थात् वैध सरकार के प्रति विरति जगानेवाले तथा उस खण्ड को जो महामहिम की प्रजा के वर्गों के बीच घृणा बढ़ाने से सम्बन्ध रखता है, शब्दशः दुहराया। उन्होंने यह भी कहा था कि उनके जीवन का उद्देश्य इस विद्रोह-भावना को तथा सरकार के प्रति नफरत को बढ़ाना है।"

"यह गलत है। किसी भी अवसर पर और अपने किसी भी भाषण में मैंने दण्ड-संहिता (पेनल कोड) के राजद्रोह-सम्बन्धी खण्ड या किसी भी अन्य खण्ड को शब्दशः या अन्य प्रकार से उद्धृत नहीं किया। मैं अपने साथ भारतीय दण्ड संहिता की कोई प्रतिलिपि नहीं लिये फिरता और न मैंने उसका कोई भी खण्ड रट डालना उपयोगी समझा है। फिर भी मैंने जो बात कई बार कही है, वह यह है कि मैं इसे अपना और हर भारतीय का कर्त्तव्य मानता हूं कि वह भारत की वर्तमान शासन-प्रणाली के प्रति विरति या नफरत बढ़ाये। और इस अर्थ में मैं लगातार भारतीय दण्ड-संहिता के खण्ड १२४ अ के खिलाफ जुर्म करता रहा हूं। मुझे यकीन है कि मैंने कभी ऐसा कुछ नहीं कहा जिससे लोग यह समझें कि मैं 'महामहिम की प्रजा के विभिन्न वर्गों में घृणा' फैलाना चाहता हूं। जब भी मौका मिला उसके ठीक विपरीत कहने की भरसक कोशिश की है और यदि ऐसा न होता तो निःसन्देह मैं एक खराब असहयोगी और उस महान नेता का विनम्र अनुयायी होने के सर्वथा अयोग्य होता जिसका काम संसार को प्रेम और अहिंसा की अपरिमित शक्ति फिर से दिखा देना है।"

इन दोनो सम्माननीय सार्वजनिक नेताओं के चरित्र पर धब्बा लगाने वाले अफसरों के दिमाग में यह कभी नहीं आया कि उनके विरुद्ध हिंसा का उपदेश देने या उसके बारे मे अपनी सहमति प्रकट करने के आरोप पूरी तरह प्रमाणित किये जाने चाहिए। सर विलियम विन्सेण्ट को मौलाना बारी से और सर लुड-विक पोर्टर को पण्डित जवाहरलाल से माफी मांगनी चाहिए।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ९।२।१९२२।]

५३. बलिया में दमन

बलिया से चि० देवदास गांधी ने एक पत्र भेजा है। उसमें उसने बलिया

के दमन का सजीव चित्र खींचा है। मैं उसे नीचे देता हूं।[1] वलिया संयुक्त-प्रान्त का एक गरीव जिला है। वहां के लोग उत्साही, सीधे-सादे और भोले हैं। वे देशभक्त हैं। मैंने कई वार वहां जाने का प्रयत्न किया, परन्तु जा नहीं सका। वह विहार की सरहद पर है, इससे वहां के लोग विहारियों से अधिक मिलते-जुलते हैं। दमन से उनकी जो दशा हुई होगी मैं उसकी कल्पना कर सकता हूं। उस कल्पना से मेरा दिल हिल उठता है। मैं वहां न जा सका, इससे मुझे दुःख होता है। यदि मैं इस वेदना से पार पा गया तो वलिया को तीर्थ मानकर वहां की यात्रा करने की इच्छा रखता हूं। मैं चाहता हूं कि इससे वलिया के लोगों को कुछ सान्त्वना मिले। वलिया-जैसे शहरों के वलिदान इस देश को अवश्य मुक्त करेंगे। परमात्मा वलिया के लोगों को कष्ट सहने की और अधिक शक्ति प्रदान करें। मेरी कामना है कि वलिया के उदाहरण से गुजरात के लोगो मे कष्ट-सहन करने की और भी अधिक उत्सुकता पैदा हो।

—गुजराती। न० जी०, ९।२।१९२२।]

५४. गोरखपुर का अपराध

गोरखपुर जिला शायद सवसे वड़ा जिला है। उसमें प्रखर स्वभाव के लोग रहते है। अखवारो मे जो खवरें छपी है उनसे मालूम होता है कि उन्होंने अपने स्वभाव की प्रखरता का उपयोग विपरीत दिशा मे किया है। उन्होने पुलिस का एक थाना जला दिया;[2] उन्होंने इक्कीस निर्दोष सिपाहियों को मार डाला और उनकी लाशें जला दी। इन मरे हुए लोगों में वहां के थानेदार का एक जवान लड़का भी है। अखवारों में जो विवरण छपा है उनके अनुसार ये लोग एक जगह लगी हुई पैठ या हाट को रोकने के लिए गये थे। पहले थोड़े से लोग गये थे, किन्तु उनको वहां से भगा दिया गया। इसलिए वाद में एक वड़ा दल गया। इस दल में स्वयंसेवक भी थे। मेरे लिए और प्रत्येक समझदार असहयोगी के लिए यह घटना नीचा दिखानेवाली है। वहां से जो खवरें आई है उनसे भी हमारे अहिंसक रहने के सम्वन्ध मे शंका होती है।

वारडोली में आन्दोलन का जो श्रीगणेश किया जाने वाला है उसके लिए

---

१. यह यहां नहीं दिया जा रहा है।

२. ४ फरवरी, १९२२ को

यह घटना एक अपशकुन है। शान्ति का और अशान्ति का प्रयोग साथ-साथ नही हो सकता। यदि लोगों को अशान्ति का प्रयोग करना हो तो शान्ति का प्रयोग करनेवाले लोगों को अलग मार्ग ग्रहण करना होगा। जो लोग शान्ति के पुजारी है उन्हें अशान्ति को माननेवाली सरकार और जनता दोनों से ही असहयोग करना होगा।

यदि गोरखपुर जिले के इन लोगों का सम्वन्ध असहयोग की लड़ाई से नही है तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि वहां असहयोगियों का प्रभाव जितना अपेक्षित था, उससे बहुत कम हुआ है। प्रत्येक शुभ कार्य में ऐसे विघ्न तो आ ही जाते है। जब अपने लोग मरते है तब मेरा हृदय दुःखित नही होता अथवा होता भी है तो मै उसे अपने वश में रख सकता हूं। किन्तु जब एक भी सहयोगी का खून किया जाता है तब मुझे शर्म मालूम होती है और आन्दोलन की प्रगति के सम्वन्ध में भय पैदा होता है। शान्ति में विश्वास रखनेवाले प्रत्येक मनुष्य की स्थिति ऐसी ही होनी चाहिए।

यह लेख मैं वम्बई जाते समय लिख रहा हूं।[1] भारत-भूषण पण्डित मदन-मोहन मालवीय ने मुझे वहां बुलाया है। कांग्रेस कार्य समिति की वैठक वारडोली मे बुलाई गई है और वह शनिवार को[2] होगी। यह लेख पाठकों के हाथों मे रविवार को पहुंचेगा। मै स्वयं सामूहिक सविनय अवज्ञा को मुल्तवी करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना नही चाहता, इसलिए मैं इस सम्वन्ध में कार्य-समिति से सलाह करना चाहता हूं। मेरा धर्म अडिग है। उसकी कसौटी ऐसे समय में हो ही सकती है। मैं जबतक अहिसा की भावना मे वृद्धि होते देखता हूं तबतक तो अनेक जोखिनें उठाने के लिए तैयार हूं। किन्तु जव मै यह देखता हूं कि कोई दूसरा मेरी प्रवृत्ति का अनुचित उपयोग कर रहा है तव मैं एक पग भी आगे नही उठा सकता।

मै गोरखपुर से और ज्यादा खबर मिलने की राह देख रहा हूं। मैं अपने विचार पाठको के सम्मुख इसलिए रखता हूं कि मैं, इस सम्वन्ध मे, प्रत्येक पाठक की सहायता लेना चाहता हूं। यह लड़ाई नये ढंग की है। जो लोग शान्तिमय उपायों में विश्वास करते है उन्हे आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। उनको केवल शान्ति का, अहिसा का ही प्रसार करना होगा। यह लडाई वैर वढ़ाने की नहीं वल्कि वैर को मिटाने की है, लोगों में भेदभाव वढ़ाने की नही, वल्कि उनको एकत्र करने की है। यह लड़ाई ऐसी नही है जिसमे मिश्रित साधन काम में लाये जा

१. ८ फरवरी, १९२२ को
२. ११ फरवरी, १९२२ को

सकें वल्कि ऐसी है जिसमें हमे विवेक से काम लेकर उचित और अनुचित का भेद जानना है और उसको अलग-अलग करना है।

गोरखपुर जिले के लोगो के पाप के लिए मैं सबसे अधिक उत्तरदायी हूं। किन्तु इसके लिए प्रत्येक शुद्ध असहयोगी भी उत्तरदायी है। उसका दुःख हम सबको होना चाहिए। किन्तु इस सम्बन्ध में अधिक विचार तो ज्यादा खबर मिलने पर ही किया जा सकता है। ईश्वर भारत की और असहयोगियों की लाज की रक्षा करे।

——गुजराती। न० जी०, १२।२।१९२२।]

- यह लड़ाई नये ढंग की है।
- यह लड़ाई वैर बढ़ाने की नहीं वल्कि वैर को मिटाने की है!

५५. चौरीचौरा का हत्याकाण्ड

ईश्वर की मुझ पर असीम कृपा रही है। उसने तीसरी वार मुझे चेतावनी दी है कि अभी भारत में वैसी सत्यपरायणता और अहिंसा का वातावरण स्थापित नहीं हो पाया है जैसा कि आवश्यक है। ऐसे और केवल ऐसे ही वातवारण में सविनय कही जा सके, ऐसी सामूहिक अवज्ञा करना उचित माना जा सकता है। उसे सविनय अर्थात् नम्रतापूर्ण, सत्यमूलक, विनीत, सजग तथा स्वेच्छाकृत फिर भी प्रिय, कहा जा सकता है और वह अपराधपूर्ण तथा घृणित कभी भी नही हो सकती।

उसने मुझे १९१९ मे जव रौलट अधिनियम-विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ किया गया था, चेतावनी दी। अहमदावाद वीरमगांव और खेड़ा में गलतियां हुई। अमृतसर और कसूर मे भी गलतियां हुई। मैंने अपने कदम वापस ले लिये; इसे अपनी हिमालय-जैसी भारी भूल कहा; ईश्वर और मानव के सामने अपनी पराजय स्वीकार की तथा न केवल सामूहिक सविनय अवज्ञा को वल्कि अपनी वैयक्तिक सविनय अवज्ञा को भी, जिसे मै जानता हूं कि विनयपूर्ण एवं अहिंसात्मक ही रखने का इरादा था, स्थगित कर दिया।

दूसरी वार वम्बई की घटनाओ के जरिये ईश्वर ने मुझे भयानक चेतावनी दी। उसने १७ नवम्वर को वम्वई की भीड की करतूतें मुझे प्रत्यक्ष दिखाई। भीड़ ने सोचा कि वह असहयोग की भलाई कर रही है। वारडोली मे सामूहिक सविनय अवज्ञा तुरन्त प्रारम्भ होनेवाली थी। मैंने उसे वन्द करने का अपना इरादा घोषित किया। इस वार १९१९ से कही अधिक अपमान सहना पड़ा। किन्तु इससे मेरा

भला ही हुआ। मेरा विश्वास है कि आन्दोलन स्थगित करने से राष्ट्र को लाभ ही हुआ। इससे ज्ञात हुआ कि भारत सत्य और अहिंसा का पोषक है।

किन्तु अभी मेरे लिए अपमान का सबसे कड़वा घूंट पीना शेष था। मद्रास ने मुझे चेतावनी भी दी किन्तु मैंने उधर ध्यान नही दिया। पर ईश्वर ने चौरी-चौरा के जरिये मुझे स्पष्ट बताया। मुझे मालूम है कि पुलिस के जिन सिपाहियों की बर्बरतापूर्वक बोटी काट डाली गई, उन्होंने बहुत उत्तेजनात्मक कार्रवाई की थी। उन्होंने इन्स्पेक्टर-द्वारा जनता को दिया गया यह वचन भी भंग किया कि उसे तंग नही किया जाय। जब जुलूस निकल गया तब पुलिस के सिपाहियों ने पीछे छूटे हुए लोगों को तंग किया और उन्हें गालियां दी। लोग सहायता के लिए चिल्लाये। भीड़ वापस आ गई। पुलिस के सिपाहियों ने गोलियां दागी। उनके पास जो थोड़ी-सी गोलियां थीं वे समाप्त हो गई। वे सुरक्षा के लिए थाने में वापस चले गये। इस पर भीड़ ने, जैसा कि मेरे संवाददाता का कहना है, थाने में आग लगा दी। अब सिपाहियों को, जिन्होंने अपने को अन्दर बन्द कर रक्खा था, अपना जीवन बचाने के लिए बाहर आना पड़ा और जब वे बाहर आये उन्हें मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया और उनके खण्ड-खण्ड शरीरावशेष को आग की प्रचण्ड लपटों में डाल दिया गया।

यह दावा किया जाता है कि इस पाशविक कृत्य में किसी असहयोगी का कोई हाथ नही है और न केवल उस समय भीड़ को उत्तेजित करनेवाली कार्रवाई की गई थी, बल्कि उसे जिले में पुलिस-द्वारा किये गये भीषण अत्याचारों का भी पता था। किन्तु किसी प्रकार की भी उत्तेजना ऐसे व्यक्तियों की पाशविक हत्या का औचित्य सिद्ध नही कर सकती, जो बिल्कुल असहाय हो गये थे और जिन्होंने दरअसल अपने को भीड़ की दया पर छोड़ दिया था। और जब भारत अहिंसक होने का दावा करता है और अहिंसक तरीकों से स्वतन्त्रता का सिंहासन प्राप्त करने की आशा रखता है तब भयंकर उत्तेजना के बावजूद भीड़-द्वारा हिंसा को अपनाना अशुभ बात ही है। मान लीजिए, ईश्वर बारडोली की 'अहिंसक' अवज्ञा को सफल बना देता और सरकार विजेताओं के पक्ष में गद्दी छोड़ देती, उस दशा में उन उपद्रवी तत्वों पर कौन नियन्त्रण रखता जो पर्याप्त उत्तेजना के कारण प्रस्तुत होने पर पाशविक कृत्य करते हों? अहिंसक तरीकों से स्वराज्य प्राप्त करने में यह बात पहले से ही शामिल है कि देश के हिंसक तत्वों पर अहिंसा-द्वारा काबू पा लिया गया है। अहिंसक असहयोगी तभी सफलता प्राप्त कर सकते है जब वे भारत के हुल्लड़बाजों पर काबू पा लें; दूसरे शब्दों में जब हुल्लड़बाज लोग भी देशप्रेम या धर्म के कारण कम से कम तबतक के लिए हिंसा से दूर रहना सीख लें जबतक कि असहयोग आन्दोलन

चल रहा है। इसलिए चौरीचौरा की दुर्घटना ने मुझे पूर्ण रूप से सजग कर दिया है।

किन्तु शैतान की आवाज वोली—"वाइसराय को भेजे गये आपके घोषणापत्र तथा उनके उत्तर में लिखे गये प्रत्युत्तर का क्या होगा ?"अपमान की यह घूंट सवसे अधिक कड़वी थी। 'वड़े जोश-खरोश के साथ सरकार को धमकी देकर तथा वार-डोली के लोगों को वचन देकर दूसरे ही क्षण पीछे हट जाना निश्चित रूप से कायरता है।' इस प्रकार शैतान आमन्त्रित कर रहा था कि सत्य से इन्कार कर दो, इस तरह धर्म तथा स्वयं ईश्वर को अस्वीकार कर दो। मैने अपनी शंकाएं तथा कठिनाइयां कार्यसमिति तथा उन अन्य साथियों के सामने रक्खी, जिन्हें मैने अपने नजदीक पाया। पहले तो वे मुझसे सहमत नही हुए। उनमे से कुछ तो शायद अव भी मुझसे सहमत नही हैं, किन्तु जैसे विचारशील और क्षमाशील साथी प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है वैसा शायद ही कभी किसी को हुआ हो। उन्होने मेरी कठिनाई समझ ली और मेरे तर्कों को धैर्य के साथ सुना। उसका परिणाम कार्य-समिति के प्रस्तावो[1] के रूप में जनता के सामने है। प्रायः सम्पूर्ण आक्रामक कार्यक्रम से विल्कुल पीछे हट जाना राजनीतिक दृष्टि से भले ही गलत और अवुद्धिमत्ता का काम हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि यह धार्मिक दृष्टि से विल्कुल सही है, और मैं सन्देह करने-वालों को विश्वास दिलाने का साहस करता हूं कि मेरे अपमान से तथा मेरे द्वारा भूल स्वीकार किये जाने से देश को लाभ ही होगा।

मैं यदि किसी सद्गुण का दावा करना चाहता हूं तो वह सत्य और अहिंसा है। मैं यह दावा नही करता कि मुझमें अतिमानवीय शक्ति है। मैं वैसी शक्ति पाना भी नहीं चाहता। मुझमें भी वैसा ही कलुषित हाड़-मांस है, जैसा कि मेरे किसी कमजोर-से-कमजोर मानव वन्धु में। इसलिए मुझसे भी गलतियां होने की उतनी ही सम्भावना है जितनी किसी और से। सेवा के क्षेत्र में भी मेरी वहुत-सी मजवूरियां हैं, किन्तु उनके अपूर्ण होने पर भी ईश्वर ने उन्हें अव तक सफल वनाया है।

गलती स्वीकार करना झाडू के समान है, जो गन्दगी को हटाकर सतह को साफ कर देती है। गलती स्वीकार कर लेने से मैं अपने को अधिक शक्तिशाली अनुभव करता हूं और पीछे हटने पर भी हमारे उद्देश्य में अवश्यमेव प्रगति होगी। हठपूर्वक सीधी राह छोडकर चलने से मनुष्य कभी अपने उद्दिष्ट स्थान तक नही पहुंचा है।

---

१. कार्य-समिति की वैठक वारडोली में ११ और १२ फरवरी, १९२२ को हुई थी। उसमें ये प्रस्ताव पास हुए थे।

यह कहा गया है कि चौरीचौरा का असर वारडोली पर नही पड़ सकता। यह तर्क दिया जाता है कि वारडोली यदि कमजोर है और यदि वह चौरीचौरा से प्रभावित होकर हिंसा पर उतर आये तभी खतरे की वात है। इस वारे में मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। मेरे विचार में वारडोली के लोग भारत में सबसे अधिक शान्तिप्रिय है। किन्तु वारडोली भारत का एक अत्यन्त छोटा भाग है। उसके प्रयत्न तबतक सफल नही हो सकते जवतक कि उसे अन्य भागों से पूरा सहयोग नहीं मिलता। वारडोली की अवज्ञा तभी सविनय होगी जब कि भारत के अन्य भाग अहिंसक रहें। जिस प्रकार दूध से भरे वर्तन में संखिये का एक छोटा सा कण भी दूध को पीने लायक नही रहने देता, इसी प्रकार चौरीचौरा का घातक विष मिलने से वारडोली की विनय भी अस्वीकार्य हो जायगी। चौरीचौरा भी उसी प्रकार भारत का प्रतिनिधित्व करता है, जिस प्रकार कि वारडोली करता है।

आखिरकार चौरीचौरा भी तो हिंसावृत्ति का एक उग्र लक्षण ही है। मेरे मन में कभी खयाल नही आया कि जिन स्थानों में दमनचक्र चल रहा है वहां मानसिक या शारीरिक हिंसा नही होती। जो खयाल आया है वह यह कि दमनग्रस्त क्षेत्रों मे जो भयंकर दमन किया जा रहा है, उसके मुकावले जनता द्वारा की जानेवाली हिंसा नगण्य है। मैं अव भी ऐसा मानता हूं और 'यंग इण्डिया' के पृष्ठों से भी यह वात भलीभांति सिद्ध हो जाती है। निषिद्ध क्षेत्रों में दृढ निश्चय के साथ सभा करने को मैं हिंसा नही कहता। जिस हिंसा का मै उल्लेख कर रहा हूं, उसका मतलव यदाकदा ईट-पत्थर फेंकने या धमकियां देने और वल-प्रयोग से है। वस्तुतः सविनय अवज्ञा में उत्तेजना होनी ही नही चाहिए। सविनय अवज्ञा तो चुपचाप कष्ट-सहन की तैयारी मात्र है। उसका प्रभाव आश्चर्यजनक होता है, यद्यपि वह दिखाई नही देता और धीरे-धीरे होता है। किन्तु मेरा विचार था कि थोड़ी मात्रा में उत्तेजना तो अपरिहार्य है, अनिच्छा से की गई कुछ हिंसा भी क्षम्य है, अर्थात् किसी हद तक अपूर्ण परिस्थितियों में भी सविनय अवज्ञा को मैं असम्भव नहीं मानता था। पूर्ण परिस्थितियों में तो यदि अवज्ञा सविनय हो तो वह महसूस भी नही होती। किन्तु काफी कुछ प्रतिकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत वर्तमान आन्दोलन को चलाना वस्तुतः एक खतरनाक प्रयोग है।

चौरीचौरा की दुःखद घटना दरअसल वस्तुस्थिति की ओर संकेत करनेवाली घटना है। यह वताती है कि यदि कड़ी सावधानी न वरती गई तो भारत आसानी से किस ओर जा सकता है। यदि हम हिंसा में से अहिंसा का विकास नही कर सकते तो यह स्पष्ट है कि हमें जल्दी से अपने कदम पीछे हटा लेने चाहिए और

शान्ति का वातावरण पुनः स्थापित करना चाहिए, अपने कार्यक्रम को पुनर्गठित करना चाहिए और तवतक सामूहिक सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करने का विचार छोड़ देना चाहिए ज तक कि हमें यह विश्वास न हो जाय कि सामूहिक सविनय अवज्ञा प्रारम्भ करने पर तथा सरकार के उकसाने पर भी शान्ति कायम रहेगी। हमें इस तरफ से भी आश्वस्त होना चाहिए कि अनधिकृत लोग सामूहिक सविनय अवज्ञा आरम्भ न करे।

अभी तो स्थिति यह है कि कांग्रेस का संगठन ही अपूर्ण है और उसकी हिदायतों का पालन अब भी वेदिली से किया जाता है। हमने अभी तक प्रत्येक गांव में कांग्रेस कमेटियां स्थापित नही की है। जहां हमने स्थापित की है वहां वे हमारी हिदायतों का पालन पूर्ण रूप से नही करती। हमारी सूची में शायद एक करोड़ से अधिक सदस्य नही है। फरवरी का आधा मास बीत गया है, लेकिन वहुत से लोगों ने चालू वर्ष का चार आने चन्दा अभी तक अदा नहीं किया है। स्वयसेवकों के नाम दर्ज करते समय पूरा ध्यान नही दिया जाता। वे अपनी प्रतिज्ञा की सभी शर्तो का पालन नही करते। वे हाथ से कता-वुना खद्दर तक नहीं पहनते। सभी हिन्दू स्वयं-सेवकों ने अभीतक अपने को अस्पृश्यता के पाप से मुक्त नही किया है। उनमें से सभी अव तक हिसा के दोष से मुक्त नही हुए हैं। उनके जेल जाने से हम न तो स्वराज्य ही प्राप्त कर सकेंगे, न खिलाफत के पवित्र उद्देश्य को सफल वना सकेंगे और न वेईमान सरकारी नौकरों का वेतन वन्द करने की ही योग्यता प्राप्त कर सकेंगे। हममें से कुछ लोग न चाहते हुए भी गलती कर वैठते हैं, किन्तु कुछ दूसरे लोग तो जान-वूझकर पाप करते है। यह जानते हुए भी कि वे न तो अहिंसक रहना चाहते हैं और न रह ही सकते है, वे स्वयंसेवक दल में भरती हो जाते है। इस तरह हम जिस प्रकार सरकार को झूठा समझते है उसी प्रकार हम भी झूठे है। सत्य और अहिंसा के प्रति केवल मौखिक सम्मान दिखाकर हमें स्वतन्त्रता के साम्राज्य में प्रवेश करने का साहस नही करना चाहिए।

आगे प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि सामूहिक सविनय अवज्ञा को स्थगित कर दिया जाय और उत्तेजना को रोका जाय। सच तो यह है कि और अधिक अधःपतन रोकने के लिए भी ऐसा करना अनिवार्य है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि आन्दोलन को स्थगित करने से प्रत्येक कांग्रेसी स्त्री-पुरुष न केवल अपने को निराश अनुभव नही करेगा, वल्कि यह अनुभव करेगा कि वह अयथार्थता तथा राष्ट्रीय पाप के भार से मुक्त हो गया है।

हमारे अपमान और कथित पराजय पर प्रतिपक्षी गर्व करते रहें। अपनी प्रतिज्ञा भंग करके ईश्वर के प्रति पाप करने की अपेक्षा कायर और कमजोर होने

का दोषी होना कही अच्छा है। अपने प्रति झूठा सिद्ध होने की अपेक्षा संसार की आंखों के सामने झूठा सिद्ध होना लाख गुना अच्छा है।

इसलिए सामूहिक सविनय अवज्ञा तथा उन अन्य छोटी-मोटी गति-विधियों को, जिनसे उत्साह कायम रह सकता है, स्थगित करना ही मेरे प्रायश्चित्त के लिए काफ़ी नही है, क्योकि चौरीचौरा में लोगों ने जो पाशविक हिसा की है, उसका मै अनैच्छिक रूप में ही सही, एक उपकरण रहा हूं।

मुझे वैयक्तिक रूप से प्रायश्चित्त करना होगा। मुझे एक ऐसा संवेदनशील उपकरण बनना है जो आसपास के नैतिक वातावरण में होनेवाले सूक्ष्मतम परिवर्तन को स्पष्ट रूप से प्रकट कर सके। मेरी प्रार्थनाओं में उससे कही अधिक गहरी सचाई तथा नम्रता होनी चाहिए, जितनी कि उनसे अभी प्रकट होती है। और मेरे लिए तो उपवास तथा उसके साथ आवश्यक मानसिक सहयोग के समान सहायक एवं शुद्ध करनेवाला कोई उपाय नही है।

मै जानता हूं कि मानसिक प्रवृत्ति ही सब कुछ है। जिस प्रकार प्रार्थना पक्षी की चहचहाहट के समान केवल यान्त्रिक स्वर-विन्यास हो सकती है, उसी प्रकार उपवास भी शरीर को दिया जानेवाला केवल यान्त्रिक कष्ट हो सकता है। इस प्रकार के यान्त्रिक उपाय का वाञ्छित उद्देश्य की सिद्धि के लिए कोई महत्व नही है। फिर, जिस प्रकार यान्त्रिक गायन से कण्ठ सुरीला हो सकता है उसी प्रकार यान्त्रिक उपवास केवल शरीर को शुद्ध कर सकता है किन्तु दोनों में से अन्तरात्मा को कोई भी स्पर्श नही करेगा।

किन्तु जब पूर्णतर आत्म-प्रकाशन के लिए, शरीर पर आत्मा का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उपवास किया जाता है तब वह सम्बन्धित व्यक्ति के विकास में अत्यधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है। इसलिए गम्भीर चिन्तन के बाद मैंने पांच दिन के सतत उपवास का व्रत लेने का निश्चय किया है। इस बीच मैं जल के अतिरिक्त और कुछ नही लूंगा। यह रविवार[1] की शाम को प्रारम्भ हुआ है और शुक्रवार की शाम को समाप्त हो जायगा। कम-से-कम इतना तो मुझे करना ही होगा।

शीघ्र ही अखिल भारतीय कांग्रेस की जो बैठक[2] होनेवाली है उसपर मैंने विचार कर लिया है। मै यह जानता हूं कि मेरे पांच दिन के उपवास से भी मेरे बहुत से मित्रों को कितनी अधिक वेदना होगी किन्तु मै इस प्रायश्चित्त को और स्थगित नही कर सकता और न मैं इसे कम कर सकता हूं।

---

१. १२ फरवरी १९२२।

२. यह २४ और २५ फरवरी को दिल्ली में हुई थी।

मै अपने सहयोगियो से आग्रह करता हू कि वे मेरा अनुकरण न करें। उनके मामले में उपवास का कोई कारण नही होगा। वे सविनय अवज्ञा के प्रवर्तक नहीं है। मैं उस शल्य-चिकित्सक (सर्जन) की अवाञ्छनीय स्थिति मे हूं जो निश्चित रूप से खतरनाक चीर-फाड़ के लिए अनाड़ी सावित हुआ हो। मुझे या तो इसे छोड़ देना होगा या अविक दक्षता प्राप्त करनी होगी। जहां व्यक्तिगत प्रायश्चित्त मेरे लिए न केवल आवश्यक, वल्कि अनिवार्य भी है वहां कार्य-समिति-द्वारा निर्वारित अनुकरणीय आत्मसयम वारण करना ही अन्य सभी लोगों के लिए निश्चित रूप से काफी प्रायश्चित्त है। यह कोई छोटा प्रायश्चित्त नही है। यदि इसे सच्चे हृदय से किया जाय तो यह उपवास से कई गुना सच्चा और उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मन, कर्म और वचन से अहिसा की प्रतिज्ञा को अविकाविक पूरा करने या उस भावना का व्यापक रूप से प्रसार करने से अधिक मूल्यवान तथा अविक फलदायक और क्या हो सकता है? यदि मेरे सभी सहयोगी इस सप्ताह व्यर्थ वाद-विवाद न कर चुपचाप कार्य समिति-द्वारा तैयार किये गये रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने, जिनके वारे मे स्वराज्य-प्राप्ति के लिए काग्रेस के सत्य और अहिसा के सिद्धान्त को समझने का भरोसा हो ऐसे लोगो के नाम कांग्रेस की सदस्य-सूची मे दर्ज करने, प्रतिदिन धर्म समझकर निर्वारित समय तक चर्खा चलाने, समृद्धि और स्वतन्त्रता के प्रतीक रूप चर्खे का प्रत्येक घर मे प्रचार करने, अछूतो के अभावों के वारे मे जानने के लिए उनके घरो में जाने, राष्ट्रीय पाठशालाओं मे अछूत वच्चे दाखिल करने के लिए प्रोत्साहित करने, हर वर्ग के स्त्री-पुरुषों के लिए सामान्य मच ढूंढ़ने के विशेप उद्देश्य से सामाजिक सगठन करने, मद्य के अभिशाप से वर्वाद घरों मे जाने तथा राष्ट्रीय पाठशालाओं और वास्तविक पंचायतों को समुचित आवार पर स्थापित करने में व्यस्त रहें तो यह देखकर मुझे भोजन से भी अधिक तृप्ति उपलब्व होगी। कार्यकर्त्ता उपवास करने की अपेक्षा इन गति-विधियों में अपने को व्यस्त रक्खे तो ज्यादा अच्छा होगा। इसलिए मै आशा करता हूं कि कोई भी व्यक्ति झूठी हमदर्दी दिखाने के लिए अथवा उपवास के आध्यात्मिक मूल्य की गलत धारणा-वश उपवास करने मे मेरा अनुकरण नही करेगा।

जहां तक हो सके सभी तरह के उपवास तथा प्रायश्चित्त गुप्त ही रहने चाहिए। किन्तु मेरा उपवास, प्रायश्चित्त और दण्ड दोनों ही है, और दण्ड तो सार्वजनिक रूप से ही दिया जाता है। यह मेरे लिए तो प्रायश्चित्त है और उन लोगों के लिए, जिनकी मै सेवा करने की कोशिश करता हूं तथा जिनके लिए मै जीना और मरना भी पसन्द करता हू, एक दण्ड है। उन्होने कांग्रेस के कानून के विरुद्ध अनिच्छा-पूर्वक पाप किया है, यद्यपि वे केवल हमदर्दी दिखानेवाले थे, कांग्रेस से उनका कोई

वास्तविक सम्बन्ध नही था। शायद उन्होंने पुलिस के सिपाहियों को अपने देश-वासियों तथा साथी मानवों को मेरा नाम लेकर ही बोटी-बोटी काटकर मारा है। अपने प्रियजनों को प्रेमपूर्वक दण्ड देने का एकमात्र उपाय स्वयं कष्ट सहन करना है। मै यह भी नही चाहता कि वे गिरफ्तार किये जायं। यह मै चाह भी नहीं सकता। किन्तु मैं उन्हें यह बताना चाहूंगा कि उनके कांग्रेस सिद्धान्त को भंग करने के कारण मुझे कष्ट उठाना होगा। जो लोग अपने को दोषी अनुभव करते हैं और अव पश्चात्ताप कर रहे हैं, उन्हें मेरी सलाह है कि वे दण्ड प्राप्त करने के लिए अपने को स्वेच्छया सरकार को सौप दें और स्पष्ट रूप से अपना अपराध स्वीकार कर लें। मुझे आशा है कि गोरखपुर जिले के कार्यकर्त्ता अपराधियों को ढूंढ़ने तथा उन्हें स्वयमेव अपनी गिरफ्तारी कराने को मजबूर करने के लिए कुछ भी उठा नही रखेंगे। किन्तु चाहे हत्यारे मेरी सलाह को स्वीकार करे या न करें, मैं उन्हें यह वताना चाहूंगा कि उन्होंने स्वराज्य के आन्दोलन में वहुत बड़ा रोड़ा अटकाया है। बारडोली में आन्दोलन को स्थगित करने का कारण बनकर उन्होंने उसी उद्देश्य को हानि पहुंचाई है जिसकी वे शायद सेवा करना चाहते थे। मै उन्हें यह भी वताना चाहूंगा कि यह आन्दोलन न तो हिंसा को छिपाने के लिए कोई आवरण है और न उसकी पूर्व तैयारी ही। मै आन्दोलन को हिसक होने या हिंसा का अग्रदूत वनने से वचाने के लिए हर हालत में हर प्रकार का अपमान, हर प्रकार की यन्त्रणा, पूर्ण वहिष्कार, यहां तक कि मृत्यु को भी सहन करूंगा। मैं अपना प्राय-श्चित्त सार्वजनिकरूप से इसलिए भी कर रहा हूं कि इस तरह अपने-आपको बन्दियों के साथ वन्दीगृह में रहने के सौभाग्य से भी वञ्चित कर रहा हूं। हमारा प्रमुख प्रश्न एक वार फिर से दूसरा हो गया है। अब हम सरकारी विज्ञप्तियों के वापस लिये जाने तथा वन्दियों के मुक्त किये जाने पर जोर नही दे सकते। चौरीचौरा के अपराध के लिए उन्हें और हमें कष्ट सहन करना ही होगा। चाहे हम उसे चाहें या नही, यह घटना जीवन की एकता को सिद्ध करती है। सभी लोगों को, जिनमें शासक-वर्ग भी शामिल हैं, इसका फल भोगना होगा। चौरीचौरा काण्ड से सरकार का रवैया निश्चित रूप से और भी सख्त हो जायगा और पुलिस और भी भ्रष्ट हो जायगी, और अव जो प्रतिशोध लिया जायगा उससे लोगों का हौसला और भी टूटेगा। आन्दोलन को स्थगित करने तथा प्रायश्चित्त करने में हम वापस उसी स्थिति में आ जायंगे जिस स्थिति में चौरीचौरा की दुर्घटना से पहले थे। कड़ाई के साथ अनुशासन का पालन करने तथा आत्मशुद्धि से हम उस नैतिक विश्वास को पुनः प्राप्त कर लेगे जो सरकारी विज्ञप्तियों को वापस लेने तथा वन्दियों को मुक्त करने की मांग करने के लिए आवश्यक है।

यदि हम इस दुःखद घटना से पूरी शिक्षा ग्रहण करे तो हम अभिशाप को वरदान मे वदल सकते है। मन और कर्म दोनों से सत्यपरायण और अहिंसक वनकर तथा स्वदेशी अर्थात् खद्दर के कार्यक्रम को पूरा करके हम पूर्ण स्वराज्य की स्थापना और पंजाव तथा खिलाफत के साथ किये गये अन्यायों का प्रतिकार कर सकते है। फिर तो इसके लिए किसी व्यक्ति को सविनय अवज्ञा भी नहीं करनी पड़ेगी।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १६।२।१९२२।]

- मै यदि किसी सद्गुण का दावा करना चाहता हूं तो वह सत्य और अहिंसा है।
- गलती स्वीकार करना झाड़ू के समान है, जो गन्दगी को हटाकर सतह को साफ कर देती है।
- वस्तुतः सविनय अवज्ञा में उत्तेजना होनी हो नहीं चाहिए। सविनय अवज्ञा तो चुपचाप कष्ट-सहन की तैयारी मात्र है।
- मानसिक प्रवृत्ति ही सब कुछ है।
- जिस प्रकार प्रार्थना पक्षी की चहचहाहट के समान केवल यान्त्रिक स्वर-विन्यास हो सकती है, उसी प्रकार उपवास भी शरीर को दिया जानेवाला केवल यान्त्रिक कष्ट हो सकता है।
- जब पूर्णतर आत्म-प्रकाशन के लिए तथा शरीर पर आत्मा का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उपवास किया जाता है तव वह सम्बन्धित व्यक्ति के विकास में अत्यधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है।
- मन, कर्म और वचन से अहिंसा की प्रतिज्ञा को अधिकाधिक पूरा करने से अधिक मूल्यवान तथा फलदायक और क्या हो सकता है?
- सभी तरह के उपवास तथा प्रायश्चित्त गुप्त ही रहने चाहिए।
- प्रेमपूर्वक दण्ड देने का एक मात्र उपाय स्वयं कष्ट सहन करना है।

५६. आदर्श पिता और आदर्श पुत्र

कुछ सप्ताह पहले मैंने तीनों मालवीयों के जेल जाने के सम्बन्ध में कुछ लिखा था और वतलाया था कि गोविन्द मालवीय ने अपने अन्तःकरण की आवाज अनसुनी न कर पाने पर किस विनम्रता और अपने पिता के प्रति किस भक्ति भाव से, पण्डितजी के न चाहने पर भी, जेल-यात्रा की थी। अव गोविन्द ने मुझे पण्डितजी के उस

पत्र की एक प्रति भेजी है, जो उन्होंने गोविन्द के नाम भेजा था। पाठकों के लिए उसका अनुवाद प्रस्तुत है। मूल पत्र हिन्दी में ही है:

"गोविन्द को आशीर्वाद। ईश्वर तुम्हें चिरायु करे। तुम्हारा पत्र मिला। अन्यथा व्यस्त होने के कारण मैं इससे पहले उसका उत्तर नहीं दे पाया। मै तुमसे नाराज नहीं हूं। मन में ऐसी कोई आशंका रखकर दुःखी मत हो। हां, माडर्न हाई स्कूल पर धरना देना मुझे पसन्द नहीं आया। स्कूल कोई ऐसा स्थान तो है नहीं जहां पाप पलता हो, या जो सामाजिक जीवन में विष घोलता हो कि बच्चों को वहां जाने से रोकने के लिए धरना देना पड़े। परन्तु तुम्हारा और कृष्ण का सार्वजनिक सभा में जाना और उपस्थित जनों को कांग्रेस का सन्देश सुनाना सर्वथा उचित था। सरकार ने जो नीति अपनाई है वह बिल्कुल बेजा है। आशा है, वह नीति बदली जायगी। तुम बिल्कुल प्रसन्न रहो। तुमने अपनी गिरफ्तारी के बारे में श्री गांधी को जो पत्र लिखा था वह उन्होंने मेरे पास भेज दिया।'

उपर्युक्त पत्र १३ जनवरी का है।

पण्डितजी ने इसी तारीख को एक पत्र कृष्णकान्त मालवीय को भेजा था, जो इस प्रकार है:

"खेद है कि इधर कुछ दिनों में इतना अधिक व्यस्त रहा कि तुम्हें और गोविन्द को पत्र लिख ही नहीं सका। इस समय मैं रात को ग्यारह बजे पत्र लिखने बैठा हूं।

सभा में तुम्हारा बोलना बिल्कुल ठीक था। ऐसी किसी आशंका से दुःखी मत रहना कि मैंने तुम्हारे उस काम को पसन्द नहीं किया। मैंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी (बल्कि कहना चाहिए विषय-निर्धारिणी समिति) की अहमदाबाद की बैठक में कहा था कि यदि सरकार कांग्रेस स्वयं सेवक-संस्थाओं को 'गैर कानूनी' करार देने की अधिसूचना वापस नहीं लेती तो ऐसे स्वयंसेवकों का उसका उल्लंघन करके जेल जाना बिल्कुल उचित होगा।

मैंने अन्य कुछ लोगों के साथ मिलकर जो सम्मेलन बुलाया है उसकी बैठक कल होगी। साथ के पत्र से तुम्हें सम्मेलन के उद्देश्य का पता चल जायगा। श्री गांधी और शंकरन् नायर, सर विश्वेश्वरैया और अन्य कई लोग आ पहुंचे है। आज कई घण्टे तक आरम्भिक ढंग की चर्चा चलती रही। आशा है, उसका कुछ अच्छा ही परिणाम निकलेगा।

पूर्णतया प्रसन्नचित्त रहना। जेल में अपने किसी भी सहयोगी को ऐसा कोई खयाल न होने देना कि तुम्हारी सजा छः महीने की सख्त कैद से बदलवाकर सादी कैद कराने में मेरा कोई हाथ है। मैंने तुम लोगों को सजाओं के बारे में किसी से भी कोई शिकायत नहीं की, हालांकि इनकी क्रूरता देखकर मुझे दुःख अवश्य हुआ है।

"मैं इलाहाबाद लौटने पर तुम दोनों से जेल में मुलाकात करने की सोच रहा था। अब तो तुम्हें आगरा जेल भेज दिया गया है, इसलिए अभी कुछ दिनों तक मुलाकात शायद न हो पाये। पर इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। तुम्हें यह जानकर दिली खुशी होगी कि अगले कुछ महीनों के लिए मेरे हाथ में बहुत काफी काम है। शेष अगले पत्र में।"

गोविन्द ने पत्र की एक प्रति मेरे पास भेजते हुए लिखा है कि सम्मेलन बुलाने के सिलसिले में भेजा गया परिपत्र कृष्णकान्त को नही दिया गया था। उसने यह भी लिखा था कि मै पण्डितजी की अनुमति लिये बिना दोनों पत्रों को प्रकाशित न करूं। इन दोनों पत्रो को मैंने सार्वजनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण समझा, और इसलिए मुझे लगा कि इन्हें प्रकाशित कर देना चाहिए। सो आवश्यक अनुमति लेकर मैने दोनों पत्र जनता के लाभ के लिए प्रकाशित कर दिये हैं। मेरी दृष्टि में ये दोनो पत्र बड़े कीमती हैं। ये इस बात के उदाहरण है कि कौटुम्बिक जीवन कैसा होना चाहिए। मालवीय परिवार के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में परस्पर कितनी सहिष्णुता है तथा तरुण लोग किस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखते हैं और किस प्रकार बुजुर्ग लोग उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करते है। इसके अतिरिक्त इन पत्रों से पण्डितजी के चरित्र की उदात्तता प्रकट होती है। यदि आज वह जेल में नही है, तो इसका कारण यह नही कि वह जेल से डरते हैं, बल्कि यह है कि अभी उन्हें जेल का मार्ग ठीक नही दिखाई दिया है। उनके निकट सम्पर्क में रहनेवाला ऐसा कौन है जो यह नही जानता कि वह आजकल परस्पर-विरोधी कर्त्तव्यों को लेकर उठे मानसिक द्वन्द्व से कितने अधिक पीड़ित रहते है और कितने चिन्ताग्रस्त रहते हैं? मुझे अक्सर यह लगा करता है कि यदि उन्हें जेल भेज दिया जाय तो इन लगातार चिन्ताओं और झंझटों से, जो कि उनके जैसा सार्वजनिक जीवन व्यतीत करनेवाले के पीछे लगी रहती है, उन्हें निश्चय ही छुटकारा मिल जायगा।

मैंने इन दोनो पत्रों को इसलिए प्रकाशित किया है कि असहयोगी लोग आम तौर पर सहिष्णुता का महत्व समझें। मेरा यह विश्वास है, और मै चाहता हूं कि पाठक भी इसे स्वीकार करें कि पण्डितजी के सदृश देश की सेवा करनेवाला कोई भारतीय आज मौजूद नही है, तथापि "इण्डिपेण्डण्टों" में तथा नरम दल में ऐसे भी लोग हैं जो हमसे सहमत नही हो पाते इसलिए नही कि वे कमजोर हैं, बल्कि इसलिए कि उनकी दृढ़ कर्त्तव्य-भावना का यही तकाजा है। यदि हम अपने प्रतिपक्षियों के प्रति आवश्यक विनम्रता, उदारता और सहनशीलता के भाव ही अपने हृदय में रक्खें और उनकी ईमानदारी पर सन्देह न करें, तो मैं जानता हूं कि हम कितने ही ऐसे सज्जनों को

अपनी ओर कर सकेंगे जो आज हमारी असहिष्णुता की बदौलत हमारे खिलाफ खड़े हैं। जब बहुसंख्यक लोग असहिष्णु हो जाते है तव लोग उनको डरते है, उनका अविश्वास करते हैं, और अन्त में उनसे घृणा करने लगते है, और यह ठीक भी है। यदि असहयोगियों के पक्ष में जनता का बहुत बड़ा भाग हो, जैसा कि मुझे विश्वास है कि है, तो अवश्य ही उनके लिए यही उचित है कि अपने मतों पर पूरी दृढ़ता से डटे रहने के साथ-साथ अल्पसंख्यक लोगों के साथ सहनशीलता, दया और आदर का बर्ताव रक्खें। असहिष्णुता एक प्रकार की कमजोरी है और उसके द्वारा इस आरोप की पुष्टि होती है कि यद्यपि इस आन्दोलन का उद्देश्य द्वेष पैदा करना नहीं है पर उससे द्वेष फैलता अवश्य है। मुझे आशा है कि ऊपर उद्धृत दोनों पत्र असहयोगियों को अपने तई सावधान कर देंगे।

गोरखपुर की दुर्घटना असहिष्णुता के सबल उदाहरण के सिवा और क्या थी? हम अक्सर इस बात को भूल जाते है कि हमारा एक कर्त्तव्य यह भी है कि हम पुलिस और फौजवालों को भी अपने मत का बना लें। हम आतंक के बल पर ऐसा कभी नहीं कर सकते। लोगों-द्वारा सामूहिक तौर पर किये गये उन अमानुषिक कार्यो ने पुलिस में व्याप्त अन्धेरगर्दी और भ्रष्टाचार को और भी बढ़ा दिया है, अब उसने बदले की कार्रवाई शुरू कर दी है जिससे हमें सदमा पहुंचा है। हमें यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए कि भ्रष्ट सरकार और भ्रष्ट पुलिस का होना सूचित करता है कि सरकार और पुलिस के भ्रष्टाचार के सामने सिर झुकानेवाले लोगों में भी भ्रष्टाचार मौजूद है। आखिरकार इस कथन मे भी बहुत-कुछ सत्य है कि "यथा राजा तथा प्रजा"। इस बात को समझने के लिए यह जरूरी नहीं कि हम धार्मिक दृष्टि से अहिसा के सिद्धान्त के कायल ही हों पर हमें पुलिस और फौज को, जिनमें ज्यादातर हमारे ही देश-भाई है, दया और सहनशीलता के द्वारा, बल्कि उनकी पाशविकता को भी सहकर अपनी तरफ करना है। निश्चय ही अधिकांश मामलों में वे बेचारे जानते ही नहीं हैं कि वे कर क्या रहे हैं।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २३।२।१९२२।]

- असहिष्णुता एक प्रकार की कमजोरी है।
- भ्रष्ट सरकार और भ्रष्ट पुलिस का होना सूचित करता है कि सरकार और पुलिस के भ्रष्टाचार के सामने सिर झुकानेवाले लोगों में भी भ्रष्टाचार मौजूद है।

५७. खादी टोपी पर रोक

लखनऊ के मौलवी जफरुलमुल्क अलवी से, जो इस समय फतेहगढ़ जेल में कैद की सजा काट रहे है, निम्नलिखित पत्र पाकर मुझे वड़ी खुशी हुई। पाठकों को शायद याद भी न हो कि वह उन लोगों में से है जो दमन के सबसे पहले शिकार हुए थे। उनकी गिरफ्तारी की आशा नही की जाती थी, इसलिए उससे बड़ी सनसनी फैली थी। वह साहित्यिक रुचि के व्यक्ति है और विल्कुल निवृत्त जीवन विता रहे थे। अपनी रचनाओ में वह वडे निडर और सत्यवादी रहे हैं। इसीलिए उन्हे गिरफ्तार किया गया। उनके पत्र से पाठकों को ज्ञात हो सकेगा कि वह जेल मे कितनी सावधानी से[1] अपना कर्त्तव्य निभा रहे है। दूसरे वहुत से असहयोगी कैदियो की भाति वे भी जेल में अनुशासन वनाये रखने में अधिकारियों की सहायता कर रहे है। पत्र से स्वयं ही सारी वात स्पष्ट हो जायगी:

"मैंने यहां विताये पिछले पन्द्रह-महीनों के दौरान आपको पत्र लिखने से जान-बूझ कर अपने-आप को रोके रक्खा, क्योंकि मैं अपनी स्थिति से पूरी तरह सन्तुष्ट था।...

"लेकिन असहयोगी वन्दियों के जेल-जीवन से सम्बन्धित कुछ ऐसी बात पैदा हो गई है जिन्हें मैं आपके ध्यान में लाना चाहता हूं।...

"दूसरी बात कुछ ज्यादा गम्भीर है। दो असहयोगियों को, जिन्हें हाल में ही सादी कैद की सजा दी गई है और इसलिए उन्हें अपने निजी कपड़े पहनने की इजाजत है, गांधी टोपी पहनने से मना कर दिया गया।...

"मैंने सम्बन्धित अधिकारी से वात की और उसने मुझे विश्वास दिलाया कि व्यक्तिगत रूप से इस सम्बन्ध में उसका विशेष आग्रह नहीं है। वास्तव में उसने जिला मजिस्ट्रेट की इच्छा का पालन किया है।...

"जेल के नियमों के अनुसार सभी साधारण कैदी अपने निजी कपड़े ही पहनते है।...इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नई रोक का अभी हाल में ही आविष्कार किया गया है, तथा यह विल्कुल आपत्तिजनक और अपमानकारी है।...

"संयुक्त-प्रान्त के जेलों के इंस्पेक्टर-जनरल जल्दी ही इस जेल के मुआइने पर आने वाले है और यह मामला उनके सामने पेश किया जायगा। आशा है, वह इसे सन्तोषजनक रूप से हल कर देंगे, बशर्ते कि स्थानीय सरकार के किसी आदेश ने उनके विवेक को पहले ही न जकड़ लिया हो। यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही हमारा

---

१. यहां केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

यह कर्त्तव्य होगा कि हम इस आदेश को न माने, चाहे इसका जो भी परिणाम हो।"

खद्दर की टोपी के साथ मुश्किल असल में सिद्धान्त की है, जिस पर किसी प्रकार का आत्म-समर्पण नही किया जा सकता। सादी कैद की सजा वाले कैदियों को अपनी पोशाक पहनने का अधिकार है। इसलिए उन्हें अपनी टोपियों से वञ्चित करना उनका अपमान करना है। मुझे आशा है कि मौलवी साहव की आशा के अनुरूप इंस्पेक्टर जनरल ने इस समस्या को निपटा दिया होगा।

जेलों में सरकार से लड़ाई लड़नी पड़े, यह कोई खुशी की वात नही है। उन्हें तो ऐसे तटस्थ क्षेत्र की तरह माना जाना चाहिए जहां हर प्रकार की शत्रुता समाप्त हो जाती है। मृत्यु अनेक प्रकार के विवादों को समाप्त कर देती है। कैद भी एक प्रकार की मृत्यु है—नागरिक स्वतन्त्रता की। क्या यह सम्भव नहीं कि राजनीतिक वैर को जेल की दीवार के वाहर ही रहने दिया जाय? परन्तु मैं जानता हूं कि इस सरकार से जो भद्रता का केवल स्वांग भरती है, लोहे के सीखचों के पीछे भी सभ्य व्यवहार की आशा करना दुराशा मात्र है। हमसे स्वतन्त्रता का जो इतना वड़ा मूल्य लिया जा रहा है, उसके कारण यह हमें और भी अधिक प्रिय होगी।

इन कटु वाक्यों को लिखते समय मेरी अन्तरात्मा मुझसे पूछती है कि क्या मैं सरकार के साथ न्याय कर रहा हूं। क्या मैं नही जानता कि आगरा जेल में वन्दीगण खासा मजे का जीवन विता रहे है,? लेकिन तुरन्त ही मेरा मन उत्तर देता है—सभी जेल आगरा जेल नही है। जो कुछ दिया जाता है, वह छीन भी लिया जाता है। जिसे आसानी से रोका जा सकता है, उसे तो दवा ही लिया जाता है। पण्डित मोतीलाल जी मानो मुझसे कह रहे है, "मेरे आराम का महत्व ही क्या है, जव कि मेरे पड़ोसी को, सिर्फ इसलिए कि वह एक नामी वैरिस्टर नही है, वे मामूली सुविधाएं भी प्राप्त नही जो मुझे प्राप्त है।"

—अंग्रेजी। यं० इं०, २३।२।१९२२।]

• जेल भी एक प्रकार की मृत्यु है—नागरिक स्वतन्त्रता की।

५८. हमारी ढील

एक विश्वसनीय व्यक्ति ने मुझे लिखा है कि इलाहावाद और वनारस में स्वयंसेवकों की भरती के मामले में उनकी योग्यताओं का कोई ध्यान नही रखा गया है। मुश्किल से पचास स्वयंसेवक ऐसे दिखाई पड़ते है जो सिर से पैर तक

हाथ-कते खद्दर के वस्त्र पहने हों। कुछ ऊपर से खद्दर पहने रहते हैं, पर अन्दर विदेशी वस्त्र ही पहनते हैं। उसी पत्र-लेखक का कहना है कि कुछ स्वयंसेवक जव-तव शराव भी पी लेते हैं और अहिंसा में उनके विश्वास की कोई जांच नहीं की गई है और वहुत-से मामलो में तो स्थानीय कांग्रेस के पदाधिकारियो का उन पर कोई नियन्त्रण ही नही रहा है। अधिकृत रिपोर्ट के अनुसार संयुक्त प्रान्त में ६६,००० स्वयंसेवकों की भरती हुई है। यदि यह सच है कि वहां इतने सारे स्वयं-सेवक भरती किये गये हैं और उनमें से अधिकांश कांग्रेस की शर्तों का पालन नहीं करते तो उनका न होना ही ज्यादा अच्छा था। मैने जो शिकायतें की हैं, वे अपने-आप में वहुत भयंकर है किन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि मेरी कुल शिकायतें उतनी ही हैं, जितनी का मैने उल्लेख किया। कलकत्ता से भी ऐसा ही समाचार मिला है और वह भी एक विश्वस्त सूत्र से ही। उसका कहना है कि जेल जाने वालों में सैकड़ो ऐसे है जो कांग्रेस की प्रतिज्ञा के वारे में कुछ भी नही जानते, खद्दर नही पहनते, और इतना ही नहीं, वे भारतीय मिलों का ही नही वल्कि विदेशी वस्त्र पहिने हुए जेल गये है और अहिंसा की उन्हे तनिक भी शिक्षा नही मिली है। रोह-तक से एक व्यक्ति ने लिखा है कि उस जिले मे कई जगह के स्वयंसेवक कांग्रेस पदाधिकारियों के आदेश नहीं मानते और उनको वड़ी मुश्किल मे डाल देते हैं।

यदि पूर्वोक्त शिकायतों में दस प्रतिशत भी ठीक हों तो मुझे डर है कि शायद हम देश में आई इस आश्चर्यजनक जागृति के साथ कदम मिलाकर नही चल पाये हैं, और कांग्रेस में आनेवाले इन नये लोगों को भलीभांति संभाल नही पाये है। हो सकता है कि इसमे दोष किसी का भी न हो। आम सभाओ और स्वयसेवकों के वारे में सरकार ने धड़ाधड़ अधिसूचनाएं जारी करके हमारे लिए कठिन अवसर उपस्थित कर दिया था। उसकी चुनौती को स्वीकार करना था और वह की गई। नये और अनुभवहीन लोगों के सिर काम की जिम्मेदारी आती गई और उन्हें ऐसी कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा जिसमें जनता से दूर, जेल चले जाने वाले उन अनुभवी लोगों को भी काम करने मे कठिनाई महसूस होती।

इस दलील के पक्ष में तो वहुत-कुछ कहा जा सकता है। इसके लिए किसी पर दोषारोपण करने की आवश्यकता नही। लेकिन हमें वस्तुस्थिति की ओर से आंख न मूद लेनी चाहिए, वल्कि दृढ़ता और साहस के साथ उसका सामना करना चाहिए और हमें अपनी कमियां दूर करनी चाहिए। संसार में ऐसी किसी सेना को आज तक विजय नही प्राप्त हुई है जिसके सैनिकों में सैनिकों के आवश्यक गुण न हों। शान्ति-सेना में तो उसके सैनिकों के लिए निर्धारित गुणों की और भी अधिक आवश्यकता है। यह कहने से काम नही चलेगा कि आदर्श वहुत ऊंचा है। जो

अफसर निश्चित मान से कम दर्जे के लोगों को जान-बूझकर भरती करता है वह अपने को अप्रामाणिकता का दोषी बनाता है। यदि निश्चित शर्तों पर रंगरूट न मिलें, तो उसे प्रधान दफ्तर में सूचना दे देनी चाहिए, किन्तु उनका उल्लंघन तो उसे कदापि न करना चाहिए।

मैंने स्वयं ही पिछले साल दिसम्बर में कांग्रेस पण्डाल में मौजूद सभी श्रोताओं को कांग्रेस-द्वारा निर्धारित शर्तें पूरे विवरण के साथ पढ़कर सुनाई थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और कार्यसमिति ने उन पर सविस्तार चर्चा की थी और फिर मैंने कई औपचारिक चर्चाओं में विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों और दर्शकों को वे शर्तें समझाई थीं। इसलिए यह दलील नहीं मानी जा सकती कि शर्तें इतनी कठिन हैं कि उनका पालन नहीं किया जा सकता। प्रतिनिधियों को उनकी पूरी-पूरी जानकारी थी। लगभग ६००० प्रतिनिधि मौजूद थे। वे अपने-अपने क्षेत्रों के प्रतिनिधि थे, इसलिए शर्तें पूरी करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए थी।

यदि केवल ३०० स्वयंसेवक ऐसे हों जो शर्तों को खूब अच्छी तरह समझते हों और उनका पालन करते हों, तो उतने ही मेरे लिए काफी है, पर इसके बजाय यदि ३०,००० स्वयसेवक ऐसे हों जो न तो शर्तों को जानते हों और न उनकी परवाह ही करते हों, तो मुझे उनके भरोसे किसी लड़ाई का नेतृत्व करना स्वीकार न होगा। कारण स्पष्ट है। पहली स्थिति में मेरे पास ३०० ऐसे पक्के सिपाही होंगे जो मेरी सहायता करेंगे, जब कि दूसरी स्थिति में ३०,००० लोगों का भार मुझे वहन करना होगा। वे स्वयंसेवक नहीं होंगे, साधारण आदमी भर होंगे, जिनका वजन मुझे ढोना होगा। पहले ३०० स्वयंसेवक तो मेरी सहायता करेंगे, मेरी आज्ञा मानेंगे, लेकिन ३०,००० लोग मेरी आज्ञाओं का पालन नहीं करेंगे और उनका भार मेरे लिए असहनीय बन सकता है। अतएव हमें कार्यसमिति के तमाम प्रस्तावों के अनुसार पूरी तरह काम करने का निश्चय कर लेना चाहिए। ये प्रस्ताव हमारे उस त्वरित और व्यावहारिक कार्यक्रम के अभिन्न अंग हैं जिनकी समुचित पूर्ति पर ही भारत का भविष्य, खिलाफत और पंजाब के अन्यायों का प्रतिकार और स्वराज्य की प्राप्ति का दारोमदार है। यदि प्रस्तावों का पूरा-पूरा अमल न किया जाय तो उनका कोई मतलब ही नहीं होता। बीते हुए दिनों में, जब सरकार को समुचित हमारे प्रस्तावों पर वह अमल नहीं करती थी तब, हम शिकायतें करते थे। लेकिन अब शिकायत कौन करे, जब हम अपनी ही इच्छा से सोच-समझ कर स्वीकार किये गये अपने प्रस्तावों पर स्वयं ही अमल नहीं करते। इसलिए मैं कांग्रेस तथा खिलाफत से सम्बद्ध तमाम संगठनों को दृढ़तापूर्वक सलाह देता हूँ कि वे अपने-अपने क्षेत्रों में तमाम शर्तों के पूरे-पूरे पालन पर अवश्य ध्यान दें। यदि वे ऐसा

नही करेंगे तो आन्दोलन को खतरे में डालने की जिम्मेदारी उन्हीं पर होगी, किसी और पर नही। अपने भविष्य को विगाडना या वनाना हमारे ही हाथ में है।
--अंग्रेजी। यं० इं०, २३।२।१९२२।]

० अपने भविष्य को बिगाड़ना या वनाना हमारे ही हाथ में है।

५९. सरकार-द्वारा प्रतिवाद : जेलों में कोड़ों की मार

सम्पादक
'यंग इण्डिया'

प्रिय महोदय,

१७ फरवरी, १९२२ के अपने पत्र संख्या ४०२ सी के वाद अव मैं आपका ध्यान पत्र के रूप में लिखे गये श्री महादेव देसाई के उस लेख की ओर खीचना चाहता हूं जिसका शीर्षक आपने "जेलों की मार" दिया है और जिसे आपने गत १९ जमवरी के अपने अंक में छापा है। उस पत्र में कोड़े लगाने की छः घटनाओं का विवरण दिया गया है और भाव यह निकलता है कि उसका सम्वन्ध राजनीतिक कैदियों से था। उनमें से दो स्थानो पर कुछ व्यक्तियों के नाम दिये गये हैं। ये नाम हैं कैलाशनाथ और लक्ष्मीनारायण शर्मा। नैनी सेण्ट्रल जेल केसुपरिण्टेण्डेण्ट से पूछताछ की गई...मैं दावे से कह सकता हूं कि कैलाशनाथ या लक्ष्मीनारायण को, जिनके नाम आपके द्वारा प्रकाशित पत्र के लेखक ने दिये हैं, नैनी जेल में कभी कोड़े नहीं लगाये गये, और न उन्हें कोई अन्य सजा ही दी गई है। कैदी नवम्वर १४८८ कैलाशनाथ को, कठोर कारावास का दण्ड भोगते हुए भी काम से इन्कार करने पर केवल 'चेतावनी' दी गई थी।

लखनऊ
१८-२-१९२२

भवदीय
जे० ई० गोंडगे
प्रचार आयुक्त

सरकार का यह साफ इन्कार नितान्त अविश्वसनीय है। जो वक्तव्य विशुद्ध चरित्र वाले एक जन-सेवी द्वारा दिये गये है उनका खण्डन पूर्ण और निष्पक्ष जांच कराये विना कदापि स्वीकार नही किया जा सकता, विशेष कर जव यह खण्डन ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया हो जिनका उसमें कोई स्वार्थ निहित है। मैं

पाठकों का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाना चाहता हूं कि इलाहाबाद के 'इण्डिपेण्डेण्ट' में इस आशय का एक वक्तव्य छपा है कि जेल के एक अधिकारी ने श्री लक्ष्मीनारायण को कोड़े लगाने की बात एक कांग्रेसी के आगे स्वीकार कर ली है। सम्भव है कि जेल-अधिकारी का 'कोड़े लगाने' की बात से इन्कार करना वाक्छल ही हो। 'यंग इण्डिया' में जो पत्र छपा है, वह अनुवाद है। गुजराती में हण्टर लगाने, कोड़े लगाने और बेंत लगाने के लिए एक ही शब्द है। मै अधिकारियों की अनधिकृत शारीरिक दण्ड से इन्कार करने की आदत से वाकिफ हूं। क्या सरकार यह चाहती है कि यदि जेल के रजिस्टर में शारीरिक दण्ड की बात दर्ज नही है, तो लोगों को यह मान लेना चाहिए कि वह दिया ही नही गया? इस प्रतिवाद को छापकर निश्चय ही मेरी उद्विग्नता और बढ़ गई है। क्योंकि इससे अमानुषिकता जारी रखने और प्रतिवादों-द्वारा उस पर पर्दा डालने का इरादा जाहिर होता है। प्रचार-आयुक्त अपराधी पक्षों के ऐसे प्रतिवाद भेजकर, जिनकी प्रमाणों-द्वारा पुष्टि नही की गई है, अपने कर्त्तव्य का पालन ठीक तरह नहीं कर रहे है।

——अंग्रेजी। यं० इं०, २।३।१९२२।]

६०. देहरादून की घटना

सम्पादक
'यंग इण्डिया'

प्रिय महोदय,

. . .भारत सरकार की विज्ञप्ति के अपने प्रत्युत्तर में आपने मेरे कानूनी दमन के उदाहरण देते हुए सातवें स्थल पर इस प्रकार लिखा है—देहरादून में एक लड़के पर गोली चलाई गई और वहां एक सार्वजनिक सभा को जबरदस्ती तितर-बितर किया गया. . .

. . .इससे स्पष्ट ध्वनि यह निकलती है कि लड़के पर गोली सरकारी अधिकारियों ने चलाई थी। शायद आपका संकेत २४ दिसम्बर १९२१ की गोली चलने की उस घटना की ओर है जिसमें मैडन नाम के एक नौजवान यूरोपीय ने एक मुसलमान युवक पर गोली चलाई थी। मैडन सरकारी कर्मचारी नही है। दुर्घटना किसी निजी झगड़े के कारण हुई थी।. . .मैडन पर मुकदमा चलाया गया और भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३०७, ३२६ के अधीन उसे सेशन सुपुर्द कर दिया गया. . .

सार्वजनिक सभा को क्रूरतापूर्वक और जवरदस्ती तितर-वितर करने के आरोप के सम्बन्ध में, निःसन्देह, आपको गलत सूचना मिली है। तथ्य इस प्रकार है।

(१) स्वयंसेवकों के जुलूस देहरादून में एक भारी मुसीवत वन गये थे और उनका रवैया कई मौकों पर वहुत ही भड़काने वाला होता था।

(२) मजिस्ट्रेट की अनुमति से, पुलिस अधीक्षक ने कुछ इलाकों में उन पर पावन्दी लगा दी। ऐसा असहयोगियों के हित में ही किया गया था, क्योंकि जनता में कुछ लोग इस वारे में अधीर हो उठे थे।

(३) स्थानीय उग्रपन्थी पत्र 'गढ़वाली' ने इन प्रदर्शनों की वुद्धिहीनता और मूर्खता पर टीका-टिप्पणी की थी।

(४) स्वयंसेवकों ने पुलिस अधीक्षक के आदेश की अवज्ञा करने का निश्चय किया...।

(५) सभा को तितर-वितर करने के लिए वहुत ही थोड़ा वल प्रयोग किया गया था और किसी को चोट नही आई।...

भवदीय

जे० ई० गोडगे

लखनऊ १५ फरवरी

प्रचार-आयुक्त ने गोली चलने की घटना के सम्वन्ध में निश्चय ही मेरी गलती पकड़ी है। मुझे अधिक सावधान रहना और यह वताना चाहिए था कि गोली चलाने वाला कोई सरकारी कर्मचारी नही था। मै अव यह महसूस कर रहा हूं कि उसकी चर्चा ही अप्रासंगिक और सरकार के प्रति अन्यायपूर्ण थी। गोली चलने की इस घटना का गैर-कानूनी दमन से कोई सरोकार नही है। मैं इस गलती के लिए क्षमा माँगता हूं और अधिकारियो को यह विश्वास दिलाता हूं कि वह जान-वूझकर नही की गई थी।

परन्तु दूसरे प्रतिवाद का मुझ पर कोई प्रभाव नही पड़ सका। मैं पहले तो, वल-प्रयोग की आवश्यकता को अस्वीकार करता हूं, और दूसरे यदि मेरे संवाद-दाता को भेजे हुए वयान पर यकीन किया जाय तो जो वल-प्रयोग हुआ, वह, आवश्यकता से वहुत अधिक था। जनता इस सरकारी प्रतिवाद पर विश्वास नही कर सकती। मुझे आशा है कि गोली चलाने की घटना को लेकर मुझसे जो भूल हुई है उसका उपयोग सभा को जवरदस्ती तितर-वितर करने के विवरण को गलत या कम महत्वपूर्ण वताने मे न किया जायगा। गोली चलाने की घटना के विवरण में जो भूल हुई उसका मुख्य कारण तथ्यों का ठीक-ठीक न समझा जाना था।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २।३।१९२२।]

६१. भगवानदास के पत्र पर टिप्पणी

मुझे बाबू भगवानदास[1] का पत्र[2] प्रकाशित करते हुए खुशी हो रही है। कांग्रेस की स्वराज्य-सम्बन्धी योजना तो तभी बन सकती है जब कांग्रेस स्वराज्य लेने की स्थिति में आ जायगी। आज कोई नहीं कह सकता कि तब कांग्रेस क्या करेगी। पर मैंने बाबू भगवानदास को वचन दिया है कि मैं स्वराज्य में अपनी योजना निश्चित ही प्रकाशित करूंगा। मैं जानता हूं कि स्वराज्य-सम्बन्धी मेरी कल्पना के बारे में लोगों के दिमाग में तरह-तरह की धारणाएं हैं। मैं सिर्फ इतना चाहता हूं कि मुझे थोड़ा समय दिया जाय। तबतक मैं अपने सम्माननीय देशवासियों को यह यकीन दिला देना चाहता हूं कि पूंजीपतियों के खिलाफ मेरे मन में कोई बात नहीं है। मै हिंसा में विश्वास नही करता इसलिए मेरे मन में उनके विरुद्ध कोई योजना हो ही नही सकती। मै इतना अवश्य चाहता हूं कि पूंजीपति और मजदूर भी पूरी तरह ईमानदारी बरतें। मैं ऐसे पूंजीवाद का जरूर विरोध करूंगा जो मुट्ठी-भर लोगों के लाभ के लिए देश की सम्पत्ति का शोषण करने का साधन बनाया जाता हो। फिर चाहे वे पूंजीपति विदेशी हों या देश के। पर हम पहले से ही किसी योजना की कल्पना न करें।

——अंग्रेजी। यं० इं०, ८।५।१९२४।]

६२. गुरुकुल कांगड़ी में चर्खा

इस गुरुकुल के विद्यार्थियों को मैने उनके वार्षिकोत्सव के समय एक पत्र भेजा था। उसके उत्तर में एक पत्र कई दिन हुए मिला है। गुरुकुल के बालकों का प्रेम चर्खे पर कैसा है, यह प्रकट करने के लिए मैं पत्र का थोड़ा अंश पाठकों के सामने उपस्थित करता हूं:

"यद्यपि आपके सन्देश के लिए यह उत्तर बहुत ही अपूर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझते हैं—हम अपने काते हुए इस थोड़े-से सूत की श्रद्धापूर्ण भेंट आपके

---

१. (१८६९-१९५६), लेखक, दार्शनिक व काशी विद्यापीठ के आचार्य।

२. इसमें गांधी जी से अनुरोध किया गया था कि वह 'यंग इण्डिया'-द्वारा इस बात का संकेत दें कि भारत को किस प्रकार के स्वराज्य की जरूरत है।" पत्र के पूरे भाग के लिए देखिए परिशिष्ट।

पूज्य चरणो मे रखना चाहते है। यह सूत इसी राष्ट्रीय सप्ताह मे (७ अप्रैल से १३ अप्रैल तक) सात दिन तक चौवीस घण्टे अखण्ड सतचक्र चलाकर हमने इसी प्रयोजन के लिए कातकर तैयार किया कि हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार हो। इसमें (चतुर्थ श्रेणी के) हममें से छोटे वालकों का काता हुआ भी कुछ सूत अलग रखा है। यद्यपि यह अखण्ड चर्खा चलाकर नही काता गया है तथापि हम समझते हैं कि आप से प्रेम रखनेवाले ये छोटे वालक अवश्य ही आपके प्रेमपात्र हैं। अतः इनका प्रेमपूर्वक काता हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताह का सूत भी आपके चरणार्पित होने के योग्य ही है।"

—हि० न० जी०, १।६।१९२४।]

६३. फिर वारावंकी के वारे में

वारावंकी-सम्वन्धी मेरी टिप्पणी पर मुझे दो ऐसे पत्र मिले है, जिनसे उस विषय पर वहुत प्रकाश पड़ता है। उनमें एक मुसलमान सज्जन का लिखा हुआ है और दूसरा हिन्दू सज्जन का। यद्यपि वे विल्कुल स्वतन्त्र रूप से अलग-अलग लिखे गये है तो भी उनमे जिन तथ्यो का विवेचन है उनके वारे में पत्र-लेखक एक मत है। दोनों में कुछ नई वातें है। दोनों निष्पक्ष दृष्टि से लिखे हुए दिखाई देते है। मैं उन चिट्ठियों को इसलिए प्रकाशित नही कर रहा हूं कि उनके प्रकाशन से कोई लाभ नही होनेवाला है। जो वाते उनमें वताई गई हैं, उनसे लेखकों को छोड़कर किसी की नेकनामी नही होती। फिर भी एक वात विल्कुल साफ है कि नगरपालिका पर कब्जा करना वहां के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्य का कारण वन गया है। यदि असहयोग की वात जाने दे तो भी मुझे तो विल्कुल साफ दिखाई देता है कि जहां हिन्दुओं और मुसलमानों में हार्दिक एकता नहीं, असहयोगी फिर वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, नगरपालिका या जिला वोर्डो में प्रवेश न करें। जहां एक पक्ष उनमें जाने के लिए तैयार हो, वहां भी दूसरे पक्ष के लोग उससे दूर ही रहें। कहते है, नगरपालिका का यह अशोभन विवाद शुरू होने से पहले तक दोनों जातियों के लोग पूरे मेल-मिलाप के साथ रहते थे। पर अव इस चुनाव के कारण केवल नगरपालिका के प्रतिपक्षियों के वीच ही नही वल्कि सारे शहर में तनाव फैल गया है। मुझे पूरी आशा है कि वारावंकी नगर अपनी पुरानी साम्प्रदायिक सद्भावना को फिर से स्थापित करके अपने खोये हुए यश को पुनः प्राप्त कर लेगा।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १०।७।१९२४।]

६४. पाठ्य-पुस्तकों की जब्ती

संयुक्त प्रान्त की सरकार ने इस मास की १५ तारीख को निम्नलिखित विज्ञप्ति जारी की है:

"१८९८ के पांचवे कानून के खण्ड ९९ क में दिये गये अधिकारों के अनुसार सपरिषद् गवर्नर घोषित करते हैं कि पण्डित रामदास गौड़-द्वारा लिखित और वैजनाथ केड़िया हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, १२६ हैरीसन रोड कलकत्ता---द्वारा प्रकाशित और वणिक प्रेस, कलकत्ता में मुद्रित पाठ्य-पुस्तक सं० ३, ४, ५ और ६ की तमाम प्रतियां सम्राट की ओर से जब्त कर ली गई हैं। इसके सिवा इन पाठ्य-पुस्तकों की किसी अन्य स्थान पर छपी दूसरी तमाम प्रतियां या उनमें से ली गई सामग्री भी जब्त कर ली गई हैं क्योंकि स्थानिक सरकार की राय है कि इन पाठ्य-पुस्तकों में राजद्रोहात्मक सामग्री है, जिसका प्रकाशित करना भारतीय दण्ड-विधान के खण्ड १२४ क के अनुसार दण्डनीय है।"

ये पाठ्य-पुस्तकें कोई तीन साल से जनता के सामने है। राष्ट्रीय शालाओं में उनका विस्तृत प्रयोग होता है। वे नगर-पालिकाओ की शालाओं में भी चलती रही है। इसलिए प्रान्तीय कांग्रेस कांमेटी ने उचित ही आचार्य रामदास गौड़ को इस पर वधाई दी है, इन पुस्तकों को निर्दोष बताया है और इस सरकारी हुक्म के होते हुए भी उनको बनाये रखने की सिफारिश की है। इससे लोगो के इस भ्रम का निराकरण हो जाता है कि अब सरकार ने असहयोगियों के खिलाफ मनमानी कार्रवाई करने की नीति छोड़ दी है। सरकार का कथन है कि इन पुस्तकों मे ऐसे पाठ है जिनसे भारतीय दण्ड-विधान का खण्ड १२४ क भंग होता है। वह लेखक पर मुकदमा चला कर उन्हें सजा दिला सकती थी। तभी उसका इन पुस्तकों को जब्त करना न्यायोचित भी कहा जा सकता था। मैने इन पाठ्य-पुस्तकों के सभी पाठ पढ़ लिये है; मुझे तो वे सरकारी दृष्टिकोण से भी बिलकुल निरापद मालूम होती है। सरकार का लोगों के प्रति कम-से-कम इतना कर्त्तव्य तो था ही कि वह वता देती कि इन पुस्तकों में आपत्तिजनक सामग्री क्या है, जिससे लोग इतना मानकर भी कि सरकार मनमाने अधिकार का निस्सन्देह उपयोग कर सकती है, इस वात पर विचार कर सकते है कि सरकार का यह आदेश न्यायपूर्ण है या अन्यायपूर्ण। परन्तु मौजूदा हालत में तो इस नतीजे पर पहुंचे विना नही रहा जा सकता कि सरकार पाठ्य-पुस्तकों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को पसन्द नही करती और अनुचित रीति से अपने उन प्रतिपालित लोगों को फायदा पहूँचाना चाहती है जिनकी पाठ्य-पुस्तकें आचार्य गौड़ की पाठ्य-पुस्तकों की प्रतियोगिता में पीछे पड़ गई होंगी।

यदि पुस्तकें सचमुच राजद्रोहात्मक होतीं तो उसके लम्बे-चौड़े खुफिया विभाग की ओर से यह बात जरूर उसके सामने पेश कर दी गई होती। इतने दिनों के बाद पुस्तकों का जब्त किया जाना मेरे इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है। मैं संयुक्तप्रान्त की सरकार को आमन्त्रित करता हूं कि वह अपने इस फैसले के सम्पूर्ण कारण सर्वसाधारण के सामने पेश करे। मुझे यह जानकर खुशी होगी कि मैंने जो निष्कर्ष निकाला है वह ठीक न था। मैं समिति के सभापति को भी सलाह देता हूं कि वह सरकार से इसके कारण पूछें और यदि समिति को सरकार का फैसला ठीक दिखाई दे तो मैं आचार्य रामदास गौड़ को सलाह दूंगा कि उन पुस्तकों में आवश्यक संशोधन कर दें या उसकी बिक्री बन्द कर दें।
——अंग्रेजी। यं० इं०, ३१।७।१९२४।]

६५. तुरन्त कार्रवाई[1]

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्तप्रान्त की सरकार को प्रोफेसर रामदास गौड़ की हिन्दी पाठ्य-पुस्तक के जब्त किये जाने के बारे में नीचे लिखा पत्र भेजा है:

"संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का ध्यान संयुक्त प्रान्तीय सरकार द्वारा जारी किये गये उस नोटिस की ओर आकर्षित किया गया है जिसमें सरकार ने १८८८ के अधिनियम ५ के खण्ड ९९ क के अन्तर्गत प्रोफेसर रामदासगौड की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों की संख्या ३, ४, ५ और ६ की सभी प्रतियों और उनके सभी उद्धरणों को भी प्रतिबन्धित घोषित कर दिया है। ये पुस्तकें कुछ वर्षों से बहुतेरी पाठशालाओं में प्रचलित हैं। इन पुस्तकों में मुख्यतया हिन्दी के विशिष्ट लेखकों के लेख ही संकलित है। यह समझना कठिन है कि भारतीय दण्ड संहिता के खण्ड १२४ क के अनुसार पुस्तकों के कौन-कौन अंश या अनुच्छेद आपत्तिजनक माने गये हैं। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊंगा यदि आप यह बतलाने की कृपा करें कि इन पुस्तकों के कौन से अनुच्छेद या अंश सरकार की राय में आपत्तिजनक हैं, जिनके कारण वे किताब जब्त की गई हैं। हमारी प्रान्तीय कमेटी इस पर गौर करेगी और यदि उसे यह विश्वास हो जायगा कि ये अंश वास्तव में अनुचित हैं तो वह प्रोफसर रामदासगौड़ को निश्चित रूप से सलाह देगी कि वह अपनी पुस्तकों से उन हिस्सों को निकाल

१. देखिए 'पत्र : जवाहरलाल नेहरू को', २७।७।१९२४।

दें। मुझे बड़ी खुशी होगी, यदि आप कृपा करके इस पत्र का उत्तर जल्दी देंगे, क्योंकि ये पुस्तकें मेरी कमेटी से सम्बन्ध रखनेवाली कितनी ही पाठशालाओं में चल रही हैं।"

पण्डितजी ने एक ऐसा ही पत्र संयुक्तप्रान्त के शिक्षा-विभाग के मन्त्री के नाम भी भेजा है। जनता आगे की कार्रवाई को उत्सुकता के साथ देखेगी। इसी बीच पुस्तक-प्रकाशक ने इस हुक्म को रद्द कराने के लिए कानूनी कार्रवाई शुरू कर दी है। ये पुस्तके हजारो की संख्या में बिक चुकी है। ऐसी हालत मे इन तमाम पुस्तकों को जब्त करते फिरना सरकार के लिए कठिन होगा। लड़के-लड़कियां अपने आप उन्हें नष्ट कर दे तो बात दूसरी है। अभी तक तो इस सिलसिले में कोई कार्रवाई नही हो रही है। बल्कि पुस्तकें अभीतक ज्यों की त्यों पाठशालाओं में चल रही हैं। लेकिन सरकार के पास तो बहुतेरी तरकीबें होगी, और वह मौका पाते ही लोगों को गिरफ्त मे ले लेगी जिनके पास ये जब्तशुदा पुस्तकें मिलेंगी। लोग इस बात को जानकर खुश होंगे कि पुस्तकों के विद्वान लेखक ने अपना सर्वाधिकार नही रक्खा है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १४।८।१९२४।]

६६. काशी में कताई

अध्यापक रामदास गौड़ काशी की म्युनिसिपल पाठशालाओं में चर्खे का प्रचार कर रहे है। उन्होने अपने काम की रिपोर्ट भेजी है, जिससे जाना जाता है कि उन्होंने किस प्रकार वहां लड़कों में चर्खे का प्रवेश कराया। पहले तो उन्होंने ४० पुराने चर्खे और धुनकने के धुनहे आदि खरीदे। फिर उन्होने १३ शिक्षकों को सूत कातना सिखाया। उन शिक्षकों ने दूसरे साथी शिक्षकों को बताया। इस तरह कुछ ऊपर एक महीने में १७५ शिक्षक खासे कताई के उस्ताद बन गये। गौड़जी की धर्मपत्नी और कन्या ने इसमें इनकी सहायता की। इस पर गौड़जी अभिमान के साथ कहते है कि हर एक पाठशाला में कोई चर्खा-मास्टर अलहदा रखखा जाता तो कम से कम १०,०००) साल खर्च उठाना पड़ता. . .कोई ५-६ सप्ताह तक मैंने अपना सिर्फ ४ घण्टा समय मौजूदा शिक्षकों को कातना सिखाने में लगाया और एक समस्या हल हो गई। आगे आप कहते है—"अब ऐसा कोई शिक्षक नही रह गया है जो कातना या धुनकना न जानता हो और आगे ऐसे किसी स्त्री या पुरुष को शिक्षक की जगह नही दी जायगी, जो धुनकना और

कातना न जानता होगा।" गौड़जी अपनी आगे की तजवीज इस तरह बयान करते है—

"जब यह कठिनाई हल हो गई तब मैंने बोर्ड में एक ब्यौरेवार तजवीज पेश की कि २६ अपर प्राइमरी स्कूलों में ३५० चर्खे दाखिल किये जायं, कम-से-कम ७०० लड़कों को धुनकना और कातना सिखाया जाय, ६ कर्घे बुनाई के लिए जारी किये जायं, एक बुनाई-शिक्षक, एक निरीक्षक, एक बढ़ई और इतना कपास दिया जाय जिससे हर विद्यार्थी आध घण्टे तक रोज काम कर सके। इसके लिए ६०००) प्रति वर्ष दरकार है। पर बोर्ड इस पर पशोपेश में पड़ गया और दो महीने तक इस सवाल को आगे टालता रहा। आखिर पिछली २६ जुलाई को बोर्ड ने एक साल के लिए ३०००) मंजूर किया। ऐसी हालत में मुझे कपास की मद प्रायः बिल्कुल निकाल देनी पड़ी और दूसरे मदों में भी इस तरह काट-छांट करनी पड़ी जिससे काम छोटे पैमाने पर मजे में चल सके। अब मैं सिर्फ ३०० चर्खे और ६०० चर्खे आश्रम के नमूने के मंगा रहा हूं। आश्रम में मैंने जो कुछ देखा उसके अनुसार कुछ थोड़ा सुधार कर देने से, मैं उम्मीद करता हूं कि एक हजार लड़के-लड़कियां कातना सीख जायंगे और रोज चर्खा कातकर अच्छा सूत निकाल सकेंगे। अब सिर्फ चर्खों के बन जाने की इन्तजारी है; वे तो बनते ही बनते बनेंगे। पर इस बीच में लड़के-लड़कियों के मां-बाप और पालकों से प्रार्थना कर रहा हूं कि वे कपास का इन्तजाम अपने घर से कर दिया करें। चर्खा वगैरह चीजें मैं दूंगा; जरूरी बात मैं बता दिया करूंगा और वे सिर्फ कपास का इन्तजाम करेंगे। सूत के मालिक वे रहेंगे और अगर वे चाहें तो हमें देकर खादी बनवा लेंगे। मैं सिलाई सिखाने का भी इन्तजाम कर रहा हूं जिससे खादी की सिलाई सस्ती हो जाय।"

लोग इस प्रयोग को दिलचस्पी और हमदर्दी के साथ देखेंगे। मुझे आशा करनी चाहिए कि अन्य शिक्षक भी प्रोफेसर रामदास गौड़ का अनुकरण करेंगे।

—अंग्रेजी। य० इं०, ४।९।१९२४। हि० न० जी० ७।९।१९२४।]

६७. दो टिप्पणियाँ

१. इलाहाबाद और...

मेरे उपवास और एकता परिषद के होते हुए भी इलाहाबाद और जबलपुर में फिसाद और मारपीट हुई है। यह खयाल तो किसी ने भी न किया था कि

मानो परिषद अथवा उपवास के जादू से तमाम दंगे एकदम बन्द हो जायंगे। परन्तु मैं इतनी आशा जरूर रखता हूं कि पत्रकार लोग ऐसे दंगों के बारे में कलम रोक कर और पक्षपात छोड़कर लिखेंगे। मैं यह भी आशा रखता हूं कि दोनों जातियों के और तमाम दलों के अगुवा उनके असली कारणों को खोज निकालने में, उनका उपाय करने में और सर्व-साधारण के सामने सही व्यौरा प्रकाशित करने मे परस्पर सहयोग करेंगे।

२. गुरुकुल काँगड़ी

वाढ़ ने तो इस साल चारों ओर सत्यानाश कर मारा है। गुरुकुल भी, जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के धैर्य और आत्म-त्यागपूर्वक किये गये प्रयत्नों का कीर्ति-चिह्न है, गंगाजी की वाढ़ के शिकार होने से नही वचा है। उनके तथा उस महान संस्था के व्यवस्थापक और विद्यार्थियों के साथ मेरा हृदय गहरी सहानुभूति प्रदर्शित करता है। मुझे आशा है कि चन्दे के लिए की गई अपील का उत्तर लोग तुरन्त ही उदारतापूर्वक देंगे।

६८. किसे राजविद्रोहात्मक कहें?

अध्यापक रामदास गौड़ की पोथियों में जो कुछ अन्य प्रचलित पुस्तकों में है, उसके सिवा और कुछ नही है, यह मानकर भी इलाहाबाद हाईकोर्ट ने उन्हें राजद्रोहात्मक कहा है। मुद्दई को उनसे ३००) खर्च भी दिलाया जायगा। ये पोथियां छपने के ३ वर्ष वाद जब्त की गई है। मैं इतना तो मानता हूं कि केवल समय वीत जाने के कारण सदोष वस्तु निर्दोष नही हो जाती। किन्तु यह पूछना भी तो अनुचित नही है कि सरकार ने इस दोष को इतने दिनों तक अछूता ही क्यों रहने दिया? सरकार ने ऐसा समय चुना है जव कि असहयोग घटती पर है। यह अनुमान अनुचित नहीं है। असल प्रश्न यह उठता है कि अध्यापक रामदास गौड़ अव क्या करें या वे माता-पिता व स्कूल, जो उन पोथियों का व्योहार करते है, क्या करें? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज काम नही है। हम लोग असहयोग मुल्तवी करने जा रहे है और इस कारण सविनय भंग भी। इसलिए अव इस तरह के काम महासभा से नैतिक समर्थन नही पा सकते। प्रत्येक व्यक्ति या संस्था अपने दायित्व पर ही कुछ कर सकती है। फैसले मे पोथियों के उद्धृत अंशों के तीन भाग किये गये है:

१. वे अंश जो सरकार के प्रति घृणा उत्पन्न करानेवाले कहे जाते हैं।

२. वे अंश जो पश्चिमी सभ्यता और इसलिए यूरोपियनों के प्रति घृणा उत्पन्न करानेवाले कहे जाते हैं।

३. वे अंश जो भिन्न-भिन्न धर्मावलम्वी मनुष्यों के प्रति घृणा उत्पन्न करानेवाले कहे जाते है।

पहले तो मैं यह कहूंगा कि पूर्वापर सम्बन्ध तोड़ कर जहां-तहां से उद्धृत अंशों के सहारे कोई भी पुस्तक आपत्तिजनक बताई जा सकती है। जहां तक मुझे मालूम है जजो को इसके सिवा और प्रकार का मसाला नही मिला था। दूसरे यो तो प्रायः सब भारतीय समाचारपत्र राजद्रोही कहे जा सकते हैं, क्योकि वे कानून के द्वारा स्थापित सरकार के प्रति (पद्धति के विरुद्ध, मनुष्यों के विरुद्ध नही) अप्रीति का प्रचार करते है। प्रत्येक भारतवासी ने इस सरकार के खिलाफ़ अपनी आवाज उठाई है। और वे या तो उसका सुधार करना वा मिटा ही देना चाहते है। जहां तक पश्चिमी सभ्यता से सम्बन्ध है, हिन्दू धर्मग्रन्थो मे से उसके निन्दा और निषेधात्मक बड़े-बड़े भयंकर वचन पेश किये जा सकते हैं। मेरी पुस्तिका, जिसमे से पश्चिमी सभ्यता-सम्बन्धी अंश उद्धृत किये गये हैं, लड़कों को वेधड़क दे दी जाती है। सम्भव है कि मुझसे निन्दा करने में भूल हुई हो। यह किसी जाति के प्रति घृणा का प्रचार करने के लिए नही, बल्कि प्राणिमात्र के प्रति प्रीति पैदा करने के लिए लिखी गई थी। मै ऐसा एक भी उदाहरण नही जानता कि एक आदमी पर भी उसके पढ़ने से बुरा असर हुआ हो। देश-विदेश सभी जगह बहुत-सी भाषाओं में उसके अनुवाद हुए है। बम्बई सरकार ने एक बार उसे जब्त कर लिया था। अब वह जब्ती यदि भाव में नही तो व्यवहार में हट गई है। यह तो आश्चर्यजनक है कि अध्यापक रामदास गौड़ की तो सजा हो और मै अछूता ही छोड़ दिया जाऊं? तीसरे इल्जाम के विषय में तो मै केवल एक ही वचन पाता हूं। मुझे उसके पूर्वापर सम्बन्ध का पता नही है। मुझे यह तो स्पष्ट जंचता है कि केवल उस एक अंश के लिए पोथियां जब्त नही हुई हैं। मै यह जानता हूं कि अध्यापक महोदय की अन्तरात्मा शुद्ध है। उनका हेतु किसी व्यक्ति के प्रति घृणा उत्पन्न कराना नही है। मै यह भी जानता हू कि पुस्तको की बिक्री से उन्होने कोई लाभ नही उठाया है। यदि मै उनके स्थान में होता तो पुस्तको की बिक्री यथावत् जारी रहने देता। सरकार ने उनकी तमाम प्रतियां तो अवश्य ही जब्त कर ली होंगी किन्तु जहा वे पोथियां पहले से ही पढ़ाई जा रही हैं, वहां मै तो उन्हें वैसे ही पढाने देता, जबतक कि लड़कों के माता-पिता या पाठशालाओ के संचालक कोई दूसरा निश्चय न जाहिर करते।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १६।१०।१९२४। हि० न० जी०, १९।१०।१९२४।]

६९. अवध के किसान

फैजावाद के श्री मणिलाल डाक्टर ने मेरे पास प्रकाशनार्थ यह पत्र भेजा है:

"मैं हजारों किसानों के प्रार्थना करने पर गया से फैजाबाद लाया गया हूं।

"बिहार में, चम्पारन में मेरा भ्रम टूट चुका है। खेतों में काम करने वाले मजदूरों के लिए भारत में कोई सुख की सेज नहीं है। कुलियों को असम, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद, बर्मा और दूर-दूर के उपनिवेश अपनी ओर खींच सकते हैं; इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। अवध की हालत तो और भी खराब है। यहां मांग है कि "हमें विदेशी शासन से मुक्त होने दो तब मजदूरों को अपना प्राप्य मिल जायगा।" मुझे विश्वास नहीं होता कि ब्रिटिश सरकार की जगह जिन लोगों के आने की सम्भावना है, वे मजदूरों और किसानों के साथ न्याय करेंगे।

"कुछ भी हो, जिस स्थिति में मैं काम करने के लिए तैयार हुआ हूं, वह इस प्रकार है: मजदूरों और किसानों को भारतीय पूंजीवादियों या ब्रिटिश सरकार के हाथों का खिलौना नहीं बनना चाहिए। उन्हें अपने हितों की देखभाल स्वयं करनी चाहिए और जहां तक उनके हितों में हो केवल वहीं तक उनको 'सहयोग' या 'असहयोग' करना चाहिए। उन लोगों में चर्खे का प्रचार अवश्य किया जाना चाहिए और यदि वे साल के खाली महीनों में मुकदमेबाजी करने के बजाय अपने कपड़े बनाने के लिए सूत कातें तो ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि उनकी आजीविका तो वर्षा के ४ महीनों पर पूरी तरह निर्भर है; उष्ण कटिबन्ध के उपनिवेशों की तरह नहीं, जहां साल-भर वर्षा होती है।

"भारत एक अच्छा देश है, लेकिन उसे देशी और विदेशी लोगों ने मिलकर नरक बना दिया है। हे भगवान! यह दशा कबतक रहेगी?"

मुझे आशा है कि श्री मणिलाल डाक्टर को गांवों में किसानों के हर घर में चर्खा पहुँचाने और ऐसा करते हुए उन्हें उन लोगों की आर्थिक स्थिति की पूरी-पूरी जाँच करने में सफलता मिलेगी। हमें जरूरत इस बात की है कि हम भारत के कुछ गांवों को चुनकर उनका धैर्यपूर्वक और ठीक-ठीक अध्ययन करें। जैसा कि डाक्टर मैन ने[1] दक्षिण के कुछ गांवों के सम्बन्ध में कुछ साल पहिले किया था और उसकी रिपोर्ट प्रकाशित की थी।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १९।३।१९२५।]

[1. सर हैराल्ड एच० मन, सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्री, तथा समाजसेवी। बम्बई प्रान्त के कृषि-संचालक।

७०. मेरठ में कताई

चौधरी रघुवीर नारायण सिंह मेरठ से लिखते हैं कि "मैंने वेलगांव में ५०० नये सदस्य बनाने का वादा किया था, पर मैं अपने छोटे भाई की भारी बीमारी और अन्त को मृत्यु के कारण मीयाद के अन्दर उसे पूरा न कर सका। पर अब बा० ज्योतिप्रसाद तथा दूसरे मित्रो की सहायता से ६४७ सदस्य बना पाया हूं जिनमें २०० खुद कातनेवाले है।" हा, यह तो जितना कुछ हुआ ठीक है पर मैं चौधरी जी को याद दिलाता हूं कि उन्होने तो ५०० खुद कातनेवाले सदस्य बनाने का वादा किया था। आशा है कि वह तथा उनके साथी इस बात को ध्यान में रख कर तब-तक दम न लेंगे जबतक उनकी संख्या पूरी न हो जाय। चौधरीजी यह भी लिखते है कि हम यहां मर्दो-औरतों की कताई की प्रतियोगिताएं भी रखते रहते हैं और लोग उनमे खूब हिस्सा लेते है। सब मिला कर वह कहते है कि यद्यपि तरक्की धीरे-धीरे हो रही है पर वह मजबूत होती जा रही है। कताई और बुनाई सिखाने की भी व्यवस्था उन्होंने की है।

—हिं० न० जी०, २१।५।१९२५।]

७१. कानपुर की महासभा

कानपुर की महासभा[1] को अब बहुत दिन नही रहे हैं। स्वागत समिति के सामने बहुत-सी आकस्मिक बाधाएं उपस्थित हुई थी। समिति को महासभा के लिए भूमि प्राप्त करने में ही विघ्न का सामना करना पड़ा था। लेकिन अब वह दूर हो गया है। लेकिन अब जो समय बाकी है उसमें सम्पूर्ण तैयारी करने के लिए बहुत से स्वयंसेवकों की और धन की आवश्यकता होगी। मुझे आशा है कि स्वागत- समिति को यह मदद भी मिल जायगी और शीघ्रतापूर्वक काम हो जायगा।

मुझे आशा है कि कानपुर की स्त्रियां इसबात को ध्यान में रक्खेगी कि महासभा के लम्बे और विविध इतिहास में पहिले-पहल भारत की एक सुपुत्री को उसका प्रमुख-पद प्राप्त होगा। मुझे आशा है कि बहुत-सी स्त्रियां भी इस समय महासभा की स्वयंसेविकाए बनने के लिए तैयार होगी और वे उन स्त्रियो की, जिनकी कि

---

१. इण्डियन नेशनल कांग्रेस से अभिप्राय है।

इस समय पहिले के बनिस्वत अधिक संख्या में महासभा में आने की आशा है, सेवा करने के लिए और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार रहेंगी।
—न० जी०, हि० न० जी०, २९।१०।१९२५।]

७२. गुरुकुल और खादी

श्री जमनालाल जी हरद्वार से लिखते है—"दो दिन गुरुकुल कांगड़ी में रहा। वहां मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। यहां यह ख्याल हुआ कि खादी के वायुमण्डल का अच्छा विस्तार किया जा सकता है। श्री रामदेवजी, देवशर्माजी, सत्यकेतु जी, सेठ जी आदि बहुत से महाशय खादी और चर्खे के प्रचार के पक्ष में हैं। बहुत ही थोड़ा प्रयत्न करने से चर्खा-संघ के कुछ सभासद बना सका हूं, उनके नामों की सूची इसके साथ है। मुझे आशा है कि दूसरे और भी बहुत से सभासद होंगे—गुरुकुल में आपके सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा और भक्ति का परिणाम अच्छा है—गुरुकुल कन्या महाविद्यालय देहली में भी चर्खा शुरू कर दिया गया है और दिन-प्रतिदिन उसमें प्रगति होने की आशा है।"

जमनालाल जी की भेजी हुई सूची में ४० नाम है। नाम तो यहां नही दिये जा सकते परन्तु उसका पृथक्करण अवश्य ध्यान देने योग्य है। उसमें प्रथम सभासद तो गुरुकुल के आचार्य है, पांच उपाध्याय है, सात नये स्नातक और वेदालंकार तथा विद्यालंकार उपाधिभूषित है। पांच चतुर्दश श्रेणी के, चार द्वादश श्रेणी के और पांच एकादश श्रेणी के ब्रह्मचारी हैं, गुरुकुल में दो बहनें सभासद हुई है और देहली में तीन—श्रीमती विद्यावती सेठी (बी० ए०) आचार्या कन्यागुरुकुल और दूसरी दो अध्यापिकाएं श्रीमती सीतादेवी और चन्द्रावती।
—न० जी०। हि० न० जी०, १५।४।१९२६।]

७३. पण्डित नेहरू और खादी

टाइम्स आव इण्डिया की दृष्टि में प० मोतीलाल जी कभी वड़े आदमी नही हुए। उनसे जो अभी-अभी अपराध हुआ है वह यह है कि उन्होंने प्रयाग में खादी की फेरी की। वहां कुछ साल पहले तो वे अपनी मोटर के विना शायद ही दिखाई देते थे परन्तु लेखक की अपनी सुन्दर भाषा में भारत मे भी इस वात को स्वीकार

किया जाना चाहिए कि पण्डितजी स्वय गवे बन रहे है। यह चाहने योग्य है कि बहुतेरे नेता पण्डित जी का अनुकरण करे और टाइम्स आव इण्डिया ने पण्डित-जी को जो ऐसी विनय (?) से भरी हुई उपाधि दी है, उसको प्राप्त करें। जिस समय विरोधियो की ओर से शाप मिल रहा हो उस समय तो साधारणतया आनन्द ही मानना चाहिए परन्तु यदि वे हमारी प्रशंसा करे तो हमे उनसे सचेत रहना चाहिए। ग्रीक लोग जब भेट या पुरस्कार लाते तभी रोमन लोग उनसे डरने लगते थे।

महासभा, खादी और महासभा के ध्येय की सम्पूर्ण निष्फलता और महासभा के समर्थकों में एक भी युक्तिपूर्ण राजनीतिक विचार का अभाव इलाहाबाद से सम्पूर्ण उत्साह के साथ भेजे गये इस तार से साबित हो जाता है!

लेखक आगे चलकर कहते है—

"यदि ब्रिटिश जनता को यह समाचार मिले कि लार्ड बरकनहेड यूनियन जैक का जाकिट पहनकर ट्राफलगर स्क्वायर के सिंह के नीचे खड़े रह कर टोरी दल के नीले फीते या फूल बेच रहे हैं; श्री बाल्डविन पिकेडली में ब्रिटिश खिलौने बेच कर साम्राज्य के उद्योग की उन्नति कर रहे हैं; श्री रैमसे मैकडोनल्ड सन का जांघिया और मफलर पहन कर लाइम हाउस में कारीगरों को लाल झण्डे दे रहे हैं और क्लोडे साइड के बोल्शेविकों ने क्लीडेसाइड में उनके चिह्न हथौड़े और हंसिया को बेचने के लिए एक दूकान खोली है तो सब लोग इस पर से यही नतीजा निकालेंगे कि उनके नेता सब पागल हो गये हैं। इस पर से सहज ही यही अनुमान निकाला जा सकता है कि पण्डित मोतीलाल जी और रंगा स्वामी आयंगर जैसे खादी की फेरी करनेवाले प्रसिद्ध पुरुष पागल हो गये हैं।"

लेखक ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह केवल अपमानकारक ही नहीं है परन्तु धोखा देनेवाली भी है। खादी मे और ब्रिटिश टोरी दल के फीते बेचने में तुलना ही कैसे सम्भव हो सकती है? चाहे ठीक हो या गलत हो, हजारों भारतीयों की दृष्टि में खादी शिक्षित और अधिकारसम्पन्न वर्ग और समुदाय में सच्चा सम्बन्ध कराने के लिए एक चिह्न है और उससे जन-समुदाय को, जिसे ब्रिटिश सरकार की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए चूसा जाता है, अधिकार-सम्पन्न वर्ग, जिसके जरिए लाखो मूक किन्तु मिहनत करनेवाले लोगों पर वे राज्य करते है, बदले मे कुछ लौटा भी सकता है क्योंकि नरमदल के राजनीतिक नेताओं ने खादी और उससे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातों का तिरस्कार करने का रिवाज डाला है इसी से तो ऐसा अपमान सम्भव हो सका है। यह किसे याद नही है कि जब लड़ाई

शुरू हुई, जवान-बुड्ढे स्त्री-पुरुष, बड़े-छोटे अर्थात् जो लड़ाई के सैनिक नही हुए थे अथवा जिन्हें सैनिक नही बनाया जा सकता था, उनसे जुदे-जुदे अस्पतालों में आये जख्मी सैनिको के लिए कपड़े सीने की आशा रक्खी गई थी और सत्य ही उन सब लोगों ने वे कपड़े सिये भी थे? उस समय लोग इस छोटी सी सेवा करने के लिए आपस में स्पर्धा भी करते थे और जिसे सीना नही आता था उसे यदि उसका कोई पड़ोसी सीना सिखा देता तो वह उसका उपकार मानता था। ब्रिटिश प्रजा के ऊपर जो बड़ी भयंकर आफ़त आई थी उसके विचार से छोटे-बड़े का सब खयाल दूर कर दिया गया था। मैं बड़े साहस के साथ यह कह सकता हूं कि जो लोग साधारणतया सीने का या तो ऐसा ही दूसरा कोई काम नही करते है उनको यदि सीने का या ऐसे ही दूसरे कपड़ों का काम करना उस समय आवश्यक समझा जाता था और उनका देशभक्तों में शुमार होता था तो भारतीयों के लिए विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करके खादी पहनना और इस प्रकार कताई के उद्योग को, जो अकेला ही ऐसा एक है कि जिसे भारत के लाखों-करोड़ों लोग अपना सकते है, प्राप्त करना हजारगुना आवश्यक और देश-भक्ति का कार्य हो सकता है।

अंग्रेजी किताबों में हम यह पढ़ते है कि जब किसी हलचल की उसके विरोधी हंसी उड़ाते हैं तब यह कहा जा सकता है कि वह हलचल प्रगति कर रही है और जब उससे उन विरोधियो का क्रोध भड़कता है तो यह कह सकते है कि उसका आशानुकूल परिणाम हो रहा है। यदि टाइम्स आव इण्डिया ब्रिटिश प्रजा का प्रतिनिधि कहा जा सकता है तो वह स्पष्ट है कि उसका आशानुकूल परिणाम हुआ है।

उस लेख के लेखक पाठकों को इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि प्रयाग की प्रजा को भारत के दूसरे विभागों की बनिस्बत महासभा के कफन के कपड़ों की कोई अधिक आवश्यकता नही है। खादी को उन्होने यह नाम दिया है। यदि यह ठीक है तो खादी के प्रति जो तिरस्कार दिखाया गया है उसे समझना बड़ा ही मुश्किल है। परन्तु महासभा के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे यह सिद्ध करके दिखावें कि खादी महासभा का कफन का कपड़ा नही है परन्तु महासभा को जन-समुदाय के साथ जोड़ने के लिए वह एक दृढ सांकल है और इसलिए पहिले की बनिस्बत वह उसे लोगों की अधिक प्रतिनिधि सभा बनाती है।

परन्तु यूरोपियनो के प्रति न्याय करने के लिए मुझे कहना चाहिए कि खादी के प्रति जहर उगलने में टाइम्स आव इण्डिया का लेखक सामान्य यूरोपियन जनता का प्रतिनिधि नही है। मै भारत में कुछ यूरोपियनों को जानता हूं कि जो खादी के सन्देश के प्रति श्रद्धा रखते है और कुछ तो स्वयं उसका उपयोग भी करते हैं।

उसका सन्देश तो यूरोप भी पहुंचा है। खद्दर के सम्बन्ध में पोलैण्ड जैसे दूर देश से एक प्रोफेसर का यह पत्र आया है :

"आपके खयाल में क्या यह अच्छी वात न होगी कि यूरोप में भारत के मित्रों को भारतीय कपड़ा वेचने का प्रयत्न किया जाय ? यदि आप मुझे कुछ हिन्दुस्तान का कपड़ा अंग्रेजी सिक्कों में उस पर उसकी कीमत लिख कर भेजेंगे और रुपये भेजने के लिए कोई अंग्रेजी पता लिख भेजेंगे तो मैं कुछ थोड़ावहुत प्रयत्न करूंगा। मेरे खयाल से यद्यपि विक्री की कोई वड़ी रकम न होगी फिर भी प्रचार के लिए यह वड़ा उपयोगी कार्य होगा। मुझे आशा है कि पोलैण्ड में भी वहुत लोग ऐसे होंगे जो आपके कार्य के प्रति अपनी सहानुभूति दिखलाने के लिए भारतीय कपड़ा पहिनने में अभिमान का अनुभव करेंगे और वे वड़े खुश होंगे। भारत की मुक्ति के लिए संसार की सहानुभूति प्राप्त करने का शायद यह सवसे अच्छा उपाय है। मैं स्वयं कातने का भार आसानी से नहीं उठा सकता हूं, परन्तु वह अधिक खर्चीला हो तो भी, मैं घर-घर जाकर भारतीय कपड़े की विक्री वढ़ाने का कार्य-भार अवश्य उठा सकता हूं।"

—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, १५।४।१९२६।]

७४. म्युनिस्पल स्कूलों में चर्खे

लखनऊ म्युनिसिपल वोर्ड के स्कूलों में १०८ लड़कियां और ४१ लड़के चर्खा चलाते है। लड़कियों की शालाओं मे ६३ और लड़कों के स्कूलों में १५ चर्खे है। प्रतिमास लडकिया २७ तोला और लड़के ४ तोला सूत कातते है। म्युनिसिपैलिटी को फी चर्खा, २ रुपया महीना खर्च करना पड़ता है। शिक्षा विभाग के निरीक्षक का विचार है कि इतना काम, यद्यपि कुछ विशेप तो नही है, परन्तु शुरु-शुरु के लिए काफी सन्तोषजनक है। इसे सन्तोपजनक इसी अर्थ में कह सकते है कि कुछ नही से तो अच्छा ही है। परन्तु मेरी समझ मे तो इतना कम सूत तैयार होता है कि सुन कर हँसी आती है और फी चर्खे पर वेहिसाव खर्च होता है। शुरू शुरू में जो कुछ लगा दिया, उससे अधिक खर्च हो तो सच पूछो तो, वह नही ही होना चाहिए। सूत कैसा होता है, इसके विपय मे कुछ नही लिखा है। मै जो वात पहले वार-वार कह आया हूं, वही फिर भी कहनी होगी—स्कूलो के लिए केवल तकली ही एक वस्तु है और इसका प्रवेश तभी होना चाहिए जव शिक्षको ने धुनकना और कातना सीख लिया हो। स्कूलो मे कताई के काम को तवतक कभी सफलता

नहीं मिल सकती जबतक शिक्षक इसका राष्ट्रीय महत्व न समझ लेवें, उसी में उन्हें आनन्द न मिले और अपने उत्साह से उसे विद्यार्थियों के लिए भी मनोरंजक न बना देवें।

--अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० २६।८।१९२६।]

७५. कांगड़ी गुरुकुल

कांगड़ी गुरुकुल में ही स्वामी श्रद्धानन्द के प्राण बसते थे, भले ही उनका नाशमान शरीर किसी स्थान पर क्यों न घूमता हो। जबतक गुरुकुल जीता है, स्वामी श्रद्धानन्द भी जीते ही रहेंगे। इसलिए इस स्वर्गीय शहीद का जो अच्छा से अच्छा स्मारक बन सकता है, वह है इस गुरुकुल को स्थायी बनाना। निःसन्देह सचमुच में स्थायी स्मारक का तो आविर्भाव होगा गुरुकुल के अध्यापकों और ब्रह्मचारियों के चारित्र्य के, और उसमें प्राचीन शिक्षा और संस्कृति की मुख्यता बनाये रखने के उनके दृढ़ आग्रह के जरिये। श्रद्धानन्द जी को यह कहने का पूरा कारण था कि उनका गुरुकुल भी, असहयोग की परिभाषा के अनुसार असहयोग के जन्म के कई साल पहले से ही राष्ट्रीय संस्था है। उनका विश्वास था कि चाहे हम चाहें या न चाहें मगर सरकारी शिक्षालयों में जाने का अर्थ ही है, पश्चिम के प्रभावों की मुख्यता मानना। पश्चिम की जो कुछ बात वह लाभप्रद समझते उसे अपने ढंग पर, अपनी सुविधानुसार लेने में उन्हें कोई उज्र नही था। इस कारण स्वामीजी का योग्य स्मारक होने के लिए गुरुकुल को सरकार से पूरा-पूरा स्वाधीन रहना ही होगा। यह कुछ कम सन्तोष की बात नहीं है कि, सरकार की कोई सहायता न लेकर, स्वाधीन रहने पर भी, इसके सदस्यों की संख्या वैसे ही बढ़ रही है, जैसे कि मैं आशा करता हूं कि इसके पुण्यश्लोक संस्थापक की भावना के अनुसार चारित्र्य में इसकी उन्नति हो रही है।

मगर, अगर यह स्मारक सचमुच इसके ब्रह्मचारियों और अध्यापकों के चरित्र पर निर्भर है तो वह अभी देश की आर्थिक सहायता पर भी निर्भर है। आचार्य रामदेव ने अभी तीन लाख रुपयों की प्रार्थना की है। मै समझता हूं कि कोई दो लाख तो मिल चुके है। मैने १६ तारीख को गुरुकुल-भूमि मे, उस बड़े मण्डप के भीतर जो दृश्य देखा, वह कभी भूलने लायक नही है। दर्शको के बीच, स्वयं-सेवक बालटियां लेकर घूम रहे थे। उनमें रुपये और नोट डालने का मानो स्त्री, पुरुष, सभी कोई चढ़ा-ऊपरी-सी कर रहे थे। पैसे तो शायद ही कही दिख-

लाई पडते थे। मै वडी खुशी से यह अपील जनता के सामने रखता हूं। आर्य-समाज और उसके सिद्धान्तों से अपने मतभेद मैं वतला चुका हूं। वे तो है ही। गुरुकुल चलाने के नियमो से भी मेरा मतभेद है। मगर आर्य-समाज की सेवाओं और गुरुकुल की आवश्यकता को मैं भूल नही सकता। अगर धर्म की वाढ़ उन्होंने सीमित कर दी है तो उसमे नई जान भी फूंक भरी है। सभी सुधारों में यह प्रवृत्ति रहती ही है। चतुर पुरुषो का काम है, नीर छोड़ क्षीर ग्रहण करना। गुरुकुल में वहुत वाते ऐसी है, जिन्हे वचाना होगा, और जो लोग यह चाहते है कि यह आज जिस स्थिति में है, उससे अच्छा होवे, तो उन्हें पहले इसके प्रति अपना मित्र-भाव दिखलाना होगा, और तव कही वे इसमे सुधार कराने का नाम ले सकते है। इसलिए धन की इस अपील में योगदान करने में मुझे कोई उज्र नही है। यह छोटी रकम इकट्ठी करने में कोई देर या दिक्कत नही होनी चाहिए।

——अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, २४।३।१९२७।]

७६. कांगड़ी गुरुकुल से मदद

गुजरात ने संकट-निवारणार्थ जो प्रार्थना की थी उसका वहुत ही सन्तोषप्रद उत्तर मिला है। जिन्होंने आरम्भ में ही मदद भेजी थी उनमे दो संस्थाएं थी, कागड़ी गुरुकुल और शान्ति-निकेतन। उनके इस दान से मुझे जितनी प्रसन्नता होगी, यह जानकर उन्होने दान तो सीधा श्री वल्लभभाई को भेज दिया और मुझे उसकी सूचना तार से दी। गुरुकुल की तरफ से जो दान ४ हफ्तों मे मिला उसका व्योरा भी श्री आचार्य रामदेव जी ने लिख भेजा है। वह और भी अधिक भेजने की आशा रखते है।

शिक्षकों ने अपने वेतन से कुछ हिस्सा दिया है। ब्रह्मचारियों ने अपने कपड़े हमेशा की तरह धोवियों से न धुलाकर अपने हाथों से धोये और इस तरह वचत की है। कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों ने कुछ समय के लिए घी-दूध छोड़कर वचत की है।

गुजरात मे मदद प्राप्त करनेवाले और मदद पहुंचानेवाले यह स्मरण रक्खे कि जो दान प्राप्त हुए है उनमे कितनो के पीछे कितना त्याग रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द जव गुरुकुल के सचालक थे तव दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के युद्ध के समय उन्होने प्रथम जो त्याग की प्रथा चलाई उसका आज गुरुकुल के इन लडके-लडकियों के त्याग से मुझे स्मरण होता है। अर्थात् गुरुकुल की परम्परा में पले हुए लड़के-

लड़कियों से प्रसंग आने पर ऐसे आत्म-त्याग की आशा हमेशा रखनी चाहिए।
—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, २०।१०।१९२७।]

७७. प्रेम महाविद्यालय

राजा महेन्द्रप्रताप की इस कृति को अपने किये पर गर्व हो सकता है। यह उन इनी-गिनी संस्थाओं में से है जो असहयोग से पहले खोली गई थी और विना किसी प्रकार की सरकारी सहायता या स्वीकृति के चलती रही है। ऐसी वहुत-सी संस्थाओं के समान इसे भी भाग्य के वहुत से उलटफेर देखने पड़े है किन्तु सभी संकटों को सह कर यह विद्यालय निर्विघ्न चलता आया है। हाल में ही इसका वार्षिकोत्सव मनाया गया था। डा० अंसारी सभापति थे। सभा की रिपोर्ट में लिखा है कि उत्सव के शुरू में पहले तकली चलाने का प्रदर्शन किया गया और फिर डा० अंसारी ने राष्ट्रीय पताका फहराई तथा हिन्दुस्तान सेवादल के स्वयंसेवकों ने वन्दे मातरम् गाया।

फिर आचार्य गिदवाणी ने महाविद्यालय का भार आप ग्रहण करने के वाद से आज तक की रिपोर्ट पढ़ सुनाई। रिपोर्ट में आर्थिक अवस्था वुरी ही वतलाई गई। अभी महाविद्यालय के पास ७००० रुपये है। हर साल घटी लगती है १०,००० रुपयों की। रिपोर्ट से यह भी जान पड़ता है कि आचार्य गिडवानी ने महाविद्यालय का प्रवन्ध वहुत-कुछ बदला है; खर्च की बहुत कमी कर डाली है किन्तु विद्यालय की उपयोगिता कम नही होने दी है। साथ ही साथ दर्जी विभाग, रंगाई विभाग, चित्रकारी विभाग, जिल्दसाजी विभाग खोले है और विद्यालय के छापाखाने तथा 'प्रेम' मासिक पत्र को फिर से जारी किया है। और विभागों के खर्च मे कमी कराके ये सव नये काम शुरू कराये जा सकते है। इस भांति विद्यालय की उपयोगिता वढ़ गई है। जो परिवर्तन हो चुके हैं और जो करने का विचार है उनकी दृष्टि से तो यह संस्था कला, शिल्प और गृह-उद्योगों की एक संस्था बन जायगी।

इस रिपोर्ट मे संस्था के लिए ज्यादा अच्छी स्वास्थ्यकर जगह की जरुरत वतलाई गई है और मकानात तथा सामान वगैरह के लिए दो लाख की अपील की गई है। आचार्य गिदवाणी ने कहा कि "प्रेम महाविद्यालय गत १८ वर्षों से विना सरकारी सहायता के अपनी स्वतन्त्रता वचाये रखकर शान से चला आता है। हमारा मूल मन्त्र है—हाथ से काम करने मे प्रतिष्ठा है। कताई और वुनाई के

काम हमारी योजना के अनुकूल है, हमारा एक-एक विद्यार्थी शुद्ध खादी पहनता है और रोज़ चर्खे या तकली पर सूत कातता है। हमने सिन्ध की वाढ़ में सहायता देने के लिए स्वयंसेवक भेजे। देशभक्ति का कर हमने भी अपने आदमियो को जेल मे भेज कर चुकाया है। और सवसे वड़ी वात तो यह है कि हमारे यहां भंगी और चमार ब्राह्मण लड़कों के साथ-साथ शिक्षा पाते है। अगर हमारी ये विशेषताएं वनी रही और लड़को के भविष्य जीवन का ध्येय सेवा रहा तो फिर मै कोई ऐसी संस्था नही जानता जो गांधीजी के आदर्शो को इससे अधिक पालती हो या उनकी सहायता के अधिक योग्य हो।" फिर आचार्य ने विद्यार्थियों को याद दिलाया कि "प्रेम महाविद्यालय न तो सहज स्कूल है और न सहज कारखाना किन्तु यह है राजा महेन्द्रप्रताप के कल्पना-राज्य का प्रेम-मन्दिर, स्वतन्त्रता का मन्दिर।"

जिस संस्था की ओर से इतने दावे आचार्य गिडवानी पेश कर सके, उसके लिए मेरी सहायता की आशा रखनी उचित ही थी। पाठकों को शायद पता न हो कि आचार्य गिदवाणी कराची म्युनिसपैलिटी के अवीन काम करने जा रहे है। आचार्य कृपलानी के गांधी आश्रम, वनारस से युगलकिशोर जी महाविद्यालय मे भेजे गये हैं। श्री युगलकिशोर आचार्य गिदवाणी की ओर से काम चलावेगे किन्तु आचार्य-महोदय महाविद्यालय मे दिलचस्पी लेते रहेगे और जहां तक हो सकेगा उसका संचालन करते रहेंगे।

—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, ८।३।१९२८।]

७८. कन्याओं का त्याग

देहरादून कन्या विद्यालय से श्री विद्यावती देवी निम्नलिखित पत्र भेजती हैं—

"बहुत दिनों से कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियां बारडोली के दुःखी कृषकों के सत्याग्रह आन्दोलन से सहानुभूति अनुभव कर रही थीं और अब उन्होने अपने हृदय के उद्गार को प्रकट करके मुझे प्रेरित किया है कि उनकी तुच्छ भेंट आपके श्रीचरणों में अर्पित करूं, अतः इस पत्र के साथ यह द्रव्य प्रेषित किया है, कृपया इसे स्वीकार कर अनुग्रहीत करे।

"आपको कदाचित् विदित ही है कि कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों को द्रव्य पास में रखने का नियम नहीं है। अतः उन्होंने अपने घी, फल, मिष्ठान्न आदि को एक मास के लिए परित्याग कर यह धन भिजवाने का आग्रह किया है। ऊंची श्रेणी की

कन्याओं ने कुछ-कुछ निजी धन से भी दिया है। उनका आग्रह है कि जो प्रस्ताव उन्होंने अपनी सभा में पास किया है उसकी प्रतिलिपि आपकी सेवा में भेजी जाय। अतः उन्हें उत्साह दिलाने के हेतु प्रतिलिपि भेजी जा रही है।"

निश्चय हुआ कि हम कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियां एक मास के लिए घी, फल और मिठाइयां छोड़ दे और जो कुछ इस पर व्यय होता था वह बारडोली के देशभक्त कृषकों की सहायतार्थ भेज देवें और यदि यह धर्मयुद्ध और भी आगे बढ़े तो और भी जो त्याग हमसे हो सकेगा वह हम करेंगी।

श्री आचार्य जी से प्रार्थना की जाय कि वह इस प्रस्ताव को स्वीकृत करें और इसकी प्रतिलिपि श्री बापूजी के चरणों में भेज दे।

इनके उत्साह से प्रेरित होकर यहां के अन्य सेवक-भृत्य, लेखक, अध्यापिका वर्ग भी इसी के साथ अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे हैं जिसकी सूची साथ है। कृपया स्वीकार हो।"

यह हुण्डी ३०० रुपयों से अधिक की है और इसमें २०० रुपये तो ब्रह्मचारिणियो के बलिदान के है। इन बालाओं को मै धन्यवाद देता हूं। परमात्मा उनकी सेवा-भावना को कायम रखे।

--हिन्दी। हि० न० जी०, १६।८।१९२८।]

७९. मेरठ के कैदी

मेरठ जेल में बन्द कैदियों के बारे में एक भाई लिखते है:

"इन कैदियों को महासभा की ओर से मदद देने की बात छिड़ी हुई है। इनमें महासभा का तिरस्कार करनेवाले कैदी भी हैं। महासभा इन्हें सहायता क्यों पहुंचाये? जो महासभा की सहायता करते हैं, महासभा भी उनकी सहायता करे, जो नहीं करते, उनकी न करे, यह न्याय ठीक नहीं है?"

मैं तो लेखक के विचार को ठीक नही समझता। महासभा को तो सूर्यवत् बरतना चाहिए। जो सूर्य को गाली देते है और जो उसकी स्तुति करते हैं, सूर्य उन दोनों के लिए एक समान तपता है। महासभा तीस करोड़ के प्रतिनिधित्व का दावा करती है। चाहे उसमें तीन सौ सदस्य ही क्यों न हों, उसका काम है तीस करोड़ की सेवा करना और उनकी मदद पर दौड़ जाना। उसे चाहिए कि वह किसी भी भारतवासी को अपना दुश्मन न समझे और उन पर आफत आये, तो उसकी मदद करे। इसी कारण मेरे मतानुसार यहां महासभा की मित्रता अथवा

शत्रुता का सवाल नही उठ सकता। लेकिन महासभा मेरठ के और दूसरी जगहों के कैदियों की मदद कैसे करे? महासभा उनके लिए ऊहापोह करे—विचार-परामर्श करे, जहां पत्र-व्यवहार से अथवा समाचारपत्रों में लेख लिखने से काम चलता हो, वहा उनका सहारा ले, और ऐसे दुःखों से तप कर वह अधिक जागृत, अधिक बाहोश बने, जल्द ही स्वराज्य प्राप्त करे और ऐसे कैदियों की कोठड़ी के ताले तोडे। किन्तु महासभा उनके लिए वकील न करे। महासभा ने असहयोग का सर्वथा त्याग नही किया है। ऐसे कैदियों को अपना बचाव करने की जरूरत न होनी चाहिए। अगर उन्हे जेल मिले तो वे उसे भोग ले। अगर वे खुद वकील करना चाहे तो खुशी-खुशी करें। अगर उनकी हैसियत वकील करने-जितनी नहीं है, तो उनके दोस्त उनकी मदद करें या महासभा के सदस्य होते हुए भी जो ऐसे मामलो मे वकील करना उचित समझते है, वे स्वयं सहायता करे। इससे मेरा मतलब यह है कि खुद महासभा वकील वगैरा करने की झंझट में न फँसे। अगर वह फँसना चाहेगी भी तो, उसकी ताकत नही कि वह हर मामले का सामना कर सके। ऐसे मामलो में तो देश को उन वकीलों की जरूरत है जो श्री मनमोहन घोष या चित्तरंजनदास की तरह अपने खर्च से सारे मामले का मुकाबला कर सकें। यही उनका धर्म भी है। महासभा को तो वकीलों या डाक्टरों की फीस चुकाने की जरूरत ही न होनी चाहिए।

—गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, २।५।१९२९।]

८०. हरद्वार में खादी

हरद्वार-जैसे धाम में खादी की नन्ही-सी दूकान खुले और बन्द हो जाय और फिर वेद-विशारद एवं आचार्य के पद की योग्यता रखनेवाले पण्डित देवशर्मा के समान सज्जनों के प्रयत्न से खादी की दुकान खुले यह बात जितनी सुखद है उतनी ही दुःखद भी है। सुखद इसलिए कि खादी-काम की कद्र करनेवाले एक खास धार्मिक फिर्के के लोग हैं, दुःखद इसलिए कि जिसके द्वारा करोड़ों लोगों की आर्थिक उन्नति हो सकती है उस खादी की खपत हरद्वार-जैसे स्थान मे कोशिश करने पर हो सकती है। विदेशी कपडे की दूकानें तो हरद्वार मे चाहे जितनी मिल सकेंगी, लेकिन खादी की दूकान के लिए पण्डितों का सहारा चाहिए। पण्डित देवशर्मा ने इस भण्डार के बारे मे एक पत्र हिन्दी मे भेजा है, उसमें से थोड़ी बातें नीचे देता हूं।

यह भण्डार २४ मई सन् १९२८ में खुला था। यह तीन सज्जनों की एक समिति की देखभाल में चलता है। उनके नाम ये हैं:—

श्री पण्डित रामचन्द्र जी वैद्य

श्री अध्यापक देवराज जी सेठी

श्री पण्डित देवशर्मा विद्यालंकार

इस भण्डार की पूंजी ५५०) थी। इसमें पीछे से १००) और बढ़े। ग्यारह महीनों में रु० १८८६-११-० की खादी बिकी। अगर माल ज्यादा रक्खें तो बिक्री अधिक होगी, इस विचार से पूंजी बढ़ा रहे है। ९५०) तक इकट्ठे हो चुकेहै। अबतक जो दान मिला है उसकी तफसील नीचे दी जाती है :—

सेठ जानकी प्रसाद	२५०)
सेठ मुरलीधर जी पोद्दार	१००)
सेठ रामचन्द्र जी वैद्य	१००)
सेठ सरदार हुकुमसिंह जी	१००)
सेठ अध्यापक देवराज जी सेठी	१००)
सेठ प० रूपचन्द्र जी (कनखल)	१००)
श्री पण्डित देवशर्मा जी के द्वारा	१००)
श्री गंगाप्रसाद जी (टेहरी)	१००)
	९५०)

इस भण्डार के लिए आदमपुर, गांधी आश्रम, मेरठ और चांदपुर गुरुकुल खादी-केन्द्र से खादी मंगाई जाती है।

मैं आशा रखता हूं कि भण्डार की वृद्धि होगी और उसे पूरा-पूरा उत्तेजन मिलेगा।

—न० जी०। हि० न० जी०, ९।५।१९२९।]

८१. काशी की पण्डित सभा

जब मैं काशी जी में था, मेरे पास काशी-पण्डित-सभा की तरफ से तीन प्रश्न भेजे गये थे। उन प्रश्नों के उत्तर देना मैंने अपना धर्म समझा था। परन्तु उस समय मुझे अवकाश नही था। बाद में वे प्रश्न मेरे कागजों में पड़े रहे। भ्रमण में मैं

उन्हें हाथ में न ले सका। अव जवकि कागजपत्र साफ कर रहा हूं, उक्त प्रश्न मेरे सामने है, और ये है:—

१. श्रुतियों तथा श्रुति-सम्मत स्मृतियों को अभ्रान्त प्रमाण मानने वाला एक सनातनधर्मी धर्मशास्त्रज्ञ, 'देवयात्रा विवाहेषु संकटे राजविप्लवे, उत्सवेषु च सर्वेपु स्पर्शास्पर्शानि दुष्यतः' इत्यादि अपवादों के सिवा अछूतों (चाण्डालादि) के स्पर्श का सर्वदा व सर्वथा किस तरह समर्थन कर सकता है कि हिन्दू-धर्म में अस्पृश्यता नही है?

२. 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्ये व्यवस्थितौ' इस गीता-वाक्य को अविचल श्रद्धा-भक्ति के साथ माननेवाली सनातनधर्मी जनता ही भारतवर्प मे अधिक है और उसी में आपको काम भी करना है, अतएव जवतक आप अपने अछूतोद्धारवाले कार्यक्रम को शास्त्र-सम्मत न सिद्ध कर ले तवतक उसका प्रचार कैसे हो सकता है?

३. मुसलमान उलेमाओं के हृदय में यह भाव कूट-कूट कर भरा है कि इस्लाम धर्म के सिवा दूसरे धर्म को माननेवालों की हत्या करना सवाव है, वे काफिर हैं; उनके साथ मेल तभी हो सकता है जव वे इस्लाम-धर्म कवूल कर लें। जवतक छोटे-वड़े सभी मुसलमान इन्हीं उलमाओ के अधीन है तवतक हिन्दू धर्म की रक्षा करते हुए हिन्दू मुसलमानो से किस प्रकार मेल कर सकते है?

मेरे उत्तर मे पण्डित महाशय पाण्डित्य की आशा न करें। मैने धर्म को अनुभव-द्वारा जिस रूप में जाना है, शास्त्र को अनुभव से मैं जिस तरह समझा हूं उसी के आधार पर उत्तर देने का मै नम्र प्रयत्न करता हूं।

केवल नाम देने से श्रुति-स्मृतियां धर्मवाक्य नही वन सकती। जो कोई भी वात सत्यादि अटल सिद्धान्तों के विरुद्ध है, वह धर्म-प्रमाण नही हो सकती। मनुस्मृति आदि जो ग्रन्थ हमारे सामने रक्खे जाते है वे मूलतः जैसे थे वैसे आज प्रतीत नही होते, क्योंकि उनमे विरोधी वचन आते है। उनमे ऐसे भी वचन पाये जाते है जो सनातन नीति-सिद्धान्त और वुद्धि के विरोधी है। श्रुतिग्रन्थों के रहस्य को देखते हुए अस्पृश्यता पाप ही प्रतीत होती है। मैने अस्पृश्यता के विपय मे जो वात कही है, वह तो यो है कि आज हम जिसे अस्पृश्यता मानते है, उसके लिए शास्त्र में कोई प्रमाण नही है। इस कथन में और पण्डितो ने जिस वचन का मुझमें आरोपण किया है, उसमे वहुत अन्तर है।

आज के अछूत की व्याख्या के लिए प्रचलित स्मृति-ग्रन्थो को प्रमाण मानने मे भी कोई आधार नही मिलेगा। पण्डितो ने जो स्मृति-वचन उद्धृत किया है, उसे प्रमाण मानने से भी हमारा तीन-चौथाई कार्य सधेगा। देवयात्रा, विवाह

संकट, राजविप्लव और उत्सव, हमारे सामने आज भी मौजूद हैं। इनमे किसी को अछूत न मानने की स्मृति की सम्मति होते हुए भी लोग क्यो जनता के सामने अस्पृश्यता का समर्थन करते है?

अब दूसरे प्रश्न का अधिक उत्तर देने की आवश्यकता नही है। मैंने स्पष्टतया बताया है कि मेरे कार्यक्रम के लिए पण्डितों के ही वचन काफी है। परन्तु यहां इस बात पर थोड़ा विचार करें कि शास्त्र किसे कहा जाय? मैं ऊपर बता चुका हूं कि संस्कृत भाषा में छपे हुए हर एक ग्रन्थ को शास्त्र मानने से पुण्य पाप सिद्ध हो सकेगा और पाप पुण्य बन जायगा। इसलिए गीता की भाषा के अनुसार तो गीता के स्थितप्रज्ञ का वचन ही शास्त्र का बुद्धिग्राह्य अर्थ हो सकता है। इसपर पण्डित लोग जनता को सीधे रास्ते पर ले जाना चाहें तो पाण्डित्य के साथ प्रज्ञा को भी स्थिर करें और राग-द्वेष आदि का त्याग करें। जबतक पण्डित लोग तपश्चर्या करके गीता के ब्रह्मभूत न बनेंगे तबतक मेरे-जैसे प्राकृत मनुष्य के पास अनुभव के सहारे सेवा करने के सिवा और कोई चारा नही है।

अब रहा तीसरा प्रश्न। मेरा नम्र अभिप्राय है कि तीसरा प्रश्न करके पण्डित महाशयों ने अपना अज्ञान ही प्रकट किया है। न तो इस्लाम की ही यह शिक्षा है कि अन्य धर्मवालों की हत्या कर्त्तव्य है, न भारतवर्षीय उलेमा के हृदयों मे ही यह बात है, और न सब मुसलमान ही ऐसे उलेमा के अधीन हैं। हिन्दू धर्म की रक्षा तो हिन्दुओं की पवित्रता से ही हो सकती है, किसी और से नहीं। आत्मा ही आत्मा की रक्षा कर सकती है। 'आप भला तो जग भला' इस लौकिक कथन के न्याय से सबके साथ मिल कर रहना ही हमारा कर्त्तव्य है। मेरा अनुभव भी मुझे यही सिखाता है।

—हिं० न० जी०, ११।७।१९२९।]

८२. संयुक्त प्रान्त का आगामी दौरा

स्थान-स्थान के प्रबन्धकों ने संयुक्तप्रान्त के आगामी दौरे के लिए मुझसे सलाह मांगी है। मैं सोचता था कि आन्ध्र-यात्रा के समय मैंने जो कुछ कहा था वह काफी होगा, मगर देखता हूं कि उस समय लिखी गई पंक्तियों पर दूसरे प्रान्तों के कार्यकर्त्ताओं ने ध्यान नही दिया, क्योंकि उनका उनसे कोई सीधा सम्बन्ध न था।

संयुक्तप्रान्त के दौरे के सम्बन्ध में प्रबन्धकर्त्ता कृपा कर यह ध्यान में रखें कि मैं अपने अज्ञान और अपरिपक्व विश्वास के कारण बीमार हुआ था और अभी-अभी

उस बीमारी से उठा हूं। डाक्टर और दूसरे मित्र केवल इसी शर्त पर मुझे यात्रा करने देने के लिए सहमत हुए है कि मैं दिन में यथासम्भव पूरा-पूरा आराम करूंगा, लम्बे-लम्बे भाषणों से बचूंगा, और दूसरे परिश्रमपूर्ण कामों मे दूर रहूंगा। अतएव प्रबन्धकर्त्ता यह ध्यान में रख लें कि कार्यक्रम लम्बे या एक के बाद एक न हों। वे मुझसे लम्बे भापणो को भी आशा न रक्खें। विशाल व्यासपीठों (प्लेटफार्म) पर चढने या उन तक चल कर जाने की भी कोई मुझसे आशा न रक्खें।

चूकि बीमारी से उठने के कारण मैं अभी कमजोर हूं, मुझे देख कर डाक्टरों ने अनेक सलाहे दी है, मगर उन पर विचार न भी किया जाय, तो भी कठोर व्यवहार-कुशलता की दृष्टि से—और यह यात्रा तो एकदम व्यावहारिक यात्रा ही होगी—यह आवश्यक है कि समय और धन की बचत की जाय।

मै पैर छूकर भक्ति प्रदर्शित करनेवालों से बहुत ज्यादा घबराता हूं। प्रेम का प्रदर्शन करने के लिए इसकी तनिक भी आवश्यकता नही है। उलटे इससे सहज ही पतन हो सकता है। इसके कारण आजादी के साथ चलना-फिरना मुश्किल हो जाता है, और अक्सर पैर छूनेवालों के नाखूनों से मेरे पैर घायल हो चुके है। इस क्रिया के कारण कुछ गज की दूरी पर बनाये गये व्यासपीठ तक पहुंचने में अक्सर पाव घण्टे से ज्यादा लग जाता है।

व्यासपीठ बहुधा बहुत दाम खर्च करके बनाया जाता है—अपेक्षाकृत बहुमूल्य होता है, और कभी-कभी उसके बनाने मे चतुराई से काम न लेने के कारण वह खतरनाक भी साबित हो चुका है। अतएव यह बेहतर होगा कि सभास्थल के मध्य में मेरी मोटर खड़ी करके उसी से व्यासपीठ का काम ले लिया जाय। आन्ध्र-यात्रा में यह प्रथा बड़ी ही उपयोगी और अनुकूल साबित हो चुकी है।

स्वागत-समितियों को किसी भी कारण से चन्दे की थैलियों में से सजावट या भोजन के लिए जरा भी खर्च नही करना चाहिए। अगर कही इन कामों के लिए खर्च की जरूरत पड़े ही तो उसके लिए अलग चन्दा उगाह लिया जाय। यानी, सब तरह की सजावट का त्याग किया जाना चाहिए। जहां कही थोड़ी-बहुत सजावट की भी जाय, वहां विदेशी कपड़े, विदेशी कागज या ऐसी अन्य चीजों का सम्पूर्ण बहिष्कार किया जाना चाहिए।

सभाओं में किसी तरह का शोर-गुल न होना चाहिए। नेताओं को चाहिए कि वे सभास्थल पर पहले ही पहुँच जायं और जनता को भलीभांति समझा दें कि लोग चुपचाप बैठे रहे, धक्कामुक्की न करें, जोर-जोर से न चिल्लायें, बीड़ी न पियें, और न ही मेरे पैर छूने वगैरा के लिए आगे बढ़ने की कोशिश करें।

मुझे और मेरे साथियों को ठहराने और खिलाने-पिलाने में कठोर मितव्ययिता

से काम लिया जाय। साथियों का भोजन सादा-से-सादा हो, न मसाले हों, न मिठाई। फसली फल, अगर मिल सकें, दिये जायं। कलकत्ता, बम्बई या दिल्ली से गँहगे फल न मँगाये जायं। मैं अपने साथ कुछ सूखा मेवा रखता हूं; जहां कही वह मिल सके, नये तौर पर उसकी पूर्ति के लिए मैं आभार मानूंगा। भोजन में नीवू एक आवश्यक चीज है। दुर्भाग्यवश मुझे फिर से बकरी का दूध आवश्यक होगा, और अगर सम्भव हो सके तो बकरी के दूध का दही भी मैं ले लूगा, बशर्ते कि दही को झमाने के लिए किसी और दूध का दही काम में न लाया गया हो। उबाल कर ठण्डा किये हुए बकरी के दूध में नीबू की कुछ बूंदें डालने से बारह घण्टों में उसका दही जम जाता है।

मेरे रहने का स्थान ऐसा चुना जाय कि जिससे मुझे शान्ति और एकान्त मिल सके। हम अपने बिस्तरे के लिए साथ में काफी कपड़े रखते है, फिर भी अगर कही इसकी व्यवस्था की जाय तो सब कपड़े शुद्ध खादी के ही होने चाहिए। जव कभी मैं किन्ही शानदार कमरों में ठहराया गया हूं मुझे यह देखकर मर्मान्तिक दु.ख हुआ है कि उनमें सब चीजें, यहां तक कि कपड़े भी, विदेशी है।

सवेरे ७ बजे से पहले कार्यक्रम शुरू न किया जाय और दो घण्टे से ज्यादा का न रहे। हर हालत में १० बजे तो समाप्त हो ही जाय। फिर शाम को ५॥ से शुरू हो और ८ बजे तक रहे। १० से ३ तक का सारा समय मुझे विश्राम, सम्पादन और अन्य कार्यो के लिए चाहिए। ३ और ४ के बीच मैं कातूंगा और साथ ही कार्यकर्त्ताओं से मिलूंगा। छोटे-बड़े हरएक स्थान में कार्यकर्त्ताओं से मिलना मैं आवश्यक समझता हूं।

जिन खेल-तमाशों से किसी न किसी तरह की शिक्षा न मिलती हो, जानकारी न बढ़ती हो, कार्यक्रम में उन्हें स्थान न दिया जाय।

प्रबन्धकर्त्ता याद रक्खें कि प्रस्तुत यात्रा अखिल भारत चर्खा-संघ के लिए की गई प्रधानतया एक खादी-यात्रा होगी। चर्खा-संघ एक बड़ी-से-बड़ी राष्ट्रीय संस्था है, जिसका काम व्यापारिक ढंग से हो रहा है और जिसका एक मात्र ध्येय चर्खे के सन्देश को देश के सात लाख गांवों में बसी हुई जनता के घर-घर पहुँचाना है। इस संस्था की सफलता पर ही लाखों-करोड़ो आधा पेट खाकर जीनेवालों की बढ़ती हुई, और उन्हें पीस डालनेवाली आपदा का नाश निर्भर है। इस काम के लिए मुझे मिलनेवाली प्रत्येक पाई का मैं संग्रह करना चाहता हूं। अखिल भारत चर्खा-संघ की झोली में पड़ा हुआ एक रुपया जब किसी और की जेब में होता है तो एक दिन की शराब खरीदने, बीड़ी पीने या मिठाई खाने के काम आता है और साथ ही रोगों को भी खरीद लाता है।

जनता के पास से उगाही हुई रकम किसी भी हालत में किसी दूसरे काम में न लगानी चाहिए। जनता विश्वास-भरे हृदय से दान करती है। उसकी दी हुई रकम का सहज और सर्वोत्तम सदुपयोग उसे चर्खे के प्रसार में खर्च करना है। इस तरह के सदुपयोग से दिया हुआ दान दूना होकर उसे मिलता है। सब किसी को चाहिए कि दल या स्थिति का खयाल न करते हुए वे इसमें भाग लें। मुझे तो न्यायाधीशो तक ने खादी के लिए दान दिया है।

यही नही, प्रवन्धकर्त्ताओं को महासभा-सम्वन्वी दूसरा काम भी दिखा देना चाहता हू। मै महासभा-संस्थाओ के विपय में जानना और उनकी सहायता करना चाहता हूं। अतएव जहां कही मानपत्र दिये जायं उनमें नीचे लिखी वातें होनी चाहिएं।

१. मानपत्र देनेवाले जिले या स्थान के क्षेत्रफल मे वसनेवाली वस्ती का तफसीलवार वर्णन,

२. राप्ट्रीय शालाएं और उनमे पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या,

३. चालू चर्खो और कर्घो की संख्या, सूत की मासिक उत्पत्ति, खादी का परिमाण और उसकी कीमत,

४ उत्पन्न खादी की स्थानीय और वाहरी विक्री,

५. स्वयं कातनेवालों की संख्या,

६. स्वयं-सेवकों की संख्या और उनका कार्य,

७. भिन्न-भिन्न वर्गों के अनुसार सदस्यों—स्त्री-पुरुपों—की संख्या,

८. महासभा-समिति की आर्थिक स्थिति,

९. विदेशी वस्त्र-वहिष्कार, मद्यपान-निपेध, अछूतोद्धार और हिन्दू-मुस्लिम समस्या तथा उसके लिए किये गये कार्य का विवरण।

यह तो जिन वातों को जानना चाहूंगा उनका एक नमूनामात्र है। साथ ही मैं यह भी पसन्द करूगा कि जिन-जिन तालुकों या जिलों में मैं जाऊं उनके नक्शे मुझे दिये जायं और उनमें यह वतलाया जाय कि किन-किन गांवों मे महासभा का काम हो रहा है।

जो लोग गो-सेवा और शुद्ध दूध पहुंचाने के काम में दिलचस्पी लेते है, वे अपने-अपने स्थान मे इस सम्वन्ध की आवश्यक वातें और हकीकतें मुझे वताने की कृपा करेंगे।

एक वात और। विद्यार्थियों से मिलने में मुझे वड़ा आनन्द होगा, भाषण करने के लिए नही, वल्कि उनसे मिलकर उनके हृदयों मे प्रवेश करने और उनके दुःख एवं कप्टों मे भाग लेने के लिए। मै आशा करता हूं कि स्त्रियों की सभा हर जगह होगी और साथ ही उनका हाथकता सुन्दर सूत व गहने भी होंगे ही।

—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, ५।९।१९२९।]

८३. युक्तप्रान्त की कुप्रथाएं

युक्तप्रान्त में मेरा भ्रमण शुरू होता देख यू० पी० के एक अनुभवी और सुशिक्षित मित्र मुझे लिखते है :—

"और और प्रान्तों में, खासकर शिक्षित समाज में, लोग तबतक ब्याह नहीं करते, जबतक उनकी आमदनी का कोई जरिया न निकल आये। स्कूल में जानेवाले विद्यार्थियों में थोड़े ही ऐसे होते हैं, जिनका ब्याह हो चुका होता है पर यु० प्रा० में प्रथा इसके विपरीत है। यहां शायद ही ऐसा कोई लड़का मिलेगा जिसका ब्याह न हुआ हो। यही नहीं कि माता-पिता अज्ञान-वश, जल्दी में ब्याह कर देते हों, लड़कों में भी यह भाव नहीं है कि जबतक वे स्वयं धनोपार्जन न करने लगे तबतक उनका ब्याह नहीं होना चाहिए। कितने लड़के तो यह इच्छा प्रकट करने हैं कि उनका ब्याह कर दिया जाय। ब्याह की जिम्मेदारी का भान बहुत ही कम लड़कों में है।

"विवाह आदि के सम्बन्ध में लोग प्रायः अपनी शक्ति से कहीं ज्यादा खर्च कर डालते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि कई कुटुम्ब यावज्जीवन ऋणी रहते हैं। इस मामले में शिक्षित समाज के लोग खास कर दोषी हैं। जिनके पास पैसा है वे इस बात की पर्वा ही नहीं करते कि उनके निर्धन भाई किस तरह उनकी-सी शान से ब्याह कर सकेंगे। पर देखा-देखी वे भी वैसा ही करते हैं और परिणाम भयंकर होता है

"यु० प्रा० में पर्दे की प्रथा कैसी है, सो तो आप जानते है। जहां अकेले हिन्दुओं की बस्ती है, वहां इतना पर्दा नहीं किया जाता, जितना मुसलमानों की बस्ती में। यु० प्रा० में आकर बसे हुए गुजराती नागर भी पर्दा करने लगे हैं।"

"यु० प्रा० में राज्य जमींदारों का भी है, खास कर अवध में।"

अगर मौका मिला तो मै अवश्य ही इन प्रश्नों का अध्ययन करूंगा, और इनके बारे में कुछ बात भी करूंगा। जैसा कि यह सज्जन लिखते हैं यदि सचमुच यु० प्रा० में अन्य प्रान्तों के मुकाबले विद्यार्थी-वर्ग विवाह के मामलों में ज्यादा विषयासक्त है और ब्याह के अवसर पर खर्च भी ज्यादा होता है तो अवश्य ही खेद की बात है।

परन्तु इन मामलों मे किसी प्रान्त के साथ तुलना करने की आवश्यकता है ही नही। यदि कुप्रथाएं दूसरे प्रान्तों के बराबर या उनसे कम भी हुई तो क्या हुआ? कुप्रथा मात्र का विनाश करना प्रत्येक विवेकशील मनुष्य का कर्तव्य है। विद्यार्थी अवस्था में विद्यार्थियो का विवाह-जाल में फंसना सर्वथा अनुचित है, धर्म-विरुद्ध है। धर्म हमें सिखाता है कि विद्यार्थी-अवस्था में जो युवक ब्रह्मचर्यादि का भलीभांति

पालन नही करता है, उसे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार ही नही रहता। इसी तरह जो मनुष्य घर-गृहस्थी चलाने में असमर्थ है, उसे चाहिए कि वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश ही न करे। गृहस्थाश्रम, विषय-सेवन या भोग-विलास के लिए नही है। गृहस्थ यदि चाहे तो, मर्यादित मात्रा में पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से स्वपत्नी के साथ विषय-सेवन कर सकता है। विषयभोग के लिए ही विषय-भोग करना, क्या हिन्दू धर्म और क्या अन्य धर्मों मे सर्वथा त्याज्य कहा गया है।

यदि यह सच है कि यु० प्रा० के विद्यार्थियों में से बहुत ज्यादा विद्यार्थी विवाहित होते है तो मुझे एक दुःखप्रद अनुभव का कारण ज्ञात हो जाता है। हिन्दी-प्रचार यू० पी० का एक खास कर्त्तव्य है। जब इन्दौर में मैंने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार की बात की थी तब मुझे आशा थी कि इस काम के लिए चरित्रवान, त्यागी, शिक्षित, राष्ट्रभाषा-विशारद और ब्रह्मचारी युवक काफी मात्रा मे मिल सकेंगे। मगर पाठको को यह जानकर दुःख होगा कि यु० प्रा० से इस काम में बहुत कम सहायता मिली। आज भी ऐसे स्वयंसेवकों के अभाव के कारण ही बंगाल, सिन्ध, उत्कल इत्यादि प्रान्तों में राष्ट्रभाषा का प्रचार बहुत कम हो रहा है। इसका कारण धन का अभाव नही, बल्कि सच्चे स्वयंसेवको का अभाव ही है।

विवाह मे किये जानेवाले खर्च की बात भी दुःखप्रद है। धनिक लोग हर जगह अपनी धनराशि के अभिमान में आकर अमर्यादित खर्च करते और गरीबों में बुद्धिभेद उपजाते है। इस सम्बन्ध में भी विद्यार्थियों को चाहिए कि वे प्रतिज्ञाबद्ध होकर माता-पिता को व्याह के अवसर पर अधिक खर्च हरगिज न करने दें। जिन मित्र ने मुझे यह पत्र लिखा है वह मुझसे मिल चुके है। उन्होने श्री जमनालालजी के उदाहरण की याद दिलाते हुए मुझे कहा है कि मै उस उदाहरण को विद्यार्थियो और उनके माता-पिताओं के सामने रक्खूं। जब जमनालाल जी की पुत्री कमला का व्याह हुआ तब शायद ही उन्होने ५००) का खर्च किया हो। उन्होने जातिभोज तो दिया ही नही। वर-वधू को अशीष देने के लिए कुछ मित्रों को बुला लिया था। विवाह-विधि केवल धार्मिक क्रिया तक ही परिसीमित रही थी। आडम्बर-पात्र का त्याग किया गया था। वर-वधू दोनो खादी के कपड़े पहने हुए थे। ठीक इसी तरह हर एक धनाढ्य का धर्म है कि वह विवाह इत्यादि अवसरो पर अपने अभिमान को रोके और समाज को हानि पहुंचाने से बाज आये।

तीसरा प्रश्न पर्दे का है। पर्दे की बुराई के बारे में मै काफी लिख चुका हूं। यह प्रथा हर तरह से अकल्याण-कारिणी है। अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्री की रक्षा करने के बदले यह स्त्री के शरीर और मन को हानि पहुंचाती है।

जमीदारो के बारे में मै क्या लिखूं? जमीदार वर्ग में से शायद ही कोई 'हिन्दी

नवजीवन' पढ़ता हो लेकिन चूंकि मैं मनुष्य स्वभाव के उच्चगामित्व को मानता हूं, मेरा विश्वास है कि जमीदार लोग जपान के समुराई अमीरों की तरह लोक-सेवा का मन्त्र सीखेगे और यथा-सम्भव त्यागमय जीवन बिताकर अपना एवं भारतवर्ष का कल्याण करने में पूरा-पूरा योग देंगे। यह तो मेरी अपनी आशा है, 'हिन्दी नवजीवन' में इसका उल्लेखमात्र करने से यह सफल नही हो सकती।
—हि० न० जी०, १२।९।१९२९।]

• यह (पर्दे की) प्रथा हर तरह से अकल्याणकारिणी है। अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्री की रक्षा करने के बदले यह स्त्री के शरीर और मन को हानि पहुंचाती है।

८४. संयुक्त प्रान्त का धर्म

महासभा की बागडोर इस वर्ष संयुक्तप्रान्त के एक महान पुरुष के हाथों है। आगामी वर्ष के लिए भी उन्ही के नवयुवक सुपुत्र के हाथों में रहेगी। इसलिए भारतवर्ष के प्रति संयुक्तप्रान्त का कर्त्तव्य बहुत ज्यादा बढ़ गया है। मुझे याद नही पड़ता कि कभी किसी प्रान्त के दो नेता उत्तरोत्तर एक के बाद एक सभापति हुए हों। पिता के बाद पुत्र के गद्दीनशीन होने का तो यह पहला ही दृष्टान्त है। जिस प्रान्त में पिता के रहते हुए पुत्र इतना योग्य माना जाता हो कि उनके बाद दूसरे ही वर्ष वह एक महान राष्ट्र का नेता बने, उस प्रान्त के लिए अवश्य ही यह गौरव की बात है।

दूसरे, संयुक्तप्रान्त हिन्दुस्तान के मध्य भाग में बसा हुआ है। संयुक्तप्रान्त में भारत की स्वतन्त्रा का एक युद्ध हो चुका है। युक्तप्रान्त ही पूज्य मालवीयजी का सेवा-क्षेत्र है। युक्तप्रान्त में ही हिन्दुओं के सर्वोत्तम तीर्थस्थान है। और संयुक्त-प्रान्त में मुसलमानी बादशाहत के स्मारक रूप अनेक स्तम्भ, स्मृति-चिह्न भी है। इस या ऐसे संयुक्तप्रान्त के लोग अगर जी-तोड़ मेहनत करें, पूरा-पूरा प्रयत्न करें तो अगले साल भारतवर्ष की अभिलाषा के परिपूर्ण होने में कुछ भी मुश्किल न हो।

संयुक्तप्रान्त बड़े-बड़े जमींदारों और तालुकेदारों का केन्द्र है। साथ ही वहां निर्धनता भी है। सम्भव है, संयुक्तप्रान्त की गरीबी उत्कल की गरीबी से बहुत कम न हो। कई स्थानों में तीन-तीन साल हुए, बराबर दुर्भिक्ष चला आ रहा है। लोगों के पास न काम है, न धन है। भूखों मरते है। उनके लिए तो वही स्वराज्य हो सकता है जिसमें उन्हें स्थायी काम मिले और वे भूखों मरने से बचें।

अगर संयुक्तप्रान्त के नौजवान चाहें तो वे गांवों में प्रवेश करके चर्खाप्रचार

द्वारा जनता को काम और दाम, दोनों, दे सकते है। साथ ही विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का काम भी कर सकते है। चर्खे का जिक्र मैने एक मिसाल के तौर पर किया है। मै तो यही चाहता हू कि बेकारी और उनके भुक्कड़पन का नाश करें और उनकी सेवा में लीन हो जायं। जबतक हम दूर से ही उनका ख़याल रक्खेंगे, परन्तु उनके पास जाकर उनके कष्टो को जानने और उन्हे निभाने की कोशिश नही करेंगे, तबतक हमें समझ रखना चाहिए कि हमने कुछ नही किया है, और उस दशा में स्वराज्य हमारे लिए आकाश-पुष्पवत, एक काल्पनिक वस्तु-मात्र, बना रहेगा।
—हिं० न० जी०, ३।१०।१९२९।]

८५. जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल हिन्द का जवाहर सिद्ध हुआ है। उनके व्याख्यान में उच्चतम विचार मधुर और नम्र भाषा मे प्रकट हुए है। अनेक विषयों का प्रतिपादन होने पर भी व्याख्यान छोटा है। आत्मा का तेज प्रत्येक वाक्य में झलकता है। कई लोगो के दिल में जो भय था, भाषण के बाद वह सब मिट गया। जैसा उनका व्याख्यान था वैसा ही उनका आचरण भी था। कांग्रेस के दिनों मे उन्होंने अपना सारा काम स्वतन्त्रता और सम्पूर्ण न्यायबुद्धि से किया और अपना काम सतत उद्यम से करते रहने के कारण सब कुछ ठीक समय पर निर्विघ्नता के साथ पूर्ण हुआ।

ऐसे वीर और पुण्य नवयुवक के सभापतित्व में यदि हम कुछ न कर पायेंगे तो मुझे बडा आश्चर्य होगा। परन्तु यदि सेना ही नालायक हो तो वीर नायक भी क्या कर सकता है? इसलिए हमें आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। क्या हम जवाहरलाल के नेतृत्व के लायक है? यदि है, तो परिणाम शुभ ही होगा। स्वतन्त्रता की घोषणा करने-मात्र से स्वतन्त्रता नही मिल सकती। हममें स्वतन्त्रता का वायुमण्डल पैदा होना चाहिए। स्वतन्त्रता एक चीज है, स्वच्छन्दता दूसरी। कई बार हम स्वच्छन्दता को ही स्वतन्त्रता मान बैठते है और स्वतन्त्रता गँवा देते है। स्वच्छन्दता की पराकाष्ठा स्वार्थ है; स्वतन्त्रता की परमार्थ। स्वच्छन्दता समाज का नाश करती है; स्वतन्त्रता समाज को जीवन देती है। स्वच्छन्दता में मर्यादा का त्याग किया जाता है; स्वतन्त्रता मे मर्यादा का पूर्ण पालन किया जाता है। पराधीनता मे हम बहुत-सी बाते डर के मारे करते है; स्वाधीनता मे वे ही बातें हम इच्छापूर्वक करते है।

पराधीन मनुष्य डर के वश होकर चोरी नही करेगा, किसी के साथ फसाद नहीं करेगा, झूठ नही बोलेगा, बाह्याचार में शुद्ध-सा प्रतीत होगा; डाकू आदि मे स्वामी के बल से बचेगा। पराधीन मनुष्य जो कुछ करता है, उसमें वह अपने मन का साथ नहीं देता। स्वाधीन मनुष्य के जैसे आचार होते है, वैसे ही विचार भी। वह जो कुछ अच्छा बुरा करता है, स्वेच्छा से करता है। इसलिए स्वाधीन मनुष्य अपने सत्कार्य का पूरा फल पाता है, और ऐसा होने से समाज की नित्य वृद्धि होती है। स्वाधीन मनुष्य किसी की रक्षा की अपेक्षा नही करेगा।

इसलिए यदि हममें सच्ची स्वतन्त्रता आई है तो हम कौमी डर को छोड़ देंगे। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे से डरना भूल जायंगे। दोनों साथ-साथ भूलें तो बहुत ही अच्छा है, परन्तु स्वतन्त्र मनुष्य डर छोड़ने के लिए साथियों के सहयोग की अपेक्षा न करे। यदि एक पक्ष न्याय की मर्यादा को छोड़ दे तो भी वह तीसरी ताकत का सहारा नही मांगेगा। वह अपनी ताकत पर ही निर्भर रहेगा, और हार गया तो अपनी ताकत बढ़ाने की कोशिश करेगा। लड़ते हुए मर जाना जीत है, धर्म है। लड़ने से भागना पराधीनता है, दीनता है। शुद्ध क्षत्रियत्व के बिना शुद्ध स्वाधीनता असम्भव है। इसीलिए क्षत्रिय के लक्षण में अपलायनम् को ही अद्वितीय स्थान है। इस कारण हमें अपनी हरएक बात में अपलायनम् का सेवन करना आवश्यक है।

—हि० न० जी०, ९।१।१९३०।]

- **स्वच्छन्दता की पराकाष्ठा स्वार्थ है; स्वतन्त्रता की परमार्थ।**
- **स्वच्छन्दता समाज का नाश करती है; स्वतन्त्रता समाज को जीवन देती है।**
- **लड़ते हुए मरजाना जीत है, धर्म है। लड़ने से भागना पराधीनता है, दीनता है।**
- **शुद्ध क्षत्रियत्व के बिना शुद्ध स्वाधीनता असम्भव है।**

८६. गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु हम सबकी स्पर्धा के योग्य थी। उनका रक्त वह सीमेण्ट है जो अन्ततोगत्वा दोनों कौमों को जोड़ेगा। कोई पैक्ट या समझौता हमारे दिलों को नही जोड़ेगा। पर जैसी वीरता गणेशशंकर विद्यार्थी ने बताई है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाण से पाषाण हृदयों को पिघलावेगी और पिघलाकर एक करेगी। पर यह जहर किसी तरह क्यों न हो, इतना गहरा फैल गया है कि

गणेशशंकर विद्यार्थी के समान महान, आत्मत्यागी और नितान्त वीर पुरुष का रक्त भी, आज तो हमसे इसे धो बहाने के लिए शायद काफी न हो। अगर भविष्य में ऐसा मौका फिर आवे तो इस भव्य बलिदान से हम वैसा ही प्रयत्न करने की प्रेरणा प्राप्त करें। मै उनकी दुःखिनी विधवा और उनके बच्चों के साथ अपनी आन्तरिक समवेदना प्रकट नही करता, पर गणेशशंकर विद्यार्थी की योग्य पत्नी और सन्तान के नाते उन्हें बधाई देता हूं। वह मरे नही हैं। आज वह तब से कही अधिक सच्चे रूप मे जी रहे है, जब हम उन्हे भौतिक शरीर में जीवित देखते थे और पहचानते न थे।

कुटुम्ब को आश्वासन नहीं, धन्यवाद

हृदय खून के आंसू रोता है, पर ऐसी धन्य मृत्यु के लिए आश्वासन क्या भेजा जाय? इस पवित्र, निर्दोष खून से आज नही तो किसी-न-किसी दिन तो हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होगी ही। उनके कुटुम्ब को आश्वासन नही, पर अनेक धन्यवाद! सब उनका अनुकरण करें।

महासभा-समिति में

महासभा समिति (कराची में) गांधी जी ने कहा—"यह दुःख होता तो है, तो भी जिस तरह गणेशशंकर की मृत्यु हुई है, वह मृत्यु धन्य है। अज्ञात और पुरुषार्थहीन निर्माल्य हिन्दू तो अनेक मर गये होंगे, पर उनकी अपेक्षा एकता कायम करने की कोशिश करते-करते गणेशशंकर का मरना स्वागत की बात है। उसी प्रकार किसी निर्माल्य और अपरिचित मुसलमान की अपेक्षा डा० अंसारी के समान प्रतिष्ठित सेवक के प्राण जायँ तो एकता का कायम होना आसान हो जाय।"
—हि० न० जी०, ९।४।१९३१।]

८७. इलाहाबाद का कांग्रेस अस्पताल : एक अपील

गत वर्ष जून में पं० मोतीलाल नेहरू बम्बई गये थे। वहां उन्होंने, कांग्रेस-अस्पताल, जो उम्दा काम कर रहा था, देखा। उन पर इसका अच्छा असर पड़ा, और इलाहाबाद लौटकर उन्होने वैसा ही अस्पताल इलाहाबाद में भी खोलने की इच्छा प्रकट की। बाद मे वह जल्दी ही गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें कैद की सजा दी गई। उनकी गैरहाजिरी में भी उनकी इच्छा पूरी करने के प्रयास किये

गये। अधिकांश में बम्बई के कुछ मित्रों की उदारता से इस अस्पताल के लिए कुछ रुपया और साधन इकट्ठा हुए। पं० मोतीलाल जी के जेल से छूटने पर स्वराज्य भवन के एक हिस्से में इस अस्पताल को विधिपूर्वक आरम्भ किया गया। उन्होंने इस अपील पर हस्ताक्षर करनेवालों की एक समिति द्रव्य-संग्रह करने और उसकी व्यवस्था करने के लिए नियत की और इन तीन हस्ताक्षर करनेवालों के साथ इलाहाबाद के डा० आर० एन० बैनर्जी और डा० जयराज बिहारी की एक व्यवस्थापक समिति कायम की। अस्पताल छः महीने से अधिक हुआ, काम कर रहा है, और भीतरी तथा बाहरी दोनों क्षेत्रों में उसने सुन्दर काम किया है।

जो थोड़ा द्रव्य इकटठा किया था, वह अब खर्च हो चुका है इसलिए समिति को यह विचार करना पड़ा कि अस्पताल आगे चलाया जाय या नही। महात्मा गांधी और दूसरे मित्रों की सलाह से उसे चलाने का ही निश्चय किया गया है। ऐसा प्रतीत हुआ कि जो सत्कार्य यह अस्पताल करता था उसका बन्द होना बदनसीबी की बात होगी और मुमकिन भी है कि आगे इस अस्पताल की विशेष आवश्यकता पड़ जाय। समिति ने और जिन मित्रों की उसने सलाह ली, उन्होंने यह महसूस किया कि इस बारे में उन्हें पं० मोतीलाल की इच्छानुसार काम करना चाहिए।

इसलिए आर्थिक सहायता के लिए यह अपील इस आशा से प्रकाशित की जाती है कि उदारतापूर्वक इसका जवाब दिया जायगा। स्वराज्य भवन में स्थायी रूप से अस्पताल रखने के प्रश्न का निर्णय अभी नही हुआ है। परन्तु समिति इतना द्रव्य इकट्ठा करना चाहती है, जिससे कम से कम तीन साल तक अस्पताल चल सके। वर्तमान मर्यादित रूप में यदि अस्पताल चलाया जाय, टो उसके खर्च का अन्दाज प्रति मास हजार रुपये का है।

एक उपयोगी काम करने के उपरान्त यह अस्पताल स्व० पण्डितजी की इच्छापूर्ति कर रहा है। इसका उद्देश्य उनकी स्मृति में बनाये जानेवाले किसी राष्ट्रीय स्मारक का स्थान ग्रहण कर लेना नही है। स्मारक का बड़ा सवाल अभी उठाया नही गया है, क्योंकि नेताओं ने देखा कि इस वक्त जनता की शक्ति को राष्ट्रीय युद्ध से विपथ न जाने देना चाहिए और वैसे भी यह सवाल अखिल भारत की और बहुत अधिक प्रतिनिधियों वाली समिति ही अपने हाथ में ले सकती है।

दान की रकम पं० मोतीलाल नेहरू, कोषाध्यक्ष कांग्रेस अस्पताल, स्वराज्य-भवन इलाहाबाद के पते से भेजी जानी चाहिए।

कमला नेहरू

मोहनलाल नेहरू, रमाकान्त मालवीय

गांधीजी की टिप्पणी

११ मई, १९३१

मै आशा रखता हूं कि जनता की ओर से इस अपील का तुरन्त ही जवाब मिलेगा। अस्पताल की व्यवस्था का काम करनेवालो के अतिरिक्त और किसी ने इरादतन इस पर दस्तखत नही किये है क्योंकि इसे किसी भी रूप में राष्ट्रीय स्मारक नहीं मानना है। परन्तु इसी कारण यह अपील कुछ कम महत्व की नही है। प० मोतील.ल नेहरू की एक इच्छा पूरी करने के लिए ३६ हजार की रकम न कुछ-सी है। इसलिए मै आशा करत. हूं कि श्रीमती कमला नेहरू और उनके साथियों की इस अपील का जवाव देने मे किसी भी तरह की ढिलाई या टालमटोल नही किया जायगा। पाठक जान ले कि अस्पताल के आरम्भ से ही कमला नेहरू उसकी आत्मा वनी है। इस अस्पताल को अपील में 'काम चलाऊ' क्यो कहा गया है, इस विषय मे जनता को आश्चर्य होगा सही। पर विचार यह देखने का है कि सस्था कैसा काम करती है और अनुभव से उसकी सच्ची आवश्यकता कितनी मालूम पड़ती है। दूसरे जव सव कुछ भट्ठी में तप रहा हो, तव विचार के अनुसार फिलहाल तो दैनिक आवश्यकता की पूर्ति करके ही सन्तोप मानने में अधिक-से-अधिक वुद्धिमानी है।

मो० क० गांधी

—न० जी०। हि० न० जी०, २१।५।१९३१।]

८८. संयुक्तप्रान्त के किसानों से

गत सत्याग्रह में पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सविनय भंग के अंगरूप कुछ जिलों मे करवन्दी आन्दोलन शुरू किया गया था। पर सरकार और कांग्रेस के वीच समझौता हो जाने के कारण सत्याग्रह और फलतः करवन्दी भी वन्द कर दी गई।

परन्तु उस समय आप लोग घोर अर्थ-कष्ट में थे। वैसे सावारण समय मे ही आपकी स्थिति खराव थी परन्तु इस साल वह अत्यधिक खराव हो गई है, क्योकि जो फसल आप हर साल वोते है, उसकी दर इस दफ़ा असाधारण रूप से घट गई है। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओ ने मुझे लिखा कि आपमें से वहुतेरे पूरा लगान चुकाने में विल्कुल असमर्थ है। कई जिलों में कुछ सौ गांवो में जांच की गई, जिससे पता चला कि स्थिति भयावह है। यह पाया गया कि आपकी कुल पैदावार के दाम इतने घट गये

हैं कि उसकी बिक्री से लगान अदा करने जितनी रकम भी नही मिल सकती। इसी सिलसिले में मैं गवर्नर को मिलने नैनीताल आया था। उन्होंने धैर्यपूर्वक मेरी बातें सुनी और हमने परिस्थिति पर पूरी तरह चर्चा की। उनकी सहानुभूति थी। मैंने उनसे कहा कि कुछ कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने मुझे विश्वास दिलाया है कि इधर सरकार ने किसानों के साथ रियायतें करने की जो सूचनाएं निकाली है वे उनके वास्तविक कष्ट को दूर करने के लिए काफी नही है। मैने उनके सामने कुछ प्रस्ताव रक्खे, जिन पर उन्होने विचार करने का वचन दिया।

इस दरम्यान मेरा यह कर्त्तव्य था कि मै आपको अपनी शक्ति के अनुसार कुछ सलाह दूं। कई साथियों के साथ स्थिति की चर्चा करते हुए मैंने घण्टों इसी चिन्ता में बिताये हैं। मुझे उन कुछ प्रमुख तालुकेदारों से निःसंकोच भाव से साफ-साफ़ बातें करने का भी लाभ मिला, जिन्होंने मेरा निमन्त्रण पाकर आने की कृपा की थी। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि जो प्रस्ताव नीचे दिये जाते है, साधारणतया वे उनसे सहमत थे।

और जिलों के अलावा नीचे लिखे जिलों में संगठित काम किया गया था:— आगरा, मथुरा, इलाहाबाद, रायबरेली, गोरखपुर, कानपुर, लखनऊ, प्रतापगढ़ और इटावा। इन जिलो के सम्बन्ध में यह पाया गया है कि फसली सन् १३३८ में हयाती और गैर दखीलकार काश्तकारों को रुपये में चार आने की माफ़ी मिलनी चाहिए। इस साधारण नियम में स्थानीय परिस्थिति के अनुसार आवश्यक हेर-फेर किये जा सकते है।

मुझसे कहा गया है, कुछ जिलों में काश्तकारों की स्थिति ऐसी है कि वे कम मुआफी से भी काम चला सकते है। कुछ जिलों में स्थानीय आपत्ति के कारण परिस्थिति और भी बिगड़ गई है। इसलिए प्रस्तावित माफ़ी की शर्तें स्वभावतः उन जिलों को लागू न होगी, जो बताई हुई रकम से अधिक दे सकते है और न उन्ही जिलों को लागू होगी जिनकी स्थिति उपर्युक्त जिलों से भी बदतर है। अवश्य ही, जिन जिलों का ऊपर जिक्र किया है, उनमें भी आपस मे से जो अधिक चुका सकते हों उन्हें अवश्य चुकाना चाहिए। कांग्रेस आशा रखती है कि हर एक काश्तकार अपनी शक्ति भर लगान जल्दी-से-जल्दी अदा कर देगा और साधारण नियमानुसार कोई भी रुपये मे अठन्नी या बारह अन्नी से, जैसी भी स्थिति हो, कम अदा न करेगा। परन्तु जिस तरह एक ही जिले मे ऐसे स्थान हो सकते हैं, जहां अधिक लगान चुकाया जा सकता है, उसी तरह यह भी सम्भव है कि कुछ स्थान ऐसे भी हों, जहां रुपए में अठन्नी या चवन्नी से भी कम ही अदा किया जा सकता है। मुझे आशा है कि ऐसे मामलों में ज़मीदार काश्तकारों के साथ उदारतापूर्वक व्यवहार करेंगे।

हर हालत में आप इसका ध्यान रक्खें कि जितना आप दें, चालू साल के लिए उतने की आपको चुकता रसीद मिल जाय।

मुझे पता चला है कि युद्धकाल मे कई काश्तकार वेदखल कर दिये गये थे और दूसरे वाद में भी वेदखल कर दिये गये है। यदि उन्हें उनकी जमीनें वापस न दी गई तो परिणाम स्पष्ट ही उस वातावरण के विपरीत होगा, जो समझौते के अनुसार पैदा किया जा रहा है। अतएव मुझे पूरी आशा है कि यहां वताये हुए हिसाव से लगान अदा कर देने पर वेदखल काश्तकारों को विना किसी प्रकार के जुर्माने के उनकी जमीने वापस दे दी जायंगी।

मुझे आशा है कि आप लोग तुरत लगान अदा करना आरम्भ कर देंगे। आप कुल आठ आना इसी समय न दे सकते हो, तो आपका लगान मुल्तवी हो जायगा, और अगली फसल तक वाकी वगैरा की वसूली के लिए आपके साथ किसी तरह की सख्ती न की जायगी।

मै सरकार को यह सलाह देना चाहता हूं कि आप लोगों से पूरा लगान न मिलने के कारण जमीदारो की आमदनी में जो कमी हो जायगी उसके विचार से वह उनकी मालगुजारी भी उसी अनुपात से घटा दे।

अन्त में मै आपको उस सलाह के वारे में सावधान कर देना चाहता हू, यदि वैसी सलाह आपको मिली हो, कि अव आपको जमीदार को लगान देने की जरूरत ही नही। मुझे आशा है कि चाहे कोई भी आपको यह सलाह दे, आप उस पर ध्यान न देगे। कांग्रेस वाले तो सलाह दे ही नही सकते। हम जमीदारो को नुकसान पहुंचाना नही चाहते। सम्पत्ति का नाश हमारा उद्देश्य नही है, हम केवल यह चाहते है कि उसका न्याय-संगत उपभोग किया जाय।

मुझसे कहा गया है कि आप कांग्रेस की वात तभी मानेंगे जव कांग्रेस वाले आपको विल्कुल लगान न देने की सलाह देंगे। परन्तु यदि कांग्रेस ने आपको अपनी शक्ति के अनुसार लगान देने की सलाह दी, तो आप उस पर ध्यान नही देंगे। समय आ गया है कि आप अपने सम्वन्ध के इस अपवाद को झूठा सावित कर दें।

आपने कुछ जमीदारों द्वारा या उनके वास्ते किये गये कठोर व्यवहार की शिकायत की है। कांग्रेस आपकी सव शिकायतों के वारे में जांच-पड़ताल करने की कोशिश कर रही है और वरावर करेगी और जमीदारों से आपकी वकालत भी करेगी और जहा कानूनी राहत अनिवार्य जान पड़ेगी वहां उसकी सलाह भी देगी। पर यह वात भी स्वीकार करनी होगी कि कभी-कभी कुछ किसान भी गलत रास्ते पर चले गये है और घातक आक्रमण कर वैठे है। ऐसी कार्रवाइयों से किसानों की विशुद्ध कीर्ति को कलंक लगता है, उनके कार्य को हानि पहुंचती है और सेवा के लिए

कांग्रेस की उपयोगिता कम होती है। क्योंकि अन्त में तो आप लोग ही कांग्रेस हैं। जहां तक कांग्रेस आपकी अधूरी प्रतिनिधि है, वह अपूर्ण ही रहेगी।

कृपा कर याद रखिए कि कांग्रेस सत्य और अहिंसा-द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। जिस हद तक किसान इन दो मुख्य सिद्धान्तों के पालन में पीछे रहेंगे उसी हद तक कांग्रेस भी असफल होगी। आप लाखों की तादाद में हैं। जब लाखों झूठे और हिंसक बन जाते है, तो आत्मनाश निकट आ जाता है। अतएव आप बिना हाथ उठाये चोट सह लें। शायद अब तक आप यह तो सीख चुके होंगे कि चोट का प्रतिकार करने का सबसे अच्छा उपाय चोट करनेवाले को कभी चोट न पहुंचाना है। हां, उसकी अनुचित आज्ञा का पालन करने से हमें हमेशा इन्कार करना चाहिए, फिर भले वैसा करने से हमें कितना ही कष्ट क्यों न सहना पड़े।

आपका मित्र और सेवक
मोहनदास करमचन्द गांधी

नैनीताल
२३ मई १९३१
—हिन्दी। नैनीताल, २३।५।१९३१। हि० न० जी०, २८।५।१९३१।]

८९. गांधी आश्रम, मेरठ

यह आश्रम आचार्य कृपालानी की कृति है। इस आश्रम की ओर से इसकी प्रवृत्तियों का परिचय देनेवाली एक सुन्दर छोटी पत्रिका प्रकाशित हुई है। १९२० में जब काशी में इसके जीवन का श्रीगणेश हुआ था, यह एक सूक्ष्म वस्तु थी। उसमें से बढ़कर आज अनेक शाखाओं वाली विशाल संस्था बन गई है, जिसका अपने प्रधान केन्द्र मेरठ में निज का मकान भी है। अब यह सेवा-संस्था के रूप में रजिस्टर्ड हो चुकी है। इसका मुख्य काम खादी पैदा करना और फैलाना है। तिसपर, यह जहां हो सकता है, मुफ्त दवाखानों, रात्रिपाठशालाओं का संचालन भी करती है। १९२० में इस संस्था ने ४८ रुपये की खादी पैदा की थी और, ३,१००) की बेची थी। १९३० में उत्पत्ति ४,२१,४९०) की थी और बिक्री ५,३२,३६१) की। इसकी ४५ इंच अर्जवाली खादी का भाव १९२१ में फी गज १) था और १९३० में साढ़े पांच आने। इस संस्था में बुनाई तक की रुई की क्रियाओं के अलावा धोने कुन्दी करने और रंगने के विभाग भी हैं। इन विभागों में उम्मीदवारों को भर्ती करके वह उन्हें शिक्षा देती है और मेरठ की गरीब स्त्रियों को गूंथने, चादर के

किनारों पर बेलबूटे निकालने वगैरा का काम देकर उन्हें रोजी देती है। कौन कह सकता है कि खादी का भविष्य उज्वल नही है, या वह देश के दरिद्र-से-दरिद्र के लिए सहायता रूप नही है?

—हि० न० जी०, ११।६।१९३१।]

९०. युक्तप्रान्त में किसान-संकट

उन्नाव जिले के एक गांव के जमीदार के खिलाफ अन्यत्र जो शिकायतें छापी गई है, उनकी ओर पाठकों का ध्यान दिलाता हूं। इस दफ़ा मेरे पास और भी गम्भीर समाचार आये हैं, जिनसे पता चलता है कि जमीदारों और ताल्लुकेदारों को उकसाने में सरकारी अधिकारियों का हाथ है। नीचे रायबरेली के डिप्टी कमिश्नर के हस्ताक्षरों से जमीदारों के नाम जारी किये गये दो गुप्त परिपत्रको—सरक्यूलरों की सच्ची नकल देता हूं:—

गुप्त

डिप्टी कमिश्नर्स आफिस

डी० ओ० १२१६ रायबरेली, १९-६-३१

प्रिय............

'तजवीज यह है कि...पुलिस थाने के कुछ आन्दोलकों पर केस चलाया जाय। मैं एहसान मानूंगा अगर आप मेहरबानी करके...पुलिस को हर तरह की मदद करेंगे।

"क्या आप इसके मुताबिक अपने एजेण्टों, यानी मैनेजरों और जिलेदारों वगैरह के नाम फरमान जारी कीजिएगा?

जमीदारों या सरकार के खिलाफ़ कांग्रेस, किसान सभा या पंचायतों की किसी भी काबिल एतराज कार्यवाई की इत्तला...थाने में की जानी चाहिए।

"आपको चाहिए कि आप इस मामले में अपने मातहतों को फुर्ती के साथ, उत्साहपूर्वक और निडर होकर काम करने की सलाह दें।

आपका सच्चा

डी० ओ० नं० ११

डिप्टी कमिश्नर्स आफिस, रायबरेली १९-६-३१

प्रिय,

मै देखता हूं आपके नाम खरीफ की बाकी और रबी के मुतालबे के हिसाब में

सरकार-द्वारा मंजूर की गई माफ़ी के अलावा..., रुपये निकलते हैं। इस साल की खास कठिनाइयों को मद्दनजर रखते हुए यह रकम बहुत बड़ी है और मैं आपको पहले ही काफी वक्त दे चुका हूं। मैं एहसान मानूंगा, अगर आप इस बकाया रक़म का कम-से-कम आधा इस महीने के अन्त तक अदा कर देंगे और बाकी उसके बाद जितनी जल्दी हो सके।

मेरे खयाल में मैं आपको पहले ही बता चुका हूं कि आप किस तरह लगान-वसूली का काम जल्दी से कर सकते हैं। मैं आपको सब तरह की कानूनी मदद देने को तैयार हूं। अगर आपकी रियासत में कुछ एसे गांव हैं, जहां वसूली का काम बिल्कुल बन्द है—आर्थिक कारणों से नहीं बल्कि करबन्दी आन्दोलन की वजह से, तो मैं आपको यह सलाह देता हूं कि आप कुछ ऐसे बागी काश्तकारों, उन काश्तकारों के खिलाफ़, जो अपने लगान का ठीक-ठीक हिस्सा दे सकते हैं लेकिन दे नहीं रहे हैं, बकाया लगान के लिए मुकदमे दायर कीजिए और फैसला होने से पहले जब्ती के लिए लिखिए। अगर रेवेन्यू वालों को कानूनी कार्रवाई करते समय पुलिस की रक्षा की जरूरत पड़े तो पुलिस दी जायगी; आप इस मौके से और पुलीस तथा रेवेन्यू कर्मचारियों की उपस्थिति से लाभ उठा कर गांवों में वसूली का काम जोरों से आगे बढ़ा सकते हैं। जिन जमींदारों ने मेरी सलाह मानकर काम किया है उनकी रियासतों में यह प्रयोग बहुत सफल हुआ है। लेकिन आपको मुस्तैदी से काम करना पड़ेगा। यह अच्छा होगा कि वसूली के काम की देखरेख आप खुद करें, मातहतों पर न छोड़ें, जो अपनी अकर्मण्यता का एक-न-एक बहाना बताने को सदा तैयार रहते हैं। कृपा कर इस पत्र को गुप्त समझिएगा।

आपका सच्चा

इन सरक्यूलरों से कांग्रेस और किसान-सभाओं के प्रति द्वेष का भाव स्पष्ट प्रकट होता है। सरक्यूलर तालुकेदारों को किसानों के साथ सख्ती करने को कहते हैं और उनके काम में सहायता पहुँचाने का वचन देते हैं। इन सरक्यूलरों के क्या मानी है, हम सब जानते है। इनका अर्थ शाब्दिक अर्थ से कहीं अधिक है। इनसे तालुकेदारों और जमीदारों को मनमानी करने का परवाना मिल जाता है।

ये परिपत्रक गुप्त क्यों हैं? किसी वजह से जिससे यू० पी० गवर्नमेण्ट को अथवा डिप्टी कमिनर को शरम आती हैं? या चूंकि ये सरक्यूलर पर्दे की ओट से हिसा के लिए उकसाने वाले है, इसलिए गुप्त है? मेरी राय में इन सरक्यूलरों से समझौते का स्पष्ट ही भंग होता है। इन सरक्यूलरों से पता चलता है कि किसलिए उक्त जिले में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के नाम नीचे लिखा असाधारण नोटिस जारी किया गया था—

फौजदारी दफा १४४ के मुताबिक हुक्म

"चूंकि मुझे यह बताया गया है कि जिले के किसानों की मौजूदा हालत को और किसानों तथा जमींदारों के आपसी तनाव को मद्देनजर रखते हुए, यह क़ाबिले ख्वाहिश है कि आप किसी तरह की तक़रीर न करें न कोई बात जबान से निकाल, न काश्तकारों में किसी प्रकार का प्रचार करें, क्योंकि बहुत मुमकिन है कि उससे अशान्ति पैदा हो, इसलिए मैं, एस० एस० एल० दर आई० सी० एस० जिला मैजिस्ट्रेट रायबरेली आपको...फौजदारी दफा १४४ के मुताबिक हुक्म करता हूं कि आप दो महीनों के लिए जिले के किसानों और जमींदारों के झगड़े या राजनीतिक परिस्थिति के बारे में न किसी प्रकार का भाषण करें, न कोई बात कहें, न किसी तरह की सभाओं में जायं, न किसी प्रकार की पत्रिकाएं बांटें, न चन्दा इकट्ठा करें और न किसी तरह की ऐसी लिखा-पढ़ी या प्रचार करें जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध किसानों की, मजदूरों की या राजनीति की समस्याओं से हो।

"मेरे हस्ताक्षर और कोर्ट की मुहर के साथ इस १० जून १९३१ को जारी किया गया।

जिला मजिस्ट्रेट, रायबरेली

यह लिखते हुए मुझे खबर मिली है कि यह नोटिस वापस ले लिया गया है। इस नोटिस के यह मानी थे कि कांग्रेस अपने तमाम काम कतई बन्द कर दें, मानो कांग्रेस के साथ सरकार की लड़ाई चल रही हो। समझौते को तोड़ने का यह बिल्कुल स्पष्ट और निहायत खराब ढंग था। भले के लिए या बुरे के लिए फिलहाल सरकार और महासभा के दरम्यान सुलह है। और प्रान्तीय सरकारों और जिला हाकिमों का यह फर्ज है कि वे सुलह की कदर करें। अगर उन्हें समझौता पसन्द नही है और वे समझते है कि कांग्रेस खेल नही खेल रही है तो उन्हें केन्द्रीय सरकार से कहना चाहिए कि वह समझौते से इन्कार कर दे। मै पाठकों को कहना चाहता हूं कि इस हुक्म के बारे में भी, जो स्पष्ट ही समझौते के बिल्कुल खिलाफ है, मैने यह सलाह दी है, कि जबतक मैं केन्द्रीय सरकार से निपट न लूं और कार्य समिति कोई निर्णय न कर ले कोई इस हुक्म का अनादर न करे। इसलिए मुझे इस बात की खुशी है कि संयुक्तप्रान्त की सरकार ने यह हुक्म लौटा लिया है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने जोरदार शब्दों में संयुक्तप्रन्त की सरकार का ध्यान इस हुक्म की ओर दिलाया था।

इस वापसी के साथ ही गुप्त परिपत्रक और उनमें प्रतिपादित नीति भी लौटा ली जानी चाहिए। जब मैं नैनीताल मे था, मुझे विश्वस्त रूप से पता चला था कि संयुक्तप्रान्त की सरकार की नीति किसी का पक्ष लेने की नही है। उसने

जिला हाकिमों को हिदायत दी थी कि वे जमींदारों और किसानों के दरम्यान पूरी पूरी निष्पक्षता का पालन करें। लेकिन जैसा कि नीचे लिखी रिपोर्ट के संक्षेप से पता चलता है स्पष्ट ही उक्त नीति में परिवर्तन किया गया है—

"रायबरेली की परिस्थिति में एकाएक एक बुरा परिवर्तन हो गया है। सन्धि के दिनों में सरकार ने कांग्रेस के संगठन पर हमला किया है। फौजदारी दफ़ा १४४ के मुताबिक उसके खास-खास कार्यकर्त्ताओं की जबान बन्द कर दी गई है। इस हुक्म की आज्ञाएं इतनी व्यापक और दूर तक पहुंचनेवाली हैं कि एक बार इस दफ़ा का शिकार होने पर कोई भी कार्यकर्त्ता आज रायबरेली में किसी भी प्रकार की आवश्यक सेवा करने के लिए बिल्कुल निकम्मा हो जाता है। रायबरेली की जिला कांग्रेस कमेटी के सभापति, मंत्री, तहसीलों के मुख्य कार्यकर्त्ता और जिला कांग्रेस कमेटी के कार्यशील सदस्य, सब-के-सब दफ़ा १४४ के शिकार हैं। सन्धि के दिनों में कांग्रेस के संगठन को इस तरह दबा देने के इस अप्रत्यक्ष तरीके का लोग खूब विरोध कर रहे हैं। लोकमत की और स्वयं हमारी यह इच्छा है कि हम जल्दी-से-जल्दी इस हुक्म का अनादर करें। फिर भी हमने सन्धि की शर्तों का पालन किया है, हालांकि हम यह महसूस करते हैं कि इस तरह हम जिले के किसानों की इस नाजुक ऐतिहासिक अवसर पर सेवा करने के अपने अधिकार से अन्याय-पूर्वक वञ्चित रक्खे जाते हैं।

"जिले के डिप्टी कमिश्नर जब से सर मालकम हेली की मुलाकात लेकर वापस आये हैं, तब से यानी जून के पहले सप्ताह से यह परिवर्तन स्पष्ट ही पाया गया है। इसी समय से किसानों के प्रति अधिकारियों का रुख, जो पहले सहानुभूतिपूर्ण था, अब दुर्भाव में बदल गया है, और आज रायबरेली में जिले के एक छोर से दूसरे छोर तक दमन का दौरदौरा पाया जाता है। सरकारी सहायता का विश्वास मिलने से ताल्लुकेदारों ने लगान-वसूली के अपने पुराने जंगली तरीकों से काम लेना शुरू किया है। अत्याचारपूर्ण ग़ैर-कानूनी तरीकों का छूट से उपयोग किया जा रहा है। एक ताजा उदाहरण है, कि अभी गत परसों ही एक काश्तकार रायबरेली के सिविल अस्पताल में भर्ती किया गया है, उसकी एक आंख फूट गई है, और नाक की हड्डी टूट गई है। यह उस संगठित हमले का नतीजा है, जो ताल्लुकेदार के लोगों ने लगान-वसूली के लिए गांववालों पर किया था। अभी उस दिन एक गर्भवती स्त्री बेहोश होने तक पीटी गई। उसका मामला अदालत में पेश है। ताल्लुकेदार आमतौर पर यह मानने लगे हैं कि सिर फोड़ने और हड्डी तोड़ने के सिवा वे बेखटके किसान को किसी भी हद तक मार सकते हैं, क्योंकि उन्हें विश्वास है कि गवर्नमेण्ट इन मामले में सुनी-अनसुनी करेगी। श्री. . .के जोड़ के

तालुकेदार, जो पहिलेही कठोर थे, अब और भी अधिक कठोर हो गये हैं। वे लगान-वसूली के लिए गांवों में बराबर दस-बारह लठैतों द्वारा डाके डलवाते हैं। वे किसानों को गालियां देते, मारते और भयभीत करते है। मुर्गा बनाने की प्रथा, यानी बेहोश होने तक किसान को धूप में खड़ा कर सब गांव वालों के सामने जूते से पीटने का रिवाज, बिल्कुल मामूली-सा हो गया है। लेकिन यह बहुत ही अपमान-जनक है, और इससे किसानों में गम्भीर असन्तोष पैदा हो गया है। ऐसे तालुकेदारों का यह भी एक आम रिवाज है कि वे लगान की मद में जमा करने के लिए किसी प्रकार की अदालती कार्रवाई के बिना किसान की जायदाद जब्त कर लेते हैं। ऐसे उदाहरण हमारी नजर में हैं, जिनमें जबरदस्ती किसान के भूसे पर कब्जा करके वह तालुकेदार के यहां पहुंचाया गया है; मवेशी के साथ भी यही कार्यवाही की गई है; बच्चों के बदन से गहने नोच लिये गये हैं और पिता को लगान की अदायगी के लिए मजबूर करने की गरज से बालक पीटे गये हैं।

"सरकार ने जमींदारों को वचन दिया है कि वह इन्साफ़ मिलने से पहले ही उन्हें किसानों की जायदाद जब्त करने देगी। अमीन के साथ कुछ पुलीसवाले इसीलिए रहते हैं कि जरूरत पड़ने पर डिग्री की बजाबरी में उसकी मदद कर सकें, लेकिन आमतौर से उनका उपयोग किसानों को भयभीत करने के लिए किया गया है। रायबरेली जिले के हरएक डिवीजन में आपको ऐसे सैकड़ों मामले मिलेंगे।

"सरकार ने जमींदारों को इस बात का भी पूरा-पूरा आश्वासन दिया है कि अगर वे देहात के कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध दफ़ा १०७ या किसी और दफ़ा के अनुसार जाब्ते की कार्रवाई करेंगे, तो सरकार उनकी सहायता करेगी। जमींदारों से यह बात भी निश्चयपूर्वक कही गई है कि अगर उन्हें अच्छे गवाह न भी मिलें तो मौजूदा हालत में मामूली गवाहों से काम चल सकेगा। फलतः एकाएक एक बड़ी तादाद में ऐसे मामले दायर हो चुके हैं और उससे ज्यादा तादाद में अभी होने वाले हैं। इस प्रकार पन्द्रह दिन के अन्दर ही रायबरेली जिले में महासभा के संगठन के टूट पड़ने की पूरी सम्भावना है। लाठी प्रहार तो मामूली बात हो रही है।"

भग्न सन्धि की इस दुःखमय कथा की कुछ दुःखपूर्ण बातें मैने इसमें से निकाल डाली है।

इस चित्र को पूरा करने के लिए मै यह भी कह दू कि मैंने शायद हजारों की संख्या में, किसानों के नाम जारी की गई नोटिसों की प्रतियां देखी हैं, जिनमें उन्हे इस बात के लिए आगाह किया गया है कि अगर उन्होने फला महासभा-वादियो के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध रखा, तो बहुत सम्भव है कि उनपर मामला चलाया जाय।

और ये सब कार्रवाइयां डिप्टी कमिश्नर के नैनीताल जाकर गवर्नर से मिल आने के वाद हुई है। मैं उम्मीद करता हूं कि इस नैनीताल की मुलाकात का उस दमन-चक्र के साथ कोई सम्बन्ध नही है—उक्त रिपोर्ट से जिसकी मनस्विता जाहिर है। यह सब कुछ ही क्यो न हो, महासभा वालों की ओर से जल्दबाजी न होनी चाहिए और जबतक कार्यसमिति परिस्थिति पर विचार न करले, कोई ऐसे हुक्मों को भंग न करे। कार्यसमिति की आगामी वैठक ७ तारीख को होनेवाली है, उसमें वह उस असाधारण परिस्थिति पर विचार करेगी, जो इधर कई प्रान्तों में पैदा हो रही है।

——अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, २।७।१९३१।]

९१. संयुक्य प्रान्त में दमन

सुल्तानपुर में

स्थानीय महासभा समिति के मन्त्री लिखते है—

"यह खूब जानी हुई बात है कि इस प्रान्त के काश्तकार अपने लगान का आधा भी अदा करने में समर्थ नहीं है, फिर भी इस जिले के ठिकानों के कोर्ट आव वार्ड्स के मैनेजर, तालुकेदार और दूसरे छोटे-मोटे ज़मींदार किसानों के साथ जोर-जबर्दस्ती करके और उन्हें दबाकर उनसे पूरा लगान वसूल करने की कोशिश कर रहे हैं। ठिकानों के कोर्ट आव वार्ड्स के मैनेजर ने फौजदारी दफ़ा १०७ के अनुसार कई जत्थों में कुछ गांवों के काश्तकारों पर मामला चलाने की पहल की है। और तालुकेदारों ने उनका अनुसरण किया है। इस तरह इस दफ़ा के मुताबिक करीब ९० आदमियों पर केस चलाये गये हैं। भवन शाहपुर के तालुकेदार बनाम बेनी प्रसाद वगैरा का जो केस मुसाफिर खां एस० डी० ओ० की अदालत में पेश है उसमें काश्तकार लगान अदा करने को तैयार थे, लेकिन उन्हें बरी करने के लिए यह पर्याप्त नहीं समझा गया और उनसे कहा गया कि वे तालुकेदारों से माफी मांगें और अपने गांव में जो राष्ट्रीय झण्डे उन्होंने लगा रक्खे हैं उन्हें निकाल डाले। उनके ऐसा करने से इन्कार करने पर वे गिरफ्तार करके ता० १८ जून १९३१ के दिन इस बिना पर जेल हवालात भेज दिये गये कि वे समाज के लिए खतरनाक हैं—यह मानकर कि बहुत सम्भव है कि वे सुलह को भंग करेंगे और सार्वजनिक शान्ति में खलल डालेंगे। इसलिए या तो उन्हें मामले की अगली सुनवाई के वक्त हाजिर होने के लिए जमानत देनी चाहिए या जेल जाना चाहिए। चूंकि इस मामले की

सुनवाई कई बार हो चुकी थी और इस दरम्यान नतीजा कुछ भी न निकला था, काश्तकार और उनके सलाहकार ऐसे इत्तिफाक के लिए तैयार न थे, फलतः वे बेचारे जेल में सड़ रहे हैं।

"सरकारी अधिकारी ऐसे भाव से गांधी-इरविन समझौते का पालन कर रहे है! फौजदारी दफा १४४ का वेखटके उपयोग किया जा रहा है। जिला महासभा समिति के तमाम खास-खास लोगों को, जिनमें सभापति स्वामी नारायण देव, उपसभापति पं० रामलाल और संगमलाल वकील और मन्त्री श्री पी० टी० सत्यदेव शास्त्री भी शामिल हैं, इस तरह की नोटिसें मिली हैं। इस स्थान के स्थानापन्न डिप्टी कमिश्नर इस बात के लिए अपनी शक्ति भर कोशिश कर रहे हैं कि लन्दन में दुबारा गोलमेज परिषद के करने से बहुत पहले वह महासभा की प्रवृत्तियों को कुचल डालें।"

मथुरा में

स्थानीय महासभा के मन्त्री लिखते है—

"२६ जून को रात को नौझील में तेज के श्री रघुवीर सिंह के सभापतित्व में एक सार्वजनिक सभा हुई थी। एकाएक कुछ कान्स्टेबलों के साथ सब-इन्सपेक्टर पुलिस, गांव का चौकीदार और कुछ दूसरे लोग सभास्थान पर आ पहुंचे और जबर्दस्ती सभा भंग करने के लिए आगे बढ़े। खैर जिला अलीगढ़ की तहसील महासभा समिति के सभापति श्री जगन्नाथ जी को, जो उस वक्त भाषण कर रहे थे, उन्होंने गालियां दीं और धमकी देने तथा जोर-जबरदस्ती का प्रदर्शन करने पर भी श्रोताओं में से जिन लोगों ने तितरवितर होने से इन्कार किया वे या तो सभास्थान से घसीट कर बाहर निकाले गये या धक्का देकर वहां से दूर हटाये गये। जब कुछ लोगों ने सब-इन्सपेक्टर पुलिस से यह कहा कि वह पुलिस को ऐसा व्यवहार करने से रोके, तो वह उबल पड़ा और उन्हें गाली देने लगा। यही नहीं, उसने खुद लोगों को पुलिस से पिटवाया भी। लाठी की चोट के कारण नौझील के श्री घूरेलाल वेहोश हो गये और उन्हें सिर पर १ इंच गहरा तथा दो इंच चौड़ा घाव हो गया। उन्हें शरीर के दूसरे कई भागों पर, जैसे कि पैर, पीठ, छाती, चूतड़ वगैरह पर भी वहुतेरी लाठियां पड़ीं। इतने से सन्तुष्ट न होकर पुलिस ने उनके लड़के पर भी हमला किया और श्री इन्द्रमणि, खेर तहसील महासभा समिति के सभापति पण्डित जगन्नाथ और वहीं के कांग्रेस कार्यकर्त्ता श्री भूपति सिंह और दामोदर भी पुलिस के इस आक्रमण के शिकार हुए।"

इन आरोपों के रहते हुए और अखबारों में छपे हुए लखनऊ के इस संवाद

के सामने कि लगभग ७०० मुकदमे उधर पेश है, इस सूचना से विश्वास पैदा नहीं होता कि जिन गुप्त सरक्यूलरों का जिक्र पिछले सप्ताह इन स्तम्भों में किया गया था, वे वापस ले लिये गये हैं। अगर इस वापसी के बाद सब जगह की स्थिति में इस तरह सुधार न हुआ और मुकदमे बन्द न हुए तो इस वापसी का कोई अर्थ नहीं। यह तो एक पकड़ी हुई भूल को नाम मात्र के लिए सुधारना ही हुआ। युक्तप्रान्त में पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त के मार्फत महासभा और सरकार के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। सरकार इस बात की शिकायत नही कर सकती कि पन्तजी मदद करने को राजी न थे या कांग्रेस का प्रभुत्व उसके कार्यकर्त्ताओं पर से उठ गया था। सन्धि के इन दिनों में सभा का जबर्दस्ती तितर-बितर किया जाना कभी न्यायोचित नही हो सकता। गत २४ मई को जब मैं मथुरा से होकर गुजर रहा था, वहां के लोगों ने मुझे मथुरा से कुछ दूर स्थित बिजरी गांव में पुलिस के धावे का किस्सा सुनाया था। मैंने लोगों को सलाह दी थी कि वे उच्चाधिकारियों से इस बात की शिकायत करें। लेकिन जहां तक मुझे मलूम है उन्हें कोई राहत नही मिली। मैंने जानबूझ कर यह समाचार रोक रक्खा, हालांकि इस सम्बन्ध में तफसीलवार लेखा मेरे पास मौजूद था।

—हि० न० जी०, ९।७।१९३१।]

९२. गणेशशंकर-स्मारक

गणेशशंकर विद्यार्थी स्मारक कोष की यह अपील जनता के सामने बहुत अर्से से पेश है। इस अपील पर पं० जवाहरलाल ने और दूसरों ने, जो स्वर्गीय विद्यार्थी जी के व्यक्तिगत मित्र और साथी थे, दस्तखत किये हैं।

श्री श्रीप्रकाश सेवाश्रम, बनारस छावनी, मन्त्री और कोषाध्यक्ष हैं। कोष की तमाम रकमें उन्ही को भेजनी चाहिए। इस स्मारक के उद्देश्य इस प्रकार है—

१. हिन्दुओं तथा मुसलमानों की रक्षा करते हुए, गणेशशंकर ने जिस जगह देह छोड़ी वहां फव्वारा या स्तम्भ या ऐसा ही कोई स्मारक-चिह्न बनाना।

२. 'प्रताप ट्रस्ट' की सहायता करना। गणेशशंकर ने यह ट्रस्ट बनाकर अपने प्रसिद्ध पत्र 'प्रताप' की व्यवस्था इसके सुपुर्द कर दी थी। उनके जीवन-काल की मुख्य सेवा इस पत्र के द्वारा हुई है। 'प्रताप' की नीव को मजबूत बनाने के लिए उसके ट्रस्ट की सहायता करनी है।

३. कानपुर जिले के नरवल गांव में स्थापित आश्रम की मदद करना। इस आश्रम के द्वारा करीब २०० गांवों का संगठन हुआ है। कताई और खादी-प्रचार इस आश्रम के कार्य के मुख्य अंग हैं।

४. शेष रकम संयुक्त प्रान्तीय समिति को इस शर्त पर दी जाय कि वह उस द्रव्य द्वारा गणेशशंकर राष्ट्रीय सेवा-सघ की स्थापना करे। यह संघ संयुक्त प्रान्तीय सेवा-सघ के ढंग पर ही यानी प्रान्त के पूरे समय के सेवको की मदद करने के लिए ही, कायम किया जाय।

स्मारक समिति ने सिर्फ एक लाख रुपये के लिए अपील की है। मेरी राय में स्मारक के उद्देश्य के लिए, और स्व० विद्यार्थी जी के स्मारक के लिए यह रकम वहुत ही कम है। इसलिए मै आशा रखता हूं कि जल्दी ही इसका जवाव मिलेगा जिससे समिति घन-संग्रह का काम वन्द करके स्मारक का काम शुरू कर सके।

मो० क० गांधी

—गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, ३०।७।१९३१।]

९३. युक्तप्रान्त में अत्याचार

यू० पी० में जगह-जगह कांग्रेस के कार्य में वावा डाली जाती है। शान्ति-पूर्ण सभाएं भंग कर दी जाती है और कांग्रेस कार्यकर्त्ताओ पर अत्याचार किये जाते हैं। उदाहरणार्थ मथुरा जिले के वझारी गांव मे २० मई को तीन लारियों पर पुलिस वाले पहुंचे। प्रायः हर एक कांग्रेस कार्यकर्त्ता के घर पर हमला किया। राष्ट्रीय झण्डे छीन कर फाड़े और जला डाले गये। लोगों पर डकैती जैसे भयंकर झूठे अभियोग लगाये जाकर उनके खिलाफ झूठे सवूत गढे जा रहे हैं। नौझील मे (मथुरा) में २६ जून को एक शान्तिपूर्ण सभा जवरदस्ती भंग कर दी गई। जिन लोगों ने हटने से इन्कार कर किया वे घसीट कर अलग कर दिये गये। लाठियां भी चलाई गईं। लाठी की मार से श्री गोरेलाल वेहोश हो गये। रयाल मे रहमत उल्ला नामक काग्रेस-कार्यकर्त्ता को पुलिसवालों ने १० जुलाई को जूते से पीटा और गांव छोडकर जाने को तरह-तरह की धमकियां दी। मथुरा जिले के ५३ काग्रेस कार्यकर्त्ताओं पर दफा १०८ (नेकचलनी की जमानत मुचलके दाखिल करने) के और सुल्तानपुर और वहराइच जिला काग्रेस कमेटी के सभी प्रमुख कार्यकर्त्ताओ पर १४४ दफा के मुकदमे चल रहे है। वारावंकी भर में १४४-

दफा लगा दी गई है। रायबरेली में ३०० मुकदमे चल रहे हैं; पंचों, सरपचों और कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को फंसाने के लिए १४४ दफा का प्रयोग किया जा रहा है। समन में साफ लिख दिया जाता है कि यदि तुम पूरा लगान अदा कर दो, जमीदार से माफी मांगो, अपने घर और गांव से राष्ट्रीय झण्डा हटा दो और कांग्रेस के स्वयंसेवकों की भर्ती करना छोड़ दो तो मुकदमा उठा लिया जायगा। ७ जून को बारावंकी के डिप्टी कमिश्नर ने ददरा के लोगों को कांग्रेस से अलग हो जाने और गांधी टोपी उतार देने के लिए दबाया और इस प्रतिज्ञापत्र पर दस्तखत कराने की कोशिश की कि कांग्रेस-कमेटी से हमारा कोई सम्बन्ध नही है। २२ जून को रामनगर थाने का दारोगा एक गांव के तीन आदमियों को गिरफ्तार कर ले गया और दूसरे लोगों को धमकाया कि कांग्रेस से इस्तीफा देकर अलग न हुए तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा। बस्ती में जिला मैजिस्ट्रेट ने खुले तौर पर गांधी टोपी लगाने की मनाई की और गोंडा जिले में इसी कारण एक कार्यकर्त्ता बुरी तरह पीटा गया। कु० राघवेन्द्र प्रताप सिह डिप्टी कमिश्नर से मिलने गये तो उन्हें यह धमकी दी गई कि इस जिले में कांग्रेस का काम बन्द न हुआ तो आपके हक में ठीक न होगा।

सरकारी कर्मचारियों के इशारे से नही तो उनकी उपेक्षा के कारण जमीदारों के जरिए भी लोग बुरी तरह सताये जा रहे है। रायबरेली जिले के तालुकेदारों ने सरकार की सहायता का वचन पाकर लगान की वसूली में लोगों पर पाशविक अत्याचार किये। उनके संघटित आक्रमण से हाल ही में एक किसान की आंख फूट गई और नाक की हड्डी टूट गई। एक गर्भवती स्त्री मारते-मारते बेहोश कर दी गई। बहराइच जिले के नानपारा में पुलिस और जमीदारों ने मिलकर कांग्रेस स्वयंसेवकों और किसानों को मारा और प्रमुख कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया और कई स्वयंसेवकों के घर जला दिये गये। गोंडा जिले की बलरामपुर रियासत के बरईपुर गांव को मई के पहिले हफ्ते में पुलीस और ताल्लुकेदार के आदमियों ने घेर लिया; लोगों को फौरन लगान दाखिल करने को कहा गया; उन्होंने दो दिन की मुहलत मांगी, वह तक न देकर उन्हें बुरी तरह पीटा गया और फिर उनमें से २३ आदमी कई दफाएं लगाकर गिरफ्तार कर लिये गये। तीसरे दिन फिर २५० आदमियों के साथ उस गांव पर चढ़ाई की गई। स्त्रियों तक को धक्के-मुक्के खाने पड़े; वे नंगी और बेइज्जत की गई। मार से एक आदमी मर तक गया। लोगों के घरों से अनाज निकाल कर मिट्टी के मोल नीलाम कर दिया गया। सिमरिया गांव में तीन दिन तक किसी आदमी को गांव के किसी कुएं से पानी न भरने दिया गया; लगान चुका देने पर ही उन्हें पानी भरने की

इजाजत मिली। स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया गया। उनके साथ एक घोर अनुचित कार्य किये जाने की भी शिकायत मिली है।

इलाहाबाद जिले में किसानों को जूतों और डण्डों से पीटा जाना, भाले और दूसरे हथियारों से काम लिया जाना और किसानों को तंग और बेइज्जत करने के लिए जितने भी उपाय हो सकते हैं, सबके काम लिया जाना आम बात रही है। गोरखपुर जिले में जमीदारों ने खूब मनमानी चला रक्खी है। नमूने के लिए सिर्फ दो घटनाएं दी जाती हैं। ३१ अप्रैल को सिसवा बाजार के जमीदार ने १५० बदमाशों के साथ खेसरों, गिदवापाल, मनसा, छपरा और अहरौली गांवों पर चढ़ाइयां की और राजबली नव्वा, लूनिया, भीमल और चौकर का माल-असबाब लुटवा लिया। राजनगर में एक जमीदार ने पुलिस की सहायता से किसानों पर गोली चलाई। एक आदमी मर गया। किसानों को धूप में खड़ा कर मुर्गा बनाना, जूतों से पीटना और बिना जाब्ते की कार्रवाई के उनके माल-मवेशी जब्त कर लेना मामूली बात हो रही है। उन्नाव में लाठी-डण्डे के अन्धाधुन्ध प्रयोग, ताले तोड़कर दरवाजा उतार कर घर में घुस जाने, स्त्रियों को अपमानित करने और उनके गहने लूट लिये जाने के अनेक उदाहरण हैं। आगरा जिले में किसानों से सरकारी कर्मचारी साफ कह रहे हैं कि कांग्रेस का साथ छोड़ो, तब छूट मिल सकती है। इसीलिए सैकड़ों गांवों को छूट नही मिली।

मो० क० गांधी

—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, २७।८।१९३१।]

९४. हमारी असफलता

इलाहाबाद का दंगा

इलाहाबाद में—जो कि महासभा (कांग्रेस) का सदर मुकाम है—साम्प्रदायिक दंगा होने और उसके लिए पुलिस ही नहीं बल्कि फौज को भी बुलाने की जरूरत पड़ने से मालूम पड़ता है कि महासभा अभी इस योग्य नहीं हुई कि ब्रिटिश सत्ता का स्थान ले ले। यह बात चाहे जितनी नागवार लगे, लेकिन अच्छा यही है कि हम इस नग्न सत्य को महसूस करें और उसका मुकाबला करें।

महासभा सारे भारत के प्रतिनिधित्व का दावा करती है, न कि सिर्फ उन थोड़े से लोगों का जो कि उसके सदस्य हैं। इसलिए जो लोग उसके विरोधी हैं और जो हो सके तो इसे कुचल भी डालेंगे, उनका भी इसे प्रतिनिधित्व करना चाहिए।

जबतक हम इस दावे को इस अच्छाई के साथ सिद्ध न करें तबतक हम ऐसी स्थिति में नहीं हो सकते कि ब्रिटिश सरकार को हराकर स्वाधीन राष्ट्र के रूप में अपना काम चला सकें।

ब्रिटिश शासन को चाहे हम हिंसा से हटाना चाहें या अहिंसा से, यह बात तो दोनों ही सूरतों में लागू होती है।

बहुत सम्भव है कि जब ये पंक्तियां छपकर प्रकाशित होंगी तबतक इलाहाबाद तथा अन्य स्थानों में शान्ति स्थापित हो चुकी होगी। मगर एक संस्था के रूप में महासभा की सम्पूर्ण रूप से ब्रिटिश सत्ता का स्थान लेने की तैयारी है या नही, इस बात की जांच-पड़ताल करने में हमें उससे कोई मदद नहीं मिलेगी।

कोई भी कांग्रेसवादी गम्भीरता के साथ इस बारे में सन्देह नहीं करेगा कि इस समय महासभा ऐसी स्थिति में नही है कि वह जो चाहे सो कर सके। अगर उसमें ऐसी सामर्थ्य हो तो वह इसके लिए किसी के कहने की प्रतीक्षा नहीं करेगी। लेकिन हरेक कांग्रेसवादी का यह विश्वास है कि महासभा तेजी के साथ ऐसी संस्था बन रही है। हरिपुरा की ज्वलन्त सफलता को इस बात के अत्यन्त ठोस सबूत के रूप में पेश किया जायगा।

ये दंगे और दूसरी चन्द बातें ऐसी हैं जिनपर हमें ठहरकर यह सोचना ही चाहिए कि क्या सचमुच महासभा का विकास हो रहा है और वह अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती जा रही है? मुझे यह मानना ही पड़ेगा कि यह दावा करने का अपराधी मैं ही हूं। क्या ऐसा करने में मैंने जरूरत से ज्यादा जल्दबाजी नही की?

मेरा यह विश्वास है कि महासभा की व्यापक वृद्धि उसके द्वारा अहिसा की नीति का स्वीकार और पालन करने से हुई है। फिर वह चाहे कितनी ही अधूरी क्या न हो। लेकिन अब कांग्रेसी अहिंसा के रूप पर विचार करने का वक्त आ गया है। सवाल यह है कि यह अहिंसा कमजोर और असहायों की अहिंसा है या बलवान और सशक्तों की? अगर कमजोरों की हो तो यह हमें अपने ध्येय पर कभी नही पहुंचायेगी। बल्कि देर तक इसका पालन किया गया तो हमें हमेशा के लिए स्वराज्य के अयोग्य बना देगी। क्योंकि कमजोर और असहाय तो अमल में इसलिए अहिसक बनते हैं कि इसके सिवा वे कुछ कर ही नही सकते लेकिन वस्तुतः उनके दिलों में हिसा समाई रहती है और उसके प्रदर्शन के लिए वे केवल अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं। अतः कांग्रेसवादियों के लिए यह आवश्यक है कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से इस बात की जांच करें कि उनकी अहिंसा

किस किस्म की है। अगर उसका मूल सच्ची ताकत में न हो तो महासभा के लिए सबसे अच्छी और ईमानदारी की बात यह होगी कि वह ऐसी घोषणा करके अपने व्यवहार में आवश्यक रद्दो बदल कर ले।

अब तक याने सत्रह साल तक अहिंसा पर अमल कर लेने के बाद महासभा को इतनी सामर्थ्य तो हो ही जानी चाहिए कि वह कुछ हजार नही बल्कि लाखों ऐसे स्वयंसेवको की अहिसक सेना खड़ी कर सके जो उन सब अवसरों पर काम आ सके जिनके लिए कि पुलिस और फौज की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि शान्ति-स्थापना के लिए मरनेवाले एक वीरगुप्ता ही नही बल्कि सैकड़ों सामने आ सकें और अहिंसक सेना हथियारबन्द सैनिकों की तरह न केवल दगे के वक्त बल्कि शान्ति के समय भी काम करें। ये सैनिक बराबर ऐसी रचनात्मक हलचलो मे लगे रहेगे जिनसे कि दंगों का होना ही नामुमकिन हो जाय। साथ ही जिस प्रकार उनका यह फर्ज होगा कि वे विविध जातियों को सम्मिलित करने के अवसर ढूढ़ते रहें, शान्ति का प्रचार-कार्य करते रहें, ऐसी हलचलो में लगे रहें जिससे अपने मुहल्ले या डिवीजन के हरेक मर्द-औरत बच्चे से सम्पर्क बना रहे और भीड़ के क्रोध को शान्त करने के लिए पर्याप्त सख्या में अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार रहें। कुछ सौ या कुछ हजार ऐसी निर्दोष मृत्युएं ऐसे दंगों को हमेशा के लिए समाप्त कर देंगी। जानबूझ कर भीड़ के क्रोध का शिकार होनेवाले कुछ सौ तरुण स्त्री-पुरुषों की आहुति ऐसे पागलपन का मुकाबला करने के लिए पुलिस और फौज-प्रदर्शन की बनिस्वत निश्चय ही किसी भी दिन एक सस्ता और बहादुराना उपाय ही होगा।

यह कहा जाता है कि जब हम स्वाधीनता प्राप्त कर लेगे तब दंगे तथा अन्य ऐसी बातें नही होंगी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि स्वतन्त्रता की लड़ाई के दर्मियान अगर हम अहिसात्मक कार्य के तत्व को अच्छी तरह समझ कर हरेक कल्पनीय परिस्थिति में उसका इस्तेमाल न करें तो हमारी यह आशा थोथी ही होगी। जिस हद तक कि कांग्रेसी मन्त्रियों को पुलिस या फौज का सहारा लेना पड़ा है उस हद तक मेरी राय में हमें अपनी असफलता मंजूर करनी ही चाहिए। क्योंकि दुर्भाग्य-वश यह बिल्कुल ठीक है कि मन्त्री लोग इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे। अतः मेरी ही तरह अगर हरेक कांग्रेसवादी और काग्रेस-कार्य-समिति भी, यह सोचती हो कि हम असफल हुए हैं तो मै चाहूंगा कि वे इस बात पर विचार करें कि हम असफल क्यो हुए?

—अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, २६।३।१९३८।]

९५. कमला नेहरू-स्मारक

गत १६ तारीख को इलाहावाद में मुझे कमला नेहरू-अस्पताल की आधार-शिला रखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अस्पताल एक सच्ची देश-सेविका और महान् आध्यात्मिक सौन्दर्य रखनेवाली महिला का न केवल उपयुक्त स्मारक होगा, बल्कि उन्हें दिये हुए मेरे इस वचन की पूर्ति भी उससे हो जायगी कि उनकी मृत्यु के बाद भी मै यह देखते रहने का प्रयत्न करता रहूंगा कि जिस काम की उन्होने अपने ऊपर जिम्मेवारी ले रक्खी थी वह ठीक तरह से चल रहा है या नही। वह अपने स्वास्थ्य की शोध में यूरोप जा रही थी। उनकी वह युरोप-यात्रा मृत्यु-शोध की यात्रा साबित हुई। जाते वक्त उन्होंने मुझे लिखा था कि मैं या तो उनके साथ-साथ बम्बई तक चलूं या उन्हें देखने सीधे बम्बई पहुंच जाऊं। मैं बम्बई गया। उन्हें जो थोड़ा-सा वक्त मैं दे सका उस बीच में उन्होंने मुझसे कहा—"अगर मेरा शरीर युरोप में छूट जाये, तो जवाहरलाल जी ने स्वराज्य-भवन में जो अस्पताल खोल रक्खा है और जिसे कायम रखने के लिए मैंने इतना तमाम परिश्रम किया है उसे देखते रहने का आप प्रयत्न करते रहेंगे न कि उसकी बुनियादी स्थायी हो गई है?" मैने उन्हें वचन दे दिया कि मुझसे जो कुछ हो सकेगा वह जरूर करूंगा। इस स्मारक-कोप के लिए जो अपील निकाली गई थी उसमें मेरे शामिल होने का आधार अंशतः मेरा यह वचन भी था। परिस्थितियो से विवश होकर धन-संग्रह के काम में अधिक सक्रिय भाग नही ले सका। अपील पांच लाख के लिए की गई थी, पर आधी ही रकम आई है। स्मारक का शिलान्यास करते समय मैंने उपस्थित विराट् जन-समूह से अपील की, जिसमें धनी थे और ग़रीब भी थे कि जो कमी रह गई है उसे वे पूरा कर दें।

विज्ञ जनों के संगठन के लिए यह चीज आसान होनी चाहिए थी कि इतने अच्छे कार्य और एक महान् पुण्यस्मृति के लिए इतना धन एकत्र हो जाता।

ट्रस्टियो में जीवराज मेहता और विधानचन्द्र राय जैसे भारत-विख्यात सुयोग्य डाक्टर हैं। अस्पताल को ठीक तरह से बनवाने की ओर उसके संगठन तथा प्रबन्ध की जिम्मेवारी उन्होंने ले ली है। मुझे आशा है कि न केवल यह आर्थिक कमी ही जल्द पूरी हो जायगी बल्कि अस्पताल के माकूल इन्तज़ाम के लिए उपयुक्त स्टाफ जुटाने में भी डाक्टरों को कोई कठिनाई नहीं होगी।

—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २०।११।१९३९। ह० ज०। ह० से०, २५।११।१९३९]

९६. कुमारी इन्दिरा नेहरू की सगाई

श्री फिरोज गांधी के साथ कुमारी इन्दिरा नेहरू की सगाई के सवाल को लेकर इधर मेरे पास ढेरों पत्र आये हैं। कई पत्र क्रोध और गाली से भरे है और कुछ में दलीलें देने की कोशिश की गई हैं। एक भी पत्र ऐसा नहीं है, जिसमें श्री फीरोज गांधी की अपनी योग्यता के बारे में कोई शिकायत हो। पत्र-लेखकों की दृष्टि में उनका एकमात्र अपराध यही कि वह पारसी हैं। मैं हमेशा से इस बात का घोर विरोधी रहा हूं कि स्त्री-पुरुष सिर्फ व्याह के लिए अपना धर्म बदलें। मेरा यह विरोध आज भी कायम है। धर्म कोई चादर या दुपट्टा नही, कि जब चाहा, ओढ़ लिया, जब चहा उतार दिया। इस व्याह में धर्म बदलने की कोई बात ही नहीं है। श्री फीरोज का नेहरू-परिवार के साथ बरसों पुराना घरोपा है; स्व० श्रीमती कमला नेहरू की बीमारी में श्री फीरोज ने अर्से तक उनकी तीमारदारी की थी। और इसीलिए कमलाजी के मन में फीरोज के लिए आत्मीय का-सा भाव था। युरोप में कुमारी इन्दिरा की बीमारी के वक्त भी इनकी बड़ी मदद रही थी। यहां से दोनों में मित्रता पैदा हुई। यह मित्रता संयमवाली थी। इसमें से आपसी चाह पैदा हुई। मगर दोनों में से किसी ने यह नहीं चाहा कि वे पण्डित जवाहरलाल की सम्मति और आशीर्वाद के बिना व्याह कर लें। जब जवाहरलाल जी को विश्वास हो गया कि इस आकर्षण की तह में स्थिरता है, तो उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। लोग जानते हैं कि नेहरू परिवार के साथ मेरा कितना घना सम्बन्ध है। मैने दोनों से बातचीत की। अगर यह सगाई स्वीकार न की जाती, तो वह क्रूरता होती। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, इस तरह के विवाह बढ़ेंगे, और उनसे समाज को फायदा ही होगा। फिलहाल तो हममें आपसी सहिष्णुता का माद्दा भी पैदा नही हुआ है। लेकिन जब सहिष्णुता बढ़कर सर्वधर्म-समभाव में बदल जायगी, तो ऐसे विवाह स्वागत-योग्य माने जायंगे। आनेवाले समाज की नवरचना में जो धर्म संकुचित रहेगा और बुद्धि की कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा, वह टिक न सकेगा। क्योंकि उस नवनिर्माण में हरएक चीज का मूल्य नये ढंग से ही कूता जायगा। मनुष्य की कीमत उसके चरित्र के कारण होगी; धन, पदवी या कुल के कारण नही। मेरी कल्पना का हिन्दूधर्म, मात्र एक संकुचित सम्प्रदाय नहीं। वह तो एक महान् और सतत विकास का प्रतीक है, और काल की तरह ही सनातन है। उसमें जरथुस्त्र, मूसा, ईसा, मुहम्मद, नानक और ऐसे दूसरे कई धर्म-संस्थापको के उपदेशो का समावेश हो जाता है। उसकी व्याख्या इस प्रकार है—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत॥

अर्थात् जिस धर्म को राम-द्वेषहीन, ज्ञानी सन्तों ने अपनाया है, और जिसे हमारा हृदय और बुद्धि भी स्वीकार करती है, वही सद्धर्म है।

अगर धर्म ऐसा न रहा, तो वह बच नही सकेगा। मैं अपने पत्र-लेखकों को अलग-अलग जवाब नही दे सका हूं, इसके लिए वे मुझे क्षमा करें। मै उनसे निवेदन करता हूं कि वे गुस्सा छोड़ें और इस व्याह को अपने आशीर्वाद दें। मुझे मिले हुए पत्रों से अज्ञान, असहिष्णुता और अरुचि के भाव टपकते है, उनमें एक प्रकार की ऐसी अस्पृश्यता है, जिसे कोई ठीक नाम देना मुश्किल है, लेकिन इसीलिए वह भयंकर भी है।
—सेवाग्राम, २।३।१९४२। ह० से०, ८।३।१९४२।]

९७. तिहरी बेहूदगी

'नेशनल हेराल्ड' सिर्फ एक समाचारपत्र ही नही, वल्कि एक संस्था है। उसके संचालक-मण्डल के सदस्यों का उसमे कोई व्यक्तिगत स्वार्थ या आर्थिक हित नही। उसकी स्थापना पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने की थी। केवल हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जहां ऐसे प्रतिष्ठित पत्र की जमानत जब्त हो सकती है। सचमुच तो जमानत ही क्यों, सरकार को अपने युद्ध-प्रयत्न में उनकी अधिक-से-अधिक जितनी मदद मिल सके, उस सवकी दरकार है। उनके इक्के-दुक्के वाक्यों को वास्तविक प्रसंग से अलग करके उनका नाजायज फायदा भी उसने उठाया है। वहरहाल कुछ भी हो, आखिर सरकार इस दमन-नीति से आशा किस वात की रखती है? इस जमानत-जब्ती को युक्तप्रान्त के भूतपूर्व मन्त्री कांग्रेस के कार्यकर्त्ता और नेशनल हेराल्ड के डायरेक्टर रफी अहमद किदवई की गिरफ्तारी और नजरवन्दी के साथ मिलाकर देखिए। फिर इन दोनों कार्रवाइयो के साथ अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के दफ्तर की वेहूदा तलाशी को देखिए, तो इस दुःखद प्रकरण की सारी तस्वीर हमारी आँखों के सामने खड़ी होती है। मेरी राय में यह तिहरी कार्रवाई राष्ट्रीय युद्ध-प्रयत्न के रास्ते में एक वड़ी रुकावट है। यह एक ऐसी दीवानी हरकत है कि जैसे हम जपान को खामखा हिन्दुस्तान में पधारने का निमन्त्रण ही देना चाहते हों। मैंने इस विदेशी सरकार को अपने हिन्दुस्तान के हक में राजपाट छोड़ कार, फिर चाहे उसे कोई भी संभाले, यहां से विदा होने की जो सलाह दी है, वह इस वात की यथार्थता को सिद्ध करती है। इसके अमल में अलवत्ता दिलेरी की जरूरत है। इसमें खतरा तो है ही। परन्तु अंग्रेज खतरा

उठाने का जो सामर्थ्य रखते है, वह और कोई बहुत कम रखते हैं। उन्हें चाहिए कि जोखिम उठाने की मेरी सूचना को वे स्वीकार करें। तब वे देखेंगे कि वही उनका बड़े-से-बड़ा युद्ध-प्रयास होगा। जहा तक हिन्दुस्तान का ताल्लुक है अगर कोई भी चीज स्थिति को बचा सकती है, तो वह यही है जो मैंने बताई। इस ओर उनका पहला कदम तो यह होना चाहिए कि जब्ती के हुक्म को रद्द करें, रफी साहब को रिहा करें और अ० भा० कां० कमेटी के दफ्तर से छीने हुए कागजात लौटा दें।
—अंग्रेजी। सेवाग्राम, ३१।५।१९४२। ह० से०, ७।६।१९४२।]

९८. डोलापालकी

गढ़वाल जिले में हिन्दू लोग इतने अज्ञान है कि वे हरिजन वर राजा (दूल्हा) को डोला-पालकी मे या दूसरी किसी सवारी पर बैठकर मन्दिरों, चौराहो या अपने को ऊचा माननेवाले हिन्दुओ के मोहल्ले से नही जाने देते। अब तो ऐसा बुरा रिवाज बरदाश्त नही किया जाना चाहिए। एक भाई ने मुझे कानून का मस्विदा भी भेजा है जिसे पास करने पर शायद अज्ञान लोग समझ जायं। और वैसा करना ही चाहिए। हर हालत मे, जब कभी ऐसा वर घमेड़ा यानी बरात का जुलूस निकाला जाय तो उसके साथ इन गरीब लोगों की हिफाजत के लिए, एक पुलीस पार्टी रहनी चाहिए। सरकार की तरफ से इश्तहार भी बांटे जाने चाहिए कि डोला पालकी या दूसरी किसी सवारी पर बैठने से किसी को रोका न जाय, रुकावट डालनेवालो को सजा दी जायगी।
—हिन्दी। नई दिल्ली, ६।१०।१९४६। ह० से०, १३।१०।१९४६।]

९९. डोला-पालकी

कहा जाता है कि यू० पी० सरकार ने हुक्म जारी किया है कि जो लोग हरिजन दूल्हो को घोड़ो पर या दूसरी किसी सवारी पर चढ़ने से रोकें उनके खिलाफ फौरन कार्रवाई की जाय, और रिवाज की बात पेश करके इसका विरोध करनेवालो की न सुनी जाय। इस हुक्म को देखते हुए अब गढ़वाल मे डोला-पालकी का झगड़ा खत्म हो जाना चाहिए।
—अंग्रेजी। कलकत्ता जाते हुए रेल में, २९।१०।१९४६। ह०से०, १०।११।१९४६।]

१००. मालवीय जी महाराज

अंग्रेजी मे एक कहावत है—"राजा गया, राजा हमेशा जियो।" ठीक यही

भारत-भूषण मालवीयजी महाराज के लिए कहा जा सकता है—मालवीयजी गये, मालवीय जी अमर हों। मालवीयजी हिन्दुस्तान के लिए पैदा हुए और हिंदुस्तान के लिए किये गये अपने कामों में जीते है। उनके काम वहुत है। वहुत बड़े है। उनमें सवसे बड़ा हिन्दू विश्वविद्यालय है। गलती से उसे हम वनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के नाम से पहचानते है। उस नाम के लिए दोष मालवीयजी महाराज का नहीं, उनके पैरोकारों का रहा है। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे, वैसा वह करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता उनके स्वभाव में भरी थी। यहां तक कि वाज़ दफ़ा वह दोष का रूप ले लेती थी। लेकिन 'समरथ को नहिं दोष गोसाईं' वाली वात मालवीयजी महाराज के वारे में भी कही जा सकती है। उनका प्रिय नाम तो हिन्दू विश्वविद्यालय ही था। और यह सुधार तो अव भी करने लायक है। इस विश्वविद्यालय का हर एक पत्थर शुद्ध हिन्दू धर्म का प्रतिविम्व होना चाहिए। एक भी मकान पश्चिम के जड़वाद की निशानी न हो, वल्कि अध्यात्म की निशानी हो। और जैसे मकान हों, वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हों। आज है? प्रत्येक विद्यार्थी शुद्ध धर्म की जीवित प्रतिमा? नही है, तो क्यों नही है? इस विश्वविद्यालय की परीक्षा विद्यार्थियों की संख्या से नही वल्कि उनके हिन्दू धर्म की प्रतिमा होने से ही हो सकती है, फिर भले वे थोड़े ही क्यों न हों।

मै जानता हूं कि यह काम कठिन है। लेकिन यही इस विद्यालय की जड़ है। अगर यह ऐसा नहीं है, तो कुछ नही है। इसलिए स्वर्गीय मालवीयजी के पुत्रों का और उनके अनुयायियों का धर्म स्पष्ट है।

जगत् में हिन्दू धर्म का क्या स्थान है? उसमें आज क्या दोष हैं? वे कैसे दूर किये जा सकते है? मालवीयजी महाराज के भक्तों का कर्त्तव्य है कि वे इन प्रश्नो को हल करें। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड़ गये हैं। उसको स्थायी रूप देना और उसका विकास करना उनका श्रेष्ठ स्मृति-स्तम्भ होगा।

विश्वविद्यालय के लिए स्व० मालवीय जी ने काफी द्रव्य इकट्ठा किया था, लेकिन वाकी भी काफी रहा है। इस काम में तो हरएक आदमी हाथ वँटा सकता है।

यह तो हुई उनकी वाह्य प्रवृत्ति। उनका आन्तरिक जीवन विशुद्ध था। वह दया के भण्डार थे। उनका शास्त्रीय ज्ञान वड़ा था। भागवत उनकी प्रिय पुस्तक थी। वह ज्ञानी कथाकार थे। उनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।

उनकी राजनीति को और दूसरी अनेक प्रवृत्तियों को छोड़ देता हूं। जिन्होंने अपना सारा जीवन सेवा को अर्पित किया था और जो अनेक विभूतियां रखते

थे, उनकी प्रवृत्ति की मर्यादा हो नही सकती। मैंने तो उनमें से चिरस्थायी चीज ही देने का संकल्प किया था। जो लोग विश्वविद्यालय को शुद्ध वनाने में मदद देना चाहते है, वे मालवीयजी महाराज के अन्तर्जीवन का मनन और अनुसरण करने का यत्न करें।

—श्रीरामपुर, २३।११।१९४६। ह० सें०, ८।१२।१९४६।]

१०१. स्वर्गीय तोताराम सनाढच

वयोवृद्ध तोतारामजी किसी की सेवा लिये वगैर गये। वह सावरमती आश्रम के भूषण थे; विद्वान् नही थे, मगर ज्ञानी थे। भजनों के भण्डार होते हुए भी वह गायनाचार्य न थे। वह अपने एकतारे से और भजनों से आश्रम के लोगों को मुग्ध कर देते थे; जैसे वह थे, वैसी ही उनकी पत्नी थी। वह तो तोताराम जी से पहले ही चली गईं।

जहां वहुत से आदमी एक साथ रहते हों, वहां कई प्रकार के झगड़े होते ही है। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नही है कि जब तोतारामजी या उनकी पत्नी ने उनमे भाग लिया हो, या किसी झगड़े के कभी कारण वने हों। तोतारामजी को धरती प्यारी थी। खेती उनका प्राण थी। आश्रम में वरसों पहले वह आये और उसे कभी नही छोड़ा। छोटे-वड़े, स्त्री-पुरुष उनकी रहनुमाई के भूखे रहते और उनके पास से अचूक आश्वासन पाते।

वह पक्के हिन्दू थे। मगर उनके मन में हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सव धर्म वरावर थे। उनमे छुआछूत की गन्ध न थी। किसी किस्म का व्यसन न था।

राजनीति मे उन्होने भाग नही लिया था, फिर भी उनका देश-प्रेम इतना उज्ज्वल था कि वह किसी के भी मुकावले खड़ा रह सकता था। त्याग उनमें स्वाभाविक था। उसे वह सुशोभित करते थे।

यह सज्जन फिजी द्वीप में गिरमिटिये मजदूर की तरह गये थे। और दीन-वन्धु एण्डरूज उन्हें ढूढ़ लाये थे। उन्हे आश्रम में लाने का यश श्री वनारसीदास चतुर्वेदी को है।

उनकी अन्तिम घड़ी तक उनकी जो कुछ सेवा हो सकती थी, वह भाई गुलाम रसूल कुरेंशी की पत्नी और इमाम साहव की लड़की अमीना वहन ने की थी।

"परोपकाराय सतां विभूतय:" सज्जन पुरूष परोपकार के लिए ही जीते है) यह उक्ति तोताराम जी के वारे में अक्षर-अक्षर सच थी।

—गुजराती। नई दिल्ली, १२।१।१९४८। ह० से०, १८।१।१९४८।]

: सात :

गंगोत्री

[उत्तर प्रदेश की भूमि पर लिखी गांधीजी की रचनाएं]

१. तार : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री को

लखनऊ से इलाहाबाद आते हुए गाड़ी में
११ मार्च, १६१६

मै अपनी यात्राओं में जनता की भावनाओं को जितना जान पाया हूं, उसके आधार पर कह सकता हूं कि वह बहुत तीव्र है। सार्वजनिक हित के लिए स्वार्थ-त्याग करने की आदत न होने के कारण वे अकर्मण्य भले दिखाई दें, परन्तु यदि (रौलट) विधेयक पास करने का प्रयत्न जारी रहा तो कटुता का प्याला लबालब भर जायगा। यद्यपि विरोध के तरीकों पर हममें मतभेद है, फिर भी आशा है, आप इन विधेयकों के पास किये जाने का विरोध करके जनता की भावना व्यक्त करेंगे।

— गांधी जी के स्वाक्षरों में अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६४५१) की फोटो-नकल से। ११।३।१९१९।]

२. तार : वाइसराय के निजी सचिव को

द्वारा पं० मोतीलाल नेहरू
इलाहाबाद
११ मार्च १६१६

मैं इस अन्तिम क्षण में फिर परमश्रेष्ठ तथा उनकी सरकार से सादर निवेदन करता हूं कि वे रौलट विधेयकों को पास करने के पहले थोड़ा रुक कर विचार करें। इस कानून के बारे में जनता की राय उचित हो या अनुचित, पर उसकी प्रबलता के बारे में सन्देह की गुंजाइश नहीं है। मुझे यकीन है कि सरकार वर्तमान कटुता-पूर्ण स्थिति को और अधिक कटु नही बनाना चाहती। कुछ विलम्ब होने से सरकार की कोई हानि नही होगी, बल्कि यदि वह लोकमत के सामने स्पष्ट रूप से झुक गई तो कटुता मिटेगी और उसकी वास्तविक प्रतिष्ठा बढ़ेगी। मैं कल जबलपुर मेल से बम्बई के लिए रवाना हो रहा हूं।

— अंग्रेजी। इलाहाबाद, ११।३।१९१९, नेशनल आर्काइव्ज आव इण्डिया : होम : पोलिटिकल-ए, मार्च १९१९, सं० २५०।]

३. पत्र : जे० एल० मैफी को[1]

लखनऊ से इलाहाबाद आते हुए गाड़ी में
११ मार्च, १६१६

प्रिय श्री मैफी,

मैने अभी-अभी जो तार आपको भेजा है उसकी प्रतिलिपि साथ में नत्थी कर रहा हूं। एक बिल्कुल ही व्यक्तिगत बात के अतिरिक्त मै उसमें कुछ और जोड़ना नही चाहता। दक्षिण अफ़्रीका में सत्याग्रह के दौरान मैने जनरल स्मट्स को जितने भी पत्र भेजे थे वे सब मै उनके निजी सचिव श्री लेन की मार्फत ही लिखा करता था। जब संघर्ष ने जोर पकड़ा उस समय सरकार के प्रतिनिधि जनरल स्मट्स और विदेशी लोगो का प्रतिनिधि मै इन दोनो के बीच श्री लेन सच्चे अर्थो में सद्भाव पैदा करनेवाले देवदूत की तरह काम करते रहे। उनके सरल स्वभाव और सौजन्य के बिना कदाचित् सघर्ष का जो सन्तोषजनक परिणाम निकला, वह न निकल पाता। क्या मै आपसे भी वैसे ही सहयोग की आशा कर सकता हूं? इसका कारण यह है कि जिस प्रकार दक्षिण अफ़्रीका मे (श्री लेंन को कष्ट दिया करता था) उसी प्रकार यहां भारत में भी यदि दुर्भाग्य से संघर्ष लम्बे अर्से तक चला तो मुझे आपको प्रायः कष्ट देना पड़ेगा। और मैं सरकार तथा उन लोगों को जिनका प्रतिनिधित्व मै कर रहा हूं, परस्पर निकट लाने का कोई भी अवसर हाथ से न जाने दूंगा।

मैं इस १३ तारीख को बम्बई मे होऊंगा। मेरा स्थायी पता साबरमती तो है ही परन्तु फिलहाल यदि मुझे लेबर्नम (रोड) चौपाटी, बम्बई के पते से पत्र भेजे जायं तो एक दिन पहले मिल जायंगे।

यह कहने की आवश्यकता नही है कि श्री शास्त्रियर से मेरी बहुत देर तक बातचीत हुई है। पर इस मामले में उनके और मेरे बीच आदर्शो का भेद है और मुझे हम दोनों के बीच मतैक्य की कोई गुंजाइश नही मिली।

आशा करता हूं कि अब तक लार्ड चैम्सफोर्ड का ज्वर चला गया होगा और उसके सभी प्रभावो से वह मुक्त हो चुके होंगे।

---

१. नेशनल आर्काइव्ज आफ इण्डिया में संग्रहीत इस पत्र में इलाहाबाद, १२ मार्च १९१९ लिखा है। ऐसा जान पड़ता है कि पत्र यात्रा में लिखवाया गया है किन्तु इलाहाबाद पहुंचने के बाद १२ मार्च को भेजा गया। वैसे गांधी १२ मार्च को बम्बई में थे।

इस प्रकार का व्यक्तिगत पत्र मुझे अपने हाथ से लिखना चाहिए था, परन्तु अपनी हाल की बीमारी के कारण मैं कई दृष्टियों से अशक्त बन गया हूं। जब मैं लिखता हूं तब मेरा हाथ काँपने लगता है और बहुत जल्दी थक जाता है। इसलिए मुझे अत्यन्त निजी पत्र-व्यवहार के लिए भी पत्र बोलकर लिखवाने पड़ रहे हैं।[1]

हृदय से आपका

—११।३।१९१९। अंग्रेजी मस्विदे (एस० एन० ६४४९) की फोटो-नकल से। सं० गां० वा० खण्ड १५ में भी।]

४. पत्र : सी० एफ० एण्डरूज को

अलीगढ़

२३ नवम्बर, १९२०[2]

प्रिय चार्ली,[3]

मुझे तुम्हारे पत्र और तार मिले। क्या मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है? मैंने तार देकर केवल यह सूचना देनी चाही थी कि मैं तुम्हें भेजने की कोशिश कर रहा हूं—मैंने यह नहीं कहा था कि तुमने पद स्वीकार कर लिया है और मैंने जो कहा, अपनी और तुम्हारी बात-चीत[4] के आधार पर कहा। जो भी हो, किसी तरह का दबाव तुम पर नही डाला जायगा। तुम मुस्लिम विश्वविद्यालय के लिए केवल उतना ही करना, जो तुम कर सकते हो।

हां, मैं अंग्रेजों से देश के सम्बन्ध को एक शुद्ध आधार पर स्थापित करने की जरूरत महसूस करता हूं। आज वह जैसा है उससे तो विरक्ति ही होती है। पर मैं

---

१. पत्र का अन्तिम अनुच्छेद गांधी जी के हाथ का लिखा हुआ है।

२. १९२० में २३ नवम्बर को गांधी जी अलीगढ़ में थे, जहां वे खिलाफत-समिति की एक सभा में शरीक होने गये थे।

३. चार्ल्स फ्रेयर एण्ड्रूज (१८७१-१९४०)—अंग्रेज, मिशनरी, लेखक व शिक्षा-शास्त्री, जिन्होने विश्वभारती विश्वविद्यालय के कार्य में बहुत दिलचस्पी ली; कई वर्षो तक भारतीयों के साथ काम किया जिससे उन्हें 'दीनबन्धु' की उपाधि मिली। वह गांधी जी के घनिष्ठ मित्र थे।

४. अक्टूबर १९२० में एण्ड्रयूज की गुजरात-यात्रा के समय जब वह गांधी जी के साथ कुछ दिन रहे थे।

अभी तक यह तय नही कर पाया हूं कि उसे, चाहे जो हो, समाप्त ही कर देना चाहिए। हो सकता है कि अंग्रेजों का स्वभाव काली और भूरी जातियों के साथ पूर्ण समानता का दर्जा स्वीकार नही कर सके। तब तो अंग्रेजों को भारत से वापस ही भेजना होगा। परन्तु एक गौरवपूर्ण समानता की सम्भावना है, यह विचार मै त्याग नही सकता। किन्तु यदि इस बात का यथासम्भव स्पष्ट प्रमाण मिल जाय कि धर्म के प्रथम सिद्धान्त अर्थात् मानव-मानव के बीच भाईचारे के सिद्धान्त को समझने में अंग्रेज बुरी तरह असफल हो गये हैं, तो यह सम्बन्ध अवश्य समाप्त हो जाना चाहिए।

बड़ो दादा[1] का पत्र मुझे नही मिला। शायद आश्रम पहुंचा हो या मुझे दिल्ली पहुंचने पर मिले। मैने तुम्हें समय पर तार दे दिया था।

मैं डा० दत्त को तार से कोई सन्देश नही भेज सकता, परन्तु यदि अभी समय हो तो मैं उन्हें कुछ लिखने की कोशिश करूंगा।

मुझे पूरी आशा है कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है।

गुजराती बच्चों के हटा लिये जाने पर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।[2] मै समझता हूं कि इससे तुम्हारा कुछ नुकसान नही हुआ। तुम किसी भी बच्चे को रखने के लिए सिद्धान्तों मे ढील नही दे सकते। मैंने तुम्हे पत्र में वह सब नही लिखा जो सीनेट-द्वारा अभी पास किये गये प्रस्ताव[3] को मंजूर कराने के कारण मुझे सहना पड़ रहा है। लोगों ने मेरा पूरी तरह से बहिष्कार करने की धमकी दी है। परन्तु मेरी स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। मै दलित वर्ग या किसी भी वर्ग की क्षति स्वीकार करके स्वराज्य नही चाहता। मै स्वराज्य शब्द का जो अभिप्राय मानता हूं वह वैसा बिल्कुल नही होगा। मेरा विश्वास है कि जिस क्षण भारत शुद्ध होगा, उसी क्षण वह स्वतन्त्र हो जायगा। उससे एक भी क्षण पहले नही। मुझे केवल इस सबसे बड़े असुर, इस सरकार से सम्पूर्ण शक्ति के साथ लड़ना होगा। और वैसा करते-करते छोटे-मोटे राक्षसों से तो मैं अपने-आप ही निपट चुकूगा। बहिष्कार की

---

१. द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े भाई, साधक, गांधी जी की असहयोग योजना के सिद्धान्ततः प्रशंसक।

२. सम्भवतः इसलिए कि ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर बच्चों से शान्ति-निकेतन आश्रम में एक साथ खाना खाने को कहा गया था।

३. गुजरात विद्यापीठ की सीनेट ने ३१।१०।१९२० को यह प्रस्ताव पास किया था कि विद्यापीठ द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी स्कूल में अन्त्यजों का बहिष्कार नहीं किया जायगा।

घमकी मुझे बहुत ही खुशी दे रही है क्योंकि महसूस करता हूं कि वहां मैं और भी शुद्ध धरातल पर हूं। सरकार से, लड़ने में सहयोगियों के उद्देश्य संमिश्र हो सकते हैं, लेकिन छुआछूत के राक्षस से लड़ने में मेरे साथ बिल्कुल चुने हुए लोग हैं।

सप्रेम,

तुम्हारा

मोहन

—अंग्रेजी। अलीगढ़, २३।११।१९२०। गांधी स्मारक संग्रहालय में प्राप्त पत्रावली से।]

५. पत्र : डा० मुहम्मद इकबाल को

(२७ नवम्बर १९२० के पूर्व)[1]

प्रिय डा० इकबाल,[2]

मुस्लिम नेशनल युनिवर्सिटी[3] आपको पुकार रही है। यदि आप उसका उत्तरदायित्व ले लें तो मुझे विश्वास है कि वह आपके सुसंस्कृत नेतृत्व में उन्नति करेगी। हकीम अजमल[4] खां और डा० अन्सारी[5] तथा निस्सन्देह अली भाई भी यही

---

१. डा० इकबाल ने २९ नवम्बर १९२० के अपने जवाब (एस० एन० ७३३०) में लिखा था कि गांधीजी का पत्र दो दिन पूर्व मिला था।

२. १८७३-१९३८, प्रख्यात उर्दू-फारसी के कवि, कैम्ब्रिज तथा म्यूनिख विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० किया; राष्ट्रीय नेता; १९३१-३२ में दूसरी और तीसरी गोलमेज परिषद के प्रतिनिधि। 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' के रचयिता।

३. अलीगढ़ में।

४. १८६५-१९२७, प्रसिद्ध हकीम और राजनीतिज्ञ जिन्होंने खिलाफत आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया; १९२१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष।

५. डा० मुख्तार अहमद अंसारी (१८८०-१९३६) राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता; इण्डियन मुस्लिम लीग के अध्यक्ष १९२०; अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९२७-२८।

चाहते हैं। मेरी कामना है कि आप इस आमन्त्रण को स्वीकार कर सकेंगे। आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नवीन जागृति के अनुरूप, उपयुक्त दक्षिणा देने का आश्वासन आसानी से दिया जा सकता है। कृपया अपना जवाव मुझे मार्फत पण्डित नेहरू, इलाहावाद के पते पर भेजिए।

हृदय से आपका

--अंग्रेजी। २७।११।१९२० या पूर्व। सं० गां० वा० खण्ड १९ पृ० ३३।]

६. पत्र : हकीम अजमल खां को

(२७ नवम्वर १९२० के पूर्व)[1]

प्रिय हकीम साहव,

पीपल सहादेव के पास की मस्जिद के वारे में क्या झगड़ा है? क्या यह सुलझाया नही जा सकता? मैंने डा० इकवाल को अलीगढ़ के वारे मे लिख दिया है। मै चाहता हूं आप भी लिख दें।

--अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३६१ ए) की फोटो नकल से, २१।११।१९२० के पूर्व।]

७. पत्र : हरकिशन लाल को

इलाहावाद

२८ नवम्वर, १९२०

प्रिय हरकिशन लाल,[2]

मैं यात्रा पर निकल गया था, इसलिए आपका पत्र मेरे पीछे-पीछे भटकता

---

१. पत्र में डा० इकवाल को पत्र लिखने का उल्लेख है। इससे लगता है, यह पत्र उसी दिन या उसके पूर्व लिखा गया होगा।

२. लाला हरकिशन लाल, पंजाव के एक प्रमुख व्यवसायी और राष्ट्रवादी नेता, जिन्होंने गांधी के असहयोग-आन्दोलन का विरोध किया था और जो वाद में

हुआ अब जाकर मिला है। आपकी भविष्यवाणी[1] सच्ची निकले तो उसमें कुछ दोष आपका भी होगा। ऐसा तो नहीं हो सकता कि आप चुपचाप बैठे रह कर हिंसा की जड़ों को फैलने दें और फिर कहें, देखो, मैं कहता था सो सच निकला। परन्तु आपकी भविष्यवाणी सही निकले या गलत, असहयोग तो तबतक चलता ही रहेगा जबतक वह अपनी ही हिंसा के भार से दबकर न रुक जाय। इसलिए आप से अपेक्षा यही की जाती है कि आप अपनी भविष्यवाणी गलत साबित करने के लिए जी-तोड़ कोशिश करेंगे।

खिलाफत के मामले में हमारी मांग यह है: युद्ध के आरम्भ होने पर तुर्की के पास जितना इलाका था, वह सब उसे लौटा दिया जाय; साथ ही अरबों और आर्मिनिया-वासियों को आत्म-निर्णय की पूरी-पूरी गारण्टी दी जाय। जहां तक पंजाब का सम्बन्ध है वहां जो कुछ हुआ, उसका पंजाब की माँगों के अनुसार पूरा परिमार्जन होना चाहिए। इसके बाद जनता के चुनिन्दा नेताओं की इच्छा के अनुसार हमें पूरा स्वराज्य दिया जाना चाहिए। आप देखेंगे कि मैंने प्रत्येक अंग्रेज के नाम जो खुली चिट्ठी लिखी है, उसमें यह बात स्पष्ट कर दी है।

हृदय से आपका,
मो० क० गांधी

[—अंग्रेजी। इलाहाबाद, २८।११।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १९ से।]

८. पत्र : दीपक चौधरी[2] को

२८ नवम्बर, १९२०

अब तो तुम्हें गुजराती में ही लिखूंगा। तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें अब अंग्रेजी छोड़नी चाहिए या नहीं, उस बारे में माता जी की राय पुंछवाई है। तुम अध्ययन-शील बनो तो अभी अंग्रेजी छोड़ देने में कोई अड़चन न होगी। तुम अपने शरीर, अपने मन और अपनी आत्मा को सँभालो। शरीर के लिए कसरत, खेल-कूद,

---

माण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारों के लागू होने पर पंजाब मन्त्रिमण्डल में मन्त्री बने थे।

१. हरकिशनलाल ने भविष्यवाणी की थी कि गांधीजी का असहयोग आन्दोलन असफल होगा।

२. सरला देवी चौधरानी के पुत्र।

अच्छा भोजन और प्रसन्नचित्त, मन के लिए वाचन और मनन, आत्मा के लिए अन्तःशुद्धि और इसके लिए जल्दी उठना, घ्यानपूर्वक प्रार्थना मे तल्लीन होना और गीताध्ययन। हमेशा इतना मनन करना, मै सच ही बोलूंगा, सोचूंगा और करूंगा, मैं सबसे प्रेम रखूंगा, मै अपनी सब इन्द्रियो पर काबू करूंगा, दूसरे की चीज पर बुरी नजर नही डालूंगा, मैं कुछ भी अपना नही मानूंगा, परन्तु सब कुछ ईश्वरार्पण करूंगा, ऐसे चिन्तन से हृदय-शुद्धि होगी।

—गुजराती। इलाहाबाद, २८।११।१९२०। सं० गां० वा० खण्ड १९ से।]

९. पत्रांश : बनारस के विषय में

बनारस[1] में समय बहुत अच्छा गुजरा। परिणाम क्या होगा, यह नही कह सकता। वातावरण जरूर साफ हुआ है और मालवीय जी यदि पूरी तरह नही तो पहले से अधिक शान्त अवश्य हैं।

—अंग्रजी। इलाहाबाद। २८।११।१९२० को सरला देवी चौधरानी को लिखे पत्र से। सं० गां० वा० खण्ड १९ पृष्ठ ४०।]

१०. काठियावाड़ के राजा-महाराजाओं से

लखनऊ

सोमवार, श्रावण (८ अगस्त, १९२१)

महोदय,

मैने कई बार आपको दो शब्द लिखने का विचार किया, किन्तु लिखा नहीं। किन्तु कुछ बाते सुनकर और जानकर अब मैं अपने विचार आपके सामने रखना अपना धर्म समझता हूं।

कदाचित् आप से यह कहना कि काठियावाड़ से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है, अनावश्यक है। किन्तु वहां जन्म लेने के कारण ही मै काठियावाड़ से बँधा हुआ नहीं हूं। वहां के तीन-तीन राज्यों में मेरे पिताश्री ने मुख्य मन्त्री की तरह काम किया था। मेरे चाचा ने एक राज्य में और दूसरे में मेरे पितामह ने भी यही पद सँभाला

---

१. गांधी जी २५।११।१९२० से २७।११।१९२० तक काशी में थे।

था। गांधी-परिवार के अनेक व्यक्तियों ने काठियावाड़ के राज्यों में नौकरी करके निर्वाह किया है। इसलिए मेरा आपसे विशेष नाता है। आपके प्रति मेरा विशेष कर्त्तव्य है।

अतएव मै जव काठियावाड़ के किसी भी राज्य की स्वेच्छाचारिता के विषय में कुछ सुनता हूं, तब मेरे हृदय को बड़ा दुःख होता है। काठियावाड़ को मैं शूर-वीरों की भूमि समझता हूं और मैं यह आशा लगाये हूं कि स्वराज्य-यज्ञ में काठियावाड़ अपना पूरा हिस्सा अदा कर अपना तथा भारत-भूमि का मुख उज्ज्वल करेगा।

'स्वराज्य' शब्द को सुनकर आप चौंकिये नही। मै चाहता हूं कि 'स्वराज्य' और 'असहयोग' इन नामों से आप न चौंकें। जो लोग यह कहते है कि यह आन्दोलन तो अराजकता और राजद्रोह फैलानेवाला है, इससे देश का सत्यानाश हो जायगा, उन्हें ऐसा कहने दीजिए। परन्तु यह मानकर कि वे अज्ञानवश ऐसा कहते है अपने मित्रों के सामने भी मेरी स्थिति स्पष्ट कीजिए।

हमारे शास्त्र यह सिखाते है कि अपने प्राणों की आहुति देकर भी अन्याय का सामना करना चाहिए। मेरे पूज्य पिताजी ने अपने चरित्र-द्वारा मुझे यही शिक्षा दी है। लोग साहस-सम्पन्न हों तो इससे देश की हानि नही होगी।

किन्तु मैंने यह पत्र स्वराज्य के विषय मे लिखने के उद्देश्य से शुरू नही किया है। मेरे स्वराज्य-विषयक विचार आपकी दृष्टि से ओझल न रह जाय, इसलिए ऊपर के वाक्य लिख दिये है।

आपके राज्यों के विषय में अनेक लेख मेरे पास आये है। कितनी ही शिकायतें मैंने जबानी भी सुनी है। परन्तु अब तक मैंने उनमें से कुछ भी प्रकाशित करना उचित न समझा। मै यही आशा लगाये रहा कि अन्त में सब ठीक हो जायगा, और अब भी मेरा यही खयाल है। बड़े साम्राज्य की स्वेच्छाचारिता जहां एक बार नष्ट हुई कि छोटे-छोटे राज्यों की मनमानी भी उसके साथ बन्द हो जायगी। आत्म-शुद्धि एक ऐसी वस्तु है जिसकी जड़ जमाने में कुछ समय लगता है। परन्तु जड़ जम जाने पर उसके फैलने में विलम्ब नही लगता।

पर, अब तो मै सुनता हूं कि कोई कोई राज्य चर्खे का उपहास करता है, कोई उसे एक रोग समझ कर मिटाने की इच्छा रखता है, कोई 'स्वदेशी' जैसे शाश्वत आन्दोलन को रोकने के लिए लोगों को अनुचित रीति से दबाता है, कोई खादी पहिनने के खिलाफ उठ खड़ा होता है और खादी की टोपी पहिनने को 'जुर्म' मानता है। उन बातों पर विश्वास करते हुए मुझे क्षोभ होता है। परन्तु मेरे पास इसके प्रमाण मौजूद है कि ये सारी बातें झूठ नही हो सकती।

काठियावाड़ की धरती ऐसी (उपजाऊ) है कि वहां के किसी भी आदमी को

वाहर जाने की जरूरत नही पड़नी चाहिए। कोई व्यक्ति वड़ा व्यापार शुरू करने की हिम्मत करे, तो वह स्तुत्य है। किन्तु ऐसे सैकड़ो वल्कि हजारों काठियावाड़ी मेरे सम्पर्क में आये है जिन्हे केवल आजीविका के अभाव में काठियावाड़ छोड़ना पड़ा है। यह वात मुझे सालती है और चाहता हू कि आपको भी साले। काठियावाड़ के मजवूत काठीवाले खूवसूरत ग्रामीणों के घरों में पहिले जो तेज दिखाई देता था वह तेज मुझे अपनी इस वार की यात्रा मे दिखाई नही दिया। मुझे संवत् ३५ के[1] अकाल के पहिले गांवों मे दूध-घी की वहुलता देखने की याद है। पली से घी परसना तो कंजूसी मानी जाती थी। मुझे वचपन में काठियावाड़ी ऊंची-पूरी देहाती वहिनों के हाथो चमचम करते हुए कटोरो में गाढा मठा पीने का स्मरण है।

आज मठे के नाम सफेद पानी दिखता है, घी की कुप्पियां अव नही दिखतीं; चम्मच दो चम्मच घी दिख जाये तो गनीमत है। समृद्धि के समाप्त होने से लोग दीनता का अनुभव करने लगे है और प्रान्त छोड़कर वाहर भागने लगे हैं।

यह निश्चय जानिए कि यदि राजा-महाराजा मदद करें तो चर्खो और कर्घो के द्वारा काठियावाड़ मे पहिले से भी अविक जान आ जाय। काठियावाड़ की आवादी छव्वीस लाख गिनी जाती है। वहां पाच लाख चर्खे आसानी से चल सकते है। इससे कम-से-कम साढ़े सात लाख की (मासिक) आमदनी हो सकती है। यदि काठियावाड़ की वहिन केवल आठ ही महीने भजन गाते हुए चर्खा काते तो हर साल साठ लाख रुपये पैदा कर सकती है। उसके लिए आपको एक पाई भी खर्च नही करनी पड़ेगी। ऐसे आसान उपाय से यदि काठियावाड़ के लोग धन कमा सकें तो क्या आप उसको वुरा मानेगे? क्या उसका मजाक उड़ायेगे?

यदि शरीर पर मोटी खादी की वण्डी और सिर पर वड़ी-पगड़ी वांधने वाले काठियावाड़ की मेघवाल जाति के लोगों में से एक लाख व्यक्ति भी कर्घे चलाने लगे तो वे हर महीने कम-से-कम वीस लाख रुपया कमा सकते है। यदि इस तरह आठ महीने वने तो साल भर में एक करोड़ साट लाख रुपया घर मे आये। क्या आप दीर्घ दृष्टि से देख-समझ कर उतनी वरकत देनेवाले उद्योग को पूरा-पूरा प्रोत्साहन नही देगे?

आपसे तो मै यह आशा करता हू कि आप अपने दरवार मे भी दीन-हीन लोगों द्वारा वुनी हुई खादी की प्रतिष्ठा करेंगे। दरवारी पोशाक खादी की हो और आप स्वयं भी अपनी प्रजा की वनाई खादी पहिनकर भूषित हों।

काठियावाड़ की प्रजा तो भूखो मरे और मैंचेस्टर अथवा जपान के लोग आपके

---

१. विक्रमाब्द १९३५ अर्थात् १८७९-८०।

पैसों पर गुलछर्रे उड़ायें, यह राज-न्याय नही है। आपके शास्त्रवेत्ता लोग आपको यह बात समझायेंगे। यदि आपको मलमल चाहिए तो अच्छी रूई पैदा कराइए, महीन सूत कतवाइए और कपड़ा बुननेवालों को प्रोत्साहन दीजिए।

काठियावाड़ के पहाड़ों में रहनेवाले राजाओं को आमोद-प्रमोद की क्या आवश्यकता है? कुत्तों के झुण्ड वे अपने पास किसलिए रक्खें? वे तो प्रजा के लिए अपने प्राण दें। प्रजा के दुःख से दुखी हों और प्रजा को खिलाकर ही आप खायें। राजा बनिया बन जाय और ब्राह्मण नाटक करते फिरे तो धर्म की शिक्षा कौन दे और रक्षा कौन करे?

मैं यह नही चाहता कि काठियावाड़ के लोग आपके राज्यों में रहते हुए अंग्रेजी राज्य के खिलाफ़ आन्दोलन करें और आपकी स्थिति को नाजुक बनायें। आपकी नाजुक स्थिति मेरे ध्यान में है। आपके प्रति मेरी सहानुभूति है। आप भले ही असहयोगी न हो, परन्तु मै आपसे नम्रतापूर्वक अनुरोध करता हूं कि आप स्वदेशी को एक विशेष अंग ही समझिए और प्रजा को सहायता देकर स्वतन्त्रतापूर्वक उसका उत्कर्ष कीजिए।

और भी एक निवेदन है। काठियावाड़ में शराब की दुकानों का होना कैसे सहन हो सकता है? क्या आपको भी शराब के द्वारा कुछ आमदनी करने की आवश्यकता है? जब प्रजा खुद ही शराबखोरी छोड़ने के लिए प्रयत्न कर रही है तब मैं तो आपके दरबार से भी शराब की बोतलों के बहिष्कार की आशा रखता हूं। श्री रामचन्द्र ने एक धोबी की बात सुनकर सती सीता का त्याग कर दिया था, तब अपनी प्रजा की इच्छा को जानकर क्या आप शराब को काठियावाड़ से नही निकाल सकते?

और आपकी ट्रेनों मे अन्त्यजों के लिए अलग डिब्बे हों, उन्हें टिकट मिलने में कठिनाई हो, वे धक्के खायं, यह भी कैसे सहन हो सकता है? लोगों को एकत्र करके आप उनके साथ विचार कीजिए और उन्हें समझाइए कि भंगी-चमारों के साथ जो दुर्व्यवहार हो रहा है वह दया-धर्म नहीं है, वह तो अत्याचार है। इस तरह आप उन बेचारों को सुखी कीजिए और उनके दिल से निकलनेवाली दुआ लीजिए।

और भी बहुत सी बातें सुनी है। पर उन बातो को मैं आज नहीं उखाड़ना चाहता। वे पुरानी बातें है। मैंने सिर्फ यही प्रार्थना करने के लिए यह पत्र लिखा है कि आज कल जो शुद्ध प्राण-वायु बह रही है उसकी गति को न रोकिए। मैंने प्रेमभाव से जो कुछ लिखा है, आप समझिए और प्रेमपूर्वक पढ़कर मेरे विनम्र सुझावों को कार्यरूप में परिणत कीजिए, बस यही निवेदन है। ईश्वर से प्रार्थना

है कि वह आपको न्यायवृत्ति दे और काठियावाड़ के राजा-प्रजा नीति-मार्ग पर चलते हुए सुखी रहें।

आपका सेवक
मोहनदास कर्मचन्द गांधी

—गुजराती। लखनऊ, ८।८।१९२१, न० जी०, १४।८।१९२१।]

- हमारे शास्त्र यह सिखाते हैं कि अपने प्राणों की आहुति देकर भी अन्याय का सामना करना चाहिए।
- आत्म-शुद्धि एक ऐसी वस्तु है जिसकी जड़ जमने में कुछ समय लगता है।

११. पत्र : मणिलाल कोठारी और फूलचन्द शाह को

कानपुर ६-८-२१

भाई श्री मणिलाल और फूलचन्द,

वढ़वान कठियावाड़ राजनीतिक सम्मेलन करने के सम्वन्ध में मेरा कहना यह है कि मै इस सम्वन्ध में अपना मत अभी व्यक्त नही कर सकता। जव सितम्वर के महीने में मेरा दौरा होगा तव यदि आप पूछेंगे तो मै निश्चित उत्तर दूंगा। यदि मै उनकी अध्यक्षता करने का निर्णय करूंगा तो मै कार्य को अवूरा नही छोड़ सकता। यह नही हो सकता कि मै सविनय अवज्ञा करने के वारे में सलाह तो दे दू और वैठ जाऊं। इस कारण मैं सम्मेलन की अध्यक्षता करने के सम्वन्ध में पहले से कोई निश्चय नहीं कर सकता।

मोहनदास गांधी के वन्देमातरम्

—गुजराती। कानपुर, ९।८।१९२१।]

१२. पत्र : एक बहिन को

(२६ दिसम्वर, १९२५)[१]

चि० . . .

तुम दोनों के पत्रों से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। पूत कपूत हो जाये पर माता

१. साधन-सूत्र के अनुसार।

कुमाता नहीं हो सकती, इस कहावत को मानने से काम नहीं चलेगा। यदि पुत्र ऐसा कहकर अपने दोष को कम करके आंकना चाहे तो वह उन्नति नही कर सकता। सन्तान का तो यही धर्म है कि वह माता-पिता से बढ़-चढ़ कर काम करे। (मैं) अपनी सन्तान से यह कह सकता हूं कि मुझमें अमुक-अमुक दोष है, उनके लिए तुम लोग मुझे क्षमा करो पर तुम स्वयं कभी इन दोषों के दोषी मत बनना, नही तो मैं कही का न रहूगा। जब कोई दम्पति सन्तान की इच्छा करता है तब उनके मन में यही भावना रहती है कि सन्तान उनकी प्रतिष्ठा बढ़ायेगी, खूब उन्नति करेगी और उनकी कीर्ति को चिरंजीवी बनायेगी। इसीलिए रामचन्द्र ने कहा: रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाय वरु वचन न जाई।" उन्होंने यह नही कहा कि यह रामचन्द्र की रीति है। रामचन्द्र ने रघुवंश का उद्धार किया था। सो तुम भी...के वंश का और आश्रम का उद्धार करो। आश्रम में अनेक दोष है, पर वे तो हम गुरुओं के दोष हैं। उनका अनुकरण तुम्हें तो नहीं करना है न? तुम्हारा धर्म यही है कि आश्रम में जो-कुछ अच्छा है उसे अपनाओ। इसीलिए पत्र लिखने के अपने वादे से मुक्त होने की तुम्हारी इच्छा मुझे ठीक नही लगी। जवानी में मनुष्य पुरुषार्थ कर सकता है। समझदार व्यक्ति के लिए जवानी उच्छृंखल और स्वच्छन्द आचरण का नही, संयम सीखने का समय है।

सम्भव है, तुम पत्र की बात न समझ सको। चि०... से समझना। फाड़-कर फेंक मत देना। अत्यधिक काम से वोझ से दवे होने पर भी मैंने तुम दोनों को याद किया है। थोड़े से शब्द लिखने की इच्छा थी, पर पत्र लम्बा और गम्भीर हो गया। इसलिए सँभाल कर रखने के लिए कहता हूं।

—गुजराती। कानपुर, २६।१२।१९२५। म० भा० डा० भाग ६ स० से० स० संस्करण।]

सौजन्य: श्रीनारायण देसाई।

१३. पत्र: लक्ष्मीदास आसर को

(२६ दिसम्बर, १९२५)[1]

चि०...

तुम्हारा पत्र पाकर अब मैं निश्चिन्त हो गया हूं। मुझे डर था कि कही भाई

---

१. साधन-सूत्र के अनुसार

. . . तुम्हें गलत रास्ते पर न ले जायं, सो डर नहीं रहा। हम सन्त-असन्त व्यक्तियों को जानते हुए भी उनपर स्नेह रक्खें, यही हमारा धर्म है। हम दूसरों में कोई बुराई देखे ही नही, कई वार तो प्रेम शब्द की हम यही व्याख्या करते हैं। चि० . . . ने जो बात छुपाई सो ठीक तो नही थी, पर मुझे उसका दुःख नही है, केवल दया आई। उसे कबूल करते समय वह घबरा गई होगी। हम घोर-से-घोर निडर होकर पाप कर डालते हैं, पर उन्हें स्वीकार करते हुए घबराते है। पर इस पृथिवी पर ऐसे लोग कितने होंगे जो अपने दोषों को पहचानकर उन्हें सबके सामने प्रकट कर दे।. . .क्या करती ? अव ईश्वर उसकी रक्षा करें। तुमने भाई. . .से पिछली सारी बातें कह दी, सो अच्छा ही किया।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती कानपुर, २६।१२।१९२५। म० भा० डा० भाग ६ स० से० संघ संस्करण।]
सौजन्य : श्रीनारायण देसाई।

१४. पत्र : वसुमती पण्डित को

कानपुर
मौनवार (२८ दिसम्बर, १९२५)[1]

चि० वसुमती,

पिछले चार दिनों से तुम्हारा कोई पत्र नही है। मुझे सप्ताह में एक पत्र मिल जाये तो भी काफी है।

मेरी तबीयत अच्छी रहती है। दही और फल मुझे अनुकूल आते हैं। वजन तो बढ़ा ही है। कमानी के कांटे से ९८ पौंड है, यह हमारी तराजू पर ९४ नही तो ९३ पौण्ड तो अवश्य है। वजन का इतना बढ़ जाना बहुत कहा जा सकता है। काम तो अच्छी तरह कर ही पाता हूं।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। कानपुर, २८।१२।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २९ से।]
सौजन्य : वसुमती पण्डित

---

१. १९।१२।१९२५ के एसोसिएड प्रेस आफ इण्डिया को दी गई भेंट के अनुसार २८ दिसम्बर को गांधी जी का मौनवार था।

१५. पत्र : वालजी गो० देसाई को

कानपुर
सोमवार (२८ दिसम्बर, १९२५)[1]

भाई श्री वाल जी,

मै सर हैराल्ड मैन से अहमदावाद में ही मिल सकूगा। मै दिल्ली होकर अहमदाबाद जानेवाला हूं। यहां से कल रवाना होऊंगा और ३१ तारीख को आश्रम पहुंचूंगा।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। कानपुर, २८।१२।१९२५। सं० गां० वा० खण्ड २९ से।]
सौजन्य : श्री वालजी गो० देसाई।

१६. प्रमाणपत्र : तुलसी मेहर को

कानपुर
२९ दिसम्बर, १९२५

श्री तुलसी मेहर जी सत्याग्रह आश्रम में कम-से-कम चार वर्ष तक रहे हैं। उनका संयम ने मेरे दिलपर वड़ा प्रभाव डाला है। वे वड़ी सादगी से आश्रम में रहते थे। उसका उद्यम भी स्तुत्य था। उन्होंने धुनना कातना विनना सीख लिया है। और धुनने में उनका पहला स्थान रहा है। आज भी मैं उनको आश्रमवासी समझता हुं।

मोहनदास गांधी

—हिन्दी। कानपुर, २९।१२।१९२५। गांधी स्मारकनिधि-संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित पत्रावली से।]

१७. पत्र : आश्रम की वहिनों को

काशी १०-१-१९२७

वहिनो,

चि० राधा का लिखा हुआ पत्र मुझे कल ही मिला। मैं देखता हूं कि तुम्हारी

---

१. डाक की मुहर से।

सात वजे की प्रार्थना नियम से हो रही है और उसमें सबको दिलचस्पी है। इससे खुशी होती है। काका साहब का कहना जरूर ध्यान में रखने लायक है। 'हां' या 'ना' कहकर बैठे रहने के बजाय हमे उसके कारण समझने या समझाने की शक्ति पैदा करनी चाहिए।

कल श्रद्धानन्द जी के लिए श्रद्धाञ्जलि का दिन था। पं० मालवीय जी अभी काशी में ही है। उन्होने अन्त समय पर कहलवाया कि गंगाघाट नहाने जाना है और वहा अञ्जलि देनी है। मै तैयार हो गया और राष्ट्रीय विद्यापीठ के विद्यार्थियों को, जो मुझसे मिलने आये थे, साथ ले लिया। दो-दो की कतार बांधकर हम निकल पड़े। मालवीय जी शामिल हो गये और हमारा जुलूस बढ़ता गया। गंगाघाट का वर्णन करने का तो मुझे समय नही है। यह दृश्य भव्य है। घाट पर मैं (जितनी) चाहता हूं, उतनी सफाई नहीं है।

स्नान करके हम काशी विश्वनाथ के दर्शनों के लिए गये। वहां का शेष वर्णन तो शायद महादेव करेगा। जर्मन बहिन हमारे साथ थी। उन्हें घुसने देंगे या नही, इस बारे मे शक था। वह बहिन बौद्ध है, इसलिए हिन्दू मानी जायगी। उसे कौन रोक सकता है? उसे रोकें तो मुझे नही जाना है, यह मैने सोच रखा था। मगर पण्डे को यह बताने पर कि वह हिन्दू है, वह चुप हो गया।

काशी विश्वनाथ की गली की गन्दगी की तो क्या बात लिखूं?

मौनवार

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। काशी, १०।१।१९२७। 'आश्रम की बहिनों को' से। पत्र संख्या ६।]

१८. पत्र : आश्रम की बहिनों को

नैनीताल

१७-६-१९२९

बहिनो,

तुम्हारी जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। 'आदर्श बाल-मन्दिर' के विषय में किशोरलाल[1] का जो पत्र आया है, वह साथ भेजता हूं। तुम पढ़ना और शिक्षकों

---

१. किशोरलाल भाई : प्रमुख गांधीवादी विचारक, साधक और अनेक ग्रन्थों के रचयिता। गांधी-सेवा-संघ के अध्यक्ष।

को पढ़ने के लिए देना। मै चाहता हूं कि जिन बहनों को दिलचस्पी है वे खूब तैयार हो जायं। नारायणदास को खूब तंग करके भी सीख लेना। उससे भी ज्यादा होशयार बतानेवाला होना सम्भव है। मगर "एकहि साधे सब सधे" वाली बात है।

रसोईघर को तो सुशोभित करोगी ही।

मौनवार बापू के आशीर्वाद

--गुजराती। नैनीताल, १७।६।१९२९। 'आश्रम की बहिनों को' से। पत्र-संख्या ७२।]

१९. अनासक्ति-योग : प्रस्तावना

[गीता गांधीजी के समस्त जीवन का दीपक ही नहीं है, वह उनके जीवन की शिरा-शिरा में समाई हुई है। उन्होंने उसका अध्ययन ही नहीं किया, अपने जीवन में उसे जिया है, आचरित किया है। उनके मत से अनासक्ति या कर्मफल-त्याग इस गीता का मध्यबिन्दु है। इसे ही स्पष्ट करने के लिए अवकाश के समय उन्होंने गीता की 'अनासक्तियोग' नाम की टीका लिखी थी। इस टीका की अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्तावना उन्होंने उत्तर प्रदेश के कौसानी नामक स्थान में लिखी। वह प्रस्तावना यहां दी जा रही है।--सम्पा०]

जैसे स्वामी आनन्द आदि मित्रों के प्रेम के वश होकर मैंने सत्य के प्रयोगों भर के लिए आत्मकथा का लिखना आरम्भ किया था वैसे गीता का अनुवाद भी। स्वामी आनन्द ने असहयोग के जमाने में मुझसे कहा था, 'आप गीता का जो अर्थ करते है, वह अर्थ तभी समझ में आ सकता है जब आप एक बार समूची गीता का अनुवाद कर जायं और उसके ऊपर जो टीका करनी हो वह करें और हम वह सम्पूर्ण एक बार पढ़ जायं। फुटकर श्लोकों में से अहिंसादि का प्रतिपादन मुझे तो ठीक नही लगता है।' मुझे उनकी दलील में सार जान पड़ा। मैंने जवाब दिया, अवकाश मिलने पर यह करूंगा। फिर मैं जेल गया। वहां गीता का अध्ययन कुछ अधिक गहराई से करने का मौका मिला। लोकमान्य का ज्ञान का भण्डार पढ़ा। उन्होने ही पहले मुझे मराठी, हिन्दी और गुजराती अनुवाद प्रेमपूर्वक भेजे थे और सिफारिश की थी कि मराठी न पढ़ सकूं तो गुजराती अवश्य पढ़ूं। जेल के बाहर तो उसे न पढ़ पाया, पर जेल में गुजराती अनुवाद पढ़ा। इसे पढ़ने के बाद

गीता के सम्बन्ध मे अधिक पढने की इच्छा हुई और गीता-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ उलटे-पलटे।

मुझे गीता का प्रथम परिचय एडविन आर्नल्ड के पद्य-अनुवाद से सन् १८८८-८९ मे प्राप्त हुआ। उससे गीता का गुजराती अनुवाद पढ़ने की तीव्र इच्छा हुई और जितने अनुवाद हाथ लगे उन्हे पढ़ गया, परन्तु ऐसी पढ़ाई मुझे अपना अनुवाद जनता के सामने रखने का बिल्कुल अधिकार नही देती। इसके सिवा मेरा संस्कृत-ज्ञान अल्प है, गुजराती का ज्ञान विद्वत्ता के विचार से कुछ नही है। तब मैंने अनुवाद करने की धृष्टता क्यो की?

गीता को मैने जिस प्रकार समझा है उस प्रकार उसका आचरण करने का मेरा और मेरे साथ रहनेवाले कई साथियो का बराबर प्रयत्न है। गीता हमारे लिए आध्यात्मिक निदान-ग्रन्थ है। उसके अनुसार आचरण मे निष्फलता रोज आती है, पर वह निष्फलता हमारा प्रयत्न रहते हुए है, इस निष्फलता में सफलता की फूटती हुई किरणो की झलक दिखाई देती है। यह नन्हा-सा जन-समुदाय जिस अर्थ को आचार में परिणत करने का प्रयत्न करता है वह इस अनुवाद में है।

इसके सिवा स्त्रियां, वैश्य और शूद्र-सरीखे जिन्हें अक्षरज्ञान थोड़ा ही है, जिन्हें मूल संस्कृत मे गीता समझने का समय नही है, इच्छा नही है, परन्तु जिन्हे गीतारूपी सहारे की आवश्यकता है, उन्ही के लिए इस अनुवाद की कल्पना है।[1] गुजराती भाषा का मेरा ज्ञान कम होने पर भी उसके द्वारा गुजरातियों को मेरे पास जो कुछ पूजी हो वह दे जानेकी मुझे सदा भारी अभिलाषा रही है। मैं यह चाहता हूं अवश्य कि आज गन्दे साहित्य का जो प्रवाह जोरों से जारी है उस समय हिन्दू-धर्म मे अद्वितीय माने जानेवाले इस ग्रन्थ का सरल अनुवाद गुजराती जनता को मिले और उसमें से वह उस प्रवाह का सामना करने की शक्ति प्राप्त करे।

इस अभिलाषा में दूसरे गुजराती अनुवादो की अवहेलना नही है। उन सबका स्थान भले ही हो—पर उनके पीछे उनके अनुवादकों का आचार-रूपी अनुभवका दावा हो, ऐसा मेरी जानकारी मे नही है। इस अनुवाद के पीछे अड़तीस वर्ष के आचार के प्रयत्न का दावा है। इसलिए मैं यह अवश्य चाहता हूं कि प्रत्येक गुजराती भाई और वहिन, जिन्हे धर्म को आचरण में लाने की इच्छा है, इसे पढ़ें, विचारे और इसमे से शक्ति प्राप्त करे।

इस अनुवाद में मेरे साथियों की मेहनत मौजूद है। मेरा संस्कृत ज्ञान बहुत अधूरा होने के कारण शब्दार्थ पर मुझे पूरा विश्वास नही हो सकता था, अतः

---

१. गांधी जी का अनुवाद गुजराती में है। यह उसी का हिन्दी अनुवाद है।

इतने भर के लिए इस अनुवाद को विनोबा, काका कालेलकर, महादेव देसाई और किशोरलाल मशरूवाला ने देख लिया है।

(२)

अब गीता के अर्थ पर आता हूं।

सन् १८८८-८९ में जब गीता का प्रथम दर्शन हुआ तभी मुझे ऐसा लगा कि यह ऐतिहासिक ग्रन्थ नही है, वरन् इसमें भौतिक युद्ध के वर्णन के बहाने प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भीतर निरन्तर होने रहनेवाले द्वन्द्वयुद्ध का ही वर्णन है, मानुषी योद्धाओं की रचना हृदयगत युद्ध को रोचक बनाने के लिए गढ़ी हुई कल्पना है। यह प्राथमिक स्फुरणा धर्म का और गीता का विशेष विचार करने के बाद पक्की हो गई। महाभारत पढने के बाद यह विचार और भी दृढ़ हो गया। महाभारत ग्रन्थ को मैं आधुनिक अर्थ में इतिहास नही मानता। इसके प्रबल प्रमाण आदि पर्व मे ही है। पात्रों की अमानुषी और अतिमानुषी उत्पत्ति का वर्णन करके व्यास भगवान ने राजा-प्रजा के इतिहास को मिटा दिया है।उसमें वर्णित पात्र मूल मे ऐतिहासिक भले ही हों, परन्तु महाभारत में तो उनका उपयोग व्यास भगवान ने केवल धर्म का दर्शन कराने के लिए ही किया है।

महाभारतकार ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता नही, उनकी निरर्थकता सिद्ध की है। विजेता से रुदन कराया है, पश्चात्ताप कराया है और दुःख के सिवा और कुछ नही रहने दिया।

इस महाग्रन्थ में गीता शिरोमणिरूप से विराजती है। उसका दूसरा अध्याय भौतिक युद्ध-व्यवहार सिखाने के बदले स्थितप्रज्ञ के लक्षण सिखाता है। स्थितप्रज्ञ का ऐहिक युद्ध के साथ कोई सम्बन्ध नही होता, यह बात उसके लक्षणों से में ही मुझे प्रतीत हुई है। साधारण पारिवारिक झगड़ों के औचित्य-अनौचित्य का निर्णय करने के लिए गीता-जैसी पुस्तक की रचना सम्भव नही है।

गीता के कृष्ण मूर्तिमान् शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान है, परन्तु काल्पनिक हैं। यहां कृष्ण नाम के अवतारी पुरुष का निषेध नही हैं। केवल सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक है, सम्पूर्णावतार का आरोपण पीछे से हुआ है।

अवतार से तात्पर्य है शरीरधारी पुरुष-विशेष। जीवमात्र ईश्वर के अवतार है, परन्तु लौकिक भाषा में सबको हम अवतार नही कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान है, उसे भावी प्रजा अवतार रूप से पूजती है। इसमे मुझे कोई दोष नही जान पड़ता।इसमें न तो ईश्वर के बड़प्पन मे कमी आती है, न उसमे सत्य को आघात पहुचता है। आदम खुदा नही, लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नही।

जिसमें धर्म-जागृति अपने युग में सबसे अधिक है वह विशेषावतार है। इस विचार-श्रेणी में कृष्णरूपी सम्पूर्णावतार आज हिन्दू धर्म में साम्राज्य भोग रहा है।

यह दृश्य मनुष्य की अन्तिम सदभिलाषा का सूचक है। मनुष्य को ईश्वर रूप हुए बिना चैन नही पड़ता, शान्ति नही मिलती। ईश्वर रूप होने के प्रयत्न का नाम सच्चा और एकमात्र पुरुषार्थ है और यही आत्मदर्शन है। यह आत्मदर्शन सब धर्मग्रन्थो का विषय है, वैसे ही गीता का भी है। पर गीताकार ने इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए गीता नही रची। वरन् आत्मार्थी को आत्मदर्शन का एक अद्वितीय उपाय बतलाना गीता का आशय है। जो चीज हिन्दूधर्मग्रन्थो में छिटपुट दिखाई देती है, उसे गीता ने अनेक रूपों, अनेक शब्दों मे, पुनरुक्ति का दोष स्वीकार करके भी, अच्छी तरह स्थापित किया है।

यह अद्वितीय उपाय है 'कर्मफल-त्याग'।

इस मध्यबिन्दु के चारों ओर गीता की सारी सजावट है। भक्ति, ज्ञान इत्यादि उसके आसपास तारा-मण्डल रूप में सज गये है। जहां देह है वहां कर्म तो है ही। उससे कोई मुक्त नहीं है, तथापि देह को प्रभु का मन्दिर बनाकर उसके द्वारा मुक्ति प्राप्त होती है, यह सब धर्मो ने प्रतिपादन किया है। परन्तु कर्म मात्र मे कुछ दोष तो है ही, मुक्ति तो निर्दोष की ही होती है। तब कर्म-बन्धन में से अर्थात् दोष-स्पर्श मे से कैसे छुटकारा हो? इसका जवाब गीताजी ने निश्चयात्मक शब्दों में दिया है—"निष्काम कर्म से, यज्ञार्थ कर्म करके, कर्मफल-त्याग करके, सब कर्मो को कृष्णार्पण करके, अर्थात् मन, वचन और काया को ईश्वर मे होम करके।

पर निष्कामता, कर्मफलत्याग कहने भर से नही हो जाता। यह केवल बुद्धि का प्रयोग नही है। यह हृदयमन्थन से ही उत्पन्न होता है। यह त्याग-शक्ति पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिए। एक प्रकार का ज्ञान तो बहुतेरे पण्डित पाते हैं। वेदादि उन्हें कण्ठ होते है, परन्तु उनमें से अधिकाश भोगादि में लगे-लिपटे रहते है। ज्ञान का अतिरेक शुष्क पाण्डित्य के रूप में न हो जाय, इस ख्याल से गीताकार ने ज्ञान के साथ भक्ति को मिलाया और उसे प्रथम स्थान दिया। बिना भक्ति का ज्ञान हानिकर है। इसलिए कहा गया, भक्ति करो तो ज्ञान मिल ही जायगा। पर भक्ति तो सिर का सौदा है, इसलिए गीताकार ने भक्त के लक्षण स्थितप्रज्ञ के-से बतलाये है।

तात्पर्य, गीता की भक्ति बाह्याचारिता नही है, अन्धश्रद्धा नही है। गीता में बताये उपचार का बाह्य चेष्टा या क्रिया के साथ कम-से-कम सम्बन्ध है। माला, तिलक, अर्घ्यादि साधन भले ही भक्त बरते, पर वे भक्ति के लक्षण नही हैं। जो किसी का द्वेष नही करता, जो करुणा का भण्डार है और ममतारहित है, जो

निरहंकार है, जिसे सुख-दुःख, शीत-उष्ण समान हैं, जो क्षमाशील है, जो सदा-सन्तोषी है, जिसके निश्चय कभी बदलते नही, जिसने मन और बुद्धि ईश्वर को अर्पण कर दिये है, जिससे लोग उद्वेग नही पाते, जो लोगों का भय नहीं रखता, जो हर्ष-शोक-भयादि से मुक्त है, जो पवित्र है, जो कार्यदक्ष होकर भी तटस्थ है, जो शुभाशुभ का त्याग करनेवाला है, जो शत्रु-मित्र का सम-भाव रखनेवाला है, जिसे मान-अपमान समान है, जिसे स्तुति से खुशी नही होती और निन्दा से ग्लानि नही होती, जो मौनधारी है, जिसे एकान्त प्रिय है, जो स्थिरबुद्धि है, वह भक्त है। यह भक्ति आसक्त स्त्री-पुरुषों में सम्भव नही है।

इसमें से हम देखते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना, भक्त होना ही आत्मदर्शन है। आत्मदर्शन उससे भिन्न वस्तु नही है। जैसे रुपये के बदले में जहर खरीदा जा सकता है और अमृत भी लाया जा सकता है, वैसे ज्ञान या भक्ति के बदले बन्धन भी लाया जा सके और मोक्ष भी, यह सम्भव नही है। यहां तो साधन और साध्य, बिल्कुल एक नही तो लगभग एक ही वस्तु हैं; साधन की पराकाष्ठा जो है वही मोक्ष है और गीता के मोक्ष का अर्थ परमशान्ति है।

किन्तु ऐसे ज्ञान और भक्ति को कर्मफलत्याग की कसौटी पर चढ़ाना ठहरा। लौकिक कल्पना मे शुष्क पण्डित भी ज्ञानी मान लिया जाता है। उसे कुछ काम करने को नही रहता। हाथ से लोटा तक उठाना भी उसके लिए कर्मबन्धन है। यज्ञशून्य जहां ज्ञानी गिना जाय वहां लोटा उठाने-जैसी तुच्छ लौकिक क्रिया को स्थान ही कैसे मिल सकता है?

लौकिक कल्पना में भक्त से मतलब है बाह्याचारी,[१] माला लेकर जप करने-वाला। सेवाकर्म करने भी उसकी माला में विक्षेप पड़ता है। इसलिए वह खाने-पीने आदि भोग भोगने के समय ही माला को हाथ से छोड़ता है, चक्की चलाने या रोगी की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए कभी नही छोड़ता।

इन दोनों वर्गो को गीता ने साफतौर से कह दिया, कर्म बिना किसी ने सिद्धि नही पाई। जनकादि भी कर्म-द्वारा ज्ञानी हुए। यदि मैं भी आलस्यरहित होकर कर्म न करता रहूं तो इन लोकों का नाश हो जाय। तो फिर लोगों के लिए पूछना ही क्या रह जाता है?

परन्तु एक ओर से कर्ममात्र बन्धन रूप है, यह निर्विवाद है। दूसरी ओर से देही इच्छा-अनिच्छा से भी कर्म करता रहता है। शारीरिक या मानसिक सभी

---

१. जो बाह्याचार में लीन रहता है और शुद्ध भाव से मानता है कि यही भक्ति है।

चेष्टाए कर्म है। तब कर्म करते हुए भी मनुष्य बन्धनमुक्त कैसे रहे? जहां तक मुझे मालूम है, इस समस्या को गीता ने जिस तरह हल किया है वैसे दूसरे किसी भी धर्म-ग्रन्थ ने नही किया है। गीता का कहना है—फलासक्ति छोड़ो और कर्म करो, आशारहित होकर कर्म करो, निष्काम होकर कर्म करो। यह गीता की वह ध्वनि है जो भुलाई नही जा सकती। जो कर्म छोड़ता है वह गिरता है। कर्म करते हुए भी जो उसका फल छोडता है वह चढ़ता है। फलत्याग का यह अर्थ नही है कि परिणाम के सम्बन्ध में लापरवाही रहे। परिणाम और साधन का विचार और उसका ज्ञान अत्यावश्यक है। इतना होने के बाद जो मनुष्य परिणाम की इच्छा किये बिना साधन में तन्मय रहता है वह फलत्यागी है।

पर यहां फलत्याग का कोई यह अर्थ न करे कि त्यागी को फल मिलता नही। गीता मे ऐसे अर्थ को कही स्थान नही है। फलत्याग से मतलब है फल के सम्बन्ध मे आसक्ति का अभाव। वास्तव मे देखा जाय तो फलत्यागी को तो हजार गुना फल मिलता है। गीता के फलत्याग मे तो अपरिमित श्रद्धा की परीक्षा है। जो मनुष्य परिणाम का ध्यान करता रहता है वह बहुत बार कर्म-कर्त्तव्यभ्रष्ट हो जाता है। उसे अधीरता घेरती है, इससे वह क्रोध के वश हो जाता है और फिर वह न करने योग्य करने लग पड़ता है, एक कर्म में से दूसरे में और दूसरे में से तीसरे में पड़ता जाता है। परिणाम की चिन्ता करनेवाले की स्थिति विषयान्ध की-सी हो जाती है और अन्त मे वह विषयी की भांति सारासार का, नीति-अनीति का विवेक छोड़ देता है और फल प्राप्त करने के लिए हर किसी साधन से काम लेता है और उसे धर्म मानता है।

फलासक्ति के ऐसे कटु परिणामों में से गीताकार ने अनासक्ति का अर्थात् कर्मफलत्याग का सिद्धान्त निकाला और संसार के सामने अत्यन्त आकर्षक भाषा मे रक्खा। साधारणत: तो यह माना जाता है कि धर्म और अर्थ विरोधी वस्तु है, व्यापार इत्यादि लौकिक व्यवहार मे धर्म नही बचाया जा सकता,' धर्म को जगह नही हो सकती; धर्म का उपयोग केवल मोक्ष के लिए किया जा सकता है। धर्म की जगह धर्म शोभा देता है और अर्थ की जगह अर्थ। बहुतों से ऐसा कहते हम सुनते हैं। गीताकार ने इस भ्रम को दूर किया है। उसने मोक्ष और व्यवहार के बीच ऐसा भेद नही रक्खा है, वरन् व्यवहार मे धर्म को उतारा है। जो धर्म व्यवहार मे न लाया जा सके वह धर्म नही है, मेरी समझ से यह बात गीता मे है। मतलब, गीता के मतानुसार जो कर्म ऐसे है कि आसक्ति के बिना हो ही न सके वे सभी त्याज्य है। ऐसा सुवर्ण-नियम मनुष्य को अनेक धर्म-सकटों में से बचाता है। इस मत के अनुसार खून, झूठ, व्यभिचार इत्यादि कर्म अपने-आप त्याज्य हो

जाते है। मानव-जीवन सरल वन जाता है और सरलता में से शान्ति उत्पन्न होती है।

इस विचार-श्रेणी के अनुसार मुझे ऐसा जान पड़ा है कि गीता की शिक्षा को व्यवहार में लानेवाले को अपने-आप सत्य और अहिंसा का पालन करना पड़ता है। फलासक्ति के बिना न तो मनुष्य को असत्य बोलने का लालच होता है, न हिसा करने का। चाहे जिस हिसा या असत्य के कार्य को हम लें, यह मालूम हो जायगा कि उसके पीछे परिणाम की इच्छा रहती है। गीताकाल के पहिले भी अहिसा परमधर्म रूप मानी जाती थी। पर गीता को तो अनासक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना था। दूसरे अध्याय में ही यह बात स्पष्ट हो जाती है।

परन्तु यदि गीता को अहिसा मान्य थी अथवा अनासक्ति में अहिसा अपने-आप आ ही जाती है तो गीताकार ने भौतिक युद्ध को उदाहरण के रूप में भी क्यों लिया? गीतायुग में अहिसा धर्म मानी जाने पर भी भौतिक युद्ध सर्वमान्य वस्तु होने के कारण गीताकार को ऐसे युद्ध का उदाहरण लेते संकोच नही हुआ और न होना चाहिए था।

परन्तु फलत्याग के महत्व का अन्दाजा करते हुए गीताकार के मन में क्या विचार थे, उसने अहिसा की मर्यादा कहां निश्चित की थी, इस पर हमें विचार करने की आवश्यकता नही रहती। कवि महत्व के सिद्धान्तों को संसार के सम्मुख उपस्थित करता है, इसके यह मानी नही होते कि वह सदा अपने उपस्थित किये हुए सिद्धान्तों का महत्व पूर्णरूप से पहचानता है या पहचानने के बाद समूचे को भाषा में रख सकता है। इसमें काव्य की और कवि की महिमा है। कवि के अर्थ का अन्त ही नही है। जैसे मनुष्य का, उसी प्रकार महावाक्यों के अर्थ का विकास होता ही रहता है। भाषाओं के इतिहास से हमें मालूम होता है कि अनेक महान् शब्दों के अर्थ नित्य नये होते रहे है। यही वात गीता के अर्थ के सम्बन्ध में भी है। गीताकार ने स्वयं महान् रूढ़ शब्दो के अर्थ का विस्तार किया है। गीता को ऊपरी दृष्टि से देखने पर भी यह वात मालूम हो जाती है। गीतायुग के पहले कदाचित् यज्ञ में पशु-हिसा मान्य रही हो। गीता के यज्ञ में उसकी कही गन्ध तक नही है। उसमें तो जप-यज्ञ यज्ञों का राजा है। तीसरा अध्याय बतलाता है कि यज्ञ का अर्थ है मुख्यरूप से परोपकार के लिए शरीर का उपयोग। तीसरा और चौथा अध्याय मिलाकर दूसरी व्याख्याएं, भी निकाली जा सकती है, पर पशु-हिसा नही निकाली जा सकती। यही वात गीता के संन्यास के अर्थ के सम्बन्ध में है। कर्ममात्र का त्याग गीता के संन्यास को भाता ही नही। गीता का संन्यासी अतिकर्मी तथापि अति-अकर्मी है। इस प्रकार गीताकार ने महान्

शब्दों का व्यापक अर्थ करके अपनी भाषा का भी व्यापक अर्थ करना हमें सिखाया है। गीताकार की भाषा के अक्षरों से यह वात भले ही निकलती हो कि सम्पूर्ण कर्मफलत्यागी द्वारा भौतिक युद्ध हो सकता है, परन्तु गीता की शिक्षा को पूर्णरूप से अमल में लाने का ४० वर्ष तक सतत प्रयत्न करने पर मुझे तो नम्रतापूर्वक जान पड़ा है कि सत्य और अहिसा का पूर्णरूप से पालन किये विना सम्पूर्ण कर्म-फलत्याग मनुष्य के लिए असम्भव है।

गीता सूत्र-ग्रन्थ नही है। गीता एक महान् धर्मकाव्य है। उसमें जितना गहरे उतरिए उतने ही उसमें से नये और सुन्दर अर्थ लीजिए। गीता जनसमाज के लिए है; उसमें एक ही वात को अनेक प्रकार से कहा है। अतः गीता में आये हुए महाशब्दों का अर्थ युग-युग में वदलता और विस्तृत होता रहेगा। गीता का मूल-मन्त्र कभी नही बदल सकता। वह मन्त्र जिस रीति से सिद्ध किया जा सके उस रीति से जिज्ञासु चाहे जो अर्थ कर सकता है।

गीता विधिनिषेध वतलानेवाली भी नही है। एक के लिए जो विहित होता है, वही दूसरे के लिए निषिद्ध हो सकता है। एक काल या एक देश मे जो विहित होता है, वह दूसरे काल में, दूसरे देश में निषिद्ध हो सकता है। निषिद्ध केवल फलासक्ति है, विहित है अनासक्ति।

गीता में ज्ञान की महिमा सुरक्षित है, तथापि गीता वुद्धिगम्य नहीं है, वह हृदयगम्य है। अतः वह अश्रद्धालु के लिए नही है। गीताकार ने ही कहा है—

"जो तपस्वी नही है, जो भक्त नही है, जो सुनना नहीं चाहता और जो मेरा द्वेष करता है, उससे यह (ज्ञान) तू कभी न कहना।" (१८-६७)

"परन्तु यह परमगुह्य ज्ञान जो मेरे भक्तों को देगा, वह मेरी परमभक्ति करने के कारण निःसन्देह मुझे ही पावेगा।" (१८-६८)

"और जो मनुष्य द्वेषरहित होकर श्रद्धापूर्वक केवल सुनेगा वह भी मुक्त होकर पुण्यवान जहां वसते है उस शुभ लोक को पावेगा।" (१८-७१)

—गुजराती। कौसानी, हिमालय। सोमवार, आषाढ़ कृष्ण २, १९८६।२४।६।-१९२९।]

२०. पत्र : आश्रम की बहिनों को

कानपुर, २३-९-१९२९

वहिनो,

तुम्हारी तरफ़ से गंगा वहन का लिखा हुआ पत्र मिल गया। मेरी अनु-

पस्थिति में वाल जी भाई वर्ग लेते हैं, यह वहुत अच्छा है। सभी उनकी विद्वत्ता का पूरा लाभ लेना। उनके पास जो है, वह मैं नही दे सकता। इसलिए आजकल जव वह अधिक समय दे सकते है, तो उनके ज्ञान को लूटना।

लक्ष्मी वहन अव आ गई होंगी। रमा बहन और डाही बहन प्रार्थना में मौजूद न रह सके, यह समझा जा सकता है। कर्त्तव्य-परायणता ही प्रार्थना है। प्रत्यक्ष सेवा के लिए योग्यता प्राप्त करने को हम प्रार्थना में बैठते है। मगर जहां प्रत्यक्ष कर्त्तव्य आ पड़े, वहां प्रार्थना उसमें समा जाती है। समाधि में बैठी हुई स्त्री किसी को बिच्छू काटने पर चिल्लाते हुए सुने, तो वह समाधि छोड़कर उसकी मदद के लिए दौड़ने को वँधी हुई है। दुखी की सेवा में समाधि की पूर्ति है।

वापू के आशीर्वाद

मौनवार

—गुजराती। कानपुर, २३।९।१९२९। 'आश्रम की बहिनों को' से। पत्र संख्या ७५।]

- **कर्त्तव्यपरायणता ही प्रार्थना है।**
- **पुखी की सेवा में समाधि की पूर्ति है।**

२१. पत्र : आश्रम की बहिनों को

लखनऊ

३०-९-१९२९

वहिनो,

लखनऊ तो बहिनों के पर्दे का केन्द्र माना जाता है। यहां मुसलमान बहिनें बहुत रहती है। उन्होंने मुझसे पूछा कि उनका दुःख कैसे मिटे। मैं तो एक ही जवाब दे सकता हूं न? अपने वन्धन हम खुद ही तैयार करते है। कल ही इन बहिनों की सभा थी। उन्हें पर्दा रखने के लिए किसी ने मजबूर नही किया था, मगर उन्होंने खुद ही मान लिया कि पर्दे के विना चल ही नही सकता। ऐसी अड़चनें दूर करने के लिए आश्रम है और उसकी डोर तुम्हारे हाथ में है। तुम वन्धन तोड़कर मर्यादा-धर्म का पालन करके, ज्ञान लेकर, सेवा-परायण वन जाओ, तो दूसरी वहिनों के लिए सहज में ही उदाहरण बन जाओगी।

मौनवार

वापू के आशीर्वाद

—गुजराती। लखनऊ, ३०।९।१९२९। 'आश्रम की बहिनों को' से। पत्र संख्या ७६।]

२२. पत्र : आश्रम की बहिनों को

गोरखपुर
७-१०-१९२९

वहिनो,

समय-समय पर तुम याद आती रहती हो। सफर में जैसे-जैसे बहिनों को देखता हूं, वैसे-वैसे तुम्हारे सामने पड़े हुए काम का विचार आया करता है और वैसे-वैसे समझता हूं कि अच्छी तालीम तो हृदय की है। अगर उसमें शुद्ध प्रेम प्रगट हो तो वाकी सब कुछ अपने-आप आ जाता है। सेवा का क्षेत्र अमर्यादित है। सेवा की शक्ति भी अमर्यादित बनाई जा सकती है, क्योंकि आत्मा की शक्ति की कोई मर्यादा है ही नही। जिसके हृदय के कपाट खुल गये हैं, उसके हृदय में तो सब कुछ समा सकता है। ऐसे आदमी का जरा-सा काम भी खिल उठता है। जिसके हृदय पर मुहर लगी हुई है, उसका ज्यादा काम भी नही के वरावर होगा। विदुर की भाजी और दुर्योधन के मेवे में यही अर्थ छिपा हुआ है।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। गोरखपुर, ७।१०।१९२९। 'आश्रम की बहिनों को', पत्र-संख्या ७७।]

- सेवा का क्षेत्र अमर्यादित है, सेवा की शक्ति भी अमर्यादित बनाई जा सकती है।
- जिसके हृदय के कपाट खुल गये हैं, उसके हृदय में तो सब कुछ समा सकता है।

२३. पत्र : आश्रम की बहिनों को

हरद्वार
१४-१०-१९२९

वहिनो,

आज हम गंगा के उद्गम के निकट पहुंच गये है। यहां से बिल्कुल निकट ही गंगा का सपाट भूमि पर बहना प्रारम्भ होता है। अब आगे बढ़ने पर धीरे-धीरे पहाड़ आयेगा।

आज मौनवार होने के कारण कुसुम, प्रभावती और कान्ति देवदास के साथ

प्रसिद्ध स्थान देखने निकल गये है। यहां कुदरत की तो कृपा है, किन्तु इन्सान ने सब जगह बिगाड़ दी है।

आज बस इतना ही।

बापू के आशीर्वाद

शनिवार

—गुजराती। हरद्वार, १४।१०।१९२९। 'आश्रम की बहिनों को" पत्र-संख्या ७८।]

२४. स्वयंसेवक का कर्त्तव्य

संयुक्तप्रान्त के दौरे में स्वयंसेवकों से परिचय हो रहा है, इसमें मैं देखता हूं कि उनको तालीम की बड़ी आवश्यकता है। स्वयंसेवकों की भावना शुद्ध है। उनके प्रेम में कोई न्यूनता नही, परन्तु भावना और प्रेम में से जो शक्ति पैदा होनी चाहिए वह शिक्षा के अभाव से हो नही रही है। स्वयंसेवकों में प्रबन्ध-शक्ति बहुत कम है। इस कारण अक्सर उनसे सहायता मिलने के बदले नई मुसीबतें खड़ी हो जाती हैं। अतएव उनके लिए तालीम की बड़ी आवश्यकता है। दिल से भले वे स्वयंसेवक बन जाते हों, मगर इस तरह कोई काम पूरा नहीं होता। जो आसान-से-आसान काम माने जाते हैं उनके लिए भी कुछ न कुछ तालीम की आवश्यकता मानी ही गई है। भंगी का काम भी बगैर तालीम के नही हो सकता। फिर भला स्वयंसेवक का काम बगैर तालीम के कैसे सफल हो सकता है।

स्वयंसेवक राष्ट्र का सिपाही है। उसके द्वारा हम अन्त में स्वराज्य पाने की आशा रखते है। राष्ट्रीय दल के ऐसे लोगों में बड़ी योग्यता होनी चाहिए।

स्वयंसेवक में :—

१. बड़ी-बड़ी सभाओं में शान्ति रखने की शक्ति होनी चाहिए।

२. राष्ट्रभाषा का ज्ञान होना चाहिए।

३. इशारे से अपने विचार दूसरे स्वयंसेवक को समझाने की शक्ति होनी चाहिए।

४. कोलाहल को बन्द करने की शक्ति होनी चाहिए।

५. लोगों के समुदाय में रास्ता बनाने की शक्ति होनी चाहिए।

६. एक साथ, तालबद्ध कूच करने की शक्ति होनी चाहिए।

७. किसी को चोट लगने पर उसके तात्कालिक उपचार का ज्ञान होना चाहिए।

८. लोगों की गालियां, उनके कटुवचन, प्रहार, ताने-तिस्ने वगैरा सहने की शक्ति होनी चाहिए।

९. सरकारी दण्ड, जैसे कि जेल, इत्यादि को सह लेने की शक्ति होनी चाहिए।

१०. धीरज, सत्य, दृढ़ता, वीरता, अहिंसादि गुण होने चाहिए।

इनके अलावा मेरी दृष्टि में स्वयंसेवक निरन्तर खद्दर-पोश होने चाहिए। उन्हें नियम-पूर्वक यज्ञार्थ सूत भी कातना चाहिए।

इस तरह की तालीम के लिए प्रत्येक प्रान्त में स्वयसेवक-शिक्षागृह होने चाहिए और इसके लिए हमारे देश के अनुकूल पाठ्य-पुस्तकें भी होनी चाहिए।

हिसक सिपाही में जिस शक्ति की आवश्यकता है, उसमें से हिसा के भाग को छोड कर शेष सव शक्ति एक अहिसक सिपाही के लिए भी आवश्यक है। परन्तु अहिसक सिपाही मे हिसक सिपाही की अपेक्षा दूसरे वहुतेरे गुणो की भी आवश्यकता रहती है। पाठक उन्हे जानते होगे।

—हि० न० जी०, १७।१०।१९२९।]

२५. पत्र : आश्रम की बहिनों को

मसूरी
२१-१०-२९

वहिनो,

मसूरी एक ऐसी जगह है, जहा राग-रंग की सीमा ही नही। यहा पर्दा तो शायद ही हो। धनिक स्त्रियां नाच-गान में भी शरीक रहती है। ओठ रँगती है, तरह-तरह के साज सजती है और पश्चिम का हानिप्रद अनुकरण खूब करती है। हमारा तो मध्य मार्ग है। हमे अन्ध-विश्वास और पर्दे को नही पालना है तो निर्लज्जता और स्वच्छन्दता को भी पोषण नही देना है। यह वीच का मार्ग सीधा है, मगर मुश्किल है। इस मार्ग पर लगना और कायम रहना हमारा उद्देश्य है।

बापू के आशीर्वाद

मौनवार

—गुजराती। मसूरी, २१।१०।१९२९। 'आश्रम की वहिनों को', पत्र-संख्या ७९।]

● हमें अन्ध-विश्वास और पर्दे को नहीं पालना है, तो निर्लज्जता और स्वच्छन्दता को भी पोषण नहीं देना है।

२६. पत्र : आश्रम की बहिनों को

मेरठ
२८-१०-१६२६

वहिनो,

आज हम मेरठ में कृपालानी जी के आश्रम में है। इसलिए वहां का वातावरण यहां भी दिखाई देता है।

आज सम्मिलित भोजनालय के बारे में लिखता हूं। अब दीवाली आ पहुँची है। मेरे पास कुछ पत्र आ चुके है। यह पत्र मैं तुम्हें निर्भय बनाने के लिए लिख रहा हूं। तुमने एक वर्ष का अनुभव लिया। सारा बोझ उठाया। मैने तो सिर्फ भोजनालय का रस ही चखा है। इसलिए मैं अपनी राय का कोई मूल्य ही नहीं समझता। सच्ची कीमत तुम्हारी ही राय की है। इसलिए तुम सब वहिनें जिस निर्णय पर पहुँचोगी, उसे तो मैं मानूंगा ही। मेरी सिफारिश इतनी जरूर है : बहुत चर्चा न करना। बहुत समय भी न लेना। जरूरी बातें करके झट निर्णय कर डालना और जो निर्णय करो उस पर कायम रहना। ऐसा करके ही हम आगे बढ़ेंगे। दोनों रायों के पक्ष में दलीलें तो हो ही सकती है। किसी भी राय पर पहुँचने में कुछ-न-कुछ भूलें भी होती है। इसकी चिन्ता नही करनी चाहिए।

निश्चय करने की और उस पर डटे रहने की आदत डालने की बड़ी जरूरत है। कोई निश्चय करने के बाद यदि यह लगे कि उसमें पाप ही है, तो अलग सवाल है। पाप करने के निश्चय दुनिया में हो ही नही सकते।

बापू के आशीर्वाद

—गुजराती। मेरठ, २८।१०।१९२९। 'आश्रम की बहिनों को' पत्र-संख्या ८०।]

२७. पत्र : आश्रम की बहिनों को

अलीगढ़
४-११-२६

बहिनो,

आजकल मुझसे लम्बे पत्रों की आशा न रखना। नया वर्ष सब के लिए सुखकर हो।

कलावती के जेवर चले गये, यह हमारे लिए शर्म की बात है। परन्तु मुझे

कलावती पर दया नहीं आती। जो भाई या बहिन अपने गहने या कीमती चीजें अपने पास रखते है, वे आश्रम का द्रोह करते है, और उनके गहने इत्यादि चोरी चले जायं, तो उन्हें रंज नही करना चाहिए। इस उदाहरण से हम सब चेतें और अपने पेटी-पिटारे जांच लें। आश्रम को अमानत के रूप में दी हुई चीज जब चाहिए तव वापिस मिल सकती है, यह विश्वास सबको रखना चाहिए।

रसोईघर का नियम वन गया, यह अच्छा हुआ। अव उसकी चर्चा हर्गिज़ न होनी चाहिए। जिन पुराने परिवारों को अलग भोजन वनाने की इजाजत मिल जाय, वे जरूर अलग वनायें, और उनसे कोई द्वेष न करे।

वापू के आशीर्वाद

मौनवार

--गुजराती। अलीगढ़, ४।११।१९२९। 'आश्रम की वहिनों को', पत्र संख्या ८१ ।]

२८. पत्र : आश्रम की बहिनों को

शाहजहांपुर
११-११-२६

वहिनो,

इसके वाद तो मुझे एक ही सोमवार लिखने को रह जायगा।

हमारे यहां चोरियां होती रहती हैं, उनका कारण हमारी गफलत है। यह रोज सावित होता जा रहा है। गफलत दो तरह की है, हम सावधान नहीं रहते और कई वार समझाने पर भी कोई गहने रखती है, तो कोई रुपया रखती है। चोर तो दुनिया में रहेंगे ही। उनसे वचने के तीन उपाय हैं, पास में कुछ रक्खा ही न जाय, यह पूर्णता तो आ नही सकती। जितना रक्खें उसके लिए उतने सावधान रहें। और तीसरा उपाय, चोर को सरकार के दण्ड रूपी भय से चमकाना और खुद भी उसे दण्ड देने में शरीक होना। हमने इस तीसरे उपाय का त्याग कर दिया है। पहला उपाय हमारा आदर्श है, दूसरा उपाय हम आजकल कर रहे है। संग्रह जहां तक हो सके, कम किया जाय और जितना अनिवार्य है, उसकी चोरी वगैरह से रक्षा की जाय। इसमें जैसे मैने वताई वैसी गफलत रही है।

यह पत्र सवके लिए हो गया। इसलिए शाम की प्रार्थना के समय भी पढ़ने के लिए देना।

भोजनालय के भार से घवरा न जाना। जो मदद चाहिए वह माँग लेना, परन्तु हारना मत। कोई काम हाथ में न लेना ठीक है, परन्तु ले लें तो उसके

लिए मर-मिटना चाहिए। जो इतनी दृढ़ता से काम करता है, उसका भगवान सहायक होता ही है। गजेन्द्र-मोक्ष और कछुवा-कछवी के भजन में यही सीख है।

मौनवार वापू के आशीर्वाद

—गुजराती। शाहजहांपुर, ११।११।१९२९। 'आश्रम की बहिनों को', पत्र-संख्या ८३।]

- कोई काम हाथ में न लेना ठीक है, परन्तु ले लें तो उसके लिए मर-मिटना चाहिए।

२९. पत्र : आश्रम की बहिनों को

प्रयाग जी,
१८-११-२६

बहिनो,

संतोक के आपरेशन पर से एक विचार आया सो लिख देता हूं। हिन्दुस्तान में बहिनों को अपने शरीर (पुरुष) डाक्टर को दिखलाने में संकोच होता है। यह अच्छा नहीं, परन्तु खराब रिवाज है। इससे हमने बहुत नुकसान उठाया है। इस शर्म की जड़ में पवित्रता नही परन्तु विकार है। मै चाहता हूं कि हम इस अन्ध-विश्वास को दूर कर दें। संतोक का आपरेशन अगर हरिभाई को न करने दिया होता, तो वह न होता और शरीर खतरे में पड़ जाता। पुरुष डाक्टर को भी अपना शरीर दिखाने में किसी स्त्री को संकोच नही रखना चाहिए। पास में अपने सगे-सम्बन्धी तो होते ही है। इसलिए भय का कोई भी कारण नहीं हो सकता। तुम्हें पता नहीं होगा कि मैंने तो बा की आखिरी प्रसूति के समय पुरुप डाक्टर को ही रक्खा था। बा का एक आपरेशन कराया था, वह भी पुरुष डाक्टर के हाथ से। उसमें बा ने कुछ खोया नही था। ऐसी वातों में हमे अपने मन में सिर्फ एक अलग ढंग की वृत्ति भर पैदा करनी होती है। इसलिए तुम्हारे सामने यह वात रखी है। अव इस बारे में मुझसे पूझना हो तो मंगलवार २६ तारीख को पूछना।

मौनवार वापू के आशीर्वाद

—गुजराती। प्रयाग, १८।११।१९२९। 'आश्रम की वहिनों को' पत्र-संख्या ८३।]

- हिन्दुस्तान में बहिनों को अपने शरीर (पुरुष) डाक्टर को दिखलाने में संकोच होता है। यह अच्छा नहीं परन्तु खराब रिवाज है।...इस शर्म की जड़ में पवित्रता नहीं परन्तु विकार है।

३०. पत्र : रामेश्वरी नेहरू को

[टिप्पणी—पत्र लिखा किसी और के हाथ का है। हस्ताक्षर मात्र गांधीजी के हैं। —सम्पा०]

मसूरी, २८-५-४६

चि० रामेश्वरी,

तुम्हारे तीन खत मिले। सब बहुत अच्छे हैं। एजेन्सी का काम भलीभांति कर रही है। मकान के बारे मे लिखा है सो मुझे अच्छा लगता है। मकान का खर्च कितना होगा? क्या, जितना खर्चा हो उतना कर्जा क० गां० निधि दें और नाम मात्रको उसका सूद लें तो अच्छा होगा? मैं तो मकान के पैसे देने में कुछ हर्ज नही पाता हूं,लेकिन बड़ा संघ अपवाद नही कर सकता है इसलिए मुझे लगता है कि कर्जा के तौर पर देने से शायद काम निपट सकता है। वहां के लोगों के साथ बात करो और वे लोग क्या कहते है जानकर लिखो। कर्जा दस वर्ष में या पन्द्रह वर्ष में देने मे मुसीबत नही होनी चाहिए। जबतक सूद दिया जाय तबतक मुद्दत कायम रहे। सूद नही देने से कर्जा चुकाना होगा अथवा मकान का कब्जा ट्रस्ट को जायगा। इसका जवाब आने पर और निश्चय कर सकूंगा। दरम्यान तुम्हारा खत और मेरे जवाब की नकल बापा[1] को भेजता हूं।

अब दूसरा पत्र। असेम्बली के बारे में तुमने ठीक लिखा है कि समय बीतने पर मेरी बात समझी जायगी। मेरा अभिप्राय आजकल का नहीं है—शुरू से ही है। सच्चे सेवक असेम्बली में नही जाते। केर हार्डी ऐसा आदमी था। हाउस आफ कामन्स मे प्रतिष्ठा रखता था। उसने कहा कि सच्चा आदमी सभासद रह नही सकता है। और बात ठीक है। मोरली को गिरना पड़ा था। दक्षिण आफ़्रिका में भी वही हाल हैं। इतनी समझने लायक बात है कि मेम्बर होने के बारे मे बहुत पड़ापड़ी हुई है और उमेदवारों ने बहुत पैसे दिये हैं। लेकिन इस चीज को मैं छोड देना चाहता हूं। अन्त मे तुमने जो लिखा है वह तो सही है। मत देने मे हिस्सा लेना, मतदारों के समाज में बैठना, उनको सच्चा रास्ता बताना, इसमे जितना समय दिया जाय वह अच्छा ही है। मेरे लिए इतना काफी है कि थोड़े वर्षो के लिए तो एझेण्टो का बाहर रहकर सब समय उसमें देना। अभी तो तुमने देहातों का स्पर्श तक नही किया है।

अभी तीसरा पत्र। भंगियों का प्रश्न पेचीदा है। अपना काम करके और

---

१. ठक्कर बापा, ए० वी० ठक्कर।

करते-करते भूख-हड़ताल करें वह कहने में तो अच्छा है लेकिन भूखे पेट काम हो नही सकता। मैने तो बताया है वह तो यह है कि समाज को या कहो शहरियों को म्युनिसिपालिटियों के सामने हड़ताल करनी चाहिए, भूख हड़ताल भी करें। जो कुछ करना चाहें कर सकते है—शर्त इतनी कि अहिसा से करें। उसका प्रभाव म्युनिसिपालिटी और भंगी दोनों पर पडेगा और समाज अपनी फर्ज अदा करेगा। यह भी रास्ता है कि मकान के लिए या तनख्वाह के लिए भंगी हडताल न करें, लेकिन धन्धा छोड़ने की नोटिस दें। यह भी समझो कि भंगी तनख्वाह के लिए या मकान के लिए हड़ताल करें उसका नतीजा यह भी आ सकता है कि अन्त में शहरी लोग खुद भंगी का काम करें। मै इतना कबूल करता हूं कि अगर कोई कुछ न करें और भंगियों को इन्साफ न मिले तो उनको हड़ताल करने का हक होना चाहिए। मैने तो शहरी होने की हैसियत से भंगियों का धर्म बताया।

यह लिखाने के समय चौथा पत्र मिलता है। रात को ८॥ बजे है। तार तो कल ही यहां से चलेगा। मेरा अभिप्राय है कि तुम्हारे फूड वोर्ड में नही रहने से कुछ हानि नही होने वाली है।

बापू के आशीर्वाद

——हिन्दी। मसूरी, २८।५।१९४६। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ८००९) से।]

३१. श्रम करने पर भी पेट न भरे तो?

प्रश्न—परिश्रम करने पर भी पेट भर अनाज न मिले तो क्या किया जाय?

उत्तर—जो परिश्रम करता है उसे पेट भर अनाज मिलना ही चाहिए। यह सनातन नियम है। लोगों को लाभ पहुंचानेवाले सम्पूर्ण श्रम का एक ही दाम होना चाहिए। जबतक वह नही हो पाता, परिश्रम करनेवाले को कम-से-कम अपना और अपने कुटुम्ब का पेट भरने के लिए अनाज और तन ढंकने के लिए कपड़ा तो मिलना ही चाहिए। जहां इतना भी नही हो सकता, वहां राज का इन्तजाम होते हुए भी अराजकता चलती है। अराजकता मिटाने के लिए लोग क्या करें? उन्हें शान्ति से अराजकता का सामना करना चाहिए। लोग अशान्त होकर दुकानें लूटने लगे या मारपीट करने लगे, उससे काम नही बन सकता। ऐसा करने से लोग बेमौत मरते है, और अगर डर के मारे सरकार झुक भी जाय, और लोगों की मांग पूरी भी कर दे, तो भी उससे न लोगो को फायदा पहुंचता है, न सरकार को। अराजकता तो मिटती ही नही। और आखिर जहां थे, वही रह जाते हैं। दुनिया पर एक सरसरी नजर डालने से भी यह चीज सब जगह साफ साफ दिखाई देगी।

अनाज पड़ा हो और फिर भी वह भूखों को न मिले तो वे सत्याग्रह कर सकते है। हां, स्वयं वे उस पर कब्जा न करे। डाका न डालें। भीख मांगने या डाका डालने के वदले भरने तक उपवास करें, और इस तरह अपने लिए और दूसरो के लिए न्याय प्राप्त करे। इतना धीरज न हो तो वात अलग है, किन्तु हो तो यहां वताया रास्ता जरूर सफल होगा।

—मसूरी, २९।५।१९४६। ह० व०। ह० से०, ९।६।१९४६।]

३२. धर्म और अधर्म का विवेक

एक भाई लिखते है—

"५ मई के 'हरिजनवन्धु' में आपने लिखा है कि आपकी अहिंसा में भयानक प्राणियों को, मसलन, शेर, भेड़िया, सांप, विच्छू वगैरह को मार डालने की गुंजाइश है।

"आप कुत्तों वगैरा को खाना नहीं देते। गुजराती समाज के अलावा और भी वहुत से लोग हैं, जो जानवरों को खिलाना पुण्य समझते हैं। आजकल जव कि खुराक की इतनी तंगी है, ऐसा ख्याल नामुमकिन हो सकता है। मगर इतनी वात तो है कि ये जानवर (कुत्ते वगैरा) आदमी की काफी सेवा करते हैं। इन्हें खिलाकर इनसे काम लिया जा सकता है।

आपने डरबन से स्व० श्री रायचन्द्रभाई से २७ सवाल पूछे थे। उनमें एक सवाल यह भी था कि जब सांप काटने आये, तो क्या किया जाय? उन्होंने जवाव दिया था कि आत्मार्थी सांप को नहीं मारेगा। सांप काटे, तो उसे काटने देगा। मगर अबकी तो आप दूसरी ही बात कह रहे है। ऐसा क्यों?"

इस वारे में काफी मै लिख चुका हूं। उन दिनो सवाल पागल कुत्तो को मारने का था। काफी चर्चा हुई थी। मगर मालूम होता है कि वह सव लोग भूल गये है।

मै जिस अहिंसा का पुजारी हूं, वह निरी जीव-दया ही नही है। जैनधर्म मे जीव-दया पर खूब वजन दिया गया है। वह समझ मे आता है, मगर उसका यह मतलव हरगिज नहीं कि इनसान को छोड़ कर हैवानों पर दया की जाय। मैं मानता हूं कि जहां जानवरों पर दया करने की वात लिखी है, वहां मनुप्य पर दया करने की बात तो मान ही ली गई है। ऐसा करने में सीमा छूट गई है, और अमल में तो जीव-दया ने टेढ़ा रूप ही लिया है। जीव-दया के नाम पर अनर्थ हो रहा है। वहुत से लोग चीटियो को आटा डालकर सन्तोप मानते है। ऐसा मालूम होता है, मानो आजकल की जीव-दया मे जान ही नही रही। धर्म के नाम पर अधर्म चल रहा है; पाखण्ड फैल रहा है।

अहिंसा सबसे ऊंचा धर्म है। यह बहादुरों का धर्म है, कायरों का कभी नहीं। दूसरे मारें, हिंसा करें, और हम उससे फायदा उठायें, और मानें कि हमने धर्म का पालन किया है, तो यह अपने-आपको धोखा देना नहीं हुआ तो और क्या हुआ ?

जिस गांव में रोज बाघ आता है, वहां नाम का अहिंसावादी नही रहेगा। वह तो वहां से भाग जायगा और जब कोई दूसरा आदमी उस बाघ को मार डालेगा, तब वापस आकर अपने घर-बार पर कब्जा करेगा। यह अहिंसा नहीं है। यह तो डरपोक की हिंसा है। बाघ को मारनेवाले ने कुछ बहादुरी तो दिखाई। मगर जो दूसरे की हिंसा से लाभ उठाता है, वह कायर है। वह कभी अहिंसा को पहचान नही सकता।

देहधारी को कुछ न-कुछ हिंसा तो करनी ही पड़ती है। असल धर्म एक होते हुए भी उसके बारे में हरएक की समझ अलग-अलग होती है। इसलिए सब अपनी शक्ति और समझ के मुताबिक उस पर चलते हैं। एक का धर्म दूसरे के लिए अधर्म हो सकता है। मांस खाना मेरे लिए अधर्म है, मगर जो मांस पर ही पला है, जिसने मांस खाने में कभी बुराई नही मानी, वह मुझे देखकर मांस छोड़ दे, तो उसके लिए वह अधर्म होगा।

मुझे खेती करनी हो, जंगल में रहना हो, तो खेती के लिए लाजिमी (अनिवार्य) हिंसा मुझको करनी ही पड़ेगी। बन्दरों, परिन्दों और ऐसे जन्तुओं को, जो फ़सल खा जाते हैं, खुद मारना होगा, या कोई ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। दोनों एक ही चीज है। जब अकाल सामने हो, तब अहिंसा के नाम पर फ़सल को उजड़ने देना मै तो पाप ही समझता हूं। पाप और पुण्य स्वतन्त्र चीजें नही है। एक ही चीज एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।

आदमी को शास्त्ररूपी कुएं में डूब नही जाना है, बल्कि गोताखोर बनकर शास्त्ररूपी समुद्र में से मोती निकालने हैं।

इसलिए कदम-कदम पर आदमी को हिंसा और अहिंसा का विवेक (तमीज़) करना होता है। इसमें न शर्म की गुंजाइश है, न डर की।

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने

(हरि का रास्ता बहादुरों का है, डरपोकों का उसमें कोई काम नही)

आखिर श्री रायचन्द भाई ने तो यह लिखा था कि अगर मुझमें शक्ति हो और मैं आत्मा को पहचानना चाहता होऊं, तो सॉंप के काटने आने पर मुझे चाहिए कि मैं उसे काटने दूं। मैने तो उनका खत मिलने से पहले या बाद में आज तक कभी सॉंप को मारा ही नही। इसे मैं अपनी बहादुरी नही समझता। मेरा आदर्श तो यह है कि मैं सॉंप और बिच्छू से बेधड़क खेल सकूं। मगर आज तो यह मेरा एक-

मनोरथ ही है। मै नही जानता कि यह मनोरथ कभी फलेगा या नही, और अगर फलेगा तो कव ? मैने अपने आदमियों को सव जगह साप और विच्छू मारने दिये हैं। मै चाहता तो उन्हे रोक सकता था। मगर रोकता कैसे ? इन जानवरों को अपने हाथ मे पकड कर दूसरो को निडर वनाने की हिम्मत मुझमें नही थी। न होने की मुझे शर्म थी। मगर वह मेरे या उनके किस काम की ? राम-नाम की कृपा होगी, तो मुझे आशा करनी चाहिए, कि किसी रोज ऐसा करने की भी हिम्मत आ जायगी। मगर तवतक मैं तो ऊपर वताया हुआ धर्म ही जानता हूं। धर्म भी तजरवे से सीखा जाता है, कोरी पण्डिताई से नही।

—गुजराती। मसूरी, २९।५।१९४६। ह० व०। ह० से०, ९।६।१९४६।]

३३. विश्वास-चिकित्सा और रामनाम

एक मित्र शिकवा करते हुए लिखते है :—

"मैने १७।३।१९४७ के 'हरिजन' में आपका लेख 'जव जागो तभी सवेरा' पढ़ा है। क्या आपकी प्राकृतिक चिकित्सा और विश्वास-चिकित्सा कुछ मिलती-जुलती चीजें है ? निश्चय ही, रोगी को चिकित्सा में श्रद्धा तो होनी ही चाहिए। किन्तु कई ऐसे इलाज है जो केवल विश्वास से ही रोगी को अच्छा कर देते है, जैसे माता (चेचक), पेट का दर्द इत्यादि बीमारियों में। शायद आप जानते हों, माता का, विशेषतः दक्षिणी प्रान्तों में, कोई इलाज नहीं किया जाता।[1] इसे केवल ईश्वर की माया मान लिया जाता है। हम मरिअम्मा देवी की पूजा करते है। वहुत से रोगी अच्छे हो जाते है। यह चीज एक करामात-सी लगती है। जहां तक पेट-दर्द की वात है, वहुत-से लोग तिरुपति में देवी की मिन्नते मानते हैं। अच्छे होने पर उसकी मूर्ति के हाथ-पांव धोते हैं, और दूसरी मानी हुई मिन्नतों को पूरा करते हैं। मेरी ही मां की मिसाल लीजिए। उनको पेट दर्द रहता था। परन्तु तिरुपति हो जाने के वाद उनकी वह तकलीफ दूर हो गई।

"कृपया इस वात पर प्रकाश डालिए और यह भी वताइए कि प्राकृतिक चिकित्सा पर भी लोग ऐसा ही विश्वास कायम रक्खे ? इससे डाक्टरों का वार-वार का खर्च वच जायगा, क्योंकि जैसा कि चासर[2] कहता है—डाक्टर का तो

---

१. ऐसा दक्षिण में ही नहीं, उत्तर में भी है।—सम्पा०

२. अंग्रेजी का एक कवि।

काम ही है कि वह दवाई बेचनेवाले से मिलकर बीमार को हमेशा बीमार बनाये रक्खे।"

जो उदाहरण ऊपर दिये गये है वे न तो प्राकृतिक चिकित्सा के है, और न ही रामनाम के, जिसको मैने उसके अन्तर्गत रक्खा है। किन्तु उनसे यह पता अवश्य लगता है कि प्रकृति बहुतेरे रोगियों को विना किसी चिकित्सा के भी अच्छा कर देती है। उदाहरण यह भी प्रदर्शित करते है कि हिन्दुस्तान में वहम हमारी जिन्दगी का कितना बड़ा हिस्सा बन गया है। प्राकृतिक चिकित्सा का मध्यबिन्दु अर्थात् रामनाम तो वहम का दुश्मन है। जो बुराई करने से झिझकते नही, वे रामनाम का अनुचित लाभ उठायेंगे। परन्तु वे तो हर चीज या हर एक सिद्धान्त-उसूल के साथ ऐसा ही करेंगे। केवल जिह्वा से रामनाम रटने से चिकित्सा का कुछ लेना-देना नही। यदि मै ठीक समझ पाया हूं तो, जैसा कि लेखक ने बताया है, विश्वास-चिकित्सा में यह माना जाता है कि रोगी अन्ध-विश्वास से अच्छा हो जाता है। यह मानना तो जीवित ईश्वर के नाम की हँसी उड़ाना है। रामनाम केवल कल्पना की चीज नही, उसे तो हृदय से निकलना है। परमात्मा में ज्ञान के साथ विश्वास हो और उसके साथ-साथ प्रकृति के नियमों का पालन किया जाय, तभी किसी दूसरी मदद के विना रोगी बिल्कुल अच्छा हो सकता है। सिद्धान्त यह है कि शरीर का स्वास्थ्य तभी बिल्कुल अच्छा हो सकता है, जब मन का स्वास्थ्य पूर्णत. ठीक हो। और मन पूर्णतः ठीक तभी होता है जब हृदय पूर्णतः ठीक हो। यह वह हृदय नही, जिसे डाक्टर टोटियो से देखते है बल्कि वह हृदय है जो ईश्वर का निवास है। कहा जाता है कि यदि कोई अपने अन्दर परमात्मा को पहिचान ले तो एक भी गन्दा या व्यर्थ विचार मन में नही आ सकता। जहां विचार शुद्ध हो वहां बीमारी आ ही नही सकती। ऐसी स्थिति को प्राप्त करना कदाचित् कठिन हो परन्तु इस बात को समझ लेना स्वास्थ्य की पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी है, समझने के साथ-साथ यत्न भी करना। जब किसी के जीवन मे यह मौलिक परिवर्तन आता है तो उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है कि वह उसके साथ-साथ प्रकृति के उन सब कानूनो का पालन भी करे जो आजतक मनुष्य ने ढूंढ़ निकाले है। जबतक उनमे लापरवाही की जाय, तबतक कोई यह नही कह सकता कि उसका हृदय पवित्र है। यह कहना गलत न होगा कि यदि किसी का हृदय पवित्र है, तो उसका स्वास्थ्य राम-नाम न लेते हुए भी उतना ही अच्छा रह सकता है। बात केवल यह है कि सिवा रामनाम के पवित्रता पाने का और कोई उपाय मुझे ज्ञात नही। संसार में हर जगह पुराने ऋषि भी इसी मार्ग पर चले है। और वे तो ईश्वर के भक्त थे, कोई वहमी या ढोंगी आदमी नहीं।

यदि इसी का नाम क्रिश्चिन साइंस है तो मुझे कुछ कहना नही। मैं यह थोडे ही कहता हूं कि रामनाम मेरी ही शोध है। जहां तक मैं जानता हूं, रामनाम तो ईसाई-धर्म से भी पुराना है।

एक भाई पूछते है कि क्या रामनाम में शस्त्रक्रिया-चिकित्सा की अनुमति नही? क्यों नही? एक टांग यदि दुर्घटना में कट गई है, तो रामनाम उसे थोड़े ही वापस ला सकता है। किन्तु बहुतेरी अवस्थाओं में आपरेशन जरूरी नही होता। किन्तु जहां जरूरी हो वहां करवा लेना चाहिए। केवल इतनी बात है कि यदि किसी ईश्वर के भक्त का हाथ-पांव जाता रहा तो वह इसकी चिन्ता नहीं करेगा। रामनाम कोई अटकल-पच्चू तजवीज नही है, न कोई कामचलाऊ चीज।"

—अंग्रेजी। मसूरी, ३०।५।१९४६। ह० ज०, ह० से० ९।६।१९४६।]

३४. क्या किसी भी हालत में झूठ बोलना उचित है?

[प्रश्नोत्तर]

प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक श्री बरट्रेण्ड रसल के निम्नलिखित बयान के बारे में आपकी क्या राय है? "एक बार देहात की ओर घूमते हुए मैंने देखा कि एक थकी हुई लोमड़ी लस्त-पस्त होने की हालत में भी जबर्दस्ती दौड़ी चली जा रही थी। इससे कुछ ही मिनट बाद मुझे शिकारियों की एक टोली दिखाई पड़ गई। उन्होंने मुझसे पूछा: क्या आपने लोमड़ी देखी है? और मैंने कहा—हां, देखी है। उन्होंने फिर कहा—किधर गई है? और मैं उनसे झूठ बोल गया। मैं नहीं समझता कि उनसे सच बात कहकर मैं ज्यादा भला आदमी बन गया होता।"

उत्तर—श्री बरट्रेण्ड रसल एक बड़े लेखक और फिलासफर है। उनकी पूरी-पूरी इज्जत करते हुए भी मुझे ऊपर दी गई उनकी राय से असहमति प्रकट करनी चाहिए। शुरू में ही उन्होने यह कहकर गलती कि कि उन्होंने लोमड़ी देखी है। पहिले सवाल का उत्तर देना उनके लिए लाजिमी नही था। अगर वह शिकारियों को जान-बूझकर गलत रास्ते चढ़ाना नही चाहते थे, तो वह दूसरे सवाल का जवाब देने से भी इन्कार कर सकते थे। मैं सदा से यह मानता और कहता आया हूं कि हमे पूछे जानेवाले सब सवालो का जवाब देना सदा ही लाजिमी नही होता। सच बात कहने मे अपवाद की कोई गुंजाइश नही।

—मसूरी, ३१।५।१९४६। ह० ज०। ह० से०, ९।६।१९४६।]

३५. मानपत्र और फूलों के हार

एक भाई शिकायत करते है—

बहुत से सूबों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन गये हैं, और जन-साधारण को इस तथ्य पर गर्व है। इसलिए जब कोई मन्त्री किसी जगह जाते हैं, तो वहां की स्थानीय समितियां तथा दूसरी संस्थाएं उन्हें मूल्यवान मानपत्र देकर उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करती हैं। लगभग सभी मामलों में इस प्रकार दी जानेवाली चीजें मन्त्री की अपनी सम्पत्ति बन जाती हैं। मेरी राय में यह तरीका ठीक नही। या तो इस तरह मानपत्र लेने का यह सिलसिला बन्द कर दिया जाना चाहिए, या इस प्रकार दी गई चीजें स्थानीय कांग्रेस कमेटी को मिलनी चाहिए। मन्त्रियों या कांग्रेस के लीडरों को फूलों के हार इत्यादि पहिनाने के बारे में भी कोई निर्णीत नीति होनी चाहिए। मैंने कई जगह देखा है कि मन्त्रियों का स्वागत करते समय उनको ऐसे हार पहिनाये गये हैं जिनका मूल्य ३०० या ४०० रुपयों से कम नहीं। यह पैसे की निरी बरबादी है।

यह एक वाजिब शिकायत है। सर्वसाधारण की सेवा करनेवाले किसी भी सेवक को अपने काम के लिए न तो कीमती मानपत्र लेने चाहिए और न बेशकीमती फूलों के हार इत्यादि। बहुत ही बुरी चीज नही तो भी यह एक अफसोसनाक चीज तो बन ही गई है। इसके बचाव में अक्सर यह दलील दी जाती है कि मानपत्र की कीमती चौखटों और फूलों के बहुमूल्य हारों व गुलदस्तों की बदौलत इनके कारीगरों को पैसा मिलता है। किन्तु ये कारीगर तो वजीरों और उनके-जैसे दूसरों की मदद के बिना भी अच्छी तरह अपना काम चला सकते है। मन्त्री इत्यादि अपने मौज-शौक के लिए दौरा नही करते। उनके दौरे काम के सिलसिले में होते हैं। और उनके पीछे प्रायः यह विचार रहा है कि वे लोगों से रूबरू उनकी बातें सुन सकें। उनको दिये जानेवाले मानपत्रों में उनके गुणों की प्रशंसा करना जरूरी नहीं, क्योंकि गुण तो स्वयं ही अपने पुरस्कार हैं। मानपत्रों में तो स्थानीय आवश्यकताओं और शिकायतों का यदि वैसी कोई शिकायतें हों, जिक्र किया जाना चाहिए। मन्त्रियों एवं उनके सेक्रेटरियों के सामने बड़े कड़े-कड़े काम पड़े है।

—मसूरी, ३१।५।१९४६। ह० ज०, ह० से० ९।६।१९४६।]

३६. आम रिहाइयां

सूबों में उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल काम करने लगे है। सहज ही इसका यह अर्थ होता है कि राजनीतिक बन्दियों की आम रिहाइयां हों। इनमें हत्या करने,

आग लगाने और डाका इत्यादि डालने के सिलसिले में सजा पाये हुए कैदी भी शामिल है। लोग मुझसे पूछते हैं कि इस तरह रिहाई पाये हुओं को जनता किस सीमा तक वहादुर और वलिदानी माने और उनका जय-जयकार करे।

इस प्रकार के अपराधो में सजा पाये हुओं को अलग-अलग कारणों से रिहा करना एक वात है। किन्तु इन कामों को हर प्रकार के सम्मानित वीरों के साथ मिलाना और उनकी वैसी ही प्रशंसा करना विल्कुल दूसरी वात है। मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि ऐसा करना अविवेक है और अनुचित है। अगर किसी जन-कार्य के लिए मुझे पैसे की जरूरत है और मैं उसे डाका डालकर प्राप्त करता हूं, तो केवल इसलिए कि डाका जन-कार्य के लिए डाला गया था, मैं डाकू होने से वच नही सकता। देशभक्ति के ऊँचे नाम पर किये गये ऐसे प्रत्येक अपराव की विना सोचे-समझे की जानेवाली यह प्रशंसा एक ऐसा घातक अस्त्र है जो अपनी दूनी ताकत से लौटकर कौम पर आ गिरेगा और देश को उसका गहरा मूल्य चुकाना पड़ जायगा। वैसे आजादी में गुनाह करने की छूट भी शामिल है, किन्तु उसके साथ अपना अपनाया हुआ कड़ा संयम न रहा तो वह सरलतापूर्वक शाप वन सकती है। सर्वसाधारण की ओर से किया जानेवाला यह स्वागत-सत्कार लोगों को गलत तालीम देगा और उस आजादी को हानि पहुंचानेवाली तैयारी सिद्ध होगी, जो हममें से कइयो की उम्मीद से कही पहले आ रही है।

—अंग्रेजी। मसूरी, ३१।५।१९४६। ह० ज०। ह० से०, ९।६।१९४६।]

३७. खादी के बारे में संवाद

एक खादी सेवक लिखते है :—

एक खादी-भण्डार के संचालक और ग्राहकों के बीच हुई हाल की एक वातचीत नीचे देता हूं। कृपया लिखें कि क्या इन ग्राहकों को खादी वेची जा सकती है?

सवाल—क्या यह सूत आपने खुद काता है?

जवाव—नहीं, मैं १० रुपये की ८ गुण्डी खरीदकर लाया हूं।

सवाल—दूसरे से पूछा—क्या आप यह सारा सूत कात लेते हैं?

जवाव—नहीं, इसे मेरी लड़की ने काता है। हम तो वारह आने की एक गुण्डी के हिसाव से वेचते हैं।

सवाल—तीसरे से कहा : यदि आपके पास सूत नहीं है, तो आपको खादी नहीं मिलेगी।

जवाब—कोई परवाह नहीं। जबतक मुझे सूत नहीं मिलता, मै अप्रमाणित खादी ही पहनूंगा।

सवाल—चौथे से पूछा गया : आप खादी क्यों खरीदते है ?

जवाब—क्योंकि वह आसानी से मिल जाती है।

सवाल—पांचवें से बात हुई : आपतो खादीधारी नहीं, फिर इस खादी का क्या होगा ?

जवाब—आजकल कुछ खादी पहनना भी फैशन में शरीक है।

सवाल—छठे से कहा : आप तो कातते ही नहीं, फिर यह सूत कहां से ?

जवाब—मेरे एक दोस्त हमेशा सूत देते रहते हैं।

सवाल—सातवे से पूछा : आप हमेशा रेशमी या ऊनी खादी ही क्यों पहनते हैं ?

जवाब—क्योंकि इसके लिए सूत नहीं देना पड़ता।

आठवें ने बहुत सी खादी खरीदी। उनसे पूछा गया : इतनी सारी खादी खरीदकर क्या करेंगे ?

जवाब—इकट्ठा करके रक्खूंगा। दो-तीन साल चलेगी। फिर मिले या न मिले।

ये सब सवाल-जवाब वहुत सूचक है। अगर खादी की नई नीति सही है और सब ग्राहक इस प्रकार के हैं, तो वे खादी को कांग्रेस के विधान में निकाल देने की आवश्यकता सिद्ध करते है। याद रहे कि इस सवाल-जवाब में खादी के आठ ग्राहक आ जाते है। इनमें से एक के लिए भी चर्खा-संघ के खादी-भण्डार की आवश्यकता सिद्ध नही होती। चर्खा-सघ की हस्ती ही गरीबों के लिए है। जो खादी पहनते हैं, वे या तो गरीबों के लिए पहनते हैं या स्वराज्य के लिए। इन आठ महाशयों को न स्वराज्य की पड़ी है, न गरीबों की। खादी की जड़ में जो कल्पना रक्खी गई है, यदि उसे साबित करके दिखाना है, तो चर्खा-संघवालों को अपनी नीति पर इस हद तक कायम रहना पड़ेगा कि वे खादी बेचने के भण्डारों को बन्द करने से भी न डरें। जो गलती हमने की है, उसके लिए सब सहने की तैयारी हममें होनी चाहिए। इन सवाल-जवाबों का एक सार यह भी है कि खादी-भण्डारों के संचालक जाग्रत रहें। वे खादी-शास्त्र का भलीभांति पठन करें और सब ग्राहकों को विनय और धीरज से खादी का रहस्य समझा दे। इसमें जो थोड़ा

समय जायगा, उसकी परवाह न करे। अगर हमें खादी की शक्ति में विश्वास है, तो मुझे कोई शक नही कि हमारे दृढ़ रहने से सब लोग उसे समझ जायंगे। अगर हममें ही विश्वास नहीं है, तो हमारा दावा अपने-आप खतम हो जायगा।

मैने यह मान लिया है कि संवाद जैसा हुआ है, वैसा ही खादी-सेवक ने दिया है।

--हिन्दी। मसूरी, १। ६। १९४६ । ह० से०, ९। ६। १९४६]

३८. सही है लेकिन नया नहीं

लखनऊ के मौलवी हमीदुल्ला अफ़सर साहव मुझसे मसूरी में मिले और अपने दो परचे मुझे दे गये। दोनों का मतलव एक ही है कि मदरसों में हाई स्कूल तक सव लड़कों-लडकियों के लिए हिन्दी और उर्दू वोलियां और लिपियां अनिवार्य हों। मुझे तो यह वात वहुत पसन्द है। मेरा निजी यत्न तो हमेशा से यही रहा है। एक जमाना था, जव मौलाना हसरत मोहानी और वावू पुरुषोत्तमदास टण्डन इसकी कोशिश कर रहे थे, लेकिन हम कामयाव नही हुए। फिर भी मैंने न तो अपना विश्वास छोड़ा और न यत्न ही छोडा। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा वनी। इसलिए मौलवी साहव जो दरखास्त करते है, वह मेरे लिए नई नही। अगर यू० पी० की सरकार सवकी राय से हिन्दी और उर्दू वोली को हाईस्कूल तक अनिवार्य कर सके, तो वह उसका एक वड़ा काम होगा। मैं तो कहूंगा कि जिस सूवे की जवान हिन्दी या उर्दू है, वहां दोनों वोलियां लाजिमी हों। मुझे इसमें कोई शक नही कि अगर ऐसा कदम उठाया गया, तो दोनों वोलियों के मिलन से हिन्तुस्तानी कुदरती तौर पर चल निकलेगी और हिन्दी उर्दू का झगड़ा हमेशा के लिए वन्द हो जायगा। दूसरा फायदा यह होगा कि हाईस्कूल तक की पढ़ाई हिन्दी-उर्दू में वड़ी आसानी से होगी।

--अंग्रेजी। मसूरी, ६।६।१९४६। ह० से०, १६।६।१९४६।]

३९. पत्र : रामेश्वरी नेहरू को

मसूरी, ७-६-४६

चि० रामेश्वरी,

रत्नमयी वहिन को मैं वरावर पहचानता हूं। उनको लेने मे मुझे कोई आपत्ति

नहीं है। गांधीवादी कौन है सो तो मै खुद नही जानता हूं। गांधीवाद मेरी दृष्टि में निरर्थक शब्द है। शास्त्रकार के पीछे शास्त्रवाद बनता है। मैं शास्त्रकार हूं नही, इसलिए मेरे निमित्त कोई वाद बन नहीं सकता है; बनेगा तो निभ नहीं सकता है और निभेगा तो वह गांधीवाद नही होगा। यह समझने लायक बात है।

तुम्हारा काम मुझे अच्छा लगता है, स्वच्छ लगता है। तुमको ही बालिका आश्रम बनाना है; उसे चलाओ और रत्नमयी बहिन सब तरह सन्तोष दे सकेगी तो मुझको बहुत अच्छा लगेगा।

बापु के आशीर्वाद

—हिन्दी। मसूरी, ७।६।१९४६। पत्र की फोटो-नकल (जी० एन० ८०१०) से।]

४०. अनजाना या अज्ञात

कुछ पण्डित उसे अनजाना कहते है; कुछ कहते है, जाना नही जा सकता। दूसरे उसे नेति-नेति (यह नहीं, यह नही) कहते हैं। इस वक्त हमारे मतलब के लिए अनजाना काफ़ी है।

कल (६ जून) जब प्रार्थना में मैने लोगों से दो शब्द कहे, तो बस यही कह सका कि जितनी शक्ति हमें वह अज्ञात दे सकता है, और जहां तक वह रास्ता दिखा सकता है, उसके लिए हम उससे प्रार्थना करें, और उसी पर भरोसा रक्खें। हिन्दुस्तान के सामने आज एक बड़ा नाटक खेला जा रहा है। उसमें हरएक पार्टी के रास्ते में बड़ी मुश्किलें है। उन्हें इसी 'अनजाने' पर भरोसा रखना चाहिए। वह इनसान की अक्ल को चक्कर में डाल सकता है और उसकी नाचीज तजवीजों को एक पल में उलट-पुलट कर सकता है। ब्रिटिश पार्टी इस अनजाने ईश्वर पर विश्वास रखने का दावा करती है। मुस्लिम लीग का भी यही कहना है। वह बड़े जोश से अल्ला-हो-अकबर के नारे लगाती है। कांग्रेस के पास इस किस्म का कोई एक नारा नही हो सकता। पर अगर वह सारे हिन्दुस्तान की नुमाइन्दा बनना चाहती है, तो वह ईश्वर पर विश्वास रखनेवाले करोड़ों की भी नुमाइन्दा है, चाहे वे खुदा के घर के किसी भी हिस्से के रहनेवाले हों।

मैं हमेशा आशावादी रहा हूं। फिर भी यह लिखते वक्त मैं पक्की तरह से नही कह सकता कि कम-से-कम राजनीतिक बोली में वह चीज़ सुरक्षित है। इसलिए मै यही कह सकता हूं कि अगर सब पार्टियों की पूरी-पूरी और सच्ची

कोशिश के होते हुए भी ऐसी चीज हो गई जो असुरक्षित है, तो मैं उनसे कहूंगा कि वे भी मेरे साथ मिलकर कहें कि जो हुआ, सो अच्छा हुआ। इस असुरक्षित चीज में हमारी हिफाजत थी। अगर हम सब ईश्वर के बच्चे हैं, और हैं, चाहे हम मानें या न मानें, तो हमारा फ़र्ज हो जाता है कि जो कुछ भी हो, उससे घबराहट में न पड़ें। और उत्साह और आत्म-विश्वास से अगले कदम की तैयारी करें, चाहे वह कदम कुछ भी हो। शर्त सिर्फ यह है कि हरएक पार्टी ईमानदारी के साथ सारे हिन्दुस्तान की भलाई की पूरी कोशिश करे, क्योंकि हमारी बाजी यही है, दूसरी नहीं।

—मसूरी, १०।६।१९४६। ह० ज०। ह० से०, १६।६।१९४६।]

: आठ :

मंजूषा

उत्तरप्रदेश-सम्बन्धी प्रश्नों एवं घटनाओं पर गांधीजी की विविध रचनाएं

१. शिक्षण-पद्धति

हम लोगों में अपनी हर चीज का मुकावला पश्चिमी सभ्यता के साथ करने का रिवाज हो गया है। हम कहते है कि हमारी पूर्वी सभ्यता पश्चिमी सभ्यता से काफी अच्छी है। परन्तु हमारा आचरण इससे उलटा है। इसलिए भारतीय विद्यार्थियों की शिक्षण-पद्धति शुद्ध नहीं रही, संकर हो गई है। हमारे विद्यालयों में से हम अपने प्राचीन ऋषि-मुनियों के वारिस उत्पन्न नहीं कर पाते। यह वड़े दुःख की वात है। इस वात पर मै बहुत समय से मनन करता आ रहा हूं। परिणाम-स्वरूप जो विचार मुझे सूझे हैं उनको मैं वाचक-वृन्द के सम्मुख रखता हूँ।

देश का आधार जिस धन्धे पर हो उस धन्धे का सामान्य ज्ञान सव विद्यार्थियों को देना चाहिए। इस सिद्धान्त को कोई अस्वीकार नहीं करेगा। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारे सब विद्यार्थियों को खेती का और बुनने का काम सिखाना चाहिए। क्योंकि भारतवर्ष के प्रायः ६५ सैकड़ा मनुष्य खेती के काम में रुके हुए है। पहले इनमें से ६० फीसदी वुनने का काम भी करते थे।

जबतक शिक्षित वर्ग इन दो वातों पर ध्यान नहीं देगा तबतक हम अपने करोड़ों किसानों और लाखों जुलाहों के दुःख को बिल्कुल नही समझ सकते। और न इन दोनों के धन्धों में ही कुछ सुधार हो सकता है।

यदि हमारा शरीर तन्दुरुस्त न होगा तो हम कुछ काम नहीं कर सकते। इसलिए लड़कों को बचपन से आरोग्य-शास्त्र की शिक्षा देना आवश्यक है।

धर्म के ऊपर सब कुछ निर्भर है। और संस्कृत जाने विना धर्म-शास्त्रों का ठीक ज्ञान मिलना अशक्य है, इसलिए संस्कृत का जानना भी प्रत्येक हिन्दू लड़के का कर्त्तव्य है। किन्तु हर कहीं गुरुकुल का प्रवन्ध, मेरे विचार से, वड़ा कठिन है। इसलिए सामान्य शिक्षण को सामान्य ज्ञान देकर समाप्त करना चाहिए। जिस विद्यार्थी में असाधारण शक्ति हो उसके लिए चाहे विशेष प्रवन्ध भले किया जाय।

इतिहास व भूगोल पढ़ाने की सरकारी पद्धति वदली जानी चाहिए। इतिहास और भूगोल में प्रायः देश के वारे में ही ज्ञान दिया जाना चाहिए। मेरा अनुभव ऐसा है कि वहुत लड़कों को मिडिलसैक्स तो मालूम रहता है, लेकिन वे काठियावाड़ या सोरठ प्रान्त के वारे में कुछ नही जानते। इतिहास में विद्यार्थियों को संयुक्त-

राज्य का ज्ञान पर्याप्त रहता है और हमारे अपने शिवाजी को वे एक लुटेरा समझते है।

गणित-शास्त्र में भी यही हाल है, लड़कों को बड़े-बड़े हिसाब मालूम रहते है, पर वे सामान्य व्यवहार-गणित नही जानते। देशी तालिका की जानकारी भी उन्हे पूरी-पूरी नही होती।

शिक्षण अलग-अलग प्रान्तों में वही की अपनी भाषा में होना चाहिए। और तदुपरान्त भारतवर्ष की दो-तीन और भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए।

अंग्रेजी का ज्ञान केवल थोड़े से लड़कों को विदेशी भाषा के तौर से दिया जाय। मुझे विश्वास है कि जबतक हमारे मन से अंग्रेजी पढ़ने का मोह दूर नहीं होगा तबतक हम लोगों में सच्चे स्वराज्य की भावना नही आ सकती। कुछ मित्र मुझे कहते है कि साधारण कामों में जैसे कि रेलगाड़ी की मुसाफिरी में अथवा तार पढ़ने का अवसर आ जाने पर अंग्रेजी जाने बिना हमें बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। पर ऐसी स्थिति के उत्तरदाता हम स्वयं है। यदि हमारी मन्दता के प्रभाव में हम अपना धर्म भूल जायेंगे तो यह पराधीन दशा और भी निकृष्ट हो जायगी।

परिणाम यह होगा कि हमारे करोड़ों भाई, जो कदापि अंग्रेजी नहीं सीख सकते, गुलाम बने रह जायँगे। अंग्रेजी पढ़े हुए और उनके बीच में एक खाई उपस्थित हो जायगी।

प्रचलित शिक्षण का हमारे घरों पर कुछ असर नही होता गोकि नियम यह है कि विद्यार्थी-जीवन का प्रभाव सारे देश पर पड़ना चाहिए। थोड़े से इत्र की सुगन्ध जैसे सब जगह फैल जाती है, वैसे विद्यार्थी-जीवन होना चाहिए। मेरे खयाल से स्वराज्य की कुंजी सरकार के हाथ में उतनी नहीं है जितनी कि हमारी शिक्षा-प्रणाली पर है।

—हिन्दी। सद्धर्म प्रचारक, गुरुकुल अंक। २४।३।१९१७। सं० गां० वां० खण्ड १३, पृ० २६०-६१।]

२. पोशाक के बारे में 'पायनियर' (इलाहाबाद) को उत्तर

मोतीहारी
जून ३०, १९१७

महोदय,

मैं चम्पारन में जो थोड़ा-बहुत काम कर रहा हूं उसकी आपने और श्री इर्विन

ने आलोचना की और मैं अब तक इस आलोचना का उत्तर देने का लोभ संवरण करता रहा हूं। आपकी हर बात का उत्तर तो मै इस पत्र में भी नहीं दूंगा। किन्तु श्री इर्विन ने एक बात बिना सही जानकारी पाने का कष्ट उठाये कही है, मैं उसका उत्तर अवश्य दूंगा। उन्होने मेरे कपड़े पहनने के तरीके के बारे में जो कुछ कहा है मेरा अभिप्राय उसी से है।

पाश्चात्य सभ्यता की छोटी-छोटी सुख-सुविधाओं से परिचित न होने के कारण मैंने अपनी राष्ट्रीय पोशाक का आदर करना सीखा है। और श्री इर्विन को यह जानने में दिलचस्पी हो सकती है कि मैं चम्पारन में जो पोशाक पहनता हूं उसे भारत में सदा पहनता रहता हूं। केवल कुछ दिनों के लिए अपने अन्य देशवासियों की भांति मै भी अदालतों में और काठियावाड़ से बाहर अन्यत्र अर्द्ध-यूरोपीय पोशाक पहनने की कमजोरी का सहज शिकार हो गया था। मै अब से २१ वर्ष पूर्व काठियावाड़ की अदालतो में बिल्कुल इसी पोशाक को पहनकर जाता था जिसे मै चम्पारन मे पहनता हूं।

मैने एक परिवर्तन किया है और वह यह है कि बुनाई और खेती का धन्धा अपनाने एवं स्वदेशी का व्रत लेने पर मेरे कपड़े अब बिल्कुल हाथ से कते और बुने होते हैं और उन्हे या तो मैं स्वयं तैयार करता हूं या मेरे साथी कार्यकर्ता तैयार करते हैं। श्री इर्विन के पत्र की ध्वनि यह है कि मैं काश्तकारों पर असर डालने के लिए उनके सम्मुख ऐसी पोशाक पहनकर जाता हूं और इसका उपयोग मै अस्थायी तथा विशेप रूप से चम्पारन में ही करता हूं। तथ्य यह है, मैं राष्ट्रीय पोशाक इसलिए पहनता हूं कि मै समझता हूं कि यह एक भारतीय के लिए अत्यन्त स्वाभाविक और शोभनीय पोशाक है। मेरा विश्वास है कि यूरोपीय पोशाक की नकल करना हमारे पतन, अपमान और दुर्बलता का चिह्न है और हम अपनी राष्ट्रीय पोशाक, जो भारत की जलवायु के लिए उपयुक्त है, जिसकी सादगी, कला और सस्तेपन में पृथिवी भर की कोई पोशाक मुकाबला नही कर सकती एवं जो स्वास्थ्य और सफाई की दृष्टि से निर्दोप है, को छोड़कर राष्ट्रीय पाप कर रहे है। यदि अंग्रेजों में झूठा घमण्ड और गौरव के झूठे भाव न होते तो यहा रहनेवाले अंग्रेज भारतीय पोशाक को बहुत पहले ही पहनने लग जाते। मैं यहां प्रसंगवश यह भी कह दूं कि मैं चम्पारन में इधर-उधर नंगे सिर नही जाता। जूते तो मैं धार्मिक कारणों से नही पहनता, किन्तु मैं यह भी देखता हूं कि यथासम्भव उन्हें न पहनना अधिक स्वाभाविक और स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है।

श्री इर्विन और आपके पाठकों को यह बतलाते हुए मुझे खेद होता है कि 'परिपद् के भूतपूर्व माननीय सदस्य' मेरे आदरणीय मित्र बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद

अब भी असंस्कृत ही है। वह अपने प्रान्त की टोपी पहनते है और कभी नंगे पैर नही चलते और जिस घर में हम रहते है उसमे भी खड़ाऊँ पहनकर भयंकर खटखट की आवाज करते रहते है। मेरे साथ उनका गहरा सम्पर्क है, फिर भी (बाहर) उन्हें अपनी अर्द्ध-अंग्रेजी पोशाक को त्यागने का साहस नही होता; जहाॅ भी वह अधिकारियों से मिलने जाते है, अपने पैरों को दुटंगे परिधान (पतलून) में डालते है और यह मानते हुए कि अपने पैर संकुचनशील जूतों मे कसने से बहुत कष्ट होता है, वैसे जूते पहनते है। मै उन्हें यह विश्वास नही दिला पाता कि यदि वह अधिक फबनेवाली और कम कीमत की धोती पहनेंगे, तो न उनके मुवक्किल उन्हें छोड़ जायंगे और न अदालते ही उन्हें सजा देगी। मै आपसे और श्री इर्विन से भी कहता हू कि उन कहानियों पर विश्वास न करें जिन्हे वह और आप मेरे मित्रों के बारे में सुना करते हैं, बल्कि शिक्षित भारतीयों को अपने उन आचारो, आदतों और रिवाजो को, जो बुरे या हानिकर सिद्ध नही हुए है, छोडने के विरुद्ध किये जानेवाले पवित्र संघर्ष मे मेरा साथ दें। अन्त मे मै आपको और श्री इर्विन को चेतावनी देने का साहस करता हूं कि यदि आप इसी तरह असिद्ध तथ्यों के आधार पर आलोचना करते रहेंगे तो आप दोनों चम्पारन में मेरी उपस्थिति को जिस उद्देश्य के लिए खतरा समझते है, उस उद्देश्य को ही हानि पहुंचायेगे। कृपया मेरी यह बात बिल्कुल माने कि मै अपने देशवासियो के प्रति जिस तरह बरतता हूं, अगर अपने उन सैकड़ों अंग्रेज मित्रों और सहयोगियो के प्रति, जिनमें से सभी मेरी तरह सनकी नही हैं उससे भिन्न व्यवहार करूं तो मैं अपने आपको उनके सौहार्द और विश्वास का पात्र नही मानूगा।

—अंग्रेजी। मोतीहारी, ३०।६।१९१७। 'पायनियर' ५।७।१९१७।]

३. पंजाब की चिट्ठी में झाँकता संयुक्तप्रान्त

लाहौर,

माघ सुदी ६ (२७ जनवरी, १९२०)

कानपुर

दिल्ली से मुझे प्रयाग तो जाना ही था। वहा पण्डित मोतीलाल नेहरू से मिलकर वापस लौट रहा था तभी मुझ पर कानपुर जाने के लिए जोर डाला गया। कानपुर के नागरिको का आग्रह था कि वहा मुझे मात्र कुछ घण्टे ही रुकना होगा। स्वदेशी भण्डार का उद्घाटन करके मैं दूसरी गाड़ी से वहां से विदा ले सकूंगा। मैं उन्हें निराश नहीं कर सका।

प्रयाग से दिल्ली जाते हुए कानपुर रास्ते में ही पड़ता है और वह मेल गाड़ी से केवल चार घण्टे का रास्ता है। कानपुर बम्बई की तरह ही व्यापार का और कपड़ा-मिलों का केन्द्र है। वहां की जलवायु भी बहुत अच्छी है। इस नगर में स्वदेशी-भण्डार खोलने का यह पहला ही प्रयत्न है और उसमें मुख्य हाथ हसरत मोहानी साहब का है। इस भण्डार के उद्घाटन के समय हजारों आदमी एकत्र हुए थे; उनके उत्साह की सीमा नही थी।

एक दुःखद घटना

मेरे यहां पहुंचने के पहले ही अली भाई पहुंच चुके थे। उनके सम्मान में एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला गया था। उनकी गाड़ी का घोड़ा भड़का और लातें मारने लगा। भीड़ बहुत ज्यादा थी। गाड़ी के पास ही अब्दुलहफीज नाम का एक हृष्ट-पुष्ट युवक खड़ा हुआ था। पिछले कुछ दिनों से वह सार्वजनिक सेवा का काम करने लगा था। घोड़े की लात से उसकी छाती पर चोट लगी और वह गिर पड़ा। जिसके मरने की कभी कल्पना ही नही की जा सकती थी ऐसा वह युवक क्षण-मात्र में चल बसा। अलीभाई तुरन्त गाड़ी से उतरे। उन्होने एक खाट मंगवाई। उसके ऊपर युवक का शव रखा गया। और दोनों भाइयों ने उसमें अपना कन्धा दिया। कुछ दूर तक वे स्वयं उसकी इस शवयात्रा में गये। बाद में कन्धा बदलने पर अपने काम पर गये। जो जुलूस खुशी का था वह इस घटना के बाद शोक का हो गया और शव के साथ गया। सारा दिन शोक की इस छाया से मलिन हो गया।

इस घटना को घटित हुए चार घण्टे हुए होगे कि इतने में मै पहुंचा। मुझे यह दुःखद संवाद स्टेशन पर ही मिल गया था। मैने मांग की कि मेरे लिए आयोजित जुलूस स्थगित कर दिया जाय, मुझे सीधे भण्डार ले जाया जाय, और उद्घाटन की क्रिया पूरी कराने के बाद वहां ले जाया जाय जहां अब्दुल हफीज का शव है। नगर के नेताओं ने मेरा अनुरोध स्वीकार किया। भण्डार का उद्घाटन करने के बाद हम कुछ लोग भाई अब्दुल हफीज का शव देखने के लिए जा पहुंचे। दृश्य अत्यन्त हृदय-द्रावक था। उसकी हृष्ट-पुष्ट देह और सुन्दर चेहरा देखकर मुझे गहरा दुःख हुआ। आसपास खड़े हुए मुसलमान भाइयों की हिम्मत से मैने धैर्य धारण किया। वहां मैने कोई रोना-धोना नही देखा। मानो घोर निद्रा में सोये हुए किसी भाई के आस-पास बातचीत हो रही हो, इस प्रकार वे लोग निर्भयतापूर्वक बातचीत कर रहे थे और मुझे सुना रहे थे कि युवक की मृत्यु कैसे हुई। इस दृश्य से मैं बहुत प्रभावित हुआ। ऐसे अवसर पर हिन्दुओं में कितना रोना-धोना होता

है, इस वात की याद आई। मन में विचार आया कितना अच्छा होता कि यदि हम इस पाप से वचते। यदि हम मृत्यु का डर छोड़ दें तो अनेक अच्छे कार्य हो सकते है। जिस धर्म के अनुयायियों में मृत्यु का भय कम-से-कम होना चाहिए उन्ही में वह सवसे ज्यादा है। यह विचार कई वार मेरे मन में आया है और उससे वड़ी लज्जा का अनुभव हुआ है। आत्मा अमर है, देह क्षणभंगुर है, कोई ऐसा कार्य नही जिसका परिणाम न होता हो—वचपन से यह सव हम सीखते है। तो फिर मृत्यु का भय क्यों होना चाहिए? अब्दुल हफीज का एक मात्र पुत्र मेरे पास खड़ा हुआ था; वह भी निर्भयतापूर्वक वात कर रहा था। भगवान अब्दुल हफीज़ की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

मेरठ

शाम की गाड़ी से मैने कानपुर छोड़ा। दूसरे दिन सुवह यानी तारीख २२ को सुवह मैं मेरठ पहुंचा। जी० आई० पी० लाइन से लाहौर जाते हुए मेरठ रास्ते मे पड़ता है। मैने वहां कुछ घण्टे विताने का वचन दिया था। मेरठ-वासियों ने वड़ी तैयारी कर रक्खी थी। हिन्दू-मुसलमानो के वीच वहां मेरे प्रति प्रेम-प्रदर्शन की होड-सी चल रही थी। अली भाई वहा कुछ ही दिन पहले गये थे। उन्हें एक हिन्दू सज्जन के घर ठहराया गया था। मुझे मेरठ के प्रसिद्ध मुसलमान वैरिस्टर भाई इस्माइल खां के घर ठहराया गया। स्वागत-समारोह में ७५० स्वयंसेवक उपस्थित थे जिसमें कई प्रतिष्ठित परिवारों के लोग थे। घोड़ों पर सवार स्वयं-सेवको का दल भी था। तीन मील रास्ते पर झण्डों से सजाये हुए खम्भे लगा कर रस्सी वाँधी गई थी। जुलूस रस्सियों के भीतर-भीतर चल रहा था और वाहर दर्शक-समुदाय था। जुलूस में वाजे, ऊंटगाड़ियां, घुड़सवार, फैन्सी ड्रेसवाले आदि थे। मेरा अनुमान है कि वह एक मील लम्बा तो रहा होगा। आसपास के गांवों से हजारों लोग आये थे किन्तु व्यवस्था वहुत सुन्दर थी। मुझे नगरपालिका, खिलाफत कमेटी, साधारण जनसमाज, हिन्दू स्त्रियो और मुसलमान-स्त्रियों की ओर से मानपत्र दिये गये। स्त्रियो की एक अलग सभा आयोजित की गई थी। उनका हर्ष और उत्साह छलका पड़ रहा था। लगभग हजार स्त्रिया आई होंगी। मै तो वहुत असमंजस में पड़ गया। यह सारा प्रेम यदि मैं स्वीकार करूँ तो उसे पचाऊँगा कैसे? मैंने तो सव वही कृष्णार्पण कर दिया।

खिलाफत के सम्वन्ध मे मेरी स्पष्टवादिता मुसलमान भाइयों को वहुत प्रिय लगी है। जवतक उनकी वात को न्याय का आधार प्राप्त है और वे किसी प्रकार की हिंसा किये विना लड़ते रहते हैं तवतक मैं उनके लिए अपने प्राण अर्पित करूंगा,

मेरे ये वाक्य उनको पसन्द आये हैं। मेरे इस कथन से वे शक्ति और प्रेरणा ग्रहण कर सके हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों को सत्य के आग्रह की बात, फिर चाहे वे उसका पालन करें या न करें, पसन्द आई है। और इसलिए वे मेरे ऊपर प्रेम की वर्षा कर रहे हैं। सत्य का मेरा आग्रह जिस समय उनके खिलाफ होगा, तब वे मेरा तिरस्कार भी करेंगे। जो प्रेम करता है उसे तिरस्कार करने का अधिकार है ही।

मुजफ्फरनगर

मेरठ से मुझे रातोरात मोटर में मुजफ्फरनगर ले जाया गया। यहां हिन्दू-मुसलमानों के बीच कुछ मनोमालिन्य हो गया था। मुझे वहां उसे मिटाने के लिए ही ले जाया गया था। मोटर रात को ६ बजे पहुँची। लोग उत्साह से पागल हो गये थे। कोई किसी की बात सुन ही नहीं रहा था। घुड़सवार तो यहां भी थे किन्तु मेरठ-जैसी सुव्यवस्था नही थी। लोगों ने मोटर को घेर लिया। लोगों ने मुझे उसमें से बड़ी मुश्किल से निकालकर घोड़ागाड़ी में बिठाया। लोगों का हर्षनाद सहन करने की शक्ति मुझमें बिल्कुल नही रह गई थी। सच तो यह है कि मैंने अपने कानों में रूई के फाहे ठूस रक्खे थे। एक भाई के पॉव में चोट लगी। मुझे अब्दुल हफीज की याद आई। जिस भाई को चोट आ गई थी उसे मैंने गाड़ी में बिठा लिया। लोगों से दूर होने की प्रार्थना की। कौन किसकी सुनता? तब मैंने अपना शस्त्र बाहर निकाला। मैंने कहा कि यदि लोग दूर नही होंगे और गाडी चलाई जायगी तो मैं नीचे कूद पड़ूँगा। मैं यह नही सह सकता कि किसी को भी चोट लगे। मेरे इस चमत्कारपूर्ण शस्त्र का बिजली-जैसा प्रभाव हुआ। लोग शान्त हो गये, घबड़ाये और हट गये। मैंने तुरन्त गाड़ी चलाने को कहा। अब तो नियन्त्रण मेरे हाथ मे आ गया था। इसमे काफी समय गया। रास्ते में लोगों ने दीपावली कर रक्खी थी। उसमें से निकलते-निकलते समय बीत गया। अभी सभा होनी बाकी थी। मेरी गाड़ी का समय हो गया था। दूसरे दिन सुबह तो लाहौर पहुँचना ही था। लेकिन लोग समझ गये थे कि अब किसी प्रकार का शोरगुल करना या मेरे आसपास भीड़ करना ठीक नही होगा। रात को ११ बजे मण्डप पहुँचे। वहां सभा में अपने आप अद्भुत व्यवस्था हो गई थी। चार हजार या उनसे भी ज्यादा लोग रहे होंगे। मेरा गला कुछ बैठ गया था। किन्तु लोगो ने ऐसी शान्ति रक्खी कि सब लोग दूर तक मेरी आवाज सुन सकें। अपने भाषण में मैंने कहा कि यदि हम लाखों लोगों में काम करना चाहते हैं तो हमें व्यवस्था करना सीखना चाहिए। फिर स्थानिक झगड़े की चर्चा करते हुए उन्हें एक दूसरे की बात सहन करने और

झगड़ा शान्त करने की सलाह दी। और फिर लोगों से विदा ली। इस तरह भाग-दौड़ करते हुए इन दोनों शहरों के दर्शन करके तारीख २३ की सुबह मैं लाहौर पहुँच गया।

— गुजराती। लाहौर, २७।१।१९२०। न० जी०, १।२।१९२०।]

४. काशी-यात्रा

समिति की रिपोर्ट[१] को पूरा करने का समय भी आ गया था। अतः यह प्रश्न उठा कि इस रिपोर्ट को पढ़ने के लिए सब सदस्य किस स्थान पर एकत्र हों। पं० मोतीलाल नेहरू, श्री चित्तरंजन दास और पं० मालवीयजी के लिए काशी उपयुक्त स्थान था इसलिए यह निश्चय किया गया कि सब लोग काशी जायं। श्री जयकर लाहौर आ चुके थे, वह श्री सन्तानम् और डा० परसराम तथा लाला हरकिशन लाल १५ तारीख को लाहौर से काशी के लिए रवाना हो गये। रास्ते में लाला गिरधारीलाल उन्हें अमृतसर स्टेशन पर मिले। मेरी सार-संभाल के लिए डा० जीवराव मेहता[२] भी हमारे साथ हो लिये थे। हम १६ तारीख को काशीजी पहुंच गये। स्टेशन पर महामना पं० मालवीय जी तथा हमारे धर्मपरायण और विद्वान भाई आनन्दशंकर ध्रुव[३] के दर्शन करके मै कृतार्थ हो गया।

रिपोर्ट लिखने का कार्यभार मुझे सौपा गया था। उसे मै लाहौर में पूरा न कर सका था। इसलिए मैं तो सारा समय उसे पूरा करने में व्यतीत करता था और दूसरे सदस्य उसे पढ़ने में। उन्होने मेरी रक्षा की। मेरे प्रति अनन्य प्रेमभाव प्रकट करके मुझे उबार लिया। मेरे मन मे इसकी स्मृति सदैव बनी रहेगी: मालवीयजी के प्रेम का वर्णन तो किया ही नही जा सकता; उन्होने मेरी पूरी तरह से चौकीदारी की। हमारे सम्बन्ध ऐसे है कि हम एक पल भी सेवा-धर्म की बात किये बिना नही रह सकते थे, किन्तु हमने बातचीत न करके संयम का पालन किया। आनन्दशंकर जी के साथ खूब सारी बातें करने, उनसे काशी जी के अनुभव सुनने

---

१. पंजाब के अन्यायों की जांच के लिए बनी कांग्रेस जांच-समिति से अभिप्राय है।

२. एक प्रसिद्ध चिकित्सक, गुजरात के प्रथम मुख्य मंत्री, भारतीय उच्चायुक्त लन्दन।

३. प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री; उस समय सह-उपकुलपति, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय।

का मन तो होता था लेकिन उसे पूरा रोकना पड़ता था। इस तरह पवित्र तथा प्रेममय वातावरण में रिपोर्ट का काम पूरा हुआ। रिपोर्ट मार्च के प्रारम्भ में प्रकाशित होगी, ऐसी आशा की जा सकती है।

अरुणोदय

हमारे रहने का प्रबन्ध पण्डितजी के साथ ही गंगा-तट पर किया गया था। अरुणोदय और सूर्योदय का दृश्य सब स्थानों पर भव्य होता है, किन्तु गंगाजी के तट पर तो वह मुझे नितान्त अद्भुत जान पड़ा। आकाश में जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ता जाता वैसे-वैसे गंगा के पानी पर स्वर्णिम प्रकाश विखरता जाता है और अन्त में जब सूर्य पूर्णतः दृष्टिगोचर होता,उस समय ऐसा प्रतीत होता मानो पानी में एक वृहदाकार स्वर्णस्तम्भ प्रतिष्ठापित कर दिया गया है। इस दृश्य को कितना भी देखें, आँखों को तृप्ति ही नही होती थी। भक्त जनों के कण्ठ से गायत्री मन्त्र अपने-आप स्फुरित हो उठता था। इस भव्य दृश्य को देखने के वाद सूर्य की उपासना, नदियों की महिमा और गायत्री मन्त्र के अर्थ को मैं अधिक अच्छी तरह समझ सका।

इस स्थान पर घूमते हुए मैने अपने देश और अपने पूर्व-पुरखों के वारे में गर्व का अनुभव किया लेकिन इसके साथ ही मुझे वर्तमान स्थिति का विचार करते हुए दुःख भी हुआ। मैने नदी के किनारे ही लोगों को शौचादि करते हुए देखा। 'जंगल' जाना छोड़ कर अब हम नदी पर आते है। इस पवित्र स्थल पर तो ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि हम आँख मूंद कर नंगे पाँव चल-फिर सकें। लेकिन इसके वदले हमें बहुत संभल कर चलना पड़ता है और ऐसी जगह से गंगा-जल पीते हुए भी घिन आती है। इस गन्दगी के वारे में मैं सोच ही रहा था कि मुझे काशी के विश्वनाथ मन्दिर की याद आ गई। मन्दिर के पास ही संकरी गली, वहां की गन्दगी, वहा देखे हुए सड़े फूलों का ढेर, वहां के पुजारी ब्राह्मणों की कठोरता और मलिनता—इन सवके विचार मात्र से मैने एक लम्वी सांस ली तथा मुझे भारतीयों की अवनति के कारण की याद आ गई और तव मुझे पण्डितजी तथा उनके कार्यो का खयाल आया। काशी विश्वविद्यालय की सफलता से ही भविष्य मे (हम) उनकी कीमत आँकेंगे। इस परीक्षा में क्या वह उत्तीर्ण होंगे? उनके धर्माचरण का, उनके त्याग का, भारतवर्ष की उन्होंने जो भव्य सेवा की है उसका, मुझे खयाल आया। ध्रुवजी उनके दायें हाथ है, और इस तरह विश्वविद्यालय का कार्यभार दो वड़े धर्मात्मा पुरुषों के हाथ में है, इस विचार से मुझे सान्त्वना मिली। मुझे ऐसा लगा कि यदि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी धार्मिक और विद्वान निकले तो मन्दिर और गंगा-

तट की सफाई की अपेक्षा की जा सकती है। विश्वविद्यालय में वह शक्ति हो या न हो लेकिन प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह हिन्दू धर्म में छाई हुई आन्तरिक और बाह्य मलिनता को दूर करने के उपाय खोजे। प्रत्येक भारतीय घर बैठे-बैठे आज से ही इस दिशा मे प्रयत्न कर सकता है; यदि हर कोई अपनी स्वच्छता का स्वयं ही पूरा खयाल रक्खे तो काशी विश्वनाथ मन्दिर अपने आप—हम जितना चाहते हैं उतना—स्वच्छ हो जायगा।

विश्वविद्यालय कें विद्यार्थी

पण्डितजी-द्वारा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से दो शब्द कहने की आज्ञा पाने पर मैंने काशी से रवाना होने के दिन सवेरे साढ़े सात वजे विद्यार्थियों के सम्मुख विद्यार्थी-जीवन-सम्बन्धी अपने विचारों को व्यक्त किया। विद्यार्थी-जीवन संन्यास की अवस्था के समान है। इसलिए उसे पवित्र और ब्रह्मचारी का-सा होना चाहिए। आज दो सभ्यताएं विद्यार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए परस्पर होड़ कर रही है—प्राचीन और अर्वाचीन। प्राचीन सभ्यता संयम-प्रधान है। प्राचीन सभ्यता हमें वताती है कि मनुष्य ज्ञानपूर्वक अपनी आवश्यकताओ को जितना कम करता जाता है वह उतना आगे वढ़ता है। आधुनिक सभ्यता हमे यह सिखाती है कि अपनी आवश्यकताओं को वढ़ाकर मनुष्य प्रगति कर सकता है। संयम और स्वच्छन्दता में उतना ही भेद है जितना धर्म और अधर्म में है। संयम में वाह्य प्रवृत्ति को आन्तरिक प्रवृत्ति की अपेक्षा गौण पद प्रदान किया जाता है। (आज) संयमशील प्राचीन सभ्यता के वदले स्वच्छन्दतामय आधुनिक सभ्यता को अपनाने का भय उपस्थित हुआ है। इस भय को दूर करने में विद्यार्थी वहुत सहायता कर सकते है। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की परीक्षा उनके ज्ञान से नही वल्कि उनके धर्माचरण के आधार पर होगी। इस विश्वविद्यालय में धर्म की शिक्षा और आचरण को प्रधान पद प्रदान किया जाना चाहिए। इसमें विद्यार्थियों की पूरी मदद होनी चाहिए। पण्डितजी स्वयं धर्म का आचरण करनेवाले व्यक्ति है। उन्होंने एक धर्मात्मा पुरुष को अर्थात् आनन्दशंकर भाई को विश्व-विद्यालय में लाकर विद्यार्थियों को अनुकूल अवसर दिया है। इस अवसर का लाभ उठाकर विद्यार्थी अपनी विद्या को धर्म से शोभान्वित करें, ऐसी मेरी कामना है।

इस तरह के विचारों को मैं अनेक वार भिन्न-भिन्न रूपों में अनेक स्थानों पर व्यक्त कर चुका हूं। और एक वार फिर शुभ अवसर पर मिलने पर जिन्हें मैंने उस दिन काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के सामने पेश किया उन्ही का यह

सार 'नवजीवन' के पाठकों के सामने उनके मनन करने के लिए प्रस्तुत कर रहा हूं। मेरा विश्वास है कि हम अपने धर्म का विचार किये बिना राजनीतिक सुधारों का लाभ नही उठा सकते। धर्म की स्थापना इन सुधारों से नही हो सकती बल्कि धर्म के द्वारा ही इन सुधारों को दूर किया जा सकेगा।

काशी में गुजराती

काशी में गुजराती काफ़ी बड़ी संख्या में हैं। इस बात की मुझे आज तक खबर न थी। आनन्दशंकर भाई ने मुझे उनसे मिलने का अवसर प्रदान किया था। पण्डितजी भी उपस्थित थे। गुजराती भाइयों ने उसी अवसर पर पण्डितजी को मानपत्र देने का विवेकपूर्ण कार्य किया। अपनी ओर से उनके प्रति धन्यवाद प्रकट करते हुए मैंने दो शब्द कहे। (मैने उनसे कहा) गुजरातियों में जो दोष माने जाते हों वे वापस गुजरात में ही भेज देने चाहिए और जो गुण हों उनका ही विकास करना चाहिए। ऐसा करके गुजराती, गुजरात और हिन्दुस्तान दोनों की ही शोभा बढ़ायेंगे। अपने व्यवहार में मनुष्य को अनेक धर्मसंकटों का सामना करना पड़ता है, उस समय सच्चे मित्र की जरूरत होती है। वैसे मित्र के रूप में (उन्हें) आनन्दशंकर भाई मिले है। मैंने कामना व्यक्त की कि उनकी उपस्थिति का वे पूरा लाभ उठायेंगे। काशी से दिल्ली होते हुए, वहां माननीय श्री निवास शास्त्री से मुलाकात करने के बाद श्रीमती सरला देवी[1] को लेकर २३ तारीख को आश्रम में पहुँचा हूं।

——गुजराती। न० जी०, २९।२।१९२०।]

- अरुणोदय और सूर्योदय का दृश्य सब स्थानों पर भव्य होता है। किन्तु गंगा जी के तट पर तो वह मुझे नितान्त अद्भुत जान पड़ा।
- प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह हिन्दू धर्म में छाई हुई आन्तरिक और बाह्य मलिनता को दूर करने के उपाय खोजे।
- विद्यार्थी-जीवन संन्यास की अवस्था के समान है।
- प्राचीन सभ्यता संयम-प्रधान है।
- संयम और स्वच्छन्दता में उतना ही भेद है जितना धर्म और अधर्म में है।

---

१. सरलादेवी चौधरानी।

५. पंजाबियों का कर्त्तव्य : 'लीडर' के सन्दर्भ में

इलाहाबाद का 'लीडर' श्री वासवर्थ स्मिथ से सम्बन्धित पत्र के छापने के लिए बधाई का पात्र है। यह श्री स्मिथ उन्ही अधिकारियों में से एक है जिनके खिलाफ सैनिक कानून के दौरान लोगों के साथ लगातार दुर्व्यवहार करने की सबसे ज्यादा शिकायत की गई है। इस पत्र से पता चलता है कि श्री स्मिथ को बरखास्त करने के बजाय तरक्की दे दी गई है। मालूम होता है, सैनिक कानून घोषित किये जाने से कुछ दिनों पहले उनकी तनज्जुली कर दी गई थी। 'लीडर' के नाम उक्त पत्र का लेखक कहता है:

"अब जिन्हें, जिस द्वितीय श्रेणी के डिप्टी कमिश्नर के पद से तनज्जुल कर दिया गया था, फिर उसी पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया है। साथ ही उन्हें प्रक्रिया संहिता के खण्ड ३० की रू से प्राप्त होनेवाली सारी सत्ता भी दे दी गई है। उनके आने के बाद से अम्बाला छावनी के बेचारे भारतीय नागरिक त्रास और अत्याचारपूर्ण शासन में रह रहे हैं।"

पत्र लेखक आगे कहता है:—

"मैंने उपर्युक्त दोनों विशेषणों का प्रयोग जान-बूझकर उसी अर्थ में किया है जो अर्थ इनसे निकलता है।"

मैं सारी स्थिति को बिल्कुल खोलकर रख देनेवाले इस पत्र के कुछ अंश उद्धृत कर रहा हूं, जिनसे त्रास और अत्याचार का मतलब स्पष्ट हो जायगा।

"निजी शिकायतों के सम्बन्ध में वह शिकायत करने वाले व्यक्ति का बयान कभी नहीं लेते। जब अदालत उठ जाती है तब पेशकार ऐसा बयान ले लेता है और फिर दूसरे दिन मजिस्ट्रेट से हस्ताक्षर करवा लेता है। (ऐसी शिकायतों के बारे में) जो रिपोर्ट की जाती है, वह चाहे शिकायत करनेवाले के अनुकूल हो या प्रतिकूल, मजिस्ट्रेट उसे कभी नहीं पढ़ता और बिना किसी उचित जांच-प्रक्रिया के शिकायत रद्द कर दी जाती है। यह तो है निजी शिकायतों का हाल। अब पुलिस चालानों का किस्सा सुनिए। ऐसे मामलों में अभियुक्तों के वकीलों को पुलिस की हिरासत में बन्द विचाराधीन व्यक्तियों से मिलने नहीं दिया जाता। उन्हें वादी पक्ष के गवाहों से जिरह नहीं करने दी जाती।...उनकी जांच उनसे ऐसे प्रश्न करके की जाती है, जिनका उत्तर वे प्रश्नकर्ता के मन के मुताबिक दें।... इस प्रकार अभियोग का सारा किस्सा पुलिस के गवाहों की जबानी कहलवाया जाता है। बचाव पक्ष के गवाहों को यद्यपि अदालत में बुलाया जाता है, किन्तु

बचाव पक्ष के वकील को उनसे पूछताछ नहीं करने दी जाती।...अगर अभियुक्त साहस करके अपने जवाब में कुछ कहना भी चाहता है तो उसे फटकार कर चुप कर दिया ज़ाता है। छावनी का कोई भी सरकारी कर्मचारी एक पुर्जे पर किसी भी नागरिक का नाम लिखकर दूसरे दिन उसे अदालत में हाजिर करने को मजबूर कर सकता है। उसका इतना भर लिख देना ही सम्मन के बराबर है।... जिससे इस प्रकार अदालत में हाजिर होने को कहा जाता है वह अगर नहीं होता तो उसकी गिरफ्तारी के लिए फौजदारी वारण्ट जारी कर दिया जाता है।"

इस पत्र में इसी तरह की और भी बहुत सी बातें कही गई हैं जो उद्धृत करने लायक है। लेकिन जितना मैने दे दिया है, उससे लेखक का आशय स्पष्ट हो जाता है। अब सैनिक कानून के दौरान हम जरा इन अधिकारी महोदय के कारनामों को देखेंगे। यह अधिकारी वही सज्जन हैं जिन्होने अपने इजलास में लोगों को एक-एक करके नही, बल्कि समूहो में हाजिर करवाकर मुकदमे का नाटक करने के बाद उन्हें सजा दी। गवाहो का कहना है कि वह लोगों को इकट्ठा करके उनसे झूठी शहादतें देने को कहते थे; औरतों के पर्दे-बुर्के उठवा देते थे; उन्हें "मक्खी, कुतिया और गधी" कहकर पुकारते थे और उन पर थूक देते थे। यही थे जिन्होने शेखूपुरा के निरीह वकीलों पर अवर्णनीय जुल्म किये थे। श्री एण्ड्रूज इस अधिकारी के विरुद्ध की गई शिकायतों की व्यक्तिशः जॉच करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्री स्मिथ से अधिक बुरा बरताव दूसरे किसी अधिकारी ने नही किया है। इन्होंने शेखूपुरा के लोगों को इकट्ठा करके तरह-तरह से उनका अपमान किया, उन्हें 'सुअर लोग' और 'गन्दी मक्खी' कहा। हण्टर समिति के सामने उन्होने जो गवाही दी उससे प्रकट होता है कि किस तरह उन्होने सत्य का गला घोटा है। यह वही अधिकारी है जिनकी, अगर उक्त पत्र-लेखक की बाते सही हो तो, तरक्की कर दी गई है। लेकिन सवाल यह है कि वह अभीतक सरकारी सेवा में बने हुए ही क्यों है और बेगुनाह औरतो और मर्दो को मारने-पीटने, उन्हे अपमानित करने के अभियोग में अब तक उन पर मुकदमा क्यों नही चलाया गया है।

देखता हूं लोगों में यह इच्छा बहुत प्रबल है कि जनरल डायर और सर माइकेल ओडायर पर महाभियोग लगाया जाय। यह व्यवहार्य है या नही, इस पर मैं यहां विचार नही करूंगा। लेकिन मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि जनरल डायर पर महाभियोग लगाने की इस चीख-पुकार में श्री शास्त्री[1] भी शामिल है।

---

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री। ३ अप्रैल, १९२० को आयोजित बम्बई प्रान्तीय कान्फ्रेंस में सर ओडायर तथा अन्य लोगों पर महाभियोग लगाने और

अगर अंग्रेज लोग स्वेच्छा से ऐसा करें तो मैं इसका स्वागत करूंगा। क्योकि यह इस बात की निशानी होगी कि उन्होंने जलियांवाला वाग की नृशंसता को भर्त्सनीय माना है, लेकिन निश्चय ही, मैं इन दोनों को दण्डित करवाने के निरर्थक प्रयत्न पर फूटी कौड़ी भी खर्च नही करना चाहूंगा। और इस सम्वन्व में अंग्रेजों का क्या खयाल है, जनता को तो इसका पर्याप्त अनुभव हो गया है। लगभग सारे अंग्रेजी अखवार मानवता के प्रति ऐसा घोर अपराध करनेवाले इन लोगों के कारनामो पर पर्दा डालने की साजिश मे शामिल हो गये है। इन पर सरकारी अथवा गैर-सरकारी तौर पर मुकदमा चलाने के लिए चीख़-पुकार मचाने का मतलव है इन्हे हीरो[1] का दर्जा दे देना और मैं ऐसे किसी प्रयास मे शामिल नही होऊंगा। अगर मैं भारत को सिर्फ इनकी पूरी वर्खास्तगी की मॉग करने के लिए राजी कर सकू तो इसे काफी समझूंगा। लेकिन सर माइकेल ओडायर और जनरल डायर की वरखास्तगी से ज्यादा जरूरी है कि कर्नल ओव्रायन, श्री वॉसवर्थ स्मिथ, राय (साहव) श्रीराम तथा कांग्रेस उपसमिति की रिपोर्ट में वताये गये अन्य व्यक्तियों पर अगर मुकदमा न भी चलाया जाय तो उन्हें कम-से-कम विल्कुल वरखास्त तो कर ही दिया जाय। जनरल डायर को तो मैं वुरा मानता ही हूं, लेकिन श्री स्मिथ को तो कही ज्यादा वुरा मानता हूं और उनके अपराधो को जलियांवाला वाग के कत्लेआम से ज्यादा जघन्य समझता हू। जनरल डायर ईमानदारी के साथ ऐसा मानते थे कि एक सिपाही के नाते लोगों पर गोलिया चलाकर उन्हें भयभीत करना उनका कर्त्तव्य था। लेकिन श्री स्मिथ ने मनमाने तौर पर नृशंसता वरती, कमीनापन और नीचता दिखाई। अगर उनके खिलाफ कही गई सारी वातें सत्य है तो मानना पड़ेगा कि उनमें इन्सानियत का लेश भी नहीं है। जनरल डायर के विपरीत उनमे अपने किये को कवूल करने की हिम्मत नही है और जव उनसे कोई वात पूछी जाती है तो वह वगलें झाँकने लगते है। लेकिन आज भी यह अधिकारी लोगो को —ऐसे लोगों को जिन्होंने कभी उनका कुछ नहीं विगाड़ा—तवाह करने को स्वतन्त्र है और जिस शासन का फिलहाल वह प्रतिनिधि वना हुआ है उसे कलंकित करने की उसे पूरी छूट मिली हुई है।

और इस हालत मे पंजाव क्या कर रहा है? क्या पंजावियों का यह स्पष्ट

किसी न्यायाधिकरण द्वारा उनकी जांच करके उन्हें दण्डित करने की मांग की गई थी।

१. इंग्लैण्ड के कुछ हल्कों में डायर का वड़ा सौहार्दपूर्ण स्वागत किया गया; उनकी सहायता के लिए एक सार्वजनिक कोष भी आरम्भ किया गया।

कर्त्तव्य नही है कि जबतक वे श्री स्मिथ और उन-जैसे अन्य लोगों को बरखास्त न करवा लें तबतक चैन से न बैठें ? और अगर पंजाब के नेता[1] अपनी मुक्ति का उपयोग सर्वश्री बॉसवर्थ स्मिथ और उनके गुणों के कारनामों से पंजाब-प्रशासन को छुटकारा दिलाने के लिए नहीं करते तो वे व्यर्थ ही जेलों से छूट कर आये। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि वे संकल्प के साथ एक आन्दोलन छेड़-भर दें तो सारा भारत उनके साथ होगा। मै उन्हे यह सलाह दूंगा कि अगर जनरल डायर को कठघरे में खड़ा करवाना है तो उसका सबसे अच्छा तरीका है, जिन अधिकारियों के खिलाफ इतने सारे प्रमाण एकत्र करने में उन्होंने मदद दी है वे अधिकारी आज भी जो शरारत और शैतानी किये जा रहे है, उसे रोकना और मैं कहूंगा यह काम अपेक्षाकृत अधिक आसान भी है और ज्यादा जरूरी भी।

—अंग्रेजी। यं० इं०, २३।६।१९२०।]

६. हमारा पिछला दौरा

हर एक यात्रा में मुझे इतने अधिक अनुभव हो रहे है कि उनकी चर्चा करके पाठकों को उनके परिणामों से अवगत कराना मेरे लिए कठिन हो रहा है। इसलिए मै अबतक जो कह चुका हूं, उसके साथ अनुशासन और संघटन की आवश्यकता पर अतिरिक्त जोर देकर ही मुझे सन्तुष्ट होना पड़ेगा। मैं कानपुर तक की अपनी यात्रा के विषय में लिख चुका हूं। मै डर रहा था कि कानपुर—मौलाना हसरत मोहानी और डा० मुरारी लाल[2] के कानपुर—में पहुँच कर क्या होगा ? दोनों ही बहुत बड़े कार्यकर्त्ता है। स्टेशन पर जैसी व्यवस्था होनी चाहिए वैसी ही थी। जबरदस्त भीड़ हमारी प्रतीक्षा कर रही थी किन्तु वह इतनी अनुशासित रही कि हम लोग जनता की दो घनी पंक्तियों के बीच से आसानी के साथ आगे बढते चले गये और जबतक मोटरगाड़ियों में जाकर अपनी-अपनी जगह नही बैठ गये एक भी व्यक्ति टस से मस नहीं हुआ। जिस काम में फिजूल ही ३० मिनट चले जाते,

---

१. ये नेता सैनिक कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार किये गये थे और बाद में २३ दिसम्बर १९१९ को राज-घोषणा में जो आम माफी दी गई थी उसके अन्तर्गत छोड़ दिये गये थे।
२. उन्होंने राय साहब की उपाधि छोड़ दी थी और प्रान्त की सरकार को तमगा और सनद वापस कर दी थी।

उसमें पांच मिनट भी नही लगे। जुलूस का कार्यक्रम छोड़ दिया गया था, इससे खुशी हुई। कार्यक्रम भी स्टेशन की ही तरह व्यवस्थित और काम-से-काम रखने-वाला था। हम लोग (डेरे पर) करीब ८ बजे पहुँचे। एक ही दिन वहां रुका जा सकता था। किन्तु उतने ही समय में कार्यकर्त्ताओं के साथ बैठक, शिकागो ट्रिव्यून' के श्री फ़ेजरहण्ट को निजी भेंट, विधवाश्रम देखना, राष्ट्रीय गुजराती शाला का उद्‌घाटन, गुजराती महिलाओं की एक सभा (जिसमें महिलाएं बड़ी संख्या में उपस्थित थी), राष्ट्रीय समझौता अदालत का उद्‌घाटन, सार्वजनिक सभा और अन्त में मुलाकातियों से वातचीत की। ये सारे ही काम विना किसी अतिरिक्त भागदौड़ और परेशानी के निपट गये। सार्वजनिक सभा के समय प्रारम्भ में थोड़ी सी गडवड़ी हुई। यह जान पड़ा कि स्वयंसेवकों को पहले से कुछ हिदायतें नही दी गई है, किन्तु थोड़े ही प्रयत्न के वाद वहां भी पूरी शान्ति हो गई अतः लोगों ने लम्वे-लम्वे भाषण पूरी तरह शान्त रहकर सुने। मेरा विश्वास है कि जैसे ही हम सगठित हुए और हममे अनुशासन आया वैसे ही हमें स्वराज्य मिल जायगा। यदि हम एक होकर किसी भी विदेशी शक्ति-द्वारा शासित होने से इन्कार कर दें तो हमारे जैसे देश को इससे अधिक और कुछ करने की जरूरत नही। लखनऊ में बिल्कुल इससे उलटा रहा। स्टेशन पर यहां से वहां तक गड़वड़ी-ही-गड़वड़ी थी और लोग उमड़ते चले आ रहे थे। वह अनुशासन-हीन स्नेह का प्रदर्शन ही था। सव हम लोगों तक पहुँचने के लिए एक-दूसरे को ढकेलते हुए चले आ रहे थे। और यह किसी की भी समझ मे नही आ रहा था कि इस तरह हम तक पहुँचना असम्भव है। अन्त में मैने कह दिया कि मै यहां से उस क्षण तक हिलूगा भी नही जबतक भीड़ अपने आपको संयमित नही कर लेती। भीड़ जल्दी ही मेरी वात समझ गई और उसने हमारे निकलने के लिए रास्ता छोड़ दिया। उसके वाद जुलूस निकला—परेशान कर देनेवाला जुलूस। मौलाना अब्दुल वारी के यहाँ हम लोग ठहराये गये। हमारे दल में जो हिन्दू शामिल थे, उनके लिए उन्होंने एक ब्राह्मण रसोइए का विशेप प्रवन्ध कर रखा था। पाठकों को याद होगा कि इसी जगह मौलाना जफरुल मुल्क गिरफ्तार किये गये थे। मौलाना साहव निष्कलंक चरित्र के एक सुसंस्कृत मुसलमान है। श्री विलोवी की हत्या भी लखनऊ से थोड़ी ही दूर पर हुई थी, इसीलिए रात की सभा मे वहुत वड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए। व्याख्यान बहुत शान्त भाव से सुने गये। अच्छा होता, यदि मेरे पास भाषणों का सारांश देने का समय और स्थान होता। हम सवने खीरी हत्या की वात को स्पष्ट किया कि खिलाफत समिति की सतर्कता के वावजूद ऐसा किस तरह हो गया। और यह भी वताया कि इससे लोगों में अनावश्यक आतंक फैला, स्थानीय समिति पर लाञ्छन

लगा तथा इस तरह खिलाफत उद्देश्य के को हानि पहुँची। मुझे इस बात का दुःख है कि सभा में नेताओं में से कोई नही आया था इसलिए सबका ध्यान इस बात की ओर गया। वे सनझते है कि असहयोग आन्दोलन हानिकर है। यह तो समय ही बतायेगा। हमें उनके प्रति निराश नही होना चाहिए। वे राष्ट्र के है और जिस दिन उनके मन का अविश्वास दूर हो जायगा वे भी देश के साथ कदम मिलाकर बढ़ेंगे।
—अंग्रेजी। यं० इं०, २७।१०।१९२०।]

७. अयोध्या में

अयोध्या में जहां रामचन्द्र जी का जन्म हुआ, कहा जाता है उसी स्थान पर छोटा-सा मन्दिर है। जब मै अयोध्या पहुंचा तो वहां मुझे ले जाया गया। श्रद्धालु असहयोगियों ने मुझे सुझाव दिया कि मैं पुजारी से विनती करूँ—कि वह सीतारम की मूतिय़ों के लिए पवित्र खादी का उपयोग करे। मैने विनती तो की लेकिन उस पर अमल शायद ही हुआ हो। जब दर्शन करने गया तब मैने मूर्तियों को भौड़े मलमल और जरी के वस्त्रों में पाया। यदि मुझमें तुलसीदासजी जितनी गाढ़ भक्ति की सामर्थ्य होती तो मै भी उस समय तुलसीदासजी की ही तरह हठ पकड़ लेता। कृष्ण-मन्दिर में तुलसीदासजी ने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक धनुष-बाण लेकर कृष्ण राम रूप के में प्रकट नही होते तबतक तुलसी का मस्तक नही झुकेगा। श्रद्धालु लेखकों का कहना है कि जब गोस्वामीजी ने ऐसी प्रतिज्ञा की तब चारों ओर उनकी आँखों के सामने रामचन्द्रजी की मूर्ति खड़ी हो गई और तुलसीदास जी का मस्तक सहज ही नत हो गया। अनेक बार मेरा ऐसा हठ करने का मन हो आता है कि हमारे ठाकुरजी को जब पुरानी खादी पहनाकर स्वदेशी बनायेंगे तभी हम अपना माथा झुकावेगे। लेकिन पहले मुझे इतना तप करना होगा; तुलसीदास की की अपूर्व भक्ति को प्राप्त करना होगा। इस बीच जैसे मुसलमान भाई पवित्र कार्यो के लिए खादी का उपयोग करने लगे है वैसे ही मै चाहता हूं कि हिन्दुओं के मन्दिरों में और अन्य पवित्र कार्यो में खादी इस्तेमाल होने लगे। सृष्टि का नियम है कि एक महत्वपूर्ण कार्य के सुसम्पन्न होने से अन्य सम्बद्ध कार्य स्वयमेव सम्पन्न होते चले जाते है। हिन्दुस्तान मे सबसे ज्यादा आयात कपड़े का होता है, यद्यपि एक समय ऐसी बात न थी। फलतः जब हम विदेशी कपड़े का सर्वथा बहिष्कार कर देंगे तब हमे स्वराज्य मिल कर रहेगा, तब हमारी ताकत इतनी बढ़ जायगी कि कोई हमारी स्वतन्त्रता के आड़े आ ही नही सकेगा।
—गुजराती। न० जी०, २०।३।१९२१।]

८. असहयोग स्थगित कर दो!

श्री सैयद रजा अली[1] ने एक खुला पत्र लिख कर मुझे सलाह दी है कि मैं लार्ड रीडिंग को शान्त वातावरण में परिस्थिति का अध्ययन करने का मौका देने के लिए असहयोग स्थगित कर दू। पहली बात तो यह है कि मुझे वातावरण मे ऐसा कुछ दिखाई नही देता जो परिस्थिति के अध्ययन में बाधा पहुंचाये। दूसरे जो कुछ भी अशान्ति है वह या तो अधिकारियों-द्वारा पैदा की हुई है या फिर स्थिति पर जिस बुरे ढग से काबू पाने की कोशिश की गई उसके कारण रक्तपात हुआ है। मध्यप्रान्त मे शराब का व्यापार ऐसी जनता पर थोपा जा रहा है कि जिसमें उसके विरुद्ध रोष व्याप्त है। मैंने अखबार नही पढे और इसलिए रायबरेली के सम्बन्ध में कह सकने योग्य मेरे पास पर्याप्त तथ्य नही है। जो भी हो, श्री रजाअली को ऐसा अनुरोध स्थायी अधिकारियों से करना चाहिए जो लोगों को उभाड रहे हैं और देश में आतंक फैला रहे है। तीसरे, यह बात चाहने पर भी किसी एक आदमी के बस की नही है कि वह एक ऐसे आन्दोलन को स्थगित कर दे जो राष्ट्र-द्वारा अपनी प्रतिनिधि-संस्थाओं के माध्यम से अपनाया गया है। चौथे आखिर श्री रजा अली का असहयोग के स्थगन से अभिप्राय क्या है? क्या उपाधिधारी लोग कुछ समय के लिए अपनी उपाधियां पुन. धारण कर ले? या वकील फिर से वकालत करना शुरू कर दे? क्या लड़के सरकारी स्कूलों मे लौट जायं? कातने-वाले अपने चर्खे एक कोने मे रख दें, बढ़ई नये चर्खे बनाना बन्द कर दें? बात चाहे कितनी ही बेतुकी लगे, इतना स्पष्ट है कि श्री रजा अली असहयोग की मर्यादाओं को नही समझते है। वह नही समझते कि असहयोग एक सद्‌गुण के समान है जिसका आचरण इच्छा होते ही जब चाहे बन्द नही किया जा सकता। यदि अंग्रेज, जो अपने भरण-पोषण के लिए भारत पर आश्रित हैं, सचमुच भारत का भला चाहते है, हमारा नमक अदा करना चाहते है तो उन्हें शराब के धन्धे के खतम हो जाने तथा विदेशी कपड़े के धन्धे और इसके फलस्वरूप लंकाशायर के कपड़े के धन्धे के भी पूर्ण विनाश को सहन कर लेना चाहिए। खिलाफत पूरी तरह सुरक्षित हो जाय और पंजाब के घाव भर जायं, इसके बाद भी शराब की आमदनी पुनर्जीवित नही की जासकेगी, न विदेशी कपड़ो का इस्तेमाल फिर से शुरू किया जायगा। आश्चर्य की बात तो यह है कि देश मे ऐसे बुद्धिमान और शिक्षित सार्व-जनिक कार्यकर्ता है जो इतना भी नही समझ पाते कि यह सरकार जबतक अपने

---

१. इलाहाबाद के एक प्रतिष्ठित वकील।

मूलभूत पापों को धो नही डालती तवतक उसे वरावर एक अन्याय के वाद दूसरा अन्याय करना ही होगा। इसमे सन्देह नही कि वह चाहे तो उक्त दो अन्यायों का निवारण किये विना भी, दो वड़े-वडे गतिशील आन्दोलनो में जनता के साथ सहयोग कर सकती है अर्थात् शराव की वुरी लत के खिलाफ़ युद्ध मे तथा चर्खे की उस प्राचीन प्रतिष्ठा और पवित्रता की पुन: स्थापना में। इससे उन दोनों अन्यायो से उत्पन्न कटुता हल्की पड़ जायगी। किन्तु जनता के साथ सरकार के ऐसे सहयोग से जनता की उन दोनों अन्यायों का निश्चित रूप से निवारण करा लेने की शक्ति वढ़ जायगी और इसीलिए सरकार शान्ति के साथ मद्य-निषेध अभियान की तथा चर्खे के माध्यम से स्वदेशी वस्त्र-निर्माण की वृद्धि के फल-स्वरूप विदेशी कपड़े के वहिष्कार की प्रगति नही होने देगी।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १३।४।१९२१।]

९. सवालों का सिलसिला[1]

पहले सवाल का जवाव मै एक अलग लेख मे दे रहा हू।[2] दूसरे सवाल के वारे में खयाल ऐसा है कि ईश्वर का भय माननेवाले लोग ही सच्चे असहयोगी वन सकते है। लेकिन असहयोग का कार्यक्रम अपनाने के लिए किसी को अपने धर्म या विश्वास का उल्लेख करना जरूरी नही है। जिसे अहिसा मे विश्वास हो और जो असहयोग के कार्य को मंजूर करे ऐसा हर आदमी अवश्य ही असहयोगी वन सकता है। तीसरे सवाल के वारे में मैं ऐसा समझता हूं कि पत्र-लेखक ने परिस्थिति की वास्तविकता को समझने में भूल की है। देश ने पूर्ण असहयोग शुरू नही किया, इसका कारण विश्वास या इच्छा की कमी न होकर योग्यता अथवा तैयारी का न होना है। इसीलिए तो अभी तक सरकारी कर्मचारियों मे नौकरियां छोड़ने की वात नही कही गई है। सरकारी कर्मचारी अव भी चाहें नौकरी छोड़ने के लिए स्वतन्त्र हैं। लेकिन उनसे सरकारी नौकरी छोड़ने की वात तभी कही जा सकती है जव हिंसा के न भड़क सकने की पूरी और समुचित व्यवस्था कर ली गई हो।

---

१. वरेली के अहमदहुसेन ने १५ अप्रैल को गांधीजी से चार प्रश्न लिख कर पूछे थे। देखिए परिशिष्ट, 'यंग इंडिया' के सम्पादक को।

२. गांधीजी ने 'अफगानी हमले का हौआ' शीर्षक यह लेख यं० इं० में लिखा था।

अतएव जबतक देश नौकरी छोड़नेवाले प्रत्येक व्यक्ति को कोई दूसरा काम मुहैया कर देने की स्थिति में नहीं हो जाता तबतक नौकरी छोड़ने की बात नहीं उठाई जा सकती। अब तक हमारा ऐसा न करना किसी मसलहत के अन्तर्गत न माना जाय जैसा कि आमतौर पर माना जा रहा है। शुद्धतम धर्मशीलता से बढ कर कोई मसलहत हो ही नही सकती। ऐसी बहुत सी बाते है जो विधि-सम्मत तो है किन्तु उपयुक्त बिल्कुल नही होती। असहयोग का आदर्श ही हमारी विधि है और वह देश के सामने है।

चौथा सवाल स्वराज्य के अर्थ के बारे में है। स्वराज्य की मेरी सीधी-सादी व्याख्या यह है कि भारत अपना काम-काज बिना किसी बाहरी दखल के कर सके। उसे अपने सेना-सम्बन्धी व्यय और राजस्व-प्राप्ति का तरीका अपने ढंग से इस्तेमाल करने की आजादी होनी चाहिए। उसमें अपने सारे सैनिको को, वे कही भी क्यो न हों, वापस बुलाने की क्षमता होनी चाहिए। यह काम कैसे होगा या कैसे किया जा सकता है, यह सब देश पर, देश की जनता पर निर्भर है। जनता-द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक चुने हुए भारत के प्रतिनिधियों को ही इसके अमल का तरीका तय करना चाहिए। अगर एक साल के अन्दर स्वराज्य कायम नही किया जा सका और मेरा बस चला तो स्कूल छोड़ने वाला एक भी लड़का लौट कर मदरसे वापस नहीं जायगा और न वकालत छोड़नेवाला कोई भी वकील फिर से अदालत मे लौटेगा।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ४।५।१९२१।]

१०. रिसता हुआ घाव

संयुक्त प्रान्त के उदार संघ (लिबरल लीग) के शिष्टमण्डल को उत्तर देते हुए परमश्रेष्ठ वाइसराय ने जो भाषण दिया वह उस भाषण की अपेक्षा कही अधिक सतर्कतापूर्ण था जो उन्होने अहमदिया शिष्ट मण्डल को उत्तर देते हुए दिया था। फिर भी परमश्रेष्ठ को यह याद दिलाना आवश्यक है कि उन्होने इस भाषण में भारत से असम्भव कार्य करने को कहा है। उदारदलीय तथा राष्ट्रवादी, सहयोगी तथा असहयोगी, हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, पारसी, ईसाई, यहूदी सभी, जो अपने को भारतीय कहते है अपने तरीके से जोर देकर कहते है कि पंजाब तथा खिलाफत के प्रति किये गये अत्याचारों का प्रतिकार होना चाहिए। परमश्रेष्ठ अब भी खिलाफत के दावे पर जोर दे रहे हैं। यह आशाजनक बात है। इस सम्बन्ध

में वह यह नही कहते कि भारत के मुसलमान और हिन्दू तथा अन्य देशवासी खिलाफत के प्रति किये गये अत्याचारों को भूल जायें। किन्तु वह हमसे यह साफ साफ कहते है कि हम पंजाब के प्रति किये गये अत्याचारों को भूल जायँ। यह काम उतना ही असम्भव है जितना कि किसी वैद्य के कहने मात्र से रोगी का अपने कष्ट-दायक रोग को भूल जाना। केवल संज्ञाहीन करनेवाली औषध के उपयोग से वह कुछ देर के लिए कष्ट भूल सकता है। पंजाब के प्रति किये गये अत्याचार तो ऐसे है जैसे कि रिसता हुआ कोई घाव। जिस प्रकार रिसता हुआ घाव सारा ज़हर बाहर निकाल दिये जाने तक अच्छा नही हो सकता, उसी प्रकार पंजाव के प्रति किये गये अत्याचार वेईमान तथा पश्चात्तापहीन सरकारी अधिकारियों की पेंशनों तथा नौकरियों के समाप्त कर दिये जाने के पहले न तो भूले जा सकते हैं, न उन्हे क्षमा ही किया जा सकता है। क्या लार्ड रीडिंग का अनुमान है कि श्री थामसन को उच्चतर पद पर प्रतिष्ठित करने में भारत की सहमति है? वह हमसे कहते है कि हम उद्देश्य के प्रति ईमानदारी तथा सचाई के लिए उन्हें तथा उनकी सरकार को श्रेय दें। वह चाहें तो श्रेय दे लें किन्तु श्रेय देते समय यह विचार मन में आता है कि महत्त्वपूर्ण मामलों पर सरकार तथा जनता के दृष्टिकोण में मौलिक भेद है। जबतक लार्ड रीडिंग और उनकी सरकार भारत से यह कहती है कि वह पेंशन तथा नौकरी की सूचियो मे उन अधिकारियों के नाम बहाल रखने पर सहमत हो जायं जो भारतीय दृष्टिकोण से अपने उत्तरदायित्व के प्रति अयोग्य सिद्ध हुए है तवतक सरकार और जनता में एकमत होने का प्रश्न ही नही उठता। यदि हमें लेशमात्र भी उत्तरदायित्व दिया गया होता तो निश्चित रूप से हमें उन लोगों को वर्खास्त करने का अधिकार मिल जाता जिन्होंने हम पर नृशंस अत्याचार किये है। मेरे लेखे तो इन दोनों अत्याचारो का प्रतिकार करना उत्तरदायित्व की सबसे बड़ी कसौटी है। खिलाफत के प्रति जो अन्याय हुआ है उसे स्वीकार किया गया है। पंजाव पर किये गये अत्याचार खून के अक्षरों मे लिखे गये हैं। हम मानते है कि हमने अमृतसर, कसूर, जलियांवाला तथा गुजरावाला मे गलतियां की। किन्तु इसके लिए हमें भारी कीमत चुकाने के लिए मजबूर किया गया। हमारा अपमान किया गया; हमें ठोकरे मारी गई। अपराधी और निर्दोष सभी फाँसी पर चढाये गये। हमने स्वयं कई स्थानों पर स्पष्ट एव मुक्त रूप से अपना अपराध स्वीकार किया है। हम यह नही चाहते कि अन्याय करनेवाले अधिकारियों को अपमानित किया जाय। हम तो केवल यह माँग करते हैं कि वे हम पर मालिक बनाकर न लादे जायं। एक अंग्रेज अधिकारी ने एक बार मुझसे स्पष्ट कहा कि माइकेल ओडायर या जनरल डायर का नाम पेंशन की सूची से हटाने की बात पर सहमति

देने के वजाय मै नौकरी छोड़ देना अधिक अच्छा समझूंगा। मैंने उससे कहा कि मै आपके इस प्रकार के रुख से सहानुभूति रख सकता हूं। किन्तु आप भी मुझसे इस विचार से सहमत होने की आशा न रक्खे और उसने ऐसी आशा नही की। हजारो न सही, सैकडों अंग्रेज पुरुष तथा महिलाएं माइकेल ओडायर तथा जनरल डायर को साम्राज्योद्धारक और अपने गौरव का सरक्षक समझते हैं। यह भी सम्भव है कि यदि मै भी, चाहे जिस मूल्य पर भारत को अधीन रखने के लिए कृतसकल्प अग्रेजों मे से एक होता तो मैं भी शायद उन्ही के जैसा महसूस करता। किन्तु मेरा विचार है, कि जवतक इस प्रकार का रुख वना रहेगा तवतक सरकार और जनता के वीच सहयोग नही हो सकता। हमारे द्वारा असहयोग होने पर अग्रेज इस तथ्य को समझ जायँगे कि देश के प्रशासन में उनके साथ सहयोग करने का अर्थ हम लोग उनके इस रुख के साथ सहमति प्रकट करना मानते हैं। यह मित्रों और साथियों-जैसा रुख नही है और तलवार के वल पर उनका भारत में वने रहना अव सम्भव नही है। वे यहां केवल हमारी सद्भावना के वल पर रह सकते हैं। यदि हमे अव कोई चीज जोड़े रह सकती है तो वह केवल सद्भावना की कड़ी ही हो सकती है। मुंह से समानता का दम भरना और वास्तव में अलगाव की खाइया खोदकर अपने वड़प्पन को अक्षुण्ण रखना तो हमारा मजाक उडाना ही है। लार्ड रीडिग संसार के वुद्धिमान व्यक्तियों में से है इसलिए मुझे आशा है वह इस वात को जल्दी ही समझ जायँगे कि दो विरुद्ध रुखों मे संगति वनाये रखना सम्भव नही है। यदि कोई वीच का मार्ग होता तो असहयोगियों ने उसे कभी का अपना लिया होता। यह विशाल जन-समुदाय की घृणा या दुर्भावना का प्रश्न नही है। मै उन्हें आमन्त्रित करता हूं कि वह गहरे पैठकर देखें तो उन्हें मालूम हो जायगा कि हम कमजोर होने पर भी गोरी जाति की श्रेष्ठता को अव किसी प्रकार भी स्वीकार करने के लिए तैयार नही है। जवानी जमाखर्च का चाहे कितना ही अच्छा मतलव क्यों न हो और चाहे कितनी ही सचाई से वह क्यों न किया गया हो, उससे कोई उपयोगी उद्देश्य सिद्ध नही हो सकता। हम भारत के लोग इतने मूर्तिपूजक तो है कि जिस समानता की वात कही जाती है हमें उसका साक्षात् प्रमाण चाहिए। गोरे सैनिकों का अस्तित्व अंग्रेज जाति की रक्षा के लिए आवश्यक हो सकता है किन्तु क्या वे नही जानते कि भारत की सीमा की रक्षा के लिए उनकी विल्कुल आवश्यकता नही है? अग्रेजो को सर्वथा उन्ही शर्तो पर यहां रहने के लिए तैयार होना चाहिए जिन शर्तो पर पारसी रहते है। पारसी संख्या में मुट्ठी भर होने पर भी एक हजार वर्ष से प्रतिष्ठित मित्र एव साझेदारों की हैसियत से यहां रह रहे है। उन्हें विशेष सुरक्षा की आवश्यकता नही पड़ी। क्रुद्ध हिन्दुओं

तथा मुसलमानों से होनेवाले खतरे के समय उन्हें किसी किले की शरण लेने के लिए नही जाना पड़ा। क्या मूसा और ईसा के अनुयायियों के पास पारसियों-जैसा विश्वास नही है? वास्तविक तथ्य तो यह है कि अंग्रेज भारत में लाखों हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ सद्भावना के साथ रहने के लिए तैयार नही है। हिन्दू और मुसलमान भी अंग्रेजों को इस डर से कोई विशेषाधिकार देने के लिए तैयार नही हो सकते कि आदमी की बुद्धि अधिक-से-अधिक खतरनाक जिन हथियारों की खोज कर सकती है वैसे हथियार अंग्रेजो के पास हैं। हिन्दुओ-मुसलमानों के पास इसके सिवा और कोई चारा नही कि वे उनका भय छोड़कर अर्थात् अप्रतिरोध के जरिए अधिक-से-अधिक प्रयत्न करके उन सब शस्त्रो के प्रभाव को बेकार कर दे। हो सकता है कि यह बात उद्दण्डतापूर्ण या काल्पनिक लगे। किन्तु मुझे आशा है कि लार्ड रीडिंग को शीघ्र ही किसी-न-किसी प्रकार यह मालूम हो जायगा कि मैने भारत के मन की बात सही तौर पर कही है। और जितनी जल्दी इस मौलिक सत्य का ज्ञान होगा उतनी ही जल्दी अंग्रेजों और भारतीयो के बीच वास्तविक तथा हार्दिक सहयोग होगा। मै ऐसे सहयोग की लालसा रखता हूँ और यही लालसा मुझे किसी प्रकार की क्षमा-याचना स्वीकार करने से रोकती है, फिर चाहे वह सहयोग के लिए कितनी ही प्रलोभनकारी क्यों न हो। असहयोग का जन्म अज्ञान तथा दुर्भावना से नही हुआ, बल्कि इसका जन्म ज्ञान और प्रेम से होता है और इसलिए सहयोग की ओर बढ़ने के लिए यही प्रभावशाली कदम है।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १३।७।१९२१। सं० गां० वा०, खण्ड २०, पृ० ३७७-७९।]

११. सम्पादक के प्रश्नों के उत्तर

८-८-२१

'इण्डियन डेली टेलीग्राफ' (लखनऊ) के सम्पादक श्री मैकेंजी ने श्री गांधी को उत्तर देने के लिए पाँच प्रश्न भेजे हैं:—

(१) आपके विचारों और लार्ड रीडिंग के विचारों में जो अन्तर है वह समय बीतने के साथ-साथ बढेगा या कम होगा, इस सम्बन्ध में आपका क्या खयाल है?

(२) आप स्वराज्य की स्थापना कब तक करने की आशा करते हैं?

(३) क्या आप समझते है कि प्रधान मन्त्री का कार्य पहिले की अपेक्षा अब अधिक राक्षसी या दुष्टतापूर्ण है।

(४) आप अपने देश में उत्पन्न और शिक्षित मन्त्रियो को, जो सुधारो के अन्तर्गत बनी परिषदो के द्वारा भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना का प्रयत्न कर रहे है, प्रोत्साहन क्यो नही देते ?

(५) क्या आप जीवन मे विनोद-वृत्ति को आवश्यक समझते है ?

गाधी जी ने निम्नलिखित उत्तर दिये है :

(१) यह अन्तर जितना कम होना सम्भव है उतना ही बढ़ना भी सम्भव है।

(२) मै खुद अपने ऊपर यथासम्भव शीघ्र स्वराज्य की स्थापना का यत्न कर रहा हूं। मै भारत मे स्वराज्य की स्थापना नहीं कर सकता। किन्तु मैं निश्चय ही उससे इसी वर्ष में स्वराज्य की स्थापना करने की अपेक्षा रखता हूं।

(३) मुझे स्वीकार करना चाहिए कि प्रधान मन्त्री मेरे लिए एक समस्या है।

(४) ये मन्त्री जबतक इस प्रणाली से, जो इनका अनुचित उपयोग भारत को पतित बनाने के लिए कर रही है, सर्वथा मुक्त नही हो सकते तबतक मुझे उनको प्रोत्साहन देने से आदरपूर्वक इन्कार ही करना चाहिए। (संयुक्तप्रान्त में जो कुछ हो रहा है वह मेरे उस कथन की पुष्टि करता है।)

(५) यदि मुझमे विनोदवृत्ति न होती तो मैंने कभी की आत्महत्या कर ली होती।

—अंग्रेजी। ८।८।१९२१। 'लीडर', १०।८।१९२१ तथा यं० इं० १८।८।१९२१।]

- यदि मुझमें विनोद-वृत्ति न होती तो मैंने कभी की आत्महत्या कर ली होती।

१२. लखनऊ में पाप-स्थान

एक अग्रेज मित्र ने लखनऊ से लिखा है :

"मैं यह पत्र आपसे यह अनुरोध करते हुए लिख रहा हूं कि आप यहां से जाने के पहिले लखनऊ के वेश्यागृहों के सम्बन्ध में यहां के किसी अधिकारी को, जो आपके मत का समर्थक हो, कुछ लिख दें। आज सुबह मैं अमीनाबाद में फौजी पुलिस के सिपाही से बातचीत कर रहा था। उससे मालूम होता है कि उस तरफ की बस्ती में ऐसे कोई पचास मुकाम हैं, जहां युरोपीय और एंग्लो-इण्डियन सिपाही अक्सर जाया करते हैं। (इनमें से कुछ लोग फौजी अदालतों में पेश भी किये जा चुके हैं,

क्योंकि उस बस्ती में फौजियों का जाना मना है)। उसने हिन्दुस्तानियों के विषय में कुछ नहीं कहा, परन्तु मुझे बाद में किसी ने बताया कि वे भी उन स्त्रियों के यहां जाते हैं। मनुष्य के इस अधःपतन और असंयम के सम्बन्ध में आप यदि कुछ शब्द लिख देंगे तो वह इस बुराई को दूर करने में अन्य सब बातों से अधिक कारगर होगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इस काम में जितनी सहायता मुझसे हो सकती है मैं करूंगा।"

मै चाहता हूं कि मैं भी इन अंग्रेज मित्र की तरह विश्वास कर सकता कि मेरे शब्दो मे वह प्रभाव है, जो उन्होने बताया है। इन पक्तियों को लिखते समय बार-बार मेरी आंखों के सामने उन प्यारी बहिनो का चित्र आता है जो मुझसे रात के समय कोकोनाडा मे मिली थी। जब मुझे उनकी लज्जाजनक स्थिति का हाल मालूम हुआ तब वे तो मुझे और भी प्यारी लगने लगी। वे केवल संकेत से मुझे अपने जीवन की दशा बता सकी। जो स्त्री उनकी तरफ से मुझसे बात कर रही थी उसकी आंखों मे लज्जा और दुःख अंकित था। मै उन्हें दोषी कहने के लिए तैयार न हो सका। इस मुलाकात के बाद मैने "व्यक्तिगत चरित्र-शुद्धि" की आवश्यकता पर ही भाषण दिया। इसलिए आज मेरे हृदय मे लखनऊ की इन पतित बहिनों के प्रति सहानुभूति होती है। वे ऐसा लज्जाजनक जीवन बिताने के लिए मजबूर की गई है। मुझे यकीन हो गया है कि वे अपनी खुशी से ऐसा जीवन स्वीकार नहीं करती। यह तो मनुष्य की पशुवृत्ति है जिसने इस घृणित कुकर्म को एक "धन कमाने का धन्धा" बना दिया है। लखनऊ अपनी आरामतलबी के लिए मशहूर है। परन्तु वह एक मुसलमान औलिया का भी स्थान है। इस्लाम में जो कुछ भी उत्कृष्ट व महान् है वह सब लखनऊ में है। हिन्दुओं के लिए तो लखनऊ उस प्रान्त का एक सदर-मुकाम है जो सती सीता और राम की पुण्य-भूमि थी। वह हिन्दुओं की पवित्रता, उदारता, शौर्य और सत्यपरायणता के श्रेष्ठ युग की याद दिलाता है। असहयोग आत्मशुद्धि है, और मैं सभी असहयोगियों तथा अन्य लोगों से भी कहता हूं कि वे लखनऊ की इस नैतिक व्याधि को दूर करने का उपाय करें। मैं आशा करता हूं कि लखनऊ की शोहरत का हिमायती कोई भी व्यक्ति मुझसे यह नही कहेगा कि लखनऊ भारत के दूसरे शहरो से तो बुरा नही है। लखनऊ का जिक्र तो यहां उदाहरण के तौर पर संयोग से आ गया है। हम तो सारे भारत में स्त्री जाति की सुरक्षा और पवित्रता के लिए उत्तरदायी हैं। लखनऊ इसमें अगुआ क्यो न हो?

—अंग्रेजी। यं० इं०, १८।८।१९२१। सं० गां० वा० खण्ड २०, पृष्ठ ५४१।]

- **असहयोग आत्मशुद्धि है।**

१३. विचार की उलझन

बनारस-वासी का पत्र और उसपर टिप्पणी

सम्पादक,
'यंग इंडिया'

प्रिय महोदय,

घरना देने की उपयोगिता पर मैने आपकी दलीले पढ़ी। वंगाल के असहयोगी विद्यार्थी जव कानून के परीक्षार्थियों के परीक्षा मे वैठने से रोकने के उद्देश्य से कलकत्ता विश्वविद्यालय, कालेज तथा सिनेट भवन के फाटकों पर लेट गये थे, उस समय उनके मन में यही दलीलें काम कर रही थी। उन्होने हाथ जोड़कर अपने परीक्षार्थी भाइयों से सोने के घड़े मे रखे इस विष का पान न करने का अनुरोध किया था। घरना देने के इस नये तरीके से कितनी सफलता मिली, यह आपको मालूम ही है। परीक्षा-भवन विल्कुल वीरान हो गये थे और वाद में फिर से परीक्षा लेनी पड़ी थी। लेकिन तव आपने ही घरना देने से असहमति प्रकट की थी और फलतः सारा प्रयत्न छोड़ देना पड़ा था। इतने शानदार तरीके से जो सफलता प्राप्त हुई थी, सव मिट्टी में मिल गई और आज वंगाल इस वात के लिए पछताता है कि उसके नौजवानो के भाल पर विफलता की कुख्याति का टीका लगा हुआ है। जव घरना देनेवाले फाटक के सामने लेट गये थे तव उनके पीछे इस दलील का वल था कि किसी वीमार आदमी के न चाहने पर भी हमें उसका इलाज करना ही है। आधुनिक शिक्षा के वारे मे आपकी सलाह को सचमुच समझकर तथा अपने कालेज छोड़ने का साहस दिखाकर उन्होंने अपने आपको कृतार्थ माना। लेकिन तव भाइयों की हैसियत से अपने भाइयों को परीक्षा में वैठने से मना करना भी उन्हे अपना अनिवार्य कर्त्तव्य जान पड़ा। कोई आदमी गलत काम कर रहा हो तो जमीन पर लेटकर उसका रास्ता रोकना, उसे समझाने-वुझाने का पूर्व के देशों मे प्रचलित एक मान्य तरीका है, इसमें तो कोई सन्देह नही। उन्होने जो कुछ किया, वह सच्ची विनय के सिवा और क्या था? अगर सचमुच मेरी भावना ऐसी हो कि शरावखोरी एक भयंकर वुराई है और हर व्यक्ति को इसके पंजे से वचाना है तो अगर मै शरावखाने के सामने लेट जाऊं और पीने की इच्छा लेकर वहां आनेवाले से कहूं कि आप मेरे शरीर को कुचलकर ही शराव पीने जा सकते है तो क्या इसका मतलव वल-प्रयोग होगा? यह तो उसके हृदय को जगाने की कोशिश ही है। और नैतिक रूप से समझाने-वुझाने का मतलव मैं इस तरह की भावना को जगाना ही समझता हूं। सिनेट भवन के सामने लेट कर इन घरना देनेवालों ने परीक्षा-

र्थियों के हृदय की भावना को जगाने की कोशिश की थी। और निश्चय ही वह उन्हें समझाने-बुझाने का एक तरीका था। चूंकि बंगाल के ये धरना देनेवाले किसी प्रकार के शरीर-बल का उपयोग नही कर रहे थे, बल्कि परीक्षार्थियों के हृदय की भावना को जगाने की ही कोशिश कर रहे थे, इसलिए अगर आप यह बताने की कृपा करें कि आपने उनके तरीके से असहमति क्यों प्रकट की थी तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

भवदीय,
एस० एन० राय

बनारस
१२ जुलाई, १९३१

उपर्युक्त पत्र लिखनेवाले सज्जन ने बिना किसी कारण से यह मान लिया है कि उन्होने जिस ढंग से धरना देने की बात लिखी है, शराब की दूकानों पर उस ढंग से धरना देने का समर्थन मै करूंगा ही। अगर धरना देनेवाले रास्ता रोकने का यह अशोभन कार्य आग्रहपूर्वक करते ही रहते तो देश में इसकी इतनी प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती कि असहयोग आन्दोलन पूरी तरह बदनाम हो जाता। इसके अतिरिक्त शिक्षा की तुलना शराबखोरी से करना दूर की कौड़ी भिड़ाना है। शिक्षा के सम्बन्ध मे बात दो विचारों के संघर्ष की है, और असहयोग इस पीढ़ी के लिए एक नया विचार है। लेकिन मद्यपान के सम्बन्ध मे संघर्ष संयम और एक ऐसी बुराई के बीच है जिसे सभी बुराई मानते है। पहले उदाहरण में जिस नौजवान को कालेज में जाने से रोका जाता है, वह सरकारी कालेज में जाने को एक अच्छा कार्य मानता है, लेकिन शराबखोरी को एक बुरी लत ही मानता है। पढ़े-लिखे नौजवान अखबार पढ़ते है और उन्हें पक्ष-विपक्ष की सारी दलीलें ज्ञात रहती है। लेकिन शराबखाने में जानेवाले लोग कुछ नही पढ़ते और चूंकि सभा आदि में भी नही जाते, इसलिए उन्हें वैसी कोई बात सुनने को भी नही मिलती इसलिए कालेजों और स्कूलों पर धरना देना न केवल अनावश्यक था बल्कि जिस तरीके से धरना दिया गया वह एक तरह की हिसा थी जिसका किसी भी हालत में कोई औचित्य नही ठहराया जा सकता। और असहयोगियों के लिए वैसा करना अपनी प्रतिज्ञा भंग करना था। इसलिए अगर मेरी तीव्र आलोचना के कारण धरना उठा दिया गया तो मुझे इस बात के लिए खुशी है।

--अंग्रेजी। यं० इं०, १५।९।१९२१।]

१४. 'इण्डियन डेली टेलीग्राफ' (लखनऊ) के सम्पादक के प्रश्नों के उत्तर

(२१ सितम्बर, १६२१)[१]

"इण्डियन डेली टेलीग्राफ" के सम्पादक श्री जे० एम० मैकेंजी द्वारा पूछेगये कुछ और प्रश्नों के उत्तर श्री गाधी ने दिये है।

प्रश्न १:—भारत अपनी एकही मांग स्वीकार कराने के खयाल से साम्राज्यीय सम्मेलन में शामिल हुआ था, लेकिन दक्षिण अफ्रीकी गणराज्य ने उसे भी अस्वीकार कर दिया। क्या आप इसके लिए गणराज्य को प्रतारणा का पात्र समझते हैं? क्या यह नहीं हो सकता कि जिस देश में आपने अपने प्रारम्भिक दिनों में सफलता पाई है, उस देश में एक वार फिर जायें ताकि सारा भारत आश्वस्त होकर बैठ सके?

उत्तर: भारत मे आज जो सवाल मौजूद है, वह दक्षिण अफ़्रीकी सवाल का ही वृहत्तर रूप है। अगर मैं यहां सफल हो जाता हूं तो वहां का सवाल तो अपनेआप हल हो जायगा।

प्रश्न २: स्वयं भी आप अव तक आत्म-शासन की अवस्था प्राप्त नहीं कर पाये हैं, इसलिए ऐसे घोर पतनकारी वातावरण में इधर से उधर ठोकर खानेवाले हम शेष लोगों की दयनीय स्थिति का तो आप सहज ही अनुमान लगा सकते हैं?

स्वयं मुझमें भी वहुत-सी कमियां हैं, इसलिए मैं आदमी की कमियो को वेशक महसूस करता हूं, और अहिंसा में मेरे विश्वास का कारण भी यही है।

प्रश्न ३: यदि आप अपने प्यारे देश के लोगों को गरीवी और फकीरी की तकलीफ़देह जिन्दगी के अलावा और सव कुछ छोड़ देने को मजबूर कर दें तो क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि उनका भी वही हाल होगा जो रूस की जनता का हुआ?

रूस की जनता का हाल क्या हुआ, मैं नही जानता। लेकिन भारत को मै अच्छी तरह जानता हूं। आजतक हम लोग मजवूरन गरीवी में जीते रहे, लेकिन अव गरीवी और फकीरी की जिन्दगी को हम धीरे-धीरे अपनी खुशी से अपनाते जा रहे है।...अपने सिद्धान्त पर मैं स्वयं आचरण कर रहा हूं, इसलिए मेरा अनुमान गलत नही हो सकता।

प्रश्न ४: निराशा के गर्त में तो वह भी गिरा जो 'दुराग्रही' था और वह

---

१. यह प्रश्नोत्तर एसोसिएटेड प्रेस द्वारा उसीदिन लखनऊ से जारी किया गया था।

भी जो समझाने-बुझाने से बात मान लेनेवाला था। इसलिए क्या आप सोचते हैं कि 'रुकने को तैयार रहनेवाले' के तरीकों के समर्थन में अथवा 'दोनों और रुख किये रहनेवाले' के भी तरीकों के पक्ष में कुछ कहा जा सकता है? या कि आप सारा बोझ लेकर ही "दिव्य नगर के द्वार" तक पहुंचने को कृतसंकल्प हैं?

आपने मुझे दो बुराइयों के ही बीच चुनाव करने को कहा है। मै दुराग्रही और समझाने-बुझाने से मान जानेवाले को, रुकने को तैयार रहनेवाले और दोनों ओर रुख किये रहनेवाले की अपेक्षा अधिक पसन्द करता हू, लेकिन मै समझता हूं, स्वय इनमें से किसी वर्ग का नही हूं। हा, मै स्वीकार करता हूं कि आपने जिन एकाकी चरित्रो का उल्लेख किया है, वैसे वहुत से लोग मेरे साथ है। आप अन्त में देखेंगे कि मैं 'लाइट वेट चैम्पियन' हूं। अपना सारा वोझ मैने यात्रा के प्रारम्भ में ही उतार कर रख दिया था।

प्रश्न ५ : अब तो आपने चन्दे से काफी पैसा इकट्ठा कर लिया है। इसलिए जिस साम्राज्ञी के भारत-प्रेम ने आपके जीवन के उषःकाल में निश्चय ही आपको बहुत ही रुचिर भावनाओं से अनुप्राणित किया होगा, उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के खयाल से अगर आप रानी विक्टोरिया के स्मारक के लिए कुछ पैसा दे दें तो क्या आपको नहीं लगता कि आपके देशवासी यह बात बहुत पसन्द करेंगे?

मै आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपके मन मे जिस स्मारक की वात है, स्वर्गीया महारानी के लिए मैं उससे कही अच्छा स्मारक तैयार करने में लगा हुआ हूं।

प्रश्न ६ : वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए, आप दक्षिण अफ्रीका की समस्या का क्या समाधान सोचते हैं?

मेरा समाधान तो यह है कि भारत जो चाहता है, वह उसे दे दिया जाय। वुनियादी दोष को दूर कीजिए, छोटे-छोटे दोप तो अपने-आप दूर हो जायंगे।
—अंग्रेजी। हिन्दू, २२।९।१९२१।]

१५. अली-भाइयों की जीत

अली-भाई गिरफ्तार कर लिये गये, इसे मैं उनकी जीत मानता हूं। और उसकी जीत हमारी जीत है, क्योकि मै यह मानता हूं कि अव स्वराज्य के सूर्य की किरणें फूट चुकी हैं। जव वच्चा जन्म लेता है तव मां को घोर कष्ट होता है।

पौ फटने से पहले अँधेरा बढ़ जाता है। इस प्रसंग में हम "फटना" शब्द का प्रयोग करते है; उससे यही अर्थ सूचित होता है।

मैं अली-भाइयों की कैद के सम्बन्ध में भी ऐसा ही मानता हूं। दूसरे बहुत से लोग भी गिरफ्तार किये गये हैं। अभी और भी अधिक लोग गिरफ्तार किये जायगे। महत्व तो उनकी गिरफ्तारी का भी है फिर भी अली-भाइयों की गिरफ्तारी का जो महत्व है वह दूसरे लोगों की गिरफ्तारी का नही है।

अली-भाइयों ने स्वराज्य की प्राप्ति के निमित्त यथाशक्ति प्रयत्न किया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनका बलिदान पवित्र है। उन्होने अपनी अहिंसा की प्रतिज्ञा का पूरा पालन किया है। इसका अर्थ यह नही है कि उनके भाषण में तीखापन या कड़वापन नहीं होता था, किन्तु उन्होने अपनी हिंसा की भावना पर अंकुश रक्खा। हिंसा की भावना पर अंकुश रखने का अर्थ सच्ची बात छिपाकर लोगों को शान्त रखना नही है; यह सरकार असह्य है ऐसा ज्ञान होने पर भी अहिंसक बने रहना, यह हिंसा पर अंकुश रखने का सच्चा अर्थ है।

अली भाइयो ने अपना रोष प्रकट किया है। उन्होने लोगों के सामने सरकार के काले कारनामो का नग्न चित्र खीचा सही किन्तु, इसके बावजूद लोगों को अपनी दलीलों से और अपने कार्य से अहिंसक रहने की ही शिक्षा दी।

उन्होंने अहिंसा को समयोपयोगी मानकर अपनाया है। वह मेरे जैसे लोगों की तरह यह नही मानते कि अहिंसा सार्वकालिक धर्म है और हमें हर समय और हर प्रसंग पर अहिंसक रहना चाहिए। इसके विपरीत वह मानते है कि इस समय और इस प्रसंग पर अहिंसा ही उनका परम धर्म है। उन्होंने दूसरे लोगों को भी यह बात स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया है। यदि वह चाहते तो खुद किसी का खून कर सकते थे या करा सकते थे, फिर चाहे इसमे उन्हें भी क्यों न मरना पड़ता। उन्होने मृत्यु का भय तो छोड़ ही दिया है, किन्तु व्यवहारकुशल और धर्मपरायण होने के कारण उन्होने देखा कि गुस्से में आकर किसी को मार देना अपराध है और इस्लाम मे इसकी मनाही है। उन्होने समझ लिया कि इस्लाम मे ऐसे प्रसंगों का उल्लेख है जिनमें हिंसा की जा सकती है किन्तु वर्तमान अवसर उन प्रसंगो में नही आता और यह बात उन्होने दूसरे लोगो को अच्छी तरह समझाई।

इसीलिए मै कहता हूं कि उन्होंने अपनी अहिंसा की प्रतिज्ञा का पूर्ण पालन किया है और इसके बावजूद वे वीर है और निर्भय हैं। उनकी धर्मसेवा और लोकसेवा पर कोई भी शंका नही कर सकता। जहां निर्भयता, वीरता और सेवा का संगम होता है वहां बलिदान की चरम सीमा होती है। बलिदान का परिणाम मनोवाञ्छित फल देनेवाला होता है। इस कारण मै यह मानता हूं कि अब हमारी जीत

का, स्वराज्य पाने का, और खिलाफत एवं पंजाब के मामलों में न्याय प्राप्त करने का समय आ गया है।

किन्तु इस जीत की शर्तें हैं। एक व्यक्ति के किये हुए यज्ञ का फल दूसरे व्यक्ति को तभी मिलता है जब दूसरा व्यक्ति भी उस यज्ञ को स्वीकार करता है। अली-भाइयों के यज्ञ को जब हम अपना यज्ञ बना लेंगे तभी हमारी जीत होगी। अपना बनाने का अर्थ है, जैसा उन्होंने किया वैसा हम भी करें। हम उनके साहस, उनके अभय और उनके सेवाभाव का अनुकरण करें। यदि मुसलमानों के मन में ऐसा दुर्बल विचार आये कि वह तो जेल गये, अब खिलाफत आन्दोलन को कौन चलायेगा, तो इससे यही समझा जायगा कि वे अली-भाइयो को नही समझ सके। हिन्दू अथवा मुसलमान कायरों की तरह ऐसा सवाल नही उठायेंगे कि वह तो जेल चले गये अब स्वराज्य की गाड़ी को कौन खीचे। अब हमें नेताओं की, मार्गदर्शकों की जरूरत कम ही रह गई है। यदि हम यह कहें कि बिल्कुल नही रही है तो यह अतिशयोक्ति नही होगी। हमने मार्ग तो जान लिया है और देख लिया है। हिन्दुओ और मुसलमानों, दोनों के लिए तीन शर्तो का पालन करना अनिवार्य है। शान्ति का पालन, हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता और स्वदेशी के कार्यक्रम का अमल। सभी धर्मो के लोगों को समान रूप से इस कर्त्तव्य का पालन करना है। हिन्दुओं को एक काम और करना है. .उन्हें अस्पृश्यता के मैल को धोना है।

मोपलों ने शान्ति-भंग करके व्यर्थ ही आत्मनाश किया है। उन्होने यही सिद्ध किया है कि यदि हम शान्ति नही रखेंगे तो हिन्दुओं और मुसलमानो की एकता की रक्षा नही की जा सकेगी। इसलिए सरकार हमें नाहे खिझाये तो भी हमे रोष नही करना चाहिए और अपनी स्थिरचित्तता नही छोड़नी चाहिए।

जिस तरह शान्ति की रक्षा करना हमारा धर्म है उसी तरह हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता को कायम करना हमारा धर्म है। कुछ मोपले पागल बन गये इससे सब मुसलमान तो खराब नही माने जा सकते। तीन वर्ष पहले शाहाबाद मे हिन्दू पागल हो गये थे, उससे सभी हिन्दू तो खराब नही माने जायंगे। किन्ही दो पक्षो में एकता होने का अर्थ ही यह है कि दोनो पक्षो में झगड़ा हो जाय तो भी वे एक-दूसरे के शत्रु न बनें और झगड़े का निपटारा शान्तिपूर्वक कर लें। हम कह सकते है कि परिवार में सामान्यतः एकता होती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि परिवार के लोग आपस में कभी लड़ते ही नही। मुझे उसमें कोई सन्देह नही कि हम एकता कायम रखने का प्रयत्न करते-करते कभी-कभी लड़ भी पड़ेंगे। किन्तु आपस में लड़ने पर भी हमारे नेता ऐसे होंगे कि वे हमें सदा अंकुश में रखेंगे। यदि मुसलमान या मोपला नेता मोपलो के पागलपन की सराहना करते और इसकी

निन्दा न करते तो हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता जोखिम में पड़ जाती, यह सच है। किन्तु मुझे नही लगता कि ऐसा एक भी मुसल्मान है जिसने मोपलो के पागलपन को अच्छा वताया हो। कम-से-कम मैं तो ऐसे एक भी व्यक्ति को नही जानता। ऐसा हो या न हो किन्तु यह वात तो एक वालक भी समझ सकता है कि यदि हिन्दू और मुसलमान लड़ेंगे तो हमें किसी तीसरे की जरूरत पड़ेगी ही। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता स्वराज्य की दूसरी जरूरी शर्त है।

इतनी ही जरूरी शर्त स्वदेशी का व्यवहार और चर्खे का प्रचार है। चर्खा हिन्दू-मुसलमान ऐक्य की, हमारी अहिंसा की, हमारे नियमपालन की, हमारी परिश्रमशीलता की, योजनाशक्ति की, हमारी व्यापारिक शक्ति की, हमारी परोपकार-वृत्ति की, निर्धनो के प्रति हमारे प्रेम की और अपने स्त्रीवर्ग की रक्षा करने की हमारी इच्छा की निशानी है। अकेले हिन्दू चर्खा चलाते हैं तो हिन्दुओं को लाभ होगा किन्तु उससे स्वराज्य नही मिलेगा। जिस समय हमें क्रोध आ रहा हो, हमारा रक्त उवल रहा हो उस समय हमें चर्खा चलाना अच्छा नही लगता। चर्खा अहिसा का प्रतीक है और अपनी आजीविका कमाने के सम्वन्ध में हमारे मन में जो भय वैठ गया है उसको दूर करने का साधन है। इसलिए जवतक घर-घर में चर्खा नही चलता तवतक यह सिद्ध नही होता कि हम अहिंसक हैं और हममें एकता है।

चर्खे के अन्तर्गत कर्घा और पीजन आदि वस्तुएं भी आ जाती है। जव चर्खा चलेगा तव भारत मे फिर चमक आयगी। यदि चर्खा नही चलेगा तो विदेशी कपड़े का वहिष्कार नही होगा और यदि हो जायगा तो वह टिकेगा नही। हम मिल-मालिकों से सहायता माँगते है और हमें विदेशी कपड़े के व्यापारियो के सहयोग की जरूरत भी है, किन्तु अन्त में तो हमारी सफलता का आधार हम स्वयं ही हैं। 'आप सच्चे तो जग सच्चा।' सच्चे मनुष्य को तो कोई ठग ही नही सकता, इसलिए, हममें से हरएक को विदेशी कपड़े का वहिष्कार करना चाहिए और कपास की किसी भी प्रक्रिया में जुट जाना चाहिए।

अली-भाइयो की रिहाई की अनिवार्य शर्ते अव हमें मालूम हो गई है। ये शर्ते तीन होने पर भी अन्त में एक स्वदेशी में ही आ जाती है, क्योंकि इसमें पहली दो शर्ते छुपी हुई है। स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने में ही स्वराज्य निहित है। और स्वराज्य मिलने पर स्वराज्य सभा के पहिले अधिवेशन का पहिला काम अली-भाइयों और दूसरे असहयोगी कैदियों को रिहा करना ही होगा।

ऐसी सीधी-सादी वातो मे हमें मार्गदर्शक की जरूरत नही होती। हमें स्वराज्य तभी मिलेगा जव हम अपने मार्गदर्शक स्वयं वन जायंगे।

ये शर्तें हिन्दू और मुसलमान—दोनों के लिए है।

यदि हिन्दू अपने हिन्दुत्व को नही समझेंगे तो भारत को कभी स्वराज्य नहीं मिलेगा। अस्पृश्यता दूर न होने पर भी खिलाफत के सवाल का फैसला हो सकता है, यह मै देख सकता हूं, किन्तु अस्पृश्यता दूर न होगी तो स्वराज्य नही मिलेगा। यदि २२ करोड़ हिन्दू अपने समाज के पांचवें हिस्से को दवाते रहते है तो वह स्वराज्य नही होगा, बल्कि रावण-राज्य होगा। यह धर्म नही बल्कि अधर्म होगा। मैं यह लेख मद्रास प्रान्त के कुम्भकोणम्[1] नामक स्थान से लिख रहा हूं। कुम्भकोणम् अपने मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है। यहां विद्वान द्रविड़ लोग बसते है, किन्तु कुम्भकोणम् के ब्राह्मण भंगी की छाया पड़ने से भ्रष्ट हो जाते है। जिस भंगी की छाया पड़ती है उसे मार भी खानी पड़ती है और गालियां तो उसपर बरसती ही हैं। अस्पृश्यता की डायरशाही जैसी मद्रास में चलती है वैसी कही अन्यत्र नही चलती। अस्पृश्य लोग ब्राह्मणों की गली में तो जा ही कैसे सकते है? अस्पृश्यों को जानबूझकर अज्ञान में रक्खा जाता है। कोई पशु बीमार पड़ता है तो उसकी सार-संभाल भी कोई-न-कोई करता है, किन्तु अस्पृश्यों का रक्षक तो भगवान ही है। हमको स्वराज्य नही मिलता इसका कारण निर्दोष अस्पृश्यों की हाय भी है। मद्रास अहाते में तो यह प्रश्न दिन-प्रति-दिन उग्र होता जा रहा है। मद्रास के अन्त्यज मजदूरों और दूसरे लोगों के बीच बड़ा वैमनस्य है और वे एक-दूसरे से मारपीट भी कर लेते है। हमें अस्पृश्यों से प्रेम करना चाहिए। उनको हमें सगे भाई की तरह मानना चाहिए और उनसे छू जाने पर अपने आपको भ्रष्ट न समझना चाहिए। इससे हमें स्वराज्य मिलेगा इतना ही नही, इसी से हिन्दू धर्म का उद्धार भी होगा। गो-रक्षक हिन्दू अन्त्यजों का त्याग नही कर सकते। अन्त्यज चाहे मैला हो, चाहे वह मुरदार मांस खाता हो, चाहे शराब पीता हो और चाहे उसमें पृथ्वीभर के सब दोष हों, फिर भी वह हमारा भाई है, ऐसा मानकर ही हमें उससे बरताव करना चाहिए। जब हम ऐसा करेंगे तभी हम स्वराज्य-मन्त्र का उच्चारण करने योग्य बनेंगे।
—गुजराती। न० जी०, २५।९।१९२१।]

१६. व्याख्या के सिद्धान्त

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रिन्सिपल श्री आ० बा० ध्रुव ने 'वसन्त'

---

१. गांधी जी १८ सितम्बर, १९२१ के दिन कुम्भकोणम् में थे।

नामक गुजराती मासिक में शास्त्रो की व्याख्या करने के सही तरीके और उनमें अस्पृश्यता का जो स्थान है उसके वारे मे उस तरीके को लागू करने के सम्वन्ध में एक वड़ा विद्वत्तापूर्ण लेख लिखा है। मेरे पास वड़े लम्वे-लम्वे पत्र आये है जिनमें से कुछ का रूप तो सैद्धान्तिक और पारिभाषिक है और कुछ मेरे विचार से ऐसे व्यक्तियों की मिथ्या धारणा पर आधारित है जो शास्त्रों से विल्कुल अनभिज्ञ हैं। मै यह जानता हूं कि लिखनेवालो ने ये पत्र सदुद्देश्यों से प्रेरित होकर ही लिखे है। यं० इं० जैसे छोटे से साप्ताहिक पत्र के स्तम्भों में इन सव पत्रों को प्रकाशित करना तो सम्भव नही है परन्तु मै इन पत्र-लेखकों को किसी प्रामाणिक विद्वान के जरिए अवश्य सन्तुष्ट करना चाहता हूं। मेरे विचार से आचार्य ध्रुव ऐसे ही प्रामाणिक विद्वान है। उनकी विद्वत्ता उतनी ही निर्विवाद है जितनी उनकी ईमानदारी और निष्पक्षता। जो लोग जल्दी-से-जल्दी अस्पृश्यता के प्रश्न का न्यायपूर्ण हल ढूंढना चाहते हैं उनके लिए यह लेख निश्चित ही रुचिकर होगा। मैंने उसका अनुवाद यं० इं० के लिए करा लिया है। पं० मदनमोहन मालवीय जी और ये विद्वान प्रिन्सिपल महोदय, जो कट्टर हिन्दू होने का दावा करते हैं और कट्टर हिन्दू माने भी जाते है, दोनो ही हिन्दू धर्म पर लगे इस दाग को मिटाने के हार्दिक समर्थक है, इस वात को देख कर मुझे जितनी शान्ति मिली है उतनी और किसी वात से नही।
——अंग्रेजी। यं० इं०, ३।११।१९२१।]

१७. गाली किसे कहते हैं ?

संयुक्तप्रान्त से एक महोदय लिखते है—

"आजकल चारों तरफ वड़ी वुलन्द आवाजों में सरकार की मलामत करने की बाढ़ सी आ रही है।...ऐसा मालूम होता है कि मानो हर आदमी इस बात की कोशिश करता है कि सरकार को गालियां देने में मैं दूसरे लोगों से आगे किस तरह बढ़ जाऊं। सच पूछिए तो हर एक व्याख्यान बदजबानी और गालियों से भरा रहता है।...

"मुझे तो ऐसी बुरी बात से वहुत नफरत होती है।...

"मेरी दृष्टि में हिंसा केवल दूसरों पर प्रत्यक्ष हमला करने और उन्हें मार डालने में ही नहीं है, बल्कि बुरी वात मुंह से निकालना भी हिंसा के अन्तर्गत आता है। अगर यह ठीक है तो मेरी समझ में नही आता कि आप खुद जो इस सरकार को शैतानी, राक्षसी और बर्बर की उपाधियां देते हैं, उसका समर्थन कैसे किया जा

सकता है। इस बात में रत्तीभर भी शक नहीं है कि इन शब्दों का समावेश हिंसा में होता है, परन्तु इस बात का स्वप्न में भी खयाल नहीं किया जा सकता कि आप अहिंसा के परम-प्रचारक होकर भी हिंसापूर्ण शब्दों का प्रयोग करेंगे।

"यह तो गाली-गलौज की बात हुई। अब मैं एक दूसरे सवाल को लेता हूं। आप हमेशा कहते हैं कि मैं और मेरे साथी लोग तो अंग्रेजी सरकार के खिलाफ लड़ने के लिए खड़े हुए हैं, अंग्रेजों के खिलाफ नहीं। आप इस शासन-प्रणाली के तो विरोधी हैं और इसे सुधारना या मिटाना चाहते हैं परन्तु खुद अंग्रेजों के प्रति आपके दिल में किसी तरह का बुरा खयाल नहीं है। अतः इससे यह साफ ही है कि यद्यपि आप इस शासन-पद्धति को तो मटियामेट कर देना चाहते हैं परन्तु अंग्रेजों को निकालना नहीं चाहते। अगर यह बात ठीक है तो यह ऊंचा सिद्धान्त अभी उन लोगों के हृदय में भी पूरी तरह अंकित नहीं हुआ है जो आपके सच्चे अनुयायी होने का दम भरते हैं। मैं इसकी एक मिसाल देता हूं। आगरा में अभी हाल में राजनीतिक परिषद हुई थी। उसमें पं० जवाहरलाल नेहरू का भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने विदेशी कपड़ों के बहिष्कार पर बोलते हुए कहा : "मैं उन लोगों में हूं जो सच्चे दिल से अंग्रजों को भारत से निकालना चाहते हैं और अगर मुझे इसका कोई उपाय हाथ लगा है तो वह है स्वदेशी।" यह बात अखबारों में भी प्रकाशित हो चुकी है और मैं समझता हूं, शायद आपने भी पढ़ी होगी। ऐसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने आपके उस सिद्धान्त का मर्म समझ लिया है जिसके द्वारा हम मनुष्य और उसके कार्य में भेद कर सकते हैं ताकि हम उसके कार्य की तो निन्दा कर सकें, परन्तु स्वयं उसके प्रति हमारे मन में किसी तरह की दुर्भावना न आये? इस मामले में तो मैं जोर देकर यह कह सकता हूं कि नेहरू जी की बात किसी तरह भी वाजिब नहीं कही जा सकती, तथापि मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या आप उसे पसन्द करते हैं या नापसन्द ?"[1]

अगर असहयोगी लोग गालियों का व्यवहार करते हैं तो वे निःसन्देह हिंसा करते हैं और अहिंसा के व्रत का भंग करते हैं। लेकिन मैं इस बात को नहीं मान सकता कि हर एक भाषण में महज बदजबानी और बददुआएं ही भरी रहती हैं। मैं लेखक महोदय को यकीन दिलाता हूं कि भाषणों में क्या सरकार की और क्या खुद हमारी दोनो की ही निन्दा होती है और उनमें निन्दा की अपेक्षा अहिंसा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वदेशी-समर्थक दलीलें ही अधिक रहती हैं। और इन तीनों

---

१. जवाहरलाल नेहरू के उत्तर के लिए देखिए परिशिष्ट में 'पण्डित नेहरू का जवाब।'

बातों का लोगों की ओर से जो इतना आश्चर्यजनक उत्तर मिलता है, वह मेरे इस कथन का शायद सबसे बडा सबूत है। फिर लोगो ने इतनी प्रगति बिना प्रभावपूर्ण आग्रह के ही नही की है।

लेकिन आखिर गाली किसे कहते है? अंग्रेजी के कोश में गाली के पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द का अर्थ है—अनुचित प्रयोग, कुप्रयोग, बुरा प्रयोग। अतः अगर हम चोर को चोर अथवा बदमाश को बदमाश कहते है तो इससे हम उसे गाली नही देते। हम कोढी को कोढ़ी कहते है तो वह इसका बुरा नही मानता। हां, यह जरूर है कि ऐसे विशेपणो का प्रयोग उसी नीयत से किया जाना चाहिए और उनके प्रयोगकर्त्ता के पास उसकी यथार्थता का प्रमाण होना चाहिए। इस दशा में मै हर जगह और हर मौके पर किये गये इन विशेपणों के प्रयोग को निन्दनीय नही मान सकता। मै यह भी नही मानता कि इन निन्दाकारी शब्दों का प्रयोग करना सदा हिंसा का लक्षण ही होता है। मै यह बात अच्छी तरह से जानता हूं कि उचित विशेपणों का प्रयोग भी हिंसा का लक्षण हो सकता है। परन्तु कब? तभी जब उनका उपयोग उस व्यक्ति के प्रति, जिसकी निन्दा की गई है हिंसा को उत्तेजना देने के लिए किया गया हो। जब किसी मनुष्य की निन्दा इसलिए की जाती है कि वह अपनी बुरी आदत को छोड़ दे या श्रोता उसका साथ छोड़ दे तो ऐसी निन्दा बिल्कुल जायज होती है। हिन्दू शास्त्र तो दुराचारियो की भर्त्सना से भरे पड़े हैं। उन्होने तो उन्हे कोसा तक है; शाप तक दिये है। तुलसीदास तो मूर्तिमान दया के अवतार थे। उन्होने अपनी रामायण में भगवान राम के द्रोहियों के लिए ढूंढकर बुरे विशेपण प्रयुक्त किये है। असल मे उन पापाचारियों के जो नाम चुने गये है वे भी उनके गुणो के ही सूचक है। ईसामसीह उन लोगो पर दैवी कोप अवतरित करने मे नही हिचके जिनको वे दुष्टों, धूर्तो और पाखण्डियो की औलाद कहते थे। बुद्ध ने इन लोगो को नही छोड़ा जो धर्म के नाम पर निरपराध बकरो की बलि देते थे। कुरान और जेद अवेस्ता भी ऐसे प्रयोगो से बची हुई नही है। हां, उनका प्रयोग करने मे उन सब ऋपियो और पैगम्बरो की कोई बुरी नीयत नही थी। उन्हें तो लोगों और चीजों का यथार्थ वर्णन करना था और उन्हे इसके लिए ऐसी भाषा का सहारा लेना पड़ा जिससे हम लोग अच्छे और बुरे की पहिचान कर सके। हां, इस बात मे मैं लेखक से सहमत हू कि हम सरकार अथवा शासको के बारे में जितना कम कहे हमारे लिए उतना ही अच्छा है। पहले ही हममे इतने विकार और दोप भरे हुए है कि हमारे लिए दिल दुखानेवाली बातों का प्रयोग करना अनुचित है। हम इस सरकार का जो अच्छे-से-अच्छा उपयोग कर सकते है वह यह है कि हम इसके अस्तित्व की उपेक्षा करे और इसका सम्पर्क भ्रष्टकारी और

पतनकारी है, यह विश्वास करते हुए जहां तक हो सके इसे अपने जीवन से अलग रक्खें।

मै बार-बार यह वात कहता जा रहा हूं कि इस आन्दोलन का उद्देश्य अंग्रेजों को निकालना नही है बल्कि उस शासन-प्रणाली को सुधारना या मिटा देना है जो उन्होंने हम पर जबरदस्ती लाद रखी है। मैने पण्डित जलवाहरलाल नेहरू का वह भाषण नही पढ़ा है जिसका जिक्र पत्र-प्रेषक महोदय ने किया है। लेकिन मै उन्हें अच्छी तरह जानता हूं कि मुझे यह विश्वास नही हो सकता है कि उन्होंने वह बात कही होगी जिसका दोष उन पर लगाया गया है। मै जानता हूं कि वह मनमौजीपन के खातिर ही उनका चला जाना नही चाहते बल्कि वह उन अंग्रेज सज्जनों को सबसे पहले हार्दिक मित्र की तरह गले लगायेंगे जो भारत के प्रेमी है और जो उसके सेवक बन कर यहां रहना चाहते हैं। इतना ही नही हम यह भी खयाल नही करते कि स्वतन्त्र भारत में भी जो अंग्रेज हमारी आशाओं की भावी राजसत्ता द्वारा तय हुई शर्तो के अनुसार रहना चाहेगे उन्हें यहां नही रहने दिया जायगा।

१८. स्वतन्त्रता की पुकार

मौलाना हसरत मोहानी[1] ने कांग्रेस के मंच से तथा मुस्लिम लीग के सभापति की हैसियत से बड़ी हिम्मत के साथ आजादी के लिए लड़ाई ठानी।[2] लेकिन दोनों बार उन्होंने बड़े मजे से मुंह की खाई। मौलाना साहब क्या चाहते थे, इसके विषय में किसी को गलत खयाल नही हो सकता। बराबर की और हिस्सेदार की हैसियत से भी तथा खिलाफत का निपटारा अच्छी तरह हो जाने पर भी वह अंग्रेज लोगों के साथ किसी किस्म का ताल्लुक नही रखना चाहते। यह कहना ठीक नही होगा कि पूर्ण आजादी के बिना खिलाफत के मसले का निपटारा कभी हो ही नही सकता। हम यहां सिद्धान्त की चर्चा कर रहे है। इस बात पर तो सभी एक मत है कि यदि पूर्ण आजादी के बिना खिलाफत का सवाल हल नही हो सकता अर्थात् यदि अंग्रेज लोग मुसल्मानी दुनिया की उच्च आकांक्षाओं के प्रति विरोध-

---

१. कानपुर के प्रसिद्ध उर्दू कवि तथा स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी।

२. दिसम्बर १९२१ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अहमदाबाद में हुए अधिवेशनों में पूर्ण स्वतन्त्रता का लक्ष्य स्वीकार कराने के लिए।

भाव ही रखते रहें तो हमारे लिए पूर्ण स्वतन्त्रता का आग्रह करने के सिवाय दूसरा उपाय ही नही है। यदि ब्रिटेन को मुसलमानों के साथ दोस्ती का वर्ताव करने के लिए राजी नही किया जा सकता तो भारत ब्रिटेन को अपनी नैतिक सहायता भी नही दे सकता और खुद उसे भी ब्रिटेन की नैतिक और भौतिक सहायता के विना अपना काम चलाना होगा।

परन्तु फर्ज कीजिए कि ब्रिटेन अपना रुख वदल दे—जैसा कि मैं जानता हूं, हिन्दुस्तान को वलवान पाकर वह वदलेगा—तव भी पूरी आजादी के लिए जोर देते रहना धार्मिक दृष्टि से अनुचित होगा। क्योंकि वह हमारी प्रतिहिंसा और झल्लाहट का सूचक होगा। ऐसा करना खुदा को न मानना होगा, क्योंकि उस अवस्था में उनसे किनाराकशी करने का आधार इस धारणा पर होगा, कि अंग्रेज लोग मनुष्य के देव-भाव को पहचानते और उसे अपनाने की क्षमता नही रखते। ऐसी स्थिति को न तो श्रद्धावान हिन्दू और न श्रद्धावान मुसलमान ही कवूल कर सकता है।

भारत का सबसे वड़ा गौरव इस वात में नही है कि वह अंग्रेज भाइयों को अपने खून का प्याला दुश्मन माने, जिन्हे मौका मिलते ही हमें हिन्दुस्तान से निकाल वाहर करना है। वल्कि इस वात में है कि उस साम्राज्य की जगह जिसकी भित्ति पृथिवी के कमजोर और अनुन्नत राष्ट्रों तथा जातियों की आर्थिक लूट पर और इसलिए आखिरकार पशुवल पर आधारित है एक ऐसे राष्ट्रमण्डल का निर्माण करने में है जिसमें वे और हम मित्र और हिस्सेदार की हैसियत से रहें।

जरा हम इस वात पर विचार करे, कि ऐसे स्वराज्य का, जिसमे अंग्रेजो के साथ सम्बन्ध रहे, अर्थ क्या है? इसका निःसन्देह यही अर्थ है कि भारत यदि चाहे तो स्वतन्त्रता को घोषणा कर सके। अतएव स्वराज्य कोई ब्रिटिश पार्लियामेण्ट मिलने वाला मुफ्त का दान नहीं होगा। वह भारत की पूर्ण आत्माभिव्यक्ति की घोषणा ही होगी। हां, यह सच है कि वह पार्लियामेण्ट के एक कानून द्वारा ही घोषित किया जायगा लेकिन वह तो भारतीय प्रजा के प्रकाशित मत की शिष्ट स्वीकृति मात्र होगी। दक्षिण अफ्रीका की यूनियन के विषय मे भी ऐसा ही हुआ था। हाउस आफ कामन्स द्वारा यूनियन की योजना का एक अक्षर इधर से उधर न हो सका। हमारे मत की स्वीकृति तो सन्धि के रूप में होगी और ब्रिटेन सन्धि में सम्मिलित दो पक्षों मे से एक होगा।

एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र को वतौर दान के स्वराज्य नही दे सकता। यह तो ऐसी निधि है जो देश के अच्छे-अच्छे पुरुषो के रक्त से ही खरीदी जा सकती है। और जव हम उसकी वहुत वड़ी कीमत दे चूकें तव वह हमारे लिए दान-रूप न

रहेगी। वाइसराय ने यह कहा है कि स्वराज्य यदि तलवार-द्वारा नही मिला तो पार्लियामेण्ट के द्वारा ही मिल सकता है। यहां वह गड़बडा गये हैं। ऐसा कहकर श्रोताओं को यह अनुभव करने का मौका देना कि इंग्लैंड में कष्ट-सहन के नैतिक दवाव को मानने की क्षमता नहों है, उन्होंने अपने देश की बड़ाई नही की है और यदि उन्होने उपस्थित जनों को यह समझाना चाहा हो कि ब्रिटिशपार्लियामेण्ट तो अव उसकी इच्छा होगी तभी स्वराज्य देगी, उसे हिन्दुस्तान की उच्चाकाक्षा और अभिलाषा से कोई गरज नही, तो उन्होंने श्रोताओं की वुद्धिमत्ता का अपमान किया है। सच वात तो यह है कि स्वराज्य लगातार परिश्रम और कल्पनातीत कष्ट सहन के वल पर ही प्राप्त होगा।

परन्तु वाइसराय को यह पता नही है कि तलवार की स्थान-पूर्ति के लिए कोई दूसरा साधन भी है और इसीलिए शायद वह यह खयाल करते है कि धारा-सभाओं में अपनी वाद-विवाद-कुशलता का प्रयोग करते-करते किसी-न-किसी दिन हम ब्रिटिश पालियामेण्ट को यहां तक प्रभावित कर सकेंगे कि भारत को स्वराज्य प्रदान करना कितना वाञ्छनीय है। लेकिन उन्हें जल्द ही मालूम हो जायगा कि तलवार की स्थान-पूर्ति का एक उससे भी वढ़िया और अक्सीर साधन है और वह है—सविनय अवज्ञा। अव वह दिन पर दिन अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है कि कानून की सविनय अवज्ञा से कष्ट-सहन का वह मार्ग तैयार होगा जिससे होकर भारत को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के पहले अवश्य गुजरना होगा।

हमने अभी अपनी पूरी शक्ति प्रकट नही की है। मुसलमानों और हिन्दुओं में अव भी अविश्वास कायम है। अछूत लोगों को अभी हिन्दुओं के स्पर्श की आव नही पहुँची है। भारत के पारसी और ईसाइयो को अभी यह निश्चय नही है कि स्वराज्य मिलने पर उनका भविष्य क्या होगा। अभी हम अपने ही वनाये कानून-कायदों की पावन्दी करना नही सीख पाये है और न उसकी जरूरत ही महसूस करते है। चर्खा अभी हमारे घरों में स्थायी रूप से स्थान नहीं पा सका है। खादी अभी तक राष्ट्रीय पोशाक नही हो पाई है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि अभी हम आत्मरक्षा की कला और उसकी शर्ते नही समझ पाये है।

अभी तक भारत में एक ऐसा जन-समाज मौजूद है जिसकी संख्या तो कम हो रही है पर उसको उपेक्षा नही की जा सकती, जो यह मानता है कि हिंसा के ही द्वारा स्वराज्य प्राप्त हो सकता है और इसलिए कहता है कि अहिसा के साथ-साथ हिसा को भी जारी रहने देना चाहिए अर्थात् हमारी यह अहिंसा या शान्ति, हिसा की पूर्वपीठिका और तैयारी समझी जानी चाहिए। जो लोग इन विचारों के कायल है वे शायद यह न मानते हों कि ऐसा करना सारे संसार को धोखा देना

है। हमारी प्रतिज्ञा तो हमसे यह अपेक्षा करती है कि जबतक हम उससे बंधे हुए है तबतक हम इस बात पर विश्वास करें कि अहिसा ही सबसे शीघ्र स्वराज्य प्राप्त कराने का साधन है। ज्योही हमें यह विश्वास हो जाय कि स्वराज्य तो अहिंसा के द्वारा नही प्राप्त हो सकता या केवल हिंसा से ही प्राप्त हो सकता है त्योंही हमे अपनी प्रतिज्ञा रद्द कर देनी चाहिए—ऐसा करने के लिए हम बाध्य है। जबतक हमने अहिसा की प्रतिज्ञा ले रखी है तबतक वह हमारे लिए धर्म है। अभी अहिसा का परीक्षण चल रहा है इसलिए वह कार्योपयोगी भी है। परन्तु जबतक हम अपनी प्रतिज्ञा से बंधे है तबतक हम केवल अपने ही लिए अहिंसा को मानने और उसका पालन करने के लिए बाध्य नही हैं, बल्कि हम दूसरो को अहिंसा के पालन के लिए तैयार करने और हिसा का निषेध करने के लिए भी उतने ही बाध्य है। मुझे तो अब और भी अधिक विश्वास हो गया है कि हम अभी अपने लक्ष्य तक नही पहुंच पाये है। इसका कारण यह है कि खुद हम सब लोगों ने ही, जिन्होने कि काग्रेस के सिद्धान्तो को स्वीकार किया है, हमेशा न तो वचन और कर्म के द्वारा शान्ति का पालन किया है और न विचारों और इरादों में शान्ति धारण करने का प्रयत्न किया है।

—अंग्रेजी। यं० इं०, ५।१।१९२२।]

- एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र को बतौर दान के स्वराज्य नहीं दे सकता। यह तो ऐसी निधि है जो देश के अच्छे-से-अच्छे पुरुषों के रक्त से ही खरीदी जा सकती है।
- सच बात तो यह है कि स्वराज्य लगातार परिश्रम और कल्पनातीत कष्ट-सहन के बल पर ही प्राप्त होगा।

१९. श्री महादेव का पत्र

नीचे मै श्री महादेव देसाई का पत्र[1] सम्बोधन और हस्ताक्षर छोड़ कर अक्षरशः दे रहा हूं। मै इसे जेल के नियमों के विरुद्ध भेजा हुआ मानता हूं। मैने दक्षिण अफ़्रीका में ऐसे पत्रो का उपयोग करने से भी इन्कार कर दिया था। किन्तु यहा मैं देखता हूं

---

१. यह पत्र यहां नहीं दिया गया है। इसमें राजनीतिक कैदियों से दुर्व्यवहार किये जाने और दो स्वयंसेवकों, कैलाशनाथ और लक्ष्मीनारायण को बेत लगाये जाने की बात कही गई थी।

कि महादेव देसाई ने जो निर्दोष नियम-भंग किया है वह क्षम्य माना जाना चाहिए। जेल मे जो डायरशाही चल रही है उसको समय पर प्रकट करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस नियम-भंग के फलस्वरूप कोई कष्ट भोगना पड़ेगा तो महादेव को ही भोगना पड़ेगा। यदि उन्हें भी लक्ष्मीनारायण की तरह वेंत लगे और उनकी रीढ में घाव हो जाय तो भी कोई परवाह नहीं। ऐसा जोखिम उठाकर भी महादेव के लिए पत्र लिखना जरूरी था। यदि सरकार कैदियों को कुछ भी छूट देना चाहती हो तो उसे उसका ऐसा सदुपयोग अवश्य होने देना चाहिए जैसा कि महादेव ने यह पत्र लिखने मे किया है। इस पत्र में जो बातें लिखी गई है उनके सम्बन्ध में इस समय मैं अधिक लिखना नही चाहता। मै तो भारत की धीरता और शान्ति को देखकर आनन्द और आश्चर्य के समुद्र में डूबा जा रहा हूं। अवश्य ही मुझे इतनी आत्म-शुद्धि की आशा नहीं थी। कैदियो ने जो जयघोष किया, वह उनकी उद्धतता नहीं है। बल्कि वह तो उनका अधिकार है, ऐसी उनकी मान्यता थी। और जब महादेव ने लक्ष्मीनाराण का ध्यान इस भूल की ओर खीचा तव उन्होंने कितनी सरलता से तत्क्षण अपनी भूल स्वीकार करली। अवश्य ही इस लड़ाई में ईश्वर का हाथ है।

—गुजराती। न० जी०, १५।१।१९२२।]

२०. मौलाना मुहम्मद अली और उनके आलोचक

मौलाना साहब के दो पत्र[1] यहां दिये जा रहे है। पहला पत्र स्वामी श्री श्री श्रद्धानन्द जी के नाम और दूसरा 'तेज' के सम्पादक के नाम है। इन पत्रों का अग्रलेख में उल्लेख है।[2]

—अंग्रेजी। यं० इं०, १०।४।१९२४।]

२१. मौलाना मुहम्मद अली पर इलजाम

एक सज्जन लिखते है, गुजराती समाचारपत्रों में इस आशय की खबर छपी

---

१. पत्रों के लिए देखिए परिशिष्ट।

२. 'असत्य कथन का आन्दोलन' शीर्षक अग्रलेख।

है कि मौलाना मुहम्मद अली ने अपने एक भाषण में कहा है कि गांधीजी महा-अधम मुसलमान से भी नीचे है। यह सज्जन अपने पत्र मे आगे लिखते है —'मैं मानता हूं कि मौलाना साहब ऐसा कभी नही कह सकते। तथापि 'नवजीवन' मे यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि बात दरअसल क्या है, जिससे गलतफहमी दूर हो जाय।' मुझे बड़े अफसोस के साथ लिखना पड़ता है कि केवल गुजराती के ही नही बल्कि अंग्रेजी के अखबारों में भी यह खबर प्रकाशित हुई है और उसके विषय मे चर्चा भी खूब हुई है।

भगवान जाने हुआ क्या है, परन्तु हिन्दुओं और मुसलमानों में आजकल गलतफहमी की हवा चल रही है और एक दूसरे के प्रति अविश्वास फैल गया है। मै जानता हूं कि इसके कुछ कारण है। मुझे यहां उनकी चर्चा करने की जरूरत नही मालूम होती। उत्तर भारत के हिन्दी और उर्दू के अखबारों ने तो हद ही कर दी है। डा० अन्सारी ने लिखा है कि ऐसा मालूम होता है मानों इन अखबारों ने एक-दूसरे पर इलजाम लगाना, झूठी अफवाहे फैलाना, एक-दूसरे के मजहब की निन्दा करना और इस प्रकार एक दूसरे को बदनाम करना ही अपना कर्त्तव्य मान लिया है। जान पड़ता है कि यह उनके रोजगार को बढ़ाने का साधन बन गया है। इस छूत की बीमारी को किस तरह रोके, यह एक विकट समस्या हो गई है। मेरी समझ मे इसको हल करना कौंसिल-प्रवेश की बनिस्बत ज्यादा जरूरी है। मुझे निश्चय है कि राज्य-तन्त्र-सचालन की हमारी क्षमता इस प्रश्न को हल करने मे ही है। यदि हम देश के सम्मुख उपस्थित कुछ प्रश्नों को हल कर सकें तो आज ही स्वराज्य हमारे हाथो में आया रखा है। जबतक हम इन गुत्थियों को न सुलझा सके तबतक स्वराज्य असम्भव है। कौंसिले इन उलझनो को दूर करने में असमर्थ है।

परन्तु मै इस लेख मे कठिनाइयों की छानबीन नही करना चाहता। यहां तो मैं मौलाना साहब पर किये गये आरोपों की ही जॉच करना चाहता हूं।

मौलाना साहब से उनके पहले भाषण पर लखनऊ की एक सभा में एक सवाल पूछा गया। उन्होने उसका जवाब यह दिया—"महात्मा गाधी के धर्म-सिद्धान्त की बनिस्बत एक व्यभिचारी मुसलमान के धर्म-सिद्धान्त को मैं ज्यादा अच्छा मानता हूं।" इसमे मौलाना साहब ने महात्मा गांधी और व्यभिचारी मुसलमान की तुलना नही की, बल्कि दोनो के धार्मिक मत की ही तुलना की है। अब जरा यह देखे कि यह तुलना उन्हे क्यो करनी पड़ी। मुसलमानो ने मौलाना साहब पर ऐसा इलजाम लगाया कि मौलाना तो गांधीपरस्त अर्थात् गाधी-पूजक हो गये है। गांधी-परस्त होना यानी गांधी को मूर्ति मान लेना।—यह मान लेना कि दुनिया

में उसके सिवा दूसरा कोई नहीं। ऐसा करना मानों गांधी का धर्म कबूल कर लेना है। तो मौलाना साहव पर यह इलजाम था। कितने ही मुसलमानों के इस इलजाम का जवाव मौलाना ने पूर्वोक्त वाक्यों में दे दिया है। इसका अर्थ क्या यह हुआ कि मुसलमानों को सन्तुष्ट करते हुए उन्होंने हिन्दुओं का दिल दुखाया। यदि मौलाना ने पूर्वोक्त बात किसी दूसरी जगह कही होती तो उनकी बिल्कुल टीका न हुई होती। हिन्दू अखवारों ने उनके भाषण का विकृत विवरण छापा। उन्होने लिखा है कि मौलाना व्यभिचारी मुसलमानों को महात्मा गांधी से अच्छा समझते है। यहां हमने देखा है कि मौलाना ने ऐसी कोई बात नही कही। इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने तो स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम भेजे अपने पत्र में महात्मा गाधी को सारे संसार में सर्वोत्तम मनुष्य माना है। परन्तु हां, उन्होंने महात्मा के धर्म-सिद्धान्त को व्यभिचारी मुसलमान के धर्म-सिद्धान्त से भिन्न माना है। इसमें विरोध जरा भी नही, सिद्धान्त और सिद्धान्ती में तो लगभग सारा संसार भेद मानता है।

मेरे कितने ही ईसाई मित्र मुझे वहुत अच्छा आदमी मानते है। फिर भी वे अपने धर्म को मेरे धर्म से श्रेष्ठ मानते है, इसलिए हमेशा ईश्वर से प्रार्थना करते है कि मैं ईसाई हो जाऊं। दक्षिण अफ्रीका का एक ऐसे मित्र का पत्र मुझे दो-तीन सप्ताह पहले मिला है जिसमें कि उन्होने लिखा है—

"आपकी रिहाई का समाचार जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई। आपके लिए मैं ईश्वर से प्रर्थना करता हूं कि वह आपको सुबुद्धि दे जिससे आप ईसा-मसीह को और मुक्ति देने की उनकी शक्ति को मानने लगे। यदि आप यह कर सकें तो आपके काम तुरन्त फलीभूत हो जायँ।"

इस तरह अनेक ईसाई मित्र चाहते है कि मै ईसाई हो जाऊं।

अच्छा, अधिकांश हिन्दू भी क्या करते है? क्या वे अच्छे-से-अच्छे ईसाई या मुसलमान के धर्म-सिद्धान्त से अपने धर्म-सिद्धान्त को अच्छा नही मानते? यदि वे ऐसा न मानते हो तो क्या वे अपनी पुत्री का विवाह एक अच्छे-से-अच्छे मुसलमान या ईसाई से करेगे? इतना ही नही वे हिन्दुओं मे भी किसी अच्छे-से-अच्छे पुरुष से नही बल्कि अपने सम्प्रदाय या जाति के ही किसी पुरुष के साथ यह सम्बन्ध करेंगे। इससे क्या प्रकट होता है? यही कि वे स्वधर्म को परधर्म से अच्छा मानते है।

मेरी नाकिस राय में मौलाना ने अपनी राय जाहिर करके अपने दिल की सफाई और अपनी धर्म-श्रद्धा को सिद्ध किया है। मेरी तो उन्होंने दूनी इज्जत की है। एक तो मित्र के रूप में और दूसरे मनुष्य के रूप मे। उन्होने मित्र के रूप में मेरी इज्जत इस तरह की है कि उन्होंने यह माना है कि वह मेरे सम्वन्ध में जो

चाहे कहें, मै उसमे अपना अपमान न मानूंगा और मैं उनके भाव को गलत न समझूंगा। उन्होने मनुष्य के रूप मे मेरी इज्जत इस तरह की है कि हम दोनों के धर्म भिन्न होते हुए और अपने धर्म को मेरे धर्म से श्रेष्ठ मानते हुए भी वह मुझे सर्वोत्कृष्ट मनुष्य मानते है। इसमे कितनी श्रद्धा है? यदि संसार मुझे अच्छा मानता है तो उसके इस वहम को मै समझ सकता हूं। परन्तु मेरे निकट रहनेवाले मेरे मित्र, मेरी अनेक कमजोरियो को देखते हुए भी मुझे सर्वोत्तम माने, यह कितनी अजीव वात है?

किसी भी मनुष्य को सर्वोत्कृष्ट मानना, मुझे तो वडा खतरनाक मालूम होता है। उसके दिल को ईश्वर के सिवा कौन जान सकता है? उस मनुष्य की वनिस्वत, जिसके दिल की गन्दगी प्रकट होती रहती है, वह मनुष्य अधिक मलिन होना चाहिए जो अपनी गन्दगी छिपी रख सकता है। पहले मनुष्य को तो मुक्ति मिलने की सम्भावना है, क्योंकि उसकी गन्दगी प्रकट हो गई अर्थात उसके निकलने का रास्ता खुल गया, परन्तु दूसरा मनुष्य तो अपनी गन्दगी अपने दिल के डिब्बे में वन्द करके उसपर मुहर लगाकर रखता है, उसकी गन्दगी अन्दर ही अन्दर पड़ी रहेगी। और उसे जहरीले जन्तु की तरह नोच-नोच कर खायेगी। उसका छुट-कारा इस जन्म में असम्भव है। इसी से शास्त्रों ने सत्य को सर्वोपरि माना है; इसी से शास्त्रों ने पाप को छिपाने का निपेध किया है। यदि हम किसी मनुष्य को सर्वोपरि मान सकते हो तो इसका निश्चय उसकी मृत्यु के वाद ही किया जा सकता सकता है।

मैं खुद तो अपना विश्वास नही कर सकता। मुझे दूसरे को विश्वास करना वहुत आसान मालूम होता है। यदि ऐसा करते हुए मुझे धोखा हो तो इससे मेरी कुछ आर्थिक हानि हो सकती है और दुनिया मुझे भोला-भाला कह सकती है, परन्तु यदि मैं अपना विश्वास करके गाफिल रहूं तो मेरा नाश ही हो जाये। पाठको, इस मौके पर आपसे यह भी कह देता हूं कि एक वार तो मै अपना विश्वास करके डूवते-डूवते ईश्वर-कृपा से ही वचा हूं। दूसरी वार मुझे मेरे एक व्यभिचारी मित्र ने वचाया। वह खुद तो वचने की हालत में नही थे परन्तु मुझे निर्मल समझते थे। अत' यह समझकर कि इसे तो इस पाप मे हर्गिज न पड़ना चाहिए उन्होंने मुझे मोह-निद्रा से जागृत कर दिया। हम दूसरे की चौकीदारी करने या दूसरे का काजी वनने की वनिस्वत खुद अपनी चौकीदारी करे तो खुद अपनी रक्षा कर लें और संसार को अपने अन्याय से वचाले। इसी से स्वराज्य की सच्ची व्याख्या यह है, "स्वराज्य उस राज्य को कहते है जो खुद अपने पर किया जाता है।" जिसने इसे प्राप्त कर लिय। उसने सव कुछ प्राप्त कर लिया। "आप भला तो जग भला" इस कहावत में वहुत-कुछ अर्थ समाया हुआ है।

प्रस्तुत विषय को छोड़कर मैं गूढ़ चर्चा में नहीं चला गया हूं। बल्कि यह बात इसी विषय से सम्बन्ध रखती है। मित्र लोग जब मुझे सर्वोत्कृष्ट मानते हैं, तब मैं कांप जाता हूं। यदि मैं खुद ऐसा मानने लगूं तो मेरा पतन हुए बिना न रहे, क्योंकि मुझे तो अभी बहुत ऊंचा उठना बाकी है। मेरी आकांक्षा की सीमा नहीं है। मुझे अभी असंख्य शत्रुओं को जीतना है। ज्यों-ज्यों मैं गहराई से विचार करता हूं त्यों-त्यों मुझे अपनी खामियां दिखती जाती है। जब यह देखता हूं तब मेरे मन में विचार उठता है कि सचमुच सर्वोत्कृष्ट मनष्य कैसा होगा ? यह विचार करते हुए मेरे मन में मोक्ष की और उसके द्वारा मिलनेवाले आत्यन्तिक आनन्द की कुछ कल्पना होती है। उस समय मुझे इस बात की झलक दिखाई देती है कि ईश-तत्व क्या हो सकता है ?

अब पाठक शायद यह समझ सकें कि मौलाना साहब ने मुझे सर्वोत्कृष्ट मान कर मेरी कितनी इज्जत की है। उनके इस कथन का अर्थ क्या है, यह बात पाठकों को उनका पत्र पढ़ने पर अधिक अच्छी तरह मालूम होगी। उसका तरजुमा मै इसी अंक में देता हूं।[1]

स्वामीजी ने मौलाना के इस पत्र का स्वागत किया और उनके दिल की सफाई पर उन्हें धन्यवाद दिया है। उन्होंने मौलाना को हिन्दुओं का मित्र माना है और जिन लोगो ने मौलाना पर इलजाम लगाया था और इस प्रकार प्रस्ताव की सूचना दी थी कि उन्हें कांग्रेस से इस्तीफा दे देना चाहिए उनसे अपनी सूचना वापस लेने का अनुरोध किया है। परन्तु साथ ही उन्होने यह भी बताया कि उनके धर्म के अनुसार तो अकेले सिद्धान्त की कोई कीमत नही है। मनुष्य के शील और आचार से ही उसकी कीमत आंकी जाती है। इसका जवाब देकर मौलाना ने स्वामीजी के पत्र की शंका भी दूर कर दी है। मौलाना यह बात नही मानते कि सिद्धान्ती को अपने सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने की जरूरत नही। उन्होंने तो सिर्फ दो सिद्धान्त-सरणियों की तुलना की थी और बताया था कि दोनो में ऊंचा कौन है। सिद्धान्त बहुत अच्छे हों किन्तु यदि जाननेवाला उनके अनुसार न चले तो उसे कुछ फल नही मिलता—यह बात उन्होंने अपने दूसरे पत्र में प्रकट की है।[2]

इसलिए मौलाना मुहम्मद अली के कथन का तात्पर्य सिर्फ इतना निकलता है कि सबको अपना-अपना धर्म अच्छा मालूम होता है। इस बात का विरोध

---

१. देखिए परिशिष्ट भाग।

२. देखिए परिशिष्ट भाग।

कौन हिन्दू कर सकता है? यह राई का पर्वत किस प्रकार हुआ और इसके न होने देने का उपाय क्या है, इस पर विचार फिर कभी करेंगे।

—गुजराती। न० जी०, १३।४।१९२४।]

२२. मौ० शौकत अली की बीमारी

पाठको को यह जानकर दुःख होगा कि मो० शौकतअली जो कुछ समय से बीमार है और जिनका इलाज डा० अन्सारी के यहां उन्होंके निवासस्थान पर हो रहा है, आशा के अनुरूप प्रगति नही कर रहे हैं। मौ० मुहम्मद अली और डा० अन्सारी दोनो के पत्र मुझे हाल ही मिले हैं। वे लिखते है कि रोगी को वड़ी कमजोरी महसूस हो रही है और उनकी सेवा-सुश्रूपा में वहुत साववानी की जरूरत है। पाठकों से मेरा अनुरोव है कि वे मेरे साथ ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि हमारा यह विख्यात देशभाई शीघ्र पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाय।

—अंग्रेजी। यं० इं०, १७।४।१९२४।]

२३. आचार बनाम विचार

मौलाना मुहम्मद अली के इस्लाम-विपयक भाषण की चर्चा अभी समाचार-पत्रों में चल ही रही है। मैं देखता हूं कि आचार और विचार में उन्होंने जो भेद किया है उसे कितने ही समझदार और विवेकवान सज्जन भी नहीं समझ पाये है और यदि समझे है तो उस विषय में और लिखते समय उसे भूल जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि उनके दिल में उस भेद का ज्ञान गहरा नहीं पैठा है। अतएव मौलाना साहव के वताये भेद को वार-वार समझना जरूरी है। वह मानते है कि—

(१) मनुष्य के आचार और विचार में भेद होता है।

(२) श्रेष्ठ विचार वाले का आचार वुरा हो सकता है।

(३) श्रेष्ठ आचारवालों के विचार दूसरों के विचारों के मुकावले हीन हो सकते हैं।

यहा विचार का अर्थ है विश्वास, धर्म-मत, धर्म—जैसे ईसाई मत में ईसामसीह का अप्रतिम ईश्वरत्व, इस्लाम का यह विश्वास कि ईश्वर एक है और मुहम्मद

साहब उसके पैगम्बर हैं। हिन्दू धर्म में (मेरे विचार के अनुसार) सत्य और अहिंसा की श्रेष्ठता मानी गई है।

"सत्यानास्ति परो धर्मः।" "अहिंसा परमो धर्मः"

पूर्वोक्त सिद्धान्तों के अनुसार मौलाना साहब ने कहा था :—

"मुसलमान की हैसियत से मैं मानता हूं कि श्रेष्ठ आचारवाले गांधी के विचार (धार्मिक विश्वास) की अपेक्षा व्यभिचारी मुसलमान का धर्म-विचार (धार्मिक विश्वास) ज्यादा अच्छा है।"

पाठक देखेंगे कि इसमें मौलाना ने मेरी और व्यभिचारी मुसलमान की तुलना नहीं की है। उन्होंने तो मेरे और उस मुसलमान भाई के धार्मिक विश्वास की तुलना की है। इसके सिवा मौलाना साहब अपनी उदारता और मेरे प्रति अपने स्नेह के कारण ऐसा कहते है कि यदि मनुष्य की मनुष्य से तुलना करनी हो तो गांधी जी गुण में अर्थात् आचार में उनकी पूजनीय माताजी और पूज्य गुरुजी से भी बढ़ जाते है।

इसमे न तो मेरा अपमान है और न हिन्दू धर्म का। सच तो यह है कि सारा संसार पूर्वोक्त तीन सिद्धान्तों को मानता है। फर्ज कीजिए यूरोप का कोई सर्वश्रेष्ठ साधु यह मानता है कि मनुष्य के शरीर की रक्षा के लिए जीवित पशुओं और पक्षियों को तरह-तरह के कष्ट देकर उनपर प्रयोग करने अथवा उन्हें मार डालने में किसी तरह की बुराई नही है, यही नहीं वल्कि ऐसा न करने में बुराई है। इसके खिलाफ फर्ज कीजिए मैं एक दुष्ट मनष्य हूं परन्तु मैं मानता हूं कि मनुष्य-शरीर को बचाने के लिए भी किसी जीवधारी की हिसा करना इन्सानियत को कम कर देना है। तव उस श्रेष्ठ साधु का किञ्चित भी अपमान किये विना क्या मैं यह नही कह सकता कि केवल विचारों-विश्वासों की तुलना करें तो मेरे दुष्ट होते हुए भी मेरे विश्वास उस सर्वश्रेष्ठ साधु के विश्वासों से बहुत ऊंचे दर्जे के है? यदि मेरा यह कहना सदोष न हो तो मौलाना साहब के कहने में कोई दोप नहीं है।

वर्तमान चर्चा में एक बात साफ तौर पर निखर उठती है और वह मानो अँधेरे में आशा की एक किरण है। सब लोग यह प्रतिपादित करते हुए मालूम होतेहैं कि आचार-हीन विचार बेकार हैं और अकेले शुद्ध विचारों से स्वर्ग नहीं मिल सकता। मौलाना साहब ने अपना मन्तव्य बताने में कही भी इस बात का विरोध नहीं किया है। मुझे इसमें आशा की किरणें दिखाई देती है, क्योंकि अपनी श्रद्धा के अनुसार चलनेवाले तथा उनके प्रति अनास्था रखनेवाले दोनो ही सदाचार के पुजारी है।

परन्तु आचार की पूजा करते हुए हमें विचारों की शुद्धता की आवश्यकता को न भुला देना चाहिए। जहां विचारों में दोष होगा वहां आचार अन्तिम शिखर

तक नहीं पहुँच सकेगा। रावण और इन्द्रजीत की तपस्या में किस वात की खामी थी? इन्द्रजित के संयम का मुकावला करने के लिए लक्ष्मण के संयम की आवश्यकता थी, यह वताकर आदि कवि ने आचार का महत्व सिद्ध किया है। परन्तु इन्द्रजीत के विचारों में, विश्वास में आर्थिक वैभव को प्रवान पद प्राप्त था और लक्ष्मण के विश्वास में यह पद परमार्थ को प्राप्त था। अतएव अन्त में कवि ने लक्ष्मण को जयमाला पहनाई। 'यतो धर्मस्ततो जयः' का भी अर्थ यही है। यहाँ धर्म का अर्थ उच्च-से-उच्च विचार अर्थात् विश्वास और उसके अनुसार उच्च-से-उच्च आचार ही हो सकता है।

एक तीसरे प्रकार के भी लोग है। उनके लिए इस चर्चा में जगह नही है। वे है ढोंगी। उनके पास विचारों का, विश्वासों का कोरा दावा तो है, किन्तु उनका आधार कोरा आडम्वर है। वास्तव में उनका कोई धार्मिक विश्वास ही नही होता। तोता राम-राम रटता है तो क्या इससे लोग उसे राम-भक्त कहेंगे? फिर भी हम दो तोतो की या तोते या मैना की वोलियो की कीमत उनकी तुलना करके आँक सकते है।

परन्तु एक सज्जन कहते है:

"मौलाना साहव ने निडरता भले ही दिखाई हो...किन्तु उसका लाभ देश को कितना मिला? हिन्दू-मुसलमानों में तनाव और वढ़ गया। संयमी गांधी से अधम मुसलमान ऊंचा है, ये शब्द हिन्दुओं के दिल में वाण की तरह चुभ गये हैं। मौलाना साहव ने तो मानो देश पर बम का गोला ही फेंक दिया है।"

इन विचारों को प्रकट करनेवाले मौलाना साहव के प्रेमी हैं। वह धर्मान्ध हिन्दू नही हैं। वह हिन्दुओं के ऐवों को निष्पक्ष होकर देख सकते है। लेकिन सन्देह के वर्तमान वातावरण का असर उन पर भी हुआ है। पहले तो जैसा मैं कह चुका हूं, "संयमी गांधी से अवम मुसलमान ऊंचा है," यह मौलाना ने कहा ही नही। उन्होने तो इतना ही कहा है कि "संयमी गांधी की धार्मिक मान्यता से अधम मुसलमान की धार्मिक मान्यता वढ़कर है।" मौलाना साहव के विचार में और उन पर आरोपित विचार में हाथी-घोड़े का अन्तर है। एक में दो व्यक्तियों की तुलना है। दूसरे में दो धार्मिक विचारों की। 'संयमी गांधी' और 'अधम मुसलमान' हमारी प्रयोजन-सिद्धि के लिए निरर्थक है।" मुख्य तो धार्मिक मान्यताएं है। फिर ये मान्यताएँ भले ही 'क' या 'ख' की हों अथवा 'ग' या 'घ' की, तुलना व्यक्तियों की नही उनके धार्मिक विचारों की है। उनके आचार तथा गुण-दोषों का इस तुलना से कुछ भी सम्वन्ध नही है।

अव हम इस वात पर विचार करें कि मौलाना को धार्मिक मान्यताओं के

सम्बन्ध में अपने ये उद्‌गार प्रकट करने की आवश्यकता थी भी या नहीं। मौलाना साहब के और मेरे बीच दो भाइयों का-सा सम्बन्ध है। इस कारण वह जहाँ-तहाँ मेरी स्तुति किया करते है। इन दिनों हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कलह उत्पन्न करने वालों की संख्या बढ़ गई है। उनमें से कुछ लोगों ने उनके लिए 'गांधी-परस्त' अर्थात् गांधी-पूजक विशेषण लगाया है। ऐसा करने में उनका उद्देश्य यह था कि मुसलमानों पर मौलाना का जो प्रभाव है वह कम हो जाये। अतः मौलाना ने कहा कि मै गांधीजी का पुजारी तो हूं परन्तु गांधीजी मेरे धर्म-गुरु नही है। गांधीजी का धर्म मेरे धर्म से जुदा है। धार्मिक विश्वास तो एक व्यभिचारी मुसलमान के जो है वे ही मेरे भी है और मैं उन्हें गांधीजी के धार्मिक विश्वासों से अधिक अच्छा समझता हूं। यह मौलाना के भाषण सार है। यदि वे ऐसी ही कुछ बात न कहें तो क्या कहकर वह अपना, मेरा और हमारे पारस्परिक सम्बन्धों का तथा साथ ही अपनी दृढ़-निष्ठा का खुलासा और बचाव कर सकते है और किस तरह आक्षेपकर्त्ताओं के आक्षेपों का उत्तर दे सकते है ?

--गुजराती। न० जी०, २७।४।१९२४।]

२४. आर्यसमाजी विरोध

आगरा के आर्य समाज की तरफ से मुझे निम्नलिखित तार मिला है :—

"आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द जी, सत्यार्थ प्रकाश और शुद्धि-आन्दोलन के बारे में आपने जो कड़े शब्द कहे हैं,[1] आगरा उनके प्रति अपना विरोध प्रकट करता है। उसे विश्वास है कि आर्य-समाज के सिद्धान्तों का पूरा परिचय न होने के कारण आपने अनजाने में वे सब बातें कहीं हैं। वह आपसे सादर प्रार्थना करता है कि आप अपने विचारों पर फिर से गौर करें और उनसे जो उद्वेग उत्पन्न होने की सम्भावना है उसे दूर करें।"

मै इस तार को इसलिए प्रकाशित कर रहा हूं कि मुझे विश्वास है कि आगरा समाज का मत बहुत हद तक आर्य-समाज का ही मत है। उसके उत्तर में इतना ही कह सकता हूं कि मैने समाज या ऋषि दयानन्द या स्वामी श्रद्धानन्द जी के विषय में एक भी शब्द गहरा विचार किये विना नहीं लिखा है। मैं अपनी राय

---

१. तात्पर्य गांधीजी के 'हिन्दू-मुस्लिम तनाव : कारण और उपचार', २८।५।-१९२४ लेख से है।

को आसानी से दवा कर भी रख सकता था। लेकिन जव कि उसका प्रस्तुत प्रकरण से सम्वन्ध है तव सत्य को देखते हुए मै ऐसा नही कर सका। हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य का दानव हमारे सामने खड़ा है। उसके नाश की मुल्क को सख्त जरूरत है। इसे तथ्यों को दवा कर या उनकी ओर से आँखें मूंद कर नही किया जा सकता। ऐसे मौकों पर जो वात सच्ची दिखाई दे उसे कहना जरूरी हो जाता है—फिर वह चाहे कितनी ही कड़वी क्यों न हो। लेकिन मैं इस वात का दावा नही करता कि मुझसे भूल नही हो सकती। अभी तक मुझे ऐसी कोई वात नही दिखाई दी है जिससे मै अपने विचार वदल लूं। मैं यह भी नही कह सकता कि इस विपय का मुझे कोई ज्ञान नही है। मैने सत्यार्थ प्रकाश को जरूर पढ़ा है। स्वामी श्रद्धानन्द जी से मेरा गहरा परिचय है। इसलिए मैंने वे वाते सोच-समझकर ही लिखी है। अगर कोई आर्यसमाजी मुझे यह समझा दे कि किसी भी वात में मुझसे गलती हुई है तो मै खुशी के साथ अपनी गलती को कवूल करूँगा, उसके लिए माफी माँगूंगा और अपने तमाम गलत वयान वापस ले लूगा।

——अंग्रेजी। यं० इं०, ५।६।१९२४।]

२५. सूतकारों को इनाम

मेरठ से मिला यह पत्र प्रकाशित करते हुए मुझे खुशी होती है—

मेरठ जिला-समिति ने जिला वोर्ड मेरठ को ७५) इसलिए दिये थे कि उनमें से १०), ६) और ४) के तीन इनाम सर्वोत्तम हाथकते सूत पर और २५), १५) और १०) के तीन इनाम उन सूतकारों को दिये जायं जो कि नौचण्डी मेले की कताई-वाजी में सर्वोत्तम हों। तदनुसार २४ मार्च को यह वाजी मेले के दरवार-मण्डप मे हुई। ३२ सज्जनो ने अपने नाम भेजे थे। उनमें से २१ हाजिर हो पाये। मण्डप चारों ओर दर्शकों से भर गया था। लाला लाजपतराय और लाला रामप्रसाद, लाहौर, भी पधारे थे। देहली के लाला शंकरलाल,—वावू कीर्ति चौधरी, श्रीनाथ सिह और श्री महम्मद अस्लम सईफी एम० एल० ए० परीक्षक थे। नीचे-लिखे सज्जनो ने पारितोपिक पाया।

चौधरी रघुवीर नारायण सिह, ३६६ गज, १६ अंक का सूत काता। पहला इनाम पाया।

पण्डित हरगोविन्द भार्गव, मेरठ, ३१० गज १७ अंक का काता। दूसरा इनाम मिला।

पण्डित गौरीशंकर शर्मा, मेरठ, ३०० गज १६ अंक का काता और तीसरा इनाम पाया।

सावरमती आश्रम के श्री दीवानचंद खत्री ने ४५० गज २४ अंक का काता। पर वे बाजी में शरीक न हुए थे। चौधरी रघुवीर नारायण सिंह ने उन्हें अपनी ओर से ५) का खास इनाम दिया।

—हि० न० जी०, २३।४।१९२५।]

२६. संयुक्त प्रान्त का दौरा

[१९२५ ई० में बिहार के बाद गांधीजी ने संयुक्तप्रान्त (अव उत्तर प्रदेश) की यात्रा की थी। उस यात्रा के सम्बन्ध में उन्हें जो अनुभव हुए उनको निम्नांकित लेख में प्रकट किया गया है।—सम्पा०।]

वलिया

इसके वाद मैने संयुक्तप्रान्त में प्रवेश किया। वलिया में ही प्रथम मुकाम रहा। वलिया जाने के लिए सिर्फ चार घण्टे का ही सफर करना पड़ा था लेकिन इसमें मुझे बड़ी तकलीफ हुई। यहां की सभा मुझे वड़ी ही कष्टप्रद मालूम हुई थी और बिहार में मुझे जो अनुभव हुआ था उसके विपरीत ही यहा अनुभव हुआ। जिस गाड़ी में हम लोग छपरा से वलिया गये वह वहुत धीरे चलती थी और कुछ मिनटों के बाद ही स्टेशन आ जाते थे। हर एक स्टेशन पर एक वड़ी भारी भीड़ होती थी और लोग वड़ा शोर मचाते थे। स्वयंसेवक उन्हे रोकने में असमर्थ थे। मैं यह जानता हूं कि उनका मेरे प्रति अन्धा और अतिशय प्रेम था। मुझे १९२१ में ही वलिया जाना चाहिए था लेकिन मैं उस समय नही जा सका था। इसलिए लोगों को मेरे वहां जाने के सम्बन्ध में अविश्वास-सा हो गया था लेकिन जव मैं वहां सचमुच जा पहुंचा तो वे खुशी से पागल हो गये। स्वयंसेवक उन्हें अपने कावू में न रख सके। लेकिन ज्योंही मै उन्हें अपनी वात सुना सका और देशवन्धु स्मारक फण्ड के लिए उनको समझा सका त्योंही उन्होंने उदारता से रुपये देने शुरू किये। वलिया में स्टेशन पर जो भीड थी उसमें किसी प्रकार की भी व्यवस्था नही रक्खी जा सकती थी। अमरीकी मिशन के पादरी पेरिल साहव ने मेरे लिए अपनी मोटर स्टेशन पर ले आने की कृपा की थी। मैं वड़ी मुश्किलों से उस मोटर तक जा सका था। उस मोटर के कारण ही कोई हानि पहुंचने के पहले मैं उस भीड़ से वाहर

निकल सका था। स्टेशन से हम लोग सीधे वहां की सार्वजनिक सभा में गये। वहां एक बड़ा भारी और ऊंचा मंच तैयार किया गया था। उसे देखते ही मैं यह समझ गया कि किसी शौकीन ने उसकी रचना की है और जितने आदमियों की उस पर जगह रखी गयी थी उतने आदमियों का वहां पर बैठना सलामत नही था। वहां कुल सात अभिनन्दनपत्र दिये गये थे। जिन-जिन लोगो का इसके साथ सम्बन्ध था उन सबका वहा मंच पर होना स्वाभाविक था। उस मंच पर जाने के लिए जो सीढ़ियां बनाई गई थी वे भी हिलती थी, उस पर से फिसल जाने का डर बना रहता था और कोई सलामती न थी। कोई उस पर जरा भी चलता फिरता तो सारा मंच हिलने लगता था। १० आदमियो का वजन भी वह नही सम्हाल सकता था और एक आदमी के लिए भी उसके कुछ भागों पर चलना भयकारी था। प्रमुख ने फौरन ही यह समझ लिया कि किसी भी प्रकार की दुर्घटना से बचना हो तो यह आवश्यक है कि मुझे अकेले को वहां छोड़ कर और सबको वहां से हट जाना चाहिए। इसलिए वे सब धीरे-धीरे मुझे राजेन्द्र बाबू के हाथों मे सौंप कर नीचे चले गये। जिन्हें अभिनन्दनपत्र पढ़ने थे वे एक-के-बाद-एक इस प्रकार आते थे। इतना खयाल रखने पर भी यह अन्देशा बना रहता था कि क्या मालूम किस समय यह मंच सारा का सारा ढेर हो जाय। ऐसा भयप्रद और कमजोर मंच देखने का यह मेरा पहला ही अनुभव न था; मुझे कम से कम दो दुर्घटनाएं याद हैं। लेकिन यह सबसे अधिक कमजोर था। कुशल दृष्टिवाले लोग तो उसे देखते ही उसकी कमजोरी ताड़ सकते थे। लेकिन जिन्होने उसकी रचना की थी उन्हें कुछ भी अनुभव न था। महासभा के कार्यकर्त्ताओ को इस उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और उन्हें बड़े बड़े मंच बनाने के लिए प्रयत्न नही करना चाहिए। यदि वे ऐसा मंच बनाना चाहें तो उन्हे कार्य-कुशल व्यक्तियो को ही यह काम सौपना चाहिए। स्वयसेवक सभा की भी ठीक-ठीक व्यवस्था न रख सके थे। जब अभिनन्दनपत्र पढ़े जाते थे उस समय भी शोर होता रहता था। लेकिन जब मैने उनसे बातें सुन लेने के लिए विनती की वे सब सम्पूर्ण-शान्त हो गये थे। इससे मैने अनुमान लगाया कि बिहार की तरह यदि यहा पर भी कुछ पहले ही से तैयारी की गई होती तो उसका परिणाम भी अच्छा होता और बलिया मे मै जो कुछ भी कार्य कर सका उससे कही ज्यादा और अच्छा कार्य मै कर सकता था। शान्त और लगातार काम करने की ही आवश्यकता है। बलिया मे कुछ बड़े अच्छे कार्यकर्ता भी है और इसलिए उसे आज के बनिस्बत अधिक अच्छे कार्य का केन्द्र भी बनाया जा सकता है। मै यह जानता हूं कि बलिया के लोग बड़े धैर्यवान और कष्टसहिष्णु है। उन्होने १९२०-२१ मे कुछ कम त्याग नही किया था।

काशी विद्यापीठ

बलिया से हम लोग काशी गये। वहां सीतापुर जाते हुए हमें लखनऊ जाने के लिए गाड़ी बदलनी थी। बनारस में पॉच घण्टे का मुकाम रहा। बाबू भगवान दास ने काशी विद्यापीठ के विद्यार्थियों की एक सभा रक्खी थी। म्युनिसिपल्टी के अधिकार में चलनेवाले मिडिल-स्कूलों मे कताई-बुनाई के सम्बन्ध में जो अच्छा कार्य किया गया है उसे देखने के लिए भी वह मुझे ले गये थे। पाठको को शायद यह याद होगा कि इस कार्य का आरम्भ श्री रामदास गौड़ ने किया था और तब से वह बराबर होता चला आ रहा है। इन शालाओ में चर्खे और तकली दोनों का उपयोग होता है। यह प्रयोग ठीक-ठीक सफल हुआ कहा जा सकता है। विद्यापीठ में मुझे उसका कारखाना दिखाया गया था। उसमें बढ़ई का काम बड़ा अच्छा होता है और उसमें तरक्की भी हो रही है। विद्यापीठ में चर्खे की उन्नति अच्छी नहीं हुई है। मैने अपने व्याख्यान में विद्यार्थियों से और अध्यापकों से यह कहा कि यदि चर्खे में उनकी श्रद्धा नही है तो विद्यापीठ के पाठ्य विषयों में से ही उसे निकाल देना चाहिए। क्योंकि चर्खे को राष्ट्रीय हलचल का एक अंग मानने का रिवाज पड़ गया है; उसे इस प्रकार स्थान देने से कोई लाभ न होगा। वह समय अब आ गया है जब कि प्रत्येक राष्ट्रीयशाला को अपनी शिक्षा-सम्बन्धी नीति का विकास करना होगा। और उसका विरोध होने पर भी उसे सफल करने का प्रयत्न करना होगा।

लखनऊ में

बनारस से हम लोग लखनऊ गये। वहां कोई तीन घण्टे से ज्यादा मुकाम रहा। वहां मुझे लखनऊ म्युनिसिपलटी ने अपनी तरफ से एक अभिनन्दनपत्र दिया। वह अभिनन्दनपत्र बड़े ऊंचे प्रकार की उर्दू में लिखा हुआ था। मेरे-जैसे सादे मनुष्य को समझने के लिए, जो संयुक्त प्रान्त का निवासी नही है, भाषा को जितना भी कठिन बनाया जा सकता था, बनाने की चेष्टा की गई थी। उसमें अरबी और फारसी के बड़े-बड़े कठिन शब्दों का प्रयोग किया गया था और ऐसा मालूम होता था कि मानों हर एक मामूली बोलचाल का शब्द और जिसका मूल संस्कृत से हो ऐसा एक भी शब्द उसमे न आने पावे, इसके लिए खास कोशिश की गई थी। इसीलिए मुझे उसका अंग्रेजी अनुवाद दिया गया था। मैने म्युनिसिपलटी से कहा कि मैं उन्हें उनकी बड़े ऊचे प्रकार की उर्दू के लिए मुबारकबाद नहीं दे सकता हूं। मैं प्रान्तों की आपस की बोलचाल और व्यापार के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता को स्वीकार करता हूं लेकिन यह भाषा लखनवी उर्दू या संस्कृतमय हिन्दी

नही हो सकती। वह भाषा तो हिन्दुस्तानी ही हो सकती है और हिन्दी और उर्दू जाननेवाले लोग, जिन शब्दों का अमातौर पर प्रयोग करते हैं उन्ही शब्दों की वह बनी होगी। उसे हिन्दू और मुसलमान दोनों समझ सकेंगे। लखनऊ की म्युनिसिपलटी, खास करके स्वराजियों के हाथों में है। उनके पहिले के सभासदों के कार्य को देखते उनका कार्य भी कुछ कम महत्व का नही है। लेकिन मैंने अपने उन श्रोताओं से यह कहा कि सिर्फ अपने पहिले के कार्यकर्त्ताओं के समान ही काम कर सकने पर सन्तोष मान लेना ठीक नही है। महासभा के लोग जहां कही भी, जिस किसी भी संस्था को हस्तगत कर लेते है वहां उन्हें अधिक अच्छा काम कर दिखाना चाहिए और इसलिए लखनऊ के रास्ते ऐसे खराब हैं, यह विचारणीय वस्तु है। यदि रुपये की कमी उसका कारण है तो यह बहाना नही चल सकता क्योकि महासभावालों से तो यह आशा रक्खी जाती है कि वे स्वयं कुदाली और फावड़ा लेकर स्वेच्छा से मेहनत करके रास्तों को दुरुस्त करें। मैंने म्युनिसिपलटी को उसके डेरी के प्रयोग के लिए मुबारकबादी दी और उसे यह चेतावनी भी दे दी कि जबतक वे अपने शहर को सस्ता और अच्छा दूध न पहुंचा सकें तबतक उन्हें कभी भी सन्तोष नही होना चाहिए।

म्युनिसिपलटी के अभिनन्दनपत्र मे हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर जानबूझकर कोई बात नही कही गई थी। फिर भी मित्रों (म्युनिसिपलटी के बहुत से हिन्दू और मुसलमान सभासद मेरे मित्र थे) के साथ बातचीत करने में मैं इस प्रश्न को छोड़ न सका और इसलिए इन दोनो दलों में जो तनाजा बढ़ता जा रहा है उस पर मुझे कुछ कहना पड़ा। मैंने उनसे कहा कि हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्से में कुछ भी क्यों न हो कम-से-कम लखनऊ में तो दोनों दलो को अपने मतभेदों को दूर करके ऐसा ऐक्य कर लेना चाहिए कि कैसी भी स्थिति क्यो न उत्पन्न हो और हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में कैसे भी झगडे क्यों न चलते रहे, उनका ऐक्य कभी टूटे ही नही।

मुझे चलते-चलते स्त्रियों के विद्यालय देखने का भी समय मिला था। यह विद्यालय अमरीकी मिशन का है और यह कहा जाता है कि सारे एशिया खण्ड के ऐसे विद्यालयों में यह सबसे पुराना है। मैंने देखा कि हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की लड़कियां वहां पढ़ती है। उन्होने मुझे घेर लिया और वे अपनी हस्ताक्षरों की पुस्तक मे मुझसे मेरे हस्ताक्षर करा लेना चाहती थी। मैंने अपनी शर्त सुना कर बहुतेरो को अपने हस्ताक्षर दिये है। और वह शर्त यह है कि जो लोग मुझसे मेरे हस्ताक्षर चाहें उन्हें खादी पहननी चाहिए और नियमपूर्वक कातना चाहिए। मैंने लड़कियो को भी यह शर्त सुनाई। उन्होने फौरन ही उसे स्वीकार कर लिया और वहां

की स्त्री शिक्षिका ने मुझे इस बात का यकीन दिलाया कि वह स्वयं इस बात का ध्यान रक्खेगी कि वे अपना वादा धर्म भाव से पूरा करती है या नही।

सीतापुर में

लखनऊ से हम लोग मोटर में बैठ कर सीतापुर गये। वहां कोई दस बजे शाम को पहुंचे होंगे। मैं अपने मुकाम पर पहुंचूं उसके पहले ही मुझे हिन्दू सभा का अभिनन्दनपत्र ग्रहण करने के लिए उसकी सभा में जाना पड़ा था। मैंने उस अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए कहा कि मैं उस अभिनन्दन-पत्र के योग्य नहीं हूं क्योंकि मैंने हिन्दू सभा के लिए अब तक कुछ भी काम नही किया और मैने उसकी कुछ हलचलों के विरुद्ध, यदयपि मित्रभाव से बहुत कुछ टीकाएं भी की है। मैने केवल इसलिए इस अभिनन्दन-पत्र को स्वीकार किया है कि हिन्दू धर्म के प्रति मेरी भक्ति किसी से कुछ कम नहीं है। मैने उनसे यह भी कहा कि जितनी भी धार्मिक हलचलें हैं वे सच्ची सेवा तभी कर सकती है जब कि वे सत्य और अहिसा को पूर्णतः ग्रहण किये हुए हों। हिन्दू सभा से मै सार्वजनिक सभा में गया। वहां म्युनिसिपलटी की तरफ से अभिनन्दन-पत्र दिया जाने वाला था। दूसरे दिन मैं अली-भाइयों के साथ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परिषद में गया। उसके प्रमुख ने जो व्याख्यान दिया था वह और प्रकारों से अच्छा होने पर भी उसमे फारसी और अरबी का एक भी शब्द न आने पावे, इसके लिए बड़ा ही ध्यान रक्खा गया था। इसलिए मुझे उन्ही बातों को फिर वहां भी दोहराना पड़ा जो मैने लखनऊ की म्युनिसिपलटी के अभिनन्दन-पत्र के समय कही थीं। संस्कृतमय और बड़ी क्लिष्ट हिन्दी उसी प्रकार त्याज्य है जैसे कि फारसी मिली हुई ऊंचे प्रकार की उर्दू। मैने हिन्दुस्तानी को इसलिए एक सामान्य माध्यमिक भाषा माना है कि उसे कोई बीस करोड़ से अधिक लोग समझते हैं। यह भाषा कृत्रिम लखनवी उर्दू नही है और न सम्मेलनी हिन्दी है। कम-से-कम सम्मेलन से तो ऐसे ही अभिनन्दनपत्र की आशा रक्खी जा सकती थी कि जिसे साधारण हिन्दू या मुसलमान कोई भी समझ सकता हो। वह प्राणी जो "ईश्वर" का नाम लेता है लेकिन "खुदा" कहने से डरता है अथवा वह जो हर मरतबा "खुदा" कहता है और "ईश्वर" का नाम लेना पाप समझता है, कोई मोहक प्राणी नही हो सकता। मैंने उन श्रोताओं को यह याद भी दिलाई कि संयुक्त प्रान्त में हिन्दी-प्रचार केवल हिन्दी साहित्य को सुधारने में और हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ को उत्पन्न करने के लिए वायुमण्डल तैयार करने मे ही हो सकता है, और सम्मेलन को तो सयुक्त प्रान्त के बाहर हिन्दुस्तानी भाषा को लोकप्रिय बनाने मे और दूसरी भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी लिपि मे प्रकाशित करने में ही अपना सारा ध्यान

लगा लेना चाहिए। मौलाना मुहम्मद अली ने मेरी पहली बात पर जोर देकर कहा कि यदि हिन्दुस्तानी भाषा को अपने ही प्रान्त मे लोकप्रिय बनाने के लिए किसी बाहरी कृत्रिम साधन की आवश्यकता है तो उसे एक सामान्य माध्यमिक भाषा बनने के प्रयत्न को छोड देना होगा। दोपहर को मौलाना शौकतअली के सभा-पतित्व मे एक सभा हुई थी। उन्होने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर व्याख्यान दिया था और अन्त मे चर्खा और खादी के बारे में भी कुछ कहा था। उनके बाद मुझसे व्याख्यान देने के लिए कहा गया। मैने उसी विषय पर व्याख्यान देना शुरू किया जिसका मौलाना साहब ने श्रोताओं को परिचय करा दिया था। मैंने उन्हें चर्खा और खादी की आवश्यकता समझाई और यह कह कर अपनी दलीलें खतम की कि पटना मे जो निर्णय हुआ है उसमें उन्हें सहायता करनी चाहिए। मेरे खयाल में वह निर्णय कोई जबरदस्ती का निर्णय नही था, बल्कि महासभा में आम जनता की राय का वह एक प्रतिबिम्ब था। पण्डित मोतीलाल जी ने मेरे बाद व्याख्यान दिया। उन्होने पटना के निर्णय को बखूबी समझाया, उसकी हर एक बात पर विवेचन किया और चर्खा और खादी में अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए यह कहा कि जबतक महासभा प्रधानतः राजनीतिक संस्था न बन जायगी तबतक वह लोगों की सम्पूर्णतया प्रतिनिधि-संस्था न बन सकेगी। पण्डितजी का वह प्रस्ताव, जिसमें पटना के निर्णय का समर्थन किया गया था और चर्खा संघ की स्थापना का अनुमोदन किया गया था, पास करने के बाद सब प्रतिनिधि गुजराती मण्डप में गये और वहां उन्होंने सीतापुर के गुजरातियो की दी हुई दावत का आनन्द लिया।

मेरी संयुक्तप्रान्त की यात्रा, यदि उसे यात्रा कह सकते हैं तो, लखनऊ से आये हुए हिन्दू सभा के शिष्टमण्डल के साथ लखनऊ के हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य के बारे मे बडी लम्बी और हार्दिक चर्चा के बाद खतम हुई थी। मैंने उनसे कहा कि उनके झगड़े में पंच बनने का भार जो मैंने अपने सिर लिया है उसे मैं भूला नहीं हूं। मैंने गत वर्ष देहली मे इसका भार अपने सिर लिया था लेकिन अब समय बदल गया है और अब एक भी दल अपना झगड़ा मेरे सामने पेश न करेगा। लेकिन यदि वे मुझे ही पंच बनाना चाहते हैं तो मैं बड़ी खुशी से लखनऊ जाने के लिए और उनका न्याय करने के लिए तैयार हूं। और जब उन्होंने मुझसे यह कहा कि वे मुझे पंच बनाने के लिए राजी है तो मैने उनसे कहा कि वे मुसलमानों के पास भी जायं और फिर मुझे इस बात की सूचना दें कि दोनो दलो के नेतागण मेरे दिये हुए न्याय को स्वीकार करने के लिए तैयार है या नही। इस प्रकार मेरी बिहार और संयुक्त प्रान्त की यात्रा समाप्त हुई।

—यं० इं०, न० जी०, हि० न० जी० ५।११।१९२५।]

२७. खद्दर नहीं मिलता

संयुक्त प्रान्त के एक सम्वाददाता लिखते हैं :—

"मैं देखता हूं कि यहां वकीलों में खद्दर की बड़ी मांग है। मैने कुछ उन्हें बेचा भी है। उन्होंने शिकायत की कि उनके नगर में कोई खद्दर-भण्डार नहीं है। उन्होंने मुझसे कहा कि इसके लिए वे ५००० रुपये संग्रह करके एक कम्पनी बनाना चाहते हैं।"

मैं आशा करता हूं कि प्रस्तावित कम्पनी बनाई जायगी। अपने बिहार के दौरे में भी मैने इस प्रकार की शियाकतें सुनी थी। देश मे जगह-जगह खादी-भण्डार क्यों नही है इसका एक मात्र कारण है कि ऐसे भण्डारों को खोलने के लिए खादी की काफी मांग नहीं है। अनुभव बताता है कि जब ऐसे भण्डार खोले जाते है और वे नियमित प्रचार के अभाव में स्वावलम्बी नही हो पाते तथा कुछ समय बाद बन्द हो जाते हैं, तो उनमें लगी पूंजी नष्ट हो जाती है और आन्दोलन की बदनामी होती है। इसलिए ज्यादा अच्छी बात यह है कि अखिल भारतीय चर्खा संघ के एजेण्ट खद्दर-प्रेमियों से सम्पर्क रक्खें, नमूनों और दामों का विज्ञापन करें और अनुकूलतम स्थानों में खादी की फेरी लगायें। जब वे देखें कि किसी स्थान में नियमित और काफ़ी मांग है तो वे स्थानीय धनिकों को वहां खद्दर भण्डार खोलने की सलाह दें, जिसका काम यह होगा कि नियमित प्रचार-कार्य करें।

इस विषय में यदि विभिन्न स्थानों में बीच-बीच में प्रदर्शिनियां की जायं तो वे ज्यादा प्रभावोत्पादक हो सकती है। बताया गया है कि हाल में दिल्ली और बनारस में जो प्रदर्शिनियां की गई थी, वे काफ़ी सफल हुई। उन पर ज्यादा खर्च करने की जरूरत नही, यहां तक उन्हें स्वावलम्बी भी बनाया जा सकता है। तत्सम्बन्धी कमेटियों के लिए यह कोई छोटा लाभ नही था कि दिल्ली में लाला लाजपतराय तथा बनारस में आचार्य ध्रुव उन्हें इन प्रदर्शिनियों के उद्‌घाटन के लिए मिल गये। यदि उनका प्रबन्ध ठीक ढंग से हो तो उनका शैक्षणिक मूल्य भी बहुत बड़ा है। वे सब दलों एवं वर्गो को एक साथ मिलजुल कर काम करने के लिए सर्वनिष्ठ मंच का भी काम देती है। मुझे अभी तक कोई जन-सेवक ऐसा नही मिला है जिसे सिद्धान्ततः खादी पर कोई एतराज हो।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १।४।१९२६।]

२८. स्वामीजी के स्मरण

स्वामीजी से मेरा परिचय तब हुआ जब वह महात्मा मुंशीराम के नाम से

प्रसिद्ध थे। वह परिचय भी पत्रों से हुआ। उस समय वह कांगड़ी गुरुकुल के प्रधान थे जो कि उनका सबसे पहिला और बड़ा शिक्षा-क्षेत्र का काम है। वह सिर्फ पश्चिमीय शिक्षा-पद्धति से ही असन्तुष्ट न थे, लड़कों में वह वेद-शिक्षा का प्रचार करना चाहते थे और पढ़ाते थे हिन्दी के जरिए, अंग्रेजी के नही। शिक्षाकाल में उन्हें ब्रह्मचारी रखना चाहते थे। द० अफ्रीका के सत्याग्रहियों के लिए उस समय जो धन इकट्ठा किया जा रहा था उसमें चन्दा देने के लिए उन्होंने लड़को को उत्साहित किया था। वह चाहते थे कि लड़के खुद कुली बन कर, मजदूरी करके चन्दा दें, क्योंकि वह युद्ध क्या कुलियों का नही था ? लड़कों ने यह सब पूरा कर दिखाया और पूरी मजदूरी कमा कर मेरे पास भेजी। इस विषय में स्वामीजी ने मुझे जो पत्र भेजा था वह हिन्दी में था। उन्होने मुझे मेरे प्रिय भाई, कह कर लिखा था। इसने मुझे महात्मा मुंशीराम का प्रिय बना दिया। इससे पहिले हम दोनों कभी मिले नही थे।

हम लोगो के बीच के सूत्र ऐण्ड्रूज थे। उनकी इच्छा थी कि जब कभी मैं देश लौटूं उनके तीनों मित्रो—कवि ठाकुर, प्रिन्सपल रुद्र और महात्मा मुंशीराम—से परिचय प्राप्त करूं।

वह पत्र पाने के बाद से हम दोनों एक ही सेना के सैनिक बन गये। उनके प्रिय गुरुकुल मे हम १९१५ मे मिले और उसके बाद से हर एक मुलाकात में हम दोनों परस्पर निकट आते गये और एक दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझने लगे। प्राचीन भारत, संस्कृत और हिन्दी के प्रति उनका प्रेम असीम था। बेशक, असहयोग के पैदा होने के बहुत पहले से ही वह असहयोगी थे। स्वराज्य के लिए अधीर थे। अस्पृश्यता से नफरत करते थे और अस्पृश्यों की स्थिति ऊंची करना चाहते थे। उनकी स्वाधीनता पर कोई बन्धन नहीं सह सकते थे।

जब रौलट ऐक्ट का आन्दोलन शुरू हुआ तो उसे सबसे पहले शुरू करनेवालों में से वह थे। उन्होंने मुझे बहुत ही प्रेम से भरा हुआ एक पत्र भेजा। किन्तु वीरमगांम और अमृतसर काण्ड के बाद सत्याग्रह का स्थगित किया जाना वह नहीं समझ सके। उस समय से हमारे बीच मतभेद शुरू हुए किन्तु उनसे हम लोगों के भाई-भाई के सम्बन्ध मे कभी कोई अन्तर नही पड़ा। उस मतभेद से मुझ पर उनका बाल-सुलभ स्वभाव प्रकट हुआ। परिणाम का विचार किये बिना ही, उन्हे जैसा मालूम था, उन्होने मुझसे सच्ची बात कह दी। वह अति साहसिक थे। समय बीतने के साथ-साथ हम दोनो में जो स्वभाव का अन्तर था उसे मैं देखता गया किन्तु उससे तो उनकी आत्मा की शुद्धता ही सिद्ध हुई। सबको सुनाकर विचार करना

कुछ पाप नहीं है। यह तो एक गुण है। यह सत्यप्रियता का सर्वप्रधान लक्षण है। स्वामीजी ने अपने विचार गुप्त रक्खे ही नहीं।

बारडोली के निश्चय से ही उनका दिल टूट गया। मुझसे वह निराश हो गये। उनका प्रकट विरोध बहुत जबरदस्त था। मेरे नाम उनके निजी पत्रों मे और भी विरोध होता था किन्तु मतभेद पर वह जितना जोर देते थे, प्रेम पर भी उतना ही। प्रेम का विश्वास केवल पत्रों मे ही दिला देने से वह सन्तुष्ट न थे। मौका मिलने पर उन्होंने मुझे ढूढ निकाला और मुझे अपनी स्थिति समझाई और मेरी समझने की कोशिश की। मगर मुझे मालूम होता है कि मुझे ढूंढने का असल कारण यह था कि जिसमें अगर इसकी जरूरत हो तो मुझे वह विश्वास दिला सकें कि एक छोटे भाई के समान मुझ पर उनकी प्रीति जैसी-की-तैसी बनी हुई है।

आर्य समाज और उसके संस्थापक पर मेरे मतों से और उनके नाम का उल्लेख करने से उन्हें बहुत कष्ट हुआ पर इस धक्के को सह लेने की शक्ति हमारी मित्रता में थी। वह यह नही समझ सकते थे कि महर्षि के विषय में मेरे मतों और अपने व्यक्तिगत शत्रुओं के प्रति ऋषि की असीम क्षमा का एक साथ कैसे मेल बैठ सकता है। महर्षि में उनकी इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उन पर या उनकी शिक्षाओं पर कोई भी टीका वह सह नही सकते थे।

शुद्धि-आन्दोलन के लिए मुसलमानी पत्रों में उनकी बड़ी कड़ी आलोचनाएं और निन्दा की गई है। मैं स्वयं उनके दृष्टि-विन्दु को स्वीकार नही कर सका था। अब भी मै उसे मानता नही। किन्तु मेरी नजर में अपने दृष्टि-बिन्दु से वह अपनी स्थिति का पूरा बचाव करते थे। जबतक शुद्धि और तबलीग मर्यादा के भीतर रहें, तबतक दोनों ही बराबर छूट के अधिकारी हैं। इस महा विवाद-ग्रस्त विषय की चर्चा का अवसर यह नही है। तबलीग के और शुद्धि के, जो उसका जवाब है, मूल में ही परिवर्तन करना होगा। संसार के धर्मो के उदार अध्ययन में उन्नति होने के साथ-साथ शुद्धि या धर्म-प्रचार का वर्तमान बेढंगा तरीका, जो तत्व से अधिक रूप पर ही ध्यान देता है, बिल्कुल बदल जायगा। यह तरीका तो एक दल की अधीनता को छोड़कर दूसरे दल में जा मिलना है और एक दूसरे के धर्मो को गाली देना है। इसीसे परस्पर घृणा फैलती है।

अगर हम हिन्दू और मुसलमान दोनों, शुद्धि का आन्तरिक अर्थ समझ सकते तो स्वामीजी की मृत्यु से लाभ उठाया जा सकता है।

एक महान् सुधारक के जीवन के स्मरणों को मै सत्याग्रहाश्रम में उनके कुछ महीनों पहले के आखिरी आगमन की बात के बिना खत्म नही कर सकता। मुसलमान मित्रों को मै विश्वास दिलाता हूं कि वह मुसलमानों के दुश्मन नही थे। कुछ मुसल-

मानों का विश्वास वेशक नही करते थे किन्तु उन लोगों से उनका कुछ द्वेष नहीं था। उनका खयाल था कि हिन्दू दवा दिये गये है और उन्हें वहादुर वन कर अपनी और अपनी इज्जत की रक्षा करने योग्य वनना चाहिए। इस वारे में उन्होंने मुझसे कहा था कि "मेरे विषय मे वडी गलतफहमी फैली हुई है। मेरे विरुद्ध कही जानेवाली कई वातों में मैं विल्कुल निर्दोष हूं। मेरे पास धमकी के कितने एक पत्र आया करते हैं। मित्र गण उन्हे अकेले चलने से मना करते थे। मगर यह परम आस्तिक पुरुष उनका जवाव दिया करता था—ईश्वर की रक्षा के सिवाय और किस रक्षा का मै भरोसा करुं? उसकी आज्ञा के विना एक तिनका भी नही हिलता। मैं जानता हूं कि जवतक वह मुझसे इस देह के द्वारा सेवा लेना चाहता है, मेरा वाल वॉका नही हो सकता।"

आश्रम में रहते समय उन्होने आश्रम-पाठशाला के लड़के-लड़कियों से बातें की। उनका कहना था कि हिन्दू धर्म की सवसे वड़ी रक्षा आत्मशुद्धि से ही होगी, भीतर से ही होगी। चारित्र्य और शरीर के गठन के लिए, ब्रह्मचर्य पर वह वहुत जोर देते थे।

—अंग्रेजो। यं० इं०। हि० न० जी०, ६।१।१९२७।]

२९. श्रद्धानन्द स्मारक

यह उचित ही है कि हिन्दू सभा की ओर से स्वामी श्रद्धानन्द के स्मारक के लिए धन की सहायता मांगी जाय। स्वामीजी संन्यास धारण के वाद जिन कामों के लिए जीते थे, उनके लिए चन्दा इकट्ठा करने का हिन्दू महासभा ने निश्चय किया है। इस निश्चय के लिए मैं उसे साधुवाद देता हूं। वे काम है—अस्पृश्यता-निवारण, शुद्धि और संगठन। ५ लाख की अपील की गई है अस्पृश्यता निवारण के लिए और शुद्धि और संगठन के लिए भी उतने की ही। जिसे साधारणत: शुद्धि समझा जाता है उस अर्थ में शुद्धि आन्दोलन की आवश्यकता में मेरा विश्वास अव भी नही है। पापियो की शुद्धि नैरन्तर आन्तरिक क्रिया है। उन लोगों की शुद्धि जो न तो हिन्दू न मुसलमान ही कहे जा सकते है या जो हाल में ही विधर्मी करार दिये गये है मगर जो यह भी नही जानते कि धर्म-परिवर्तन कहते किसे हैं और जो निश्चय रूप से हिन्दू ही रहना चाहते है धर्म-परिवर्तन नही है, बल्कि प्रायश्चित्त है। शुद्धि का तीसरा पहलू है असली धर्म-परिवर्तन। इस ज्ञान और सहनशीलता के युग में मै उसकी जरूरत नही मानता। मैं धर्म-परिवर्तन का

विरोधी हूं चाहे कोई उसे हिन्दुओं में शुद्धि, मुसलमानों में तबलीग या क्रिस्तानों में धर्म-परिवर्तन कहे। धर्म-परिवर्तन तो हृदय की क्रिया है और उसे केवल भगवान ही जान सकता है। उसे तो अपने आप पर ही छोड़ देना होगा। मगर धर्म-परिवर्तन पर मेरे मत-प्रकाश करने का यह स्थान नही है। जिनका इसमें विश्वास है उन्हें बिना किसी विरोध के अपने रास्ते चलने का तबतक पूरा अधिकार है जबतक वे उचित सीमाओं के अन्दर रहते है यानी जबतक कोई जोर या धोखा या लालच नहीं दिया जाता और जबतक दोनों पक्षों को पूरी स्वतन्त्रता है और वे सयानी उम्र और परिपक्व बुद्धि के है। इसलिए जिनका शुद्धि में विश्वास है उन्हें इस अपील पर सहायता देने का पूरा अधिकार है।

अगर वह अपनी हस्ती अलग रखना चाहे तो हर एक सम्प्रदाय को अपना संगठन करने का पूरा अधिकार है बल्कि उसके लिए यह परम आवश्यक है। मैं इससे इसलिए अलग रहा हूं कि संगठन के विषय में मेरे विचार कुछ अनोखे हैं। सख्या से अधिक गुण पर मेरा विश्वास है। आजकल संख्या पर वल्कि गुण के वदले भी उसी पर विश्वास रखने की चाल है। समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में निःसन्देह संख्या को स्थान है। केवल मै ही इसका उस प्रकार संगठन करने में असमर्थ हूं जैसा कि आजकल हो रहा है। इसलिए मेरे लिए अछूतोद्धार के ही कोष की कीमत है। इसकी अपनी निराली ही शक्ति है। हिन्दू धर्म के सुधार और इसकी सच्ची रक्षा के लिए अछूतोद्धार सबसे बड़ी वस्तु है। इसमें सब कुछ शामिल है और इसलिए हिन्दू धर्म का यह सवसे काला दाग अगर मिट जाय तो शुद्धि और संगठन से जो कुछ मिल सकेगा वह सब हमें इससे अपने आप ही मिल जायगा। और मैं यह इसलिए नही कहता कि अछूतों की, जिन्हें हर एक हिन्दू को गले लगाना चाहिए, बहुत वड़ी संख्या है किन्तु इसलिए कि एक पुराने और असभ्य रिवाज को तोड़ डालने के ज्ञान और उससे होने वाली शुद्धि से इतनी ताकत मिलेगी जो रोकी न जा सकेगी। इसलिए अस्पृश्यता-निवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है। स्वामीजी उस सुधार के जीवित मूर्ति थे क्योंकि वह इसमें आधा-साझा सुधार नही चाहते थे; वह समझौता नही कर सकते; दव नही सकते थे। अगर उनका चलता तो बात की वात में हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को निकाल वाहर करते। वह हर एक मन्दिर को, हर एक कुएं को सवकी वरावरी के हक के साथ अछूतों के लिए खोल देते और इसका फल भुगत लेते। स्वामी श्रद्धानन्द के लिए मैं इससे अच्छा कोई स्मारक नही सोच सकता कि हर एक हिन्दू आज से अपने दिलों से अस्पृश्यता की अपवित्रता निकाल दे और उनके साथ सगों के समान वर्ताव करे। उस आदमी की पैसे की सहायता तो मेरी समझ में अस्पृश्यता को

हिन्दू-धर्म से सदा के लिए निकाल डालने के उसके दृढ निश्चय का चिह्न भर होगी।

स्वामीजी को सामुदायिक और धार्मिक रूप से सम्मान-प्रदर्शन करने के लिए जनवरी सोमवार का दिन निश्चय किया गया है। मुझे आशा है कि हर स्थान, हर गाव मे यह होगा। मगर इस प्रदर्शन का असल मतलब ही गायब हो जायगा अगर उसमे भाग लेनेवाले अपने में से उसी के साथ अस्पृश्यता की अपवित्रता को न दूर करे। हर एक अछूत को उस सभा में शामिल होना चाहिए और क्या ही अच्छी बात होती अगर उसी दिन अछूतो के लिए सभी मन्दिर खोल दिये जाते। अगर संगठित रूप से उद्योग किया जाय तो उस दिन सूर्यास्त के पहले ही कोष भर जा सकता है।

—यं० इं०। हि० न० जी०, ६।१।१९२७।]

- पापियों की शुद्धि नैरन्तर आन्तरिक क्रिया है।
- संख्या से अधिक गुण पर मेरा विश्वास है।
- अस्पृश्यता-निवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है।

३०. सनातन प्रश्न

अल्मोड़ा से एक संन्यासी लिखते है:—

"गत १५ अप्रैल के यं० इं० में किसी पत्र-प्रेषक को उत्तर देते हुए आपने लिखा है कि यदि सांप भी आप पर आक्रमण करे तो आप उसे मारने की इच्छा न करेंगे। मेरे ख्याल से यह अनुचित होगा। क्योंकि एक तो इस तरह आप मानों स्वयं आत्मघात करेंगे, और दूसरे, उस विषैले जन्तु को वैसे ही छोड़ कर आप दूसरे लोगों को हानि पहुंचाने में कारण होंगे। दूसरा उदाहरण लीजिए। किसी गृहस्थ के घर में सांप निकलता है। वह उसे मारता नहीं, बल्कि अपने घर से बाहर छोड़ देता है। फलतः वह सांप निश्चय ही दूसरे किसी के घर में घुसकर उसमें रहनेव.लों को ह.नि पहुंच.येग.। और निश्चय ही इसकी जिम्मेदारी उस व्यक्ति के सिर पर होगी, जिसने दया की मिथ्या कल्पना के कारण ऐसे भयंकर जन्तु को जिन्दा छोड़ दिया। और भी कितने ही सरपट चलनेवाले जानवर, पशु और जन्तु है जो मनुष्यों को हानि पहुंचाते है, या बीमारियां फैलाते है। सचमुच यदि ऐसे प्राणियों के नाश को हिंसा कहा जाय, तो वह उस हिंसा से कहीं कम होगी, जो इनके जिन्दा रहने से होती है। खैर, मान लिया जाय कि यदि आदमी अपनी

जान बचाने के खयाल से ऐसे भयंकर जानवरों को मारे तो वह हिंसा कही जाय, परन्तु यदि अनेक कीमती प्राणों को बचाने के लिए उसे मारा जाय तो वह कदापि हिंसा न कही जानी चाहिए। आखिर प्रत्येक कार्य की भलाई-बुराई का निर्णय हेतु को देखकर होता है, और जब वही उच्च तथा शुद्ध हो, तब वह नाश या वध हिंसा नहीं कर्तव्य का रूप धारण कर लेता है। मैं चाहता हूं कि आप इस प्रश्न का उत्तर यं० इं० में दें तो बड़ा अच्छा हो।"

संन्यासी का प्रश्न सनातन है। इसमें शक नही कि वह बड़ा जोरदार भी है। अगर उसमें यह शक्ति न होती तो प्राचीन काल से जो हत्या चली आ रही है, वह जारी नही रहती। बहुत कम लोग दुष्टतापूर्वक निष्ठुरता का काम करते है। इतिहास में वर्णित घोर-से-घोर और निर्घृण अपराध या तो धर्म या इसी प्रकार के अन्य उदात्त ध्येय की ओट में किये गये है। पर मेरे ख़याल से तो उस हत्या से हमारी दशा जरा भी नही सुधरी है फिर भले ही वह हत्या धर्म-जैसे सर्वोच्च आदर्श के नाम पर हुई हो। बेशक, किसी न किसी प्राणी की किसी-न-किसी रूप में हिंसा तो अनिवार्य है। जीव जीवों पर जीते हैं। इसलिए और महज इसीलिए बड़े-बड़े द्रष्टाओं ने उस स्थिति को मोक्ष कहा है जिसमें जीवन शरीर से मुक्त हो—उस शरीर से, जिसका पालन, संवर्धन करने के लिए हत्या या हिंसा अनिवार्य होती है। और मनुष्य के लिए इसी शरीर में रहते हुए उस पद की आशा करना असम्भव भी नही, यदि वह हिंसा की मात्रा घटा कर कम-से-कम कर दे, जैसा कि वह निरामिषाहारी होकर कर सकता है। वह जितना ही जानबूझ कर तथा बुद्धि-पूर्वक अपने आपको ऐसी हिंसा से दूर रक्खेगा, जिसमे अपने निर्वाह के लिए दूसरे प्राणियों की हत्या होती है, उतना ही वह सत्य और परमात्मा के अधिक नजदीक होगा। सम्भव है, मनुष्य जाति ऐसा जीवन पसन्द न करे जिसमें कुछ भी आकर्षण न दिखाई दे। परन्तु इससे मेरे कथन के सत्य को बाधा नही पहुंचती। परन्तु वे लोग, जो कि पूर्णतः ऐसा निःस्वार्थ जीवन व्यतीत कर रहे है, और प्राणिमात्र के प्रति करुणामय व्यवहार करते है, हमें परमात्मा का माहात्म्य समझने में सहायता करते है। वे मनुष्य-जाति को ऊंचा उठाते है और उसके आदर्श-पथ को आलोकित करते हैं। उस जीवन को नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नही, जिसके बनाने की शक्ति हमे न हो। मुझे यह दलील नास्तिक की सी प्रतीत होती है, कि परमात्मा ने कुछ प्राणियों को इसलिए बनाया है कि वे मनुष्य के द्वारा मारे जायं, जिन्हें मनुष्य सहज आनन्द के लिए या अपने शरीर के पोषण के लिए मारता रहे जो कि निश्चय ही किसी क्षण नष्ट होने को है। हमे पता नही कि प्रकृति के दरबार में उन भयंकर समझे जाने वाले प्राणियो का स्थान कहां है। पर हिंसा

द्वारा हम प्रकृति के कानूनों को कभी न समझ पायेंगे। ऐसे पुरुषों के वर्णन हमारे पास मौजूद हैं जिनकी दया मनुष्य को व्याप्त कर उसे लांघ गई थी और जो भयंकर हिंस्र पशुओं के वीच रहते थे। समस्त जीवन-सृष्टि में कोई ऐसा आन्तरिक सम्वन्ध जरूर है, जिसके कारण शेर, सिंह, वाघ और सांपों ने उन मनुष्यों को कोई हानि नहीं पहुंचाई जो निर्भय होकर, उन पशुओं के मित्र वन कर, उनके पास गये थे।

यह दलील सदोष है कि यदि मैं किसी विषैले साँप को नही मारूंगा तो वह जरूर ही अनेक आदमियों और स्त्रियों की जान का ग्राहक होगा। यह मेरे कर्त्तव्य का अंग नही है कि मैं तमाम विषैले जन्तुओं को ढूंढ़-ढूंढ़कर मारता फिरूं। और न मुझे यह मान लेने की जरूरत है कि मुझे मिलनेवाले विषैले सांप को यदि मैं नही मार डालूंगा तो वह किसी राहगीर को जरूर ही डस लेगा। उस सांप और मेरे पड़ोसी के वीच मुझे न्यायकर्त्ता नही वन जाना चाहिए। यदि मैं अपने पड़ोसियों के साथ वैसा ही सलूक करूं जैसे सलूक की आशा मैं उनसे करता हूं; यदि मैं उनको किसी ऐसे वड़े खतरे में नही डालता जिसमें कि मैं हूं और यदि उन्हें नुकसान पहुंचा-कर मैं अपना भला नही कर रहा हूं, तो मैं समझूंगा कि मैंने अपने पड़ोसियों के प्रति अपने कर्त्तव्य को पूरा कर दिया। इसलिए जैसा कि अक्सर किया जाता है, मै उस सांप को अपने पड़ोसी के अहाते में नही छोड़ूंगा। अधिक-से-अधिक मैं यह कर सकता हूं कि सांप को जितना एक तरफ छोड़ा जा सके उतना छोड़कर मैं अपने पड़ोसियों को इस वात की सूचना कर दूं। मैं जानता हूं कि इससे मेरे पड़ोसियों को न तो कोई आराम मिलेगा, न रक्षा ही। पर हम तो मृत्यु के मुख में खड़े रह कर सत्य की राह ढूंढ़ रहे हैं। शायद हमारे जीवन में कदम-कदम पर जान का खतरा है। क्योंकि इस खतरे का ज्ञान होने पर तथा हमारे जीवन की अनित्यता का खयाल होते हुए भी जीव-मात्र के स्रोत उस भूतभावन के प्रति हमारी उदासीनता आश्चर्यजनक है। हमारे अहंकार से वह कुछ ही कम है।

इस उत्तर से मुझे सन्तोष नही है, जो मै संन्यासी को दे रहा हूं। उनके पत्र से, जो कि हिन्दी मे लिखा हुआ है, मुझे ज्ञात होता है कि वह स्वयं सत्य की खोज मे हैं। इसीलिए मुझे उनके प्रश्न का उत्तर इस तरह प्रकाश्यरूप से देना पड़ा। स्वयं मेरी दशा तो वड़ी दयनीय है। प्राणिमात्र की किसी भी रूप में हिंसा देख कर मेरी वुद्धि तो वलवा कर देती है। पर मेरा हृदय अभी इतना मजवूत नही हो पाया जिससे मै उन प्राणियों को अपना मित्र वना लूं जिन्हें अनुभव ने हिंस्र सावित किया है। इसीलिए प्रत्यक्ष अनुभव से पैदा होनेवाले विश्वास की निर्भ्रान्त भाषा

मेरे पास नहीं है। यह हालत तबतक बराबर बनी रहेगी जबतक कि मैं सांप, बाघ आदि प्राणियों से डरने योग्य कायर बना रहूंगा।

मै इस प्रश्न का उत्तर बड़ी झिझक के साथ दे रहा हूं। पर मुझे मालूम हुआ कि जाति खोने के भय से यदि मैं अपना विश्वास जाहिर न कर दूगा तो वह अनुचित होगा। क्योंकि दक्षिण अफ़्रीका में मेरे मित्र एक बार मुझे ऐसा ही समझने लग गये थे। एक दिन हम खाना खा रहे थे, और इसी विषय पर बातचीत छिड़ गई। उन्होंने मेरे पुनर्जन्म, गोरक्षा, निरामिषाहारविषयक विचारों की पर्वा नही की; यद्यपि वे उन्हें बड़े विचित्र दिखाई दिये पर उन्हें यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ—मुझ पर अविश्वास हो गया, जो उनके चेहरों पर स्पष्ट दिखाई देने लगा—कि यदि परमात्मा मुझे बल दें तो मैं सांप को भी नही मारना चाहूंगा, भले ही मुझे निश्चय हो जाय कि उसके न मारने से मेरी जान का पूरा-पूरा खतरा है। शीघ्र ही अविश्वास को हंसी ने दबा दिया और वह हंस कर बोले—"अरे, तब तो आप बड़े भारी खतरनाक आदमी हैं।"

—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, २३।६।१९२७।]

३१. धर्म के नाम पर अधर्म

मथुरा से एक भाई लिखते हैं—

"मथुरा के पास और गोवर्धन के अति निकट जतीपुरा ग्राम में आगामी मास में छप्पन भोग का मेला होगा। वष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत गुसाईं लोगों के द्वारा इसका आयोजन किया जायगा। सुना है कि अनुमान से २-३ लाख रुपया इस कार्य में व्यय होगा। गुजरात के वैष्णवों, जिनमें मुख्यतः बम्बई के व्यापारी भाटिया हैं और जिनके यहां धर्मादे की रकम जमा रहती है, का रुपया इस मेले में व्यय किया जायगा। इस छप्पन भोग के अवसर पर १०० या इससे अधिक ब्राह्मण श्रीमद्भागवत का एक साथ पारायण करेंगे और अनेक प्रकार के भोग-व्यंजन आदि पदार्थ बनेंगे। रथयात्रा का भी यही समय होगा। सहस्रों की संख्या में गुजराती लोग इस उत्सव में शामिल होंगे। धर्म के लिए इस दिखावे को क्या आप उपयुक्त समझते हैं?

"वह व्रजभूमि श्रीकृष्ण महाराज का क्रीड़ा-स्थल है। यह किसी से छिपा नहीं है कि श्रीकृष्ण महाराज की गौ में कितनी भक्ति थी अतएव गौ की भक्ति ही इस समय सच्ची श्रीकृष्ण-उपासना है। गोवंश का इस व्रजभूमि में कितना कारुणिक दृश्य है, उसको देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मथुरा-वृन्दावन में श्रावण-भाद्रपद मास में अत्यधिक मेले लगते है। लाखों यात्री आते हैं। बाजार में अच्छा घी, दूध देखने में नहीं आता। (वनस्पति घी) और सड़े-बुसे घी का पकवान तथा मिठाई सर्वत्र ही विकती है।"

उत्तर मे बसनेवाले शास्त्र के जाननेवाले ब्राह्मण भी गुजरात के श्रद्धालु किन्तु गलत रास्ते पर चलनेवाले वैष्णवों के बारे में क्या विचार रखते है, उसे उन्ही के शब्दो में वतलाने के लिए मैने ऊपर का पत्र लेखक की ही भापा में दिया है। मिप्ठान्न भोजन कराने मे हजारो रुपये खर्च करना और इस क्रिया को वर्म समझना तो इसी युग की वलिहारी है। वैप्णव धर्म मे पराये दुःख का दर्शन ही मघ्य विन्दु है, जव कि भावुक कहे जानेवाले वैष्णवो ने उसे भोग भोगने का साधन वना डाला है। जिस तरह इस देश मे दूसरे जगहों में होता है, उसी तरह गोवर्धन मे गोवश का नाश होता जा रहा है; दूध घी की कमी की जो वात इस पत्र मे लिखी है, उसका अनुभव सभी यात्रियों को होता है। गुजरात के वनिक वैष्णव इस पत्र पर ध्यान दें, चेते और धर्म के नाम पर होते हुए अधर्म से वच जायं।

——न० जी०। हि० न० जी०, २३।८।१९२८।]

● **वैष्णव धर्म में पराये दु.ख का दर्शन ही मध्यविन्दु है।**

३२. लखनऊ की ओर

सर्वदल सम्मेलन की नियत की हुई समिति ने हिन्दुस्तान के लिए जो शासन-विघान तैयार किया है, वह छप गया है। उसकी ओर सबका ध्यान आकर्पित हुआ है। सभी हिन्दुस्तानी नेताओं ने, जिन्होंने उसके वारे में कुछ भी कहा है, उसे आशीर्वाद ही दिया है। आलोचकों को उसके वारे मे संयम के साथ और कभी-कभी अज्ञात रूप से प्रशंसा के साथ लिखना पड़ा है। इसने सभी को विचार में डाल दिया है।

इसलिए स्वभावतः ही सवकी आंखें लखनऊ की ओर लगी हुई है जहां कि डाक्टर अंसारी ने सर्वदल सम्मेलन की वैठक वुलाई है। इस रिपोर्ट ने लोगों का इतना ध्यान खीचा है कि उस पर विचार करने के लिए, ऐसी आशा की जाती है, अवश्य ही एक वड़ी और प्रतिनिधि सभा होगी।

मगर यह सभा करेगी क्या? इस सम्मेलन का सारा काम चौपट कर देना और नेहरू कमेटी की सारी मिहनत वेकार कर देना वहुत ही सहज है। इतने धैर्य और परिश्रम से जो विधान तैयार किया गया है, उसे मुसलमान चाहें तो यह कह

कर तोड़ दे सकते है कि हमने जितना मांगा था उतना हमें नही मिला है। हिन्दू भी इस पर अड़ जा सकते है कि हम जौ भर भी नही हटेंगे और यों भी कुछ करना असम्भव कर दे सकते है। मगर ये सभी लोग अगर इस रिपोर्ट पर अपनी-अपनी व्यक्तिगत दृष्टि से विचार करे तो भूल करेंगे। फिर हमें सहज ही कोई ऐसी चीज नही मिल सकेगी, जैसी कि इतने प्रतिनिधिक लोगों के हस्ताक्षर के साथ इस रिपोर्ट के रूप में मिली है।

इसलिए सभी लोग रिपोर्ट पर केवल एक ही दृष्टि से यानी राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करें। इस समिति की रिपोर्ट में सबको अपनी उड़ान भरने का पूरा अवकाश है। हर एक समुचित स्वार्थ की रक्षा की इसमें पूरी व्यवस्था है बशर्ते कि उसमें फैलने की शक्ति हो। मताधिकार तो जितने लोगों को देना सम्भव हो सकता है, दिया गया है।

हां, अधीर, अत्यन्त एक पक्षवादी लोग तो इससे असन्तुष्ट होगे ही। वे जान जायं कि इस रिपोर्ट मे प्रायः विरोधी विचार रखनेवालो के बीच भी जो महत्तम समापवर्त्य है यानी जो अधिक-से-अधिक समान बातें है वही दी गई है। सभी दलों के प्रतिनिधियो की तैयार की हुई इस रिपोर्ट का इतना विरोध करना कि सारा मेल टूट जाय, अराष्ट्रीय काम होगा।

समयानुसार नीति ग्रहण करने का खयाल भूल कर भी, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस रिपोर्ट से सभी समुचित आकाक्षाओं को सन्तोष मिलता है और यह रिपोर्ट अपने ही वल पर खड़ी रह सकती है। इसलिए नेहरू कमिटी की रिपोर्ट को सांगोपांग करने के लिए सिर्फ इतनी ही जरूरत है कि हम पारस्परिक विश्वास रक्खे, थोड़ा-सा अपनी ओर भी झुकें और थोड़ा-सा दूसरे पक्ष का भी झुकना स्वीकार करें और अपने-अपने छोटे व्यक्तित्व में नही किन्तु इस राष्ट्र में खूब विश्वास रक्खें, जिसके हम सभी एक एक नम्र सभ्य है।

——यं० इं०। हि० न० जी०, २३।८।१९२८।]

३३. लखनऊ के बाद

वारडोली की विजय के वाद तुरत ही लखनऊ का भी वहुत वड़ा मोर्चा मारना घटनाओ का वड़ा ही सुन्दर मेल कहा जायगा। आज पण्डित मोतीलाल नेहरू के समान हिन्दुस्तान में और किसको गर्व है और उनका गर्व करना भी योग्य ही है। मगर यदि सव किसी ने इस सभा को सफल वनाने का आयोजन न किया होता तो

वह अकेले भी कुछ नही कर सकते थे। हिन्दू या मुसलमान सहज ही अडंगा लगा दे सकते थे। सिक्खों में भी यह शक्ति थी। मगर नेहरू समिति के इतने घोर परिश्रम के काम को चौपट कर देने का दिल किसी मे नही था। तव इसमें आश्चर्य ही क्या है कि अदम्य आशावादी पण्डित मालवीय जी ने कहा कि सन् १९३० में स्वराज्य मिल जायगा।

इस सुखद परिणाम का श्रेय पं० मोतीलाल जी के साथ डा० अंसारी को भी है। लखनऊ की सभा को व्यवस्था-चातुरी के साथ चलाने की और दूसरी प्रत्यक्ष सहायताओं से कही वड़ी उनकी अप्रत्यक्ष सहायता थी। नेहरू समिति जव वुलाती, वह उसकी सेवा में हाजिर होते थे। मुसलमानों पर उनका प्रभाव लासानी है। उनके विरोध को जीतने में उन्होंने उसका पूरा-पूरा उपयोग किया। उनकी प्रत्यक्ष ईमानदारी और वैसी ही प्रत्यक्ष राष्ट्रीयता का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़े विना नही रह सकता था। सर तेजवहादुर सप्रू के नेतृत्व में शामिल होकर उदार दलवालों ने सभा को वह विजय दी जो उनके विना नही मिलती। मैं डाक्टर वेसेण्ट के साथ-साथ यह चाहता हूं कि वह राष्ट्रीय संस्था (महासभा) में फिर शामिल हो जायं। जिस तरह कि हिन्दू या मुसलमान अपना व्यक्तित्व नही खोते है, उसी तरह उनके लिए भी अपना व्यक्तित्व खोना जरूरी नही है।

उदार दलवालों का उल्लेख हमें आगे के काम पर-लाता है। अव भी वहुत से राजनीति-कुशलता के काम करने है। मगर उससे भी अधिक जरूरी है प्रजा को तैयार करना। पं० जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है कि चाहे वह औपनिवेशिक स्वराज्य हो या स्वतन्त्रता हो, मगर राष्ट्रीय माग यदि पूरी करानी है तो जनता के प्रवल लोकमत का सहारा आवश्यक होगा। अव यदि यह लोकमत अहिंसक होता है तो वारडोली ने रास्ता दिखला दिया है। अहिसा महासभा के मन्तव्य का एक आवश्यक अंग है। इसमें कोई शक नही है कि वारडोली के पहिले अहिसा की वात जरा ढीली पड़ गई थी। मगर जिस तरह कि नेहरू रिपोर्ट के जरिए सर्वमत से माग करना सम्भव हो गया है, उसी तरह वारडोली ने अहिंसा पर से उठता हुआ विश्वास फिर से लौटा लिया है।

इसलिए अगर हमें जनता के सहारे का निश्चय हो तो फिर इस फेर में पड़ने की कोई जरूरत नही है कि हम स्वराज्य का नाम औपनिवेशिक स्वराज्य रखते है या स्वतन्त्रता। अगर हमें जनता के प्रवल लोकमत का सहारा रहा तो औपनिवेशिक स्वराज्य सहज ही स्वतन्त्रता से भी वडी चीज हो सकती है और उसके विना स्वतन्त्रता भी सहज ही महज तमाशा भर वन जा सकती है। अगर हमें असल चीज मिल जाय तो फिर नाम में क्या रक्खा हुआ है। आप गुलाव को गुलाब ही कहें या और कुछ

कहें मगर इससे उसकी सुगन्ध में कोई फर्क नही पड़ जायगा। इसलिए हम यह निश्चय कर ले कि यह लोकमत अहिंसक होगा या हिंसक और फिर सभी कार्यकर्त्ता सच्ची लगन से उसे पैदा करने में लग जायं, जैसा कि नेताओं को भी जरूर ही शासन-विधान बनाने में सिर खपाते रहना पड़ेगा।

—यं० इं०। हि० न० जी, ६।११।१९२८।]

३४. फन्दे

पं० जवाहरलाल नेहरू लखनऊ की दुर्घटना का वर्णन करते हुए अपने खानगी खत में मुझे लिखते है—

"कल सुबह एक घटना हुई जो आपको मजेदार मालूम होगी। मैंने अपने वक्तव्य में उसका जिक्र नहीं किया है। जब पुलीस और सवारों ने हमको स्टेशन तक पीछे खदेड़ दिया, एक नवयुवक मेरे नजदीक आया और मुझसे कहा कि अगर आप चाहें तो मैं भी अभी एक तमंचा आपको लाये देता हूँ (मैंने उसको एक विद्यार्थी समझा था)'। पुलीस के डण्डों और लाठियों की मार अभी ताजी थी और लोग गुस्से में उत्तेजित हो रहे थे। मैं समझता हूँ, उसने सोचा होगा कि तमंचा देने का यह बड़ा अच्छा मौका है। मैंने उससे कहा—हटो, ऐसी बेवकूफी न करना। लेकिन थोड़ी ही देर के बाद मुझे अचानक पता चला कि वह व्यक्ति खुफिया का आदमी था।"

पं० जवाहरलाल तो मजे में सुरक्षित है क्योंकि वह किसी छिपी साजिश को पसन्द नही करते। यदि अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए उन्हें अपनी तजवीजों में तमंचो की जरूरत मालूम होगी तो वह किसी भी बाहरी आदमी की मदद की राह न देखेंगे। खुद खुल्लमखुल्ला तमंचा बांधेंगे और जब देखेंगे कि मौका आ गया है, धड़ाके से उसे चलावेंगे भी। इसलिए वह खुफिया पुलिस की इस सहायता के चक्कर में नहीं आ सकते थे। और जो बात पण्डित जवाहरलाल के सम्बन्ध में है, वही तमाम महासभावादियों के लिए कही जा सकती है, क्योंकि महासभा के क्षेत्र में गुप्त षड्यन्त्रों के प्रति दुर्भाव पाया जाता है और यह खुशी की बात है। महासभावालों ने दरवाजे बन्द करके गुपचुप बातें करना बन्द कर दिया है। खुफिया पुलीस के डर को उन्होंने दूर भगा दिया है।

पर खुफिया पुलीस के पास यदि ऐसे गुप्तचर न हों जो और बातों के साथ-साथ लोगों को फुसलाते और ललचाते रहें, और अपने रचे जाल मे फंसाते रहें तो

वह अकेले भी कुछ नही कर सकते थे। हिन्दू या मुसलमान सहज ही अडंगा लगा दे सकते थे। सिक्खो मे भी यह शक्ति थी। मगर नेहरू समिति के इतने घोर परिश्रम के काम को चौपट कर देने का दिल किसी में नही था। तव इसमें आश्चर्य ही क्या है कि अदम्य आशावादी पण्डित मालवीय जी ने कहा कि सन् १९३० में स्वराज्य मिल जायगा।

इस सुखद परिणाम का श्रेय पं० मोतीलाल जी के साथ डा० अंसारी को भी है। लखनऊ की सभा को व्यवस्था-चातुरी के साथ चलाने की और दूसरी प्रत्यक्ष सहायताओं से कही बड़ी उनकी अप्रत्यक्ष सहायता थी। नेहरू समिति जव वुलाती, वह उसकी सेवा में हाजिर होते थे। मुसलमानों पर उनका प्रभाव लासानी है। उनके विरोध को जीतने में उन्होने उसका पूरा-पूरा उपयोग किया। उनकी प्रत्यक्ष ईमानदारी और वैसी ही प्रत्यक्ष राष्ट्रीयता का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़े विना नही रह सकता था। सर तेजवहादुर सप्रू के नेतृत्व में शामिल होकर उदार दलवालो ने सभा को वह विजय दी जो उनके विना नही मिलती। मैं डाक्टर वेसेण्ट के साथ-साथ यह चाहता हूं कि वह राष्ट्रीय संस्था (महासभा) मे फिर शामिल हो जाय। जिस तरह कि हिन्दू या मुसलमान अपना व्यक्तित्व नही खोते हैं, उसी तरह उनके लिए भी अपना व्यक्तित्व खोना जरूरी नही है।

उदार दलवालो का उल्लेख हमें आगे के काम पर लाता है। अव भी वहुत से राजनीति-कुशलता के काम करने है। मगर उससे भी अधिक जरूरी है प्रजा को तैयार करना। पं० जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही लिखा है कि चाहे वह औपनिवेशिक स्वराज्य हो या स्वतन्त्रता हो, मगर राष्ट्रीय मांग यदि पूरी करानी है तो जनता के प्रवल लोकमत का सहारा आवश्यक होगा। अव यदि यह लोकमत अहिंसक होता है तो वारडोली ने रास्ता दिखला दिया है। अहिसा महासभा के मन्तव्य का एक आवश्यक अंग है। इसमे कोई शक नही है कि वारडोली के पहिले अहिसा की वात जरा ढीली पड़ गई थी। मगर जिस तरह कि नेहरू रिपोर्ट के जरिए सर्वमत से मांग करना सम्भव हो गया है, उसी तरह वारडोली ने अहिसा पर से उठता हुआ विश्वास फिर से लौटा लिया है।

इसलिए अगर हमें जनता के सहारे का निश्चय हो तो फिर इस फेर में पड़ने की कोई जरूरत नही है कि हम स्वराज्य का नाम औपनिवेशिक स्वराज्य रखते है या स्वतन्त्रता। अगर हमे जनता के प्रवल लोकमत का सहारा रहा तो औपनिवेशिक स्वराज्य सहज ही स्वतन्त्रता से भी वड़ी चीज हो सकती है और उसके विना स्वतन्त्रता भी सहज ही महज़ तमाशा भर वन जा सकती है। अगर हमें असल चीज मिल जाय तो फिर नाम में क्या रक्खा हुआ है। आप गुलाव को गुलाव ही कहें या और कुछ

है वल्कि असीम नैतिक बुराई का भी कारण बन रहा है, वे उसके जाल में फँसते जाते है।

३५. पण्डित सुन्दरलाल की पुस्तक

युक्तप्रान्त की सरकार ने पण्डित सुन्दरलाल की 'भारत में अंग्रेजी राज्य' नामक पुस्तक को जब्त करने में बड़ी सख्ती से काम लिया था। लेकिन उसे इतने से ही सन्तोष न हुआ। अब वह उन लोगों को भी सता रही है, जिनके पास जब्ती से पहले उक्त पुस्तक की प्रतियां पहुंच चुकी थी, या जिनके पास उसके होने का सरकार को शक है। युक्तप्रान्त की सरकार की प्रेरणा से हो या स्वेच्छा से हो, मध्यप्रान्त की सरकार ने भी यू० पी० सरकार की नकल करते हुए अपने प्रान्त में इस पुस्तक का प्रवेश रोक दिया है। एक सम्वाददाता पूछते हैं, अब वे लोग क्या करें जिनके पास उक्त पुस्तक है? मेरे विचार में जिन लोगों के पास वह पुस्तक है उनके लिए यह जरूरी नही है कि वे उसकी जिल्दों को पुलीस के हवाले कर दें। पुस्तक को अपने पास रखने से किसी तरह नीति का भंग नही होता। और जो लोग पुस्तक की जब्ती को दुष्टतापूर्ण लूट समझते हैं उनका न केवल यह कर्त्तव्य ही नही है कि वे जब्ती के काम में सरकार की मदद न करें वल्कि उन्हें तो चाहिए कि वे हर कानूनी उपाय से अधिकारियों की उन घोर दुष्टतापूर्ण हरकतों को असफल बनावें, जिनके जरिए वे पुस्तक की उन प्रतियों को भी हड़प जाना चाहते है, जो प्रकाशक के हाथ से निकलकर ग्राहकों तक पहुंच चुकी हैं। अगर मेरे पास उस पुस्तक की कोई जिल्द होती और मैं सरकारी अभियोग की जोखिम को सिर पर न लेना चाहता तो अपना कर्त्तव्य समझ कर उसे जला डालता। लेकिन अगर मैं सरकार के अभियोग को अपने सिर लेना चाहता तो तुरन्त ही पुलिस को सूचना करता कि पुस्तक मेरे पास सुरक्षित है और उसे चुनौती देता कि वह मुझे गिरफ्तार कर ले। अगरचे मैं खुद होकर अभियोग बुलाना न चाहता, मगर वह आता तो उसकी चिन्ता भी न करता और उस हालत में भी मैं पुस्तक को अपने पास ही रखना कर्तव्य समझता और पुलिस को स्वयं उसका पता लगाने का अवसर देता।

मुझे मालूम हुआ है कि मध्य प्रान्त की सरकार की उस विज्ञप्ति के अनुसार उक्त पुस्तक में से उद्धरणो का छापना भी जुर्म करार दिया गया है। आशा है यह

खबर झूठी होगी। लेकिन अगर यह सच है तो समाचारपत्रों के लिए जहां ग्रन्थकर्ता और प्रकाशक के प्रति क्रियात्मक सहानुभूति प्रकट करने का यह एक अच्छा साधन है, तहां इसी के द्वारा इस आज्ञा का प्रचार करनेवाली सरकारों के प्रयत्न विफल भी किये जा सकते है। यह काम इस तरह किया जा सकता है कि जिनके पास पुस्तक की प्रतियां है वे समाचारपत्रो के पास उसके चुने हुए अवतरण भेजें और समाचारपत्र उन्हें छापें। केन्द्रीय और स्थानीय सरकारें हमे सौम्य सविनय अवज्ञा के मौके दे रही है, अतः जो लोग सविनय अवज्ञा में विश्वास रखते है वे इन अवसरों से लाभ उठाने में न चूकें। यद्यपि इस समय देश का वातावरण अत्यन्त निराशाजनक और कायरतापूर्ण है फिर भी कार्यकर्त्ताओं को, आशा और उत्साह का सन्देश देनेवाले हर कानूनी उपाय से सरकार को चुनौती देनी चाहिए ताकि वह पूरी तरह अपनी राक्षसी ताकत की आजमाइश कर सके।

—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, १६।५।१९२९।]

३६. हिमालय की अनुपम शोभा

शिमला और दार्जिलिंग भी हिमालय के प्रदेश है किन्तु वहां मुझे हिमालय की महिमा का भान न हो सका। वहां मै रहा भी थोड़े समय तक, फिर भी मुझे वह प्रदेश एक अंग्रेजी वस्ती-जैसा ही लगा। अलमोड़ा आकर अलवत्ता मै इस वात की कल्पना कर सका कि हिमालय क्या है। यदि हिमालय न हो तो गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु भी न हो; हिमालय न हो तो ये नदियां न हों, न वर्षा हो और वर्षा न हो तो भारत रेगिस्तान या सहारा की भूमि बन जाय। इस बात को जाननेवाले और सदैव हर बात के लिए ईश्वर का उपकार माननेवाले हमारे दीर्घदर्शी पूर्वजो ने हिमालय को यात्रा-धाम वना दिया था। इस प्रदेश में हजारों हिन्दुओं ने ईश्वर की शोध में अपनी देह का बलिदान किया है। वे पागल न थे। उनकी तपश्चर्या का ही फल है कि आज हिन्दू-धर्म और हिन्दुस्तान जीवित है।

कौसानी मे सूर्य के प्रकाश मे नाचती हिम-मण्डित शिखर-श्रेणी का दर्शन करते हुए मै यह विचार कर रहा था कि हिमालय के इन धवल शिखरों को देखकर भिन्न-भिन्न कोटि के लोगो मे क्या विचार आयेगा। उस समय जो विचार एक-पर-एक आते गये, पाठकों को भी उनका भागीदार बनाकर मन को हलका कर लेता हूं।

वालक उस दृश्य को देखे तो कह उठें कि यह तो फेनों का पहाड़ है, पहाड़।

चलो, हम दौड़ चलें और उस पर दौड़ते हुए फेनी चखें। मुझ-जैसा चर्खे का दीवाना कहेगा: कपास बिनकर, लोढ़कर और रुई पीजकर किसी ने रेशम-जैसी रुई का अखूट पहाड़ खड़ा कर रक्खा है। इस देश के लोग कैसे पागल हैं कि इतनी रुई रहते हुए भी नंगे-भूखे और मारे-मारे फिरते है। धर्मनिष्ठ पारसी देखेगा तो सूर्यदेव को नमस्कार करता हुआ कहेगा: अभी हाल सन्दूक में से निकाली हुई नई, दूध-जैसी पगड़ी और वैसे ही इस्त्रीबन्द तह किये हुए जामे पहने पर्वत रूप दस्तूर सूर्यनारायण के दर्शन में लीन होकर, हाथ जोडकर स्थिरचित्त खड़े है और शोभा बढ़ा रहे है। भावुक हिन्दू इन जगमगाते और साथ ही सुदूर घने बादलों में से पानी झेलते हुए शिखरों को देखकर कहेगा: यह तो साक्षात् दया के भण्डार शिवजी अपनी उज्वल जटा में गंगाजी को रोक रहे है और सारे भारत को प्रलय से वचा रहे है।

शंकराचार्य अलमोड़ा में घूमे थे। उन्हें आज भी यह कहते सुन रहा हूं—सचमुच यह अद्भुत दर्शन है, किन्तु सब ईश्वरीय माया है। न हिमालय है, न मैं हूं, न तू है, जो कुछ है, वह है, ब्रह्म है। वही सत्य है, जगत् मिथ्या है। वोलो ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

पाठको! सच्चा हिमालय तो हमारे हृदय में है। इस हृदय रूपी गुफा में छिपकर उसमें शिव-दर्शन करना ही सच्ची यात्रा है, यही पुरुपार्थ है।

—गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, १८।७।१९२९।]

३७. भारत की सभ्यता

सन् १९२४ में जव मैं संयुक्त प्रान्त में भ्रमण कर रहा था, अयोध्याजी के नजदीक एक किसान ने पुकार कर मेरी गाड़ी में एक पर्चा फेंका था। मैंने उस पर्चे को उठाया और देखा कि उसमें उसने तुलसीदास जी के रामचरितमानस में से कई उपयोगी चौपाइयां और दोहे उद्धृत किये है। यह देखकर मुझे हर्ष हुआ और भारतवर्ष की सभ्यता के प्रति मेरे मन में आदर वढ़ा। उस पर्चे को मैंने अपने कागजों में इस इच्छा से रख छोड़ा था कि किसी-न-किसी रोज उसे 'नवजीवन' में दे दूंगा।

वैसे, प्रति सप्ताह मैं उसे देखकर छोड़ देता था। क्योंकि जव वह पर्चा मुझे मिला था मै हिन्दी-नवजीवन के लिए कुछ नही लिखता था। गुजराती 'नवजीवन' के लिए मैंने उसे उतना उपयोगी नही समझा था, जितना 'हिन्दी नवजीवन'

के लिए। पर्चे का एक हिस्सा गुजराती और हिन्दी में सन् १९२७ में दिया गया था।

अव चूंकि मै प्रति सप्ताह कुछ-न-कुछ 'हिन्दी नवजीवन' के लिए विशेप रूप से लिखता हूं और चूकि अव शीघ्र ही फिर से मेरा यु० प्रा० का दौरा आरम्भ होता है, उस पर्चे का दूसरा हिस्सा यहा देता हूं:

(वर्तमान स्थिति के सुधार मे वाधा डालनेवालों के लक्षण)

काहु सुमति कि खल-सँग जामी,
सुभ गति पाव कि परतिय गामी।
राज कि रहै नीति विनु जाने,
अघ कि रहै हरि चरित वखाने।
अघ कि पिसुनता सम कछु आना,
धर्म कि दया सरिस हरिजाना।
यहा न पक्षपात कछु राखौ,
वेद पुराण संत मत भाखौ।
अरिबस दैव जियावत जाही,
परम नीक तेहि जियव न चाही।
सत्य वचन विश्वास न करही,
वायस इव सवही सन डरही।
मांगौ भीख त्याग निज धरमू।
आरत काह न करै कुकरमू।
क्रोध कि द्वैत वुद्धि विनु, द्वैत कि विनु अज्ञान।
माया-वस परछन्न जड़, जीव कि ईस समान।
और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवंत गति, को जग जाने जोग।
परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पाप मय, देह धरे मनुजाद।
भाग छोट अभिलाख वड, करउँ एक विश्वास।
उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरिहि खल रीति।
भले भलाई ते लहहि, लहहि निचाई नीच।
संत सरलचित जगत हित, जाति सुभाव सनेह।

मैने इसमें से स्तुति के वचन निकाल डाले हैं। इस किसान भाई के अक्षर स्पष्ट हैं और जो लिखा है, सजाकर लिखा है।

सब इतिहासकारों ने गवाही दी है कि जो सभ्यता भारत के किसानों में पाई जाती है, दुनिया के और किन्ही किसानों मे नही पाई जाती। यह पर्चा इस बात का एक उदाहरण है। भारत की सभ्यता की रक्षा करने में तुलसीदासजी ने बहुत अधिक भाग लिया है। तुलसीदास के चेतनमय रामचरित-मानस के अभाव में किसानों का जीवन जड़वत् और शुष्क बन जाता। पता नही कैसे क्या हुआ, परन्तु यह तो निर्विवाद है कि तुलसीदास जी की भाषा में जो प्राणप्रद शक्ति है वह दूसरों की भाषा में नही पाई जाती। रामचरित-मानस विचार-रत्नों का भण्डार है। उनकी कीमत का कुछ अन्दाजा हम उपर्युक्त दोहों और चौपाइयो से लगा सकते है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि किसान लेखक ने इन चौपाइयों और दोहों को ढूंढ़ने मे कोई खास परिश्रम नही किया है, हां, अपने कण्ठस्थ भाण्डार में से जो याद हो आये वही दे दिये है।

जब हम एक किसान के मुख से—

शुभ गति पाव कि परतिय गामी।
राज कि रहै नीति बिनु जाने।
अघ कि रहै हरिचरित बखाने।
अघ कि पिसुनता सम कछु आना।
धर्म कि दया सरिस हरिजाना।

आदि वचनों को सुनते हैं, तब भारतवर्ष की नीति के सम्बन्ध में हमें कभी निराशा हो नही सकती।

आज-कल यह कहा जाता है कि हमारे किसान अन्धकार में पड़े हैं, हमारा देश तमस्-प्रधान है, इसलिए उसे रजस् में प्रवेश करना होगा। पहली बात तो यह है कि मैं इस कथन में विश्वास ही नहीं रखता कि तमस्, रजस् और सत्व के बीच ऐसा कोई यान्त्रिक भेद है, जिसके कारण हमें एक कमरे में से दूसरे में अवश्य जाना ही पड़े। मेरे विचार मे, प्रायः हर एक मनुष्य में तीनो गुण कुछ-न-कुछ अंश में होते है। भेद केवल मात्रा का है। मेरा अपना दृढ़ विश्वास है कि हमारा देश तमस्-प्रधान नही, बल्कि सत्व-प्रधान है। और उक्त पर्चा इस बात का एक यत्किंचित् प्रमाण है। अगर यह पर्चा असाधारण बात होती तो यह सत्व-प्रधानता का थोड़ा भी प्रमाण न हो सकता। परन्तु जब हम जानते हैं कि हमारे किसानों को तुलसीदास जी के दोहे-चौपाई कण्ठस्थ है और वे उनके अर्थ को भी समझते हैं, तब हम अवश्य कह सकते हैं कि जिन लोगों में ऐसे विचार प्रचलित हैं

उनकी सभ्यता के सत्व-प्रधान होने का यह कुछ नहीं तो एक प्राथमिक प्रमाण भी है।

—हिं० न० जी०, ५।९।१९२९।]

- तुलसीदास जी की भाषा में जो प्राणप्रद शक्ति है, वह दूसरों की भाषा में नहीं पाई जाती।
- रामचरित मानस विचार-रत्नों का भाण्डार है।

३८. दो प्रश्न

मैं जब आगरे मे था, एक सज्जन ने यह पत्र लिखा था—

"मेरे चित्त में बार-बार यह विचार उठता है कि मैं आपसे मिलूं और कुछ शंकाएं दूर करूं परन्तु मिलना कठिन है, क्योंकि लोग मिलने नहीं देते। इसलिए पत्र-द्वारा नीचे लिखे प्रश्न भेजता हूं। आशा है उत्तर पाकर शान्ति अथवा अशान्ति कुछ-न-कुछ तो अवश्य होगी।

१. आप इस पृथ्वी भर की जनता के प्रति कितना प्रेम रखते हैं?

क. सारे भारतवर्ष पर कितना प्रेम रखते हैं?

ख. गुजरात देश के प्रति कितना प्रेम रखते हैं?

२. क्या आपको भारत भर में भ्रमण करने पर भी भारत की दशा का ज्ञान है? यदि हां, तो भारतवर्ष की कैसी दशा है?

क. प्रान्त प्रान्त की दशा का भी बोध हो तो लिखें—किस-किस प्रान्त की कैसी, क्या दशा है?"

यदि इन महाशय को मेरे पास आने से किसी ने रोका है तो दुःख और शर्म की बात है। हा, यह होता था सही कि बेचारे स्वयंसेवक मेरे स्वास्थ्य की रक्षा की फिक्र में रहते हुए समय का खयाल अवश्य रखते थे। उनका प्रेम मुझे उनसे मिलनेवालों से बचाने में खर्च होता था। प्रश्नकारों एवं दर्शनाभिलापियों का प्रेम उनसे समय की मर्यादा का उल्लंघन करवाता था। प्रेम की दो विरुद्ध दिशा होने के कारण कुछ खीचतान जरूर होती थी। मिलनेवालों को कुछ कष्ट भी होता था, परन्तु शाम की प्रार्थना के समय सब आ सकते थे। किसी को रोकटोक न थी और प्रार्थना खुले मैदान में होने के कारण सब कोई आ जाते थे। हर एक को इतना तो समझ लेना चाहिए था कि जब एक के अनेक मिलनेवाले रहते है तब कुछ-न-कुछ मर्यादा आवश्यक हो जाती है।

अब प्रश्न पर आऊं।

इस पृथ्वी भर की जनता के प्रति एक अल्पप्राणी जितना समभावी हो सकता है, उतना होने की मैं कोशिश करता हूं। इसलिए भारतवर्ष पर और गुजरात पर उतना ही प्रेम करने की चेष्टा करता हूं जितना पृथ्वी के अन्य प्रदेशों पर। लेकिन इस समभाव का अर्थ यह नही है कि मेरी सेवा सबको एक-सी मिलती है या मिल सकती है। मेरी आत्मा काल, स्थल और प्रसंग के बन्धन से मुक्त होने के कारण उसका प्रेम तो सबके प्रति समान मात्रा में बॅट जाता है। परन्तु चूंकि शरीर बहुत ही मर्यादित है, शरीर और शरीरस्थ इन्द्रियों से जो सेवा होती है वह भी मर्यादित है। इसमें मेरी भावना का कोई दोष नही है। यह दोष विधि का है। शायद, इस दोष के कारण भारतवर्ष को ऐसा अनुभव होता होगा कि मै विशेषतया उसी का हूं और गुजरात का इससे भी अधिक। गुजरात में भी उद्योग-मन्दिरवासियों का और भी अधिक। वस्तुतः उद्योग मन्दिर की मार्फत मेरी सेवा सारे जगत् को मिलती है। क्योंकि उद्योग मन्दिर की मेरी सेवा न गुजरात की, न भारतवर्ष की, न और जगत की सेवा की ही विरोधिनी है। और इसी को मैं स्वच्छ स्वदेशाभिमान मानता हूं, तथा इसी में मेरी कर्त्तव्य-परायणता रही है। ऐसे ही अनुभवों पर से 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' महावाक्य की घोषणा हुई है।

अब दूसरा प्रश्न।

मेरी नम्र सम्मति में भारतवर्ष की दशा का मुझे ठीक ज्ञान हुआ है। इसका कारण मेरा भ्रमण नही, परन्तु सच्ची दशा जानने की मेरी तीव्र इच्छा है। पश्चिम से बहुतेरे मुसाफिर कुतूहल-वश यहां चले आते है, वे मुझसे भी ज्यादा भ्रमण करें तो भी भारत की दशा नही जान सकते, क्योंकि उनमें वह जिज्ञासा नही होती। मेरा भ्रमण देश की दशा जानने में कारणभूत तो था, परन्तु उसकी जड़ इच्छा में छिपी हुई थी। प्रान्त-प्रान्त की दशा में कोई भारी भेद नही है, न हो सकता है। मात्रा में कुछ न्यूनाधिक रहना सम्भव है। भारतवर्ष पराधीन है और कंगाल है। यह उसका महारोग है। इसका उपचार हुआ तो सबका हुआ। यदि इसका न हुआ तो और किसी चीज का नही हो सकता। इतनी सीधी-सादी, सरल बात जो समझेगा उसे भारतवर्ष के दुःखों के निवारण के लिए जो इलाज मैंने बताये हैं, उन्हे समझने में कोई कष्ट नही हो सकता।

—हि० न० जी०, २६।९।१९२९।]

- **भारतवर्ष पराधीन है और कंगाल है। यह उसका महारोग है। इसका उपचार हुआ तो सबका हुआ।**

३९. तुलसीदास जी

भिन्न-भिन्न मित्र पूछते है—

'रामायण को आप सर्वोत्तम ग्रन्थ मानते हैं, परन्तु समझ में नहीं आता क्यों? देखिए, तुलसीदास जी ने स्त्री-जाति की कितनी निन्दा की है। वालि-बध का कितना समर्थन किया है। विभीषण के देशद्रोह की किस कदर प्रशंसा की है। सीताजी पर घोर अन्याय करनेवाले राम को अवतार बताया है। एसे ग्रन्थ में आप कौन सौन्दर्य देख पाते हैं? तुलसीदास जी के काव्यचातुर्य के लिए तो, शायद, आप रामायण को सर्वोत्तम ग्रन्थ नहीं समझते होगे? यदि बात ऐसी ही है तो, कहना पड़ेगा कि आपको काव्य-परीक्षा का कोई अधिकार ही नहीं।'

उपर्युक्त सब सवाल एक ही मित्र के नही हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न मित्रों ने भिन्न-भिन्न समय पर जो कुछ कहा है और लिखा है, उसका यह सार है। यदि ऐसी एक-एक टीका को लेकर देखें तो सारी की सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। सन्तोष यही है कि इस तरह प्रत्येक ग्रन्थ और प्रत्येक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। एक चित्रकार ने अपने टीकाकारों को उत्तर देने के लिए अपने चित्र को प्रदर्शिनी में रक्खा और नीचे इस तरह लिखा कि इस चित्र मे जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हो, वह उस जगह अपनी कलम से चिह्न कर दे। परिणाम यह हुआ कि चित्र के अंग-प्रत्यंग दोषपूर्ण बताये गये। मगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था। टीकाकारों ने तो वेद, बाइबिल और कुरान में भी बहुतेरे दोष बताये है, परन्तु उन ग्रन्थों के भक्त उनमें दोषों का अनुभव नहीं करते। प्रत्येक ग्रन्थ की परीक्षा पूरे ग्रन्थ के रहस्य को देख कर ही की जानी चाहिए। यह बाह्य परीक्षा है। अधिकांश ग्रन्थ की आन्तरिक परीक्षा की जाती है। किसी भी साधन से क्यों न देखा जाय रामायण की श्रेष्ठता ही सिद्ध होती है। ग्रन्थ को सर्वोत्तम कहने का यह अर्थ कदापि नही कि उसमें एक भी दोष नही है। परन्तु रामचरित मानस के लिए यह दावा अवश्य है कि उससे लाखो मनुष्यों को शान्ति मिली है। जो लोग ईश्वर-विमुख थे वे ईश्वर के सम्मुख गये है और आज भी जा रहे है। मानस का प्रत्येक पृष्ठ भक्ति से भरपूर है। मानस अनुभव-जन्य ज्ञान का भण्डार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पाप का समर्थन करने के लिए रामचरितमानस का सहारा लेते है। इससे यह सिद्ध नही हो सकता कि वे लोग रामचरितमानस में से अकेले पाप का ही पाठ सीखते हैं। मै स्वीकार करता हूं कि तुलसीदासजी ने स्त्रियों पर अनिच्छा से अन्याय किया है। इनमें और ऐसी ही अन्य बातो में तुलसी-

दास जी अपने युग की प्रचलित मान्यताओं से परे नहीं जा सके थे अर्थात् तुलसीदास जी सुधारक नही, बल्कि भक्त-शिरोमणि थे। इसमें हम तुलसीदास जी के दोषों का नहीं परन्तु उनके युग के दोषों का दर्शन अवश्य करते है।

ऐसी दशा में सुधारक क्या करें? क्या उनको तुलसीदास जी से कुछ सहायता नही मिल सकती? अवश्य मिल सकती है। रामचरितमानस में स्त्री-जाति की काफी निन्दा मिलती है, परन्तु उसी ग्रन्थ-द्वारा सीताजी के पुनीत चरित्र का भी हमें परिचय मिलता है। बिना सीता के राम कैसे? राम का यश सीताजी पर निर्भर है: सीताजी का रामजी पर नही। कौशल्या, सुमित्रा आदि भी मानस के पूजनीय पात्र हैं। शबरी और अहल्या की भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राक्षस था, मगर मन्दोदरी सती थी। ऐसे अनेक दृष्टान्त इस पवित्र भण्डार में से मिल सकते हैं। मेरे विचार में इन सब दृष्टान्तों से यही सिद्ध होता है कि तुलसीदास जी ज्ञान-पूर्वक स्त्री-जाति के निन्दक नही थे। ज्ञान-पूर्वक तो वह स्त्री-जाति के पुजारी ही थे। यह तो स्त्रियों की बात हुई। परन्तु बालि-बधादि के बारे में भी दो मतों की गुजाइश है। विभीषण में तो मै कोई दोष नही पाता हूं। विभीषण ने अपने भाई के साथ सत्याग्रह किया था। विभीषण का दृष्टान्त हमें यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासक के दोषों के प्रति सहानुभूति रखना या उन्हें छिपाना देशभक्ति के नाम को लजाना है। इसके विपरीत देश के दोषों का विरोध करना सच्ची देश-भक्ति है। विभीषण ने रामजी की सहायता करके देश का भला ही किया था। सीताजी के प्रति रामचन्द्र के बर्ताव में निर्दयता नही थी, उसमें राजधर्म और पति-प्रेम का द्वन्द्व-युद्ध था।

जिसके दिल में इस सम्बन्ध की शंकाएं शुद्ध भाव से उठें, उन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी और के अर्थ को यन्त्रवत् स्वीकार न करें। जिस विषय में हृदय शंकित है, उसे छोड़ दें। सत्य-अहिंसादि की विरोधिनी किसी वस्तु को स्वीकार न करें। रामचन्द्र ने छल किया था, इसलिए हम भी छल करें, यह सोचना औंधा पाठ पढ़ना है। यह विश्वास रख कर कि रामादि कभी छल नहीं कर सकते, हम पूर्ण पुरुष का ही ध्यान करें और पूर्ण ग्रन्थ का ही पठन-पाठन करे। परन्तु सर्वारम्भाहि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता न्यायानुसार सब ग्रन्थ दोषपूर्ण है, यह समझ कर हंसवत् दोष-रूपी नीर को निकाल फेंकें और गुण-रूपी क्षीर ही ग्रहण करें। इस तरह अपूर्ण में सम्पूर्ण की प्रतिष्ठा करना, गुण-दोष का पृथक्करण करना, हमेशा व्यक्तियों और युगों की परिस्थिति पर निर्भर रहेगा। स्वतन्त्र सम्पूर्णता केवल ईश्वर मे ही है और वह अकथनीय है।

—हिं० न० जी०; १०।१०।१९२९।]

४०. बोर्डों का कर्तव्य

मुरादावाद के जिला वोर्ड ने अपने स्कूलो के शिक्षकों के नाम एक विज्ञप्ति जारी की थी, जिसके अनुसार उन्हें राजनीति में भाग लेने से मना किया गया था और वह भी इस हद तक कि वे दरिद्रनारायण के लिए विद्यार्थियों या उनके माता-पिताओं से चन्दा भी नहीं माँग सकते। मुझे यह जानकर दुःख हुआ। इसी वोर्ड ने मुझे एक सुन्दर डिविया में मानपत्र भेंट किया था। वोर्ड के सदस्यों को सम्भव है इस विज्ञप्ति का पता भी न हो। विज्ञप्ति या सरक्युलर का मस्विदा चाहे जिसने क्यों न वनाया हो, उसमें राजभक्ति की जो वाढ आई है वह सरकारी स्कूल और कालेजों की राजभक्ति को भी मात करती है। मुझे कई सरकारी स्कूल और कालिजों की तरफ से विद्यार्थियों को दो शव्द कहने तथा खादी के लिए थैली स्वीकार करने को वुलाया जाता है। सरकारी नौकरो ने भी खुल्लमखुल्ला इन चन्दों में रकम दी है। वहुत से लोग अव यह समझ चुके है कि खादी का राजनीति से कोई सरोकार नही है। खादी की आर्थिक शक्ति के वारे में मतभेद हो सकता है, लेकिन उसमें जो नैतिक तत्व छिपा हुआ है, कोई भी शिक्षा-शास्त्री उसका अनादर नही कर सकता। कुछ अंशों में खादी का राजनीति से भी सम्वन्ध है। लेकिन यों तो आज देश में जनता और सरकार विद्यमान हैं। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारण आमतौर पर सामाजिक समस्याएं है, लेकिन आज राजनीति के क्षेत्र में भी इन दोनों का खासा महत्व है और महासभा के रचनात्मक काम में इन्ही को अग्रस्थान दिया गया है। मै नही जानता कि कभी किसी ने इसके कारण सरकारी नौकरों को इन कामों में भाग लेने से रोका हो। ऐसे कई वोर्ड है जिन्होंने खादी के काम में उत्साहपूर्वक हाथ वँटाकर इस एकमात्र राष्ट्रीय और सार्वजनिक उद्योग के प्रचार में चर्खा संघ की मदद की है।

—न० जी०। हि० न० जी०, ३१।१०।१९२९।]

४१. राष्ट्रभाषा

जो मानपत्र मुझे संयुक्तप्रान्त में मिल रहे है, उनसे मुझे वहुत-कुछ जानने को मिलता है। इस लेख में मै उन पर भाषा की दृष्टि से ही विचार करना चाहता हूं। मेरे पास तीन नमूने है, उनमें से मैं नीचे-लिखे फिकरे चुनता हूं।

१. हमारे मदारिस[१] में कोई इम्तियाज[२] छूत-अछूत का नहीं है, और हर कौम के लड़के बिला तफरीक[३] तालीम पाते है। इस बोर्ड का हमेशा यह तर्जे अमल[४] रहा है कि अगर अछूतों के दाखले के मुताल्लिक[५] कोई सदा[६] उठती है तो उसका मजबूती से मुकाबिला किया जाता है।

जिले के बाशिन्दगान देहात[७] आम तौर पर घर रुई कतवा कर लोकल जुलाहों और कोलियों से खद्दर बुनवा कर इस्तेमाल करते है, लेकिन यह मानना होगा कि तालीम की कमी के बाइस[८] वे इसकी[९] पोलीटिकल अहमियत को महसूस नही करते और इसमें भी ऐसे लोग मौजूद है, जो इसके सयासी पहलू[१०] को नजर अन्दाज[११] करते हैं। अलावा उस खद्दर के जो लोग अपने सूत से तैयार कराते है, बिलअमूम[१२] जिले के कोली और जुलाहे जो फरोख्त[१३] के लिए कपड़ा तैयार करते है इसमें या तो दोनों सूत देसी मिलों के इस्तेमाल करते हैं, या ताने में मिल का और बाने में चर्खे का सूत लगाते है; कही-कही बख्याल निफासत[१४] विलायती सूत भी इस्तेमाल होता है, लेकिन इसका निजाम[१५] कायम किये जाने पर उन्हें शुद्ध खद्दर तैयार करने की तरगीब[१६] कामियाबी के साथ दी जा सकती है और बलिहाज पैदावार खद्दर[१७] यह जिला यू० पी० के मर्कजी मुकामात[१८] में से हो सकता है।

२ हिन्दू-मुस्लिम एकता को, जो श्रीमान ने स्वराज्य-सिद्धि का मुख्य उपाय निर्धारित किया है, उसमें कौन सन्देह कर सकता है? यह कहना अनुचित न होगा कि खादी परिधान, और हिन्दू-मुस्लिम एकता, बस, इन दो आज्ञाओं को ही यदि हम भली प्रकार स्वीकार कर लें तो स्वशासन प्राप्त करने में और किसी तीसरे साधन की आवश्यकता ही न रह जाय, अन्ततोगत्वा आज न सही तो कल विवश होकर हमको ऐक्य करना ही होगा। क्या ही अच्छा हो, अगर, जिस प्रकार हम जय-जय के नारे लगाने में जोश दिखाते हैं उसका शतांश भी कार्य करने में तत्परता धारण करें।

३. एक दूसरा महान कर्तव्य आपने हमारे आगे खादी के विषय में रक्खा है। हम आपको विश्वास दिलाना चाहते है कि खादी के सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक पहलू ने हमारे हृदयों पर गहरी अपील की है और हम अपने गरीब

---

१. विद्यालयों, २. भेदभाव। ३. अन्तर। ४. व्यवहार। ५. सम्बन्ध में। ६. आवाज। ७. ग्रामवासी। ८. कारण। ९. राजनीतिक महत्व। १०. राजनीतिक पक्ष। ११. दृष्टि से ओझल। १२. सामान्यतः। १३. विक्रय। १४. सुचारुता, बारीकी। १५, योजना, व्यवस्था। १६. अभिरुचि, १७. खद्दर के उत्पादन की दृष्टि से। १८. केन्द्रीय स्थानों।

भाई-वहिनों के भूख से तड़पते हुए पेटों मे रोटी पहुंचाने के लिए खादी के विपय में कुछ-न-कुछ यत्न कर रहे है। अभी तक लगभग २० फीसदी अध्यापक और १० फीसदी विद्यार्थी कालेज मे खादी पहन कर आते है। यह सन्तोषजनक तो किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता, पर आशा है कि, आपके आशीर्वाद से खादी के विपय में अधिक, और अधिक उन्नति होगी।

ये तीनों नमूने हिन्दी, हिन्दुस्तानी यानी राष्ट्रभाषा के है। एक केवल फारसी-अरवी शब्दों से भरा पड़ा है, जिसे सामान्य हिन्दू नही समझ सकेगा। दूसरा केवल संस्कृत शब्दो से भरा हुआ है, जिसे सामान्य मुसलमान कभी नही समझ सकता। तीसरा ऐसा है, जिसे सामान्य हिन्दू या मुसलमान, दोनों, समझ सकते है। इनमें जानवूझ कर संस्कृत या फारसी-अरवी शब्दों का त्याग या चुनाव नही पाया जाता। यदि हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा मनवाना चाहते है, यदि हिन्दू-मुसलमान, दोनों ऐक्य सिद्ध करना चाहते है, तो हम संस्कृत या अरवी-फारसी शब्दो का इरादतन वहिष्कार नही कर सकते। अर्थात् भाषा लिखते या वोलते समय हमारे मन में एक दूसरे का या एक दूसरे की वोली का द्वेप नही होना चाहिए, वल्कि एक दूसरों के लिए प्रेम अथवा मुहव्वत होनी चाहिए। मुसलमान जव किसी हिन्दू को फारसी-अरवी शब्दो का इस्तेमाल करते देखता है तो उसे खुशी हासिल होती है। इसी तरह उस मुसलमान के प्रति हिन्दू का आदर वढ़ता है, जो मौके से संस्कृत शब्दों का भी उचित उपयोग कर लेता है।

तीनो भाषाओ के उचित शब्दों को अपना लेने से हिन्दी का गौरव और विस्तार वढता है; भापा की मिठास में वृद्धि होती है। वात यह है कि जव हममें भापा-विशेष के प्रति द्वेप-भाव नही रहता तव हम उस भाषा की मदद से अपनी भाषा को सँवारने मे, उसे वढ़ाने मे, संकोच नहीं करते।

श्री रामनरेश जी त्रिपाठी ने अपनी 'ग्राम्यगीत' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है:

"आज कल हिन्दी में जो ग्रन्थ या लेख निकल रहे हैं, उनमें जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, मेरी गिनती में वे तीन सौ से अधिक नहीं आये। इतने थोड़े शब्दों के अन्दर हिन्दी की विद्वत्ता घेर कर रक्खी गई है। हम इतने ही शब्दों में सोचते हैं, लेख या पुस्तकें लिखते हैं, और व्याख्यान देते हैं। हमारे घरों में, खेतों में, कार-खानों में प्रतिदिन काम आनेवाले कितने ही पदार्थों के नाम हिन्दी में नहीं हैं, कितने ही भावों के लिए उपयुक्त शब्द नहीं है।"

यदि यह वात सही है, तो शोचनीय और लज्जास्पद है, विचार की मुफलिसी का चिह्न है। कहा जाता है कि शेक्सपियर ने अपनी पुस्तको में २०,००० शब्दों

का प्रयोग किया है, और मिल्टन ने १०,००० का। कहां इन लोगों का भाषा-भण्डार और कहां हमारी निर्धनता। इस दशा के रहते हुए भी यदि हम राष्ट्र-भाषा का मुख उज्ज्वल करना चाहते है तो और नही तो भाषा के खातिर ही हमें अपना ज्ञान बढ़ाना होगा। किसी भाषा के शब्दो को अपना लेने में शर्म की कोई बात नही है। शर्म तो तब है, जब हम अपनी भाषा के प्रचलित शब्दो को न जानने के कारण दूसरी भाषा के शब्दों का प्रयोग करें। जैसे, घर शब्द को भुलाकर हाउस कहें, माता को मदर कहें, पिता को फादर कहें, पति को हसबेण्ड और पत्नी को वाइफ कहें।

--हिं० न० जी०, ७।११।१९२९।]

४२. नवयुवक क्या करें?

आज से कुछ दिन पहले मुझे आगरा-युवक-संघ की ओर से एक पत्र मिला था, जिसमें नीचे लिखा प्रश्न पूछा गया था :—

"भविष्य में हमारा प्रधान कार्यक्रम क्या रहेगा, कुछ सूझ नहीं पड़ता। सर्वत्र अन्धकार है। हम अपने पास-पड़ोस के किसानों और दूसरे पड़ोसियों में हिलमिल जाना चाहते हैं लेकिन कोई व्यावहारिक तरीका हमारे पास नही है। हमें आशा है, इस समस्या को सुलझाने के लिए आप कोई व्यावहारिक उपाय बताने की कृपा करेंगे। हमारे विचार से यह कठिनाई सिर्फ हमारी संस्था की ही नहीं है। अतएव यह अत्यन्त वाञ्छनीय है कि आप इस समस्या का कोई निश्चित हल 'नवजीवन' या यं० इं० द्वारा सुझावें।"

गोरखपुर युवक-संघ के मानपत्र में भी कुछ इसी तरह के भाव प्रकट किये गये थे और पूछा गया था कि युवकों के सामने जीविका-निर्वाह की जो समस्या खड़ी है उसका सामना कैसे किया जाय? मेरे विचार से ये दोनों सवाल एक-दूसरे से गुंथे हुए है और दोनों ही हल किये जा सकते है बशर्ते कि नवयुवक शहरी जीवन की अपेक्षा देहाती जीवन को अपना ध्येय बना लेने के लिए राजी किये जा सकें। हम लोग ग्रामीण सभ्यता के वारिस है। हमारे देश की विशालता, जनसंख्या की बहुलता, उसकी भौगोलिक और प्राकृतिक स्थिति, आबोहवा आदि सब बातें, मेरे विचार में, उसे ग्रामीण सभ्यता के ही उपयुक्त सिद्ध करती है। ग्रामीण सभ्यता के जो दोष है वे सब किसी के जाने हुए है, तथापि वे असाध्य नही है। इस सभ्यता को जड़मूल से नष्ट करके इसके स्थान पर नागरिक सभ्यता

की स्थापना करना मुझे तो तबतक असम्भव प्रतीत होता है, जबतक हम देश की आवादी को किसी जबरदस्त साधन द्वारा तीस करोड की जगह तीस लाख या तीन करोड़ तक घटा देने को तैयार न हों। अतएव मै तो इसी शर्त पर कोई उपाय बतला सकता हू कि हम अपनी वर्तमान ग्रामीण सभ्यता को कायम रखना चाहते है और उसके जाने तथा माने हुए दोषो से उसे मुक्त करना अपना कर्तव्य समझते है। यह तभी किया जा सकता है, जब देश के नवयुवक गांवों में जाकर रहने लगें। और अगर वे यह करना चाहे तो उन्हे अपने जीवन को नये सांचे में ढालना पड़ेगा, अवकाश का एक-एक दिन अपने कालेजों और स्कूलो के आसपास बसे हुए गांवों मे बिताना पड़ेगा और जिन लोगों की पढ़ाई हो चुकी है, या जो कही कुछ भी पढ़-लिख नही रहे है, उन्हें गावों में बस जाने का निश्चय कर लेना होगा। अखिल भारत-चर्खा-संघ और उसकी तमाम शाखाएं तथा संस्थाएं, जो उसकी देखरेख में काम कर रही है, विद्यार्थियो को सेवाक्षम बनाने की अच्छी सन्धि दे रही है, जिससे लाभ उठा कर अगर विद्यार्थी चाहे तो ग्राम्य-जीवन के अनुकूल सादगी से रहकर सम्माननीय जीवन बिता सकते है। अभी हाल चर्खा संघ मे देश के कोई १५०० नौजवान काम कर रहे है जिन्हें १५ से १५० तक की आय होती है, और आज भी चर्खा-सघ ऐसे अनगिनत विद्यार्थियों को काम दे सकता है जिनमे लगन है, प्रामाणिकता है, उद्योगशीलता है और जो हाथ-मजदूरी करने में शर्माते नही। इसके अलावा राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएं भी है, जो नवयु को से सेवा की अपेक्षा रखती है। इसमे शक नही कि अभी इनका क्षेत्र मर्यादित है और मर्यादित इस-लिए है कि इस समय देश मे राष्ट्रीय शिक्षा का चलन नही है। अतएव मैं सब उत्साही या सच्ची लगनवाले नवयुवको से सिफारिश करता हूं कि अगर वे अपने वर्तमान वातावरण से और जीवन के दृष्टिकोण से असन्तुष्ट है तो इन दो महान राष्ट्रीय संस्थाओं का अनुशीलन करे। ये संस्थाएं चुपचाप मगर अन्यन्त ठोस और रचनात्मक कार्य कर रही है और नवयुवकों के लिए सेवा तथा सम्माननीय आजी-विका का प्रबन्ध कर सकती है। देश के नौजवान राष्ट्र-निर्माण की इन दो महान शक्तियो से लाभ उठावें। लाभ उठाये या न उठायें, मै उनसे अनुरोध करता हूं कि वे गांवो मे अवश्य घुसे और अपने लिए सेवा, खोज एवं सच्चे ज्ञान का अनन्त क्षेत्र प्राप्त कर ले। क्या ही अच्छा हो अगर अध्यापकगण अपने छात्रों को, लड़को तथा लडकियो को, अवकाश के दिनो साहित्यिक अभ्यास का काम न देकर उन्हे गांवों की शिक्षाप्रद यात्रा करने की सलाह दे। अवकाश का उपयोग मनोविनोद और नव-जीवन की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिए, पुस्तकों को घुटाई मे कदापि नही।
—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, ७।११।१९२९।]

४३. भौतिक और नैतिक गन्दगी : हरद्वार

निस्सन्देह यह सच है कि हरद्वार और दूसरे प्रसिद्ध तीर्थस्थान एक समय वस्तुतः पवित्र थे। स्थान के दृष्टि-सौन्दर्य, और उनकी परम्परागत लोकप्रियता से पता चलता है कि वे स्थान किसी समय हिन्दू-धर्म की संशुद्धि और संरक्षण के गढ़ थे। लेकिन मुझे कबूल करना पड़ता है कि हिन्दू धर्म के प्रति मेरे हृदय में गम्भीर श्रद्धा और प्राचीन सभ्यता के लिए स्वाभाविक आदर होते हुए भी मै हरद्वार में, इच्छा रहने पर भी, मनुष्यकृत ऐसी एक भी वस्तु नही देख सका, जो मुझे मुग्ध कर सकती।

पहली बार जब सन् १६१५ में मै हरद्वार गया था, तब भारत-सेवा-संघ की सेवा-समिति के कप्तान पण्डित हृदयनाथ कुंजरु के अधीन एक स्वयंसेवक वनकर पहुंचा था। इस कारण मै सहज ही वहुतेरी वाते आंखों देख सका था और कई लोगों के निकट परिचय में आ सका था। किसी दूसरी अवस्था में इस तरह परिचय पाना शायद कठिन होता। तब तो मैं वड़ी-वड़ी आशाएं लगाकर और पूज्य-भाव से प्रेरित होकर हरद्वार गया था। लेकिन जहां एक ओर गंगा की निर्मल धारा ने और हिमाचल के पवित्र पर्वतशिखरो ने मुझे मोह लिया, तहां दूसरी ओर मनुष्य की करतूतों को देख मेरे हृदय को सख्त चोट पहुंची और हरद्वार की नैतिक तथा भौतिक मलीनता को देखकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। इस बार की यात्रा मे भी मैने हरद्वार की इस दशा मे कोई ज्यादा सुधार नही पाया। पहले की भांति आज भी धर्म के नाम पर गंगा की भव्य और निर्मल धारा गदली की जाती है। गंगातट पर, जहां ईश्वर-दर्शन के लिए ध्यान लगाकर वैठना शोभा देता है, पाखाना-पेशाव करते हुए असंख्य स्त्री-पुरुष अपनी मूढता और विचारशून्यता का परिचय देते नजर आते है। लोग अपने इन कामों से प्रकृत आरोग्य के तथा धर्म के नियमों का भंग करते है। तमाम धर्मशास्त्रों मे नदियों की धारा, नदी-तट, आम सड़क और आदरफ्त के दूसरे सव मार्गो को गन्दा करने की मनाई है। विज्ञानशास्त्र हमें सिखाता है कि मनुष्य के मलमूत्रादि का नियमानुसार उपयोग करने से अच्छी-से-अच्छी खाद वनती है। आरोग्यशास्त्री कहते है कि उक्त स्थानों मे मलमूत्रादि का विसर्जन करना मानव-समाज की घोर अवज्ञा करना है। यह तो हुई प्रमाद और अज्ञान के कारण फैलनेवाली गन्दगी की वात। धर्म के नाम पर जो गंगाजल विगाड़ा जाता है, सो तो जुदा ही है। विधिवत् पूजा कराने के लिए मैं हरद्वार में एक नियत स्थान पर ले जाया गया। जिस पानी को लाखों लोग पवित्र समझ कर पीते है, उसमें फूल, सूत, गुलाल, चावल, पंचामृत वगैरा चीजें डाली गई।

जब मैने इसका विरोध किया तो उत्तर मिला कि यह तो सनातन से चली आई एक प्रथा है। इसके सिवा मैने यह भी सुना है कि शहर की गटरों का गंदला पानी भी नदी मे ही वहा दिया जाता है, जो कि एक वड़े-से-वड़ा अपराध है।

यात्रियों की इतनी अधिक भीड़ के रहते हुए भी हरद्वार का स्टेशन अवतक पूर्ववत् नन्हा-सा वना हुआ है। स्टेशन पर किसी भी वात की सुविधा नही है। गलियां संकरी और गन्दी है, और मालूम होता है कि रास्तों की मरम्मत की किसी को चिन्ता नही है। इस तरह अधिकारियों और जनता ने हरद्वार को गन्दा वनाने में कोई वात उठा नहीं रक्खी है।

यह तो हरद्वार की भौतिक गन्दगी की रामकहानी हुई। मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि वहां की नैतिक गन्दगी इससे भी कहीं वढ़-चढकर है। हरद्वार में रात-दिन होने वाले व्यभिचार की जो वातें मैने सुनी है, उनका उल्लेख इन स्तम्भों में नहीं किया जा सकता। पण्डों ने मुझे जो मान-पत्र दिया था, उसमें उन्होंने अपने भोलेपन के कारण स्पप्ट ही स्वीकार किया था कि शास्त्रों की आज्ञानुसार हरद्वार शहर मे ब्रह्मचर्य मे रहना आवश्यक है, अतएव वे उस स्थान को यात्रियों के लिए छोड़ कर स्वयं हरद्वार की अंकित सीमा मे रहते है। इतना सव होते हुए भी कोई कारण नही कि हरद्वार एक आदर्श क्षेत्र न वन सके। हिन्दू धर्म की प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान करने का दावा रखनेवाली तीन संस्थाए हरद्वार मे है, ऋपिकुल, महाविद्यालय और स्व० श्रद्धानन्द जी का गुरुकुल। इनके सिवा हरद्वार में, ज्वालापुर मे और पास-पडोस मे अनेक धनाढ्य महन्त भी रहते है। ये सव, या इनमें से कोई एक ही संस्था, अगर चाहे तो, हरद्वार को आदर्श तीर्थ-स्थान वना सकती है। जिस सार्वजनिक सभा मे मैने हरद्वार की भौतिक और नैतिक गन्दगी के सम्वन्ध मे अपना दुःख प्रकट किया था, उसके सभापति आचार्य रामदेव जी ने प्रतिज्ञा करके मुझे आश्वासन दिया है कि वह अपने गुरुकुल के द्वारा इन सुधारों के लिए भरसक प्रयत्न करेंगे। अनेक स्थानीय खामोश सेवक भी इस परिस्थिति को सुधारने के लिए यथाशक्ति कोशिश कर रहे है। जिस हरद्वार में स्वदेशी शक्कर का ही चलन है, वही हरसाल सात लाख रुपयो का विलायती कपड़ा विक जाता है। ज्वालापुर में, जो हरद्वार का एक मुख्य अंग है, शराव और कसाई की एक-एक दूकान भी है। कोई कारण नही कि हरद्वार में सम्पूर्ण मद्यपान-निपेध सफल न हो सके और हिन्दुओ के तीर्थस्थान मे कसाई की दूकान का होना तो एक आश्चर्य की ही बात है। आचार्यजी को आशा है कि हरद्वार को स्वच्छ वना सकेंगे। और मांस, शराव तथा विदेशी वस्त्र को वहां से निकाल सकेंगे। उनकी यह आकांक्षा प्रशंसनीय है। ईश्वर करे वह पूरी हो। अगर गुरुकुल के

विद्यार्थी अपने विद्याभ्यास के साथ-साथ धर्म और देश की इस तरह सेवा भी कर सकें तो उन्हें अवश्य ही सच्ची शिक्षा का लाभ मिले।
--गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, ७।११।१९२९।]

४४. धर्मक्षेत्र में अधर्म

एक काशी-निवासी लिखते हैं :—

"काशी परम्परा के सनातनियों का धर्मप्राण स्थान है। साल में लाखों यात्री श्री विश्वनाथ तथा माता गंगा की श्रद्धा-भक्ति से आकर पूजा-अर्चा करते हैं। यह तीनों लोकों वे न्यारी शिवपुरी कहलाती है। यहां संस्कृत विद्यापीठ तथा हिन्दुओं का विश्वविद्यालय है, जिसके जन्मदाता हमारे प्रान्त के धर्मप्राण पं० मदन मोहन मालवीय जी हैं। ऐसे काशी क्षेत्र की क्या दशा है, इसी का खुलासा आपके समक्ष रखने की इच्छा से प्रेरित होकर लिख रहा हूं।

"यहां पर वैष्णवों तथा शैवमतावलम्बियों का पक्का पुराना अड्डा है, जो कि सनातन धर्म की रूढ़ि पर स्थित है। यहां इन दोनों मतों के मन्दिर इतने अधिक हैं कि कदाचित् ही और कहीं हों। यहां पर बसनेवाले अधिकतर किसी प्रकार की यातना पाये बिना ही, मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, यह परम्परागत विश्वास बराबर चालू है, इसलिए भारतवर्ष के राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार चतुर्थ अवस्था में यहीं आकर बसते हैं तथा प्राण त्यागते हैं। इस शहर में केवल रेशमी कलाबत्तू के काम की साड़ी, दुपट्टे, हाथियों के झूल तथा अनेक प्रकार के सामान और साथ ही चांदी की कुर्सी, अम्बारी, छतरी आदि तैयार होते हैं, जो कि भारतवर्ष की जितनी रियासतें हैं, उन सबमें चौगुने दामों पर अभी तक बिका करते हैं। इसके कारबारी यहां के इने-गिने थोड़े से पूंजीपति हैं। इसके अतिरिक्त यहां के पीतल के बर्तन, लकड़ी के खिलौने भी बाहर जाते हैं। इन कामों में थोड़े से हिन्दू तथा अधिकतर मुसलमान जुलाहे लगे हुए हैं। बाकी आबादी के लोग साधारणतः नौकरी, रोजगार, खुर्दाफरोशी में गुजर करते हैं। बहुतेरे बैठकर आपस की जमीनों के जमींदार तथा मकानों का किराया खानेवाले हैं। पर इन सबसे बड़ा एक दल है, जो नौसरबाजी, दलाली, मुकदमेबाजी, जुवा, चोरी, शराब, गांजा-भांग की ठीकेदारी कारिन्दागिरी तथा यात्री को साथ में लेकर दर्शन कराकर पैसा ठगता है, और मौका मिल जाने पर जान तक मार डालने की मन में धारणा रखता है।

"काशी में श्री गंगाजी के एक ओर से दूसरी ओर तक वरावर चन्द्राकार घाटों की कतार तथा मन्दिर हैं। इन घाटों पर प्राय: सुवह के वक्त स्नानार्थियों की खासी भीड़ वारहो महीना रहती है, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों होते है।

"समस्त भारतवर्ष में जितनी विधवाए अपने सम्बन्धियों द्वारा या अन्यों से भी व्यभिचारिणी हो जाती हैं उन सभी के छोड़ने का स्थान काशी समस्त सनातनियों ने निर्धारित कर रक्खा है। और यहां साल में हजारों ऐसी स्त्रियां, खासकर पर्वो में छोड़ी हुई मिला करती हैं, जिनके आश्रयदाता मुसलमान भाई होते थे। पर अव श्रीमान् वी० एन० मेहता भूतपूर्व कलक्टर के उद्योग से एक अनाथालय ऐसी स्त्रियों के लिए स्थापित है तथा आर्य समाज ने भी अपनी तरफ से एक अनाथालय स्थापित कर रक्खा है। आर्यसमाज अनाथालय के मन्त्री जी ने हाल में एक लेख 'आज' में छपाकर उन स्त्रियों की चाल-चलन के सुधार का उपाय भी पूछा था। क्योंकि उन्होंने लिखा था कि जव से यह अनाथालय स्थापित है तव से जितनी स्त्रियां इसमें प्रविष्ट हुईं सभी व्यभिचारिणी होकर अपने कुटुम्वियों द्वारा निकाली हुई थीं, जो कि यहां प्रविष्ट होने के साथ ही विवाह की इच्छा प्रकट करने लगती हैं। विलम्व होने से अपनी आदत का परिचय यहां भी देती हैं तथा इधर एक भी मनुष्य इन्हें रखने पर उद्यत नहीं होता। ऐसी स्त्रियां पंजाव भेज दी जाती हैं। वहीं के लोग इन्हें रख लेते है, पर जिन लोगों ने ऐसी स्त्रियां रक्खी हैं वे आंसू गिराते हैं और यही कहते है कि भगवान वचावे। कारण उनकी आदत ज्यों-की-त्यों वनी रहती है और मौका पाकर अपने पति को जहर इत्यादि देकर अथवा मालमता लेकर दूसरों की प्रेमिका वन जाती हैं या कहीं दूसरे अनाथालय में घुस कर पुनः व्याह की योजना कराती हैं।

"आपके समक्ष ऐसी वातों के कहने का साहस मै कभी करने योग्य नहीं, पर मेरी समझ में जितना ही यह विषय गोपनीय और निन्द्य करके छोड़ा जा रहा है उतना ही इसका विषैला प्रभाव वढ़ रहा है जिससे वड़ों-वड़ों के नाकों दम है। हां, थोड़े दिनों से, जव से आपका प्रभाव देश पर छाया है व शिक्षा का प्रभाव वढ़ा है सम्भव है कि यह वुराई शिक्षित समाज से दूर हो गई हो। इससे निन्दनीय और गोपनीय कोई विषय दूसरा न होगा। पर जहां तक मेरा स्वतः का अनुभव है, वम्वई को छोड़ सर्वत्र है—कहीं कुछ कम कहीं कुछ ज्यादा। पर इधर विहार तथा यु० प्रा० का हाल वर्णनातीत हो रहा है। इसका सवूत ४९४ दफा ताजीरात हिन्द की रू से अदालत में पेश उन अर्जियों से किसी कदर चल सकेगा जो कि यहां की नीच जातियों ने दी हैं। पर यहां की नाममात्र को उच्च कहलानेवाली

जातियों में तथा खासकर काशीपुरी का कोई घर ऐसा नहीं बचा होगा जो व्यभिचार के संसर्ग से दूषित न हुआ हो।

"काशी के अधिकतर अमीर, मठों एवं मन्दिरों के अधिष्ठाता, अफसर सभी बाहर तो अपने को चरित्रवान बताकर अनेक संस्थाएं चलाते, आदर्श जीवन दिखलाते तथा भीतर-भीतर ऐसी कई स्त्रियों के पेट भरा करते हैं जो मध्यम श्रेणी की युवती स्त्रियों को उनके भोग के वास्ते रुपये तथा जेवर का लोभ देकर दर्शनों, पूजनों तथा अपने जाति-भाइयों के यहां जाने के बहाने घर से निकालती हैं तथा अपने प्रेमियों से मिलाकर ही रहती हैं।

"इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के अर्थ यहां अधिक मेले व पर्व मनाये जाते हैं। इसके अलावा तीसरा तरीका यह निकाला गया है कि कहीं पर बेचूवीर, कहीं दरगाह, कहीं देव व देवियों की मिन्नतों के बहाने करके स्त्रियां अपने पतियों को बाध्य करके नौकरों के साथ, पड़ोसियों के साथ तथा अन्य लोगों के साथ जाती हैं व अपनी कुटिल इच्छा पूरी करती हैं। इन कुवासनाओं को पूरी करने के लिए यहां शहर में कई अड्डे हैं जहां पर खुले आम ये हरकतें हुआ करती हैं और ऐसी जगहें बदमाशों के सहारे पर ही चलती हैं। इन बदमाशों के भय से जो लोग कि इन बातों के विरोधी हैं वे भी कानूनन कोई रास्ता न देख कर चुप्पी साधे रहते है तथा बहुतेरे इनमें पीछे से सहमत इस कारण हो जाते हैं कि यह समाज की इच्छा से ही चलता है, मै अकेला क्या करूंगा? ऐसे अड्डों के पृष्ठपोषक खास करके पुलीसवाले भी गुप्त रूप से रहते हैं।

"इन बातों को दूर करने का भार आप कदाचित् काशी के नगर-पिताओं तथा म्युनिसपैलिटी पर छोड़ेंगे, जिसके उत्तर-स्वरूप आप यह भी जान ले कि जितनी धांधली यहां की म्युनिसिपैलिटी में है उतनी शायद ही कहीं हो। यहां के मेम्बर दो गुटों में विभाजित हैं, जिनमें आपस की खींचातानी इस कदर रहती है कि चाहे काशी के निवासी मर मिटें पर उनकी बातों की ओर कौन ध्यान देता है? रोज नये-नये करों से उत्पीड़ित करके अपनी जेब भरना इनका उद्देश्य है, कारण इन पदों को प्राप्त करने के लिए कम-से-कम प्रत्येक व्यक्ति को दो हजार खर्च करना पड़ता है, तिस पर तुर्रा यह कि वह रकम गुण्डे, बदमाश, रण्डी और दलालों के पेट में जाती है। इसी को दूना और तिगुना करने की इनके मन में आकांक्षा बनी रहना कुछ अनुचित नहीं कहा जा सकता।

"आप पूछेंगे, ऐसी कुत्सित बातों के लिखने तथा मेरे सामने पेश करने की क्या आवश्यकता है? अतः इसके उत्तर-स्वरूप निवेदन है कि मेरी समझ में मानसिक तथा शारीरिक उन्नति इस तरह की बुराई दूर किये बगैर नहीं हो सकती।

दूसरे, मैं भी इन्हीं बुराइयों से उत्पीड़ित हुआ हूं और मेरी आत्मा बारबार इसे आपके समक्ष रखने को बाध्य करती है।"

सम्भव है इस लेख में अतिशयोक्ति हो, लेकिन अशियोक्तिवाला अंश निकाल डालने पर भी जो रहेगा, वह हमारे लिए शोचनीय होगा। कोई यह कह कर इन बुराइयो की ओर दुर्लक्ष्य न करे कि ऐसी अपवित्रता अन्य धर्मों के क्षेत्रों में भी पाई जाती है या हिन्दू धर्म के दूसरे तीर्थक्षेत्रों की भी यही दशा है। हर हालत में, हर जगह ऐसी अनीति निन्दनीय है और उसे दूर करने के लिए प्रयत्न करना जरूरी है। उन बुराइयों को दूर करने का सबसे अच्छा मार्ग तो यह है कि जो इन बुराइयों को जानते है और उन्हें निन्दनीय समझते है, वे अपने जीवन को शुद्ध बनावें और शुद्धता में दिनोंदिन वृद्धि करते रहें। यह प्राचीन मार्ग है। जब अधर्म बढता है तब साधु पुरुप तपश्चर्या करते है और तपश्चर्या का अर्थ शुद्धि है। एक दूसरा और आधुनिक मार्ग नवयुवकों द्वारा आन्दोलन मचाने का है। आजकल युवक-सघ बढ़ रहे है। युवकों मे सेवाभाव बढ रहा है। यदि वे इस काम को उठा लें तो बहुत कुछ कर सकते है। सब मन्दिरों की सूची बना कर, उनके संरक्षकों और पुजारियों से परिचय बढ़ावें और जिन मन्दिरों के खिलाफ शिकायत हो उनकी यथासम्भव जांच करें। यात्रियों और दूसरे दर्शक लोगों को इन बातों से सावधान कर दें। अनाथालय आदि संस्थाओं की जानकारी हासिल करें। इन कार्यो से बहुतेरा सुधार अपने-आप हो जायगा। क्योंकि अनीति अंधेरे में ही की जा सकती है, प्रकाश मे नहीं।

ऐसे कार्य करनेवाले युवकों का जीवन विशुद्ध होना चाहिए। जो दूसरों की शुद्धि करना चाहते है, उनके खुद शुद्ध नही होने पर, उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

तीसरा मार्ग सम्भावित इज्जतदार और पवित्र लोगों की समिति बना कर उनके द्वारा तीर्थ-क्षेत्रों के सुधार की चेष्टा करना है।

ये तीनो मार्ग साथ-साथ चल सकते है, चलने चाहिए। ऐसी अनीति होते देख हम बहुधा निराश हो जाते हैं परन्तु निराशा का कोई कारण नही है। हमारी निराशा और मन्दता के कारण बहुतेरी अनीतिया जीवित रह सकती है। हममें यह श्रद्धा होनी चाहिए कि अनीति क्षणिक वस्तु है और कुछ ही लोगों की क्यों न हो, मगर तेजस्विनी नीति के सामने वह टिक नही सकती।

—हि० न० जी०, १२।१२।१९२९।]

- **जब अधर्म बढ़ता है, तब साधु पुरुष तपश्चर्या करते हैं और तपश्चर्या का अर्थ शुद्धि है।**

- **अनीति अंधेरे में ही की जा सकती है, प्रकाश में नहीं।**
- **हम में यह श्रद्धा होनी चाहिए कि अनीति क्षणिक वस्तु है और कुछ ही लोगों की क्यों न हो, किन्तु तेजस्विनी नीति के सामने टिक नहीं सकती।**

४५. कांग्रेस किस की ?

संयुक्तप्रान्त के दौरे में किन्ही सज्जन ने दो-तीन प्रश्न पूछे थे और उनका उत्तर 'हिन्दी नवजीवन' द्वारा मांगा था। उनमें से एक प्रश्न यह था :—

"क्या कांग्रेस हिन्दू-मुसलमानों का सम्मिलित गिरोह है। यदि इसका उत्तर हां हो तो क्या ऐसी कांग्रेस के कर्मचारी, जो हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव के कारण होते हैं, कांग्रेसी कहलाने के अधिकारी और अनुकरणीय हैं। और यदि ऐसी समस्या उपस्थित हो तो उस दशा में सर्व-साधारण को क्या करना चाहिए ?"

कांग्रेस हिन्दू-मुसलमानों की तो है ही, लेकिन वह इससे भी कुछ अधिक है। कांग्रेस भारतवर्ष में रहनेवाले हर एक व्यक्ति की संस्था है—हिन्दू-मुसलमान, पारसी, सिक्ख, ईसाई, यहूदी वगैरा सब किसी की है। कांग्रेस के सदस्य वे सब स्त्री-पुरुष हो सकते है, जो महासभा के उद्देश्यों को स्वीकार करते हैं। कांग्रेस के कर्मचारियों में से यदि कोई हिन्दू-मुसलमानों के उपद्रव का—झगड़े का कारण बने, तो कांग्रेस उसका बहिष्कार कर सकती है। कांग्रेस का सदस्य बन कर जो एक-दूसरे के बीच वैमनस्य पैदा करता है, वह न केवल कांग्रेस का, बल्कि देश का भी द्रोही है।

यह तो ऊपर के प्रश्न का उत्तर-भर है। परन्तु जब इतने से खुद मुझे ही सन्तोष नही होता, तो प्रश्नकर्त्ता को भला कैसे हो सकता है? दुःख की बात तो यह है कि दोनों कौमों के बीच वैमनस्य पैदा करने की किसी को आवश्यकता ही नही होती। इस हालत का असर, कुछ ही अंशों में क्यों न हो, कांग्रेस पर भी पड़ता है। इस वैमनस्य को मिटाने का तरीका क्या है। यह सवाल प्रश्नकर्त्ता के दिल में तो है, लेकिन इसे वह प्रकट नही कर सके है।

वैमनस्य को मिटाने के लिए शुद्धि चाहिए। एक दूसरे में वीरता के भाव पैदा होने चाहिए। आज तो हम एक दूसरे से डरते है। यदि डर मिट जाय और आपस में विश्वास पैदा हो जाय तो सब वैमनस्य, सारी दुश्मनी आज ही दूर हो सकती है। इस कमजोरी को मिटाने का सबसे अच्छा मार्ग यह है कि हम इस सम्बन्ध में किसी का अनुकरण न करें, बल्कि खुद ही डरना छोड़ दें। अगर ऐसे, कुछ लोग

भी आज पैदा हो जायं, तो कांग्रेस की शिकायत ही न रह पाये। हां, यह मैं जानता हूं कि ऐसा वायु-मण्डल पैदा करने की कोशिश हो रही है, और इसे जानते हुए मैं अपना निजी विश्वास नही छोड़ सकता।

--हि० न० जी०, १९।१२।१९२९।]

४६. निश्चित परामर्श

युक्तप्रान्त के दौरे में प्रयाग के विद्यार्थियों की ओर से मुझे नीचे लिखा पत्र मिला था :

"यं० इं० के अभी हाल के एक अंक में ग्रामीण सभ्यता पर आपका जो लेख छपा था उसके सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि पढ़ाई खतम कर चुकने पर गांवों में जा वसने की आपकी सलाह को हम दिल से मानते हैं, लेकिन आपका यह लेख हमारी रहनुमाई के लिए काफी नहीं है। हम चाहते हैं कि हमसे जिस काम की आशा रक्खी जाती है, उसकी कोई निश्चित रूपरेखा हमारे सामने हो। अनिश्चत और बेमतलब वातें सुन-सुन कर तो अब हमारे कान पक गये। अपने देश-भाइयों के लिए कुछ कर गुजरने के लिए हम तड़प रहे हैं। लेकिन हम नहीं जानते कि क्या करें। कैसे शुरू करें और मेहनत के फल-स्वरूप किन लाभों की भविष्य में यथासम्भव आशा रक्खें। आपने १५ से लगाकर १५० तक की आमदनी का जो जिक्र किया है, उसे पाने के लिए हम किन साधनों का सहारा लें? आशा है, विद्यार्थियों की सभा में या अपने प्रतिष्ठित अखबार में आप इन बातों पर कुछ प्रकाश डालेंगे।"

विद्यार्थियों की एक सभा में मै इस विषय की चर्चा कर चुका हूं और यद्यपि इन स्तम्भों-द्वारा विद्यार्थियों के लिए एक निश्चित कार्यक्रम प्रकट हो चुका है, तो भी पहले वताई हुई योजना को यहां फिर से अधिक दृढ़तापूर्वक पेश कर देना अनुचित न होगा।

पत्र-लेखक जानना चाहते हैं कि अभ्यास पूरा करने के बाद वह क्या कर सकते है। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि वडी उम्र के विद्यार्थी, यानी कालेजों के तमाम विद्यार्थी कालेजों में रहते और पढ़ते हुए भी फुरसत के वक्त गांवों में जाकर काम करना शुरू कर दें। ऐसो के लिए मै नीचे एक योजना देता हूं।

विद्यार्थियों को अपने अवकाश का सारा समय ग्राम-सेवा में विताना चाहिए। इस वात को ध्यान में रखकर लकीर के फकीर वनने के वदले वे अपने मदरसों या कालेजों के पास पढ़नेवाले गांवों मे चले जायं और गांववालों की हालत का अभ्यास

करके उनके साथ दोस्ती पैदा करें। इस आदत के कारण वे गांववालों के निकट सम्पर्क में आते जायंगे, और बाद में जब कभी वे कायमी तौर पर वहां बसने लगेंगे तो लोग एक मित्र की हैसियत से उनका स्वागत करेंगे, न कि अजनबी समझकर उनपर शक। लम्बी छुट्टियों के दिनों में विद्यार्थीगण गांवों में जाकर रहें, बड़ी उम्र के लोगों के लिए मदरसे या कक्षाएं खोलें, गांववालों को सफाई के नियम सिखायें और उनकी छोटी-मोटी बीमारियों का इलाज करें। वे उनमें चर्खे को दाखिल करें और अपने फाजिल वक्त के एक-एक मिनट को अच्छी तरह बिताने की उन्हें सिखावन दें। इस काम के लिए विद्यार्थियों और शिक्षकों को अपने अवकाश के समय के सदुपयोग-सम्बन्धी विचारों को बदल डालना पड़ेगा। छुट्टी के दिनों में अविचारी शिक्षक अक्सर विद्यार्थियों को नया-नया सबक याद कर लाने को कहते है। मेरी राय मे यह एक बहुत ही बुरी आदत है। छुट्टी के दिनों में तो विद्यार्थियों के दिमाग रातदिन की दिनचर्या से मुक्त रहने चाहिए, जिससे वे अपनी मदद आप कर सके, और मौलिक उन्नति भी कर लें। जिस ग्रामसेवा का मैंने उल्लेख किया है, वह मनोविनोद और नये-नये अनुभव प्राप्त करने का एक अच्छे-से-अच्छा साधन है। जाहिर है कि पढ़ाई खतम करते ही जी-जान से ग्राम-सेवा में लग जाने के लिए इस तरह की तैयारी सबसे उम्दा है।

ग्रामसेवा की पूरी-पूरी योजना का विस्तार से उल्लेख करने की अब कोई जरूरत नही है। छुट्टियों में जो कुछ किया था, उसी को आगे कायमी बुनियाद पर चुन देना है। इस काम की सहायता के लिए गांववाले भी हर तरह तैयार मिलेंगे। गांवों में रहकर हमें ग्राम्य जीवन के हर पहलू पर विचार और अमल करना है---क्या आर्थिक, क्या आरोग्य-सम्बन्धी, क्या सामाजिक और क्या राजनीतिक। आर्थिक विपत्ति को मिटाने के लिए तो बहुत हद तक, बिला-शक, चर्खा ही एक राम-बाण उपाय है। चर्खे के कारण तत्काल ही गांववालों की आमदनी तो बढ़ती ही है, वे बुराइयों से भी बच जाते है। आरोग्य-सम्बन्धी बातों में गन्दगी और रोग भी शामिल है। इस बारे में विद्यार्थियों से आशा की जाती है कि वे अपने हाथों काम करेंगे और मैले तथा कूड़े-करकट की खाद बनाने के लिए उन्हे गड्ढों में भरेंगे, कुओं और तालाबों को साफ रखने की कोशिश करेंगे, नये-नये बाँध बनावेंगे, गन्दगी दूर करेंग और इस तरह गांवों को साफ रखकर उन्हें अधिक रहने योग्य बनावेंगे। ग्राम-सेवक को सामाजिक समस्याएँ भी हल करनी होंगी और बड़ी नम्रता के साथ लोगों को इस बात के लिए राजी करना होगा कि वे बुरे रीति-रिवाजो और बुरी आदतों को छोड़ दें। जैसे, अस्पृश्यता, बाल विवाह, बेजोड़ विवाह, शराबखोरी, नशाबाजी और जगह-जगह फैले हुए हर तरह के वहम, भ्रम या अन्ध विश्वास।

आखिरी बात राजनीतिक सवालों की है। इस सम्बन्ध में ग्रामसेवक गांववालों की राजनीतिक शिकायतों का अध्ययन करेगा और उन्हें इस बात में स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन और आत्मोद्धार का महत्व सिखावेगा। मेरी राय में नौजवानों—बालिगों के लिए इतनी तालीम काफी होगी। लेकिन ग्राम-सेवक के काम का यहीं अन्त नहीं होता। उसे छोटे बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और उनकी सुरक्षा का भार अपने ऊपर लेना होगा और बड़ों के लिए रात्रिशलाएं चलानी होंगी। यह साहित्यिक शिक्षा पूरे पाठ्यक्रम का एक अंगमात्र होगी और ऊपर जिस विशाल ध्येय का जिक्र किया है, उसे पाने का एक जरिया भर होगी।

मेरा दावा है कि इस सेवा के लिए हृदय की उदारता और चारित्र्य की निष्कलंकता दो जरूरी चीजें है। अगर ये दो गुण हों तो और सब गुण अपने आप मनुष्य में आ जाते हैं।

आखिरी सवाल जीविका का है। मजदूर को उसकी लियाकत के मुताबिक मजदूरी मिल ही जाती है। महासभा के वर्तमान सभापति प्रान्तों के लिए राष्ट्रीय सेवा-संघ का संघटन कर रहे हैं। अखिल भारत चर्खा संघ एक उन्नतिशील और स्थायी संस्था है। जीविका भर के लिए वह गैरण्टी देती है। इससे ज्यादा रकम वह दे नहीं सकती। अपना मतलब और देश की सेवा दोनों एक साथ नहीं हो सकते। देश की सेवा के आगे अपनी सेवा का क्षेत्र बहुत ही संकुचित है और इसी कारण हमारे गरीब देश के पास जो साधन है, उनसे बढ़कर जीविका की गुजाइश नही है। गांवों की सेवा करना स्वराज्य कायम करना है। और तो सब सपने की सम्पत है।

—यं० इं। हि० न० जी०, ९।१।१९३०।]

• अपना मतलब और देश की सेवा दोनों साथ नहीं हो सकते।

४७. वर्ण और जाति

इलाहाबाद के विद्यार्थी का प्रश्न

एक विद्यार्थी अपने नाम-ठाम के साथ लिखते हैं—

"मैं जानता हूं कि आप हिन्दुस्तान के कौमी सवाल के बारे में रात-दिन उग्रता-पूर्वक विचार कर रहे हैं और आपने यह ऐलान किया है कि गोलमेज परिषद में आपके शामिल होने की दो शर्तो में इस सवाल का हल एक शर्त है। आज छोटी कौमों की समस्या का हल खास कर उन-उन कौमों के नेताओं पर निर्भर करता

है परन्तु सारे कौमी झगड़ों की जड़ को ही उखाड़ फेंकने के लिए वे लोग यदि किसी कामचलाऊ समझौते पर पहुंच भी सकें तो भी वह काफी न होगा।

"तमाम कौमी भेदभाव की जड़ें काटने के लिए बहुत अधिक गाढ़ा सामाजिक संसर्ग अनिवार्य है। आज तो हरएक कौम का सामाजिक जीवन दूसरी सब जातियों और कौमों के जीवन से एक दम अछूता-सा होता है। हिन्दू मुसलमानों को ही लीजिए। हिन्दुओं के बड़े त्यौहार के मौकों पर मुसलमान भाई हिन्दुओं का सत्कार नहीं करते; यही हाल मुस्लिम त्यौहारों का है। इसके फल-स्वरूप कौमी एकान्तिकता की जो भावना पैदा होती है, वह देश के हित के लिए बहुत ही हानिकारक है।

"दूसरा उपाय, जो कुछ लोगों ने बताया है वह कौमों में परस्पर ब्याह-सम्बन्ध का होना है। परन्तु जहां तक मैं जानता हूं, आप जातिपांति में दृढ़ आस्था रखते हैं, यानी इसका मतलब यह हुआ कि आपकी राय में अन्तरजातीय ब्याह सुदूर भविष्य में भारतीयों के लिए आपत्तिरूप सिद्ध होंगे। जबतक इन कौमों में थोड़ा भी अलगाव रहेगा तबतक कौमी भेदभाव को पूरी तरह नष्ट करना बड़ी टेढ़ी खीर है। नवीन भारत के धर्मराज्य में जुदा-जुदा कौमों के दरम्यान आप अपने मतानुसार कैसे सम्बन्ध की कल्पना करते हैं? क्या भिन्न-भिन्न कौमें आज की तरह सामाजिक व्यवहार में अलग ही रहेंगी? मैं मानता हूं कि इस सवाल के निपटारे पर भारतीय राष्ट्र का भावी कल्याण निर्भर है।

"एक बात और। यदि हम जातिपांति को मानते हैं तो अस्पृश्य कहे जाने वाले लोगों की स्थिति बहुत नाजुक हो जाती है। यदि हमें अस्पृश्यों का उद्धार करना हो, तो हम जातियों के बन्धनों को चालू रख ही नहीं सकते। जाति और धर्म का भेद पृथकता का जो वातावरण उत्पन्न करता है वह विश्व-बन्धुत्व की वृद्धि की दृष्टि से शापरूप है। जातिपांति की व्यवस्था उच्चता की मिथ्या भावना पैदा करती है जिसका नतीजा बुरा होता है। तो इन पुराने जातिपांति के बन्धनों में अपनी श्रद्धा उचित है, यह कैसे साबित किया जाय?

"ये सवाल महीनों से मेरे दिमाग में चक्कर काट रहे है पर मैं आपका दृष्टिकोण समझ नहीं सका हूं। इन प्रश्नों का निपटारा करने के लिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मेरी कठिनाई दूर करें।

"मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० ए० का विद्यार्थी हूं। चाहे जिस तरह क्यों न हो, हिन्दू मुसलमानों के दरम्यान भाईचारे का ख्याल पैदा करने के लिए मैं आतुर हूं। परन्तु मेरे सामने कठिनाइयां सचमुच ही बहुतेरी हैं। उनमें से एक जाति-पांति के बारे में है, जो मैं आपसे अर्ज कर चुका हूं। दूसरी मांसाहार के बारे में है। जिस मुसलमान खाने में मांस परोसा जाय उसमें मैं किस प्रकार शामिल

हो सकता हूं। मेरी रहनुमाई कर सकनेवालों में आपसे बेहतर दूसरा कोई नहीं है, इसलिए इस पत्र-द्वारा मैं आपकी सेवा में उपस्थित होता हूं।"

यह कहना एक दम तो सच नही है कि हिन्दू मुसलमान एक दूसरे के त्यौहारों के अवसर पर परस्पर सत्कार नही करते। परन्तु यह अवश्य ही अभीष्ट है कि ऐसे सत्कार का आदान-प्रदान बहुत ही अधिक अवसरों पर और अधिक व्यापक रूप में हो।

जाति-पांति के वारे में मै कई वार कह चुका हूं। आवुनिक अर्थ मे मै जाति-पांति नही मानता। वह विजातीय चीज है और प्रगति में विघ्नरूप है। इस तरह मैं मनुष्य-मनुष्य के वीच की असमानताओं को भी नही मानता। हम सब सम्पूर्णतया समान है। परन्तु समानता आत्माओं की है, शरीरों की नही। इसलिए वह एक मानसिक अवस्था है। समानता का विचार करने और जोर देकर उसे प्रकट करने की आवश्यकता रहती है, क्योंकि इस भौतिक जगत् में हम वड़ी-वडी असमानताएं देखते है। इस वाह्य असमानता के आभास में हमें समानता सिद्ध करनी है। कोई भी आदमी किसी दूसरे आदमी की अपेक्षा अपने को उच्च माने, तो वह ईश्वर और मनुष्य के समक्ष पाप है। इस प्रकार जातिपांति जिस हद तक भेद की सूचक है, वुरी चीज है।

परन्तु वर्ण मैं अवश्य मानता हूं। वर्ण की रचना वंश-परम्परागत धन्धों की वुनियाद पर है। मनुष्य के चार सर्वव्यापी धन्धों—ज्ञान देने, आर्त की रक्षा करने, कृषि और वाणिज्य तथा शारीरिक श्रम-द्वारा सेवा की समुचित व्यवस्था करने के लिए चार वर्णो का निर्माण हुआ है। ये धन्धे समस्त मानव जाति के लिए एक से है। परन्तु हिन्दू-धर्म ने इन्हे जीवन-धर्म के रूप में स्वीकार करके सामाजिक सम्वन्ध और आचार-व्यवहार के नियमन के लिए इनका उपयोग किया है। गुरुत्वाकर्पण के अस्तित्व को हम जानें या न जानें तो भी हम सव पर उसका असर होता है। लेकिन वैज्ञानिकों ने, जो इस नियम को जानते है, इसमें से जगत् को आश्चर्यचकित करनेवाले फल उत्पन्न किये है। इसी तरह हिन्दू धर्म ने वर्ण-धर्म की खोज और उसका प्रयोग करके जगत् को आश्चर्य में डाला है। जव हिन्दू जड़ता के शिकार हो गये, तव वर्ण के दुरुपयोग के फलस्वरूप वेशुमार जातियां वन गई और रोटी-वेटी व्यवहार के अनावश्यक वन्धन पैदा हुए। वर्ण धर्म का इन बन्धनों से कोई सम्वन्ध नही है। जुदा-जुदा वर्ण के लोग परस्पर रोटी-वेटी का व्यवहार रख सकते हैं। शील और आरोग्य के खातिर ये वन्धन आवश्यक हो सकते है। परन्तु जो ब्राह्मण शुद्र कन्या को या शुद्र ब्राह्मण कन्या को व्याहता है वह वर्णधर्म का लोप नही करता।

अपने धर्म के बाहर व्याह करने का सवाल जुदा है। इसमें जबतक स्त्री पुरुष में से हर एक को अपने-अपने धर्म का पालन करने की छूट होती है, तबतक नैतिक दृष्टि से ऐसे विवाह में कोई आपत्ति नही समझता। परन्तु मैं नही मानता कि ऐसे विवाह-सम्बन्धों के फलस्वरूप शान्ति कायम होगी। शान्ति स्थापित होने के बाद ऐसे सम्बन्ध किये जा सकते है सही। जबतक हिन्दू मुसलमानों के दिल फटे हुए है तबतक हिन्दू-मुसलमान-विवाह-सम्बन्धों की हिमायत करने का फल मेरी दृष्टि में सिवा आपत्ति के और कुछ न होगा। अपवाद-स्वरूप परिस्थिति में ऐसे सम्बन्धों का सुखदायी साबित होना उन्हें सर्वव्यापक बनाने की हिमायत करने के लिए कारण रूप माने ही नही जा सकते। हिन्दू मुसलमानों में खान-पान का व्यवहार तो आज भी बड़े पैमाने पर होता है। परन्तु इससे भी शान्ति में वृद्धि तो नही हुई। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि रोटी-बेटी-व्यवहार का कौमी इत्तिफ़ाक से कोई सम्बन्ध नहीं है। झगड़े के कारण तो राजनीतिक और आर्थिक हैं और उन्हीं को दूर करना है। यूरोप में रोटी-बेटी-व्यवहार है। फिर भी जिस तरह यूरोपवाले आपस में कट मरे हैं, वैसे तो हम हिन्दू-मुसलमान भी इतिहास में कभी लड़े नहीं। हमारे जन-समूह तो तटस्थ ही रहे है।

अस्पृश्यों का एक जुदा वर्ग है और हिन्दू धर्म के सिर कलंक का टीका है। जातियां विघ्न-रूप है, पाप-रूप नही। अस्पृश्यता तो पाप है, और भयंकर अपराध है और हिन्दू धर्म ने इस महासर्प का समय रहते नाश नही किया, तो यह हिन्दू धर्म को ही खा जायगा। 'अस्पृश्य' अब हिन्दू धर्म के बाहर कभी गिने ही न जाने चाहिए और उनके पेशे के अनुसार वे जिस वर्ण के योग्य हों, उस वर्ण के वे माने जाने चाहिए।

वर्ण की मेरी व्याख्यानुसार तो आज हिन्दू धर्म में वर्णधर्म का पालन होता ही नही। ब्राह्मण नामधारियों ने विद्या पढ़ाना छोड़ दिया है। वे दूसरे अनेक धन्धे करने लगे है। यही बात कमोवेश दूसरे वर्णो के लिए भी सच है। वस्तुतः तो विदेशियों के जुए के नीचे होने की वजह से हम सब गुलाम हैं और इस कारण शूद्रों से भी हलके पश्चिम के अस्पृश्य हैं।

इस पत्र के लेखक अन्नाहारी होने की वजह से मांसाहारी मुसलमान के साथ खाने के लिए मन को समझाने में कठिनाई अनुभव करते है। परन्तु यह याद रक्खें कि मांसाहार करनेवाले तो मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू ज्यादा हैं। जबतक अन्नाहारी को स्वच्छतापूर्वक पकाया हुआ ऐसा भोजन परोसा जाय, जिसे खाने में कोई वाधा न हो, तबतक उसे हिन्दू या अन्य मासाहारी के साथ बैठकर खाने की छूट है। फल और दूध तो उसे जहां जायेगा, सदा मिल सकेंगे।

—गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, ११।६।१९३१।]

४८. धार्मिक और अधार्मिक शपथ

काशी के सुप्रसिद्ध दानवीर श्री शिवप्रसाद गुप्त लिखते है :--

"पहली मई को हरिजन जब पढ़कर मुझे सुनाया गया, तभी से मैं उसकी 'धारासभाएं और गांधी सेवा-संघ' शीर्षक टिप्पणी पर विचार कर रहा हूं। आज मैने उसे दुबारा पढ़ा। साथ ही साप्ताहिक पत्र भी पढ़ा। लेकिन मेरे दिमाग में जो विचार उथल-पुथल मचाये हुए है, वह इससे शान्त न हो सका।

टिप्पणी के आखिरी पैरा में कहा गया है कि 'यह कोई धार्मिक शपथ नही है और जहां तक मैं विधान को समझता हूं' वह तात्कालिक और ठोस स्वतन्त्रता की मांग में बाधक नहीं होती।' इसे पढ़कर मेरे मन में जो प्रश्न उठे वे इस प्रकार हैं:

१. क्या शपथ कई और तरह-तरह की होती हैं ?

२. क्या ईश्वर के नाम पर या किसी अन्य रूप में ली गई शपथ को धार्मिक और अधार्मिक शपथ इन दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ?

३. अधार्मिक शपथ का प्रधान सिद्धान्त क्या है ?

४. सम्राट के व्यक्तित्व के प्रति वफादारी की शपथ का तात्कालिक और ठोस स्वतन्त्रता की मांग से भला कैसे मेल बैठ सकता है ? कम-से-कम मेरी समझ से तो इस मांग का अर्थ उस सम्राट को उसकी सार्वजनिक सत्ता से वञ्चित करना ही है।

इनमे से पहले और दूसरे प्रश्न का उत्तर 'हा' है। अन्य, दो प्रश्नों का उत्तर नीचे के विवेचन में मिलेगा।

ईश्वर के नाम पर ली हुई शपथ ऐसी भी हो सकती है जिसे हम धार्मिक नहीं कह सकते। अदालत में गवाह जो शपथ लेता है वह कानूनी शपथ है, न कि धार्मिक जिसका भंग करने पर जो दण्ड भुगतना पड़ेगा वह दुनियावी ही होगा। इसके विरुद्ध धार्मिक शपथ भंग करने पर कोई कानूनी दण्ड नहीं भुगतना पड़ता, लेकिन शपथ लेने वाला यह समझता है कि ऐसा किया तो ईश्वर की ओर से मुझे दैवी दण्ड ज़रूर भुगतना पड़ेगा। इसका यह अर्थ नही कि इन तीन प्रकार की शपथों में से कोई भी ऐसी है जिससे हक़परस्त आदमी दूसरी शपथो की बनिस्बत कम बंधता हो। हक़परस्त गवाह तो कानून के डर से नही बल्कि इसलिए सच ही कहेगा कि हरेक विषय में उसे सच ही बोलना चाहिए। धारा सभा के सदस्यों की शपथ उस विधान के अनुसार है जिसमें कि वह दी हुई है। उसकी परिभाषा या तो विधान में ही दी जा सकती है, या परम्परा-द्वारा निश्चित हो सकती है। मैंने

ब्रिटिश विधान को जहां तक समझा है, उसके अनुसार राजभक्ति की शपथ का सिर्फ यही अर्थ है कि धारासभा का सदस्य अपनी नीति या बात पर वैधानिक रूप में ही जोर देगा। मै यह मानता हूं कि ब्रिटिश विधान के अन्तर्गत वफादारी की शपथ लेकर धारासभा का सदस्य धारा सभा में पूर्ण स्वाधीनता की तजवीजें मंजूर कर सकता है। ब्रिटिश विधान मे जो कुछ भी अच्छाई है, मेरी समझ मे, वह यही है। मेरे खयाल में दक्षिण अफ्रीका की यूनियन पार्लमेण्ट के सदस्य भी वस्तुतः वैसी ही शपथ लेते है, जैसी कि हिन्दुस्तान मे ली जाती है, लेकिन वह पार्लमेण्ट आज वफादारी की शपथ का कोई भंग किये बगैर पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा करने के लिए स्वतन्त्र है। मेरा यह पक्का विश्वास है कि सिद्धान्त रूप में ब्रिटिश विधान हरेक व्यक्ति या राष्ट्र को अपनी बड़ी-से-बड़ी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करने की छूट देता है, इसीलिए मैने कांग्रेस-कार्य-समिति को पदग्रहण की अपनी तजवीज मंजूर करने की सलाह दी थी और इस बात की जो मैं कोशिश कर रहा हूं कि ब्रिटिश सरकार उसपर राजी हो जाय, वह भी अपने इसी विश्वास के कारण कर रहा हूं। इस बात को मै समझता हूं कि वे सीधी तरह ऐसा नही करेंगे। और आखिरी वक्त तक इस विपत्ति को बढ़ाने की ही चेष्टा करेंगे। लेकिन मैं जानता हूं कि हमारे अन्दर अगर श्रद्धा और चरित्रबल है तो हर वार हम जीतेंगे और रक्त की एक बूंद भी बहाये बगैर बिना किसी तरह की खून-खराबी के अपने ध्येय पर पहुंच जायंगे। ब्रिटिश लोग फुटबाल के खेल पर, जो मै समझता हूं उन्हीं का आविष्कार है, जो नियम लागू करते हैं वही नियम वे राजनीति के खेल पर भी लागू करते है। वे न तो अपने विरोधी को कोई जगह देते है और न किसी से जगह देने के लिए कहते है। हमारे और उनके बीच मौलिक भेद यह है कि हम ने शस्त्र-प्रयोग का त्याग किया है। इस बात ने उन्हें हैरानी में डाल दिया है। वे हमारी कड़ी-से-कड़ी विरुद्ध उक्तियों पर विश्वास नही करते। पूर्ण स्वाधीनता के हमारे आन्दोलन को जबतक हम वैधानिक सीमा के अन्दर रखेंगे तबतक उन्हें उसकी पर्वा नहीं है। और धारासभाओं के सदस्य अपनी असेम्बलियों में इसके सिवा और करते भी क्या है या क्या करेंगे? जेबों में पिस्तौल लेकर तो वे वहां शायद ही जायं। ऐसा करना जरूर शपथ का और कानून का भी जबर-दस्त भंग होगा। अतः श्री शिवप्रसाद गुप्त को कांग्रेसियों-द्वारा शपथ लेने के औचित्य पर परेशान होने की जरूरत नही है। अगर पूर्ण स्वाधीनता के आन्दोलन का इस शपथ से मेल न बैठता तो खुद ब्रिटिश सरकार कांग्रेसियों की उम्मीदवारी में ही इस बात का सबसे पहले एतराज उठाती, यह निश्चय है।

—अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, २७।५।१९३७।]

४९. सम्मेलन राजनीतिक संस्था नहीं है (टिप्पणी)

हिन्दी-प्रेमियों को यह तो मालूम ही है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अगला अधिवेशन शिमला मे होगा। शिमला से एक सम्वाददाता ने लिखा है कि यहां कुछ ऐसा शक है कि सम्मेलन एक राजनीतिक संस्था है और उसकी प्रवृत्तियों में मुस्लिम-विरोध की बू आती है। सम्मेलन का मैं दो बार सभापति हो चुका हूं और मैं वगैर किसी हिचकिचाहट से कह सकता हूं कि वह शुद्ध अराजनीतिक सस्था है। राजे-महाराजे उसके संरक्षक हैं। कितने ही आदमी, जिनका कांग्रेस से कोई वास्ता नही, सम्मेलन के सदस्य है। राजे-महाराजे अक्सर उसके अधिवेशनों में आते है। बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ उसके सभापति रह चुके है। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि उसकी एक भी प्रवृत्ति मुस्लिम-विरोधिनी नही है। अगर मुझे कोई ऐसा सन्देह होता, तो मै उसका सभापति वनना स्वीकार न करता। मै आशा करता हूं कि मुस्लिम-विरोध का अर्थ यहां उर्दू-विरोध नही लिया गया है। उर्दू-विरोध और मुस्लिम-विरोध, इन शव्दों का उपयोग वहुत से लोग समानार्थ रूप मे करते है। पर यह तो एक वहम है। पंजाव, दिल्ली और काश्मीर में उर्दू हजारों हिन्दुओ और मुसलमानों की आम जवान है। यह चीज भी ध्यान में रखने के काविल है कि इन्दौर के पिछले अधिवेशन मे सम्मेलन ने हिन्दी की व्याख्या यह की थी कि हिन्दी वह भाषा है जिसे उत्तर हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान वोलते है और जो देवनागरी मे या फारसी लिपि में लिखी जाती है। इसलिए मुझे आशा है कि उर्दू-विरोध के अर्थ में भी अगर मुस्लिम-विरोध शव्द लिया गया है, तो भी सम्वाददाता ने जिस सन्देह का जिक्र किया है वह दूर हो जायगा और शिमला मे होनेवाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन की तैयारियों का काम उसके उद्देश्य एव रुख के वारे मे वगैर किसी तरह की कोई शंका उठाये, वैसे ही जारी रहेगा।

—अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, १२।६।१९३७।]

५०. जवाहरलाल जी के निबन्ध पर अभिमत

३ अगस्त, १९३७

मैने हिन्दी-उर्दू के प्रश्न पर जवाहरलाल नेहरू का निवन्ध वहुत ध्यान से पढ़ा है। पिछले दिनो यह प्रश्न एक दुर्भाग्यपूर्ण विवाद वन गया है। इसने जो

भद्दा मोड़ लिया है उसके लिए कोई उचित कारण नही है। कुछ भी हो, राष्ट्रीय और शिक्षा की शुद्ध दृष्टि से सोचा जाय तो जवाहरलाल के निवन्ध से सारे विषय के उचित निरूपण में मूल्यवान सहायता मिलेगी। उनके प्रस्तावों को सम्बन्धित लोग व्यापक रूप मे स्वीकार कर लें तो उनसे यह विवाद, जिसने साम्प्रदायिक ढंग ले लिया है, खत्म हो जाना चाहिए। सुझाव व्यापक और बहुत विवेकपूर्ण है।

मो० क० गाधी

——अंग्रेजी। ३।८।१९३७। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

५१. कांग्रेस की अशुद्धि कैसे दूर हो ?

संयुक्तप्रान्त के एक सज्जन लिखते हैं :—

"कांग्रेसजनों और कांग्रेस कमेटियों में फैली हुई अशुद्धि के बारे में आपने 'हरिजन' में जो कुछ लिखा और कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों के सामने जो भाषण दिया उसे भी मैंने पढ़ा।

"खुद मैंने भी कई मौकों पर ऐसी नीतिभ्रष्ट कार्रवाइयां होते देखी हैं, जैसी कार्रवाइयों का आपने 'हरिजन' में उल्लेख किया है——जैसे नकली सदस्यों की भर्ती, दूसरों की सदस्यता का शुल्क अपने पास से जमा करा देना, और अपने आप ही दूसरों के दस्तखत तक कर देना आदि। दुःख की बात तो यह है कि कांग्रेस कमेटियों के जिम्मेदार पदाधिकारी तक ऐसा करते हैं। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि प्रान्तीय कमेटियों के सामने बाजाब्ता ऐसे मामले आये, लेकिन कांग्रेसी अधिकारियों ने उसको यों ही टाल-टूल दिया। इस सूबे के कांग्रेस-कार्य का जो थोड़ा-सा अनुभव मुझे है, उस पर से मैं कह सकता हूं कि अनेक जिला और नगर कमेटियों का यही हाल है।

"इस स्थिति का मैंने जो अध्ययन किया है, उसपर मेरा विनम्र अभिप्राय यह है कि ऐसी कार्रवाइयां आमतौर पर उन्हीं की ओर से की जाती हैं जो कमेटी पर कब्जा करके सत्ता को अपने हाथ में रखना चाहते हैं। और कांग्रेस-द्वारा धारा-सभाओं का कार्यक्रम अपनाये जाने के बाद तो ये और ज्यादा बढ़ गई हैं। क्योंकि कांग्रेस-द्वारा लोकल बोर्डों और प्रान्तीय धारासभाओं पर कब्जा करने का निश्चय किये जाने के फलस्वरूप ऐसे बहुत-से लोग इसकी ओर आकर्षित होने

लगे हैं जो चाहे जिस तरह इन संस्थाओं में घुस जाने के लिए उत्सुक हैं। यही लोग हैं जो सच्चे कांग्रेसियों का पूरा समर्थन न पाने पर भाड़े के टट्टू नकली सदस्यों को आगे लाते हैं, जिसका कि उनके प्रति व्यक्तिगत आकर्षण के सिवा कांग्रेस से और कोई वास्ता नहीं होता। यही नहीं, बल्कि कुछ पुराने कांग्रेसियों में भी पद-सत्ता का लोभ घुसा है, जिससे वे भी इन नये भाड़े के टट्टूओं के साथ मिल जाते हैं। यही कारण है कि किसी मूलभूत सैद्धान्तिक मतभेद के वगैर होनेवाली दल-बन्दियां और नीतिभ्रष्ट कार्रवाइयां चुनावों के समय ही अधिक सामने आती हैं।

"इसलिए नम्रतापूर्वक मेरा यह प्रस्ताव है कि कांग्रेस के धारासभाओंवाले विभाग को कांग्रेस कमेटियों से अलग रक्खा जाय और जो लोग लोकल बोर्ड या धारासभाओं में जाना चाहें उन्हें कमेटियों में कोई पद न दिया जाय या यों कहिए कि कमेटियों के पदाधिकारियों को इन किसी के चुनाव में खड़े होने की इजाजत न दी जाय। कांग्रेस के विधान में ऐसा संशोधन कर देने से वहुत करके फिर ऐसी नीतिभष्ट कार्रवाइयों की आवश्यकता नहीं रहेगी। इसके अलावा, इससे कमेटियों के सदस्यों को कांग्रेस का रचनात्मक कार्य करने के लिए अधिक समय मिलेगा जिसकी कि इस समय धारासभाओं के काम की वजह से उपेक्षा हो रही है, और उससे सर्व-साधारण में निःस्वार्थ कार्यकर्त्ताओं के रूप में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी।"

इन सज्जन ने जो वात सुझाई है वही और भी कई कांग्रेसजनों ने सुझाई है। यह है भी वहुत कुछ कार-आमद। क्योंकि धारासभाओं और लोकल बोर्डो के उम्मीदवार अगर कांग्रेस के पदाधिकारियों के अलावा चुने जायें, तो इस तरह मतलव गाठने का खतरा कम रहेगा। ऐसी हालत में हमारे लिए कांग्रेस कमेटियों में सदस्य-संख्या कम करना जरूरी होगा। उस हालत मे सिर्फ वही उनके सदस्य होगें जो अमली तौर पर पूरे समय उन्हीं का काम करेंगे और उनके बाहर का कोई काम करने या पद सम्हालने के लिए न तो उनके पास वक्त होगा, न उसका खयाल ही उन्हें होगा। लेकिन यह ऐसा परिवर्तन है जिसे कांग्रेस-विधान में किसी तब्दीली की आवश्यकता के वगैर हरेक प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी खुद ही कर सकती है।

एक दूसरा उपाय जो मुझे और कार्यसमिति के सदस्यो को खुद ही सूझना चाहिए था, एक वड़े व्यापारी ने मुझे वतलाया है। उन्होंने कहा---"इसके लिए वडी-वडी तदवीरें सोचने मे आप क्यो पड़े है? वर्किंग कमेटी को आप उन व्यापारी पीढ़ियों का अनुकरण करने की सलाह क्यो नही देते जिनकी विविध शाखाएं होती

हैं? इसके लिए चाहिए यह कि कांग्रेस कमेटियों के हिसाब की बहियों की ही नही बल्कि सदस्यों के नामवाले तथा दूसरे सब रजिस्टरों की भी कड़ाई के साथ देखभाल और जाँच कराई जाय। जाँच मे उन सब रजिस्टरों को बिना किसी मुरव्वत के रद्द कर देना चाहिए, जिनमें सदस्यों-सम्बन्धी पूरी जानकारी और कैफियत न हो, और अगर वे रजिस्टर एक ही नमूने के रक्खे जाये तब तो निरीक्षण और जांच-पड़ताल में आसानी भी होगी। वर्किंग कमेटी को तो सिर्फ इस बात का ध्यान रखने की जरूरत है कि ऐसे आडीटर और इन्सपेक्टर काफ़ी तादाद में रक्खे जायं जो अपना काम जानते हों और जिनपर यह विश्वास किया जा सके कि वे ईमानदारी के साथ मुकम्मिल तौर पर अपना काम करेंगे। और अगर आप खर्च करने को तैयार हों तो आमतौर पर ईमानदार और क़ाबिल आदमियों का इसके लिए मिल जाना मुश्किल नहीं है।" यह सब बातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा गया था, उसी को मैंने स्पष्ट रूप से यहां रक्खा है। यह उपाय पूर्णतः व्यावहारिक है और इस पर भी पहले की तरह विधान में कोई तब्दीली किये बगैर अमल किया जा सकता है। ज़रूरत सिर्फ यह है कि कांग्रेस को ऐसी अशुद्धि से पाक करने की दिली ख्वाहिश हो। लेकिन कांग्रेस कमेटियों के मुखिया लोग अगर लापर्वाही और गफ़लत से काम लें, तो यह अशुद्धि दूर नही हो सकती। क्योकि नमक अगर अपना नपकपना खो दे तो फिर उसे नमकीन किस चीज से बनाया जायगा?

—अंग्रेजी। ह० ज०, ह० से० २२।१०।१९३८।]

५२. आर्यसमाज और गन्दा साहित्य

कन्या गुरुकुल देहरादून के श्री धर्मदेव शास्त्री ने और उनके बाद गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य अभयदेव ने मुझे लिखा है कि मैंने अपने 'साहित्य में गन्दगी' शीर्षक लेख में जो अपनी पुत्र-वधू का उल्लेख किया है—जो कि कन्या-गुरुकुल में अध्ययन कर रही है और जिसने अपनी परीक्षा में की कुछ पाठ्यपुस्तकों की गन्दगी के विषय में लिखा था—उसका कही-कही यह अर्थ लगाया गया है कि आर्यसमाज के अधिकारी इस प्रकार के गन्दे साहित्य को प्रोत्साहन देते हैं। इन दोनों ही सज्जनों ने इसका जोरदार खण्डन किया है। आचार्य अभयदेव ने मुझे लिखा है कि गुरुकुल तो इस विषय में इतना सतर्क रहा है कि कालिदास जैसे महाकवियो की रचनाओं के लिए भी उसका यह आग्रह है कि शकुन्तला-जैसी प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों के ऐसे संस्करणों का ही अध्ययन उसके विद्यार्थी करे, जिनमें से अश्लीलता के अंश

बिलकुल निकाल दिये गये हों। यह तो बाद की बात है कि गुरुकुल ने अपने विद्यार्थियो को साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं में बैठने की अनुमति दी। सम्मेलन ऐसी पुस्तकों को अपने पाठ्यक्रम मे रखना बर्दाश्त कर रहा है, जिनमें कि गन्दे साहित्य को स्थान मिला हुआ है। मै समझता हूं कि गुरुकुल के अधिकारियों ने, सम्मेलन के प्रबन्धको का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित किया है और उनसे कहा है कि वे ऐसी पुस्तको को अपने पाठ्यक्रम में से निकाल दें जिनमें कि आपत्तिजनक अंश हों। मुझे आशा है कि जबतक वे परीक्षार्थियों की पाठ्यपुस्तकों मे के गन्दे साहित्य के खिलाफ छेड़ी हुई इस लड़ाई में सफलता प्राप्त न कर लेंगे तबतक उन्हें सन्तोष नही होगा।

—अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, १९।११।१९३८।]

५३. मौलाना शौकत अली का स्मारक

स्व० मौलाना शौकतअली के स्मारक के बारे में मैंने कई तजवीजें पढ़ी हैं। ज्योंही मुझे मौलाना की मृत्यु के बारे में मालूम हुआ, जिसकी कि अभी बिल्कुल ही आशा नही थी, मैंने कुछ मुसलमान मित्रों को उनके साथ अपने अन्तस्तल की समवेदना प्रकट करते हुए लिखा। उनमे से एक मित्र ने लिखा है—

"सच्ची और स्थायी हिन्दू-मुस्लिम-एकता की कितनी तात्कालिक और सख्त जरूरत है, इस विषय में किसी की दो रायें हो ही नहीं सकतीं। और जितनी ही जल्दी यह एकता होगी, उतना ही सबके लिए हितकर होगा। इस मामले में देरी करने से ऐसे गम्भीर चिन्ताकारक परिणाम आ सकते हैं जिनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। आज जो हालत है उससे अत्यन्त भयानक स्थिति आ सकती है, जिसे जहां तक सम्भव हो रोकना ही चाहिए। मैं यह जानता हूं कि मौ० शौकतअली अपने खास ढंग से सच्चा हिन्दू-मुस्लिम समझौता कराने के लिए सचमुच चिन्तित थे। स्वर्ग में उनकी आत्मा को यह जानकर कि उनका एक जीवन-उद्देश्य आखिरकार पूरा हो गया, जितनी शान्ति मिलेगी उतनी किसी दूसरे काम से नहीं। ऐसे भी लोग हो सकते हैं, जिन्हें कि इसमें सन्देह हो, लेकिन मौलाना को और उनका दिमाग किस तरह काम करता था उनको अच्छी तरह जानकर जैसा कि मैं उन्हें जानता था, मैं भरोसे के साथ इस बात की ताईद कर सकता हूं।"

कभी-कभी जो वह जोश में आकर खिलाफ बोल जाते थे, उसके बावजूद मौलाना के दिल में एकता और शान्ति के लिए वही तमन्ना थी जिसके लिए कि वह खिलाफत के दिनों में बड़े मोहक ढंग से बोलते व काम करते थे। मुझे इसमें कोई शक नही कि उनकी यादगार में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कौमों का एकता के लिए किया हुआ संयुक्त निश्चय ही सबसे सच्चा स्मारक होगा—खाली काग़जी एकता का निश्चय नहीं, बल्कि दिली एकता का, जिसका आधार सन्देह और अविश्वास नही, बल्कि आपस का विश्वास होगा। कोई दूसरी एकता हमें नही चाहिए, और बगैर इस एकता के हिन्दुस्तान के लिए सच्ची स्वतन्त्रता भी हासिल होने की नही।

—अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, १७।१२।१९३८।]

५४. ग्राहक चाहिए : गांधी आश्रम, मेरठ का पत्र

गांधी-आश्रम, मेरठ के एक पत्र से निम्नलिखित लिया गया है:

"अ० भा० चर्खासंघ आज तीन लाख से अधिक आदमियों को काम दे रहा है। संघ का खादी-कार्य १३००० गांवों में फैला हुआ है। राष्ट्र-निर्माण की इस महान् प्रवृत्ति में २५७१ कार्यकर्ता लगे हुए हैं। संयुक्त प्रान्त का हिस्सा कुछ कम नहीं है। हमारे रजिस्टरों में ४०,००० से ऊपर कातनेवालों के नाम दर्ज हैं। कारीगरों, जुलाहों, धोबियों आदि की संख्या ४७८० है। करीबन ३०४५ गांवों में हमारी प्रवृत्तियां चल रही हैं, और ६०० कार्यकर्ता प्रान्त के विभिन्न भागों में खादी का सन्देश पहुँचा रहे हैं। ये राष्ट्र के प्रत्येक उत्पादक साधन को क्रियात्मक रूप दे रहे हैं। हम लोग संगठन, संयोजन, सहयोग और निर्माण का सबक लेते हैं। सुना गया है कि पण्डितजी ने कार्य-समिति की बैठक में कहा है कि चर्खा हमारी कपड़े की सारी जरूरतों को पूरा नही कर सकता। मुझे लगता है कि यह कथन चर्खे की सम्भावना का कम मूल्य आंकता है। मैं अपने अनुभव से यह कह सकता हूं कि हम इस समस्या का किनारा भी नहीं छू सके हैं। यदि जो खादी हम बनायें उसके लिए तैयार मण्डी मिल जायं, तो उत्पादन तो थोड़े अरसे में ही हजारगुना बढ़ाया जा सकता है।"

मैने वह अंश छोड़ दिया है, जिसमें बिक्री के सम्बन्ध में अपील की गई है। मैं आशा करता हूं कि उनका प्रयत्न सफल होगा, जैसा कि उसे होना चाहिए। लेकिन यहां मैं जिस कारण पर विचार करना चाहता हूं वह यह है कि उत्पादन

के साथ बिक्री का मेल नही बैठता। प्रचार-कार्य का भी निस्सन्देह अपना स्थान है। किन्तु प्रचार से भी ज्यादा जरूरत वैज्ञानिक शोध की है। इसमें सन्देह नही कि हमारे यहां प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति औसतन १५ गज कपड़ा इस्तेमाल में आता है। न इसमें सन्देह है कि इस कपड़े पर प्रतिवर्ष १०० करोड़ के करीब रुपया देश का खर्च होता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि ३५ करोड़ की जनसंख्या में प्रति व्यक्ति ३ रुपये से कुछ कम कपड़े का खर्च आता है। यह बड़ी आसानी से कहा जा सकता है कि अगर सरकार की ओर से खादी को संरक्षण मिल जाय, तो इसका बिक्री पर प्रभाव पड़ सकता है मेरी राय में यह स्वयंसिद्ध बात है कि खादी को संरक्षण तो मिलना ही चाहिए। लेकिन क्या खादी के कार्यकर्त्ताओं ने, जिनमें योग्यता है, इस बात का पता लगाया है कि बगैर संरक्षण के भी बिक्री बढ़ाने के लिए अपनी शक्ति भर हमने सब प्रयत्न कर लिये हैं या नही? बाधाएं दो हैं। मिल का बना कपड़ा खादी से अधिक सस्ता कहा जाता है, और वह कई रंगों का, कई डिजाइनों का और खूब साफ होता है। यह बात खादी मे नही होती। यह दूसरी कमी अधिकाश मे पूरी कर दी गई है, पर शायद अब भी बहुत-कुछ करने को बाकी है। खादी की सम्भवतः कुछ सीमा होनी ही चाहिए, जिससे आगे वह नही जा सकती। यदि कोई ऐसी सीमा है, तो हमें स्पष्टतया उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। पर मुझे भय यह है कि दामों के सम्बन्ध में अभी पर्याप्त खोज नहीं की गई है। श्री कुमारप्पा ने चर्खे के विषय मे आश्चर्यजनक दावा पेश किया है। लेकिन साधारण मनुष्य पूछता है—तो फिर खादी मिल के कपड़े से महंगी क्यो है? इन प्रश्न का सन्तोषजनक जवाब देना होगा। सरीह जवाबो को मैं सन्तोषजनक नही समझूंगा। जवाबों को अपना पूरा-पूरा परीक्षण खुद करना होगा, और जबतक खादी को अपनी प्राकृतिक महत्ता हासिल न हो जाय, तबतक मार्ग में आनेवाली कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने के साधनों का आविष्कार और अनुसरण जारी रहना चाहिए। यह बड़ी शरम की बात है कि हम, जो अपनी जरूरत से ज्यादा कपास पैदा करते है, अपनी जरूरत के वस्त्र बनवाने के लिए, उसे बाहर भेज देते है। इसी तरह यह भी हमारे लिए शर्म की बात है कि हम जब कि हमारे गांवो मे बेशुमार बेकार मजदूर मिल सकते है, और हम बड़ी आसानी से गांव के औजार मुहैया कर सकते है, अपना कपास अपनी वस्त्रसम्बन्धी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए, शहरो की मिलो में भेजे। इस शरम का इतिहास हमें मालूम है। पर अभी तक जनता से देश-प्रेम की अपील करने के अतिरिक्त हम इस दुहरी शरम को दूर करने का कोई निश्चित मार्ग नही खोज पाये है। दूसरे का एक उत्साहवर्धक उत्तर मिला है। पर हाल का प्रस्ताव जाहिर करता है कि हम स्वदेश-प्रेम की सीमा तक पहुंच गये

हैं। हमें तबतक सन्तोष नहीं होना चाहिए, जबतक कि खादी आम जनता के पहनने की चीज न बन जाये। हो सकता है कि अपनी खोज के परिणाम में हमें यह मालूम हो—जैसा कि कुछ लोगों का कहना है—कि खादी कभी आर्थिक दृष्टि से महत्व की वस्तु नही बन सकती। अब हमें उसे स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नही होनी चाहिए—चाहे वह स्वीकार हमारे अभिमान को कितनी ही ठेस पहुंचाये, और जिन योजनाओं को इतने भरोसे के साथ अभीतक बढ़ाया है वे भले ही ढह जायं, लेकिन तबतक उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता, जबतक कि वह सब खोज न कर ली जाय, जो मनुष्य के लिए शक्य है, और मैंने जो प्रश्न रक्खे हैं उनका सही जवाब न मिल जाय।

—अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, २६।८।१९३९।]

५५. मतभेद

अलीगढ़ के एक एम० ए० लिखते है :—

"बहुत से अवसरों पर आपने कहा है कि कुरान शरीफ के आपके अध्ययन ने आपको यह स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम अपने अनुयायियों को अहिंसा का आदेश देता है। आप यह भी कहते हैं कि पैगम्बर शरीफ के जीवन का आपका अध्ययन आपके इसी विश्वास का समर्थन करता है। मुझे आप यह कहने की इजाजत देंगे कि आपने अपने अध्ययन का जो निष्कर्ष निकाला है, उसमें केवल अपनी इच्छा का ही ध्यान रक्खा होगा। सीधी-सादी बात तो यह है कि आपका दर्शन बल-प्रयोग का एकदम परित्याग करता है। उसके विपरीत, इस्लाम में कुछ अवसरों पर बल-प्रयोग की आज्ञा है। क्या बद्र में पैगम्बर ने बल-प्रयोग का उत्तर बल-प्रयोग से नहीं दिया? अन्य प्रमाण देने की मैं हिम्मत नहीं करता, क्योंकि आप तो अपनी व्याख्या को छोड़कर अन्य व्याख्या स्वीकार नहीं करते। फिर भी मुझे आशा है कि सबसे पहले असहयोग-आन्दोलन के समय आपके वशीभूत मौल ना साहब ने ही जो कुछ कहा था, उसके प्रति कुछ श्रद्धा दिखावेंगे। अदालत के सामने अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा था: मैं महात्मा गांधी की इस बात से सहमत नहीं हूं कि किसी भी दशा में बल का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि मुसलमान होने के नाते मैं यकीन करता हूं कि इस्लाम में बताये गये कुछ खास मौकों पर बल का प्रयोग करने की इजाजत है।' यही नहीं बल्कि अपने मुकदमे के दरम्यान उन्होंने अदालत के सामने अपने उसी वक्तव्य में फिर यह भी कहा कि

'गैर-मुस्लिम सरकार के विरुद्ध इस्लाम केवल तलवार चलाना, लम्बा युद्ध और गला काटना ही सिखाता है।'

"मुझे निश्चय है कि मौलाना साहब आज भी इससे इन्कार नहीं कर सकते।

"यह तो रहा इस्लाम में अहिंसा के बारे में। अब मैं इस प्रश्न के बारे में कि आया मुसलमान एक पृथक राष्ट्र हैं या नहीं, यह कहूंगा कि इस्लाम के प्रारम्भ से ही मुसलमान तो एक पृथक राष्ट्र है। वे तो उस समय भी पृथक राष्ट्र ही थे जब मुहम्मद बिन कासिम भारतभूमि पर आया और मुगल राज्य-काल में भी वे पृथक राष्ट्र ही थे। आज भी वे पृथक राष्ट्र हैं। और अगर वे अपने धर्म के प्रति सच्चे हैं तो सदा वे पृथक राष्ट्र ही रहेंगे। अकबर ने न केवल एक सामान्य धर्म बल्कि एक सामान्य सामाजिक पद्धति भी चलाने का प्रयत्न किया, लेकिन उसका प्रयत्न असफल रहा। मुसलमान इस अर्थ में पृथक राष्ट्र हैं कि वे अपनी शनाख्त को किसी समुदाय में विलीन नहीं कर सकते। इससे एकता के समर्थकों को भयातुर होने की आवश्यकता नहीं है। किसी क्षेत्र-विशेष में किसी विशेष उद्देश्य के लिए सहयोग सर्वदा सम्भव है। एक वायु-मण्डल में सांस लेने या एक भूमि पर बसने से ही राष्ट्र नहीं बनते। विचारों के ऐक्य से राष्ट्र बनते हैं। धर्म मस्तिष्क को ढालता है। मुसलमान सिख का पड़ोसी हो सकता है। लेकिन उनके दृष्टि-बिन्दु, उनके विचार करने के ढंग और उनकी जिन्दगी के तौर-तरीके सदा एक-दूसरे से भिन्न होंगे। पृथ्वी के गोले पर हवा तो सब जगह एक ही है। क्या इंग्लैण्द की हवा किसी प्रकार भारत की हवा से भिन्न है? प्राकृतिक अवस्थाएं तो केवल शारीरिक रूप पर प्रभात डालती हैं। मस्तिष्क उनसे प्रभावित नहीं होता। बेशक ईसाई भी पृथक राष्ट्र हैं। और पारसी भी। भारत तो विभिन्न राष्ट्रों का देश है। जिस दिन राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) भारतीय राष्ट्रों का संघ बन जायगी वह दिन भारत के इतिहास में परम सौभाग्य का दिन होगा।

"बेशक, चीन में ही मुसलमान एक पृथक राष्ट्र है। अगर यह कहा जाय कि उन्होंने अपने को अन्य चीनियों में विलीन कर दिया है, तो मै केवल यही कह सकता हूं कि समस्त इस्लामी दुनिया को उनसे शिक्षा लेनी चाहिए। जो क्रिया चल रही है, वह अगर चलती रही तो मुसलमानों का भाईचारा एक तमाशा भर रह जायगा। इस्लाम ने निश्चित रूप से नियम बना दिया है कि मुसलमान अपनी पोशाक तक में कुछ अन्तर रखे। क्या मौलाना साहब कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्यों में साफ नहीं झलकते?"

इसमें मुझे सन्देह नही कि इस पत्र में जो भाव है, वही बहुत से शिक्षित मुसलमानों का इस समय भाव है। कुरान की इस व्याख्या के बारे में किसी लम्बी दलील में पड़ने का मेरा विचार नही है। गैर-मुस्लिम होने के कारण मेरी स्थिति तो घाटे में है। अगर मै दलील देना शुरू करूं तो उसका स्वभावतः यही जवाब मिलेगा कि, आप तो गैर-मुस्लिम है। आप मुसलमानों की धर्म-पुस्तक की क्या व्याख्या जानें? उसका मै फिर उत्तर दूं कि इस्लाम और अन्य धर्मो के प्रति मुझे उतनी ही श्रद्धा है जितनी कि मैं अपने धर्म के प्रति रखता हू, तो उससे कोई मतलव नही निकलेगा।

अपने सम्वाददाता से मै यह कहूं कि वद्र के युद्ध और पैगम्बर के जीवन की वैसी ही दूसरी घटनाओं का भी मुझे ध्यान है। मैं यह भी जानता था कि खुद कुरान में कई ऐसी आयतें है जो मेरी व्याख्या से मेल नही खाती। फिर भी मेरी राय में यह सम्भव हो सकता है कि किसी पुस्तक की शिक्षा या किसी मनुष्य का जीवन किसी धर्म-पुस्तक की जुदा आयतों या किसी महान जीवन की घटनाओं से, वे चाहे कितनी क्यों न हों, भिन्न हो सकता है। महाभारत खूनी युद्ध की कहानी है। लेकिन कट्टर हिन्दुओं के विरोध के वीच भी मैंने यही कहा है कि वह पुस्तक युद्ध और हिसा की निष्फलता को दिखाने के लिए लिखी गई है।

मौलाना साहव के बचाव में कुछ कहने का मुझे अधिकार नही है। वह तो स्वयं ही अपना बचाव करने में समर्थ हैं। ऊपर मौलाना साहव के वयान के जो उद्धरण दिये गये हैं, उनका निश्चय ही मुझे स्मरण नही है। अपने सम्वाददाता की सचाई पर मैं शक नही करता। केवल वह वयान ही पवित्र कुरान की मूल-शिक्षा के वारे में मेरे उस मत पर प्रभाव नही डालता जिसे मैं वरसो से मानता आया हूं। अनन्तकाल तक मतों में तो भेद रहेगा ही। मै तो पारस्परिक सहनशीलता का प्रतिपादन करता हूं।

राष्ट्रों के वारे में सम्वाददाता ने जो वात कही है, वह तो चौका देने वाली है। यह दावा करने के लिए कि भारत में मुसलमान पृथक राष्ट्र हैं, वहस की गुंजाइश निकल सकती है। लेकिन मैंने कभी भी यह कहा जाता नहीं सुना कि संसार में जितने धर्म हैं, उतने ही राष्ट्र है। अगर हैं, तो उससे नतीजा यह निकलेगा कि एक आदमी अपना धर्म जब वदलेगा तो उसके साथ उसकी राष्ट्रीयता भी वदल जायगी। सम्वाददाता के मतानुसार अंग्रेज और मिश्र, अमरीका, जपान आदि के निवासी राष्ट्र नही है, लेकिन मुसलमान, पारसी, सिख, हिन्दू, ईसाई, यहूदी, वौद्ध, वे चाहे जहां पैदा हुए हों, विभिन्न राष्ट्र है। मुझे भय है कि मेरे मित्र वड़े कमजोर आधार पर यह दावा करते हैं कि राष्ट्रों का भेद धर्म के मुताविक होता है

और होना चाहिए। अप्रतिपादनीय प्रस्ताव को साबित करने के जोश मे सम्वाद-दाता अतिशयोक्ति कर गये हैं।

मुस्लिम खानदानों ने भारत को दो राष्ट्रों में बांट दिया था, इस बात से मैं इन्कार करता हूं। अकबर का उदाहरण असंगत है। उसका उद्देश्य तो धर्मों का मेल करना था। वह तो एक ऐसा सपना था जो पूरा नही हो सकता था। लेकिन अन्य मुस्लिम शाहशाह और राजाओं ने समूचे भारत को अवश्य ही अविभाज्य माना। बचपन मे मैंने तो इसी ढंग से इतिहास सीखा है।

अगर हम हिन्दू-मुसलमानों तथा दूसरो को जन-तन्त्र का निर्माण करना है, तो ऐसा हम तभी कर सकेंगे जब समस्त राष्ट्र अपने अधिक-से-अधिक सम्भव मताधिकार से चुने गये अपने प्रतिनिधियो के द्वारा अपनी बात कहेगा, चाहे ब्रिटेन की उसमें सदिच्छा की आशा दिखाई नही देती। ब्रिटिश साम्राज्यवाद तो अब भी मजबूत है और सर सेम्युअल होर की उसके विपरीत घोषणा के बावजूद उसका खात्मा मुश्किल से होगा। भारत के हिस्से करने का प्रस्ताव तो साम्राज्यवाद की बढ़ोत्तरी के लिए है। क्योंकि भारत के हिस्से केवल ब्रिटिश संगीनो की मदद से या खौफनाक गृह-युद्ध से ही हो सकते है। मुझे आशा है कि कांग्रेस इनमे से किसी की भी सहायक न होगी। ब्रिटेन का भारत के बारे मे युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों की घोषणा करने से इन्कार कर देना तो शायद छिपे तौर से भारत के लिए शुभ ही हुआ है। इससे कांग्रेस मार्ग मे से हट जाती है और मुस्लिम लीग को आठ प्रान्तो के कांग्रेसी-शासन के दबाव से मुक्त होकर इस बात का निर्णय करने का निश्चय अवसर मिल जाता है कि आया वह भारत के टुकड़े करके ब्रिटिश शासन को कायम रक्खेगी या अविभाज्य भारत की स्वतन्त्रता के लिए लड़ेगी।

मुझे आशा है कि लीग भारत के टुकडे नही करना चाहते। मैं यह भी आशा करता हूं कि मेरे सम्वाददाता भारत में अधिक मुस्लिम-मत का प्रतिनिधित्व नही करते। हाल ही में जनाब जिन्ना साहब और पण्डित जवाहरलाल नेहरू में फिर बातचीत शुरू होगी। हम आशा करें कि इस बातचीत के फलस्वरूप साम्प्र-दायिक झगड़े के स्थायी हल का आधार निकल आयगा।

——अंग्रेजी। सेगांव, ७।११।३९। ह० ज०। ह० से०, ११।११।१९३९।]

५६. स्व० आचार्य रामदेव जी

आचार्य रामदेव चल बसे। आप आर्य-समाज के एक प्रसिद्ध नेता और

कार्यकर्त्ता थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद वे ही कांगड़ी-गुरुकुल के निर्माता थे। जहां तक मैं जानता हूं, वह स्वामी जी के दाहिने हाथ थे। शिक्षण-शास्त्री के तौर पर वह बड़े लोकप्रिय थे। पिछले कुछ समय से वह अपने स्वाभाविक जोश के साथ देहरादून के कन्या-गुरुकुल के संचालन-कार्य में पड़ गये थे और कुमारी विद्यावती के पथ-प्रदर्शक और सहारा बन गये थे। जबतक जिये वही उनके लिए रुपया इकट्ठा करके लाते थे। इनको संस्था के आर्थिक पहलू की कुछ भी चिन्ता नही करनी पड़ती थी। मैं जानता हूं कि उनकी मृत्यु से इन्हें और इनकी संस्था को कितनी असह्य हानि पहुंची है। जो लोग स्वर्गीय आचार्यजी को जानते हैं, जो स्त्री-शिक्षा का महत्व समझते है और जिन्हे कुमारी विद्यावती और उनकी संस्था की कद्र मालूम है उन्हें अब चाहिए कि गुरुकुल को सदा के लिए आर्थिक कष्ट से मुक्त कर दे। परलोकवासी आचार्य जी के लिए इस तरह का धन-संग्रह अत्यन्त उपयुक्त स्मारक होगा।

——अंग्रेजी। सेगांव, २५।१२।१९३९। ह० से०, ३०।१२।१९३९।]

५७. असेम्बली के कांग्रेसी मेम्बरों का भत्ता

संयुक्त प्रान्त की असेम्बली के एक मेम्बर ने मुझे एक पत्र भेजा है। उसका खुलासा यह है:—

"संयुक्त-प्रान्त में हमें ७५ रुपये महीना भत्ता मिलता है। कांग्रेस की सत्ता ढाई साल रही। इस अर्से में असेम्बली की बैठकें कभी तो छः-छः दिन में खत्म हो गई और कभी महीनों चलती रहीं। इसके सिवा सिलेक्ट, विशेष और नियमित कमेटियों की भी बैठकें हुईं। इनमें से कुछ कमेटियां अब भी काम कर रही हैं। और हमारा बहुत समय ले लेती हैं। साथ ही, यह भी पता नहीं कि असेम्बली फिर कब बुला ली जाय। अपने-अपने चुनाव के हलकों में दौरा करने में भी हमारा दो-दो सौ रुपया साल खर्च हो जाता है। ऐसे भी निर्वाचन-क्षेत्र हैं, जो लखनऊ से २०० मील से भी दूर हैं। साल में तीन दौरों का औसत मान लें तो हर मेम्बर को इस काम में छ सप्ताह लगाने पड़ते हैं। मेम्बर लोग जब लखनऊ में हैं तब उन्हें अपने-अपने चुनाव के हलकों से आनेवालों की आवभगत भी करनी पड़ती है। हर मेम्बर को अपने दल और प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी को ८ रुपया माहवार देना पड़ता है। ऐसी दशा में व्यापार-धन्धा तो छूट ही जाता है और यह जाहिर है कि किसी मेम्बर की आमदनी का खानगी जरिया न हो तो बिना कुछ

भत्ता लिये अपना सारा समय देना बिल्कुल नामुमकिन है। संयुक्तप्रान्त की असेम्बली के मेम्बरों के सामने यह प्रश्न कई बार आ चुका है। हममें से बहुतों को लगता है कि या तो भत्ता बढ़ाया जाय या हममें जो गरीब हैं उन्हें धनवानों के लिए मैदान छोड़कर निकल जाना पड़ेगा। आपको तो यह जानकर दुःख हुआ कि कुछ असेम्बली के मेम्बर भत्ता अपने ही आप में ले रहे हैं, मगर मैंने आपके सामने तस्वीर का दूसरा रुख पेश किया जिससे आप हमें रास्ता दिखा सकें। यह भी याद रखने की बात है कि कांग्रेस की आज्ञा मानकर हमने जो चुनाव लड़े उसमें बहुतों को कर्ज लेना पड़ा था।

"दूसरी बात, जिसकी तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं, वह है कांग्रेस में फैली हुई गन्दगी का सवाल। इसके और दो कारण हैं ही, साथ ही असेम्बली की मेम्बरी का लालच भी कांग्रेस के साधारण कार्यकर्त्ताओं में जबरदस्त है। इससे लोग मौजूदा मेम्बर को हटाकर उसकी जगह खुद आने की कोशिश करते हैं और अक्सर बुरे उपाय काम में लाते हैं। अगर यह समझ लिया जाय कि जिन मेम्बरों ने अच्छा काम किया है उन्हीं को फिर खड़ा किया जायगा तो अच्छी बात होगी। ऐसी नीति से धारा-सभाओं के काम के लिए कार्यकर्त्ताओं का एक तालीम पाया हुआ समूह जरूर बना रहेगा। मेम्बरों को यह भी अच्छी तरह अनुभव हो जायगा कि धारा-सभाओं के बाहर उन्हें रचनात्मक कार्य भी करना है।

"तीसरी बात, जिस पर प्रकाश डालने की आपसे नम्र प्रार्थना है, यह है कि बड़-बड़े कांग्रेसियों का भी पश्चिमी ढंग से रहन-सहन, विचार और संस्कृति की तरफ जबरदस्त झुकाव हो रहा है। खद्दर पहनते हुए भी उनमें से बहुतेरे अपनी देशी संस्कृति से बिल्कुल दूर रहते हैं, और उन्हें जो भी प्रकाश मिलता है पश्चिम से मिलता है।"

जहां तक भत्ते का सम्बन्ध है, इस पक्ष में दी हुई दलील से मैं कायल नही हुआ। अलबत्ता, सभी मामलों में कुछ लोगों को तो कष्ट होता ही है। मगर ऐसे उदाहरणों से नियम बनाना अच्छी बात नहीं। याद रहे कि असेम्बलियों पर कांग्रेस का ठेका नही है। वहां कई दलों के प्रतिनिधि होते है। इसलिए सिर्फ कांग्रेस की सुविधा का ही लिहाज नही रखखा जा सकता। लेखक मान बैठे है कि हर मेम्बर धारासभा के काम को विशेष रूप से ध्यान मे रखकर अपना सारा समय राष्ट्रीय सेवा में लगाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि धारा-सभाओं के मेम्बरों का राजनीति ही धन्धा हो गया और धारा-सभाए खासतौर पर उनके लिए सुरक्षित स्थान बन गईं। मेरा बस चले तो मैं वे बातें दलों से ही करा लू। मैं जानता हूं कि इस

सवाल में कठिनाइयां भरी पड़ी है और इस पर पूरी तरह और शान्ति के साथ चर्चा होने की जरूरत है। पर मैंने जो बात उठाई है वह बिल्कुल छोटी-सी है। जब असेम्बलियों का एक तरह से काम बन्द है, मेम्बर लोग कुछ भी भत्ता क्यों लें? गिनती की जाय तो पता चलेगा कि बहुत से मेम्बर असेम्बली में चुने जाने से पहले इतना नही कमा रहे थे जितना कि अब कमा रहे है। धारा-सभाओं को अपनी मामूली कीमत से अधिक कमाई का साधन बना लेना खतरनाक बात है। प्रान्तों के जिम्मेदार लोगों को मिलकर सोचना चाहिए और कोई ऐसा निर्णय करना चाहिए जिससे कांग्रेस की भी शोभा बढ़े और जिस काम के लिए वे खप रहे है उसकी भी शोभा बढ़े।

लेखक ने मौजूदा मेम्बरों को स्थायी उम्मेदवार बना देने का जो सवाल उठाया है वह मेरे हाथ की बात नही। इस मामले में मुझे कोई अनुभव नहीं है। इसकी गहराई में जाना कार्यसमिति का काम है।

रही बात पश्चिम से प्रकाश लेने की आदत की, सो अगर मेरे सारे जीवन से किसी को कोई रास्ता न मिला हो तो अब और क्या रास्ता बता सकता हूं? प्रकाश तो पूर्व से निकल कर फैला करता था। अगर पूर्व का भण्डार खाली हो गया है तो यह स्वाभाविक है कि पूर्व को पश्चिम से उधार लेना पड़ेगा। मुझे तो आश्चर्य है कि प्रकाश प्रकाश ही है और कोई रोग नही है तो वह भी कभी खत्म हो सकता है क्या? मैने बचपन में पढ़ा था कि प्रकाश याने ज्ञान देने से बढ़ता है। कुछ भी हो, मैने तो इसी विश्वास पर अमल किया है और इसीलिए बाप-दादाओं की पूंजी पर ही अपना व्यापार चलाया है। मै कभी घाटे में नही रहा। लेकिन इसका यह मतलब नही कि मैं कुएं का मेढक बन जाऊं। अगर प्रकाश पश्चिम से आये तो मुझे उससे फायदा उठाने में कोई रुकावट नही। मैं इतना-सा ध्यान ज़रूर रक्खूगा कि पश्चिम की तड़क-भड़क के वशीभूत न हो जाऊं। मुझे भूल से इस तड़क-भड़क को ही सच्चा प्रकाश नही समझ लेना होगा। प्रकाश जीवन देता है और तड़क-भड़क मौत के मुह में ले जाती है।

—सेगांव, ८।१।१९४०। ह० से०, १३।१।१९४०।]

५८. अमली अहिंसा

डाक्टर राममनोहर लोहिया लिखते हैं:—

"क्या आजादी की प्रतिज्ञा का यह अर्थ है कि स्वतन्त्र भारत के लिए ऐसी

सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रखा ही जाय जिसकी बुनियाद सिर्फ चर्खे
और मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम पर होगी? मुझे खुद को तो ऐसा लगता है
कि ऐसी बात नहीं है। प्रतिज्ञा में चर्खा और गांवों में की दस्तकारियां शामिल
हैं, मगर यह बात नहीं है कि प्रतिज्ञा में दूसरे उद्योगों और आर्थिक प्रवृत्तियों की
गुंजाइश ही नहीं। इन उद्योगों में बिजली, जहाज बनाने, कलें तैयार करने आदि
का नाम लिया जा सकता है। फिर भी यह सवाल रह जाता है कि जोर किस पर
दिया जाय। इस बारे में प्रतिज्ञा से सिर्फ इस हद तक फैसला होता है कि इतना
विश्वास रखना तो जरूरी है कि चर्खा और ग्रामउद्योग भावी समाज-व्यवस्था
के ऐसे हिस्से होंगे जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता और उन पर से विश्वास
हटाकर दूसरे उद्योगों पर विश्वास नहीं रखा जा सकता।

"क्या प्रतिज्ञा से तुरन्त यह जरूरी हो जाता है कि और सब कार्रवाई करना
छोड़ दिया जाय और सिर्फ वही की जाय जिसका आधार मौजूदा रचनात्मक
कार्यक्रम पर हो? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह जरूरी नहीं। लगान, कर,
व्याज और जनता की प्रगति के रास्ते में और भी जो आर्थिक रुकावटें हैं उनके
विरुद्ध आन्दोलन करने में कोई बाधा नहीं दिखाई देती। मिसाल के लिए, यह
नामुमकिन नहीं है कि जब आप सत्याग्रह शुरू करना पसन्द करें तब आप खुद ही
लगानबन्दी और करबन्दी का आन्दोलन करने का निश्चय करें। आप सचमुच
ऐसा करें या न करें, प्रतिज्ञा की दृष्टि से इसका इतना महत्व नहीं है जितना इस
बात का कि, आप कर सकते है। कुछ भी हो, आज तो आर्थिक ढंग के आन्दोलन
की छूट है।

"ये दोनों सवाल तो प्रतिज्ञा के इस पहलू से पैदा होते हैं कि क्या-क्या नहीं
किया जा सकता। एक तीसरा सवाल इस बारे में खड़ा होता है कि क्या-क्या
करना जरूरी है। बेशक, यह आवश्यक है कि जो कोई प्रतिज्ञा ले उसे समाज की
अर्थ-व्यवस्था एक जगह केन्द्रित न करने के उसूल में अपना क्रियात्मक विश्वास
जाहिर करने को तैयार रहना चाहिए। इस विश्वास का असली रूप क्या हो,
यह भले ही काल-प्रवाह के साथ तय हो सकता है। प्रतिज्ञा लेनेवाले को सिर्फ
चर्खे के बारे में इतना विश्वास होना चाहिए कि कपड़े का उद्योग थोड़े लोगों
के हाथों से पूरी तरह निकालकर अधिक-से-अधिक लोगों के हाथों में दिया जा
सकता है और इसके लिए कोशिश भी होनी चाहिए।

"मैंने आलस्य और दूसरे कारणों से होनेवाली व्यवहार की अनियमितताओं
का बिल्कुल जिक्र नहीं किया है। ऐसा तो सभी प्रतिज्ञाओं और श्रद्धाओं के बारे में
होता है। सिर्फ ऐसी गलतियों को दूर करने की इच्छा जरूर होनी चाहिए।

"मैं नहीं जानता कि प्रतिज्ञा का यह अर्थ सही है या नहीं और आपको स्वीकार हो सकता है या नहीं। मुझे यह भी पता नहीं कि मेरे समाजवादी साथियों को यह पसन्द आयेगा या नहीं। शायद आपकी राय जल्दी मालूम होना देश के लिए अच्छा होगा। मगर पहले ही इतनी देर हो चुकी है कि स्वाधीनता-दिवस के लिए तो यह राय काम नहीं आ सकेगी।"

जो बात मै कई बार कह चुका हूं उसे दोहराने की जरूरत तो नही है, मगर बात यह है कि प्रतिज्ञा का कानूनी और अधिकारपूर्ण अर्थ तो कार्यसमिति ही बता सकती है। मेरे बताये हुए अर्थ का महत्व वही तक है जहां तक कि लोगों को मान्य है।

संक्षेप में, मैं इतना कह सकता हूं कि डाक्टर लोहिया का लगाया हुआ अर्थ मंजूर कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नही है। कांग्रेस की कोशिश का अन्त में कुछ भी परिणाम निकले, प्रतिज्ञा के बारे में जो चर्चा हो रही है उससे जनता को अच्छी राजनीतिक शिक्षा मिल रही है और देश में अलग-अलग विचार के लोगों की राय स्पष्ट होती जा रही है।

हालांकि मोटे तौर पर डा० लोहिया से मेरी राय मिलती है, फिर भी यह अच्छा होगा कि प्रतिज्ञा का अपना अर्थ मै अपनी ही भाषा मे बता दूं। प्रतिज्ञा में सारी बातें नही आ गई। इससे तो यही मालूम होता है कि कार्यसमिति कहां तक मेरे साथ जा सकती थी। अगर देश का दृष्टिकोण मै अपना-सा बना सका तो भावी समाज-व्यवस्था की बुनियाद ज्यादातर चर्खे और उससे निकलनेवाले सारे फलितार्थों पर खड़ी की जायगी। उसमें वे सब चीजें शामिल होंगी जिनसे देहातियों की भलाई हो। लेखक ने जिन उद्योगों का जिक्र किया है जबतक वे देहातों और देहाती जीवन का गला न घोंटने लगें तबतक उन उद्योगों का स्थान भी रहेगा। मेरी कल्पना में यह जरूर है कि देहात की दस्तकारियों के साथ-साथ बिजली, जहाज बनाना, कलें तैयार करना और इसी तरह के दूसरे उद्योग भी रहेंगे। मगर कौन मुख्य और कौन गौण रहे, इसका क्रम उलट जायगा। आजतक बड़े-बड़े कारखानों की योजना इस तरह बनती रही है जिससे गांवों और ग्राम-उद्योगों का नाश हुआ। आनेवाली शासन-व्यवस्था में बड़े उद्योग गांवों और उनकी कारीगरी के मातहत रहेंगे। मैं समाजवादियों की इस मान्यता से सहमत नहीं हूं कि जब बड़े कारखानों की योजना बनानेवाला और उसका मालिक राज्य हो जायगा तब जीवन के लिए जरूरी चीजें बड़े कारखानों में तैयार करने से आम लोगों का भला होगा। हेतु तो पश्चिमी और पूर्वी दोनों तरह की कल्पना में एक ही है, यानी यह कि सारे समाज को अधिक-से-अधिक सुख मिले और जिस घिनौने भेदभाव

के कारण एक तरफ करोड़ो नंगे-भूखे और दूसरी ओर मुट्ठीभर मालदार रहते हैं वह भेदभाव मिट जाय। मेरा विश्वास है कि यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जब संसार के अच्छे और विचारशील लोग मान लें कि अहिसा के आधार पर ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था रची जा सकती है। मेरी राय मे ग़रीबों के हाथ में हिसा-द्वारा सत्ता लाने की कोशिश अन्त में पार नही पड़ेगी। जो चीज हिंसा से हासिल की जाती है वह उससे बढ़कर हिंसा के सामने नही टिक सकती और हाथ से निकल जाती है। अगर काग्रेसवादी अहिसा के अपने ध्येय पर सच्चे रहें और उस पर अमल करे तो भारत का उद्देश्य पूरा हुआ ही समझना चाहिए। इस सचाई की परीक्षा है रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करना। जो लोग आम जनता के विचारों को भड़काते है वे जनता और देश दोनों का नुकसान करते है। उनका हेतु ऊंचा होता है, इस बात से यहां सरोकार नही। कांग्रेसवादी रचनात्मक कार्यक्रम पूरी तरह और सचाई के साथ अमल क्यों नही करना चाहते? जब सत्ता हमारे हाथ में आ जायगी तब दूसरे कार्यक्रमों पर विचार करने का वक्त आयेगा। मगर हम तो शेखचिल्ली ठहरे। दन्तकथा है न कि भैंस खरीदने से पहले ही उसके बँटवारे के बारे में साझीदार झगड़ बैठे। इसी तरह स्वराज तो मिला नही और हम है कि अपने जुदा-जुदा कार्यक्रमों के बारे में बहस और झगड़े कर रहे हैं। सुशीलता का तकाजा है कि जब बहुमत ने एक कार्यक्रम मंजूर कर लिया तो सभी उस पर सचाई के साथ अमल करे।

इसमे तो कुछ भी शक नही कि कांग्रेस के कार्यक्रम के जिन दूसरे अंगों से उस कार्यक्रम की अबतक शोभा बढी है और जिनकी तरफ डा० लोहिया ने संकेत किया है उन्हें प्रतिज्ञा के कारण छोड़ देने की जरूरत नही है। हर तरह के अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करना तो राजनीतिक जीवन का प्राण है। मेरा जोर इसी बात पर है कि उस आन्दोलन को रचनात्मक कार्यक्रम से अलग कर देने से उसमें हिंसा की झलक आ ही जायगी। मै अपनी बात उदाहरण देकर समझाऊं। अहिसा के प्रयोगों से मैंने यह सीखा है कि अमली अहिंसा का अर्थ सब लोगों का शरीर-श्रम है। एक रूसी दार्शनिक बोंडरेफ ने इसे रोटी के लिए श्रम कहा है। इसका परिणाम यह होगा कि लोगों मे आपस में गहरे से गहरा सहयोग हो। दक्षिण अफ़्रीका के पहले सत्याग्रही सबकी भलाई और सम्मिलित कोष के लिए मेहनत करते थे और उन्हें उड़ते पंछियो की-सी बेफिक्री रहती थी। उनमे हिन्दू, मुसलमान (शिया और सुन्नी) ईसाई (प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथलिक) पारसी और यहूदी सभी थे। अंग्रेज और जर्मन भी थे। धन्धे के लिहाज से उनमें वकील, इमारत और बिजली की विद्या जानने वाले, इंजीनियर, छापनेवाले और व्यापारी थे। सत्य

और अहिसा के व्यवहार से धार्मिक झगडे मिट गये थे और हमने सब धर्मो में सत्य के दर्शन करना सीख लिया था। दक्षिण अफ्रीका में मैने जो आश्रम कायम किये उनमें एक भी मजहवी झगड़ा हुआ हो ऐसा मुझे याद नही आता। सब लोग छपाई, वढईगिरी, जूते बनाना, बागवानी, इमारत वगैरा, हाथ के काम करते थे। यह मेहनत किसी को भाररूप नहीं लगती थी। उसमे आनन्द आता था। शाम का समय पढ़ने-लिखने में जाता था। सत्याग्रही सेना का अग्रणी दल इन्ही स्त्री, पुरुषों और लड़कों का हुआ। इनसे ज्यादा वीर या सच्चे साथी मुझे नही मिल सकते थे। हिन्दुस्तान में दक्षिण अफ़्रीका का-सा ही अनुभव रहा और मुझे भरोसा है कि उसमें कुछ सुधार ही हुआ। सभी लोग मानते है कि अहमदावाद का मज़दूर-संगठन भारत में सबसे बढ़िया है। उसका काम जिस ढंग से शुरू हुआ था उसी तरह चलता रहा तो अन्त में वहां की मिलों में मौजूदा मालिकों और मजदूरों की मालिकी होकर रहेगी। यह स्वाभाविक परिणाम न निकला तो पता चल जायगा कि संगठन की अहिसा में खामियां थी। बारडोली के किसानों ने वल्लभभाई को सरदार की पदवी दी और अपनी लड़ाई फतह की। बोरसद और खेड़ा के किसानों ने भी वैसा ही किया। ये सब चर्खे के रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल कर रहे है। मगर इस अमल से उनके सत्याग्रही गुणों का ह्रास नही हुआ है। मुझे पूरा यकीन है कि सविनय-भंग हुआ तो अहमदावाद के मजदूर और वारडोली और खेड़ा के किसान भारत के और किसी भी हिस्से के किसानों और मजदूरों से जौहर दिखाने में पीछे नही रहेंगे। चौतीस साल के सत्य और अहिसा के लगातार प्रयोग और अनुभव से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि अहिसा का ज्ञानवर्द्धक शरीर-श्रम के साथ सम्वन्ध न होगा और हमारे पड़ोसियो के साथ रोजमर्रा के व्यवहार में उसका परिचय न मिलेगा तो अहिसा टिक नही सकेगी। यह है रचनात्मक कार्यक्रम का रहस्य। यह साध्य नही है. साधन है; मगर है इतना अनिवार्य कि उसे साध्य भी समझ लें तो वेजा नही। अहिसक विरोध की शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम पर ईमानदारी के साथ अमल करने से ही पैदा हो सकती है।

—अंग्रजी। सेगांव, २४।१।१९४०। ह० ज०। ह० से०, २७।१।१९४०।]

५९. घी में मिलावट

डाक्टर कैलाशनाथ काटजू लिखते हैं:—

"आपने २० जनवरी के 'हरिजन' में घी में मिलावट करने के बारे में जो नोट

लिखा है मैंने उसे बहुत दिलचस्पी से पढ़ा। आपके लिए यह जानना शायद दिलचस्पी से खाली न होगा कि युक्त-प्रान्त में पदत्याग करने से पहले हमने इस समस्या पर बहुत बारीकी से ध्यान दिया था। मिलावट आम है और उसे अवश्य रोकना चाहिए। दुर्भाग्य की बात यह है कि केवल घी बेचनेवाले और दलाल ही मिलावट नहीं करते, बल्कि देहात में घी तैयार करनेवाले भी उसे मण्डी में लाकर बेंचने से पहले ही अपने घर में मिलावट कर देते हैं। सस्ते वनस्पति घी ने मिलावट करना और भी आसान बना दिया है। हमने यह सोचा था कि वनस्पति-तैलों में कोई रंग या बू डालना अनिवार्य बना दिया जाय। मगर अब कठिनाई यही है कि ऐसे रंग या बू को मालूम किया जाय, जो हानिकर न हों। भारत-जैसे गरम देश में ऐसा गहरा रंग देना स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो सकता है।

"हमने अपने प्रान्त की धारासभा में इस शरारत को रोकने के लिए एक विस्तृत बिल पेश किया था। वह कमेटी के सामने था कि हमने इस्तीफ दिये। इस बिल द्वारा प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि नकली घी या वनस्पति-तैलों में रंग या बू डालने का कायदा बनाये। लेकिन मेरी समझ में इस बिल की अधिक उपयोगी और असली महत्वपूर्ण धारा यह है कि जिन इलाकों में घी तैयार किया जाता है वहां उस नकली या वनस्पति-घी बिकने की मनाही कर दी जाय। मैं ऐसे देहाती इलाके जानता हूं जहां घी बहुत ज्यादा मिकदार में तैयार किया जाता है और वहा नकली घी कोई भी नही खाता, मगर तो भी वहां यह बनावटी घी बहुत बडी मिकदार में बिकता और खरीदा जाता है और उसे असली घी में मिला दिया जाता है। हमने यह सोचा कि उन इलाकों में, जहां बनावटी घी आमतौर पर केवल मिलावट के लिए खरीदा जाता है, उचित तरीका यही है कि वहां इस घी की बिक्री बिल्कुल ही बन्द कर दी जाय, और इस तरह घी तैयार करने के असल धन्धे की रक्षा की जाय और उसे प्रोत्साहन दिया जाय।

"मुझे आशा है कि इस बिल को आप पसन्द करेंगे। घी-दूध के व्यवसाय के बिना खेती-बाड़ी उन्नति नहीं कर सकती। युक्तप्रान्त में हमने घी-को-आपरेटिव सोसाइटियों को बहुत बड़ी संख्या में प्रोत्साहन दिया है और इस बात पर जोर दिया है कि कानूनन इन सोसाइटियों को अपने सदस्यों द्वारा मिलावट रोकने का अधिकार दिया जाय। यह भी लाभदायक साबित हुआ है।

"मै आपको यह सब इसलिए लिख रहा हूं कि शायद यह जानकारी 'हरिजन' के पाठकों के लिए दिलचस्पी का कारण बने।"

डा० काटजू ने घी तैयार करनेवाले इलाको के बारे में विशेषत. जो नियम बताये हैं वे विचारणीय हैं। वास्तव में स्वाभाविक खुराक की एक प्रमुख चीज में

मिलावट करने का सवाल बहुत ही महत्वपूर्ण है और यह देशभर का सवाल है। इसे हल करने के लिए ऊंची राजनीति में जाने की दरकार नही है।

—अंग्रेजी। नई दिल्ली, ३।२।४०। ह० ज०। ह० से०, १०।२।१९४०।]

६०. डा० लोहिया का गुनाह

अदालत के रूबरू डा० लोहिया ने जो बयान दिया था वह और मजिस्ट्रेट साहब के फैसले की नकल श्री अच्युत पटवर्धन ने मुझे भेजी है। उसे मै पढ़ गया हूं। डा० लोहिया का सारे-का-सारा बयान मुझे ठीक लगा है। उसमे से कुछ हिस्से नीचे दिये जाते है, क्योंकि उनकी कीमत तात्कालिक ही नही, सदैव के लिए है:

"हमारी सब-की-सब प्रवृत्ति अहिंसक होनी चाहिए। अहिंसा की आवश्यकता सिर्फ हमारे देश की आज की परिस्थिति के कारण ही नहीं, बल्कि जगद्व्यापी कारणों के आधार पर है। न सिर्फ व्यावहारिक दृष्टि से, बल्कि नैतिक दृष्टि से भी यह इष्ट है। अगर इस बारे में कही शंका के लिए गुंजाइश थी भी, तो यह रिपोर्टर महोदय ने खुद रफा कर दी है। उनकी रिपोर्ट के अनुसार मैने यह लफ्ज कहे थे—'जब हम हथियार का आश्रय लेते हैं तो हमारे दिल कमजोर बन जाते हैं। जो शख्स हथियार पर भरोसा करता है, वह अपने हृदय बल का भरोसा खो देता है। अपने ही हथियार का वह खुद गुलाम बन जाता है; उसमें अपनी कोई ताकत नहीं रहती।'

"पुराने जमाने के 'लाठीवाद' और उसकी जगह आजकल की 'विमानशाही' का मैं विरोधी हूं। इनमें और मानवजाति के सामूहिक जीवन में एक प्रकार का आन्तरिक विरोध है और वह दिन-ब-दिन अधिक प्रचण्ड बनता जाता है। आनेवाले बीस साल इस बात का फैसला करेंगे कि इनमें से किसको रहना है, किसको जाना है। क्योंकि ये दोनों चीजें साथ-साथ कभी नहीं चल सकतीं। अगर मानव-समाज को जिन्दा रहना है, तो उसके लिए अकेला एक रास्ता यह है कि सारी दुनिया में साम्राज्यवाद और पूंजीवाद मिटकर उसकी जगह बालिग मताधिकार के आधार पर एक व्यापक लोकतन्त्र खड़ा हो। मैंने अपने भाषण में इसकी तरफ इशारा भी किया है और बताया है कि इसका असर हिन्दुस्तान की रियाया पर क्या होगा। इस उसूल को आगे लाने के लिए ही मैंने गांधीजी के पास, आज ही अमल में लाई जा सके, एक ऐसी सुलह की योजना पेश की थी। उसमें दिये हुए

सब मेरे अपने मौलिक विचार ही हैं, यह मैं नहीं कहना चाहता। उस योजना के मुख्य अंग ये हैं :—

"(१) सब लोग स्वतन्त्र होंगे; जो लोग नये सिरे से अपनी आजादी हासिल करेंगे वे अपना विधान एक विधान-पंचायत के जरिये से गढ़ेंगे ;

"(२) सब जातियां समान हैं, इसलिए दुनिया में कहीं भी किसी को विशेष रिआयतों का हक नहीं होगा। किसी शख्स को दुनिया के किसी हिस्से में जाकर आबाद होने के लिए किसी प्रकार का राजनीतिक प्रतिबन्ध नहीं होगा;

"(३) किसी देश की रैयत के कब्जे में लेन और लगाई हुई पूंजी के सब तमस्सुक पहले तो एक अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के सामने निष्पक्ष पड़ताल के लिए पेश किये जायंगे। उसके बाद वह किसी व्यक्ति की नहीं, बल्कि उस रैयत की सरकार की मिल्कियत ठहराये जायंगे। जब जगत् की सब कौमें इन तीन उसूलों को कबूल कर लेंगी तो इनमें से निकला हुआ एक चौथा उसूल अपने-आप चल जायगा, याने सारा जगत् सम्पूर्ण शस्त्र-त्याग करेगा।

"मुझे यह जानकर खुशी है कि महात्मा गांधी ने मेरी इस सुलह की योजना की ताईद की है। अन्त में मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरे मन में किसी कौम के प्रति द्वेषभाव नहीं है। मैं जर्मनी में रह चुका हूं और जर्मन लोगों की शोधों की पूर्णता, उनकी वैज्ञानिक बुद्धि और कार्यशक्ति पर मैं मुग्ध हूं। मुझे इस बात का दुःख है कि वे आज एक ऐसे तन्त्र के नीचे दबे हुए हैं जो उन्हें युद्ध और स्वतन्त्रताहरण के कुकर्मों में डाल रहा है। मुझे अंग्रेज कौम का इतना नजदीकी परिचय नहीं, मगर मैं यह मानने को तैयार हूं कि उनमें भी बहुत-से गुण हैं। जैसा कि मैंने अपने भाषण में कहा था, मैं ब्रिटेन का विनाश नहीं चाहता। ब्रिटिश लोगों ने हमारे साथ बुराई की है, मगर मैं इस बुराई का जवाब बुराई से नहीं देना चाहता। आगे चलकर फिर मैंने कहा था, मुझे इस बात का दुःख है कि अंग्रेज कौम आज एक ऐसे तन्त्र के वश में है कि जिसने दुनिया की तमाम कौमों को गुलाम बना रक्खा है।"

डा० लोहिया के बारे में अदालत ने फैसला देते हुए नीचे अनुसार लिखा है :—

"मुलजिम एक ऊंचे दर्जे का बुद्धिशाली और सुसंस्कृत शरीफ आदमी है। उसके पास शायद किसी युरोपियन देश की डाक्टर की डिग्री भी है। वह बुलन्द उसूलों और चरित्रवाला है। उसकी नीयत की सफाई पर कोई भी शक नहीं ला सकता। अपने उसूलों के लिए चाहे कितनी तकलीफ उठानी पड़े, इसकी उसे पर्वा नहीं और न उसे इस बात की ही पर्वा है कि उसे कितनी लम्बी और कड़ी सजा मिलेगी। हम उसे मौजूदा सरकार की नीति के बारे में स्वतन्त्र मत रखने

के लिए बिल्कुल सजा नहीं देना चाहते, क्योंकि इस सरकार का दावा है कि वह एक लोकतन्त्र है और लोकमत के अनुसार वह चलती है। यह दावा उसे इस बात पर मजबूर करता है कि जनता को कानून की मर्यादा के अन्दर रहकर जैसे ठीक लगे वैसी टीका करने की खुली छूट है। मगर हमारा यह भी फर्ज है कि हम सरकार और जनता के बीच तालुक़ात में बिगाड़ न आने दें। जो तकरीर मुलजिम ने दोस्तपुर में की उसका जरूरी नतीजा यही हो सकता है कि लोगों के दिलों में सरकार के प्रति अरुचि पैदा हो, और यह एक ऐसे मौके पर जब कि ब्रिटिश सल्तनत एक निहायत बेईमान दुश्मन के साथ लड़ रही है। इसलिए मैं इस बात को बहुत इष्ट समझता हूं कि एक लम्बे अर्से के लिए या जबतक मौजूदा बादल ब्रिटिश सरकार के सिर पर से न टल जायं तबतक मुलजिम को जेल में रक्खा जाय। इसलिए मैं उसे दो साल की सख्त कैद की सजा देता हूं और बी क्लास में उसे रखने की सिफारिश करता हूं।"

तब कड़ी सज़ा क्यों? लम्बी क़ैद की बात तो फिर भी समझ में आती है कि मुलज़िम को और नुकसान करने से रोकना चाहिए। लेकिन इस तरह उसे कड़ी क़ैद में डालने से नुकसान बढ़ेगा तो नहीं? इसका आखिर फैसला तो सरकार ही कर सकती है। लोगों को तो हमेशा इतना याद रखना चाहिए कि जिस जगह राज्यकर्त्ता लोगों के प्रतिनिधि नही हैं, वहां देश-प्रेम और साफ-साफ बात करना गुनाह है। मेरा तो खयाल है कि डा० लोहिया और ऐसे कांग्रेसी की सजा हिन्दुस्तान की बन्धन की रस्सी ढीली करती है। सरकार कांग्रेस को सिविल नाफ़रमानी करके बन्धन काटने का न्यौता देती है। कांग्रेस ने सोचा था कि यह काम लड़ाई की कशमकश कम होने के बाद उठाया जाय। शायद अब यह नही हो सकेगा, यही दुःख है।

—अंग्रेजी। सेवाग्राम, २१।८।१९४०। ह० ज०। ह० से०, ३१।८।१९४०।]

६१. काशी के भाषण पर कुछ प्रश्नोत्तर

बिल्कुल ग़लत

प्रश्न—अखबारी खबर है कि काशीवाले अपने भाषण में आपने हिन्दुस्तानियों के लिए अंग्रेजी पढ़ना और अंग्रेजी में बातचीत करना गुनाह करार दे दिया है। इस सम्बन्ध में लोग आपकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि जो खुद अपने के लिए इस तिरस्कृत अंग्रेजी का इतना उपयोग कर लेता है, उसे ऐसा फतवा देने का क्या हक है?

उत्तर—बात बिल्कुल गलत है। लेकिन जब एक बार कोई झूठी बात चल पड़ती है, तो उसे रोकना बहुत मुश्किल हो जाता है। मेरे बारे में ऐसी कई झूठी बातें फैलती रही है, उनके कारण क्षणिक सनसनी भी फैली है, लेकिन फिर अपनी मौत वे खुद मर गई है और मुझे उनके लिए कुछ करना नही पड़ा। मै जानता हूं कि इसकी भी यही गति होगी। जिस झूठ का कोई सिर-पैर ही नही, उससे कभी किसी का कोई नुकसान नही होता। मै अपनी लाज बचाने के लिए यह सब नही कह रहा। हा, अपनी बात जरूर समझाना चाहता हू। मुझ पर पर उपदेश-कुशलता का जो आरोप लगाया जाता है, वही इस झूठ का सच्चा जवाब है, क्योंकि मै आज नये सिरे से अंग्रेजी का यह उपयोग नही कर रहा। असल में तो किसी भले आदमी को इस टीका पर कोई ध्यान ही न देना चाहिए। लोग समझ ले कि मैं अंग्रेजी भाषा का और अंग्रेजो का प्रेमी हू। लेकिन मेरा यह प्रेम चतुराई और समझदारी से खाली नही। इसलिए मै दोनो को उनके अनुरूप ही महत्व देता हू। मैं अंग्रेजी को मातृभाषा का या हमारी अपनी राष्ट्भाषा हिन्दुस्तानी का निरादर कभी नही करने देता। और न अंग्रेजों के प्रेम के कारण मै अपने उन देशवासियों का निरादर होने देता हूं, जिनके हितों को मैं किसी भी हालत में हानि नही पहुंचने दे सकता। हा, अन्तर्राष्ट्रीय काम-काज के लिए मै अंग्रेजी के महत्व को मानता हूं। जिन चुने हुए हिन्दुस्तानियो को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे अपने देश के हितों का प्रतिनिधित्व करना है, उनके लिए दूसरी भाषा के तौर पर मै अंग्रेजी को अनिवार्य समझता हूं। मेरी राय में अंग्रेजी वह खुली खिड़की है, जिसकी राह हम पश्चिमवालो के विचारों और वैज्ञानिक कार्यो से परिचित रह सकते है। यह काम भी मै कुछ चुनिन्दा लोगों को ही सौपना चाहता हूं। और उनके माध्यम से यूरोप के ज्ञान का प्रचार देश में देशी भाषाओं-द्वारा कराना चाहता हूं। मै अपने देश के बच्चो के लिए यह जरूरी नही समझता कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर ढोये और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। आज जिस अस्वाभाविक परिस्थिति मे रहकर हमे अपनी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है, उस परिस्थिति का निर्माण करनेवालों को मैं जरूर गुनहगार मानता हूं। दुनिया मे और कही ऐसा नही होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना तक नही कर सकते, क्योकि हम खुद उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं। मै उसकी भयंकरता का अन्दाज कर सकता हूं, क्योकि निरन्तर देश के करोड़ो मूक, दलित और पीडित लोगों के सम्पर्क मे आता रहता हू।

प्रश्न--अखबारों में छपा है कि पूर्व में जपानियों ने जिस अपूर्वता और सम्पूर्णता के साथ पश्चिमी तरीकों को अपनाने में तरक्की की है, उसको आपने सराहा है। क्या जो नियम हिन्दुस्तान के लिए हैं, वे जपान के लिए नहीं?

एक और झूठ

उत्तर--यह भी वैसी ही एक झूठ है, जैसी अंग्रेजी की थी। इसी अंक में प्यारेलाल ने मेरे काशीवाले भाषण का जो व्यौरा दिया है, उससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि जपानियों के बारे मे दरअसल मैने क्या कहा था। अपने भाषण मे मैने खास तौर पर अंग्रेजी का विरोध तो इसलिए किया था कि उसे शिक्षा का माध्यम बनाना या राष्ट्रभाषा की तरह काम मे लाना वाञ्छनीय नही है। इसी सिलसिले मे मैने यह कहा था कि वैसे मेरी राय में जपानियों-द्वारा पश्चिमी तरीकों का अपनाया जाना कितना ही हानिकर क्यों न हो, तो भी जिस तेजी के साथ उन्होंने उन्नति की है, सो तो इसीलिए हो सकी है कि उन्होने अपने देश में पश्चिमी ढंग की शिक्षा को कुछ चुने हुए लोगों तक ही सीमित रक्खा और उनके द्वारा जपानियों में पश्चिम के नये ज्ञान का प्रचार जपानी भाषा के द्वारा ही करवाया। यह तो हर कोई आसानी से समझ सकता है कि अगर जपानवाले किसी विदेशी भाषा के द्वारा यह सारा काम करते, तो वे पश्चिम के नये तरीकों को कभी अपना ही न पाते।

--सेवाग्राम, २७।१।१९४२। ह० ज०। ह० से०, १।२।१९४२।]

६२. काशी विश्वविद्यालय के भाषण के सन्दर्भ में

हिन्दी+उर्दू=हिन्दुस्तानी

नीचे लिखा खत एक भाई ने पिछली २६ जनवरी को लिखकर मेरे नाम रजिस्ट्री से भेजा था, जो मुझे सेवाग्राम में ३१ जनवरी को मिला:—

"काशी विश्वविद्यालय वाले आपके भाषण का मुझ पर गहरा असर पड़ा है। खास तौर पर हमारी शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दुस्तानी को पढ़ाई का माध्यम बनाने की बात उस मौके पर बहुत मौजूं रही। लेकिन क्या सचमुच ही आप यह मानते है कि हिन्दुस्तानी नाम की कोई जबान आज हमारे देश में मौजूद है? दरअसल तो ऐसी कोई जबान है ही नहीं। मुझे डर है कि काशी में आपने हिन्दुस्तानी की उतनी हिमायत नहीं की, जितनी हिन्दी की की, और यही हाल सब

कांग्रेसियों का है। मुझे ताज्जुब होता है कि आप अपने मन की बात खुले तौर पर क्यों नहीं कहते? कहिए कि आप हिन्दी चाहते है। इस हिन्दी को आप हिन्दुस्तानी और उससे भी बदतर हिन्दी-हिन्दुस्तानी क्यों कहते हैं? कुछ साल पहले आपने उसे यह नाम देना चाहा था, लेकिन किसी ने इसे अपनाया नही।

"महात्मा जी, आप कहते हैं आपको उर्दू से कोई द्वेष नही। मगर आप तो उसे खुल्लमखुल्ला फारसी लिपि में लिखी जानेवाली मुसलमानों की भाषा कह चुके हैं। आपने यह भी फरमाया है कि अगर मुसलमान चाहें, तो भले उसकी हिफाजत करें। दूसरी तरफ, आप कई बार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं और हिन्दी की हिमायत करते हुए उसके लिए लाखों का चन्दा जुटा चुके हैं। क्या कभी आपने उर्दू का प्रचार करनेवाली किसी सभा की सदारत की है? अब भी आप इस तरह की सदारत मंजूर करेंगे? और क्या कभी उर्दू की तरक्की के लिए आपने एक पाई का भी चन्दा इकट्ठा किया है?

"मैं तो कांग्रेसवालों के मुंह से यह सुनते-सुनते दिक आ गया हूं कि मुस्लिम लेखकों को फारसी शब्दों का और हिन्दी लेखकों को संस्कृत शब्दों का इस्तेमाल करने से बचना चाहिए। वे कहते हैं कि इस तरह जो जबान बनेगी, वह हिन्दुस्तानी होगी।

"महात्माजी, आप खुद एक बहुत अच्छे लेखक हैं। आपको तो यह पता होना चाहिए कि मंजे हुए लेखक, जिनकी अपनी एक शैली बन चुकी है, कभी फारसी और संस्कृत के उन शब्दों को छोड़ न सकेंगे, जो उनकी अपनी भाषा के अंग बन चुके हैं, इसलिए आपकी यह सलाह बिल्कुल अव्यावहारिक है।

"मगर एक रास्ता है। यह कि यू० पी० जैसे किसी एक सूबे में हाईस्कूल तक की पढ़ाई के लिए उर्दू और हिन्दी दोनों को लाजिमी बना दीजिए। इस तरह जिस सूबे में दोनों जबानें लाजिमी तौर पर पढ़ाई जायंगी, वहां करीब पचास साल के अन्दर एक आमफहम भाषा तैयार हो जायगी, जो हमारी अपनी भाषा है, वह हमारे साथ रहेगी, और जिसे हम अपने ऊपर जबर्दस्ती लाद रहे हैं, वह हमारे जीवन से हट जायगी। स्पष्ट ही जब हम दोनों भाषाएं सीखेंगे, तो अपने आप हम उसी में अपने विचार प्रकट करना पसन्द करेंगे, जो ज्यादा विकसित, ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा लुभावनी, ज्यादा मुख्तसर और ज्यादा अर्थसूचक यानी थोड़े में बहुत कहनेवाली होगी। इससे न सिर्फ देशी भाषाओं के प्रचार का मार्ग सरल और सुगम बनेगा, बल्कि हिन्दू-मुसलमानों के सामाजिक जीवन के बीच पड़ी हुई चौड़ी खाई को पाटने में भी बड़ी मदद मिलेगी। एक-दूसरे के साहित्य को पढ़कर हम एक-दूसरे के आदर्शों और विचारों को समझ सकेंगे और उनके

लिए मन में हमदर्दी रख सकेंगे। हो सकता है कि इस तरह हिन्दी और उर्दू के मेल से एक नई जबान सामने आ जाय और वह हिन्दुस्तानी कहलाये। चूंकि यह जबान दोनों जबानों की जानकारी का नतीजा होगी, इसलिए वह दोनों कौमों की एक कुदरती जबान बन रहेगी।

"महात्माजी, अगर आप सचमुच अपने इस मुल्क के लिए एक आमफहम कौमी जबान चाहते हैं, तो मुझे यकीन है कि आप मेरे इस सुझाव को मंजूर कर लेंगे, और अपनी सिफारिश के साथ इसे देश के सामने पेश करेंगे। मगर मैं मानता हूं कि आप ऐसा नही करेंगे। क्योंकि आप बराबर हिन्दी की ही हिमायत करते आये हैं, और उसी को मुल्क पर लादने की अपने भरसक कोशिश करते रहे हैं, और आप यह भी जानते होंगे कि अगर हिन्दी और उर्दू दोनों अनिवार्य बना दी गई, तो उर्दू हिन्दी को मैदान से खदेड़ देगी, क्योंकि हिन्दी के मुकाबले वह ज्यादा सही, ज्यादा मँजी हुई, ज्यादा अर्थसूचक और ज्यादा खुबसूरत है। अगर मेरी यह तजवीज दोनों जबानों को यकसां मौका देती है, अगर आपका खयाल है कि हिन्दी मुल्क की अपनी कुदरती भाषा है, तो आपको यह विश्वास होना चाहिए कि वह उर्दू को खदेड़ देगी। जैसा कि आपने पिछले साल भी मुझे लिखा था आपका यह कहना कि दोनों जबानों को लाजिमी बनाने की कोई ताकत आपके हाथ में नही है, बेमतलब-सा है। अगर आप इस तजवीज को अपनी सिफारिश के साथ मुल्क के सामने रखना पसन्द करेंगे, तो जरूर ही उसका असर भी होगा।"

इन्होंने खत के नीचे अपनी सही तो दी है, लेकिन साथ ही उस पर निजी भी लिखा है। इसलिए यहां मैं इनका नाम नही दे रहा। नाम का कोई खास महत्व भी नहीं। मै जानता हूं कि जो खयाल इन भाई के है, वही और भी बहुतेरे मुसलमानों के है। मेरे हजार इन्कार करने पर भी यह बुराई दूर नहीं हो पाई है।

लेकिन जहां तक मुझसे ताल्लुक है, इन भाई को मेरे उस लेख से तसल्ली हो जानी चाहिए, जो इसी विषय पर २३ जनवरी को लिखा गया था और फरवरी के हरिजन-सेवक में छप चुका है।

मै पत्र-लेखक की इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि जो लोग एक राष्ट्रभाषा के हिमायती हैं, उन्हे उसके हिन्दी और उर्दू दोनों रूप सीखने चाहिए। उन्हीं लोगों की कोशिश से हमे वह भाषा मिलेगी, जो सबकी भाषा या लोकभाषा कहलायेगी। भाषा का जो रूप लोगों को, फिर वे हिन्दू हों या मुसलमान, ज्यादा जंचेगा और जिसे लोग ज्यादा समझ सकेंगे, बिलाशक वही देश की लोकभाषा

बनेगी। अगर लोग मेरी इस तजवीज को आमतौर पर अपना लें, तो फिर भाषा का सवाल न तो राजनीतिक सवाल रह जायगा और न यह किसी झगड़े की जड़ ही बन सकेगा।

मैं पत्र-लेखक की इस बात को मानने को तैयार नही कि उर्दू ज्यादा विकसित, ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा लुभावनी, ज्यादा मुख्तसर, और ज्यादा अर्थसूचक यानी थोड़े में बहुत कहनेवाली ज़बान है। ये सब चीजें किसी एक भाषा की अपनी बपौती नही होती। भाषा तो जैसी हम उसे बनाना चाहें, बन जाती है। अंग्रेजी की जो खूबियां आज हमें मालूम होती हैं, वे अंग्रेजों की कोशिश से ही उसमें आई है। दूसरे शब्दों में, भाषा हमारी ही कृति है, और वह अपने सिरजनहार के रंग में रँगी रहती है। हरएक भाषा में अपना अनन्त विस्तार करने की शक्ति रहती है। आधुनिक बंगला को बनानेवाले बंकिम और रवीन्द्र ही न थे ? इसलिए अगर उर्दू आज हिन्दी से हर बात में बढ़ी-चढ़ी है, तो उसकी यही वजह हो सकती है कि उसके विधाता हिन्दी के विधाताओं से ज्यादा लायक रहे हो, मगर इस पर मैं अपनी कोई राय नही दे सकता, क्योंकि भाषाशास्त्री की दृष्टि से मैंने दोनों में से किसी एक का भी अध्ययन नही किया; अपने सार्वजनिक काम के लिए जितना जरूरी है, उतना ही मैं इन्हें जानता हूं।

लेकिन क्या उर्दू हिन्दी से उतनी ही भिन्न है, जितनी बंगला मराठी से ? क्या उर्दू उसी हिन्दी का नाम नही, जो फारसी लिपि में लिखी जाती है और संस्कृत से नये शब्द लेने के बजाय फारसी या अरबी से नये शब्द लेने की तबीयत रखती है ? अगर हिन्दू और मुसलमानों के बीच किसी तरह की अनबन न होती, तो लोग इस चीज़ का खुशी से स्वागत करते। और, जब आपस की यह अदावत मिट जायगी, जैसा कि एक दिन इसे मिटना ही है, तो हमारी सन्तान हमारे इन झगड़ों पर हँसेगी और अपनी उस सर्वमान्य भाषा हिन्दुस्तानी पर गर्व करेगी, जो असंख्य लेखकों और लोगो द्वारा उनकी अपनी आवश्यकता, रुचि और योग्यता के अनुसार, कई भाषाओं से खुले दिल के साथ लिये गये शब्दों के सुमेल से बनाई जायगी।

यहां मै अपने पत्र-लेखक की एक भूल को दुरुस्त कर देना चाहता हूं। उनका कुछ ऐसा ख़याल मालूम होता है कि आखिरकार हिन्दुस्तानी तमाम प्रान्तीय भाषाओं की जगह ले बैठेगी। यह न तो कभी मेरा सपना रहा, और न ही उन लोगों का, जो देश के लिए एक राष्ट्र-भाषा की चिन्ता करते रहे हैं। हम सब सपना तो यह देख रहे है कि मुल्क में हिन्दुस्तानी उस अंग्रेजी की जगह ले ले, जो आज पढ़े-लिखे लोगों के बीच व्यवहार का एक माध्यम बन गई है। इसका नतीजा यह

हुआ है कि पढ़े-लिखों के और आम रिआया के बीच आज एक खाई-सी खुद गई है। इस दुर्भाग्य का प्रतिकार तभी हो सकता है, जब अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए हम उस भाषा को अपनायें, जो देश की लोकभाषा हो, यानी जिसे देश के ज्यादा-से-ज्यादा लोग बोलते हों। इसलिए दरअसल झगड़ा उर्दू-हिन्दी का नहीं, बल्कि हिन्दी और उर्दू दोनों का अंग्रेजी से है। नतीजा इसका एक ही हो सकता है: दोनों की फतह, हालांकि आज ये दोनों बहिनें बड़ी सारी अड़चनों के बीच आ रही हैं, और फिलहाल इनमें आपसी अनबन भी है।

पत्र-लेखक को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ के मेरे सम्बन्ध से शिकायत है। मुझे उसके साथ के अपने इस सम्बन्ध का अभिमान है। अवतक का उसका इतिहास उज्जवल रहा है। हिन्दी शब्द से हिन्दू-मुसलमान, दोनों का, समान रूप से बोध होता था। दोनों ने हिन्दी में लिखकर उसके भण्डार को समृद्ध बनाया है। स्पष्ट ही पत्रलेखक को यह पता नहीं है कि सम्मेलन के साथ मेरे सम्बन्ध का क्या असर हुआ है। सम्मेलन ने मेरी प्रेरणा से, न सिर्फ अपनी बुद्धिमानी का, बल्कि देशभक्ति और उदारता का परिचय देते हुए, हिन्दी की उस परिभाषा को अपनाया, जिसमें उर्दू भी शामिल है। वह पूछते है कि क्या मैं किसी उर्दू अंजुमन में कभी शामिल हुआ हूं? मुझसे किसी ने कभी इसके लिए गम्भीरतापूर्वक कहा ही नही। अगर कोई कहता, तो मैं उसके साथ भी वही शर्त करता, जो मैंने, मुझे सम्मेलन का सभापति बनने के लिए कहनेवालों के साथ की। मैं अपने उर्दू-भाषी मित्रों से, जो मुझे न्यौतने आते, कहता कि वे मुझको जनता से यह कहने दें कि वह उर्दू की ऐसी व्याख्या करें, जिसमें देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी की भी गिनती हो। लेकिन मुझे ऐसा कोई मौक़ा ही न मिला।

मगर अब, जैसा कि मैं अपने पहली फरवरी वाले लेख में इशारा का चुका हूं, मैं चाहता हूं कि किसी ऐसी संस्था या समिति का संगठन हो, जो अपने सदस्यों के लिए हिन्दी और उर्दू का, उनके दोनों रूपों और दोनों लिपियों के साथ, अध्ययन करने की हिमायत करे, और इस उम्मीद के साथ इस चीज का प्रचार करे कि अन्त मे किसी दिन ये दोनों कुदरती तौर पर मिलकर एक सर्वसाधारण अन्त:प्रान्तीय भाषा का चोला पहन लेंगी, और हिन्दुस्तानी कहलाने लग जायंगी। उस समय इनका समीकरण हिन्दी+उर्दू=हिन्दुस्तानी, न होकर हिन्दुस्तानी=हिन्दी=उर्दू होगा।

—सेवाग्राम, २९।१।१९४२। ह० ज०। ह० से०, ८।२।१९४२।]

६३. एक मन्त्री की परेशानी

डा० काटजू ने यह पत्र भेजा है—

"हिन्दुस्तान के कई हिस्सों में रबी की फसल इस साल और सालों के मुकाबल खराब आई है और इसलिए आमतौर पर लोगों को यह डर है कि इस बार देश में अन्न की बहुत ज्यादा तंगी रहेगी। अन्न के मामले में अमीर और गरीब सबको एक सी सहूलियतें देने के खयाल से संयुक्त प्रान्त के बहुत से शहरी इलाकों में राशन देना शुरू किया गया है। राशनिंग की वजह से सरकार पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि वह राशनिंग के हलकों में रहनेवाले लोगों के लिए अन्न सञ्चय करे। प्रान्त में इतनी ज्यादा तंगी का अन्देशा है कि यहां राशन की मात्रा को घटाकर कम से कम कर दिया गया है, यानी हर आदमी रोज का छः छटांक अनाज दिया जाता है। इसमें दो छटांक गेहूं, दो छटांक चावल और दो छटांक मिलावटी आटा होता है। लोग आमतौर पर मिलावटी आटे को पसन्द नही करते और राशन में इससे ज्यादा कमी करना लगभग असम्भव है। स्पष्ट है कि शहरी हलकों को अन्न की पूर्ति करने के लिए देहात से उसकी आमद लगातार जारी रहनी चाहिए। हिन्दुस्तान की सरकार ने सूबों की सरकारों को यह सुझाया है कि अन्न की लगातार आमद का पक्का प्रबन्ध करने के लिए अन्न पैदा करनेवाले जिलों में यानी उन जिलो में जहां खेती की पैदावार के देहाती हलकों की जरूरतो से ज्यादा होने की आशा की जाती है, खेती की फसल पर अनिवार्य रूप से लाग बैठाना इष्ट होगा। अनिवार्य रूप से अनाज वसूल करने का यह सवाल लोगों को बहुत ही परेशान किये हुए है। कहा जाता है कि सरकार ने कण्ट्रोल की जो कीमतें तय की हैं, वे बहुत कम हैं और बढ़ाई जानी चाहिए। जवाब इसका यह है कि कीमतों का ढांचा तो समूचे हिन्दुस्तान के लिए बनाया जाता है, और उस पर असर डाले बिना किसी एक सूबे में कीमतें बढ़ाई नही जा सकतीं। इसके अलावा संयुक्तप्रान्त में कण्ट्रोल के दाम ४० सेरी मन के सवा दस रुपये रक्खे गये हैं जो कि असल में कम नहीं हैं। यह काफी अच्छी रकम है और इसमें खेती के और जिन्दगी की आम जरूरतो के बढ़े हुए खर्च का मुनासिब खयाल रक्खा गया है। लड़ाई से पहिले के दिनों में गेहूं रुपए १३ सेर बिका करते थे, आज कण्ट्रोल की दर प्रति रुपया ४ सेर की है। चूंकि आम तौर पर लोगों को यह आशंका है कि बाजार में गल्ला मांग के मुकाबिले बहुत कम आयेगा, इसलिए जहां स्वार्थी लोग अपनी निजी जरूरतों को पूरा करने के लिए ऊंचे दामों में खाद्य पदार्थ खरीद सकते हैं वहां काले बाजार खड़े हुए बिना न रहेंगे। अगर काश्तकार लोग यह अनुभव कर लें कि शहरों में रहनेवाले अपने

भाई-बहिनों और देहात में जिनकी अपनी कोई खेतीबारी नहीं है उन लोगों को अन्न पहुंचाने की ज्यादा-से-ज्यादा कोशिश करना उनका अपना सामाजिक और राष्ट्रीय धर्म है तो किसी पर कोई जबरदस्ती न करनी पड़े। किसान सचमुच हमारे अन्नदाता हैं इसलिए मैं चाहता हूं कि आप उनसे यह अपील करें कि वे इस नाजुक मौके पर न तो खुद गल्ला इकट्ठा करके रक्खें और न किसी चोर बाजार में उसे बेचें बल्कि जितना दे सकें सरकारी गोदामों के लिए दें ताकि अमीर-गरीब सबको उचित रूप से अन्न वितरित किया जा सके और भुखमरी और मुहताजी टाली जा सके। आपकी आवाज दूर-दूर तक पहुंचती है, इसलिए मैं आपसे अपील करता हूं कि आप इस काम को हाथ में लें। शहरों के लिए गल्ले का काफी इन्तजाम करने की गरज से कई योजनाएं सोची गई हैं लेकिन कोई भी योजना क्यों न हो सार सबका यही है कि हर हालत में किसान से कहना होगा कि वह अपना गल्ला दे। अगर शहरों और गांवों में लोगों के लिए अन्न मुहय्या न किया गया तो हर तरह के दंगे और फसाद हुए बिना न रहेंगे। संयुक्तप्रान्त में हम अधिक अन्न उगाने, और अधिक साग-सब्जी उगाने के आन्दोलनों को बढ़ावा देने की पूरी-पूरी कोशिश कर रहे हैं। आपके दिये हुए तमाम सुझावों पर अमल किया जा रहा है। सरकारी इमारतों के आसपास की तमाम सरकारी जमीनों को जोतने के लिए हिदायतें जारी की गई हैं। ऐसा इन्तजाम किया गया है कि जिससे निजी मकानों के मालिक खेती-बारी के विशेषज्ञों की सलाह से फायदा उठा सकें। उन्हें बतौर सहूलियत के बोने के लिए और सिंचाई के लिए नहरों का पानी भी मुफ्त दिया जा रहा है। कुएं खोदने के काम में भी मदद दी जा रही है। इन सब बातों के कहने और करने बावजूद भी जबतक जनता साथ नहीं देती, कुछ किया नहीं जा सकता, और जनता के सहयोग का मतलब है कि अन्नदाता किसान जितना उससे बन पड़े उतना गल्ला इस काम के लिए दे।"

डा० काटजू के इस पत्र पर किसानों और उनके सलाहकारों व शहरवालों को गहराई से विचार करना चाहिए। सिर पर मँडरानेवाले संकट का सदुपयोग किया जा सकता है। उस हालत में वह संकट न होकर एक आशीर्वाद ही होगा। वर्ना शाप तो वह है ही और शाप रहेगा।

डा० काटजू ने एक जिम्मेदार मन्त्री के नाते ऊपर का पत्र लिखा है। इसलिए लोग उन्हें बना भी सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं। वे उन्हें हटा कर उनसे बेहतर आदमी को उनकी जगह रख सकते हैं। लेकिन जबतक लोगों के चुने हुए मन्त्री उनके सेवक के नाते काम करते हैं, लोगों को चाहिए कि वे उनकी

हिदायतों पर अमल करें। हर कानून या हिदायत का विरोध सत्याग्रह नहीं होता। सत्याग्रह की बनिस्बत वह दुराग्रह आसानी से बन सकता है।
—अंग्रेजी। नई दिल्ली, १४।४।१९४६। ह० ज०, ह० से०, २१।४।१९४६।]

६४. डा० लोहिया की ललकार

अखबारी ख़बरो से पता चलता है कि गोआवालों का न्योता पाकर डा० राममनोहर लोहिया पिछले दिनों गोवा गये थे। वहां उन पर यह नोटिस तामील किया गया कि गोआ में रहते हुए वह कही कोई भाषण या तकरीर न करें। डा० लोहिया अपने एक बयान में कहते है कि पिछले १८८ सालों से पुर्तगाल सरकार ने गोआवालों का सभाएं करने या संस्थाएं क़ायम करने का अधिकार छीन रक्खा है। सहज ही उन्होने उस हुक्म को मानने से इन्कार किया, उसे तोड़ा। अपने इस काम से उन्होंने नागरिक अधिकारों और खास कर गोआवालों की एक ख़िदमत की है। पुर्तगालियों की इस छोटी सी बस्ती को, जो यहां महज अंग्रेजों की दया पर निर्भर रही है, अंग्रेजों की बुराइयों की नक़ल नही करनी चाहिए। ऐसी नक़ल उसके लिए लाभदायक नही हो सकती। आजाद हिन्दुस्तान मे गोआ हिन्दुस्तान से बिल्कुल अलग रहकर अपनी मनमानी नहीं कर सकेगा। गोआवाले आजाद हिन्दुस्तान की नागरिकता के हक़ों का दावा कर सकेंगे, और वे उन हक़ों को पा भी सकेंगे और इसके लिए उन्हें न तो एक गोली चलानी होगी और न एक क़तरा खून बहाना होगा। उस हालत में मौजूदा पुर्तगाल सरकार न तो अंग्रेजी बन्दूकों की मदद से गोआवालों को बाकी हिन्दुस्तान से अलग रख सकेगी और न उन्हें उनकी मर्जी के खिलाफ गुलाम बनाये रह सकेगी। इसलिए गोआ की पुर्तगाली सरकार को मैं यह सलाह दूंगा कि वह बदलते हुए जमाने की निशानियों को पहचाने और ब्रिटिश सरकार के साथ की गई किसी सुलह पर भरोसा न रख कर गोआ के निवासियो के साथ सम्मानपूर्ण समझौता कर ले।

गोआवालो से मैं यह कहूंगा कि उन्हें पुर्तगाल सरकार से उसी तरह डरना छोड़ देना चाहिए, जिस तरह बाकी हिन्दुस्तान के लोगों ने महान् ब्रिटिश सल्तनत से डरना छोड़ दिया है और उन्हे नागरिक स्वतन्त्रता के अपने बुनियादी अधिकारों के लिए डट कर आवाज उठानी चाहिए। गोआवालों के सबके साथ आपस में मिलजुल कर रहने में अलग अलग धर्मो या मजहबो की वजह से कोई रुकावट पेश न आनी चाहिए। मजहब या धर्म हर एक औरत या मर्द के लिए अमल करने की

चीज़ है। उसे अलग अलग पन्थों या फिरको के बीच लड़ाई-झगड़ा करानेवाली चीज हर्गिज़ न बनना चाहिए।

—अंग्रेजी। नई दिल्ली, २६।६।१९४६। ह० ज०। ह० से०, ३०।६।१९४६।]

६५. ख़ामख़ाह क्यों मारें?

अलीगढ़ से यह सूचना आई है—

"९ जून के 'हरिजन-सेवक' में चौथे पृष्ठ पर आप लिखते हैं कि बन्दरों, परिन्दों और ऐसे जन्तुओं को जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा, या कोई ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। इस सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अगर फसल को खा जानेवाले के मारे वगैर ही फसल की रक्षा आसानी से हो सकती हो, तो उन्हें मारना जरूरी नहीं होना चाहिए। मिसाल के लिए मैं आपको सूचना देना चाहता हूं कि मेरे चाचा ने रात को वैटरी की रोशनी बन्दरों की ओर फेंक-फेंक कर उन्हें अपने खेत छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। इसलिए बन्दरों को मारने के बजाय उनको वैटरी के प्रयोग से भगाने का मार्ग (रास्ता) आप क्यों न स्वीकार करें और पेश करें?"

यह सूचना पहले विचार से तो अच्छी लगती है। लेकिन दूर तक विचार करने से लगता है कि वैटरी से काम नही चल सकेगा। उससे मेरे खेत की कुछ रक्षा हो सकेगी मगर इर्द-गिर्द की नही। स्वार्थी बनकर दूसरों का नुक़सान करना तो मेरे लिए ठीक नहीं होगा। वह भी हिसा होगी। अहिसा के नाम पर ऐसी हिसा करने में हम झिझकते नहीं, जैसे कि हम अपने आँगन से दूसरों के आंगन में सांप फेंकते है, कचरा डालते है। शुद्ध अहिसा बताती है कि अगर बन्दर वगैरा से बचना और समाज को बचाना आवश्यक है तो उनको मार डालना आवश्यक हो जाता है। सामान्य नियम तो यही है कि जितनी हिंसा से हम बच सकें, उतनी से बचना हमारा धर्म है। सामाजिक अहिंसा ही समाज के लिए हो सकती है। व्यक्ति को जहां तक वह जा सकता है, जाना होगा। हर समय हर कदम पर ध्यान से विचार करना सबका परम कर्त्तव्य है। बगैर विचारे रूढ़ धर्म पर चलने से हमारी गति रुक जाती है।

—३०।६।१९४६। ह० से०, ७।७।१९४६।]

६६. डा० लोहिया

डा० लोहिया ने गोआ हाईकोर्ट के चीफ जज को जो पत्र लिखा था,

वह काफी गौर करने लायक है। दैनिक समाचारपत्र से मैं उसकी नकल यहां देता हूं —

"जहां तक मैं जानता हूं, अपनी गिरफ्तारी के वक्त तक मैंने गोआ का कोई कानून नहीं तोड़ा था। चाहे मेरा वैसा इरादा रहा हो, लेकिन यहां उसकी चर्चा अप्रासंगिक है। कोलम में वहां के पुलिस अफसर सीधे मेरे डिब्बे में घुस आये और बगैर कुछ कहे-सुने मुझे एकदम गिरफ्तार कर लिया। अपने वर्तमान रूप में अन्तर्राष्ट्रीय कानून शायद पुर्तगाल सरकार को यह अधिकार देता है कि वह जिसे परदेसी समझे और जिसको अपने यहां रहने देना पसन्द न करे, उसे गिरफ्तार करके देश-निकाला दे दे। लेकिन किसी को जेल में रखने का उसे तबतक कोई हक नहीं है जबतक वह उसका कोई कानून न तोड़े। एक बार पहले भी पुर्तगाल सरकार मुझे परदेसी मान चुकी है और मेरी तरफ के अपने इस रुख को वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून की एक दफा की बुनियाद पर सही मानती है। मुझे गैर-कानूनी तौर पर जेल में रखने के लिए या तो वह मुझसे माफी मांगे और मुझे हरजाना दे या फिर गोआ और बाकी हिन्दुस्तान के बीच अन्तर्राष्ट्रीय कानून जारी करने की अपनी जिद छोड़ दे। यही नहीं, बल्कि उसने २९ सितम्बर से २ अक्तूबर तक मुझे एक ऐसी कोठरी में बन्द रक्खा जिसमें सिर्फ इतनी हवा आती थी कि इन्सान सांस लेकर जिन्दा रह सके। अपने इस बरताव के लिए भी उसे मुझसे माफी मांगनी चाहिए और मुझे हरजाना देना चाहिए।

"मुझे अभी तक तनहाई में रक्खा गया है, हालांकि कुछ सहूलियतें बढ़ा दी गई हैं। सिर्फ नहाने के वक्त ही मुझको कोठरी से बाहर निकाला जाता है। कोई मिलजुल नहीं सकता। इन वजहों से मुझे कैद में रखने का जुर्म और बढ़ जाता है।"

डा० लोहिया ने हरजाने की मांग की है, उसे कोई हँसकर टाल न दे। अगर डा० लोहिया के पीछे उनके मुल्क की ताकत होती तो गोआ की सरकार को उनसे माफी मांगनी पड़ती और वह हरजाना देने के लिए भी तैयार हो जाती। बड़ी-बड़ी ताकतों के लिए यह कोई गैर-मामूली बात नहीं है कि वे अपने छोटे-से-छोटे नागरिकों को पहुंचाये गये नुकसान या उनकी बेइज्जती के लिए हरजाना मांगें और वसूल करें। डा० लोहिया कोई मामूली आदमी नहीं। आज हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय सरकार राज कर रही है। मुझे यकीन है कि दूसरी किसी सरकार की तरह उसे भी ऐसी बातें अखरती होंगी। मुझे कोई आश्चर्य न होगा अगर उसने इस बारे में अपनी शिकायत गोआ सरकार के सामने रक्खी हो और उसे अपना तरीका सुधारने की ताकीद की हो। सो जो भी हो, गोआ सरकार की ज्याद-तियों के शिकार डा० राममनोहर लोहिया के और राष्ट्रीय सरकार के पीछे लोक-

मत की ताक़त होनी चाहिए। डा० लोहिया के साथ जो ज्यादती की गई है, वह गोआ में रहनेवाले तमाम हिन्दुस्तानियों के साथ और उनके जरिये समूचे हिन्दुस्तान के साथ की गई है।

——अंग्रेजी। नई दिल्ली, १३।१०।१९४६। ह० से०, २०।१०।१९४६।]

६७. एक नया सुझाव

श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं——

"कपड़े और गल्ले के कण्ट्रोल से तकलीफें घटने के बदले बहुत बढ़ गई हैं। कपड़े का तो यह हाल है कि बहुत से गांववालों को साल में एक बार भी कपड़ा नहीं मिलता और, गल्ले का यह हाल है कि सरकार ने जो दर कायम कर दी, किसान उससे कहीं ज्यादा मंहगा बेचने लगे। मुझे शहर में कण्ट्रोल वाली दूकान से एक रुपये का तेरह पाव गेहूं मिलता है। मगर गांव में आठ नौ पाव बिक रहा है। इससे वे लोग जो सरकारी दुकानों से गल्ला नहीं पाते, अपनी कमाई की सारी ताकत लगाकर बड़ी मुश्किल से जी रहे हैं। शुरू में पुरानी सरकार ने कहा था कि खाने-पहनने की चीजें सबको बराबर मिलती रहें, इसके लिए वह कण्ट्रोल का तरीका जारी कर रही है। पर यह एक ढोंग था। असल में सरकार ने अपने फायदे के लिए इसे जारी किया था। लड़ाई के जमाने में महंगाई के कारण बहुत से लोग घर छोड़छाड़ कर फौज में भरती हो गये थे और सरकार यही चाहती भी थी। अगर कण्ट्रोल का तरीका न चलाया गया होता, तो कम-से-कम इस सूबे में तो खाने-पहनने की चीजों की उतनी कमी कभी न होती जितनी आज है।

"लेकिन अब इससे छुटकारा कैसे मिले? अगर कण्ट्रोल उठा लिया जाता है तो सरकार के बनाये हुए नये-नये सेठ तमाम गल्ला और कपड़ा खरीद लेंगे और महंगे से भी महंगा करके बेचेंगे। उस हालत में सरकार के पास इसके सिवा और कोई चारा न रह जायगा कि वह खुद उन पर डाका डाले। उनका माल जब्त कर ले और सस्ता करके बेचे, जो वह करेगी नहीं। पुरानी सरकार ने नई सरकार के लिए जो नाग-फांस तैयार कर दिया था, नई सरकार उसमें अच्छी तरह फंस गई है। यह उसे महसूस हो रहा है, या नहीं, मालूम नहीं। किसान अपनी खुशी से गल्ला सस्ता करेंगे नहीं, उन्हें चस्का लग गया है; सरकार कपड़ा सस्ता होने देगी नहीं, क्योंकि मिलों से ही मुनाफे की एक अच्छी रकम हथिया लेने का चस्का उसको भी लग गया है। तब फिर इस बला से आम जनता का पिण्ड कैसे छूटे?

पढ़े-लिके लोगों को तो यह कहकर बहका लिया गया था कि गल्ला महंगा करके किसानों की खरीदने की ताकत बढ़ाई जा रही है। मगर वे खरीदते क्या हैं? विदेशी चीजें। वे गल्ले को महंगा बेच कर भी मालदार नहीं बन पाये। करीब-करीब वे जहां थे तहां ही हैं।

कण्ट्रोल से छुटकारा पाने का एक नया सुझाव मैं सामने रखना चाहता हूं। वह सुझाव यह है कि सरकार किसानों से मालगुजारी रुपये के बदले गल्ले की सूरत में ले। ऐसा कायदा हिन्दुस्तान में बहुत पुराने जमाने से अकबर के जमाने तक जारी था। शास्त्रों के जमाने में कभी उपज का छठा हिस्सा और कभी दसवां हिस्सा लिया जाने लगा था। इतिहास वाले ठीक-ठीक बता सकेंगे। गांवों में अब भी मजदूरों को गल्ले की उपज का सोलहवां भाग मजदूरी में दिया जाता है। कहा जाता है कि टोडरमल ने मालगुजारी गल्ले में न लेकर सिक्के में लेने का चलन निकाला था। इन्साफ की बात तो यह है कि मालगुजारी गल्ले ही में लेना चाहिए, क्योंकि किसान जमीन से गल्ला ही निकालता है, सिक्का नहीं। सरकार को देने के लिए गल्ले का सिक्का बनाना पड़ता है। इसका एक बुरा नतीजा यह भी होता है कि किसान और सरकार के बीच में एक बनिया पलता है, जो किसान को कर्जदार भी बनाये रखता है।

"अब इसे फैलाकर देखना चाहिए। फर्ज कीजिए सरकार एक बीघे की मालगुजारी दो रुपए लेती है, और एक बीघे में कम से कम दस मन पैदावार होती है, तो सरकार को दो रुपए के बदले में पैदावार-का सोलहवां हिस्सा यानी पचीस सेर गल्ला मिलेगा, जो एक रुपये का साढ़े बारह सेर पड़ेगा। अब सरकार रुपए का कम-से-कम दस सेर तो बेच ही सकती है। बेचने के लिए उसे दूर भी नहीं जाना पड़ेगा। जिले में जहां-जहां गल्ला जमा हो, वह वहीं बेचा भी जा सकता है। इससे खरीददार खानेवालों की तकलीफ भी कम हो जायगी, और फजूल चीजें खरीदने की किसान की आदत भी सुधर जायगी।

"सरकार फौज के लिए लाखों मन गल्ला खरीदती है, वह भी इसी गल्ले में से अपनी जरूरत भर का ले सकती है, जो उसे सस्ता भी पड़ेगा।"

जैसा कि त्रिपाठीजी ने लिखा है, इसमें कोई शक नही कि पैसे के बदले गल्ला लिया जाय, तो किसानों को फायदा होगा। शर्त्त यह है कि अमला लोग लुटेरे न हों और वे हर हालत मे किसानो का ही फायदा देखे। मगर ऐसा होता नहीं है। यह एक वजह है, जिससे खुद किसानो ने गल्ले के बदले पैसा देना पसन्द किया।

—हिन्दी। नई दिल्ली, १८।१०।१९४६। ह० से०, १०।११।१९४७।]

६८. हिन्दी और उर्दू का अन्तर

भाई रामनरेश त्रिपाठी को मैं काफी जानता हूं। एक रोज वह मसूरी में मिलने आये थे। मुझे डर था कि हिन्दुस्तानी के प्रचार के लिए वह मुझे डांटेंगे। लेकिन बातें करने से मैंने उलटा ही पाया। वह मुझसे कहने लगे कि अगर मैं हिन्दी और उर्दू के मेल से सच्ची हिन्दुस्तानी की उम्मीद रखता हूं तो मुझे उर्दू से ज्यादा मदद मिलेगी। शर्त यह है कि उर्दू को नया जामा पहना कर बिगाड़ने की जो कोशिश हो रही है, उसे मैं उसी तरह समझ लूं जिस तरह हिन्दी को बिगाड़ने की कोशिश को समझता हूं। उस हालत में हिन्दुस्तानी अपने आप फिर जिन्दा हो जायगी। इस पर मैंने उनसे कहा कि वह मुझको कुछ मिसालें दें जिसमें मैं समझ सकूं कि उनके कहने का मतलब क्या है। सोचने लगे तो कुछ दिक्कत मालूम हुई। तब मैंने कहा कि मुझको कुछ लिखकर समझावें। उसका नतीजा यह है कि उन्होंने मुझे नीचे लिखा पत्र भेजा है—

"पूज्य बापू,

हिन्दी और उर्दू के ढांचे का अन्तर आपने मांगा था। पर ढांचा तो मुझे अनुभवगम्य-सा जान पड़ता है। उसकी कोई अलग रूप-रेखा खींच कर नहीं दिखा सकता हूं। 'हरिजन' के किसी एक पैरेग्राफ का अनुवाद हिन्दी और उर्दू के किन्हीं दो योग्य लेखकों से कराकर देख लीजिए, ढांचों का अन्तर दिखाई पड़ने लगेगा। मैंने उस दिन कहा था कि उर्दू हिन्दी से अधिक परिमार्जित है। इसका एक उदाहरण लिखता हूं। हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक का वक्तव्य है "समझ में न आने से घबराहट सी लगने लगती है।" उर्दू में घबराहट लगती नहीं होती है या पैदा होती है। उर्दू का कोई प्रसिद्ध लेखक कभी गलत मुहाविरा नहीं लिखेगा। और अगर लिख देगा तो उसको जबरदस्त मोरचा लेना पड़ेगा। हिन्दी में भाषा के संशोधन का आन्दोलन ही नहीं है। कोई आन्दोलन कायम करने की अपेक्षा उर्दू भाषा की पुस्तकें या लेख हिन्दी अक्षरों में छपने लगें, तो हिन्दी भाषा का बड़ा उपकार होगा। उर्दू भाषा के सुधारने और संवारने में शायरों और लेखकों ने पिछले कई सौ बरसों में जो हाथापाई की है उसका लाभ हिन्दी भाषा को सहज ही मिल जायगा। और इस प्रयोग से वह आप से आप हिन्दुस्तानी बन जायगी।"

यह खत विचार करने लायक है। मैं भाषा का प्रेमी हूं, भाषा का शास्त्री नहीं। हिन्दी का मेरा ज्ञान ऐसा ही है। मैंने कोई पुस्तक पढ़कर हिन्दी सीखी नहीं। इसके लिए समय ही नहीं मिला। मेरा लड़का, देवदास, जो मेरे प्रोत्साहन से और आशीर्वाद से हिन्दी सीखने के लिए मद्रास चला गया था, मुझसे बहुत ज्यादा

हिन्दी जानता है। ऐसे दूसरे भी है जिनके नाम मैं दे सकता हूं। उर्दू का ज्ञान मुझे हिन्दी से भी बहुत कम है। नागरी लिपि बचपन से जानता हूं। फारसी लिपि तो मेहनत करके सीखी है।
—ह० से०, १४।७।१९४७।]

६९. अविश्वास बुजदिली की निशानी है

हाल में इलाहाबाद से मेरे पास एक खत आया है। भेजनेवाले भाई ने लिखा है कि थोड़े से भले लोगों को छोड़कर किसी मुसलमान पर यह एतबार नही किया जा सकता कि वह हिन्द सरकार का वफ़ादार रहेगा, ख़ासकर अगर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में लड़ाई हुई। इसलिए थोड़े से नैशनलिस्ट मुसलमानों को छोड़-कर और सब मुसलमानों को निकाल देना चाहिए। मैं कहता हूं कि हर आदमी को यही चाहिए कि जबतक कोई बात इसके खिलाफ साबित न हो, वह मुसलमानों की बात का एतबार करे। अभी पिछले हफ्ते करीब एक लाख मुसलमान लखनऊ में जमा हुए थे। उन्होंने साफ़ शब्दों में अपनी राष्ट्रभक्ति का ऐलान किया। अगर किसी की बेवफाई या बेईमानी साबित हो जाय, तो उसे गोली से मारा भी जा सकता है, गो कि यह मेरा तरीका नही है। पर फिजूल का अविश्वास जहालत और बुज-दिली की निशानी है। इसी से साम्प्रदायिक नफ़रतें फैली हैं, खून बहे हैं, और लाखों बेघर-बार किये गये है। यह अविश्वास जारी रहा, तो देश के अलग अलग टुकड़े हमेशा के लिए बने रहेंगे। और अन्त में दोनों डोमिनियनें नष्ट हो जायंगी। भग-वान न करें, अगर दोनों में लड़ाई छिड़ गई, तो मैं तो जिन्दा रहना पसन्द न करूंगा। पर जो मेरी तरह लोगों में भी अहिंसा में विश्वास होगा, तो लड़ाई नही होगी और सब ठीक ही होगा।
—बिड़ला-भवन, नई दिल्ली, २।१।१९४८। ह० से०, ११।१।१९४८।]

: नौ :

परिशिष्ट-भाग

१. खिलाफत-समिति की बैठक में पारित प्रस्ताव

इलाहाबाद
३ जून, १९२०

प्रस्ताव १

यह बैठक केन्द्रीय खिलाफत समिति द्वारा पूर्व-स्वीकृत चार अवस्थाओं के अनुरूप असहयोग आन्दोलन पर पुनः विश्वास व्यक्त करती है और आन्दोलन को अविलम्ब कार्य-रूप देने के लिए एक उपसमिति नियुक्त करती है जिसमें निम्नलिखित सज्जन होंगे : महात्मा गांधी, मौ० अबुल कलाम आजाद, मौलवी मुहम्मद अली, श्री अहमद, हाजी सिद्दीक खत्री, मौ० शौकत अली, डा० किचलू, और मौलाना हसरत मोहानी।

प्रस्ताव २

यह बैठक निश्चय करती है कि स्वदेशी आन्दोलन पूरी ईमानदारी से प्रारम्भ करना चाहिए और आन्दोलन को चलाने की एक योजना बनाने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की एक उपसमिति नियुक्त होनी चाहिए। श्री छोटानी, म० गांधी, मौ० हसरत मोहानी, डा० किचलू, मौ० जफरअली खां, सर्व श्री आगा सफदर, सै० अब्दुर्रऊफ, मु० युसुफ शरीफ, ताजुद्दीन, मसीहुल्मुल्क, ला० शंकरलाल, मौ० शाह सुलेमान, मौ० शौकतअली, सर्व श्री उमर सोबानी, अब्दुल वदूद, अहमद, हाजी सिद्दीक खत्री, जहूर अहमद, नूर मोहम्मद शेख, अबुल कलाम आजाद, मौ० अकरम खां, मो० मुनीरुज्जमां, श्री याकूब हुसेन।

—अंग्रेजी। 'अमृत बाजार पत्रिका', ७।६।१९२०।]

२. श्री डगलस का उत्तर

लखनऊ, १२ नवम्बर, १९२०

सेवा में,

सम्पादक 'यंग इण्डिया'

महोदय,

१० तारीख के 'इण्डिपेण्डेण्ट' में आपके पत्र से लेकर श्री गांधी का 'लखनऊ

के भाषण' शीर्षक जो लेख' प्रकाशित किया गया है, मैं उसके सिलसिले में आपसे अपने स्तम्भ में इस पत्र को स्थान देने का सौजन्य दिखाने की प्रार्थना करता हूं, क्योंकि उसमे श्री गांधी ने मुझे एक तरह से अपनी स्थिति स्पष्ट करने की चुनौती दी है। व्यक्तिगत रूप से मै नही समझता कि कोई ऐसी चीज है जिसे मेरी तरफ़ से स्पष्ट करने की आवश्यकता हो। 'इण्डियन डेली टेलीग्राफ' को मेरा २३ अक्टूबर का पत्र यद्यपि जान-बूझ कर संक्षिप्त रूप से लिखा गया है, मेरे सामने है ही और जिनके आँखे है, वे उसमें क्या लिखा है सो देख सकते हैं। जो देखना नहीं चाहते, उन्हें समझा सकने की मै आशा नहीं रखता। मेरे मौन का गलत अर्थ निकाला जा सकता है। अन्यथा मैं अब इस मामले मे कुछ और न कहना ही पसन्द करता। मै जो लिख रहा हू सो अनिच्छापूर्वक ही लिख रहा हूं, क्योकि मै जानता हूं कि मुझे इसमें धर्मो की बात का उल्लेख तो करना ही पड़ेगा, परन्तु मैं पूरी कोशिश करूंगा कि किसी की भावनाओं और धार्मिक मान्यताओं को ठेस न पहुंचे।

श्री गाधी का कहना है कि मैने १५ अक्तूबर की सभा में विरोध नही किया और बाद में भी उनसे शिकायत नही की। मैंने ऊबकर सभा छोड़ दी थी इसलिए वहां विरोध करने की बात ही नही उठती, फिर आजकल राजनीतिक सभाओं में श्रोताओं की जो मनःस्थिति होती है, उसे ध्यान में रखते हुए इसमें भी बहुत सन्देह है कि यदि मै विद्वान मौलानाओं के भाषणों का विरोध प्रकट करने को उठता भी तो मेरी बात सुनी जाती या नहीं। रही श्री गांधी से शिकायत करने की बात, सो इस मामले का सम्बन्ध मुझसे और मेरे भावी आचरण से केवल असहयोगी होने के नाते नही वरन् एक ईसाई होने के नाते है और मै उन्हे अपने आचरण का निर्देशक बनाने और उनकी सलाह लेने से इन्कार करता हू।

श्री गांधी यह भी कहते है कि विवरण में एक बात गलत थी किन्तु उनके भाषण की प्रकाशित रिपोर्ट के लिए जिम्मेदार महादेव देसाई है, मैं नही। बात जिस तरह पेश की गई है उससे मेरे प्रति अन्याय होता है, बस इतना ही मैं गलतफहमी बचाने के लिए कहता हूं।

अब रही मौलानाओ के भाषण और उनके परिणाम-स्वरूप असहयोग आन्दोलन से मेरे हटने की बात। २१ अक्तूबर के मेरे पत्र का सारांश यह है कि एक ईसाई का "काफ़िर" कहकर उल्लेख किया गया और उसके हत्यारे को शहीद बताया गया था और मेरी राय में इस कथन का अभिप्राय उस हत्या के दोष का मार्जन करना था। "काफिर" शब्द के प्रयोग को स्वीकार तो किया गया किन्तु श्री गांधी

---

१. ३।११।१९२०। के 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित।

अपने जवाब में कहते हैं कि बिशप हेबर ने हिन्दुओं को काफिर (हीदन) बताया था और आज अनेक ईसाई गिरजाघरों में पूरी-की-पूरी मानव जाति के प्रति घृणा-पूर्ण बातें कही जाती हैं। इस प्रकार के तर्क से वकालत की "बू" आती है और मुझे आश्चर्य है कि गांधी-जैसा प्रख्यात व्यक्ति मूल विषय से इतनी दूर कैसे चला गया। लखनऊ में १५ अक्तूबरके भाषण किसी मन्दिर, मस्जिद या गिरजाघर से नही दिये गये थे। यदि मुझे बयान करने की अनुमति दी जाय तो वे भाषण एक राष्ट्रीय मंच से दिये गये थे, जिस मंच से श्री गांधी अपने कई लेखो में भारतीय ईसाइयों, और यहूदियों का आवाहन कर चुके है, और ये भाषण ऐसे-वैसे कट्टर, भक्त मौलवियों के नही वरन् इस आन्दोलन के अग्रणी लोगों के थे। जिस सभा में वे भाषण दिये गये थे, वह एक राजनीतिक सिद्धान्त के पोषणार्थ हुई थी। श्री गांधी ने मेरे पत्र के उस अंश पर विचार नहीं किया जिसमें मैने कहा कि "हत्यारे को शहीद बताया गया है और न उन्होंने अपने लेख में यही कहा कि उस शब्द के प्रयोग का आगे-पीछे कभी किसी के द्वारा प्रतिवाद किये जाने की गुंजाइश नही थी। मै जोर देकर कहता हूं कि इस शब्द का प्रयोग मौलाना शौकत अली ने किया, जिन्हें श्री गांधी जाहिरा तौर पर इस आन्दोलन में अपना सिपहसालार कहते हैं। श्री गांधी यदि इसका महत्व नहीं समझ सकें तो फिर इसमें भी आश्चर्य की कोई बात नही है कि मेरा रुख उनकी समझ में नही आया। परन्तु यह एक महत्वपूर्ण बात है। स्थान राष्ट्रीय मंच था, अवसर अहिसात्मक असहयोग के उपदेश का था, वक्ता इस आन्दोलन के मुसलमान नेता थे और उनके भाषणो का निष्कर्ष यह था कि यद्यपि वे इस हत्या को पार्थिव दृष्टि से ठीक नही समझते किन्तु धार्मिक दृष्टि से चूंकि मारा गया व्यक्ति एक ईसाई है और हत्यारा मुसलमान है इसलिए वह हत्यारा शहीद है। मैं श्री गांधी से इस सम्बन्ध में सोचने की प्रार्थना करता हूं कि यदि एक हत्यारे का वर्णन "शहीद" के रूप में किया जाय तो उसका इतना भर अर्थ तो अवश्य है कि जिस हत्या के द्वारा हत्यारा "शहीद" बन जाता है वह हत्या श्रेष्ठ कार्य है और यह मानकर कि इसके विपक्ष में सूक्ष्म विरोधी भावना का विचार नहीं करना चाहिए, जनता को जोश दिलाने के लिए "शहीद" का दृष्टान्त दिया गया ताकि समाज धर्मानुयायी यदि उनमें धार्मिक लाभ की आकांक्षा हो तो, वे उस मार्ग को ग्रहण करें। इस कथन से हत्या के दोष का मार्जन नही होता। ऐसा मानने के लिए अत्यन्त तीव्र विवेक-बुद्धि की आवश्यकता है। यद्यपि इस प्रश्न के गुण-दोष पर धार्मिक दृष्टि से विचार करना मेरा काम नही तथापि मेरा विचार है कि इन भाषणों से हत्या के दोष को नजर-अन्दाज ही किया गया था। नरम शब्दों में कहें तो एक साँस में हत्या को पार्थिव दृष्टि से गलत कहना और दूसरी में उसे धार्मिक

दृष्टि से सही बताना, एक हद तक न केवल कपटपूर्ण है, वरन् अहिंसात्मक असहयोग के मंच से बहुत ही अनुपयुक्त है और जो भी इस आन्दोलन के नेताओं के द्वारा और जब किसी प्रकार के नेता उसके किसी महत्वपूर्ण सिद्धान्त का उल्लंघन करते हैं तो मेरी राय में विरोध करने वाले अनुयायियों के लिए दो ही रास्ते हैं—यदि वे अल्पसंख्यक हैं तो विरोध प्रदर्शित करके अलग हट जायं और यदि बहुसंख्यक हैं तो ऐसे नेताओं को उनके पद से हटा दें। मैं एक ईसाई होने के कारण पहली स्थिति में था और मैंने पहला रास्ता अपनाया। यदि वह वास्तव में इन भाषणों को अनुचित मानते है और एक बेजा स्थिति की कोरी शाब्दिक व्याख्या करके उसे कुछ समय तक बनाये नही रखना चाहते तो श्री गांधी और जनता को निर्णय करना चाहिए कि उनके खिलाफ क्या कदम उठाया जाय। श्री गांधी मुझसे प्रश्न करते है कि क्या मैं अब स्वराज्य या पंजाब के लिए राहत नही चाहता? मेरा उत्तर है कि निश्चय ही चाहता हूं परन्तु यह भी अच्छी तरह समझ गया हूं कि वह ऐसे मुसलमान नेताओं के साथ रहकर प्राप्त नहीं हो सकती जो अवसरवादी हैं और जिन्होंने उस दिन धार्मिक उपदेश की आड़ में हिंसा का उपदेश दिया था। मैं फिर अपनी ही बात दोहरा कर कहता हूं कि इन परिस्थितियों में मेरे लिए एक ऐसे आन्दोलन में भाग लेते रहना असम्भव है जिसके मुसलमान नेता एक ईसाई की निर्दय हत्या के बारे में ऐसे विचार रखते हों।

मेरी तरफ से इस सम्बन्ध मे ये मेरे अन्तिम शब्द है।

एच० पी० डगलस

मुझे कहने की जरूरत नहीं कि श्री डगलस लक्ष्य से दूर भटक गये हैं। वह "अपने" असहयोग-आन्दोलन में एक या किसी भी मुसलमान का साथ भले ही न दें, परन्तु क्या वह एक अन्यायी सरकार से इसलिए सहयोग कर सकते हैं कि उनका सहयोगी भी उनकी समझ में उतना ही अन्यायी है? जहां तक मौलाना शौकत अली का सम्बन्ध है, मैं उनसे अपनी स्थिति बयान करने को कह रहा हूं।
—अंग्रेजी। लखनऊ, १२।११।१९२०। यं० इं०, १७।११।१९२०।]

३. 'यंग इण्डिया' के सम्पादक को

सम्पादक
यंग इण्डिया

बरेली
१५ अप्रैल, (१९२१)

महोदय,

आपको ज्ञात है कि मौलाना मुहम्मद अली ने मद्रास प्रान्त में होने वाली एक

सार्वजनिक सभा में खुले आम कहा है कि अगर अफ़गानिस्तान के अमीर ने उन लोगों के विरुद्ध संग्राम करने के लिए, जिन्होंने इस्लाम को पौरुषहीन बना डाला है और जो इस्लाम के पवित्र स्थानों पर कब्जा किये बैठे है, भारत की ओर कदम बढ़ाया तो मैं उनकी सहायता करूंगा। मेरा ख़याल है कि भारत में इस प्रश्न के बारे में भिन्न-भिन्न मत है। नरम दल वाले (नेतागण) इस प्रकार के किसी भी आन्दोलन को कुचल देने पर आमादा है। राष्ट्रीय दल वाले नेता भी, उदाहरणार्थ लाला लाजपतराय, श्री चितरंजनदास और पण्डित मालवीय चुप्पी साधे हुए है। इतना ही नही, आपने भी श्री मुहम्मद अली के उक्त महत्वपूर्ण भाषण के सम्बन्ध कुछ नहीं कहा है। सम्राट् के दुश्मन के प्रति सहानुभूति दिखाना और खुले रूप में उनकी सहायता करना बहुत बड़ी गद्दारी है, परन्तु आजकल जब सभा-मंचों से स्पष्ट बातें कहने और बेलाग होकर भाषण करने का रिवाज-सा पड़ गया है, लोगों के मन में नेताओं का फैसला सुनने की उत्सुकता स्वाभाविक है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। समाचारपत्रों में सार्वजनिक विषयों पर लेख भेजनेवालों की—सौभाग्य से मै भी उनमें से एक हूं—समझ में यह नही आ रहा है कि (मौलाना मुहम्मद अली के भाषण के बारे में) क्या राय कायम की जाय?

दूसरी बात जो आपसे कहना चाहता हूं वह यह है। क्या आपका ख़याल यह है कि ईश्वर से डरनेवाले लोग या केवल वही व्यक्ति जो ईश्वर में विश्वास रखते है, असहयोगी हो सकते है? मेरा एक मित्र बुद्धिवादी—खुदा का शुक्र है कि मै तो एक पक्का मुसलमान हूं—और पक्का राष्ट्रवादी (भारतीय) है। मेरा वह मित्र अपनी मातभूमि की वेदी पर तथा किसी अपेक्षाकृत निर्बल राष्ट्र को न्याय दिलाने की खातिर अपना सब कुछ कुर्बान करने को तैयार है, परन्तु वह खुदा के नाम पर कुछ भी करने को तैयार नही है। उसका खयाल है कि खुदा है ही नही। मेरा यह मित्र खद्दर पहिनने को तैयार है और उसने खद्दर पहनना शुरू भी कर दिया है।

वह तिलक महाराज का प्रशंसक है और तिलक स्वराज्य-कोष में अकसर मुक्तहस्त से चन्दा दिया करता है। परन्तु क्या वह 'असहयोगी' है? क्या आपकी सूची में उसका नाम है? अगर उसमें और कोई कमी न हो तो क्या वह आपके आश्रम में भरती हो सकता है?

तीसरी कठिनाई यह है कि आपके कथनानुसार इस शैतानियत से भरी हुई सरकार का सदस्य बनना पापमय है, परन्तु फिर भी इस सरकार की नौकरी में अथवा सरकारी संस्थाओं में अपने इतने अधिक देशवासियों के बने रहने को आप बरदाश्त करते है। आप उन्हें इस समय अपने दल में शामिल होने का निमन्त्रण नहीं

दे रहे है। क्या यह उचित है? यदि इस सरकार की नौकरी करना सामाजिक अथवा धार्मिक दृष्टि से अपराध है—मेरे खयाल से ऐसा ही है—तो आप उन्हें वहां क्यों रहने दे रहे है? क्या धर्म, आत्मशुद्धि और स्वालम्वन के क्षेत्र में सामयिक लाभ उठाने की नीति की गुंजाइश हुआ करती है?

अन्त में आप से एक वात और पूछना चाहता हूं—'एक साल के अन्दर ही स्वराज्य प्राप्त करने' से आपका क्या मतलव है? क्या उस वाक्य का मतलव यह है कि कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के अवसर पर देश ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्त और अलग हो जाने की घोषणा कर देगा? अगर ऐसा नही हो तो क्या फकत आजादी का अहसास, स्वदेशी को अपनाना और अदालतों तथा स्कूलो का अधूरा वहिष्कार इन तीन वातों से यही समझा जायगा कि भारत में स्वराज्य स्थापित हो गया? और अगर खुदा न खास्ता हमारा वहिष्कार आन्दोलन असफल रहा तो क्या उसका मतलव यह होगा कि जिनसे एक साल के वास्ते वकालत करना और स्कूलों में पढ़ना लिखना छोड़ देने को कहा गया है वे इन निषिद्ध मानी जानेवाली संस्थाओं में फिर जाने लगेंगे?

आपका
अहमद हुसैन

—अंग्रेजी। बरेली, १५।४।१९२१। यं० इं०, ४।५।१९२१।]

४. संयुक्त-प्रान्त के दमन पर नेहरू की टिप्पणी

संयुक्त-प्रान्त में सरकारी दमन—प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी इत्यादि—कुल मिलाकर दिखावटी ढंग का नही रहा है प्रत्युत वह दमन वहुत ही सुव्यवस्थित और जम कर किया गया है और थोड़े ही लोग होंगे जो उसकी चपेट में न आये हों। इस पर तीन भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है:—

१. किसान आन्दोलन से सम्वन्धित दमन-कार्य
२. नौजवान कार्यकर्त्ताओं पर अभियोग और दण्ड
३. सुरक्षात्मक धाराओं तथा धारा १४४ का प्रयोग

१. किसान अन्दोलन

सरकार ने इस आन्दोलन को कुचल देने का अत्यन्त दृढ़ और अविरत प्रयत्न किया है। फरवरी के प्रारम्भ में रामचन्द्र, केदारनाथ और देवनारायण गिरफ्तार

किये गये। कही किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ जिससे सरकार का हौसला बढ़ गया और उसने किसानों को कुचलने के लिए बहुत जोरदार कदम उठाये। घुड़सवारों के दस्ते, तोपें और पैदल सेना के दस्ते मुख्य-मुख्य जिलों में घुमाये गये और सैनिको के लिए रसद इत्यादि मुहय्या करने को लोग मजबूर किये गये। एक स्थान पर स्कूली छात्रों से गोरे सैनिकों को जबरदस्ती सलाम करवाया गया।

रायबरेली और फैजाबाद में वहुत बड़ी संख्या में किसान गिरफ्तार किये गये। उनकी गिरफ्तारी का कारण यही बताया गया कि उन्होंने गत जनवरी में की गई लूट-पाट में भाग लिया था। इन गिरफ्तार किये गये किसानों में से अधिकांश निर्दोष थे। उनका अपराध केवल इतना ही था कि वे (गांवों के) पंच थे। सैकड़ों को जेल में डाल दिया गया और बाद में बिना मुकदमा चलाये उन्हें छोड़ दिया गया। सैकड़ों व्यक्ति अभी भी जेल में है और मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे है। कुछ सप्ताह पहिले फैजाबाद जेल में लगभग ७०० किसान थे। वे बिना किसी मुकदमे के पिछले तीन माह से जेल में थे। रिहा किये गये कैदियों का कथन है कि जो लोग जेलों में है उनको इतने खराव किस्म का भोजन दिया जा रहा है कि उन जेलों में हैजा फैल गया है और इस प्रकार पीड़ित कैदी बड़ी संख्या में मौत के शिकार वन रहे हैं।

सुलतानपुर और प्रतापगढ़ जिलों में किसी किस्म का उपद्रव नही हुआ था, परन्तु इन जिलों में पंचों और सरपंचों को या तो जेल भेज दिया गया है या मुचलका देने को विवश किया गया है। इन लोगों के खिलाफ सामान्यतः यह आरोप लगाया जाता है कि 'तुम सभा के सरगना हो और लोगों को सभा में शरीक होने पर मजबूर करते हो।' कभी-कभी यह भी कह दिया जाता है कि (तुम्हारे कहने से) 'नाई धोबी बन्द कर दिये गये है।' इन आरोपों में जहांतक गत दिसम्बर और जनवरी का सम्वन्ध है, वहुत कुछ सचाई है परन्तु उसके बाद इन जिलों में सामाजिक बहिष्कार का एक भी वाकया नही हुआ है। इन आरोपों की आड़ में झूठे मुकदमे चलाये जाते है और सजा हुए बिना नहीं रहती। इस तरह के मामलों में से अधिकांश मामले स्थानीय पुलिस या जमीदार के उकसाने पर चलाये जाते हैं और इन मुकदमों को दायर करनेवाले उसी हलके के कुछ लोग हुआ करते है।

राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम फैजावाद, प्रतापगढ़, सुलतानपुर और रायवरेली में लागू किया गया है। इस अधिनियम को लागू करने के पहिले कुछ जिलों में १४४ धारा के अन्तर्गत सभी प्रकार की सभाओं का वुलाया जाना निषिद्ध ठहरा दिया गया था। इस हुक्म की वाकायदा तामील की गई और कोई सभा नही की गई। तिस पर भी राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम लागू कर दिया गया।

इन जिलों में काम करनेवाले हमारे कार्यकर्त्ताओं को तरह-तरह से परेशान

किया जाता है। उनके पीछे खुफिया पुलिस के बहुत से आदमी तथा वर्दीधारी पुलिसमैनों का एक गिरोह चला करता है और जहां वे कार्यकर्त्ता जाने वाले होते है वहां वे पहिले से ही जा डटते है। गांववालों को धमकाया जाता है ताकि वे कांग्रेस में शरीक न हों और हमारी कोई सहायता न करें। उनसे जवानी तौर पर यह भी कहा गया है कि चर्खा चलाना गैरकानूनी है और 'महात्मा गांधी की जय' का नारा लगाना बहुत बड़ा अपराध है, कांग्रेस की मेम्बरी के कागज पर दस्तखत करना अवैध है इत्यादि इत्यादि। जिन लोगों ने (कांग्रेस के सदस्यता-पत्र पर) हस्ताक्षर कर दिये हैं उनको यह कह कर धमकाया जाता है कि तुम पर मुकदमा चलाया जायगा, और मामले को दबा देने की गरज से रिश्वतें मांगी जाती है।

पर्चे बांटने के अपराध में प्रतापगढ़ जिले के छः नवयुवक विद्यार्थी कार्यकर्त्ता जेल भेज दिये गये। उनसे जमानत जमा करने को कहा गया परन्तु उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। सुलतानपुर जिले में एक ऐसा ही मामला छः व्यक्तियों के विरुद्ध चलाया गया था, परन्तु अब वह वापस ले लिया गया है। राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम को भंग करने के झूठे अपराध में दो कार्यकर्त्ताओं को छः महीने की सख्त कैद की सजा दी गई। इन दो कार्यकर्त्ताओं में से एक को पुलिस के एक सिपाही द्वारा ठोकरें लगाई गईं और पीटा गया।

किसानों को कुचल देने के लिए सरकार जो सैकड़ों तरीके अपनाये हुए है उसका अन्दाज लगाना कठिन है। जमींदार और कुछ स्थानीय लोग जो अपने को माडरेट कहते हैं, सरकार से मिल गये है। और उन लोगों ने सामान्य किसान की जिन्दगी भारी कर रक्खी है—इतनी भारी कि वह बेचारा पिसा जा रहा है।

संयुक्त प्रान्त के अन्य जिलों में भी किसान आन्दोलन को कुचलने का ठीक ऐसा ही, यद्यपि छोटे पैमाने पर, ढंग अख्तियार किया गया है।

२. कार्यकर्त्ताओं को सजा

बहुत से कांग्रेस व खिलाफत कार्यकर्त्ताओं पर मुकदमे चलाये गये हैं और उन्हें सजा दे दी गई है। आन्दोलन के किसी नेता को अभी तक नही पकड़ा गया है, परन्तु इन नेताओं के अनेक योग्य और कुशल सहायकों को जेल भेज दिया गया है। अपेक्षाकृत प्रख्यात व्यक्तियों मे, जिनके खिलाफ राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया है, देहरादून के पण्डित देवरत्न शर्मा का नाम उल्लेखनीय है।

इलाहाबाद के एक खिलाफत कार्यकर्त्ता को जिनका नाम हमीद अहमद है, अभी-अभी धारा १२१ क के अन्तर्गत आजीवन कालेपानी की सजा मिली है और

उनकी सब जायदाद जब्त कर ली गई है। उन पर यह अभियोग लगाया गया था कि उन्होंने अपने एक भाषण में फिलहाल अहिंसा के पालन की सलाह देते हुए कहा था कि यदि असहयोग आन्दोलन विफल हुआ तो मुसलमान लोग तलवार उठायेंगे।

जिलों के अनेक कांग्रेस अधिकारियों को धारा १०८ या १२४ के अन्तर्गत सजा दी जा चुकी है।

कुछ स्वयंसेवकों को नशाबन्दी आन्दोलन के सिलसिले में जेल भेज दिया गया।

३. सुरक्षा धाराएं तथा धारा १४४

इन धाराओं का असाधारण रूप से बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया है। ऐसा शायद ही कोई प्रख्यात कार्यकर्त्ता होगा जिसके नाम धारा १४४ का नोटिस न भेजा गया हो। मौलाना मुहम्मद अली तक को ऐसा नोटिस भेजा गया है। जिन-जिनके नाम यह नोटिस भेजा गया है उनमें से सौ से ऊपर की नामावली मेरे पास है, परन्तु यह सूची बहुत अधूरी है।

धारा १४४ को पूरे-पूरे जिलों पर लागू करके उन जिलों में सभाएं करना निषिद्ध कर दिया गया है। इस धारा १४४ से राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम का काम निकाला गया है।

एक मामला ऐसा भी है जिसमें धारा १४४ के अन्तर्गत जारी किये नोटिस का लिखित आदेश यह था कि खिलाफत की रसीदें न बेची जायं और सम्बन्धित व्यक्ति को इस प्रकार के किसी भी संगठन का सदस्य नही होना चाहिए।

सुरक्षा कानून के खण्ड, प्रेस ऐक्ट का काम दे रहे हैं। 'प्रताप' नामक समाचार-पत्र में छापे गये कुछ लेखों के कारण उस पत्र के सम्पादक और मुद्रक से ३० हजार रुपये की जमानत तलब की गई है। जमानतें जमा कर दी गई है।

४. विविध

बन्दूक के अनेक लाइसेंस जब्त कर लिये गये है। सरकारी नौकरों को बर्खास्तगी की धमकी दी गई है क्योंकि उनके रिश्तेदार असहयोग आन्दोलन में शरीक थे। गांधी टोपियां पहिनना निषिद्ध करार दिया गया है। स्वराज्य कोष के लिए चन्दा माँगनेवालों तथा चन्दा देनेवालों के लिए धमकी-भरा नोटिस जारी किया गया है।

काग्रेस और किसान सभा के दफ्तरों पर पुलिस ने छापे मारे है।

वनारस में कुछ विद्यार्थी तथा अन्य लोगों को भी भिन्न भिन्न अवधि के कारावास की सजा सुनाई गई है।

——अंग्रेजी। यं० इं०, १८।८।१९२१।]

५. स्वामी श्रद्धानन्द के नाम मुहम्मद अली का पत्र

आदरणीय स्वामी जी महाराज,

अफसोस कि मैं अपने वादे के मुताविक आपके वताये मामले पर कल आपको खत नही लिख सका, क्योंकि मैं नवाव साहव रामपुर से मिलने चला गया था और वहां मुझे दिन के ११ वजे से रात ८ वजे तक रहना पड़ा। मैंने 'तेज' में अभी-अभी पढ़ा है कि आपके चार आर्यसमाजी दोस्तों ने मुझसे कांग्रेस से इस्तीफा देने की मांग की है। इसे पढकर मुझे वरवस हंसी आ गई, हालांकि मैं कवूल करता हू कि इससे मुझे वहुत दु ख भी हुआ। मैं जानता हूं कि ऐसे कुछ लोग कुछ समय से इस तरह के कामों में लगे हुए है। लेकिन मैंने लखनऊ की आम सभा में इसके वारे में किये गये सवाल का जवाव देने के वाद यह मान लिया था कि वे लोग आगे इस तरह के काम नही करेंगे। उस सभा में मौजूद एक हिन्दू साहव को मेरा जवाव इतना पसन्द आया कि वह जोश में आकर पुकार उठे थे कि २२ करोड़ हिन्दू आपके साथ लड़ने और मरने के लिए तैयार हैं। किन्तु अव मैं महसूस करता हूं कि मेरी यह उम्मीद कितनी वेकार थी। हालांकि यह वहस इस समय जिस तरह चलाई जा रही है उसे देखते हुए जवाव में एक लफ्ज भी कहना विल्कुल गैर-जरूरी हो जाता है। फिर भी चूंकि मै मामले की पूरी सफाई का वादा कर चुका हूं इसलिए जैसा आप चाहते हैं मैं यह वयान दे रहा हूं।

हकीकत वही है जो मैंने आप को जवानी वताई थी। तव भी मेरे कुछ मुसलमान दोस्त मुझपर वरावर यह इल्जाम लगा रहे है कि मैं हिन्दू-परस्त और गांधी-परस्त हूं। ये यह दिखाना चाहते है कि मैं मजहवी उसूलों के वारे में महात्मा गांधी का मुरीद हो गया हूं। इसमें इनका अलग मंशा यह है कि मुलसमान लोग, खिलाफत कमेटी और कांग्रेस मुझसे नाखुश हो जायं। इसलिए कई मौको पर मैंने साफ-साफ कहा है कि मजहवी मामलो मे मेरा वही अकीदा है जो किसी भी दूसरे सच्चे मुसलमान का है। मैं इसलिए पैगम्वर मुहम्मद का (खुदा उनको राहत दे) मुरीद होने का दावा करता हूं, गांधीजी का नही। और चूंकि मैं इस्लाम को खुदा की सवसे वड़ी देन मानता हूं इसलिए महात्माजी के लिए मेरे मन में मुहब्बत का जो जज्वा है उसी ने मुझे खुदा से यह दुवा मांगने के लिए कहा है कि उनकी रूह

को इस्लाम की सच्ची रोशनी से रोशन कर दे। फिर भी मैं जोर देकर अपने इस अकीदे का ऐलान करना चाहता हूं कि इस्लाम, हिन्दू, यहूदी, ईसाई या पारसी किसी भी मजहब का आज ऐसा कोई भी नुमाइन्दा मौजूद नही जो महात्माजी की तरह नेकचलन और उसूलों का पक्का हो। इसी से मेरे दिल में उनके लिए इतना अदब और मुहब्बत है। मैं अपनी मां का बहुत अदब करता हूं और अगर इस्लाम की सच्ची नसीहत हर हाल में सब्र करना और एहसानमन्द रहना है तो मेरा दावा है कि कोई भी इनसान—चाहे वह धर्म का कितना भी बड़ा पण्डित हो—इस्लाम को मेरी मां से ज्यादा अच्छी तरह नही समझ सका है। इसी तरह मैं मौलाना अब्दुल बारी को अपना मजहबी रहनुमा मानता हूं। उनकी मेहरो-मुहब्बत से बंधा हुआ हूं। मै उनके हृदय की निश्छलता की बहुत तारीफ करता हूं। लेकिन इसके बावजूद मै यह कहने की हिम्मत करता हूं कि मुझे आज तक ऐसा कोई भी इन्सान नही मिला जो अमल के नजरिये से महात्मा गांधी से ऊंचे स्थान पर बैठने लायक हो।

लेकिन मजहबी अकीदे और अमल में बड़ा फर्क है। इस्लाम को मानने वाला होने के नाते मैं यह मानने के लिए मजबूर हूं कि इस्लाम के उसूल इस्लाम के अलावा किसी भी दूसरे मजहब को माननेवालो के उसूलो से ऊंचे हैं। इस नजरिए से एक पस्त और गिरे हुए मुसलमान के मजहबी उसूल भी एक गैर-मुसलमान के मजहबी उसूलों के मुकाबिले ऊंचा दर्जा पाने के मुस्तहक है—भले ही वह गैर-मुसलमान कितना ही पाक और नेकचलन क्यों न हो और चाहे वह खुद महात्मा गांधी ही क्यों न हों।

लखनऊ में जब मेरी तकरीर शुरू होने से ठीक पहले किसी ने ऊपर बताये गये सवाल की एक नकल जवाब के लिए मुझे दी और बहुत-सी नकलें सुननेवालों में भी बांटी थी, तब मैने कहा था कि मै ऐसे किसी सवाल का जवाब देना चाहता नही, क्योंकि मै समझता हूं कि किसी भी इन्सान को, जबतक वह यह साबित न कर दे कि वह महात्माजी से मेरे मुकाबले ज्यादा मुहब्बत करता है मुझ पर उनकी हतक का इलजाम लगाने का हकदार नही हो सकता। मैंने ऊपर बताया गया जवाब तब दिया, जब मुझे बताया गया कि सवाल यह नही है कि मैंने गांधीजी की हतक की है, बल्कि यह है कि मैंने हिन्दू धर्म की हतक की है। मेरी उस तकरीर की रिपोर्ट आज से करीब एक महीने पहले 'हमदम' मे छपी थी। उसमें मैंने यह भी कहा था कि जहां तक सच्चे अमल से जुदा मजहबी अकीदे का ताल्लुक है, हर ईसाई यह जानता है कि बहुत ही पस्त गिरा हुआ ईसाई भी एक पाक और नेकचलन मुसलमान या यहूदी से ज्यादा ऊंचे दर्जे का मुस्तहक है। हिन्दू और दूसरे धर्मो

के माननेवाले भी ऐसा ही मानते है। जैसा कि मै बता चुका हूं, मेरा जवाब इतना तसल्लीबख्श साबित हुआ कि एक हिन्दू दोस्त ने पुकार कर कहा कि "२२ करोड़ हिन्दू आपका साथ देने के लिए तैयार है।" सुननेवालो में से बहुत से हिन्दुओं ने उनकी बात पर खुशी जाहिर करते हुए "वन्देमातरम्" और 'अल्लाहो अकबर' के नारे आदि लगाये। दूसरी तरफ जो लोग उस सवाल की छपी हुई नकलें लाये थे, उनका मुह बिल्कुल बन्द हो गया। मजे की बात तो यह है कि जिन लोगों ने मुझसे इस्तीफे की मांग की है, उनमें से एक साहब ने अभी हाल में मुझे देहरादून में एक आम सभा में आने के लिए बड़े तपाक से दावत दी थी।

ऐसी हालत में मै इन साहबान के कहने या सोचने पर अपने किसी काम को नही छोड़ सकता। इसके अलावा यह बात पूरी तरह कांग्रेस के इख्तियार की है, फिर भी मैं यहां यह कहना चाहता हूं और आप भी मेरी इस बात की ताईद करेंगे कि हालाकि मैं इस्लाम का एक नाचीज बन्दा हूं, लेकिन अगर ये साहबान मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकता का दुश्मन और महात्मा गांधी तथा उनके जानेमाने मजहबी अकीदे की हतक करने वाला मानते हों तो मेरा खयाल है कि ऐसा एक भी मुसलमान नही होगा जो उन्हें पूरी तरह से तसल्ली करा सकेगा।

एक बार फिर मैं कहना चाहता हूं कि यदि मैने आपसे वादा न किया होता तो मैं यह खत लिखता ही नही। क्योंकि मैं इस देश में आजकल जो कई बहसें छिड़ी हुई है उनमें इजाफा नही करना चाहता। मैं इस समय अपनी बेटी की मौत और अपने एक भाई और अपनी मां की खतरनाक बीमारी की वजह से जिस्मानी तौर पर इस बहस में पड़ने के नाकाबिल हूं। ऐसे वक्त जिन दोस्तों ने यह बदमजा बहस छेड़ी है मैं उन्हें उनकी अखलाकी तमीज पर ही छोड़ना अच्छा समझता हूं। मैं एक बार फिर आपकी हमदर्दी के लिए आपका शुक्रगुजार हूं और इन अल्फाज के साथ खत पूरा करता हूं कि अगर आप इसके बारे में अखबारों में कुछ लिखें तो इस खत को आप ज्यों-का-त्यों छाप सकते है।

आपका

मुहम्मद अली

--अंग्रेजी। यं० इं०, १९।४।१९२४।]

६. 'तेज' के सम्पादक के नाम मुहम्मद अली का पत्र

प्रिय महोदय,

स्वामीजी महाराज के खत मे एक ऐसा जुमला था जिसका मतलब लगाया

जा सकता है कि मै हस्ती की कशमकश से निजात के लिए अच्छे काम करना जरूरी नही मानता। ऐसा न मैं मानता हूं न कोई भी मुसलमान। निजात की जरूरी शर्तें हैं अकीदा, अमल की पाकीजगी, दूसरों को नेक काम करने के लिए समझाना और उन्हें बुरे कामों से अगाह करना तथा अपने किये का फल तहम्मुल के साथ भोगना। मै मानता हूं कि जिस तरह एक मुसलमान बुरे कामों के लिए सजा पाने के लायक है उसी तरह एक गैर-मुसलमान भी अपने नेकअमल के लिए अच्छे फल का मुस्तहक है। सवाल निजात के लिए जरूरी शर्तो का नही बल्कि मजहबी अकीदे और अमल में फर्क का है। यही वजह है कि मै महात्माजी को अपने जाने हुए सभी मुसलमानों से ऊंचा दर्जा देता हूं। लेकिन अपने मजहब को सभी गैर-मुसलमानों के मजहब से ऊंचा मानना हर मुसलमान का फर्ज है। ऐसा कहकर मैंने अपने ऊपर लगाये गये 'गांधी-परस्ती' के इल्जाम का जवाब दिया था। मेरा मंशा बिलकुल यही था, हिन्दू भाइयों के जज्बात को चोट पहुंचाना या महात्मा गांधी की हतक करना नहीं। इस पर अगर किसी को शिकायत हो सकती है तो मेरे अपने मजहब के लोगों को ही हो सकती है, क्योंकि मै उनमें से किसी को भी अमल की पाकीजगी के नजरिये से महात्मा गांधी के बराबर नहीं मानता।

मुहम्मद अली

——अंग्रेजी। यं० इं०, १०।४।१९२४।]

७. डा० भगवानदास का पत्र

सम्पादक
'यंग इण्डिया'
महोदय,

आपने १७-४-१९२४ के 'यंग इण्डिया' में 'अध्यापक और वकील' शीर्षक से जो लेख लिखा है, उसमें १३० पृष्ठ पर निम्नलिखित वाक्य आये है ——

"पर यदि हम जनता के लिए स्वराज्य स्थापित करना चाहते हों——एक दल के बदले किसी दूसरे दल का जो शायद उससे भी अधिक बुरा निकले, राज्य स्थापित करना नहीं चाहते——तो इस कठिनाई का मुकाबला हमें केवल साहस के साथ ही नहीं, जान को हथेली पर रखकर करना होगा।"

दूसरा वाक्य है —

"यदि हमें स्वराज्य में नगर-जीवन को ग्राम-जीवन के अनुरूप बनाना हो तो नगर-जीवन का रंग-ढंग बदलना ही होगा।"

मैं बड़ी संजीदगी के साथ आपका और 'यंग इण्डिया' के सभी पाठकों का ध्यान इन दो शर्तो से निकलने वाले नतीजों पर और पूरे असहयोग आन्दोलन तथा स्वराज्य-संघर्ष पर पड़ने वाले इनके अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रभाव की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। स्वराज्य के लिए विभिन्न दल अपने विभिन्न तरीकों से संघर्ष कर रहे हैं। इन दलों ने कांग्रेस के नये सिद्धान्त, जिसमें "स्वराज्य" शब्द का प्रयोग किया गया है, को स्वीकार कर लिया है। लेकिन इस नये सिद्धान्त में "स्वराज्य" शब्द की कोई निश्चित ,सुस्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई है, न यही बतलाया गया है कि स्वराज्य किस प्रकार का होगा।

हममें से कुछ लोगों का पक्का विश्वास है कि असहयोग आन्दोलन की प्रगति में बाधक और उसे प्रभावहीन बनानेवाली सभी त्रुटियों में से अनेक त्रुटियों की जड़ यही अनिश्चित और अस्पष्ट शर्तें है। जबतक ये शर्तें अस्पष्ट रहेगी तबतक किन्ही भी दो वर्गो, किन्ही भी दो सिद्धान्तों, किन्हीं भी दो जातियों के बीच परस्पर विश्वास पैदा हो ही नही सकेगा, बल्कि कहा तो यह भी जा सकता है कि तबतक स्वराज्य चाहने वालों, उसके स्वरूप के बारे में भले ही भिन्न-भिन्न मत रखनेवाले, किन्ही दो कार्यकर्त्ताओं में भी परस्पर कोई विश्वास पैदा नही हो सकेगा।

कारण यह है कि किसी शब्द का सही और पूरा-पूरा अर्थ समझे बिना उस एक शब्द के आधार पर हासिल की गई एकता बड़ी ही अवास्तविक किस्म की एकता है। इसलिए वह लगातार टूटती चली जा रही है। वह राजनीतिक बहस-मुबाहिसों में भाषा और विचारगत उग्रता और हिन्दू-मुस्लिम दंगों के दौरान हिंसात्मक कार्यो का रूप धारण कर लेती है। और इसलिए आन्दोलन अनेक दिशाओं में असफल होता जा रहा है। ऐसी एकता से न तो अविचल निष्ठा पैदा हो रही है, न अनुशासन सध रहा है, न संगठन मजबूत हो रहा है और न रचनात्मक या ध्वंसकारी किसी भी प्रकार के किसी व्यवस्थित कार्य को ही बल मिल रहा है।

उद्धृत किये गये पहले वाक्य के तुरन्त बाद, आप कहते हैं :—"आज तक हजारों ग्रामीण हमें जीवित रहने के लिए मरे-खपे हैं। अब शायद उन्हे जीवित रखने के लिए हमें मरना पड़े।" लेकिन स्वराज्य जिस 'जनता' के लिए स्थापित किया जाना है, उसमें 'हम लोग' (शहरी लोग) भी तो शामिल हैं। क्या हम लोग शामिल नहीं? और शहरी लोगों का एक बड़ा भाग उतना ही निर्धन है जितना कि गावों के लोग। क्या ऐसा नही है?

शहरी लोगों को कुछ ऐसा लगता रहा है कि असहयोग-आन्दोलन से मिलने-वाले स्वराज्य का अर्थ कोई नहीं जानता, पर वह शायद शहरों को मिटा देगा। (उसके विरुद्ध उठाये जानेवाले "बोल्शेविज्म" के नारों को देखिए) इसलिए स्वाभाविक ही है कि इससे उनके हृदयों में स्वराज्य के प्रति कोई उत्साह पैदा नहीं होगा। तिलक स्वराज्य-कोष के लिए अधिकांश चन्दा शहरों से ही आया है, बम्बई इसमें सबसे आगे रहा है। चन्दा ऐसे लोगों ने दिया है जिनके धन्धे और जीविका के साधनों को असहयोग आन्दोलन का रचनात्मक और विध्वंसकारी कार्यक्रम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से क्षीण ही बनायेगा, उनकी जड़े हिला देगा। फिर भी शहरी लोगों की ओर से इतना चन्दा मिलने का अंशतः एक कारण तो यह है कि सभी वर्गो के भारतीय आपके व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धालु है और उसका दूसरा आंशिक कारण है उनकी यह आशा कि आखिरकार वह मनोवाञ्छित स्वराज्य शहरों के खिलाफ कोई जिहाद नहीं बोल देगा, वह शहरों की बुराइयों को ही दूर करने की कोशिश करेगा।

शहरों के लोप का अर्थ होगा लक्ष्मी और सरस्वती का लोप। और तब खलिहानों में क्रीड़ा करती गौरी अन्नपूर्णा मानवीय जीवन को कलात्मक अभिरुचि, विज्ञानपरक बुद्धि से सम्पन्न और इसीलिए विविधतापूर्ण बनाने में असफल रहेगी, फिर चाहे हमारे खलिहान कितने ही धान्यपूरित क्यो न हों। आवश्यकता इस बात की है कि सभी कालों में सभी देशों और धर्मो के मानवों-द्वारा सर्वपूजित इन तीनों दैवी शक्तियों को सन्तुलित अनुपात दिया जाय। और इनमे से किसी एक का भी त्याग न किया जाय। रामराज्य में यद्यपि लंका आंशिक रूप से तहस-नहस हो गई थी तथापि अयोध्या फली-फूली थी।

बाद के एक अनुच्छेद मे आपका यह वाक्य पढ़कर हमारे मन को बड़ी शान्ति मिली कि "नगर-जीवन का रंग-ढंग बदलना ही होगा।" इससे पहले के वाक्यों ने मन में जो आशंकाएं पैदा कर दी थी वे इससे कुछ शान्त हो जायंगी, हालांकि लोग, पूरी तौर पर आश्वस्त तो नही होंगे।

अधिकांश मानवता सदा से "अनुग्रता" "स्वर्ण-सन्तुलन", "मध्यममार्ग" "आत्म-संयम" की ही सहज आकांक्षा करती रही है और इसी के लिए प्रयत्नशील रही है। अब आप जबतक हमारे नेताओ के सिरमौर की हैसियत से देश के सामने स्वराज्य की कोई ऐसी योजना नहीं रक्खेंगे जिसमे जनता के सभी वर्गो को यह अभय मिल जाय कि किसी भी वर्ग को बिल्कुल नेस्तनाबूद नही किया जायगा, यद्यपि हर प्रकार की और हर किसी की अति को रोकने का यथोचित प्रबन्ध किया जायगा, तबतक किसी भी वर्ग की जनता पूरे मन से संघर्ष में नही उतरेगी और स्वराज्य

के लिए किये जानेवाले प्रयत्नों में सच्ची एकता पैदा नही हो सकेगी और इसीलिए सच्चा स्वराज्य कभी स्थापित नही किया जा सकेगा।

'यंग इण्डिया' में स्थान की मर्यादा है और यह बहुत क़ीमती है, इसीलिए मुझे उसमें बहुत अधिक स्थान नहीं घेरना चाहिए, हालांकि मेरा हार्दिक विश्वास है कि 'यंग इण्डिया' के स्तम्भों में अभी तक जितने भी विषयों के बारे में लिखा गया है, उसमें यह विषय सबसे अधिक महत्वपूर्ण या परिणाम की दृष्टि से सर्वाधिक दूरव्यापी है, अर्थात् भारत को किस प्रकार के स्वराज्य की जरूरत है, यही सर्वाधिक महत्व का विषय है।

मैं गत तीन वर्षो से इस विषय की ओर मौके-बेमौके आम जनता और (बनारस की स्थानीय कमेटी से लेकर अखिल भारतीय कमेटी तक) सभी स्तरों पर कांग्रेस कमेटियों और अलग-अलग नेताओं का ध्यान आकर्षित करता रहा हूं। आपकी गिरफ्तारी के दिन तक और फिर आपकी रिहाई के बाद से भी मैं आपके पास इस सम्बन्ध में पत्र और प्रकाशित सामग्री भेजता रहा हूं। मैं इसके सम्बन्ध मे बार-बार अपनी राय व्यक्त कर चुका हूं और मै यहां से उसे दोहराऊंगा नही। १९२३ के आरम्भ में थोड़े समय के लिए मुझे काफी आशा बँध गई थी कि इस विषय पर यथा-योग्य विचार किया जायगा, इसलिए कि देशबन्धु दास-जैसे प्रमुख नेता ने कुछ समय तक इस विषय में दिलचस्पी ली थी। लेकिन उनकी दिलचस्पी बहुत ही थोड़े समय तक रही। और मुझे भी ऐसा लगने लगा था कि अभी इस विषय की चर्चा के लिए "उपयुक्त समय" नही आया है।

परन्तु आपके लेख में उपर्युक्त दो महत्वपूर्ण शर्तो पर मेरी नजर पड़ी। उससे मुझे यह एक और प्रयास करने की प्रेरणा मिली।

हम कुछ लोगों को इस विषय में बहुत ही दिलचस्पी है। इसलिए यदि आप 'यंग इण्डिया' के स्तम्भों में इसके बारे में कुछ लिखें—ऐसा कुछ लिखें जो निराशा के अंधेरे में प्रकाश की किरण-जैसा हो—तो "हम कुछ लोग" अत्यन्त ही कृतज्ञ होंगे।

आपका

भगवानदास

——अंग्रजी। यं० इं०, ८।५।१९२४।]

८. डा० भगवानदास का पत्र

बनारस
५ जून, १९२४

सम्पादक
'यंग इण्डिया'

प्रिय महोदय,

लाखों अन्य पाठकों की भांति, मैने भी 'यंग इण्डिया' के २९।५।१९२४ के अंक में "हिन्दू मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार" शीर्षक लेख में किये आपके गुरु-गम्भीर तर्कों को अत्यन्त सावधानी के साथ और पूरे ध्यान से पढ़ लिया है। उसमें अनेक सुविदित सचाइयों (जिनको जनता ने अभी तक उतनी गहराई से नही समझा था) को सुबोध, सहज और सुन्दर ढंग से, स्पष्टतावादिता के साथ, प्रस्तुत किया गया है। अब आपकी अत्यन्त ही विश्वसनीय सत्यनिष्ठा से प्रमाणित हो जाने पर इन सच्चाइयों को (अनुवाद होने पर) लाखों लोग इनकी पूरी गहराई के साथ समझ लेंगे, जो वे अब तक नही कर पाये थे। पर मुझे लगता है कि इस समस्या का निदान अधिक गहराई से करने और इसके उपचार के लिए अधिक उग्र किस्म का नुस्खा तलाश करने की जरूरत है। मैं इसीलिए पादटिप्पणी में कही गई आपकी बात के मुताबिक कुछ उक्तियों के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न उठा रहा हूं। आशा है कि आप इनका और अधिक विशद निरूपण करेंगे।

(१) आपने पृष्ठ १७६ पर[1] कहा है—"मेरे निजी अनुभव से भी इस मत की पुष्टि होती है कि मुसलमान आमतौर पर धींगाधींगी करनेवाला और हिन्दू दब्बू होता है।" क्या यह बात हमेशा और हर जगह आमतौर पर लागू होती है? और यदि यह बात हमेशा हो या कभी-कभी ही ऐसी है तो क्यों है?

इन प्रश्नों का ठीक-ठीक पूरा उत्तर पाये विना, हिन्दुओं को हिंसात्मक या अहिंसात्मक ढंग से वीर बनने की सलाह-भर देने से कोई लाभ नही होगा।

क्या भारत में रहनेवाले मुसलमान और हिन्दू दो अलग-अलग जातियों, दो अलग-अलग नस्लों के लोग है? बिल्कुल निश्चित तौर पर कहा जा सकता है—नही। ९९ प्रतिशत मुसलमानों के पूर्वज या तो हिन्दू थे या उन्होने स्वयं इधर हाल ही में धर्म-परिवर्तन किया है।

क्या हिन्दू सैनिकों, सिखों, गुरखाओ, डोगराओं, राजपूतों, जाटों, बैसवारियों,

---

१. यहां यंग इण्डिया की पृष्ठ-संख्या का हवाला दिया गया है।

मराठों, अहीरों, नायरो, तैलंगों और असैनिक किस्म के स्ट्रेचर ढोने वाले कहारों ने भी मुसलमान सैनिकों, ईसाई सैनिकों या यूरोपीय सैनिकों से कोई कम शौर्य दिखाया है? निश्चय ही नही।

तव हम आपके इस कथन को क्या अर्थ लगायें कि "ज्यादातर झगड़ों में हिन्दू लोग ही पिटते है।" यदि हिन्दुओं और मुसलमानों के वीच होनेवाले केवल धार्मिक दंगो या भारत मे होनेवाले व्यक्तिगत झगड़ों को ही लें तो सिर्फ उस परिस्थिति मे हम आपके कथन को अक्षरशः सही मान सकते है। क्या यही वात नही है? आपके अगले वाक्य मे यह वात विलकुल स्पष्ट हो जाती है— "रेलगाड़ियों में, रास्तों पर, तथा ऐसे झगड़ों का निपटारा करने के जो मौके मिले है उनमें मैंने यही देखा है।" अव प्रश्न उठता है—ऐसा क्यों हुआ कि दोनों में जातिगत, वंशगत कोई अन्तर न होते हुए एक में जन्मजात शौर्य (या आततायीपन जो एक विल्कुल दूसरी ही चीज है) दूसरों मे जन्मजात वुजदिली न होते हुए भी उन्होने इन छोटे-छोटे झगड़ों और उद्दण्डतापूर्ण प्रदर्शनों में वुजदिली दिखाई जबकि मुसलमानों ने शौर्य या आततायीपन दिखाया?

क्या इन दोनों धर्मो की वर्तमान स्थिति में ही कोई ऐसी वात है कि जो हिन्दुओं को इतना वुजदिल और मुसलमानों को वहादुर वना देती है? क्या अलग चौका खीचकर रहने की विडम्वनापूर्ण मनोवृत्ति, ऊंची और ,नीची जातियो की आनुवंशिकता की धारणा से उत्पन्न आत्मसेवी स्वार्थपरता या दम्भ और दिखावटी धर्मनिष्ठा का पाखण्ड इनका मूल हो सकता है? क्या यह हो सकता है कि इस पाखण्ड ने ही हिन्दुओं की पारस्परिक सहानुभूति की भावना नष्ट कर दी हो और ऐसे झगड़ों मे एक हिन्दू दूसरे हिन्दू की मदद से हाथ खीच लेता है और इस प्रकार हिन्दू, असहायता के भान के कारण वुजदिल वन जाते है और मुसलमान का लोकतान्त्रिक धर्म पारस्परिक सहायता को सुनिश्चित वनाकर उसे बहादुर वना देता है?

तथाकथित दलित वर्गो को ही अछूत नही माना जाता, हिन्दुओं की तमाम जातियां और उपजातियां और उनकी उपजातियां किसी-न-किसी तरह एक दूसरी को कम या ज्यादा अछूत मानती है। एक दूसरे के खिलाफ इस तरह चौकावन्दी और इसीलिए उपेक्षा और अविश्वास को जन्म देनेवाला कोई भी धर्म वुजदिलो को ही पैदा कर सकता है और ऐसे वुजदिलों का भाग्य यही हो सकता है कि वहादुर लोग उन को हड़प कर जायं क्योंकि वुजदिलों को लेकर लालच पैदा होगी और दूसरे लोग वहादुर वनने ही लगेगे। आज इस्लाम भी पतनावस्था में है, पर पतनावस्था मे पहुचा हुआ भी वह आज के हिन्दू धर्म से स्पष्ट ही कुछ मामलों

में बेहतर है। यदि इस्लाम में मारकाट कुछ कम होती और उसका दार्शनिक पक्ष अधिक सबल होता तो वह हिन्दू धर्म के सभी अधिक उन्नत स्वरूपों से तो निश्चित रूप से अच्छा ही होता।

(२) आपने पृष्ठ १८३ पर कहा है "अगर हिन्दू अपना घर सँभाल लें तो मुझे तनिक भी सन्देह नही कि इस्लाम में भी उसकी उदार परम्पराओं के योग्य प्रतिक्रिया अव य दिखाई देगी। हिन्दुओ को...भीरुता या वुजदिली छोड़ देनी चाहिए।" कृपया हिन्दुओं को जरा अधिक स्पष्ट शब्दों में वतलाइए कि वे अपने अन्दर की वुराइयां कैसे दूर करें, वुजदिली को कैसे छोड़ें। क्या हिन्दू धर्म के व्यावहारिक स्वरूप में उसके मर्म में व्याप्त व्याधि ही आज उसके पतन का मूल कारण नही है; यह चौकाबन्दी की मनोवृत्ति ही उसकी मूल व्याधि नहीं है? वनारस के कई पण्डितों ने जबरन मुसलमान वनाये गये, मलावार के हिन्दुओं को फिर से हिन्दू वनाने की मंजूरी देने की व्यवस्था पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था। उन लोगों को इस्लाम की छूत लग गई थी और इसलिए उनको सदा के लिए हिन्दू धर्म से अलग मान लिया गया था।

यदि मैं पड़ोसी के नौकर को अपने यहां वुलाना चाहूं और अगर मेरे छू देने भर से वह मेरे पड़ोसी के बिलकुल काम का न रह जाता हो, और इस प्रकार मुझे मिल सकता हो तो उसे अवश्य ही छू दूगा। उसे छू देने का मुझे वड़ा प्रवल प्रलोभन होगा। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जैसे झगड़े-फसाद होते है, वैसे ईसाइयों और मुसलमानों के बीच क्यों नही होते? सच तो यह है कि ईसाई लोग मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों ही को ईसाई वना लेते है, फिर भी मुसलमान उनसे इतने नाराज नहीं होते जितने कि वे हिन्दुओं के शुद्धि और संगठन-सम्वन्धी कार्यो पर नाराज होते है। ऐसा क्यों? आपने पृष्ठ १८० पर विल्कुल ठीक कहा है कि असल में शुद्धि और संगठन का तरीका—उनका अपना प्रदर्शन, गाजे-वाजे और ढोल पीटना इत्यादि ही झगड़े की जड़ है। यदि हिन्दुओं में, विशेप कर हिन्दू पुजारियों में थोड़ी ज्यादा समझदारी हो, ईमानदारी और सहजवुद्धि हो और वे पाखण्डपूर्ण दिखावे और आत्मघाती धूर्तता का सहारा थोड़ा कम लें तो वे केवल इतना कह सकते है कि जो भी चाहे अपने-आपको हिन्दू कह सकता है और मिलते-जुलते खान-पान, स्वभाव और तौर-तरीकों वाले किसी भी हिन्दू के साथ वैठ कर भोजन कर सकता है। फिर कोई झगड़ा ही नही रह जायगा। यदि वे मात्र स्पर्श से दूषित होनेवाली पवित्रता के इस दम्भ को एकदम छोड़ दे तो फिर जैसे-तैसे हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन कराने के लिए मुसलमानो को न तो कोई प्रेरणा रह जायगी और न कोई आवेश ही (और देखा जाय तो यह दम्भ

अपने-आप में वहुत ही अशक्त और कायरतापूर्ण है क्योंकि वह अपने स्पर्श से दूसरों को शुद्ध करने की वजाय दूसरों के स्पर्श-मात्र से अशुद्ध और नष्ट हो जाता है) इस दम्भ का त्याग कर देने पर मुसलमान और हिन्दू लोग फिर से आपस में मुक्त और मैत्रीपूर्ण मानवों की तरह वर्ताव करने लगेंगे; जब वे यह समझ लेंगे या कम से कम महसूस कर लेंगे कि सभी लोग समान है; वे सबसे पहले इन्सान और बाद में हिन्दू या मुसलमान है। मनुष्यों के रूप में वे समान हैं और उनको अपनी मर्जी के मुताविक हिन्दू या मुसलमान या ईसाई या अन्य किसी धर्म को अपनाने या छोड़ने की स्वतन्त्रता है, ठीक उसी तरह जैसे व्यक्ति को अपने कपड़े चुनने की स्वतन्त्रता रहती है। और चूंकि एक ही ईश्वर है इसलिए उनको एक दूसरे के साथ भाइयों की तरह नेकी और ईमानदारी का वर्ताव करना जरूरी है। इतना महसूस कर लेने पर वे जरा-सी वात पर एक दूसरे के सिर फोड़ने की वात नही सोचेंगे।

हिन्दुओं के पास ऐसा कोई समुचित कारण नही है कि वे ऐसा एलान न करें। शुद्ध विचार के साथ खानपान और विवाह 'पवित्रता' के मुख्य तत्व माने जाते हैं; ये सचमुच हैं भी। मद्यपान के मामले में इस्लाम हिन्दू धर्म की अपेक्षा अधिक 'शुद्ध' है, क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से तो इस्लाम हर नशीले पेय की मनाही करता है जवकि हिन्दू धर्म हालांकि उसकी निन्दा करता है पर इतनी सख्ती से मनाही नही करता। आहार के मामले में दोनों ही में मांस-मछली और मुर्गा भक्ष्य हैं; इस्लाम गाय के मांस पर आग्रह करता है पर सुअर के मांस के खिलाफ है। हिन्दू धर्म मे सुअर के मांस की अनुमति है, पर गाय का मांस अक्षम्य है। ईसाई धर्म के लोग दोनों का मांस खाते है और मद्यपान भी करते है। विवाह के मामले में हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों ही सैद्धान्तिक रूप से और एक हद तक व्यावहारिक रूप से भी वहुपत्नी-प्रथा की अनुमति देते हैं। तव फिर दोनों में यह हद दर्जे का असहयोग, यह स्पर्श-मात्र से धर्म नष्ट होने या कम-से-कम स्नान की आवश्यकता महसूस करने की भावना क्यों?

इन विषयों के सम्वन्ध में आप समय-समय पर विल्कुल खरी और सीधी-सीधी भाषा में वार-बार अपने विचार व्यक्त करते रहे हैं, यह हिन्दुओं के लिए वड़ा ही जरूरी जान पड़ता है।

(३) आपने पृष्ठ १७७ पर कहा है—"बीज हमने वोये थे, फसल गुण्डों ने काटी।" हमने किस तरह और क्यों बीज वोये? दोनों सम्प्रदायों के प्रतिष्ठित, सम्माननीय लोग आपस में पाखण्डपूर्ण व्यवहार क्यों करते जा रहे है? वे सच्चे हृदय से शान्ति के लिए प्रयत्न क्यों नही करते? इसका कारण दोनों में अन्तर्निहित महज दुःप्रवृत्ति मात्र है या फिर अभी तक दोनों को एक दूसरे को और दोनो को

समान उद्देश्यों को निकट से समझने के लिए प्रेरणा देने का समुचित प्रयत्न नहीं किया गया है।

(४) आपने पृष्ठ १७७ पर कहा है "तनाव का दूसरा सबल कारण यह है कि हमारे अच्छे से अच्छे लोगों के भीतर भी अविश्वास की भावना बढ़ती जा रही है।" अविश्वास है ही क्यों? और वह बढ़ता क्यों जा रहा है? क्या इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि स्वराज्य और धर्म शब्दों का स्पष्ट अर्थ नही समझा गया है, कि इन दो अत्यन्त ही महत्वपूर्ण और परस्पर सम्बद्ध शब्दों के ठीक-ठीक अर्थ के बारे में परस्पर सहमति नही है, कि इस अत्यन्त ही मार्मिक महत्व के विषय के बारे में भी सभी कार्यकर्त्ताओं को सहमत कराने का कोई प्रयास नही किया गया है—हालांकि सभी कार्यकर्त्तागण यही नारा मुंह से दोहराते भर जाते है कि हम सब स्वराज्य चाहते है, हम सब ईश्वर को पाना चाहते है?

(५) आपने पृष्ठ १७६ पर लिखा है "हम सब एक दूसरे की अनुकूल बातें खोजकर—काम करें।" अनुकूल बातों का आप क्या अर्थ लगाते है? क्या दो व्यक्तियों के बीच स्वभाव, रुचि, आदतों इत्यादि के आधार पर व्यक्तिगत मैत्री स्थापित करने के उद्देश्य से सम्पर्क या दोनों सम्प्रदायों के आधार पर सामाजिक सुविधाओं के लिए सम्पर्क या राजनीतिक दलो के बीच राजनीतिक गठबन्धन के लिए सम्पर्क या आप धर्मो के बीच वास्तव में एक गहरी स्थायी एकता और सम्बद्धता के लिए सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं?

(६) पृष्ठ १८२ पर आपने विभिन्न राजनीतिक मामलों के निबटारे के लिए "हकीम अजमल खां के हाथ में कलम सौप देने" की बात कही है। आपने सिर्फ उन्ही के नाम का उल्लेख क्यों किया? क्या इसका कारण यह नही कि आप जानते है, या कम-से-कम महसूस करते हैं (जैसा कि कुछ अन्य लोगों ने भी महसूस किया है) कि हकीम साहब इन्सान पहले और मुसलमान बाद में हैं, कि वह एक भले, न्यायप्रिय और उदारचरित मनुष्य है और (शायद इसीलिए कि वह) धर्म के मामले में कट्टरपन्थी नहीं है? भगवान न करे, पर मान लीजिए कि वह अशक्त हो जायं तो क्या आप उनके स्थान पर एक या अन्य कई नाम सुझा सकते है? और क्या इन राजनीतिक समस्याओं के निबटारे का बस एक यही इतने जोखिम का रास्ता रह गया है कि एक ही मनुष्य को सारी जिम्मेदारी सौप दी जाय, वह भी एक ऐसे मनुष्य के हाथ में जिसकी सेहत ठीक नही रहती, भले ही दोनो सम्प्रदायों के लोगों की नजरों में उसका दर्जा ऐन आपके बाद ही हो? क्या इसका कोई दूसरा अधिक निरापद और समुचित मार्ग नही रह गया है? क्या ऐसे स्त्री-पुरुषों की एक कोई संस्था किसी भी तरह खड़ी नही की जा सकती और उसके

सदस्यों की संख्या को लोक-संसद के सदस्यों, विधान सभाओं के सदस्यों, पंच अदालतों और सर्वोच्च अखिल भारतीय पंचायत के सदस्यों मे से लोगों का चुनाव करके एक सुसंगत स्तर पर कायम नही रक्खा जा सकता ?

(७) पृष्ठ १८२ पर आप कहते हैं "हिन्दू-मुस्लिम एकता का मतलव ही स्वराज्य है। जबतक इस अभागे देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच हार्दिक और स्थायी एकता कायम नही हो तो तवतक मुझे कोई रास्ता दिखाई नही देता।" और हर एक आदमी यही वात कहता है। परन्तु हम ऐसी एकता स्थापित कैसे करेंगे ? क्या दोनों सम्प्रदायों के लोगों से वार-वार यही कहकर कि एक हो जाओ—एक हो जाओ, आपस में लड़ो मत, तुम गोवध पर और तुम गाजे-वाजे पर आपत्ति मत करो ? ऐसा क्यों है कि सोते-जागते ऐसी ताकीदों के वाद भी लोग एक नही होना चाहते, आपस में लड़ते रहते है और एक-दूसरे के कामों पर आपत्ति करते रहते हैं और सचमुच यह प्रवृत्ति दिन-दिन वढ़ती जा रही है ? क्या आप इस वात से सहमत नही कि सम्पर्क स्थापित करने के मुद्दों या कहिए कि सभी धर्मों के समान तत्वों को सार्वजनिक तौर पर अधिक स्पप्ट शब्दों में अधिक प्रयत्नपूर्वक वार-वार वतलाना कही ज्यादा कारगर सावित होगा ?

आपका,

भगवानदास

—अंग्रेजी। यं० इं०, १९।६।१९२४।]

९. युक्त-प्रान्त में खादी

भाई शंकरलाल वैंकर लिखते हैं—

"हिन्दुस्तान के अन्य प्रान्तों की तरह इस प्रान्त में भी खादी-कार्य के लिए अच्छी अनुकूलता है और यहां आज भी कितनी ही जगह कुछ-कुछ अच्छा काम हो रहा है। फिर भी प्रान्त के विस्तार पर ध्यान देते हुए काम कम ही मालूम होता है। कुछ अंश में सगठन और कुछ अंश में धन के अभाव से इस प्रान्त में सन्तोषजनक काम न हो सका। यहां के काम के विकास के लिए कुछ समय पहले यहां के खादी-मण्डल की ओर से काम देखने का निमन्त्रण मिला था। उसके अनुसार हम अभी वहां काम देखने के लिए गये थे। वहां के काम की मौजूदा हालत तथा भविष्य के लिए योजना के सम्वन्ध में नीचे-लिखी वातें जानने लायक है।

इस प्रान्त में खादी-कार्य के लिए प्रान्तिक समिति की तरह हर साल खादी-मण्डल नियुक्त होता है। इस मण्डल के अध्यक्ष डा० मुरारी लाल तथा मन्त्री श्री

रामस्वरूप गुप्त है। पण्डित जवाहरलाल, श्री पुरुषोतमदास टण्डन तथा सय्यद महमूद आदि सभासद है। इस मण्डल का दफ्तर कानपुर है। इसके अधीन अभी दो खादी-भण्डार चल रहे है। एक प्रयाग में और दूसरा कानपुर में। प्रयाग के भण्डार में वहा की समिति ने ५०००) से ऊपर रकम लगाई है। इसके अलावा अ० भा० खा० मण्डल ने ५०००) कर्ज दिये हैं। कानपुर के खादी-भण्डार की पूंजी २५००) है। और वहां भी अ० भा० खादी मण्डल ने २५००) रुपये कर्ज दिये है। इन भण्डारों में अभी मासिक बिक्री इस प्रकार होती है--

कानपुर, २,४००)

प्रयाग १,३००)

इन भण्डारों के लिए जहां तक हो सके अपने ही प्रान्त की बनी खादी खरीदने का स्वागत-योग्य नियम रक्खा गया है। इससे इस प्रान्त में उत्पन्न होनेवाली खादी को प्रोत्साहन मिलता रहता है। इन भण्डारों की मौजूदा हालत से उनके मण्डल तथा नेताओं को सन्तोष नहीं है। इन दोनों शहरों के अलावा प्रान्त के तमाम शहरों में वे भण्डार खोलना चाहते है। परन्तु धन के अभाव से वे आगे काम नहीं बढ़ा सकते। इसके लिए सेठ जमनालाल जी ने तथा पण्डित जवाहरलाल जी ने कानपुर में कुछ सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की थी। उसके फलस्वरूप सम्भव है भविष्य में कोई योजना हो जाय। अभी तो उनके तथा पं० जवाहरलाल जी के प्रयास से कानपुर के एक प्रसिद्ध अग्रवाल व्यापारी सेठ रामस्वरूप नेवटिया ने दूसरे दो-तीन व्यापारियो के साथ मिलकर १००००) की पूंजी से एक खादी-भण्डार खोलने की तजवीज की है। और इसके लिए उन्होंने अ० भा० खादी-मण्डल से भी सहायता चाही है। यदि यह योजना सफल हो तो थोडे समय में कानपुर में खादी के लिए एक अच्छा भण्डार स्थापित हो जायगा। इस योजना के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए , ऐसी विस्तृत योजना बनाने की बात भी सुझाई गई थी कि जिससे प्रान्त के दूसरे शहरों में भी भण्डार खोले जा सकें। पर यह तय हुआ कि इस योजना का फल देखने के बाद उस पर विचार करेंगे।

खादी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वहां के खादी-भण्डार की ओर से सीधे कोई खास काम नही होता। बहुतांश में यह काम खानगी संस्थाओं तथा व्यापारियों की मार्फत होता है। परन्तु खादी-मण्डल के मन्त्री इन संस्थाओं इत्यादि के साथ पत्र-व्यवहार करके तथा जहां जरूरी हो वहा खुद जाकर उनके काम से परिचय रखते है तथा भरसक सहायता दिलाने का प्रयत्न करते है। इसके अलावा वे इस उद्योग से सम्बन्ध रखनेवाली तमाम बातों का अध्ययन करते है और कानपुर में खद्दर नामक हिन्दी पत्र में लेख आदि के द्वारा ठीक सहायता कर रहे हैं।

वड़े पैमाने पर केवल खादी की ही उत्पत्ति तथा बिक्री आदि का काम करनेवालों में बनारस आश्रम का स्थान सबसे पहला है। इस संस्था की मार्फत कोई २० विद्यार्थी काम करते है। उनमें कितने ही पहले हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। परन्तु असहयोग करके काशी विद्यापीठ मे भरती हुए और वहां आचार्य कृपलानी के समागम में आकर उनकी प्रेरणा से उन्होंने खादी कार्य शुरू किया। इनको इस काम के लिए महासभा की कार्य-समिति की ओर से १५०००) मिले है। इसके अलावा इस संस्था के कार्यकर्त्ताओ के खर्च के लिए पृथक प्रवन्ध है। इस संस्था की तरफ से फिलहाल तीन जगह काम हो रहा है। एक अकबरपुर (फैजावाद), दूसरा रानीगंज (वलिया) और तीसरा सैदपुर (वलिया)।

अकबरपुर—इस जगह कातनेवालियों को रुई देकर वदले में या रुपया देकर सूत खरीद लिया जाता है। सूत का अंक साधारणतः ८ से १२ तक होता है। सूत वही के जुलाहों से बुनाया जाता है। इस तरह अभी वे हर माह कोई १५००) रुपये की खादी तैयार कराते है। धीरे-धीरे वढ़ाकर साल के अन्त में २५००) तक ले जाना चाहते हैं। खादी की बुनाई में भी पिछले दो सालों में अभिनन्दनीय परिवर्तन हुआ है। वहां लम्वे अर्ज का कपड़ा ठींक भाव में बुना जाता है। और बुनाई में भी सुधार होता हुआ दिखाई देता है। यदि वहां की उत्पत्ति २५००) तक पहुंच जायगी तो इस स्थान का खर्च इस खादी में से ही निकलने लगेगा। सेठ जमनालाल जी आचार्य कृपलानी के साथ वहां गये थे और उन्हें वहां के काम से सन्तोप हुआ था।

रानीगंज और सैदपुर—रानीगंज में काम शुरू हुए अभी थोड़ा ही समय हुआ है। वहां अभी वे सूत ही तैयार कराते है। प्रतिमास ६००) से ९००) का सूत आता होगा। यह सूत सैदपुर भेज कर वुनाया जाता है। रानीगंज में भी जुलाहे तो हैं, पर अभी उनके द्वारा बुनवाने की तजवीज नही हो पाई है। अपनी पैदा की हुई खादी को वेचने के लिए इस संस्था की ओर से वनारस मे एक भण्डार खुला हुआ है। उसमें मासिक विक्री कोई ७०० की होती है। शेप माल आश्रम के मुख्य केन्द्र वनारस से दूसरे भण्डार तथा व्यापारी आदि ले आते है। इस संस्था की तरफ से तैयार हुई खादी के विकने में कोई दिक्कत नही होगी।

इस संस्था के कार्यकर्त्ताओं की संख्या देखते हुए उनका काम कम मालूम होता है। पूंजी भी उनके पास काफी है। खादी-कार्य के लिए महासभा की कार्य-समिति की तरफ से मिले १५०००) के अलावा गुजरात प्रान्तिक समिति की ओर से भी ५०००) ऋण मिला है। फिर उनके लिए कपास जमा करने की व्यवस्था भी अ० भा० खा० मण्डल ने की है। सो आर्थिक कष्ट उन्हे किसी प्रकार का नही है।

खोज करने पर उनके काम की कमी का कारण यह मालूम होता है कि जो जगहे उन्होंने काम करने के लिए पसन्द की है वहां बड़े पैमाने पर काम करने की काफी अनुकूलता नही है। अकबरपुर में यदि वे अपनी धारणा के अनुसार काम कर सकें तो हर साल २५०००) का माल तैयार हो सकता है। रानीगंज में काम शुरू करने के पहले उन्होंने बनारस के नजदीक धरौरा आदि गावों में काम किया था। परन्तु वहां काफी सूत न मिलने से उन गांवों को छोड़ देना पड़ा। रानीगंज में काम कोई दो महीने से शुरू हुआ है। वहां सूत भी ठीक परिणाम से मिलता हुआ दिखाई देता है। फिर भी सूत १०००-१५००) से अधिक का नही आ सकता। अर्थात् साल भर में २००००) की खादी उत्पत्ति मानी जा सकती है। इस संस्था की पूंजी तथा कार्यकर्त्ताओं की शक्ति का विचार करते हुए इससे प्रायः दूना काम होना चाहिए। और उनके लिए ऐसी अनुकूल जगहें खोज निकालने की जरूरत है जिससे उनकी शक्ति का पूरा उपयोग हो सके। इस सिलसिले में इस संस्था के विद्यार्थियो के साथ पं० जवाहरलाल जी तथा आचार्य कृपलानी जी ने बात-चीत की थी। उसके फलस्वरूप विस्तृत रूप में काम करने योग्य अनुकूल स्थान खोज कर वहां काम शुरू करने का निर्णय हुआ था। श्री कृपलानी जी के गुजरात विद्यापीठ में आ जाने के बाद विद्यार्थियों को सलाह और सहायता देनेवाला कोई न रह गया था। इससे भी कठिनाइयां उपस्थित होती थी। परन्तु अब पं० जवाहरलाल जी ने उन्हें पूरी-पूरी सहायता देने का वचन दिया है। और विद्यार्थियों ने भी उनकी सहायता से पूरा लाभ उठाकर उनकी रहनुमाई में ही काम करने का निश्चय किया है। अतएव यह आशा की जा सकती है कि इस साल काम सन्तोषजनक दिखाई देगा।

गांधी-आश्रम के इन स्थानों के अलावा और भी एक-दो जगह खादी का काम ठीक-ठीक होता हुआ मालूम होता है। कासगंज स्टोर के मालिक तथा महोबा में श्री शंकरलाल जैन खादी का काम ठीक मात्रा मे कर रहे है। ये दोनों महाशय पहले खादी का ही काम करते थे। पर अब वे कुछ समय से खादी के साथ दूसरे कपड़ों का भी काम करते है। दोनों से अनुरोध किया गया है कि वे दूसरे कपडे को छोड़कर सिर्फ खादी का ही काम करें। वे इस पर विचार कर रहे है। यदि वे इसके अनुकूल निर्णय कर सके तो उनके द्वारा ठीक मात्रा में खादी तैयार कराई जा सकती है। इन दो जगहों के अतिरिक्त चीरगांव में भी वहां की महासभा समिति के मन्त्री के प्रयत्न से खादी बनती है। वहां का काम देखने पर यदि ठीक ढंग से चलता मालूम हुआ तो उन्हे उचित सहायता देने की तजवीज हो सकेगी।

युक्त-प्रान्त के खादी-मण्डल की इच्छा है कि वहा खादी-उत्पत्ति विशेष मात्रा में करने की व्यवस्था होनी चाहिए। और इस विषय में भी इस बार कुछ पूछताछ

की गई थी। युक्त-प्रान्त के बहुतेरे जिलों में खादी-कार्य के लिए थोड़ी-बहुत अनुकूलता हुई है। परन्तु इनमें से एक-दो ऐसे स्थान ले जहा विशेष अनुकूलता हो और जहा बडे पैमाने पर खादी-कार्य हो सके और वहां अ० भा० खादी-मण्डल की तरफ़ से काम शुरु हो तो अच्छा। इस सम्बन्ध मे भी चर्चा हुई थी। बुन्देलखण्ड का नाम सुझाया गया था और इसलिए बांदा जाकर वहा कुछ पूछताछ की गई थी। उससे इतना तो मालूम हुआ कि इस भाग में खादी ठीक मात्रा में उत्पन्न हो सकती है। परन्तु विशेष ब्यौरे की आवश्यकता मालूम होने से वहां के एक सज्जन श्री लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री के साथ गाधी-आश्रम के एक अनुभवी विद्यार्थी श्री राजाराम को वहां जाकर खोज करने का भार सौंपा गया है। इसी तरह गोरखपुर मे भाटपार रानी तथा उसके आसपास के देहात में भी खादी-काम के लिए कितनी अनुकूलता है, इसकी जांच करने का काम वहां के खादी-प्रेमी श्री महावीरप्रसाद पोद्दार ने अपने जिम्मे ले लिया है। यदि वहां काम शुरू किया जाय तो इन्होने आर्थिक सहायता देने का भी वचन दिया है। इस जाच के फलस्वरूप यदि अनुकूल क्षेत्र मिल जायगा तो वहा वड़े पैमाने पर काम करने की तजवीज हो सकेगी।

युक्त-प्रान्त की इस यात्रा मे यह आशा थी कि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा पण्डित जवाहरलाल नेहरु दोनों का साथ होगा, परन्तु पुरुषोत्तमदास जी को हिन्दू महासभा के काम के लिए कलकत्ता जाना था, सो वह हमारे साथ न आ सके। फिर भी उन्होने भविष्य में इसके लिए भरसक सहायता देना स्वीकार किया है। पं० जवाहरलाल तो सारे सफ़र में हमारे साथ रहे और उन्होंने सब तरह से खुद सहायता दी। खादी-सम्बन्धी उनके प्रभावशाली भाषणो तथा चर्चाओं से ऐसा मालूम हुआ कि वे अन्य राजनीतिक बातो के सदृश ही खादी में दिलचस्पी लेते है। आगे भी आपने खादी-मण्डल को पूरी-पूरी सहायता देने का वचन दिया है। इनकी सहायता से आशा है कि संयुक्त-प्रान्त मे खादी-काम सन्तोष-जनक रीति से आगे बढ़ सकेगा।
—हि० न० जी०, ३०।४।१९२५।]

१०. कानपुर

कानपुर जाते हुए हम लोग भुसावल से श्रीमती सरोजनी देवी के साथ हुए। हमें यह समाचार तो पहिले ही से मिल गया था कि कानपुर मे कुछ थोड़े-से मनुष्य श्रीमती के अध्यक्ष होने के विरुद्ध हैं। और वे उनके स्वागत को हानि पहुंचाने के लिए प्रयत्न कर रहे है। हम लोग यही सोच रहे थे कि यदि उनके प्रयत्न सफल हो

गये तो कैसा कलंक लगेगा। लेकिन सरोजनी देवी तो इसके लिए तैयार होकर आई थी। उन्होने स्वयं यह बात छेड़ी और मुस्कराते हुए कहा—"मुझे बहुत से पत्र कम्युनिस्टों (वसुधैव कुटुम्बवादियों) के मिले है। वे लिखते है कि हम लोगों को आप से कोई झगड़ा नही है लेकिन आप अपना धर्म भूल गई है और कास्मोपोलिटन बन गई है। यह हम लोगों को पसन्द नही है। और इसलिए हम लोग आपका स्वागत न करेगे। गरीब बेचारे! उन्होने काले झण्डे भी तैयार रखे है। उन्हें देखने में बड़ा आनन्द आयेगा। पद्मजा तो यह तमाशा देखने के लिए ही साथ आई है।" लेकिन सरोजनी देवी या उनकी लड़की किसी को भी, यह देखने का मजा न मिला और हम लोगों को भी यह कष्टप्रद अनुभव न हुआ। लोगों की भीड़ का, शहर की सजावट का और उनके उत्साह का कोई हिसाब नही था। लेकिन इतना अवश्य कह देना चाहिए कि हमारे इतिहास की इस असाधारण घटना—महासभा का अध्यक्ष एक स्त्री का होना—देखकर भी इस प्रान्त की स्त्रियां पर्दा छोड़कर बाहर न निकली। बाहर या मण्डप में थोडी सी ही स्त्रियां थीं।

०　　　०　　　०

व्यवस्था—रहने-धरने की, खाने-पीने की, सफाई की—अच्छी कही जा सकती है। रसोई-सम्बन्धी व्यवस्था तो इतनी अच्छी थी कि पहिले की जितनी भी महासभाएं देखी है उनमे किसी में भी वैसी व्यवस्था न दिखाई देती थी। हां, केगाव की सफाई कुछ अंशों मे बढ़कर अवश्य थी। और यह सब एक ही मनुष्य के उत्साह का फल था। फूलचन्द जैन नामक एक व्यापारी है; वह लोहे का व्यापार करते है। उनकी नम्रता की कोई सीमा नही है। उनको देखकर कोई भी उन्हें लक्षाधिपति न समझेगा, वरं सामान्य मजदूरी करके पेट भरनेवाला ही समझेगा परन्तु रसोई के मद की आय मे खर्च से जितनी भी कमी थी उसे अपनी तरफ से पूरा करना स्वीकार करके उन्होंने अपनी ही देखरेख मे सारी व्यवस्था की थी; न कभी उनका महासभा देखने के लिए दिल चला और न कभी प्रदर्शन देखने के लिए। वह तो अपने ही काम में लगे रहते थे। उन्होंने शहर में से ही परोसनेवालों का एक बड़ा संघ खड़ा किया था और जो लोग भोजन करने के लिए आते थे उन्हें इतने प्रेम और आग्रह के साथ भोजन कराते थे मानो वह अपने घर ही पर उन्हें खाना खिलाते हों। परोसनेवालों के प्रेम को देख कर उनके मैले वस्त्रों को भी थोड़ी देर के लिए भूल जाने का दिल होता था।

स्वयंसेवकों की सेना ने भी अच्छा कार्य किया था। उनमें बहुत से तो सारी रात जागते थे। वे सब बराबर समय पर काम पर आते थे और समय पर ही

जाते थे। मेहतरों का खाता भी वडा आकर्षक था---दूसरी महासभाओं से भी अधिक क्योंकि यहां पर संयुक्तप्रान्त का विनय और विवेक था---मैले पर धूल भी वे ही डाल आते थे। उनके बारे में इतना कहकर एक त्रुटि भी कह सुनाऊं? यह सब स्वयंसेवकों पर लागू नही होती है। शायद दो-तीन स्वयंसेवकों का ही कसूर होगा लेकिन उनके लाभ के लिए ही वह उल्लेख योग्य है। मुझे एक बीमार को प्रदर्शन मे से उठा कर दूसरी जगह पर ले जाना आवश्यक था। उसको सख्त न्युमोनिया हो गया था। डाक्टर ने फौरन ही उसे वहां से हटा कर ले जाने के लिए ताकीद की थी। रेडक्रास वाले स्वयंसेवको का यह कार्य था। डाक्टर तो वेचारे फौरन ही वाहर निकले लेकिन रेडक्रासवाले कही दिखाई न देते थे। खोजने पर वहुत से मण्डप में मिले। डाक्टर ने उन्हें सूचना की कि वे फौरन ही "स्ट्रेचर" लेकर चलें। उन्होने जवतक संगीत न हो जाय वहां से निकलने से इन्कार किया। डाक्टर ने कहा ---"ये लोग यह नही समझ सकेगे कि यह कार्य कितना आवश्यक है। ये तो सगीत सुनकर ही बाहर निकलेगे।" यह तो केवल इने-गिने प्रसंगों में से एक है। मै फिर यह कहता हूं कि टीका करने के लिए मैने इस प्रसंग का यहां उल्लेख नहीं किया है। ऐसे कार्य जिन स्वयसेवकों को सौपे जाने हैं उन्हें तो सतत जाग्रत रहने के लिए और अच्छे-से-अच्छे संगीत को या अद्भुत भाषण होते हों तो उनका भी त्याग करने के लिए तैयार ही रहना चाहिए। स्वयंसेवक में आदर्श पुलिस की कर्त्तव्यवुद्धि और त्वरा होनी चाहिए और पुलिस मे जो नही पाया जाता है उतना ज्ञान और प्रेम होना चाहिए।

० ० ०

लेकिन अव हम महासभा में प्रवेश करे। व्यवस्था इत्यादि को देखकर जितना आनन्द हुआ उतना आनन्द महासभा का काम देखकर भी हुआ, यह कैसे कहा जा सकता है? 'कानपुर की महासभा' यह शीर्षक इस लेख को देते समय थोड़ी देर के लिए यह खयाल हुआ कि "कानपुर का दीवाने खास" यह शीर्षक उसका रक्खा जाय तो क्या बुरा है?

इस समय महासभा मे प्रतिनिधियों की फीस एक रुपया रक्खी गई थी जिससे गरीव लोग कम आ सकते थे, फिर भी वहुत से गांवों के रहने वाले लोग आये थे। खादी-प्रदर्शन का आकर्षण भी कुछ कम न था। इसलिए आम वर्ग के लोगों की वड़ी भीड़ थी, फिर भी यही मालूम होता था कि इस वर्ष से महासभा आम वर्ग की न रहकर खास वर्ग की ही हो रही है।

इसके कारणों की परीक्षा करें। प्रथम तो अध्यक्ष के व्याख्यान ही को लें। महासभा के सभापतियो के व्याख्यानो मे शायद यही सवसे छोटा व्याख्यान कहा

जा सकता है, और सरोजनी देवी ने जिन्हें अपना व्याख्यान लिखने की आदत ही नही है इतना छोटा सा भी अपना व्याख्यान किस प्रकार लिखा होगा, यही आश्चर्य होता है। इस छोटे से व्याख्यान में भी उनका वाग्वैभव परिपूर्ण था। लेकिन वह वाग्वैभव किसके लिए था? जनता के लिए? उत्तर में "हा" नही कहा जा सकता। मेरे लिए भी उनके व्याख्यान का अनुवाद करना मुश्किल काम है और जनता के लिए तो उसका अच्छा अनुवाद भी समझना मुश्किल होगा। श्रीमती उर्दू अच्छा बोल सकती है—एक दो दफा तो मैने उन्हें उर्दू बोलते हुए सुना भी है—लेकिन कानपुर में न उनके व्याख्यान की हिन्दी या अंग्रेजी नकल बांटी गई और न स्वयं उन्होंने ही उर्दू में अपना व्याख्यान दिया। यदि कोई कहे कि घण्टे-डेढ़ घण्टे बोलने के बाद उनसे उर्दू में बोलने की आशा रखना जुल्म है तो मैं उससे यह कहूंगा कि अंग्रेजी में बोलने के बदले वे उर्दू में ही बोली होतीं तो यह बात उनको बड़ी शोभा देती।

यह तो अध्यक्ष के व्याख्यान की बात हुई। अब रहे प्रस्ताव। दो-तीन प्रस्तावों के सिवा ऐसे प्रस्ताव नही थे जिनमें जनता को दिलचस्पी हो। अंग्रेजी व्याख्यानों का ही आधिक्य था। जो प्रस्ताव चर्चा का केन्द्र बन बैठा था, उसकी भाषा मेरे जैसे को भी समझनी मुश्किल थी तो फिर वे पढे-लिखों का तो वहा ठिकाना ही क्या लग सकता था? और जहां प्रस्ताव की भाषा ही मुश्किल और बेढब थी वहां उस पर की गई चर्चा के मुश्किल होने के बारे में पूछना ही क्या था?

० ० ०

ऊपर जो मैं यह कह गया हूं कि आम लोग जिसमें दिलचस्पी ले सकते है ऐसे दो-तीन ही प्रस्ताव थे। उनमें से प्रथम तो दक्षिण अफ़्रीका के बारे में था और वह भी गाधीजी के व्याख्यान से पेश किया गया था। इसलिए दूसरा पटना के प्रस्ताव मे बदले गये मताधिकार को कायम रखने का प्रस्ताव और तीसरा महासभा का और उसके अधीन काम करनेवाली संस्थाओं का सब काम-काज हिन्दुस्तानी या अपने प्रान्त की भाषा में ही करने का प्रस्ताव।

दक्षिण अफ़्रीका के प्रस्ताव का सार यहां दिये देता हूं। वहां रहने वाले हिन्दुस्तानियों को वहां से निकाल देने की पैरवी करनेवाला कानून पास न हो जाय इसलिए महासभा ने दो-एक उपाय बताये है। प्रथम तो यह कि स्मट्स और गांधीजी के बीच १९१४ मे जो समझौता हुआ था और जिसमें दक्षिण अफ़्रीका की सरकार ने यह स्वीकार किया था कि हिन्दुस्तानियों की तकलीफें बढ़ें, ऐसा एक भी कानून वह न बनायेगी, उसका अनेक बार भंग हुआ है। फिर भी यही कहा जाता है कि भंग

नही हुआ है इसलिए उसका दरअसल भंग किया गया है या नही, यह जांच करने के लिए एक पच नियुक्त किया जाय अथवा जिसमे दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों के प्रतिनिधि भी हों ऐसा एक गोलमेज सम्मेलन किया जाय। यदि इन दो मे से एक भी वात न हो सके तो ब्रिटिश सल्तनत का फर्ज है कि वह दक्षिण अफ्रीका के वायसराय के नाम यह हुक्म भेजे कि उस कानून पर वह वादशाह की तरफ से स्वीकृति के हस्ताक्षर कदापि न करे। इन तीनों वातों में से यदि कुछ भी न किया जाय तो उसके विरुद्ध जो लड़ाई लड़ी जायगी उसमें हिन्दुस्तान की तरफ से पूरी मदद की जाय। पूरी मदद करने से क्या मतलव हो सकता है, यह गांधीजी ने अपने हिन्दी में दिये गये व्याख्यान में अच्छी तरह समझाया था। "यह प्रस्ताव करके आप लोग सो न जाना। आप लोगों को यह विश्वास होना चाहिए कि जो करना चाहिए वही आप करेंगे। स्वराज्य दल को भी यह निश्चय कर लेना चाहिए कि प्रस्ताव में जो सूचनाएं की गई हैं उनको यदि वे सरकार से स्वीकार न करा सकें तो युद्ध के लिए देश को तैयार करना होगा और महासभा भी यह निश्चय करे कि यदि दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह किया जाय तो उसकी मदद की जाय। इतना ही नहीं यहां पर हम लोग भी सत्याग्रह करें। यह नही कि केवल वोरसद के महसूल के खिलाफ, या नागपुर मे किये गये राष्ट्रीय झण्डे के अपमान के लिए ही सत्याग्रह करना चाहिए, किन्तु दूर विदेशों में पड़े हुए अपने भाइयों के लिए भी हमें सत्याग्रह करना चाहिए। आज ही यदि मैं देश का वातावरण वदला हुआ पाऊं और मुझे यकीन हो जाय कि हिन्दू-मुसलमान अपना पागलपन छोड़ कर एक हो गये हैं और यह समझने लगे है कि दक्षिण अफ्रीका में हिन्दू-मुसलमानों दोनों का एक-सा अपमान हो रहा है और वे मुझे अपनी तरफ से यह पैगाम भेजें कि हम लोग तैयार हैं, सत्याग्रह करो तो मैं कहता हूं कि आज यद्यपि मै मुर्दा-सा मालूम होता हू फिर भी यह युद्ध करने के लिए फिर जिन्दा हो जाऊंगा।"

० ० ०

दूसरा प्रस्ताव पटना के प्रस्ताव को कायम रखने का था। उसमें यह कहा गया था कि महासभा के सभ्य वनने के लिए या तो २००० गज सूत का चन्दा या या चार आना देना चाहिए और महासभा के कार्यप्रसंगों पर शुद्ध खादी ही पहननी चाहिए, यदि कोई शख्स हमेशा शुद्ध खादी न पहन सके तो उसे कम से कम विदेशी कपड़ा तो पहनना ही नही चाहिए। इस मताधिकार के प्रस्ताव मे जो खादी रक्खी गई थी वह कुछ लोगो को पसन्द न थी। इस पर वड़ी चर्चा हुई। महाराष्ट्रीय उसके विरुद्ध थे और दूसरे भी दो-चार होगे। यह प्रस्ताव महासमिति मे केवल थोड़े से

मनुष्यों का ही विरोध होने मे पास हो गया था। महासमिति में इस प्रस्ताव को पेश करते हुए गांधीजी को कुछ सख्त शब्द कहने पड़े थे—

"बाबा साहेब परांजपे और श्री साम्बमूर्ति ने मुझे यह प्रस्ताव लौटा देने के लिए कहा है। मैं किस अधिकार से उसे लौटा दूं? यह तो केवल एक संयोग ही है कि उसे पेश करने का भार मुझ पर आ पड़ा है। वैसे यह तो कार्य-समिति का प्रस्ताव है। और मुझ से 'अपील' क्यों करते हो? यह मुझे भी शोभा नही देता और आपको भी शोभा नही देता। मै कौन? मुझे भूल जाइए—यदि आप लोग लोकतन्त्र को चाहते है तो छोटे-बड़े का ख्याल छोड़ दो, प्रस्ताव की योग्यता का ही विचार करो। और मुझे आप किस बात को लौटा देने का आग्रह कर रहे है? मेरे दिल में गहरे से गहरे बैठे हुए मेरे जीवन-सिद्धान्तों को?

"श्री जयकर और केलकर ने भी इसका विरोध किया है। आप लोग यह भूल जाते है कि मताधिकार का आधार ध्येय पर होता है। फलां बात कठिन है—मुश्किल है इसलिए क्या हम लोग उससे भाग जायेंगे? हम लोगों के लिए स्वराज्य प्राप्त करना ही मुश्किल है तो फिर उसकी बात ही क्यों नही छोड़ देते हो? यदि मुझे इस बात का यकीन हो जाय कि महासभा के एक करोड़ सदस्य हो जाने पर स्वराज्य मिल जायगा तो मैं चार आने का चन्दा भी निकाल दूंगा, उम्र का ख्याल भी छोड़ दूगा और कोई शर्त न रखूंगा। जो कुछ कार्य अब तक किया गया है उस पर यदि पानी फिराना है तो यह प्रस्ताव क्यों नही लाते कि जो चाहे महासभा मे दाखिल हो सकता है। लेकिन भाई, महासभा के लिए जो जरा भी मेहनत करने के लिए तैयार नही है उसे क्या महासभावादी कहलाने में शर्म न मालूम होगी। यदि आप लोगों को विदेशी कपड़े का बहिष्कार स्वीकार है तो मिलों के कपड़े का खयाल ही छोड़ दो। मै मिलों वाले प्रान्त मे से ही आता हूं। मेरा मिलवालों के साथ का सम्बन्ध बड़ा अच्छा है लेकिन मै यह जानता हूं कि वे देश की कठिनाइयों के समय उसका कभी साथ नही देते है। वे तो साफ-साफ यही कहते है कि वे देश-प्रेमी नही है, उन्हें तो धन इकट्ठा करना है। यदि सरकार चाहे तो सभी मिले बन्द करा सकती है, बाहर से यन्त्रों का हिन्दुस्तान मे आना ही रोक सकती है लेकिन सरकार की यह सामर्थ्य नही कि वह हमारे चर्खो को और तकली को जला दे। एक जर्मन इंजीनियर को यहां आते हुए उसने रोका था। मुझे अंग्रेजों के स्वभाव के सम्बन्ध में विश्वास है—जिस प्रकार मनुष्य स्वभाव में विश्वास है उसी प्रकार, लेकिन अंग्रेज की यह विशेषता है कि वह अपने देश का हित पहले देखेगा और लंकाशायर को जीवित रखने से ही और हिन्दुस्तान में उसकी इच्छा के विरुद्ध अपना रद्दी माल खाली करने से ही वह हित-रक्षा हो सकती है। इस अंग्रेज के साथ लड़ने में खून का पानी करना होगा,

पानी। स्वराज्य कोई खेल नही है—स्वराज्य कोई सस्ती चीज नही है। वह तो सिर देकर प्राप्त करने योग्य बड़ी मुश्किल से प्राप्तव्य वस्तु है। आज आप लोग मेरा विरोध कर सकते है लेकिन अब ऐसा समय आने ही वाला है जब आप सब लोग यही कहेगे कि जो गाधी कहता था वही सत्य है। इसलिए जबतक इस मामले में मेरे पक्ष में बहुमत है तबतक मै आप लोगों से यह प्रार्थना करता हूं कि इतना जरा-सा त्याग करना पड़ता है इसलिए उसे न ठुकराओ।

"और हम लोग ऐसा विश्वास क्यों न रखें कि लोग अपने किये हुए प्रस्तावों का पालन करेगे ? हां, यदि आपको खादी पहनने में सिद्धान्त का उज्र हो अथवा उससे आपके धर्म को हानि पहुंचती हो तो आप लोगों को महासभा छोड़ देनी चाहिए। लेकिन महासभा में रहकर आप महासभा के प्रस्ताव का अनादर नही कर सकते। जबतक मै महासभा में रहता हूं तबतक मेरे पक्ष में बड़ा अल्पमत हो तो भी मुझे प्रस्ताव का पालन तो करना ही चाहिए।

"और आप बहुमत के जुलम की बातें कर रहे है। थोड़े से मनुष्य आप लोगों पर अपनी इच्छा के अनुसार अधिकार चला रहे हैं और उनके जुलम का तो आपको खयाल तक नही ; और सच्ची बात के खिलाफ जुदे-जुदे उज्र पेश करना हम लोगों को आता है। मै आप लोगों को यह जताये देता हूं कि यदि आप खादी को विदा देंगे तो लोग भी आप लोगों को विदा कर देंगे; नरमदलवालो के साथ तुलना करने पर आप लोगों में कोई विशेपता ही न रहेगी। हम सब बड़े अजीब लोग हैं क्योंकि हम स्वयं खादी न पहनते होंगे तो भी नेताओं से तो हम खादी पहनने की ही आशा रक्खेगे। बाबा साहब के बराबर मैंने लोक-सेवा न की होगी लेकिन मेरी दस साल की सेवा मे मैं उनकी नस-नस को अच्छी तरह समझ गया हूं और उनको जानकर ही आपसे यह कहता हूं कि खादी को छोड़ कर आप लोग कुछ भी फायदा न उठायेंगे।"

० ० ०

अब रहा हिन्दुस्तानी भाषा का तीसरा प्रस्ताव। महासभा के विधि-विधान में एक ऐसा मूल प्रस्ताव है कि हिन्दुस्तानी भाषा महासभा की भाषा रहेगी लेकिन जहां आवश्यकता मालूम हो वहां अंग्रेजी का भी इस्तेमाल किया जा सकता है, इस वाक्य से उसका महत्व कम होता था। इसमे यह सुधार करना सूचित किया गया कि महासभा का सब काम-काज हिन्दुस्तानी भाषा मे या प्रान्त की भाषा में ही किया जाय, और जो हिन्दुस्तानी न बोल सकता हो, वही लाचार होकर अंग्रेजी बोले। यह प्रस्ताव जब महासमिति में पेश किया गया उसका जिस प्रकार विरोध हुआ उससे मेरी इस टीका को कि 'महासभा दीवानेखास होती जा रही है" अधिक

पुष्टि मिलती है। इसके विरुद्ध अनेक दलील दी गई, बहुत से लोगों ने तो इसमें जबरदस्ती भी देखी। बहुतेरे लोगों को तो यही खयाल हुआ कि महासभा के दरवाजे वन्द करके बुद्धिमान वर्ग को निकाल देने की यह तरकीब है। एक बार जब मत लिये गये तो इस प्रस्ताव पर ५८ तथा विरुद्ध ५० मत मिले। उस पर फिर से चर्चा करने का अवसर दिया गया—केवल सरोजिनी देवी की भलमनसाहत का ही यह परिणाम था। इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए किसी ने तेलुगु में तो किसी ने मराठी में व्याख्यान दिये लेकिन आखिर को दुबारा मत लेने पर ६१, विरुद्ध ६८ मत से यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इसलिए फिर महासभा में इसका विरोध करने के लिए एक दो व्यक्तियों ने नोटिस दी। लेकिन श्रीमती सरोजिनी देवी ने निरर्थक वात करनेवालो को अवसर न देने के लिए उसे अध्यक्ष स्थान से स्वयं ही पेश किया था।

ये तो सामान्य वर्ग के प्रस्ताव हुए। शेष जो प्रस्ताव हुए उनमें से बहुतेरे विशेष वर्ग के थे। उनमें एक प्रस्ताव धारासभा के कार्यक्रम का था। इस पर जो चर्चा हुई, जो सुधार पेश किये गये, जो सख्त व्याख्यान हुए और शाम तक महासभा में जो युद्ध होता रहा उसे देख यही खयाल होता था कि सब एक दूसरे की बात को तोड़ना चाहते है और दूसरों से अपने को ही बड़ा मान कर वे सब बोल रहे है। लालाजी और मालवीयजी के सिवा और सबके व्याख्यान करीव-करीब अंग्रेजी में ही हुए थे और लालाजी और मालवीयजी के व्याख्यान भी इतने बड़े थे कि सुननेवाले भी सुनते-सुनते थक गये। लेकिन इतनी चर्चा हो जाने के बाद भी प्रतिनिधि गण तो वेचारे पुकार-पुकार कर यही कहते थे कि "भाई साहव, प्रस्ताव और उसके सुधार हम लोगों को कुछ हिन्दी में समझाओ भी तो?" और सब लोग अपनी-अपनी बात के समर्थन में गांधीजी के वचनों का ही उल्लेख करते थे। गांधीजी उस दिन उपस्थित न थे।

एक पक्ष ने अन्य पक्ष को अप्रामाणिक कहा, अन्य पक्ष ने पहले पक्ष को अप्रामाणिक कहा। एक पक्ष ने अन्य को गलत सिद्ध किया, उसने पहले पक्ष को गलत सिद्ध किया—तो अब क्या वाकी रहा? शुद्ध असहयोग? लेकिन यह सूझता किसको था?

इसमें गांधी जी की स्थिति क्या हो सकती थी। उनकी स्थिति तो स्पष्ट थी। पटना के प्रस्ताव को कायम रखने का प्रस्ताव उन्होंने पेश किया लेकिन उस पर मत नही दिया। दूसरे किसी भी प्रस्ताव पर उन्होने अपना मत नही दिया। लेकिन वह स्वराज्य पक्ष के साथ ही रहे थे। महासभा की कार्यकारिणी समिति में भी उन्होंने अपना नाम लिखा जाने दिया था। क्योंकि वह एक ही आशा-तन्तु से उस पक्ष

के साथ बँधे हुए है और वह आशा का तन्तु है खादी और सविनय भंग। इन दो चीजों के कारण उनकी यह श्रद्धा है कि अन्त में थक कर स्वराज्यवादी भी ठिकाने पर आ जायंगे।

० ० ०

गांधी जी ने अपने किसी भी प्रस्ताव पर अपना मत नही दिया था, यह ऊपर लिखा गया है लेकिन उसमें एक अपवाद है। मोतीलाल जी के प्रस्ताव के आरम्भ में यह श्रद्धा प्रकट की गई है कि सविनय भंग ही अन्तिम उपाय है और उसके वाद यह वाक्य है, लेकिन देश उसके लिए आज तैयार नही है यह देख कर इस वाक्य को प्रस्ताव में से निकाल देने के लिए एक सुधार पेश किया गया। उसके पक्ष में ठीक-ठीक मत मिले थे। उसके विरुद्ध थोड़े से ही मत अधिक होगे। इसलिए सुधार पेश करनेवाले भाई ने मत फिर से गिनने के लिए दरखास्त की और श्रीमती नायडू ने उसको स्वीकार किया। उसके पक्ष में अच्छे हाथ ऊचे किये गये—कोई ६८ होगे। यह देख लाला जी घवड़ाये। लाला जी ने कहा कि यदि इसमे हारे तो सारा प्रस्ताव ही वेहूदा मालूम होगा। महात्माजी इस दफा तो हाथ ऊंचा करो, इस प्रार्थना को गांधीजी ने स्वीकार किया और अपनी चादर से हाथ निकाल कर ऊंचा करते हुए, कहा—"देखो यह आपकी खातिर ही हाथ ऊंचा कर रहा हूं।" सव हँस पड़े। दूसरे वहुत से हाथ ऊचे हुए और ८१ विरुद्ध मत से वह सुधार उड़ गया। 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।'

० ० ०

महासभा के काम-काज के सम्वन्ध में एक वात तो मै कह चुका हूं, अव दूसरी वात कहता हूं। हिन्दू-मुसलमान ऐक्य के प्रश्न को सवने आग की तरह समझ कर उसे दूर ही रक्खा था। उस पर चर्चा करने की किसी की भी हिम्मत न पड़ती थी। अभी तो हमें अपने मन के मैल घोने की आवश्यकता है। महासमिति में या महासभा में जितने भी व्याख्यान हुए उनमें से एक मे भी असन्तोप के उद्गार न थे, यह नहीं कहा जा सकता। इसमे से अभ्यंकर-जैसे योद्धा के व्याख्यान को और मौलाना शौकतअली-जैसे थप्पड़ मार कर मुह लाल रखनेवालों के व्याख्यान को हम निकाल दे सकते है। वाकी अन्य सवके व्याख्यानों में गहरे में असन्तोप की ध्वनि छिपी थी, निराशा की नही। व्यापक निराशा ही हो तो महासभा वन्द करनी चाहिए। लेकिन असन्तोप तो था ही। यदि यह असन्तोप 'डिवाइन डिस्कण्टेण्ट" अर्थात् दैवी असन्तोप हो जाय—सुवा प्राप्त किये विना सन्तोप न मानने वाली प्रयत्न-

शाली वृत्ति में उसका परिणाम हो तो आज भी कुछ नहीं बिगड़ा है। महासभा यदि "दीवाने खास" बन रही है तो उसकी जिम्मेदारी भी तो आम जनता पर ही है, यह उन्हें समझ लेना चाहिए। जनता ने—आमवर्ग ने अपना कर्तव्य पालन किया होता तो आज उसे महासभा से निकाल देने की कोई धमकी न दे सकता था। लेकिन आम लोग तो केवल "गांधी जी की जय" पुकारने लगे। उनके सामने एक ही कार्य पड़ा हुआ है विदेशी कपड़े का बहिष्कार। राजकाज छोड़ कर बैठे हुए गांधीजी से वे अब भी कार्य में जितनी सलाह लेना चाहते हो ले सकते है। जिस प्रकार स्वराज्यवादियों को एक साल में अपना काम कर दिखाना है उसी प्रकार वे भी एक वर्ष में अपना काम दिखाकर गांधीजी को युद्ध के लिए बुला सकते है और कह सकते हैं कि "धनुष वाण लो हाथ।"

——महादेव हरिभाई देसाई के लेख से। न० जी०। हि० न० जी०, ७।१।१९२६।]

११. साप्ताहिक पत्र (बनारस)

प्रो० कृपलानी के गांधी आश्रम के सालाना जलसे में शामिल होने गांधीजी बनारस गये थे। हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से भी मालवीयजी ने गांधीजी की कुछ बातचीत कराई। "गाधी आश्रम" की बातें करने के पहले मैं इसी बातचीत का संक्षेप में उल्लेख कर लूगा। शायद गोहाटी के खादी-प्रदर्शन का मालवीयजी पर बहुत असर पड़ा था। उन्होंने गांधीजी से कहा था कि "आप जब कभी बनारस आवे मेरे विश्वविद्यालय के लड़कों को भी खादी का सन्देश सुनाने की कृपा करें।" गांधीजी का भाषण सुनने को कोई दो हजार लड़के एक बड़े शामियाने में इकट्ठे हुए थे। छः साल हुए जब गांधीजी ने उन्हें इससे अधिक विकट सन्देश सुनाया था। इस समय तो उन्होने खद्दर और पवित्रता का सादा सन्देश सुनाया। उन्होंने कहा—"कई ओर से मुझे यह सलाह मिलती है कि आप अपनी बातें सुना चुके। अब आपकी कोई सुनना नही चाहता। खद्दर की बातें करने से आप बाज क्यों नही आते? मगर मैं अपना प्रिय मन्त्र सुनाने से बाज क्यों आऊं? मेरे सामने तो प्राचीन काल के प्रहलाद का उदाहरण है जिसने मरण से भी अधिक कष्ट सहना स्वीकार किया मगर राम नाम छोड़ना नहीं। और मुझे तो अभी कोई कष्ट नही सहना पड़ा है। मेरे कानों में मेरे देश की दुर्दशा का जो एकमात्र सन्देश सुनाई पड़ता है, उसे मै क्योंकर छोड़ दू? पण्डितजी ने तुम्हारे लिए लाखों जमा किये है और अब भी राजाओं-महाराजाओं से लाखों जमा कर रहे है! ऊपरी दृष्टि से तो यह रुपया राजाओं-महाराजाओं से आता हुआ मालूम होता है मगर सचमुच में तो यह इस देश के करोड़ों

गरीवों की ही कमाई है। यूरोप के विरुद्ध हमारे देश में धनिकों का धन गरीवों की गरीबी से बढ़ता है और उनमें से अधिकांश को एक जून भी भर पेट खाना मयस्सर नही होता। इस प्रकार तुम जो शिक्षा पाते हो उसका खर्च चुकाते हैं भुक्खड़ गांव-वाले और उन्हे इस शिक्षा का संयोग स्वप्न में भी नही मिल सकता। यह तुम्हारा कर्त्तव्य है कि वह शिक्षा लेने से इन्कार करो जो गरीवो को भी प्राप्य न हो मगर आज तुमसे मै यह नही मांगता। मैं तुमसे उन गरीवों का जरा सा वदला चुकाने को कहता हू। उनके लिए थोड़ा यज्ञ करो। गीता का वचन है कि जो अपना यज्ञ किये विना खाता है वह अपना भोजन चुराता है। महायुद्ध के जमाने में ब्रिटिश नागरिक जनता से इसकी मांग की गई थी कि हर घर के आंगन में थोड़े आलू वोये जायं और थोड़ी सिलाई हुआ करे। हमारे लिए इस युग का यज्ञ है कि चर्खा चलाना। मैं इसके विषय में दिन-रात वातें करता रहा हूं। लिखता रहा हूं। आज मै और कुछ नही कहूंगा। अगर तुम्हारे दिलों पर गरीवों की इस करुण कहानी का कुछ भी असर पड़ा हो तो तुम कल कृपलानी जी के खादी-भण्डार पर धावा करो और उसमे एक गज भी खद्दर वाकी न छोड़ो और आज अपनी जेवें खाली कर दो। पण्डितजी ने भिक्षाकला मे कमाल हासिल किया है। मैने यह विद्या उन्ही से सीखी है। अगर वे राजाओं महाराजाओं पर कर वैठाने मे उस्ताद है तो मै भी गरीव लोगों की जेवें उनसे भी अधिक गरीवों के लिए खाली कराने में वैसा ही वेशर्म हूं।"

यह तो हुआ उनके वार्तालाप के पहले हिस्से का संक्षेप। दूसरे में पवित्रता के लिए उन्होने जोरदार अपील की। "तुम्हारे लिए लाखों रुपये मांगने, महलों के समान इन मकानों को उठाने मे मालवीयजी का एक मात्र उद्देश्य है देश में मातृ-भूमि की सेवा के लिए खरे जवाहर भेजना जो स्वस्थ और सफल नागरिक होंगे। वह मतलव पूरा न हो सकेगा अगर तुम पच्छिम से आनेवाली हवा में वह चले। वह अपवित्रता की वायु है। यूरोप में कुछ मित्र हैं, वहुत ही कम है, जो इस जहरीली प्रवृत्ति से जवर्दस्त मोर्चा ले रहे हैं। मगर अगर तुम समय रहते चेत न जाओगे तो अनीति की वहिया, जिसका वल दिन पर दिन वढ़ता जा रहा है, तुम्हे वहा ले जायगी। मैं अपनी सारी शक्ति से तुम्हे पुकार-पुकार कर कहता हूं कि "संभलो, चेतो और जलने से पहले ही भाग चलो।"

मालवीयजी ने हृदय-स्पर्शी भाषण में गांधीजी के एक-एक शब्द का समर्थन किया और विद्यार्थियो को गांधीजी की चार मांगें पूरी करने को कहा। वे मांगें हैं: (१) धार्मिक कृत्य के समान नित्य चर्खा चलाना, (२) खद्दर पहनना, (३) कोष मे चन्दा देना और (४) ब्रह्मचर्य-पालन। तीसरी माग का पालन तो तुरन्त

ही हुआ—सभा में बैठे-बैठे ही ८५०) रु० जमा हो गये; औरों के विषय में तो भविष्य ही चल कर बतलावेगा।

९ तारीख, श्रद्धानन्द-दिवस को मालवीयजी और गांधीजी जलूस के साथ दशाश्वमेध घाट पर पैदल गये और वहां स्नान करके स्वर्गीय आत्मा के लिए उन्होंने जलाञ्जलि दी और फिर काशी विश्वनाथ के मन्दिर मे प्रार्थना की। मन्दिर से कुछ ही गज दूर यह जुलूस एक सभा बन गया और महिम्न स्तोत्र (शिव-स्तुति) का पाठ होने लगा। देवदास भाई ने 'राम धुन लागी' कहलाया और गांधीजी ने भाषण किया। उन्होंने स्वामीजी के बलिदान के मुख्य आशय पर जोर दिया यानी आत्मशुद्धि, धर्मशुद्धि, आत्म-संयम के लिए निरन्तर प्रयत्न और उनके जीवन के प्रधान मन्त्र ब्रह्मचर्य पर। हिन्दू महासभा की परिभाषा के अनुसार हिन्दू माने जाने वाले सभी किसी ने यहां तक कि बौद्ध धर्मानुयायी एक जर्मन महिला ने भी विश्वनाथ मन्दिर की प्रार्थना में भाग लिया। मालवीयजी के प्रमाण पर मैं यह कहता हूं कि उसमें अछूत भी दिखाई पड़ते थे।

अब गांधी आश्रम की बात लीजिए। इसका जीवन विघ्न-बाधाओं से परिपूर्ण रहा है। हिन्दू-विश्वविद्यालय छोड़ कर निकले हुए दो सौ विद्यार्थियों को लेकर काशी विद्यापीठ का बनना, उसके बाद लड़कों की संख्या में और भी बढ़ती होकर, देश में उदासीनता की लहर घूमने से फिर बसेरा उजड़ जाना, और इस ज्वार-भाटे के बीत जाने पर उनसे बचे हुए कुछ दृढ़प्रतिज्ञ आत्माओं का खादी-काम में सारी शक्ति लगा देना यही तो इसका इतिहास है। जिस दृढ़ता, निश्चय, इच्छा, साहस और उद्दाम आशा से इन्होंने अपना काम निवाहा है, किसी भी स्वतन्त्रता-समर के सैनिकों के लिए गौरवास्पद है। कोई ४ साल हुए मैं आश्रम में गया था। उस समय आश्रमवासियों को विरुद्ध परिस्थिति से लड़ना पड़ता था। तब मैंने उन्हें अध्यापक कृपालानी की अध्यक्षता में अपना सब काम करते हुए, यहां तक कि बाग के लिए मोट भी खीचते, पाखाना भी साफ करते हुए देखा और वे अपना गुजर करते थे साढ़े सात रुपये महीने पर। उनकी दृढ़निश्चयता की जीत हुई और पहिले जहां वे थोड़ा पढ़ने-लिखने के अलावा अपने आश्रम में ही केवल कताई-बुनाई और थोड़ी बढ़ईगिरी पर ही सन्तोष कर लेते थे, अब उनके कई खादी-केन्द्र है, जैसे धमारा, अकबरपुर, कुलपहाड़, मिल्की और मुजफ्फरनगर। केन्द्रो मे सूत और कपड़े के बदलौवल की पद्धति पर काम होता है और एकाध केन्द्रों में जुलाहो से सीधे खादी ही ली जाती है और जुलाहे खुद पड़ोस में सूत कतवा लेते हैं। कताई और बुनाई पर आश्रम के कार्यकर्त्ता पूरी निगाह रखते है और उनका कार्य-विवरण बतलाता है कि उनकी खादी दिनोंदिन अधिक अच्छी, और सस्ती बनती गई

है। इन आँकड़ों से पिछले पांच साल के काम का थोड़े में अन्दाजा मिल जाता है:

साल	उत्पत्ति (रुपयों में)	विक्री (रुपयों में)
१९२१	४८)	३,०११)
१९२२	४,७५९)	२३,१५६)
१९२३	२३,१२३)	२३,११५)
१९२४	१६,०००)	२१,५७७)
१९२५	३६,१५७)	३२,७९९)
१९२६	६५,३१२)	७१,८०५)

१ गज कपड़े का दाम

चौड़ाई	१९२१	१९२२	१९२३	१९२४	१९२५	१९२६
३६ इंच	९ आने	८ आने	७॥ आने	८ आने	७॥ आने	७॥ आने
४२ इंच			७॥। से ८। आने	८। से ८॥। आने	८॥ से	९। से ८ आने
४५ इंच			९ से ९॥ आने	८॥ से ९॥ आने	८॥ से ९ आने	९॥ से ८॥ आने
४८ इंच				९। से १०॥ आने	९ से ९॥ आने	८॥ से ९ आने

यहां यह बात याद रखनी चाहिए कि हर हालत में दाम की घटती हुई है, कपड़े में साथ-साथ उन्नति होते जाने पर भी। टाऊन हाल मे एक सुन्दर, छोटा प्रदर्शन किया गया था। सालों साल की उन्नति का भारी गवाह तो वहां का प्रबन्ध ही था। विक्री के अंको में दूसरे प्रान्तों से लाई गई खादी के भी अंक शामिल है। इस प्रान्त में तैयार होने वाली खादी के हिसाब से इस प्रान्त के निवासियों का खादी-प्रेम बहुत ही कम है। बनारस का दौरा तब सफल कहा जा सकेगा अगर आश्रम की खादी के लिए लोगों के दिलों में कुछ चाह उत्पन्न हो सकी।

म० दे०

—अंग्रेजी। यं० इं०। हि० न० जी०, २०।१।१९२७। महादेव देसाई का लेख।]

१२. गुरुकुल महोत्सव

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की उत्तमोत्तम कृति गुरुकुल को स्थापित हुए

२५ साल हो गये। इस अवसर पर आकर विद्यार्थियों को आशीर्वचन देने की प्रार्थना गांधीजी से आचार्य रामदेव ने कई महीनों से कर रक्खी थी। स्वामीजी के देहान्त के बाद वहां जाने के वचन का पालन करना तो अब विशेष रूप से कर्त्तव्य हो पड़ा।

हरद्वार स्टेशन पर उतर करके कनखल से होकर चार माइल के रास्ते पर गंगा पार कर के गुरुकुल में जाते हैं। हरद्वार से ही आदमियों की भीड़ की गिनती नहीं थी। ऐसा देखने में लगता था कि मानो किसी धार्मिक मेले में हार के हार लोग जा रहे हों। इस रजत महोत्सव के अवसर पर ही गुरुकुल का पदवीदान समारम्भ भी था। ऐसे पदवीदान के प्रसंग पर विद्यानुरागी आदमी जाते हैं, पर इन यात्रियों में तो कितने ही भोले-भाले आमवर्ग के लोग थे। सहज ही सबके मन में होता था कि, "ये सभी स्त्रियां गाड़ियों में भर-भर कर कहां जाती होंगी? इस नरसमूह को गुरुकुल की ओर खींचनेवाली शक्ति, स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान था। गांधीजी के जाने के कारण भी कितने आये होंगे। जगह-जगह लगी हुई रावटियां और दूकानें महासभा की याद दिलती थी। घास में छाये हुए मण्डप के भीतर की उपस्थिति भी महासभा से कुछ कम न थी।

राजेन्द्र बाबू का भाषण

जिस दिन हम पहुंचे, वह समारम्भ का तीसरा दिन था। उस समय पदवीदान समारम्भ चल रहा था, और आचार्य आशीर्वाद दे रहे थे। इसके वाद राजेन्द्र वाबू ने, अध्यक्ष-पद से अपना भाषण शुरु किया। कोलाहल इतना अधिक था कि उनके आसपास के कुछ लोगों को छोड़ कर और कोई सुन न सकता था। अपने भाषण के आरम्भ में, पाश्चात्य और पौवार्त्य संस्कृति का भेद एक प्रवृत्ति-प्रधान है, दूसरी निवृत्ति-प्रधान बतला कर राजेन्द्र वावू ने अपना स्थान ग्रहण किया। उनका भाषण छपा हुआ था। उसे पढ़ने का आग्रह न रख कर वह, दो ही मिनटों मे बैठ गये। उनके भाषण में से कुछ अंश देता हूं:

"मैं यह नही कहता कि पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को छोड़ दीजिए। पर इस ज्ञान-विज्ञान को लोक-हितकारी वनाना और इसी के अनुकूल मनोवृत्ति रखनी चाहिए। किन्तु जवतक भोग और विलास की प्रवृत्ति उचित सीमा में मर्यादित नही होती, जवतक हम यम-नियम की कठिन साधना से इन्द्रिय-निग्रह नही करते, जवतक त्याग और सेवा से आत्मा को पुष्ट नही करते, इस ज्ञान-विज्ञान को लोक-हितकारी वनाना असम्भव है। हमारे गुरुकुलों और राष्ट्रीय विद्यालयों का यह उद्देश्य होना चाहिए कि आवश्यक ज्ञान-विज्ञान की

चर्चा और लेन-देन के साथ-साथ, आत्म-निग्रह, त्याग और सेवा की दीक्षा दी जाय।"

राष्ट्रीय विद्यालय की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा :

"भारत की कोई भी संस्था भारतीय या राष्ट्रीय कहलाने का हक तभी पा सकती है जब वह अपने विद्यार्थियों को हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत का, जरूरतों का, हीनता और दीनता का, दु:ख-दारिद्रय का अनुभव करावे; जो इस दु:खदारिद्रय को दूर करने, देश की दुर्बलता को हटाने, बिखरी शक्ति का संचय करने का और नवजीवन का मार्ग बतावे, और उस मार्ग पर संकल्प, साहस, दृढ़ता और एकाग्रता के साथ चलने की योग्यता विद्यार्थियों में उत्पन्न करे। सन् १९२१ में हिन्दुस्तान के सैकड़े ९० आदमी गांवों के रहनेवाले थे और १८९१ से १९२१ तक शहरवाले, बस्ती के परिमाण में सैकड़े १ बढ़े है। जो यह हिसाब जारी रहा तो हिन्दुस्तानियों को शहराती बन जाने में तीन हजार साल चाहिए। इसलिए हमें यह बात माननी ही चाहिए कि गांव और गांवो के जीवन को ही आधार मान कर हमे अपनी शिक्षण-शैली का निर्माण करना चाहिए।"

आजीविका के सवाल का विचार करते हुए उन्होंने कहा :—

"हम जानते हैं कि आज बीस-पचीस रुपये की मामूली नौकरी के लिए मैट्रिक्युलेटों और ग्रेजुएटों की सैकड़ों-हजारों अर्जियां पड़ती हैं। यह दावा तो झूठ है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ने से नौकरी मिलती ही है। सरकारी स्कूलों के, सरकारी शिक्षा पद्धति के बड़े-से-बड़े, और कट्टर-से-कट्टर हिमायती से मैं पूछता हूं कि वहां के पढ़े हुए सभी विद्यार्थियों को नौकरी मिल ही जाती है, या उनकी रोटी का सवाल हल हो जाता है क्या ? अगर बात ऐसी न हो तो यह क्यों पूछा जाता है कि राष्ट्रीय पाठशालाओं के—गुरुकुलों के—विद्यार्थियों का आगे चलकर क्या होगा ? अगर दोनों जगहें रोटी का सवाल एक सा ही मुश्किल हो तो फिर किस लिए लोग राष्ट्रीय विद्यालयों को अपनाते नही है ? यहां से तो निकल कर विद्यार्थियों को राष्ट्र-सेवा और समाज-सेवा का अवसर मिलेगा, उधर सरकारी विद्यालयों में रह कर तो सरकारी चक्की चलानी है, सरकार को गुलामी का राज्य बनाये रखने में मदद करनी है।"

मालवीयजी का आशीर्वाद

इसके बाद साधु वास्वानी उठे। उन्होने सभी ओर बैठे हुए श्रोताओं को प्रणाम किया, और प्रणाम करके बैठ गये। इसका भी वैसा ही असर हुआ, जैसा भाषण का होता। इसके बाद पं० मालवीय जी आशीर्वाद देने को खड़े हुए। पण्डित-

जी की बुलन्द आवाज से भला कौन शान्त नही होता ? सारा कोलाहल तुरन्त ही शान्त हो गया। यों कहकर कि, गुरुकुल को जीता रखने के लिए सदा तत्पर रहो और स्वामीजी की विरासत को वढाओ, उन्होंने उपस्थित जनता से व्रत-भिक्षा मांगी। यह भिक्षा और कुछ नही थी, केवल विदेशी वस्त्र के त्याग, खादी-धारण और जहां खादी न मिले, वहां स्वदेशी मिल का कपड़ा पहनने का व्रत था। इस सम्बन्ध में उनका भाषण स्मरणीय था। पर उसे यहा न देकर खादी-प्रदर्शन खोलने के समय के भाषण के साथ ही मैं दूंगा।

इसके वाद, पदवी-प्राप्त स्नातकों को पदवियां और पारितोषिक वगैरह दिये गये। स्वामीजी के खून के बाद, खूनी को बहादुरी से पकड़नेवाले धर्मपाल जी को तीन तमगे मिले। और स्वामीजी को बचाने में अपनी जान जोखम में डालने के लिए उनको ५०० रू० का इनाम भी मिला। पीछे से वह रकम उन्होने गुरुकुल को अर्पण कर दी।

गांधीजी का आशीर्वाद

इसके वाद गांधीजी बोलने को उठे। थोड़ी देर तक तो कुछ भी कोशिश करने पर उनकी आवाज लोगों तक पहुँचती ही नही थी। गर्म पानी पिया, तव जाकर आवाज कुछ सुधरी। यह भाषण कुछ विस्तार से देता हूं :—

"आज तो मेरे मन में ऐसा होता है कि सावु वास्वानी के जैसे मैं भी प्रणाम करके वैठ जाऊं। पर यों हर किसी की नकल हर कोई नहीं कर सकता। अनुकरण भी स्वाभाविक होना चाहिए। इससे मुझे तो जो कहना है, वह मै कहूंगा।

"स्वामीजी का देहान्त हुआ ही नही है। देहान्त तो तव होगा, जव हम उनकी सच्ची देह को मिटाने की कोशिश करेंगे, अगर्चे सच्ची वात तो यह है कि हमारी कोशिश से भी उनकी देह का नाश होने को नही है—जवतक यह गुरुकुल कायम है, जवतक एक भी स्नातक गुरुकुल की सेवा करता है, तवतक स्वामीजी जीते ही है। स्वामीजी का शरीर तो किसी दिन गिरने को था ही। पर स्वामीजी का सवसे वड़ा काम गुरुकुल है, उन्होंने अपनी सारी शक्ति इसमें लगा दी थी; इसे पैदा करने में उन्होंने अधिक-से-अधिक तपश्चर्या की थी। तुमने सत्य की प्रतिज्ञा ली है। अगर तुम अपने वचन का पालन करोगे तो किसी का मकदूर नही कि वह गुरुकुल को मिटा देवे।

"पर गुरुकुल को चिरस्थायी रखने के लिए, उस वीरता, ब्रह्मचर्य और क्षमा की जरूरत है, जो हमने उनके जीवन में देखी। वीरता का लक्षण क्षमा, और ब्रह्मचर्य और वीर्य का संयम है। वीरता और वीर्य की रक्षा से तुम देश और धर्म

की पूरी-पूरी रक्षा कर सकोगे। मैं जानता हूं कि यह काम मुश्किल है। तुम्हारे यहां के बहुत से विद्यार्थियों के पत्र मेरे पास पड़े हुए है। कोई मेरी स्तुति करता है, तो कोई गाली देते है। स्तुति तो नाकाम चीज है। उसका असर मेरे ऊपर नही होता। परन्तु जब विद्यार्थी चिढ़ कर गाली देते है तो मुझे चिन्ता होती है क्योंकि क्रोध से वीर्य का नाश होता है। स्वामीजी के सामने मैंने ब्रह्मचर्य की अपनी व्याख्या रक्खी थी और वह मेरे साथ सम्मत थे। किसी स्त्री का मलिन स्पर्श न करने में ही ब्रह्मचर्य नही होता। हां, ब्रह्मचर्य वहाँ से शुरू जरूर होता है। पर क्षमा की पराकाष्ठा ब्रह्मचर्य का लक्षण है। पिछले साल स्वामीजी जब टंकारिया से पीछे लौटते समय मुझे मिलने गये थे तो उन्होंने मुझसे कहा कि 'हिन्दू धर्म की रक्षा नीति से ही सम्भव है।" अगर तुम वैदिक आचार और विचार की रक्षा करना चाहते हो तो तुम यह वस्तु याद रक्खो कि तुम्हें पग-पग पर रुपये मिल जायंगे, मगर ब्रह्मचर्य का नीति का पाया यहां पर न होगा तो तुम्ही गुरुकुल मिट्टी में मिल जायगा। इस भूमि के तो आत्मा नही है। इसकी आत्मा तुम्ही हो। अगर तुम आत्म-बल खो दोगे और 'उदरनिमित्तं बहुकृतवेशः'—जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी सारी शिक्षा बेकार जायगी।

"मैं आज तुम्हारे आगे चर्खा और खादी की बात करने नही आया हूं। तुम्हारा पहला काम ब्रह्मचर्य और वीरता का—क्षमा का है। उसे भूल जाओगे तो स्वामीजी का काम कायम नही रहेगा। रशीद की गोली से स्वामी जी का क्या हुआ? वह तो उस गोली से ही अमर हुए।

"स्वामीजी का दूसरा काम अछूतोद्धार था। जिन शब्दों में मालवीयजी ने खादी की वकालत की, मैं नही कर सकता। पर इतना जरूर कहूंगा कि अगर हम हमेशा गरीबो और अछूतों की फिक्र रक्खेंगे तो खादी से अलग नही रह सकते। अगर किसी अमली काम मे वीर्य की रक्षा का उपयोग करना हो तो खादी से बढ़कर दूसरा कोई काम नही है। खादी के कार्य के साथ मै स्वामीजी का नाम नही जोड़ना चाहता क्योंकि यह उनका मुख्य काम नही था। पर तुम स्नातको! विदेशी कपड़े से अपने शरीर सजाने का विचार न करोगे बल्कि अपने गरीबों और अछूतों की रक्षा के लिए केवल खादी ही धारण करोगे।

ईश्वर तुम सबके ब्रह्मचर्य, सत्य और तुम्हारी प्रतिज्ञाओं की रक्षा करे, गुरुकुल का कल्याण करे, और स्वामीजी का हर एक काम परमात्मा चालू रक्खे।"

आर्य-समाज का काम

दूसरे दिन गुरुकुल के लिए धन इकट्ठा करने का खास जलसा था। वहां भी

लोग तो उतने ही मौजूद थे। आचार्य रामदेव ने गुरुकुल के स्नातकों की लिखी पुस्तकों और असहयोग में दिये गये कोषों वगैरह का वर्णन किया। उनकी कही एक दलील देने लायक है। "गांधी जी कहते है कि चर्खे से ही स्वराज मिलेगा। मैं कहता हूं कि स्वराज ब्रह्मचर्य से ही मिलेगा। क्योंकि संयम विना चर्खा नही चल सकता, और ब्रह्मचर्य विना संयम नहीं और तपश्चर्या विना ब्रह्मचर्य नही और गुरुकुल की शिक्षा-प्रणाली विना तपश्चर्या के नही हो सकती।'

इसके बाद चन्दा इकट्ठा होने लगा। उस समय का दृश्य तो कभी भूलने लायक नही है। वालटियों में चन्दा इकट्ठा होता था और भीतर रुपया क्या पड़ता था, मानो टकसाल चल रही थी। कितनी देर तक यों रुपये की वरसात हुई। नोट भी ढेर-के-ढेर आते थे। इसके वाद मानों इस वर्षा में तूफान लाने के लिए गांधीजी धन की अपील करने को उठे। भिक्षा माँगनेके लिए वह आनन्द से उठे। उस समय के उनके उद्गार लिखने लायक है·

"आर्य समाज की मै टीका करता हूं, पर स्तुति भी करता हूं और जो हार्दिक स्तुति करता है, उसे टीका करने का अधिकार होता ही है। मै मानता हूं कि ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के वाद जनता के साथ शिक्षितों के आध्यात्मिक सम्वन्ध का नाश हुआ और उस सम्वन्ध का पुनरुद्धार करनेवाला आर्य समाज है।

"आज जो दृश्य यहां दिखलाई पड़ता है, वैसे दृश्य भाग्य से ही कही दूसरी जगह देखने में आते है। मैं आपका कुछ अनुकरण करता हूं पर मुझे वालटियों में पैसे नही मिलते। मैं तो रूमालों में पैसा इकट्ठा करता हूं। मुझे तो पैसा मिलता है, और आपको रुपये मिलते है। सभी-के-सभी पंजाबी कुछ धनिक नहीं है। आप में भी गरीब लोग तो है ही। पर आपका दिल उदार है। मै आर्य समाज की टीका करता हूं, आपको झगड़ालू कहता हूं पर आज आपका काम करने आया हूं। उदार पंजावियों को मै कहता हूं कि जो पैसा दे चुके है, वे फिर से देवें, क्योंकि मैं यहां स्वीकार करना चाहता हूं कि गुरुकुल की मार्फत हिन्दुस्तान की सेवा हो रही है। मैं ऐसा नही मानता कि आपकी टीका करते हुए मै आपका त्याग न समझता होऊंगा। आप में त्याग तो भरा हुआ है ही पर इस त्याग पर सन्तुष्ट न हो जाओ। जो त्याग आगे दिखलाना है, उसके मुकाबिले में, यह त्याग कुछ भी नही है। पर मैं आप के त्याग की स्तुति करता हूं क्योंकि आपके वरावर दूसरे में त्यागशक्ति नहीं है। काम तो वही है जो त्यागवृत्ति से किया जाय। वाकी तो स्वच्छन्द है।

"आपकी स्तुति करता हूं तो इससे सन्तुष्ट न हो जाना। आपने दिया तो इससे यह न समझ लेना कि पूरा दे दिया। दान का अर्थ ही है कि वह अधिक-से-अधिक दिया जाय। जिस संस्था के लिए स्वामी श्रद्धानन्द के सर्वस्व का त्याग था, उसके

लिए जितना दे सको, दो। और कुछ परिणाम न भी निकले तो भी गुरुकुल ने संस्कृत के अभ्यास को स्थान दिया है, यह क्या कुछ छोटी बात है? जब किसी पंजाबी को मैं देवनागरी पढ़ते देखता हूं तो अटकल करता हूं कि वह गुरुकुल का पढ़ा होगा। दोष किस संस्था में नही होते? पर दोषों के होते हुए भी गुरुकुल संस्था की सेवा बहुत बड़ी है। इस गुरुकुल की आप सेवा करो और इसे जीवन्त रक्खो। स्वामी श्रद्धानन्द का कहना है कि इस संस्था के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य और तपश्चर्या के दो दान दिये थे। आप कहो कि इस संस्था को जीती रखने के लिए हमसे जितना हो सकेगा, हम दान करेंगे।"

इसका परिणाम तो तुरन्त देखने में आया। बालटी फिर से घुमाने की लोगों ने प्रार्थना की। फिर पैसे की बरसात हुई। कितने लोग कहते थे कि गांधीजी की मांग के बाद पहिले से दुगुना धन इकट्ठा हुआ। दूसरे दिन आचार्य रामदेव जी कहते थे कि लगभग दो लाख रुपये तो मिल गये थे।

राष्ट्रीय शिक्षण परिषद

उत्सव के साथ एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् भी रक्खी थी। इसे परिषद् कहना तो उचित नही होगा क्योंकि इसमे न तो कोई चर्चा हुई न कोई ठहराव हुए। राष्ट्रीय शिक्षा के अर्थ के विषय मे जुदा-जुदा सज्जनों ने भाषण किये। इस परिषद में जामिया-मिल्लिया की ओर से मौलवी मुजीब साहेब और भाई रामचन्द्रन हाजिर थे। यही बात बड़ी थी कि इसमें मिल्लिया की तरफ से आदमी भेजे गये थे। दोनों प्रतिनिधियो के भाषण उनके और उनकी संस्था के योग्य थे। भाई मुजीब ने तो आते ही आते श्रद्धानन्द जी के खून के विषय में बहैसियत मुसलमान के शोक प्रकाश किया और इस कृत्य को सारी जाति का सिर झुकानेवाला बतलाया और कहा कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए मुसलमानों को खूब आत्मशुद्धि करने की जरूरत है। अपनी संस्था और दूसरी राष्ट्रीय संस्थाओं में आदान-प्रदान चलता रहे तथा गुरुकुल इस मुस्लिम विद्यापीठ को अपना छोटा भाई गिन सके—ऐसी आशा प्रकट करके वह बैठ गये। इस भाषण का अच्छा असर पड़ा। आचार्य रामदेव ने भाई मुजीब का विशेष आभार माना और कहा कि जामिया से अधिक सम्बन्ध करने का प्रयत्न गुरुकुल करेगा। श्री रामचन्द्रन का भाषण सबसे अच्छा कहा जा सकता है। उन्होने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षा के दो आवश्यक अंग है। इसके बिना शिक्षा राष्ट्रीय नही कही जा सकती। वे है (१) संस्कृतियों और राष्ट्र के भिन्न-भिन्न अंगों को एक में मिलाना (२) दलित गरीब वर्गो की सेवा को अपना केन्द्र-बिन्दु रखना। उनका दावा था कि उनकी संस्था इस एकीकरण के लिए बहुत प्रयत्न करती है

और यह कहा कि हिन्दू के रूप में उन्हें वहां रहना कभी अखरा नहीं है बल्कि आनन्द-दायक ही लगा है।

गांधीजी प्रमुख थे। पर सभा का काम शुरू करना था इसलिए उन्हें सिर्फ पांच मिनट मिले होंगे। उन्होंने रामचन्द्रन की बात का समर्थन किया और कहा कि जो संस्था दूसरी जातियों के प्रति द्वेष पैदा करती हो उसका तो नाश ही होना चाहिए। ऐसी संस्थाओं का लक्ष्यबिन्दु होना चाहिए 'दया धरम का मूल है पाप मूल अभिमान।' धर्म के सार्वत्रिक मूल सिद्धान्तों पर जोर देने की जरूरत है। और यह बताया कि इन मूल सिद्धान्तों को भूलने से आदमी पशु बन जाता है। अन्त में संस्कृत और फारसी के अभ्यास पर उन्होंने चार शब्द कहे :

"संस्कृत सीखना हर एक हिन्दुस्तानी विद्यार्थी का कर्त्तव्य है। हिन्दुओं का तो है ही मुसलमानों का भी है क्योंकि आखिर उनके बाप-दादा भी तो राम और कृष्ण थे और उन्हें पहिचानने के लिए संस्कृत जानना चाहिए। परन्तु मुसल-मानों के साथ सम्बन्ध रखने के लिए उनकी भाषा सीखनी हिन्दुओं का भी फर्ज है। आज हम एक दूसरे की भाषा से भागे फिरते हैं क्योंकि हम पागल बन गये है। यह निश्चित मान लेना कि जो संस्था आपस में द्वेष और भय रखना सिखलाती है वह राष्ट्रीय नहीं है।"

महादेव देसाई

—गुजराती। न० जी०, हि० न० जी०, ३१।३।१९२७।]

१३. मालवीयजी और खादी

उस दिन गुरुकुल की रजत जयन्ती के अवसर पर मालवीयजी पधारे थे परन्तु मालूम तो ऐसा होता था कि मानों वह खादी-सेवा के लिए ही आये हों। विद्यार्थियों को आशीर्वाद देते हुए भी उन्होंने खादी की ही बातें की और वहां पर एकत्र लोगों से खादी पहिनने के व्रत की भिक्षा मांगी :

"इस पुण्यभूमि में आकर सभी कोई कोई-न-कोई व्रत लेकर ही जाते है। गांधीजी खुद १२ वर्ष पहिले जब वह हरद्वार आये थे तो गोसेवा की खातिर गाय का दूध न खाने की प्रतिज्ञा कर गये। (इसमें मालवीयजी के याददाश्त की भूल मालूम पड़ती है। हरद्वार में गांधी जी ने गाय का दूध न खाने की प्रतिज्ञा नहीं ली थी बल्कि रोज केवल पांच पदार्थ ही खाने की प्रतिज्ञा ली थी।) तुम देश-भक्ति का व्रत ले चुके हो। आज प्रातःकाल मैं गंगातट पर तुमसे यह दूसरा व्रत

मांगता हूं कि कभी विदेशी वस्त्र न पहिनोगे। और केवल खादी ही धारण करोगे। कितने लोग तो कहते हैं कि गांधीजी का सिर फिर गया है। मैं कहता हूं कि इन्होंने देश को सूत कातने को जो कहा है वह इनके अनुभव और ज्ञान का फल है क्योकि सूत के धागे में ही बंधकर हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता गई और उसी से पीछे भी लौटेगी।"

शुद्ध कौड़ी

यह बतलाते हुए कि सूत की आमदनी सच्ची कमाई का पैसा है उन्होने एक सुन्दर कथा कही : "एक तपस्वी ब्राह्मण था। उसको कन्या का विवाह करना था। ब्राह्मणी रोज ही कहा करती थी कि विद्या बेच कर कही से कुछ धन लाओ। अन्त में वह ब्राह्मण एक दिन राजा के पास गया और अपनी सारी कथा सुनाकर भिक्षा मांगी। राजा ने एक सौ सोने की मोहरें देने का हुक्म दिया। ब्राह्मण ने लेने से इन्कार किया। राजा ने समझा कि यह अधिक धन चाहता है और इसलिए पांच मोहरें देने का हुक्म दिया। फिर भी ब्राह्मण ने इन्कार ही किया। तब राजा ने हजार मोहरें मँगवाईं। तब ब्राह्मण ने कहा—"इससे मेरा काम नहीं चलेगा।" तब राजा ने पूछा—"आखिर कहो भी तो तुम्हें कितना चाहिए।" ब्राह्मण ने जवाब दिया—"मुझे तो हराम का कुछ भी नही चाहिए। मैं तो हक की एक कौड़ी चाहता हूँ। शुद्ध कौड़ी लाख के बराबर है और पाप का लाख राख के बराबर।" अब राजा ने समझा। कहा कि "आठ दिनों बाद आना।" एक दिन वह स्वयं भेस बदल कर नगर देखने निकला। बड़ी रात को एक लुहार घन चला रहा था। उसके पास आकर राजा ने कहा—"भाई तू थक गया होगा मुझे घन चलाने दे। मुझे कुछ मजदूरी दे देना।" उसने एक आना देना कबूल करके राजा को काम दिया। राजा काम में लगा। सारी रात मजदूरी की। लोहार बहुत खुश हो गया। उसने कहा—"भाई तूने मजदूरी तो खूब की। ले, चार आने ले ले।" राजा ने जवाब दिया—"भाई, मैंने तो एक आने के लिए यह मजदूरी की थी। मुझे एक कौड़ी भी अधिक नही चाहिए।" लोहार ने फिर कहा—"भाई, तुमने इतनी भलमनसाई दिखाई है। अब मुझे भी कुछ सज्जनता दिखलाने दो।" राजा ने कहा—"खैर, एक कौडी दे दो।" एक कौड़ी और एक आना लेकर वह महल को गया और उसी को पाकर वह ब्राह्मण राजा का यश गाता हुआ घर गया। पर ब्राह्मणी का तो ब्राह्मण के इस भोलेपन पर जी जल गया। उसने वह कौड़ी और आना फेंक दिया। कथा ऐसी है कि उन चार पैसों में से चांदी के चार पौधे उगे और कौड़ी में से सोने का एक पेड़ उगा। तुम अपनी शुद्ध कौड़ी का दान करो।

कात कर जैसी सुन्दर कौड़ी उत्पन्न होती है, वैसी और किसी तरह नहीं। तुम सभी बहिनो, कातने का व्रत लेकर जाओ, और भाइयो और बहिनो, तुम खादी का, और खादी न मिले तो स्वदेशी का व्रत लेकर जाओ।"

खादी-प्रदर्शन में

इस भाषण के बाद गांधीजी ने मालवीयजी से खादी-प्रदर्शन खोलने का आग्रह किया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? उन्होने यह निवेदन तुरन्त ही स्वीकार कर लिया। गांधीजी ने, मालवीयजी के साथ एक ही विषय पर, एक स्थान पर इकट्ठे होने पर खुशी जाहिर की और कहा—"जब मालवीयजी ने मेरा काम अपने हाथ में ले लिया, तब मुझे अपना हाथ-पांव भी हिलाने की जरूरत न रही। मेरी प्रार्थना है कि मेरे सिर का वोझ मालवीयजी उतार लेवें और आज वह जो काम शुरू कर रहे हैं उसका कभी आदि-अन्त न आवे।"

मालवीयजी ने पुण्यतीर्थ में पुण्य कार्य के लिए इकट्ठे होने पर हर्ष प्रकट किया। यह बतलाकर कि हमारे कपड़े के व्यापार का किस स्थिति में नाश हुआ और विदेशी कपड़े से क्या क्या नुकसान है, उन्होंने कहा—"पचासों साल से हम स्वदेशी कपड़े और स्वदेशी उद्योग की वातें करते आ रहे हैं, मगर कुछ भी काम नही कर सके। स्वदेशी का सच्चा रहस्य समझाने की बुद्धि भगवान ने मेरे भाई महात्मा गांधी को दी और उन्होंने देश के आगे यह बात पहले-पहल रक्खी है कि हाथकता और हाथ बुना कपड़ा ही स्वदेशी है। आगे वोलते हुए उन्होंने पूछा—"हमारे यहां १५ करोड़ स्त्रियां है। मैं पूछता हूं कि उनमें कितनी स्त्रियां मजदूरी करने आती हैं? मैं आपको यह खबर देता हूं कि १०० में ९० तो घर में बैठी रहनेवाली है। अगर अपनी फुरसत का समय कातने में लगाने की चाह उनके दिलों में ईश्वर पैदा करे तो कितनों के घरों में लक्ष्मी का प्रवेश हो। अगर हम सात्विक स्वराज चाहते है तो वह खादी के विना मिलने को नही। क्या आप जानते हो कि लड़ाई के समय में इंग्लैण्ड की मेम साहिवाओं ने कितना काम किया था? किसी की फुर्सत का समय सिलाई या सूत कातने के काम के विना बीतता नही था। देश की आज की पराधीन दशा में आप कौन सा काम करोगे? आप आज इस पवित्र तीर्थ में संकल्प करके जाओ कि हम कातेंगे और खादी पहिनेंगे। गंगातट पर मेरे तपस्वी भाई गाधी आपसे एक छोटी-सी भिक्षा मांगने आये है; आपके सामने अपना अनन्य विश्वास प्रकट करने आये हैं; पिछले तीन साल में खादी ने क्या उन्नति की है, यह वतलाने आये है। चर्खा है लक्ष्मीजी का चक्र और यह निश्चित मान लेना कि जिस जिस घर में चर्खा चलेगा, वहां वहां लक्ष्मीजी के चरणों की धूल उड़ेगी। अपने भाई की इच्छा-

नुसार और परमात्मा की पूजा के लिए मैं यह प्रदर्शन खोलता हूं। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि हमारे देश के कपड़े के व्यापार का जो स्थान पहले था वह उसे फिर मिले और इस व्यापार से देश का दारिद्रय दूर होवे।"

भाषण के अन्त मे साधुओं से मालवीय जी ने आग्रहपूर्वक कहा—"इस कुम्भ के पुण्य अवसर पर आप खादी धारण करने का व्रत लो और खादी-प्रचार की प्रतिज्ञा करो।"

धन की भिक्षा का अच्छा जवाब मिला। यह कहने से भी चल सकता है कि जब से मालवीयजी ने खादी को आशीर्वाद दिया है, तब से नया ही युग शुरु हुआ है। हरद्वार में कुम्भ के अवसर पर मालवीयजी दस दिन बितानेवाले थे। उस बीच में खादी कार्य खूब बढ़ाने का वचन लेकर गांधीजी ने उनसे छुट्टी ली।

महादेव देसाई

—गुजराती। न० जी०, हि० न० जी, ७।४।१९२७।]

१४. काशी विद्यापीठ

यं० इं० के पाठक जानते है कि काशी विद्यापीठ उन इनी-गिनी राष्ट्रीय संस्थाओं मे से है जो अभी जीवित है। काशी विद्यापीठ के पीठस्थविर की भेजी नीचे की विज्ञप्ति मैं सहर्ष छापता हूं।

मो० क० गांधी

गर्मी की छुट्टियों के बाद, आगामी १ श्रावण १६८४ (१७ जुलाई १६२७) को काशी विद्यापीठ खुलेगा। विद्यालय विभाग में चार साल का पाठ्यक्रम है। पहले दो वर्षों में हिन्दी, संस्कृत, दर्शन, विज्ञान, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र और अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान कराया जायगा। बाकी दो वर्षों में, विद्यार्थी को निम्नलिखित किसी एक समूह का विशिष्ट अध्ययन करना होगा।

१. इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र २. दर्शन ३. प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास और संस्कृति। सभी शिक्षा हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के द्वारा दी जायगी।

विद्यापीठ की विशारद या प्रवेशिका या किसी शिक्षा-संस्था की मैट्रिक या उसके समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही विद्यार्थी भर्ती किया जायगा।

सभी विद्यार्थियों के लिए विद्यापीठ में ही रहने का प्रबन्ध रहेगा। प्रार्थना, कातना, व्यायाम और सहभोज में सभी विद्यार्थियों को शामिल होना होगा।

रहने या पढ़ने का कोई शुल्क नही लगेगा। इसके अलावा ५० निर्धन, सुच-

रित्र और योग्य विद्यार्थियों को अधिक-से-अधिक दस रुपयों तक की मासिक छात्रवृत्ति भी मिल सकती है। मगर किसी विद्यार्थी का खर्च १५) महीने से कम नही पड़ सकता। छात्रवृत्तियों के लिए सभी आवेदनपत्र १ श्रावण (१७ जुलाई) के पहले आचार्य के पास पहुंच जाना चाहिए। दरखास्तों में विद्यार्थी की योग्यता और आवश्यकता का पूरा ब्यौरा होना चाहिए। पाठ्यक्रम इत्यादि और दूसरी बातों के लिए पीठस्थविर, काशी विद्यापीठ, बनारस छावनी के पते से पत्र लिखना चाहिए।

—हि० न० जी०, ७।७।१९२७।]

१५. उत्तराखण्ड की पर्वतीय यात्रा : १९२९

गुरुवार १३ जून : बरेली : थैली, रू० १,६५०-०-०, सार्वजनिक सभा १३-११-३, स्त्रियों की सभा, १६-७-४॥ (इस रकम में से ५६ रुपये शिक्षा के लिये अलग मिले है।)

शुक्रवार, १४ जून : हल्द्वानी थैली रु० ५००-००, उगाही १८-७-१॥ काठगोदाम थैली, रु० २५१-००, उगाही २०-१०-६। नैनीताल थैली रु० ३,१२४-१-६, उगाही ३६१-१४-६, नीलाम, २२५-००। १५ की सुबह स्त्री-सभा रु० ११६६-००।

शनिवार, १५ जून : भवाली : थैली रु० २,०६७-१३-०, शिल्पकारों की थैली १०१-००, उगाही १६६-५-३, नीलाम ३०-००।

सूचना :

१. भवाली की उपर्युक्त उगाही की रकम सम्पूर्ण नही है। और रकम आ रही है।

२. नैनीताल की स्त्री-सभा में जो गहने मिले थे, उनकी कीमत प्रायः रु० २०००-०-० है।

३. भवाली में मिले गहनों की कीमत प्रायः ६६ रुपये है।

गांधीजी के लिए हिमालय बहुत पहले से आकर्षक रहा है किन्तु पर्वत-यात्रा का अवसर तो इसी बार मिल सका। यात्रा का हेतु तो आन्ध्र की कठोर और विषम यात्रा के बाद थोड़ा आराम लेना था, किन्तु चारों ओर सुलगती हुई आग में शारीरिक विश्राम लेना गांधीजी के स्वभाव के विरुद्ध है। अत' इस सफर में भी काम का बोझ खूब बना ही है।

पहाड़ों पर या तो आराम पाने के लिए आये हुए धनिक वर्ग से भेंट होती है, या यहां के उत्पन्न गरीब लोगों से। गरीब जनता में श्रद्धा है, उदारता है, देने की इच्छा है, किन्तु देने की ताकत नही हैं। धनिक वर्ग के पास देने की शक्ति हो सकती है, किन्तु हिम्मत कहां से हो? अतएव गांधीजी को आते समय यह आशा तो न थी कि यहां से खादी-निधि के लिए अधिक द्रव्य मिलेगा। फिर भी ऊपर के अंकों से पता चलेगा कि चन्दे की दृष्टि से भी इस यात्रा को निष्फल तो नही कहा जा सकता।

कार्यक्रम का आरम्भ वरेली से हुआ। वरेली शहर वड़ा है। सवा लाख से ज्यादा उसकी आवादी है। वांस के काम के लिए सारे भारत में मशहूर है। यहां तक कि अगर वाहर से कोई वांस यहां भेजे तो मूर्ख-शिरोमणि कहा जाय। इसी कारण औंधे व्यापार को लक्ष्य करके हिन्दी में 'उलटा वांस वरेली' कहावत प्रचलित है।

ता० १३ को सवेरे हम वरेली पहुंचे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू और आचार्य कृपलानी यहां हमसे आ मिले। कृपलानी जी ने आचार्य का धन्धा छोड़कर अब केवल दरिद्रनारायण की सेवा को ही अपना जीवन वना लिया है, और चर्खा संघ की शाखा के मन्त्री का काम करते हैं।

वह अपनी खादी की गांठें लेकर वरेली आये थे। यह नही कह सकते कि खादी-निधि के लिए केवल १६५० रुपये की थैली भेंट कर वरेली ने अपना गौरव अक्षुण्ण रक्खा है। वात यह है कि अब तक यहां की जनता अपनी घोर नीद में से जगकर उठ नही वैठी है। गांधीजी के वरेली पहुंचने पर कार्यकर्त्ताओं की सभा वैठी। गांधीजी के साथ उन्होने दिल भर कर वातें की। इससे उनकी नीद तो खुली और उन्होंने महासभा की पुनः संघटना में अपना हिस्सा भी तय कर लिया। मगर यह सब होते हुए भी ऐसा नही कहा जा सकता कि उनमें पूरी जागृति फैल गई है।

वरेली की म्युनिसिपैलिटी ने खादी पर से चुंगी उठाकर अपने साहस का परिचय दिया है। देश-नेताओं को मानपत्र देना तो आजकल म्युनिसिपलटियों के लिए सहज हो गया है। जनता और म्युनिस्पल सभाओं में गये हुए उनके प्रतिनिधियों के वीच के सम्वन्ध का यह एक चिह्न है। किन्तु वरेली म्युनिसिपलटी के सदस्यों को सार्वजनिक सभा में औरों के साथ अपना भी मानपत्र देने में मानहानि की वू आई, और उन्होने एक अलग सभा में मानपत्र दिया। इस सभा में राष्ट्रीय भजन गानेवाले वालकों के कपड़े मैले और अधिकतर विदेशी थे। गान भी वेसुरा और अव्यवस्थित था। गांधीजी ने भाषण में इन सब वातों की टीका करते हुए म्युनिसिपल सदस्यो को खूब फटकारा, और कहा कि जनता से अलग रहने में प्रतिष्ठा की वृद्धि नहीं होती; सच्ची वृद्धि तो जनता के साथ सम्वन्ध पैदा करके

उसके सच्चे सेवक बनने में है। खादी पर से चुंगी उठा देनेवाली म्युनिसिपलटी के बहुतेरे सदस्य विदेशी कपड़े पहिनकर सभा में आये थे, इस पर टीका करते हुए गांधीजी ने कहा कि अगर उन्हें खादी के प्रति सच्चा प्रेम हो तो म्युनिसिपल शालाओं में तकली शुरू करके सस्ते दामों ढेरों खादी तैयार की जा सकती है। गांधीजी को यह सुनकर दुःख हुआ कि बरेली में हिन्दू-मुसलमानों का सम्बन्ध अच्छा नही है, किन्तु उन्होंने अपनी अटल श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा कि निकट भविष्य में ही हिन्दू और मुसलमान एक होगे, क्योंकि जनता अब समझ गई है कि देश की आत्मा के लिए स्वतन्त्रता उतनी ही जरूरी चीज है जितनी खुराक मनुष्य की शरीर-रक्षा के लिए है। और स्वातन्त्र्य और ऐक्य तो एक ही चित्र के दो पहलू हैं।

उसी रात बरेली से हम नैनीताल के लिए चल पड़े। रास्ते में हल्द्वानी और काठगोदाम में छोटी-छोटी सभाएं हुई। हल्द्वानी के पास संयुक्तप्रान्तीय धारासभा के स्वराज्य दल के प्रतिष्ठित नेता श्री गोविन्दवल्लभ पन्त गाधीजी को निमन्त्रित करने आये थे। नैनीताल ६,३०० फुट ऊंचे पहाड़ पर बसा हुआ है, और युक्त-प्रान्तीय सरकार की गर्मी के दिनों की राजधानी है। इस प्रदेश के लोगों की हालत और उनकी असुविधाओं का यहां निकट से परिचय हुआ। भारत के अन्य भागों की अपेक्षा यहां के सर्व-साधारण का भी सबसे बड़ा रोग तो गरीबी ही है। पहाड़ियों के आस-पास संकरी क्यारियो में जमीन जोतकर कठिन मेहनत के बाद भी वे जीवन-निर्वाह-योग्य अन्न मुश्किल से पैदा कर पाते है। ऊपर से पानी की तंगी घर दबाती हैं। खेती की नहरे बेकाम हो जायं तो सरकार उनकी मरम्मत की फिक्र नही करती और रिआया को मरम्मत करने का अधिकार होता ही नही। इससे किसान को बड़ी परीशानी उठानी पड़ती है। किसी जमाने मे यहां ऊन की कताई और बुनाई का धन्धा सर्वव्यापी था, जिससे यहां के लोगों को एक सहायक-धन्धा मिल जाता था। अब तो यह धन्धा लगभग नष्ट हो चुका है; फिर भी अकेले अलमोड़ा जिले से ही हर साल लगभग १२ हजार मन ऊन कानपुर की लालइमली की मिलों में भेजा जाता है। यही कारण है कि यहां के निवासियों के झुण्ड के झुण्ड हर साल माली, द्वारपाल और दूसरे इसी तरह के धन्धों की खोज में दूर ब्रह्मदेश तक पहुंच जाते है।

बेगार की बुरी प्रथा का नाम हमने सुना है। आजकल इस बुराई की चर्चा संसार के हर एक देश में हो रही है, और लोग टीका करते है कि स्वातन्त्र्य-युग में सभ्यता का दावा करनेवाली सरकार भारत में पुराने जमाने की इस जंगली प्रथा को क्यों कर स्थान दे सकी है। थोड़ा ही समय हुआ, यह प्रथा इस प्रदेश में भी जारी

थी। तात्पर्य, जब साहब लोग पहाड़ों पर सैर करने आते थे, अथवा गर्मी के दिनों में सरकार का मुकाम यहां होता था, तब सरकारी कर्मचारी जबर्दस्ती यहां के लोगों से मुफ्त या नाम-मात्र की मजूरी देकर बेगार उठवाते थे और ये लोग इन्कार नहीं कर सकते थे। असहयोग आन्दोलन ने इन लोगों में भी नई जान डाली और अन्य कई कुप्रथाओं की तरह इस कुप्रथा का भी अन्त हुआ। इस प्रथा के नाश का इतिहास अत्यन्त बोधप्रद है और दिलचस्प है। लेकिन सांप के चले जाने पर भी जैसे घसीटन रह जाती है, उसी तरह यह प्रथा तो मिट गई परन्तु आजकल भी धनवान लोगों को अपने कन्धों पर उठाकर ले जानेवाले कुलियों का दृश्य यहां सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इस दृश्य ने हमारी वर्तमान सामाजिक स्थिति का, जिसमे पूंजीपति धनवान लोग श्रमजीवी गरीब प्रजा को अधिक गुलाम बनाये रखते है, उनकी पीठ पर चढकर मौज उड़ाते हैं, इसका चित्र गांधीजी के सामने खड़ा कर दिया।

गांधीजी के आने से यहां की जनता में जो उल्लास और उत्साह की रेलठेल मची है, वह कभी भूली नही जा सकती। पहाड़ी के आस-पास जहां-जहां तक नजर पहुंचती थी, दर्शनाभिलाषी लोगों की कतारे ही दिखाई पड़ती थी। नैनीताल में दो सभाएं हुई थी। पुरुषों की सभा हरियाली से ढके विशाल पर्वतों के बीच एक निर्मल जलवाले तालाब के किनारे हुई थी। तालाब क्या था, मानो हिमालय का चमचमाता नेत्र ही था। सभा में गांधीजी को लकड़ी की दो पेटियों में मानपत्र दिये गये थे। नीलाम करने पर पेटियों से क्रमश: १०० तथा १२० रुपये मिले। स्त्रियों की सभा में गांधीजी को १,१,६६६ रुपये की थैली दी गई थी। सभा में गांधीजी के सामने स्त्रियों ने खुले दिल से गहनों की वर्षा करके अपने प्रेम और श्रद्धा का परिचय दिया था। एक हजार के लगभग उपस्थितिवाली सभा में से २०० से भी ज्यादा गहनो का भेंट में मिलना कोई साधारण बात न थी।

नैनीताल से हम भवाली पहुंचे। भवाली नैनीताल के मुकाबले कुछ नीचे पर है। क्षय के रोगियों के लिए यहां की जलवायु बहुत ही सुन्दर और लाभदायी मानी जाती है। यहा भी स्त्रियों की एक छोटी-सी सभा और पुरुषों की सभा हुई थी। पुरुषों की सभा में नागरिकों के मानपत्र के सिवा गांधीजी को यहां के शिल्पकारों—अन्त्यज भाइयों—की ओर से एक मानपत्र दिया गया था। अन्त्यज भाइयों के मानपत्र में यहां की जनता के दुःखों की रामकहानी कही गई थी। उत्तर में गांधीजी ने उन्हे सलाह देते हुए कहा कि प्राण देकर भी अपने मनुष्यत्व की और स्वमान की रक्षा करनी चाहिए तथा किसी की बेगार उठाने की अपेक्षा मर मिटने का दृढ़ निश्चय करना अच्छा है। उनसे यह भी कहा गया कि अपना ऊन बाहर भेजकर

विदेशी कपड़ों पर पानी की तरह पैसे बहाना मूर्खता है, उससे बचना चाहिए और अपने घरों में चर्खे को योग्य स्थान देना चाहिए। अकेले ईश्वर का ही हृदय में डर रखकर और किसी से भी न डरने की प्रतिज्ञा करने की सलाह देते हुए उन्होंने कहा—"आप मुझसे कहते है कि सरकार ने चरागाहों के उपयोग के अधिकार आपसे छीन लिये है। किन्तु यदि आप संगठित हो जायं, एकता से काम लें और यह निश्चय कर लें कि चरागाह आप के है और आप के रहेंगे, तो संसार की कोई भी ताकत आपके पास से आपके चरागाह छीन नही सकती। इसी तरह यदि आप यह प्रतिज्ञा करलें कि किसी की भी वेगार न उठायेंगे, तो किसकी ताकत है जो आपसे वेगार उठवा सके? ईश्वर भी बिना उद्यम के किसी की सहायता नहीं करता। इसी से हमारे शास्त्र-कारों ने कहा है कि आत्मा ही हमारा अपना मित्र अथवा शत्रु है—आत्मैवह्यात्मनो बन्धरात्मैव रिपुरात्मन'। आपने अपने मानपत्र में यह आशा प्रकट की है कि मेरे यहां आने से आपके संकट टलेंगे, मगर संकट-निवारण का काम तो एक ईश्वर ही कर सकता है। अस्पृश्यता का कलंक मिटाकर, आत्म-शुद्धि करके, आप खुद अपने को ईश्वर की सहायता के योग्य बना सकते है।"

—गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, २७।६।१९२९ में प्यारेलाल जी का साप्ताहिक पत्र।]

१६. उत्तराखण्ड की पर्वतीय यात्रा : १९२९

(२)

रविवार, ता० १६ जून : गरमपानी : ताड़ीखेत की थैली, नीलाम की उगाही, रु० ९२९-१०-३।

मंगलवार, ता० १८ जून : रानीखेत की उगाही, सामान्य थैली, ९०१-०-०; स्त्रियों की थैली ११३-०-०; नीलाम और सभा में उगाही ११८-११-९; मिले हुए गहनों की अन्दाजन कीमत ५०-०-०; रतनगाल कालिगार थैली २७-११-००; रानीखेत से अल्मोड़ा जाते हुए, १०८-७-३। अलमोड़ा की उगाही, मानपत्र की पेटी के नीलाम से १२०-०-०।

बुधवार, ता० १९ जून : अलमोड़ा। स्त्रियों की सभा का चन्दा ४२८-०-०। स्त्रियों की सभा में मिले हुए गहनों (एक मोहर समेत) की अन्दाजन कीमत रु० २३८-७-००।

गुरुवार, ता० २० जून : अलमोड़ा। सार्वजनिक सभा, सामान्य थैली ३२१०-८-०; अलग-अलग आदमियों की तरफ से मिली रकम ८६३-८-०; नीलाम २३७-०-०; सार्वजनिक सभा का चन्दा १४४-११-३ सभा मे मिले हुए गहनों की (एक मोहर समेत) अन्दाजन कीमत, ८८-७-००; रास्ते का चन्दा ३८-११-० वरेली, हल्द्वानी और दूसरी जगहों में मिले गहनो की अन्दाजन कीमत ६२-८-० अब तक का कुल चन्दा रु० १७, ३०४-७-०।

मोटर द्वारा भवाली से लगभग तीस मील की यात्रा करके हम रानीखेत के निकट ताड़ीखेत पहुंचे। रास्ते में गरमपानी और गनियादाली नामक दो स्थानों में सभाएं हुई। ताड़ीखेत भवाली से लगभग हजार फुट नीचे यानी करीव पांच हजार फुट की ऊंचाई पर वसा हुआ है। यहां हम प्रेम विद्यालय में ठहरे।—हम पहुंचे उसी दिन सांझ को इस विद्यालय का वार्पिकोत्सव था। एक हफ्ता पहिले से वड़ी धूम-धाम के साथ उत्सव की तैयारी की गई थी। खादी का प्रदर्शन इस उत्सव की एक विशेपता थी। कताई की स्पर्द्धा की भी योजना की गई थी किन्तु वह हो न सकी। प्रदर्शन में विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा वनाये गये सुन्दर ऊनी गलीचे, कम्वल और गर्म कपडे खास तौर पर दर्शकों का ध्यान खीचते थे। प्रदर्शन-विभाग के वीचोवीच भारतवर्प के भू-भाग का नक्शा था। नक्शे में हिमालय की हिमाच्छादित पर्वत-माला चूने और चकमक पत्थर के योग से वनाई गई थी और वड़ी सुन्दर मालूम होती थी। उत्सव की दूसरी खास विशिप्टता प्रदर्शन के कमरे की थी। जिस मकान में गांधीजी ठहरे थे, उसका सारा वढईगीरी का काम विद्यालय के छात्रों ने अपने हाथो किया था। जगह-जगह लोगो के लाभार्थ छोटी-से-छोटी सूचनाएं टांगी गई थी। उत्सव का सारा प्रवन्ध और उसमें भी नन्हें-नन्हे छात्रों का कार्य प्रत्येक नवागत के लिए एक सुन्दरतम पदार्थ पाठ का काम देता था।

गांधीजी का भापण अकेले विद्यार्थियों या कार्यकर्त्ताओ के लिए ही न था। गांधीजी के दर्शन के लिए आस-पास के और तीस-तीस मील दूर के प्रदेशों से कोई दस हजार लोग आये थे। उन सवको लक्ष्य करके गांधीजी ने भापण किया था। भापण मे सारे प्रदेश के लिए संक्षिप्त सन्देश भी था। मानपत्र में यहां की जनता की जिस रामकहानी का उल्लेख किया गया था उसके सम्वन्ध में वोलते हुए उन्होंने चर्चा की।

(यह भापण पुस्तक के भापण-खण्ड में दिया गया है। इसलिए यहां छोड़ दिया गया है)

दो दिन ताड़ीखेत रहने के बाद हम लोग अलमोड़ा पहुंचे। मार्ग में रानीखेत

स्थान पर स्त्रियों और पुरुषों की एक-एक सभा हुई थी। कोशी गांव में कटारमल से आये हुए नायक लोग गांधीजी से मिले। इन लोगों में एक भयंकर सामाजिक कुप्रथा है। माता-पिता अपनी बालिकाओं को जन्म से वेश्या-जीवन के लिए तैयार करते है, और फिर उनकी बड़ी-से-बडी कीमत लेकर दूर जगहों में बेंच आते हैं और इसी पर जीते है। किसी के सवाल करने पर धर्म की दुहाई देकर वे इस प्रथा का समर्थन करते है। सैनिक प्रथा और नीति-नाश दोनों एक दूसरे के सखा कहे जाते है। आज भी हमें इस बात के प्रमाण मिलते है। पुराने जमाने में इस देश में जो सैनिक प्रथा प्रचलित थी, कहा जाता है कि वर्तमान गंदली प्रथा उसी की विरासत है। कुछ समय से इस प्रथा को मिटाने के प्रयत्न किये जा रहे है, किन्तु अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। इस भयंकर प्रथा का जड़मूल से नाश कर देने के लिए गांधीजी ने कुछ बहुत ही दर्द-भरी बातें कही और यह कहकर जनता को चेताया कि वह इस शर्मनाक हालत को जल्द ही खत्म कर दें।

जिस पहाड़ की चोटी पर अलमोड़ा शहर बसा हुआ है वह प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। स्कन्द पुराण के मानस-खण्ड में हमें उसका वर्णन भी मिलता है: कौशिकी शाल्मली मध्ये पुण्यकाषाय पर्वतः। अलमोड़ा के आस-पास का सृष्टि-सौन्दर्य और वहां की विशाल पर्वत-माला का दृश्य अतिशय भव्य है; उसमें प्रकृति के विराट स्वरूप के दर्शन होते है। इस प्रदेश में मनुष्य और प्रकृति के बीच जो एक सरीखा संग्राम मचा रहता है, यह दृश्य उसकी हमें कल्पना कराता है। चीड़ और देवदारु के घने जंगलों की हवा से लाभ उठाने के लिए श्रीमान लोग दूसरे प्रदेशों से यहां आते है, यहां के सृष्टि-सौन्दर्य का आनन्द उठाते है और उस पर मुग्ध होकर उसका काव्यमय वर्णन करते है। मगर यहां की जनता को, विशेषतः यहां के किसान-वर्ग को तो प्रकृति की प्रचण्ड शक्तियों का स्वरूप ही अधिक दर्शन देता है। फिर वह (जनता) न तो अपनी रामकहानी लिखती है, न किसी को उसकी खबर देती है। बाढ़, बवण्डर, झंझावात वगैरा तूफानों और जंगली जानवरों के महात्रास के रहते हुए भी मनुष्य ने घने जंगलों को साफ कर यहां सुन्दर बस्ती बसाई है और पर्वत फोड़कर तमाम पर्वत को लहलहाते खेतों का स्वरूप दिया है। यह सब देखकर सहज ही विचार आता है कि चीटियों की सेना-जैसा मनुष्य-समूह अपने उद्योग, उन्नति और संगठन-शक्ति के बल पर क्या-क्या कर सकता है।

अलमोड़ा में स्थानीय म्युनिसिपलिटी की ओर से गांधीजी को एक मानपत्र हिन्दी में दिया गया था। म्युनिसिपलिटी के अध्यक्ष श्री ई० एस० ओकले ने उसे सुन्दर और शुद्ध उच्चारण के साथ पढ़ा था। इस सभा से लौटते समय एक अत्यन्त दुःखद घटना हुई, जिससे गांधीजी को भयंकर आघात पहुंचा। आमतौर पर मोटरों

के शोफर उतावले और तेजमिजाज होते हैं, और अपने ववण्डर-जैसे धन्धे के अनुसार ही उनका स्वभाव भी तूफानी ही होता है। जिस मोटर में गांधीजी बैठे थे उसका शोफर मामूली शोफरों मे भी अधिक जल्दबाज और तेजमिजाज था। उसकी तुनुकमिजाजी और औद्धत्य की सीमा न थी। गांधीजी के दर्शन के लिए लोगों की विशाल भीड़ जमा हुई थी। उसमें से एक भाई पद्मसिंह दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक होकर आगे बढ़े। शोफर ने मोटर न रोकी। भाई पद्मसिंह उसके नीचे आये और दब गये। गांधीजी तुरन्त मोटर में से उतर पड़े और वह भाई जल्द ही अस्पताल पहुंचाये गये। मैजिस्ट्रेट के सामने बयान देते समय पद्मसिंह ने शोफर की लापरवाही की शिकायत न कर अपनी उदारता और निरीहता का परिचय दिया था, और आखिरी दम तक हिम्मत न हारकर वह शान्त बने रहे थे। अस्पताल वालों ने बड़े ही प्रेम और लगन के साथ उनकी सेवा की, किन्तु उनकी सारी चेष्टा व्यर्थ हुई और तीसरे दिन पद्मसिंह के प्राणपखेरू उड़ गये। उसकी मृत्यु के कारण आखिरी दिन का जुलूस श्मशान-यात्रा में बदल गया। उनकी अंत्येष्टि-क्रिया के समय आस-पास के गांवों के लोग बड़ी संख्या में उपस्थित थे, साथ ही यहां के प्रसिद्ध नेता श्री गोविन्दवल्लभ पन्त अन्त समय तक हाजिर थे। श्री गोविन्द वल्लभ पन्त ने पद्मसिंह और उनके कुटुम्बियों को विश्वास दिलाया कि उन्हें हर प्रकार की आर्थिक और अन्य सहायता दी जायगी; इसमें कोई बाधा न पड़ेगी। परन्तु ये लोग यथासम्भव आर्थिक सहायता लेनेवाले नहीं हैं।

अलमोड़ा में ईसाई भाइयों की नन्ही-सी आबादी है। उन्होंने गांधीजी को अपने गिर्जा में मानपत्र दिया। गांधीजी ने भारत और भारत के बाहर के ईसाइयों के साथ की अपनी मित्रता और घने स्नेह की बात कही और खासकर सेण्ट स्टीफेन कालेज के स्व० आचार्य रुद्र के साथ की अपनी घनी मैत्री का जिक्र करते हुए उनसे देश के लोगों के प्रति मैत्री भाव रखते हुए उनकी सेवा की अपील की।[1]

—— न० जी०। हि० न० जी०, ११-७।१०२९ श्री प्यारेलाल जी के वर्णन से।

१७. उत्तराखण्ड की पर्वतीय यात्रा : १९२९

(२ का शेषांश)

शुक्रवार, ता० २१ : अलमोड़ा और कौसानी का चन्दा : मेनन की थैली

---

१. यह भाषण भा[illegible] दिया गया है।

और चन्दा, रु० ६६-१५-६, रणवन की थैली, ५-७-०, सुनारी की थैली, १८-७-० सोमेश्वर और वरराओं की थैली, ५०-१२-३।

शनिवार, ता० २२ जून : कतुरमल्ल और वीचला, थैली और चन्दा उगाही, १२३-५-६, गागलमील की थैली २०-६-०, भौत से आई हुई थैली, २५-०-०, वागेश्वर की सार्वजनिक सभा का चन्दा, गहनों आदि के नीलाम से, ५६४-१०-६।

रविवार, ता० २३ जून : रास्ते का चन्दा ५-४-६

सोमवार ता० २४ जून : स्थानीय चन्दा ६-१२-३

अवतक का कुल चन्दा रु० १८ २६२-८-०

आखिरी दिन एक सार्वजनिक सभा में जिला वोर्ड और दूसरी संस्थाओं की तरफ से कई मानपत्र दिये गये थे। यहां के जिलावोर्ड ने अपनी शालाओं में ऊन की कताई दाखिल की है। इस सभा में इस बोर्ड की शालाओं के विद्यार्थिन्नों में तकली की होड़ (कताई-दंगल) हुई थी और विजयी छात्र की शाला को क्रिकेट या दूसरे खेलों की भाँति चांदी की ढाल दी गई थी।

इसी दिन पद्मसिह का देहान्त हुआ था, अतएव गांधी जी का भाषण भी इसी घटना के रंग में रँग गया था। भाषण का सार नीचे दिया जाता है :—

"एक घण्टे से मैने आपकी वातें सुनी है, मगर मेरा दिल तो इस वक्त पद्मसिह के साथ है। मोटर के नीचे दवकर मरनेवाले भाई का नाम पद्मसिह है। डाक्टर की वात से मुझे आशा हो रही थी कि वह जी जायंगे, मगर आज ३। बजे उनकी जीवन-डोर टूट गई। वरसों से मैं सफर करता रहा हूं, और ऐसी-ऐसी भीड़ों में भी मोटरों में बैठ कर घूमा हूं, लेकिन मेरे इस अन्तिम दिनों में पहली बार ही यह घटना हुई है। मै इस दु:ख को कभी भूल नहीं सकूगा। मै मानता हूं कि मुझे मौत का डर नही है। एक दिन मौत आवेगी ही। पद्मसिह तो मर कर जीये है। मृत्यु से उनकी कोई हानि नही हुई। दु:ख तो मुझे है, और वह इस वात का कि उनकी मृत्यु का मै निमित्त वना। मैं सदा से मानता आया हूं कि मोटर की सवारी से घमण्ड वढ़ जाता है। मैने यह भी अनुभव किया है कि शोफर हलकट और राजसी मिजाज के होते है। अतएव मेरे विचार में मोटरों से, जिनमें ऐसे तेज-मिजाज काम करते हैं, बचना चाहिए। यह होते हुए भी मैं मोहवश, अधिक सेवा करने के ख्याल से, मोटर में बैठता हूं। मुझे इसका फल मिल गया। फिर भी मै प्रतिज्ञा नहीं कर सकता कि आज से मोटर का त्याग कर ही दूगा। क्योंकि मोटर में वैठकर भारत की सेवा कर सकने के मोह को मै छोड़ नही सकता। हां, इतना है कि मै अपना दु:ख प्रकट कर चुका हूं और शोफरों तक अगर मेरी आवाज पहुंचे तो मै उनसे कहूंगा कि वे अपने मिजाज की तेजी को कावू में रक्खें। मुझे पूरा तजुर्वा है कि

शोफर प्राय. तेजमिजाज यानी क्रोधी होते है। मै जानता हूं कि पद्मसिह ने उदारता-वश शोफर को क्षमा कर दिया और इसी मतलव का वयान मजिस्ट्रेट के सामने भी दिया, मगर इससे मै अपने को या मोटरवाले को दोष-मुक्त नही समझता। होना तो यह चाहिए था कि ऐसी भीड मे या तो मोटर का उपयोग ही न किया जाता, या फिर शोफर को मोटर तेजी से दौड़ानी न थी। यह दुःख कैसे भूला जाय? पद्मसिह वहादुर और ताकतवर थे। कल भी उन्होने वड़े सुख से वातें की थीं। मगर उनके भाग्य मे अधिक जीना वदा न था और कमनसीवी मेरी थी कि मुझे अपनी आंखों उनकी मौत देखनी पड़ी।

"इस घटना से हमें सावधान वनना चाहिए। काल हमे अपने मुंह में रखकर नचा रहा है। जीवन-सूत्र सूत से भी कच्चा है, अतएव जितने दिन के लिए इस शरीर का उपयोग हमें मिला है, उतने दिन कर्त्तव्य-भ्रष्ट होकर हम राग-रंग, भोग-विलास और कामतृप्ति में क्यों विताये, जीवन से यों ही हाथ क्यो धोयें? आपने मानपत्र मे स्वराज्य और मुक्ति पाने की इच्छा प्रकट की है। आपने विश्वास-पूर्वक यह भी कहा है कि स्वराज्य केवल शान्ति से ही मिल सकता है। अगर यह वात सच है, तो उसके न मिलने की कोई वजह नही हो सकती। हमारा मार्ग विल्कुल साफ और सीधा है। जिलावोर्ड के मानपत्र में वालकों से कताने की वात कही गई है और वुनवाने की इच्छा प्रकट की गई है। इसके लिए मैं आपको धन्य-वाद देता हूं। आप कहते हैं कि आमदनी का साठ फीसदी भाग शिक्षा में खर्च किया जाता है और यह भी कहते है कि जो काम करना है उसके लिहाज से इतना धन नाकाफी है। आप काम करना चाहते है। मेरा अपना तजुर्वा तो यह है कि करोड़ों का धन मिल जाने पर भी इस तरह शिक्षा देना सर्वथा अशक्य है। गरीव देश मे शिक्षा को स्वावलम्वी होना चाहिए। और शिक्षा का तरीका ऐसा होना चाहिए कि जिससे गरीव भी विना किसी विशेष खर्च के शिक्षा पा सकें। इस ढंग से धन कम खर्च होगा और वालक सच्ची शिक्षा पायेगे। हम जानते है कि हमारी सन्तान शिक्षित होते हुए भी चंचल मन, नीति-भ्रष्ट और कमजोर होती चली जा रही है। अगर हम शिक्षा को स्वावलम्वी वना दें तो वालक-वालिका अपने आप शरीर से मजवूत और मन एव नीति से चुस्त वन जाय। सार्वजनिक सभा में इस पर और ज्यादा विचार नही कर सकता।"

—न० जी०। हि० न० जी०, ११।७।१९२९, में श्री प्यारेलाल जी के वर्णन से।]

१८. उत्तराखण्ड की पर्वतीय यात्रा : १९२९

(३)

जिलाबोर्ड के मानपत्र में कई एक ध्यान देने योग्य बातें थी। बोर्ड की शालाओ की चर्खा-प्रवृत्ति का विवरण भी बहुत उपयोगी था।

पिछले छः वर्षो से इस बोर्ड की व्यवस्था का काम राष्ट्रवादियों के हाथ में आया है। इस बीच, शिक्षा, अस्पृश्य-सेवा, चर्खा-प्रचार और लोक-जागृति आदि के बारे में बोर्ड ने जो काम किया है, वह भारत के तमाम जिलाबोर्डो के लिए एक पदार्थ-पाठ का काम दे सकता है। हाथ-कताई और हाथ-बुनाई में बोर्ड जितनी और जैसी दिलचस्पी लेता है, वह प्रशंसनीय है। मानपत्र में कहा गया था कि एक समय कुमाऊं में पुष्कल कपास पैदा होता था, घर-घर चर्खे चलते थे, और अपनी कपड़े की जरूरत के लिए प्रान्त को किसी दूसरे की मुंहजोई नही करनी पड़ती थी। आज हालत एकदम बदल गई है। देशी-विदेशी सब तरह का कपड़ा मिलाकर आज कुमाऊं में करीब १ करोड़ का कपड़ा आता है। फलस्वरूप और जगहों की तरह वहां भी हाथ-कताई अपना महत्व खो चुकी है। किसानो के पास फुर्सत का बहुत समय रहता है, जिसमें से मजदूरी वगैरा फुटकर काम करके पेट पालते है। समतल भूमि की खेती के समान यहां की खेती से लाभ नही होना। बहुतेरे गरीब किसान अपने निर्वाह-योग्य अनाज पैदा करके ही सन्तोप मान लेते हैं, क्योकि दूर से अनाज मंगाना उनके लिए फायदेमन्द नही हो सकता। यह भी देखा जाता है कि खेती में से वे लगान जमा करने योग्य पैदावार भी खड़ी नही कर सकते, उलटे मजूरी करके उसकी आय से लगान भरते है। जिलाबोर्ड इन लोगों में हाथ-कताई और हाथ-बुनाई जारी करने का विचार कर रहा है। बोर्ड की ओर से एक खास खादी-समिति नियुक्त की गई है, जो सारे जिले में कताई का बन्दोबस्त करती है। शालाओ और गांवों मे फिलहाल तो ऊन कतवाया जाता है। एक बुनाईशाला भी खोली गई है, जहां सारे जिले का ऊन बुना जाता है। बुनाईशाला मे बने हुए धुस्से, कोट-पतलून के योग्य कपड़े वगैरा चीजें बोर्ड के कार्य-कर्त्ता और विद्यार्थियों में ही खप जाते है। बोर्ड ने अबतक खादी-काम के लिए १०,०००) खर्च किये है, इससे खादी-विषयक उसके उत्साह का पता चलता है।

बोर्ड की शिक्षा-प्रवृत्ति भी कोई मामूली नही है। २१,००० से भी ज्यादा बालक और १,००० से भी ज्यादा बालिकाएं बोर्ड की अधीनस्थ संस्थाओं में तालीम पाती हैं। इस मद में बोर्ड ४॥ लाख की अपनी सालाना आमदनी में से ६० फीसदी

रु० खर्च करता है। फिर भी अभी शिक्षा के क्षेत्र में तरक्की की बहुत-कुछ गुंजाइश है और धन की व्यवस्था होते ही बोर्ड इसे उठा भी लेगा।

शिक्षा-प्रवृत्ति का जिक्र करते हुए बोर्ड अपने मानपत्र में अस्पृश्यों को भूला न था : अस्पृश्य कहे जानेवाले बालक दूसरे बालकों के साथ शालाओ मे विना किसी संकोच के मिलते-जुलते है। साथ ही शिक्षा-विभाग के नियमानुसार अस्पृश्य और मुस्लिम बालकों के लिए पृथक् पाठशालाओं का प्रवन्ध भी है। इस समय दो हजार से भी अधिक अस्पृश्य बालक बोर्ड की देखरेख में शिक्षा पा रहे हैं।

पण्डित हरगोविन्द पन्त इस बोर्ड के अध्यक्ष है। सारे कुमाऊं जिले में वह एक पुराने स्वार्थत्यागी और राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता के नाम से प्रसिद्ध है। खुद वकालत करते है, मगर बोर्ड के कामों या अन्य राष्ट्रीय कामों के लिए समय खर्च करने में वह कभी पीछे हटते सुने नही गये। वकालत की आय का बड़ा हिस्सा वह लोगों की खानगी सहायता करने में और पाठशाला आदि मे प्रति-मास खर्च करते है। उनकी सादगी औरों के लिए आदर्श-रूप है। बोर्ड के अध्यक्ष होते हुए भी वह बोर्ड के काम के लिए की जानेवाली यात्राओं मे अपनी जेव से खर्च करते हैं। बहुत बार वह मीलो तक पहाड़ों की पैदल-यात्रा करते है, और इस तरह अपने मातहत कर्मचारियों के हृदयों को अपनी ओर अनुरक्त करते हैं।

कौसानी

जिस दिन गांधीजी जो यह मानपत्र दिया गया था उसके दूसरे दिन ही वह अलमोड़ा से चलकर कौसानी पहुंचे। इस स्थान से तेईस मील दूर, पहाड़ की तलेटी में सरयू नदी के किनारे बागेश्वर नामक एक गांव है। बेगार और कुलीपन की अमानुषिक प्रथा के खिलाफ जो लड़ाई इस प्रदेश मे खड़ी हो गई थी, उसके इतिहास में इस स्थान का महत्व कुरुक्षेत्र के समान है। इस लड़ाई की कथा किसी समय 'हिन्दी-नवजीवन' में दी ही जायगी। ता० २२ के दिन गांधीजी ने इस गांव की यात्रा की। रास्ता बड़ा वीहड़-विषम था। चौदह मील का रास्ता तो ऐसा था कि गांधीजी उसे डोली मे बैठ कर ही पार कर सकते थे। निरुपाय होकर उन्होंने यह कड़वा घूट भी पिया। उनकी वर्तमान शारीरिक निर्बलता को देखते हुए डोली मे वैठकर चौदह मील की यात्रा करना कोई हंसी-खेल न था। बागेश्वर पहुंचते-पहुंचते तो वह भलीभाति थक कर चूर हो गये थे। लौटती बार डोली की व्यवस्था मे कुछ परिवर्तन करने से त्रास कुछ कम हो गया था। बागेश्वर में पहाड़ी लोगो की एक बड़ी सभा हुई थी। अलमोड़ा की यात्रा मे यही एक ऐसा स्थान था, जहां आसपास की पहाड़ियों मे से बड़ी सख्या में लोग गांधीजी को देखने

के लिए आ सकते थे। इस सभा में आये हुए गरीब भाइयों ने भी खुले हाथों दरिद्र-नारायण की निधि के लिए चन्दा दिया था। इस सभा की यह एक विशेषता थी। सांझ के समय आसपास के गांवों से आये हुए करीब ४० कार्यकर्त्ताओं ने गांधीजी के साथ बातें कीं। सारे दिन के कार्यक्रम में यह बातचीत का समय सबसे ज्यादा अनमोल कहा जा सकता है।

बागेश्वर से लौट कर, पिछले तीन महीने की दौड़धूप के बाद थोड़ा विश्राम पाने के हेतु से, और बहुत समय पहले से अधूरे रहे हुए गीताजी के काम को पूरा करने की इच्छा से गांधीजी कौसानी में ही रहे थे। कौसानी अलमोड़ा से लगभग एक हजार फुट ज्यादा ऊंचाई पर बसा हुआ स्थान है। समुद्र की सतह से यह स्थान ६,३७५ फुट ऊंचा है, और हिमाचल के इस प्रदेश के अत्यन्त रमणीय स्थानो में प्रकृति की प्रदर्शनी के नाम से मशहूर है। गांधीजी यहां के एक डाक बंगले में ठहरे थे। जिस बरामदे में वह बैठते थे वहां से उत्तर की ओर बर्फ से ढके हुए हिमालय के शिखर दिखाई पड़ते हैं। चारों ओर हरियाली से ढकी हुई पर्वतमालाएं दृष्टि-गोचर होती है। ठेठ नीचे की ओर तलेटी में हरे मखमल के गलीचे की झाईं वाले खेत और उनके बीच-बीच में बसी हुई कृषकों की सुन्दर झोपड़ियां किसी महान कलाकार के हाथ से खिची हुई तस्वीर की तरह शोभा देती थी। पल-पल में बदलनेवाले रंगरूप में ही इन दृश्यों की विशेषता है। जिस समय आकाश स्वच्छ होता है, नीलाम्बर आकाश में हिमालय के रुपहले मुकुटों के समान हीरक-जटित शिखरों की आभा आंखों को चौंधिया देती है। कभी-कभी बहुत ही सूक्ष्म और महीन मखमल के शुभ्रपट की भांति कुहरा चारों ओर फैल जाता है और उसमें से हिमालय के ज्योतिर्मय शिखर जगमगाते है। जब सायंकाल के समय सूर्य अपनी किरणों से बादलों को भेदता है तब ऐसा मालूम पड़ता है, मानों आकाश अनेक भव्य सुवर्ण-नगरियों का रूप धारण कर रहा हो। उसमें स्फटिक और चादी के प्रदीप्त कलशवाले मन्दिर, दिव्य रंगमहल, और विराट् दुर्ग जगमगते हैं। अस्त होते हुए सूर्य की किरणें जैसे-जैसे एक के बाद एक.इन शिखरों को स्नान कराती जाती है, तैसे-तैसे ये शिखर सुवर्ण नगरी में अनेक रंगों की दीपमालिका का रूप धारण करते जाते हैं।

पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की पर्वतमालाओं की ओर दृष्टिपात करने से, चोटी से लेकर तलेटी तक, चारों ओर बनी हुई खेतों की क्यारियां ऐसी मालूम होती हैं, मानों एक पर एक लुढ़कनेवाली समुद्र की असंख्य नीलवर्ण लहरें हो। इन पर्वतों की चोटियों पर विराजमान चीड़ और देवदारु के विशाल वृक्षो का अनन्त समूह ऐसा मालूम होता है, मानो प्रकृति ने अपने डेरे तान दिये हो। सायं-

काल के समय जव हवा इन घने जंगलों पर से सांय-सांय करती हुई वढती है, तव थोड़े समय के लिए समुद्र की गंभीर ध्वनि के नाद का भ्रम हो जाता है।

इन पर्वतों की शान्ति अनुपम है। ऊंचाई पर और पूर्व में होने के कारण यहां सवेरा जल्दी ही होता है। सवेरे पाच वजे पौ फटते ही पक्षी प्रभाती गाना शुरु कर देते है, और हवा मे झूमने वाले वृक्षों की शाखाओ को अपने कल-कूजन से कल्लोलित कर देते है। रात हो या दिन, वुलवुल का गाना तो सदा ही सुनाई पड़ता है। और जव मूसलावार पानी वरसता है, उस समय का मवुरनाद तो एकदम अवर्णनीय ही होता है। ऐसा मालूम होता है, मानों प्रकृति का समस्त सगीतदल एक-साथ गरज उठा हो और उसमें अनेक रागरागिनियां गूंजने लगी हों।

इस अप्रतिम और अलौकिक सृष्टि-सौन्दर्य और शान्ति के स्थान में रहकर गांधीजी अपनी प्रियतम गीता की धुन में तल्लीन हो जाने की वर्षो पुरानी अभिलाषा पूरी कर सके थे, और उसमें से रस की घूटे पी-पी कर पद्मसिंह के आघात की वेदना को हलकी कर सके थे। उनकी मनोदशा का परिचय नीचे दिये गये एक मित्र को लिखे पत्र से मिलेगा :—

"पद्मसिह का आघात रसिक (गांधी जी के मृत पौत्र) की मृत्यु से ज्यादा पहुचा है। इस आघात का कारण मृत्यु नही, मेरी मन्दता थी। मगर मैंने उपवास तो जानवूझ कर नहीं किया। अगर मौत स्वागत की वस्तु है तो फिर उसके लिए उपवास कैसा? इस भयंकर मृत्यु के अवसर पर भी इस तरह फिर से विचार करके उस दिन शाम को मैने भोजन किया, यद्यपि समय प्रायः वीत चुका था। सवेरे तो खाया ही था।"

पद्मसिह की मृत्यु की कथा जितनी करुणारस-पूर्ण उतनी ही वीररस-पूर्ण भी है। मरने से एक दिन पहले उन्होने गांधीजी के साथ अपनी मौत की वात वड़े स्वस्थ चित्त से की थी, और कहा था :—"अगर मै न वचू, तो मेरे लड़के को आशीर्वाद दीजिएगा।" गांधीजी ने कहा—"मै इसे आश्रम ले जाऊंगा, अन्यथा अगर कहोगे तो आपके घर बैठे इसका प्रवन्ध करूंगा।" उन्होने जवाव मे कहा —"मै यह नही चाहता। इसकी जरूरत भी नही है। सिर्फ आपकी प्रेम-दृष्टि की ही आवश्यकता है।" गांधीजी ने उनको आश्वासन दिया। मत्यु के वाद अलमोडा के प्रतिष्ठित ईसाई कार्यकर्त्ता श्री मोहन जोशी उनके रिश्तेदारों से पूछ आये। श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने चन्दे की सूची भी शुरू कर दी थी। परन्तु रिश्तेदारो ने एक कौड़ी भी लेना स्वीकार न किया; कहने लगे—"हमें गांधीजी की आशीष-मात्र चाहिए, और कुछ नही।" फलतः चन्दा वन्द करना पडा। शिमला में एक भाई सौ रुपये की दूरवीन खरीदने जा रहे थे। श्री महादेव देसाई, जो इस

समय सरदार वल्लभभाई के साथ शिमला है, पास ही खड़े थे। उन्होंने हँसते-हँसते विनोद में कहा—"आप दूरबीन खरीदकर क्या करेंगे? इससे तो इन रुपयों को पद्मसिंह के सम्बन्धियों को ही भेज दो न?" उन भाई ने तत्काल ही यह सूचना मंजूर कर ली और चेक गांधी जी के पास भिजवा दिया। लेकिन यहां तो मामला कुछ और ही हो गया था। गांधीजी ने चेक वापस भिजवाते हुए लिखा—"पद्मसिह के सम्बन्धी तो इस चेक को स्वीकार नही करते, फिर भी अगर आपकी इच्छा हो तो दूसरे किसी काम के लिए ये रुपये दान दे ही सकते है।" वारवार मन मे यही प्रश्न उठता है कि आया यहां के सब लोग ही इतने स्वाभिमानी और वीर है या अकेला पद्मसिह का कुटुम्ब ही। पद्मसिह की मृत्यु से यह प्रदेश सहज ही यात्रास्थल वन गया था।

अलमोड़े की यात्रा पूरी हो चुकी है। मगर अपने अनेक मीठे स्मरणों की वजह से वह हमेशा याद रहेगी। वहां की स्वागत समिति के सदस्यो ने गाधी-जी की और उनके साथियों की मेहमानदारी करने में कोई वात उठा न रक्खी थी। सारी यात्रा की योजना में उन्होंने जिस सुव्यवस्था और चोखेपन का परिचय दिया है, उससे उनकी भावना, विवेक और लगन का पता चलता है। इस गरीव प्रदेश ने दरिद्रनारायण के लिए रु० १८,२६२-८-० की जो रकम दी है, वह कोई ऐसी-वैसी नही है। इस रकम में से एक पाई भी गांधीजी की यात्रा के लिए नहीं ली गई। इन सब कारणों वे यह यात्रा संयुक्तप्रान्त की आगामी यात्रा के लिए एक आदर्श होने योग्य है।

इस यात्रा में वहां के लोगों ने जिस प्रेम और श्रद्धा के दर्शन कराये है, वे कभी भूले नही जा सकते। निर्जन स्थान होते हुए भी हर दिन झुण्ड-के-झुण्ड लोग वहां आते रहते थे, और कुछ-न-कुछ गांधी जी के निकट रख कर चले जाते थे। यहां के जंगलों के निवासी अपने छीने हुए अधिकार वापस मांगते हैं, लेकिन कही सुनवाई ही नही होती, फलतः वे सरकार के जंगल-सम्बन्धी अमानुपिक और जंगली कायदों से पीड़ित है। इतने से ही सन्तोष न करके सरकार ने लगान-वृद्धि का एक नया तमाशा खड़ा किया है। गढ़वाल जिले में ६५ फीसदी लगान वढ़ाया गया है, और नैनीताल एवं अलमोड़ा के लिए भी इसी तरह की तैयारियां हो रही हैं। लोगों ने इसके खिलाफ आन्दोलन शुरू किया है।

सारे संसार में पहाड़ स्वतन्त्रता के दुर्ग कहे जाते हैं। लेकिन हमारी कम-नसीवी से यह जगह आज अस्पृश्यता-जैसी कुप्रथा से भी मुक्त नहीं है। यहां वोरा नामक एक जाति है। अलमोड़ा जिले में इन लोगों की संख्या आठ हजार है। ये लोग सन के थैले वनाने का धन्धा करते हैं। मुरदार मांस या गोमांस ये नही

खाते। इन्हें शराबखोरी का भी व्यसन नहीं है। वैसे इन लोगों की रहन-सहन साधारणतया यहां के सामान्य क्षत्रियों के समान ही है। तिस पर भी ये अस्पृश्य कहे जाते है, और खूबी यह है कि पड़ोस के नैपाल राज्य में यही लोग अस्पृश्य नहीं माने जाते है। किमाश्चर्यमत: परम्। जो जनता स्वयं कुचली हुई है और अपनी स्वाधीनता एवं अधिकार पाने को आतुर हो रही है, वह किसी दूसरे के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार कैसे कर सकती है? गुलाम से पहले गुलामों का सरदार ही बड़ा गुलाम बनता है। आठ साल पहले असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप बेगारी विषयक लड़ाई को लेकर यहां स्वतन्त्रता का शंख पहली बार फूका गया था, जिसकी वजह से सरकार की घरजानी-मनमानी का आसन डगमगाने लगा था। उस पांचजन्य की ध्वनि यहा फिर से कब सुन पड़ेगी? वह दिन कब आयेगा जब लोग अस्पृश्यता का महापातक दूर कर उस शुभ अवसर के लिए अपने आपको तैयार करेंगे?

—न० जी० । हिं० न० जी० ११।७।१९२९ में श्री प्यारेलाल जी के वर्णन से]

१९. उत्तराखण्ड की पर्वतीय यात्रा : १९२९

(४)

अलमोड़ा की यात्रा के चन्दे के आखिरी अंक ये है :—

बरेली, रु० १,९०२-१०-७।, हल्द्वानी, ५९८-७-१ ।।, काठगोदाम, २७१-१०-६, नैनीताल, ६,९४०-०-०, भवाली, २,४६१-२-३, गरमपानी और ताड़ीखेत, ९२९-१०-३, रानीखेत, रतनगल और रियोनी, १,३३५-१४-०, अलमोड़ा, ६,०२३-१२-९, मनन, रणवन, सुनारी, सोमेश्वर, वरराव, कटूर वगैरा, ३८१-५-६, बागेश्वर, ६०६-११-६, कौसानी, ८०-६-९, रामनगर, १,०८७-१-१०।।, काशीपुर, १,७९४-९-४।।, रामनगर रेलगाड़ी पर एकत्र चन्दा, १८-४-६, अहमदा से बरेली तक रेलगाड़ी पर एकत्र चन्दा, २६-१२-३, गहनों की अधिक आंकी हुई कीमत, २५-१३-०, ऋण हुण्डी का बट्टा, १-९-०

कुल चन्दा, रु० २४,४३६-१-३

विदा

दस दिन कौसानी में विश्राम करने के बाद हम वहां से नीचे उतरे। श्री गोविन्द-वल्लभ पन्त ने बहुत आग्रह किया कि गांधीजी कम-से-कम एक सप्ताह वहां और

ठहरें, मगर प्रकृति के उस रंग महल में भी बिला वजह वह कैसे रह सकते थे ? दिल्ली में ता० ५ को कार्य-समिति की सभा थी, अतएव गांधीजी को वहां से ता० २ को रवाना हो ही जाना चाहिए था। रवाना होने से पहले वहां वालों के प्रेम और आग्रह के वश होकर और पद्मसिंह के प्रदेश की पहाड़ी जनता के निकट सम्पर्क में आने की गरज से गांधीजी ने वहां आश्रम की एक शाखा कायम करने की योजना कबूल की थी। इस बारे में अभी प्रयत्न चालू है।

सांझ को गांधीजी रानीखेत पहुंचे; वहां से दूसरे दिन सबेरे रवाना होकर रेलगाड़ी से काशीपुर पहुंचनेवाले थे। मगर रामनगर से गांधीजी पर निमन्त्रण के तारों की झड़ी-सी लग गई। रामनगर हिमालय की तलेटी में बसा हुआ एक नगर है; व्यापार-वाणिज्य का एक बड़ा केन्द्र है, और बदरीनाथ जाते हुए रास्ते में आनेवाले अनेक द्वारों में से वह एक द्वार भी है। अनेक कारणवश रेलगाड़ी से रामनगर न जाते हुए मोटर से जाना ही गांधीजी ने तय किया। साठ मील की मंजिल थी। मगर मोटर के लिए सड़क बिल्कुल खराब थी। रामनगर के नेताओं ने विश्वास दिलाया था कि वहां जाने मे मोटर को कोई अड़चन न होगी। लेकिन वस्तुतः यह यात्रा बहुत ही जोखिमवाली साबित हुई। बिना किसी दुर्घटना के यह समाप्त हो गई, यही सन्तोष है।

रामनगर जाने का अन्तिम निश्चय रात को हुआ। खुफिया पुलिस के जो लोग रातदिन गांधीजी पर सख्त निगरानी रखते थे, वे भी इस निर्णय की गन्ध तक न पा सके, और दूसरे दिन सबेरे जब उन्हें गांधीजी के कूच का पता लगा तब तो वे दिग्मूढ़ ही रह गये। पता चलते ही उन्होंने चारों ओर मोटरें छोड़ दीं। जब यह निश्चय हो गया कि गांधीजी रामनगर की ओर गये हैं, तो वे उसी ओर चल पड़े। इतने में मार्ग में गांधीजी की मोटर पंचर हो गई, इससे एक घण्टे की दौड़धूप के बाद वे उनके पास आ पहुंचे। मगर सच्ची कसौटी तो आगे होने वाली थी। कई जगहों में तो सड़क इतनी ज्यादा टेढ़ी-मेढ़ी थी कि मोटर को मोड़ते हुए बड़ा भारी डर लगता था। पहाड़ी सड़कों पर खाइयों की बाजू में कहीं-कहीं पाल बांध दी जाती है, यहां वह भी अधिकतर टूटी हालत में थी। ऊपर से बारिश की झड़ी लग गई। पल पर पल मोटर रपटने-फिसलने लगी। शोफर की हालत बड़ी दयनीय हो गई, मगर यही काफी न देख, देखते-देखते एक पहाड़ी ढलान पड़ी और साथ ही मोटर का मार्ग बन्द हो गया। सब किसी को मोटर में से उतरना पड़ा और पत्थरों से छाई हुई सड़क को साफ करना पड़ा। खुफिया पुलिस वालों ने भी सहायता की। ऊंची निगाह दौड़ाने पर पता चलता था कि पहाड़ की अनेक पथरीली चट्टानें बारिश की वजह से जर्जर होकर अब पड़ी तब पड़ीं हो

रही थीं। इनसे वचने के लिए शोफरों ने मोटरें तेज की, मगर फिर पहाड़ी के ढल जाने से रुकना पड़ा। खुशनसीवी से उस समय वहां मजदूरों की एक टुकड़ी मौजूद थी, जिसकी मदद से रास्ता जल्द साफ हो सका। कई वार मार्ग में इस तरह के अनुभव हुए। आखिर मजूरों की एक टुकड़ी, मदद के लिए, मोटर में साथ ही लेनी पडी, और ७॥ घण्टों के वाद जैसे-तैसे राननगर पहुंचे। यह विषम यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई, जानकर सव किसी ने वेफिक्री की सांस ली।

रामनगर

रानीखेत के मुकावले रामनगर वहुत नीचे पर वसा है। रानीखेत समुद्री सतह से ६,००० फुट ऊंचे वसा है, और रामनगर २,००० फुट। इस तरह जल्दी-जल्दी ऊंचाई के भारी परिवर्तनों से प्रकृति पर कभी-कभी वुरा असर पड़ता है। मगर हममें से किसी पर कोई वुरा असर नहीं पडा। रामनगर पहुंचते ही खुले मैदान में एक सार्वजनिक सभा हुई थी। ऊपर से आग वरस रही थी। चन्दे की थैली सिर्फ ५०१) की थी। रामनगर जैसे व्यापार के केन्द्र के लिए यह रकम न कुछ-सी थी। मगर मानपत्र में गांधीजी से कहा गया था कि वहुतेरे व्यापारियों के नगर से वाहर होने के कारण, जितना चाहिए था उतना चन्दा एकत्र न हो सका। लेकिन सच वात तो यह थी कि अगर रामनगर के लोग चाहते तो विना किसी रुकावट के दी हुए थैली की दुगुनी दे सकते थे, सवूत इसका यह था कि दी हुई रकम मे आवे से ज्यादा रकम रामनगर महासभा के लोकप्रिय कार्यकर्त्ता पं० लक्ष्मणदास भट्ट ने दी थी। स्त्रियों की सभा मे वहनों ने खुले हाथो दान दिया, और गहनों के सिवा देखते-देखते मे ३००) इकट्ठे हो गये। रामनगर के मानपत्र में एक वात मार्के की थी। वहां अछूत भाइयो के लिए एक कुआं वनाया गया था, मगर फिलहाल सव जाति के लोग विना किसी हिचकिचाहट के उसका उपयोग करते है। इस कुवे का इतिहास अत्यन्त दिलचस्प और वोधप्रद है। रामनगर में पीने योग्य अच्छे पानी की तंगी तो हमेशा रहती ही है। एकवार वहां पानी की गैरमामूली तंगी हो गई। अछूत भाइयों के कुएं मे खूव पानी था, अतएव तथाकथित उच्च वर्ग के लोग, इस मौके से लाभ उठा कर, अस्पृश्यता के मिथ्या भ्रम में से मुक्त हो गये। इस समय सव वर्ण एक साथ उस कुएं पर से पानी भरते हैं। इस सुन्दर उदाहरण की नकल सारा देश करे तो कैसा ?

काशीपुर

ता० ४ को सवेरे १ घण्टे की रेल-यात्रा के वाद गांधीजी काशीपुर पहुंचे।

कुदरत ने यहां के व्यवस्थापकों को एक सुन्दर पदार्थ-पाठ दिया। उन्होंने सार्वजनिक सभा से पहले गांधीजी का जुलूस निकालने का प्रवन्ध किया था, और वहुत कुछ समझाने पर एवं मेघाच्छन आकाश के रहते हुए भी वे जुलूस का मोह छोड़ नही सकते थे। फल-स्वरूप सार्वजनिक सभा का काम हो ही रहा था कि बारिश की झड़ी लग गई। सभा का काम थोड़े में निपटाना पड़ा और जनता खूब नहाई। स्वयं गांधी जी भी मुकाम पर पहुंचते-पहुंचते भलीभांति तर हो चुके थे। स्त्रियों की जो सभा सबेरे होने को थी वह सांझ को हो सकी। काशीपुर की थैली करीव १,२००) की थी; गहनों आदि को मिला कर कुल चन्दा १,६००) का हुआ था।

ता० ४ को ही काशीपुर से चल कर दूसरे दिन गांधी जी दिल्ली पहुंचे और ता० ६ को आश्रम आ गये।

२०. पत्र : गोविन्दलाल शाह को

वोरसद, ता० १०-५-३१

श्री गोविन्दलाल जी,

आशा है आप नैनीताल में होंगे। पिताजी[1] का विचार ता० १८ को नैनीताल पहुंचने का है। उनकी इच्छा तो यही होगी कि आपके यहां ठहरें। आगे आप और पण्डित गोविन्दवल्लभ जी जो इन्तजाम करें। पिता जी के साथ माता जी, मीरा वहिन, महादेव देसाई, प्यारेलाल जी, एक उत्कल के विद्यार्थी, एक टाइपिस्ट, सेठ जमनावाल जी वजाज (शायद) और मैं, इतने होंगे। पहुंचने की ठीक तारीख वगैरा मैं शिमले से फिर लिखूंगा। काठगोदाम से या किस स्टेशन से किस प्रकार चलकर हम लोगों को पहुंचना होगा, इसके विषय में पं० गोविन्दवल्लभ जी के साथ वातचीत करके आप कृपया निश्चित रूप से शिमला लिखियेगा। वहां का पता यह होगा :—

द्वारा रायवहादुर मोहनलाल
जोग्रोव, जक्को, शिमला

आशा है आप कुशलपूर्वक होंगे।

आपका सेवक
देवदास गांधी

—हिन्दी। बोरसद, १०।५।१९३१।]
सौजन्य : श्री राजीवलोचन शाह, नैनीताल।

---

१. महात्मा गांधी।

२१. स्वराज्य भवन अस्पताल

श्री मोहनलाल नेहरू लिखते हैं :—

"उक्त अस्पताल के लिए कुछ सप्ताह हुए, हिन्दी नवजीवन में जो अपील प्रकाशित हुई थी, उसके सिलसिले में अव तक यानी शनिवार तारीख ३० मई को समाप्त होनेवाले सप्ताह तक मुझे नीचे लिखा चन्दा मिला है। कुछ चन्दा देने वाले चाहते है कि 'हिन्दी नवजीवन' में उनके चन्दे का हवाला दिया जाय, पर मैं सभी के नाम भेज रहा हूं। मै हर सप्ताह शनिवार को आपके पास दाताओं की सूची भेज दिया करूंगा।

श्रीयुत भाईलाल सी पटेल वम्वई	रु० २५
„ लाड़मल भण्डागी ट्रिप्लीकेन	रु० ५
„ डी० आर० मोदी० सूरत	रु० २०
„ रतिलाल उमियाशंकर सरस	रु० १५
„ ई० कोचूगिरुडा मेनन कोचीन	रु० ६-१४-०
„ एन० सी० कोतवाल दुर्ग फोर्ट	रु० २५-००
„ हरखचन्द मोतीचन्द धारवाड़	रु० २५
„ रामेश्वर भोलाराम धूलिया	रु० १०
„ एस० दुराई स्वामी अम्वलंगोडाकी कोलम्वो	रु० ४५
	१७६-१४-००

तीस मई को समाप्त होने वाले सप्ताह की मीजान नैनीताल में जो रकम मिली है वह इससे अलग है, उसका हवाला यथासमय इन स्तम्भों में प्रकट किया जायगा।

—हि० न० जी०, २५।६।१९३१।]

[२२. स्वरूपरानी पर मार

स्वरूपरानी नेहरू को जो मार पड़ी, उसके वारे में बापू ने यह मानने से इन्कार ही कर दिया कि यह पुलिस का काम हो सकता है। दो तीन अनुमान लगाये थे। आज स्वरूपरानी ने खुद ही प्रकाशित किया है कि मार पुलिस की ही थी। यह जानकर वापू उवल उठे हैं। लाला जी पर जानबूझ कर मार पड़ी थी, तो

भी उस पर देश भर में खलबली मच गई थी। यह मार तो जवाहरलाल की माता पर जानबूझ कर ही पड़ी होगी न। फिर भी देश में कोई पुण्य प्रकोप नहीं दीख पड़ता। 'लीडर' ने भी कुछ नहीं लिखा। वल्लभ भाई कहने लगे—"खलबली मचानेवाले हम सब तो अन्दर बैठे है।" 'लीडर' ने जो लिखा उसमें कोई दम नहीं है। बापू कहने लगे—"मगर लिखा भी है?" लिखा है अगर उसे पढ़ कर क्या करेंगे? बापू ने कहा—"नही, पढ़कर सुनाइए।" सुनकर उन्हें काफी असन्तोष हुआ। बोले—"इसे तो समतोल मस्तिष्क वाले की पदवी मिली है न! आज ही सुबह उस पत्रकार ने कहा सो हमने पढ़ा था न कि 'हिन्दू' और 'लीडर' के लेख पुख्ता कहला सकते हैं?"

—हिन्दी। १३।४।१९३२, महादेव भाई की डायरी भाग १, पृष्ठ ९४।]

२३. अन्याय की सीमा

आज यह पढ़ा कि इलाहाबाद हाईकोर्ट में एक रामचरण नाम के ब्राह्मण जमीदार को एक धोबन को मार डालने पर पाँच साल की सजा हुई। धोबन ने सामने जवाब दिया था कि मैं आज शाम को कपड़े लेने आऊंगी। इसलिए रामचरण ने उसे लात-मुक्के लगाये। दूसरी स्त्री मदद को आई तो उसे तमाचे लगाये और उसका पति आया तो उसके हाथ से लाठी छीन कर उसे मारा। और अन्त में ५० वर्ष की एक और स्त्री आई तो उसको लातें जमाई। उसकी तिल्ली फट गई और वह उसी वक्त मर गई। तब जनाब भागे। आजकल कैदियों को छोड़ा जा रहा है और हमारे आदमियों को अच्छी तरह सजा दी जाती है। उसे ध्यान में रखकर बापू कहने लगे—"उसे पांच साल की सजा है, मगर वह पाँच महीने भी नही रहेगा। कहेगा कि मैं वफादार सभा कायम करूंगा, किसानों से रुपया दिलवाऊंगा, और सविनय भंग की लड़ाई को दबा देने में मदद करूंगा। इस पर उसे आसानी से छोड़ दिया जायगा।" किसी भी कैदी को छोड़ने की एक शर्त यह है कि उसे कम-से-कम तीन महीने पूरे कर लेना चाहिए। इस पर वल्लभभाई कहने लगे—"उसने सफाई मे यह नही कह दिया कि यह स्त्री स्वराज्य की लड़ाई में शरीक थी और खादी के सिवा दूसरे कपड़े धोने को ले जाने से इन्कार करती थी, और मेरे विरुद्ध यह झूठा इलजाम लगाया गया है?"

—३०।६।१९३२। महादेव भाई की डायरी, भाग १, पृ० २५९-६०।]

२४. शिवप्रसाद गुप्त की सेवा

मीरा वहन का ऐसा पोस्टकार्ड आया कि वह काशी में वीमार पड़ी हैं। उनके पत्र में मिलनेवाली वेहद सेवा का जिक्र था। उन्हें पत्र लिखा :—

"...मैं जानता हूं कि शिवप्रसाद वावू के घर में कैसी वढ़िया आवभगत होती है। तुम्हें ये भी मीठे अनुभव हो रहे हैं, इससे मुझे खुशी है। इनके कारण ऐसी वीमारी सहन ही नहीं होती, वल्कि उसमें मानव स्वभाव के अच्छे-से-अच्छे पहलू का अनुभव होने के कारण वह एक आशीर्वाद भी वन जाती है। सभी हालत में सभी को यह अनुभव समान भाव से हो, तव तो वह दिव्यता के नजदीक पहुंच जाता है।"

—अंग्रेजी। २१।७।१९३२। महादेव भाई की डायरी भाग १, पृष्ठ ३१४।]

२५. भगवानदास जी का एक चित्र

वावू भगवानदास आज चले गये। वह वापू के प्रति तीव्र भक्ति से प्रेरित होकर आये थे। भगवानदास की भक्ति की तो वात ही क्या? हर रोज फल लाते, वापू के चरणों मे रखते, साष्टांग प्रणिपात करके चरणस्पर्श करने की कोशिश करते पर वापू ऐसा नही करने देते। गये उस समय उनका गला भर आया। वोले—"आपकी आज्ञा हो तो ठहर जाऊं।"

—म० भा० डा०, भाग २, पृ० ३३३। ३१।१२।१९३२।]

२६. श्रीमती भट्ट और अस्पृश्यता

श्रीमती भट्ट (वनारस वाली) आईं। महाराष्ट्रीय होकर भी हिन्दी वढ़िया वोलती थीं। वनारस में डोमवर्ग में अस्पृश्यता का काम करती है। यह पूछने पर कि अपराधी जाति की हैसियत से जिन डोमों को हाजरी देनी पड़ती है, उनके लिए कोई काम हो सकता है या नहीं। वापू वोले—"उन्हें हाजिरी लेनी पड़ती है, इसके लिए हमसे कुछ नही हो सकता। उन लोगों को सफाई वगैरा सिखाने और उनकी अस्पृश्यता दूर करने का सव काम हो सकता है।" नरगिस से मिलकर उनका वम्वई का काम देखने की सलाह दी। 'वनारस के पण्डे कहते है कि अछूत साफ

कपड़े पहन कर आयेंगे तो हम नहीं रोकेंगे, मगर तुम ढोल बजाकर मत आओ। तो इसका लाभ अछूत लें या नहीं', यह सवाल भी पूछा।

बापू कहने लगे—"इन लोगों को सलाह देना कठिन है। किन्तु सलाह पूछने आयें तो कहा जा सकता है कि तुम साफ होकर स्वच्छ वस्त्र पहन कर जाओ और तुमसे पूछा जाय कि तुम अस्पृश्य हो तो जाति न छिपाकर प्रकट कर दो।"

—२०।१।१९३३। म० भा० डा० भाग ३, (न० जी०), पृ० ७०-७१।]

२७. कानपुर की म्युनिसिपैलिटी

२२ जुलाई को म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट वोर्ड ने एक ही जगह पर अपने अपने मानपत्र गांधीजी को दिये। यह बड़ा अच्छा हुआ, कि दोनों ही सार्वजनिक संस्थाओं की संयुक्त सभा हुई और गांधीजी को उनके गिरते स्वास्थ्य को देखते हुए, म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट वोर्ड ने बजाय इसके कि उन्हें आफिस में ले जाने का कष्ट दिया जाय उन्हें उनके निवास-स्थान जवाहरलाल के बंगले पर जाकर ही मानपत्र दिये।

कानपुर की म्युनिसिपैलिटी ने प्रशंसनीय हरिजन-सेवा की है। १९३२ के पहले ही उसने १५००० रु० खर्च करके अपने हरिजन कर्मचारियों के लिए कुछ मकान बनवा दिये थे। लेकिन बाबू व्रजेन्द्रस्वरूप जी जब से चेयरमैन हुए तब से म्युनिसिपैलिटी ने खासी कर्मण्यता दिखाई है। १९३३ में चेयरमैन ने बोर्ड के आगे यह योजना पेश की कि मेहतरों के लिए १६८००० रु० खर्च कर के दो या तीन साल में ५५० मकान बनवा दिये जायं। इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट ने फार्बस कम्पाउण्ड में जो ६० क्वार्टर हाल में बनवाये हैं, उन्हें म्युनिसिपैलिटी ने २६५०० रू० में खरीद लिया है। ट्रस्ट ३ रु० मासिक किराया फ़ी क्वार्टर वसूल करता था मगर म्युनिसिपैलिटी २ रु० ही भाड़ा लेती है। माल पर अपने 'केटल बैरक कम्पाउण्ड' में म्युनिसिपैलिटी ने ४० क्वार्टर बनवाये हैं, जिन पर १५००० रु० खर्च हुए हैं। यहां सिर्फ १ रु० मासिक किराया लिया जाता है और हाल ही सीसामऊ घोसियाना में १८ क्वार्टर ६५००) में वोर्ड ने खरीद लिये है। इस तरह एक साल के अन्दर ही म्युनिसिपैलिटी ने ४८०००) कीमत के १८८ अच्छे, हवादार और साफ-सुथरे मकान अपने हरिजन मुलाजिमों के लिए बनवा दिये या खरीद दिये। हमे आशा है कि म्युनिसिपैलिटी की यह प्रगति दिन-दिन बढ़ती जायगी और अन्य स्थानों की म्युनिसिपैलिटियां इस सुन्दर उदाहरण का अनुकरण करेंगी। यहां की म्युनिसिपैलिटी ने हरिजन वस्तियों में लाल-

टेनें और नल भी लगवा दिये है। हरिजनों के लिए ५ गुसलखाने बनवा देने का भी विचार है जिसमें ५५००) लगेंगे। एक हरिजन बस्ती में एक अच्छा सा बाग लगवाने का भी म्युनिसिपैलिटी ने निश्चय किया है। इसके लिए १००००) की ज़मीन ले ली गई है।

पर इस सब से यह हर्गिज नही समझ लेना चाहिए कि कानपुर की म्युनिसिपैलिटी ने अपने हरिजन मुलाजिमों के प्रति अपना फर्ज अदा कर दिया या वह उऋण हो गई। गांधीजी ने यहां की नौ हरिजन बस्तियों का निरीक्षण किया। कुछ बस्तियों के घर क्या थे, चूहों के बिल थे। न कहीं से हवा उनमें आती है न रोशनी। कुछ तो बिल्कुल तहखाने-जैसे थे। म्युनिसिपैलिटी चाहे, तो जो काम वह तीन साल में पूरा करना चाहती है उसे बड़ी आसानी से ६ महीने में ही खत्म कर सकती है। फार्बस कम्पाउण्ड में क्वार्टर बहुत धीरे-धीरे बन रहे हैं; वहां के बाशिन्दों की बुरी हालत है। एक तरह से बेचारे बिना घर-बार के ही वहां रह रहे हैं। और ग्वालटोली के क्वार्टर तो मनुष्य के रहने ही लायक नहीं। फिर एक और आफत है। इस बस्ती में सत्यानाशी ताड़ी की दो दूकानें हैं जिनके खिलाफ मालूम होता है, आवाज उठाई ही नहीं गई। लोगों की और भी अनेक शिकायतें है। उनके कुछ कष्ट तो ऐसे है जिनका निवारण तुरन्त होना चाहिए। म्यूनिसिपैलिटी चूंकि समाज के इन तिरस्कृत तथा उपेक्षित सेवकों के प्रति कुछ-कुछ अपना कर्त्तव्य पालन कर रही है इसलिए हम आशा करते हैं कि वह उनकी सारी ही उचित शिकायतों को यथाशीघ्र दूर कर देगी।

—२२।७।१९३४। ह० से०, ३।८।१९३४ में बालजी गोविन्दजी देसाई के साप्ताहिक पत्र से।]

२८. साप्ताहिक पत्र

निर्देशिका

२२ जुलाई

कलकत्ता से कानपुर आये। कानपुर: म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्टबोर्ड के मानपत्र। सार्वजनिक सभा, मानपत्र और थैली ११०००), सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५१॥।-)

२३ जुलाई

कानपुर: मौन दिवस, सन्ध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह ५७।=)॥

२४ जुलाई

कानपुर: तिलक मेमोरियल हाल का उद्घाटन, सनातनियों तथा संयुक्त प्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघवालों से मुलाकात, विद्यार्थियों की सभा, सनातन धर्म कालेज के विद्यार्थियों का मानपत्र तथा थैली ५११=)। मेहतर सभा का मानपत्र। दिनभर का कुल धन-संग्रह ३२४२॥≡)।

२५ जुलाई

कानपुर से लखनऊ और वापसी, ६० मील रेल से। उन्नाव स्टेशन पर थैली तथा फुटकर २८२॥)॥, लखनऊ में महिला सभा तथा थैली इत्यादि ११७६।=)॥, बालसभा में १०१), सार्वजनिक सभा, सनातनियों और हरिजनों के मानपत्र तथा थैली व फुटकर संग्रह ३६४५॥≡)॥ कानपुर: जिला हरिजन सेवक संघों के प्रतिनिधियों से मुलाकात: इटावा की थैली ७३२) फर्रुखाबाद की ६४५), मुरादाबाद की थैली ३२२॥), जालौन की थैली ६०१), बाल्मीकि सुधार सभा, आगरा की थैली ६।-)॥, सीतापुर की थैली ३०१॥-)।, बांदा की थैली १८५), युक्तप्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा का मानपत्र तथा थैली ११३१।), गुजराती स्कूल के बच्चों की थैली १२≡), संध्या की प्रार्थना के समय धनसंग्रह ८२॥) १०॥ दिनभर का कुछ धन-संग्रह १०६४३) ७॥

२६ जुलाई

कानपुर: कांग्रेस वालों तथा कानपुर जिले के हरिजन कार्य-कर्त्ताओं और यू० पी० के खादी-व्यापारियों से मुलाकात, सेठ कमलापति सिंघानिया से भेंट किया १५४१), महिलाओं की सभा, मानपत्र तथा धन-संग्रह ७४३॥=)॥, हरिजन-बस्तियों का निरीक्षण, संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह २२०≡)। दिन भर का कुल धन-संग्रह ३५६२॥।-) कानपुर से बनारस के लिए प्रस्थान रेल से २०१ मील।

—कानपुर २२–२६।७।१९३४। ह० से०, ३।८।१९३४।]

२९. साप्ताहिक पत्र

२७ जुलाई

काशी: सार्वजनिक कार्य, संध्या की प्रार्थना के समय धन-संग्रह १२२।=)॥

२८ जुलाई

काशी : सार्वजनिक कार्य, गोरखपुर जिले की थैली ६५१), सन्ध्या की प्रार्थना के समय २७॥=) ४॥, काशी विद्यापीठ की ओर से स्वागत तथा धनसंग्रह ४४~)

२९ जुलाई

काशी : जिलों के प्रतिनिधि मण्डलों से मुलाकात : मथुरा की थैली १०००), गाजीपुर की थैली २०१) आगरा की थैली ११६३॥।), वलिया की थैली ४७१।~), आजमगढ़ की १११) लखीमपुर की ३१२), जौनपुर की ६०) नैनीताल की २५२), हरिजनसेवक संघ के केन्द्रीय बोर्ड की बैठक, संध्या की प्रार्थना के समय धनसंग्रह ७१॥।~) ११॥, दिन भर का कुल धन-संग्रह ४०२६॥।=) ११॥

३० जुलाई

काशी : मौन दिवस, बरेली की थैली १२५) संध्या की प्रार्थना के समय ३१।=) ४॥

३१ जुलाई

काशी : हरिजन विद्यार्थियों का मानपत्र, सार्वजनिक सभा और थैली ५०००), गुजरातियो की थैली १५४), चमोली तहसील की थैली २१७), संध्या की प्रार्थना के समय ५२॥) १॥, रायबरेली की थैली ४९०), दिन भर का कुल धन संग्रह ६५२८॥=)।

१ अगस्त

काशी : हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का मानपत्र और थैली १७६॥।=)८ फैजाबाद की थैली २०३), हरिजन कार्यकर्त्ताओं की बैठक, हरिजनों की सभा, अछूतोद्धार-समिति राजभर और रैदास सभा के मानपत्र, धनसंग्रह ३७॥~) ४, कांग्रेसवालों की बैठक, संध्या की प्रार्थना के समय ५५~)।

२ अगस्त

काशी : हरिजन बस्तियों तथा कबीर मठ का निरीक्षण, कबीर मठ की थैली तथा फुटकर संग्रह १२९=)॥।, काशी की पण्डित मण्डली का मानपत्र, महिलाओं की सभा तथा थैली इत्यादि २७८८), हरिजन-प्रवास समाप्त।

—काशी, २७।७।१९३४ से २।८।१९३४ तक। ह० से०, १०।८।१९३४।]

३०. स्वागत : काशी की सार्वजनिक सभा में

[काशी की सार्वजनिक सभा में ३१ जुलाई १९३४ को गांधीजी का स्वागत करते हुए डा० भगवानदास ने निम्नांकित भाषण दिया था।—सम्पा०।]

जिस स्थान पर आज हम लोग मिले है, और जहां आज ३५ बरस से आप लोगों को विविध प्रकार की सार्वजनिक सेवा हो रही है उस स्थान का नाम आप लोग जानते है कि हिन्दू स्कूल, हिन्दू कालेज है। इस पवित्र काशीपुरी के दक्षिण भाग में जो विशाल विद्यालय आज २० बरस से आपके बच्चों को शिक्षा दे रहा है उसका नाम आप लोग जानते हैं कि हिन्दू यूनिवर्सिटी है। इन स्थानों के ईंटा ढोने और जोड़नेवाले, इनको बनानेवाले लोग आपकी समझ से हिन्दू धर्म के द्वेषी है या सेवक हैं? मेरा हृदय कहता है कि आप लोगों में से प्रायः सभी सज्जन इनको अपना और हिन्दू धर्म का सेवक ही जानते हैं और दुश्मन नही मानते हैं। कदाचित् कुछ सज्जन ऐसे है, जिनका ऐसा भाव हो गया है कि ये लोग उनके और हिन्दू धर्म के सेवक नही हैं। इस शंका के भाव का परिमार्जन हम लोगों का कर्त्तव्य है। अधिक जतन से उनको समझाना चाहिए। "वक्तुरेव हि दोषः स्याद् यत्र श्रोता न बुध्यते।" यदि सुननेवाला न समझे, तो कहनेवाले का ही दोष होगा। इस कारण से हम लोग इन शंकित भाइयों से पुनः पुनः विनीत प्रार्थना करते हैं कि आप हमको अपना सेवक और शुभचिन्तक ही जानें।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयंत्यवज्ञां
तेषां हिताय सकलोऽयमस्ति यत्नः।
युष्माकमेव खलु सेवक एष वर्गः
स्वार्थेषु मा कुरुतमत्सरमार्य मिश्राः

यह तो सेवकों की सेवा का, कर्त्तव्य का एक अंग ही है कि ऐसी शंकाओं को शान्त करें।

हिन्दू धर्म और हिन्दू जनता का ह्रास आज कई सौ वर्ष से होता जा रहा है, यह तो प्रत्यक्ष है। इसके दुःख से दुःखी कुछ भाइयों-बहिनों को यह विचार उत्पन्न हुआ कि नई अवस्था में, नये काल मे, इस धर्म की, इस जनता की रक्षा का नया उपाय खोज निकालना चाहिए। इस रोग के निदान-कारण को निश्चय करना चाहिए और उसकी दवा का पता लगाना चाहिए, तो ऐसा जान पड़ा कि अति पुराना उपाय ही अति नया उपाय है।

इस धर्म का प्राचीन नाम सनातन धर्म भी है, वैदिक धर्म भी, आर्य धर्म भी, मानव धर्म भी, बुद्धियुक्त बौद्धधर्म भी। सभी नाम बड़े अर्थसम्पूर्ण है। पर व्यवहार

की दृष्टि से सब से अधिक अर्थगर्भ नाम वर्णाश्रम धर्म है। वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, यह दोनों ऐसे परस्पर गुंथे हुए है, जैसे एक ही कपड़े के तानावाना। विना एक के दूसरा ठीक-ठीक सिद्ध नहीं हो सकता। यह बात प्रायः सभी हिन्दू सज्जन मानेंगे। आजकल इन दोनों धर्मो में सर्वथा संकर होगया है। आश्रमसंकर भी और वर्णसंक भी। इसका शोधन ही मूल सिंचन, मूल शोधन है। अन्य सब कार्य पत्ता धोना है। इस पर गहरा विचार करना चाहिए कि यह शोधन कैसे हो सकता है। शान्त मन से, प्रसन्न चित्त से ही यह विचार किया जायगा, तो सफल होगा; क्रोध से, क्षोभ से नही।

दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं, परं पश्यत माऽपरम्।
तत्वं पश्यत माऽतत्वं, अर्थं पश्यत मा पदम्॥

० ० ०

प्रसन्नचेतसो ह्याशुबुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

सत्व को पकड़िए, विकारों को मत पकड़िए। दूरदर्शिता कीजिए, अल्पदर्शिता नहीं। अर्थ को अधिक देखिए, पद को कम। कारण की चिकित्सा कीजिए, कार्य की चिकित्सा अपने आप हो जायगी।

जब रोगी के प्रत्येक अंग में फोड़े हो जायं तब चतुर वैद्य एक-एक फोड़े पर भी मरहमपट्टी लगाता है, पर उससे अधिक यत्न रक्त-शोधन का करता है। हिन्दू समाज का हृदय कहिए, मर्म कहिए, प्राण कहिए, रक्त कहिए, सार कहिए, विशेष कहिए, वर्ण धर्म है। इसके शोधन से सब फोड़े आपसे आप अच्छे हो जायंगे। वर्ण-धर्म का तत्व क्या है, सच्चा स्वरूप क्या है, इसकी खूब गहरे विचार से जांच करनी चाहिए। आज कल उसका प्रचलित रूप यह है कि पिछली मनुष्य-गणना में २३४८ परस्पर अस्पृश्य जातियां इस देश मे गिनी गईं। आदि स्मृति, मूल स्मृति मनु-संहिता में चार ही वर्ण कहे है और वे परस्पर अस्पृश्य उस स्मृति में कहीं नही कहे गये है:—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः त्रयो वर्णा द्विजातयः।
चतुर्थस्त्वेक जातिस्तु शूद्रो, नास्ति तु पंचमः॥

यह भेद-बुद्धि ही इस धर्म और इस जनता के ह्रास का हेतु हो रही है, यद्यपि इस देश के प्राचीन ज्ञान की जो पराकाष्ठा है, जहां वेद का अन्त है, जिसको वेदान्त कहते है, उसका डिण्डिम अभेदबुद्धि ही है।

वर्ण-धर्म के विषय में, महाभारत में, रामायण में, पुराणों मे, बहुत बेर, आज हजारों वर्ष से, यह वाद उठाकर कि वर्ण जन्मना है अथवा कर्मणा है, यही निश्चय किया है कि अन्ततोगत्वा कर्मणा ही हैं। 'कर्मभिर्वर्णता गतम्।' कर्म से ही इस जन्म

में और अन्य में भी जीव का उत्कर्ष अपकर्ष होता रहता है। सिद्धान्त का संग्रह यों है कि,

उत्तमं जन्मकर्मभ्यां, कर्मणैव तु मध्यमम्।
मिथ्यैव केवलं जात्या, वर्णवत्वं स्मृतं बुधैः॥

इस दृष्टि से जन्मना अस्पृश्यता नही सिद्ध होती। कर्मणा अवश्य है। और इस अस्पृश्यता का घोरतम फोड़ा, हिन्दू समाज के उस बड़े अंग पर देख पड़ रहा है जिसको पांच या सात कोटि संख्यात्मक हरिजन के नाम से अब महात्माजी के नामकरण के अनुसार पुकारने लगे है। महात्माजी ने दूरदर्शी वैद्य की दृष्टि से इस सबसे बड़े फोड़े की चिकित्सा आरम्भ की है। इस चिकित्सा का यह अर्थ कभी नहीं है कि खाहमखाह सहभोज या सहविवाह किया ही जाय या मलदिग्ध व्यक्ति का अवश्य स्पर्श किया ही जाय। ऐसा नही है, केवल इतना ही है कि स्वच्छ मनुष्य दूसरे स्वच्छ मनुष्य का अपने को ऊंची और दूसरे को भी नीची जाति का मानकर तिरस्कार न करे। ऐसे अन्योन्य तिरस्कार का निवारण वर्णधर्म के परिशोधन का आवश्यक पूर्णाग है। पर मैंने जहां तक मनुजी और वाल्मीकिजी, व्यासजी और शुक्रजी की चरण-सेवा से अपनी अल्पबुद्धि से समझा है वह यह है कि हरिजनों का उद्धार, जिसमें स्वयं परस्पर-अस्पृश्य सैकड़ों-हजारों जातियां हैं, हिन्दू समाज के उद्धार का केवल आरम्भिक अंश है; इतने से सब कार्य समाप्त नही हो जायगा। इसका पूर्ण जीर्णोद्धार तभी होगा, जब समग्र मनुजनों का, मनुष्यों का, मानवों का उद्धार वर्ण-व्यवस्था के मूल सिद्धान्त के अनुसार किया जायगा और जब ऐसा होगा तब और तभी हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज के दिन लौटेंगे; इसका शुद्ध प्राचीन नाम मानव धर्म और मानव समाज हो जायगा और सब मानव आपसे आप इसमें दौड़े हुए चले आयेगे।

वर्ण-धर्म तो एक ऐसा सांचा, समग्र मानववंश के आदि प्रजापति मनु जी ने बना दिया है कि उनके वंशज अर्थात् सभी मानव, सभी देश और सभी जातियों के लोग, उसमें ढाले जा सकते है और आज से हजार डेढ़ हजार वर्ष पहिले तक इस देश में ढाले जाते थे। जब से इस सांचे के उद्देश्य और तत्व को भारतवर्ष ने भुला दिया, तब से इसका ह्रास आरम्भ हुआ। शरीर की, प्राण की, मूल सिद्धान्तों की रक्षा कीजिए। ऊपर से फटे-पुराने कपड़ों में प्राण मत अटकाइए। सार की रक्षा कीजिए, विकार को जाने दीजिए।

वेद के अर्थ को तो स्यात् सौ दो सौ महाविद्वान् पण्डित जन समग्र भारतवर्ष में जानते हों या न जानते हो पर इस सारे विषय का निचोड़ थोड़े में आ जाता है—

जात पांत पूछौ नहिं कोई
हरि को भजै सो हरि का होई।

मन और शरीर को निर्मल बनाओ। अपने और दूसरों में निर्मलता बढ़ायो, एक दूसरे की जात-पांत मत पूछते रहो।

भक्त्या पूतं मनो येषां, देहः स्नानादिभिस्तथा।
ते सर्वे स्वागताः संतु, देवदर्शनकांक्षिणाः॥

इतनी प्रस्तावना के साथ मै काशी-वासियों की ओर से महात्माजी के कार्य मे श्रद्धा को दिखलाने वाली और उस कार्य में सहायता देनेवाली, हरिजनों पर स्नेह करने वाली, हरिपत्नी लक्ष्मीरूपिणी, हरिपत्नीजनों के घरों से उनकी प्रीति-समेत संग्रह की हुई थैली भेंट करता हूं।

शुभं भूयात्

सर्वं तरतु दुर्गाणि, सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्वः सद्बुद्धिमाप्नोतु, सर्वः सर्वत्र नन्दतु॥

—हिन्दी। काशी, ३१।७।१९३४। ह० से०, १०।८।१९३४।]

३१. स्वागत-पत्र : काशी के पण्डितों की ओर से

[३१।७।१९३४ को हिन्दू स्कूल, काशी की सार्वजनिक सभा में विद्वान् पण्डितों की ओर से जो स्वागत पत्र गांधीजी को दिया गया था, वह इस प्रकार है।—सम्पा०]

श्रद्धेय अतिथि!

यह हमारा परम सौभाग्य है, कि भगवान् ने हमें आज आप जैसे त्यागी, महान् पुरुष का काशी-जैसे पवित्र तीर्थ में स्वागत करने का अवसर दिया है। हम हृदय से आपका स्वागत करते है।

वृद्ध तपस्वी!

इतनी अवस्था होने पर भी आपका हृदय युवा है, आपकी शक्ति अक्षुण्ण है और आपकी देश-सेवा का भाव अविचलित है। आप भारत के हृदय है। भारत आज दरिद्र होने पर भी आपके सहारे संसार मे सिर ऊपर किये खड़ा है। तपस्वी! हम आपका स्वागत करते है। विरक्त महापुरुष! आपने देश-सेवा के व्रत में अपने सुख, स्वार्थ और ऐश्वर्य को भुला दिया है। आपने देश के कोने-कोने में स्वार्थ-त्याग, सादा जीवन और अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। आज दरिद्र की झोपड़ी में

और राजा के महलों में लोग आदर के साथ आपका नाम ले-लेकर आनन्द पाते हैं। आपने आज अपने कर्म से संसार को समानता का पाठ पढ़ाया है। सारा संसार एकस्वर से आपको एक महान पुरुष मानता है। हम आपका स्वागत करते हैं।

महात्मन् !

आपके हृदय में किसी के प्रति द्वेषभाव नही है। जो आपसे सहमत नहीं हैं उन्हें भी आपके हाथों सदा प्रेम, सद्भाव और सन्तोष ही मिला है। आपने सदा दुखियों के दुःख में आंसू बहाये, पीड़ितों के कष्ट में हाथ बटाया तथा निर्भय और निःशंक होकर अपने मतानुसार सत्य का प्रचार किया। महात्मन्, यहां की पण्डित-मण्डली की ओर से हम आपका स्वागत करते है।

भवदीय

प्रमथनाथ तर्कभूषण, वीरमणि उपाध्याय शास्त्री, केदारनाथ शास्त्री, हीरावल्लभ शास्त्री, सत्यनारायण कविराज, यज्ञनारायण उपाध्याय, जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी, राजेश्वरीदत्त मिश्र, महेन्द्र उपाध्याय पाराशर, अम्बिकादत्त उपाध्याय, आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, विन्ध्येश्वरीप्रसाद पाण्डेय, विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री, रामव्यास पाण्डेय, राजनारायण शर्मा, सीताराम जयराम जोशी, विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज, पी० पट्टाभिराम शर्मा, विश्वनाथ शर्मा, रामानन्द मिश्र, वामदेव मिश्र, रामनिरंजन शर्मा व्यास, राजाराम शुक्ल, भीमसेन वेदपाठी, माहेश्वरी पाठक शास्त्री, गोपाल शास्त्री दर्शनकेसरी, श्री नीलकमल भट्टाचार्य, बलदेव उपाध्याय, वटुकनाथ उपाध्याय, केशवप्रसाद मिश्र।

—काशी, ३१।७।१९३४। ह० से० १०।८।१९३४।]

३२. गांधीजी का पत्र : अगाथा हैरिसन को

[क्वेकर ईसाई सम्प्रदाय की अनुयायिनी अगाथा हैरिसन गांधीजी और भारत देश से अत्यधिक प्रेम रखती थीं और प्रायः गांधीजी के साथ उनकी चिट्ठी-पत्री होती रहती थी। जब जवाहरलाल और गांधीजी में विचार-भेद बहुत बढ़ गया तो अगाथा ने बड़ी हैरानी के साथ गांधीजी से उसके विषय में पूछा था। यह पत्र गांधीजी ने इसी सन्दर्भ में लिखा है।—सम्पा०।]

वर्धा

३० अप्रैल १९३६

प्रिय अगाथा,

तुम्हारा १७ तारीख का पत्र मिला। जवाहरलाल से यही आशा रखी जा

सकती थी। उनका अभिभापण उनके ईमान की स्वीकृति है। उनके "मन्त्रिमण्डल" की रचना से तुम देखती हो कि उन्होंने अधिकांश वे लोग चुने हैं, जो परम्परागत विचार अर्थात् १६२० से आरम्भ हुए विचारों का प्रतिनिधित्व करते है। अलबत्ता वहुमत मेरे विचारों का है। सम्भव हो तो मैं नये संविधान को आज नष्ट कर दूं। उसमे है ही क्या जिसे मै पसन्द करूं? मगर जवाहरलाल का रास्ता मेरा रास्ता नही। भूमि आदि के बारे में मैं उनका आदर्श स्वीकार करता हूं। किन्तु अपने तरीकों को उपस्थित करने में उग्र होते हुए भी जवाहरलाल क्रिया में गम्भीर है। जहां तक मैं उन्हे जानता हूं वह संघर्प को जल्दी नही ले आयेंगे। उन पर आ ही पड़े तो वह उससे बचने की कोशिश भी नही करेंगे। परन्तु शायद इस मामले में सारी कांग्रेस एक विचार की नही है। कुछ-न-कुछ मतभेद जरूर है। मेरे उपाय में संघर्प को टालने की योजना रहती है। उनके उपाय में यह योजना नही है। मेरा अपना खयाल है कि जवाहरलाल अपने साथियों के बहुमत के निर्णय को मान लेंगे। उनके-जैसे स्वभाववाले आदमी के लिए यह अत्यन्त कठिन है। अभी से उन्हे ऐसा लग रहा है। वह जो कुछ करेंगे, शराफत के साथ करेंगे। यद्यपि जीवन के दृष्टिकोण के विषय में हमारे बीच की खाई निश्चय ही चौड़ी हुई है, फिर भी दिलों में हम जितने नजदीक एक दूसरे के शायद आज हैं उतने पहिले कभी नहीं थे। यह पत्र सार्वजनिक उपयोग के लिए नही है। किन्तु तुम्हें स्वतन्त्रता है कि तुम इसे अपने मित्रों को दिखा सकती हो।

मैं नही समझता कि अपने प्रश्न के उत्तर में तुम इससे अधिक कुछ चाहती होगी।

सस्नेह
बापू

कुमारी अगाथा हैरिसन

—अंग्रेजी। वर्धा, ३०।४।१९३५। 'ए बंच आफ ओल्ड लेटर्स' से।]
सौजन्य : श्रीमती इन्दिरा गांधी।

३३. काशी भारतमाता-मन्दिर में गांधीजी का स्वागत

[दशहरा १९३६ को काशी में भारत मन्दिर के उद्घाटन समारोह पर दिया गया डा० भगवानदास का भाषण यहां दिया जा रहा है।—सम्पा]

भारत माता के सबसे श्रेष्ठ, सब गुणों से जेष्ठ सुपुत्र महात्मा गांधी आज यहां

भारत माता का मन्दिर खोलने के लिए पधारे है और उनके साथ और भी मुल्क के अजीज और मुअज्जिज पेशवा लोग इस नेक काम में शरीक होने को आये हैं, जिनके बीच में खान अब्दुल गफ्फार खां को देखकर, कि जो काशी में पहली बार आये हैं, हम काशी-वासियों को विशेष आनन्द है। भाई शिवप्रसादजी ने, जिन्होंने इस प्रेम मन्दिर, इस बेतुल मुहब्बत, इस 'हौस आफ मेटर्नल एण्ड फ्रेटर्नल लव' को बनवाया है, स्नेह और विनय के वश होकर, इस देश के पुराने दस्तूर के मुताबिक कि गौरव के काम में किसी बूढ़े आदमी को आगे रखना चाहिए, स्वागत का प्यारा काम मेरे सुपुर्द किया है। इसलिए काशीवासियों की तरफ से और खासकर उन सब स्वयंसेवकों और रजाकारों की तरफ से जिन्होंने इस उत्सव के समारोह में इन्तिजाम में बड़ी हिम्मत से बड़ी मदद की है, महात्माजी का तथा देश के नेताओं और बुजुर्गों का तथा दूसरे नगरों से आये हुए सब बन्धु-बान्धवों का स्वागत और खैरमकदम, खुशआमद, वेलकम करता हूं। ये शब्द कई जबानों और कई मजहबों के माननेवालों के है, लेकिन मानी सबका, लफज-ब-लफ्ज, एक ही है, जो इस बात का सुबूत है कि इन्सान का दिल सब देशों में, सब जमानों में एक ही है। और दोस्तों के मिलने पर मुहब्बत एक ही तरह से जाहिर करता है। जो कुछ फर्क है वह बाहरी रूपों में है, फुरू में है, भीतर तत्व में, अस्ल में बिल्कुल एका है।

सज्जनो, इस प्रेम-मन्दिर, इस बेतुल मुहब्बत के बनाने का खयाल जिस तरह पैदा हुआ और भाई शिवप्रसाद जी की दरियादिली और उदारता ने, भाई दुर्गाप्रसाद जी की इल्मियत और हुनरे-सनअत, शिल्प कौशल की मदद से इस बड़े कारे खैरोफैज को, इस पुण्य कार्य को किया, उसका बेरूनी हाल, तफसील से आप लोग उस छोटी किताब में पावेंगे, जो आज आपकी नजर की जा रही है, लेकिन अन्दरूनी हाल मैने समझ रक्खा है:—परमेश्वर, अल्लाह अकबर की सृष्टि, सरिश्त, जिदगैन—जो जौन से, द्वन्द्व से बनी है। इसमे दुःख भी है सुख भी है, पाप भी है पुण्य भी है, झगड़ा भी है, मेल-मुहब्बत भी है। एक ओर आसुरी प्रकृति है, दूसरी ओर दैवी प्रकृति है; एक तरफ शैतान, फसाद और जंग बरपा करते हैं; दूसरी तरफ फरिश्ते सल्म और शान्ति और परस्पर प्रीति और इश्के हकीकी बढ़ाते हैं। दोनों ही विश्वात्मा, परमात्मा, रूहुल्-कुल्, रूहुल-रूह की ही मर्जी से अपना अपना काम करते हैं। सब कामों, सब जमानों, सब धर्मों-मजहबों के, उसी एक सिरजनहार, कर्त्ता-धर्त्ता-भर्त्ता, अलखालिक, अलमालिक, अर्रज्जाक ने अपने बनाये सभी मजहबों और कौमो के आदमियों को इस भारत माता की गोद में यक जा किया है। यहां मुसलमान भी है, पारसी भी हैं, यहूदी भी हैं, ईसाई भी हैं, हिन्दू बौद्ध, जैन सिक्ख भी हैं। जरूर ही उस जगत-पिता की इच्छा यही होगी कि यह सब मेरी औलाद,

मेरे वन्दे आपस में मेल-मुहब्बत के साथ, इस बड़े देश में, सुख से जिन्दगी बसर करें, मुझको पहिचानें और मेरी याद करें:—

राम कहो या रहीम कहो, दोनों की गरज अल्लाह से है।
दीन कहो या धर्म कहो, मतलब तो उसी की राह से है।
इश्क कहो या प्रेम कहो, मकसद तो उसी की चाह से है।
योगी हो या सालिक हो, मंशा तो दिले आगाह से है।
फिर क्यों लड़ता मूरख वन्दे, यह तेरी खाम-ख्याली है।
है पेड़ की जड़ तो एक वही, हर मजहब यक-यक डाली है।।

लेकिन जब अल्लाहताला, खुदाएपाक, परमपवित्र परमात्मा, जगत पिता ने देखा कि पिता के भय और प्रीति से मूरख लड़के आपस में लड़ना नहीं छोड़ते तब उसने खयाल किया कि मां की मुहब्बत के आगे इन सबकी लड़ाइयां जरूर बन्द हो जायंगी। और इसलिए अपने एक सच्चे वन्दे शिवप्रसाद को महज जरिया, निमित्त मात्र बनाकर, उसी कुल राज, माया के मालिक ने जो सूरज-चांद को भी चलाता है और हरेक जर्रा, प्रत्येक परमाणु की भी फिक्र करता है, यह वैतुल-मुहब्बत तामीर करवाया, ताकि सब मजहबों की यह इबादतगाह, पूजास्थान हो और भारत माता की सब सन्तानें, सब धर्मों की, यहां आवे और हुब्बुल वतनी, स्वदेश-भक्ति, जननी जन्मभूमि के प्रेम के जरिये से, इश्के हकीकी, खुदा की मुहब्बत और इन्सान की मुहब्बत, भगवत्‌भक्ति और विश्व-जननी-भक्ति भी सीखें। हर आदमी के दिल में छिपे हुए उसी एक परमेश्वर, अल्लाहे अकबर को देखें और तमाम मजहबों के उस सत्यसार को पहिचाने और अमल में लावें, जिसको उसी परमात्मा ने ईसा और मुहम्मद और वेदव्यास, सबके मुंह से इंजील और कुरान और वेदों में कहलवाया है। ईसामसीह ने इंजील में कहा है:—

"डू अंटू अदर्स ऐज यू वुड दैट दे शुड डू अंटू यू, दिस इज होल आव द ला ऐण्ड द प्राफेट्स" यानी दूसरों के साथ वैसा ही वर्ताव करो, जैसा तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करे। सब धर्म और सब नबियो की तालीम इतनी ही है। कुरान मजीद में मुहम्मद पैगम्बर ने कहा है:—

अफजलुल ईमानि उत् तोहिब्बो लिन्न से मा तोहिब्बो ले नफसका; व तक्रहो लहुम् मा तक्रहो लेनफ्स का" अर्थात् "सबसे अफजल, सबसे बड़ा, सबसे उम्दा मजहब यही है कि जो अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए चाहो और जो अपने लिए करीह, तकलीफदेह, समझते हो, उसे दूसरे के लिए भी दुःखदायी जानो। महाभारत में महर्षि वेदव्यास नारायणावतार ने कहा है:—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्॥

यानी धर्म का सर्वस्व-सार सुनो और सुनकर उसके अनुसार आचरण करो। जो काम अपने लिए दुखदायी जानते हो वह काम दूसरे के लिए न करो, और जो-जो अपने लिए चाहते हो वही दूसरे के लिए चाहो।" 'द होल आव द ला एण्ड द प्राफेट' के धर्म-सर्वस्व के, 'अफ़जलुल ईमान' के यह सब शब्द भारत माता के मन्दिर के दीवारों पर लिख दिये जायँगे, ताकि भारतमाता की सब सन्तानें इनको पढ़ें और इन पर अमल करें और माता की गोद में बैठ कर एक दूसरे से मुहब्बत करें।

कुरान शरीफ़ में कहा है—"अलजन्नतो तहताकदम् इल उम्म" अर्थात् मां के पैर के नीचे बहिश्त, स्वर्ग फैला हुआ है। जहां मुहब्बत है वही बहिश्त है, जहां दुश्मनी है वही नरक है, जहन्नुम है, मां के पास मुहब्बत और स्वर्ग ही है। भगवान मनु ने कहा है, 'सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते" यानी गुरुता में मां का दर्जा वालिद से हजार गुना ऊंचा है।

सज्जनो, मैं आप सबकी ओर से और विशेषकर स्वयंसेवकों की ओर से महात्माजी से प्रार्थना करता हूं कि इस भारतमाता के मन्दिररूपी स्वर्ग का दरवाजा खोलें और आशीर्वाद दें और दुआ करें और उस दुआ में आप सब लोग तहे दिल से शरीक हों कि यहां से सत्य, शान्ति, प्रेम, मुहब्बत की नदी जारी होकर सारे देश में फैले, और उसे हरा-भरा, शादाब बनावे।

—हिन्दी, ह० से०, ३१।१०।१९३६।]

३४. श्री भारतमाता का मन्दिर, काशी

काशी के तीर्थक्षेत्र में मन्दिरों का क्या कुछ घाटा है, जो नये मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा करने गांधीजी वहां गये, ऐसा बहुतों को लगता होगा। हां, नये मन्दिर की आवश्यकता तो है ही, क्योंकि काशी विश्वनाथ का द्वार तो हरिजनों के लिए खुला ही नहीं। लेकिन यह मन्दिर तो सचमुच नये प्रकार का था। इस मन्दिर का स्वप्न श्री शिवप्रसाद गुप्त कितने ही वरसों से देख रहे थे। बाबू शिवप्रसाद गुप्त की देशभक्ति का क्या कुछ पार है? स्वदेशी धर्म का पालन करने वाले इनके समान कट्टर व्यक्ति बहुत कम होंगे। मुझे लगता है कि हिन्दुस्तान में वह अकेले ही

ऐसे सज्जन हैं जो अपने तार भी हिन्दी भाषा में लिखकर भेजते हैं—खास कर प्रेम से भरे तार, धन्यवाद के तार या राष्ट्रीय महासभा-सम्बन्धी तार।

इनके घर में आर्य-संस्कृति की प्रतिष्ठा है और उसकी रक्षा बहुत आग्रहपूर्वक होती है। अंग्रेज, मुसलमान, और चाहे जिस जाति और धर्म के लोग हों इनका आतिथ्य प्राप्त करते है। लेकिन उन्हें भी इनके घर के अन्दर जूते उतार कर जाना पड़ता है। आज तो वह करीब-करीब अपंग है, लेकिन जब वह अखिल भा० कांग्रेस कमेटी में आते थे, उन दिनों सिद्धान्तपूर्वक हिन्दी मे बोलनेवाले वह अकेले ही थे। इनकी देशभक्ति इतनी तीव्र है कि इनके मन में विचार आया कि धर्म-मजहब और मन्दिर-मस्जिद के नाम पर इतना झगड़ा हुआ है तो हमें एक नई निष्ठा, नये प्रकार की पूजा-अर्चा करनी चाहिए कि जिसमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी, जैन, बौद्ध सभी प्रार्थना कर सकें; सब उससे प्रेरणा प्राप्त कर सकें और सब सत्य और बलिदान का व्रत ले सकें। २२ वर्ष की बात है। वह कराची कांग्रेस से लौट रहे थे। लौटते हुए पूना में कर्वे के विधवाश्रम में गये। वहां मिट्टी का बना भारत का उठावदार मानचित्र देखा। उसे देखकर इन्हें अपने स्वप्न को मूर्तिमान करने का विचार आया। फिर तो यह सपना अच्छा फला-फूला क्योंकि इसे पिछले दस वर्षों में भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध मे लोगों के दिये बलिदान का सिंचन मिला। शिवप्रसाद-जी जब विदेश गये तो वहां ऐसे मानचित्र उन्होंने देखे और निश्चय किया कि वह अपने देश के लिए एक ऐसा मन्दिर बनायेंगे कि जिसमें कोई मूर्ति नही होगी; केवल भारतमाता का संगमरमर का सुन्दर उठावदार मानचित्र होगा। इस मनोहर मूर्ति के आगे झुकते हुए किस भारत सन्तान को संकोच होगा? बस, विचार करते ही इस पर अमल करने का निश्चय कर लिया। २४ लाख गायत्री मन्त्रों के पुरश्चरण के साथ डा० भगवानदास-जैसे धर्मप्राण देशभक्त के कर-कमलों से इसकी नींव रखवाई गई। सारे मन्दिर की तह में शुद्ध-से-शुद्ध धर्म-भावना रही है। २४ लाख गायत्री मन्त्र के जप से जिसकी नींव डाली गई, उसके खोलने के पूर्व चारों वेदों का चार बार पाठ और मंगल अनुष्ठान हुआ और पूर्णआहुति गांधीजी के हाथों से हुई। शिवप्रसाद जी ने एक वर्ष पहले गांधीजी से आग्रह किया था कि मन्दिर का उद्-घाटन-संस्कार वही आकर करें। गांधीजी के पास समय तो नही था, मगर शिवप्रसादजी का आग्रह इतना अधिक था कि उसे टालना अशक्य हो गया। उन्होंने लिखा:—"इस मन्दिर का उद्घाटन-संस्कार करनेवाला आपके समान पवित्र व्यक्ति मुझे कोई नजर नही आता। इसे आप न खोलेंगे तो मुझे ऐसा मानना पड़ेगा कि मुझसे ईश्वर रुष्ट हो गया।" इस तरह इस मन्दिर के पीछे यह गहरी धर्म-भावना मौजूद है, तो भी उसके पीछे धर्मान्धता का लेश भी नहीं। खोलने से पहिले

भारत के प्रत्येक धर्म के अनुयायी ने वहां ईश्वर-स्तवन किया और भारत के प्रिय पुत्रों ने उपस्थित होकर मातृसेवा की प्रतिज्ञाएं ली।

लेकिन अब मन्दिर-निर्माण की बात करें। इनकी मन्दिर की कल्पना को रसपूर्वक उठाने वाले स्थापत्यकला के विशेषज्ञ श्री दुर्गाप्रसाद जी इन्हें मिल गये। इन्होंने काशी के ही उत्तमोत्तम पत्थर गढ़नेवाले जमा किये, उन्हें यह नई मूर्ति गढ़ने का विचार वतलाया, अनेक चित्रों द्वारा उन्हें समझाया कि मूर्ति किस प्रकार की बनानी है। ये कारीगर पांच वर्ष तक बराबर इस काम को करते रहे और परिणामस्वरूप ७६२ संगमरमर के टुकड़े सावधानी एवं शुद्धता से काटकर प्रस्तुत किये गये। इस मानचित्र में तिव्वत से लेकर लंका तक, चीन की प्राचीन दीवार से हेरात तक का प्रदेश दिखाया गया है। इस धरातल भूमि के एक इंच में छः मील ७०४ गज का प्रमाण माना गया है, अर्थात् नकशा ३१ फु० २ इं० लम्बा और ३० फु० २ इंच चौड़ा बना है। ऊंचाई में, एक इंच में दो हजार फुट की माप रखी गई है। गौरीशंकर का शिखर पौने पन्द्रह इंच ऊंचे संगमरमर के एक ही टुकड़े का बनाया गया है और इसी अनुपात से भारत के पहाड़ों के चार सौ से ऊपर शिखर बनाये गये है। इतना ही नहीं बल्कि समुद्र के विभिन्न भागों की गहराई और समुद्र-पृष्ठ से पांचसौ फुट की ऊंचाई से लेकर तीस हजार तक की ऊंचाई दिखाई गई है और जगह-जगह अंक तथा नाम भी दिये गये है। पर्वतों के शिखर ही नहीं, बल्कि पर्वत की घाटियां, दर्रे, नदियाँ व उनकी शाखाएं और उनकी गहराई और चौड़ाई-लम्बाई तथा उनके टेढ़े-मेढ़े मार्गो को भी ठीक-ठीक बताया गया है। भव्य शिखरों के साथ हिमाच्छादित कैलास की ३०० मील लम्बी तथा १५० मील चौड़ी विशाल पर्वत श्रेणी सभी को आकर्षित करती है। इस मानचित्र में प्रसिद्ध नगर, ऐतिहासिक स्थान, तीर्थ, नदी-पर्वत आदि यथास्थान दिखाये गये हैं। मन्दिर की दीवारों पर भारतीय इतिहास के प्राचीन काल से लेकर आज तक के अनेक नकशे पक्के रंगों में चित्रित किये गये है और भूगोल का ज्ञान करानेवाले भी कई नकशे दिये गये है।

इस प्रकार समस्त मन्दिर कला का ही नही, वल्कि ज्ञान और शिक्षण का भी अनुपम मन्दिर बन गया है। मानचित्र मानो संगमरमर का बना हुआ एक काव्य है और उसमें निर्माता की प्रगाढ़ देशभक्ति मूर्तिमान हुई है।

उद्घाटन

उद्घाटन के पूर्व प्रत्येक धर्म के अनुयायी ने अपनी-अपनी प्रार्थना से मन्दिर को गुंजायमान कर दिया, यह तो मैं कह ही चुका हूं। मन्दिर की भावना समझाने के

लिए डा० भगवानदास ने एक सुन्दर भाषण किया जो अत्यत्र दिया जाता है। उदार भावना से भरे उनके उद्‌गार अव तक स्मृति-गुहा में गूंज रहे हैं। उन्होंने शुद्ध धर्म का तत्व बताया। धर्म का बाह्य स्वरूप झगड़े का मूल है, यह बताया और कहा कि परमकृपालु पिता ने सबको समान बनाया, सबके लिए खाने-पीने की सामग्री प्रस्तुत की, सबको अपना-अपना स्थान दिया है, लेकिन हम बालक अक्सर आपस में झगड़ते रहते है। माता की गोद, माता के चरण ही एक ऐसा स्थान है, जहां यह झगड़ा भूल जाता है, इसलिए यह माता का मन्दिर बनाया गया है। इस मन्दिर में आकर हम सब अपने-अपने झगड़े भूल जायं।

डा० भगवानदास का अनुमोदन करते हुए खां साहब ने कहा—"आज इस मन्दिर को देखकर मुझे पुराने जमाने का मजहब याद आता है। आज का मजहब तो ऐसा बन गया है कि इसके खिलाफ हमारे नवजवानों ने बगावत खड़ी कर दी है। सच्चा मजहब तो हमारे धर्मग्रन्थों में है, लेकिन धर्मग्रन्थो को ठीक-ठीक आज पढ़ता ही कौन है? इस्लाम के प्राचीन समय में मस्जिद केवल मुसलमानों की ही इबादतगाह नही थी, वहा तो सब अपनी-अपनी रीति के मुताबिक इबादत करते थे। आज डा० भगवानदास ने हमें यह समझाया है कि हिन्दू मुसलमानों का सच्चा धर्म कैसा होना चाहिए, इसके लिए मैं उनका आभार मानता हूं।"

इसके बाद हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण जी गुप्त ने मातृ-मन्दिर का स्वरचित गीत गाया। इस मधुर गीत को तो मैं ज्यों-का-त्यों दे रहा हूं:—

भारत माता का यह मन्दिर, समता का संवाद यहां।
सबका शिव-कल्याण यहां है, पावें सभी प्रसाद यहां।
नहीं चाहिए बुद्धि बैर की, भला प्रेम-उन्माद यहां।
कोटि-कोटि कण्ठों से मिलकर, उठे एक जयनाद यहां।
जाति धर्म या सम्प्रदाय का, नहीं भेद-व्यवधान यहां।
सबका स्वागत सबका आदर, सबका सम-सम्मान यहां।
राम-रहीम बुद्ध ईसा का, सुलभ एकसा ध्यान यहां।
भिन्न-भिन्न भव-संस्कृतियों के, गुण-गौरव का ज्ञान यहां।
सब तीर्थों का एक तीर्थ यह, हृदय पवित्र बनालें हम।
आओ, यहां अजातशत्रु बन, सबको मित्र बनालें हम।
रेखाएं प्रस्तुत हैं अपने मन के चित्र बना लें हम।
सौ सौ आदर्शों को लेकर एक चरित्र बनालें हम।
मिला सत्य का हमें पुजारी, सफल काम उस न्यायी का।
भक्ति-लाभ कर्त्तव्य यहां है, एक-एक अनुयायी का।

बैठो माता के आंगन में, नाता भाई-भाई का।
समझे उसकी प्रसव-वेदना, वही लाल है माई का।

इसके बाद गांधी जी का प्रवचन हुआ:—

"इस मन्दिर का उद्घाटन करते हुए मैं अपने मन के भावों को किस तरह व्यक्त करूं? सेगांव छोड़कर कही न जानेवाला व्यक्ति, यहां दौड़ा आया, क्योंकि प्रेम एक अजीब वस्तु है। यह मनुष्य को कहां से कहा उड़ा ले जाता है। मीराबाई का कहा जानेवाला एक भजन गुजराती में है, जिसमें प्रेम की उपमा सूत के कच्चे धागे से दी गई है, किन्तु इस धागे के कच्चे होने पर भी इसका बल इतना जबरदस्त है कि अपने परिचित प्रेमी को वह चाहे जहां खींच ले जाता है। इस पर कृष्ण सरीखे भी प्रहार करें तो भी यह टूटता नही, क्योंकि कृष्ण की तो यह प्रतिज्ञा ही है कि जहां सच्चा प्रेम है वहां मैं हूं। सो यह प्रेम का धागा ही मुझे यहां खींच लाया है।

शिवप्रसाद जी का प्रेम मुझे खीच न लाता, तो मैं यहां आता नहीं, क्योंकि इस पवित्र भावना पर रचे हुए इस मन्दिर का उद्घाटन करने के लिए मैं अपने को योग्य नही समझता। शिवप्रसाद को जब से मैं जानता हूं तब से मैं देखता हूं कि गंगा-तट को इन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया है और गंगाजल से अपनी देह को पवित्र रखते है, तिस पर भी इन्होंने अपने हृदय में एक दूसरी ही गंगा को धारण कर रक्खा है। यह भावना और कल्पना की गंगा इनके हृदय में हमेशा बहती रहती है और इसमें यह नित्य ही अवगाहन करते रहते है। वह भावना के घोड़े भी बनाते और पृथिवी की प्रदक्षिणा करते है। भावना का ऐसा बल है कि वह यदि शुद्ध हो तो स्वर्ग मे भी उड़ा ले जा सकता है और अशुद्ध हो तो नरक में भी ले जा सकता है। इनकी भारत-भक्ति की भावना पूना के कर्वे विधवाश्रम में खुदे हुए एक उठावदार नकशे को देखकर मूर्तिमन्त हुई, और इस पर अपनी समुचित धनराशि खर्च कर डालने का इन्होने विचार किया। जैसी इनकी भावना थी वैसे ही इन्हें कलाकार भी मिल गये, शिल्पी और इंजीनियर भी वैसे ही मिल गये। एक बार तो इन्हें अपने जीवन की भी आशा नही रही थी, किन्तु भगवान ने जीवित रक्खा और इनका स्वप्न, इनकी भावना की प्रतिमा आज हम अपने सामने खड़ी देखते है।

सवेरे जब मैं पूर्णाहुति देने आया, तो उस समय वेदमन्त्र सुनते-सुनते मुझे २० वर्ष से हम जो श्लोक अपनी प्रभात की प्रार्थना में वोलते है, उसका स्मरण हो आया:—

समुद्र वसने देवि पर्वतस्तन मण्डले,
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।

यह विष्णुपत्नी ही हमारे पास है। हमारा पोषण करती है। रक्षण करती है, जिसके हम सब ऋणी है और जिससे हमें सदा क्षमा मांगनी चाहिए। उसका चित्र मेरे सामने खड़ा हो गया। जिस माता ने हमें जन्म दिया, वह तो थोड़े ही वर्ष जीवित रहेगी, किन्तु यह माता तो सदैव ही है और यदि यह नही है तो हम भी नहीं है। जिस दिन इसका नाश होगा उस दिन यह हमें अपनी गोद में लेकर चली जायगी। भारत-माता इसी माता का अंग है और उसका मानचित्र आज वेदमन्त्रों से पुनीत हुआ है। शिवप्रसादजी ने सबको बिना किसी प्रकार की शर्त के इस माता की आराधना के लिए निमन्त्रित किया है। जिन्हें माता के प्रति प्रेम है, वे यहां चले आवें। मैं तो प्रेम का दावा करता ही हूं तब फिर मैं इस मन्दिर का उद्घाटन क्यों न करूं?

इस मन्दिर को शिवप्रसाद जी का आशीर्वाद तो मिला ही है। यहां हम सब अपने दिल का द्वेष और मैल भूल कर, अपने तमाम संकुचित भेद-भाव भूल कर एकत्र हों और भारतमाता की सेवा की प्रतिज्ञा करें। शिवप्रसाद जी की शुभ-कामनाएं सब सफल हों और जबतक वे सफल हों, तबतक की भगवान उन्हें आयु प्रदान करें।

—हिन्दी। काशी, दशहरा १९३६। ह० से०, ३।१०।१९३६।]

३५. मैथिलीशरण जी

कविवर मैथिलीशरण की कविता तो हम ऊपर पढ़ ही चुके हैं। इनकी आयु ५० वर्ष की होने पर इनके अनेक मित्रों ने इन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का सुअवसर ढूंढ़ा और काशी में गांधीजी की उपस्थिति का लाभ उठाया। कवि को यह ग्रन्थ अर्पित करते हुए गांधीजी ने जो संक्षिप्त भाषण दिया उसका एक-एक अक्षर नोट करने लायक था :—

"मैं तो बड़े या छोटे लोगों की सुवर्ण अथवा हीरक जयन्ती मनाने में विश्वास नहीं रखता और खास कर महापुरुषों को अपने प्रमाणपत्र लिखकर एक ग्रन्थ भेंट करने की यह पद्धति तो मुझे सर्वथा ही अनुचित लगती है। मैं तो अपना प्रमाणपत्र देने की धृष्टता कदापि न करूंगा, यह बात मैं लोगों को सुना चुका हूं।

"मैंने पहले आग्रह के वश होकर मालवीयजी और कविवर रवीन्द्रनाथ के लिए अपनी अञ्जलि दी थी, किन्तु क्या एक बार भूल की, इसलिए दूसरी बार भी करनी चाहिए?

"मेरा चित्त तो आज सेगांव में है। फिर मैं न तो कवि हूं, न हिन्दी का विद्वान। तब फिर मुझे यहां यह 'अभिनन्दन-ग्रन्थ' देने के लिए धृष्टता क्यों करनी चाहिए थी? लेकिन मैं तो ठहरा महात्मा और महात्मा से चाहे जो करने के लिए कहा जा सकता है। इसलिए मैं यहां आगया हूं।

"लेकिन सच बात तो यह है कि मनुष्य जबतक जीवित है, तबतक न तो वह महात्मा है, न कवि है, न अवतार। राम और कृष्ण को उनकी जीवितावस्था में किसी ने अवतार नहीं कहा। उन्हें अवतार तो उनके पीछे आनेवाले लोगों ने बनाया। तब कवि और महात्मा की तो बात ही क्या की जाय? आज तो बहुत से नामधारी कवि और महात्मा पड़े हैं। 'कर्मण्येवाऽधिकारस्ते" वाला महासूत्र कवि और महात्मा के लिए तो खासतौर से है। इसलिए मैथिलीशरण अगर यह समझते हों कि वह भारत के महाकवि हैं, तो मुझे उनके साथ झगड़ना होगा। ईश्वर जब उन्हें सहजस्फूर्ति देता है, तभी उनकी लेखनी से 'साकेत' और 'द्वापर' जैसे प्रसाद उत्पन्न होते है। मैं और आप उनकी स्तुति करें, इससे इन्हें स्फूर्ति नही मिलेगी। सच्चा कवि स्तुति-निन्दा से परे है। वह तो, प्रभु स्फूर्ति दे तो, उसका उत्तर देता है।"

कलाभवन

काशी में गांधीजी ने कलाभवन भी देखा। इस कलाभवन का वर्णन तो काकासाहब जैसे कलाकार ही किसी समय करें तो हो। इसमें पुरातत्व की अनेक सामग्रियां, अनेक प्राचीन मूर्तियां, चित्र और हस्तलिखित ग्रन्थों का सुन्दर मूल्यवान् संग्रह है। और यह संग्रह राय श्रीकृष्णदास ने स्वयं प्रेमपूर्वक तय्यार करके सरस्वती देवी को, नागरी प्रचारिणी सभा को, अर्पित किया। ऐसी समर्पण-बुद्धि हम सब में उत्पन्न हो, यही प्रार्थना है।

—म० ह० देशाई

—अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, ३१।१०।१९३६।]

[३६. इलाहाबाद की बैठक में स्वीकृत रचनात्मक कार्यक्रम

कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इलाहाबाद की बैठक में स्वीकृत अपने एक प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया है कि धारासभाओं के सदस्यों और कांग्रेस के दूसरे कार्यकर्त्ताओं के लिए यह बहुत जरूरी है कि जिन तीन करोड़ ग्रामवासियों

और उनके प्रतिनिधियों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया है उनके झोपड़ों तक वे कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पहुंचावें। धारासभाओं में जो प्रतिनिधि चुने गये है अगर वे चाहें तो ग्रामवासियों की तरफ़ उपेक्षा कर सकते है, या उन्हें आर्थिक बोझो से थोड़ा सा या शायद यथोचित छुटकारा भी दिला सकते हैं, पर वे जबतक चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रम में ग्रामवासियों को दिलचस्पी नही दिलायेंगे अर्थात् सार्वजनिक हाथकलाई द्वारा खादी का सार्वत्रिक उत्पादन और उपयोग, हिन्दू-मुस्लिम एकता या यों कहिए कि कौमी इत्तफ़ाक, शराब पीने की जिन्हें लत लगी हुई है उनमें प्रचार कार्य करने एकदम शराब बन्द कर देने के लिए उत्तेजन, और हिन्दुओं की तरफ़ से अस्पृश्यता का पूर्ण निवारण, इस कार्यक्रम में जबतक वे ग्रामवासियों को दिलचस्पी लेने वाला नहीं बनायेंगे, तबतक उनमें आत्मविश्वास, स्वाभिमान और अपनी स्थिति में सतत् सुधार करने की शक्ति नही आ सकती।

१९२० और १९२१ मे हजारों सभाओं में यह बतलाया गया था कि इन चार चीजो के बगैर अहिसा के मार्ग से स्वराज्य हासिल होना असम्भव है। मैं मानता हू कि आज भी मेरी इस बात में उतनी ही सचाई है। सरकारी व्यवस्था द्वारा टैक्सो का नियमन करके आम जनता की आर्थिक स्थिति को सुधारना यह एक चीज है, और उनके मन मे यह भावना पैदा करना कि उन्होने केवल अपने ही पुरुषार्थ से अपनी स्थिति को सुधारा है, यह बिल्कुल दूसरी ही चीज है। यह तो वे खुद अपने हाथ से सूत कात कर तथा गांवों की दूसरी दस्तकारियों के जरिये ही कर सकते हैं।

इसी तरह विभिन्न सम्प्रदायों या कौमों के पारस्परिक बर्ताव का नियम नेताओं की अपनी राजी से या राज्यद्वारा जबर्दस्ती लादे हुए समझौतों द्वारा करना, यह एक चीज है, और आम लोग एक दूसरे के धर्मो और बाहरी व्यवहारों के प्रति आदर-भाव रखने लगें, यह बिल्कुल जुदी ही चीज है। धारासभाओं के सदस्य और कांग्रेस के कार्यकर्त्ता गांवों के लोगो में पहुंचकर जबतक उन्हें परस्पर सहिष्णुता रखना नही सिखायेंगे तबतक यह चीज मुमकिन नही।

फिर कानून के बल पर शराब बन्द कराना, और यह तो करना ही पड़ेगा, एक चीज है और मद्यनिषेध का स्वेच्छा से पालन करके उसे कायम रखना यह दूसरी चीज है। खर्चीली और भारी जासूसी पद्धति के बगैर मद्यनिषेध का काम चल नही सकता, यह हताश और बैठे-ठाले मनुष्य ही कहते है। अगर कार्यकर्त्ता गांवों के लोगों के पास जावें और शराब जहां-जहां लोग पीते हों, वहां उसके बुरे परिणामों को अच्छी तरह समझावें तथा शोध करनेवाले विद्वान शराब पीने की लत के

कारणों को खोज निकालें और लोगों को उचित ज्ञान दिया जाय तो मद्यनिषेध का काम वगैर किसी खर्च के चल सकता है। इतना ही नही बल्कि उससे मुनाफ़ा हो सकता है। यह काम खास कर स्त्रियां कर सकती हैं।

यही वात अस्पृश्यता के बारे में है। अस्पृश्यता के दुष्परिणामों को कानून-द्वारा नष्ट हम भले कर दे और यह करना ही है पर जवतक लोग अपने दिल से छुआछूत की भावना को नही निकालेगे तबतक हमें सच्ची स्वतन्त्रता मिल नहीं सकती। आम जनता के हृदय से जबतक अस्पृश्यता की भावना दूर नहीं होगी, तबतक वे एकता के भाव से और एक हृदय से कदापि काम नही कर सकते।

इस प्रकार यह, और इस कार्यक्रम के अन्य तीनों अंग लोक-शिक्षा से भरे हुए है और अब तो तीन करोड़ स्त्री-पुरुषों के हाथ में ,सही या गलत रीति से सत्ता सौप दी गई है अतः यह काम तात्कालिक महत्व का हो गया है। यह सत्ता चाहे जितनी अल्प और सीमित हो, तो भी कांग्रेसवादियों और दूसरों के हाथ में जिन्हें कि इन मतदाताओं से वोट लेने हों, इन तीन करोड़ मनुष्यों को सही या ग़लत रास्ते से शिक्षा देने की शक्ति है। जो वस्तुएं उनके जीवन के साथ अत्यन्त निकट सम्वन्ध रखती हैं, उनमें उनकी विल्कुल ही उपेक्षा करना, यह गलत रास्ता है। —अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से०, २२।५।१९३७।]

३७. काशी-यात्रा के संस्मरण

तीर्थयात्रा

आज काशी-यात्रा दुगनी पवित्र हो उठी है। काशी का नाम लेते ही हर एक हिन्दुस्तानी के दिल में अपने पूर्वपुरुषों के आध्यात्मिक उत्तराधिकार की स्मृति ताजा हो उठती है। उसी काशी में आज भारतभूषण पण्डित मालवीयजी और गांधीजी, दोनों के दिल में देश की उत्कट भक्ति भरी हुई है, और उसी का वन्धन दोनों को एक दूसरे के साथ अटूट रूप से बांधे हुए हैं।

मालवीयजी ने अपने स्वप्नों को जिस हद तक सफल होते देखा है, उस हद तक बिरला ही कोई देख पाता है। जहां-जहां उन्होने लोगों में हिन्दुस्तान की प्राचीन संस्कृति या प्रेम पाया, वहां-वहां वे अपने इस स्वप्न की सिद्धि के लिए जा पहुंचे, और वहांवालों को अपने अनुकूल वना लिया। हिन्दुस्तान के अनेक हिन्दू राजा-महाराजा और धनी-मानी उनके मन्त्र से प्रभावित हुए। कहा जाता है कि एक दिन गंगाजी में स्नान करने के वाद जव वह उपासना में वैठे तो विश्व-

विद्यालय की सारी कल्पना उनके सामने मूर्त्त हो उठी। उन्होंने अपने पूज्य पिताजी से उसकी चर्चा की। पिता ने अपने श्रम से कमाये हुए १०१, एक सौ एक रुपये पुत्र को देते हुए आशीर्वादपूर्वक कहा कि यह रक़म एक करोड़ एक की हो जाय। आशीर्वाद सफल हुआ। पिछले पच्चीस वर्षो में मालवीयजी ने अपने विश्वविद्यालय के आंगन में एक के वाद एक अनेक भव्य भवन खड़े होते देखे है। देश के हजारो नवयुयक हर साल वहां पहुंचते है और मालवीयजी महाराज की शीतल छाया में अपना विकास करते हैं। बदले में इन शत-शत युवकों से उनका यौवन और उत्साह पा-पा कर मालवीयजी इस वुढापे में भी सवके गर्व और गौरव की वस्तु वने हुए है।

अतएव कोई आश्चर्य नही, यदि विश्वविद्यालय का रजत-जयन्ती उत्सव आभार और अभिनन्दन का एक अद्वितीय उत्सव वन गया हो। इस महोत्सव मे दूर और पास के हजारों नर-नारी एकत्र हुए थे। जव सर राधाकृष्णन् ने, जो अव पण्डितजी के सुयोग्य उत्तराधिकारी भी हैं, जीवेम शरदः शतम् की कामना के साथ अपने लाक्षणिक ढंग से मालवीयजी महाराज की प्रशंसा करते हुए यह कहा कि उनके समान ऋषियों के कारण तीर्थ वास्तविक तीर्थ बनते है, वह तीर्थो को भी सच्चे तीर्थ वनाने का सामर्थ्य रखते है—"तीर्थकुर्वन्ति तीर्थाणि"—तो मानो उन्होने लोक-हृदय की भावना को ही प्रतिध्वनित किया।

अधूरा स्वप्न

तिस पर भी मालवीयजी महाराज के विचार में उनके स्वप्नों की सिद्धि अभी वहुत दूर है। हाल ही पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी की 'तीस दिन मालवीय जी के साथ' नामक एक पुस्तक सस्ता साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है, जिसमें उन्होने मालवीय जी की दिनचर्या की और उनके मनोरथों की थोडी झलक दिखाई है। आज भी मालवीय जी अपने डाक्टर से कहते है—"डाक्टर साहव मुझे जल्द अच्छा कीजिए, मै एक वार फिर अपने प्यारे देश में घूमना चाहता हूं, अभी वहुत काम वाकी रहा है। "मेरी वड़ी लालसा थी कि विश्व-विद्यालय में एक म्यूज़िक कालेज (संगीत विद्यालय) भी होता, जहां विद्यार्थी संगीत सीखते और भक्तिमय संगीत मे अनुप्राणिन होकर अपने जीवन-कार्य मे लगे रहते। विश्व-विद्यालय में नालन्दा की तरह दस हजार विद्यार्थियो की शिक्षा का प्रवन्ध हो जाय, तव अहक वुताय। क्या ही अच्छा हो, यदि ये विद्यार्थी यहा रहकर अपनी भव्य प्राचीन सस्कृति को सजीवन करते हुए विद्याध्ययन करें।" एक दिन सुन्दर चांदनी को देखकर कह उठे—"कैसा सुहावना दृश्य है ! विश्व-विद्यालय में इतनी

जगह है कि इसमें त्यागी विद्वान् अलग-अलग आश्रम बनाकर रहें और अपने-अपने ज्ञान का उपदेश करें. तो कितना अच्छा हो। कहीं वशिष्ठ, कही अत्रि, कहीं गौतम और कहीं अंगिरा हों, तब विश्व-विद्यालय का उद्देश्य सफल हो।" कभी कहते हैं—"मेरी इच्छा है कि युनिवर्सिटी में कुछ विद्वानों को नियुक्त करके तुलसीदास के ग्रन्थों के शुद्ध पाठ तैयार कराऊं और उन पाठों को सर्वमान्य बनवाऊं। इसी तरह अन्य प्राचीन सन्तों, महात्माओं और लोक-हितैषी कवियों के ग्रन्थों के शुद्ध पाठ तैयार कराके जनता तक पहुंचाऊं।" कभी कहते हैं—"मैने विश्व-विद्यालय की सड़कों के कुछ नाम सोच रक्खे हैं, जैसे—सत्य हरिश्चन्द्र सड़क, युधिष्ठिर सड़क, हनुमान सड़क, अशोक सड़क, राणाप्रताप सड़क।" कभी कहते हैं—"नही, नहीं, ग़रीब छात्रों को जितनी दे सकें, छात्रवृत्तियां दीजिए। कौन कह सकता है कि इन गरीबों में कितने ध्रुव, कितने शिवाजी, और कितने राणाप्रताप छिपे है।" एक दिन बोले—"मैंने जान-बूझकर गीता का यह साप्ताहिक वर्ग शुरू करवाया है, जिससे हमारे इस ग्रन्थरत्न का नियमित पारायण हो सके और विद्यार्थियों को उससे प्रेरणा मिल सके।"

पहरेदार की चेतावनी

औरों की तरह गांधीजी भी वहां एक यात्री ही थे। किन्तु उन्हें पहरेदार का काम भी करना था। उपाधि-वितरण के अवसर पर दीक्षान्त भाषण करना गांधीजी का काम नही। उनका वह रास्ता नही। उन्होंने देखा कि जिन लोगों को मालवीयजी के समान महर्षि का उत्तराधिकार सँभालना है, और संभालकर उनके स्वप्नों को सफल बनाने के लिए जुट कर काम करना है, वे कही उत्सव के आनन्द में अपने उस कर्त्तव्य को भूल न जायं। यही सोचकर उन्होंने चेतावनी देने का काम अपने जिम्मे ले लिया।

पच्चीस साल पहले भी उन्होंने इसी जगह यही काम किया था। उस समय दरभंगा के स्वर्गीय महाराजा ने गांधीजी का स्वागत करते हुए कहा था:—"यद्यपि वह (गांधीजी) धन और वैभव के बीच पले हैं, तथापि उन्होने अपनी इच्छा से गरीबों के साथ रहने व गरीव वनने का मार्ग स्वीकार किया है।" उस समय महाराजा को यह ख़याल नहीं था कि गांधीजी अपने इस वर्णन को सच्चा साबित कर दिखायेंगे। किन्तु मालवीयजी जानते थे। उन्होंने गांधीजी को अपने दिल की सब बातें कह रक्खी थी। गांधीजी भी जानते थे कि मालवीयजी को विश्वविद्यालय के लिए सरकारी चार्टर प्राप्त करने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। वह मालवीयजी के अधूरे मनोरथों से भी परिचित थे।

मालवीयजी उन दिनों सर हारकोर्ट बटलर से, जो वाइसराय की कार्यकारिणी समिति के शिक्षा-सदस्य थे, मिले थे और उनसे कहा था कि युनिर्वासिटी में शिक्षा हिन्दी द्वारा दी जायगी। सर हारकोर्ट अपने काम में पक्के थे। उन्होंने कहा:— "सो नही होगा। अगर आप यही करना चाहते है, तो अपने पैरों खड़े रहिए, और सरकारी सहायता या स्वीकृति की अपेक्षा न रखिए। जबतक आप अपना काम अंग्रेजी में करते हैं, हम अपने को सलामत समझते है, क्योकि हम जान सकते हैं कि आप कहां है और क्या करना चाहते है। लेकिन अगर आप अपनी भाषा मे काम करने लगेंगे तो हमें कुछ भी पता न चलेगा।" मालवीयजी का स्वभाव है कि वह अपने विरोधी के साथ झट समझौता कर लेते है, और अक्सर उन्होंने समझौता करने में जरूरत से ज्यादा जल्दी की है, इसलिए वह वचनबद्ध हो गये कि इसका आग्रह न रक्खेंगे। लेकिन गांधीजी इस तरह माननेवाले न थे। मालवीयजी जानते थे कि उस अवसर पर गांधीजी क्या कहेंगे। गांधीजी ने उन्हें पहले से सचेत भी कर दिया था, लेकिन उन्होंने गांधीजी की एक न सुनी। कहा—" "आपको भाषण तो करना ही होगा, शर्त यह है कि अंग्रेजी मे कीजिए।" और कहा:—"आप जो कहना चाहे, खुशी से कहिए।" फलतः गांधीजी ने सभा के सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया। आज भी उनके उस भाषण की ताजगी क़ायम है। इस बार की तरह उस बार भी वह बिना किसी तैयारी के, जो समय पर सूझा, बोल गये थे। उस समय वे ठीक शब्द शायद आज उन्हें याद भी न हों, लेकिन उसमें भी वही झलक मौजूद है और भाषा भी क़रीब-क़रीब वही है। उस दिन भाषण शुरू करते हुए उन्होने कहा था: "आज इस महान् कालेज की छाया में, इस तीर्थभूमि मे, मुझे अपने देशवासियों के सामने विदेशी भाषा मे बोलना पड़ रहा है, यह मेरे लिए बहुत ही दु:ख और लज्जा का विषय है।" और यह आशा व्यक्त की थी कि—"इस विश्व-विद्यालय में पढ़ने आनेवाले विद्यार्थियों को देशी भाषाओं-द्वारा पढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा. . .यदि आज हमें अपनी देशी भाषाओं द्वारा पढ़ाया जाता, तो हमारी स्थिति कितनी अच्छी होती? आज हम स्वतन्त्र भारतवर्ष में रहते होते, हमारे पढ़े-लिखे लोग अपने ही देश में परदेशी जैसे न बन गये होते, बल्कि उनकी आवाज़ देश की जनता के हृदय तक पहुंची होती, वे ग़रीब-से-गरीब लोगो के बीच काम करते होते, और पिछले पचास वर्षो मे उन्होने जो कुछ पाया है, उसका लाभ आम जनता को भी मिला होता।" उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि यह हमारे नौजवानों के मार्ग की बड़ी-से-बड़ी बाधा है; इसके कारण जनता के हजारों वर्ष व्यर्थ ही नष्ट हुए है। फिर उन्होने श्रोताओं को अपने दिल की बात सुनाई। उन्होंने अपने चारों ओर आंख उठा कर

जो देखा तो तड़क-भड़क का पार न था और रत्नाभूषणों का आंखों में चकाचौंध पैदा करनेवाला प्रदर्शन था। यह देख गांधीजी रत्नाभूषणों से अलंकृत उन राजा-महाराजाओं को लक्ष्य करके यह कहे बिना न रह सके कि जबतक आप इन जवाहरात को उतार नहीं देते और इन्हें अपने देशवासियों की धरोहर समझ कर इनके ट्रस्टी नहीं बनते, हिन्दुस्तान का उद्धार नहीं हो सकेगा।

यहां मैं उस सारे भाषण का सार नहीं दूंगा। जिज्ञासु पाठक आज भी उसे पढ़कर उससे लाभ उठा सकते हैं। इसके बाद, सचमुच तो गांधीजी ने बमगोलों की नीति में विश्वास करनेवाले लोगों की आलोचना करते हुए जो चन्द बातें कही, वे उस समय उनकी बात को न सूझ सकनेवाले सभाजनों को अच्छी न लगी, इसलिए सभा में उपस्थित बहुत से बड़े-बड़े लोग एक साथ उठ कर चले गये। आज समय बदल गया है। २५ बरस पहले जो बातें कही थी, उनसे कहीं कड़ुई बातें वह इस दरम्यान सुना चुके है, फलतः जब गत २१ जनवरी की शाम को उन्होंने हिन्दुस्तानी में अपना भाषण शुरू किया, तो किसी ने यह अनुभव नहीं किया कि कोई अनहोनी बात हो रही है। लेकिन अभी तो विश्व-विद्यालय को मालवीयजी और गांधीजी के स्वप्न सिद्ध करके दिखाने है। जब अस्सी बरस के मालवीयजी ने गांधीजी की एक-एक बात का समर्थन करते हुए उस विशाल जन-समूह के सामने अपनी शुद्ध और अस्खलित हिन्दी में गंगा के प्रवाह-सा अपना वाणी-प्रवाह बहाना शुरू किया, तो सुनकर मन प्रसन्न हो उठा। जैसा कि गांधीजी ने कहा है—"सूरज तो सदा ही प्रकाश और गरमी पहुंचाता रहता है, लेकिन जो लोग उससे दूर भागकर ठण्ड में ठिठुरते और अंधेरे में छिप जाते हैं, उनके लिए सूरज भी क्या करे?" विद्यार्थियों को तो मालवीयजी के आशीर्वाद उनके अपने रचे इस संस्कृत श्लोक के रूप में सदा ही प्राप्त है:

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेन विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

(अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति और त्याग द्वारा सदा सम्माननीय बनो।)

—अंग्रेजी। सेवाग्राम, १।२।१९४२। ह० ज०। ह० से०, २२।२।१९४२। श्री महादेव देसाई लिखित विवरण से।]

३८. साप्ताहिक पत्र : मसूरी में गांधीजी

उन लोगों के सिवा जो गांधीजी के बिल्कुल पास रहते हैं, बहुत कम ऐसे हैं,

जो यह जानते हों कि गांधीजी अपने पाखाने को लायब्रेरी कहते हैं। यह सिर्फ नाम की ही बात नही, असल में भी ऐसा ही है। उन्होने अपनी इस लायब्रेरी में इतना पढ़ा है, जितना एक आम आदमी सारी उम्र में नही पढ़ता। सबसे गहरा सोच-विचार भी उन्होने इसी जगह किया है। मुझे याद है कि कम-से-कम तीन ऐसे मौके थे, जब उन्होंने बड़े ही महत्वपूर्ण फैसले इस स्थान की तनहाई मे किये, और यही एक स्थान है, जहां उन्हें तनहाई मिल भी सकती है। लायब्रेरी का शब्द गांधीजी ने अपने एक दोस्त से लिया था, जिनकी वह बड़ी इज्ज़त करते है। गाधीजी हमेशा बहुत रसपूर्वक बयान किया करते है कि उनके उन दोस्त का पाखाना इतना साफ़ रहता था कि आदमी बहुत आराम से उसमे बैठकर पढ़ सकता था। उन्होने अपने पाट के पास किताबों की एक आलमारी भी लगा रक्खी थी। पिछले इतवार की प्रार्थना में गांधीजी ने मसूरी के लोगों से ग़रीबों के लिए एक धर्मशाला या मुसाफिरखाना बनवाने की जरूरत का जिक्र करते हुए कहा—"ग़रीबों के पाखाने भी लायब्रेरी या रसोई की तरह साफ़-सुथरे होने चाहिए। उसमे गन्दगी और बू तो नाम को भी न हो। आप शायद समझे कि मै मज़ाक कर रहा हूं, लेकिन असल में बात यह है कि जाती सफाई का और अपने इर्दगिर्द हद दरजे की सफ़ाई का खयाल समाजी जीवन की सबसे पहली मंजिल है। हिन्दुस्तान मे हमने सफाई को नित्य धर्म में जगह दी है। लेकिन यह दावा अभी हमें साबित करना है कि हममे सफ़ाई का वह तत्त्व है। मैंने अपनी आंखों देखा है कि हम अपनी पवित्र नदियो के किनारो को किस बुरी तरह गन्दा करते है। गंगा के पानी को हम पवित्र मानते है और समझते है कि वह हमारे पाप धो सकता है। इसका मतलब दर असल यह है कि जिस तरह पानी हमारे शरीर धो देता है, भक्त प्रार्थना करता है और आशा रखता है कि, उसी तरह दिव्य पानी उसके दिल को शुद्ध कर देगा। लेकिन अगर आज की तरह हम अपनी पवित्र नदियों को ही गन्दा करते रहेंगे, तो उनका पानी हमारी आत्मा को कैसे शुद्ध कर सकेगा?

गांधीजी ने सुना था कि मसूरी में मजदूरो के रहने-सहने की हालत बहुत बुरी है। वे छोटे-छोटे, गन्दे और बदबूदार कमरों मे ठुसे रहते है। वे बोले: इस पर हम किसी को ध्यान देना चाहिए। हम सब एक है। अगर हमने अपने घर साफ़ कर लिये और पड़ोसियों के घरो की परवाह न की, तो हमें बीमारी वगैरा के रूप में इसकी सजा भुगतनी पड़ेगी। पच्छिमवालों ने अपने मुल्कों को प्लेग के पंजे से छुड़ा लिया है। मैने खुद देखा है कि जोहान्सबर्ग की म्युनिसिपल कमेटी ने इस तेजी और मेहनत से काम किया कि फैला हुआ प्लेग फौरन काबू में आ गया और ऐसा गया कि दुबारा नही आया। लेकिन हिन्दुस्तान में वह बार-बार आया करता

हैं। यहां तक कि वह बारहों महीने रहने लगा है। इसका इलाज हमारे अपने हाथ में है। हम अपने जीवन में तो सफाई और सेहत के उसूल पालें ही, लेकिन साथ-साथ यह भी देखें कि हमारे पड़ोसी भी वैसा ही करें। इस बारे में गफ़लत करना पाप है, जिसकी सजा हमें भुगतनी ही पड़ती है। धनी लोग भले अपना धन रक्खें, लेकिन शर्त यह है कि वे ग़रीबों को न भूलें। वे उनको अपने पैसों में से हिस्सा दें, और दूसरों का खून चूसकर पैसा न कमायें।

गौ-मक्खी

सुकरात अपने-आपको गौमक्खी कहता था। उसके जीवन का ध्येय था—अमीरों और ताक़तवर लोगों के विश्वास को हिलाना और उनकी आत्मा को जाग्रत करना। गांधीजी ने भी मसूरी के अमीर और शौक़ीन लोगों की आत्मा को ग़फ़लत की नीद सोने न दिया। मगर हां, इसके साथ-साथ राम-नाम का चैन देनेवाला सन्देश भी वह देते रहते थे। दूसरे दिन उन्होंने कहा—"राम-नाम सिर्फ चन्द ख़ास आदमियों के लिए नही है, वह सबके लिए है। जो उसका नाम लेता है, वह अपने लिए एक भारी खजाना जमा करता जाता है। और यह तो एक ऐसा खज़ाना है, जो कभी खुटता नहीं। जितना इसमें से निकालो, उतना बढ़ता ही जाता है। इसका अन्त ही नही। और जैसा कि उपनिषद् कहता है: पूर्ण में से पूर्ण निकालो, तो पूर्ण ही बाक़ी रह जाता है, वैसे ही राम-नाम तमाम बीमारियों का एक शर्तिया इलाज है, फिर चाहे वे शारीरिक हों, मानसिक हों, या आध्यात्मिक। राम-नाम ईश्वर के कई नामों में से एक है। सच्ची बात तो यह है कि दुनिया में जितने इनसान है, उतने ही ईश्वर के नाम। आप राम की जगह कृष्ण कहें या ईश्वर के अनगिनत नामों में से कोई और नाम लें, तो उससे कोई फर्क न पडेगा। गांधीजी को बचपन ही में राम-नाम का मन्त्र उनकी आया से मिला था। उसका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा—

"अँधेरे में मुझे भूत-प्रेत का डर लगा करता था। मेरी आया ने मुझसे कहा था—अगर तुम राम-नाम लोगे, तो तमाम भूत-प्रेत भाग जायंगे। मैं तो बच्चा ही था, लेकिन आया की बात पर मेरी श्रद्धा थी। मैंने उसकी सलाह पर पूरा-पूरा अमल किया। इससे मेरा डर भाग गया। अगर एक बच्चे का यह तजुरबा है, तो सोचिए कि बड़े आदमियों के बुद्धि और श्रद्धा के साथ राम-नाम लेने से उन्हें कितना फ़ायदा हो सकता है?

"लेकिन शर्त यह है कि राम-नाम दिल से निकले। क्या बुरे विचार आपके मन में आते है? क्या काम या लोभ आपको सताते हैं? अगर ऐसा है, तो राम-

नाम-जैसा कोई जादू नही। और उन्होंने अपना मतलव एक मिसाल देकर समझाया : फ़र्ज कीजिए कि आपके मन में यह लालच पैदा होता है कि वगैर मेहनत किये, वेईमानी के तरीके से, आप लाखों कमा लें। लेकिन अगर आपको राम-नाम पर श्रद्धा है, तो आप सोचेंगे कि अपने वीवी-वच्चों के लिए आप ऐसी दौलत क्यों इकट्ठा करें, जिसे वे शायद उड़ा दें? अच्छे चाल-चलन और अच्छी शिक्षा एवं संस्कृति के रूप में उनके लिए ऐसी विरासत क्यों न छोड़ जाये, जिससे वे ईमानदारी और मेहनत के साथ अपनी रोटी कमा सकें? आप यह सव सोचते तो है, लेकिन कर नही पाते। मगर राम-नाम का निरन्तर जप चलता रहे, तो एक दिन वह आपके कण्ठ से हृदय तक उतर आयगा, और वह रामवाण चीज सावित होगा। वह आपके सब भ्रम मिटा देगा, आपके झूठे मोह और अज्ञान को छुड़ा देगा। तव आप समझ जायंगे कि आप कितने पागल थे, जो अपने वाल-वच्चों के लिए करोड़ों की इच्छा करते थे, वजाय इसके कि उन्हें राम-नाम का वह खजाना देते, जिसकी कीमत कोई पा नही सकता, जो हमें भटकने नही देता, जो मुक्तिदाता है। आप खुशी से फूले नहीं समायेंगे। अपने वाल-वच्चों से और अपनी पत्नी से कहेंगे: मैं करोड़ों कमाने गया था, मगर वह कमाना तो भूल गया। दूसरे करोड़ लाया हूं। आपकी पत्नी पूछेगी : कहां है वह हीरा, जरा देखूं तो। जवाव में आपकी आंखें हंसेंगी, मुंह हंसेगा, आहिस्ता से आप जवाव देंगे : जो करोड़ों का पति है, उसे हृदय मे रखकर आया हूं। तुम भी चैन से रहोगी, मैं भी चैन से रहूंगा।'

पाप की गठरी

शिमले की तरह मसूरी मे भी गांधीजी ने कई दफ़ा लोगों के पाप की गठरी को झटका दिया। रिक्शा खीचनेवालों और वोझ उठानेवालों के वारे में कहा—"सबको उनकी फिक्र होनी चाहिए।' वे अमीरों की अमीराना जिन्दगी सम्भव वनाते है। लेकिन लोग उनके कन्धों पर वैठते हैं। कभी कोई उनसे यह भी पूछता है कि कहां रहते हो? क्या खाते हो? तुम्हारे पास रहने को घर है?" गांधी जी ने सुना था कि ये वेचारे कवूतरखानों जैसे छोटे-छोटे कमरों में रहते है, जिनमें पूरी रोशनी नहीं आती, खुली हवा नही आती। एक कमरे में कितने आदमी रहते है, सो कहते भी इसलिए डरते है कि कही कोई उन्हें वहां से निकाल न दे, सजा न हो जाय। उनके कपड़े गन्दे होते हैं। शायद उनके पास वदलने के लिए कपड़े ही नही होते। शायद उनकी हालत भी विहार की उस औरत की-सी है, जिसे कस्तूरवा ने पूछा था कि वह अपने कपड़े क्यों नही धोती? और उसने कहा था : आप जाकर गांधीजी

से कह दें कि वह मुझे बदलने के लिए कपड़े दें, ताकि मैं उन्हें धो सकूं। मेरे पास यह एक ही साड़ी है। विश्वास न हो, तो चलकर सन्दूक देख लें। यह साड़ी जबतक बिल्कुल फट नहीं जायगी, मैं इसे उतार न सकूंगी। धोऊं तो नंगी रहूं न?' जिनको खुदा ने ज़रूरत से ज्यादा दिया है, उनका फर्ज हो जाता है कि वे बाक़ी रक़म ग़रीबों पर खर्च करें। गांधीजी को बताया गया था कि अब सूबे में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल है। वह मज़दूरों के लिए हर जगह मकान बनवायेगा। गांधीजी ने कहा—अगर वह ऐसा करे, तो अच्छा ही है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि रिक्शा पर चढ़नेवाला अपना फर्ज भूल जायं। डाक्टरों ने गांधीजी को बताया था कि रिक्शावाले बेचारे ४-५ साल तक रिक्शा खींचने के बाद जल्द ही दिल या फेफड़ों की बीमारी से मर जाते हैं। रहने को कोई अच्छी जगह उन्हें नहीं दी जाती, मज़दूरी भी काफ़ी नहीं मिलती, पहनने को काफी कपड़े नहीं, शक्ति से ज्यादा काम करना पड़ता है। लोग यह सब कुछ कैसे बरदाश्त करते हैं।

—नई दिल्ली, १०।६।१९४६। ह० ज०। ह० से०, १६।६।१९४६। प्यारेलाल जी के साप्ताहिक पत्र से।]

३९. मसूरी की कुछ यादें

गांधीजी मसूरी में दस दिन की छुट्टी बिताने गये थे। इस छुट्टी से उनका मतलब सिर्फ पब्लिक जलसों और मुलाकातों से बचना ही था। लेकिन इसमें वह पूरे-पूरे कामयाब नहीं हुए। कुछ विदेशी अख़बारनवीसों ने उन्हें उनके एकान्त में भी जा ढूंढ़ा और उनके साथ ऐसे मामलों पर बातचीत की, जिनमें उन्हें भी और गांधीजी को भी खास दिलचस्पी थी। हां, राजनीति की मनाही थी। गांधीजी उनसे सुबह टहलते वक्त मिला करते थे।

तरक्की के रास्ते में रोड़ा

एक ने कहा : आपका खादी का ग्राम-उद्योग और देहात का आर्थिक प्रोग्राम खेती-बारी करनेवाले मुल्कों को बहुत पसन्द आयेगा। मसलन्, बाल्कन के मुल्क। लेकिन हममें से बहुतों को, और आपके मुल्क के बहुतेरे लोगों को भी ऐसा लगता है कि यह तरक्की के रास्ते में एक रोड़ा है। बहुत से लोगों का ख़याल है कि बहुत बड़े पैमानों पर योजनाओं के नक्शे बनने और कारखाने खुलने जरूरी हैं।

गांधीजी ने जवाब में पूछा : मेरी समझ में नहीं आता कि मेरा कार्यक्रम (प्रोग्राम) कैसे हिन्दुस्तान की तरक्की में रुकावट डाल सकता है? हिन्दुस्तान तो ख़ासकर देहाती मुल्क है, जिसकी ज्यादातर आबादी उसके सात लाख गांवों में बसी हुई है।

मुलाक़ाती ने वहस वदलते हुए यह दलील पेश की कि यह शहरों के साथ वेइन्साफी होगी। भला, कलकत्ता और वम्वई-जैसे वड़े शहरों का क्या होगा?

गांधीजी ने जवाव दिया हकीकत इससे उलटी है। मेरी निगाह में शहरों का वढना एक वुरी चीज़ है। यह मनुष्य-जाति की और दुनिया की एक वदकिस्मती है, इंग्लैण्ड की वदकिस्मती है, और हिन्दुस्तान की वदक़िस्मती तो है ही, क्योंकि अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को उसके शहरों की मार्फत ही चूसा है। शहरों ने गांवों को चूसा है। देहात का खून वह सिमेण्ट है, जिससे शहरों की वड़ी-वड़ी इमारतें वनी है। मैं चाहता हूं कि जिस खून ने आज शहरों की नाड़ियों को फुला रखा है, वह फिर से देहात की नाड़ियों में वहने लगे।

लेकिन उन भाई को तसल्ली न हुई। उन्होंने दलील की: माना कि एक वार गलती हो चुकी। पर मेरे खयाल में अव आपका यह मतलव तो नही है कि जहां से चले थे, ठीक वहीं वापस लौट जाया जाय, चाहे इसमें आज तक का वना-वनाया सव काम चौपट ही क्यों न हो जाय।

गांधीजी ने जवाव दिया : क्यों नहीं? एक वार ग़लती का पता लगने पर हमारे पास एक ही रास्ता रहता है कि अपनी ग़लती को मान लें, अपने क़दम वापस लौटा लें, और फिर से काम शुरू करें।

लेकिन वह भाई अपनी वात पर डटे रहे। वोले : सो कुछ भी हो। मगर आज के ज़माने में ख़याल यह किया जाता है कि इस मामले में पीछे क़दम हटाना तरक्की का रास्ता नहीं।

गांधीजी ने जवाव में पूछा : अगर कोई जहाज समन्दर में अपना रास्ता खो बैठता है, तो आप क्या करते हैं? वह ग़लत रास्ते पर वढ़ता तो नहीं जाता, बल्कि जिस रास्ते से आया था, उसी रास्ते फौरन लौट पड़ता है, और फिर सही रास्ते चलना शुरू करता है। कोलम्वस ने ऐसा कितनी ही दफ़ा किया होगा। नही तो वह हमेशा के लिए अपना रास्ता खो वैठता।

वह भाई पूछने लगे : क्या इसका मतलव यह है कि आप शहरों को उजाड़कर वहां की तमाम वस्ती को देहात मे वापस भेज देंगे?

नही, ऐसा तो मैं नही करूंगा। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूं कि वे अपनी ज़िन्दगी को इस तरह वदलें, जिससे देहातियों को चूसते न रहें, और अव भी पुरानी वेइन्साफी का जितना वदला उन्हे दे सकते है, दे दें और उनके वरवाद हुए आर्थिक जीवन को फिर से आवाद करने मे मदद दें।

इसके वाद मुलाकाती ने वातचीत का मजमून वदलते हुए पूछा :

अगर आपको एक दिन के लिए हिन्दुस्तान का डिक्टेटर वना दिया जाय, तो आप क्या करेंगे?

गांधीजी ने जवाब दिया: पहले तो मैं डिक्टेटर बनूंगा ही नहीं, और अगर एक दिन के लिए बना भी, तो उसे वाइसराय के अस्तवल साफ़ करने में लगाऊंगा, क्योंकि हरिजनों के इन तंग और अन्धेरे झोपड़ों को दूसरा और क्या नाम दिया जा सकता है? यह बड़ी शर्म की बात है कि वाइसराय के साये में ही हरिजनों के इन झोपड़ों में इतनी ग़रीबी और गन्दगी मौजूद है। वाइसराय को इतने बड़े घर की जरूरत ही क्या है? अगर मेरा बस चले, तो मै उसको अस्पताल बना दूं। और उन्होंने प्रेसीडेण्ट क्रूगर की मिसाल दी, जिनके घर से तो बिड़ला जी का बंगला भी, जिसमें गांधी ठहरे हुए थे, ज्यादा अच्छा था।

वात को जारी रखते हुए वह भाई कहने लगे: अच्छा जनाव, फर्ज कीजिए कि आपको दूसरे दिन भी डिक्टेटर रक्खा जाय, तो आप क्या करेंगे?

गांधीजी ने हँसते हुए जवाव दिया: दूसरा दिन भी पहले दिन की तरह ही खर्च होगा। इसके बाद बहुत सी दूसरी चीजों पर बातचीत चली, हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा, अंग्रेजी की जगह, आजाद हिन्दुस्तान के सामने आनेवाली शासन-प्रबन्ध की कठिनाइयां, और हिन्दुस्तान व इंग्लैण्ड के भावी व्यापारिक सम्बन्ध तथा हिन्दुस्तान की ग़रीबी की बात करते हुए बन्दरों की चर्चा भी आ गई।

मुलाक़ाती एकाएक पूछने लगे: क्या हिन्दुस्तानियों की गरीबी वन्दरों की वजह से नही है?

गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे: हां। इसके वाद भी वह कुछ देर हँसते रहे। बेचारे मुलाक़ाती घबरा-से गये और कहने लगे: श्रीमती नायडू ने मुझे आपके विनोदी स्वभाव से आगाह कर दिया था।

मैं अभी उसी की एक बानगी आपको चखानेवाला था, लेकिन मैंने अपने को रोक लिया। थोड़ी देर और हँसने के बाद कहने लगे, अच्छा, आपको असल कहानी ही सुना दूं। हमारे मुल्क में अंग्रेजों को वन्दर कहते है। रावण की लड़ाई में बन्दरों ने रामचन्द्र जी की मदद की थी। उसके वदले में उन्हें आशीर्वाद मिला था कि उन्हें चक्रवर्ती राज मिलेगा।' सब हंस पड़े और मुलाक़ाती भी इस हंसी में शामिल हो गये।

इसके बाद अहिंसा पर बात चली।

मुलाक़ाती पूछने लगे: मसलन, रूस के साथ हिन्दुस्तान का क्या सम्बन्ध होगा? अगर वह हिन्दुस्तान पर हमला करे, तो आप क्या करेंगे?

अगर मै डिक्टेटर रहा, तो रूस के लिए यहां कोई काम ही न होगा। और अगर रूस आ ही गया, तो देखेगा कि यहां रहने में उसे कोई फायदा नही। लेकिन जाहिर है कि यह सपना इतना सच्चा है कि एक दिन में हम इस तक नही पहुंच सकते।

फिर वह भाई पूछने लगे : पुरानी पीढ़ी के तमाम लायक़ हिन्दुस्तानियों ने तो विलायत में ही ऊंची तालीम पाई, जैसे, आपने। क्या हिन्दुस्तान के आजाद हो जाने पर भी आप चाहेंगे कि वह अपने नौजवानों को तालीम के लिए पहले की तरह इंग्लैण्ड भेजता रहे?

गांधीजी ने जवाब दिया : नही, अभी नही। मैं ४० साल के वाद उन्हें वाहर भेजने की सलाह दूंगा।

वह भाई कहने लगे : इसका मतलव यह है कि हिन्दुस्तान की दो पीढियां पच्छिम से कोई फ़ायदा नही उठा सकेंगी।

इस पर गांधीजी ने फिर वही अपने १२५ साल तक जिन्दा रहने की वात छेड़ी।

गांधीजी ने पूछा : दो पीढ़ियां क्यो? एक आदमी की जिन्दगी मे ४० साल तो ठीक, ६० साल भी वहुत ज्यादा नहीं होते। अगर हम ठीक किस्म का जीवन वितायें, तो हम ६० वरस में वूढे नहीं हो जायेंगे। वदकिस्मती से इस मुल्क में हम इस उम्र मे वूढ़े हो जाते है। मै फिर कहूंगा कि उन्हे (विद्यार्थियों को) तभी विलायत जाना चाहिए, जव वे पक्की उम्र को पहुंच जायं। क्योकि जव वे अपनी सभ्यता की अच्छाई को समझ लेंगे, तभी वे अमेरिका और इंग्लैण्ड की अच्छाई को ठीक तरह से समझ कर अपना सकेंगे। जरा खयाल कीजिए कि एक १७ साल का लड़का विलायत जाता है, जैसे मै गया था, तो क्या होगा? यह तो वहां पहुंचकर विल्कुल घवरा जायगा।

एक और दोस्त ने गांधीजी से एक शाम को कहा : गांधीजी, आप हमें आज़ादी की ड्योढ़ी तक ले आये है, और इसके लिए हम आपको जितना धन्यवाद दें, कम है। मुझे पक्का विश्वास है, कि आप इसका सारा जस अहिंसा को ही देंगे। क्योंकि वह आपकी सबसे प्यारी चीज़ है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि हमको अहिंसा के वजाय सचाई से ज्यादा ताक़त मिली है।

गांधीजी ने जवाद दिया : आपका यह खयाल है कि मैंने अहिंसा की तरफदारी करके सचाई को दूसरी जगह दी है। आपका यह समझना भी उतना ही ग़लत है कि हमें सचाई ने अहिंसा से ज्यादा शक्ति दी है। इसके वरखिलाफ मुझे तो पूरा विश्वास है कि जो कुछ तरक्की देश ने की वे, वह इसी वजह से की है कि उसने अहिंसा को अपनी लड़ाई का हथियार वना लिया है।

उन दोस्त ने जवाव दिया : मेरा मतलव यह है कि मुल्क ने आपकी अहिंसा को नही समझा, लेकिन सचाई को समझ लिया है और उसने मुल्क की ताक़त वढ़ाई है।

गांधीजी ने जवाव दिया : वात तो विल्कुल इससे उलटी है। मुल्क में इतना

असत्य भरा है कि कई दफ़ा मेरा तो दम घुटने लगता है। मेरा विश्वास है कि अहिंसा का पालन ही हमें यहां तक ले आया है, चाहे उसमें कितने ही दोष क्यों न रहे हों।

और फिर, जैसा कि आपका खयाल है, मैंने सचाई को दूसरा स्थान नहीं दिया। गांधीजी ने बताया कि जिस तरह जिनेवा के एक जलसे में उन्होंने लोगों को यह कहकर चक्कर में डाल दिया था कि पहले तो वह यह कहा करते थे कि परमेश्वर सत्य है, मगर जब वह इस नतीजे पर पहुंचे है कि सत्य ही परमेश्वर है।

लेकिन दोस्त हार मानने को तैयार नहीं थे। इसलिए दलील करते गये : फिर भी आपका जोर हमेशा अहिंसा पर रहा है। आपने अहिंसा को फैलाना अपना ध्येय बना लिया है।

गांधीजी ने जवाब दिया : आप यहां भी ग़लती पर हैं। अहिंसा साध्य नहीं है। साध्य सत्य है। लेकिन हम सचाई का दर्शन सिर्फ अहिंसा का पालन करते हुए ही कर सकते है। मगर हिंसा का यह जरूरी नतीजा नही। अगर हम एकदिल होकर अहिंसा के पीछे चलें, तो वह लाजिमी तौर पर हमें सत्य के पास ले जायगी। इसीलिए मैं अहिंसा की हिमायत करता हूं। सचाई मेरे स्वभाव में थी। मगर अहिंसा मुझे बड़े कष्ट और मेहनत से मिली है। लेकिन चूंकि अहिसा साधन या जरिया है, इसलिए रोजमर्रा की ज़िन्दगी में इसी से हमारा वास्ता पड़ता है। इसलिए हमें जनता को अहिसा की तालीम देनी है। सत्य की तालीम इससे अपने-आप मिल जाती वे, क्योंकि वह उसका कुदरती नतीजा है।

—नई दिल्ली, १७।६।१९४६। ह० ज०। ह० से०, २३।६।१९४६। प्यारेलालजी-लिखित विवरण से।]

४०. हरद्वार के निराश्रितों के बीच : २१ जून १९४७

सरहदी सूबे के कई और पंजाब के कुछ निराश्रित गांधीजी से भंगी-बस्ती में मिले और उन्हें अपने दुःख-दर्द की कहानी सुनाई। उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया कि वे हरद्वार आकर निराश्रितों की छावनियों को देखें। इसलिए २१ जून को गांधीजी पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ मोटर में हरद्वार गये। वह मुझे डाक्टरी मुआइने के लिए अपने साथ ले गये।

हरद्वार के निराश्रित पांच या छः छावनियों में बँटे हुए हैं। गांधीजी ने जिस दिन उस जगह का मुआइना किया, उस दिन निराश्रितों की संख्या ३२००० थी। मैंने सब छवनियों का मुआइना किया। मारवाड़ी राहत सोसायटी और बिरला बन्धुओं द्वारा चलाई जानेवाली छावनियों को, जहां बहुत थोड़े लोगों के रहने और खाने-पीने की सुविधाएं दी जाती हैं, छोड़कर दूसरी सब छावनियों की हालत

सन्तोष के लायक़ नहीं थी। गन्दगी और कूड़े-करकट के वीच मर्द, औरत और बच्चों को एक साथ ठूंस दिया गया है। सब जगह मक्खियां ही मक्खियां दिखाई दे रही थी। सफाई और डाक्टरी मदद नाममात्र की थी। मुझे बताया गया कि ३२००० निराश्रितों के बीच ४०० से ५०० तक औरतें गर्भवती है। लेकिन वहां तक मेरी नजर गई, वहां उनकी देखभाल के लिए कोई बन्दोवस्त नही था।

हैजे से बचने के लिए छावनियो में डी० टी० नाम की कीड़े मारनेवाली दवाई बराबर छिड़की जानी चाहिए और मेहतरों द्वारा सफाई का ज्यादा अच्छा बन्दोबस्त किया जाना चाहिए। निराश्रितों को अपने में से ही सफाई करनेवाली टुकड़ियां बना लेनी चाहिए। निराश्रित खुद ही इस तरह क्यों न संगठित हो जायं कि छावनियों का सारा जरूरी काम वे कर सकें?

—अंग्रेजी। ह० से० २९।६।१९४७। २२।६।१९४७ को लिखे सुशीला नय्यर के विवरण से।]

४१. अलीगढ़ उर्दू मैगजीन

सुलतान महमूद गजनवी की वावत एक लेख में हम अलीगढ़ से निकलनेवाले एक उर्दू "रिसाले" के एक शेर[1] की बात कर चुके है। गांधीजी की आज्ञा से हमने अलीगढ़ युनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर नवाब मुहम्मद इस्माइल खां का ध्यान उस शेर की तरफ दिलाया। जवाब में नवाब साहब का यह खत आया है।

"मुझे अफसोस है कि ऐसा शेर 'रिसाले' में निकल गया, जिसकी वजह से महात्माजी और आप जैसे देशभक्तों को रंज पहुंचा। अल्लाह ने चाहा, तो आगे अहतियात रखी जावेगी। मेरी तरफ से महात्माजी को मेरा दुःख बता दीजिए, और उनको यकीन दिला दीजिए कि हम लोगों को ऐसे ख्यालों से हर्गिज हमदर्दी नहीं है, और न इनको हम किसी तरह से भी ठीक समझते हैं। मालूम होता है कि कोई भूलचूक हो गई है।"

नवाब साहब का खत सुनकर गांधीजी को खुशी हुई। भूलचूक खासकर आज की हवा में सबसे हो सकती है। हमें यकीन है कि अलीगढ़ उर्दू मैगजीन ज़रा अहतियात से चलकर देश की अच्छी सेवा कर सकेगा।

—हिन्दी। ह० से० ११।१।१९४८। श्री सुन्दरलाल जी द्वारा प्रकाशित कराई गई टिप्पणी से।]

---

१. "फरजन्दाने कौम से" शीर्षक कविता का वह शेर इस प्रकार था—
गूंजती है फिर फिजाओं में सदाए सोमनाथ,
फिर किसी गजनी से कोई गजनवी पैदा करो।

: दस :

अञ्जलि

१. हिमालय में बापू

पर्वतीय प्रदेश कुमायूं में बापू के पर्यटन के पावन संस्मरण

[श्री शान्तिलाल त्रिवेदी, सर्वोदय कुटीर, अल्मोड़ा]

श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में गाया है—'स्थावराणाम् हिमालयः', भारतीय संस्कृति का पवित्र प्रतीक हिमालय विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। वैसे ही विश्व-मानवता के प्रतीक युगावतार, महामानव, महात्मा गांधी बापू हैं। महात्मा होते हुए भी वह छोटी-छोटी बातों व घटनाओं को, उसी दिलचस्पी और लगन के साथ, महत्व देते थे, जितना स्वराज्य और स्वतन्त्रता-संग्राम को।

बापू का साध्य पवित्र तो था ही किन्तु साधन की पवित्रता के लिए वह सतत् जागृत साधक रहे। कभी प्रमाद न हो, ऐसी सावधानी रखते थे। सूक्ष्म आत्म-निरीक्षण करते रहने पर ही विश्ववन्द्य, राष्ट्रपिता, बापू बने, जिनकी जन्मशताब्दी यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका, एशिया आदि महाद्वीपों में मनाई जा रही है। अपने प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' में वर्णित लक्षणों को आत्मसात करने की सतत् साधना उनकी रही।

बापू अखिल भारतीय दरिद्रनारायण (खादी कार्य) के दौरे के सिलसिले में जून सन् २९ में पर्वतीय प्रदेश कुमायूं में नैनीताल-अल्मोड़ा आये। बापू के महत्व के संस्मरण देने की हिम्मत कर रहा हूं। क्योंकि ये भी बापू की महानता पर प्रकाश डालते हैं। उस समय नैनीताल, ताकुला, भवानी, रानीखेत, ताड़ीखेत, अल्मोड़ा, कौसानी, बागेश्वर आदि स्थानों में बापू के साथ रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

बापू के आदेश से सत्याग्रहाश्रम से अगस्त १९२८ में अल्मोड़ा में राष्ट्रीय तथा रचनात्मक कार्य के लिए आया था। हिमालय में आने के बाद पूज्य बापू तथा माता-कस्तूरबा के प्रथम बार पहाड़ में दर्शन हुए। जैसा देश वैसा भेष के अनुसार पर्वतीय पैदल पर्यटन में धोती के बदले पायजामा पहनता रहा। अतः पूज्य कस्तूरबा सहसा पहचान न सकी। यह कौन? पर बापू की स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। उन्होंने याद दिलाया कि "लम्बे पत्र लिखनेवाला. . .यही है।"

वापू को उस समय लम्वे पत्र लिखता रहा क्योंकि दिल की भावना प्रकट करने का वही सहारा था, पर ब्रिटिश सरकार को परेशानी में डालनेवाले महात्मा मुझ-जैसे अल्पात्मा से क्यो परेशान होते ? वह तो पिता के पवित्र और मधुर प्रेम से जवाव देते थे। नौजवान के जोशीले कटुवचन को भी उदारता से सहन कर लेते थे। तुम्हारे प्रति हिंसा हुई इतना लिखकर मुझ-जैसे साधारण मानव को विजय तथा शान्ति दिलाकर खुद हार मानकर भी सन्त-महात्मा वने। यह है महामानव की दिव्यता।

वापू ने सन् २६ में में एक पर्वतीय भाई को, जिसने किण्डर गार्टन का ववस स्वयं वनाया था, कुछ संशोधन वतलाये थे। दो वर्ष वाद मई सन् ३१ में शिमले में वायसराय के कहे अनुसार उत्तर प्रदेश के जमीदार तथा किसानों की समस्या हल करने के लिए तत्कालीन गवर्नर श्रीमालकम हेली से मिलने नैनीताल आये थे। तव वापू उसी स्थान ताकुला गांधी मन्दिर में ठहरे थे। कार्यव्यस्त तो थे ही, वीच में वाथरूम जाने लगे तो भीड़ में से आगे वढ़कर उसी भाई ने प्रणाम किया। वापू ने फौरन पूछा—"वह वना लिया।" हम सव उस वक्त तो कुछ नही समझ सके पर वाद में ज्ञात हुआ कि उनका प्रश्न था कि जो संशोधन वताये गये थे वे ठीक कर लिये या नही? जवाव—"हां" में मिला। यह वापू की अद्भुत स्मरण-शक्ति का श्रेष्ठ उदाहरण है।

वापू ने सन् २६ में जो संशोधन वतलाये, उस विषय पर सन् ३१ में इस तरह पूछना अद्भुत वात थी क्योंकि दो वर्षो में हजारों मील की यात्रा करके हजारों व्यक्तियों से मिले होंगे। सम् ३० का स्वतन्त्रता का ऐतिहासिक आन्दोलन चला; सैकड़ों स्थानों पर लाखों मनुष्यो की सभा में उपस्थित हुए। फिर भी यह वात उनके स्मरण-पट पर रही, यह एक चमत्कार ही है।

वापू के साथ यात्रा में खूव आनन्द आता है। अनुभव प्राप्त होता है; कितने ही महान् व्यक्तियों के दर्शन तथा सेवा का सौभाग्य मिलता है। पर वह सेनापति स्वयं ऐसा सख्त काम करनेवाला होने के कारण साथियों से भी सख्त काम लेता था। स्वयं न सोयें, न अन्य को सोने दें। स्वयं अपने पर जुल्म ढायें पर दूसरों को भी न वख्शें। यह सव पवित्र आदर्श के लिए ही होने से अन्त में प्रेम-सहित कल्याण-मय ही वने। कभी तो रात में दो तीन घण्टा मुश्किल से सोते। यानी वारह वजे वाद, फिर तीन वजे चट्टी चरचराते हुए वाथरूम में जाने लगते तो आंख न खुलने हुए भी उठ जाना पड़ता था।

वापू को नैनीताल (ताकुला) में एक वार आवश्यक पत्र लिखने थे। आधी रात के लगभग सोये थे। और जल्दी लगभग तीन वजे उठ गये। मीरा वहिन

को प्रार्थना के समय चार बजे सबको उठाने का काम सौंपा गया था। उन्होंने बापू की चट्टी की आवाज सुनकर दातून दे दे कर सबको उठा दिया। बापू आसन पर बैठकर लिखने में व्यस्त थे। उतने में आंख मलते हुए श्री महादेव भाई, श्री देवदास भाई तथा हम सब प्रार्थना के लिए आने लगे। बापू ने आश्चर्य प्रकट किया, तब भेद खुला कि अभी चार नहीं बजे।

बापू को राधेश्याम तर्ज की रामायण सुनाने रात आठ बजे के बाद एक मण्डली ताकुला में आई। हारमोनियम, तबला वगैरह साथ-साथ था। बापू चर्खा कातते हुए मन से कथा सून रहे थे। लगभग डेढ़ घण्टे साज-बाज के साथ तबले के ताल पर रामायण-कथा होती रही। श्री जमनालाल बजाज, श्री देवदास भाई, श्री महादेव भाई आदि हम सब बैठे थे। समाप्ति के बाद देवदास भाई ने श्री जमनालाल जी से पूछा—"कहिये सेठ जी! रामायण कैसी रही?' उत्तर मिला—"वह, अच्छी रही पर जब तबला जोर से ठोंका जाता था तब बीच-बीच में नींद खुल जाती थी।" बापू-सहित हम सब हँस पड़े पर जमनालाल जी का क्या दोष? बापू के साथ सब सुविधा, आनन्द होते हुए नींद लेने का पूरा समय नहीं मिल पाता था।

बापू को भीड़ से बचाने के लिए श्री जमनालाल जी तथा आचार्य कृपालानी जी ने एक मौलिक तदबीर सोची। प्रेम विद्यालय, ताड़ीखेत में बापू के निवास के लिए विद्यालय के छात्रों तथा अध्यापकों ने गांधी-कुटी का निर्माण किया था। निश्चय हुआ कि "मंच तक सीधे अकेले बापू को जाने देना चाहिए। कोई भी साथ न जाय।" हुआ भी ऐसा ही। अकेले बापू, लंगोटीधारी एक देहाती-जैसा व्यक्ति मंच की तरफ जाने लगा। लगभग तीन चौथाई रास्ता तय करने पर एक परिचित मुस्लिम भाई ज़ोर जोर से चिल्ला उठे—"महात्मा गांधी की जय।" तब जनता का ध्यान आकर्षित हुआ और भीड़ खड़ी होकर दर्शन करने के लिए आगे बढ़ने लगी। उस भाई पर श्री जवाहरलाल जी तथा दादा कृपालानी जी का गुस्सा उतर आया।

बापू दिनांक १८ जून २९ को अल्मोड़ा आये। तब म्युनिसिपल बोर्ड अलमोड़ा की तरफ से चौघान पाटा में स्वागतार्थ मंच बनाया गया था। जहां मानपत्र देने का कार्यक्रम था वहां बापू को ले जाने के लिए स्वयंसेवकों ने घेरा बनाया था। बापू जा रहे थे तब एक वृद्ध भाई ने तांबे का एक पैसा बापू के हाथ में दे ही दिया —दरिद्रनारायण के चन्दे में। परन्तु भीड़ का एक धक्का लगते ही घेरा टूट गया। बापू के हाथ का पैसा नीचे गिर गया। बापू वहीं खड़े हो गये। कहने लगे —"पैसा लाओ।" चूंकि हमारे ही पैरों से वह धूल में मिल गया था, मैंने कहा—

"कृपया आप मंच पर जावें। पैसा खोज कर ले आऊंगा।" वापू ने कहा—"नही, पैसा मिलने पर ही जाऊंगा।" वापू वहीं खड़े रहे। धक्के लगने लगे। इधर से उधर धक्के खाते डोलने लगे। अन्त में पैसा ढूंढ़ ही निकाला और दिखाया कि यह रहा तांवे का पैसा।

वापू आनन्द से आगे बढ़ने लगे। भारतवर्ष के महात्मा, विश्ववन्द्य, महान-विभूति, एक भाई के दिये हुए तावे के पैसे की कितनी महत्ता समझते थे। दरिद्र-नारायण के लिए, उनका आशीर्वाद लेकर भारत-माता की सेवा करने का उनका सदा ही पवित्र प्रयत्न रहा।

वापू रानीधारा में श्री हरिश्चन्द्र जोशी वकील के कैसल वंगले में ठहराये गये थे। एक दिन प्रातःकाल घूमने निकल पड़े और मेरे रहने की कुटिया में (नारायण, तेवाड़ी देवालय) पहुंचे। वाहर वरामदे में कुछ देर तख्त पर वैठे। कमरे पर ताला लगा था क्योंकि मैं उनकी सेवा में कई दिनों से साथ-साथ था। सौराष्ट्र से एक वर्ष हुए अकेला ही आया था। पड़ोस में एक माता अपने नौजवान पुत्र को लेकर रहती थी। वह पुत्र कई दिनों से वीमार था। वहां पर वापू गये। वीमार का हाल पूछा तथा अन्य कई आवश्यक सूचनाएं दी—यथा खिड़की खुली रखना, कपड़े साफ रखना, कूड़ा दूर गड्ढे में दवाना वगैरह। माता-पुत्र ने समझा कि मेरे घर पर कोई मेहमान आये होंगे और कमरे पर ताला देखकर वापस लौट गये। उन्हे क्या मालूम कि दुखियों का साथी, परपीड़ा देखकर दुखी होनेवाला, भारत का सच्चा सुपुत्र उनकी कुटिया में पहुँच कर आशीर्वाद दे गया।

वापू ने घूमकर लौटते ही कहा—"मैं तो तेरे घर हो आया। वहां से दृश्य वड़ा सुन्दर है। तुम्हारे पड़ोस में उस वीमार का इलाज करनेवाले डाक्टर कौन है? उन्हे मेरे पास वुला लाना।"

"महात्मा गांधी आपको वुला रहे हैं"—मैंने डाक्टर साहव से कहा। सुनकर डाक्टर साहव को आश्चर्य हुआ। साथ-साथ आनन्द भी हुआ और उसी समय खादी खरीदकर डवल सिलाई देकर कोट-पैण्ट वनवा लिये और शाम को पहुंचे वापू के पास। मैंने परिचय दिया—"यही हैं वह डाक्टर साहव—।" वापू ने कहा—"अच्छा। मै मेडिकल इन्चार्ज होता तो आपका सर्टिफिकेट छीन लेता। उस बीमार नौजवान का इलाज तो कर रहे है पर प्राथमिक जरूरी सूचना उनके स्वास्थ्य के विषय में देनी चाहिए वह तो दी ही नही। जैसे शुद्ध वायु के आने-जाने के लिए खिड़की खुली रखना, सफाई वगैरह। वह सब तो आवश्यक कर्त्तव्य है। आशा है आप वीमार की भलाई मे अपनी भलाई समझेंगे।"

बापू के दर्शन की अभिलाषा अंग्रेज साधु श्री श्रीकृष्णप्रेम (पहिले के प्रो०

निक्सन) तथा उनकी गुरु मां यशोदा माई ने प्रकट की तो मैंने उनसे बापू के लिए पत्र मांगा हालांकि आवश्यकता तो नही थी। जब लिखने लगे तब कहा हिन्दी में कृपया लिखें। श्री श्रीकृष्ण प्रेम ने निम्न प्रकार लिखा—"गुरु मां तथा मैं आपके दर्शन के अभिलाषी हैं। कृपया लिखें कौन सा समय उपयुक्त होगा?" एक युवक अंग्रेज साधु का शुद्ध हिन्दी भाषा में लिखा पत्र पढ़कर बापू को बड़ा आनन्द हुआ। दूसरे दिन प्रातः ६ बजे का समय दिया। ता० २१ जून २६ शुक्रवार को ठीक समय पर श्रीकृष्ण प्रेम गुरु यशोदा मां के साथ रानीधारा कैसल में बापू के पास पहुंचे।

बापू ने प्रेम से स्वागत किया। पूछा—"क्या करते थे?" उत्तर मिला—"लड़ाई में था।" "तब तो हिंसा की होगी?" श्री कृष्णप्रेम ने कहा—"मैं तो हवाई जहाज (एरोप्लेन) में था।" "ओह! तब तो बहुत हिंसा हुई होगी।" आदि विनोद करते हुए बापू ने उनकी जीवन-कथा जान ली।

श्रीश्रीकृष्ण प्रेम कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट थे। प्रथम विश्वयुद्ध में हवाई जहाज में योद्धा का काम किया पर संस्कार पवित्र थे। धार्मिक आध्यात्मिक मनोवृत्ति शुरू से रही। कहा जाता है कि बंशीधारी मुकुटधारी श्रीकृष्ण की मूर्ति का साक्षात् हुआ। लन्दन में लखनऊ यूनिवर्सिटी के वाइस-चान्सलर श्री ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती तथा पत्नी श्रीमती मानिका देवी का सत्संग इस जिज्ञासु अंग्रेज को हुआ। उनके साथ सन् २१ में भारत आ गये। लखनऊ यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। शिक्षक बने सही पर स्वयं तो विद्यार्थी रहे। भारतीय संस्कृति के धार्मिक, आध्यात्मिक विद्यार्थी की तरह कर्मठ अभ्यासी हुए। वेद-वेदान्त, उपनिषद, तन्त्रशास्त्र, बौद्धशास्त्र आदि का गहरा अभ्यास किया। अंग्रेजी तो मातृभाषा थी ही। संस्कृत, हिन्दी, बंगला, भाषा अच्छी तरह सीख ली। संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। हिन्दी-बंगला भजन, मृदंग के साथ गाते थे। जब वाइस-चान्सलर महोदय ने सेवा-निवृत्त होकर काशी-निवास किया तो उनके साथ श्री निक्सन भी काशी आ गये। यहां पण्डित मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें हिन्दू-यूनिवर्सिटी में आग्रहपूर्वक नियुक्त किया। श्रीमती मानिका देवी सन् २७ में अल्मोड़ा आई और वैष्णवधर्मी श्री गौरांग महाप्रभु चैतन्य के सम्प्रदाय में दीक्षित होकर वैरागिनी यशोदा मां बन गईं। तब उन्ही से दीक्षा लेकर श्री निक्सन भी श्री कृष्ण-प्रेमी वैरागी साधु बन गये। सात्विक साधना, जप, तप, व्रत, तितिक्षा करने लगे। सभी धर्मों का गहरा अध्ययन होते हुए भी शरणागत भाव-भक्ति की विनम्रता ही स्वीकार की। अल्मोड़े से १५ मील पर बागेश्वर के पास सन् ३१ में राधा-कृष्ण मन्दिर स्थापित करके वहां 'उत्तर वृन्दावन' आश्रम स्थापित किया।

श्री श्रीकृष्णप्रेम ने कठिन साधना करते हुए भी कई मननीय पुस्तकें लिखी हैं। गुरु मां की बीमारी में निष्ठापूर्वक सतत सेवा करते हुए आध्यात्मिक लेखन चल रहा था। शिष्या अर्पिता देवी ने उन्ही से दीक्षा ली थी। वह यशोदा मां की पुत्री थी। श्री अरविन्द घोष इन्हे उच्च कोटि का योगी मानते थे। श्री दिलीपराय ने सन् ६८ मे 'योगी श्रीकृष्ण-प्रेम' पुस्तक प्रकाशित की है।

श्री श्रीकृष्णप्रेम का तिरोभाव १४-११-१९६५ को हुआ और जागेश्वर के पास दण्डेश्वर महादेव के स्रोत के तट पर ही उनका अग्निसंस्कार उसी स्थान पर हुआ जहां यशोदा मां को अग्निदान दिया गया था। गुरु-शिष्य का पवित्र योग! उनका साधना-मन्त्र है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ शान्तिः

हां, तो मैं बापू के संस्मरण लिखते-लिखते कहां चला गया। बापू के विश्राम के लिए अलमोड़ा जिले मे कौसानी नामक स्थान में कुछ दिन रहने का कार्यक्रम बनाया गया था। अलमोड़ा से कौसानी ३५ मील दूर स्थित है। जिला बोर्ड के डाक बंगले में प्रबन्ध किया गया था। उससे बड़ा वहां पर जो सरकारी स्टेट बंगला था, वह मांगने पर नही मिला क्योंकि एक विद्रोही क्रान्तिकारी के लिए ब्रिटिश सरकार उसे कैसे देती? श्री गोविन्दवल्लभ पन्त जी को इस बात का बड़ा दुःख हुआ। तब से वह कौसानी नही आये। भारत स्वतन्त्र हुआ; इसके बाद सन् ५२ के चुनाव के समय मुख्य मन्त्री की हैसियत से उसी स्टेट बंगले में शान से ठहरे। तब उस बात का उन्होंने स्मरण दिलाया था। जिला बोर्ड के स्वराज्य-वादी सदस्यों ने बापू को डाक बंगले में ठहराकर अपने को गौरवान्वित किया।

बापू कौसानी डाक बंगले में दिनांक २१ जून १९२९ से २ जुलाई १९२९ तक यानी बारह दिन ठहरे। यह डाक-बंगला विश्व में ऐतिहासिक स्मारक बन गया है। क्योंकि गीता की अनासक्ति योग टीका की भूमिका यहीं लिखी गई थी। इस पवित्र कार्य की पूर्णाहुति हिमालय के सामने हुई।

बापू दिनांक ३० जनवरी १९४८ को 'हे राम!' कहते हुए शहीद हो गये। भारतवर्ष में गांधी स्मारक का चन्दा एकत्र होने लगा। तब हिमालय पर्वतीय प्रदेश पीछे क्यों रहे? पत्रं पुष्पं की तरह प्रयत्न किया गया और जिले की जनता ने एक लाख दस हजार रुपये चन्दा किया। उस समय मुख्य मन्त्री गोविन्दवल्लभ पन्त जी ने अल्मोड़ा सर्किट हाउस मे श्री सरला देवी तथा मुझसे कहा—"पत्थर के पहाड़ से पानी बहा दिया।" इतनी रकम जिले से एकत्र होने पर उन्होंने आनन्द व्यक्त किया। उसी सुअवसर का लाभ उठाते हुए मैने तुरन्त कहा—"गीता की

अनासक्ति योग-भूमिका जिस कमरे में बैठकर बापू ने लिखी है, उसे गांधी स्मारक को समर्पित करने की कृपा करें।" श्रीमान् पन्त जी दीर्घदृष्टि वाले थे। सुनकर आनन्दित हुए और कहा—"एक कमरा क्यों? पूरा डाक बंगला ही गांधी स्मारक को समर्पित किया जायगा।" और उन्होंने वचन के अनुसार नया डाक बंगला बनाने हेतु १४ हजार रुपये सुरक्षित करा भी दिये थे, पर वर्षों बाद गांधी-स्मारक निधि ने उक्त बंगले को हाथ में लेकर दिनांक ६ अक्तूबर ६४ को मुख्य मन्त्री श्रीमती सुचेता कृपलानी जी द्वारा उसका 'अनासक्ति-आश्रम' नाम से उद्‌घाटन कराया। और सन् ६८ में पास का पी० डबल्यू० डी० का बंगला भी गांधी-निधि को राज्य सरकार ने अर्पित कर दिया। इसके उपरान्त एक विशाल दो मंजिला भवन निधि ने तैयार कराया है।

बापू ने बीस वर्ष पहले कौसानी में ही अनासक्ति योग गीता की प्रस्तावना लिखी। वह स्थान अब राष्ट्रीय तीर्थ बन गया है—एक तरह से सारे संसार का। सारे विश्व में गांधी जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है। तो यह स्थान भविष्य में —गांधी दर्शन—का अभ्यासस्थान, शोधस्थान बने और बापू के पवित्र आदर्श सत्य, अहिंसा की प्रेरणा विश्व की जनता को हिमालय की तरह सतत् प्राप्त होती रहे, यही परमात्मा से प्रार्थना है।

बापू ने कौसानी से हिमालय तथा पहाड़ों का सुहावना और सात्विक दृश्य देखकर 'यंग इण्डिया' दिनांक ११ जुलाई २६ के अंक में लिखा है:

"हिमालय का स्वास्थ्य-बर्द्धक जलवायु, उसके मनोहर दृश्य, चारो तरफ फैली हुई सुहावनी हरियाली यहां आपकी किसी भी अभिलाषा को अपूर्ण नहीं रखती।

"मैं सोचता हूँ कि इन पर्वतों के दृश्यों तथा जलवायु से बढ़ कर होना दूर रहा, इनकी बराबरी भी संसार का कोई अन्य स्थान नहीं कर सकता।

"अलमोड़ा के इन पर्वतों में तीन सप्ताह रह कर मुझे अब तो पहले से भी अधिक आश्चर्य होता है कि हमारे देशवासी स्वास्थ्य-लाभ के लिए क्यों यूरोप की यात्रा करते होंगे?"

कौसानी से हिमालय का दृश्य अद्‌भुत और अपूर्व है। हिमालय की लम्बी गिरिमाला लगभग तीन सौ मील की है। बदरीनाथ, चौखम्भा, केदारनाथ, भारत का सर्वोच्च हिमगिरि शृंग, परशुराम, पूच चूली के अलावा नेपाल के अपी, नप्पा आदि के दिव्य दर्शन होते है।

० ०

वापू के साथ हम लोग अल्मोड़े से कौसानी पहुंचे। उसी शाम प्रार्थना के समय वापू ने प्रार्थना कराने का आदेश मुझे दिया। एक वार तो दिल दहल गया क्योंकि सत्याग्रहाश्रम सावरमती या स्वराज्य आश्रम वारडोली में श्री सुरेन्द्र जी को प्रातः प्रार्थना कराने का आदेश दिया था। तव एक श्लोक में कुछ गलती हो गई। वापू का पुण्य प्रकोप भड़क उठा—"इतने समय मेरे साथ आश्रम में रहने पर भी अभी ठीक से प्रार्थना नही करा सकते?" इस वात से श्री सुरेन्द्र के दिल में इतनी गहरी चोट लगी कि पूरे वर्ष भर एकान्त सेवन हिमालय मे करके सिर्फ श्लोक ही नहीं, श्लोक के भावार्थ की अनुभूति करके वापस आये और सच्चे आश्रमवासी की तरह रहते रहे तथा पवित्र भावनाशील, उच्च आध्यात्मिक ज्ञान के ज्ञाता तथा पवित्र सावक की गिनती में अग्रगण्य माने जाते हैं। सन्त विनोवा उन्हे पवित्र साधक मानते है।

वापू के आदेश से प्रार्थना शुरू करते समय मुझे वह वात याद आ गई।—कही प्रार्थना में भूल हुई तो पर ईश्वर ने लाज रक्खी। 'स्थितप्रज्ञस्य का भापा' श्लोक के वाद 'निर्वल के बल राम' भजन गाया। मुझे याद है कि भजन में एक वार कुछ रुक-सा गया तव वापू ने उसे दोहरा दिया यानी स्मरण करा दिया। वाद में रामधुन के साथ प्रार्थना पूर्ण हुई। तव दिल का वोझ हल्का हुआ।

वापू से कौसानी में एक वार उत्साह से दौड़कर मैंने कहा—"वापू हिमालय खुल गया।" वह फौरन दौड़कर वरामदे में पहुंचे। हमने पूछा—"वापू आप दौड़े क्यो?" वापू ने कहा—"एक वार दार्जिलिग में इस तरह हिमालय खुल गया था पर कमरे से वाहर आते ही हिमालय को वादलने ढक दिया। मैंने सोचा कि कहीं यहां भी ऐसा न हो।" वात भी सही थी। जून माह में वर्फानी पहाड़ कभी किस्मत से ही दर्शन दे देते हैं। वादल फट जाने से हिमालय का आज का दृश्य भी अद्भुत और दिव्यदर्शनीय था।

० ० ०

वापू के साथ कौसानी में माता कस्तूरवा, मीरा वहन (मिस स्लेड), खुरशीद वहिन, श्री देवदास भाई, आचार्य कृपालानी जी, श्री प्यारेलाल जी, श्री प्रभुदास गांधी आदि थे। वहां से वागेश्वर जाने का कार्यक्रम था। गरुड़ तक वापू को कार में ले गये। वहां से वारह मील पैदल मार्ग से सरयू-गोमती तट पर वागेश्वर स्थित है। डांडी डोली में वैठना वापू को पसन्द नही था पर विवशता थी। उसी समय कच्चे गेहूं को भिगोकर पीस कर खाने का प्रयोग चल रहा था। वापू वहुत ही कमजोर हो गये थे। पैदल चलना कठिन था अतः डांडी का उपयोग करना पड़ा। श्री मोहन जोशी जी तथा अन्य दो गुजराती युवक साथियों के साथ डोली में वैठे

हुए बापू को कन्धे पर उठाने का आनन्द लिया। हंसकर बापू पूछने लगे—"कितना बोझ है?"

"बापू! आप में तो बोझ नहीं है पर डांडी में गद्दे बिछाने की वजह से बोझ बढ़ गया। अन्तिम समय शायद हम न पहुंच पावें।"

"इसीलिए आज कन्धे पर उठा रहे हैं।" बापू हँसने लगे। रास्ते में डांडी से उतर कर लाठी लिये हुए थोड़ा-थोड़ा पैदल भी चलते रहे। उस समय वह सौराष्ट्र के कार्यकर्ताओं की पुरानी बातों, पहाड़ की परिस्थिति तथा श्री श्रीकृष्ण प्रेम अंग्रेज साधु के विषय में विस्तार से पूछने लगे। इस तरह गोमती-गंगा के किनारे बापू के साथ वार्तालाप करते हुए चलना भी जीवन का अविस्मरणीय प्रसंग है। वह पैदल चलने में थकावट महसूस होने पर ही डांडी में बैठते थे। पर अधिकतर पैदल चलना ही पसन्द करते थे।

बापू बागेश्वर डाक बंगले में दिनांक २२ जून, २९ शनिवार को लगभग ग्यारह बजे पहुंचे। बागेश्वर पर्वतीय प्रदेश में धार्मिक तीर्थ-स्थान तो है ही। पर यही सन् १९२१ में कुली-बेगार का कलंक मिटाकर क्रान्तिकारी कार्यक्रम सफल हुआ। बापू के सत्याग्रह का बिगुल आसेतु हिमालय फैल गया। बापू की प्रेरणा से कूर्माचल-केसरी श्री बदरीदत्त पाण्डेय जी, देशभक्त श्री मोहन जोशी जी, जनप्रिय श्री हरगोविन्द पन्त जी तथा महान नेता श्री गोविन्दवल्लभ जी आदि तपस्वी, त्यागी, राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता समय-समय पर स्वतन्त्रता का आन्दोलन पर्वतीय प्रदेश में, कुमायूं में तथा अन्यत्र चलाते रहे।

अलमोड़ा जिला सन् २१ के आन्दोलन में, सन् १९३०-३२ तथा १९४२ के ऐतिहासिक स्वतन्त्रता-आन्दोलनों में सदा अग्रणी रहा है। कुली बेगार के सफल आन्दोलन के कारण श्रीबदरीदत्त पाण्डे जी कूर्माचल-केसरी कहे जाते थे। उनका पहाड़ का सा भरा-पूरा शरीर, शेर की दहाड़-जैसी बुलन्द आवाज, जनता के दिल को स्पर्श करनेवाले भाषण तथा विनोदपूर्ण चुटकियां आज भी जनता याद करती है। देशभक्त श्री मोहन जोशी का साधारण शरीर था पर दिल में देश-सेवा की आग भरी हुई थी। उनका ओजस्वी भाषण सच्चे निष्ठावान हृदय से भभकता था। वह जनता के दिल में भी देश-सेवा की आग लगा देता था।

बापू के साथ बागेश्वर में ये दोनों—श्री बदरीदत्त जी तथा श्री मोहन जोशी जी—साथ थे। इनका तो निश्चित स्मरण है। श्री देवदास भाई गांधी भी थे ही। कस्तूरबा कौसानी ही रहीं। बापू का बागेश्वर पहुंचना ईश्वरीय संकेत ही समझा जाय, जहां उनकी प्रेरणा से सत्याग्रह सफल हुआ और श्री जोशीजी ने महात्मा गांधीजी के हाथों स्वराज्य-मन्दिर का शिलान्यास कराया।

पर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि चालीस वर्ष के बाद भी वह कार्य पूरा नहीं हो पाया।

गाधी जन्म-शताब्दी के वर्ष में स्वराज्य-मन्दिर छोटा सा भी बन जाता तो दोनो 'मोहन' (मोहनदास करमचन्द गांधी व स्व० मोहन जोशी) का स्मारक स्थायी हो जाता और वहां से जन-कल्याण कार्य होता रहता।

स्वराज्य-मन्दिर का शिलान्यास ता० २२ जून १९२९ शनिवार को महात्मा जी के कर-कमलों के द्वारा हुआ। देशभक्त जोशी जी ने वापू का स्वागत करते हुए भावभीना भाषण दिया। कूर्माचल-केसरी श्री बदरीदत्त जी ने कहा—"इस डाक बंगले से नौकरशाही प्रजा के ऊपर अन्याय करती थी। आज अन्याय की जगह न्याय के देवता यहां पधारे है। इस पर आज स्वराज्य की मुहर लग गई है।" महात्माजी यह वचन सुनकर मुस्कराये।

वापू से मैंने बागेश्वर के डाक-बंगले से स्वराज्य-मन्दिर के स्थान पर पांच बजे सभा में आने के लिए कहा। वह उठे और बरामदे में आकर कहने लगे—"लाठी ले आओ।" कमरे मे लेने गया पर मिली नही। फिर दुबारा भेजा। चारपाई के नीचे इधर-उधर कोने मे सब जगह लोग खड़े थे। जुलूस भी तैयार था। सब सोचने लगे कि कौन-सा महत्व का काम आ गया है कि इतनी देर से महात्माजी वहां खड़े रह गये। अव वापू के पास खाली जाने की हिम्मत नही हुई। एक छाता लिया और वापू से कहा—"जरा धूप है अतः इससे काम चल जायगा।"

सभा का कार्य पूरा हुआ। भोजन वगैरह कर चुके। सायंकाल को डाक वंगले के वरामदे में वड़ी गम्भीरतापूर्वक प्रार्थना हुई। पवित्र सर्यू-सरिता के सामने जनता-जनार्दन की उपस्थिति में वापू की वह प्रार्थना का दिव्य दृश्य हृदय-पट पर अभी ताजा है। स्थितप्रज्ञस्य श्लोक के बाद भजन, रामधुन से प्रार्थना की पूर्णाहुति हुई। एक भावुक भाई ने वापू की आरती उतारी। वापू उसकी भावपूर्ण भक्ति-भावना देखकर द्रवित-से हो गये।

वापू मुलाकातियों से निपटने तथा अन्य कार्य करने के वाद सोने गये, तब रात को मैं मालिश कर रहा था। मुझे मालिश आती भी नही थी। वापू ने समझाया कि ऊपर से नीचे नही पर नीचे से ऊपर की ओर मालिश करने से खून का दौरा शीघ्र होता है। तव मालिश का लाभ होता है। इस तरह वह बताते गये। रात लगभग वारह वजे का समय था। मुझे नीद-सी आने लगी थी, उस समय वापू कहने लगे—"देखो वह लाठी नही मिली! कहां खो दी? डोली से उतरते समय तो मेरे हाथ में थी। फिर कहां रक्खी? तुमने ख्याल नही किया'?" मैं भी, हा—ना कुछ जवाव देना था, इसलिए देता रहा पर मन मे सोचने लगा कि इतने

बड़े महात्मा गांधीजी, जिनका नाम सारे विश्व में विख्यात है, एक छोटी सी बांस की लाठी के लिए इस समय आधीरात को इतनी गम्भीरता से विचार करते हैं, जैसे कोई बड़ी भारी कीमती चीज खो गई हो या राष्ट्र को बड़ा नुकसान हो गया हो।

"बापू के पास एक बांस की लाठी थी, जिसे लेकर पहाड़ों में चलते थे, वह खो गई है। कृपया दूसरी लाठी का प्रवन्ध करें।" यह निवेदन दूसरे दिन एक मित्र से किया। बड़े प्रेम से वह सज्जन सुन्दर बांस ही की लाठी लाये जिसमें मीनाकारी तथा ऊपर चांदी की मूठ और नीचे लोहे की खोली थी। उसे लेकर बड़े हर्ष व उल्लास के साथ मैं बापू के पास गया। उन्होंने देखकर कहा--"हां, ठीक है, पर जैसी वह थी वैसी यह नहीं है। हां, इससे काम चल जायगा। पर ऊपर की चांदी वाला हिस्सा कटवा देना।...दरिद्र-नारायण की सेवा करनेवाले को चादी की मूठवाली नही चाहिए।"...तो यह हुई लकुटी की कहानी।

दूसरी कहानी सुनिए।

बापू के लिए सुबह स्नान के लिए बागेश्वर डाक बंगले के स्नानागार में गरम पानी रक्खा। साबुन आदि रखकर बापू से कहा--"पानी तैयार है।" वह स्नानागार में गये। दरवाजा बन्द किया, पर फौरन खोल कर आवाज दी। सामने गया तो कहा—"कलवाला साबुन कहा रक्खा है?" मैने जवाब दिया—"बापू! वह तो घिस कर छोटा टुकड़ा रह गया था अतः नया साबुन रख दिया।" तब बापू बड़े दुःख से कहने लगे—"जबतक चीज का पूरा-पूरा इस्तेमाल नहीं हुआ तो कैसे नया रक्खा? यह भी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। भविष्य में तुम लोगों के हाथ में बड़े-बड़े काम आयेंगे। और सम्भव है कि स्वराज्य भी आवेगा। तब इस तरह की लापरवाही की मनोवृत्ति रही तो राष्ट्र का कितना भारी नुकसान होगा। मैं आशा रखता हूं कि हमारे कार्यकर्त्ता बड़े ही सजग तथा जाग्रत रहेंगे।" यह बात बड़े दर्द के साथ कहते गये। स्नानगृह की चौखट पर खड़े हुए बापू की कही बातें आज चालीस वर्ष के बाद भी राष्ट्रीय हित के लिए सत्य सिद्ध हैं। बापू के से सूक्ष्म निरीक्षण के अभाव से ही आज राष्ट्रीय योजनाओं मे करोड़ो रुपयों का अपव्यय दिखाई देता है। तभी तो आज जनता को स्वराज्य का सच्चा आनन्द नही है।

बापू बागेश्वर डाक-बंगले में सुबह नाश्ता कर रहे है। अकेले में बापू व्यक्तिगत बाते पूछने लगे—"कितना खर्च आता है? भोजन में क्या लेते हो? कोई कमी तो नही है? राष्ट्रसेवा के लिए पत्नी का सहयोग तो है न?" वगैरह। इसके बाद पहाड़ों मे पैदल यात्रा के विषय में हिमालय-कैलास आदि पर भी बातें होने लगी। तब बापू कहने लगे—"मुझे कैलाश ले चलो न?" "क्यों बापू?" बोले—

"वही एकान्त मिलेगा।" जवाब दिया—"कैलास या हिमालय की कन्दरा में कही भी आप जावें तो भी जनता वहां पहुंच जायगी।" बापू ने कहा—"हां, बात तो ऐसी ही है।"

० ० ०

यह बापू की महानता है। वह छोटी-से-छोटी वस्तु पर, साधारण जन को नगण्य लगनेवाली बातों पर भी बड़ी सावधानी, गम्भीरता से, आत्मनिरीक्षण करके इतने बड़े महात्मा बन गये। हम लोग छोटी चीज या बात को तुच्छ मानते है। यह आदत हमें अल्पात्मा ही रखती है। प्रमाद न रखकर सतत् जागृति रखने वाले महात्मा विरले ही होते है। इस तरह बापू के विषय में अनेक सुमधुर संस्मरण है जिनकी बापू के साथ वर्षो तक साथ रहते हुए अब तो याद मात्र रह गई है। मुझे उनकी महानता के सम्बन्ध में कई अनुभव हुए है। मै उनके सामने बैठकर उनकी मानवीय प्रवृत्ति का एक तरह से अध्ययन करता रहता था, पर जब वह परोक्ष हो जाते थे तब उनके दिव्य गुणों की याद आती थी। सामने होने पर तो ऐसा सोचता था कि यह वही व्यक्ति है जिसके एक-एक शब्द को ब्रिटिश सरकार गम्भीरतापूर्वक महत्व देती है। तथा ब्रिटिश सरकार थर्रा जाती है। साथ-साथ यह भी प्रत्यक्ष था कि उनका जनता पर अद्भुत जादू चलता था। बापू के कण्ठ से 'भारत छोड़ो' निकला कि सारे भारतवर्ष की जनता के कोटि-कोटि कण्ठों से निकल पड़ा—'भारत छोड़ो।' बापू के कदम जहां चल पड़े, तो जनता के लाखों लोगों के कदम भी उधर ही चल पड़े। यह है विश्वविभूति।

'बापू' के निर्वाण के बाद तो उनकी महानता तथा दिव्यता और निखर आई। कहा जाता है कि राम के दर्शन के बजाय राम के स्मरण में ज्यादा महत्व है। राम ने तो मर्यादित संख्या में अहिल्या, शबरी, जटायु आदि का उद्धार किया पर राम नाम के जप से तो अनेक पवित्रात्मा बनकर विश्वकल्याण करते रहते हैं।

२. कालाकाँकर में बापूजी

[श्री सुरेशसिंह जी, कालाकांकर]

१९२९ का वर्ष मेरे जीवन का सबसे प्रिय वर्ष रहा क्योंकि इसी साल मुझे जीवन में अनेक राजनीतिक एवं साहित्यिक विभूतियों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९२९ ही में मैंने प्रथम बार पूज्य बापू के दर्शन साबरमती आश्रम में किये। मैं अपने पूज्य भ्राता स्व० राजा अवधेश सिंह के साथ बम्बई गया था।

वहां से हमलोग ट्रेन से अहमदाबाद गये। वहां जाने का एक मात्र आकर्षण था पूज्य बापू के दर्शन करना।

अहमदाबाद स्टेशन पर ज्ञात हुआ कि शाम के एक बस साबरमती जाती है अतः उसी पर वहां जाने का तय हुआ। बस में अचानक श्री महादेव जी देसाई से मुलाकात हो गई जिनके कारण पूज्य बापू से मिलने में काफ़ी सुविधा हुई। चलते समय भाई साहब ने बापू से प्रार्थना की कि वह जब कभी उत्तर प्रदेश आवें तो लखनऊ में उन्हीं की कोठी में ठहरें। पूज्य बापू ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और लाहौर कांग्रेस के पहले जब वह हमारे प्रदेश पधारे तो लखनऊ में कालाकांकर हाउस में ही ठहरे।

लखनऊ में एक साधारण-सी घटना घटी लेकिन बापू ने उसको काफ़ी महत्व दिया। उनकी पैनी दृष्टि ने इस मामूली-सी घटना को नज़रअन्दाज नहीं किया और वह उससे भाई साहब के वास्तविक रूप को पहचान गये।

बात यह हुई कि एक आश्रम के भाई, देर से आने के कारण अकेले ही खाना खा रहे थे। खाने के बाद उन्होंने भाई साहब को साधारण नौकर समझा और उनसे हाथ धुलाने को कहा। भाई साहब ने फ़ौरन उनका हाथ धुला दिया और उनकी ओर तौलिया बढ़ा दी। खाने के बाद वह अपने कमरे में आराम करने चले गये। शाम को प्रार्थना के समय जब पूज्य बापू ने भाई साहब को अपने बगल में बैठने को कहा तब उन भाई को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने साथियों से भाई साहब का परिचय पूछा और उन्हें जब यह ज्ञात हुआ कि वही कालाकांकर के राजा साहब हैं जिनके पूज्य बापू अतिथि है तो उनको बहुत ग्लानि हुई। प्रार्थना के बाद उन्होंने अपनी गलती पूज्य बापू से बताई। पूज्य बापू ने उनसे पूछा—"तो राजा साहब ने क्या किया?"

"राजा साहब ने बड़ी खुशी से मेरा हाथ धुलाया" उन्होंने उत्तर दिया।

"मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई।" पूज्य बापू ने कहा—"अगर राजा साहब किसी नौकर को बुलाते तो मुझे दुःख होता। जो अपनी इच्छा से जनता का सेवक बना है वही सच्चा स्वयंसेवक है। इससे हमे राजा साहब के वास्तविक स्वरूप का पता चल गया।"

लेकिन पूज्य बापू इतने से सन्तुष्ट होने वाले व्यक्ति नही थे। वह यह देखना चाहते थे कि राजा साहब का यह स्वदेश-प्रेम उनकी रिआया के साथ भी है या यह केवल लखनऊ में ही है। इसी से उन्होंने भाई साहब का कालाकांकर आने का निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया। भाई साहब ने उन्हें विदेशी वस्त्रों की होली जलाने के लिए यहां आमन्त्रित किया था।

अंग्रेजों की अमलदारी में महात्मा गांधी को अपने यहां किसी ताल्लुकेदार का बुलाना बहुत हिम्मत का काम था। फिर उन्हे बुलाकर विदेशी वस्त्रो की होली जलवाना तो अंग्रेजों को और भी चिढ़ाना था। लेकिन राजा साहब बहुत ही निडर और निर्भीक व्यक्ति थे। उन्हे ऐसी कोई बात उनके निश्चय से विचलित नही कर सकती थी।

पूज्य बापू १३ नवम्बर १९२९ ई० को रायबरेली से प्रयाग जाते समय कालाकांकर में रुके। शाम को थोड़ी देर तक विश्राम करने के बाद वह गंगा-तट पर टहलने गये। हमलोग २०-२५ आदमी उनके साथ थे। वह आगे आगे चल रहे थे। एक जगह गंगा के किनारे किसी ने विष्टा कर दिया था। बापू ने वहां रुक कर कहा—"इतना सुन्दर गंगा का तट है। लोग इसको भी गन्दा कर देते हैं।" रियासत के मैनेजर साहब तथा अन्य कर्मचारियों ने एक दूसरे से वहा की सफ़ाई का आदेश दिया। लेकिन पूज्य बापू ने अपने हाथो से दो तीन मुट्ठी बालू विष्टा पर डाल कर पानी से हाथ धो लिया और बिना कुछ कहे आगे बढ़ गये। हमलोगों के मुह पर एक करारा तमाचा पड़ा। एक नेता किसी दूसरे की प्रतीक्षा किये बिना ही स्वयं कार्य को कर डालता है। मैंने उस दिन पूज्य बापू से यही बड़ी बात सीखी।

रात को हमलोग प्रार्थना के बाद काफी देर तक पूज्य बापू के निकट रहे। वह यहां के लोगों के बारे में सभी बाते जान लेना चाहते थे। दूसरे दिन १४ नवम्बर को उन्होने दोपहर को ग्राम की स्त्रियों की एक सभा की। हमलोगो के यहां बहुत जबरदस्त पर्दा, एक युग से चला आ रहा था। हम लोग आधुनिक विचार के होने के कारण इसके बहुत खिलाफ थे और हमलोगों की बीबियां पर्दा नही करती थीं पर घर की बड़ी-बूढ़ी महिलाएं पर्दे के पक्ष मे थी लेकिन पूज्य बापू की उस मीटिंग में सबने पर्दा तोड़ कर उसमें भाग लिया और उस दिन से घर का पर्दा सदा के लिए समाप्त हो गया।

शाम को पूज्य बापू उस स्थान पर गये जहां विदेशी वस्त्रों की होलिका जलाने का आयोजन था। पूज्य बापू ने प्रातः ही मेरी धर्मपत्नी प्रकाशवती से कहा था—"बेटी, सुना है तुम्हारा विवाह अभी आठ दिन पहले ही हुआ है और तुम्हारे साथ बहुत सारे विदेशी वस्त्र आये है। यदि तुम उनको आज की होली मे दे दो तो हमारी होली सज जावे।"

प्रकाश ने कहा—"बापू, विदेशी वस्त्र तो हमारे यहां भी कोई नही पहनता। हां, सब लोग मिल का वस्त्र पहनते हैं। वे ही हमारे साथ आये है। आपकी आज्ञा है तो मै उन सब को आपके चरणो में रख दूंगी।" इतना कह कर उन्होने अपने साथ आये हुए सारे क़ीमती वस्त्र और साड़ियां पूज्य बापू के सामने लाकर रख दी।

बापू बोले—"बेटी, मैं मिल के कपड़ों में और विदेशी कपड़ो में ज्यादा अन्तर नहीं मानता। लेकिन यदि तुमको इन्हें देने में मोह हो रहा हो तो रहने दो।"

"यह तो मेरा सौभाग्य है बापू कि आपने मुझे इतना सम्मान दिया", प्रकाश ने कहा—"इन तुच्छ कपड़ों का आपकी आज्ञा के सम्मुख भला क्या मूल्य हो सकता है?"

पूज्य बापू प्रकाश के इस उत्तर से प्रसन्न हो गये।

शाम को जब पूज्य बापू सभास्थल पर पहुंचे तो वहा लाखों रुपयों के वस्त्रों का अम्बार लगा था। भाई साहब के कुछ मित्र ताल्लुकदारों ने भी अपने यहां के विदेशी वस्त्र यहीं पहुंचा दिये थे। बापू उस अपूर्व होलिका-दहन को देख कर प्रसन्न हो गये। भाई साहब ने उनके हाथ मे चांदी की मूठ वाली एक जलती मशाल दी जिससे उन्होंने वस्त्रों के उस पहाड़ में आग लगा दी। आग लगते ही लोगो ने 'महात्मा गांधी की जय' का घोष किया और इस प्रकार सभा समाप्त हुई।

पूज्य बापू उसी दिन इलाहाबाद जाने वाले थे लेकिन कालाकांकर के शान्त वातावरण और प्राकृतिक सौन्दर्य ने उनको यहां एक दिन रहने के लिए मजबूर कर दिया और वे यहां उस रात रह गये। दूसरे दिन सवेरे उन्होंने राजमहल पर तिरंगा झण्डा फहरा कर यहां से प्रस्थान किया।

पूज्य बापू कालाकांकर में गंगा-तट पर बने हुए राज भवन में ऊपर के दालान में ठहरे थे, जहां से तीन ओर गंगा का फैला हुआ पाट दृष्टिगोचर होता है। उनके साथ आचार्य कृपालानी, श्री देवदास गांधी, श्री प्यारेलाल जी तथा अन्य कई सज्जन थे। मुझे एक दिन श्री लाल बहादुर शास्त्री ने बताया कि वह भी पूज्य बापू के साथ यहां आये थे लेकिन हमलोगों को इसका पता भी न चलता यदि वह न बताते। महिलाओं में श्रीमती मीरा बेन, कुसुम बेन, तथा श्री जयप्रकाशनारायण जी की धर्मपत्नी श्रीमती प्रभावती जी थी।

पूज्य बापू के कालाकांकर आने की कथा तो समाप्त होती है लेकिन उनके विषय में दो प्रकरणों का वर्णन करना आवश्यक-सा लगता है। अपने स्नेही जनों को वह किस अनोखे ढंग से सलाह देते थे इसका मुझे दो बार अनुभव हुआ। मैंने उनके बारे में यह कथा अवश्य सुन रक्खी थी कि एक बार उन्होंने अपने एक स्नेही भक्त के बारे में पत्रों में छपवा दिया कि उनकी मृत्यु से उनको बहुत दुःख पहुंचा है।

उन सज्जन ने यह समाचार पढते ही बापू को लिखा कि बापू मैं तो जिन्दा हू आपको किसी ने गलत खबर दी है।

पूज्य बापू ने उन्हे लिखा—"इधर तुमने देश-सेवा का कार्य एक दम छोड़

दिया था। इसको मैं तुम्हारी राजनीतिक मृत्यु ही समझता हूं।" इस पर वह वहुत लज्जित हुए।

मुझे भी पूज्य वापू ने दो वार इसी तरह की स्नेहपूर्ण ताड़ना दी थी।

जव नमक आन्दोलन का एलान पूज्य वापू ने किया तो मैं काशी विश्वविद्यालय में पढ़ता था। मैने उनको लिखा कि मै इस आन्दोलन में भाग लेना चाहता हूं, कृपया मुझे अपने जत्थे में शामिल करने का अनुग्रह करें।"

वापू ने लिखा, "तुमने ठीक ही फैसला लिया है लेकिन यह आन्दोलन तो सारे देश मे फैलेगा। तुम अपना जत्था लेकर पैदल रायवरेली जाओ जिसे उत्तर प्रदेश का केन्द्र बनाया गया है।"

मैने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली लेकिन जी में एक उदासी सी छाई रही कि वापू ने मुझे अपने जत्थे में शामिल नही किया। अपना जत्था लेकर रायवरेली जाने से पहले मै श्री जवाहरलालजी से मिला और उनसे वहां के लिए आदेश लिये। उन्होंने आदेश देते हुए कहा—"यह आन्दोलन काफ़ी दिनों तक चलने वाला है। पता नही कव एक दूसरे से भेंट हो। हिम्मत न हारना। तुम्हारे ऊपर पूज्य वापू ने बहुत वड़ी जिम्मेदारी रक्खी है। सैकड़ों नेताओं के रहते हुए भी उन्होने तुमको रायवरेली का, जो हमारे प्रदेश का केन्द्र वनाया गया है, सारा भार सौंपा है। यह तुम्हारे लिए वहुत गौरव की वात है। वापू कभी आदमी छांटने मे धोखा नही खाते। ऐसी कोई वात न होने पावे जिससे हमारे प्रदेश का सिर नीचा हो।"

पूज्य वापू का अपने प्रति इतना स्नेह देखकर मेरे आँसू रोके नहीं रुकते थे। इतना विश्वास किया उन्होने मेरे ऊपर इससे अधिक मुझे क्या चाहिए था। अपने जत्थे मे सम्मिलित करने से कही अधिक सम्मान उन्होने मुझे दिया, मेरे ऊपर सारे प्रदेश का भार देकर। मैने अपने को धन्य माना और उन्होंने मुझसे जैसी आशा की थी उसको पूरा किया।

दूसरा स्नेह-प्रतारण मुझे तव मिला जव मेरे एक मित्र ने पूज्य वापू को अपनी ओर से लिखा कि वह श्री गोविन्द वल्लभ पंत जी को मेरे लिए एसेम्वली की एक सीट देने के लिए लिख दें।

पूज्य वापू ने उनको जो उत्तर दिया वह इस प्रकार है :—

"सुरेश मुझको अच्छी तरह याद है। सुरेश जैसे व्यक्ति को भी असेम्वली मे जाने की इच्छा होती है, यह जानकर आश्चर्य हुआ।"

मै यह पत्र पढ़कर मारे शर्म के जमीन मे गड़ गया। यह कहना असत्य होगा कि उन्होने विना मेरी इच्छा के ही पूज्य वापू को ऐसा पत्र लिखा था। मेरी सचमुच

ही इच्छा असेम्बली में जाने की थी लेकिन बापू के इस पत्र ने मेरी आंखें खोल दी। मैंने उन्हें लिखा—"पूज्य बापू ! आपने मेरे प्रति इतना ऊंचा विचार बना रक्खा था। मैं उसके योग्य साबित नही हुआ। मैं इसके लिए बहुत लज्जित हूं। अपने प्रति आपके ऐसे विचार मेरे लिए असेम्बली के सौ टिकटों से भी कही महान है। मैं असेम्बली में नही जाना चाहता।" और मैंने अपना नाम वापस ले लिया। ऐसा था पूज्य बापू का अपने स्नेही जनों को सही रास्ता दिखाने का ढंग। अब ऐसा नेता कहां मिलेगा ?

३. ताकुला में गांधीजी

[श्री राजीव लोचन शाह, नैनीताल]

१६२६ और १६३१ में गांधीजी ताकुला में मेरे नाना स्व० गोविन्दलाल शाह के अतिथि के रूप में रहे थे। गोविन्दलाल जी कभी कांग्रेस के सदस्य नही रहे किन्तु गांधीजी में उनकी परम भक्ति थी। गांधीजी बराबर उनकी खोज-खबर लेते रहते थे।

ताकुला गांव पहिले नवाब रामपुर के पास था। उन्होंने बाद मे ताकुला के बदले घोड़ाखाल नामक स्थान, जहां आजकल एक सैनिक स्कूल है, ले लिया और सन् १६२६ या २७ में ताकुला सरकार-द्वारा लाल गोविन्दलाल शाह जी को दे दिया गया। गोविन्दलाल जी उस समय उत्तराखण्ड के प्रमुख व्यवसायियों मे माने जाते थे और कूर्माचल क्षेत्र में 'कम्पनी साहब' के नाम से विख्यात थे।

ताकुला गांव के दो भाग है। एक भाग मे, जो कुछ निचले स्तर पर है, खेती-बारी होती है। इस भाग को 'तल्ला ताकुला' कहा जाता है। दूसरा भाग अपेक्षाकृत कुछ ऊंचे स्थान पर है। इसे 'मल्ला ताकुला' कहा जाता है। गांधीजी के आगमन का सम्बन्ध इसी भाग से हैं। उस समय यह गांव बाग-बगीचो से भरा हुआ बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। जिन लोगों ने इसे उस समय देखा है, आज भी याद करते है। गांधीजी इन उपवनों की हरीतिमा देखकर मुग्ध हो उठे थे। यहां गोपालन का कार्य भी होता था।

जिन लोगो ने नैनीताल देखा होगा, वे जानते होगे कि नैनीताल-काठगोदाम मार्ग पर नैनीताल से दो मील दूर तक विकट मोड़ है, जिसे 'चीलचक्कर मोड़' कहा जाता है। इस मोड़ से एक मील और आगे चलकर ताकुला की इमारतें साफ़ दिखाई देने लगती है। यही से एक पगडण्डी ताकुला की ओर जाती है और वहां तक पहुँचने के लिए लगभग एक फर्लांग पैदल चलना पड़ता है।

गांधीजी १९२९ और १९३१ में दो बार नाना जी (स्व० श्री गोविन्दलाल साह) के अतिथि रहे। १९२९ में गांधीजी यहां चार दिन रहे थे। उस समय वह मोतीभवन में ठहरे थे। लालाजी ने उन्हें एक थैली भरकर चांदी के रुपये चन्दे मे दिये थे। उनके अनुरोध पर गांधीजी ने एक भवन का शिलान्यास किया जिसे वाद में गाधी-मन्दिर का नाम दिया गया। उस समय गांधीजी के साथ पं० जवाहरलाल नेहरू, प० गोविन्दवल्लभ पन्त (वाद में उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री तथा भारत सरकार के स्वराष्ट्र मन्त्री) इत्यादि भी थे।

दूसरी बार गांधीजी यहा के तत्कालीन गवर्नर सर मालकमहेली मे वार्त्ता करने के लिए १९३१ मे आये थे। उस समय भी गवर्नर महोदय का निमन्त्रण नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर उन्होने नानाजी का आतिथ्य ग्रहण करना ही उचित समझा। उस समय तक वह गाधी-मन्दिर, जिसकी गांधीजी ने १९२९ मे नीव डाली थी, वनकर तैयार हो चुका था और गांधीजी, दल-सहित उसी में ठहरे थे। इस वार उनके साथ सर्वश्री जमनालाल वजाज, देवदास गांधी, मीरा वहिन, कस्तूरवा, मदालसा वजाज और सेठ दामोदरस्वरूप आदि थे। १९३१ में गांधीजी १८ मई को ताकुला पहुंचे थे और प्रायः एक सप्ताह निवास किया था। मल्लीताल फ्लैट्स में उन्होने नैनीताल जिला कांग्रेस कमेटी-द्वारा आयोजित एक सभा में भाषण भी किया था। उस दिन वह तल्लीताल से मल्लीताल नाव-द्वारा गये।

अपने ताकुला-प्रवास के दौरान वापू प्रातः लगभग चार वजे उठ जाया करते थे। नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्रार्थना में भाग लेते थे। प्रार्थना के वाद वह घूमने निकल जाया करते थे। लौटने पर वकरी के दूध और कुछ फल से नाश्ता करते थे। फिर चर्खा कातने का तथा स्वाध्याय का कार्य चलता था। दोपहर को वा वापू के तलवों मे गाय के घी की मालिश किया करती थीं। एक चादर जिसमें इसी चिकनाई के कारण पड़े हुए गांधी जी के पदचिह्न है, हमारे पास सहेजकर रक्खी हुई है। इस मालिश के वाद गांधीजी विश्राम करते थे। सायं चार वजे के लगभग फिर प्रार्थना होती थी। शाम का भोजन लगभग सात वजे किया जाता था। श्रीमती देवकी देवी (स्व० लाला गोविन्दलाल साह की पत्नी, जो अभी जीवित है) वतलाती है कि वह फलाहार और दूध लिया करते थे।

नानाजी की वडी इच्छा थी कि गांधी-मन्दिर मे गाधीजी की एक प्रतिमा स्थापित की जाय तथा एक पुस्तकालय वनाया जाय परन्तु १९५४ में उनकी मृत्यु हो जाने के कारण वह इच्छा अधूरी रह गई। आज तो यह गांधी-मन्दिर उपेक्षित दशा में पडा हुआ है।

४. बिन्दकी (फतेहपुर) में गांधीजी

[श्री बृजकिशोर अग्रवाल]

फतेहपुर जिले में बिदकी नगर में पूज्य महात्मा गांधी व माता कस्तूरवा गांधी का आगमन दिसम्बर १९२९ में हुआ।

उस समय पूज्य वापू का हार्दिक स्वागत पचास हजार जन-समूह ने किया। प्रातःकाल से ही नर-नारी, बालक-वृद्ध, ग्राम तथा नगर से झुण्ड के झुण्ड उमड़ पड़े और बापू का दर्शन करने और उनका सन्देश सुनने लिए घण्टों खड़े रहे। माता कस्तूरबा भी साथ थीं। उन्होंने भी महिलाओं के बीच सन्देश दिया, महिलाओं ने देश-कार्य के लिए अपने आभूषण उतारकर माता जी को दे दिये। बापू के सिहनाद से बिन्दकी नगर और पूरी तहसील की जनता आजादी के लिए उतावली हो गई। उसके फलस्वरूप ३०, ३२, ४०, ४१, ४२ के आन्दोलनों में बिन्दकी नगर और पूरी तहसील ने अभूतपूर्व साहस व वलिदान का परिचय दिया। यह बापू की ही देन थी कि यहां नशाबन्दी ,विदेशी बहिष्कार, शराव एवं अन्य नशीले पदार्थो तथा विदेशी वस्त्र की दुकानों पर घरना देते हुए, पुलिस की लाठी का प्रहार सहन करते हुए, लोग जेल गये। स्वदेशी, खादी और चर्खा का भी काफी प्रचार-प्रसार हुआ। बिन्दकी नगर व तहसील की ओर से पच्चीस सौ रुपये की धनराशि हरिजन-कार्य एवं हिन्दुस्तानी सेवादल के लिए वापू के चरणों में अर्पित की गई।

हमारे जिले के उस समय के नेता और जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बाबू वंशगोपाल जी एडवोकेट भी साथ थे। जब वापू जी मंच पर आये उसी समय अचानक एक ७-८ वर्ष की बालिका वहां पहुंच गई और बापू से पैसा मांगने लगी। बापू ने हंसकर कहा—"वेटी, हम पैसा लेते है, देते नहीं हैं।" लोग हंस पड़े।

बिन्दकी में शुरू से ही गांधीजी के सन्देश के अनुमार कार्य होता रहा है। रौलट ऐक्ट के विरोध में ६ अप्रैल १९१९ को देशभर में हड़ताल का सन्देश मिलते ही बिन्दकी नगर में पूर्ण हड़ताल हुई थी और सायंकाल की सार्वजनिक सभा में उपर्युक्त अन्याय-पूर्ण कानूनों के खिलाफ़ प्रस्ताव पास हुआ था। इस कार्य में उस समय के नेता पं० आशाराम शर्मा मेरे सहयोगी थे और आज भी जीवित हैं। ३० के सत्याग्रह में ६ मास की जेल भी हुई थी। लगानबन्दी आन्दोलन भी इस जिले में चला जिसके फल-स्वरूप पं० शिवनारायण जी जहानाबाद के निकट पुलिस की गोली के शिकार हुए।

मै वापू के चरणों में अपनी हार्दिक श्रद्धान्जलि अर्पित करता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि बापू की शताब्दी हमें वल व साहस दे कि हम उनके वताये मार्ग पर चलकर देश की सेवा करते रहें।

सांकेतिका

[ई]

[उ]